CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्मज भव-व्याधि दैवी चिकित्सा

अथर्व वेद शौनकीय शाखा

वेदविद् पं० केशवदेव शास्त्री

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

SCANNED

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

21

कर्मजभव-व्याधि-दैवीचिकित्सा

अथर्ववेद–शौनकीयशाखा

लेखक–

केशवदेव शास्त्री

प्रकाशक–

अथर्वा प्रकाशन

वेदानुसन्धान परिषद

८८५, आर० के० पुरम्, सेक्टर ३

नई देहली २२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक—

अथर्वा प्रकाशन

वेदानुसन्धान परिषद

आर० के० पुरम, सेक्टर ३

नई देहली २२

●

सर्वाधिकार सुरक्षित

●

न्यौछावर १०१) रुपया

●

मुद्रक—

विभूति कृष्ण गोस्वामी

वैजयन्ती प्रेस

वृन्दावन (उ० प्र०)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

21

प्रस्तुत ग्रन्थ 'कर्मजभवव्याधि दैवीचिकित्सा' के प्रथम ही अध्याय में यह उल्लेख किया गया है कि 'अथर्ववेद' 'वेदत्रयी' के ज्ञान से परे और यज्ञादि, ब्रह्मविद्यादि का मूल प्रवर्तक है। उसकी पुष्टि ऋग्वेद से भी हो रही है। जो प्राणी दैव की विडम्बना मात्र से हताश, हाथ पर हाथ रक्खे हुए, नाना भाँति के दुखों, सकटों और दुर्गति पाशों तथा दारिद्रता, सदा रोगी जीवन की घुटन से सतप्त हैं। उनको यह वैदिक ऋषियों की तप, साध्य, दैवी शक्ति स्पष्ट रूप से निर्देश दे रही है कि,कृतकर्म और क्रियमाण पापों के भोग स्वरूप फल (दैव) को बदला जा सकता है, उससे कल्याणमय जीवन और लोक-लोकान्तरीय; स्थाई शान्तिमय बना देने में पुरुष पूर्णतया आत्मनिर्भर था, और हो सकता है। कुछ सम्भ्रान्त इतिहासकारों ने, इस भरतखण्ड में स्थित 'भारतवर्ष' और यहाँ के प्राचीन प्रेरणा के स्रोत, तपोधनों का जो अपहासात्मक, हमारी दौर्भाग्यपूर्ण परतन्त्रता काल में, अपने २ इतिहासों में जोड़ दिये है। वे इस आथर्वाणिक द्वितीय 'भैषज्यवेद' तथा प्रथम 'ब्रह्मवेद' (शौनकीय) शाखाओं से प्रेरणा लें, और पुनः अपने २ लेखों की समीक्षा कर, निर्णायक प्रकाश लें। भरतखण्ड 'तप यज्ञों की सघीय शक्ति अनादिकाल से रहा।

उसका वक्ष (अन्तःकरण) भारतवर्ष अनादि से रहा। यहाँ के निवासी निस्वार्थ, समाजसेवी, सदाचारी, अहिंसक, धैर्यवान, सत्यनिष्ट, ब्रह्मवेत्ता रहे हैं। उन्होंने अखिल ब्रह्माण्ड के, समस्त भुवनों की, वस्तुमात्र की, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्थिति, गुण-अवगुणों का विषद-विज्ञान पूर्ण सामर्थ्य से ओत-प्रोत तथा जन कल्याणार्थ, पुराकाल ही में विश्व को दे दिया था,और उसके उपलक्ष में अपना गुणगान,कीर्ति तक को भी,हेय समझ सब कुछ अपनी दिव्य शक्ति से कराते हुए भी स्वयं सामने नहीं आये। यह उनके ज्ञान और योग्यता के प्रतीक मात्र यजुर्वेद ऋग्वेद मन्त्र के भी उपर्युक्त विषयों तथा ग्रन्थ में उल्लिखित समस्त निदान,उपचरादि की सम्पुष्टि में,ऋग्वेद मन्त्रों के कतिपय,आंशिक प्रयोग विधियाँ भी,उद्धृत की गई हैं। यह हमारे राष्ट्र के समर्थ सुसस्कृत,सम्कृति और संस्कृत के मनीषियों के संगठित रूप से, जागरूक होकर वेदों के अवगाहन की दिशा में आमन्त्रण और उन मनीषियों का इस पुनीत कर्म में सभी प्रकार से सहयोग और मनोबल सम्बर्द्धन का स्वर्णिम अवसर और कर्त्तव्य भी है।

तद्रूषु तै महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना, कृणोमि। यत्सम्यञ्चावभियन्तावभिक्षामत्रामहीरोध-चक्रे वा वृधेते। (५।१-४) हे विशिष्ट गति प्रदाता, सर्व संचालक प्रभो! मैं कवि (लेखक) की दृष्टि से; इस वैदिक काव्यमयी वाणी द्वारा; तेरे महान गौरव, गुण गण गाता हुआ; तेरी शरण में आया हुआ, अत्यन्त विनम्र अन्तःकरण और वाणी से निवेदन करता हूँ। यह कि जैसे जड़, चेतन ये दोनों विरुद्ध गुण, धर्म वाले दो पदार्थ, तेरी शरण में आकर; विनम्रता के साथ शक्तिशाली बन जाते हैं। वैसे ही ये दोनों ही आथर्वाणिक 'ब्रह्मवेद' और 'भैषज्यवेद' स्थूलकायिक तथा 'कर्मज-भवव्याधि' निवारक बिधियाँ पृथक२ परन्तु एकमात्र ही कार्य 'जीव जगत की निरोगता, स्वस्थता दीर्घायुष्य एवं ऐहिक पारलौकिक अभ्युदय के क्षेत्र में,' एक ही केन्द्र में हिलमिलकर एक होकर, कार्य करने लगें तो सोने में सुगन्धि सम्भव हो सकेगी, ऐसी सद्बुद्धि राष्ट्र को प्रदान करो। तभी देवर्षि का अहैतुक यह संकल्प साकार हो सकेगा। **उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूताः। दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमानावयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम। (१२।१।६२)**

हे हमारी राष्ट्रीय माँ! वीर वसुन्धरे! तेरी गोद में उत्पन्न हुए हम सभी प्राणी, सतत् नीरोग, दीर्घायु, धीवान्, वली, पूर्ण जागृति सम्पन्न हों। हम अपनी मातृभूमि, मातृभाषा और मातृ सस्कृति के हितार्थ, प्राणप्रण से, आत्म समर्पण कर, गौरवान्वित हों, वह क्षमता प्रदान करो। ग्रन्थ में नेत्रों को धोखा देकर जानते अजानते तथा मुद्रण की आकस्मिक विविध कठिनाइयों के कारण यदि कोई त्रुटियां रह गई हों, तो सहृदय पाठक मनीषिगण, ग्रन्थ के पते पर अपने उचित आवश्यक निर्देशों के साथ सूचित करने की कृपा करें ताकि अगले संस्करणों में उनको कार्यान्वित किया जा सके।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस ग्रन्थ को विश्व की मानवता के समक्ष प्रस्तुत करने में प्रारम्भ से समर्पण पर्यन्त, निष्काम भाव से बौद्धिक, साहित्यिक आर्थिक एवं अन्य साधनों से सहयोग करने वाले सभी धर्म परायण, श्रद्धालुओं, देवियों का लेखक अत्यन्त अनुग्रहीत है और यह प्रभु से प्रार्थना करता है।

नमस्ते अस्तुपश्यत् पश्यमा पश्यत । अन्नाद्येनयश सा तेजसा ब्राह्मण वर्चसेनं ॥

हरि ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

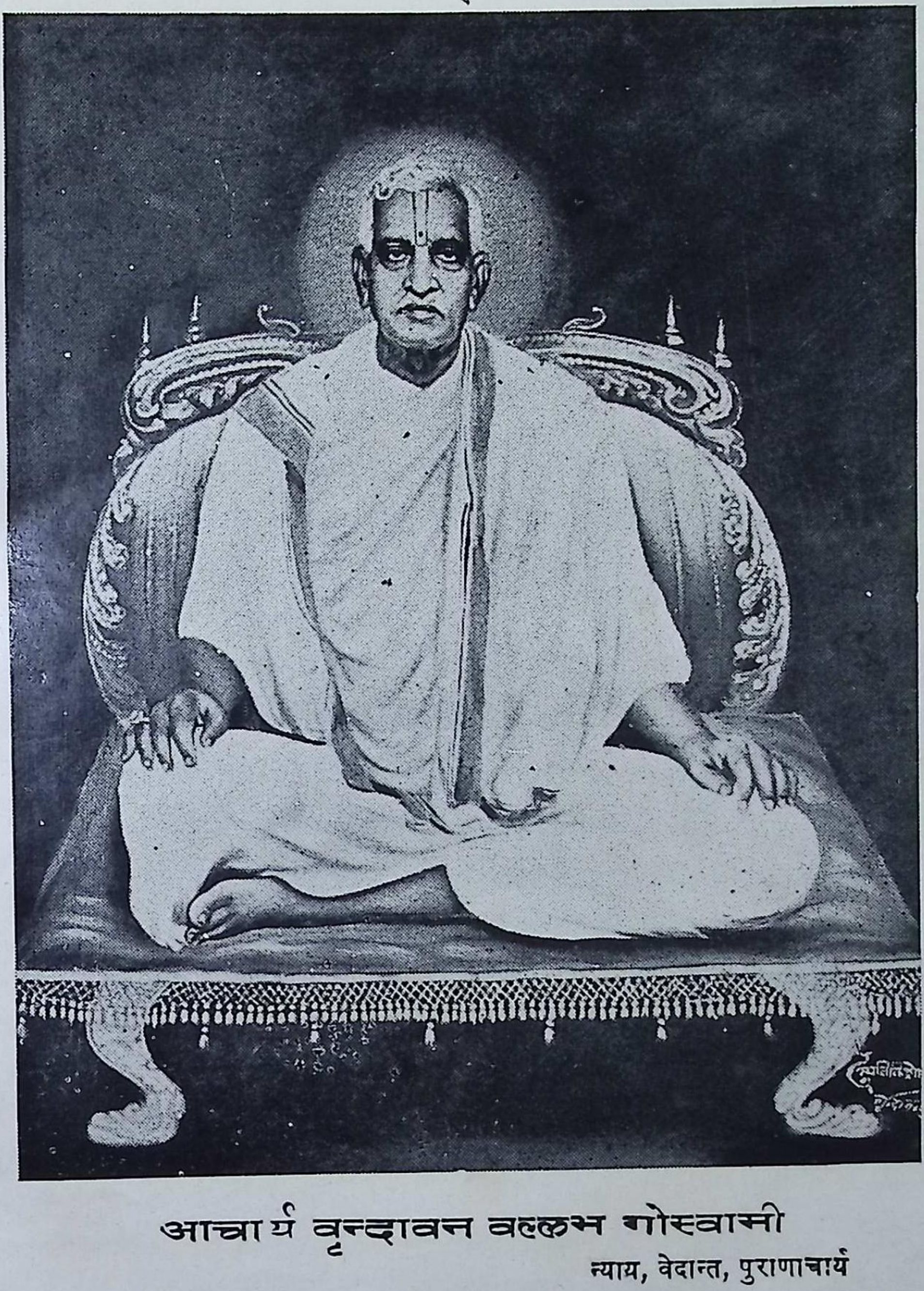

आचार्य वृन्दावन वल्लभ गोस्वामी

न्याय, वेदान्त, पुराणाचार्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य वृन्दावनबल्लभ गोस्वामी

न्याय, वेदान्त, पुराणाचार्य

भू० पू० सदस्य वैदिक अनुसंधान परिषद

भोपाल (मध्य प्रदेश)

卐

व्रज क्षेत्र के लोहई निवासी पं० घूरेलालजी के पुत्र केशवदेवजी शास्त्री के कुछ अपरिहार्य, दैव विपाक, चिर रोगियों की सफल चिकित्सा की चर्चा सुनकर मिलने का अवसर मिला।

श्री शास्त्रीजी की इस पाण्डुलिपि को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि लेखनी उठाने से पहले सैकड़ों ही वैदिक ग्रन्थों का मन्थन कर उनका सार इस पाण्डुलिपि में प्रस्तुत किया है जो बड़ा ही सार-गर्भित एवं उपयोगी है।

वैदिक साहित्य भारतीय संस्कृति की एक स्वतः प्रामान्य अमूल्य निधि है। लोक-कल्याण के क्षेत्र में वह जितना व्यापक है उतना ही व्यावहारिक भी है। जन-कल्याण की इसमें महान शक्ति उपलब्ध है। अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा में प्रचुर वस्तु भण्डार जो अभी तक राष्ट्र व वैज्ञानिकों द्वारा उपेक्षित रहा उसको ३० वर्ष की कठोर साधना द्वारा लेखक ने जनहित में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस पाण्डुलिपि में दैवी कर्मज पापज व्याधियों का ज्ञान और उपचार, ज्योतिष, योग, आयुर्वेद, कर्मकाण्ड पर विशेष अनुसन्धान करके एक अभूतपूर्व कार्य किया है, आज जनसाधारण कर्मज व्याधियों से ही अधिकतर सन्तप्त है, परन्तु इन व्याधियों से मुक्ति पाने को जानकारी जनसाधारण को नहीं है। हमारी देखरेख में ही कई वर्षो से लगातार इनके अनेक प्रयोग इन व्याधियों पर सफल प्रमाणित हुए हैं। हमारा श्रीशास्त्रीजी को शुभकामनाएँ एवं आशीर्वाद प्रेषित हैं। श्री शास्त्रीजी प्राणीमात्र को कर्मज-कायज व्याधियों से मुक्ति दिलाने में समर्थ हो सकें। इनका यह कार्य देश-हित में इस युग की एक महान देन होगा।

हमारे समस्त वैष्णव व समस्त धर्मानुयायी इस विशुद्ध वैदिक, अलभ्य, शोधपूर्ण एवं स्वतः प्रमाण थाती को अङ्गीकार करते हुए सभी क्षेत्रों में इस संकलित पाण्डुलिपि का मुद्रण, प्रचार, प्रसार कर लेखक और अन्य शोधकर्ताओं को प्रोत्साहित करेंगे ऐसी कामना है।

—आचार्य वृन्दावनवल्लभ गोस्वामी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य विपिनवल्लभ गोस्वामी

आयुर्वेदाचार्य, साहित्यशास्त्री

राधिका औषधालय वृन्दावन धाम

एवं भू० पू० सदस्य आयुर्वेद अनुसन्धान परिषद

जयपुर

卐

व्रजयात्रा के क्षेत्र वत्सवन ग्राम सेई निवासी पं० बालकृष्णजी के दौहित्र श्री केशवदेवजी शास्त्री से एक रोगी के निदान व उपचार के समय हमारा परिचय हुआ।

पं० केशवदेवजी शास्त्री ने लगभग ३० वर्ष की निरन्तर साधना के पश्चात एक ऐसे शोध विषय पर प्रकाश डाला है जो अब तक महत्वपूर्ण होते हुए भी उपेक्षित रहा। प्राणीमात्र के शरीरों के सम्बन्ध में विभिन्न देशों में बड़े-बड़े प्रयोग हुए परन्तु मानव जीवन केवल स्थूल शरीर तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तरों से जो संस्कार बनते हैं और सूक्ष्म शरीर जिन-जिन योनियों को धारण करता है उसका प्रभाव मानव जीवन पर भी पड़ता है। जिसके फलस्वरूप मानव को दैवी प्रकोप का भी पात्र बन जाना पड़ता है। अथर्ववेद की अप्राप्य शौकनीय शाखा में इस पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। श्री शास्त्रीजी ने स्वयं इस विषय में विभिन्न प्रकार के सैकड़ों ही प्रयोग हमारी देखरेख में किये हैं जो पूर्ण सफल रहे। वैदिक, ज्योतिष आदि की चमत्कारपूर्ण निदान विधि को इस संकलित वैदिक पाण्डुलिपि में जुटाकर विश्व की दुःखी मानवता का महान उपकार किया है। लेखक के विभिन्न क्षेत्रों में विविध व्याधियों पर सरल, सुलभ, सफल प्रयोगों से हम सब आश्चर्य चकित हैं। जिसकी विश्व की इस दुःखी मानवता को सर्वदा-सर्वदा के लिए चाहना रहेगी।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि में कृषि, पशु, ईत्तीभीति, विष निवारण प्रयोग, प्राण-विद्या, संजीवनी विद्या, पुत्रेष्टि विधि आदि ऐसी विधियाँ हैं जो आज खोजने पर भी नहीं मिल पा रही थीं, अत्यन्त सरल विधि से प्राप्त हो रही हैं। आयुर्वेद के अनुभूत प्रयोग भी इस पाण्डुलिपि में उपलब्ध हैं। यह एक महान लोक-कल्याणकारी कार्य जनहित के लिए, वनस्पति एवं मन्त्र शक्ति के सहयोग से व्याधियों का निवारण कर, उपस्थित किया है।

हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ श्री शास्त्रीजी की इस शोधपूर्ण पाण्डुलिपि के प्रति हैं।

—आचार्य विपिनवल्लभ गोस्वामी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्मतियाँ

"अनन्त श्री विभूति, परमवीतराग, विद्यावागीश स्वामी श्री हरिहरानन्द सरस्वती (करपात्री जी महाराज)

कर्मज भवव्याधि की दैवी चिकित्सा पुस्तक अथर्व वेद शौनकीय शाखा पर आधारित है। अनादि अपौरुषेय मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद ही भारतीय सभ्यता, संस्कृति के मूल हैं। सभी पुरुषार्थों का भी आधार वेद ही है। अधिव्याध विनिर्मुक्त प्राणी ही पुरुषार्थ साधन में सफल होता है। अतः उसका उपाय भी वेदों में मिलता है। अथर्ववेद के आधार पर संकलित उक्त ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय अत्यन्त प्रशंसनीय हों, पं०केशवदेव शास्त्रीजी ने वर्षों से हमारे सानिध्य में अनेकों ही प्रयोगों का दीर्घकालीन अनुभव करने के उपरान्त उनका उल्लेख किया है, अतः ग्रन्थ जन साधारण का संग्रहणीय है।

करपात्री स्वामी

श्री पं० केशवदेव शास्त्री द्वारा सङ्कलित "अथर्ववेदीय कर्मज भवव्याधि दैवीचिकित्सा" वैदिक ढंग की अनोखी कृति है। शौनकीय शाखा की इस पद्धति द्वारा अनेक सफलतायें प्राप्त हुई हैं। सन्तान निरोध के कारण, उनकी निवृत्ति का उपाय पुंसवस आदि की विधि के अतिरिक्त अन्य दूसरे प्रयोग यथा—उन्माद-निवारण, प्रेत-बाधा-निवृत्ति, प्रभृति विविध प्रयोग भी वैदिक-परम्परा के अनुसार दिये गये हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन न केवल कर्मकाण्ड की दृष्टि से उपादेय होगा, अपितु अपनी विस्मृत वैदिक कर्म-परम्परा का स्मारक भी होगा। इसके साथ-साथ तन्त्र, मन्त्र और वैदिक पद्धतियों का भी इसमें समावेश होने से सर्व-साधारण जनसमाज का उपकार भी होगा, ऐसी हमारी धारणा है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन, प्रचार और प्रसार से राष्ट्र का सर्वतोन्मुखी कल्याण एवं उपकार होगा। इसमें अनेक विचित्र अलभ्य प्रयोग दिये गये हैं जो अन्वेषण करने पर भी प्राप्त नहीं होते। अतः इसके लेखक और ग्रन्थ के समादर के लिये हमारा आशीर्वाद है।

—कृष्ण बोधाश्रम
जगद्गुरु शङ्कराचार्य
ज्योतिर्मठ, बदरिकाश्रम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनन्त श्री विभूति जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य
ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम, उत्तराखण्ड (हिमालय)

श्रीमान् पं० केशवदेवजी शास्त्री के द्वारा संकलित अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा में निहित कर्मज भवव्याधि दैवी-चिकित्सा पर गंभीर अध्ययन किया, कठोर परिश्रम के पश्चात् आपने अपने तीस वर्षों के अनुभव के बल पर अनेकों रोगियों पर वैदिक पद्धति से अद्‌भुत प्रयोग कर; सहस्रों ही असाध्य रोगियों को भयकर रोगों से मुक्त किया है।

एतदर्थ हमारी आपके प्रति मंगलकामना एवं शुभाशीर्वाद है, कि आप अपने प्रयास में पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त करें तथा साथ ही भारतीय जनता का, एवं राष्ट्र का, वैदिक परम्परा के मूर्धन्य वेद का, अनुभव युक्त प्रयोग कर, मानव तथा समस्त जीवधारियों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक अपरिहार्य संकटों को दूर कर; कल्याण कर सकने का श्रेय प्राप्त करें।

अन्त में हमें पूर्ण आशा है कि भारतीय जनता आपके अकथ-अथक परिश्रम एवं अनुभव का सदुपयोग कर त्रय ताप से मुक्त होगी।

भवदीय—
शान्तानन्द सरस्वती

ऋगवेद, सामवेद, यजुवेद—इन तीन वेदों का अध्ययन करके हमारे पूर्वजों ने उसके ऊपर प्रकाश डाला है लेकिन चौथा अथर्ववेद अभी अंधेरे में ही था जो कि मनुष्यों को अत्यन्त उपयोगी है। इस अथर्ववेद का श्री केशवदेव शास्त्रीजी ने तीस साल गहन अध्ययन करके इसका सरल सुलभ हिन्दी में संकलन किया।

इसे लिखकर श्रीकेशवदेव शास्त्रीजी ने सर्व साधारण जनता का अनन्त उपकार किया है। मेरा तथा श्रीशास्त्रीजी का परिचय भी बड़ा अद्‌भुत ढंग से हुआ है। श्रीशास्त्रीजी केवल ग्रन्थ लिखकर यों ही तृप्त नहीं हुये वैदिक तन्त्रों का प्रयोग प्रत्यक्ष करके अनेकों जीवों को दुःख मुक्त किया है, जैसे एक व्यक्ति के दुःख निवारण के कारण श्रीशास्त्रीजी जहाँ प्रयोग कर रहे थे, मैं भी वहाँ पहुँची, और उनका मेरा परिचय उन व्यक्ति के द्वारा कराया गया, जो उनके अपूर्व शोधपूर्ण प्रयोग से हुआ और मैं भी ये वेद की मन्त्र-शक्ति देखकर चकित हो गयी। क्योंकि मैं भी तीस साल से योगाभ्यास कर रही हूँ और प्रभु कृपा से मुझे सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त हो गयी है, उस दृष्टि से मैंने देखा तो श्रीशास्त्रीजी एक देवता तथा मृत आत्मा या और कोई भयानक बाधा को आह्वान करके बुला लेते थे, तो उनके सामने वही प्रत्यक्ष रूप में प्रगट होती थी और मन्त्रों द्वारा श्रीशास्त्रीजी उसका अपहरण करते थे, तथा मृतात्मा भटकी हुयी, आत्मा का उद्धार करते थे, ये सारा साक्षात् देखा। ये अथर्ववेद जनता कल्याण का ग्रन्थ है, आज हमारा सौभाग्य है कि ये महान दुःख की निवृत्ति करने की अपार सम्पदा, हमारे हाथ श्रीशास्त्रीजी के अतीव परिश्रम से आयी हुई है। श्रीशास्त्रीजी को प्रभु दीर्घायू दे, तथा मनुष्य के कल्याण के लिये उन्हें बल दे, ये निष्काम कर्मयोगी श्री शास्त्रीजी को; शब्द में धन्यवाद देना उचित नहीं होगा, तथापि यहाँ शब्द की शक्ति फीकी है। इस ग्रन्थ की कृति के लिये हमारा आशीर्वाद है। अस्तु!

—योगसाम्राज्ञी मालतीदेवी बाल

बाल वाडा घ० नं० ४७०७
ब्राह्मण भाग
जि० सांगली, पो० मिरज
मुम्बई राज्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योग साम्राज्ञी
श्रीमती मालती देवी बाल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगिराज चन्द्रमोहनजी महाराज

योग प्रशिक्षण केन्द्र

श्री सिद्धगुफा, संवाई, जि० आगरा, (उ० प्र०)

मैंने पं० केशवदेव शास्त्रीजी के लिखे हुए पवित्र "कर्मज भवव्याधि दैवी चिकित्सा" नामक ग्रन्थ को बड़ी गहनता से देखा । विशेषतः योग तथा प्राणविद्या, ब्रह्मविद्या, संजीवनीविद्या के प्रकरण को विशेषरूप से पढ़ा । जिसमें उन्होंने सप्तचक्रों का भी अ० १ व ३ में वर्णन किया है । यह सारा प्रकरण ही योगपरक है । इसका अध्ययन करनेवाला व्यक्ति अवश्य ही योग सिद्धान्तों को समझ कर ब्रह्मद्वार का विक्षेदन कर मुक्ति लाभ कर सकता है । पं० केशवदेव शास्त्रीजी का यह पुरुषार्थ कार्य बहुत ही सराहनीय है । इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर कर्मजभव व्याधि दैवीचिकित्सा जो जीवन का परमोपयोगी वाञ्छनीय, कल्याण मूल है, का निरूपण मान्त्रिक वैदिक आधार पर किया गया है, वे सभी अनूठी परमोपादेय तत्व हैं । ससार का उनसे सभी प्रकार बहुत बड़ा हित हो सकता हैं । मेरा हार्दिक आशिर्वाद है कि वह परम कल्याण धन, परम ज्ञानिकेतन प्रभू; पं० केशवदेव शास्त्री को पूरा-पूरा वल दें, जिससे वे अपने पवित्र पुरुषार्थ में उत्तमता से सफलता लाभ कर सकें ।

—चन्द्रमोहन

श्री केशवदेव जी शास्त्री से मैं पूर्णतया परिचित हूँ । यह बड़े मेधावी और परिश्रमी व्यक्ति है । बाल्यकाल से ही देश-प्रेम से ओत-प्रोत होकर इन्होंने अपना जीवन देश-सेवा में ही बिताया ये स्वयं तथा इनका सम्पूर्ण परिबार (श्री सात्विकी शर्मा, श्री हरिप्रसाद, श्रीमती भगवती देवी हर देवी, तथा श्रीमती रामदेवी आदि) ने स्वतन्त्रता आन्दोलनों में जेल-यात्रायें की हैं, तथा अत्यधिक आर्थिक क्षति उठाई है । श्री शास्त्री ने आजादी मिलने के उपरान्त अपना सम्पूर्ण समय वेदों के अध्ययन तथा शोध-कार्य में लगाया है । लगभग ३० वर्ष की निरन्तर साधना के पश्चात इन्होंने एक ऐसे शोध विषय पर प्रकाश डाला है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी अब तक उपेक्षित ही रहा । प्राणीवर्ग के शरीरों के सम्बन्ध में विभिन्न देशों में बड़े-बड़े कार्य हुए हैं । आयुर्वेद, यूनानी, ऐलोपैथिक, प्राकृतिक चिकित्सा आदि पर बड़े-बड़े प्रयोग हुये हैं और इनके बड़े-बड़े चिकित्सालय भी स्थापित हैं; परन्तु प्राणी का जीवन केवल स्थूल शरीर तक ही सीमित नहीं हैं । इसका सम्बन्ध जन्मजन्मान्तरों से जो संस्कार बनते हैं और सूक्ष्म शरीर जिन-जिन योनियों में होकर गुजरता है, उनका भी प्रभाव उसके जीवन पर पड़ता है । सौर मण्डल और विशेषकर गृह मण्डल भी अपना प्रभाव डालते रहते हैं । कभी-कभी प्राणियों को समय और स्थान से भी प्रभावित होना पड़ता है जिसकी उसे प्रत्यक्ष जानकारी नही हो पाती । कभी-कभी स्वयं प्राणी पर उसके आस-पास के रहने वाले मृत प्राणियों द्वारा अपने जीवन में किये गये अपने कर्मों का भी प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप दैवी प्रकोप या दैवी कृपा का भी पात्र बनना पड़ जाता है । अथर्ववेद की चौथी शौनकीय शाखा अर्थात् कौशिकगृह्यसूत्र, वैतानश्रौतसूत्र, गोपथ ब्राह्मण, सायणभाष्य, अथर्व-परिशिष्ट, आंगिरसंकल्प, नक्षत्रकल्प, शान्तिकल्प में इसका विवरण हैं ।

आज का युग विज्ञान का युग है और प्रत्येक सिद्धान्त का वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग करने पर ही उसकी याथार्थता सिद्ध होती है । शास्त्री जी ने स्वयं इस विषय में विभिन्न प्रकार के सैकड़ों ही प्रयोग किये हैं, और उन में सफलता भी प्राप्त की है । इस "अथर्ववेदीय कर्मजभवव्याधि-दैवी चिकित्सा" ग्रन्थ के द्वारा विद्वानों को तो विचार करने और प्रयोग करने का अवसर मिलेगा ही,. साथ ही सर्वसाधारण को भी इससे अधिक लाभ होगा । मेरी हार्दिक शुभकामनायें श्रीशास्त्री जी के इस शोध ग्रंथ के प्रति हैं ।

जगन प्रसाद रावत

अध्यक्ष उ० प्र० पंचायत राज्य समिति लखनऊ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेद अपौरुषेय, हमारी संस्कृति के प्राणिवर्ग के कल्याण की अमूल्य अप्रतिहत्त, समर्थ निधि हैं। यह निधि वेदविद् वैज्ञानिकों के द्वारा ही सुलभता से प्राप्य है। ये वैज्ञानिक ही इस निधि के वास्तविक प्रहरी होते हैं। अथर्ववेद शौनकीय शाखा में निहित अपेक्षित बस्तु भण्डार, जो अभी तक राष्ट्र और वैज्ञानिकों द्वारा उपेक्षित रहा, उसको अपने अनुसन्धान तथा बहु प्रयोगों की कठोर परीक्षा-सन्तत, सफल विधियों द्वारा संकलित कर, लेखक केशवदेव शास्त्री ने सभी को इस ओर गहन शोध-प्रचार-प्रसार का आह्वान तथा सक्रिय रूप से परिपालन का अवसर दिया है। यह इस "कर्मज भव व्याधि निरोध" दैवी चिकित्सा तथा भवव्याधि भैषज्य नामक कृति द्वारा राष्ट्र के सन्मुख प्रस्तुत हो रहा है। इसके अनेकों ही प्रयोग हमारे आश्रम में सफल प्रमाणित हुये जो निश्चय ही हर्ष तथा अनुकरणीय विषय है। हमारा लेखक और उनकी कृति को आशीर्वाद तथा शुभकामनायें हैं कि प्राणिवर्ग की कर्मज-कायज-व्याधियों के निराकरण में वे पूर्ण समर्थ हों और वैज्ञानिकों को उत्तमोतम अवसर इनके द्वारा प्राप्त हो।

—दुर्गाचरण अनुरागी सन्त नागपाल

कात्यानी पीठ, दुर्गाश्रम छतरपुर, नयी दिल्ली-३०

भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद का उपवेद माना गया है। वेदों की दिव्यता एवं अपौरुषेयता के सम्बन्ध में वैद्यों तथा समस्त भारतीय जनता को किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। परन्तु इनमें वर्णित गूढ़ रहस्यों को समझ पाना आज कठिन हो गया है। ऐसे समय में आचार्य केशवदेव जी शास्त्री द्वारा हिन्दी भाषा में अथर्ववेदीय मन्त्र एवं औषधि चिकित्सा को प्रस्तुत करने का प्रयास निश्चय ही श्लाघनीय है। उन्माद, अपसमार, अर्श, शूल, हृदयरोग, कामला, जलोदर, गंडमाला, बालग्रह एवं राजक्षमा स्थावर जंगम विष आदि रोग आज भी सम्पूर्ण विश्व की मानवता के लिये अभिशाप बने हुए हैं। इन रोगों को वेदोक्त औषधी एवं मंत्र चिकित्सा, सरल एवं सुबोध हिन्दी में उपस्थित कर शास्त्री जी ने पीड़ित मानवता की महान सेवा की है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि, आयुर्वेद के क्षेत्र में कार्यरत शोध छात्र एवं संस्थान इस कृति से समुचित लाभ उठायेंगे और इस दिशा में कार्य को और भी अग्र बढ़ायेंगे।

ग्रन्थ में वर्णित अनेक प्रयोगों का प्रत्यक्ष कर्माभ्यास लेखक ने स्वयं किया है और उन्हें इस कार्य में पूर्ण सफलता मिली है। इन प्रयोगों का नवीन विधि से पुनः वैज्ञानिक परीक्षण कर परिणामों को प्रकाशित करना श्रेयस्कर रहेगा।

शिव कुमार मिश्रा

सचिव, भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय, परिषद

झण्डेवालान प्रसार

नई दिल्ली

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य विपिन वल्लभ गोस्वामी
आयुर्वेदाचार्य, साहित्य शास्त्री

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

* अथ कर्मज भव व्याधि दैवी चिकित्सा *

विषयानुक्रमणिका

★

प्रथमो अध्याय

पृष्ठ	विषय
१	प्रथमो अध्याय;—वेदों का अपौरुषेयत्व ।
२–३	अथर्व वेद के नाम व स्वरूप—योग (योग, जातु तन्त्र, (जादू-टौना) ।
३–११	अथर्व वेदीय सृष्टि कर्म व शरीर—वैश्वानर की प्रतिमा;उच्छिष्ट में ही कर्म;उच्छिष्ट में काल, अथकाल समीक्षा, जाठर अग्नि, पिता और पुत्र, शरीर ही देव मन्दिर है, बीज शक्ति, जीवन-मृत्यु, आयु, काल की अनुकूलता, प्राण की श्रेष्ठता, शरीर में तीन लोक । औषधि, भैषज्य, रोग, आधि, व्याधि, व्याधिभेद, कतिपय व्याधि समीक्षा, पिशाच, रक्षः, दुर्भूतः, तमः, अभिचारः शरीरं, असवः, माताशिशु, नाष्ट्राः, निर्ऋति, ऋतिः, यक्ष्मरोगः, कर्मज, पापज ।
११–१४	अथ धर्मशास्त्रीय-कर्मज, भवव्याधि ज्ञान—वंश नष्ट, मृतवत्सा, गर्भस्राव, प्रदर, शीत ज्वरादि, कर्ण रोग, ' नासिका रोग, मुख रोग, मृगी, भगन्दर रोग, हृदयव्रण, मस्तिष्कव्रण, नासिकाव्रण, हृदयव्रण, पक्षाघात, आन्तरिकव्रण भगव्रण, मधुमेह शोथ रोग, वृषण व्याधि, गण्डमाला, कुष्ठ रोग, शिरो रोग, नेत्र रोग, कफरोग, वात व्याधि, धनुर्वात, शूल रोग, गुल्म रोग, उदर रोग, प्लीहादि, अजीर्ण, विषूचिका, पाण्डु रोग, रक्त-पित्त, क्षय रोग, स्तनरोग, पुरुष वात रक्त ।
१५-१७	अथ भव व्याधि मूल विवेचन—
१७–२०	भव-व्याधि-निदान—वियोनि जन्मज्ञान, वियोनि के अंगों में राशि स्थान, वियोनि वर्ण-ज्ञान, पक्षि जन्म-ज्ञान, वृक्षादि जन्म-ज्ञान, पूर्व जन्म स्थिति, गतभावी जन्म की स्थिति, मोक्ष-योग शव-परिणाम, निर्वाण (मृत्यु) विचार ।
२०	वैवाहिक-वर-कन्या प्राप्ति प्रश्न विचार—
२०–११	आजीविका कथन—
२१	द्रेष्काणका स्वरूप—मेष राशिके प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप, मेष का द्वितीय द्रेष्कण, वृष का १, मिथुन का १, कर्क का १, सिंह का १, कन्या का १, तुला का १ ।
२२	राश्यर्ध होरा-ज्ञानार्थ चक्र—
२२	(राशि तृतीयांश) द्रेष्कण-ज्ञानार्थ चक्र—
२३	राशियों में नवमाश ज्ञानार्थ चक्र—
२४–२५	सूर्यादि ग्रहों के जाति, शील आदि का बोधक चक्र—वृश्चिक १, धनुष १, मकर १, कुम्भ १ मीन १ ।
२५–२८	अद्भुत दर्शन—पुच्छल तारादि फल, भौमचार फल, राहुचार फल ।
२८	मूर्ति प्रतिमा विकार—विविध विकार ।
२८–२९	वृष्टि विचार (अनुभूत)—
२९–३१	यात्रा में प्रतिबन्ध—यात्रा में विशेष अपशकुन, अद्भुत उत्पात ।
३१–३२	बृहच्छान्ति—शाप की उत्पत्ति, पाप को दूर करना ।
३२–३३	अथर्व वेदीयगण—
३३–३४	अथ पुष्टिका मन्त्रा (सलिलगण) द्वितीय—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृष्ठ	विषय
३४–३५	अथर्व वेदीयगण–कर्मविधि—
३५–३८	गणकर्म विधि–अर्थोत्थापन (अलक्ष्मीनाशिनगण) कृषि, संवर्धनगण, कुष्ठलिङ्गा, गोष्ठकर्मस्वस्त्ययन, गो हरणे अभिचार, कृत्यागण, तक्मनाशनगण, बास्तुगण, यक्ष्मनाशन गण, रक्ष्योहण अनुवाक, रौद्रगण, वन्ध्यात्व-शमनगण, कापिंजल स्वस्त्ययानि, शर्म-वर्मगण, संप्रोक्षणआचमनीय शान्ति-जल, स्वस्त्ययनगण, ग्राम-नगर-गृह-राष्ट्रादि स्वस्त्ययनगण, दुःस्वप्ननाशनगण, पत्नीवन्तगण, पाप्मगण, पापलक्षणा, स्त्रीशान्ति, पिप्पलादिगण, वर्चसगण, व्याघ्र चरक चौर सिंहादि पशुभये स्वस्त्ययनम् ।
३९–४०	अथर्व वेदीय दैवी चिकित्सा—
४०–४८	आथर्वणिक उपचार विधि—मनुष्यजा औषधयः दैवी चिकित्सा जल से भेषज, जल में औषधि, विनाशकारी जल, आङ्गिरषी भेषज, मानसिक शक्ति, आथर्वणी भेषज विधि, हवन से दीर्घ आयु सजीवनी विद्या, यज्ञ से दीर्घायु, यज्ञ से विविध प्रकारों से आरोग्य ।
४८–५३	कालयज्ञ—सवत्सर, दुःस्वप्न, यज्ञ का कार्य, मृत्युलोक, स्वर्गलोक, वासनादेह, नरक के दुःख, कल्प वृक्ष व कामधेनु, प्राणदेह (कारण शरीर) महाप्राण ।
५३–५६	कारण जगत—हिरण्यलोक, ब्रह्मविद्या, दुःस्वप्न
५६–६२	यज्ञ से विविध व्याधि शमन—प्रजापत्य इष्टि, कामाग्नि की शान्ति, काम, कामकवच, कामाग्नि स्वरूप, कामरूप अग्नि के स्वरूप, काम और इच्छा, काम की मर्यादा, कामशान्ति का उपाय ।
६२–६३	वृहच्छान्ति—पाप को दूर करना ।
६३–६५	अथ प्राण विद्या—
६६–६९	अष्ठ चक्र, योग क्रिया; दर्शन व भेदन ।
६९–७२	प्राण से ब्रह्म प्राप्ति का उपाय—साकारत्व, जीवात्मा, शरीर धारण, प्राणायाम से मुक्ति, प्राणायाम के आयाम, क्रिया-योग, आत्मोन्नति साधना, वाणी का मूल, वाणी के चार पाँव, मन्त्र, अथर्वा व्याख्या ।
७२–७३	प्रकृति पुरुष विवेक व फल—
७३	योग वर्णन और उसके साधन से परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति समाधि—
७३–७४	अथ अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवत् वर्णन—तत्वज्ञान दक्ष, सत्व सम्बन्धी गुण, रजोगुण कर्म, तमोगुण लक्षण ।
७४–७५	जीवन–बन्ध–मोक्ष— उत्तम लोक, आध्यात्म क्या है ?
७५–७६	ताप–त्रय मुक्ति प्रदयोग—ध्यानयोग, ध्याता, परम मोक्ष, जातिर्निर्वेद, कर्म निर्वेद, सर्वनिर्वेद भगवत् प्राप्ति ।
७६–७७	परा–अपरा विद्या—अविद्या का स्वरूप, मोक्ष का स्वरूप कैसा है ?
७७–७८	वेदों में अनध्याय के निमित्त स्वरूप वायु—प्रवह, आवह, उद्वह, सवह, विवह, परिवह, परावह ।
७८–७९	अथ मोक्ष रूप पुरुषार्थ साधन—भवव्याधि, जीव का गर्भाशय प्रवेश व गर्भ दुःख ।
७९–८१	अथ मुक्ति प्रदयोग—योग का स्वरूप ।
८१–८२	अथ मन्त्र के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य—दीक्षा, पशु-पति, पशुपति, विज्ञान फल मन्त्र ।
८२–८३	पाश—मल, कर्मज, कर्मपाश, मायापाश, विन्दु ।
८३	मन्त्रों के लिङ्ग-भेद—मन्त्रों के दोष—
८४	छिन्न तथा दूषित मन्त्रों के परिहार—
८४–८५	आचार्य लक्षण—
८५	अथ मन्त्र शोधन —
८५–८६	मन्त्र—दीक्षा, साधक के कर्त्तव्य, अकथह चक्र ।
८६	अथ जप व ध्यान की महिमा तथा फल—इस मार्ग पर पहुँचाने वाली विधि, याज्ञिक, जापक में दोष से नरक प्राप्ति, परम धाम के अधिकारी जापक के लिए दैवलोक भी नरक ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृष्ठ	विषय
८७	परमधाम—
८८	सत्य की महिमा और जापक की परमगति—सत्य, जापक की गति ।
८८–८९	वेद के ज्ञेय तथ्य तथा अन्वीक्षिकी विद्या—
८९–९२	वेद – अथ वेदाङ्ग कल्प वर्णन ।
९२	अथ अग्ने सम्मुखी करण प्रकार प्रश्नम्—
९३–९४	अथ मृत्यु उत्पत्ति तथा मृत्यु सूचक लक्षण, मृत्यु पर विजय—अरिष्ट—मृत्यु सूचक लक्षण ज्ञान ।
९४–९६	प्रमुख अथर्व वेदीय औषधि परिचय—
९६–९९	अथर्व वेदीय साहित्य में वर्णित औषधियाँ तथा रोगोपचार—
९९–१००	अक्षि रोग भैषज्य—केश वृद्धि करणे, केशपतने भैषज्यम् जलोदर में, केश कल्प विधि–मृत्वत्सा के हेतु, नहरुआ का उपचार, अपस्मार (मृगी या हिस्टीरिया), बिच्छू, नरे चले जाने पर, गूँगेपन में, बधिरता में, सुजाक, शरीर में चट उखड़ने पर, चिनक, कमलदात, बवासीर ।
१००	काशभैषज्यम्—कर्णशूल, उत्फुल्लिका, बाल, यकृत वृद्धि, उदरशूल ।
१०१–१०३	वीर्यस्तम्भन शुक्राणुनष्ठ उपचार—जहरवाद की भैषज, थनेला, वायु रोग, अजीर्ण नाशक अग्नि दीपक चूर्ण, अनुभूत बलवीर्य वर्धक भैषज नहरुआ ।
१०३	कामोन्माद, हिस्ट्रीया ।
१०४	मनवशीकरण—बालग्रह ।
१०५	नकार चले जाने से उत्पन्न शिशु के कष्ट से निवारणार्थ—
१०६	विशेष अनुभूत—
१०७–१११	व्याधिकरण—चेचक मसूरिका, मसूरिका ज्वर, शिरो रोग, शय्यामूत्र, कर्ण रोग, कर्ण स्राव, नेत्र रोग, स्वर्ण गुग्गुल, असगन्ध का चूर्ण, क्षय का रूप, आयुष्यगण ।
१११–११२	अथ गर्भास्थापन औषधियाँ—बल्य-बलवर्धक, शुक्रजनन, शुक्र शोधकगण ।
११२–११६	पुंसवनीय औषधियाँ—यवास, भृङ्गराज, सफेद-दूब, नीली, इन्द्रवारुणि धतूरा ।
११६–११७	क्षय रोग निवारण औषधियाँ—सितपूर्णेन्दु, सितोपलादि, अवलेह, सितोपलादि चूर्ण, हिमांशु संजीवनार्क, पथ्यापथ्य, ।
११७–११८	आयुर्वेदीय औषधिगुण परिगणन—हड्डी टूटने फट जाने, बन्द चोट, बारह वर्षों की चोट, सूजन, दर्द या खून में गाँठ पड़ जाने पर ।
११९	ओलों के संहार से रक्षा—पद्मक, गुग्गुल, गन्धराज गुग्गुल ।
११९–१२०	चतुष्पाद भैषज विज्ञान—
१२०–१२२	अथ वेद और व्याधि ज्ञान में ज्योतिष की अनिवार्यता—वैदिक चमत्कारी ज्योतिर्विज्ञान।
१२२	युद्ध विज्ञान—
१२२–१२२	कृत्या ज्ञान—
१२८–१२५	ग्रह ग्रस्त शाप ग्रस्त दोष विज्ञान—गर्भादि दोष ज्ञानार्थं ।
१२५	ज्वर शान्त्यर्थ विधान—
१२६–१२७	जन्माङ्ग से उपासना व ग्रह योग—कार्य सिद्धि असिद्धि प्रश्न ।
१२८–१२९	लाभालाभ प्रश्न—प्रवाशी प्रश्न ज्ञान, वैवाहिक शुभाशुभ ज्ञान रोग आरोग्य मृत्यु ज्ञान, शीघ्र मृत्यु ।
१२९–१३१	अथ भागवत विषय बोधक चक्र (ज्योतिष)—ग्रह के स्वरूप पर विचार ।
१३३–१३४	राशि से विविध विषय ज्ञान—राशि संज्ञा चक्रम्, राशियों के रंग व द्रव्य ।
१३५–१५१	अज्ञात जन्म समय को जानने का प्रकार—दिन या रात्रि जन्म ज्ञान, जन्म लग्न ज्ञान, जन्म-राशि ज्ञान, प्रकारान्तर से अज्ञात जन्म,कालादि का ज्ञान, काल पुरुष ज्ञान, इष्ट, घटी उदाहरण चोर विज्ञान, चोर व चोरी की वस्तु का ज्ञान, सन्तति विज्ञान, प्रश्न लग्न में विशेष, गर्भस्थ सन्तान का लिङ्ग ज्ञान, सन्तान योग विचार, पितृशाप से विपुत्र योग, मातृ शाप से विपुत्रयोग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

* प्रथमोऽध्याय *

पृष्ठ	विषय
	कुलदेव योग से विपुत्र योग, पुत्र हीन योग, पुत्र नाश योग, पुत्र सुख हीन योग, वश विच्छेद विलम्व से पुत्र उत्पत्ति योग, शान्ति कर्म से पुत्र प्राप्ति योग, शीघ्र सन्तान उदय योग, पुत्र प्राप्ति योग, कन्या प्राप्तियोग, अल्पपुत्र, अनपत्य मृतापत्य योग, वैधव्य योग, विवाह में गुरु विचार, विष कन्या योग, विष कन्या भग योग, वैधव्य योग, पुत्र प्राप्ति प्रश्न विचार, दैव दोष ज्ञान, प्रकारान्तर से दोष ज्ञान, स्त्री जातक की विशेषता, पतिभाव, प्रवज्या योग, हस्त रेखा द्वारा सन्तति आदि ज्ञान, विशेष प्रभावशाली अनुभूत चिह्न ।
१५१–१६२	प्रतिभा परिचय—मन्त्री, सैनिक, इन्जीनियर, शिल्पी, ग्रन्थकार, पत्र सम्पादक, शिक्षक, गणितज्ञ, चिकित्सक, धार्मिक, पशु पालक, शुश्रुपाक, सगीतज्ञ, दाँत, समुद्र, ऋषि, जीव, तालुक, नाक, नेत्र, दशमुद्रा तिलक, तिल, मस्सा लहसन, स्त्री के वामाङ्ग तिल का विचार, फल, कान के पास का तिल, गर्भाधानकाल, गर्भाधान के ग्राह्य तिल व फल, ग्राह्य तिथि फल, कन्या पितृ धन वर्णन, द्वार शुद्धि, ग्रामानुकूल्यम शल्य शोधन, कृष्णाक्षर फलम्, गृह जातक काकिणी, भूमिरण; भूमि शयन, शेष शिरो ज्ञान; वास्तु-भूमि के शुभाशुभ ज्ञान की विधि, शिलान्यास, आय आदि साधन विधि; घर का नक्षत्र और व्यय का ज्ञान, गृह राशि ज्ञान, गृह का नाम-करण, अंशगृहण; गृह में स्थान योजना, विशेष ज्ञातव्य, वास्तु चक्र ज्ञान; विशेष, गृह की आयु प्रमाण ।
१६२–१६३	ग्रहारम्भ के मासों का फल—गृह द्वार, गृहद्वार शाखा चक्र: गृह मध्ये कूप, नल विचार, चुल्लि चक्र, स्तम्भ; स्तम्भ चक्र, भूमि चक्र; गृहारम्भ के नक्षत्र आदि चक्र, दुष्ट योग ।
१६३–१६८	वास्तु शान्ति, अग्नि चक्र—गृहाहुति क्रम, गृह-प्रवेश में वामार्क ज्ञान व फल, कुण्ड बनाने वाले की परीक्षा, मण्डप भूमि विभाग, मण्डप भूमि का नाम कथन, अंगुलादिज्ञान, यज्ञिय भूमि विचार, मण्डप अपनी या अन्य भूमि में बनानेका विचार बौधायन मतानुसार, दिक्साधन अत्यावश्यक, मण्डप आरम्भ में विचार, फल भेद से मण्डप रचना, वेदी बनाने की जानकारी, शास्त्रीय कुण्डों में योनि विचार, मण्डप कुण्ड नाप विचार यज्ञ मण्डप, होमाहुति ज्ञान, अग्नि वास और उसका फल, मण्डप निर्माण में विशेष ध्यान देने योग्य निर्देश, दिशा, पूजा सामग्री किधर रखें । जौ बोने में शुभाशुभ ज्ञान, फल, दीपक, शुभाशुभ ज्ञान अखण्ड दीप, दीपक में घृत तैल विधान, वर्ति चलाने के लिये शलाका, दीपमुख दीप दान में प्रतिज्ञा, दीप स्थान में शकुनों के पूर्णतया ध्यान से देखें, दोष शकुन, दीप विघ्नों की शान्ति, कामना भेद से कलश में विशेष पदार्थ डालें, सर्पौषधि, सप्तमृत्तिका, पञ्चरत्न, पञ्च पल्लव, जौ बोने के शुभाशुभ का ज्ञान, अथ कन्या पूजनम् वर्जित कन्या ।
१६८–१६९	वर्ण भेद से पूजा भेद—जप विधानम्, पाठ-विधि, पाठक के दोष ।
१६९–१७४	शरीर में—सप्त दीप मानव देह में विराट—सप्तसागर, शरीर में सप्ततीर्थ, शरीर में नदियाँ, शरीर में तीर्थराज; रोग, प्रायश्चित, मुक्ति, परलोक-लोक लोकान्तर गमन ब्रह्मलोक, पितृ-लोक, नरक लोक, आज्य तन्त्र विधि वर्णन, अथर्व वेद का मूल्यांकन ।

द्वितीयो अध्याय

१७५–१७६ ऋषि आदि वन्दना—

१७७–१७९ जलाभिमन्त्रण तथा स्वस्ति वाचन—

१८१–१८४ शान्ति गणाः—

१८५–१८७ यजुर्वेदीय स्वस्ति वाचन—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

* द्वितीयोऽध्याय *

पृष्ठ	विषय
१८७	सहसंकल्प—
१८८–१९०	प्रार्थना, ज्योति स्थापन विधि—
१९०–१९१	विज्ञान कर्म विधि, कर्म योगफल—
१९१–१९३	यज्ञ-जीव-माया सिद्धि प्राप्ति—
१९३–१९४	पञ्च गव्य सम्मेलन प्रकार—
१९४–२०३	अतः पुण्याह वाचन, कल्याणार्थ वाचन, ऋद्धि का आशीर्वाद, स्वस्ति वाचन, श्री वाचन, आयुष्ण वाचन, वेदी अभिमन्त्रण, उदकसेक, अभिषेक, आचार्य जापक वरणनम्, कलश स्थापनम् ।
२०३–२०७	नव ग्रहादि की पूजा, द्वादश गणेश पूजनम्, वरुण पूजनम् सूर्यादि नवग्रह पूजनम्, वसोर्धारा पूजनम्, विनायक पूजनम् ।
२०७–२०९	मातृ का पूजन, अनुमति पूजन, विश्वकर्मा पूजन, गणेश पूजन ।
२०९–२१३	घृतमातृका नामानि, स्थल मातरः, सांककल्पित नान्दी श्राद्ध प्रयोग सलग्न अथर्वण ऋचाओं की प्रयोग विधि, अथासन दानम्, ततो गन्धादि दानम्, ततो भोजन निष्क्रय द्रव्य दानम्, सक्षीर मुदक दानम्, अथाशिषो ग्रहणम् ।
२१४–२१७	प्रेतात्माओं का सुकृत लोक—
२१८–२२१	रक्षोहण मन्त्र, पूजन के पूर्वाङ्ग, प्रधानदेव आवाहन, पूजन विधानम्, अग्न्युत्तारणम् ।
२२१–२२८	प्राण प्रतिष्ठा, नेत्रोन्मीलनम्, प्रधान देवता पूजन तथा न्यासमन्त्राणि ।
२२९	यज्ञ कर्म में कुश की अनिवार्यता, अग्नि सन्मुखीकरण की अनिवार्यता, अग्निदेव का स्वरूप, आहुति कहाँ दी जावे ।
२३०–२३६	उत्तर तन्त्र विधि, यज्ञ मण्डप के द्वारों का पूजन, अग्नि स्थापन आदि ।
२३७–२४२	पंचभू संस्कार पूर्वकमग्नि स्थापनम् कुशकण्डिका विधि, कुश परिस्तरणम्, होम मन्त्रम्, बलिदानम्, क्षेत्रपाल बलिदान, छाया पात्र दान विधि, पूर्ण आहुति, होम मन्त्र व छाया पात्र दान विधि ।
२४३–२४७	अवभृथ स्नानम्—ब्राह्मण भोजन, संकल्प, आशीर्वाद, वर याचना, विसर्जन, आत्मसमर्पण देवताग्नि, विसर्जन, प्रार्थना आशीर्वचन ।
२४७–२५२	यजुर्वेदादि मन्त्र, प्रयोग विधि तथा फल—

तृतीयो अध्याय

पृष्ठ	विषय
२५३–२५६	वृहच्छान्ति विधि—यज्ञ से लाभ, अहोलिङ्ग-गण, लघुशान्तिका वृहच्छान्तिगण ।
२६५–२७१	मारुदगणी शान्ति होम, वृहच्छान्ति, अहोलिङ्ग-गण, कार्य, रक्षा तन्त्र, पाशमोचन, मेधावृद्धि, मुखरहित वृण, कालावैंकर, आध्यात्म प्रकरण, विजय प्राप्ति ।
२७३–२८४	आसनीय ब्रह्मजप, अथायुष्यगणाः, प्राजापत्येष्टि, मधुमेह तथा राजक्ष्मा निवारण, मधुमेह, रतौंधी ऋषि घोषणा ।
२८४–२८८	दीर्घायु के लिये वर्जित आहार विशेष— पवित्रगण, पापमोचनम्, संकट मोचन, शाप विमोचनम् ।
२८८–२९३	नरक की उत्पत्ति—प्लीहा, पथरी, मृगी आधा-शीशी, हिचकी, दाँत का दर्द, दस्त, संग्रहणी, दाड़ या दाँतों का दर्द, काली खाँशी आदि विभिन्न रोग, मरहम नासूर, गहरा जख्म, सूजाक, मलेरिया ज्वर. मरोड़ा दर्द, वायु रोग, रक्त शुद्धि, छाजन पर अनुभूत ।
२९३–२९७	अश्विनी देवता, अर्थ संजीवनी विद्या, जलोदर, बालग्रह रोग, स्वस्ति वाचनेगण, वन्ध्या-दोष ज्ञान ।
२९७–३०४	विविध वेद मन्त्रों की प्रयोग विधियाँ— संजीवनगण, संजीवनी विद्या, एवं अभ्युदय, पेट की पथरी ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

❋ तृतीयोऽध्याय ❋

पृष्ठ	विषय
३०७–३१२	बाल रोग, दाँत, बाल की खाँशी, श्वाश, चनूने कीड़े, कल्याण अभिवृद्धि विधि, गर्भ दोष निवारणम् ।
३१२–३२१	यक्ष्मानाशनम्, कर्मज दोष निवारण, मन्त्र दोष निवारण विधियाँ, बालक के उत्पन्न रोग, गर्भस्राव में प्रायश्चित सूक्त काय सूक्त, विविध पक्षी विचार ।
३२१–३२६	अनुभूति विवेचना—चमगादड़, नीले रंग की मक्खी, मधुमक्खी, शृगाल, चील श्वान, काक शकुन, प्रेताग्नि, आत्मयज्ञ, प्लीहा, कुष्ठ रोग, योग दर्शन के नियम ।
३२६–३३१	प्राण विद्या, सजीवनी विद्या, ज्ञान कवच ।
३३१–३३७	तत्व विवेचन, संक्रान्ति, दिशा, विपरीत लक्षण यात्रा विधि, दानादि विधि, यात्रा, इडा के कर्म, पिंगला कर्म, सुषुम्ना कर्म, नाड़ी भेद, तत्त्व-स्वरूप ज्ञान विधि, तत्त्वों के रंग, तत्त्वों के आकार, तत्त्वों का स्थान, तत्त्वों के वर्ण, स्थान पर तत्त्व से तत्त्वज्ञान, स्वाद से तत्त्वज्ञान, गति से तत्त्व ज्ञान व कर्म, पीत वर्ण, दिशा प्रश्न ज्ञान, घृह ज्ञान, विदेश गमन प्रश्न, दिशा में स्वर बल, अस्थि माँसादि ज्ञान, समय ज्ञान, लाभालाभ ज्ञान, गुण ज्ञान, नक्षत्र ज्ञान, प्रश्न-ज्ञान, विशेष ज्ञान, स्वर ज्ञान, त्रिकाल ज्ञान विधि, स्वर परिवर्तन प्रक्रिया, सार्वभौम युद्ध विज्ञान, गमन विधि, शस्त्र धारण, मुद्रा विधि युद्ध विज्ञान, हँस, विजय प्रद रणरीति, विजय-रीति ।
३३७–३३८	शिवस्वरोदय विचार, स्व श्री वशीकरण में प्राणविद्या, प्राणविद्या द्वारा सम्मोहन, गर्भाधान में प्राणविद्या, पुत्र प्रद भैषज्य, प्राणविद्या से गर्भवती के प्रश्नों का फल ज्ञान, स्वरोदय काल में देखें, विशेष ज्ञान ।
३३८	प्राणविद्या से सन्तति ज्ञान—प्राणविद्या से गर्भाधान ।
३३८–३४२	प्राणविद्या से तत्त्व ज्ञान—यम पर विजय, प्राणविद्या से संवतसर फल, प्राणविद्या से रोग ज्ञान, प्राणविद्या से काल ज्ञान, स्वर से मृत्यु समय ज्ञान, प्राणविद्या के प्रश्न से काल ज्ञान, काल विज्ञान, योग की महत्ता, शरीर में ही तीर्थ व देव हैं, प्राणायाम विधि ।
३४२–३४८	अथ प्राण विद्या—प्राण की श्रेष्ठता, प्राण का उत्पत्ति स्थान, प्राण स्थिति, प्राण में लोक, अशु नीति, प्राण की प्रतिष्ठा, प्राण की उपासना प्राण दाता अग्नि विश्व व्यापक प्राण, सरस्वती में प्राण, भोजन में प्राण, सहस्राक्ष अग्नि ।
३४८–३५३	अथ ब्रह्म कवच मन स्थिरीकरण, कुण्डलिनीजागरणम्,प्राणविद्या–ब्रह्मौदन, आत्मयज्ञ ।
३५३–३६०	ब्रह्म कवच धारण, संजीविनी विद्या, सजीविनी विद्या का उपदेश, ज्ञान कवच, संजीविनी विद्या तत्त्वाश्रयन्यास, प्राण, जीव ।
३५५	मन- इन्द्रियादि की पुनः स्थापना, ज्ञानकवच ।
३६६	विषैले उल्टे फोडे, अग्निदाह, पागल श्वानादि के काट लेने के विष निवारण, ज्येष्ठादि मूल शान्ति ।
३६८–३६९	घर के छिद्रादि दोष, भव, शर्व, रुद्र, उन्मत्तता निवारण, निद्रास्तम्भन, भूतावेश ज्ञान, भूतावेश निवारण, अमानत, ऋणादिवापिसन देने का पाप, भैषज्य व मन्त्र ।
३६९–३७०	गत पृष्ठ ३६६ के चिह्न के सन्दर्भ में विवेचना—दिशा निर्णय, जप निर्णय, माला निर्णय, पशु-स्तम्भन, मुख स्तम्भन, मत्कुण्ण निवारण, सर्पादि निवारण, मच्छर निवारण, कृषि उपद्रव निवारण, कृषि समृद्धि जलस्तम्भन, मेघस्तम्भन अग्नि स्तम्भन, आसन स्तम्भन, शस्त्र स्तम्भन, सेना स्तम्भन ।
३७९–३८१	अथ मूलादि पापनक्षत्रोत्पन्न दोष शान्ति विधि–
३८१–३८३	मूलादि जनित दोष शमन, मेघाजतन, वाक-सिद्धि, स्तनपान विधि ।
३८३–३८४	शिशु रक्षा, शिशु आयु ज्ञान ।
३८४–३८६	दुःस्वप्न समीक्षा—दुःस्वप्न तथा अपशकुन,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृष्ठ	विषय
	शान्ति विधान, दुःस्वप्न नाशनगण।
३८९–३९०	चोर बधिक विज्ञान, चोर या बधिक को नियन्त्रित करने की विधि।
३९०–४०२	भय निवारण विधि—
४०२–४०५	कर्म विधि—राष्ट्रीय भूमि महत्ता रतनादि प्राप्तिमन्त्र, अन्नादि प्राप्तिमन्त्र।
४०६–४११	ज्वालामुखी—
४११–४१७	मातृभूमि वन्दना—

चतुर्थो अध्याय

पृष्ठ	विषय
४१९–४२२	अथ बन्ध्या दोष निवारण विधि—
४२२–४३६	गर्भाधान के लिए अथर्व वेदीय प्रयोग—पुत्र होगा या पुत्री लक्षण प्रतीक परीक्षा। गर्भ है। या नहीं। लक्षण परीक्षा, युद्ध योग्य परीक्षा कर्म में।
४३६–४३९	पुत्रार्थ पुरुष सूक्त विधान।
४३९–४४२	नपुसकता निवारण विधि।
४४२–४४४	विवाह तथा चतुर्थी कर्म स्त्री वशीकरणार्थ।
४४४–४४५	गर्भगत निरूपण।
४४५–४४६	लोक पुरुष।
४४६–४४७	आधान कालीन सहवास विधि, गर्भिणी के त्याज्य धर्म सहवास की विषमता के विपरीत कुछ परिणाम।
४४७–४४८	गर्भाधान करता पुरुष के कर्म, उत्तम पुत्र उत्पन्न करने की विधि।
४४८–४४९	गर्भाधान काल निरूपण और आधान कालीन लग्न।
४४९–४५२	गर्भ मासों के अधिपति, गर्भाधान काल, रक्तस्राव, सभी प्रदर, बन्ध्यात्व दोष नाशन, मृतवत्सा स्त्री भैषज्य, गर्भ स्तम्भन, शुष्क गर्भ निवारण विधि, सुख से प्रसव, नष्ट पुष्पा का दोष निवारण, पति वशीकरण, स्तन दोष निवारण स्त्री यौनि संकोच, स्त्री द्रवण. स्त्री वशीकरण, मुखस्तम्भन, स्त्री वशीकरण, लोभनाशन, नपुसकता निवारण, दाढ़ का दर्द, पीनस रोग, धातु पुष्टि, मधुमेह।
४५२–४६२	कन्या के चार पति—पति प्राप्ति विज्ञान, कन्या को पति लाभ, पत्नि की प्राप्ति, कन्या को शीघ्र वर प्राप्ति, विश्व कर्मणगण।
४६२–४६३	बालकों के रोगों की शान्ति विधियाँ।
४६३–४७२	अर्थोत्थापन विधान—गृहयोग में उत्थापनगण, आराति नाशनम्, अर्थोत्थापनगण, पितृमेघ।
४७८–४७६	वाक्‌सिद्धि, सभा शास्त्रार्थ विजय।
४७६–४८२	मेघाजनन, वाक्‌सिद्धि, सभा शास्त्रार्थ विजय, मेघाजनन।
४८२–४८४	सभा जय कर्म।
४८४–४८९	विवाद जय भैषज्य, पाठागुण, राष्ट्रीय देवी आधिदैविक भाव, आध्यात्मिक भाव, आधिभौतिक स्वरूप, राष्ट्री, अथ महाविद्या अथर्व शीर्षम्।
६८९–४९१	शान्ति पिप्पलादिगण।
४९१–४९७	अद्‌भुत शान्ति विधि निरूपण—मांसादि वर्षनानिष्ट शान्ति, विशेष कर्म, मरफटादि दर्शनानिष्ट शान्ति, अकारण कलह शान्ति, भूचालादि निवारण विधि, सूर्यान्धकारानिष्ट निवारण, चन्द्रग्रहणानिष्ट शान्ति, उषा विघ्न शान्ति, भयंकर दुष्काल निवारण, धूम्रकेतु, पुच्छलतारादि दर्शन शान्ति, अनावृष्टि निवारण।
४९७–५१४	अद्‌भुत शान्ति विधि निरूपण—वृष्टिकर्म विधि विशेष चरु, ब्राह्मणायुध धारण दोष शान्ति, देवनृत्यादि अनिष्ट शान्ति, कृषि विघ्न शान्ति, घटस्थ अन्नोत्पन्नानिष्ट निवारण, बिना अग्नि के अग्नि दर्शनानिष्ट शान्ति, एकाधि के विपर्यय जन्मानिष्ट निवारण, विपर्यय जातानिष्ट निवारण, अमानवीय जातानिष्ट निबारण, गोदोहन विघ्न शान्ति, बैल द्वारा गोदोहनानिष्ट

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृष्ठ	विषय
	निवारण, गोद्वारा गौदोहनानिष्ट निवारण, अश्वादि द्वारा छाम भक्षणानिष्ट निवारण, पिपीलिकाना चारानिष्ट निवारण। नीलमक्षानाचारानिष्ट निवारण, मधुमाक्षिकाना चारानिष्ट निवारण, अद्भुत दर्शनानिष्ट निवारण, सर्वाद्भुदर्शनानिष्ट निवारण, जलेमरुस्थले दर्शनानिष्ट निवारण, बालू में तैल दर्शनानिष्ट निवारण, काकादि से हवि उच्छिष्टानिष्ट निवारण, एक मानव के बहुमुख जातानिष्ट निवारण, शुष्क काष्ठ हरितत्वानिष्ट निवारण। दुर्दिन उल्कापातादि अनिष्ट निवारण, धूम्रकेत्वादि दर्शन शान्ति, दिनेतारा दर्शनानिष्ट निवारण, सन्मुख माँसादि पतनानिष्ट निवारण, विना अग्नि अग्नि दर्शन शान्ति, स्वतः अग्नि प्रज्वलने शान्ति, घृत में तैलादि दर्शन शान्ति, अग्नि दहने शान्ति, वंश विस्फोटन शान्ति, निशि धनुष दर्शन शस्त्र प्रज्वलनेत शान्ति, दुर्दिन विनाश कर्म विधि, ओला वृष्टि निवारण विधि, ईतिभीति विद्युत पतनादि शान्ति, जम्भगृहीत बालारिष्ट शान्ति, कृषि ग्रामवासादि विघ्न निवारण, भौमगृह शान्ति, आकाशी विद्युत विघ्न निवारण।
५१४–५४१	अथर्व वेदीय कृषि—पशु चिकित्सा विज्ञान एवं उपचार—गौमहिमा, पशु-गौ, बछड़े, अश्व की वृद्धि कर्म रोग निवारण विधि, विशेष कर्म, गृह, ग्राम, नगर क्षेत्र की आकाशीत विद्युत ओलों से रक्षा विधि। कृषि की समृद्धि अधिक उत्पादन तथा कण्डूआ, रतुआ, चैंपा, आदि कृषि व्याधियों के निवारणार्थ अग्नेयास्त्र अभिमन्त्रण, दिग्बन्धन व्याघ्र, चौर, वृश्चिक, हस्थि, रिक्ष, चरक, आरण्यक, सर्प, यातु आदि से पशु, गृह, ग्राम, नगर क्षेत्रादि की रक्षा विधि, अग्नि दाह से रक्षा विधि, अग्निदाह से रक्षातन्त्र।

पंचमो अध्याय

पृष्ठ	विषय
५४३–५६३	भूतोन्माद निवारण रक्षघ्नेष्टि, रक्षोहण अनुवाक्, निद्रा स्तम्भन, भूता विज्ञान, भूतावेश निवारण भैषज्य और मन्त्र, ब्रह्म राक्षसादि शान्ति, मृगी का उपचार, परमारोग का उपचार, बवासीर अथवा भगन्दर, कस्सौजी, गुंजा (चौंटनी), गठिया उपचार, श्वेत बाल चिकित्सा खालित्व (गञ्ज) मुँहासा रोग, अग्नि रोहिणी, नेत्र रोगों का उपचार, महा-असाध्य, कृच्छदाद, खाज, छाजनादि का उपचार, भगन्दर के लक्षण व उपचार, विधृति लक्षण, आचारवद्द, गण्ड माला, अपची, समस्त व्याधि निवारण यन्त्र, घाव झाड़ने का मन्त्र, जहरवात, थन, पिनही, वेरवा इलगोहिया का उपचार, कान का मन्त्र, विविध व्याधि विनाशन "सनाय" सेवन विधियाँ, रक्षोघ्नेष्टि अग्नेयास्त्र, यातुधान विनाशन।
५६३–५७६	आग्नेयास्त्र—सम्मोहनास्त्र, रक्षोघ्नेष्टि समीक्षा रौद्रगण, आत्मनाति मात्र।
५७६–५८३	कृत्यापरिहरणगण—रक्षोहण अनुवाक्, आग्नेयास्त्र, सम्मोहनास्त्र, प्रयोग विधि।
५८३–५८८	महर्षि अङ्गिराजी का ब्रह्मघोष, महर्षि अङ्गिराजी का उद्घोष।
५८८–५९०	महर्षि अङ्गिरस जी का उद्घोष, प्रतीचीन फल।
५९०–५९१	अभिचार कर्म दीक्षा—
५९१	तापत्रय निवारण, संकट मोचन, अभ्युदयविधि, अभिचार कर्म, अभिचार विधान।
५९२–५९७	रक्षोघ्नेष्टि—
५९७–५९९	वास्तु विज्ञान—विशेष अनुभूत, वास्तु शान्ति प्रकरण, गृह प्रवेश काल, अश्म।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृष्ठ	विषय
	फिटकरी. पीपल ।
६६०–६६४	हैजे का उपचार—सहदेवी, छोटी दुग्धी, ऐरंड ककूढ़, कमल गट्टा, दही गुड़ची, जीरा, बाबूना, सौंठ, हरड़ बहेरा आँवला, खीरा, ककड़ी, नागरपान, मुलेठी, जावित्री, कुलफा, खूबकला वातशीतलाज्वर, उपचार विधि—गर्भ परीक्षा, गर्भ स्तम्भन, दृढ़ीकरण, कुष्ठ रोग निवारण विधि, श्वेत कुष्ठ उपचार, लकवा का उपचार ।
६६४–६६६	(पू० शेष) शत्रु स्तम्भन, सकट मोचन, संग्राम जय विधि ।
६६६–६६९	व्याधि-निदान, जय, मृत्यु विज्ञान—जय पराजय विज्ञान युद्ध की वेदी, सेना अग्नि ।
६६९–६७०	अथ शत्रु दमन संग्राम जय विधि ।
६७०–६७१	सर्प दंष्ट्र परिविज्ञान—दूत लक्षण, शुभ दूत, अशुभ दूत, स्वर विज्ञान से स्त्री, पुरुष नपुंसक ज्ञान, अकारादि स्वर व्यञ्जन से दंष्ट्र परीक्षा, चिकित्सक या दूत के प्रस्थानकालीन शुभाशुभ चिह्न, अशुभ लक्षण, विषों का ज्ञान ।
६७१	नक्षत्र आदि से मृत्यु या जीवन विज्ञान—अशुभ नक्षत्र दिन, दण्ष्ट्रा विज्ञान, दंश के प्रकार भेद, सविष दंष्ट्र ।
६७१–६७२	स्थावर ॐ जङ्गम समीक्षा—
६७२–६७४	शुभाशुभ कालज्ञान—शुभ सन्देश वाहक दूत लक्षण, चिकित्सा, विष की उत्पत्ति और चिकित्सा, जङ्गमविष, स्थावर विष, जङ्गम विष के लक्षण, स्थावर विष के लक्षण, विष की गति, विष के वेग, विष से मृत्यु होने के लक्षण दूसरा अरिष्ट बन्धन, अरिष्टा दो प्रकार की है ।
६७४–६७५	स्त्री पुरुष ज्ञान—नर, स्त्री, उपचार मन्त्रों के अभाव में, नस्य, समस्त विषों में योग, मणियाँ, रक्षा विधि, विशेष ज्ञातव्य, कंठ सोथ ।
६७५–६८०	अथ विष चिकित्सा—चौपायों के दंष्ट के लक्षण, सर्पादि विष निवारण विधि, विष सासनार्थ भेषज पैद्वः शङ्का विष भैषज्यार्थ ।

पृष्ठ	विषय
६८१–६८३	सर्प विष विधि, पैद्वः, शङ्काविष भैषज्यार्थ, शान्ति विधि भैषज्यार्थ, इन्द्रस्य प्रथम का शेष ।
६८६	सर्प विष शमन विधि—मधुक, वृश्चिक का विष शमन ।
६८५–६८६	आभिचारिक कर्म का शेष प्रयोग, सर्प बिषायहरण ।
६८६–६९०	सर्पादि विष शमन विधि ।
६९०–६९१	अथ विषहारी मन्त्र—पंचाक्षरी मन्त्र, प्रयोग विधि ।
६९२	अथ सर्प विषहारिणी, शत्रु संहारिणी त्वारिता विद्या ।
६९२–६९३	अथ श्री महामृत्यु लाङ्गल स्तोत्र मन्त्रस्य—सर्प चिकित्सा, सर्पभय निवारण मन्त्र ।
६९३–६९४	अथ गत नष्ट जीव धनादि प्राप्ति मन्त्र ।
६०४–६९६	स्त्री स्तन दोष निवारण मन्त्र ।
६९६–६९८	शिर पीड़ा मन्त्र, शिर पीड़ा, बिच्छू निवारण, नाक रक्त बहे, बन्ध्या दोष निवारण, प्रसवदुःख
५९९–६०८	वास्तु कर्म में खननादि दोष परिहारार्थ—आशमु मोतियाबिन्दु का उपचार, नेत्र दर्द और सूजन का उपचार, नेत्र और पलकों की खुजली का उपचार, नेत्रों की कमजोरी का उपचार, नेत्र की फुली का उपचार, नेत्र के ढलके का उपचार, श्वांस खाँशी का उपचार, सुप्त वायु, श्वेत कुष्ठ का उपचार, कंठ रोग, राजयक्ष्मादि उपचार, कफ ज्वर लक्षण, उपचार, वात ज्वर लक्षण, उपचार, पित्त ज्वर लक्षण, उपचार, सर्प विष, उपचार, बिच्छू विष, उपचार, पागल कुत्ते का उपचार, गुर्दा या मसानों की पथरी का उपचार, गण्डमाला कैंसर निवारण ।
६०८–६१२	अथ शत्रु स्तम्भन संकट मोचन संग्राम जय विधि—वज्रप्रयोग विधि, शक्ति निर्माण, ब्रह्मास्त्र, वज्र, ब्रह्म कुलिश, ब्रह्मशिरा, ब्रह्मदण्ड उपस्थाने प्रक्षेपण विधि ।
६१२–६२२	श्री पाशुपादास्त्र मन्त्र—(पूर्व शेष) कृत्यापरिहरण, वज्र, ब्रह्मास्त्रादि विधि, मणि बन्धन,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृष्ठ	विषय
	अथर्व वेदोक्त मणियां, तलाश पलाश मणि, (पू० के शेष) वास्तु विधि, अति धन धान्य विधि, गण देवता, वास्तु शान्तिगण, मनादि इन्द्रिय अनुमन्त्रण।
६२२–६३१	अथ राजयक्ष्मादि असाध्य महाव्याधि भैषज्य—कुष्ठ शमन, राज यक्ष्मादि की वैदिक शान्ति विधि।
६३१–६४१	राजयक्ष्मादि भैषज्यों के सन्दर्भ—छाजन, ज्वरवादी का बायु दर्द, कफ, तापतिल्ली, छाती के दर्द में, हाथ में खुजली खाज, नजले आदि का तेल, बहरापन, कान के दर्द बहने का दाढ़ का दर्द, बिच्छू काटने पर, नासूर, नकसीर, जुंआ, शस्त्र के घाव तथा उसके रक्त के बन्द करने में, उदर दर्द, पागल कुत्ते के काटने पर, चोट का मरहम, तलवार या शस्त्र के घाव, प्रजापत्येष्टि का शेष प्रकरण, बन्ध्या दोष निवारण विधियां समुद्र फैन से विविध रोग निवारण, यक्ष्म रोग नाशन विधि, पिप्पली भैषज।
६४१–६४२	बीजारोपण तथा केश संबर्द्धन विधि।
६४२–६४४	राजयक्ष्मोत्पत्ति व उपचार।
६४४–६४५	क्षेत्रीय खानदानी रोग भैषज।
६४५–६४६	शास्त्रादिघात जनित अस्थि भंगादि भैषज।
६४६–६५२	शस्त्रघात चिकित्सा।
६५२–६५५	राजयक्ष्मादि महा व्याधि और उपचार।
६५५–६५६	त्वाष्ट्री (विष्णु योग) शान्ति।
६५६–६५९	(अथर्व तथा ऋग्वेदीय) औषधि प्रकरण।
६५९	वायु जन्म रोग, नेत्र रोग, नजला।
६६०	बूटी के शर्बतों और रसों का विवरण—
	अफीम का शर्बत, चन्दन, ईसबगोल, कपित्थ, मूली की जड़, धतूरा, चिरायता, छोटी नोंनिका (काली मिर्च), कटेरी जड़, अरहर पत्ते, असगन्ध, कासनी, भाँग, अफीम, बेलपत्र, गूलर, निगारण, मकड़ी विष निवारण, पागल कुत्ता निवारण, मेंढ़क विष निवारण, मूषक विष निवारण, जलती अग्नि पर चलें, सर्प भय निवारण, पशु आदिके जूं निवारण, मूषक भय निवारण, धान्य रक्षण विधि।
६९८–७००	देवर्षि अथर्वा जी का ब्रह्म उद्घोष—
७००–७०१	कनकमणि धारण से लाभ—धतूरा, धतूरे का गुण, प्रयोग।
७०१–७०४	पृथक्-पृथक् रोगों पर उपयोग—कर्ण रोग, दन्त रोग, शिरो रोग, बन्द जुकाम, नेत्र रोग, बच्चों के दुखते नेत्र, फोड़े, स्तन, सधिवात, मधुमेह, गर्भस्थापन, धतूरे का क्षार, मृगी, फेफड़ों का दर्द, दमा का दौरा, दमा नाशक तेल, पेचिश, हैजा, मरोड़, सभी प्रकार के ज्वर, पागल कुत्ते सियार आदि के विष, धातु, रज, वीर्य स्तम्भन, धतूरे के बीज, कनकमणि।
७०४–७०५	गुञ्जा—गुण, पूतद्रु, पर्णमणि धारण, कुदृष्टि, नजर, टोना, बालग्रह, कण्ठ माला, सूखी खांसी अशोक वृक्ष की मणि, वन्ध्या दोष निवारण।
७०६	भैषज्य वेदोक्त—बन्ध्या पुत्र प्राप्ति, पद, मन्त्र एवं भैषज, वचा प्रयोग, गुण, अद्भुत गुण।
७०६–७१३	ॐ विषघ्नोपनिषद (ऋग्वेद) मधु, (मधुक) (पूर्व वास्तुबिधि का शेष) शाला प्रवेश तथा दान।
७१३–७२०	शत्रुदमन संग्राम जय विधि।

षष्ठो अध्याय

पृष्ठ	विषय
७११–७३२	आथर्वणिक मणि धारणम्—बरणमणि (बिल्ब) फल, अभिवृतमणि, शतवारोमणि।
७३२–७३३	दुःख निवारण, संकट मोचन अभ्युदय—
७३३–७३७	अभीष्ट सिद्धि अभ्युदय के लिए सूर्योपस्थान—
७३६–७३८	"अभ्युदय निश्रेयस प्रभृति"—अभिचार कर्म विधि।
७३८	आध्यात्म प्रकरणम्—
७३८–७५२	रोहितादित्य सूर्य प्रकरण—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

पृष्ठ	विषय
७५२–७५८	अपराजितगण कर्म विधि—
७५८–७७१	उद्वज्र प्रयोग विधि, ब्रह्मास्त्र।
७७१–७७२	औषधि प्रकरण का शेष।
७७२	ऋग्वेदीय कृतएवं क्रियमाण पापशापादि जनित कर्मज भव व्याधि निवारण।
७७२–७७६	अल्प मृत्यु दोष निवारण एवं मुक्ति। जल या जलने से मृत्यु से मुक्ति। भूत पिशाच से मुक्ति माता-पिता को अग्नि न देने के शाप से मुक्ति। चोरी के पेशे के पाश से मुक्ति। निरोग, स्वस्थ भाग्यवान, दीर्घ जीवी पुत्र की प्राप्ति। पठन, पाठन, बौद्धिक कार्यों में मन्द बुद्धि, विस्मरण, बुद्धि सम्बन्धी समस्त बाधाओं का निवारण। भ्रातृ बैर नष्ट होकर प्रीतिवाय। हिंसक जीवों से भय मुक्त हो शान्ति प्राप्ति। योगी, परमहसों, ब्रह्म हत्या से मुक्ति। स्थावर बध जन्म पाप से मुक्ति। आग लगाने के पाप से मुक्ति। ज्वर शान्ति, कन्या बध पाप से मुक्ति। स्वास्थ्य एव दीर्घायु की प्राप्ति। अनैतिक पापों से मुक्ति। कुष्ठ रोग से मुक्ति। भाग्यशाली पुत्र की प्राप्ति। प्रजापत्येष्टि द्वारा पुत्र प्राप्ति। दुर्भाग्य नाशन, लक्ष्मी प्राप्ति। मिथ्या दोष जनित पाप, महा विनाश से मुक्ति, पितृ गणों की दारुण दुःखो से मुक्ति।
७७७–७८४	मृगी हिस्टीरिया से मुक्ति। निरोग एवं स्वास्थ्य प्राप्ति। अतुलधन सम्पदा प्राप्ति। उठने, बैठने, सोने, शयन पर्यन्त नक पाप से मुक्ति। वात जनित पीड़ा से मुक्ति। नारकीय दुःखों से मुक्ति। अपहरण जनित पापों से मुक्ति। वैश्य सेवा जनित पाप से मुक्ति। रत्न हरण जनित पाप से मुक्ति। धन धान्य वृद्धि, सम्मोहन, वशीकरण द्वारा पाप जनित भोगों से मुक्ति। अकाल मृत्यु और अप मृत्यु से मुक्ति। गोधन अन्न धन, निरन्तर वृद्धि। राग द्वेष नष्ट होकर शान्ति प्राप्ति। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति। व्याघ्र हिंसक जीवों द्वारा अप मृत्यु से मुक्ति। दान करने से, किले में होने वाली अपमृत्यु से मुक्ति। फाँसी से मुक्ति। सुख लोक प्राप्ति। प्राणियों को देखने की क्षमता। आत्म स्तुति करने और सुनने के पाप से मुक्ति। निरोग स्वास्थ्य प्राप्ति। पितृ ऋण से मुक्ति। दीर्घायु प्राप्ति। अरिष्ट निवारण। शारीरिक पापों से मुक्ति। लौकिक कामनाओं की प्राप्ति। लोभ जनित पाप से मुक्ति। मोह जनित ऐश्वर्य की अभिवृद्धि। लौकिक पितृेश्वर अक्षय पुण्य लाभ। जन्म-जन्मान्तरीय ऋण से मुक्ति। जन्म जन्मान्तरीय महापापज व्याधियों से मुक्ति। स्वकुल विनाश, वंश विच्छेद, आदि से मुक्ति। प्रेतात्माओं के पूर्व पापों से मुक्ति। पुत्र सुख प्राप्ति। दुर्गति पाश बन्धनोंसे मुक्ति। स्वर्ण काया की प्राप्ति। कुष्ठरोग से मुक्ति। लक्ष्मी की प्राप्ति। नारकीय घोर सकट यातनाओं से मुक्ति। शूल दर्द से मुक्ति।
७८५	उष्ण ज्वर, काला ज्वर से मुक्ति, सहवास, सम्भोग, पाप और उसके दुष्परिणाम से मुक्ति, जुआ आदि पापों से मुक्ति, प्रजाजनों की प्रीति निष्ठा व विश्वास प्राप्ति, अतुल सम्पदा प्रतिष्ठा यश प्राप्ति, देवत्व पदवी प्राप्ति, गृहस्थ धर्म लोभ प्रायश्चित मुक्ति, राज्य की प्राप्ति, अपमृत्यु सुकृत लोक आपत्तियों से मुक्ति, दुर्बुद्धि विनाश सुबुद्धि की प्राप्ति, समस्त लोकों में अभ्युदय की प्राप्ति, दैव सान्निध्य सायुज्य लाभ, अवजावण का पुण्य लाभ, सुकृत लोक, और पितृलोक सुख की प्राप्ति, पाषाण गिरने से हुई अप मृत्यु से मुक्ति लाभ, भगन्दर रोग से मुक्ति, अतिसार व जलोदर रोग से मुक्तिं, लकवा आदि से मुक्ति, व्याघ्रादि हिंसक जीवों के उपद्रव से मुक्ति, दिव्य शक्ति की प्राप्ति, परकाया से निकल कर कीर्ति प्राप्ति, आकर्षण करने की शक्ति, आत्मबल की प्राप्ति, दान के पापों से मुक्ति।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृष्ठ	विषय
७८५–७८८	कालज्वर निवारण, भूआ के सम्भोग जनित पाप से मुक्ति, परस्त्री सम्भोग जनित पाप निवारण, राजकर्मियों, प्रजाजनों की महती प्रीति प्राप्ति। अतुल सम्पदा, प्रतिष्ठा प्राप्ति, कृत एवं क्रियमाण पापों की निवृत्ति। ब्रह्मचारी के कर्म लोप जनित पाप का प्रायश्चित। अंहोलिङ्गगण सूक्तों के जप का प्रभाव, चोर, बधिक, आवताइयों द्वारा; हुई अप मृत्यु दोष–निवारण, दुर्बुद्धिनाश, सुबुद्धि प्राप्ति, समस्त लोकों में अभ्युदय प्राप्ति विधि, धन, सन्तति बृद्धि, सप्त महा व्याहृति जप फल, अकाल मृत्यु निवारण विधि, पाषाणादि से हुई अपमृत्यु दोष निवारण, भगन्दर रोग निवारण मन्त्र, लकवा, जलोदर, बाल ग्रह, यातुधानादि निवारण, हिंसक जीव जनित भय निवारण, परकाया प्रवेश विधि। परकाया से निकल आने की विधि, समस्त प्राणियों की आकर्षण विधि। मद, मत्सरादि–निवारण, महषीदान दोष निवारण, सर्व प्रकार की शान्ति विधि। शिव सङ्कल्प।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बनाने वाले; ऊर्ध्व भाग में पहुँच जाते हैं। यही नहीं हमारे पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामह, वृद्धप्रमाता महादि के कृत कर्मों के बन्धनों में भी हम पड़कर नाना क्लेश भोगते हैं। जिनका स्वप्न में भी आभास किसी को नहीं होता। जो शान्त, धीर, विनयी फलदार वृक्षों की भाँति पत्थर खाकर भी फल ही देते हैं। साधु पुरुष डंक मारने वाले विच्छू की प्राणरक्षा के लिये जल से ऊपर उठाने से नहीं थकते, पहाड़ बूंदों के आघात, (ओलों की चोट) सहकर भी खलों के कठोर वचनों से विचलित नहीं होते, उन दुर्जनों को उपर्युक्त वरुणदेव भव-बन्धनों में डालकर घोर जन्म-जन्मान्तरों में विविध निकृष्ट योनियों में व्याधिरूप में भुगवाने को विवश कर डालते हैं। इन कर्मज; भव-व्याधियों का प्रभाव सूक्ष्म तथा प्राण शरीरों पर ही होता है परन्तु भूमण्डल में स्थूल में ही आभासित होता है। यदि स्थूल का रोग होता तो "औषधिलेपनापायनशल्यादि-आयुर्वेदिका" आयुर्वेद की विधि से शमन हो जाता। किन्तु उपर्युक्त कर्मज, भव-व्याधि सूक्ष्म-स्थूल की होने से वहाँ "भेषज" सार्थक होती है। इनमें **"अथर्वणीराङ्गिरसी, दैवी, मनुष्यजा:"** ये ४ शौनकीय शाखा की विधियां ही समर्थ हुई हैं।

भव-व्याधि-निदान

शौनकीय शाखोक्त "कर्मजव्याधि-निरोध" ग्रन्थ में कर्मज-व्याधि विषयक निदान का संक्षिप्त उल्लेख किया जा चुका है। उससे पृथक्—उसी सन्दर्भगत "भव-व्याधि" निदान के हेतु पूर्वजन्मादि विषयक; सफलसिद्ध; उपलब्ध; दिग्दर्शनमात्र, ज्योतिर्विदों के विचारार्थ तथा प्रयोगार्थ उल्लेख्य।

वियोनि जन्म-ज्ञान

प्रश्न; आधान; या जन्म समय में यदि पापग्रह (श० मं० के०) निर्बल हों; शुभग्रह (गु० शु० बु० चं०) बलवान हों; नपुंसक (बु० श०) केन्द्र में हों; तथा लग्न पर शनि या बुध की दृष्टि हो; तो तात्कालिक चन्द्रमा जिस राशि के द्वादशांश में हो; उस राशि के सदृश वियोनि (मानवेतर प्राणी) का जन्म जानना चाहिये। अर्थात् चन्द्रमा यदि वियोनि राशि के द्वादशांश में हो, तब वियोनि प्राणियों का जन्म समझना चाहिये। अथवा—पापग्रह अपने नवमांश में; और शुभग्रह अन्य ग्रहों के; नवमांश में हो; तथा निर्बल वियोनि राशि; लग्न में हो; तो भी विद्वज्जन वियोनि, या मानवेतर जीव के ही जन्म का प्रतिपादन करें ॥१॥

वियोनि के अङ्गों में राशिस्थान

मेष १ मस्तक; (वृष) २ मुख; गला (गर्दन) (मिथुन) ३ पैर; कन्धा; (कर्क) ४ पीठ; (सिंह) ५ हृदय; (कन्या) ६ दोनों पार्श्व; (तुला) ७ पेट; (वृश्चिक) ८ गुदा-मार्ग; (धन) ९ पिछले पैर; (मकर) १० लिङ्ग; (कुम्भ) ११ अण्डकोष; (मीन) १२ चूतड़; तथा पुच्छ। इस भाँति चतुष्पदादि (पशु-पक्षी) के अङ्गों में; मेषादि बारह, राशियों के स्थान प्रतिपादन करें ॥२॥

वियोनि वर्ण-ज्ञान

लग्न में जिस ग्रह का योग **हो; उसी** ग्रह के तुल्य; और यदि किसी का योग न हो; तो लग्न के नवमांश (राशि; राशिपति) के तुल्य; वियोनि का **वर्ण** श्याम, **गौर** आदि कहें। बहुत से ग्रहों के योग या दृष्टि हों तो उनमें जो बली हों; या जितने बली हों; उनके सदृश वर्ण कहें। लग्न के सप्तमभाव में; ग्रह हों तो; उस ग्रह के तुल्य (जैसा उसका वर्ण हो) चिह्न; उस वियोनि के पीठ आदि अङ्गों में जानें ॥३॥

पक्षि जन्म-ज्ञान

ग्रहयुत लग्न में पक्षिद्रेष्काण; जो❖ चिह्न पर आगे कहा जायगा; हो अथवा बुध का नवमांश हो या चर-राशि का नवमांश हो; तथा उस पर शनि या चन्द्रमा अथवा दोनों ही की दृष्टि हो; तो क्रमशः शनि और चन्द्र की दृष्टि से, स्थल; चर वृक्ष, और जलचर राशि का नवमांश हो; तो जलचर पक्षी का जन्म कहें ॥४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वामी के समान स्थान (अथवा उसकी, राशि का बताया हुआ स्थान) तथा उस पर जिस ग्रह का योग या दृष्टि हो, उसके तुल्य स्थान में, परदेश में, मरण होता है।

तथा लग्न के जितने अंश अनुदित (भोग्य) हों, उन अंशों में जितने समय ३० अंशों के मध्यम मान से दो घंटा (५ घटी) के अनुक्रम से, उतने समय तक मरणकाल में मोह होता है। यदि उस पर अपने स्वामी की दृष्टि हो, तो उससे द्विगुणित और शुभग्रह की दृष्टि हो, तो उससे त्रिगुणित समय पर्यन्त, मोह होता है। इस विषय की बातें विद्वान स्वकीय स्वस्थ बुद्धि से विचार कर कहें।

इनमें महामृत्यु के अतिरिक्त अन्य १०० मृत्यु, निर्ऋति (दुर्गति)जन्य अन्य मृत्युयें जो इस ग्रन्थ में उल्लिखित हैं ये सभी-आयुष्यगण स्वस्त्ययनगणों की वर्णित विधि से टल जाती हैं। द्रेष्काण और नवांश का विवरण आगे पृष्ठ पर देखें।

वैवाहिक-वरकन्या प्राप्ति प्रश्न विचार

कन्या के लिये योग्य वर, वर के लिये योग्य कन्या प्राप्ति विषयक प्रश्नकर्त्ता, शुभ दिन में पत्र, पुष्प, फल, दक्षिणा ले प्रश्न करें देव, गुरुतुल्य प्रणाम करे। मनीषी ज्योतिर्विद लग्न और ग्रहस्पष्ट कर विचारपूर्वक उत्तर दें।

प्रश्न -लग्न में पाप, या लग्न से ७ वें मं० हो तो जिसके लिये प्रश्न किया हो, उस कन्या या वर को ८ वर्षों के अन्तर्गत घातक अरिष्ट होता है ॥१॥ लग्न में चं०, ७ वें मं० हो तो ८ वर्षों के भीतर ही पति या पत्नि को घातक, कष्ट हो ॥२॥ लग्न से ५ वें भाव में पाप हो, वह नीचराशि में पापग्रहयुत या दृष्ट हो, कन्या कुलटा या मृत-वत्सा होती है, पति व्यभिचारी, शीघ्रपतन दोषी होता है (अनुभूत) ॥४॥

प्रश्न लग्न से ही ३ : ५ : ७ : ११ : १० वें भाव में चन्द्र हो या दृष्टि हो, उस पर गुरु की दृष्टि या युति हो तो, कन्या को वर; वर को कन्या शीघ्र मिलेंगे ॥५॥ प्रश्न में ७,२ या ४ राशियाँ हों, वे शु० या चं० से युत या दृष्ट हों तो "प्रश्नकर्त्ता के" वर को कन्या, कन्या को वर शीघ्र प्राप्त होता है ॥६॥ लग्न समराशि का हो, उसमें समका ही द्रेष्काण हो; समका नवांश हो; उस पर चं० शु० गु० की दृष्टि या युति हो तो शीघ्र वर को कन्या; कन्या को वर लाभ हो ॥७॥ प्रश्न में पुरुष राशि, पुरुष का नवांश हो, उस पर पुरुषग्रह (र० मं० गु०) की दृष्टि हो तो, कन्या को वर मिले; यदि ये तीनों स्त्री राशि हों तो वर को कन्या प्राप्त होती है ॥८॥ प्रश्नकाल में कृष्णपक्ष हो चं० सममें होकर लग्न से ६,८ वें पाप से युत या दृष्ट हो तो विवाह नहीं हो पाता ॥९॥ प्रश्न में शुभ निमित्त; शुभ शकुन देखने, सुनने में आयें तो वर-कन्या को शुभ हों, अशुभ हों तो अशुभफल होता है ॥१०॥

वह वर-कन्या के विवाह को उद्यत गुरुजन, योग्य अनुकूल वर-कन्या को प्राप्त करने में विवश, जन विचारें। आगे योग्यवर तथा कन्या प्राप्ति हेतु वैदिक शौनकीय विधि का अनुशरण उनकी अभीष्ट सिद्धि में सहायक सिद्ध हुआ वर्णित है।

आजीविका-कथन

प्रायः मानव अपनी भूलोक की आजीविका के; बिना ज्ञान के; इधर-उधर भटककर अपना जीवन ही खो बैठते हैं। उनकी जन्मलग्न[1], नष्टजन्मलग्न[2], प्रश्नलग्नादि[3] से; उनके विधिवत् प्रश्न करने पर विद्वान ज्योतिर्विद विचारकर मार्गदर्शन करे। प्रश्नकर्त्ता का कर्त्तव्य है त्रिकालज्ञः धर्मवेत्ता विद्वान का पूर्ण सम्मान करें। तीनों ही उपर्युक्त किसी भी लग्न और चन्द्रमा से १० वे स्थान में यदि सूर्य आदि ग्रह हों तो क्रमशः (१) पिता-माता, (२) शत्रु, (३) मित्र, (४) भ्राता, (५) स्त्री, (६) नौकर के द्वारा धन लाभ हो ॥१॥ उपर्युक्त लग्नों या चन्द्रमा, सूर्य (जन्म

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बनाने वाले; ऊर्ध्व भाग में पहुँच जाते हैं। यही नहीं हमारे पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामह, वृद्धप्रमाता महादि के कृत कर्मों के बन्धनों में भी हम पड़कर नाना क्लेश भोगते हैं। जिनका स्वप्न में भी आभास किसी को नहीं होता। जो शान्त, धीर, विनयी फलदार वृक्षों की भाँति पत्थर खाकर भी फल ही देते हैं। साधु पुरुष डंक मारने वाले विच्छू की प्राणरक्षा के लिये जल से ऊपर उठाने से नहीं थकते, पहाड़ बूंदों के आघात, (ओलों की चोट) सहकर भी खलों के कठोर वचनों से विचलित नहीं होते, उन दुर्जनों को उपर्युक्त वरुणदेव भव-बन्धनों में डालकर घोर जन्म-जन्मान्तरों में विविध निकृष्ट योनियों में व्याधिरूप में भुगवाने को विवश कर डालते हैं। इन कर्मज; भव-व्याधियों का प्रभाव सूक्ष्म तथा प्राण शरीरों पर ही होता है परन्तु भूमण्डल में स्थूल में ही आभासित होता है। यदि स्थूल का रोग होता तो "औषधिलेपनापायनशल्यादि-आयुर्वेदिका" आयुर्वेद की विधि से शमन हो जाता। किन्तु उपर्युक्त कर्मज, भव-व्याधि सूक्ष्म-स्थूल की होने से वहाँ "भेषज" सार्थक होती है। इनमें **"अथर्वणीराङ्गिरषी, दैवी, मनुष्यजा"** ये ४ शौनकीय शाखा की विधियां ही समर्थ हुई हैं।

भव-व्याधि-निदान

शौनकीय शाखोक्त "कर्मजव्याधि-निरोध" ग्रन्थ में कर्मज-व्याधि विषयक निदान का संक्षिप्त उल्लेख किया जा चुका है। उससे पृथक्–उसी सन्दर्भगत "भव-व्याधि" निदान के हेतु पूर्वजन्मादि विषयक; सफलसिद्ध; उपलब्ध; दिग्दर्शनमात्र, ज्योतिर्विदों के विचारार्थ तथा प्रयोगार्थ उल्लेख्य।

वियोनि जन्म-ज्ञान

प्रश्न; आधान; या जन्म समय में यदि पापग्रह (श० मं० के०) निर्बल हों; शुभग्रह (गु० शु० बु० चं०) बलवान हों; नपुंसक (बु० श०) केन्द्र में हों; तथा लग्न पर शनि या बुध की दृष्टि हो; तो तात्कालिक चन्द्रमा जिस राशि के द्वादशांश में हो; उस राशि के सदृश वियोनि (मानवेतर प्राणी) का जन्म जानना चाहिये। अर्थात् चन्द्रमा यदि वियोनि राशि के द्वादशांश में हो, तब वियोनि प्राणियों का जन्म समझना चाहिये। अथवा—पापग्रह अपने नवमांश में; और शुभग्रह अन्य ग्रहों के; नवमांश में हो; तथा निर्बल वियोनि राशि; लग्न में हो; तो भी विद्वज्जन वियोनि, या मानवेतर जीव के ही जन्म का प्रतिपादन करें ॥१॥

वियोनि के अङ्गों में राशिस्थान

मेष १ मस्तक; (वृष) २ मुख; गला (गर्दन) (मिथुन) ३ पैर; कन्धा; (कर्क) ४ पीठ; (सिंह) ५ हृदय; (कन्या) ६ दोनों पार्श्व; (तुला) ७ पेट; (वृश्चिक) ८ गुदा-मार्ग; (धन) ९ पिछले पैर; (मकर) १० लिङ्ग; (कुम्भ) ११ अण्डकोष; (मीन) १२ चूतड़; तथा पुच्छ। इस भाँति चतुष्पदादि (पशु-पक्षी) के अङ्गों में; मेषादि बारह, राशियों के स्थान प्रतिपादन करें ॥२॥

वियोनि वर्ण-ज्ञान

लग्न में जिस ग्रह का योग हो; उसी ग्रह के तुल्य; और यदि किसी का योग न हो; तो लग्न के नवमांश (राशि; राशिपति) के तुल्य; वियोनि का वर्ण श्याम, गौर आदि कहें। बहुत से ग्रहों के योग या दृष्टि हों तो उनमें जो बली हों; या जितने बली हों; उनके सदृश वर्ण कहें। लग्न के सप्तमभाव में; ग्रह हों तो; उस ग्रह के तुल्य (जैसा उसका वर्ण हो) चिह्न; उस वियोनि के पीठ आदि अङ्गों में जानें ॥३॥

पक्षि जन्म-ज्ञान

ग्रहयुत लग्न में पक्षिद्रेष्काण; जो❖ चिह्न पर आगे कहा जायगा; हो अथवा बुध का नवमांश हो या चर-राशि का नवमांश हो; तथा उस पर शनि या चन्द्रमा अथवा दोनों ही की दृष्टि हो; तो क्रमशः शनि और चन्द्र की दृष्टि से, स्थल; चर वृक्ष, और जलचर राशि का नवमांश हो; तो जलचर पक्षी का जन्म कहें ॥४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वामी के समान स्थान (अथवा उसकी, राशि का बताया हुआ स्थान) तथा उस पर जिस ग्रह का योग या दृष्टि हो, उसके तुल्य स्थान में, परदेश में, मरण होता है।

तथा लग्न के जितने अंश अनुदित (भोग्य) हों, उन अंशों में जितने समय ३० अंशों के मध्यम मान से दो घंटा (५ घटी) के अनुक्रम से, उतने समय तक मरणकाल में मोह होता है। यदि उस पर अपने स्वामी की दृष्टि हो, तो उससे द्विगुणित और शुभग्रह की दृष्टि हो, तो उससे त्रिगुणित समय पर्यन्त, मोह होता है। इस विषय की बातें विद्वान स्वकीय स्वस्थ बुद्धि से विचार कर कहें।

इनमें महामृत्यु के अतिरिक्त अन्य १०० मृत्यु, निर्ऋति (दुर्गति)जन्य अन्य मृत्युयें जो इस ग्रन्थ में उल्लिखित हैं ये सभी-आयुष्यगण स्वस्त्ययनगणों की वर्णित विधि से टल जाती हैं। द्रेष्काण और नवांश का विवरण आगे पृष्ठ पर देखें।

वैवाहिक-वरकन्या प्राप्ति प्रश्न विचार

कन्या के लिये योग्य वर, वर के लिये योग्य कन्या प्राप्ति विषयक प्रश्नकर्त्ता, शुभ दिन में पत्र, पुष्प, फल, दक्षिणा ले प्रश्न करें देव, गुरुतुल्य प्रणाम करे। मनीषी ज्योतिर्विद लग्न और ग्रहस्पष्ट कर विचारपूर्वक उत्तर दें।

प्रश्न-लग्न में पाप, या लग्न से ७ वें मं० हो तो जिसके लिये प्रश्न किया हो, उस कन्या या वर को ८ वर्षों के अन्तर्गत घातक अरिष्ट होता है ॥१॥ लग्न में चं०, ७ वें मं० हो तो ८ वर्षों के भीतर ही पति या पत्नि को घातक, कष्ट हो ॥२॥ लग्न से ५ वें भाव में पाप हो, वह नीचराशि में पापग्रहयुत या दृष्ट हो, कन्या कुलटा या मृत-वत्सा होती है, पति व्यभिचारी, शीघ्रपतन दोषी होता है (अनुभूत) ॥४॥

प्रश्न लग्न से ही ३ : ५ : ७ : ११ : १० वें भाव में चन्द्र हो या दृष्टि हो, उस पर गुरु की दृष्टि या युति हो तो, कन्या को वर; वर को कन्या शीघ्र मिलेंगे ॥५॥ प्रश्न में ७,२ या ४ राशियाँ हों, वे शु० या चं० से युत या दृष्ट हों तो "प्रश्नकर्त्ता के" वर को कन्या, कन्या को वर शीघ्र प्राप्त होता है ॥६॥ लग्न समराशि का हो, उसमें समका ही द्रेष्काण हो; समका नवांश हो; उस पर चं० शु० गु० की दृष्टि या युति हो तो शीघ्र वर को कन्या; कन्या को वर लाभ हो ॥७॥ प्रश्न में पुरुष राशि, पुरुष का नवांश हो, उस पर पुरुषग्रह (र० मं० गु०) की दृष्टि हो तो, कन्या को वर मिले; यदि ये तीनों स्त्री राशि हों तो वर को कन्या प्राप्त होती है ॥८॥ प्रश्नकाल में कृष्णपक्ष हो चं० सममें होकर लग्न से ६,८ वें पाप से युत या दृष्ट हो तो विवाह नहीं हो पाता ॥९॥ प्रश्न में शुभ निमित्त; शुभ शकुन देखने, सुनने में आयें तो वर-कन्या को शुभ हों, अशुभ हों तो अशुभफल होता है ॥१०॥

वह वर-कन्या के विवाह को उद्यत गुरुजन, योग्य अनुकूल वर-कन्या को प्राप्त करने में विवश, जन विचारें। आगे योग्यवर तथा कन्या प्राप्ति हेतु वैदिक शौनकीय विधि का अनुशरण उनकी अभीष्ट सिद्धि में सहायक सिद्ध हुआ वर्णित है।

आजीविका-कथन

प्रायः मानव अपनी भूलोक की आजीविका के; विना ज्ञान के; इधर-उधर भटककर अपना जीवन ही खो बैठते हैं। उनकी जन्मलग्न[१], नष्टजन्मलग्न[२], प्रश्नलग्नादि[३] से; उनके विधिवत् प्रश्न करने पर विद्वान ज्योतिर्विद विचारकर मार्गदर्शन करें। प्रश्नकर्त्ता का कर्त्तव्य है त्रिकालज्ञः धर्मवेत्ता विद्वान का पूर्ण सम्मान करें। तीनों ही उपर्युक्त किसी भी लग्न और चन्द्रमा से १० वे स्थान में यदि सूर्य आदि ग्रह हों तो क्रमशः (१) पिता-माता, (२) शत्रु, (३) मित्र, (४) भ्राता, (५) स्त्री, (६) नौकर के द्वारा धन लाभ हो ॥१॥ उपर्युक्त लग्नों या चन्द्रमा, सूर्य (जन्म

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या प्रश्नकालिक) इन तीनों में से १० वें के स्वामी, जिस नवांश में हों, उसके स्वामी की बृत्ति से आजीविका समझें ।।२।।

यथा (उक्त १० वें के स्वामी) के नवांश में हों तो तृण, पत्र, पुष्पादि, सुवर्ण, औषध ऊन (ऊनी वस्त्र) तथा रेशमादि से जीविका समझें ।।३।। चन्द्रमा के नवांश में हों तो खेती, जलज (मोती, मूंगा, शंख, सीप) और स्त्री द्वारा जीविका चलती है ।।४।। मंगल के नवांश में हो तो धातु, अस्त्र, शस्त्र, साहसिक कर्म, फौज, पुलिस आदि द्वारा जीवन निर्वाह हो ।।५।। बुध के नवांश में हो तो काव्य, शिल्पकलादि से ।।६।। गुरु के नवांश में हो तो देवता और ब्राह्मणों के कर्मों द्वारा तथा लोहा, सोनादि खनिज कर्मों से, शुक्र के नवांश में हो तो चाँदी, गौ, रत्नादि से, और शनि के नवांश में हो तो परपीड़न, परिश्रम और नीच (निन्द्य) कर्मद्वारा धन लाभ होता है ।

इनका अर्थोत्थापनविधिकर्म में विचार करें, और उद्यमादि अर्थोत्थापन विधि में वर्णित, विविध सिद्ध, वैदिक विधियों से भविष्य उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न करें ।

द्रेष्काण का स्वरूप❖

धर्मशास्त्रों में **"शरभ"** के ८ पैर कहे गये हैं; उसे व्याघ्र (सिंह) से भी भयङ्कर बलिष्ठ माना है, परन्तु यह इस युग में देखने, सुनने में भी अनुपलब्ध है । शरभ का अन्य अर्थ ऊँट भी कहा गया है, जो प्रायः भारत में प्रायः काम आता है ।

मेषराशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप :—हाथ में फरसा लिये, कृष्णवर्ण पुरुष, रक्तनेत्र, सभी जीवों की रक्षा में समर्थ—मेषराशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप वर्णित है ।

मेष का द्वितीय द्रेष्काण :—प्यास से पीड़ित, एक पैर से चलना, अश्वमुख, रक्तवस्त्र अश्वाकार । तृतीय—कपिलवर्ण, क्रूरदृष्टि, स्वभाव, रक्तवस्त्र, स्वप्रतिज्ञाभङ्ग करने वाला ।

वृष का १—भूख, प्यास से पीड़ित, कटे, छटे, घुंघराले केश, दुग्धवत् श्वेतवस्त्र । वृ० (२) मलिनगात्र, भूख से पीड़ित, बकरे का सामुख कृषि आदि कार्यों में कुशल । वृ० (३) हाथी तुल्य विशालकाय, उपर्युक्त शरभ के तुल्य पैर, पिंगलवर्ण और व्याकुल चित्त ।

मिथुन का १—सुई का काम करने वाली रूपवती, सुशीला, सन्तान हीना नारी—जिसने हाथ को ऊपर उठा रक्खा है । मि० (२) कवच, धनुर्धारी, आखेट को उद्यत; गरुणतुल्यमुख । मि० (३) नृत्यकला प्रवीण वरुण की भांति विविध विपुलरत्न भण्डारपूर्ण, धनुर्धर, वीरपुरुष ।

कर्क १—गणेश तुल्य कण्ठ, शूकरमुख, शरभ से पैर-वनवासी । क० (२) शिर पर सर्प धारण किये, पलाश की शाखा पकड़े रोती हुई कर्कशा स्त्री । क० (३) चिपटा मुख,सर्प से लिपिटा अन्वेषणार्थ जल नौका यात्री ।

सिंह १—सैमल वृक्ष के नीचे गीदड़ और गीध को लेकर रोता हुआ, कुत्ते जैसा पुरुष । सिं० (२) धनुष, कृष्णमृगचर्मधारी सिंहसा पराक्रमी, अश्वाकृति मानव । सिं० (३) फल, भोज्यपदार्थवाला, लम्बी दाड़ी से सुशोभित, भालु जैसा मुख, वानरी जैसे चपल स्वभाववाला ।

कन्या १—फूलों से पूर्ण कलशवाली, विद्याभिलाषिणी, मलिन वस्त्रधारिणी, कुमारी । क० (२) धनुर्धर, श्यामगात्र, रोओं से पूर्ण, लेखनपट्ट, आय व्यय के लेखे-जोखे रखनेवाला मानव । क० (३) गौरवर्ण, धौतश्वेत वस्त्र, ऊंचा कद, कलश लिये, देवालय की ओर जाती हुई नारी ।

तुला १—तराजू, वाट लिये, हाट में तोलने वाला, वर्तनभाण्डमूल्य कूतनेवाला पुरुष । तु० (२) हाथ में कलश, भूख, प्याससे, व्याकुल, गीध जैसे मुख का, स्त्री-पुत्र के साथ विचरनेवाला । तु० (३) धनुर्धारी आखेट परायण, किन्नर के तुल्य चेष्टावाला, सुवर्ण, कवचधारी पुरुष ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्यादिग्रहों के जाति, शील आदि का वोधक चक्र
सूर्य के द्रेष्काण से ग्रीष्मऋतु समझें ।

ग्रह	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	क्षत्रिय	शूद्र	ब्राह्मण	ब्राह्मण	अन्त्यज
शील	तीक्ष्ण	मृदु	क्रूर	मिश्र	सौम्य	सौम्य	क्रूर
पुं. स्त्री. नपुं	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
दिशा	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ऐशान्य	आग्नेय	पश्चिम
गृह	सिंह	कर्क	मेष/वृश्चिक	मिथुन/कन्या	धनु/मीन	वृष/तुला	मकर/कुम्भ
गुण	सत्व	सत्व	तम	रज	सत्व	रज	तम
स्थान	देवालय	जलाशय	अग्निशाला	क्रीडास्थान	भूमि	भंडार स्थान	शयनागार
आत्मादि	आत्मा	मन	बल	वाणी	ज्ञान-सुख	कन्दर्प	दुःख
देवता	अग्नि	जल	कार्तिकेय	विष्णु	इन्द्र	इन्द्राणी	ब्रह्मा
द्रव्य	ताम्र	मणि	सुवर्ण	कांसा	चांदी	मोती	लोहा
धातु	अस्थि	शोणित	मज्जा	त्वचा	वसा	वीर्य	स्नायु
अधिकार	राजा	राजा	सेनापति	युवराज	प्रधानमंत्री	मन्त्री	भृत्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या प्रश्नकालिक) इन तीनों में से १० वें के स्वामी, जिस नवांश में हों, उसके स्वामी की वृत्ति से आजीविका समझें ।।२।।

यथा (उक्त १० वें के स्वामी) के नवांश में हों तो तृण, पत्र, पुष्पादि, सुवर्ण, औषध ऊन (ऊनी वस्त्र) तथा रेशमादि से जीविका समझें ।।३।। चन्द्रमा के नवांश में हों तो खेती, जलज (मोती, मूंगा, शंख, सीप) और स्त्री द्वारा जीविका चलती है ।।४।। मंगल के नवांश में हो तो धातु, अस्त्र, शस्त्र, साहसिक कर्म, फौज, पुलिस आदि द्वारा जीवन निर्वाह हो ।।५।। बुध के नवांश में हो तो काव्य, शिल्पकलादि से ।।६।। गुरु के नवांश में हो तो देवता और ब्राह्मणों के कर्मों द्वारा तथा लोहा, सोनादि खनिज कर्मों से, शुक्र के नवांश में हो तो चाँदी, गौ, रत्नादि से, और शनि के नवांश में हो तो परपीड़न, परिश्रम और नीच (निन्द्य) कर्मद्वारा धन लाभ होता है ।

इनका अर्थोत्थापनविधिकर्म में विचार करें, और उद्यमादि अर्थोत्थापन विधि में वर्णित, विविध सिद्ध, वैदिक विधियों से भविष्य उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न करें ।

द्रेष्काण का स्वरूप❖

धर्मशास्त्रों में **"शरभ"** के ८ पैर कहे गये हैं; उसे व्याघ्र (सिंह) से भी भयङ्कर वलिष्ठ माना है, परन्तु यह इस युग में देखने, सुनने में भी अनुपलब्ध है । शरभ का अन्य अर्थ ऊँट भी कहा गया है, जो प्रायः भारत में प्रायः काम आता है ।

मेषराशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप :—हाथ में फरसा लिये, कृष्णवर्ण पुरुष, रक्तनेत्र, सभी जीवों की रक्षा में समर्थ—मेषराशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप वर्णित है ।

मेष का द्वितीय द्रेष्काण :—प्यास से पीड़ित, एक पैर से चलना, अश्वमुख, रक्तवस्त्र अश्वाकार । तृतीय—कपिलवर्ण, क्रूरदृष्टि, स्वभाव, रक्तवस्त्र, स्वप्रतिज्ञाभङ्ग करने वाला ।

वृष का १—भूख, प्यास से पीड़ित, कटे, छटे, घुंघराले केश, दुग्धवत् श्वेतवस्त्र । वृ० (२) मलिनगात्र, भूख से पीड़ित, बकरे का सामुख कृषि आदि कार्यों में कुशल । वृ० (३) हाथी तुल्य विशालकाय, उपर्युक्त शरभ के तुल्य पैर, पिंगलवर्ण और व्याकुल चित्त ।

मिथुन का १—सुई का काम करने वाली रूपवती, सुशीला, सन्तान हीना नारी—जिसने हाथ को ऊपर उठा रक्खा है । मि० (२) कवच, धनुर्धारी, आखेट को उद्यत; गरुणतुल्यमुख । मि० (३) नृत्यकला प्रवीण वरुण की भांति विविध विपुलरत्न भण्डारपूर्ण, धनुर्धर, वीरपुरुष ।

कर्क १—गणेश तुल्य कण्ठ, शूकरमुख, शरभ से पैर-वनवासी । क० (२) शिर पर सर्प धारण किये, पलाश की शाखा पकड़े रोती हुई कर्कशा स्त्री । क० (३) चिपटा मुख,सर्प से लिपिटा अन्वेषणार्थ जल नौका यात्री ।

सिंह १—सैमल वृक्ष के नीचे गीदड़ और गीध को लेकर रोता हुआ, कुत्ते जैसा पुरुष । सिं० (२) धनुष, कृष्णमृगचर्मधारी सिंहसा पराक्रमी, अश्वाकृति मानव । सिं० (३) फल, भोज्यपदार्थवाला, लम्बी दाढ़ी से सुशोभित, भालु जैसा मुख, वानरी जैसे चपल स्वभाववाला ।

कन्या १—फूलों से पूर्ण कलशवाली, विद्यामिलाषिणी, मलिन वस्त्रधारिणी, कुमारी । क० (२) धनुर्धर, श्यामगात्र, रोओं से पूर्ण, लेखनपटु, आय व्यय के लेखे-जोखे रखनेवाला मानव । क० (३) गौरवर्ण, धौतश्वेत वस्त्र, ऊंचा कद, कलश लिये, देवालय की ओर जाती हुई नारी ।

तुला १—तराजू, वाट लिये, हाट में तोलने वाला, वर्तनभाण्डमूल्य कूतनेवाला पुरुष । तु० (२) हाथ में कलश, भूख, प्याससे, व्याकुल, गीध जैसे मुख का, स्त्री-पुत्र के साथ विचरनेवाला । तु० (३) धनुर्धारी आखेट परायण, किन्नर के तुल्य चेष्टावाला, सुवर्ण, कवचधारी पुरुष ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्यादिग्रहों के जाति, शील आदि का बोधक चक्र

सूर्य के द्रेष्काण से ग्रीष्मऋतु समझें।

ग्रह	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	क्षत्रिय	शूद्र	ब्राह्मण	ब्राह्मण	अन्त्यज
शील	तीक्ष्ण	मृदु	क्रूर	मिश्र	सौम्य	सौम्य	क्रूर
पुं. स्त्री. नपुं	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
दिशा	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ऐशान्य	आग्नेय	पश्चिम
गृह	सिंह	कर्क	मेष/वृश्चिक	मिथुन/कन्या	धनु/मीन	वृष/तुला	मकर/कुम्भ
गुण	सत्व	सत्व	तम	रज	सत्व	रज	तम
स्थान	देवालय	जलाशय	अग्निशाला	क्रीडास्थान	भूमि	भंडारस्थान	शयनागार
आत्मादि	आत्मा	मन	बल	वाणी	ज्ञान-सुख	कन्दर्प	दुःख
देवता	अग्नि	जल	कार्तिकेय	विष्णु	इन्द्र	इन्द्राणी	ब्रह्मा
द्रव्य	ताम्र	मणि	सुवर्ण	कांसा	चांदी	मोती	लोहा
धातु	अस्थि	शोणित	मज्जा	त्वचा	वसा	वीर्य	स्नायु
अधिकार	राजा	राजा	सेनापति	युवराज	प्रधानमंत्री	मन्त्री	भृत्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृश्चिक १—एक नारी, जिसके पैर विविध भांति के सर्पों से वेष्टित होने से श्वेत प्रतीत हों, समुद्र से किनारे की ओर जा रही हो। वृ० (२) जिसके सभी अङ्ग सर्पों से वेष्टित हो, कछुए की आकृति की, जो स्वामी सुखान्वेषण परायणा स्त्री हो। वृ० (३) मलयगिरि निवासी सिंह, जिसकी मुखाकृति कछुए जैसी है, कुत्ते, शूकर, हिरनादि को डराता हुआ।

धनुष १—मानवमुखी अश्वशरीरी, धनुर्धारी, तपस्वी, यज्ञ रक्षक पुरुष। ध० (२) चम्पापुष्पाकृति, आसनासीन, रत्नाकर, रत्नवृद्धिकर्त्री, मध्यम काय नारी। ध० (३) दाढ़ी-मूंछों से युक्त, आसनस्थ, चम्पापुष्प तुल्य-कान्तिवान्, दण्ड, पट्ट-वस्त्र, मृगचर्मधारी पुरुष।

मकर १—मकर जैसे दांत, रोमपूर्णगात्र, सूअराकृति का पुरुष। म० (२) कमलनेत्री, श्यामा, आभूषण प्रियानारी। म० (३) हाथ में धनु, कम्बल, कलश, कवचधारी, किन्नरतुल्य पुरुष।

कुम्भ १—गीध जैसा मुख, तैल, घृत, मधुपान की इच्छावाला, कम्बलधारी पुरुष। कु० (२) हाथ में लोहा, आभूषणधारी मस्तक पर वर्तन लिये, मलिन वस्त्र, जली गाड़ी पर सवार नारी। कु० (३) काल में बड़े २ रोम, श्यामकान्तिगात्र, किरीटधारी, हाथ में फल-पत्रधारी, वर्तन व्यवसायी।

मीन १—भूषण निर्माणार्थ विविधरत्नधारी, समुद्र में नौका पर आसीन पुरुष। मी० (२) चम्पापुष्पसदृश-मुख आभावाली, निज परिकरयुत नौकासीना, समुद्रमध्य से तट की ओर आती सुन्दरी। मी० (३) गड्ढे के पास चोर, अग्नि पीड़ित, रोदनकर्त्ता, सर्प वेष्टित, नग्नगात्रपुरुष मीन का द्रेष्काण कहा है।

ये द्वादश राशियों के छत्तीस द्रेष्काणों के संक्षिप्त स्वरूप समझें और फलादेश कहे।

अद्भुत दर्शन

कौशिक सूत्र: कण्डिका ९३-९४ के भाष्य में अद्भुत दिखाई पड़ने वाले विषयों का परिगणन निम्नांकित ढंग से करते हुए उनके दर्शन दोषों के निराकरण का विधान भी बताया गया है—

(कौशिकसूत्र कण्डिका ९३-९४)

"अथाद्भुतानि"

अथाद्भुतानि ॥१॥ बर्षे ॥२॥ यक्षेषु ॥३॥ गोमायुवदने ॥४॥ कुलेकलहिनि ॥५॥ भूमिचले ॥६॥ आदित्योपप्लवे ॥७॥ चन्द्रमसश्च ॥८॥ औषस्यामनुद्यत्याम् ॥९॥ सभायां दारुणायाम् ॥१०॥ उपतारकशङ्कायाम् ॥११॥ ब्राह्मणेष्वायुधिषु ॥१२॥ दैवतेषु नृत्यत्सुच्योतत्सुहसत्सुगायत्सु ॥१३॥ लाङ्गलयोःसंसर्गे ॥१४॥ रज्ज्वोस्तन्त्रोश्च ॥१५॥ अग्निससर्गे ॥१६॥ यमवत्सायां गवि ॥१७॥ बड़वागर्दभ्यो-र्मानुष्याश्च ॥१८॥ यत्रधेनवो लोहितं दुहते ॥१९॥ अनडुहि धेनुं धयति ॥२०॥ धेनौ धेनुं धयन्ताम् ॥२१॥ आकाश फेन ॥२२॥ पिपीलिकानाचारे ॥२३॥ नीलमक्षानाचारे ॥२४॥ मधुमक्षानाचारे ॥२५॥ अनाज्ञाते ॥२६॥ अवदीर्णे ॥२७॥ अनुदकोन्मीले ॥२८॥ तिलेषुसमतैलेषु ॥२९॥ हविष्वभिमृष्टेषु ॥३०॥ प्रसव्येष्वा-वर्तेषु ॥३१॥ यूपे विरोहति ॥३२॥ उल्कायाम् ॥३३॥ धूमकेतौ सप्तर्षीनुपधूपयति ॥३४॥ नक्षत्रेषुपतापतेषु ॥३५॥ मांसमुखे निपतति ॥३६॥ अनग्नाववभासे अग्नौ श्वसति ॥३८॥ सर्पिषि तैले मधुनि च विष्यन्ये ॥३९॥ याम्ये अग्नौ ॥४०॥ शालां दहति, आगन्तौ च ॥४१॥ वशे स्फोटति ॥४२॥ कुम्भोदधाने विकसत्यु-खायां सक्तुधान्यां च ॥४३॥१॥९३॥

भार्गव्याणि। गार्ग्याणि। वार्हस्पत्यानि; अद्भुतानि। महाद्भुतानि औशनसाद्भुतानि यद्ग्रन्थे न पठयते तत्सर्वमनाज्ञाता मित्युच्यन्ते यदपि परिशिष्टेषुपठयते। इतिहासः पुराणः ज्योतिशास्त्रे,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अश्ववैद्यके नरवैद्यकेषु पठितेषु अद्भुतेषु, सर्वाद्भुतेषु एषाशान्तिः ।। अथवा महाशान्तिरमृता; घृतकम्बले, कोटिहोमसर्वाद्भुतेषु कौशिक अपठितेषु एषाः शान्तिः ।। महाशान्तिर्वा, विकल्पात्, इतिभाष्यकारः ।।

उपर्युक्त अद्भुत दर्शनों का शान्ति विधान श्रीकेशवदेव शास्त्री इस प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं— सम्पादक

पुच्छलतारादिफल

अथर्व संहिता काण्ड १३ सू० १:२:३ में निर्दिष्ट; तथा कौशिकसूत्र कण्डिका ९३, सूत्र ३३:३४:३५ में पठित- **(उल्कायाम्-धूम्रकेतौ ३ नक्षत्रेषुपतापकेषु)** की शान्ति-विधि से पूर्व, इन अरिष्ठसूचक बातों के स्वरूप या फल का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार समझें । यथा :—चैत्रादि मासों में क्रमशः मेषादि राशियों में सूर्य की संक्रान्ति होती है, और मेष में सूर्य के रहते जो अमावस्या होती है वही चैत्र की समाप्ति समझी जाती है । चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के प्रारम्भ में जो दिन हो; वही **ग्रह** उस (चान्द्र) वर्ष का **राजा** होता है । सूर्य के मेषराशि प्रवेश के वार को **सेनापति** (मन्त्री); कर्क की संक्रान्ति के वार को **(धान्येश)** समझें । सूर्य अधिपति से मध्यम, चन्द्र से उत्तम भौम से अशुभ, बुध, गुरु, शुक्र ये तीनों अत्युत्तम, शनि अशुभ फलदाता समझें ।

धूम्रकेतु-पुच्छल तारा आदि के फल : यदि कभी कदाचित् कहीं से सूर्यमण्डल में **(लाठी)** मस्तक-हीन शरीर; कौआ या चील के आकार के केतु चिह्न दृष्टिगोचर हों, तो वहां क्रमशः व्याधि; भ्रान्ति तथा चोरों के उत्पात, धनक्षय होता है । छत्र, ध्वज, पताका, सजल मेघ खण्ड सदृश (अथवा) अग्निकणयुक्त धूम सूर्यमण्डल में दृष्टि-गोचर हो; तो देश, क्षेत्र, ग्राम, स्थान का नाश हो । शुक्ल, रक्त, पीत, कृष्णसूर्यमण्डल दिखाई दे तो क्रमशः द्विज, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णों को पीड़ा हो । यदि दो, तीन, चार प्रकार के रंग सूर्यमण्डल में दिखाई पड़ें तो राजाओं का नाश हो । यदि सूर्य की ऊर्ध्वगामिनी किरण रक्तवर्ण की दिखाई पड़ें तो सेनापति का नाश हो । यदि उसका पीत वर्ण हो तो युवराज का नाश हो; परन्तु प्रजातन्त्र में युवराज का स्थान नहीं होता है । श्वेतवर्ण हो तो राजपुरोहित का; अनेकवर्ण हों तो प्रजाजन का नाश हो । इसी भाँति धूम्रवर्ण हो तो राजा(नेता)का; कपिलवर्ण से मेघनाश(अनावृष्टि) यदि सूर्य की उक्त किरणें अधोमुखी हों तो संसार का नाश हो । सूर्य (माघ, फाल्गुन) शिशिर में तांवे की भांति रक्त दिखाई पड़े तो संसार के लिये कल्याणकारी; चैत्र, वैसाख (वसन्त) में कुंकुमवर्ण, ग्रीष्म में पाण्डु श्वेत पीतयुक्त; वर्षा में अनेक-वर्ण, शरद् में कमलवर्ण तथा हेमन्त में रक्तवर्ण सूर्यविम्व दिखाई दे तो शुभप्रद समझें । यदि शीत (अगहन से भाल्गुन पर्यन्त) सूर्यविम्ब पीला; वर्षा (श्रावण से कार्तिक) श्वेत; (उजला) ग्रीष्म में चैत्र से आसाढ़ तक लाल रंग का दिखाई दे तो क्रमशः रोग; अवर्षण, भय हो । यदि सूर्य का आधा विम्ब इन्द्र धनुष के सदृश दीख पड़े तो राजाओं में परस्पर विरोध बढ़ाता है । खरगोश के रक्त के सदृश सूर्य विम्ब हो तो शीघ्र ही राजाओं में महायुद्ध प्रारम्भ हो । यदि सूर्यवर्ण मोरपंख के सदृश हो तो वहां १२ वर्ष तक वर्षा नहीं होती । यदि सूर्य कभी चन्द्रमा के समान हो तो वहां के राजाओं को जीत कर दूसरा राजा राज्य करे । यदि सूर्य श्याम रंग दीख पड़े तो कीट, पतङ्ग भय हो । भस्म समान हो तो (नेतृवर्ग)समूचे राज्य पर भय हो । सूर्यमण्डल में छिद्र हो तो सम्राट की मृत्यु हो । कलश तुल्य आकार वाला सूर्य हो तो देश में भुखमरी, भय उपस्थित हो । तोरण सदृश आकार दिखाई दे तो ग्रामों, नगरों का विनाशक हो; छत्राकार सूर्योदित हो तो देश का नाश, खण्डित दिखाई दे तो राजा (नेता) का नाश होता है ।

यदि सूर्योदय या अस्त काल में बिजली की गड़गड़ाहट और वज्रपात एवं उल्कापात हो तो राजा(नेता) का नाश, युद्ध हो । यदि १५ या ७।। दिन तक दिन में सूर्य पर तथा रात्रि में चन्द्रमा पर परिवेष (मण्डल) हो; (अथवा) उदयास्त में अत्यन्त रक्त हो, तो राजा या मंत्रिमण्डल का परिवर्तन हो । उदयास्तकाल में यदि सूर्य शस्त्राकार वाले, गदहे, ऊंट आदि सदृश अशुभाकृति के मेघ से खण्डित-सा प्रतीत हो तो विश्व में युद्ध हों ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भौमचार-फल

भौम के उदय नक्षत्र से ७, ८, ९ वें में भौ वक्र हो तो **"उष्ण"** नामक वक्र होता है जो प्रजापीड़ा, अग्नि भयप्रद है। उदय से १०:११:१२ वें में उदय "अश्वमुख" वक्र–अन्न-वर्षा का नाशक। उदय से १३:१४ वें वक्र "व्याल-मुख" वक्र भी यही अनिष्टप्रद है। १५:१६ वें का वक्र "रुधिरमुख" वक्र दुर्भिक्ष, क्षुधा रोगप्रद है। १७:१८ वें का वक्र "मुसल" नामक वक्र धन-धान्य नाश, दुर्भिक्ष, भय। यदि भौम पू० फा०, उ० फा० में उदय होकर उ० फा० में वक्र हो तथा रोहिणी में अस्त हो तो त्रिलोक संहारक। श्रवण में उदित होकर पुष्य में वक्रगति हो तो धनहानिकर्त्ता। भौमोदय की दिशा राजा को भय। मघा के मध्य हो उसी में वक्र हो तो अनावृष्टि शस्त्रभय, राजाओं का विनाश। मघा, विशाखा या रोहिणी के योग तारा का भेदन करके चले तो दुर्भिक्ष, मरण, रोगप्रद। तीनों उ०, रो०, मू० श्रु०, मृ० के बीच में रोहिणी के दक्षिण होकर चले तो अनावृष्टि, सभी नक्षत्रों के उत्तर होकर चलना शुभ, दक्षिणगति का अशुभ-कलह कारक होता है। अनिष्ट की शान्ति ग्राम-नगर-राष्ट्रस्तर पर करना ही श्रेयस्कर समझें।

राहुचार-फल

राहु क्रूर ग्रह है। यह प्रायः पूर्णिमा, अमा के पर्वों में चन्द्र या सूर्य को उत्पीड़ित करता है; परन्तु "शर" या "अवनति" आधिक्य से यह उन दोनों से दूर ही रहता है। क्रमशः प्रथम सूर्य से सूर्य, चन्द्र से चन्द्र ग्रहण का ६ मास पर पुनः विचार करें। क्योंकि पर्वेश (ग्रहण के अधिपति) ६ मास पर होते हैं, ये हैं—१. ब्रह्मा, २. चन्द्रमा, ३. इन्द्र, ४. कुवेर, ५. वरुण, ६. अग्नि, ७. यम। १।२ में ग्रहण हो तो पशु, कृषि, द्विजों की वृद्धि, परन्तु २ में विशेष कर कफ पीड़ा हो। ३ में राजाओं में वैर, विश्व में नाना क्लेश, कृषि नाश, ५ राजा प्रजा का अकल्याण, ६ में शोभन-वृष्टि, धान्यवृद्धि, कल्याण। ७ में कृषि, वर्षा का अभाव दुर्भिक्ष। ग्रहण निर्द्धारित समय से पूर्व हो तो कृषि विनाश, राजाओं को दारुण दुःख हो, समय के उपरान्त हो तो फूल हानि, विश्व भय हो। एक ही मास में २ ग्रहण; युद्ध, धन, वृष्टि नाश। ग्रहणयुक्त सूर्य चन्द्र के उदय अस्त से धान्यों, राजाओं का विनाश। खग्रास ग्रहण, भुखमरी, रोग; अग्नि-महाभय* करता है उत्तरायण में ग्रहण–द्विज, क्षत्रियों को हानि; दक्षिणायन वैश्यशूद्रों को हानि। इसी भाँति ग्रास तथा मोक्ष के १०।१० भेद हैं। **इस समय के ज्ञानार्थ "अनुसन्धान" अनिवार्य राष्ट्रीय कर्त्तव्य** है। इन धूम्रकेतु आदि तारों का उदयास्त प्राणिवर्ग के लिये भयङ्कर उत्पातकारक होता है ये १ दिव्य, २ भौम, और ३ अन्तरिक्ष नाम से ३ प्रकार के होते हैं। १–साधारण तारा के समान उदित होकर किसी नक्षत्र के साथ केतु हो तो "दिव्य" उत्पात-कारण, 'भूलोक' सम्बन्धी भूकम्पादि को "२ भौम" और ३ आकाश में यज्ञ की ध्वजा, अस्त्र; शस्त्र; भवन; बड़े हाथी जैसे; खम्भा, त्रिशूल और अंकुशादि चिह्नों के तुल्य केतु दिखाई दे तो "आन्तरिक्ष" उत्पात कहें। केतुतारा एक होकर भी विभिन्न रूप धारण कर अनिष्ट फलदायक कहा है। ये जितने दिन मास तक दृष्टिगोचर हो, उतने ही मास; या सौर वर्षों तक शुभाशुभ फल देते हैं। "दिव्य" केतु विविध फलप्रद होते हैं। ह्रस्व, चिकना और स्वच्छ–श्वेतवर्ण का (सुवृष्टि) शीघ्र अस्त होने वाला विशाल केतु (अनावृष्टि) इन्द्रधनु तुल्य कान्तिवाला "धूम्रकेतु" तारा (अनिष्टप्रद) दो, तीन, चार रूपों में प्रगट त्रिशूल जैसा केतु (राष्ट्रविनाश) पूर्व तथा पश्चिम में सूर्य सम्बन्धी केतु मणि, हार, सुवर्ण सन्निभ देदीप्यमान हो तो उन दिशाओं में राजनाश पलाश, विम्बफल, रक्त और तोते की चौंच के तुल्यवर्ण का केतु अग्निकोण में उदित हो तो शुभफल भूलोक के "भौम" केतुओं की कान्ति जल एवं तेल तुल्य होती है ये (भुखमरी, भय, उत्पात) कराते हैं। चन्द्रजनित केतु श्वेतवर्ण के कहे हैं (सुभिक्षकारक) समझें। ब्रह्मदण्ड से उत्पन्न तथा तीन रङ्ग के तीन ही अवस्थाओं के धूम्रकेतु नामक (आन्तरिक्ष) केतु प्रजाजन विनाशकारक हैं। ज्वालामुखी आदि विस्फोटक। यदि ईशानकोण में श्वेतवर्ण के शुक्रजनित केतु हों तो अनिष्टफल। शिखारहित, "कनकनाम" से ख्यातशनि सम्बन्धी केतु भी अनिष्टप्रद होते हैं। गुरु सम्बन्धी केतु "विकच" संज्ञक दक्षिण दिशा में उदित होने पर भी अभीष्टप्रद होते

*जल-थल-नभ खानों के उत्पात हों।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। उसी दिशा में सूक्ष्म, शुक्लवर्ण, बुध सम्बन्धी केतु-चोर, रोग वृद्धि। "कुंकुम" संज्ञक मंगलसम्बन्धी लाल रङ्ग के, सूर्याकृति के उक्त दिशा मे उदित होने वाले-अनिष्टकारक "विश्वरूप संज्ञक" अग्नितुल्य कान्ति के; अग्निसम्बन्धी, अग्निकोण में उदित हों तो सुखद। "अरुण" संज्ञक श्यामवर्ण सूर्यसम्बन्धी दुःखद। रिक्ष के रङ्ग के शुक्रसम्बन्धी केतु शुभदायक कृतिका तारा में उदित "धूम्रकेतु" निश्चय प्रजाक्षयकारक। राजमहल वृक्ष, पर्वतों पर प्रगटित केतु-राजाओं का विनाश। "कौमुद संज्ञक" कुमुद पुष्पवर्ण का सुभिक्षकर्त्ता। सन्ध्या कालीन मस्तक सहित उदितकेतु (गोलाकार) अनिष्टकर्त्ता कहा है।

मूर्ति प्रतिमा विकार

देव प्रतिमा स्वयं ही नीचे गिर पड़े; जले; बार-बार रोये; गाये, स्वेद हो, हँसे, अग्नि, धुआँ, तेल, शोणित, दूध, या जल वमन करे, अधोमुख हो जाय; स्थानान्तर में चली जाय आदि २ अद्भुत प्रतिमा-विकार महान अनर्थ-सूचक समझें।

विविध-विकार

यदि आकाश में "ग्राम के समान आकार", दिन ही में तारागण दर्शन, उल्कापतन; काष्ठ, तृण शोणित वृष्टि; गन्धर्वदर्शन, दिग्दाह, दिशाओं में धुआँ छा जाना, दिन या रात्रि में भूकम्प बिना अग्नि (अङ्गार) दीखना; बिना लकड़ी के अग्नि जलना, रात्रि में इन्द्रधनुष या घेरा दीखना, पर्वत या वृक्ष पर उजला कौआ दिखाई देना; अग्नि चिन-गारियों का प्रकट होना; गौ, हाथी, घोड़ों के दो या तीन मस्तक वाला बच्चा होना; प्रातःकाल एक साथ ही चारों दिशाओं में अरुणोदयसा प्रतीत होना; ग्रामों में दिन में गीदड़वास, विविध उपर्युक्त धूम्रकेतु दर्शन, रात्रि में कौओं का, दिन में कबूतरों का क्रन्दन महाभयङ्कर उत्पात समझें।

वृक्षों में बिना समय के फूल या फल दीखें, तो उसे काट दें; और शान्ति करें। इनमें से कितने ही उत्पात घातक; कितने ही शत्रु भयप्रद; कितने ही भय, अपयश, मृत्यु, हानि या कीर्ति सुख-दुःख, ऐश्वर्यप्रद भी होते हैं। यदि (दीमक की मिट्टी के ढेर) पर शहद दीखे तो धन को हानिप्रद होता है।

वृष्टि-विचार (अनुकूल)

ज्योतिष-शास्त्रोक्त वर्षा-प्रवेश (आर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश) काल में यदि शुक्लपक्ष हो; चन्द्र जलराशि में; या केन्द्र (१:४:७:१०) में स्थित हो, शुभयुक्त या दृष्ट हो तो अधिक वृष्टि। यदि उक्त चन्द्र पर शुभ या पाप की दृष्टि या युति हो तो मध्यम। इसी प्रकार शुक्र से भी सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र प्रवेश में चन्द्र और शुक्र दोनों की स्थिति के तारतम्य से फल समझें ॥१॥

वर्षाकाल में आर्द्रा से स्वाती पर्यन्त सूर्य संक्रमण में चं० यदि शु० से ७ वें या श० से ५ वें, ९; ७ वें शुभ-युत या दृष्ट हों तो अवश्य वृष्टि हो ॥२॥

यदि बु० शु० एक राशिस्थ हों तो तत्काल वर्षा हो; किन्तु इन दो के बीच सू० हों तो अवरोध हो जाता है ॥३॥

यदि मघा आदि ५ नक्षत्रों में शु० पूर्व की उदित हो और स्वा० वि० अ० में पश्चिम में उदित हो तो निश्चय वर्षा होती है. विपरीत से अवरोध समझें ॥४॥

सूर्य की राशि में ही कोई ग्रह आगे पीछे पड़ें तो अवश्य वृष्टि हो परन्तु वे वक्रगति के न हों ॥५॥

तुल से मीन तक में शुक्र सूर्य से वाम पड़ें तो वृष्टिकारक; उदयास्त में आर्द्रा के सूर्य का प्रवेश हो तो वृष्टि करे। सूर्य का सन्ध्याकालीन आर्द्रा प्रवेश (धान्यवृद्धि) रात्रि का सर्वसम्पत्ति प्रदाता; परन्तु प्रवेश में चं० गु० बु० शु० से आर्द्रा भेदित हो तो क्रमशः (अल्पवृष्टि, धान्यहानि, अनावृष्टि, धान्यवृद्धि निश्चय हो। यदि ये चारों चं० बु० गु०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शु० सूर्य के आर्द्रा प्रवेशकाल में प्रवेश लग्न से (१:४:७:१०) वें भाव में पड़ें तो कृषि की ईतिभीति (टिड्डी, चेंपा, रतुआ, गेरुई, कन्डुआ, दुरकी आदि २) से नाश होता है ।।६।।

सूर्य के पू० षा० नक्षत्र प्रवेश काल में मेघाच्छादित हो तो आर्द्रा से मूल पर्यन्त नित्य वृष्टि होती है ।।७।।

सूर्य के रेवती प्रवेशकालीन वर्षा से रे० से आश्ले० पर्यन्त (दसों में) अनावृष्दि होती है ।।८।।

सूर्य के सिंहराशि संक्रमण में लग्न मंगल से भेवित हो; कर्कप्रवेश में अभिन्न हो, कन्या प्रवेश में भेदित हो तो उत्तम वृष्टि हो ।।९।।

उ० मा० (पूर्वधान्य) रे० (परधान्य) म० (सर्वधान्य) नक्षत्र हैं। अश्वि० सर्वधान्य नाशक कहा है ।।१०।।

चातुर्मास्य में पश्चिमोदित शु० गु० से ७ वें निर्वली हों, तो आर्द्रा से ७ नक्षत्र तक प्रतिदिन अतिवृष्टि होती है ।।११।।

चन्द्रमा पर (घेरा) हो; उत्तर दिशा में बिजली चमके या दादुर ध्वनि हो तो निश्चय वर्षा हो ।।१२।।

पश्चिम भाग में लटका मेघ आकाश में दक्षिण को जावे तो तुरन्त वर्षा हो ।।१३।।

विलावस्व नाखूनों से भूमि खनन करे, लोहे, तांबे, कांसी में मल, जङ्ग जमे; अथवा अनेक बालक मिलकर सड़कों पर पुल बाँधें, गदही कमर फुलाये, गौयें या बैल एक साथ पूंछ उठाकर ग्राम की ओर दौड़ें तो निश्चय वर्षा हो ।।१३।।

चींटी छिन्न-भिन्न हो जावें, अण्डे लेकर भागें, आकाश में अनेक जुगुनू दीखें, सर्प वृक्ष पर चढ़ें, प्रसन्न हों तो दुर्वृष्टि हो। उदयास्त में सू० या चन्द्र का रङ्ग बदला जान पड़े या उनकी कान्ति मधु के तुल्य दीख पड़े तथा वेगपूर्ण हवा बहने लगे तो अतिवृष्टि हो ।।१४।।

उदयास्तकाल में सूर्य के दोनों ही ओर से आकाश मार्ग पर बादलों की (मौंक) जुड़ें तो तुरन्त बर्षा होती है ।।१५।। यह ग्रन्थ के कृषि सम्बर्द्धन में विचारणीय समझें।

यात्रा में प्रतिबन्ध

पौष से चैत्र पर्यन्त ही, बिजली चमके, मेघ गर्जना हो, वर्षा होने लगे तथा उपर्युक्त (दिव्य, भौम, आन्तरिक्ष) उत्पात होने लगें तो जीवनेच्छु ७ दिन तक यात्रा नहीं करे।

यदि घर में कोई उत्सव हो या कैसी भी सूतक हो तो जीवनेच्छु उत्सव परित्याग कर यात्रा करें।

यात्रा में विशेष अपशकुन

यात्राकाल में दो भैंसों (दो) चूहों में युद्ध हो, भैंस पर सवार ग्वाला आये, स्त्री से कलह हो, स्त्री ऋतुधर्म में हो, वस्त्रादि शरीर से खिसक कर गिर पड़ें; माला गिर पड़े, मुकुट गिरे, कुण्डल गिरे, किसी पर क्रोध हो जाय, मुख से दुर्बचन कहा गया हो या अन्य द्वारा टोका गया हो या किसी भी दिशा की ओर (बाल, वृद्ध, रोगी, श्लेष्मावाले को छोड़) किसी ने छींका हो या गौ की छींक हो तो कदापि जीवनेच्छु यात्रा न करे।

अथ अद्भुत उत्पात :—अद्भुत, उत्पात **"दिव्य"**, **"आन्तरिक्ष"** और **"भौम"** ये तीन प्रकार के होते हैं। **"दिव्य"** ग्रहों और नक्षत्रों की विभिन्न-विकृतियों से उत्पन्न है। **"अन्तरिक्ष"** उल्कापात, दिग्दाह, परिवेश, सूर्य में गोल घेरा सा छा जाना, गन्धर्व नगरदर्शन, विकारयुक्त-महावृष्टि ये **"अन्तरिक्ष" उत्पात कहलाते हैं। "भौम"** पृथ्वी पर एवं जंगम प्राणियों में होने वाले उपद्रव "भूकम्प" ये **"भौम"** उत्पात हैं। इन तीनों ही प्रकार के उत्पातों के दिखाई पड़ने पर अथवा किसी भी प्रकार अनुभव में आने के एक सप्ताह के अन्दर यदि वर्षा हो जावे, तो अद्भुत दोष स्वयं शान्त हो जाता है। ऐसा न हो, तो ३ वर्षों के अन्तर्गत ही, वैदिक शान्ति करना हितकर होता है। यदि शान्ति नहीं की गई, तो वह समस्त लोक के लिये विविध प्रकार से, भयावह, विचित्र दुर्घटनाओं का सृजन करती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब देव प्रतिमायें नाचें, कांपें, जलें, शब्द करें, रोवें, पसीना जैसा बहायें, हँसें तो वे लोक के लिये अनर्थकारी होती है। उनकी पिप्पलादि शान्ति या प्राजापत्य होम करें। जिस राष्ट्र में बिना जलाये ही घोर शब्द करती हुई "अग्नि" स्वतः भड़क उठे और ईंधन डालने पर प्रज्वलित न होती हो, वह राष्ट्र क्षेत्र राजाओं द्वारा पीड़ित हो जाता है। इस अग्नि-दोष की शान्ति "आग्नेयास्त्र" अर्थात अग्नि देवता के मन्त्रों से हवन करें।

जब वृक्ष असमय में ही फल दें, अथवा दूध या रक्त बहावें, तो वृक्षजनित भौम उत्पात समझें। इसकी रौद्र-गण मन्त्रों से शिवार्चन कर होम करें। अतिवृद्धि-अनावृष्टि ये दोनों घोर दुर्भिक्षकारक होती है। वर्षाऋतु को छोड़ अन्य किसी भी ऋतु में ३ दिन तक लगातार वृष्टि होने पर वह "भयकारक" होती है। इसकी शान्ति पर्जन्य मंत्रों वारुणास्त्र "अपांगण मन्त्रों" से, सोम तथा आदित्य मन्त्रों से पूजन होम करें।

जिस नगर से नदियां दूर हट जावें, या अत्यन्त समीप चली आवें, सरोवर या झरने कूप सूख जावें, इस दोष की शान्ति "वरुण पूजन" वारुणास्त्र या अपांगण (अम्बादिगण मन्त्रों) से शान्ति और होम करें। जहां स्त्रियां असमय में अर्थात् क्वारी या वृद्धा प्रसव करें, समय पर प्रसव न करें, विकृत विपरीत युग्मादि गर्भों को जन्म दें, या युग्म सन्तानादि उत्पन्न करें, इस स्त्री सम्बन्धी वैपर्य दोष की शान्ति में "साध्वी" स्त्रियों और ब्राह्मणों का पूजन करें।

जहां घोड़ी, गौ, हथिनी, एक साथ दो बच्चों को जन्म दें, अथवा विकृत, विजातीय योनि की सन्तान को जन्म दें, छः मास के अन्दर ही प्राण त्याग देती है, अथवा विकृत गर्भ का प्रसव करती है, उस राष्ट्र और क्षेत्र को शत्रुमण्डल से घोर भय-पीड़ा होती है। इस पशु-प्रसव उत्पात की शान्ति के लिये आथर्वणी विधि से शान्ति होम करें, जो आगे ग्रन्थ में है। जब अयोग्य पशु सवारी में जुते, योग्य (लीन) पशुयान का वाहन न करें, उस समंय महान भय होता है। जब जंगली जीव ग्राम में चले जावें, अथवा ग्रामीण पशु-पक्षी जंगलों को भागने लगें, स्थल, चरजीव, जल में प्रवेश करे, जलचर जीव स्थल को चले जावें, राजद्वार पर गीदड रुदन करें, मुर्गे प्रदोषकाल में बोलें, रात्रि में काक बोलें, सूर्योदय पर गीदड़ बोलें, कबूतर, उलूक घरों में घुसे, माँसाहारी जीव शिर पर मढ़रायें, साधारण मक्खी मधु बनाने लगे, काक सबके देखते मैथुन करे, पक्के प्रसाद, तोरण, उद्यान, द्वार, परकोटा और भवन अकारण गिरने लगें तब राजा (नेता) महापुरुष की मृत्यु होती है, राज में उत्पात होते हैं। जब धूल या धुयें से दशों दिशायें भर जावें, केतु-पुच्छल तारों, धूम्रकेतु का उदय हो, बार २ वर्ष या मासों में ग्रहण, सूर्य या चन्द्रमा में छिद्र प्रगट हों, ये सब ग्रहों और नक्षत्रों के उत्पात होते हैं, ये उत्पात जब भी, जहां भी जिस राष्ट्र, क्षेत्र में होते हैं, वहां घोर विभिन्न उत्पातों की सूचना देते हैं।

जहां अग्नि प्रदीप्त न हो, जल से भरे घड़े अकारण ही चूने लगें, यज्ञदीप या घर चूने लगें तो इन उत्पातों के फलस्वरूप मृत्युयें, भय, और महामारी ध्वंस, अभाव, क्षय, आदि २ होते है। इन सभी की और अन्य वर्णित, अवर्णित श्रुत-अश्रुत, दृष्ट-अदृष्ट समस्त अद्भुत उत्पातों से मनुष्य-मनुष्यों, जीव जगत की शरीर, मन-बुद्धि, अन्तःकरणों को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, मस्तिष्क, औद्योगिक, आर्थिक, कृषि, पशु आदि को भारी रोग-व्याधियों का सामना करना पड़ता है, परन्तु इनका स्थूल शरीर काय चिकित्सा की कोई पद्धति शान्त नहीं कर पाती, ये कर्मज, पापज शाप पापजनित दुष्कर्मों के फलभोग रूप हैं, इनकी पिप्पलादिशान्तियां अथर्वाजी ने "आथर्वणी शान्ति" के रूप में लोक कल्याणार्थ ही दी हैं। आथर्वणी शान्ति–अट्ठारह प्रकार की कही गई है। (१) ये ३० शान्तिविधियों में से ही हैं।

इनमें से समस्त उत्पातों के संहरणार्थ "अमृता" और सौम्या हैं। "अमृता" सर्वदैवत्या "अभया" ब्रह्म-दैवत्या, एवं "सौम्या" सर्वदैवत्या है। ये सभी समस्त कामनाओं को प्रदान करनेवाली हैं। "अभया" शान्ति के उपरान्त "वरुण" वृक्ष जो काश्मीर में रागनादेवी पीठ पर, पहाड़ पर हैं, उनके मूलभाग की मणि बनाकर, अभिमन्त्रित कर धारण कराई जाती है "अमृता" शान्ति के लिये **श्वेतदूर्वा मूल की मणि** धारण करायें। "सौम्या" शान्ति के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिये **"शङ्खमणि"** धारण कराई जाती है। ऐसे ही अन्य २ देवताओं के सम्बद्ध मन्त्रों से अभिमन्त्रित मणियां धारण कराई जाती हैं, वे सब विधिवत् आगे पढ़ें-समझें करें।

वृहच्छान्ति :—ब्रह्मवेद (आथर्वणिक) शौनकीय शाखा में वर्णित सार्वभौम शान्ति का नाम है। जिसमें १– "अंहोलिङ्गादिगण" अर्थात सभी प्रकार के अपने या आनुवंशिक जन्म जन्मान्तरीय पापों से मुक्ति का वर्णन है। २–पिप्पलादीगण–अर्थात् भौमचक्रस्थ तथा सौरमण्डलीय ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, उल्कापात, धूम्रकेतु दर्शन तथा समस्त अद्भुद्दोषों का, शाप, क्रूर दृष्टिजनित दोषों के कारणों का निराकरण होता है।

३–अम्बादिगण अर्थात् जलसूक्त, शान्तिसूक्त है, और ४–आयुष्यगणसूक्त अर्थात् आयुक्षीणकर्त्ता सभी कारणों का निराकरण और नीरोगता तथा दीर्घायु प्राप्ति के वेदोक्त विधान हैं, ये सब चारों मिलकर वृहच्छान्तिगण मन्त्रों की विधि से समस्त पाप, व्याधि-रोगजनक कारणों का निराकरण और उनसे मुक्त हो जाने का विधान है। उसका नाम "वृहच्छान्ति" है।

(अ० कां० ६।२६) हम मन, वाणी, इच्छा और संकल्प को दृढ़, पवित्र करते हैं, इनमें बसनेवाले पापी विचारो ? उनसे होने वाले पापकर्मों ? हमसे दूर—हमारे अहितकर्त्ता के पास चले जाओ। यदि तुम हमको नहीं छोड़ते हो, तो अपनी शक्ति ब्रह्मबल से, हम तुम्हें त्यागते हैं। यह सहस्र नेत्रवाला, न मरनेवाला पापी **संकल्प (काम)** हमसे पृथक् अन्य सुदूर स्थान में चला जावे।

(कां० ३।३१) ये सब पाप, पापकर्म पापी विचार, पापपूर्ण व्यवहार, समस्त रोगों और अल्पायु-आयु क्षीणता के मूलकारण हैं, अत; (मं० १-११) "व्यहं सर्वेण पाप्मना वियक्ष्मेणसमायुषा।" मैं सब पापों को, उनसे होनेवाले दीर्घ-कालीन, रक्त-रसमांस शोषक, आयु क्षीण करनेवाले रोगों और क्लेशों शारीरिक, मानसिक, वौद्धिक, अन्तःकरणीय स्वस्थता और चिरायुष्यता के लिये दूर करता हूँ। (मं० १) जिन पुण्य अनुष्ठानों, आचरणों, मर्यादाओं से देवों ने वृद्धापन दूर कर "युवापन" ही स्थायी रूप से प्राप्त किया उसी **दैवी विद्या** से मैं नीरोग, चिरायुष्य, चिरयौबन प्राप्त करता हूँ।

(कां० ६।११३-७२) हे पापी ! पाप ! तू सूर्यं किरणों, अन्धकार, कुहरा अथवा नदी के फेनों में क्यों न चला जावे, जा तुझे गर्भघातकी में भेजता हूँ। (मं० १) इन्द्रियों का किया पाप मन में आता है, वही मनुष्यों में जाता है, उसी से गठिया आदि रोग होते हैं। (मं० ३) मन, संकल्प, वुद्धि, इच्छा द्वारा होनेवाले बारह प्रकार के पाप संस्कार रूप से मन में जमा होकर मनुष्य को विविध मानसिक, बौद्धिक, अन्तकरणीय हृदय रोगों से विविध भाँति से व्यथित करते हैं, इन्हें ज्ञान से दूर करता हूँ।

(कां० ६।३७) **शाप की उत्पत्ति**—शाप हजार नेत्रोंवाला शाप महाक्रोधी के महाक्रोध से उत्पन्न होता है, शाप देने से, दूसरे को कटु शब्द बोलने से शापग्रहीता की जो हानि होती है, उससे सहस्रगुनी शाप देनेवाले की होती है, सर्प एक ही को डस कर मार सकता है, वाण एक ही को एक वार में मार सकता है, परन्तु शाप किसी का भी विशेष-कर ब्राह्मण-ज्ञानियों का शाप जन्म-जन्मान्तरों में व्यक्ति-कुलों, उनके दायिभागियों को रह रहकर बुरी भाँति काटला चला जाता है, यह पूर्ण अनुभूत है। उस शाप को जो हम शाप न देनेवाले को शाप देता है, जो शाप देने वाला अकारण, अज्ञान से शाप देता है, उस क्षीण, अज्ञानी, शाप अभागे को ही मैं वापस मृत्यु के पास, कुत्ते को टुकड़ा फेंकने की भाँति ढकेलता हूँ।

(कां० ४।२९) निम्न प्रकार से पापों से छुटकारा मिलता है, तभी देव सहायक होते हैं। १. सत्यप्रतिज्ञ, सत्यपालन, २. अङ्गों में जीवनीय (रसभरने की विद्या-प्राणविद्या) ३. पापों को दूर करने में दत्तचित्त, ४. भ्रमण से जगत कल्याण करना, ५. सूक्ष्मदर्शी, ६. सबको सुखद वास देनेवाला, ७. प्रयत्नशील, ८. इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला, ९. सत्कर्मार्जित धनसम्पन्न, १०. निर्मद, ११. सप्तेन्द्रियनियन्ता, १२. अन्नदानी, १३. वचन का पक्का, १४.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्रोहरहित, १५. दोषों का निन्दक, १६. शब्द वेदविद्या प्रवीण, १७. प्रत्युत्पन्न मेधावी, स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन विषयों के अज्ञान का जिसे शोक होता है, १६. संयमी ब्रह्मवर्ची, २०. आनन्दवृत्ति परायणों की देवता सहायता, रक्षा और सन्मार्ग दर्शन करते हुए, सभी पाप-शापों से मुक्त करते हैं, यही अहोलिङ्गादि का सारांश भाव है।

पाप को दूर करना :—(कां० ४।३३) उपर्युक्त गणमन्त्रों से सभी प्रकार के पापों को दूर कर मैं शुद्ध होता हूँ। मैं यज्ञों के लिये उत्तम धन, उत्तम क्षेत्र, उन्नतिप्रदायक, उन्नतमार्ग, कल्याण, विद्वानों की संगति, ज्ञानसम्पन्नता, चहुंओर यश अत्यन्त प्रभावशालिता प्राप्तकर दुःख, क्लेश, दारिद्रय, दीनता, कृपणता, मृत्यु, कलंक, अवनति, अधोगति विनाश, सर्वनाशादि को स्थायीरूप से सदैव को गहन काले समुद्र में फैंकता हूँ।

मैंने प्राणविद्या, संजीवनी विद्या, ब्रह्मविद्या और ज्ञान कवच की महान दैवीशक्ति से सम्पन्न होकर "आत्मा" की पहिचान कर ली है, वह "वैश्वानर" तेज ही मेरा अन्तिम आश्रय है। जहाँ से सूर्योदय और अस्त होता है।

कौशिकगृह्यसूत्र-वैतानश्रौतसूत्र, अथर्वपरिशिष्ट एवं सायणाचार्य सम्मत—

अथर्ववेदीयगण

अनुष्ठान्य ऋचः– अथर्ववेद—(१८।१-४१,४२,४३). (७।६८-२), १८।२-१८-२४) (१८।३-२५,१०-६६ ६१-६७), (१८।४-१८,२६,३२,३३,४३) तथा ऋग्वेद १०।८५-४४।

अभयगणः– (१।१६-१,२१-१), (४।१६-२,२१),(५।२२), (६।३२-१,४०-१,५०-१,१३-१) (७।६-२,७।६१-१), (८।१-५,१०), (११।२-३१), (१३।१), (१६।१४-१:१५-१)।

अपराजितगणः– (१।३-१:१६-१:२०-१:२१-१,), (६।६५-१:६६-१:६७-१:६८,१-६६-१), (३।१६-१,), (४।३१-१:३२-१), (५।२१-१२)।

आसनीय ब्रह्मजपः– (१२।१-२६), (१।४-१), (२।४-५), (२।२-१), (१।४-७), (१।६-६)।

अप्रजननः– (७।१११(११८),३५(३६)।

आयुष्यगणः– (१।३०-१,१०-४), (२।१५-१:१७-१:२८-१:३३-१), (३।११-१), (४।१३-१), (५।३०-१), (७।३२-१), (८।१-१:२-१), (११।४-१), (१७।१-५)।

अपनोदनानिः– (१।२६-१), (४।३३-१)।

अंहोलिङ्गगणः–(४।२३ से ३० पर्यन्त ४।३३-१), (१।३१), (६।६६-२), (६।३५-२), (७।११२-१), (१४।२-४५), (१०।५) (११।६-१), (३।११-१), (२।११-१), (४।१३), (५।३०-१), (६।८-१), (६ १४-१) (६।१०५)।

अर्थोत्थापनगण (अलक्ष्मीर्नाशिनगणश्च):–(१८।३-८:६), (१८।२-४८:५३:११:१८), (१८।१-६१), (१८। ४-४४), (१८।३-५५), (३।२०), (५।७-१), (७।१), (१।४-१), (६।६२-१), (७।७:५४-१:५६-१:५७-१), (६।१-६१), (२।२४)।

कृत्यागण कृषि सम्बर्द्धनः– (६।१६-४), (१८।४-३७:५७-१६:५३:५४), (१८।३-७२:५२), (२।११), (४।४०:१७:१८:१६), (५।१४:३१), (८।५), (१०।१), (७।६५)।

कल्पजाऋचः– (१६।३३-३)।

महाव्याहृतयः– (१०।५-२३:२४), (२।२६-१:)१३।१-५६)।

कामसूक्तः– (१४।१-२३:६४-१-२८-१ से १६ पर्यन्त : २४), (१६।५२), (६।२७:२८:२६)।

कुण्ठलिङ्गाः– (५।४-१:३:४), (१।१२-१:२५-१), (२।८-१:६-१:१०-१), (३।७-१:११-१), (४।२८८१), (५।४-१:६-१:२२-१), (६।२०-१:२६-१:४२-१:८५-१:६१-१:१२७-१), (७।११६-१), (५।४-१०), (५।२५-७ से ६ पर्यन्त), (५।४-३-४)।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोष्ठकर्मस्वस्त्ययनः– (५।४-३:४:२५:७:८:९), (५।२७),, (६।१४१) ।

गोहरणे अभिचारः– (५।१७-१८-१९), (५।१९,४७), (६।५४), (७।७०) ।

ग्रहिणी ऋचः– (५।१३-१-२-३-४), (७।८८-१), (९।४-२६), १०।४-१), ४।६-१) (७-१) ।

चातनगणः– (२।१८-३,५), (२।२५), (१।१६-२८), (४।३६), (५।२९), (८।३), (६।३२-३४-३७), (४।२०), (१।७-८), (२।१४-१८-३७-२५) ।

तक्मनाशनगणः– (१।१२-१:२५:१), (२।८-९-१०), (३।७:११), (४।२८), (५।४:९:२२), (६।२०:२६:४२:८५:९१:१२७), (७।११६), (५।४:१०) ।

गणकर्मागणो-भैषज्यश्चः– (२।७-२५), (६।३५:१०९:१२७), (८।७) ।

ग्रामादि स्वस्त्ययनगणः– ग्राम-नगर, गृह, राष्ट्र, स्थानादिम्वस्त्ययन (६।१६-४) ।

दुस्वप्ननाशनगण :—(१०।३-६) (१६।५-१:३) (३।३) (४।१७-५) (६।४५-४६) (७।१००:१०१:१०८) (९।२-३) । पवित्रगणः—(६।१९-१:६२-१:५१-१)

पत्नीवन्तगण :—(६।३३) (७।२:६:७:१:१६) (७:६) (७।४६)

पाप्मगण :—(३।३१) ४।३३); (६।२६) । पाप दर्शने शान्तिगण (१।२६-१) (४।३३-१) (२।४-१) । पापलक्षणा स्त्री तस्याः शान्तिः—(१।२८-१)

पिप्पलादिगण :—(१।६) (१९।९:१०।११) (७।६९) । पापिष्ठी (१।१८)

वर्चसगण :—२।१६-१) (६।६९।१) ९।१-१) (३।२२-१) (६।३८-१;३९-१) (१२।१-२३) (१।१:९-१) (२।१) (९।१-११) (१४।१-३५:३६) (२।१३) (१।१९-१।१३) (१३।१) (२।१९)

व्याघ्र, चौर, वृक्: चरकः सिंहादिवन्यपशुभये स्वस्त्ययनगण :—(४।३-१) (४।१-१७;२८-१) (५।६-१) (११।२-१;६:९) (३।२६) (५।६-३) ।

(१) मातृनामा (मातृगण) :—(२।२-१) (६।११-१) (८।६-१) (१४।२०) ।

पौष्टिक ऋचः (सलिलगण) :— (१।४-१:५-१:६-१) (१।१-१) (१४।१:१५-१:१९-१) (२।२४-१) (३।५-१:१०-१:१७-१) (३।२४-१) (४।१-१:२१-१:७-१:३८-३) (५।१-३:२-१:३-१) (५।२६-१:२७-१:६-१) (५।१५-१:१९-१) (६।१५:७८-७९) (४-१:३३-१) (६।१४१-१;१४२-१:१०२-१) (७।३८-१:३९-१:१४-१:६०-१:१११-१) (८।५-१) (९।४-१) (१०।६-१) (१२।१-३७:३८-१:२१-१:१३-१) ।

अथपुष्टिकामन्त्रा (सलिलगण) द्वितीय

(१।४-१;५-१:६-१) (४।१-१:२१-१) (५।१५-१:१९-१) पुष्टिका ऋचा **(कौ० ७।१४) कौ० २४।२२ व १८।२५)** मत से ।

(१।१:४-१-५-१-६-१:१५-१:१९-१) (३३।१) (२।२४-१) (३।५-१:१०-१:१७-१:२४-१) (४।१-१:३१-१, व ७:३८-५) (५।१-३:२-१:३-१:२६-१:२७-१) (६।४:१,१५-१,३३:१,७८-१:७९:१-१०२:१;१४१,१,१४२-१) (७।१४-१,३८-५,६०-१:१११-१) (८।५-१) (९।४-१) (१०।६-१) (१२।१ व २१-३८) (१३।१-२५) (५।६-१) (९।९-१) (१३।२-१) (१६।३-१,१७।१-१ व ५) ये मन्त्रसलिलगण पुष्टिकामन्त्र कौशिकसूत्र व अथर्वपरिशिष्ट में माने हैं । इनमें प्रायः पीछे आ चुके हैं, कुछ लघुसलिलगण में दिये जा चुके हैं, जो शेष हैं, निम्न हैं ।

वस्तुतस्तुपुष्टिका ऋचा :—(१।४:५:६) (१।१) (४।१) (४।३३-१) (५।१५:१९) ये ७ ही हैं । वास्तुगण (सम्प्रोक्षण) (६।१०१) (१२-१) (२।२) (६।३:७३:९३) (५।९:१०:१७) (७।४१:६२) (१।३१) (३।१२) (५।९ १ से ५) (८।६-१) ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यक्ष्मनाशनगण :—(१।१२:७:२३:२:३३) (३।७-३१) (६।१०:२०:८५:९१:१२७) (६।८) (१२।२) (१९।३८) (२०।९६)। रक्षोहण अनुवाक् :—(१।७-१-८-१:१६-१:२६-१:२८-१) (२।१४-१७:१८-१:२५-१) (३।१:२) (४।२०-२:३६:३७) (५।२९) (६।३२:३४) (८।३)। **रौद्रगण** :—(६।१३) (४।३१:३२) (४।१-१) (५।६-१) (४।२८-१) (११।२-१) (११।६-९)। **विश्वकर्मणगण** :—(१।१)।

वन्ध्यात्वशमनगण :—(२।४:५:३:१४:१:१०:१७:७:३६-१:३६-७)।

लघुशान्तिगण :—(१।१:४:५:६) सावित्री, शन्नोदेवी आद्यन्तः (७।६६-६७:६८:६९) (११।६) (६।१०)।

वृहच्छान्तिगण :—(४।२३:२४:२५:२६:२७:२८:२९:३३) (७।५२:६६:६७:६८:६९) (६।१९:२३:२४:५१:५७-३:५९-१:६१:६२:९३:१०७)। **कापिञ्जलस्वस्त्ययनानि** :—(कौ० सू० कां० ४६ सूत्र ५३,५४)।

सरम्भाणिसूक्तानि :—(४।३१:३२)। **शर्मवर्मगण** :—(२।३६-७,३६-१)।

सम्प्रोक्षण-आचमनीय ऋचा :—(६।१०) तीन ऋचायें। **शान्तिजल** :—(१।१:४:५:६:३३) (६।२२-२३-२४-५१)। **स्वस्त्ययगण** :—(१।२७) (६।३:४:७:१३:२४-५:३७:४०:९३) (७।३१:८५:८६:९१:९२) (६।११७:११८) (७।५,१५) (१९।२०-४) (८।५-१९) (१२।१-११:१२:३१:३२) (७।८५-८६-११७-११८) (१९।६८) स्वस्तिवाचनानि। कुल गण योग ५१ है।

अथर्ववेदीयगण-कर्मविधि—अथर्ववेद के मन्त्रों को "ऋचा" कहा गया है। इन ऋचाओं का समुदाय "सूक्त" कहलाता है, एक ही कर्म विधान में उपयुक्त अनेक "सूक्तों" के समुदाय को "गण" कहा गया है। कर्त्ता के सरल, सुबोध, कर्मविधि में विविध विषयों के पृथक् २ गणों के रूप में अथर्व मन्त्रों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया गया है। इनकी विधियाँ आगे ग्रन्थ के अलग २ विषयों के प्रयोगों के साथ दी जायेंगी, तथापि संक्षिप्त परिचय देना उपयुक्त और हितकर होगा।

अथर्ववेद के मन्त्रों को जो काण्ड १ से १९ पर्यन्त ही के हैं, अर्थात बीसवें काण्ड को छोड़कर पृथक् कार्य और कर्म, क्रियाभेद से ५१ इक्यावन गणों में विभक्त किया गया है। इनका कर्त्ताक्रिया (विधि) के समय जहाँ जो कार्य किया जावे उसके लिये सूक्त या मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द के साथ क्रियमाण कर्मार्थ विनियोग करना अनिवार्य समझें। मन्त्रों के प्रारम्भ में प्रणव "ॐ" का उच्चारण का विधान है। ऋषि से अभिप्राय—मन्त्र या सूक्त के द्रष्टा ऋषि से है। मन्त्र स्वयं निर्जीव है, उसमें दैवी जीवनीय शक्ति स्रोत उसका देवता ही है, उनकी कृपा से ही क्रिया सफल होगी, छन्द मन्त्र का परिवेश है। वाणी छन्द और मन्त्रों के सन्दर्भ में तो वर्णन हो ही चुका है—छन्दों का उल्लेख गणों के अन्त में पढ़ें।

अथर्ववेद में तन्त्र प्रधान है। सभी आथर्वणकर्म "पाकयज्ञ" कहलाते हैं। पाकयज्ञ दो प्रकार के होते हैं। (१ आज्यतन्त्र, २ पाकतन्त्र) आज्यतन्त्र के हविष्य में आज्य की प्रधानता होती है, और पाकतन्त्र में हविष्य बनाने में "पुरोडाश" आदि प्रमुख होते हैं। यद्यपि यहाँ तन्त्र शब्द से उपर्युक्त दो तन्त्रों में आज्य प्रधानता और पाक प्रधानता ही अभीष्ट है; तथापि आथर्वण कौशिकसूत्र (१५।२।१८३) में बताया गया है कि:—

नदर्पिहोमे नहस्तहोमे नपूर्णहोमे तन्त्रं क्रियेत्येके। तन्त्रसूक्तं पच्छः स्नानेन यौ ते पक्षौ यदतिष्ठ ॥ (२५।६८)

तन्त्रभूत उपर्युक्त विधियों में हस्त (हाथ) से होम, स्रुवा, स्रुचि, पूर्णाहुतिहोम ही सापेक्ष्य नहीं है, अपितु व्याधिग्रस्त को अपने सामने बैठाकर, उसकी भूतशुद्धि तत्त्वशुद्धि करके कुशा, अपामार्ग की मुष्ठि से जल से छींटा दें अथवा मोरपंखों, उड़दों से ऊपर से नीचे को व्याधि को उतारें, अथवा पीली सरसों, कालीमिर्च से शक्ति सम्पात् करते हुए झाड़ें, अथवा हस्तअभिमर्शन द्वारा अभिमर्शन करें या उपस्थान द्वारा अथवा ज्ञानी आथर्वणिक योगी अपनी पवित्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाणी, अन्तरात्मा, अथवा दयादृष्टि से ऋषि, देवता और मन्त्र की शक्ति का सम्पात् करके व्याधि के कारण का निराकरण करें। अभिमन्त्रित जल से स्नान मन्त्रोच्चारण के साथ करायें, परन्तु व्याधिग्रस्त स्नान करने की स्थिति में हो तभी स्नान करायें। यह भी ध्यान रक्खें यह स्नान सूक्ष्म, प्राण शरीरों की सूक्ष्मव्याधि कारणों के लिये है, स्थूल शरीर पर शिर पर से मन्त्रों के साथ जल छोड़े, देही न मले, न वस्त्र से शरीर को पोंछे शान्ति के उपरान्त अथर्वोक्त मणि रक्षार्थ धारण कराये। इनमें से कोई एक विधि ही करे। सब एकसाथ न करे। आज्यतन्त्र, पाकतन्त्र अन्तिम अप्रतिहत अमोघ विधि है, परन्तु व्ययसाध्य, तथा निर्दिष्ट सामिग्री का प्रायः अभाव कर्त्ता की कर्मविधि अनभिज्ञता के होने से उस पर बल नहीं दिया गया है। दैवीबल प्रधान भैषज्यविधि है। व्याधि निवारक कर्म के लिये काल अर्थात् मुहूर्त्त सापेक्ष्य समझें। (मनुस्मृति ६।२९०)

अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्योदिशतोदसः। मूलकर्मणि चानाप्तैः कृत्यासुविविधासुच ॥

पाकयज्ञ से समस्त आथर्वणकर्म समझें, अन्य आज्यतन्त्र के अतिरिक्त सभी कर्मों का "पाकतन्त्र" में सन्निवेश होने से कोई सी एक क्रिया की जा सकती है। कर्म का विनियोग होना अनिवार्य समझें। "नर्दविहोमे नहस्तहोमे नपूर्णहोमे तन्त्रं क्रियेत्" (कौ० १४।२) रस से दधि-मधु-घृत समझें। निशाकर्म—"येषुनिशाकर्मषु तन्त्रं तेषु अयधर्मः। केचित्स्नातोऽहतवसनप्रभुक्ते सः कर्मणिएतेरसाप्रत्येतव्याः ससुच्चयेन।" (कण्डिका ८) तात्पर्य यह है कि. निशाकर्मतन्त्र-विधान में स्नान कर शुद्ध एक ही वस्त्र धारण कर, यज्ञोपवीत (शिखासूत्र) आदि नित्यकर्म करने के उपरान्त उपर्युक्त विधि से व्याधि-कारण निवारण करें।

गणकर्मविधि :—"अनुष्ठान्यऋचः" से आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक कामनाओं की सिद्धि के लिये मंत्रोक्त देवता का जप, उपस्थान, अनुष्ठान करें। "अभयगण" से सभी प्रकार के भय को दूर करने तथा आत्म-रक्षा अथवा (यजमानादि जो भी हो) उनकी रक्षा गण में दी हुई विधि से करें। "अपराजितगण" इस गण के सूक्त-मन्त्रों से "आग्नेयास्त्र", "सम्मोहनास्त्र", "तमसास्त्र", शत्रुस्तम्भन, उच्चाटन सम्मोहन कर्म करें, कवच धारण करायें, अस्त्र-शस्त्रों और कवचों को अभिमन्त्रित करें, वाहनों, यानों, नौकाओं को अभिमन्त्रित करें, वीरों पर शक्तिसम्पात कर बल बढ़ायें, विपक्षी दल के ऊपर क्रूर दृष्टिपात करें, तो शत्रु अपना कर्त्तव्य भूल कर भ्रम में (अन्धकार व्यामोह में पड़कर भाग खड़े होते हैं। अपने वीरों पर उनके अस्त्र-शस्त्रों का असर नहीं होता, इन्हीं से वीरों की तथा अपने नायक की जय पराजय, जीवन-मृत्यु का "आथर्वणिक विज्ञान विधि से ज्ञान करें और अपाय का उपाय करें।" **आसन्नीय जप** :—आध्यात्मिक शक्ति स्रोत की वृद्धि अभ्युदय के लिये नित्य, निरन्तर, नियमित, जप, स्वाध्याय, उपस्थान करें।

"अप्रजनन" इससे परिवार नियोजन अर्थात् वन्ध्याकरण कर्म करें। "आयुष्यगण" से किसी भी प्रकार की १०१ मृत्युओं, कच्चा मांस खानेवाली प्रेताग्नि के तथा (नैर्ऋति) दुर्गति के पाशों एवं आनुवंशिक व्याधिग्रस्त जो मरणासन्न हो, मर चुकी भी हो, प्रबलतम विविध आवृतियों के साथ गणविधि से व्याधि निराकरण करें और स्थाई नीरोगता, दीर्घायु, अमितायु, पूर्णस्वस्थता के लिये यज्ञ, उपस्थानादि करें। इसी से रोगी के रोगों को शिर से नीचे की ओर उतारने को झाड़ा दें, जैसी व्याधि हो, उसी विधि से कर्म करे। "अपनोदनानि" सभी प्रकार के पाप, शापादि में मन्त्रों से स्नान करायें।

"अंहोलिङ्गगण" अंह नाम पाप का है, कैसा भी क्यों न हो उनके सभी अपने, उसके मातृकुल, पितृकुल, स्त्री, पुत्र, पौत्रादि या अन्य कारणों से उस पर जन्मान्तरों के भी क्यों न हों सभी से मुक्त कर स्थाई पवित्रता की सार्वभौमशुद्धि करे। "लघुशान्तिगण" अंहोलिंगगण में कुछ अन्य कल्याणकारी सूक्तों को साथ में मिलाकर उनकी विहित विधिसे शान्ति करें। **बृहच्छान्तिगणः**—इस गणमें अंहोलिङ्गगण, लघुशान्तिगणों के साथ "आयुष्यगण मन्त्रों" के तथा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"पिप्पलादिगण" को मिलाकर वृहच्छान्तिगण होता है । यह सभी वेदों, धर्मग्रन्थों की विहित शान्तिविधियों में सर्वोपरि वेदसम्मत विधि है । इसे आधुनिक सर्वोच्च न्यायपालिका, विधायिका की सर्वोच्च रक्षा जहां कोई चारा शेष न रह जावे, उस अवस्था में "रिटपिटीशन" ही नहीं "पिटीशन" का अनुकूल समाधान विहित है । भले ही दैविक, भौतिक, आध्यात्मिक हो या अभिचार, शाप, कृत्या, वास्तु अद्भुद्दर्शनजनित कैसी भी संकटापन्न व्याधि हो, उसके निराकरण का प्राविधान है ।

अर्थोत्थापन (अलक्ष्मीर्नाशनगण) :—इस गण से सोये हुए भाग्य को जगाना, पठन-पाठन, अध्यापनादि कार्य से, विविध व्यवसायों, व्यापारों, वाणिज्य, कृषि, उद्योग आदि में हानि, अनायास धन सम्पत्ति नाश, कलह, आदि से धन नाश होकर, चहुंओर से हानि ही हानि का होना, आय से अधिक व्यय का होना, ऋण भार बढ़ते जाना, अभियोग, लांच्छनों का अकारण होना, चोरों, वधिकों द्वारा धनापहरण का होना, भाग्य का "प्रेतस्वरूप" हो जाना, पूर्वजों का या स्वयं का धन गाढ़कर भूल जाना, धन पर सर्परूप "प्रेत" का होना, इन सबको दूर करने में तथा वासना देहों में पड़े पितरों द्वारा धन को लुप्त कर देना उस धन तथा उन प्रेतों को वासना देहों से मुक्त कराकर आर्थिक विघ्नों की जड़ का निराकरण तथा भाग्योदय की विधि है । इसी गण से अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदि का निराकरण तथा शान्ति होती है ।

कृषिसम्बर्द्धन :—कृषि और पशुओं के रोग, उनकी वंशवृद्धि, तनवृद्धि, फलवृद्धि की बाधायें, टिड्ढी, चैंपा, रतुआ, सुराही, गेरुई, कट्टा आदि सूखे फलों का असमय में कच्चे ही का झड़ना, फल न लगना, ओला, तुषार आदि से हानि, उत्पादन हानि, पशुहानि, पशुक्षय आदि का निराकरण और कृषि, पशुओं की सम्पुष्टि तथा शान्ति-विधि है । **कल्पजा ऋच :**—जो मन्त्र ब्राह्मी वाणी न होकर ऋषियों अन्य देवों, तपोधनों, श्रुतिः स्मृतिः धर्मशास्त्रों के होते हैं वे कल्पजा ऋचायें हैं, जहाँ वैदिक मन्त्र का अभाव हो या विधिवत पारम्परिक मन्त्र न हो, वहाँ कल्पजा-ऋचायें भी उतनी उन कर्मों में मान्य होती है । महा व्याहृतियां कल्पजा ऋचायें हैं । **कामसूक्त :**—मन, इन्द्रियों, बुद्धि, इच्छा, संकल्प, प्राण, वीर्य और सांसारिक कामनाओं भोगों द्वारा मनुष्य के ब्राह्म बल तेज, ओज प्राण वीर्य के क्षय के कारणों का निराकरण और शान्तिपुष्टि की विधि है ।

कुष्ठलिङ्ग—शरीर चर्म, रक्त, रस, मज्जा, वसा, अस्ति के सभी प्रकार के रक्त दोषों, सभी प्रकार के व्रणों, स्राव, दुष्टगण्ड, अदृष्ट, उलटे फोड़ों, गज्ज आदि के मूलकारणों के निराकरण की औषधियाँ और भैषज्य कर्म विधियां है ।

गोष्ठकर्मस्वस्त्ययन—पशुशाला में सभी प्रकार के पशुओं के रोगों, वंशवृद्धि अथवा विपरीत प्रजनन दोष वन्ध्यापनादि को दूर कर उनकी वृद्धि, पुष्टि और स्वस्थता की विधियों में प्रयुक्त है ।

गोहरणे अभिचार—गौ चुराने वाले, गौ वध कर्त्ताओं, गौओं को कष्ट देने वालों के प्रति घातक ब्राह्मवैदिक प्रयोग विधि है । **गृहिणी ऋचायें**—ये स्थावर, जंगम विषों के विषैले कीटों, सर्पों, अन्य विषैले जीव जन्तुओं के विषों के निराकरण की औषधि और भैषज्य विधि है । **चातनगण**—सभी प्रकार के उन्मादों, राक्षस, यातुधान, भूत-प्रेतादि जनित व्याधियों की सबल निराकरण विधि है । यही राक्षघ्नेष्टि ।

कृत्यागण—तन्त्र-मन्त्रों द्वारा मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, सम्मोहन विद्वेषण आदि को कर्त्ता के पास वापिस करने और व्याधि गृहीत की नीरोगता स्वस्थता तथा पुष्टि की विधि है ।

तक्मनाशनगण—कृषि, पशु, वृक्षों, मनुष्यों के शरीरों में रोगकारक सभी रस, खून चूसने वाले, मांस-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पेशियों के मांस खाकर दुर्बल, रक्त, बल, ओज हीन बनाने वाले, ज्वर, यक्ष्मादि, शीर्षण्य, अन्त्रियों, कण्टगुदा, शिश्न, कर्ण नेत्रों की सूक्ष्मतर पेशियों को, विकृत करने वाले, कीटों को नष्ट कर बल, पुष्टि, ओज स्वाथ्यवर्द्धक कीटाणुओं की सजीव करने की विवि है।

वास्तुगण—पाताल सम्बन्धी भूमि के दोषों, खनिजों, पाताललोकों की दुष्टप्रकृतिक आत्माओं के द्वारा होने वाले भूमि सम्बन्धी विघ्नों के कारणों की शान्ति विधि।

यक्ष्मनाशनगण—दीर्घकालीन, असाध्य, रक्तशोषक, रक्तक्षीणकर्त्ता बहने वाले, तपाने वाले, सुखाने वाले, बल, ओज, शक्ति, वीर्य, धन, आदि के शोषण करने वाले शरीरों घरों, कुटुम्बों के रोगों के कारणों के निराकरण की विधियाँ, औषधियाँ और भैषज्य हैं।

रक्षोहण अनुवाक—प्राणी, घर, कुल, ग्राम, नगर, राष्ट्रों में व्याप्त विविध शाप, ताप, उत्पात, यातुधान, राक्षसों आदि, जनद्रोहियों, अशान्ति कर्त्ताओं, मायावियों, धूर्त्तों से रक्षा की ब्रह्म वल पूर्ण मान्त्रिकी विधि है। इसीमें वज्र, उद्वज्र, त्रिसन्धिवज्र, तमसास्त्र, सम्मोहनास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेस्त्र, अमोघ ब्रह्मास्त्रों की प्रयोग विधियाँ हैं।

रौद्रगण--आङ्गिरस, मारण, उच्चाटन, सम्मोहन विधियाँ और उनसे उत्पन्न अचिन्त्य, अकल्प्य विविध बहुभाँति के विघ्नों और उनके कारणों के निराकरण की विधि है।

वन्ध्यात्वशमनगण--जिसको रजधर्म होता ही न हो, आगे-पीछे होता हो तरुणावस्था ही में सहसा रजोधर्म बन्द होगया हो, एक सन्तति होकर प्रजनन रुक गया है, रजःस्राव, रक्तस्राव, गर्भस्राव, गर्भक्षय सन्तति का होते ही मर जाना, कन्या ही कन्याओं का होना, या संतति का विल्कुल ही न होना, आदि आठ प्रकार की सभी वन्ध्याओं के दोषों के मूलकारणों के निराकण और स्वस्थ, नीरोग, सुन्दर वर्चस्वी, आयुष्मान पुत्र प्राप्ति की पुत्रेष्टि विधि है।

कापिञ्जलस्वस्त्ययानि--काक, उलूक, गृद्ध, वाज, आदि वन्य जीवों के ग्राम, घरों, नगरों के प्रवेश से होने वाले उत्पातों की शान्ति विधि है। **सरम्भाणि सूक्तानि**--समस्त कार्यों के प्रारम्भ में प्रयोजनीय मन्त्र है।

शर्म-वर्मगण--कल्याण और रक्षा करने वाली विधि है।

सम्प्रोक्षण-आचमनीय--प्रत्येक कार्य प्रारम्भ और समाप्ति में आचमन और शुद्धि के मन्त्र हैं।

शान्तिजल--अनेकों दिव्यस्रोतों, सागर, तीर्थों के जलों को अभिमन्त्रण की विधि है।

स्वस्त्ययनगण--कार्य प्रारम्भ और पूर्णता में शान्ति पाठ के मन्त्र हैं। यह गणों के विनियोगों का सूक्ष्म दिग्दर्शन है, विशेष उनके प्रयोगों के साथ बिहित है पढ़ें, समझें, करें।

ग्राम-नगर-गृह-राष्ट्रादिस्वस्त्ययन--पहाड़, धर्ती का धसकना, फटना, भू-जल-थल के भूचाल, नदी, सरोवर, समुद्रों के ग्राम प्रवेश, ओले, अग्नि, विद्युत, सर्पों, चूहों आदि के उत्पातों, महामारी, ध्वंस, कलह, वन्यपशु, जीव-जन्तुओं के प्रवेश से उत्पन्न संकटों के मूलकारणों की निराकरण और स्थिरता, स्वस्थता की पुष्टिकारक विधियाँ हैं। इस राष्ट्र के स्थायित्व, शासन की स्थैर्यता, राष्ट्र को डांवांडोल करने वाले कारणों की निराकरण विधि है।

दुस्वप्ननाशनगण—खोटे, हानिकारक, भयावह, मृत्यु या दुर्गति पाशों के सूचक, स्वप्नों की शान्ति और निराकरण विधि है। **पवित्रगण**—पवित्रता, ओज ब्रह्म बल प्राप्ति की विधि है।

पत्नीवन्तगण--स्त्री को पति की प्राप्ति, दाम्पत्य, चिरप्रेम, वियोग, विछोह, विद्रोह, त्यागादि दुष्ट कारणों का निराकरण तथा पति को पत्नि पर स्त्री को योग्य अनुकूल, सदाचारी पति प्राप्ति चिरदाम्पत्यप्रेम परस्पर समभाव प्राप्ति की विधि है। **प्राप्मगण**—पापप्रद व्यवहारों का देखना, निन्दा करना, झूंठ बोलना, कठोर हृदयविदाही भाषण-पाप का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या निन्दा का सुनना, पाप कर्मों की सलाह या सहयोग देने आदि से उत्पन्न पाप और उसके दुष्ट फल की शान्ति और पाप को दूर त्याग ने की विधि है।

पाप लक्षणा स्त्री शान्ति--विष कन्या, पैर की उगलियाँ या नसों का चर्चर करना आदि-आदि धर्म-शास्त्रीय वैद्यक ग्रन्थों में वर्णित दुर्भाग्यकारक स्त्री लक्षणों के कारणों का निराकरण और चिरस्थाई शान्ति स्वस्त्ययन विधि है। **पिप्पलादिगण**--भौमचक्र, सौरमण्डलीय, ग्रह, नक्षत्र, योगकरण, मुहूर्त्तादि, उल्कापात, धूम्रकेतु, पुच्छल-तारादि जनित तथा सभी प्रकार के अद्भुद्दर्शन जनित दोषों उत्पातों के निराकरण की अनुभूत समर्थ विधि है।

वर्चसगण—आध्यात्मिक, आधिदैविक विघ्नों की शान्ति और ब्रह्मविद्या, प्राणविद्या, असुनीति, ब्रह्मकवच आदि की ब्रह्मबल वर्द्धक विधियाँ है।

व्याघ्र, चरक, चौर सिंहादि पशु भये स्वस्त्ययनम्--जीव घातक, मांसाहारी, रक्तपानकर्त्ता, आततायी, वधिक, दस्युओं आदि का स्तम्भनकर उनके प्राकृतिक स्वभावों का दैवीबल से बदलने की विधि है।

मातृनामा (मातृगण) पौष्टिक ऋचः (सलिलगण) सभी जल दूषणों जल्ती, समुद्री उत्पातों की तथा सभी प्रकार की शान्तियों, स्वास्तिवचानादि की विधि है। गणों में प्रथम अङ्क, अथर्ववेद के काण्ड, द्वितीय खड़ी रेखा से आगे सूक्त तथा पड़ी रेखा से आगे १–का अङ्क उस सूक्त का प्रथम आरम्भ का मन्त्र समझें।

इन सभी सूक्ष्म और प्राण तथा वासना एवं अतिवाहक शरीरोंसे सम्बन्धित लिङ्ग उपताप शमनमें तो एकमात्र स्वतः प्रामाण्य, अपौरुषेय ब्रह्मवेद, अथर्ववेद की(अथर्वाङ्गिरसविधि)ही है, जो कौशिक सूत्र, वैतानसूत्र, शान्तिकल्प, नक्षत्र कल्प, आङ्गिरसकल्प, वैतानकल्प, संहिताकल्प, गोपथब्राह्मण और अथर्व परिशिष्ट में निर्दिष्ट है। अथर्ववेद, ब्रह्मवेद है। इसके सभी सूक्त उदात्त अध्यात्म सम्पन्न हैं। अथर्ववेद का समस्त वर्ण्य विषय द्वन्द्वात्मक हैं, अथर्ववेदीय अभिचार कर्म आदि किसी के लिये इष्टकारक हैं, तो किसी अन्य के लिये अनिष्टकारक हैं। वस्तुतः अथर्ववेद परम पुनीत ईश्वरीय सामर्थ्यपूर्ण वाणी है; जो लोक कल्याण के लिये अवतरित हुई है। इसके ३० वर्षों के शोधपूर्ण अनुभूत, विविध क्षेत्रों में विभिन्न प्रकारों से सफल प्रयोग, सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त, पूर्व प्रकाशन से अवशिष्ट इस ग्रन्थ में दिये जा रहे हैं।

आधुनिक युग में वेदों के प्रति अनास्था, अविश्वासात्मक भावना के कारण तथा एक अति नवीन विषय होने के कारण, पाठकों, गुरुजनों और अध्येताओं को; पठन-पाठन तथा क्रियात्मक रूप से कुछ कठिनाइयां हो सकती हैं; परन्तु युवामेधावीजन, धैर्य, विवेक से मन्त्रद्रष्टा देवर्षि अथर्वाजी की अमोघ, अहैतुकी, जनकल्याणी, दयापरक आन्तरिक सामर्थ्य से निश्चय सफल होंगे, प्राणिमात्र के कल्याण से यश, धर्म, धन और परमधन प्राप्त करते हुए; वेद, वैदिक संस्कृति और राष्ट्र को गौरवान्वित बनाने में समर्थ होंगे। राष्ट्र और राष्ट्र के कर्णधार; लेखक के लाभ,यश को ध्यान में न रखकर; जन-कल्याणार्थ इस नवीन प्रणाली के प्रचार, प्रसार में अभिरुचि और सहृदयता से आगे आयें, तो वेदों में निहित; पारम्परिक राष्ट्रीय अमूल्य, अक्षुण्ण निधि, के अन्वेषण में वैदिक-जगत, अपना वास्तविक ज्ञान, विज्ञानात्मक चमत्कारी राष्ट्रीय कर्त्तव्य पालन में सर्वाग्रणी सिद्ध होंगे। शिवंशुभं भूयात्

लोहई, मथुरा (उ० प्र०) **केशवदेव शास्त्री**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथर्ववेदीय दैवीचिकित्सा

अथर्ववेद ने, शरीर का, शरीर की कर्मज पापज भवव्याधियों की चिकित्सा का प्रतिपादन इस प्रकार किया है।

अथर्ववेदोक्त-शरीर—महाप्राण प्राण सूक्ष्म स्थूल अतिवाहक और वासनादेह। पूर्व भूमिका, सम्पादकीय में वर्णन किये जा चुके हैं। इनमें से महाप्राण, महद्ब्रह्मस्वरूप अणुमात्र होने से निरामय होना स्वाभाविक ही है।

२—दूसरे प्राणशरीर जो यवमात्र का है उसका सम्बन्ध अन्तःकरण संकल्प और बुद्धि से होता है, इनमें दुर्बलता, क्षीणता, संशय, अव्यवस्थिता जब हो जाती है; तब इनके दुष्प्रभाव के कारण प्राणशरीर (आत्मा) दूषित हो जाता है। अ० कां० २ सू० ११ यह बता रहा है। इस प्राण (आत्म) शरीर पर स्थूलकाय चिकित्सा सर्वथा असम्भव है।

३—तीसरा शरीर सूक्ष्म, अंगुष्ठमात्र होता है, इसका सम्बन्ध मन और बुद्धि से है यही, मृत्यु और मोक्ष का कारण होता है। मन की शुद्धि स्वस्थता से मोक्ष और अपवित्रता व्याधिग्रस्तता से, मृत्युरूप अंधकारमें ढकेला जाता है। इन्द्रियाँ इसके घोड़े मन सारथी है। शरीररथ बुद्धि इसका चाबुक है। मन घोड़ों को जिधर घुमाता है उधर ही गर्त में ले जाती है। ।। बलवानमिन्द्रियग्राम, विद्वान्सपिकर्षति ।। विकृत बलिष्ठ इन्द्रियग्राम ज्ञानी को अधोमार्ग की ओर घसीट ले जाता है। इसका दुष्परिणाम व्याधि के रूप में सामने आता है।

४—स्थूल शरीर—समय कुसमय में योग्य, अयोग खाने-पीने-सोने अन्य प्रकृति विपरीत, आचरणादि से, वात-पित्त-कफ के विकृत हो जाने से रोगग्रस्त होता है। व्रण, चोट, आकस्मिक यान, नौका, वाहनादि की घटनायें, संक्रामक रोग, पञ्चतत्त्वों के दूषित हो जाने से रोगग्रस्त होता है। इस स्थूलशरीर पर अन्य ४ शरीरों के भी भले-बुरे प्रभावों का असर हो जाने से, उनकी व्याधियाँ भी उनमें होते हुए भी इसी में आभासित और प्रत्यक्ष में दृष्टिगोचर होती है।

५—अतिवाहक शरीर है—जब अन्तकाल आता है तब यमदूतों द्वारा स्थूल पार्थिवशरीर में से जीवात्मा (प्राण, मन, बुद्धि, बल, तेज के साथ) घसीटकर ले जाया जाता है। उसकी विधिवत् वेदोक्त अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न न होने पर वर्षपर्यन्त प्रेताग्नि (क्रव्यादाग्नि) उस कुल में, स्थान में, विविधरूप से क्षुब्ध होकर, व्याधियों, दुर्गतियों और असामयिक बालों, कुमारों, युवाओं की अकाल मृत्यु करना प्रारम्भ कर देती है और एक का रोदन जब तक समाप्त नहीं होता, तब तक दूसरे, तीसरे, चौथे का नम्बर आ जाता है, विधवायें होती हैं, गर्भक्षीण होते हैं, होकर बच्चे मृत्यु के कवल बना लेती हैं। यह वर्षान्त अपना प्रचण्डरूप, धारणकर, अनेक अचिन्त्य, अकल्पनीय दुर्घटनायें करती रहती हैं।

६—वासना देह होती है। स्थूल पार्थिवशरीर से प्राणविसर्जन होते समय घोर अन्धकार के आने के समय मरणासन्न जीवात्मा का मन और सङ्कल्प अज्ञान, मोहवश, जिस नश्वर सांसारिक पदार्थ की आकांक्षा करता है और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसकी प्राप्ति न हो पाने से वह जीवात्मा उसी वस्तु की प्राप्ति की, कल्पना में, अटका रहता है और घोर संकट, का सामना करता है, उस घोर नारकीय क्लेश से, खिन्न, उद्विग्न, सूक्ष्म शरीरी जीवात्मा उसकी प्राप्तिके लिये, अपने निकटतम बान्धवों और उनके न होने या उनके द्वारा उसकी तृप्ति न कर पाने पर, अन्यों को भी प्रभावित करता रहता है। उनकी मन, हृदय, बुद्धि और मस्तिष्क पर कुप्रभावी होकर, अन्यों को विविध भाँति से व्यथित करता रहता है, जो उनका कुप्रभावितों का अपना दुष्कर्म तो नहीं होता, इस आनुसङ्गिक व्याधि से, वे व्याधित होते रहते हैं। कभी वे नीरोग तो कभी रुग्ण प्रतीत होते हैं, वे स्वयं भी ऐसा अनुभव करते हैं। चिकित्सकों को भी वे आश्चर्य और सङ्कटों में डाल देते हैं। वे जब उससे प्रभावित, प्राणी की व्याधि का निदान, करने लगते हैं, तो वे सर्वथा, नीरोग, प्रतीत होते हैं। ऐक्सरे आदि परीक्षणों में भी स्वस्थ जैसे, उससे हटते ही पुनः मूर्च्छित, व्याधिग्रस्त पाये जाते हैं। संक्षेप में इस प्रकार समझना चाहिये। इन उपर्युक्त छै प्रकार के शरीरों की रोगों और व्याधियों का अथर्ववेद की चरणव्यूह (चारणवैद्या) अर्थात् आयुर्वैदिक विज्ञानशास्त्र तथा शौनकीय वेदोक्त मान्त्रिकी विधियाँ ही वैदिककाल में थी। आयुर्वेदिक विज्ञान स्वयं में परिपूर्ण, समर्थ, सक्षमवैदिक ही है। परन्तु यह केवल पार्थिवशरीर के उपचार का ही विज्ञान है। अन्य प्राण, सूक्ष्म, वासना और अतिवाहक शरीरों की व्याधियों के शमनार्थ स्वतः प्रामाण्य, समर्थ, सक्षम, परिपूर्ण ब्रह्मवेद की आथर्वणी और आङ्गिरषी विधियाँ ही थीं, जिनका प्रतिपादन शौनकीय शाखा ने किया है। इन विधियों का संक्षिप्त, सप्रमाण विश्लेषण यहाँ कर देना उचित होगा। वैसे विधिवत् ज्ञान, विज्ञान और उपचार आगे ग्रन्थ में पृथक्-२ प्रसंगों में पढ़ने को मिलेगा। आधुनिक काल में यह नया प्रतीत होगा, परन्तु प्रामान्य वैदिक सनातन ही है।

अथर्वणिक उपचारविधि :– (अथर्व कां० ११ सू० ४ मंत्र १६)

आथर्वणीराङ्गिसीर्दैवीर्मनुष्य जा उत। औषधय प्रजायन्ते यदात्वं प्राण जिन्वसिः ऽथोयाः काश्च वीरुधः॥ इनमें सभी शरीरों के रोग और समस्त आधि-व्याधि, ईतिः, भीतिः आदि के शमनार्थ आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी, भेषजें और मनुष्यकृत औषधियाँ लाभप्रद होती है।

१. मनुष्यजा औषधय : –मनुष्यों द्वारा बनाये रस, कषायचूर्ण, अवलेह, भस्मकल्प, गुटिका (वटी) अंजन, इञ्जैक्शन, चीड़फाड़ के यन्त्र, पुटिका बन्धन की लूपड़ी फाये, मरहम, तेल आदि। २ आयुर्वैदिक, ऐलोपैथिक यूनानी, चीनी, होम्योपैथिक आदि की उपचार सामिग्री और क्रियायें हैं। ये जब तक पार्थिवशरीर और उसमें पार्थिवप्राण और इन्द्रियाँ हैं, तभी तक सम्भव होती हैं। इनकी अपेक्षा दैवी उपचार विधि कहीं तक अधिक उपयुक्त और समर्थ होती है।

दैवीचिकित्सा—इन औषधियों के विषय में आयुर्वैदिक जगत को यह भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि औषधि और वनस्पतियों में भी ब्रह्म (जीवत्व) है। जो औषधि पूजा और प्रार्थना करके, लाई जाती हैं और जिन्हें अभिमन्त्रित कर, रुग्ण को दिया जाता है, वे निश्चय ही उस औषधि की, अपेक्षाकृत जो शस्त्रादि से काटकर या बिना प्रार्थना के लाई जाती हैं, और बिना अभिमन्त्रित कर, रुग्ण को दी जाती है। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं दोनों का परीक्षण स्वयं करलें। इस विषय में (अ० वे० कां ८ सू० ७ मं० १५) प्रमाणित करता है। **"स्तनथः सिंहस्य इव आभूताभ्यः सं विजन्ते"** लोग जिस प्रकार, गरजने वाले, शेर से घबराते हैं उसी प्रकार प्रार्थना पूर्वक, लाई हुई इन औषधियों से रोग घबरा जाता है। **"आनेः इव विजन्ते आभृताभ्यः संविजन्ते"** लोग जिस प्रकार अग्नि से घबराते हैं, उसी प्रकार प्रार्थना कर लाई हुई, औषधियों से रोग घबरा जाता है। मं०२७ **"पुष्पवतीः अस्मै अरिष्ट-तातये संमातरः इव दुह्रां"** फूलों से युक्त औषधी इसके सुख शान्ति और वृद्धि के लिये उत्तम माता के समान रस प्रदान करें। अ० कां २ सू २५ मं० २ **"शकुनेः इव वुर्णाम्नां शिरः वृश्चामि"** जिस प्रकार वधिक, हिंसक छोटी-छोटी चिड़ियों के सिर काट डालते हैं उसी प्रकार मैं, प्रार्थनाकर लाई हुई, इस बनस्पति से घातक रोगों के सिरकाट डालता हूँ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(कां ८ सू० ७ मं २०) **"अश्वत्थः दर्भः, सोमः, दिवः पुत्रौ"** पीपल, दर्भ और सोमलता, द्युलोक में पुत्र के समान रक्षा करते हैं। (अ० कां ८।७।१४) **"वीरधां मणिः वैय्याघ्रः,"** प्रार्थना के साथ लाई औषधियों से तय्यार किया गया, यह अभिमन्त्रितमणिः वाघ के समान है। अ० कां ८ सू ७ मं १ से मंत्र ६ पर्यन्त; कई औषधियां पोषण करने वाली हैं, कई वीर्यवर्द्धक है, कई मांसवर्द्धक श्याम व काली हैं। विशेष विस्तार वाली, गुच्छों वाली, कोपल वाली, बहुत फैलने वाली, प्रकाश वाली, परुओं वाली, शाखा रहित, दैवीशक्ति सम्पन्न, प्रभाव वाली, प्राणी को जीवन प्रदान कर, आयु बढ़ाने वाली, हानि न करने वाली, जीवन की रुकावट दूर करने वाली, उठाने वाली, फूलों वाली—मीठी, कटु, कषाय, तिक्त, पृथ्वी पर उगने वाली, आकाशस्थ सूर्यादिक से सुरक्षित, दिव्य; दैवी वर्षाती जलों से बढ़ने वाली जीवन प्राप्त करने वाली, द्युलोक की गोद में सम्वर्द्धित, सभी प्रकार की औषधियों, वनस्पतियों जलों को **सर्वाः अच्छा आवदामि** विशेष प्रार्थना के साथ पुकारता हूँ और उपस्थान कर अभिमन्त्रित करता हूँ; कि **(इमं पुरुषं देव-इषितात् यक्ष्मात्)** इस रुग्ण दुःखी पुरुष को, देव से प्रेरित राजयक्ष्मादि, पाप, शाप जनित व्याधियों, रोगों की भेषज करने के लिये, इसकी नीरोगता, चिरायुष्य, बल वर्द्धन के लिए; प्रार्थना करता हूँ, इसे पाप के दुःखरूपी भोग से, विषदूषण से, कफ, वात से, घातक प्रयोगों से, अन्धकाररूपी मृत्युओं से रक्षा करें। (मं ७-८-१०)

मं० १४—औषधियों से बनी ये विविध प्रकार की मणियां, विभिन्न सामर्थ्यों; के साथ विनाश से रक्षा करें, रोग कृमियों को नष्ट करें। ये मानवोपयोगी; सभी गौ, अश्व आदि पशुओं की भी रक्षा करें। सभी के हृदयों, मन, मस्तिष्क और बुद्धियों को शान्त-स्थिर बनायें।

मं० १६—सभी औषधियाँ अनुकूल रहकर; पाप, शाप, अभिचार, कृत्यादिजन्य; जघन्य निन्द्य, गर्हित कर्मों के फलस्वरूप भोगों, पापों, रोगों, दुर्दशाओं से रक्षा करें। मनुष्य के रोग, दुःख और मृत्युओं का कारण पाप ही होता है। यही पाप सर्वनाश का मूल है यदि काया, वाचा, मन, अन्तःकरण बुद्धि, संकल्प, दृष्टि और श्रवणादि से पाप न करें; पापकर्मों से बचें, तो इनके विनाश से बच सकते हैं।

इन वेदोक्त औषधियों का चित्र आगे के प्रकरण में विचार और प्रयोगार्थ दिया गया है।

ये दिव्य औषधियाँ हैं, उपर्युक्त प्रकार लाने और प्रयोग करने पर ये ही (अ० ४।१६।२) **"त्विषीमती सेना इवएषि"** हे ओषधे! तू तेजस्वी सेना के समान रोगरूपी शत्रु पर आक्रमण कर। (अ० मं० ४।१२।७) **"ऋभुः रथस्य अंगानि इव परुषाः परुः संदधत्"** हे ओषधे! जैसे बढ़ई रथ के टूटे हिस्सों को जोड़ता है; वैसे ही इस रोगी के; टूटे अङ्गों को, पूर्ववत् दृढ़ बना। (अ० कां० २।७) हे देवों द्वारा उत्पन्न, शाप निवारक ओषधे! तू मुझ से शापों को धो डाल। (अ० ८।७-१३) हे सहस्रपर्णी ओषधे! मुझे पापरूपी मृत्यु से बचा (कां० २।१५।१) पृश्निपर्णी प्रचण्ड रोगनाशक है, (कां० ४।१७।३) जो दहाड़कर, कठोर, दुष्ट वचन बोलता है, मूर्खता बढ़ाने वाले पापों को धारण करता है, उससे हम इस औषधि से निष्पाप करते हैं।

(कां० ४।१७।६) भूख, प्यास की पीड़ा से उत्पन्न रोग, इन्द्रियों, वाणी आदि के दोष, निस्सन्तति होना; नपुंसकता, दमा, विष, आदि सभी पापजनित व्याधियों, को अपामार्ग (औंगा, लटजीरा) से; दूर करते हैं। यही दुष्कृत्यों अभिचार, घात, द्रोह, ईर्ष्या, क्रोध, कामजनित; पापरूप रोग का नाश करे। (कां० ६ सू० १०५-१) पिप्पली, उन्मादादि, बवासीर, भगन्दर, यक्ष्मा, मृत्यु को दूर करती है। (कां० ४ सू० १६) रोहिणी टूटी हड्डी को जोड़ती है। (कां० २।४-२) जँगिडः (अर्जुन) जम्भाई, डकार, हुचकी, शरीर शोषक, विषैले रोग आदि २ से रक्षा करती है। इन दिव्य औषधियों का उल्लेख, संक्षेप से किया गया है, कुछ दिव्य औषधियों का चित्र भी आगे है। ये अथर्ववेद की दोनों ही शाखाओं अर्थात् आयुर्वेदिक (चारणवैद्या) तथा शौनकीय शाखाओं में ऋग्वेद में भी प्रभावशाली वर्णित हैं, शौनकीय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाखा की विधियाँ ही यहां इस ग्रन्थ में लिखी जावेंगी। आयुर्वेदिक मनीषिगण अपनी शाखाविधि से बिचार और उपचार करें। यदि इन अनुभूत विधियों को वे स्वयं अपनी क्रिया में संयुक्त करना चाहें तो इनके साथ विचार करें।

जल से भेषज

दैवी चिकित्सा का औषधियों के, अनिरिक्त दूसरी विधि, जल को वेदों में माना गया है। कौशिकसूत्र—

तन्त्रभूतां महाशान्ति प्रवक्ष्यामो यथाविधिः। अन्यासांसर्वशान्तीनामभृतां विश्वभेषजीम् ॥
नदीभ्योव ह्रदेभ्योवा जलं पुण्यं समाहरेत्। सं सं स्रवन्तु तद्विनभिमन्त्रयतेजलः ॥

"शं त आपो हैमवतीः" ऋचा के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है कि तन्त्रभूत महाशान्ति कर्म के लिये **"शं त आपः"** इस सूक्त से नदी, नद या सरोवर से जल लाकर अभिमन्त्रित करें। अथर्व परिशिष्ट (५।२) **"हेमरत्नौषधिविल्वपुष्पगन्धाधिवासितान्। आच्छादितानसितैर्वस्त्रैरभिमन्त्र्यपुरोहितः। साविच्युभयतः कुर्याच्छन्नोदेवीतथैव च।"** उपर्युक्त नदी आदि से आनीत जलों के घटों में स्वर्ण, रत्न, औषधि, विल्व, पुष्प, गन्धादि शान्ति औषधियां डालें, रङ्गीन मांगलिक वस्त्र से उसे ढककर पुरोहित अभिमन्त्रित करे, उस जल से कुशा अपामार्ग की मुष्ठि से, प्रारम्भ में गायत्री और शन्नो देवी मन्त्रों का उच्चारण कर कार्य करें। इन्हीं मन्त्रों को कर्म की समाप्ति में भी उच्चारण करें। इससे जल ही प्रधान व्याधिनिवारण भेषज है। ऋग्वेद १।२३।२० **"आपश्चविश्वभेषजी"** जल ही विश्व की सर्वश्रेष्ठ भेषज है। (ऋग्वेद १०।६।६) **"अप्सुमे सोमोऽब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा"** पावन स्रोत, नद, नदी, आकाश, जल सभी विश्व भेषज है।

जल में औषधिः—(अ० वे० कां० ४ सू ४) (१) "अप्सुअमृतम्" (२) (कां ४।४।३) शिवतमः रसः (३) कां ५।२ आपोमयोभुवः, (४) अप्सुभेषजंम्, (५) अप्सु विश्वानिभेषजानि (६) आपः पृणीतभेषजम् (कां ५।४)।

जल में समता, विषमता है। "शं" से समता, "यो" से विषमता निर्दिष्ट की है। **जल**—विनाश, वल, वीर्य, रमणीयता, पुष्टि, सुस्थिति, स्वीकार्य करने योग्य कहा है। जलों के प्रकार अथर्व मन्त्रों में निम्न प्रकार वर्णित हैं। १. (दिव्यः) दैवी २. (आपः) आकाशी ३. (वार्षिकी आपः), वार्षिकी जल, ४. (सिन्धुः) समुद्री जल, ५. (नद्यः) नद, नदी का जल, ६. (अनूप्याः आपः) मरुभूमि के जल, ७. (धन्वन्याः आपः) रेतीली भूमि के जल, ८. (स्नोवसि) वालुकामय स्रोतों के जल, ९. (खनित्रिमाः आपः) कुए, वावली, नलों के जल। ये १० प्रकारके जल वर्णित हैं; जो भेषज रूप होते है। जल में वीर्य है—(१) "आपो जन यथा चनः, (२) "अपामुतप्रशस्तिभिरश्वभवथ वाजिनो गावोभवथवाजिनीः, (३) "अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो" आदि मन्त्र जल में प्रवलतम प्रजनन शक्ति; मेघों में विद्युत वेदों के अनुसार आज का भौतिक वैज्ञानिक युग उसे उपयोग में प्रत्यक्षरूप से ला रहा है।

विनाशकारी जलः—अतिवृष्टि, समुद्री तूफान, ओलों के गिरने मेघों के संघर्षण से उत्पन्न विद्युत विनाश करती हैं–प्रत्यक्ष ही है। यह "अपांगण, अम्बादिगुण में वरुणास्त्र तथा शान्तिपाठादि में आगे पढ़ें।" **(तेज)** भी दैवी चिकित्सा का अङ्ग है। यह परात्पर परब्रह्म, तेजोमय ही है उसी का अंश सूर्य दिन में और अग्नि रात्रि में रक्षा करते हैं। (आप स्तम्भ, ध० १।३१) **"दिवादित्यः सत्त्वानिगोपायति नक्त"** **"अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशम, अष्टाकपालानि अमावास्यायां निशायां निर्वपेत्"** ये दोनों ही बातें पृथक्-पृथक् स्पष्ट कही गई हैं। यह दोनों ही तेजोमय है। सूर्य की किरणें जीवनप्रद, नीरोगताप्रद, दीर्घायुवर्द्धक कही है। (स० कां १७ सू १ मं० ३०) **"अग्निर्मागोप्ता परिपातुविश्वतः उद्यन्सूर्योनुदतां मृत्युपाशान्"** गोप्ता अग्नि, रक्षक अग्नि, जठराग्निरूप में, तथा रात्रि में प्रकाश रूप से; शीतत्राण रूप से, मुख में वाणी रूप से, रक्षा करे। उदय होने वाला सूर्य अपनी आठों किरणों सहित मृत्युपाशों को दूरकर, जीवन, वल, तेज प्रदान करे। **स्वर्ण से चिकित्सा**—तेज में स्वर्ण का भी स्थान निहित है, इसके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपचार से भी रोग निवारण और बल वीर्य तेज की पुष्टि होती है। यह अथर्ववेद में वर्णित हैं, अ० कां १ सू ३५ कां १९।२६ आदि २ में विशद वर्णन किया है। सूर्य, सूर्य किरणों, स्वर्ण और अग्नि के विश्लेषण विधिवत् आगे दिये गये हैं। स्वर्णतायी जल का प्रयोग, सर्वसाधारण को संजीवनप्रद है। स्वर्ण धारण से कण्ठ माला दूर होती है, हृदय दुर्बलता में तत्क्षण लाभ होता है।

मृत्तिका भी दैवी चिकित्सा का अङ्ग है, जिसे प्रायः प्रयोग में विविध रोगों के शमन में लेपादि के रूप में लिया जाता है। (अ० वे० कां १२ सू० १ मं० ६२) **"उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूता"** पार्थिव रूप से उत्पन्न हमारे रोग राजयक्ष्मादि सभी व्याधियां तेरे मिट्टी के द्वारा हम शमन करते हैं। इन मिट्टियों में सर्वोपरि **दीमक** की मिट्टी, **चुम्बक पाषाण, स्फटिकमणि, लालमूंगा, शूकर के उपयोग की मिट्टी, जुतासुक्षेत्र की मिट्टी, यज्ञ की भस्में, गोपी चन्दन** (मिट्टी) **पोतामिट्टी, पीलीमिट्टी, गेरुमिट्टी, अश्वत्थ, विल्व,** मोरछली, अशोक, रुद्राक्ष, देवदारु, चीड़, कृष्ण व श्वेत तुलसी, अपामार्ग, के नीचे की मिट्टियाँ तथा कुम्भकार के चक्र की मिट्टी बड़ी ही प्रभावकारी होती हैं। इन सभी का प्रायः जल के साथ प्रयोग होता है, कुम्बक आदि पाषाण रूप मिट्टी के स्वरूप जहां व्याधि का स्थान हो उस स्थान पर स्पर्श कराने से रोग निवारण करते हैं। नग तो ग्रह नक्षत्रों के दोषों; अनिष्टकारक पाप रूप रोगों, क्लेशों को शान्त करते हैं।

दैवी चिकित्सा का ही अङ्ग वायु है। (अ० वे० ५।९।७) **"सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणः"** सूर्य मेरा नेत्र और वायु प्राण है। अथ, कां ११ सू ४ मं १५ में कहा है गया कि प्राण को ही "मातरिश्वा" अर्थात् वात, वायु, मारुत् कहते हैं और वायु का नाम ही प्राण है। (ऐ० उ० १।२।४) **"वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्"** वायु ही प्राण होकर नासिका में प्रविष्ट हुआ। वायु की पवित्रता, स्वच्छता जीवनप्रद है, वायु दूषण निराकरण सूर्य किरणें, वृक्ष. पुष्प, सर्प और यज्ञ करते हैं। यह पवित्र वायु ही; नीरोगता, संजीवन, दीर्घायुष्य का मूल है। **"प्राणो विश्वस्य भैषजी"** प्राण ही विश्व का भेषज है। प्राण से यह प्राणायाम अर्थात् **प्राणविद्या का अभिप्रायः है।** प्राणविद्या का विश्लेषण आगे पढ़ें। सभी उपर्युक्त यह दैवी चिकित्सा कहलाती है। यहां दिग्दर्शन मात्र ही है।

३. आङ्गिरसी भेषजः—प्राणियों के पार्थिव शरीर के अंगों, अवयवों और इन्द्रियों में, एक विचित्र दैवी रस रहता है। उसी से उसका जीवन सञ्चार होता है। उसके द्वारा जो चिकित्सा की जाती है; उसे आङ्गिरसी चिकित्सा कहते हैं। इसके लिये किसी भी ओषधि या वनस्पति आदि की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं पड़ती। मानसिक चित्त, एकाग्रता के साथ रुग्ण अवयव को; सम्बोधित करते हुए: हस्त. मन, वाणी, आन्तरिक सङ्कल्प, दृष्टिपात द्वारा शक्ति सम्पात किया जाता है। इसमें योगबलः मन्त्रबल. तपोबल, देव बल ही सापेक्ष्य होता है। यह प्रथम पक्ष है। इसी आङ्गिरसी विधि का अन्य सबल पक्ष निम्न प्रकार वर्णित है। (श० प० ब्रा १०।५।२।२०) **अथर्वन शब्द का तात्पर्य** वेद के माङ्गलिक कार्यों के लिये माङ्गलिक विधानों (भेषजों) से है और **"आङ्गिरस्"** शब्द वेद की आभिचारिक क्रियाओं अर्थात् **यातु** या घातक, अभिचार को सूचित करता है; जो भयंकर और घोर है। (गोपथ, ब्रा० १।२।२१ और १।५।१०) में **"ऋचि यजुषि साम्नि शान्तोऽथ घोरे"** कहकर किया है **अथर्वन्**—शान्त के लिए **"ॐ"** और "आङ्गिरस्" घोर के लिये **"जनत्"** इस व्याहृति का प्रयोग करता है। यही अथर्ववेदीय याज्ञिक अनुष्ठानों (वैतान् सूत्र ५।१० गो० ब्रा० १।२।१८) में बनस्पतियों, के भी; दो वर्ग, बतलाये हैं। जिनमें **(आथर्वणी)** शान्त और **(आंगिरसी)** विनाशक, संहारकारी, अभिचार में प्रयोग होने वाली **घोर** कही गई है। कौशिक सूत्र में **"आंगिरस"** शब्द अभिचारिक या **घोर**, इस अर्थ में आता है। आश्वलायन श्रौत्र सूत्र में वर्णित है कि **"भेषजम्"** (शान्त) का पाठ आथर्वण वेद से और **"घोरक्"** (अभिचारक) का पाठ **आंगिरस वेद से** करना चाहिये। इसी प्रकार शान्ति "आथर्वणी" विधि में प्रातः से मध्याह्न पर्यन्त वृक्षों के उत्तर या पूर्व दिशाओं की शान्त वृक्षों की टहनियाँ और उत्तर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या पूर्व दिशा के ही जल, तथा पीली मिट्टी लौर यज्ञोत्पादित शान्त "जातवेदसाग्नि" ली जाती है। इसके विपरीत **"आंगिरसी"** घोर (आभिचारिक) विधि में मध्याह्नोत्तर से सायं पर्यन्त की, दक्षिण या पच्चिम दिशाओं की टहनियां और जल तथा वामी "वल्मीकि" की वेदी की मिट्टी दक्षिणाग्नि अर्थात् **"सांग्रामिक श्मशान की चाण्डालाग्नि"** ली जाती हैं। शान्त (आथर्वणी विधि) में समिधायें यज्ञीय वृक्षों की ली जाती हैं, जबकि (आङ्गिरसी विधि) में, अश्वत्थ की स्वयं टुटी या ओलों से गिरी, कण्टाकीय वृक्षों की, गृद्धादि के नीड़ों की, शमी, शाल्मली, विल्व वृक्षों की समिधा ली जाती है। इसी प्रकार शान्ति कर्म में आज्य या तिलतैल, घोर कर्म में सरसों का तैल लिया जाता है। साकल्य भी घोर: अभिचार कर्म में वहुधान्यों के सत्तू, नमक, सरसों, कालीमिर्च ली जाती हैं, शान्ति आथर्वणी सामिग्री में शर्करा तिल, यव, चावल लिये जाते हैं। आथर्वणी विधि का उल्लेख "कौशिक सूत्र" आङ्गिरसी विधि का वैतान सूत्र में है। राष्ट्रसंवर्ग अथर्व परिशिष्ट में कहा भी है।

"अथर्वा सृजते घोरंमशुभं शमयेत्तथा। अथर्वारक्षते यज्ञं, यज्ञस्यपतिरंगिराः। दिव्यान्तरिक्ष भौमानामुत्पातानामनेकधा। शमयति ब्रह्मवेदज्ञः तस्माद्दक्षिणतोभृगुः। ब्रह्माशमयेनाध्वर्युर्नछन्दगो न वहवृचः। रक्षांसि रक्षति ब्रह्मा तस्मादथर्वविदः॥"

यही आङ्गिरसी और 'आथर्वणी' भेषजों का भी अन्तर होता है इसी कारण इस शंका का विधिवत् विश्लेषण अनिवार्य समझा गया है—आङ्गिरसी के दौनों ही पक्ष ग्राह्य है। मानसिक शक्ति सम्पात और स्वमनोनिग्रह—

मानसिक शक्ति :– (अ० ४।३०।५) पुरुष सर्वेण मनसा सह इह एधि। हे पुरुष तू सम्पूर्ण उच्च मन के भावों के साथ यहाँ आ। **(मा बिभेनमरिष्यसि)** भयभीत न हो, तू मरने वाला नहीं है। (अ० ७।१३।४) **"यद्वो मनः परागतं यद्वद्धमिह वेह वा। तद्वआवर्तयामसिमयि वोरसतां मनः"** मेरा मन जो इधर-उधर भटका हुआ है, अन्यत्र बंधा हुआ है, उसे मैं आत्म शक्ति से वापस बुलाता हूँ, मेरे ही में वह रमण करे। ज्ञानी मन को निग्रह करके (अ० ५।३०-१३, १४, १५,) आह्वान करता है। प्राण आवे, मन आवे, आंख और बल आवें, शरीर बुद्धि के अनुसार चलें, स्वशक्ति से बढ़ें। **वाणी का तप :**—सत्य भाषण, मौन, जप, उपस्थान से वाणी अप्रतिहत होती है। जो कहता है अवश्य होकर रहता है। तभी आशीर्वाद या शाप सत्य होते हैं। प्राणायाम अन्तःकरण का तप है। इससे अन्तरात्मा का तेज बल बढ़ता है। ध्यान रहे, ये मन, वाणी, दृष्टि और वरदायिनी हस्त की सामर्थ्य निम्न प्रकार से नष्ट हो जाती है। "जिह्वादग्धापरान्नेन, हस्तौदग्धौ प्रतिग्रहात्। परस्त्रीभिर्मनो दग्धम्। कुतो सिद्धिर्वरानने" निकृष्ट परान्न भक्षण से वाणी की शक्ति, प्रतिग्रह दान लेने से हाथ की वरदायिनी शक्ति और पर स्त्री पर दृष्टि, दुष्ट सङ्कल्प करने से, मन और नेत्र दृष्टि का वरदात्री शक्ति, क्षीण हो जाती हैं। आदेश करता है (अ० २।१२-२-३-५) जो हमारे इस मन को बिगाड़ता है, उसे पाप के पाशों से बाँधकर नियम में; रखा जावे। अहित करता को कुल्हाड़ी से काट दो हमारा अनिष्ट कर्त्ता, पाप को प्राप्त हो जावे। (कां० २।७-४) अनुदार हित कर्त्ता मेरे आगे न बढ़ें। (कां ६।६-३) जिस प्रकार महान्, द्यौलोक, स्वप्रकाश से अन्धकार को दूर करता है, उसी प्रकार, उस दुष्ट मनुष्य के बल को दूर करता हूँ। (कां ४।१७-५) बुरे स्वप्न और दुर्गति के कारणों को हम विनष्ट करते हैं। (कां १।२१-१-२) पाण्डु रोग और कामला रोग, में सूर्य किरणों की शक्ति या गौ के रङ्गों से दूर कर पूर्ण हृष्ट पुष्ट बनाता हूँ। (कां ४।१८-५) इस ओषधि रूप शक्ति से सभी दुष्ट कृत्यों के कारण और उसके फलरूप रोगों को नष्ट करता हूँ। (कां १२।३-४३) नास्तिक, राक्षस, वधिक; आतताई, जीवों को अकारण दुखी, घात पात करते हैं, हे अग्ने? उन्हें तपाओ। (कां ६।१८-१) तेरी ईर्ष्याग्नि रूप शोक को हम दूर करते है। (कां ११।१०-१,७) वीरो? अपने २ ध्वज हाथ में लेकर उठो, शत्रु पर हमला करो, शत्रुओं, क्लेशों, रोगों का संहार करो। (कां २।७-१) पानी से जैसे सब मल धुलते हैं, उसी भांति शाप और उसके परिणाम, मुझसे धुल जावें। (कां १०।१-१४) वे कृत्ये बन्धन से छूटी हुई, गधी के समान शब्द करती

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुई निकलजा (१०।१-१७) पेड़ों को तोड़ देने वाली हवा की भांति तू हिंसकों को तोड़ दे। (मं० १६) यह कृत्याघातकों के मध्य घोड़े के समान फिरे। (मं० ३०) जाल में फँसे हुए की भाँति, तेरे साथ किये गये, घातक प्रयोग को, वापस-कर्त्ता के पास भेजता हूँ। (कां० २।३२-१) मैं ज्ञान से, रोग-क्रमियों का नाश करता हूँ। (कां० ६।३२-१) पाप से राक्षसों को जला दें। (कां० ४।१३-३) मेरा हाथ ही सर्वोपरि भेषाज है, इससे अभिमर्शन् कर तेरा कल्याण करता हूँ। (मं० ७) में दश उँगलियों युक्त, अपने हाथों से, तेरा अभिमर्शन् करता हूँ, वाणी से मांगलिक शब्द उच्चारित कर, कल्याणमयी दृष्टि, डालता हुआ, अन्तरात्मा के, आशीर्वाद से, तुझे पूर्ण नीरोग, सबल इन्द्रियों के साथ चिरायुष्य वाला बनाता हूँ। (कां० ६।१३-३) उपर्युक्त सामर्थ्यवान तपोधन वाचस्पतियों, ज्ञानियों, योगियों को मैं नमन करता हूँ। यह मन, वाणी, नेत्र, जिह्वा, अन्तरात्मा और हाथों की आत्मिक शक्ति सामर्थ्य के बल से ही व्याधिग्रस्त को, पूर्णनीरोग, स्वस्थ, चिरायुप्रदान करने की आङ्गिरसी विधि है, इसमें किसी भी औषधि की लेशमात्र सहायता नहीं ली जाती, यह सूक्ष्म, प्राण, वासना तथा अतिवाहक शरीरों में आये हुए, सभी सूक्ष्म, अदृश्य, अस्पृश्य रोगों की, जिनका भला या बुरा प्रभाव पार्थिवप्राणि पर होता है, उनकी समर्थ शान्तिभेषज की विधि का संक्षिप्त दिग्दर्शन है अब आथर्वणीविधि का विश्लेषण देखें।

आथर्वणीभेषजविधि :—आथर्वणीविधि शान्तिविधि का नाम है, यह विस्पष्ट रूप से बताया जा चुका है, अब उसकी विधि का विश्लेषण किया जाता है। **"वागेवायं लोकः, मनो अन्तरिक्षलोकः, प्राणोऽसौ लोकः"** (वृ० आ० १।५।४) यही वाणी पृथ्वीलोक है, मन अन्तरिक्षलोक है और प्राण स्वर्गलोक है। वाणी और मन की शुद्धि तथा प्राण अर्थात् (ब्रह्मचर्य और प्राणायाम) के संयम के साथ किया गया जप, तप, दान, तीर्थयात्रा, उपस्थान, अनुष्ठान, सङ्कल्प, योग तथा यज्ञ सभी शान्तिकर्म हैं। इनसे रोग-व्याधिरहित दीर्घजीवन प्राप्त होता है। बहुकुटुम्ब, बहुधन, बहु-ब्राह्म-बल, बहुभूमि-भवन, भोग्यपदार्थ, बहुअधिकार, बहुसेवक आदि ये सभी, रुग्ण-व्याधिग्रस्त क्षीणबल, आयु वालों के लिये, फीके नीरस, व्यर्थ होते हैं। **"उद्यानं ते पुरुषनावयानं"** (अ० ८।१-६) मनुष्य ऊपर उठे, नीचे न गिरे, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार कर निरन्तर उन्नति के मार्ग पर चले। **"बोधश्चत्वा प्रतिबोधश्च रक्षताम्। अस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्"** ऐसे कर्त्तव्य परायण की ज्ञान, विज्ञान, विवेकरक्षा करते हैं, आलस्य छोड़, कर्म करना न छोड़। **"आइहि तमसः ज्योतिः आरोह"** अज्ञानान्धकार रूपमृत्यु के मार्ग को छोड़कर, ज्ञानरूप, प्रकाशमय जीवन प्रदाता मार्ग का अनुसरण कर। इसी कल्याणकारी प्रकाश की प्राप्ति के लिये "शिव संकल्प" की यजुर्वेद में महत्ता के साथ कामना की है। यह मन, वाणी, बुद्धि, अन्तःकरण और संकल्प की शुद्धता द्वारा किया गया तप, उपस्थान, यज्ञ, योग सभी मृत्यु प्रकारों के निराकरण की अप्रतिहत, सशक्त, समर्थ भेषज है।

हवन से दीर्घायु :—**"भैषज्य यज्ञा वा एवे। तस्माद्दतुसन्धिषुप्रयुज्यन्ते ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते"** (गो० ब्रा० उ० प्र० १।१६) ऋतुसन्धिकाल में व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, उनके निराकरण की भैषज्यरूप ऋतुसन्धि यज्ञ किये जाते हैं। **"आयुर्यज्ञेन कल्पाताम्। प्राणोयज्ञेन कल्पताम्"** (य० ६।२१) **"प्राणश्च मे यज्ञेनकल्पताम्"** मेरी आयु और प्राणयज्ञ से सम्बर्द्धित हों, मेरा प्राण यज्ञरूप सत्कर्म के लिये समर्पित हो। ऐसे देश-काल और कर्म के ज्ञाता ऋषि के तप द्वारा किये गये, योग, यज्ञ, सत्कर्मों के द्वारा, शरीरस्थ ब्रह्मांशदेव प्रसन्न होकर नीरोगता, दीर्घायु प्रदान करते हैं। (अं० ८।१।६) ऋषि प्रेरणा करते हैं। हे मनुष्य! तेरी गति उन्नति की ओर ही हो, अवनति की ओर कदापि न हो, तेरी दीर्घायु के लिये मैं बलविस्तार करता हूं। तू सुखमय अमृतरथ पर चढ़कर दीर्घायु के साथ सभी में भाषण कर सकेगा। (अ० ८।२-११,१२) ऋषिवाणी, हे मनुष्य! मैं तेरे अन्दर प्राणबल, दीर्घायु, स्वास्थ्य आदि सद्भाव, वृद्धावस्था के साथ स्वेच्छयया मृत्यु के लिये, जहाँ मंगलमूर्ति श्राद्धदेव स्वयं तेरा सन्मान करेंगे। यमदूतों की शक्ति से परे, द्वेष, दुर्गतिपाशों, माँसभक्षी प्रेतात्माओं, रक्तभोजी पिशाचों, राक्षसों, कष्टों, विनाशक कारणों की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति से परे, अकालमृत्युओं से ऊपर उठाकर दीर्घजीवन प्रदाता वैश्वानर, जातवेदसे प्राणप्रदान कराता हूं। (मं०८) तू शोक से मन, बुद्धि और आयु को क्षीण मतकर। (मं० १२) अब कच्चा माँस खाने वाले प्रेत, हिंसक, घातपात करने वालों से न डर। (मं० ३-४) दिव्य, तपसाध्य, सत्यवाणी से तेरी अधोगति के बन्धन को हम खोलते हैं। (मं०३०) यह असत्यमार्ग अन्धकार (मृत्यु) मय है, इधर न जा, आगे भय उत्पन्न होगा। सामाजिक और राजकीय पापों से ऊपर उठ। **"जीवेभ्यः मा प्रमदः"** (मं० ७) सम्पूर्ण जीवों के लिये अपने कर्त्तव्य-पालन में प्रमाद न कर। (मं० २) सूर्य तेरे शरीर की वृद्धि और कल्याण के लिये तपता है। तू भी सूर्योदय, सूर्यास्त काल में आलस्य त्यागकर जागरूक होकर तपकर। (मं० २,५,७,१२,१५,१६,१७) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वसु, सोम औषधियाँ, प्रजापालक राजा, वैश्वानर जातवेद जो भूलोक के पार्थिव शरीर में देवतायें हैं, ये सभी अन्तरिक्ष के देवताओं के ही अंश, यहाँ इस शरीर (पार्थिव) में, प्रविष्ट हुए हैं, इनको जागरूक होकर, अपना रक्षक समझ और जप, तप, योग, यज्ञ द्वारा यथासमय सत्कर्मों के द्वारा जीवनशक्ति, नीरोगता, दीर्घायुष्य और अभ्युदय प्राप्तकर।

(श्रीमद्भगवद्गीता ३।११)—

यज्ञ से देवों को सन्तुष्ट करो, वे देव तुम्हें संतुष्ट करेंगे, इस प्रकार पारस्परिक कल्याण करते हुए, परमश्रेय की प्राप्ति करो। मं० १३ **"वर्हिः प्रमयुः कथास्यात्"** विधिपूर्वक किया गया यज्ञ कदापि घातक नहीं होता, अपितु कल्याणप्रद ही होता है। (मं० १५) इस प्रकार किये गये, यज्ञ-कर्म देवताओं को प्रसन्न करते हैं। वे कल्याण की वृष्टि करते हैं। (मं० २) मनुष्यमात्र का जीवन और बल का स्रोत यज्ञ और कर्म ही हैं। यही **"संजीवनी विद्या"** के मूल हैं। यही "ब्रह्मवर्ग" **ब्रह्मकवच** है, जिसे धारणा ध्येय-ध्यान समाधि द्वारा धारणकर मृत्युपाशों को तोड़ा जाता है। (कां० ८ सू० मं० २) **"अवमुञ्चन्मृत्युपाशानशस्ति"** (मं० ६) **"देवानां हेतिः त्वापरि वृणक्तु"** कर्मयोगियो! दुर्गति एवं मृत्युपाशों को यज्ञ, योगकर्मों द्वारा तोड़ दो, देवों के दिव्य अस्त्र-शस्त्र तुम्हें बन्धन से रहित करें। (मं० ५,६, १०,११,२३) ऋषि घोषणा करते हैं, हे मृत्यो! तू अब इस पुरुष का बध न करना, देवों के अस्त्र इसका बध न करें, मैं इसे रजतमरूप अन्धकार से, प्रेतदाहक, कच्चा मांसभक्षक अग्नि से, अजेय १०१ मृत्युओं से, यमदूतों के भय से इसे दूर करता हूँ। ज्ञानकवच धारण कराता हूँ। ऐसा ज्ञानकवचधारी मृत्यु को भी ललकार देता है, जा मरने की अभी फुरसत नहीं, जब समय मिलेगा देखा जायगा। यह अथर्वा, अगस्त्य भीष्मपितामह, नचिकेता, मारुतिजी के जीवन-चरित्रों से सीखें। जिनसे यम भी घबराये। ऋषिवाणी–(अ० ८।२।२४) **"नवैतत्रम्रियन्ते नोयन्त्यधमं तमः सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि, माविभेः"**। हे मनुष्य! तू निश्चय ही नहीं मरेगा, अधोगति अन्धकार, मृत्यु और अरिष्ट तेरे पास नहीं आ सकते, तू नहीं मरेगा, नहीं मरेगा, डर मत कर, (मं० २६) तेरे अपने बन्धु-बान्धवों के, आक्रमण से रक्षा करते हैं। तू नीरोग होकर, दीर्घायु वाला हुआ है। तेरे प्राण तुझे अब नहीं छोड़ेंगे। (मं० २५) जहाँ **"संजीवनी विद्या"** और **"ज्ञानकवच"** का आधिपत्य होता है, जहाँ **"प्राणविद्या"** विद्यमान होती है, वहाँ गौ, घोड़ा, पशु, मनुष्य सभी कोई जीवित नीरोग रहते हैं। (मं० २७) जो एकसौ एक मृत्युयें हैं, जो पार करने योग्य तथा सर्वनाश करने वाली है, उन सभी से सभी देव **"वैश्वानर जातवेदाग्नि"** के सामर्थ्य से उनके बन्धन से मुक्त करते हैं। (मं० २८) तू तैजसतत्त्व वाला स्वयं घातकों का संहार करने वाला है। तेरे ही अन्दर पावनता, बुद्धि और गति प्रदातृशक्ति है, उसी से तू दीर्घायु प्राप्त कर। अ० कां० ८।१।८ **"आ इहि। तमसः आरोह। ते हस्तौ रभामहे।"** हे मनुष्य! यहाँ आ-अन्धकार को छोड़, प्रकाश की ओर चढ़, यदि सहारा चाहता है, तो हम तेरे हाथों को पकड़ते हैं। (मं० १) तेरी अविच्छिन्न वृद्धावस्था, दीर्घआयु, उत्कृष्टरूप से तेरे लिये धारण कराता हूँ। (कां० ८।१-७) ऋषिवचन—हे मनुष्य! पाप और उसके कारण तथा भोग को दूरकर दीर्घायुधारण कर। (मं० २) जीवित लोगों की ज्योति के पास आ, तेरे लिये सौ वर्ष की आयु की अवधि निश्चित करता हूँ। (मं० १) तेरी आयु और प्राणों को प्राणविद्या और "संजीवनी विद्या" द्वारा पुनः तेरे अन्दर भरता हूँ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संजीवनी विद्या—देवों के वैद्य अश्विनी कुमार थे वे ये दो प्राण-श्वास् उच्छ्वास; प्राण और अपान ही हैं। (अ० कां ७।५३-१) हे देवों के वैद्य अश्विनी देवो (प्राण आपानो) अपनी विविध शक्तियों से मृत्यु को हमसे दूर करो। (मं० २) हे प्राण और अपानो शरीर में उत्तम प्रकार से संचार करो, शरीर को मत छोड़ो। (मं० ४) ऋषि वाणी मैं इस मनुष्य को बुढापे तक नीरोगता स्वस्थता के साथ ले चलने के लिये सप्त ऋषियों (पंच ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि) को सौंपता हूँ। (मं० ६) प्राण से तेरा जीवन बढ़ाता हूँ और अपान से तेरा क्षय दूर करता हूँ। प्राण से उद्दीपित श्रेष्ठ अग्नि (जीवनाग्नि, जटराग्नि) सब प्रकार से हमारी आयु को धारण करे। इस प्राण विद्या का विश्लेषण विधिवत् आगे पढ़ें।

यज्ञ से दीर्घायु :—(अ० कां० ३।११.१) ऋषि वाणी–हे मनुष्य ! तुझे सुखो जीवन के लिये यज्ञ-कर्म द्वारा अज्ञात् रोग, राजयक्ष्मा, जकड़ने वाले रोगों से समाप्त आयु हो गई हो, अथवा यदि मरने के सन्निकट पहुँच चुका हो, या कि मृत्यु के समीप ही क्यों न पहुँच गया हो, उन विनाश के पासों से छुड़ाकर वापस लाता हूँ। (मं० ३) सैकड़ों प्रकार की शक्तियों, बीर्यों वलों से युक्त शतायु प्रदायक यज्ञ कर्म द्वारा इसको मैं लाया हूँ। (मं० ५) प्राण और अपान तुम दोनों ही इस शरीर में प्रवेश करो अन्य अनेक अपमृत्यु इससे दूर जावें, यह ऋषि आदेश करते हैं। (मं० ८) अपमृत्यु जो जन्म से ही तेरे पीछे लगा हुआ था, उससे तुझे सत्य के हाथों से वृहस्पति पूज्य देव गुरूजी ने कर दिया है। यही नहीं यह भी निर्दिष्ट किया है। (अ० कां २।८।१) यह मनुष्य (संजीवनीविद्या, प्राणविद्या, ज्ञान कवचधारी;) पूर्ण वृद्धावस्था तक दीर्घायुषी होवे, बीच में सैकड़ों मृत्यु प्रयत्न करने पर भी इसे न मार सकें, शत्रुघ्न वरुण और मित्र मिलकर; दीर्घायुष्य वाला तथा, चारित्र्य ज्ञाता तेजस्वी देव; इससे भी देवों के जीवन चरित्रों से, अवगत करा", शत्रुओं से इसका बन्धन हो। (कां० १२ सू० २-२८) (शुद्धा, शुचय, पावका,) पाप, और पापकर्मों, पापियों से बचो, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, पविज्ञता प्राप्त करो, अग्नि सेवी, (यज्ञ, योग, वाणी की साधना करो) और नियम यम, संयम से जाठराग्नि को, सूर्य दर्शन, त्रादक से अर्थात् सूर्य चक्र में दृष्टि को और हृदय में मन को निरोध कर सभो इन्द्रियों को निग्रह करने से प्राण और वीर्य की वृद्धि करके शतायु प्राप्त होगी। (मं० ३३ से ३६) घेरों में "वैश्वानर-जादवेदाग्नि" को ही प्रज्वलित करो, क्रव्यादग्नि अर्थात् प्रेताग्नि की दृष्टि से भी बचो। यह प्रेताग्नि जहाँ प्रविष्ट होती है, वहाँ(मं० ३१) स्त्रियाँ विधवा होती हैं उनके, गर्भपात्, या बच्चे अल्पायु में ही मरते हैं। स्त्रियां बिखरे वालों से शोकाकुल रहती हैं, रुदन करने से निरन्तर रुग्ण रहती हैं कुमारों, वालों की निरन्तर मृत्युयें होती हैं, वे सौभाग्य लक्षणों से रहित होकर भयावनी हो जाती हैं। यज्ञ से देवों को स्वाहा और पितरों को स्वधा द्वारा प्रसन्न करो। (मं० ५१) जो श्रद्धा हीन, धन लोभी, मांस भक्षी, दूसरे के सिर पर चढ़कर खाने वाले दस्यु, वधिक, आतताई, दुराचारी, मदिरापान करने वाले पापी हैं उनको ही मृत्यु और नैर्ऋतिपाश घेरते हैं। (मं० ४६-४६) सद्ग्रहस्थ. ब्रह्मचारी वानप्रस्थी, अपने घरों में, संघीय कल्याणार्थ, यज्ञाग्नि को न बुझने दें, और स्वाहा, स्वधा से देव और पितरो को तृप्त कर "देवयान और पितृयान" मार्गों से ऊर्ध्व-गतियों को सीधे जावें। ये सभी ज्ञानी, याज्ञिकजन, यज्ञ रूप नौका द्वारा, अपने तापत्रय को दूर करें, उठें, सावधान हों, आगे ही बढ़ें और सूर्य को नमस्कार कर **ज्ञानकवच धारण** करें। (मं० २८) **(वर्चसे वैश्वदेवीं आरभध्वं)** सभी देवतायें इसी शरीर में अंशरूप से नित्य और निरन्तर विद्यमान हैं, यही शरीर सच्चा देव मन्दिर है, इसे न भुलाओ। यह भी निर्विवाद सत्य है; कि ये सभी विश्व के देव ही वेदमन्त्रों में, विद्यमान हैं, शब्द ही ब्रह्म है, ये सभी ॐ में, गायत्री आदि छन्दों में विद्यमान हैं, स्वयं ब्रह्म है। इस दैवी वाणी (मन्त्रमयी वाणी) को धारण करने से, शरीरस्थ देव और यज्ञस्थदेव **"यज्ञो वै विष्णुः"** जो यज्ञ ही विष्णु हैं, वे सन्तुष्ट, संतृप्त होकर सुख, समृद्धि और सतत शान्ति वर्षा, यज्ञ द्वारा ही करेंगे। जो आशीर्वादात्मक, मन्त्रों द्वारा ही सुलभ हो सकती है।

यज्ञ के विविध प्रकारों से आरोग्य :—(अ० कां० ६ सू० ५) जिन घरों में यज्ञ होते हैं, (वे ही अधिक उच्च उन्नत, तेजस्वी) निरोग, स्वस्थ, सुविचक्षण, आयुष्यवान, आज्ञाकारी सन्ततिवान् श्रेष्ठत्व, स्वज्ञतियों को अनुशासन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में रखने वाले, हृष्ट पुष्ट, दीर्घायु और निश्रेयस प्राप्त करते हैं। इन सभी गुणों का, अभिनिवेश, जिन मनीषियों में होता है, वे ही (घोरा ऋषयः) श्रेष्ठ ऋषि होते हैं। यज्ञ रूपी प्रशस्त कर्मों का प्रणेता "बिश्वकर्मा" विश्व कर्त्ता एक प्रभु ही है। (अ० २।३५-५) (मं० ४) इस कारण उपर्युक्त फलाकांक्षी को; इसी वैदिक आथर्वणिक रीति से, उस प्रभु की उपासना, जप, तप, दान, योग, यज्ञ, शुभविहित कर्म; निष्काम भाव से, निष्ठा, श्रद्धा, और भक्ति से अनवरत करने चाहिए। (मं० ५) (**"वाचाश्रोत्रेण मनसा च जुहोमि"**) वाणी श्रोत मन, सङ्कल्प से यज्ञ में आत्म समर्पण करता हूं। यही आथर्वणी भेषज विधि हैं। इस **"काल"** समय से भी सहयोग सापेक्ष्य कहा है।

कालयज्ञ :--

(अ० कां ३ सू १०-१) काल अर्थात् समय अथवा वेला एक बड़ी शक्तिशाली कामधेनु है जो प्रथम उषा के रूप में कालमापन का कार्य प्रारम्भ करती है। यह उषा "यम" के लिवे ही **(कामधेनु)** बनती है। यम :— (योगदर्शन) **"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"** १. अहिंसा २. सत्य ३. अस्तेय ४. ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम मानव के चाल चालन के अनिबार्य कर्म है। इन्हीं यमों का सम्बन्ध शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश भक्ति इन पांच नियमों से जुड़ा रहता है। इन दोनों का पालन कर्त्ता **"यम"** कहलाता है। इसी महात्मा के लिये **"समय"** **"कामधेनु"** इच्छानुसार दुहा जाने वाला, दूध, देने वाली **"कामधेनु"** होती है। प्रत्येक मानव चाहता है कि (मं० १) **"सा नः पयस्वतींदुहामुत्तरामुत्तरांसमाम्"** कि वह काल उत्तरोत्तर की आयु में अमृत प्रदाता होवे। पूर्ण दिन के रात्रि और दिन के भाग, आठ प्रहर होते हैं। (मं० २ से ४) देव भयदायिनी, "अन्धकारमयी" **रात्रि** का स्नेह से स्वागत करते हैं; क्योंकि वह संवत्सर की पत्नि है। यही संवत्सर की प्रतिमा है, यही समय को बिभाजित करती है। (अ० कां० ३।१०-१०) काल का यज्ञ—उपर्युक्त संबत्सर की पत्नि **"रात्रि"** ने संवत्सर को विभाजित किया, वे (१) मास १२, (२) ऋतु–दो मासों का समय **(छै)**; (३) अतिव काल—दो ऋतुओं से बनने वाला काल, शीत काल, उष्ण काल, वर्षा काल, (४) अयन-तीन ऋतुओं का समय। दो अयन, उत्तरायण, वक्षिणायन, इनके मान से बना हुआ वर्षा **"हायन"** होता है। (५) **समा :**—तीस दिनों का एक मास अर्थात् ३६० दिनों का एक वर्ष, **"समा"** नाम से प्रसिद्ध है। इस वर्ष के दिन समसंख्या में होने से ही "समा" कहलाता है।

(६) संवत्सर—सौर वर्ष, इस वर्ष के ३६५ दिन होते हैं, मासों के दिनों में न्यूनाधिकता होती है। इसके अतिरिक्त चान्द्र वर्ष होता है। जिसका यहीं उल्लेख चन्द्र की कलाओं के घटने बढ़ने से ३५४।५५ दिन का माना है। यह समय, **"संवत्सर"** कहलाता है। इससे अधिक परिमाण के वर्षों को **परिवत्सर** और उससे भी अधिक अपरिमित संवत्सरों के समय का नाम **"इदावत्सर"** कहा गया है। इनके ही भूत, भविष्यत्, बर्तमान भेद है। (कां १०।८-३०) २४ घण्टों अर्थात् ८ प्रहर का एक दिन, ७ दिनों का एक सप्ताह। १५ दिनों का एक पक्ष होता है। २४ घण्टों का मान ६० घटी, एक घटी का मान ६० पल; १ पल का मान ६० विपल माना गया है। चान्द्रवर्षा में १३ मास होते हैं। यह तेरहवां मास **"पुरोषत्तम"** मास होता है, जो "पुरोषत्तम" परब्रह्म स्वरूप ही होता है। (मं० ९:१०) मैं अपनी आयु के दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, काल (भूत, भविष्य व बर्तमान) अयन, संबत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, त्रमोदशमास, त्रयोदय दिन पक्ष सभी को धाता, विधाता, समृद्धिकर्त्ता, परमात्मा के लिये अर्थात् यज्ञ के लिये समर्पित करता हूँ। (कां १०।८-३०) यह सनातन शक्ति है, सनातन काल से बिद्यमान है। यही पुरानी शक्ति सब कुछ बनी है। यही बड़ी देवी "उषाओं" को प्रकाशित करती है, यही प्राणी के साथ अकेली, अकेली प्रतिक्षण रहती है। यही वह शक्ति **"काल"** है, जो समीप होने पर भी छोड़ता नहीं, समीप होने पर भी **दीखता** नहीं। **"देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीयति"** इस देव का यह **"काव्य"** देखों, जो न तो मरता और न कभी जीर्ण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही होता है। जिसके पूर्व कोई नहीं है, इस देवता द्वारा प्रेरित ये वाधायें **(वाणी)** हैं वही वाणी यथा योग्य वर्णन करती हैं। बोलती हुई; जहाँ पहुँचती हैं; वही परमेष्ठी **"काल"** महान् यज्ञ है जिसमें प्रजायें पुरोई हुई हैं।

अथर्व काण्ड १९ सूक्त ५३;५४ की संक्षिप्त गति उसका प्रभाव तथा दुष्प्रभाव की शान्ति विधि निम्न प्रकार समझें।

काल सबका ग्रहीता, दाता, कर्त्ता है। विभिश्र अवस्थाओं में स्थापित कर पालन कर्त्ता, क्षीण कर्त्ता, वारी-वारी से, स्वेच्छया सम्पूर्ण लोकों का उपभोक्ता है। मांस और पक्ष काल के शरीर हैं, दिन रात्रि वस्त्र; ऋतुयें मन इन्द्रिय; वर्षा मुख वाला आयु स्वरूप है। यहीं काल संज्ञक ब्रह्म है; इसका इसी रूप में चिन्तन करें। इस चिन्तन के उपर्युक्त पाँच ही विषय हैं। यह काल अगाध, गहन समुद्र से भी बड़ा है, इसी ने ब्रह्माजी को ब्रह्माण्ड भाण्ड के उदर में सृजन में, विष्णु को दशावतार धारण में रुद्र को भिक्षाटन में, सूर्य को गगन भ्रमण में लगा रक्खा है; जो क्षर एवं अक्षर रूप परब्रह्म स्वयं निराकार होते हुए भी समस्त प्राणियों के भीतर जीव का प्रवेश करता है। काल ही समस्त प्राणियों की अवस्था में उलट फेर करता है। इसे कोई भी नहीं समझ पाता, काल की महिमा से पराजित हो, कुछ भी नहीं कर पाते। यही प्राणीमात्र की गति है। श्रवणादि समस्त इन्द्रियां उपर्युक्त मास पक्षादिभेदों से युक्त काल का अनुभव नहीं कर पाती है। यही अग्नि, प्रजापति, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण, पूर्वाह्न, मध्याह्न, मुहूर्त, एक होकर अनेक, जगदाश्रय है काल की आज्ञा का उल्लङ्घन करना असम्भव है। काल क्रम से ही, इन्द्र पद प्राप्त होता है, यही कुसमय और अनुकूल समय की ओर प्रेरित करता है। काल से पीड़ित प्राणी को विद्या, तप, दान, मित्र, बन्धु, बान्धव भी कष्ट से नहीं बचा पाते। जब काल (प्रारब्ध) से आक्रान्त हो जाता है, तब बुद्धि संकट में पड़कर; फटी सी हो जाती है। काल के असहयोग से सुखद कर्म भी दुःखदायी होते हैं।

काल निरन्तर सतर्कता के साथ जागता रहता है; और सभी प्राणियों के प्रति समदर्शी है। काल का किसी के द्वारा भी परिहार नहीं हो सकता - तथा दिन रात्रि कला तक का हिसाब लगाकर प्राणियों को पीड़ा देता है। छोटे बड़े के भेद रहित सभी कालाग्नि में झौंके जाते हैं। काल की लीला और उसके तत्व का समझना अनिवार्य है। कलि-काल में जब प्रजाजन न्याय के प्रतिकूल वर्ताव करेंगे, पुत्रवधुयें सासों से टहल करायेंगी, पुत्र अज्ञानवश पिता को आज्ञा प्रदान करेंगे। शूद्र, ब्राह्मणों से पैर धुलायेंगे और द्विज स्त्री को, भार्या बनाने लगेंगे, पुरुष निर्भीक हो, मानवेतर योनियों में वीर्य स्थापित करेंगे, कांसे के पात्र मे सवर्ण, असवर्ण एक ही साथ भोजन करनें लगेंगे, अपवित्र पात्रों में देव पूजोपहार अर्पित करेंगे, सारा वर्ण धर्म शून्य हो जायेगा। पृथिवी वीर विहीन, औषधि, लतायें शक्तिहीन, विघ्नकर्मी महत्व पदासीन, राजकर्मी धर्म, कर्म रहित चौरकर्मी, द्विजवेदविहीन कुमार्गी, भार्या पति द्रोहिणी; पर प्रेयसी पुत्र पित्र जन द्रोही होने लगेंगे; उस समय काल अपनी प्रचण्ड गति से, प्रलय का रूप धारण कर लेंगे। इस काल संज्ञक "ब्रह्म" का ज्ञान ही समस्त भव-व्याधियों की परम भेषज है।

काल :—१९।५३—२ "सप्तचक्रान्" संवत्सर की सप्त ऋतु नाभि हैं। इनमें २-२ मासों के छै ऋतुयें तथा त्रयोदश मासात्मक सप्तम ऋतु है।

"साकंजानां सप्तथन् आहुरेकजं षष्ठिद्यमा ऋषयो देवज इति" (ऋ० वे० १।१६४-१५) "देवा आदित्या ये सप्ततेभिः सोमाभिरक्षनः" इति निगमः (ऋ० वे० ९।११४-३) "आरोगोभ्राजः पटरः पतङ्गः स्वर्णसि ज्योतिषीमान् विकासः" इति (वै० अ० १।७-१) "कश्यपोष्ठमः समहामेरुं न जहाति" इतिश्रुते! (वै० आ० १।७।१) अथवा सप्तछन्दांसि "ऋग्भिः पूर्वाह्ले दिवि देव ईयते। यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः। सामवेदेनास्तमेये महीयते। वेदैरशून्य स्त्रिभिरेतिसूर्यः" (वै० ब्रा० ३।१२।९।१) कश्यपसे पश्यकः अर्थात्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वद्रष्टा "अपः" काल रूप सर्व जगत्करण परमात्मा से ब्रह्माण्डाधारभूत "आप" की उत्पत्ति हुई **"अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यम् अवाकिरत् । तद् अण्डम् अभवद्धैमम्"** (म० स्मृ० १।९) जगत सर्जनकर्मार्थ तस्मान काल से, प्राच्यादि दिशायें उत्पन्न हुई । काल की प्रेरणा से सूर्य उदय होता है । **"भीष्मास्माद् वातः पवते" । भीषोदेति सूर्यः"** इति निगम (वैं० आ० ९।९) **"मन्त्र"** कालस्वरूप परब्रह्म से ऋचायें पादयुक्त मन्त्रों की उत्पत्ति हुई है ।

दुस्वप्न :—मृत्यु सूचक काल का दूत है । इसके निवारणार्थ तेतीस देवताओं **"अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च"** इति (ऐ० ब्रा० १।१०) की आराधना करें । यह भगवान् वरुण का निदेश है । **"त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वम् आप्त्ये परिदद्मस्य नेहसो य ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः इति"** (ऋ० वे० ६।४७।१५) (कां० १६।५-१) **"यथा कलां"** मृत्यु सूचक दुष्वप्नजनितारिष्ट निवारणार्थ दुष्वप्न द्रष्टा को **"परोपेहि (६।४५) यो न जीवोसि (६।४६) विद्मते स्वप्नजनित्रं"** (६।४६।२) तथा १६।५७-१ **"यथाकलाम्"** को १९-५०-२ **"संराजानं"** में कुष्ठाः अगुः **"संकला अगुः"** जो राजा पर राष्ट्र का विनाश करना चाहता है । जो मनुष्य अनेकों प्रकार के ऋणों को धारण करता हुआ शरीर त्यागता है, ऋण को नहीं चुकाता है, ऐसे ही राजादि विनाश कर्त्ताओं, ऋण मारने वालों को **"कुष्ठाः"** श्वेत कुष्ठ नामक बहने वाले कुष्ठादि त्वचा दोष तथा अन्य जघन्य राजयक्ष्मा, (प्लूरसि) लघु एवं दीर्घ आत्रिक रोग, (कैन्सर) गण्डमालायें होती हैं ।

यज्ञ का कार्य :— (मं० ९-१०) **"धात्रे, विधात्रे, समृद्ध्ये भूतस्यपतये"** धारक, निर्माता और भूतों के पालन कर्त्ता के लिये करना है । अपनी आयु इन कार्यों के कर्त्ता के लिये समर्पित करना है । (१) जो प्रजाओं को धारण करता है, (२) जो जनता के लिये सुख साधन का निर्माता है, (३) जो जनता की समृद्धि की वृद्धि करता है और (४) जो उन सबका पालन करता है । उसके मंगल कार्यों के लिये; अपनी आयु का समर्पण **"आत्म यज्ञ"** कहलाता हैं । (मं० २१) लोभ न करते हुए घरों में व्यवहार करें । (मं० ७) **पूर्णादर्वे परापत; सुपूर्णा पुनरायत"** अहो रात्रि हमें बहुत पुष्टि, शक्ति दे, देवों की मंगलमयी, मति हमारी सहायक रहे । हे चमस ! तू घी ले पूर्णाहुति अग्नि में देने के लिये, पूर्णकर आगे बढ़, और वहाँ की **"दैवीशक्ति"** से पूर्ण होकर हमारे पास, लौट आ, और हमारे लिये अन्न, बल, आयु, तेज, विपुल मात्रा में प्रदान कर । हे दिवस्पुत्री **उषा** ! तू तापत्रयरूपी शत्रुओं के हन्ता सूर्य की जननी, और रात्रि, शान्ति प्रदाता सोम की जननी है, ये दोनों ही मृत्युरूपअन्धकार निवारक; महान देव हैं, जो प्रकाशमय जीवन प्रदान करते हैं । इस **"कालयज्ञ"** में जो आत्म हवि हम अर्पण कर रहे हैं, उसको स्वीकार कर और हमारे कल्याण कर ।

मृत्युलोक—(इहलोक) इस भूलोक में; मनुष्य; पार्थिव, तत्वों से बना, भौतिक (स्थूल देह) शरीर से जीवित अवस्था में विचरता हुआ, भौतिक स्थूल इन्द्रियों से सुख, दु;ख अनुभव करता है । इस लोक में जीवन होने से, यहाँ के अनुभव; प्रत्यक्ष अनुभव करके वर्णन करता है ।

स्वर्गलोक :—परलोक, दूसरा लोक है; इसमें इस पार्थिव शरीर का परित्याग करके ही; प्रायः समावेश होता है । जिस प्रकार इस जगत में; स्थूल देह व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार अन्य लोकों में; सूक्ष्म देहों से, व्यवहार होते हैं । अन्तर यह है कि उन लोकों में; स्थूल देह नहीं जा सकता है, और भूलोक में वे सूक्ष्म शरीर बिना स्थूल के कोई भी व्यवहार नहीं कर सकते हैं । इसमें थोड़े से भेद यह हैं कि स्थूल, सूक्ष्म, प्राण, महाप्राण, ये चारों प्रकार के देह मनुष्य को प्राप्त होते हैं, और ये एक दूसरे के अन्दर; निहित रहते हैं । इस दृश्य जगत में, जिस भांति स्थूल देह का कार्यक्षेत्र है, उसी भांति सूक्ष्म जगत में सूक्ष्म देहों का होता है । स्थूल शरीर सूक्ष्म जगत में, न जा ही सकते हैं, न कार्य ही कर सकते हैं । सूक्ष्म देहों से स्थूल जगत में अंशरूप में प्रेरणायें, प्राप्त हो सकती हैं, यह सत्य है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासना देह—"स्थूल देह" के अन्दर पहिला "सूक्ष्मदेह" वासनादेही है, इसी देह में मनुष्य भली, बुरी वासनायें करता है। घात, पात, द्रोह हिंसा आदि की अभद्र वासनाओं से, आयु क्षीण कर **"वासनादेह"** को बड़ा मलिन बना लेते हैं। स्थूल देह के नष्ट होने पर भी यह "वासनादेह" नष्ट नहीं होती, अर्थात् मरणान्त, स्थूल देह के नष्ट होने पर भी यह जीव अपनी 'वासनादेह" से वासनायें करता रहता है। हिंसापूर्ण अभद्र वासनाओं से; जो अशान्ति और क्लेश, दुःख होते हैं, उसी का नाम **"नरक"** है। शुभकर्मों और वासनाओं के प्रावल्य से शान्ति-सुखरूप **"स्वर्ग"** में अमृतपान कर सुख भोगता है।

नरक के दुःख—नरक अनेकों प्रकार के, एक से एक भयङ्कर, दारुण दुःखों के सोपान हैं। इस "वासनादेह" का रचा घृणित कर्मों का जाल, जब तक चलता है, तब तक अपरिहार्य तड़फनहीं होती है, इसके कष्टों को, अन्य कोई भी, दूर नहीं कर सकता। जब "वासनाओं" के ज्वार, उठ-उठकर उनका परिणाम न हो पाने से, कुछ समय पश्चात् स्वयं नष्ट होते हैं; तब उनका यह जघन्य **"नरकवास"** समाप्त होता है। इस प्रकार शुभाशुभ वासना तरङ्गे जब उठने से बन्द हो जाती हैं, तब उनका भोग संमाप्त होकर **"वासनादेह"** फट जाती है। यही **"वासनादेह" की मृत्यु** है इस "वासनादेह" से मनुष्य स्वप्न देखता है। मनुष्य इनका विचार; करे तो मरणोत्तर की कल्पना हो सकती है, कि मरणान्त "नरक" होगा, या "स्वर्ग" वासनादेह क्षीण होने पर सूक्ष्म में ही भिल जाता है।

कल्पवृक्ष और कामधेनु—उपर्युक्त "वासनादेह" की मृत्यु हो जाने पर मृतात्मा का "कारणदेह" (प्राण-शरीर) कार्य करने लगता है। यहां उसके यदि शुभ, सत्य, संकल्प हुए, तो संकल्पों के उठते ही, अभिलषित भोग की प्राप्ति होगी, उससे सुख आनन्द मिलेगा। संकल्प "मूर्तरूप" में उसी समय उपस्थित होगा; यही **"कल्पवृक्ष"** या स्वर्गीय **"कामधेनु"** है। यदि "कल्पवृक्ष" के नीचे बैठकर, सर्प के डसने का अशुभ संकल्प हुआ, तो सर्प प्रत्यक्ष आकर डसेगा। (अ० कां० ४।३४-८) **"विश्वरूपा धेनुः कामदुधा मे अस्तु"** मुझे स्वर्ग में विश्वरूपी कामधेनु प्राप्त हो, वह **"कामधेनु"** यही है। (मं० ५) **"एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो"** इसमें निर्दिष्ट "वहिष्ठ" शब्द कुरानशरीफ में वर्णित **"वहिश्त"** ही है जो अपभ्रंशरूप है।

प्राणदेह (कारणशरीर)—मानव व्यक्तिगत जीवात्मा के रूप में, मूलतः, कारण शरीरधारी होता है। जिस (प्राणदेह कारण शरीर) में महाकारण देह परब्रह्म के पैंतीस भावों या कल्पनाओं का बीजस्थान होता है। ये ही कारणरूप भाव शक्तियां समस्त भावों का जनक है। इन पैंतीस भावों का प्रभु ने पुनः विभाजन करके केवल उन्नीस ही तत्त्वों का सूक्ष्मदेह, और केवल सोलह तत्त्वों का भौतिक शरीर (स्थूलदेह) निर्माण किया है। सूक्ष्मदेह के उन्नीस तत्त्व ये हैं; मनोमय, भावमय, और प्राणमय। ये उन्नीस ही उपादान हैं। १ बुद्धि, २ अहंकार, ३ चित्त, ४ अन्तःकरण (इन्द्रिय चैतन्य-मानस); पांचों ज्ञानेन्द्रियां १ चक्षु, २ कर्ण, ३ नासिका, ४ जिह्वा, ५ त्वक् इनकी तन्मात्रायें; पाँचों कर्मेन्द्रियां १ प्रजनन, २ मल विसर्जन, ३ वाणी, ४ हाथ, और पैर, और शरीर के अन्दर १ विश्लेषण, २ परिपाक, ३ निस्सारण, ४ अभिसरण और ५ संचारण क्रियाओं को सम्पन्न करनेवाले १ प्राण, २ अपान, ३ समान, ४ उदान और ५ व्यान ये पांच प्राण वायु मिलाकर १९ उपादान हैं। इनमें स्थूल शरीर के सोलह रासायनिक उपादानों से निर्मित भौतिक-शरीर की मृत्यु के उपरान्त भी उपर्युक्त उन्नीस तत्त्वों से बना हुआ, **"सूक्ष्म शरीर"** बना रहता है।

विश्वात्मा ने मानव के सूक्ष्म उन्नीसों, और भौतिक सोलहों प्रतिरूपों की सारी ही जटिलताओं का समावेश किया हुआ है। विधाता ने इन स्पन्दन-शक्तियों को ही घनीभूत करके सर्वप्रथम सूक्ष्म और उसके बाद स्थूल का सृजन किया है। एक दूसरे की सापेक्षता के कारण, नियमानुकूल, जिससे आदि **"कैवल्यभाव"** आश्चर्यजनक नानारूप में परिणत हो गया है। **"प्राणदेह"** और **"कारणजगत"**, **"सूक्ष्मजगत"** और **"सूक्ष्मशरीर"** से पृथक हैं। इसी भांति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भौतिक (स्थूल) शरीर, और भौतिक जगत् भी सृष्टि के अन्य सभी स्वरूपों से स्वभावतः भिन्न हैं। शरीर ने अपने में विविध कल्पनायें कीं, और स्वप्नों के रूप में डाल दिया। इन दिव्य स्वप्नों की माया अपने अनेक रूप, गुण, स्वभावों से उत्पन्न हुई। यह मायारूप शरीर सभी, नाशवान हैं। सृष्टि रचियता के स्थिर और वास्तविक स्वप्नों से बना हुआ, हाड़-मांस का शरीर है। भूतल पर नित्य और निरन्तर द्वैताभाव विद्यमान होनेके कारण, सुख-दुःख,लाभ-हानि, स्वास्थ्य-रोग और जीवन-मृत्यु है, जो सत्-रज, तम पदार्थों तक ही प्रतिरोधित, और सीमित होते हैं। जब रोगों, व्याधियों अथवा अन्य पूर्ववर्णित संकटमय कारणों से मानव की जीवनेच्छा, प्रचण्ड रूप से हिल उठती है; तभी अन्धकाररूप मृत्यु आ उपस्थित होती है। उपर्युक्त मांस का भारवाही आवरण, अस्थाईरूप से हट जाता है। उससे हटकर आत्मा सूक्ष्म और फिर प्राणदेहों में सम्बद्ध रहा आता है। जिस महा् संयोजक शक्ति द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और प्राणदेह एकत्रित रहते हैं, उसी का नाम **"इच्छा"** है। जब इच्छायें (वासनायें) पूर्ण नहीं होतीं और शेष रह जाती हैं, उनकी प्राप्ति की परिकल्पनायें, मनुष्य दासत्व का मूल होती है। इन भौतिक वासनाओं, का मूल, इन्द्रिय भोग और अहंकार है। यह भौतिक विषयानुभोग की कामना तथा दवाव, सूक्ष्म-जगत् की आसक्तियों अथवा कारण अवस्था की कल्पनाओं की अपेक्षा अत्यन्त शक्तिशाली है।

सूक्ष्म जगत् में इच्छायें, स्पन्दन मात्र से ही; तृप्त हो जाती हैं। सूक्ष्म प्राणी, सूक्ष्म जगत के आकाशीय संगीत से तृप्त हो जाते हैं। वे यह देखकर कि, यह सारी ही सृष्टि, परिवर्तनशील प्रकाश की ही अनन्त अभिव्यक्ति मात्र है, प्रफुल्ल हो जाते हैं। ये सूक्ष्मशरीरी जीव, प्रकाश की गन्ध, रस, स्पर्श का भलीभाँति अनुभव करते हैं। इस भांति से, सूक्ष्म जगत् में इच्छायें सारे पदार्थों और अनुभवों की आलोक अथवा घ ीभूत विचारों अथवा स्वप्नों के रूप में, प्रेरित करने की, सूक्ष्म जीवों की शक्ति से, सम्बन्धित होती है। ये तीनों ही देह, स्थूल, सूक्ष्म और प्राण हिरण्यलोकस्थ स्वर्ग के पंच्छी "आत्मा" के "पिंजड़े" हैं।

"प्राणदेह" की कारण जगत् की वासनायें, अनुभूति अथवा प्रत्यक्षमात्र से तृप्त हो जाती है। इसी कारण मुक्तिमुक्त आत्मायें, जो केवल "प्राणदेह" में आवद्ध हैं, वे समस्त जगत् को ईश्वरीय स्वप्न, कल्पनाओं, की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं।

वे सङ्कल्पमात्र से, सभी पदार्थों के, प्रगट करने में समर्थ होते हैं। यही मात्र कारण है कि "प्राणदेही" जीव, भौतिक अनुभूति; अथवा सूक्ष्म जगत के आनन्दों को, भी स्थूल और आत्मा की सूक्ष्मतर संवेदनाओं के लिये, अवरीधक मानते हैं। प्राणदेही जीवों में अपनी वासनाओं को तत्क्षण ही, मूर्तरूपता प्रदानकर शमन करने की शक्ति होती है।

महाप्राण—जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म, आवरण से आवद्ध महाप्राणदेही, विशिष्ट आत्मायें हैं यथा "अनन्तकोटि-श्रीअमर बाबाजी" ने महद्ब्रह्मवत् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि कर सकते हैं। सारी सृष्टि का सृजनकर्त्ता विश्वात्मा है, उसके विश्व, स्वप्नजाल से सृष्टि का सृजन होता है।

आत्मा नैसर्गिकरूप से अदृष्ट है, उसे उसके शरीर, या इन चारों शरीरों के, अस्तित्व से ही, पहचाना जा सकता है। शरीरों की अवशिष्ट वासनायें, कामनायें ही इन शरीरों के अस्तित्व के कारण हैं। भले ही स्थूल सूक्ष्म या प्राण शरीर में आवद्ध, आत्मा किसी लोक में हो; आत्मा को वन्धन में, डालने को, इन्द्रियों की दुर्बलतायें, आसक्तियां, उसे घेर ही लेती हैं, और जन्म-मरणों की जननी बन जाती हैं।

अन्धकार रूप मृत्यु से नष्ट, भौतिक स्थूल देह के, आवरणरूप सूक्ष्म, और प्राणदेह बने ही रहते हैं। ये दोनों विश्वात्मा, से सज्ञानरूप से मिल जाने में बाधक, रहे आते हैं। इन दोनों की भी वासनायें, ज्ञान से जब निःशेष, हो जाती हैं, तब ये दोनों आवरण (सूक्ष्म प्राण देहरूप) नष्ट हो जाते हैं, तभी सीमित "आत्मा" अन्तिमरूप से मुक्त होकर, अनन्त परमात्मा में तदाकार हो जाती है। यह **सूक्ष्मजगत का स्वरूप** और **स्थिति वर्णित है।**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारण जगत् :—यह अति-अनुपम, अलौकिक, अवर्णनीय रूप से, "सूक्ष्म" है। इसे महान्-विराट् एकाग्रता से ही समझा जा सकना सम्भव है। नेत्र बन्द करते ही, इसे देखने में समर्थ हो सकने पर ही, सूक्ष्म जगत्, और उससे सम्बद्धित, भौतिक जगत्, ज्योतिर्मय पिण्ड से, सम्बद्ध ठोस छींके से, अपनी विशालताओं के सहित, केवल विचाररूप में वर्तमान है। इस अतिमानवीय एकाग्रता से, सारी दुरूह, जटिलताओं सहित, इन दोनों विश्वों को कल्पना मात्र में ही विलीन होना सम्भव होगा, तभी कारण जगत में पहुंच पाना, और मनोजगत्. और पदार्थ जगत् की धुरियों की परिधियों पर टिका जा सकेगा। वहाँ ठोस, द्रव, वाष्प, विद्युत, शक्ति, देवताओं, सर्व प्राणियों, मनुष्यों, वनस्पतियों, ओषधियों, वीजाणुओं आदि-आदि सारी सृष्ट वस्तु मात्र को चैतन्य रूप में; देख सकने में, समर्थ हो सकेंगे। जैसे भौतिक दृष्टि से, अदृष्ट केवल कल्पना रूप में है। यह अपने नेत्र बन्द कर, अपने अस्तित्व का ज्ञान किया जा सकता है, अर्थात् जैसे एक मनुष्य भूतल पर कल्पनायें कर सकता है, वैसे ही प्राण देहधारी. वास्तविक रूप में कर सकता है।

कारण जगत में जीवों को अत्यन्त स्वतन्त्रता होती है, वे कर्म-बन्धन और भौतिकी या सूक्ष्म किसी भी प्रकार की, वाधा से रहित, अनायास ही, अपने सङ्कल्पों को मूर्तरूप में कर सकते हैं परन्तु मानव की अति उन्नत, कल्पना प्रवीणबुद्धि केवल मन के अन्दर ही, एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ पाती है। **"प्राणदेही"** जीवों को यह पूर्णज्ञान होता है कि यह **"भौतिक जगत्"** मूलत (विद्युत अणुओं) से अथवा **"सूक्ष्मजगत्"** प्राण कणिकाओं से नहीं बना है। अपितु वास्तविक **"वैश्वानर"** की अति सूक्ष्मतम विचार कणिकाओं से ही बने हुए हैं, ये दोनों माया से विभक्त और नष्ट होते हैं। इसके कारण ही जगत्, विश्वस्रष्टा से पृथक् दृष्टिगोचर होता है। कारण जगत् में, मृत्यु और पुनर्जन्म दोनों, विकल्पमात्र ही होते हैं। प्राणदेही जीवों का आहार, नित्य नवीन ज्ञानामृत है। शान्तिस्रोतों से पान, मार्गरहित अनुभूति पथपर विचरते हैं। परमानन्द सिन्धु में तैरते हैं। प्राणदेही जीव, परस्पर में एक दूसरे को, कल्याणसिन्धु विश्वात्मा के व्यक्तिगत-विन्दु के रूप में पहचानते हैं। उनके चहुँओर व्याप्त, संकल्पजन्य पदार्थ ही मात्रवस्तु है। प्राणदेहधारी यह मानते हैं, कि उनके विकल्पों और शरीरों के मध्य, कल्पनामात्र का अन्तर है। प्राण देहधारी, दिव्य अन्तःकरण की शक्ति से किसी भी पदार्थ का सृजन् या विलयन् कर सकते हैं। प्राणदेहों में प्रायः ५०० से सहस्रवर्षों की, जीवनअवधि ही है, परन्तु विशिष्टतपोधन दो सहस्र से भी अधिक काल तक रहते हैं। तदनन्तर अति प्रगाढ़तर, समाधियों द्वारा मुक्तआत्मा अपने को क्षुद्र प्राणदेह से निकालकर **"महाप्राण शरीर"** को प्राप्त कर लेता है। प्राणदेह के संकल्पों के आवर्तसमुदाय, शक्ति, इच्छा, आनन्द, शान्ति, प्रेम, अन्तर्ज्ञान, स्थैर्य, आत्मसंयम और एकाग्रता आदि की विशिष्ट तरंगें, परमानन्द सिन्धु में विलीन हो जाती है। उस स्थिति में **"आत्मा"** चैतन्य की विशिष्ट एकदेशीय आनन्दतरङ्गों का परित्यागकर, सनातन, हास्य, रोमांच और कम्पनादि की तरङ्गों से युक्त एकदिव्य आनन्द अमृतसिन्धु में विलीन हो जाती है।

इन स्थूल, सूक्ष्म और प्राणदेहों के कोशों (आवरणों) से बाहर निकल जाने पर **"आत्मा"** सदा के लिये **"सापेक्षता"** के नियमों-बन्धनों से परे, अवर्णनीय चिर विद्यमानता प्राप्त कर लेती है। इन तीन शरीरों से मुक्त होने के लिये पतितजीवों को असंख्य भौतिक, सूक्ष्म और प्राणदेह धारण करने पड़ते हैं। चरममुक्ति प्राप्तमहान् आत्मा स्वेच्छया सूक्ष्मजगत् में रह सकता है। चाहे ईश्वर इच्छा से लोककल्याणार्थ, भूलोक में आ जा सकता है। सूक्ष्मजगत् में निवास, प्राणी के अपने भौतिककर्म और इच्छाओं के, पूर्णरूप से क्षय, होने पर ही हो सकता है। कुछ जीव, भौतिक मृत्यु के उपरान्त, तत्क्षण ही पृथ्वी पर लौट आते हैं। ऐसा उनकी दृढ़इच्छा के कारण ही होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से समुन्नत व्यक्तियों के सूक्ष्म जीवन की सीमा पृथ्वी के समयानुसार, पांचसौ वर्ष से लेकर दो हजार वर्ष तक ही हैं। जैसे पार्थिवशरीर को अन्धकार रूप मृत्यु के, समय घोर कष्ट होते हैं, वैसे ही सूक्ष्मजीवों को कष्टकर संघर्ष नहीं होता। इनमें से कुछ एक ही **"सूक्ष्मतर"**, **"प्राणदेह"** धारण करने के लिये **"सूक्ष्म"** शरीर का परित्याग करने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के विचारमात्र से थोड़े से घबरा उठते हैं। अनभिलषित मृत्यु, जरा, रोग और व्याधि से सूक्ष्मजगत् मुक्त होते हैं। इस अभिशापित भौतिक, नश्वर जड़देह को ही, पूर्णचैतन्य आत्मा मानकर, इसे ही बनाये रखने के लिये, निरन्तर, वायु निद्रा और आहार सापेक्ष्य होता है। भौतिक मृत्यु के साथ ही श्वास लुप्त होकर, शरीर के पञ्चकोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) नष्ट हो जाते हैं **"सूक्ष्मशरीर"** की मृत्यु होने पर प्राण, कणिकायें विखर जाती है, जिनमें सूक्ष्मजीवों के प्राण संगठित होते हैं। भौतिकमृत्यु के बाद जीव को उसके रक्त, माँस शरीर का ज्ञान, नष्ट होकर वह **"सूक्ष्म जगत्"** के सूक्ष्मशरीर के प्रति चैतन्य हो उठता है।

यथासमय **"सूक्ष्मदेह"** की मृत्यु का अनुभव करते हुए, जीव की चेतना इस प्रकार सूक्ष्म जीवन-मरण से पार होकर भौतिक जन्म-मरण की ओर आकर्षित हो उठती है। यह सूक्ष्म और स्थूल जन्म-मृत्यु का आवागमन रूप, आवर्तनचक्र; सभी अज्ञानी जीवों के लिये, अनिवार्य अभिलेख है, ये ही विविध स्वर्गों और नरकों की शृङ्खला बन जाती है।

हिरण्यलोक :—हिरण्यलोक की विशिष्ट आत्मायें-महाव्योम-परमाणुओं से सृष्ट होती है। इस लोक के अधिवासी, आध्यात्मिक रूप से, अत्यन्त उत्कृष्ट होते हैं। जो भूलोक के अपने पूर्वजन्म में, ध्यान-बल से, अन्धकारमयी मृत्यु के समय, सज्ञानरूप से भौतिक **"स्थूलदेह"**, का त्याग करने की क्षमता प्राप्त, महान् आत्मायें ही, वास कर सकती हैं। भूतल पर **"सविकल्प समाधि"** की अवस्था का अतिक्रमण कर **"निर्विकल्प समाधि"** की क्षमता वाले ही "हिरण्यलोक प्रवेश" के अधिकारी हो सकते हैं। सविकल्प समाधि में साधक, ईश्वर के साथ **"सायुज्य"** की अनुभूति प्राप्त कर लेता है, परन्तु स्थिर ध्यानावस्था के अतिरिक्त, अन्य किसी भी दशा में विश्वचैतन्य को, स्थिर नहीं रक्खा जा सकता। नित्य, निरन्तर ध्यानावस्था से वह निर्विकल्प समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है। उसमें वह मुक्तरूप से, विश्व विचरण शक्ति के साथ ईश्वरानुभूति से, विचलित नहीं होता। निर्विकल्प समाधि में, योगी अपने पार्थिव देह और सांसारिक कर्मों-इच्छाओं के, लेशावशेष को भलीं-भाँति नष्ट कर लेने पर भी कुछ **"सूक्ष्म"** एवं **"कारण जगत्"** के कर्मों का क्षय करना शेष रह जाता है, और इसी कारण उच्चस्तरीय सूक्ष्म और प्राण देहों को धारण करना पड़ता है। हिरण्यलोक के अधिवासी, सामान्य सूक्ष्म जगत् को पार कर लेते हैं, जहाँ भूलोक वासी प्रायः सभी जाते हैं। वे सूक्ष्म जगत् के, अपने पूर्व कर्मों के, अनेक बीजों को नष्ट कर देते हैं। वहाँ उच्चावस्था प्राप्त जीवात्मायें ही सूक्ष्म जगतों में, मुक्ति-साधक कार्यों को सफलता पूर्वक सम्पन्न करने में समर्थ हो सकती है। तदन्तर विश्वविधानानुसार इन साधकों को भी नये सूक्ष्म-शरीर धारण कर पुनर्जन्म लेने पड़ते हैं। यह तभी तक होता है जब तक निश्शेष रूप से कर्म जीवों का अन्त नही हो जाता। ये प्राण देह, सूक्ष्म देह (अतिवाहक-शरीर) जो मनुष्य की मानसिक और भावात्मक प्रकृति का स्थान है, और स्थूल पञ्चभौतिक पार्थिव है, पृथ्वी पर मनुष्य भौतिक इन्द्रियानुभूति युक्त होता है। सूक्ष्म देह चैतन्य भावनाओं और प्राण कणिकाओं से संगठित शरीर धारण कर कार्य करता है। **"प्राण देही"** जीव आनन्दमय भावराज्य में विचरता है। सूक्ष्य जगत अनेक हैं। उन सूक्ष्म जगतों के निवासी, सूक्ष्म देही, एक, एक से, दूसरे ग्रह की यात्रा में, सूक्ष्म-वाहनों या आलोक पुञ्जों का उपयोग करते हैं। जो मन से भी अत्यन्त द्रुत-गामी होते हैं। यथा गरुड़ सूक्ष्म जगत प्रकाशमय रङ्ग-विरङ्ग आलोकों से निर्मित है। भूलोक सहस्रों गुना है यह भूलोक सूक्ष्मलोक के, तेजोमय विशाल पिण्ड के नीचे एक छोटी सी टोकरी जैसी है। महाकाश में, असंख्यों अनेकों स्थूल सूर्य-चन्द्र आदि नक्षत्र ग्रह हैं, जो परिभ्रमण करते हैं। ये स्थूल की अपेक्षाकृत, अत्यन्त रमणीय हैं। सूक्ष्य जगत् के अहोरात्र भी, भूमण्डल की अपेक्षाकृत अधिक लम्बे हैं। ये सूक्ष्म जगत् असीम, अतीव सुन्दर, स्वच्छ, विशुद्ध और सुव्यवस्थित हैं। वहां एक **"वसन्त"** ऋतु ही होती है। देदीप्यमान शुभ्र विचित्र प्रकाश की वर्षा होती रहती है, पारदर्शक झीलें, सरोवरें, झरने, देदीप्यमान समुद्र, इन्द्रधनुषी नदियों की भी बहुलता है।

सूक्ष्म जगत् में निर्जीव ग्रह, और ऊसर भूमि नहीं होती। सूक्ष्मतर सूक्ष्म "हिरण्यलोक" के अतिरिक्त साधा-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रण सूक्ष्म जगत् में, पृथ्वी पर से, नये आये कोटि-कोटि सूक्ष्म जीवात्माओं का वास है यहीं परियाँ, मत्स्य कन्यायें, मछलियाँ, पशुओं, अपदेवताओं, बौनों, यक्षों, प्रेतात्माओं की भरमार है, ये भी स्वकर्म भोगनानुसार विविध सूक्ष्म निकृष्ट लोकों में वास करते हैं। श्रेष्ठ और पतित-पतिततर आत्माओं के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के मण्डलाकार आवास हैं। भली आत्मायें मुक्त रूप से विचरती हैं, दुष्ट आत्माओं के लिये कारागार जैसे सीमित क्षेत्र हैं। भूतल के मानव मिट्टी के नीचे कीट-पतंग, जल में मत्स्य और वायु में पक्षियों की भाँति विभिन्न क्षेत्र, निकृष्ट, उत्कृष्ट जीवात्माओं के लिये सूक्ष्म जगत् में है। विविध सूक्ष्म जगतों से, निष्कासित पतित, देवदूतों के मध्य संघर्ष युद्ध, मन्त्र शक्ति (मन्त्र उच्चरित शब्द बीज है), जो ध्यान की मानसिक शक्ति से छोड़े जाते हैं। ये बहिष्कृत, निकृष्ट जीवात्मायें निम्नतर सूक्ष्म जगतों के अन्धकार प्रदेशों में; जो विविध "नरक" है, उनमें निवास करते हुए; अपने घृणित कर्मफलों के भोग रूप क्लेशों, को भोगने को वाध्य किये जाते हैं। इन घोर अन्धकारपूर्ण, जघन्य विविध नरकों के ऊपर का विस्तृत क्षेत्र सुन्दर और प्रकाशवान् है। यह सूक्ष्म जगत, विधाता के संकल्प और परिपूर्णता प्राप्ति की, परिकल्पनाओं के साथ, भूलोक से कहीं अधिक स्वाभाविक रूप से लय में है। इस सूक्ष्म जगत् की वस्तुमात्र, विशेषता की, और आंशिक रूप में, सूक्ष्म निवासी जीवात्माओं की, इच्छा के आमन्त्रण पर उत्पन्न होती हैं। ये जीवात्मायें आत्म बल से स्रष्टा की उन वस्तुओं से सशोधन-परिवर्द्धन करने में समर्थ होती है, यह विधाता से प्राप्त उनकी स्वातन्त्र्य शक्ति होती है। वहाँ की ठोस वस्तुयें भी, सूक्ष्म जीवधारियों की मात्र इच्छा से तत्क्षण गैसों, द्रवों अथवा परमाणु शक्ति रूप में परिवर्तित हो जाती है। भूलोक की ठोस वस्तुओं को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा ही द्रवित किया जा सकता है। भूलोक की भूमि, जल, थल, नभ, युद्ध, विग्रह, हत्या, घात, पात, द्रोहादि से परिप्लुत है। सूक्ष्म जगतों में आनन्दप्रद, समत्व है। वहाँ के देहधारी स्वेच्छया उत्पन्न या अदृश्य हो सकते हैं। जल, थल, नभचारी भी मानव क्षणिक रूप धारण कर लेते हैं। वे सहज ही में एक दूसरे से बिना डाक संचार, सम्पर्क कर सकते हैं। वे स्थाई, निर्दिष्ट, विधि विधान से आवद्ध, नहीं होते, कुछ कर्म-बन्धन तो रहते हैं वहाँ की वस्तु मात्र **"वैश्वानर"** आलोक से कम्पायमान है। नारी गर्भ से जन्म वहाँ नहीं होते वे स्वकीय आशा मात्र से विशिष्ट सूक्ष्म शरीरी, सन्तति उत्पन्न करने में स्वतन्त्र है। ये शीत, तापादि के वशीभूत नहीं होते, सूक्ष्म शरीर में सूक्ष्म मस्तिष्क, आलोकित सर्वदर्शी सहस्रदलकमल, आंशिक रूप से सक्रिय रहता है, इसके मेरुदण्ड में या सुषुम्ना में विकसित षट्चक्र या पद्म होते हैं। इस मस्तिष्क से हृदय, प्रकाश, महा जागतिक शक्ति से; सूक्ष्म स्नायु-तन्तुओं, और शरीर कोशों में, संचालित करता है। ये सूक्ष्म जीव; प्राण-कणिक शक्ति; और पवित्र मन्त्रों के स्पन्दन से; स्वकीय रूपों में; परिबर्तन करने में समर्थ हैं। प्रायः अन्तिम भौतिक शरीर की प्रतिमूर्ति ही, सूक्ष्म शरीर है। इनके मुख और शरीर स्थूल यौवन शरीर के तुल्य होते हैं। सूक्ष्म जगत का सर्वग्राही षष्ठेन्द्रिय-अन्तर्ज्ञान द्वारा ही अनुभव होता है समस्त सूक्ष्मदेहधारी—केवल अन्तर्ज्ञान द्वारा ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध अनुभव करते हैं उनके **तीन नेत्र** होते हैं, जिनमें दो अर्धोन्मीलित, तीसरा भ्रूमध्य में खुला रहता है। इनकी नेत्र कर्ण, नासा, जिह्वा और त्वक्इन्द्रियें; होते हुए भी; किसी एक ही से; संवेदन का अनुभव कर सकते हैं। ये सूक्ष्मलोक ऊर्ध्व में भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महल्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक हैं।

निम्नकोटि के ७ अधोलोक हैं, ये भी सूक्ष्म जगत में, निकृष्ट अधन्य, घृणित कर्मियों के भोगस्वरूप कारागार **नरक** हैं, इनके संक्षिप्त नाम ये हैं। १ अतल, २ वितल, ३ सुतल, ४ तलातल, ५ महातल, ६ रसातल, ७ पाताल, इनके भी अनक भेद और नाम हैं, वे ग्रन्थभार से देने में संकोच है।

ब्रह्मविद्या—उपर्युक्त रूप में, आंशिक ब्रह्मविद्या के ज्ञान कवच का उल्लेख किया है। इससे आध्यात्मिक विजय प्राप्त की जाती है। "आध्यात्मिक विजय" के क्षेत्र में प्रायः उपर्युक्त शरीरों सहित पार्थिव शरीर, इन्द्रियां, मन, प्राण, वृद्धि, अहङ्कार, चित्त, काम, आत्मा, प्रकृति और सभी प्रकार की विकृति आदि से सम्बद्ध है। इनको निर्दोष

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रखना, इनकी स्वशक्ति से परिपूर्ण करना, और अवाधरूपेण आत्मोन्नति में लगाये रखने से "आध्यात्मिक विजय" होती है। यहां इन्द्रियों की प्रकृति, विकृति में सम्भावित दोष, रोग और व्याधि सभी विचारणीय हैं।

(अ०वे० कां० १६ पर्यायसूक्त १।३-४) **"निर्दाहः तनूदूषिः मना-हा आत्म-दूषिः इदं तमति सृजामि"** शरीर की जलन, शरीर के सब दोष, मन के नाशक सब भाव, और आत्मघातक सबभाव, विचार इन सभी को मैं दूर करता हूँ। इनके निवारण करने के वैदिक उपाय **"शमः तनूशुद्धिः मनःशुद्धिः आत्मशुद्धिः"** अर्थात् इन्द्रिय दमन, इन्द्रिय शमन, से दाह दूर होकर, सर्वत्र शान्ति "तनूःशुद्धि" से शरीर के सभी दोष निवारण होते हैं "मनःशुद्धिः" से मनोवल बढ़ता है, और "आत्मशुद्धिः" से आत्मोन्नति होती है। यही श्रीमद्भागवद्गीता अ० २ में वर्णित है। उपर्युक्त दोष शरीर, मन, बुद्धि आत्मा में होने पर क्या करते हैं। (अ० प० सू० १-२-३) "रुजन्, स्रणन्, श्रोक खनः"। ये दोष जहां भी होते हैं, वहां तोड़ते हैं, मरोड़ते हैं, कुचलते हैं, फोड़ते हैं, काटते हैं, खोदते हैं, गर्त करते हैं आदि असंख्य भांति से नष्ट भ्रष्ट करते हैं। इनके निराकरणार्थ—(मं० १।५) **"यं वयं द्विष्मः, तमभि अतिसृजामि"** (मं० १।७) **"श्रोकं खनिं तनूदूषिं अतिसृजामि"** जिस रोगादि और द्रोहादि दोषों से हम घृणा करते हैं, उन्हें स्वशक्ति से दूर करते हैं। (मं० १।८) जो आप सभी के अन्दर भयावह, अत्यन्तघातक दोष हों, सर्वप्रथम मैं उन्हें दूर करता हूँ। (मं० १।६।१०) अपांगण (वारुणास्त्र) मन्त्रों से अभिमन्त्रित जलरूपी उद्वज्र से इन्हें दूर बहाये देता हूँ। जल वेदोक्त सार्वभौम भेषज है, इसके मार्जन, स्पर्श और आचमन, स्नान द्वारा चारों शरीरों के भयङ्कर मल निकालता हूँ। (म० १।१२-६)। (मं० १।१३) इस अमृत भैषज्य जल से, प्राण, वीर्य, ओज, बल-सम्वर्द्धन करता हूँ (मं० २।१) "निर्दुरमण्यः" दुर्गति पाशों को दूर करता हूँ। इसी के द्वारा मैं (मं० ३।२-४) "तेजस्विता, महत्त्वाकांक्षा, मस्तिष्क की दैवीशक्ति विशेषगुण, धर्म, यज्ञसाधन, धारक शक्तियां, बन्धन-मुक्ति की क्षमता, सिद्धशस्त्र, दान करने की क्षमता, सदिच्छा और प्राणबल बढ़ाता हूँ, ये मेरा कभी त्याग न करें" (मं० ३।५) आत्मा ज्ञान सम्पन्न है, सन्मार्गियों के हृदयों में ही अवस्थित हैं; उनके अन्तः मानस में ही मनन करता है, वह अपनी विशेष धार्मिक शक्ति से समुद्र की भांति फैला हुआ है, मरणधर्मियों में वह अमर है, उसी की शक्ति से हृदय शान्त और इन्द्रियों की सूक्ष्मगति समृद्ध करता हूँ।

दुस्स्वप्नः—(मं० ५।१-८) रोग, दुखस्था, दारिद्रय, दुर्गति, पराभव और इन्द्रिय दोषजन्य दुस्वप्नों का शमन करता हूँ। (मं० ६।२) विधाता मुझे पुण्यलोकों में धारण करें, आत्मतेज प्राप्त कर सूर्य "वैश्वानर" की अखण्ड ज्योति से मिलें और यज्ञों के साधनार्थ धन उसी विश्वकोष से मिले **(आत्मा का स्थान)** जहां से सूर्य उदय होकर अस्त होता है ये वेद वाणियां जहां से निसृत होकर, जहां बोलती हुई, पहुँचती हैं,उसी दिव्य आलोक में "आत्मा" सन्निहित होता है (१०।८-३६)। "मं० १२" अनन्त और अन्तवाला, ये दोनों मिले हुए हैं। उस त्रिकालज्ञ, त्रिकाल स्रष्टा का विचार करनेवाला "आत्मा" स्वर्ग रक्षक होकर विचरता है। यह **ब्रह्मविद्या, ब्रह्मकवच, ज्ञानकवच** का उपर्युक्त प्रारूप है, जिसका आगे ग्रन्थ में विश्लेषण है।

यज्ञ से त्रिविध व्याधिशमन :—(अ० मं० ४।२२) ऋषि—मैं अपने नेता को उसके सभी शत्रुओं का बल क्षीण करते हुए बढ़ाता हूँ। (मं० ६) वीर! तू उच्चबली हो, तेरे शत्रु का अधःपतन हो, सभी शत्रुदल अधोगति को जावे। (कां० ६।५३-२) प्राण, आत्मा, चक्षुः और जीवन शक्ति पुनः प्राप्त हों, पुत्र-पौत्रादि के साथ भोग्य पदार्थ उपलब्ध हों। वीरो! आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो, आप सभी की भुजायें वीरतापूर्ण विजय प्राप्त करें। हमारी सेना का उत्साह, मनोवल ऊचा हो। शत्रुओं के शस्त्र, तेज, मन, उत्साह क्षीण करता हूँ। (कां० ३।१६) मेरा यह ज्ञान तेजोमय है, बल तेजस्वी है, मैं जिनका पुरोहित हूँ, उनके बल, क्षात्रतेज, क्षीण न हों। मैं शत्रुओं के बाहु तोड़ता हूं, उन्हें अवनत करता हूं। शत्रुओं के मन भयभीत हों, बुद्धि भ्रष्ट हो, वे युद्ध में हमारे वीरों के सामने से भाग निकलें, आत्मसमर्पण करें। (१७।१) मैं देवों का प्रिय बनूं, सामर्थ्यवान् दिग्विजयी, ओजस्वी, अपनेस्व, सामर्थ्य से,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विजय प्राप्त करने वाला, दीर्घायु वाला होऊं। (कां ४।३३) हमसे पाप दूर रहें। (६।११५) जाने, अजाने, सोते, जागते, बैठे, चलते, व्यक्तिगत या सामूहिक जो भी पाप हमसे हुए हों, वे मुझसे दूर हो जावें, वे दूर न हों तो मैं दूर फेंकता हूं। (७।११५) पुण्य लक्ष्मी ही यहाँ निवास करें—दरिद्रा को हम दूर करते हैं (३।२) हे मरुद्गणो ! स्पर्धा के साथ हमारे अनर्थ कर्त्ताओं को **तमसास्त्र** से व्यामोहित कर दो, जिससे वे हमें न देख पावें। हे इन्द्र ! शत्रुओं को मोहित कर उन्हें भयभीत करो, वे आपस में ही लड़कर नष्ट हो जावें। (८।४) राक्षसों को मार डालो, नीचे गिरा दो, उनको नष्ट करो। (मं० ३) ज्ञान के द्वेषियों, कच्चे मांसभक्षी; क्रूरकर्मी, दूसरे के धन हड़पने वालों को नष्ट कर दो। इनमें फिर एक भी न उठे, इन पर विनाशक अस्त्र पात कर दो, मेरे निन्दकों को नष्ट करो, उनकी दसों इन्द्रियां नष्ट कर दो। (८।३) मनुष्य, पशु मांस भक्षकों, दूध हरण कर्त्ताओं के सिर तोड़ दो।

(मं० १) हमारी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृ भाषा, ये तीनों ही देवियां, राष्ट्र के अन्तःकरण में विराजमान रहें, और हमारे राष्ट्र को उन्नत बनायें। (१०।१-३०) तेरे साथ किये गये, घातक, प्रयोग को, कर्त्ता के पास भेजता हूँ। (मं० १५) हे कृत्ये ! तू प्रयोग करने के मध्य में, घोड़े के समान फिर (५।१४।१२) घातक प्रयोग तू अपने प्रयोग कर्त्ता; को ही पकड़ वापस चला जा। (७।११-३-२) हे तृष्णे ! तुझे आत्म शक्ति से दबाता हूँ। (६।१८।३) हे मत्सर ! तुझे धोंकनी की हवा की भाँति बाहर निकालता हूँ। (कां २।८) मैं इस भेषज से; आनुवंशिक पापों को नष्ट करता हूँ (४।३७-२) हे औषधि ! तू पिशाचों रोग कृमियों, राक्षसों को जला दे। (२।३१-३२) शरीर के रोग कृमियों को नष्ट करता हूँ। (१।२४) मैं श्वेत कुष्ठ का नाश करता हूँ, चमड़ी का रङ्ग शरीर के तुल्य हो गया है। (१।१२) मैं खाँसी, श्वांस, सिर दर्द, कफ को मन्त्र बल से दूर करता हूँ। (६।८५) मैं वाणी से रोग को दूर हटाता हूँ। (१२।२-३०) मैं मृत्यु के पैर हठा कर लम्बी दीर्घायु से युक्त इसे करता हूँ। सब रोग तुझसे दूर करता हूँ। (१।८) मैं सभी रोग-यक्ष्म और मृत्युओं को हटाता हूँ। (३।११-४) यह हवन् सभी रोगों–व्याधियों से निर्विवाद दूर करता है। (कां ६।६३) मैं दुस्साध्य मृत्यु बन्धन; जो पैदा होने से ही गले से बँधा हैं, उसे तेरी नीरोगता-स्वास्थ्य तेज और दीर्घायुष्य, के लिये खोलता हूँ और उस नियामक मृत्यु को भी नमस्कार करता हूँ। (६।४२) मैं तेरे क्रोध को भी पैर से दवाता हूँ। (१।२२) पाण्डु और कामला रोगों को दूर कर हृष्ट पुष्ट बनाता हूँ। (कां ४।१९) देव सभा के सभासदों ने यही दिव्य बूटी (अपामार्ग) वर्णित की है। (६।१०९) पिप्पली, उन्माद बवासीर, भगन्दर और जीवन की उत्तम भेषज है। यह मृत्यु पाशों को तोड़ती है। (४।१२) यह रोहिणी टूटी हड्डी जोड़ने में पूर्ण समर्थ है। (५-२) पर्वत पर होने वाली "कुष्ठ" भेषज सभी रोगों—कुष्ठ दोषों का संहार करती है।

(कां ८।६) ऋषि वाणी ! मांस में उत्पन्न होने वाले, हिंसक, वीर्यदोष उत्पन्न करने वाले, बाल सफेद करने वाले, कुरूपता बढ़ाने वाले, गर्दन के बाहर या अन्दर होने वाली व्याधियों, आँखों में सुस्ती लाने वाले, प्रसव अवस्था में, जंघाओं में, आने वाले बच्चा होते ही ग्रसने वाले, काले, बालों वाले, प्राण घातक, मुख वाले, शरीर के स्तम्भ में रहने वाले; घातकी, क्षीणता उत्पादक, गर्भ की गन्ध लेने मात्र से; घात करने वाले, स्पर्श करने से ही नष्ट करने वाले, मांसभक्षी, हिंसक, कुत्ते के समान कष्टकारक, निस्सत्त्व करने वाले, गर्भ को इधर-उधर अदृश्य करने वाले, भाई, पिता, पति के रूप बनाकर स्वप्न या अन्धकार में डराने वाले, गर्भ रूप में गर्भ में प्रवेश कर रहने वाले नपुंसक या वन्ध्या बना देने वाले, सोती के साथ सहवास करने वाले, स्त्री को मेरे बच्चों वाली, गर्भपात् होने वाली, पुत्र हीन बनाने वाले, गदहे के समान उदर में दहाड़ने वाले, सन्ध्या काल में आघेरने वाले, ऋतु धर्म क्षीण, अनियमित बना देने वाले, अति रक्तस्राव कर क्षीण करने वाले, सुई के समान अग्रभाग वाले, बड़े पेट वाले, टेढ़े मेड़े भयङ्कर शब्द करने वाले, चमकाहट वाले, काटने वाले, शिखण्डी की भाँति अकेले में स्त्री के समक्ष नाचने वाले, स्त्रियों के गर्भभागों को, उत्पीड़ित करने वाले, अपने हाथों में सींग जैसी वस्तु लेकर, स्त्री के पास पहुँचने वाले, जिनके पैर पीछे-एड़ियाँ आगे,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुख आगे होते हैं; खल, गोमय के धूम के समान, बड़े मुख वाले, कष्ट देने वाले, अण्डे जैसे गर्भ को खाने वाले, जिनकी आंखें बिगड़ी, तिरछी, क्षीण, स्त्री सुख हीन, स्वपति के साथ रहने वाली, साध्वी गर्भवती के साथ सम्भोग करने वाले, मुनिवेशी, कपटी, मारने वाले, गर्भ नष्ट करने वाले, जन्मे हुए, वाल को मार देने वाले, पीत वर्ण कर देने वाले, आधे उत्पन्न गर्भों को मारने वाले, प्रसूति गृह में रहने वाले, गन्धवान, स्त्रियों के भाग में रहने वाले रोग—व्याधिकारण वीजों को, मन्त्र भेषज से नष्ट कर; रक्षामणि से तुझे पुनः **वीरप्रसूति** होकर रह तेरा वन्ध्यापन, वच्चों का मारना, रोना, पाप भोग, आनुवंशिक रोग-घातक रोग सब दूर कर नीरोगता, स्वस्थता, आयुष्मती, सुमङ्गलकरणी बनाता हूँ।

(कां ५।३५, तथा ३।२३) तू इस पुरोडाश रूप विश्वगर्भप्रदाता यज्ञावशेष को, विधिवत पति द्वारा ग्रहण कर, यही तेरा प्रकाशवान, शान्तिप्रद, तेजस्वी लोकत्राण परायण शक्ति वाला, गर्भ रूप में प्रविष्ठ होकर तुझे **वीरप्रसूति** होने का सुअवसर प्रदान करेगा। देवी! तुझ से गर्भावस्था में या रजोधर्म काल से, जो भी स्पर्श करेगा उसे अन्धा बनाता हूँ, जो सर्प रूप में ऐसी अवस्था में तुझसे सम्पर्क करेगा, उस पर तेरी छाया पड़ने मात्र से ही अन्धा होना पड़ेगा, उसे कुष्ठ तथा शिश्न रोगों; मधुमेहादि से व्याधिग्रस्त बनाता हूँ। तेरी पूर्व सन्तति के मरने से, जो दुग्ध स्तनों में विष रूप हुआ हैं, उसे और तेरे स्तन रोग 'थनैला'' आदि को तेरे बच्चों, नवजात शिशुओं को, अव यह न सुखा सकेगा। उनके आन्त्रिक, प्लीहा, जिगर आदि को भी इसी से दूर करता हूँ। तू अपमार्ग तथा गुग्गुल का सेवन कर।

प्राजापत्य इष्टि :-(कां० ३।२३) वन्ध्यास्त्री का, आठों प्रकार का, वन्ध्यत्व दूर कर उसे उत्तम आयुष्मान, स्वस्थ, वीर पुत्र होने योग्य **"जननी"** योग्य बनाने के लिये (मं० १ से ३) ऋषिवाणी—हे स्त्री! जिन कारणों से तुझे दौर्भागिनी, वन्ध्या बनना पड़ा, उन सभी दुष्ट, दुःखद कारणों को तुझसे दूर कर, तेरे से दूर कर अन्यत्र ले जाते हैं। अब तेरे गर्भ में पुरुष गर्भ आवे और दस मास उपरान्त तुझे वीर पुत्र जननी बनाये। तू स्वयं पुत्र सन्तति उत्पन्न कर, उसके पीछे भी पुत्र ही हो। तू पुत्रों की माता बन, तुझे प्रजावती बनाता हूँ। गर्भ तेरी योनि में आये, इस प्रकार के "पुत्रेष्टि" के पुरोड़ाश और "शिव संकल्प चिकित्सा" रूप "आशीर्वाद" से ही वन्ध्याकारक, दुष्ट कारण दूर हुए हैं। भगवान् राम भी उसी यज्ञ का परिणाम थे। आशीर्वादात्मक सूक्त (५।२५) पढ़ें, विशेष विधि ग्रन्थ में वर्णित है।

कामाग्नि की शान्ति :—प्राणी के आध्यात्मिक तथा दीर्घायुष्य मार्ग के, सार्वभौम शत्रुगण यदि कोई है तो वे (१) काम, (२) क्रोध, (३) लोभ, (४) मोह, (५) मद और (६) मत्सर ही है। जो छाया के साथ स्थूल, सूक्ष्म और प्राण देहों में भी अपना उग्र, दुष्ट प्रभाव डालकर अभ्युदय में बाधक हुए, होते, और होंगे भी। इन्हें स्थूलकाय चिकित्सा पद्धतियों से, दूर करना सर्वथा असमर्थ और भ्रामक है। यदि इसका प्रभावपूर्ण, समर्थ कोई भी निराकरण का मार्ग हो सकता है, हुआ है और होगा भी, तो वह है अथर्ववेद की शौनकीय शाखोक्त "वृहच्छान्तिगण" उसके एक सूक्त ९।२ को विचारें और समझें करें भी। (मं० १) महान् शत्रु संहारक, वलिष्ठ काम को घृत आदि हवि से, शिक्षित कर नमस्कार करता हूँ, वह यज्ञरूप पराक्रम से वल संवर्द्धन कर, मेरे उन शत्रुओं पर, जो मेरे मन को अप्रिय, मेरा तिरस्कार कर्त्ता, पाप, सन्तान, न होना, दारिद्रय, आपत्ति उत्पादक है, उसे शत्रु के पास भेजता हूँ। उन पर काम जाकर गिरे, उन्हें विपत्ति घेरे, वे प्रगाढ़ अन्धकार में पढ़ें, क्रव्यादग्नि काम उन्हें जला दे। कवियों, ऋषियों, मुनीश्वरों द्वारा वर्णित, कामपुत्री वाणी, के द्वारा ही ये सब शत्रु दूर हों, उनको प्राण पशु (इन्द्रिय गण) उन्हें मैं अगाध भवसागर में ढ़केलता हूँ। यह ऋषि, मन्त्र तथा देवबलपूर्ण काम निराकरण भेषज्य विधि है।

काम :—यह केवल स्त्री सम्बन्ध के विषय का प्रतीक ही नहीं है "अपितु,' यह **"संकल्पशक्ति"** का वाचक है। (अ० ९।२-१९) काम ही सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, देव, पितर और मानव उसके पश्चात् हुए, अतः सर्व श्रेष्ठत्वापन्न काम ही है, इसी कारण नमन करने योग्य है। (ऋग्वेद १०।२९।४) **"कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसोरेतः प्रथमं यदासीत"** (वृ० अ० उ० १।२।४) **"कामः संकल्पो-विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा, धृतिरधृति ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनएव" **"कामएव यस्यायतनं हृदयं लोकोमनो ज्योतिः०; य एवायं काममयः पुरुषः०"** । बृ० उ० ३।६।११ **"कामोर्काषिन्नाहं करोमि, कामः करोति, कामः कर्त्ता, कामः कारयिता"** (महानारा उ० १८।२)

सारांशः—काम, संकल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, लज्जा, बुद्धि, भय ये सब मन में निवास करते हैं । काम सबका आधार स्थान है, उस काम का तेज ही **मन** है और **हृदय** लोक है । मनुष्य काममय ही है । काम ही सबका **कर्त्ता** है, आत्मा कर्त्ता नहीं है **काम** के द्वारा ही यह सब चलाया जाता है । यह काम **"संकल्प"** ही है, जो आत्मा और मन को उच्च या अधःपतन को ले जाता है । जगत के प्रारम्भ में आत्मा के अन्दर काम अर्थात् **"संकल्प"** ही उत्पन्न हुआ है । **"सोऽकामयत"** (बृ० उ० १।२।४) तथा (तै० उ० २।६।१) उस आत्मा ने कामना की, और उसकी कामना सिद्ध हुई, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् बना, परमात्मा के संकल्प शुद्ध थे, अतः वे सभी सिद्ध हो गये । जिसके वे संकल्प शुद्ध होते हैं; उसके सभी संकल्प शुद्ध होते हैं । **"यं यं कामं कामयते, सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति"** (छां० उ० ८।२।१०) जो भी कामना करता है वह **"संकल्प"** होते ही सिद्ध हो जाती है । यह संकल्प का ही बल है; और इसी प्रकार समस्त सृष्टि का सृजन भी स्रष्टा का सत्य संकल्प है । यह **-"जीव"** भी सृष्टा का अंश हैं; और स्रष्टा के संकल्प का ही अंश-जीव का **सत्य संकल्प** है (अ० ६।२-१) शत्रु का नाश करनेवाला बलवान् काम है । उसको यज्ञ से दीक्षित करता हूँ अर्थात् यही आत्मसमर्पण यज्ञ की हवि है । जो लोक कल्याणार्थ स्वयं भस्म-सात् हो जाती है । (मं० ७) यह प्रतापी बलवान् काम **"संकल्प"** अधिष्ठाता है, जो सतत मेरे साथ रहता हुआ निरी-क्षण करता है । (मं० ७) सभी देव मेरे रक्षक बनें, मेरे संकल्परूप **"आत्मसमर्पण"** यज्ञ को स्वीकार करें । जीवात्मा, परमात्मा में तथा काम का अन्य देवों से सम्बन्ध का चित्रण—

१. परमात्मा	**२. जीवात्मा**	**१. परमात्मा**	**२. जीवात्मा**
काम, संकल्प (अधिष्ठाता)	काम-संकल्प	वायु	प्राण
महतत्त्व	बुद्धि	अग्नि	वाणी
चन्द्रमाः	मनः	जल	वीर्य
इन्द्र	चित्त		
सूर्य	नेत्र		

इस प्रकार सब देवों का अधिष्ठाता काम "संकल्प" है ।

शरीर में जो देव हैं, वे विश्व के देवों के अंश हैं । अ० कां० ११ सू० ८

विश्व के देव		**शरीर में देवतांश**
१ परब्रह्म	—	जीव, आत्मा
२ सूर्य	—	नेत्र
३ भूमि	—	नाक
४ आप	—	जिह्वा
५ अग्नि	—	वाणी (वाक्) मुख
६ दिशा (आकाश)	—	कान
७ वायु-रुद्र	—	प्राण-त्वचा
८ ओषधि-वनस्पति	—	केश
६ लोहिनीः, आपः	—	रक्त, रुधिर
१० द्यौः	—	मस्तिष्क

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११ अन्तरिक्ष	—	नाभि, उदर, पेट, छाती
१२ पृथ्वी	—	पैर
१३ पर्वत	—	जोड़-सन्धि
१४ मृत्यु-आपः	—	वीर्य-रज
१५ अश्विनौ	—	श्वास, उच्छ्वास

कां० १ सू० ६ (यत्पिण्डे, तद्ब्रह्माण्डे) जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है ।

विश्वदेव	समाज में देवतांश	व्यक्ति में देवतांश
१ वसवः (अष्ट)	समाजशक्ति की ८ शक्तियां	निवासक शक्तियां
२ पृथ्वी	मातृभूमि	स्थूल शरीर
३ आपः	जल, नदी, नद आदि	रक्तादिधातु
४ तेजः ज्योति	अग्नि, विद्युत् आदि	शरीर का तेज
५ वायुः	शुद्ध वायुः	प्राण
६ आकाश	स्थान	कान
७ सोम	ओषधि-वनस्पति, धान्यादि	अन्न-पान
८ अहः	प्रकाश	प्रकाश
९ नक्षत्र, देवाः	साधारण जनता	इन्द्रियगण
१० ब्रह्म	ब्राह्मण, ज्ञान	ज्ञान
११ इन्द्र	क्षत्रिय वीर	क्षात्रबल
१२ पूषा	राष्ट्रपोषक, अधिकारी	पुष्टि
१३ वरुणः	बलाधिष्ठाता	शान्ति
१४ मित्रः	मित्रवर्ग	मित्रता
१५ अग्निः	ज्ञानी, उपदेशक	वाणी
१६ आदित्या	स्वतन्त्र विचारवान्	स्वतन्त्रता
१७ सूर्यः	दार्शनिक-विद्वान	नेत्र, दर्शनशक्ति
१८ विश्वेदेवाः	कलाकार, विद्वान	सवदिव्यगण
१९ हिरण्यं	धन	तेज
२० सपत्नाः	शत्रुगण	दुष्टविचार
२१ नाकः (स्वर्ग)	स्वाधीनता	आनन्द
२२ उत्तमं ज्योतिः	,,	तेज
२३ मध्यमं ज्योतिः	,,	सुख
२४ अधमं ज्योतिः	पराधीनता	दुःख

अ० वे० कां० ११ सू० ६

द्युस्थानीयदेवता		अन्तरिक्षस्थानीय देवता	
१ इन्द्र	१३ त्वष्टा	१ गन्धर्वः	११ शकुन्तः
२ वृहस्पति	१४ अश्विनौ	२ अप्सराः	१२ भवः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३ सूर्यः	१५ ब्रह्मणस्पतिः	३ चन्द्रमाः	१३ शर्वः
४ राजा वरुण	१६ अर्यमा	४ वायुः	१४ रुद्रः
५ मित्रः	१७ विश्वेदेवा, आदित्याः	५ पर्जन्यः	१५ पशुपतिः
६ विष्णुः	१८ दिव्याः, पशवः, पक्षिणः	६ अन्तरिक्ष	१६ इषुः
७ भगः	१९ द्यु	७ दिशः	१७ यमः
८ अंशः	२० नक्षत्राणि	८ सर्वाः आशाः	१८ पितरः
९ विवस्वान्	२१ सप्तर्षयः	९ सोमः	१९ अन्तरिक्षसदः देवाः
१० सवितादेवः	२२ दैवी आपः	१० पक्षिणः	२० रुद्रा एकादशः
११ धाता	२३ प्रजापतिः		
१२ पूषा	२४ दिविषदः देवाः		

पृथ्वीस्थानीय देवता

१. अग्नि, २. वनस्पति, ३. औषधिः, ४. वीरुधः, ५. अहोरात्रं, ६. शपथ्यं, ७. उषाः, ८. पार्थिवाः पशवः, ९. आरण्याः मृगाः, १०. भूमि, ११. यक्षः, १२. पर्वत, १३. समुद्रः, १४. नदी, १५. वेशन्ता, १६. पृथिव्यांश श्रिताः, १७. वसवः अष्टौ, १८. अथर्वाणः, १९. अङ्गिरसः, २०. यज्ञः, २१. यजमानः, २२. ऋचः, २३. सामानि, २४. भेषजानि, २५. यजु, २६. होत्राः, २७. वीरुधांपञ्चरात्राणि, २८. सोमः (वनस्पतिः) २९. दर्भः, ३०. भंगः, ३१. यवः, ३२. सहः, ३३. अरायः, ३४. रक्षांसि, ३५. सर्पः, ३६. पुण्यजनः, ३७. मृत्यु, (एकशतं), ३८. ऋतुः (द्वादश), ३९. ऋतुपतिः, ४०. अर्तवः, ४१. हायन, ४२. समाः, ४३. संवत्सरः, ४४. मासाः, ४५. विश्वेदेवा, ४६. देवपत्न्यः, ४७. भूतं, ४८. भूतानां भूतपति, ४९. भेषजः।

द्युस्थान के २४, अन्तरिक्ष के २०, पृथ्वीस्थानीय ४९ कुलयोग ९३ देवतायें मुख्य हैं।

इन ९३ देवताओं में "८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, ७ ऋषिगण, १०१ मृत्युयें, १२. मास, १२ ऋतु, ६ ऋतु, २ अयन, ६ ऋतुपति, ४ दिशा, ४ उपदिशा, ये कुल १७२ हैं, इनमें ९३ मिलाने से २६३ देवता हैं।

(अ० कां० ९।२-मं० ११) **कामसंकल्प** ही शत्रु संहारक, वृद्धिकर्त्ता, विस्तृत कार्यक्षेत्र प्रदाता है।

कामकवच :—(कां० ९।२-१६) यह काम ही एक विलक्षण रक्षाकवच है, जो तीनों, द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वी केन्द्रों में पूर्णरक्षक है, जिससे शत्रु (उपर्युक्त) का शस्त्रों का प्रहार अपने **"आत्मा"** पर नहीं होता यह **(ब्रह्म-वर्च) ज्ञानकवच** कहलाता है। (मं० २५) संकल्प एक महान् शक्ति है, उससे पाप भी होगा और पुण्य भी। इसके अन्दर जो शुभ, कल्याणप्रद भाग सर्वार्थसिद्धि प्रदाता है, वहीं मेरे अन्दर प्रविष्ट हो, पाप का भाग दूर चला जावे। यह कामाग्नि **"क्रव्यात"** कच्चा मांस खानेवाला है।

कामाग्निस्वरूप :—(अ०कां० ३ सू० ११-४) समस्त जगत को भस्म करनेवाला "काम" अग्नि कहलाता है। (मं० ९) मांस भक्षक-क्रव्यादग्निः; (मं० ९) पुरुष का नाशक (काम) अग्नि है। (मं० ४-९) विश्व का भक्षक "काम" अग्निः। (मं० ३।९) सबको जलानेवाला (काम अग्नि) ही है। (मं० ६) विश्व सचालक (काम) है।

कामरूप अग्नि के स्वरूप :—(मं० १-२) बल, अग्नि, जल, मेघ, चुम्बक, कोयला, पत्थर, औषधि, शुष्ककाष्ठ, वनस्पति, सोम, गौ, पक्षी, पशु, द्विपाद, चतुष्पाद और मनुष्य आदि सभी में है।

काम और **इच्छा**—काम शब्द जैसे विकार का द्योतक है, वैसे ही **कामना-इच्छा** का भी वाचक है। इसी के पर्यायवाची-**कामना-इच्छा-संकल्प-आकांक्षा** आदि हैं। (अ० कां० ३।२९ मं० ७-८) प्रश्न यह किसने किसको

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिया है ? उत्तर–मनोरथ ने मनोरथ को दिया है। काम ही दाता है। काम ही लेनेवाला है। काम समुद्रपर्यन्त फैला हुआ है। इच्छा से ही तुझे स्वीकार करता हूँ। हे काम ? यह सब तेरा ही है।

काम की मर्यादा :—(३।२९-८) हे काम ! तुझे स्वीकार करके, मैं अपनी आत्मशक्ति को न खो बैठूं, मैं अपनी **प्राण** शक्ति को क्षीण न करूं और मैं अपने प्रजनन **(वीर्य)** को भी क्षीण न बना दूं।

कामशान्ति का उपाय—(अ० ३।२१-९) इस मन्त्र में निर्दिष्ट कामाग्नि शमन विधि, आथर्वणी, "वृहच्छान्तिगण" मात्र सार्वभौम शान्ति है।

इसके द्वारा ही–(अ० कां० १।१८) सत्य-संकल्प, दृढ़-इच्छा और पवित्र वाणी से, मेरे अन्दर जो कुलक्षण हैं, वे केवल थोड़ी ही देर टिकेंगे, ये चिरकाल तक नहीं रहेंगे, ये कम हो रहे हैं, अतिशीघ्र क्षीण होंगे, मेरे सुलक्षण बढ़ रहे हैं, मैं सुलक्षण सम्पन्न होऊँगा, मैं निर्दोष हो गया हूँ, मैं दोषों को हटा–नीरोग रहूँगा, अपने को सौभाग्यशाली बनाता हूँ।

वृहच्छान्तिः—ब्रह्मवेद (आथर्वणिक) शौनकीय शाखा में वर्णित सार्वभौम शान्ति का नाम है। जिसमें १—"अंहोलिङ्गादिगण" अर्थात् सभी प्रकार के अपने या आनुवंशिक जन्म-जन्मान्तरीय पापों से मुक्ति का वर्णन है। २—पिप्पलादिगण अर्थात् भौमचक्रस्थ तथा सौरमण्डलीय ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, उल्कापात, धूम्रकेतु दर्शन तथा समस्त अद्भुतों, ३—अम्बादिगण—अर्थात् जलसूक्त, शान्तिसूक्त है, और ४—आयुष्यगणसूक्त अर्थात् आयु क्षीण कर्त्ता सभी कारणों का निराकरण, और नीरोगता तथा दीर्घायु प्राप्ति के, वेदोक्त विधान हैं। ये सब चारों मिलकर वृहच्छान्तिगण मन्त्रों की विधि से समस्त पाप, व्याधि, रोग जनक कारणों का निराकरण और उनसे मुक्त हो जाने का विधान है। उसका नाम "वृहच्छान्ति" है। (अ० कां ६।२६) हम, मन, वाणी, इच्छा और संकल्प कोट दृढ़, पवित्र कहते हैं, इनमें वसने वाले पापी विचारों ?, उनसे होने वाले पाप कर्मों ? को हमसे दूर हमारे अहितकर्त्ता केपास चले जाओ, यदि तुम हमको नहीं छोड़ते हो, तो अपनी शक्ति ब्रह्म बल से, हम तुम्हें त्यागते हैं। यह सहस्र नेत्र वाला, न मरने वाला पापी **संकल्प (काम)** हमसे पृथक् अन्य सुदूर स्थान में चला जावे (को ३।३१) ये सब पाप, पापकर्म, पापी विचार, पापपूर्ण व्यवहार, समस्त रोगों और अल्पायु, आयु क्षीणता के मूल कारण हैं, अतः मैं (मं० १-११) **"व्यहं सर्वेण पाप्मना वियपाक्ष्मेणसमायुषा"** मैं सब पापों को, उनसे होने वाले दीर्घकालीन, रक्त रसमांस शोषक, आयु क्षीण करने वाले रोगों और क्लेशों, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, अन्तकरणीय स्वस्थता और चिरायुष्यता के लिये दूर करता हूँ। (मं० १) जिन पुण्य अनुष्ठानों, आचरणों, मर्यादाओं से देवों ने वृद्धापन दूर कर "युवापन" ही स्थायी रूप से प्राप्त किया उसी **दैवी विद्या** से मैं नीरोग, चिरायुष्य, चिर यौवन प्राप्त करता हूँ।

(कां ६।११३-२) हे पापी ? पाप ? तू सूर्य किरणों, अन्धकार, कुहरा अथवा नदी के फेनों में क्यों न चला जावे, जा तुझे गर्भघातकी में भेजता हूँ। (मं० १) इन्द्रियों का किया पाप, मन में आता है, वही मनुष्यों में जाता है, उसीसे गठिया आदि रोग होते हैं। (मं० ३) मन, संकल्प, बुद्धि, इच्छा द्वारा होने वाले बारह प्रकार के पाप, संस्कार रूप से मन में, जमा होकर मनुष्य को विविध मानसिक बौद्धिक, अन्तकरणीय, हृदय रोगों से विविध भांति से व्यथित करते हैं, इन्हें ज्ञान से दूर करता हूँ। (कां० ६।३७) **शाप की उत्पत्तिः**—शाप हजार नेत्रों वाला शाप महाक्रोधी के महा क्रोध से उत्पन्न होता है। शाप देने से, दूसरे को कटु शब्द बोलने से शाप ग्रहीता की जो हानि होती है, उससे सहस्र गुनी शाप देने वाले की होती, सर्प एक ही को डसकर मार सकता है, परन्तु शाप किसी का भी विशेष कर ब्राह्मण, ज्ञानियों को शाप जन्म जन्मान्तरों में व्यक्ति, कुलों उनके दायिभागियों को, रहरह कर, बुरी भांति काटता चला जाता है, यह पूर्ण अनुभूत है। उस शाप को, जो हम शाप न देने वाले को शाप देता है, जो शाप देने वाला अकारण, अज्ञान से शाप देता है, उस क्षीण, अज्ञानी शाप "अभागे" को ही मैं वापस मृत्यु के पास, कुत्ते को टुकड़ा फेंकने की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाँति ढकेलता हूँ। (कां० ४।२९) निम्न प्रकार से पापों से छुटकारा मिलता है, तभी देव सहायक होते हैं। १—सत्य प्रतिज्ञ, सत्य पालन, २—अङ्गों में जीवनीय रस भरने की विद्या-प्राणविद्या। ३—पापों को दूर करने में दत्तचित्त। ४—भ्रमण से जगत् कल्याण करना। ५—सूक्ष्मदर्शी। ६—सबको सुखद वास देने वाला। ७—प्रयत्नशील। ८—इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला। ९—सत्कर्मार्जित धन सम्पन्न।|१०—निर्मद। ११—सप्तेन्द्रियनियन्ता। १२—अन्न-दानी। १३—वचन का पक्का। १४—द्रोह रहित। १५—दोषों का निन्दक। १६—"शब्द" वेदविद्या प्रवीण। १७—प्रत्युत्पन्न मेधावी। १८—स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन विषयों के अज्ञान का जिसे शोक होता है। १९—संयमी ब्रह्मवर्ची। २०—आनन्दवृत्ति परायणों की, देवता सहायता, रक्षा और सन्मार्ग दर्शन करते हुए, सभी पाप-शापों से मुक्त करते हैं—यही अहोलिङ्गादि का सारांश भाव है।

पाप को दूर करना—(कां ४।३३) उपर्युक्तगण मन्त्रों से सभी प्रकार के पापों को दूरकर मैं शुद्ध होता हूँ। मैं यज्ञों के लिये उत्तम धन, उत्तम क्षेत्र, उन्नति प्रदायक मार्ग, कल्याण, विद्वानों की संगति, ज्ञान सम्पन्नता, चहुँ ओर यश अत्यन्त प्रभावशालिता प्राप्तकर दुख, क्लेश, दारिद्र्य, दीनता, कृपणता, मृत्यु, कलंक, अवनति, अधोगति, विनाश, सर्वनाशादि को स्थायी रूप से सदैव को, गहन काले समुद्र में फेंकता हूं। मैंने प्राण विद्या, संजीवनी विद्या, ब्रह्मविद्या और ज्ञान कवच की महान दैवीशक्ति से सम्पन्न होकर "आत्मा" की पहचान कर ली है वह **"वैश्वानर"** तेज ही मेरा अन्तिम आश्रय है। जहाँ से सूर्योदय और अस्त होता है।

अथ प्राणविद्या :—समष्टि और व्यष्टि की दृष्टि से प्रत्येक शरीर में भौतिक तथा अभौतिक शक्तियाँ हैं, उन सबमें प्राण का महत्त्व सर्वोपरि है। सारी अन्य शक्तियों के सो जाने पर भी जो कार्य करती है, सारी औषधियाँ और सारे वैभव जिस शक्ति के चले जाने पर या कार्य छोड़ देने पर व्यर्थ हो जाते हैं, जिसका अस्तित्व अति धाहक शरीर (सूक्ष्म) के चले जाने पर भी (धनञ्जय) प्राण के रूप में विद्यमान रहता है, जिसको योगी अपने ब्रह्मरन्ध्र से निकालकर सद्गति प्राप्त करते हैं और सद्ग्रहस्थ आदि को पुत्र या शिष्य द्वारा "कपाली क्रिया" अन्त्येष्टि कर्म में करके ही "धनञ्जय" प्राण के निकल जाने पर सद्गति सम्भव होती हैं, वह प्राण की सार्वभौम शक्ति ही है। उसको और उसके महत्व के ज्ञान तथा मनन कर मनुष्य को नीरोगता चिरायु और मोक्ष सम्भव हो सके, उस विद्या का नाम **"प्राण विद्या"** है। प्राण मनुष्य की वह सार्वभौम शक्ति और भेषज् है, जिसको श्वास क्रिया द्वारा "भौवायन" प्राण से **"मेरुदण्ड"** में स्थित सूक्ष्म शक्तियों में से पञ्चम चक्र **"विशुद्ध"** को प्रभावित करते हुए कण्ठ की विपरीत दिशा में स्थित "विशुद्ध चक्र" पंचम तत्त्व आकाश या ईश्वर को नियन्त्रित करके, ईश्वर "भौवायन प्राण" आकाशीय शारीरिक कोशों के अणु-परमाणुओं के मध्यवर्ती, शून्य स्थान में व्याप्त, चक्र पर ध्यान केन्द्रित करके, ईश्वर "भौवायन प्राण" की शक्ति के बल से बिना अन्न-जल के जीवित रहा जाना तथा जिस प्राण को "आज्ञाचक्र" अथवा "ब्रह्मरन्ध्र" अष्टम चक्र में ध्यान केन्द्रित करने में समर्थ होने पर, मृत्यु से मुक्त होकर, चिरायु, अमितायु के साथ शरीर को अक्षय बनाया जाता है। उस प्राण की शक्ति को समझना और उसे क्रियान्वित करने की क्षमता प्राप्त करने का नाम ही **"प्राणविद्या"** अथवा **"संजीवनी"** विद्या है। इसके मर्मज्ञ के लिये शयन और जागरतः शीत, उष्ण, ऋतु परिवर्तन समान होते हैं। नीरोगता, पूर्ण स्वस्थता के साथ मल-मूत्र त्याग से रहित हो जाते हैं। इससे हृत्पिण्ड और श्वासाप्रश्वास पर नियन्त्रण होता है। मानव शरीर **"अणु परमाणुओं"** से गठित है। नेत्र और कानों की भांति **"अणु-परमाणु"** मनुष्य की मांसपेशियाँ, मस्तिष्क और इन्द्रियग्राम हैं। हमारे भोजन शक्ति का परिमाण, विकरण हैं। यह विकरण "अणु-परमाणु" मय सौरमण्डल से प्राप्त होता है। ये अणु-परमाणु ही, सूर्य किरणशक्ति के वाहक हैं। इसी को भोजन के रूप में हम ग्रहण करते हैं। ये शक्तिवाहक, अणु-परमाणु प्रवेश करके शरीर के तन्तुओं में, अपनी जीवनीय शक्ति, प्रवाहित कर देते है। उससे नवीन रासायनिक "आङ्गिरस" (अङ्गों का रस) शक्ति और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नवीन विद्युत (जीवन) प्रवाह, उत्पन्न होता है। पत्तों, पौधों और उनका भक्षण करने वाले पशुओं के मांसादि में भी यही **"भौवायनप्राण"** सौरमण्डलीय शक्ति है। कोयला, तेल, शुष्ककाष्ठ, चुम्बक आदि में भी वही शक्ति है। इसी के द्वारा, व्यक्ति अपने भौतिकप्राण को "भौवायन" वैश्वानरप्राण से जोड़कर, अनन्त में मिलकर, चिरजीवनरूप "अमरत्व" प्राप्त करता है।

"प्राण" परमेश्वर की विश्वव्यापक जीवनशक्ति का नाम है। यही समष्टि का प्राण है। इसी का अंश व्यष्टिप्राण है। प्राण "मन की इच्छा से" प्रेरित होता है। प्राण से शरीर की दस इन्द्रियों और जीवनीयशक्ति का सञ्चार होता है। शरीर का अस्तित्व तथा शरीर की हलचल भी प्राण से ही होती है। यह प्राण जैसे शरीर के अन्दर है, वैसे ही बाहर भी है, (अ० कां० ११ सू० २ मं०) में वर्णित है। परमेश्वरीय प्राणशक्ति से वायु की उत्पत्ति हुई है। वह वायु हमारा पृथ्वी स्थानीय "प्राण" है। (अ० कां० १९।६-७), (ऋ० वे० १०।९०।१३)। प्राण ही आयु है। जब तक प्राण हैं, तभी तक जीवन है। जलतत्त्व के आश्रय से, कार्य करने वाली प्राण शक्ति, ही जीवनशक्ति है। यही प्रेरित करती है। यही थकावट दूर करने वाली, उत्साहशक्ति है, यही नेत्रों को तृप्त करती है। यही मन को मोहित करने वाली, जड़-चेतन की संधि "प्राण" है, यही स्थूल शरीर की "श्वासोच्छासरूप" प्राणशक्ति सूक्ष्म आत्मा का ज्ञान कराती है। यही प्रत्यक्ष शरीर की "प्राण" "शक्ति" 'अप्रत्यक्ष" वैश्वानर (भौवायन) प्राण का ज्ञान कराने वाली है। प्राणों का उत्पत्ति स्थान **समुद्र** है, वहाँ से "प्राण" और "अपान" के रूप में इस प्राण की आने और जाने की गति (व्यवहार) होते हैं। इन प्राणों का स्थान हृदय में **"मानस समुद्र"** है। प्राण इस **"हृदय सागर"** में अपना, एक पांव, नित्य, निरन्तर रखता है। यदि पैर हटायेगा, तो संसार में न तो कोई जीवित रहेगा, न दिन-रात्रि होंगे। यदि यह बाहर ही रह जावे, अन्दर न जावे, तब भी, कोई जीवित नहीं रहेगा। यही इस "मान-सरोवर" का **"हंस"** प्राणविद योगियों का **अजपामन्त्र** है। प्राणदस हैं उनके साथ रहने वाला "आत्मा" है। वह असुप्राणों के मध्य रहने वाला मैं "आत्मा" हूँ "सोऽसावहम्" (यजु० अ० ४०।१७) इसी का नाम **"असुनीति"** अर्थात् प्राणधारण की रीति है। यह प्राणधारण की रीति जानने पर, प्राण के निकलने की, सम्भावना होने पर भी, पुनः प्राण स्थिर किया जा सकता है। नेत्रों की शक्ति क्षीण होने पर, पुनः उत्तमदृष्टि, प्राप्त की जा सकती है। भोग भोगने की क्षीणशक्ति,होने पर भी पुनः भोग भोगने की सामर्थ्य प्राप्त की जा सकती है। (ऋ० वे० १०।५९।५) आत्मा की प्रबलतम, इच्छाशक्ति द्वारा, प्राण की शक्ति बढ़ाई जा सकती है। (य० वे० ६।२०) यही **"आङ्गिरस विद्या"** है। नाक में प्राणशक्ति और वीर्य बढ़ाओ। (य० २१।४९) प्राण और वीर्य का अन्योन्याश्रय अभेद्य सम्बन्ध है। अन्य इन्द्रियों के भोगों का स्वाहाकार (मन, कर्म, इन्द्रियों की प्रबल इच्छा के साथ परित्याग) प्राण (प्राणवायु और वीर्य) "सम्बर्द्धनार्थ" होना श्रेयस्कर कहा है। मेरा प्राण, आयु-यज्ञरूप सत्कर्म से बढ़े। (य० १८।२२) यह भौवायन, **(वसन्त प्राणायन)** है। इसका स्थान "अन्तरिक्ष" ही है। वायु भी अन्तरिक्ष में रहता है। इसी कारण "प्राण", "वायु" के साथ रहता है। "वात" ही "प्राण" है। "प्राण" ही "ब्रह्म" है। (तै० उ० ३।३) **उच्छिष्ट ब्रह्म** (प्रजापति) के पुरुष और स्त्री ये दो स्वरूप ही **प्राण** और **रयि** हैं। **प्राण-सूर्य, रवि-चन्द्रमा, इड़ा-प्राण** (सूर्य) **पिङ्गला (चन्द्रमा)** हैं। (प्र० उ० १)। **सूर्य** ही प्राणरूप **"वैश्वानर"** अग्नि है। (प्र० उ० ११।६-८) सूर्य किरणों द्वारा ही "प्राण" सर्वत्र स्थापित होते हैं। शरीर में चक्षुआदि इन्द्रियाँ भूलोक के पार्थिव शरीर में होती हैं। अन्तरिक्ष में (भुवः, स्व, लोकों) में ये ही सूर्य, चन्द्र, वायु आदि है, ये सभी के सभी **"प्राण"** के ही वश में हैं। सूर्य के अन्दर विश्वव्यापक शक्ति "प्राण" ही प्रकाश दे रही है। "प्राण" वेदों, उपनिषदों में अग्नि, सूर्य, इन्द्र, वायु, पृथिवी, रुद्र आदि नामों से वर्णित है। (प्र० उ० २-१२) ये सभी देव "प्राण" ही के वश में है। **"अग्निना रयि-मश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे, यशसं वरिवत्तमम्"** (ऋ० वे० १।१।३) "प्राण" से प्रतिदिन प्रतिक्षण शोभा, पुष्टि और वीर्य प्राप्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) **देवानां वह्नितमः असि"**—"प्राण" स्थूलदेह में, भूलोक में, इन्द्रियों और सूक्ष्मलोकों में, सूर्यादिकों का, संचालनकर्त्ता है। जो प्राणायाम से उन्नत होता है। (२) **"पितृणां प्रथमास्वधाअसि"**—लोक और विश्व की, पालकशक्तियों में, सर्वश्रेष्ठ प्रथम चालक शक्ति है, (स्वधा) आत्मतत्व को धारण करती है। (३) **"ऋषीणां सत्यं चरितं असि"**—दो नेत्र, दो कर्ण, दो नाक और मुखरूप सप्तऋषियों का (चरितं) निरन्तर सत्य, चाल-चलन (आचरण) प्राण है। (४) **"अथर्वाङ्गिरसां चरितमसि"**—स्थिर अङ्गों के रसों का, संचालक पुष्टिकर्त्ता "प्राण" ही है।

१. **(अग्निः)**—गति देने वाला, उष्णता और तेज उत्पन्नकर्त्ता। २. **(सूर्य)**—प्रेरणा, प्रकाशदाता। ३. **(पर्जन्य)**—पूर्ण करने वाला। ४. **(मघवान्)**—महत्व से युक्त। ५. **(वायु)**—हिलाने वाला, अनिष्ट को दूर करने वाला। ६. **(पृथिवी)**—विस्तृत आधार देने वाली। ७. **(रवि)**—तेज, सम्पत्ति, शरीर सम्पत्ति आदि। ८. **(देवः)**—क्रीड़ा, व्यवहार, विजिगीषा, हर्ष, आनन्द, तेज, निद्रा, स्फूर्ति आदि देने वाला दिव्य। ९. **(अमृत)**—अमरत्व युक्त। १०. **(प्रजापतिः)**—चक्षु आदि को उत्पन्न और पालन करने वाला। ११. **(वह्नितम)**—अत्यन्त प्रेरक। १२. **(इन्द्र)**—ऐश्वर्यवान्-भेदनकर्त्ता। १३. **(रुद्रः)**—"रुत्-त:" दुःख निवारण करके आरोग्यप्रदाता। १४. **(व्रात्यः)**—नियमव्रत, आचरण वाला, सदाचारी है।

इस प्रकार इनसे "प्राण" की मुख्यता और श्रेष्ठता वेदों में वर्णित है। यह प्राण सूर्य किरणों द्वारा ही प्राणियों तक पहुंचता है। सूर्य किरणों से, वायु में आता है। वायु श्वास के द्वारा शरीर के अन्दर जाता है। इस प्राण के अधीन, सम्पूर्ण जगत् है। इसका प्रेरक **"सउप्राणस्यप्राण"** (के० उ० १।२) वह "आत्मा" ही प्राण का प्राण है। **"यत्प्राणेन न प्राणिति, येनप्राणः प्रणीयते। तदेवब्रह्म त्वंविद्धि नेदं यदिदमुपासते"**। (के०उ० १।८) जिसका जीवन प्राण से नहीं होता, परन्तु जिससे प्राण का जीवन होता है, वह (ब्रह्म) आत्मा है, ऐसा समझें; जिसकी उपासना की जाती है, वह आत्मा नहीं है। **"सोऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि"** (ईश १६) **"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्"**। (वा० यजु० १७) जो यह "प्राण" के अन्दर, रहने वाला पुरुष है, वह मैं (आत्मा) ही हूं। मेरे चारों ओर प्राण विद्यमान है, मैं उसका प्रेरक हूं। **"नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुः"**। (ऐ० उ० २।१।४) **"वायुः प्राणोभूत्वा नासिके प्राविशत्"**। (ऐ० उ० १।२।४) नासिकारूपी इन्द्रियाँ खुल गईं, नासिका से, प्राण और प्राण से वायु उत्पन्न हुआ। इस शरीर में, सुराख करने की शक्ति आत्मा की ही है। वायु, प्राण बनकर आत्मा में प्रविष्ट हुआ इस कारण, वायु का पुत्र "प्राण" है। यही "मारुति" है, मारुति का अर्थ है वायुपुत्र। विश्वव्यापक पवन का अंश पुरुष (व्यष्टि) में होने से "पवनात्मज" है। यही "राम" का सखा प्राण से अमरत्व के साथ "चिरजीवत्व" प्राप्त करने वाला है। इस राम की नगरी "अयोध्या" है। (अ० वे० कां० १० सू० २ मं० ३१) **"अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या"**। इसके-दो आँख, दो कान, दो नाक, एक मुख, एक मूत्रद्वार और एक गुदाद्वार कुल नौ द्वार हैं। पूर्व द्वारमुख और पश्चिम द्वारगुदा है। पूर्वद्वार से प्रवेश और पश्चिम द्वार से बहिरगमन, ये दो मुख्य द्वारं हैं। इस पुरी में "आठचक्र" हैं।

(१) **मूलाधार चक्र**—गुदा के पास पृष्ठवंश समाप्ति के स्थान में हैं, जो इस नगरी का मूलाधार है। (२) **स्वाधिष्ठान चक्र**—उसके कुछ ऊपर है। (३) **मणिपूरक चक्र**—नाभि स्थान में है। (४) **अनाहत चक्र**—हृदय स्थान में है। (५) **विशुद्धि चक्र**—कण्ठ स्थान में है। (६) **ललनाचक्र**—"जिह्वामूल" में है। (७)**आज्ञाचक्र** दोनों भौहों के बीच में है। (८) **सहस्त्रारचक्र**—मस्तिष्क में है।

इनके अतिरिक्त और भी चक्र हैं, परन्तु ये ८ प्रमुख हैं। इनका महत्व योगशास्त्र में है। यह नगरी, इन आठ चक्रों से और उनमें स्थित, दिव्य अमोघशक्तियों से, बड़ी शक्तिशाली है। इन चक्रों के द्वारा ही, पुरुष का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

सप्तचक्र योगक्रिया दर्शन व भेदन

चक्र जो मानव शरीर में है और जिनको भेदन कर योगीजन कुण्डलिनी जाग्रत करते हैं, ये ८ प्रकार के वर्णित हैं—

१. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपुर, ४. अनाहत, ५. विशुद्ध, ६. आज्ञा, ७. सहस्रार, ८. शून्य, (सूर्य)

१. मूलाधार-चारपंखडियों का; रंगलाल बीज मंत्र नीचे से परिक्रमा क्रम से वं शं षं सं ।
२. स्वाधिष्ठान—छै पंखडियाँ; पीला बीज मंत्र उसी क्रम से बं भं मं यं रं लं ।
३. मणिपुर—दस पंखडियाँ; नील कमल बीज पं फंृतं थं दं धं नं डं ढं णं ।
४. अनाहत—बारह पंखडियाँ; गुलाबी चं छं जं झं ञं कं ख गं घं ङं टं ठं ।
५. विशुद्ध—सोलह पंखडियाँ, क्रिमची, ऋं ॠं लृं लॄं अं अः इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः ।
६. आज्ञाचक्र—(अग्निचक्र, ज्ञानचक्र) दो दल काः हं क्षं ।
७. सहस्रदल (ब्रह्मरन्ध्र) श्वेतकमल बीच में हल्का नील बिन्दु ।
८. शून्य चक्र।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)
१. चक्र	मूलाधार	स्वाधिष्ठान	मणिपुर	अनाहत	विशुद्ध	अग्नि आज्ञा	ब्रह्मरंध्र सहस्रार	सूर्य
२. स्थान	रीढ़ की हड्डी के नीचे गुदा पेढ़ू	लिंग	नाभि	हृत्कमल (हृदय)	कण्ठ	भ्रू मध्य —	मूर्ध्नि —	
३. जपसंख्या	६०००	६०००	६०००	६०००	१०००	१०००	१०००	
४. घ. प.	१-४०	१६-४०	१६-४०	१६-४०	२-४६	२-४७	२-४७	
५. वायु	अपान	अपान	समान	प्राण	उदान	प्राण	व्यान	
६. वाचा	—	—	परा	पश्यन्ति	मध्यमा	—	—	
७. शक्ति	गुप्ता, प्रासका कराला, विकराला क्रिया इच्छा	व्यंगता शारदा वाणी अमृता पूर्णा रोहिणी सावित्री	सर्वगा सोमा या भद्रा	पद्मनी सदर्भा रतिप्रिया वैजयन्ति	सर्वन्नोभद्रा प्राणधारिणी सप्त द्योतिनी ब्रह्मवाणी	महाकाली महालक्ष्मी इच्छाशक्ति	मूलाकृति कैवल्य	

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तक्षिणी	सौभद्रा	शवरि
सौन्दर्या	अत्रिमाया	लोहिता
शान्तमुद्रा	कुहवासिनी	यक्षिणी
विशाखा	धोकिनी	सौभाग्यदायिका
दर्शनी	रेखा	भानुमती
रुचिरा	श्रिया	मदालसा
लक्ष्मी ज्ञान.		
श्री रमा	तरङ्गिणी	शिखरिणी
(पार्वती द्रव्य)	तारा	छाया
	गौरी (इच्छा)	विष्णु प्रिया
		विश्वोदरा
		माया
		चित्र घण्टा
		अव्यक्तस्वरात्म,

८ देवता	गजानन	ब्रह्मा	विष्णु	महेश	जीवात्मा	आत्मा	परमात्म
वर्ण ×	आरक्त	पीत	नील	धवल	धूम्रं	शुभ्रस्फटिक	नानावर्ण
पुरी ×	माया	कांची	अवन्ति	मथुरा	द्वारिका	काशी	अयोध्या
११ वार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवा	सोमवार
१२ मुक्ति	सुलोकता	सलोकता	समीपता	सरूपता	सरूपता	सायुज्यता	कैवल्य
१३ मात्रा	अ	अ	उ	म	म	अर्धमात्रा	अर्धमात्रा
१४ देह	स्थूल	स्थूल	लिंग	कारणदेह	कारणदेह	महाकारण	विज्ञान
१५ अवस्था	जागृति	जागृति	स्वप्न	सुषुप्ति	सुषुप्ति	तुर्या	उन्मनी
११६ अभिमान	विश्व	विश्व	तैजस	प्राज्ञ	प्राज्ञा	प्रत्यगात्मा	निरभिमान
७ भोग	सुख, दुःख	सुख, दुख स्थूल	प्रवावीत्त	आनन्द	आनन्द	आनन्दावभास	निरानन्द
१८ गुण	रजोगुण	रजोगुण	सतोगुण	तमोगुण	तमोगुण	सतोगुण	निर्गुण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

१९ तत्त्व	पृथ्वी	पृथ्वी	आप		तेज	वायु	आकाश
२० बेद	ऋग्वेद	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	सामवेद	अथर्वण	निर्वेद
२१ अग्नि	आहवनीय	आहवनीय	आवसथ्य	दक्षिणाग्नि	×	संवर्तक	ज्ञानाग्नि
२२ ऋषि	ईश्वर	इन्द्र	अंगिरा	ईश्वर	अग्नि	ईश्वर	परब्रह्म
२३ अष्टांग	×	×	नाद	विन्दु	कला	जोतिरूप	विन्दु
२४ उपवायु	×	धनंजय	क्रकल	देवदत्त	कूर्म	देवदत्त	नाग
२५ मुद्रा	ऐं-शुद्ध	क्लीं-क्षमा	श्रीं-वितत्	ऐं-विस्तृत	ह्लिंग	क्लीं	पंरमात्मप्रकाश
						मोक्ष	
२६ आनन्द	परमानन्द	प्रशस्त	सुषुप्त	त्रैलोक्य	हुं	सहज	निरानन्द
	सहजानन्द	कुरंग, गर्वगत	वृष्ण	वित्कर	फट्	नित्य	
	वीरानन्द	अवज्ञ.	इच्छा	प्राण	वषट्		
	योगानन्द	अविश्वास	पिशुन	स्वपद	स्वाहा		
		मूर्च्छित	सल्लस	अंश प्रकाअ	स्वधा		
			मोह	अनुताप	मन		
			मय	क्रपद	अमृत		
			द्रोण	चित्तसंमत	गांग		
			कषाय	विकल्प	शुद्ध		
			विषाद	महद	रप		
				विवेक	धर		
				अहंकृत	नील		
					धीम		
					प्राण		

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरोग्य, बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और शरीर की सारी शक्ति है। ये ही चिरायुष्य, सुप्रजानिर्मातृ शक्ति, मन की शान्ति,
इन्द्रियों की स्वाधीनता, बुद्धि की समता और सहज आत्मबल प्राप्ति की कुन्जी है। इस नगरी में जो हृदयकोश है,
उसी में "आत्मन्वत् यक्ष" रहता है। इस यक्ष आत्मदेव, आत्माराम की यह दिव्य नगरी **"अयोध्या"** है। इसी
नगरी में ही, तेजोमय **"स्वर्गधाम"** है। स्वर्गधामप्राप्ति के लिये कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं है। (अ० कां०
१० सू० २ मं० ३३) "पुरं हिरण्ययीं ब्रह्माविवेशापराजितम्।" तेजोमयी, संकटहारिणी, यशपूर्ण, कभी भी पराजित
न होने वाली, प्रकाशमयी इस पुरी में **ब्रह्म** आविष्ट होता है। इसी कारण यही **ब्रह्मपुरी** है। इसी प्रकार (देवानांपू)
देवों की नगरी भी यही है। इस नगरी में बैठे **"राम"** से साक्षात्कार इन आठ चक्रों में बैठे, **अष्ट लोकपालों**
को प्रसन्न कर, उनका भेदन करके पहुंचना सम्भव होता है, अन्यथा नहीं। जीव के साथी द्वेषी—काम, क्रोध, लोभ,
मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष इन आठों द्वारों में, अन्दर प्रवेश में, आपके बाधक होंगे मिले रहकर घातक होंगे।
इनसे बचने को **"भक्तिरूपी'** हेमवती देवी का आश्रय लेना होगा। ये ही **"अञ्जनीदेवी"** हैं। इन हनुमान (मारुति)
के मूल में यह "प्राणोपासना" ही है। यह दशरथ (दश इन्द्रियों वाले रथ) शरीर का सहायक **"आत्मा"** ही
है। दशमुख की लंका (दश इन्द्रियों की भोगाकांक्षा) को, जलाने वाला **"प्राणायाम"** ही है। **पञ्चमुखी महादेव**—
(प्राण अपान, व्यान, उदान, समान) ही हैं, ये ही **पञ्चमुखीरुद्र** है। महादेव, मृत्युञ्जय आदि ये ही पंचरुद्र हैं।
"प्राणापानौ व्यानोदानौ" (अ० ११।८।२६) **एकादश रुद्र** "कतमेरुद्रा इति। दशमे पुरुषेप्राणा आत्मैकादशः"।
(शत० ब्रा० १४।५) कौन से रुद्र हैं? पुरुष में दश प्राण हैं और ग्यारहवीं आत्मा है। यही **"एकादशरुद्र"** हैं।
अग्नि शब्द भी प्राणवाचक है। पञ्चप्राण, पञ्चाग्नि, प्राणाग्निहोत्र आदि शब्दों से प्राण ही **अग्निरूप** है। इस
नगरी "अयोध्या" के हृदयस्थान में **प्रकाशमय स्वर्ग** है। यह स्वकीय, प्रबलतम, इच्छाशक्ति के, दृढ़संकल्प से ही,
प्राप्त हो सकता है। आत्मा ही ब्रह्म है, वह हृदयकमल में, वास करती है 'हंस" प्राण उसका वाहन है। इस हृदय
में "अमृत" है, उसी अमृत का देवपान करते हैं, और पुष्ट निर्जर, अमर होते हैं। स्थूलशरीर के हृदय स्थान के
रक्त का पानकर, ये देव पुष्ट, अजर-अमर होते हैं। यह प्राण, अपानादि के, द्वारा ही **"रुधिर अमृत"** और इनकी
क्षीणता में **"विष"** बनकर, हृदयरोगों, हृदय की दुर्बलता, का कारण बनकर, रुधिर की गति तीव्र या मन्द करता है
रुधिर की, गति रुकने से, शरीरक्षीण हो जाता है। रुधिर दूषित होने से, रक्त, मांस, रस, मज्जा, त्वचा में अनेक
विचित्र रोग होते हैं। इसीसे नाभिस्थान का प्राणाग्नि (जठराग्नि) दुर्बल होकर, शरीर को रोगों, व्याधियों क
घर बना देता है।

प्राण से ब्रह्मप्राप्ति का उपाय—(अ० वे० कां० ११ सू० २ मं० २६) अथर्वा अर्थात् निश्चल योगी
अपना सिर और जो हृदय है, उसको आपस में सीकर प्राणशिर के बीच, परन्तु मस्तिष्क के ऊपर, प्रेरित करता है
(मं० २७) यह निश्चित ही योगी का सिर, देवों का सुरक्षित खजाना है। उस सिर का रक्षण, प्राण, अन्न और म
करते हैं। शरीर चञ्चल है, उससे अधिक इन्द्रियाँ हैं, और उन सभी में मन अधिक चञ्चल है। यही आत्मशक्ति
के आविर्भाव में मूलतया बाधक हैं। **निराकरण विधि**—"आसनों" के अभ्यास से, शरीर की स्थिरता होती है
उससे आरोग्य और सुख मिलता है। "ध्यान" से, इन्द्रियों की स्थिरता होती है, और "दृढ़इच्छा" संकल्प और भक्ति से
मन स्थिर होता है।

प्राण ही सबसे मुख्य और श्रेष्ठदेव है। (छां० उ० ५।१।१, बृ० ६।१।१)। प्राण ही बल है, बलप्राण
ही रहता है। प्राण ही अमृत है, प्राण ही सत्य है, प्राण ही यश और बल है। (बृ० आ० ५।१४।४, १।६।३, २।१।२
१।२।६) प्राण के, आने का स्थान, सूर्य है, यही प्राणरूप **"वैश्वानर अग्नि"** है। (पु० उ० १।६।८) प्राण ही व
रुद्र और आदित्य हैं। (छां० ३।१६) वसु—सबको बसाते हैं, रुद्र—प्राणों के चले जाने से सब रोते हैं, आदित्य—
सबको ग्रहण करते हैं, इस कारण ये **वसु, रुद्र, आदित्य** हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साकारत्व—परमात्मा सर्वव्यापक और पूर्ण निराकार है। उसकी उपासना निर्विषय, ध्यानादि द्वारा होती है। यह उपासना ध्यान-धारण की सिद्धि के उपरान्त ही हो सकती है अन्यथा नहीं होती। यह चरम उन्नति की अवस्था में ही सम्भव हो सकती है। उससे पूर्व सालम्बोपासना का आधार **साकारत्व** के अतिरिक्त अन्य कुछ हो सकना सम्भव नहीं।

जीवात्मा—(अ० वे० कां० ७।२) माता के गर्भ में आने वाला जीवात्मा है। "स एव जातः स जनिष्यमाणः" (वा० यजु० ३२।४) वह पहिले उत्पन्न हुआ था, वही इस समय, गर्भ में आया है। वह पहिले जन्मा था, और भविष्य में भी, जन्म लेगा, अर्थात् बार-बार जन्म लेने वाला **जीवात्मा** है। (पितुः असु) पिता से प्राणशक्ति, माता से रयिशक्ति, प्राप्तकर स्वकर्म भोगवश, जन्म लेता है। (युवानं) वह न कभी बुड्ढा, न बालक, ही है अर्थात् सदा युवा है। (जायते) होता है (अस्ति) पुनः होता है, (वर्धते) बढ़ता है, (विपरिणमते) परिणत होता है। (अपक्षीयते) क्षीण होता है, (विनश्यति) नाश को प्राप्त होता है। ये छै विकारों वाला **जीवात्मा** है। (देवबन्धु) देवों को अपने साथ बाँध देने वाला यह जीवात्मा है। (अथर्वाणं) अपने ही अन्दर रहने वाला है। बाहर ढूँढ़ना आवश्यक नहीं। (पितरं) पिता के तुल्यरक्षक हैं। (यज्ञं) यही पूजनीय है। इसका विचार (मनसाचिकेत) मनन से, ही होता है। (अ० १०।७।१७) जो सबसे प्रथम, पुरुष में स्थित, ब्रह्म को जानते हैं, वे ही परमेष्ठी, प्रजापति को भी जानते हैं। अर्थात् जीवात्मा के ज्ञान होने पर ही, परमात्मा का ज्ञान होता है। **आत्मा का परमात्मा में प्रवेश** (अ० ७।३) जीवात्मा अपने स्वभावधर्म से सूक्ष्मशरीर से, प्राणदेह (कारणदेह) आत्मा में, कारणदेह, (प्राणदेह) परमात्मा के स्वभावधर्म में प्रेरित होता है। **प्राण की साधना**—स्थूलशरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियें, पाँच कर्मेन्द्रियें और इनका संयोजक, मस्तिष्क ये ग्यारह शक्तियाँ प्राण के अधीन हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मशरीर की भी ग्यारह हैं। प्राणदेह, तीसरी के, ग्यारह केन्द्र, जो मज्जातन्तुओं के हैं। वे मस्तिष्क से गुदा तक, पृष्ठवंश में रहने वाले भी, प्राण के अधीन होते हैं। ये तैंतीस प्राण के रथ के घोड़े जैसे हैं। इस रथ पर सवार हो, प्राण शरीर भर में गमन करता है। यह **शरीर** यज्ञशाला है। इसमें **शतसंवत्सर** यज्ञ चल रहा है, जो प्राण के द्वारा चलता है। इस शतसंवत्सरीय यज्ञ में, ये तैंतीस इन्द्रियें, कुमार्ग से चलें, तो मुक्तिमार्ग में, बाधक होती हैं। इनको मन के द्वारा, नियन्त्रित, करना पड़ता है। प्राणायाम से, मनस्थिर होकर, इनको सुमार्ग पर चलाता है। तब प्राणसाधन से मुक्तिप्राप्त होती है। (कां० ७।५) यह मानसोपासनारूपी यज्ञ, सर्वप्रथम प्रगट हुआ। सर्वत्र फैला, उसको ज्ञानीजनों ने जाना, वह बहुत बढ़कर, ज्ञानियों का स्वामी बना। यह मानसयज्ञ, आत्मिकयज्ञ है। इस यज्ञ का समर्पण, परमेश्वर के प्रति होता है।

शरीरधारण—का उद्देश्य है, कि जीवात्मा के साथ जो शरीर मिले हैं, उनके कारण, जीवात्मा के, निज-प्रकाश के किरण, चारों ओर, विकसित, अधिक तेजस्वी होकर, शरीरबन्धनों से, चिरमुक्त हों। **आत्मा**—(अ० कां० ७।२१।२२) वह आत्मा एक है, सभीजनों और प्राणियों के अन्दर विद्यमान है, और उसके आने-जाने की तिथि निश्चित नहीं है, वह सबसे पूर्व विद्यमान था, तथापि नूतन से नूतन पदार्थ में वह रहता है, वह एक ही है+तथापि अनेक प्रकार के मार्ग, उसके ही पास पहुँचते हैं।

प्राणायाम से मुक्ति—(अ० कां० २।३४-५) ज्ञानी, मनीषिगण **"प्रजानन्तः पूर्वेपर्याचरन्तं प्राणं अंगेभ्यप्रति गृह्लन्तु"**। इस संचार करने वाले प्राण, (प्राणों) को सब अङ्गों से, इकट्ठा करके, अपने स्वाधीन कर लेवें। **"शरीरैः प्रतितिष्ठः"** तब अपने स्थूल, सूक्ष्म, प्राण इन तीन शरीरों के साथ स्थिर होकर **"दिवंगच्छ। देवयानैः पथिभिः स्वर्गयाहि"** प्रकाशमय, ज्ञानरूप, वैश्वानर तेज, का स्थान प्राप्त करें। देवों के मार्ग से स्वर्ग में जा। यह योगसाधन द्वारा, प्राप्त होने वाली, अन्तिम सिद्धि प्राणायाम से ही प्राप्त होती है।

प्राणायाम के आयाम:—प्राण के निम्न चार आयाम हैं। (आं० ११।२-७) (आयत्) श्वास के साथ प्राण अन्दर जाता है (पूरक)। (परायत्) उच्छ्वास के साथ बाहर जाता है (रेचक)। (तिष्ठत्) स्थिर रहने वाला, अन्तः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुम्भक; (आसीन) बाह्यकुम्भक । इन चारों यामों से युक्त ही पूर्ण "प्राणायाम" होता है । वे ही **"इड़ा" "पिंगला"** और **"सुषुम्ना"** हैं । ये ही **गंगा, यमुना, सरस्वती** हैं । ये ही क्रमशः पुरुष (इड़ा) **स्त्री** (पिंगला) और नपुंसक, **(सुषुम्ना)** है । **सुषुम्ना का ज्ञान :—** क्षणबांयें, क्षणदाहिने, तांहि "सुषुम्ना" जान ।

क्रियायोग :— "तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" योगसूत्र २।१ में महर्षि पाताञ्जलि ने निर्दिष्ट किया है कि **(१) "शरीर साधना" (२) "मनोनिग्रह"** और **(३) ईश्वर की साधना :—**का नाम क्रिया योग है । उपर्युक्त क्रम १ व २ के विषय में बताया जा चुका है । अब **(३) ईश्वर प्रणिधान** उल्लेखनीय है । ध्यान में सुनायी पड़ने वाली **"विश्वध्वनि"** "ॐ" ईश्वर का बोधक है । ॐ सृष्टिकर्त्ता शब्द ब्रह्म है । वह स्पन्दनशील, सृष्टि यन्त्र का गुंजन है, और ईश्वरीय सत्ता का साक्षी है । शारीरिक, प्राणशक्ति को, वाह्य जगत् की ओर से, हटाकर अन्तर की ओर, आकृष्ट किया जाय और श्वास प्रच्छ्वास की क्रिया द्वारा; अपान को प्राण में, प्राण को अपान में होम करें, हृदय कमलस्थ **हंस** का **(ॐ)** में मनोनिग्रह करे । दृष्टि को **आज्ञाचक्र** "भृकुटि" पर टिका दे । मूलाधारादि चक्रों का भेदन करके, वाणी को ललना चक्र में, निहित करते हुए; प्राण को मस्तिष्क में स्थित **सहस्रारचक्र** में टिका दे । शरीर ढीला रक्खें, आसन पर इस प्रकार जम जाये जैसे "दीपक" वात में जमा रहता है । हृदय के मानसरोवर में अमृतपान करे, सहस्रार चक्र भेदन कर, वहाँ विराजमान, देदीप्यमान, तेजोमय आत्मा के प्रकाश में **जीवात्मा** और **आत्मा** की ज्योतियों को मिलादे । ईश में तदाकार हो जाने पर प्रारम्भिक **(सविकल्प समाधि)** में साधक की चेतना **"विश्व-तत्त्व"** में विलीन हो जाती है । उसकी प्राणशक्ति, शरीर से प्रत्याहृत होकर, वह शरीर "मृत तुल्य" निश्चेष्ट तथा कठोर प्रतीत होता है, परन्तु योगी शरीर की, स्तम्भित प्राण शक्ति, अथवा अन्तर्हित शारीरिक जीवन के, सम्बन्ध में पूर्ण सचेष्ट रहता है । इसमें प्रगति करके, जब उच्चतर आध्यात्मिक अवस्था **(निर्विकल्प समाधि)** में पहुँचता है, तब बिना शरीर को निश्चेष्ट बनाये ही, अपनी सामान्य चेतन अवस्था में, सांसारिक कर्त्तव्य पालन, करते हुए "ईश्वर" से तादात्म्य कर लेता है । **"सविकल्प"** समाधि में साधक, साध्य को पृथक् की भावना से देखता है **"निर्विकल्प"** समाधि में, वह पूर्णब्रह्म के साथ, पूर्ण एकत्व का अनुभव करता है ।

आत्मोन्नति साधना :—(अ० कां ७ सू० १-१) **"धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा"** जो अपने मन को, समाहित करके, ध्यान को, वाणी के मूल स्थान तक पहुँचाते हैं, जो सत्य बोलते हैं, ज्ञान से सम्पन्न होते हैं, कामधेनु स्वरूप ईश्वर **(ॐ)** का मनन करते हैं, वे आत्मोन्नति करते हैं । **ज्ञान —:** ब्रह्मणा (वावृधानाः) ब्रह्मनाम वन्धन निवृति परक ज्ञान । "मोक्षे धीर्ज्ञानम्" ज्ञान का अर्थ है वन्धन से छूटने के उपाय जान जाना ।

वाणी का मूल :—"आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान्मनोयुंक्ते, विवक्षया मनः कायाग्निमाहन्ति सप्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।।७।। सोदीर्णोभूध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्यमारुतः । वर्णाञ्ज-नयते–तेषां विभागः पञ्चधास्मृतः ।।८।। (पाणेनीत शिक्षा)

(१) आत्मा बुद्धि से युक्त होकर, विशेष प्रयोजन का, अनुसंधान करता है, (२) पश्चात् उस प्रयोजन को प्रकट करने के लिये, मन को नियुक्त करता है, (१) मन शरीर के अग्नि को प्रेरित करता है, (४) वह अग्नि वायु को गति देता है, (५) वह वायु छाती से ऊपर आकर, (मन्द्र) स्वर करता है, (६) वह मूर्धा में जाकर, मुख के विविध स्थानों में, आघात् करता है, (७) विविध स्थानों में, आघात होने के कारण, विविध वर्ण उत्पन्न होते हैं, **वही वाणी** है । (वाचः अग्रं) जब ध्यान में वाणी के मूल स्थान को, प्राप्त करता है, तब वह, वहाँ मूल स्थान में, आत्मा को ही देखता है । वाणी के मूल भाग को, देखने के लिये, अन्तर्मुखी परिपक्व क्रिया का होना आवश्यक है ।

वाणी के चार पांव :—चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानिविदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणिनिहितानेङ्गयति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।।४५।। इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमंमातरिश्वानमाहुः ॥४६॥" (ऋ० वे० १।१६४) (अ० वे० ९।१०, १५।२७:२०) वाणी के चार पाद हैं, मननशील ब्रह्मज्ञानी उसको जानते हैं। इनमें तीन पाद, हृदय में गुप्त हैं, और प्रकट होने वाला, जो वाणी का चतुर्थपाद है, वही मनुष्यों की भाषा है। जिससे मनुष्य बोलते हैं। यह वाणी जिस मूल कारण से प्रकट होती है, वह एक सत्य वस्तु है, जिसे ज्ञानी जन "इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि २ कहते हैं।

मन्त्र :—शक्ति सम्पन्न, स्पन्दनशील उच्चारण—"मन्त्र" का शाब्दिक अनुवाद है। **"चिन्तन का साधन"** आदर्श और अश्राव्य शब्द जो सृष्टि के एक पहलू का प्रतिनिधित्व करता है, जब इसे अक्षर के रूप में उच्चारित किया जाता है, तब "मन्त्र" विश्व का संज्ञाशास्त्र बन जाता है। **वाणी (ध्वनि)** की अनन्त शक्तियां "ॐ" से व्युत्पन्न हैं; जो "**शब्द**" (वाणी) द्वा **विश्व मन्त्र** का सर्जनात्मक गुञ्जन है।

अथर्वा :—उपर्युक्त प्रकारों से योगी (ज्ञानी) अपनी चञ्चलता का निरोध करता है, इसी कारण उस योगी को "अथर्वा" अर्थात् 'निश्चल" कहते हैं। इस अथर्वा के वेद को "**अथर्व वेद**" कहते हैं। हर एक योगी नहीं होत; इस कारण हर एक के काम का भी अथर्व वेद नहीं है, परन्तु अन्य तीन वेदों में "सद्बोध-सत्कर्म-सदुपासना" रूप होने से सर्वसाधारण का वेद होने से :"**त्रयी विद्या**" कहते है। यह चतुर्थ "**अथर्व वेद**" किं वा "**ब्रह्मवेद**" विशिष्ट अवस्था में, पहुँचाने का प्रयत्न करने वाले, विशेष मनीषियों के लिये, होने से, उनको "**त्रयी**" में नहीं गिनते। इस कारण "**अथर्ववेद**" एक विशिष्ट वेद है। इसके मन्त्र प्रायः **आदेशपरक और प्रार्थना परक, समर्थ, शक्तिसम्पन्न, स्वतः प्रामाण्य** होने से इसकी विधि-विधान, सरल, . सुलभ, आडम्बर रहित, तत्काल फलदायी होते हैं। विशेष कर्म-काण्ड सामिग्री और समय इसके लिये सापेक्ष्य नहीं। इसी वेद की सहस्रों वर्षों से लुप्त शौनकीय शाखा के तीस वर्षों के अनुसन्धान और प्रयोगों में सफल, सरकार द्वारा मान्य, अनुभूत विधियां इस "कर्मज भव व्याधि दैवी चिकित्सा में, सरल, सुबोध, परिपूर्ण, समृद्ध रूप से जनकल्याणार्थ वर्णित है।

"अथ सात्त्विकः राजस और तामस प्रकृतिक जनों की गति का वर्णन"—

समस्त जगत में व्याप्त प्रकृति के सत, रज, तम तीन गुण हैं। प्रकृति ही जीव को करोड़ों रूपों में प्रगट करती है। सत से उत्तम, रज से मध्यम और तम से अधम गति होती है। केवल पुण्यकर्त्ता ऊर्ध्व लोक, पुण्य, पाप दोनों से मर्त्यलोक; तथा केवल पापाचार से अधोगति प्राप्त होती है। सत के साथ रज; रज के साथ तम; तम के साथ सत; तथा सतोगुण के साथ अव्यक्त (जीवात्मा) का संयोग ही द्वन्द्व है। जब जीवात्मा सत्त्व युक्त होता है, तब "देवलोक" प्राप्त होता है। रज और सत से युक्त होने पर "मनुष्य लोक" रज और तम से युक्त होने पर "पशु-पक्षी" आदि योनि; राजस; तामस और सात्त्विक तीनों भावों से युक्त होने पर "मनुष्य योनिः"; पुण्य, पाप दोनों से रहित जनों को अक्षय पद प्राप्त होता है। परमतत्त्व प्राकृत शरीर में स्थित होने से ही "प्रकृतिस्थ" कहलाता हैं। प्रकृति अचेतन है; परम तत्त्व द्वारा अधिष्ठित हो; वह सृष्टि एवं संहार करती है। प्रकृतिः पुरुष दोनों ही अमूर्त्त, अचल आद्यन्तहीन, स्व स्वगुणों में स्थिर रहने वाले निर्गुण हैं। दोनों ही बुद्धि से अगोचर हैं।

प्रकृतिपुरुष विवेक और फल

जो गुणों से संयुक्त है; वह गुणवान; गुणसंसर्गहीन; निर्गुण कहा है। अव्यक्तप्रकृति; स्वभाव से ही; गुणवती है, गुणों को उपयोग में लाती है, स्वभाव से ज्ञानरहित है। प्रकृति ज्ञानशून्य, पुरुष स्वभाव से ही ज्ञानी है। प्रकृति अचेतन; पुरुष नित्य; अविनाशी (अक्षर) चेतन है। पुरुष अपने को सृष्टिकर्त्ता मानने से "सर्गधर्मा" और योग का कर्त्ता मानने से "योगधर्मा" कहा है। नाना प्रकृतियों को अपने में स्वीकार कर लेने से "प्रकृतिधर्मा" स्थावर पदार्थों के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बीजों का कर्त्ता होने से "वीजधर्मा" प्रकृति सङ्गृहित; नित्य, अव्यक्त है "सांख्य" प्रकृति को एक; पुरुष को अनेक; पुरुष प्रकृति से भिन्न; नित्य है तथा "अव्यक्त" प्रकृति पुरुष से भिन्न अनित्य है। इन दोनों का भेद नित्य है; प्रकृति से पुरुष भिन्न है। इस सांख्यदर्शन के ज्ञाता "कैवल्य" मुक्ति प्राप्त करते हैं।

योगवर्णन और उसके साधन से परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति

सांख्य के तुल्य कोई ज्ञान नहीं; योग के तुल्य बल नहीं; इन दोनों का लक्ष्य एक है और दोनों ही मृत्यु निवारण में समर्थ है। इन दोनों को एक देखने वाला ही "तत्त्वज्ञानी" है। योगसाधन में "रुद्र" प्राणप्रधान है। प्राण वशीकर्त्ता योगी इसी शरीर से दसों दिशाओं में स्वच्छन्द विचरता है। मृत्यु से पूर्व ही योगी; योगबल से; स्थूल शरीर को यहीं छोड़ अष्टविध ऐश्वर्ययुक्त; सूक्ष्मशरीर के द्वारा लोक लोकान्तरों में सुख से विहरता है। वेदों में "स्थूल" और "सूक्ष्म" दो योग कहे हैं। "स्थूल" योग अणिमादि सिद्धिप्रद है। "सूक्ष्म" यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन ८ गुणों से युक्त है।

योग दो प्रकार का है "**सगुण**" और "**निर्गुण**"। (सवीज और निर्वीज)। किसी विशेष देश में चित्त को स्थापित करने का नाम "**धारणा**" है। मन की धारणा के साथ किया जानेवाला प्राणायाम "**सगुण**" है और देश-विशेष का आश्रय न लेकर मन को **निर्जीव** समाधि में एकाग्र करना "**निर्गुण**" प्राणायाम होता है। सगुण प्राणायाम मन को निर्गुण (अतिशून्य) करके स्थिर करने में सहायक होता है। यदि पूरक, रेचक, कुम्भक के समय नियत देवता "जो कर्मज भवव्याधि दैवी चिकित्सा में आगे दिये जावेंगे" आदि का ध्यान द्वारा साक्षात्कार किये बिना ही कोई प्राण-वायु का रेचन करता है; तो उसके शरीर में; वायु का प्रकोप बढ़ जाता है। रात्रि के प्रथम और अन्त के दो प्रहरों में ध्यानपूर्वक चार २ प्राणायामों का नित्य अभ्यास करना योगी के लिये अत्यावश्यक है; बीच के दो प्रहरों में विश्राम करें। इस भांति प्राणायाम द्वारा मन को वश में करके शान्त, जितेन्द्रिय हो, एकान्तवासी आत्माराम ज्ञानी मन को परमात्मा में लगायें। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन दोषों को दूर कर लय, विक्षेप शान्त कर; समस्त इन्द्रियों को; मन में स्थिर करे। इस भांति सबका लय करके; योगी उस परब्रह्म का; ध्यान करते हैं।

समाधि—योगयुक्त पुरुष सतत प्रसन्न रहता है। विक्षेपों का प्रभाव नहीं पड़ता। विविध वाद्यादि से भी ध्यान भङ्ग नहीं होता, यही सुदृढ़ समाधि कही है।

जो अच्छी तरह समाधि में स्थित हो जाता है, वह घोरतम अन्धकार में देदीप्यमान अग्नि के तुल्य हृदय देश में स्थित (अविनाशी) परब्रह्म का साक्षात्कार करता है। यही योगियों का योग है। प्राणायाम विषयक अथर्वसूक्त का यही रहस्य है। विनियोगसूक्त के साथ देखें।

अथ अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवत वर्णन

तत्वदर्शीजनों ने पैर "अध्यात्म" गन्तव्यस्थान "अधिभूत" और विष्णु को अधिदैवत बतलाया है। गुदा "अध्यात्म"; मलत्याग "अधिभूत"; और मित्र "अधिदैवत" कहा गया है। योगमतावलम्बी—उपस्थ "अध्यात्म" मैथुन जनित आनन्द; "अधिभूत और प्रजापति"; "अधिदैवत" कहलाते हैं।

सांख्यदर्शी :—दोनों हाथ "अध्यात्म"; कर्त्तव्य "अधिभूत"; इन्द्र "अधिदैवत" माना है।
वेदार्थविचारक : वाक् "अध्यात्म" वक्तव्य "अधिभूत"; अग्नि "अधिदैवत" माना है।
वेददर्शी :—नेत्र "अध्यात्म", रूप "अधिभूत"; सूर्य "अधिदैवत" मानते हैं।
वैदिकसिद्धान्त ज्ञाता :—श्रोत्र "अध्यात्म"; शब्द "अधिभूत"; दिशायें "अधिदैवत" मानते हैं।
वेदद्रष्टा :—जिह्वा "अध्यात्म"; रस "अधिभूत"; जल "अधिदैवत" मानते हैं।
वैदिकमतावलम्बी तत्वज्ञ :—नासिका "अध्यात्म"; गन्ध "अधिभूत"; पृथ्वी "अधिदैवत" मानते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्वज्ञानदक्ष :—त्वचा "अध्यात्म" स्पर्श "अधिभूत"; वायु "अधिदैवत" **शास्त्रज्ञ :**—मन "अध्यात्म" मन्तव्य "अधिभूत"; वायु "अधिदैवत" **तत्वदर्शी :**—अहंकार "अध्यात्म"; अभिमान "अधिभूत"; **रुद्र :**–"अधिदेवता"; **यथार्थज्ञाता :**–बुद्धि "अध्यात्म"; वोद्धव्य "अधिभूत"; आत्मा "अधिदैवत"; इस प्रकार आदि, मध्य, अन्त में तत्वतः प्रकाशित होनेवाली जीव की व्यक्तिगत विभूति है। प्रकृति ही स्वतन्त्रता से, स्वेच्छया अनेकों गुणों को उत्पन्न करती है।

सत्त्वसम्बन्धीगुण :—धैर्य, आनन्द, कीर्ति, प्रीति, ज्ञानशक्ति, सुख, शुद्धि, आरोग्य, संतोष, श्रद्धा, अदीनता, अक्रोध; क्षमा; धृति; अहिंसा, समता, सत्य, ऋणरहित होना; मृदुता, लज्जा, अचञ्चलता, शौच, सरलता, सदाचार, अलोलुपता, असम्भ्रमता, इष्ट, अनिष्ट के वियोग का बखान; न करना; दान द्वारा धैर्यता; अनिच्छा; परोपकार; प्राणिमात्र पर दया करना।

रजोगुणकर्म :—रूप; ऐश्वर्य; विग्रह; त्याग; का अभाव; अकरुणा; दुःख-सुख उपभोग; परनिन्दा, प्रेम, वाद-विवाद; अहंकार, मान्य का तिरस्कार, अमान्य का सत्कार; चिन्ता, वैर, संताप, परधनापहरण निर्लज्जता, कुटिलता, भेदबुद्धि, कठोरता, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष, अनर्गलालाप।

तमोगुणलक्षण :—मोह, अज्ञान, तामिस्र, अन्धतामिस्र लक्षण हैं। तामिस्र क्रोधवाचक अन्धतामिस्र मरण-सूचक है; भोजन, पेय, भजन में अरुचि, कुचैले वस्त्र, कुचैले कर्म, अनुचित विहार, मलिनशय्या और आसवों का सेवन; दिन में सोना, अत्यन्त कलह, आसक्ति, अज्ञानमूल नृत्य, गान वाद्यों में रुचि; तथा धर्मों में द्वेष, ये सभी मृत्युप्रद, विविध भयङ्कर आधि-व्याधि, कर्मज भव-बन्धनप्रद ही है। ये ही अधोगति में निकृष्ट लोकों में जघन्य योनियों में कोटि २ वर्षों तक दुस्सह दुख देते हैं।

जीवन-बन्ध-मोक्ष—

उत्तम लोकः :—भारत वर्ष का हिमालय की गोद का सर्वगुण सम्पन्न, पुन्यमय प्रदेश, जो पुण्यदायक, क्षेमकारक और कमनीय हैं, वही "उत्तम लोक" धर्म शास्त्रों में वर्णित है। पापी लोग कदापि पृथ्वी तथा भारत का उत्तरीय भाग जो सर्वोत्तम, पवित्र और शुभ है, उसमें जाने, वास करने का संकल्प भी नहीं करा सकते हैं। यही भूलोक का उत्तम लोक कहा है।

अध्यात्म क्या है :—अध्यात्म अतिशय कल्याणकारी सुख स्वरूप है सम्पूर्ण प्राणिमात्र का हितैषी है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज ये पञ्च महाभूत हैं। ये समस्त प्राणियों के उत्पत्ति; लय के स्थान हैं। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, उसी में लीन होते है। परमात्मा ने इन ५ महाभूतों को समस्त प्राणियों में नियुक्त किया है; किन्तु जीव उन परमात्मा को नहीं देखता। इनको निम्न भांति समझें—

(१) आकाश से (शब्द, कान, शरीर के छिद्र) **(२) वायु से** (स्पर्श, चेष्टा, त्वचा) **(३) तेज से** (रूप, नेत्र, वाक्) **(४) जल :**–(रस, क्लेद (गीलापन) जिह्वा); **(५) भूमि** (गन्ध, नासिका, शरीर) इनमें ५ कर्मेन्द्रिय और छटा मन है। (७) बुद्धितत्व है। (८) क्षेत्रज्ञ है। पाँच कर्मेन्द्रियों के कर्मों की भाँति ही मन, संदेह, बुद्धि निश्चय के लिये, तथा क्षेत्रज्ञ साक्षी की भांति स्थित है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) व्यापक है, पुरुष ज्ञाता, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उसके ज्ञेय हैं। सत, रज, तम, पुरुष के आश्रित हैं। इस अध्यात्म ज्ञान का **ज्ञाता** ही, समस्त भूतों के आवागमन का, ज्ञानकर, शनैः २ उत्तम शान्ति पा लेता है। इन्द्रियां अपने २ विषयों, गुणों की परिचायक हैं। बुद्धि सदा, ज्ञान यानिश्चय कराती है पुरुष जिससे, कुछ कामना करता है, **वह मन** है। बुद्धि इन सबका **अधिष्ठान** है। ५ विषय और ५ इन्द्रियां उससे पृथक् कही गई है। इन सबका अधिष्ठाता चेतन "**क्षेत्रज्ञ**" इनसे नहीं देखा जाता।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) सतोगुण का (**प्रीति** या प्रसन्नता); (२) तमोगुण का (**क्रोध**) (३) रजोगुण का (**शोक**) स्वरूप है। लोक के समस्त भाव इन्हीं ३ भावों में आवद्ध है। ये सदैव प्राणियों के अन्तवर्ती है। मन के २ स्वरूप हैं; याचना करना और संशय। जो मन पर नियन्त्रण कर लेते हैं, वे सभीं लोकों में, सुखी रहते हैं। सत्त्व (बुद्धि) तथा क्षेत्रज्ञ (पुरुष) ये दोनों सूक्ष्म हैं। हम दोनों की पृथकूता का ज्ञाता भी सभी लोकों में सुख पाता है। इनमें एक गुणों का स्रष्टा है, एक नहीं। ये तीनों गुण आत्मा को नहीं जानते परन्तु आत्मा सर्व प्रकार से गुणों को जानता है। पुरुष गुणों का द्दष्टा तो है स्रष्टा नहीं। इस भाँति सत्त्व और पुरुष का संयोग हुआ है, परन्तु पार्थक्य निश्चित है। जब बुद्धि, मन के द्वारा इन्द्रिय रूपी १० घोड़ों की लगाम खींचती है, और नियन्त्रण में कर लेती है तब आत्मा प्रकाशित होने लगता है। प्राकृत कर्मों का त्यागी; आत्मा में रमण कर्त्ता, सर्व भूतात्मा ही: उत्तम गति प्राप्त करता है। शुद्ध बुद्धि पुरुष, लिप्त नहीं होता। वह सम्पूर्ण प्राणियों में अनासक्त भाव से ही रहता है। **इस उत्तम अध्यात्म ज्ञान का ज्ञाता,** ज्ञान गंगा में गोता लगाकर निर्मल हो **"कैवल्य"** मुक्ति प्राप्त करता है। आत्मा रसों इन्द्रियों, मन और बुद्धि का साक्षी होने से उनसे परे हैं। इस तत्त्व के ज्ञाता मनीषी ही कृतकृत्य होते हैं। निष्काम कर्त्ता, आसक्ति त्याग करके, कर्म करने वाले ही, पूर्वकृत कर्मवन्धन, जला देने में समर्थ होते हैं।

ताप-त्रय मुक्तिप्रद योग

ध्यानयोग—४ प्रकार का कहा गया है। उनमें से एक साश्वत सिद्धिप्रद का उल्लेख ही यहाँ करना उचित हैं।

ध्याता :—विविध चिन्तातुर, मन को **"ध्यान"** द्वारा एकाग्र कर **"ध्येय"** में स्थित करे। सब ओर से इन्द्रियगण को समेटकर ध्यानयोगी मुनि काष्ठवत् हो जावे। तत्त्ववेत्ता ध्यान के द्वारा, इन्द्रिय विषयों की अभिलाषा का, सर्वतोभावेन त्याग करदें। इन सशक्त इन्द्रियों को, मन में लीन करके मन को भी ध्येय वस्तु में लीन करदें। इन्द्रियाँ ही मन के निकलने का मार्ग है। इन्द्रिय और मन पर नियन्त्रण करने पर, प्रथम ध्यान सिद्ध होता है। साधक क्लेश, चिन्ता, ईर्ष्या और आलस्य का त्यागकर, ध्यान द्वारा चित्त एकाग्र करे तो, हृदय में विचार, वितर्क एवं विवेक, की उत्त्पत्ति होती है। मन उद्विग्न हो तो उसका समाधान करें, खिन्न या उदासीन न हों। इन्द्रियों का शनैः शनैः उपसंहार करें। प्रथम ध्यान मार्ग में, पांचों इन्द्रियों और मन को स्थापित करके, नित्य अभ्यास से ये स्वतः शान्त हो जायेंगे। आत्म संयम सुख, अलौकिक हैं, पुरुषार्थ या प्रारब्ध से अप्राप्य है। इस प्रकार के ध्यान का अभ्यास करने वाले योगीजन निरामय मोक्ष प्राप्त करते हैं।

"परम मोक्ष"—सांख्य शात्रोक्त (१) **"जातिनिर्वेद"** (२) **"कर्मनिर्वेद"** (३) **"सर्वनिर्वेद"** परसमोक्ष के मूल हैं।

(१) जातिनिर्वेद—गर्भकालीन असह्य दुःखों के ज्ञान से, शरीर होने का नाम है।

(२) कर्मनिर्वेद—कर्मज, पापज, विविध योनिजात, यातना का ज्ञानकर, पाप तथा काम्य कर्मों से उपरति, होने का नाम है।

(३) **"सर्वनिर्वेद"**—संसारिक अकिञ्चन पदार्थ से, ब्रह्मलोक पर्यन्त के भोगों की, नश्वरता तथा दुःखद स्वरूप के, ज्ञान द्वारा सब ओर से विरक्ति, होने का नाम है। जिस हेतु धर्माचरण किया जाता है; जो कर्म फलोदय से प्राप्त होता है, वह इहलोक, परलोक का भोग नश्वर, मोह रूप और अस्थिर है। अनुमान और आगम का मूल प्रत्यक्ष प्रमाण है। मृत शरीर में चेतनता का अतिक्रमण ही, देहातिरिक्त, आत्मा के, अस्तित्व में प्रमाण है। मुमुक्षु का अनिवार्य अभीष्ट कर्त्तव्य, सकाम कर्म और धनादि की आसक्ति का पूर्ण त्याग होना चाहिये इस **मोक्षविद्या** का ज्ञानकर, आत्मतत्त्व का अनुसन्धानकर्त्ता योगी, जल में कमल पत्र की भाँति कर्म के अनिष्ठ बन्धनों में, कभी लिप्त नहीं होता।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्तानादि में आसक्ति; तथा सकाम कर्म, नाना भाँति के दृढ़ कर्म बन्धन हैं। पुण्य, पाप का क्षय, व्याप्त सुख दुःखादि फल का नाश होने पर, आसक्ति रहित योगी, आकाशवत्, निर्लेप एवं निर्गुण आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। जो शरीर की आसक्ति तथा अपनेपन को त्याग देता है, वह भव-व्याधि से मुक्त हो जाता है, वही इस उत्तम गति **"परम मोक्ष"** को प्राप्त करता है।

भगवत्प्राप्ति—गर्भ में, जन्मकाल और वृद्धादि अवस्था में प्रकट होने वाले तापत्रय, समूदाय की अचूक अनिवार्य, अमोघ भेषज "भगवत्प्राप्ति" ही मानी गई है। उसके प्राप्त होते ही लोकोत्तर आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। यह "ज्ञान" और "निष्कामकर्म" से ही प्राप्त होती है। ज्ञान भी दो प्रकार का है, (१) शास्त्राध्ययन, अनुशीलन जन्य (२) विवेक जन्य। "शब्दब्रह्म" (वेदज्ञान) शास्त्रज्ञान और परब्रह्म परमात्मा का बोध, (विवेक जन्य) ज्ञान हैं। ज्ञेयब्रह्म दो प्रकार का है–(१) शब्दब्रह्म, (२) परब्रह्म। शब्द ब्रह्म (शास्त्रज्ञान) द्वारा अविद्या की निवृत्ति होने पर केवल सनातन आत्मा ही रह जाता है। और प्राणी अपने "नाम" रूप का परित्याग कर, महत्स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है वही "मोक्ष" है। वही विवेक जन्य ज्ञान द्वारा "परब्रह्म" की प्राप्ति कहलाती है।

परा, अपरा विद्या

अथर्ववेद की "द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये शब्दब्रह्म; परञ्चयत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधि गच्छति" श्रुति कहती है. कि दो प्रकार की विद्यायें जानने योग्य है (१) परा, (२) अपरा। (१) परा से निर्गुण-सगुण परमात्मा की प्राप्ति होती है; जो अव्यक्त, अजर, अमर; अजन्मा; निश्चेष्ट, अविनाशी, अनिर्देश्य, रूपहीन, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतों का आदिकारण, स्वयं कारणहीन, जो सर्वव्याप्त; सृजन, सम्भरण; संहरणकर्त्ता हो, ज्ञानी जनों का ज्ञेय "परम-धाम स्वरूप" ब्रह्म है। मुमुक्षुओं का ध्येय, वेदों में प्रतिपादित, अतिसूक्ष्म; भगवान् विष्णु का परमपद है। यही स्वरूप "भगवत्" शब्द का वाच्यार्थ है। और "भगवत्" शब्द ही उस अविनाशी परमात्मा का वाचक कहा गया है। यही परमात्मा का यथार्थ तत्त्व है। जिससे उसका यथार्थ बोध होता है, वही पराविद्या (परमज्ञान) है; इससे भिन्न जो "वेदत्रयी है, उन्हें अपरज्ञान (अपराविद्या) कहा गया है।

यद्यपि "ब्रह्म" किसी भी शब्द या "वाणी" का विषय नहीं, तथापि उपासनार्थ **"भगवान"** नाम से प्रतिपादित है। समस्त कारणों के कारण, परमशुद्ध, महाविभूतिवाले, "परब्रह्म" के लिये ही "भगवत्" शब्द प्रयोग हुआ है। "भगवत" शब्द के "भ" का अर्थ है सम्भर्त्ता (भरण-पोषणकर्त्ता) तथा भर्त्ता (धारणकर्त्ता) "ग' शब्द के तीन अर्थ हैं गमयिता (प्रेरक); नेता (सञ्चालक); तथा स्रष्टा (जगत रचयिता)। "भ" और "ग" के योग से "भग" शब्द बनता है। इसका अर्थ है सम्पूर्ण (ऐश्वर्य) (धर्म); यश; श्री, ज्ञान; तथा वैराग्य का नाम "भग" है। उस सर्वात्मा में सम्पूर्ण "भूत" प्राणी निवास करते हैं; तथा वह स्वयं भी सब भूतों में वास करते हैं; इस कारण वह अव्यय परमात्मा ही "व" शब्द का अर्थ है। इस भांति "भगवान्" यह महान शब्द परमब्रह्म स्वरूप "वासुदेव" का ही बोधक है। जो सब प्राणियों की "उत्पत्ति; प्रलय" "आवागमन"; "विद्या" तथा "अविद्या" का ज्ञाता (अधिष्ठान) है, वही "भगवान" कहलाने का अधिकारी है।

त्यागगुणों को छोड़; जो अलौकिक, ज्ञान, शक्ति; बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेजादि सद्गुण सभी "भगवत्" शब्द के वाच्यार्थ हैं। उन परमात्मा में सम्पूर्ण भूत वास करते हैं; और वह भी समस्त भूतों में व्याप्त होने से ही; उसे "वासुदेव" कहा गया है। वे जगदात्मा, आवरणों से परे; भूतों की प्रकृति; प्राकृतविकार, गुण, दोषों से परे, पृथ्वी; आकाश के मध्य स्थित, सर्वव्यापक, कल्याणमय गुणस्वरूप; प्रकृति आदि से परे; कार्य, कारणेश; क्लेशरहित, सर्वानु-शासनकर्त्ता; व्यष्टि, समष्टिस्वरूप, व्यक्ताव्यक्त स्वरूप ही "परमेश्वर" नाम से प्रसिद्ध हैं। जिसके द्वारा उपर्युक्त स्वरूप का साक्षात्कार अथवा **"बोध"** होता है उसी का नाम **"ज्ञान"** है। उसके विपरीत **"अज्ञान"** है। भगवान का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दर्शन; स्वाध्याय और संयम से ही साध्य है। ब्रह्मप्राप्ति में कारण होने से वेद का नाम भी "ब्रह्म" ही है। वेद स्वाध्याय से योग अनुष्ठान करे, और योग से स्वाध्याय का अभ्यास। इन दोनों के सम्पादन से परमात्मा प्रकाशित होते हैं। उनके दर्शनार्थ स्वाध्याय, और योग दोनों नेत्र हैं।

अविद्या का स्वरूप—अविद्यारूपी वृक्ष की उत्पत्ति के बीज, दो प्रकार के होते हैं (१) अनात्मा में आत्मबुद्धि, (२) जो अपना नहीं, उसे अपना मानना अर्थात् अहंता और ममता। १ "आत्मा" पञ्चभूतों से परे होते हुए भी, मोहान्धकार से आवृत; निर्बुद्धि, देहाभिमानी "जीव" का इस पाञ्चभौतिक, नश्वरदेह में दृढ़ अपनत्व मानना, अविद्या का स्वरूप है। २ "आत्मा" देह से परे है तो "जीव" का देह के उपभोग्य पदार्थों में अपनत्व मान लेना। ३—शरीर "अनात्मा" है, इससे उत्पन्न पुत्रादि सभी में अपनत्व मानना। ४—नश्वर शरीर के उपभोगार्थ कृत समस्त सकाम कर्म, इस शरीर के आत्मा से भिन्न होने से, बन्धन (जन्म, मृत्यु) के कारण होते हैं, इन पर वृथा गर्व करना। इस "जीव" के अनेक सहस्र वर्षों से–जो नश्वर, संसाररूपी मार्ग पर चल रहा है, तथापि वासनारूपी धूल से आच्छादित हो, केवल "मोहरूपी" श्रम को प्राप्त होता है। यही अविद्या का स्वरूप, जो अथर्ववेद के अध्यात्म प्रकरण में वर्णित है, उसका सूक्ष्मभाव है। उक्त वासनारूपी धूल के; तत्त्वज्ञानरूपी जल से धुल जाने पर, सांसारिक पथिक के, मोहरूप श्रम शान्त होने पर, अन्तःकरण निर्मल होने पर ही, ज्ञानमय, निर्वाण स्वरूप, विशुद्ध आत्मा, निरतिशय आनन्द रूप मोक्ष प्राप्त करता है।

मोक्ष का स्वरूप कैसा है ? उसे ज्ञान या तपस्या, किस साधन से प्राप्त करें ? क्रमशः अनेक प्रकार के सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए, शुभाशुभ कर्मों की, आसक्ति का त्याग हो जाना। जो सम्पूर्ण भूतों को, अपने में; अपने को सम्पूर्ण भूतों में, देखनेवाला, संसार में रहते हुए, उसके दोषों में लिप्त न हो, अक्षयपद प्राप्त करना। मोक्ष-शास्त्र निपुणों द्वारा अवधार्य, आत्मज्योति प्रकाश का अपने ही, भीतर दर्शन करना। जो अन्यत्र नहीं; जो समस्त प्राणियों में समानरूप से अवस्थित है, जिसे समाधि में, क्षपने चित्त को भलीभांति एकाग्रकर्त्ता पुरुष स्वयं ही देखता है। जिससे अन्य कोई प्राणी भयभीत नहीं होता, जो स्वयं भी किसी से भयभीत नहीं होता; जो इच्छा द्वेष, ईर्ष्या से रहित है, वही ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। मन, वाणी और क्रिया द्वारा सभी का हित कर्त्ता, ब्रह्मभाव प्राप्त करता है। मोह के मूल, ईर्ष्या, काम और लोभ का परित्यागी, तपस्वी को ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है। श्रवणनीय, दर्शनीय विषयों में, समस्त प्राणियों में समभाव, सुख, दुःखादि द्वन्द्वों से रहित, चित्तवाला "ब्रह्म" को प्राप्त करता है। निन्दा, स्तुति, मिट्टी रत्न सुख, दुःख, शीतोष्ण; अर्थ, अनर्थ, प्रिया प्रिय, जीवन मरण में समदृष्टि होने पर ही "ब्रह्म-भाव" प्राप्त होता है।

वेदों के अनध्याय के निमित्त स्वरूह वायु।

पृथ्वी और अन्तरिक्ष में बहने वाली वायु के सात मार्ग हैं। (१) प्रवह (२) आवह (३) उद्वह (४) संवह (५) विवह (६) परिवह (७) परावह ये सात मरुद्गण दिति के परम अद्भुत पुत्र हैं इनकी गति सर्वत्र है। वह वायु भगवान् कानिश्वास है। जब कभी सहसा वह निश्वास वेग से निकल पड़ता है, उस समय सारा जगत व्यथित हो उठता है। ब्रह्म वेत्ता प्रचण्ड वायु (आँधी) चलने पर वेद पाठ नहीं करते "वेद" भी भगवान का निश्वास ही है। उस समय वेद पाठ करने पर वा[illegible] को क्षोभ प्राप्त होता है।

आगे इन सात वायुओं के पृथेक्-पृथक् स्वरूपों का उल्लेख है। दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर; मन, अन्तःकरण निर्मल होने पर, रज, तम से [illegible]रे, सत्य में प्रतिष्ठित, हृदय में वेदों के अवधारध करने वाले, ही उपर्युक्त अनध्याय के कारण रूप वायु के निराकरण में समर्थ हो सकते हैं; अन्य की सामर्थ्य से परे हैं। इसकी **"शान्ति विधि—"पिप्पलादिशान्ति" अद्भुदर्शन जनि[illegible]ारिष्ट निवारण में दी है।"**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) प्रवह :—प्रथम मार्ग से प्रवाहित होने वाला; धूम तथा उष्णता से उत्पन्न बादल समूहों और ओलों को इधर-उधर ले जाने वाले का नाम है।

(२) आवह :—महान तेज सम्पन्न, द्वितीय मार्गवाही; आकाश में रस की मात्राओं और विद्युदुत्पातनार्थ प्रगट होने वाले का नाम है।

(३) उद्वह :—तृतीय मार्ग वाही; घोर नाद से वहने वाले, निरन्तर, सोम, सूर्य आदि ज्योतिर्मय ग्रहों का उदय एवं उद्भवकर्त्ता; समस्त समुद्रों से जल ग्रहण कर ऊपर उठा "जीमूतों" को जल से संयुक्त कर "पर्जन्य" को सौंपने वाले मनीषियों द्वारा शरीर अवधार्य "उदान" का ही नाम है।

(४) संवह :—चतुर्थ मार्गवाही, जिससे प्रेरित, विविध भांति के महामेघ, घटा बाँध, वर्षना प्रारम्भ करते हैं, जो आकाश मार्गवाही देव विमानों का स्वयं वाहक है, पर्वतों का गर्व खर्व कर्त्ता का नाम है।

(५) विवह :—पञ्चममार्गी, रूक्षभाव से, अति वेग से वृक्षों को तोड़ने उखाड़ने वाला; प्रलयकालीन; सगठित "बलाहक संज्ञक मेघों" का धारणकर्त्ता मेघ घटाओं का संचालक, भयानक उत्पात करने वाले, अत्यन्त वेगवान् का नाम है।

(६) परिवह :—जिसके आधार पर आकाश में दिव्य जल प्रवाहित होते हैं। जो आकाश गंगा के पावन जल को धारण कर स्थित है, जिसके द्वारा दूर से ही, प्रतिहत हो, सहस्रांशु सूर्यदेव एक ही किरण से युक्त प्रतीत होते हैं, जिनसे पृथ्वी प्रकाशित होती है तथा अमृत की दिव्य निधि चन्द्रमा का भी जिससे पोषण होता है, उसका नाम है वह सम्पूर्ण विजयशील तत्त्वों में श्रेष्ठ है।

(७) परावह :—सर्वश्रेष्ठ सक्षम मार्गवाही, प्राणान्त काल में, समस्त प्राणियों के प्राणों को (शरीर से) निकालने वाला, जिसके इस प्राण निष्कासन रूप मार्ग का मृत्यु तथा वैवस्वत यम अनुगमन मात्र करते है, जो सतत अध्यात्म चिन्तन में लीन शान्त बुद्धि द्वारा; भली-भाँति विचार या अनुसंधानकर्त्ता, ध्यानाभ्यास परायण मनीषिगणों के अमृतत्व प्रदान में पूर्ण समर्थ हैं; जिसमें स्थित होकर प्रजापति दक्ष के दस सहस्र पुत्र अत्यन्त वेग से सम्पूर्ण दिशाओं के अन्त में पहुँच गये तथा जिससे वृष्टि का जल तिरोहित होकर वर्षा बन्द हो जाती है; उनका नाम है। इन्हीं सप्त वायुओं से मृत्यु, अमृत, प्रलयादि होती हैं। ये "महाकाल" (जिसका उल्लेख इसी ग्रन्थ में हो चुका है) के बलदाता हैं। इन सभी की शान्ति विधि ग्रन्थ में देखें।

अथ मोक्ष रूप पुरुषार्थ साधन—विद्या अद्वितीय नेत्र है। सत्य अद्वितीय तप है। राग अद्वितीय दुःख, और त्याग अद्वितीय सुख है। पाप से दूर रहकर, निरन्तर पुण्य सञ्चय करते रहना; साधु पुरुषों के वर्ताव को अपनाना, उत्तम सदाचार पालन करना, सर्वोत्तम श्रेय साधन है। काम, क्रोध, लोभ, मोह पर विजय प्राप्त करना श्रेय का साधन है। तप को क्रोध से; सम्पत्ति को ईर्ष्या से, विद्या को मान, अपमान से, अपने को प्रमाद से बचाना चाहिये। क्रूर स्वभाव का परित्याग सर्वोत्तम धर्म है। क्षमा सर्वश्रेष्ठ बल, आत्म ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान और सत्य सर्वोत्तम हित साधन है। सत्य बोलना श्रेष्ठ है उससे बढ़कर हितकारक वात कहना है। नवीन सङ्कल्पों का त्यागी कामना रहित, जो किसी भी वस्तु का संग्रही नहीं; सर्वस्व त्यागी ही विद्वान् और वही पण्डित है। इन्द्रिय-निग्रहकर, अनासक्त भाव से विषयानुभवकर्त्ता के अन्तःकरण में निरन्तर शान्ति विराजती है। निर्विकार, एकाग्रचित्त, आत्मीय शरीरेन्द्रिय से विरक्त, समस्त वन्धनों से मुक्त होकर परम कल्याण "मोक्ष" प्राप्त करता है। जिसकी किसी भी प्राणी की ओर दृष्टि नहीं जाती; जो किसी से स्पर्श या किसी से बातचीत नहीं करता, वही महान् श्रेय को प्राप्त करता है। जीव हिंसा न करे, प्राणि मात्र से मित्रता करे जन्म, या शरीर के नाते, किसी से वैर भाव न करे, पूर्ण सन्तोष रखे,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामना या चञ्चलता का परित्याग करे, इससे परम श्रेयस सिद्धि होती है। अजेय परमात्मा को जीतने की कामना वाले को चाहिये कि वह तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील संयत चित्त; तथा सम्पूर्ण विषयों में अनासक्त होकर। **सदा एकान्त वास अत्यन्त शीघ्र सर्वोत्तम सुख (मोक्ष)** प्राप्त करे।

"भवव्याधि"—जीव सदा कर्मों के अधीन रहता है, वह शुभ कर्मों से देवता होता है, शुभाशुभ (दोनों) के आचरण से मनुष्य योनि में जन्म पाता है;तथा केवल अशुभ कर्मों से पशु, पक्षी आदि नीच योनि ग्रहण करता है। उन-उन योनियों में जीव को सदा जरा-मृत्यु तथा अन्य कर्मज नाना दु.खों का शिकार होना पड़ता है, इस भाँति संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी "सन्ताप" की अग्नि में पकाया जाता है यही भव व्याधि स्वरूप है।

अथ जीव का गर्भाशय प्रवेश; और गर्भ दुःख—ऋतुस्नातास्त्री के गर्भाधान काल में जीव अपने पुरातन कर्मों के वशीभूत हो, उस वीर्य रूप वीज के साथ गर्भाशय में प्रविष्ट हो, रजवीर्य के **कलल** में स्थित होता है वय वीर्य जीव प्रवेश के ५ दिन बाद "कलल" रूप में परिणित होता है। १५ दिन बाद **"पलल"** (मांस पिण्ड की सी स्थिति) प्राप्त हो, एक मास में **"प्रादेश मात्र"** बड़ा होता है। तभी से पूर्ण चेतना हीन ही, माता के गर्भ में, दुस्सह ताप और क्लेशों से, वायु से प्रेरित, इधर-उधर भ्रमण करता है। द्वितीय मास में मनुष्य के से आकार में आता है। तीसरे के अन्त में हाथ, पैर आदि के अवयव प्रकट होते हैं। चौथे के अन्त में, अवयवों की सन्धि का भेद, ज्ञात होने लगता है पाचवें के अन्त में अँगुलियों के नख, प्रगट होते हैं। ६ वें के अन्त में, नखों की सन्धि प्रगट होती है उसकी नाभि की नाल द्वारा अन्न रस पाकर पुष्ट होता है। सारे अंग अपवित्र मल मूत्र से यूक्त, भीगे रहते हैं, जरायु में शरीर बँधा होता है, और माता के रक्त, हड्डी, कीड़े, वसा, मज्जा, स्नायु और केशादि से दूषित, घृणित शरीर में, निवास करता है। इसी दुर अवस्था में, वह देहधारी जीव, पूर्वजन्मों की स्मृति के प्रभाव से, पहिले के अनुभव पूर्ण, नारकीय दुःखों का भी स्मरण कर आन्तरिक, असह्य दुःखों से, संतप्त होने लगता है। सोचता है शरीर का कारण पाप ही है। पूर्व जन्म कृत, नाना पापों के फलस्वरूप मैं अकेला ही अत्यन्त दुःख से, जल रहा हूँ। प्रतिज्ञा करता है, मैं वेदों के रहस्य भूत, योगियों के आनन्द स्वरूप, जगदाश्रय भगवान् के चरणारविन्दों को, हृदय में रखकर, दुःखरूप अपार संसार सिन्धु को लांघ जाऊँगा।

माता के प्रसव काल में भी, गर्भस्थ जीव वायु से, अत्यन्त पीड़ित होकर—कर्मपाश से, बँधकर हठात् योनि-मार्ग से, निकलते हुए सम्पूर्ण नारकीय यातनाओं, का भोग एक ही साथ भोगना पड़ता है। पृथ्वीमण्डलस्थवायु स्पर्श होते ही, वह स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। वाल्यारस्था में भी अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट भोग का, अनुभव करता है। इस भाँति जन्म से मरणपर्यन्त-जीवधारी-संसाररूपी दावानल के ताप से संतप्त रहता है। यह जीव, ज्ञान एवं तपश्चर्या के आश्रय से ही "भव-व्याधि" "भव-वन्धन" से मुक्त हो सकता है।

अथ मुक्तिप्रद योग

इस विषय में "कर्मज भवव्याधि दैवीचिकित्सा" नामक अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा के इस ग्रन्थ में पूर्व प्रकाश डाला जा चुका है, उसी सन्दर्भ में योगियों से प्राप्त अनुभूतियों का उल्लेख किया जाता है।

योग का स्वरूप—योगी योग में स्थित हो, ब्रह्म में लीन होकर, अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता। मन ही वन्ध-मोक्ष का कारण है। ब्रह्म चिन्तन परायण के चित्त को, परमात्मा अपने स्वरूप में, लीन कर लेता है। आत्मज्ञान के उपायभूत, यम-नियमादि साधनों की अपेक्षा, रखनेवाली मन की विशिष्ठगति का, ब्रह्म के साथ संयोग होना ही "योग" है। जिसका योग इस वैशिष्ठ्य धर्मपरायण है; वही "मुमुक्षु" कहलाता है। प्राथमिक योगाभ्यासी को **"युञ्जान"** कहा जाता है। जब उसे परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है तब वह **"विनिष्पन्नसमाधि"** युक्त कहलाता है। यदि पूर्वोक्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"युञ्जान" का, किसी विघ्नविशेष से चित्त दूषित हो जावे तो दूसरे जन्मों में अभ्यास से मुक्ति हो जाती है। "विनिष्पन्न समाधि" योगी योगाग्नि से सम्पूर्ण कर्मराशि को भस्म कर डालता है। इसी जन्म में शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेता है। योगी का कर्त्तव्य है कि चित्त को योगसाधन सम्पन्न बनाते हुए, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह निष्काम भाव से सेवन करे, ये ही ५ यम हैं। इन्हीं के साथ शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा परमात्मा में मन को लगाने में इन पांच नियमों का परिपालन करें। इनका सकाम पालन "अभीष्टप्रद" निष्काम पालन "मोक्षप्रद" होता है। साधक इन दोनों यम-नियमों के साथ "स्वस्तिक" सिद्ध पद्मादि आसनों में से किसी एक का आश्रय लेकर नियमित योगाभ्यास करे। अभ्यास से प्राणवायु वश में होता है। यह दो प्रकार का है (१) **सजीव** (२) **निर्जीव**। भगवन्नाम, रूपयुक्त सबीज, इससे रहित निर्बीज समझें। प्राणायाम (१) पूरक (२) रेचक (३) कुम्भक तीन होते हैं। नासिका के एक छिद्र को बन्द कर, दूसरे से वायु को भीतर ले जाने की क्रिया "पूरक" से प्राण वायु का दबाव पड़ने पर अपान के नीचे दबने का नाम प्राण के द्वारा अपान का **पराभव** है। जब एक छिद्र बन्द कर दूसरे से वायु बाहर निकाला जाता है; वह रेचक है, इसमें प्राणवायु बाहर निकलने में अपान ऊपर उठता है; यही अपान द्वारा प्राण का पराभव है। भीतर भरी वायु को दोनों छिद्र बन्द कर रोके रखने का नाम "कुम्भक" है। सबीज प्राणायाम से अनन्तस्वरूप भगवान् साकाररूप होता है योगवेत्ता इन्द्रियों को तत्तद्विषयों की वृत्ति से समेटकर अपने भीतर लाने का प्रयत्न करते हुए स्वचित्तानुगामिनी बनायें। इससे अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियां भलीभांति वश में हो जाती हैं।

चित्त का आश्रय ब्रह्म है, जो दो स्वरूप का है (१) मूर्त्त (२) अमूर्त, अथवा (१) अपर (२) पर कहा है। संसार में "कर्मभावना" 'ब्रह्मभावना" "उभयात्मिका" ये ३ भावनायें हैं। सिद्धपुरुष सदैव "ब्रह्मभावना" युक्त होते हैं। उनसे भिन्न देवताओं से स्थावर, जङ्गम प्राणी पर्यन्त सभी "कर्मभावना" युक्त होते हैं। हिरण्यगर्भ, प्रजापति आदि सच्चिदानन्द ब्रह्म का बोध, और सृष्टि रचनादि कर्मों का अधिकार, दोनों से युक्त होने से दोनों ही की उपलब्धि होती है। जब तक भेदज्ञान, हेतु भूत सम्पूर्ण कर्मक्षय नहीं होते, तभी तक विश्व और परब्रह्म भिन्न २ प्रतीत होते हैं। सम्पूर्ण भेदों के अभाव होने पर, जो केवल सत है, वाणी से परे, स्वयं अनुभवस्वरूप ही "ब्रह्मज्ञान" कहलाता है। वही अजन्मा, निराकार, विष्णु का परमस्वरूप, विश्वरूप से सर्वथा विलक्षण है।

योग के साधक को पहिले विश्वमय स्थूल स्वरूप का चिन्तन ही हितकर है। यह चराचर जगत परब्रह्म-स्वरूप भगवान का, उनकी शक्ति सम्पन्न "विश्व" नामक रूप है। शक्ति (१) परा (२) अपरा (३) कर्मभेद से तीन होती हैं। भगवान् "पराशक्ति" है। "क्षेत्रज्ञ" अपराशक्ति, तथा अविद्या "कर्म" नामक शक्ति मानी हैं। क्षेत्रज्ञशक्ति सब शरीरों में व्याप्त है। वह इस नश्वर संसार में "अविद्या" शक्ति से आवृत हो, विस्तृत सांसारिक क्लेशभोग कराती है। उस अविद्या शक्ति से तिरोहित होने से, वह क्षेत्रज्ञ-शक्ति सम्पूर्ण प्राणियों में, तारतम्य से प्रतीत होती है। वह प्राणहीन जड़ पदार्थ में अत्यल्प है। उनसे अधिक वृक्षादि स्थावरों में है, स्थावरों से अधिक सर्पादि में, उनसे अधिक पक्षियों में, पक्षियों से अधिक मृगादि में मृगों से अधिक पशुओं में, पशुओं से अधिक मानव उस क्षेत्रज्ञ शक्ति से प्रभावित होते हैं। मनुष्यों से बढ़े हुए, नाग गन्धर्व, यक्ष और देवता, इन्द्र, प्रजापति, हिरण्यगर्भ में उस शक्ति का विशेष प्रभाव हुआ है। ये सभी परमेश्वर के ही शरीर हैं। ये सभी उनकी शक्ति से व्याप्त हैं। विष्णु नामक ब्रह्म का निराकार स्वरूप है। योगी इसी का ध्यान करते हैं, विद्वान् "सत" कहते हैं। इसी के देव, तिर्यक, पुरुषादि, चेष्टाओं से युक्त सर्वशक्तिमय रूप धारण करता है। इन रूपों की अप्रमेय, व्यापक, अव्याहत चेष्टा, समस्त जगत के उपकारार्थ ही होती है, कर्मजन्य नहीं होती। अतः सर्वशक्तियों के आधारभूत, विष्णुरूप ब्रह्म में, चित्त को स्थिर करना ही आत्म-शुद्ध धारणा है। जब तक साकारस्वरूप में धारणा स्थिर न हो तब तक अनवरत उसी का चिन्तन करें। उसके सिद्ध होने पर अवयवों का चिन्तन छोड़कर केवल अवयवी भगवान् के ध्यान में तल्लीन रहें। अन्य वस्तुओं की इच्छा से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहित ध्येयाकार चित्त की एक अनवरत धारा ही "ध्यान" कहलाती है। वह अपने यम, नियमादि ६ अङ्गों से निष्पन्न होता है। उस ध्येय पदार्थ का ही, जो मन के द्वारा सिद्ध होने योग्य कल्पनाहीन (ध्याता, ध्येय, ध्यान की त्रिपुटी से रहित) स्वरूप ग्रहण किया जाता है, उसे ही "**समाधि**" कहते हैं। प्राप्तव्य है परब्रह्म परमात्मा, उसके पास पहुँचाने में सहायक है "समाधिजनित विज्ञान"। उस तक पहुँचने का पात्र है, समस्त कामनारहित आत्मा। क्षेत्रज्ञकर्त्ता, ज्ञान-"करण" है, अतः उस ज्ञानरूपी करण से वह प्रापक विज्ञान उस क्षेत्रज्ञ का मुक्तिरूप कार्य साधन कर, कृतकृत्य होकर, निवृत्त हो जाता है, उस समय वह भगवद्भावना से पूर्ण परि हो,परमात्मा से अभिन्न हो जाता है। वास्तव में "क्षेत्रज्ञ" और "परमात्मा" का अभेद्य सम्बन्ध है। यही 'योग' मुक्तिप्रद है। इसी का महर्षि अथर्वा ने अथर्ववेद काण्ड ११ सूक्त ४ तथा अध्यात्म प्रकरण में सविस्तार जनकल्याणार्थ दिग्दर्शन किया है, जो आध्यात्मिक आदि तापत्रय की भेषज है यह इस ग्रन्थ में आगे देखें।

अथ मन्त्र के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य

दैवाधीनं जगत्सर्वं, मन्त्राधीनाश्चदेवताः। ते मन्त्राः ब्राह्मणाधीनाः, तस्माद्ब्राह्मणदेवता।

विविध तापों की निवृत्ति, तथा इष्ट पदार्थों की प्राप्ति के लिये, अन्यान्य आधिभौतिक साधन हैं, वैसे ही ये आधिदैविक साधन भी हैं। ये भौतिक साधनों की अपेक्षा, अधिक निर्दोष तथा सहज हैं; और प्रतिबन्ध का नाश करके नवीन प्रारब्ध के निर्माण में 'हेतु' होने के कारण ये, उनकी अपेक्षा अधिक भी लाभप्रद है। स्वयं भगवान का तो सकाम, आराधन करने पर, अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा, अन्त में, अपनी प्राप्ति करा देते हैं।

दीक्षा

दीक्षा ही परमतत्त्व प्राप्ति का साधन है। सर्वानुग्राहकर्ता प्रभु ही, आचार्य शरीर में स्थित होकर, दीक्षाकरण द्वारा 'जीव' को परमतत्त्व की प्राप्ति कराते हैं। **"योजयतिपरेतत्त्वे स दीक्षयाऽऽचार्यमूर्तिस्थः"**। इसी कारण गुरु से नियमपूर्वक मन्त्रोपदेश लेने को दीक्षा कहते हैं। यह दीक्षा मन्त्र, मन्त्रेश्वर और विद्येश्वर आदि पशुओं के ज्ञान के विना नहीं हो सकती। इसी के ज्ञान से पशु, पाश, पशुपति का, यथार्थ निर्णय होता है। परमपुरुषार्थ की, हेतुभूता दीक्षा में, उपकारक उक्त ज्ञान का प्रतिपादनकर्त्ता, प्रथमपाद का नाम "विद्या" है। अनेक प्रकार की साङ्गोपाङ्ग दीक्षाओं के विधि-विधान का परिचय, करानेवाले द्वितीयपाद को "क्रियापाद" कहा है। यम, नियम, आसन आदि अष्टाङ्गयोग के बिना अभीष्ट सिद्धि न हो सकने से, क्रियापाद के पश्चात् "योग" नामक तृतीय कहा जाता है। योग की सिद्धि, शास्त्रविहित कर्मों का अमुष्ठान, और निषिद्धकर्मों के सर्वथा त्याग से ही सम्भव होने से, इन सब कर्मों के प्रतिपादक चतुर्थपाद का नाम "चर्या" कहा गया है।

पशु-पति-पशुपति

करने, न करने, अन्यथा करने में समर्थ, नित्य, निर्गुण, सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह में समर्थ ही "पति या पशुपति" कहे गये हैं। **"पशु"** :—जीवात्मा या क्षेत्रज्ञ का ही नाम है। जो पाशों द्वारा बँधा हो उसे "पशु" कहा है **"पाशनाच्चपशवः"**। जीव भी पाशबद्ध होने से "पशु" है। वह वस्तुतः "अणु" ही व्यापक है, नित्य है **"आत्मनोविभुर्नित्यता"** परन्तु पशु (जीव) दशा में परिच्छिन्न और सीमित शक्तियुक्त है, परन्तु पाशों से मुक्त होने पर, वह भी निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति सम्पन्न हो जाता है। पशु तीन प्रकार का है—१. विज्ञानाकल, २. प्रलयाकल, तथा ३ सकल।

(१) विज्ञानाकल :—जो परमात्मस्वरूप को पहचानकर, जप-ध्यान, संन्यास अथवा भोग द्वारा कर्मों का क्षय कर डालता है, कर्म क्षय होने पर शरीर और इन्द्रियादि का कोई बन्धन नहीं रहता, उसमें केवल मलरूपी "पाश"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रह जाता है, उसका नाम है। मल तीन प्रकार के कहे हैं (१) आणवमल, (२) कर्मजमल, (३) मायेयमल। विज्ञानाकल में केवल "आणवमल" रहता है। वह विज्ञानतत्त्व द्वारा–अकल (कलादि भोगबन्धनों से शून्य) हो जाता है, इसी से उसे "विज्ञानाकल" कहा है।

(२) जिस जीवात्मा के देह, इन्द्रियादि प्रलयकाल में लीन हो जाने से, और मायेयमल न रहने पर, परन्तु "आणव" और "कर्मज" ये दो मलरूपी "पाश" रह जाने से, प्रलयकाल ही में कलारहित होने के कारण "प्रलयाकल" कहलाता है।

(३) जिस जीवात्मा में आणव, मायेय और कर्मज तीनों ही मल (पाश) रहते हैं, वह कलादि भोग-बन्धनों से युक्त होने के कारण "सकल" कहा है। विज्ञानाकल पशु (जीव) के भी दो भेद हैं। (१) समाप्तकलुष (२) असमाप्त कलुष।

(१) जीवात्मा द्वारा कृतकर्मों का परिपाक न होने से मल की तह जमती रहती है, परन्तु कर्म का त्याग होने पर–मल का परिपाक होने पर–कलुष समाप्त हो जाने पर "समाप्त कलुष" कहलाता है। ऐसे जीवात्माओं को (१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ और (८) शिखण्डी "विद्येश्वर" पदोपलब्धि होती है। **(२) असमाप्तकलुष :**—वे हैं जिनकी कलुषराशि अभी भी शेष है। ऐसे जीवात्माओं को परमेश्वर "मन्त्र" स्वरूप दे देता है।

मन्त्र

कर्म तथा शरीर से रहित, किन्तु मल रूपी पाश में बँधे हुए, "जीवात्मा" ही "मन्त्र" है। ये सब अन्य जीवात्माओं पर कृपा करते रहते हैं।

प्रलयाकल भी दो प्रकार के हैं—"पक्वपाशद्वय" "अपक्वपाशद्वय"। (१) जिनके मल तथा कर्म रूपी दोनों ही पाशों का परिपाक होगया है, "पक्वपाशद्वय" मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। (२) "अपक्वपाशद्वय" जीव पुर्यष्टक देह धारण करके नाना प्रकार के कर्मों को करते हुए नाना योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। "सकल" जीवों के भी दो ही भेद हैं "पक्वकलुष" और "अपक्वकलुष"। (१) जैसे-जैसे जीवात्मा के मल, कर्म तथा माया रूप पाशों का परिपाक बढ़ता जाता है, वैसे ही वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होजाते हैं। तभी ये पक्व-कलुष जीवात्मा "मन्त्रेश्वर" कहलाते हैं। ये ७ कोटि मन्त्र रूपी जीव-विशेषों के अधिपति ११८ "मन्त्रेश्वर" जीव हैं। (२) अपक्व-कलुष जीव भवकूप में पड़कर भव-व्याधियों से व्यथित होते हैं।

पाश

पाश ५ प्रकार के कहे हैं—१. मलज, २. कर्मज, ३. मायेय, ४. तिरोधान शक्तिज और विन्दुज।

(१) मल :—जो आत्मा की स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रियाशक्ति को ढकले वह "मल" अज्ञान कहलाता है। यह आत्मा को केवल आच्छादित ही नहीं करता, किन्तु बल पूर्वक जीवात्मा को दुष्कर्मों में प्रवृत्त करने वाला यही पाश है।

(२) **कर्मज :**—प्रत्येक वस्तु में अग्नि की दाहक शक्ति की भांति जो शक्ति है वही "प्रभुशक्ति" है। यह जैसे पदार्थ में रहती है, वैसा ही भला, बुरा रूप धारण कर लेती है, अतः पाश में रहती हुई, यह शक्ति जब आत्मा के स्वरूप को ढक लेती है, तब वह "रोधशक्ति" या तिरोधान पाश कहलाती है। इसी अवस्था में जीव शरीर को आत्मा मानकर शरीर के ही पोषण में ही लगा रहता है, आत्मा के उद्धार का नाम भी नहीं लेता।

(३) फलाकांक्षा से किये गये धर्माधर्म रूप कर्म ही "कर्मपाश" कहे हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) जिस शक्ति में प्रलयकाल में सब कुछ लीन हो जाता है, तथा सृष्टि के समय जिसमें से सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वह "मायापाश" है। अतः इन पाशों में बँधा हुआ पशु (जीव) जब तत्वज्ञान या जप, योग द्वारा इनका उच्छेद कर डालता है तभी वह परम तत्त्व "पशुपति" पद वाचक ब्राह्मीगति को प्राप्त होता है।

(५) **विन्दु :**—"माया स्वरूप" "शिवतत्व स्वरूप" विद्येश्वरादि पद की प्राप्ति में हेतुभूत "विन्दुशक्ति" ही "अपरामुक्ति" कही गई है। इन उपर्युक्त तथ्यों के विवेचनार्थ ही मन्त्रों के ज्ञातव्य विषय अपेक्षित हैं, अन्यथा मन्त्र जप, संहिता पाठ सभी अनर्थ-पाश का हेतु हो जाते हैं।

मन्त्रों के लिङ्ग भेद

ये स्त्री, पुरुष, नपुंसक तीन प्रकार के कहे हैं। **१. स्त्री संज्ञक:**—वे हैं जिनके अन्त में दो "ठ" अर्थात् स्वाहा लगे हों। **२. पुरुष :**—वे हैं जिनके अन्त में "हुम्" और फट् हैं। **३. नपुंसक :**—वे हैं जिनके अन्त में "नमः" लगा होता है। सभी मन्त्र के देवता पुरुष हैं, सभी विद्याओं की स्त्री देवता मानी गई हैं। ये १. शान्ति, २. वश्य, ३. स्तम्भन, ४. द्वेष, ५. उच्चाटन और ६. मारण कर्मों में प्रयुक्त होते हैं। "तान्त्रिक शैवतन्त्रोक्त ७ करोड़ मन्त्रों के जपादि में ज्ञातव्य" जिनमें प्रणवान्तरेफ (रां) और स्वाहा का प्रयोग हो वे अग्नि सम्बन्धी "आग्नेय" मन्त्र कहे हैं। जो भृगु वीज (सं) और पीयूष बीज (वं) से युक्त हैं वे सोम सम्बन्धी "सौम्य" कहे हैं। इसी भांति सभी मन्त्र अग्नि सोमात्मक ही समझें। **आग्नेय:**—जब श्वांस दायां "पिंगला" चले तब "आग्नेय" मन्त्र जाग्रत होते हैं। **सौम्य:**—श्वांस "इडा" बायां चले तब जागरूक होते हैं। जब दायां और बायां दोनों (सुषुम्णा नाड़ी) समान वहे, तो सभी मन्त्र जाग्रत होते है। मन्त्र की सुप्ता अवस्था में जप करने से अनर्थ होता है। प्रत्येक मन्त्र का एक दो श्वांस रोककर भी (उच्चारण करते समय) उच्चारण न करे। अनुलोम में विन्दु (अनुस्वार) युक्त और विलोम क्रम में विसर्ग संयुक्त मन्त्रों का उच्चारण करें। यदि जपा हुआ मन्त्र देवता को जाग्रत कर सका तो वह शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है, और उस माला से जपा हुआ, दुष्ट मन्त्र भी, सिद्ध हो जाता है। क्रूर कर्मों में, 'आग्नेय मन्त्र;' सौम्य कर्मों में 'सोम' सम्बन्धी मन्त्र फल प्रदायक होते हैं। मन्त्रों की तीन जातियाँ कही हैं। १. शान्त, २. ज्ञान, ३. अत्यन्त रौद्र। शान्ति जाति युक्त शान्त मन्त्र भी "हुं फट्" यह पल्लव जोड़ने से "रौद्र" भाव धारण कर लेता है।

मन्त्रों के दोष

मन्त्रों के निम्न ४९ दोष कहे हैं—इन दोषों से युक्त मन्त्र कदापि साधक की रक्षा नहीं कर पाते। १. छिन्न २. रुद्ध, ३. शक्तिहीन, ४. पराङ्मुख, ५. कर्म हीन, ६. नेत्र हीन, ७. कीलित, ८. स्तम्भित, ९. दग्ध, १०. त्रस्त, ११. भीत, १२. मलिन, १३. तिरस्कृत, १४. भेदित, १५. सुषुप्त, १६. मदोन्मत्त, १७. मूर्छित, १८. हतवीर्य, १९. भ्रान्त, २०. प्रध्वस्त, २१. बालक, २२. कुमार, २३. युवा, २४. प्रौढ़, २५. वृद्ध, २६. निस्त्रिंशक, २७. निर्बीज, २८. सिद्धि हीन, २९. मन्द, ३०. कूट, ३१. निरंशक, ३२. सत्त्व हीन, ३३. केकर, ३४. बीज हीन, ३५. धूमित, ३६. आलिङ्गित, ३७. मोहित, ३८. क्षुधार्त्त, ३९. अतिदीप्त, ४०. अङ्गहीन, ४१. अतिक्रुद्ध, ४३. लज्जित, ४४. प्रशान्त मानस, ४५. स्थान भ्रष्ट, ४६. विकल, ४७. अतिवृद्ध, ४८. अतिस्नेह तथा ४९. पीड़ित। इनके लक्षण आगे दिये जायेंगे।

अथ मन्त्रों के दोष—१. जिस मन्त्र के आदि, मध्य अन्त में, संयुक्त, "बियुक्त" या स्वर सहित तीन, चार, पाँच बार अग्नि बीज (रं) का प्रयोग हो, वह "छिन्न" कहलाता है। २. जिसके आदि, मध्य, अन्त में २ बार भूमि बीज (लं) का उच्चारण हो वह "रुद्ध" समझें। यह बड़े ही क्लेश से सिद्धि प्रद होता है। ३. प्रणव (ॐ) और कवच (हुँ) ये ३ बार जिसमें आयें वह लक्ष्मी युक्त है। ऐसी लक्ष्मी से हीन, मन्त्र को "शक्तिहीन" समझें। वह दीर्घकाल में फल प्रद होता है। ४. जहां आदि में काम बीज (क्लीं) मध्य में मायाबीज (ह्रीं) और अन्त में अंकुश बीज

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(क्रौं)हो, वह "पराङमुख" होता है। वह भी चिरकाल में सिद्धि प्रद होता है। ५. यदि आदि, मध्य, में सकार हो, वह वधिर "कर्णहीन होता है। वह बहुत कष्ट उठाने पर थोड़ा फल देने वाला है। ६. यदि पञ्चाक्षर मन्त्र हो, उसमें रेफ्, मकार और अनुस्वार न हो उसे "नेत्रहीन" कहा है। वह भारी कष्ट सहने पर भी सिद्धिप्रद नहीं होता। ७. यदि आदि, मध्य, अन्त में हंस (सं) प्रासाद, तथा वाग् बीज (ऐं) हो, अथवा "हंस" और चन्द्र बिन्दु या सकार, फकार अथवा "हुँ" हो, तथा जिसमें "मा" "प्रा" और "नमामि "पद" न हो, वह कीलित कहा है। ८. इसी प्रकार मध्य और अन्त में भी वे दोनों पद न हों तथा जिसमें फट् और लकार न हों, वह "स्तम्भित" है। ये दोनों ही सिद्धि में बाधक कहे हैं। ९. जिसके अन्त में अग्नि (रं) बीज, वायु (यं) बीज के साथ हो, तथा जो सात अक्षरों (स) से युक्त हों; वह "दग्ध" है। १०. जिसमें २, ३, ६ या ८ अक्षरों के साथ अस्त्र (फट्) दिखाई दे, वह "त्रस्त" है। ११. जिसके मुख भाग में (ॐ) प्रणव रहित हकार अथवा शक्ति हो, वह "भीत" है। १२. जिसके आदि, मध्य और अन्त ४ "म" हों, वह "मलिन" है। वह अत्यन्त क्लेश से सिद्धिदायक होता है। १३. जिसके मध्य में "द" हो और अन्त में दो क्रोध (हुँ-हुँ) बीज हों और उनके साथ अस्त्र (फट्) भी हो. वह तिरस्कृत" कहा है। १४. जिसके अन्त में "म" और "य" तथा "हृदय" और मध्य में "वषट्" एवं "बौषट्" हो, वह "भेदित" कहा है। यह घोर क्लेश से सिद्धिप्रद, त्याज्य है। १५. जो ३ अक्षर से युक्त, तथा "हंस्" हीन हो वह "सुषुप्त" होता है। १६. जो विद्या तथा मन्त्र १७ अक्षरों से युक्त, जिसके आदि में ५ बार "फट्" का प्रयोग हुआ हो; उसे "मदोन्मत्त" माना गया है। १७. जिसके मध्य भाग में 'फट्" हो, वह "मूर्छित" होता है। १८. जिसके विराम स्थान में अस्त्र "फट्" हो वह "हतवीर्य" कहा है। १९. जिसके आदि, मध्य, अन्त में ४ बार (फट्) हो, वह "भ्रान्त" कहा है। २०. जो १८, २० अक्षर का होकर काम बीज (क्लीं) से युक्त हो, उसमें, हृदय, लेख, और अंकुश के उपर्युक्त बीज हों, वह "प्रध्वस्त" कहा है। २१. सात अक्षर का "बालक"। २२. आठ का "कुमार"; २३. सोलह का "युवा", २४. चौबीस का "प्रौढ़" तथा २५. बीस, ६४, १००, ४०० अक्षरों का "वृद्ध" कहा है। २६ प्रणव (ॐ) सहित नवार्ण" निस्त्रिंश" है। २७. जिसके अन्त में हृदय (नमः), अन्त में शिरोमन्त्र (स्वाहा) और अन्त में (बषट्), वर्म (हुं) नेत्र (बौषट्) और अस्त्र (फट्) देखे जाते हों, तथा जो शिव एवं शक्ति अक्षरों से हीन हो, वह (निर्बीज) कहा है। २८. जिसके आदि, मध्य और अन्त में ६ बार "फट्" हो वह "सिद्धि हीन" है। २९. पाँच अक्षर का "मन्द"। ३०. एकाक्षरी "कूट" वही निरंशक" कहा है। ३१. दो अक्षर का "सत्त्वहीन", ३२. चार का "केकर", ३३. ६ या ७॥ अक्षर का "बीजहीन", ३४. १२॥ अक्षर का "धूमित" कहा है, जो निर्न्दित है। ३५. ३॥ बीज से युक्त, २०, ३०, २१, अक्षरों का "आलिङ्गित" कहा है। ३६. दन्त स्थानीय अक्षरों का "मोहित", ३७. २४ या २७ अक्षरों का "क्षुधार्त" सिद्धि रहित कहा है। ३८. ११-२५-२३ अक्षर का "दृप्त" ३९. २६, ३६, २९ अक्षरों का "हीनाङ्ग" ४० २८, ३१, अक्षर का "अत्यन्त क्रूर" और ४१. "अतिक्रुद्ध" सम्पूर्ण कार्यों में निन्द्य कहे हैं। ४२. ४० से ६३ अक्षरों तक का "क्रीड़ित" (लज्जित) सभी कार्यों की सिद्धि में असमर्थ कहा है। ४३. ६५ अक्षरों का "शान्तमानस" तथा ४४. ६४ से ९९ अक्षरों तक के सभी मन्त्र "स्थान भ्रष्ट" ४५. १३ या १५ अक्षरों के "विकल", ४६. १००, १५०, २००, २९१ अथवा ३०० अक्षरों के "निःस्नेह" कहे गये हैं। ४७. ४०० से १०० अक्षर तक के प्रयोग में "वृद्ध" शिथिल, ४८. १००० से अधिक अक्षरों के "पीड़ित" एवं ४९. उनसे अधिक अक्षरों के "स्तोत्र" कहे हैं, जो दोषयुक्त माने जाते हैं।

छिन्न तथा दूषित मन्त्रों के परिहार—(१) योनि मुद्रासन में बैठकर, एकाग्रचित्त से किसी भी मन्त्र का जप-सर्वार्थ सिद्धिप्रद होत है। (२) वायें पैर की एड़ी को गुदा के सहारे रखकर, दाहिने पैर की एड़ी को ध्वज (लिङ्ग) के ऊपर रक्खें, इस योनिमुद्राबन्ध, नामक उत्तम आसन से बैठना सर्वथा सिद्धिप्रद होता है।

आचार्य लक्षण—कुलपरम्पराक्रम से, प्राप्त, सतत मन्त्र जप अनुष्ठानरत, गुरु आज्ञारत, अभिषेक युक्त, शान्त, कुलीन, जितेन्द्रिय मन्त्रतन्त्र, तत्त्वार्थज्ञाता, निग्रहानुग्रह समर्थ, किसी से किसी की अपेक्षा न

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रखने वाला, इन्द्रिय संयमी, हित वक्ता विद्वान, तत्त्व निष्कर्षपटु, विनयी, आश्रम मर्यादा में स्थित, ध्यानरत, संशय निवारक, नित्य सत्कर्म परायण "आचार्य" कहा है। **शिष्य लक्षण** शान्त, विनयी, दूत, शुभलक्षण सम्पन्न, शमादि साधनापन्न, श्रद्धालु, स्थिरमति, भक्षाभक्ष में शुद्ध, धर्मात्मा, शुद्धचित्त, दृढ़व्रत, आचारवान, कृतज्ञ, गुरुभक्त शीलस्वभाव का हो।

अथ मन्त्रशोधन—उपर्युक्त विधि से, गुरु शिष्य परस्पर, परीक्षा कर, जब दीक्षा को तत्पर हों तब १६ कोष्टों ४।४ का वर्गाकार बनाकर, ऊपर के चौकों में क्रमशः १:२:३:४ पुन तीनों ही में १६ अंकों को लिखें। तदनन्तर मन्त्रशोधन करें। प्रथमकोष्ठ में "अ" लिखकर, उसके आग्नेयकोण में उससे पांचवां अक्षर लिखें। इसी प्रकार सभी कोष्टों में क्रमशः अक्षरों को लिखकर मन्त्र संशोधन करें। **साधक के नाम का आदि अक्षर;** जिस कोष्ठ में हो, वहीं से मन्त्र के आदि अक्षर तक गिनता जाय। यह प्रदक्षिण क्रम से गिनना चाहिये। यदि साधक के नाम के आदि अक्षर के कोष्ठ में ही मन्त्र का भी आदि अक्षर हो, तो वह "सिद्ध" चौक कहा जायगा। उससे प्रदक्षिण क्रम से गिनने पर, यदि द्वितीय चौक में, मन्त्र का आदि अक्षर हो, तो वह "साध्य" कहा जायगा। इसी प्रकार तीसरा चौक "सुसिद्ध" चौथा "अरि" नाम प्रसिद्ध है। यदि साधक के नाम, और मन्त्र का आदि अक्षर प्रथम चौकके प्रथम ही कोष्ठ में पड़े हों, तो वह मन्त्र "सिद्धसिद्ध" माना गया है। द्वितीय में हो नो "सिद्ध साध्य" तृतीय में "सिद्ध सुसिद्ध" और चौथे में हो तो "सिद्धारि" कहलायेगा। नामाक्षरयुक्त चौक से, दूसरे चौक में मन्त्राक्षर हो, तो पहिले जहाँ नामाक्षर था, वहां के कोष्ठ से आरम्भ करके, क्रमशः पूर्ववत् गणना करे। दूसरे के १:२:३:४ कोष्ठों में से क्रमशः मन्त्राक्षर होने पर "साध्य सिद्ध" "साध्यसाध्य" "साध्यसुसिद्धि" तथा "साध्यारि" संज्ञा होगी। तृतीय के प्रथम २:३:४ चौकों में क्रमशः उस मन्त्र की "सुसिद्धसिद्ध" "सुसिसाध्य" "सुसिद्धसुसिद्ध" तथा "सुसिद्ध-अरि" संज्ञा होगी। चौथे के क्रमशः १:२:३:४ में हों तो मन्त्र की "अरिसिद्ध" "अरिसाध्य" "अरिसुसिद्ध" तथा "अरि-अरि" संज्ञा होगी। "सिद्धसिद्ध" मन्त्र विधिवत् जपने से, उतनी ही संख्या में सिद्ध हो जायगा। "सिद्धसाध्य" दूनी संख्या में "सिद्धसुसिद्ध" शास्त्रोक्त संख्या से आधी संख्या में, परन्तु "सिद्धारि" मन्त्र कुटुम्बीजनों का सहारक होगा। "साध्यसिद्ध" दूनी में, "साध्यसाध्य" विलम्ब से, "साध्यसुसिद्ध" भी दूनी ही में, किन्तु "साध्या-अरि" बन्धु-बान्धव हन्ता होता है। "सुसिद्धसिद्ध" अर्ध संख्या में, "सुसिद्ध-साध्य" दूनी में, "सुसिद्धसिद्ध" प्राप्त होते ही, सिद्ध हो जाता है। "सुसिद्धारि" सारे कुटुम्ब का नाशक होता है। "अरिसिद्ध" पुत्र नाशक, "अरिसाध्य" कन्या नाशक, "अरिसुसिद्ध" स्त्री नाशक और "अरि-अरि" मन्त्र साधक का ही नाशक होता है। इस मन्त्र सोधन में उपर्युक्त विधि का "अकथह" चक्र जानकारी के लिये है जो सर्व प्रधान माना गया है।❖

मन्त्र

मनन का अर्थ है सर्वज्ञाता और त्राणं का अर्थ है संसारी जीव पर दया करना, इस मनन और "त्राण" धर्म से युक्त होने के कारण ही मन्त्र का "मन्त्र" नाम सार्थक होता है।

दीक्षा :—दिव्य भाव देती है और पापों का क्षय करती है, इसीसे उसे "दीक्षा" कहा गया है। यह दीक्षा जीवों के पाश समुदाय का उच्छेद करने के लिये, अभीष्ट सिद्धि प्रदान करने और मन्त्रों को शक्ति प्रदायक होती है।

साधक के कर्त्तव्यः—साधक ब्रह्ममुहूर्त्त में उठे, लघुशंका आदि से निवृत्त हो. आसन या शैया पर ही बैठ गुरु की वन्दना करे। तदनन्तर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक मूल विद्या का चिन्तन करे। मूलाधार से निम्न भाग में गोलाकार वायु मण्डल है, उसमें वायु बीज (य)कार है। उसी बीज से वायु प्रवाहित हो रही है। उसीके ऊपर अग्नि का त्रिकोण मण्डल है। उसमें अग्नि बीज "र"कार है। उसीसे अग्नि प्रगट हो रही है। उक्त वायु तथा अग्नि के साथ मूलाधार में स्थित, शरीर वाली "कुलकुण्डलिनी" का ध्यान करे। यह सुप्त सर्पाकार की, स्वयं भू लिंग, को आवेष्टित-कर सो रही है। वह कमलनाल की भाँति अत्यन्त पतली है। उसीके अङ्गों से करोड़ों विद्युतों की प्रभा छिटक रही है। ऐसी "कुलकुण्डलिनी" का ध्यानकर, भावनात्मक कूची के द्वारा उसे जगाकर उठाये, और सुषुम्णा से क्रमशः छः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

❖"अकथह चक्र"

१ अ क य ह	२ उ ङ प	३ आ द ख	४ ऊ च फ
५ ओ ड ब	६ लृ झ म	७ औ ट श	८ लॄ ञ य
९ ई ध न	१० ऋ ज भ	११ इ ग ध	१२ ॠ छ व
१३ अः त स	१४ ऐ ट ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

चक्रों का भेदन करने वाली, उस कुण्डलिनी को गुरु की विधि से ही "ब्रह्मरन्ध्र" तक ले जाये और वहाँ के अमृत में निमग्न कर आत्मा का चिन्तन करे। मानो वह निर्मल, चिन्मय, देहादि से परे, प्रभा पुञ्ज से व्याप्त है। उस कुण्डलिनी को, अपने स्थान पर पहुँचाकर हृदय में, इष्टदेव का चिन्तन करे, और मानसिक उपचारोंसे उनका पूजन करे। तदन्तर सम्पूर्ण सिद्धिप्रद "अजपा" जप "हंस" जो दिन-रात में जीव २१६०० बार जप करता है उसे जपकर निवेदन करे। इसके ऋषि "हंस" परमहंस देवता, अव्यक्तगायत्री छन्द है, 'बीज, सः" शक्ति हैं। इसीसे अंगन्यास करे। "हंससूर्यात्मने हृदयाय नमः हं रंसः सोमात्मने शिर से स्वाहा, हंसो निरजनात्मने शिखायै वषट्। हंसोनिराभालात्मने कवचाय हुँम्। हंसो धर्मात्मने नेत्रत्रयाय बौषट्। हंसो ज्ञानात्मने अस्त्राय फट्। इस प्रकार वह्नि और सूर्य मण्डल में विनाग पूर्वक जप अर्पण करे।

अथ जप और ध्यान की महिमा तथा फल

संहिता तथा अन्य धर्मशास्त्रों में वेदमाता गायत्री मन्त्र के जप, एवं संहितापाठ का फल तथा गति का विवेचन संक्षिप्तरूप में इस प्रकार वर्णित है। मोक्षदर्शी मुनियों ने जो सांख्य और योग का वर्णन किया है, उनमें से वेदान्त (सांख्य) में तो जप का त्याग ही वर्णित है। उपनिषदों के वाक्यनिवृत्ति (परमानन्द); शान्ति तथा ब्रह्मनिष्ठता के बोधक होने से जप की अपेक्षा नहीं है। समदर्शी-मुनियों द्वारा वर्णित सांख्य और योग दोनों ही मार्ग चित्तशुद्धि के द्वारा ज्ञानप्राप्ति में, उपकारक होने से "जप" का आश्रय लेते हैं; नहीं भी लेते। इन सांख्य और योगमार्गों में भी मनोनिग्रह और इन्द्रिय संयम अनिवार्य आवश्यक माने हैं। सत्य, अग्निहोत्र, एकान्तसेवन, ध्यान, तपस्या, दम, क्षमा, अनसूया, मिताहार, विषयों का संकोच, मितभाषण, तथा शम-यह **"प्रवर्तकयज्ञ है।" निवर्तकयज्ञ**—जिसके अनुसार जप कर्त्ता ब्रह्मचारी साधक के सारे कर्म निवृत्त होकर "मोक्ष" प्राप्त होता है, उसका नाम है **"निवृत्तिमार्ग"** व्यक्त, अव्यक्त और अनाश्रयरूप से तीन प्रकार का कहा है। जिनके आश्रय से चित्त स्थिर हो जाय।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस मार्ग पर पहुँचानेवाली विधि यह है—जापक को चाहिये कि कुशासन पर बैठे। हाथों में ३।२ कुशाओं की पवित्री, कुशमुष्टि रक्खे, शिखा में कुशा बाँध ले, कुशाओं से घिरकर बैठे और मध्यभाग में भी कुशों से आच्छादित करे। विषयों का परित्याग करे, कभी भी मन में चिन्तवन न करे। मन से समता की भावना करके, मन को मन ही में लय करके, बुद्धि के द्वारा, परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करे, तथा सर्व-हित कारिणी अथर्व संहिता का एवं प्रणव, महाव्याहृतियुक्त गायत्री मन्त्र का जप करे। समाधि में स्थित होने पर संहिता एवं गायत्री मन्त्र आदि के जप अनिवार्य नहीं है।

संहिता के जप का आश्रय लेकर, साधक ध्यान को सिद्ध कर लेता है। शुद्ध चित्त होकर तप के द्वारा मन और इन्द्रियों को जीत लेता है तथा द्वेष और कामनाओंरहित एवं आसक्ति और मोह से रहित, शीतोष्णादि द्वन्द्वों से अतीत हो जाता है। न कभी शोक करता है, न कहीं भी आसक्त होता है, न अपने में कर्तापन का अभिमान ही लाता है। वह अहंकार, स्वार्थ, त्याग, किसी का अपमान नहीं करता, न अकर्मण्य ही बैठता है। वह ध्यानरूप नित्य क्रिया में लीन; ध्याननिष्ठ हो ध्यान के द्वारा ही तत्त्व का निश्चय कर लेता है। ध्यान में समाधिस्थ हो; क्रमशः ध्यानरूप क्रिया का भी परित्याग कर देता है। वह इस अवस्था में स्थित हो; निस्सन्देह सर्वत्यागरूप निर्बीज समाधि से प्राप्तव्य; दिव्य परमानन्द का अनुभव करता है। वह योगजनित अणिमादि "नारकीय" सिद्धियों का परित्याग कर; सर्वथा निष्काम हो प्राण परित्याग कर, विशुद्ध परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप में प्रवेश कर जाता है। अथवा यदि वह परब्रह्म का सायुज्य नहीं चाहता है तो देवयान मार्ग पर स्थित हो, परब्रह्म के परमधाम में जाकर पुनः इस संसार में कहीं जन्म नहीं लेता।

याज्ञिक-जापक में दोष आने के कारण नरक प्राप्ति—१. जो जापक उपर्युक्त नियमों की अवहेलना कर; किसी एक ही नियम का पालन करता है वह नरक अर्थात् पुनर्जन्म प्राप्त करता है। २.-जो अवहेलनापूर्वक जप करता है, उसके प्रति प्रेम नहीं करता; या जप के कारण अपने में बड़प्पन का अभिमानी; दूसरों का अपमान करनेवाला; मोहवश फलाकांक्षी, जप द्वारा प्राप्त अणिमासिद्धियों में लिप्त "नरक" पुनर्जन्म प्राप्त करता है।

जिसकी बुद्धि भोगों में, आसक्ति के कारण मलिन है, ऐसा अविवेकी; चञ्चलमति जापक, विनाशशील नरकों, तिर्यग्योनियों में जाता है। जप करने का दृढ़ संकल्प कर जप को बीच में त्यागने वाला-नरक को प्राप्त होता है। जापक होना परमोत्तम है, उपर्युक्त राग-द्वेष दूषित बुद्धि के कारण ही आते हैं, उनसे बचें।

परमधाम के अधिकारी जापक के लिये देवलोक भी नरक है

वरुण, कुबेर, इन्द्र और यमराज इन ४ लोकपालों; शुक्र, बृहस्पति, मरुद्गण, विश्वेदेव, साध्य अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु एवं अन्य देवताओं के लोकों में, इच्छानुकूल प्राप्य भोग दिव्य विमान, दिव्य सभायें, नाना क्रीड़ास्थल, सुवर्ण कमलों से युक्त बावड़ियों से युक्त होते हुए भी परमधाम की तुलना में नरक ही है।

परमधाम—परमात्मा का परमधाम, कारणरहित, नित्यसिद्ध, भयहीन, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेषादि ५ क्लेशों से रहित; प्रियाप्रिय भावरहित है **"अशरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रियेस्पृशतः"** श्रुतिः प्रिय, अप्रिय के हेतुभूत सत, रज, तम रहित, परमधामभूत, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, उपासना, कर्म, प्राण और अविद्या इन ८ पुरियों से मुक्त है। **"भूतेन्द्रियमनोबुद्धिवासना कर्मवायवः। अविद्याचेत्यमुं वर्गमाहुः पुर्यष्टकं बुधाः"**। वहां ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इस त्रिपुटी का भी अभाव है; और दृष्टि, श्रुति, मति, और विज्ञप्ति इन चार लक्षणों से रहित है। **"नदृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्नश्रुतेः श्रोतारं श्रृणुयान्नमतेर्मन्तारमन्वीथा नविज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः। इति-श्रुतिः"**। ज्ञान के कारणभूत प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चारों से परे है। वहां दृष्ट विषय की प्राप्ति से होनेवाले हर्ष और उसके भोगजनित आनन्द का भी अभाव, तथा शोक और श्रम से सर्वथारहित है। वहीं से काल की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्पत्ति हैं, वहाँ काल की प्रभुता भी नहीं है, वह काल का स्वामी, स्वर्ग का ईश्वर है। आत्मकैवल्य प्राप्तकर्त्ता, वहां जाकर शोकरहित हो जाता है, उस परमधाम की तुलना में समस्त देवलोक भी नरक ही है।

सत्य की महिमा और जापक की परमगति

छहों अङ्गों सहित कौशिकादि विधिवेत्ता, अर्थज्ञानपूर्वक संहिता का जापक, इन्द्रियनिग्रह कर, नियमित जप, तप में एकाग्रचित्त तथा निष्ठावान को; स्वभावसिद्ध, उपर्युक्त निर्दोष ब्रह्मपद प्राप्त होता है। जापक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा, राग, द्वेष तथा परछिद्र दर्शन से रहित, मित, सत्य, सरल, मधुभाषी, अभिमान, गौरव, प्रतिष्ठा तथा सिद्धियों एवं देवलोकों का परित्याग करते हुए, सावित्री, सत्य, धर्म, काल, मृत्यु और यम की कृपा का पात्र, उनसे सम्मानित हो परमधाम जाता है। "धर्म" प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप से दो प्रकार का कहा गया है। ब्राह्मण भी दो प्रकार के कहे हैं, प्रतिग्रही और निवृत्त। जापक को प्रतिग्रह से निवृत्त होना चाहिये।

"सत्य"—सत्य ही एकमात्र अविनाशी ब्रह्म है; अक्षयतप, अविनाशीयज्ञ नाशरहित सनातन वेद, वेदाङ्ग, विद्या, विधि, व्रतचर्य तथा प्रणव (ॐकार) है वेदों में जागता हुआ सत्य ही श्रेष्ठफल, धर्म और इन्द्रिय संयम की सिद्धि, विश्व का आधार है, प्राणियों का पिता और सन्तति है, इसी से वायु चलता है, और इसी से अग्नि दीप्त होता है। यज्ञ, तप, वेद, स्तोम, मन्त्र और सरस्वती सत्य के ही स्वरूप हैं।

सत्य धर्म से अधिक गुरुतर है। ज़हां धर्म हैं वहाँ सत्य; सत्य से सबकी वृद्धि होती है।

जापक की गति—संहिता का स्वाध्याय (निष्ठा तथा विधिपूर्वक) कर्ता द्विज परमेष्ठी ब्रह्मा को प्राप्त करता है, अथवा अग्नि में समा जाता है, अथवा सूर्य में प्रवेश कर जाता है। यदि वह जापक तैजसशरीर से उन लोकों में रमण करता है, तो राग से मोहित होकर उनके गुणों को अपने भीतर धारण कर लेता है। संहिता का जापक, चन्द्रलोक, वायुलोक, भूमिलोक तथा अन्तरिक्ष लोक के; योग्य शरीरधारण करके वहीं निवास करता है, और उन लोकों के निवासी पुण्यजनों के गुणों का आचरण करता है।

उन लोकों की उत्कृष्टता में संशय होने पर, वहाँ से विरक्त हो जाने पर, वह उत्कृष्ट एवं अविनाशी मोक्ष की कामना से उसी परमेष्ठी ब्रह्मा में प्रवेश कर जाता है। अन्य लोकों की अपेक्षा परमेष्ठिभाव की प्राप्ति अमृतरूप है। उससे भी उत्कृष्ट कैवल्यरूपी अमृत पान कर, शान्त, निष्काम अहंकार शून्य, निर्द्वन्द्व सुखी, शान्ति परायण तथा रोग-शोक रहित, ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। ब्रह्मपद पुनरावृत्ति रहित, एक अविनाशी, संज्ञा रहित, दुःख शून्य, अजर, शान्त आश्रय है उसीको वह जापक प्राप्त होता है।

जापक पूर्वोक्त परमेष्ठी पुरुष (सगुण ब्रह्म) से भी ऊपर उठकर; आकाशस्वरूप निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होता है। वहां प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चारों प्रमाणों और लक्षणों की पहुँच नहीं है। क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह तथा जरा और मृत्यु—ये छः तरंगें, वहां नहीं हैं। पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँचों प्राण, तथा मन इन षोड़श उपकरणों से; वह रहित है।

यदि जापक की भोगाकांक्षा है, और निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त नहीं होना चाहता; तो सभी लोकों का अधिष्ठाता हो जाता है; और मानसिक संकल्प से ही सभी पदार्थ प्राप्त कर लेता है। अथवा सम्पूर्ण उत्तम लोकों को नरक तुल्य त्यागता हुआ, सभी ओर से निःस्पृह एवं मुक्त हो, उसी निर्गुण ब्रह्म में सुखपूर्वक रमण करता है।

वेद के ज्ञेय तथ्य तथा आन्वीक्षिकी विद्या

अव्यक्त प्रकृति का ही नाम विश्व है, जो सांसारिक बन्धन में डालने वाली तीनों ही कालों में भयंकर त्रिगुणमयी है। इस प्रकृति से भिन्न, कलाओं से रहित आत्मा का नाम 'अविश्व' है। इसी प्रकार अश्व एवं अश्वाकी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जोड़ी है । अश्वा (अव्यक्त प्रकृति) और अश्व (पुरुष) है । अश्वा सगुण और अश्व निर्गुण है । इसी भांति वरुण प्रकृति एवं मित्र पुरुष समझें । भौतिक ज्ञान शब्द से प्रकृति एवं निष्कल आत्मा ज्ञेय है । अज्ञ प्रकृति है उससे भिन्न निष्कल पुरुष ज्ञाता है । पुरुष की "क" प्रकृति का नाम "तपा" एवं निष्कल पुरुष "अतपा" है । प्रकृति अविद्या एवं पुरुष विद्या है । अध्यात्मतत्वके निश्चयात्मक ज्ञानी प्रकृति और पुरुष दोनों को अज्ञ, निश्चल,अक्षय, अजन्मा तथा नित्य कहते हैं । उनका कथन है कि जन्म लेने पर भी क्षय रहित होने के कारण यहाँ पुरुष को अजन्मा, अविनाशी, अक्षय कहा गया है । गुणों के क्षय होने से प्रकृति क्षयशील और उसका प्रेरक होने के कारण पुरुष अक्षय है । यही मोक्ष की सहायक "आन्वीक्षिकी विद्या" है । इस आन्वीक्षिकी विद्या सहित वेद का उपार्जन करके प्रयत्न पूर्वक नित्य कर्म में संलग्न रहना चाहिये । सभी वेद एकान्ततः स्वाध्याय एवं मनन करने के योग्य माने गये हैं । जिसमें समस्त भूत स्थित हैं, उसी से उत्पन्न होकर उसी में लीन होते हैं । उस वेद प्रतिपाद्य ज्ञेय परमात्मा को जो नहीं जानते, वे परमार्थ से भ्रष्ट हो जन्मते-मरते हैं । साङ्गोपाङ्ग वेदाध्यन कर, वेदों द्वारा ज्ञेय परमेश्वर को, न जानने वाले मूढ़, केवल वेदों का, बोझ ढोने वाले हैं । वैदिक कर्मकाण्ड में बताये हुये, सभी कर्मों और उनके फलों को नश्वर जानना चाहिये । उनके फलों को परित्याग कर अक्षय धर्म का आश्रय लेना चाहिये । इस प्रकार साधक अहर्निश परमात्मा के स्वरूप का विचार एवं चिन्तन करके प्रकृति संसर्ग से रहित हो, छब्बीसवें तत्वरूप परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है । यहीं जन्म-मृत्यु भव-भय रहित होकर योगी जीवात्मा और परमात्मा में अभेद सम्बन्ध जानते हैं । प्रकृति जड़ है यह पच्चीसवां तत्व "जीवात्मा" तो जानता हैं; किन्तु प्रकृति जीवात्मा को नहीं जानता । परमात्मा जीवात्मा का आश्रय होने से भिन्न होते हुये भी एक ही है । इसे जानकर साधक पुनः संसार में नहीं आता है । इससे सत्य, शुभ, सुन्दर तथा परम श्रेयस्कर ब्रह्म ज्ञान ही भव व्याधि की भेषज है । यह सम्पूर्ण जगत, यह सारा दृश्य प्रपंच ब्रह्म ही है ।

वेद—वेदों में जो भी कर्म प्रयोग वताये गये हैं; वे प्रायः सकामभाव से युक्त हैं। इष्ट और अनिष्ट दोनों ही प्राप्त न हों, इसके लिये ज्ञानयोग का वर्णन भी है । जो इन सकाम कर्मो से मुक्त होता है; वही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है । भगवत्प्राप्ति के लिये ही कर्म करे । क्षुद्र भोगों के लिये नहीं । इस भावना से प्रेरित दृढ़ प्रतिज्ञ, जापक-संहिता के, स्वाध्यायी के सत्कार को, स्वयं स्वर्ग, मूर्तमान हो, उनके मन को विषयों से हटाकर, प्राण-अपान, उदान, समान और व्यान, इन पांचों प्राण वायुओं को हृदय में स्थापित करा; मन को प्राण; और अपान के साथ मिलाने में योगदान करते हैं । भौहों के नीचे; नासिका के अग्रभाग पर; दृष्टि रक्खे हुए, मन सहित प्राण, अपान को भौहों के बीच स्थिर कर, मन को जीत; दृष्टि को एकाग्र कर, प्राण सहित मन को सुषुम्णा मार्ग द्वारा मूर्द्धनि में स्थापित कर, समाधि में स्थित होने पर, शरीर जड़ की भांति चेष्टाहीन हो जाने पर, तालुदेश (ब्रह्मरन्ध्र) का भेदन कर, ज्योतिर्मयी विशाल ज्वाला द्वारा स्वर्ग की ओर अग्रसर होते ही; प्रादेशमात्र लम्बे पुरुषाकार तेजपुञ्ज ब्रह्मांजी के पास जैसे ही पहुँचता है, तैसे ही परश्रेष्ठी ब्रह्मा स्वागत करते है, और स्वीकार कर देते हैं, कि योगियों को प्राप्यफल, निस्सन्देह जापक को प्राप्त होता है । यही नहीं उससे भी श्रेष्ठ फल तत्त्वज्ञान प्राप्तकर, ब्रह्मतेज रोग-शोक से मुक्त हो, योगी और जापक के महान् फल प्राप्त कर, सम्पूर्ण लोकों को लांघकर, स्वेच्छया विहरता है । महास्मृति, तथा कल्याणमयी अनुस्मृति के पाठक भी इसी विधि से सालोक्य प्राप्त करते हैं । योग के भक्त भी इसी विधि से अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करते हैं । यही जापक तथा संहिता के स्वाध्याय से प्राप्य परमेष्टि भाव की प्राप्ति, अमृतरूप-परमधाम-कैवल्यमोक्ष है, अथर्व संहिता में लोकोपकारी विस्तृत, स्वतः प्रामाण्य, सिद्ध, सकामकर्मों के साथ ही, सर्वसाधारण को सुलभ आध्यात्मिक, तथा ज्ञान-योग वर्णित है, जो प्रायः अभी तक अनेक कारणों से, उपेक्षित ही रहा है ।

अथ वेदाङ्ग-कल्प वर्णन—वेदविज्ञान कर्मकौशल्य में कल्प का जानना अनिवार्य, आवश्यक कर्त्तव्य है । कल्प पांच प्रकार के माने गये हैं । (१) नक्षत्रकल्प. (२) वेदकल्प, (३) संहिताकल्प, (४) आङ्गिरसकल्प, (५) शान्तिकल्प ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथमनक्षत्रकल्प में; नक्षत्रों के स्वामी का सविस्तार यथार्थ वर्णन किया है। (२) **वेदकल्प में** ऋगादि विधान का सविस्तार वर्णन है। यह धर्मार्थ काममोक्ष सिद्धिप्रद है। (३) **संहिताकल्प में** तत्वद्रष्टा मुनीश्वरों ने ऋषि; छन्द, देवता, विनियोग का वर्णन किया है। (४) **आङ्गिरसकल्प में** "अभिचार विधि से" सविस्तार छः कर्मों का उल्लेख है। (५) **शान्तिकल्प में** "दिव्य भौम" और "आन्तरिक्ष सम्बन्धी उत्पातों की पृथक्-पृथक् शान्ति जो इस कर्मजभव-व्याधिः दैवी चिकित्सा में उल्लिखित है", वर्णन की गई है। अन्य शाखाओं में इसका विशेषरूप से पृथक्-पृथक् निरूपण किया गया है। गृह्यकल्प सर्वसाधारण के लिये उपयोगी होने से, यहां उस पर सूक्ष्मरूप से प्रकाश डाला जा रहा है। पुराज्येष्ठ "ज्येष्ठब्रह्म" के कण्ठ को भेदन कर "ॐ" और "**अथ**" शब्द ब्रह्मोद्भव हुआ, जो मंगलसूचक हैं। शास्त्रीय कर्मों के अनुष्ठान करके उण्हें उन्नत करने की कामना वाले "अथ" शब्द का प्रयोग करें जिससे यह कर्म अक्षय हो जाता है। "**कुश**":—वेदमन्त्रों से अभिमन्त्रित, परिगणित शाखावाले, परिसमूहन के लिये लें; अन्यथा न्यून या अधिक संख्या के ग्रहण करने पर अभीष्ट कर्म निष्फल कर देते हैं। "**परिसमूहन**" पृथ्वी पर जो कृमि, कीट और पतङ्ग आदि भ्रमण करते हैं, उनकी रक्षा, उनसे रक्षार्थ परिसमूहन करना अनिवार्य कहा है। "**रेखा**" वेदी पर जो तीन रेखायें कही गई हैं, उन्हें बराबर की ही बनायें, ये भी न्यूनाधिक न हों। यह भूलोक "मधु" "कैटभ" दैत्य मेद से व्याप्त होने से, वेदी आदि को **गोमय** से लीपना चाहिये; परन्तु जो गाय **वन्ध्या** दुष्टा, हीनाङ्गी, मृतवत्सा हो, यज्ञ कार्यों में उसका गोमय भूलकर भी न लें अन्यथा ये दोष कुल में आ जाते हैं। गोमय ऊपर से लें, पृथ्वी पर न गिरने पाये। "**मिट्टी**" अस्थि, कुश, कण्टक, तुष, केशादि से वेदी की शुद्धि; तथा पतङ्गादि, भयङ्कर जीवों पर, आकाशी प्रहार हेतु; स्रुवा के मूल भाग से; अथवा कुश से वेदी पर रेखा करके, उसकी मिट्टी उठाने का विधान है। "**प्रोक्षण**" सभी देव, पितर जलरूप होने से, विधिज्ञाता ऋषि, मुनियों ने जल से वेदी के प्रोक्षण की आज्ञा दी है। "**अग्नि**" शुभ-दायक मृण्मयपात्र या कांस्यपात्र को जल से धोकर, उसमें अग्नि रखकर–वेदी पर–लाने का सौभाग्यवती स्त्रियों या द्विजों का प्राविधान है। "**ब्रह्मा**" वेदी पर रक्खा हुआ अमृत कलश, दैत्यों द्वारा हड़प लिया गया था; इन दैत्यादि से रक्षार्थ "**ससमिध, अग्निस्थापन**" की और यज्ञ से दक्षिण दिशा में जहां दानवादि स्थित होते हैं, उनसे रक्षा हेतु अथर्वविद **ब्रह्मा** दक्षिण दिशा में स्थापित करने का विधान है। **प्रणीता, प्रोक्षणी** आदि यज्ञपात्र **उत्तर** में रक्खें और यजमान **पश्चिम** में तथा **पूर्वदिशा में** याज्ञिक ऋत्विज आदि रहें। यज्ञकर्म में अपनी ही शाखा के **ब्रह्मा** और **आचार्य** बनाने चाहिये। यज्ञ, द्यूत, व्यापार में कर्त्ता की **उदासीनता,** कर्म नष्टकरनेवाली होती है—अतः उदा-सीन न हों। ऋत्विजों का कोई नियम नहीं है; यथा लाभ उनका पूजन करना चाहिये। "**पवित्री**" दो; तीन ३ अंगुल की, "**प्रोक्षणी**" १ चार अंगुल की; "**आज्यस्थाली**" एक ३ अंगुल की; "**चरुस्थाली**" ६ अंगुल की; "**उपयमन-कुशा**" दो अंगुल का एक; "**सम्मार्जनकुशा**" १ अंगुल का; "**स्रुव**" छै अंगुल का; "**स्रुच्**" ३॥ अंगुल का; "**समिधायें**" प्रादेश (अंगुठे से तर्जनी के शिरोभाग के नाप की) "**पूर्णपात्र**" छः अंगुल का होना चाहिये। "**प्रोक्षणी**" के उत्तरभाग में "**प्रणीतापात्र**" रहें; ८ अंगुल का हो। सभी तीर्थ, सरोवर, नद, नदी, समुद्र, प्रणीता-पात्र में होते हैं; अतः उसे जल पूर्ण कर दें। "**वेदी**" वस्त्रहीन वेदी "**नग्न**" होती है, अतः कल्याण कामी आचार्य **कुशपरिस्तरण करके** "**अग्निस्थापन**" करें। "**पवित्रछेदनकुश**" वज्र, चक्र, त्रिशूल से बनते हैं। इसी पवित्री से प्रोक्षणी को प्रणीता जल से संयुक्त करें; इसी से पवित्री निर्माण अत्यन्त पुण्यकर्म कहा गया है। "**आज्यस्थाली**" पल-मात्र की बनानी चाहिये। कुम्हार के चाक पर गढ़ा हुआ मिट्टी का पात्र "**आसुर**" कहा गया है। वही हाथ से बनाया हुआ "**दैविक**" माना गया है। "**स्रुव**" से सभी शुभाशुभ कर्म होते हैं; इसी से उसे अग्नि में तपाने का विधान है। स्रुव को यदि अग्रभाग (**नौक**) में पकड़ा जाय तो "**स्वामी की मृत्यु**" मध्य में पकड़े जाने से "**प्रजा**" तथा '**सन्ततिनाश; मूल में** पकड़ने से; होता की **मृत्यु** होती है; अतः अग्र और मध्य के बीच पकड़ने का विधान है। स्रुव के १।१ अंगुल में क्रमशः **अग्नि, सूर्य, सोम, ब्रह्मा, वायु** तथा **यम** स्थित हैं। अग्नि (भोग-धननाशक);

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य (रोगकारक) चन्द्र (विनाफल) ब्रह्मा (अभीष्टप्रद); वायु (बुद्धिदाता) यम (मृत्युप्रद) कहे हैं; अतः स्रुव को ३ अंगुल छोड़कर (चौथे, पांचवें) अंगुल प्रदेश में ग्रहण करे। **"सम्मार्जनकुशा"** ७ कुशाओं; **"उपयमन"** ५ कुशाओं का ही बनाने का विधान है। **"स्रुव"** तथा **"स्रुक्"** निर्माण में श्रीपर्णी **(गम्भारी)** शमी खदिर, विकंकत (कँठाई) और पलाश ये ५ प्रकार के काष्ठ ग्राह्य हैं। पुत्रेष्टि में गूलर के भी ग्राह्य हैं। १ हाथ का "स्रुवा"; और ३० अंगुल का "स्रुक" ही उत्तम कहा है। यह ब्राह्मणों के लिये हैं अन्य वर्णों के लिये १ अंगुल कम का विधान है। म्लेच्छों, पतितों, गर्दभादि जीव दृष्टि दोष निवारणार्थ सभी पात्रों, पदार्थों की प्रोक्षण विधि है। "पूर्णपात्र" दान किये बिना यज्ञ में छिद्र होता है, दान करने से यज्ञ का अभीष्ट फल होता है। यह चार पुष्कल या बहुभोक्ता के आहारतुल्य का होना चाहिये। **होम-काल प्राप्त होने पर, आसन अन्यत्र हो जाने पर, अग्निदेव अतृप्त होकर, दारुण शाप देते हैं।** "आघार" नाम की दो आहुतियां अग्निदेव की **"नासिका"**; "आज्यभाग" नाम की **२ नेत्र;** "प्राजापत्य" आहुति मुख कहे गये हैं। "व्याहृति होम" **कटिभाग;** "पञ्चवारुण होम" **२ हाथ, २ पैर** और **मस्तक;** "स्विष्टकृत" होम; तथा "पूर्णाहुति" ये दो; **दोनों** कर्ण कहे गये हैं। अग्निदेव के २ मुख, १ हृदय, ४ कर्ण, २ नासिका, २ मस्तक, ६ नेत्र, पिंगलवर्ण और ७ जिह्वायें हैं। वामभाग में ३ और दक्षिण भाग में ४ हाथ हैं। स्रुक, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति दायें हाथों में है उनके ३ मेखला; ३ पैर हैं, वे घृतपात्र लिये हुए हैं। २ चँवर धारण किये, भेड़ पर चढ़े कहे हैं। उनके ४ सींग; बाल सूर्यसम अरुणकान्ति, यज्ञोपवीत, जटा, कुण्डलयुक्त सुशोभित हैं। ऐसा ध्यान कर होम करें। दूध, दही, घी और घृतपक्व या तैलपक्व पदार्थ का **हाथ से हवनकर्त्ता** ब्राह्मण **ब्रह्महत्यारा होता** है; अतः स्रुव से ही होम करें। सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि हेतु तिलभाग अधिक माना है। यज्ञ में ३ मुद्रायें (१) **मृगी**, (२) **हंसी**, (३) **सूकरी** कही है। अभिचार कर्म में सूकरी मुद्रा, शुभकर्म में "मृगी" तथा "हंसी" ग्राह्य हैं। "सूकरी" सब अंगुलियों से; "हंसी" में कनिष्ठिका मुक्त रहती है और "मृगी" केवल मध्यमा अनामिका और अंगुष्ठ द्वारा सम्पन्न होती हैं। उक्त प्रमाण की, आहुतियों को पांचों अंगुलियों से, उसके द्वारा अन्य ऋत्विजों के साथ होम करें। सामिग्री में दही, मधु, घी मिश्रित तिल होना चाहिये। पुण्यकर्म संलग्न हो, अपनी अनामिका अंगुलियों में कुशपवित्री अवश्य होनी चाहिये। **"गृहकल्प विधान"**—जो कार्यों के प्रारम्भ में गणपति का विस्मरण प्रमाद से करते हैं, वे विघ्नेश जिस पर सवार होते हैं उसके निम्न लक्षण कहे हैं। स्वप्न में अगाध जल में प्रवेश; मूड़ मुड़ाये या गेरुये वस्त्रधारी पुरुष दिखाई पड़ते हैं। कच्चे मांस खानेवाले पशु, पक्षियों पर सवार या चाण्डालों; गदहों, ऊंटों के साथ, उनसे घिरा हुआ; गमनशील भी शत्रुओं से घिरा सा; (जाग्रत में) मन विक्षप्तसा; उसके प्रारम्भ सभी कर्म निष्फल होते है। अकारण खिन्नता रहती है, राजपुत्र भी राज से; कुमारी कन्या अनुकूल पति से: विवाहिता, दाम्पत्य, पुत्रादि सुखरहित, श्रोत्रिय आचार्य परहित रहित शिष्य स्वाध्यायहीन, वैश्य व्यापार और कृषक कृषिके लाभसे वञ्चित रहते हैं। ऐसे दुःखीजन को, पीली सरसों पीसकर, घी मिला, उबटन कराये, प्रियंगु, नागकेसर; सर्वोषधि **अश्वशाला, गजशाला, दीमक, नदी-सङ्गम** तथा जलाशय यज्ञ की मिट्टियां, भस्में, गोरोचन, चन्दन, कुंकुम, अगुरु और गुग्गुल, दूब, दाभ, लाजा, अपामार्ग, सहदेवी, दश वृक्षों की उत्तर की ठहनियां, पुष्प डालकर, एक रङ्ग के ४ नये कलशों में अगाध स्रोत के लाये जलों को अभिमन्त्रित कर **"भद्रासन"** पर बिठाकर, स्वस्तिवाचनों के साथ स्नान करायें। प्रथम पूर्वदिशा के कलश से; तदनन्तर दक्षिण दिशा के, द्वितीय कलश से, फिर तीसरे पश्चिम के, तदनन्तर चौथे उत्तर कलश जल से, अभिषेक करायें। स्नान-कर्त्ता यजमान के मस्तक पर, दांये हाथ में लिये हुए कुशों को, रखकर उस पर गूलर के, स्रुवा से सरसों का तेल, उठा-कर छोड़ मन्त्र ये हैं। ॐ मिताय स्वाहा; ॐ सम्मिताय स्वाहा; ॐ शालाय स्वाहा। ॐ कटंकटाय स्वाहा। ॐ कूष्मा-ण्डाय स्वाहा। ॐ राजपुत्राय स्वाहा। मस्तक पर तेल छोड़ने के उपरान्त इन्हीं छः मन्त्रों से अग्नि में होम करे। वलि मन्त्रों से दिक्पालादि का वलिदान करें, तदनन्तर पुष्पाञ्जलि इस मन्त्र से दें। "ॐ तत्पुरुषायविद्महे। वक्रतुण्डाय-धीमहि। तन्नोदन्ती प्रचोदयात्। तथा "सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि। तन्नोगौरीप्रचोदयात्। अम्बिका, रुद्र,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णु, सूर्यादि नवग्रहों का अर्चन करें। मातृयाग बिना ग्रहादि याग न करें। **पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध** सभी शुभ-कर्मों में विहित है। यह सूक्ष्मरूप से गृह्यकल्प विधान है। शान्ति ॥

अथ अग्नेः सम्मुख करण प्रकारप्रश्नम्—

आहुती देवमुत्पाद्यपश्चात्कर्म समाचरेत्। अधोवक्त्रोर्द्ध्वपादश्च प्राङ्मुखो हव्य वाहन ॥
तिष्ठत्येवं प्रभावेन आहुति कस्यदीयते। अस्योत्तरः।
सपवित्राम्बुहस्तेन वन्हेः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ हव्यवाट् सलिलं दृष्ट्वा विभीतो संमुखो भवेत् ॥

अग्नेरास्यादीनांलक्षणम्—

सधूमोग्निः शिरोज्ञेयं निर्धूमश्चक्षुरैवहि। ज्वलत्कृष्णोभवेत्कर्णः काष्ठमग्रे मनस्तथा ॥
प्रज्वलितोऽग्निस्तथाजिह्वाएतदेवाग्नि लक्षणम् ॥

आस्यान्तर्जुहुयादग्नेविपश्चितसर्वकर्मषु ॥ कर्णेहोमेभवेद्व्याधिर्नेत्रेऽन्धत्वमुदीरितम् ॥
नासिकायांमनः पीड़ामस्तकेधनसंक्षयः ॥ स्वर्णसिन्दूरवालार्ककुंकुमक्षौद्रसन्निभः ॥
सुवर्णरेतसो वर्णःशोभनःपरिकीर्तितः ॥ भेरीवादित्रहस्तीन्द्रध्वनिर्वह्नेः शुभावहः ॥
नागचम्पकपुन्नागः पाटलायूथिकानिभः ॥ पद्मेन्द्रीवरकल्हार सर्पिगुर्गुलसन्निभ ॥
पावकस्य शुभोगन्धइत्युक्तं तन्त्रवेदिभिः ॥ प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाश्छत्राभः शिखिनः शिखा ॥
शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापिविशेषतः ॥ कुन्देन्दुधवलोधूमो वह्नेः प्रोक्तः शुभावहः ॥
कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णोःयजमानं विनाशयेत् ॥ खरस्वरसमोवन्हेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत ॥
पूतिगन्धोहुतभुजोहोतुः दुःखप्रदोभवेत् ॥ छिन्नावतोशिखा कुर्यान्मृत्युंधनपरिक्षयम् ॥
शुकपक्षनिभोपारावत समप्रभः ॥ हानिं तुरगजातीनांगवांच कुरुते चिरात् ॥
एवं विधेषु दोषेषुप्रायश्चित्तायदेशिकः ॥ मूलेनाज्येनजुहुयात्पञ्चविंशतिमाहुतीः ॥११६॥

शारदायां ५ पटले होमोपयुक्त कुण्डादि नियम ज्ञानार्णवे ॥
अथ होमोपयुक्तानि **कुण्डानि तेषांपृथक्त्व न्यायेन** क्रत्वर्थपुरुणार्थोभय रूपताञ्च दर्शयति ॥
यौनिकुण्डे भगाकारे वर्तुले वाऽर्घ चन्द्रके ॥ नवत्रिकोणकुण्डे वा चतुरश्रेष्ठपत्रके ॥१॥
योनिकुण्डेभवेद्वाग्मीभगेचाकृष्टिरुत्तमा ॥ वर्तुलेतुभवेल्लक्ष्मीरर्द्धचन्द्रे त्रयंभवेत् ॥२॥
नवत्रिकोण कुण्डेतु खेचरत्व प्रजायते ॥ चतुरस्त्रेभवेच्छान्तिर्लक्ष्मीः पुष्टिररोगता ॥३॥
पद्माभेसर्वसम्पत्तिरचिरादेव जायते ॥ अष्टकोणे तुसुभगे समीहितफलंभवेत् ॥४॥

अथात्रहोमद्रव्याणां प्रमाणमभिधीयते ॥ कर्णमात्रंघृतं होमे शुक्तिमात्रंपयः स्मृतम् ॥ उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानिमनीषिणीः ॥ तत्समंमधु दुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम् ॥ दधि प्रसृतिमात्रंस्याल्लाजाः स्युर्मुष्टि सम्मिताः ॥ पृथुकास्तत्प्रमाणाःस्युःशक्तवोपितथोदिताः ॥ गुड़पलार्द्धमानं स्याच्छर्करापितथामता ॥ ग्रासार्द्धचरुमानंस्यादिक्षु पर्वावधिर्मता ॥ एकैकंपत्र पुष्पाणि तथाऽपूपानि कल्पयेत् ॥ कदलीफलनारंगफलान्येकैकशोविदुः ॥ मातुलिङ्गचतुखण्डं पनसं दशधाकृतम् ॥ अष्टधानारिकेलानिखण्डेतानिविदुर्बुधाः ॥ त्रिधाकृटंफलं विल्वं कपित्थं खण्डितं त्रिधा ॥ उर्वारुक फलहोमेचोदितंखण्डितंत्रिधा ॥ फलान्यन्यानिखण्डानिसमिधः स्युर्दशाङ्गुलाः ॥ दूर्वात्रयंसमुद्दिष्टं गुडूचीचतुरंगुलाः ॥ व्रीहयोमुष्टिमात्रास्युर्मुद्गमापयवाअपि ॥ तण्डुलास्युर्तदर्द्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मितः ॥ गोधूमरक्तकमला विहितामुष्टिमानतः ॥ तिलाश्चुलुकमात्रास्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः ॥ शुक्तिप्रमाणंलवणंमरीचान्येकविंशतिः ॥ पुरुर्वदरमानःस्याद्रामठंतत्समंस्मृतम् ॥ चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरकुंकुमानिच ॥ तिन्तडीवीजमासमुद्दिष्टानिदेशिकः ॥ वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत्समिद्धोग्निपुदेशिकः ॥ शयानमाज्यहोमेपुनिषण्ण एतानि शेषवस्तुपु ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ मृत्यु उत्पत्ति तथा मृत्युसूचक लक्षण; मृत्यु पर विजय

अथर्ववेद में वर्णित ज्येष्ठब्रह्म (परमब्रह्म) से कनिष्ठ ब्रह्म का आविर्भाव हुआ। उन कनिष्ठब्रह्म (प्रजापति) ब्रह्मा ने सृष्टि का सृजन किया। जब समस्त लोकप्राणियों, की संख्या से, भर गये और स्वांस लेने की भी बाधा उपस्थित हो गई, तो ब्रह्माजी के इन्द्रियगोल (नेत्रादि) से, प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न हो, प्राणियों को दग्ध करने लगी। उस अवस्था में, महेश्वर (रुद्र) की प्रार्थना पर, ब्रह्माजी ने मन और वाणी का संयमन कर, क्रोधाग्नि को पुनः अपनी अन्तरात्मा में लीन कर, प्रजा के जन्म-मरण की व्यवस्था हेतु **"मृत्यु" देवी** का प्राकट्य किया। मृत्यु को प्रजाओं के, समय-सभय पर संहार का जैसे ही आदेश दिया, वह बड़ी चिन्तातुर हो, दुःखित मन से रो पड़ी। उनके **अश्रु** अपने दोनों हाथों में ले लिये वे **"अश्रु"** विविध रोग बन गये। वही मृत्यु प्राणियों का अन्तकाल आने पर **"काम"** और **"क्रोध"** को प्रेरित करके उनके द्वारा उन्हें मोहान्धकार में डालकर मार डालती है। उपर्युक्त अश्रु ही **ज्वरादिरोग मृत्यु समय आने पर** बन जाते हैं। भयङ्कर शब्द करनेवाला, महान् बलशाली, भयानक, प्राणवायु, ही समस्त प्राणियों का, प्राणस्वरूप है। वही देहधारियों के, देहों का नाश होने पर, नाना प्रकार के रूपों या शरीरों को प्राप्त होता है। अतः इस शरीर के अन्दर **देवाधिदेव वायु (प्राण) ही सर्वश्रेष्ठ है।**

(१) देह त्याग के समय यदि प्राण पैरों के मार्ग से उत्क्रमण हो तो **"परमधाम"** की प्राप्ति होती है।

(२) पिण्डलियों से निकलें तो **"वसु"** देवता के लोक को जाता है। (३) घुटनों से प्राण त्याग हों तो **"साध्य"** देवताओं के लोक की प्राप्ति। (४) गुदामार्ग से ऊर्ध्व को जावें तो **"मित्र"** देवता के उत्तम लोक। (५) कटि के अग्रभाग से जायें तो **"पृथ्वीलोक"**; (६) दोनों जांघों से प्रजापति लोक। (७) दोनों पसलियों से **(मरुद्गण)** देवों का लोक। (८) नाभि से **इन्द्रपद**। (९) वक्षःस्थल से **"रुद्रलोक"** (१०) ग्रीवा से मुनियों में श्रेष्ठ परमउत्तम **नरक का सान्निध्य।** (११) मुख से निकलें तो **"विश्वेदेवाओं"** का लोक। (१२) श्रोत्रों से **दिशाओं की अधिष्ठात्री देवियों का;** (१३) नासिका से **"वायुदेवता"** का। (१४) नेत्रों से **"अग्निदेवता" का;** (१५) भौंहों से **"अश्विनीकुमारों" का।** (१६) ललाट से **"पितरों" का।** (१७) मस्तक से **"ब्रह्मलोक"** की प्राप्ति होती है। (म० भा० शा० प० अ० ३१७)।

अरिष्ट-मृत्युसूचक लक्षण ज्ञान—१. आकाश में सप्तऋषियों में एक छोटी तारिका (अरुन्धती); सप्तऋषियों के ऊपर के तारागण से उत्तर कुछ दूरी पर, स्थित छोटा तारा (ध्रुव), चन्द्रमा अपनी छाया आकाश में व्याप्त तारागणों का बड़ा मार्ग (आकाश गङ्गा) जिसे दीख न पड़े, १ वर्ष नहीं जीवे। २. किरण रहित सूर्य, किरणों युक्त अग्नि, दीख पड़े वह ११ मास तक जीवित समझें। ३. मलमूत्र त्याग में जाग्रत या स्वप्न में स्वर्ण या चाँदी दीख पड़े, १० मास जीवन समझे। ४. रेत या कीचड़ में आगे से या पीछे, जिसको खण्डित पैर दीखें, ७ मास जीवित रहे। ५. जिसके शिर पर काक, कपोत, गृध्र-चील बैठें या मँडरायें ६ मास से अधिक न जीवित रहे। ६. धूलवृष्टि से या काकपंक्ति से मरा या विकृत छाया देखें, ४ या ५ मास जीवित समझें। ७. बिना मेघ दक्षिण दिशा में, विद्युत या जल में इन्द्र धनुष देखे, तो २ या ३ मास जीवन समझें। ८. जल में या शीशे में, जो अपने को देखे, या बिना शिर का देखे, १ मास से अधिक न जीवित रहे। ९. शरीर में मुर्दे की सी गन्ध या चर्वी की सी गन्ध आती हो तो आधा मास जीवित रहे। १०. जिसके स्नानमात्र से हृदय या पाद गीले ही रहें, या मस्तिष्क से धूम निकलता दीखे, १० दिन जीवित रहे। ११. भिन्न-भिन्न प्रकार से वायु, जिसके मर्मस्थानों को छेदे, या जलस्पर्श से अप्रसन्नता हो तो मृत्यु पास है। १२. रीछ वानरादि युक्त रथ से गाता हुआ दक्षिण दिशा में अपने को जाता स्वप्न में देखे, तो मृत्यु समीप आई समझे। १३. काले या श्याम वेश में, स्त्रियाँ गाती हुई स्वप्न में, दक्षिण को ले जाती दिखाई दें, तो मृत्यु समीप है। १४. स्वप्न में काले फटे वस्त्र धारण करे या कान फूटे देखे, तो मृत्यु आ चुकी है, यह समझे। १५. स्वप्नमें कीचड़ के समुद्र में, एडी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से शिर तक डूबा देखे, तो मृत्यु आ चुकी है। १६. स्वप्न में भस्म, अङ्गार, केश, सूखी नदी, सर्पादि देखे, तो १० रात्रि जीवित न रहे। १७. स्वप्न में पाषाण या आयुधयुक्त काला, विकराल पुरुष मारे, तो मृत्यु निकट समझे। १८. सूर्योदय या प्रभात बेला में, भौंकती हुई गीदड़ी, प्रत्यक्ष सामने आये, तो मृत्यु आगई। १९. जिसका स्नान मात्र से, हृदय अत्यन्त पीड़ा करे, या दाँतों में हर्ष हो, तो मृत्यु आ चुकी। २०. जो दिन या रात्रि में, जल्दी-जल्दी श्वांस ले, दीपक की गन्ध का, ज्ञान न हो तो मृत्यु आ चुकी। २१. रात्रि में धनुष, दिन में नक्षत्र देखे, या अन्य के नेत्रों में, अपने को देखे, तो मृत्यु आ चुकी। २२. एक नेत्र से पानी आवे, कान स्थान छोड़ गये हों, नाक टेढ़ी हो गई हो तो मृत्यु आ गई। २३. जिसकी काली कांटोंयुक्त जिह्वा और कीचड़ जैसा मुख चिपके विचित्र रक्त के गाल हों तो मृत्यु आ चुकी। २४. जो केश खोल कर गाये, हंसे, नाचे दक्षिण को जाता हो, तो जीवनान्त समझे। २५. जिसे श्वेत सरसों जैसी, पसीने की बूदें आयें, और बार-बार स्वेद आये, तो जीवनान्त समझे। २६. जो स्वप्न में गदहे या ऊँटों के, अशुभ रथ में, दक्षिण को यात्रा, करता देखे तो जीवनान्त समझे। २७. दो या अनेक अपने स्वरूप देखे, कानों से न सुने, नेत्रों से न दिखाई दे, स्वप्न में गढ्डे में गिरे उसको द्वार न दिखाई दे, जो खड्डे या खोल से न उठे, उसके जीवन का अन्त समझें। २८. दृष्टि ऊपर को न हो, न रक्त प्रवाह हो, मुख की ऊष्मा न हो रोमों से युक्त नाभि हो, मूत्र गर्म और रुक-रुक कर हो तो जीवनान्त समझे। २९. जो दिन या रात्रि में, मारने वाले को, प्रत्यक्ष देखे, तो वह मरा ही समझे। ३०. स्वप्नान्त में जो अग्नि में प्रवेश करता देखें, और स्मृति न रही हो, उसके जीवन का अन्त समझें। ३१. स्वप्न में अपना वर्ण श्वेत; रक्त या काला देखे, जीवनान्त समझे, ये सभी प्राणान्त सूचक चिह्न हैं। ३२. इन अरिष्ट सूचक चिह्नों को समझ-पूर्व या उत्तर में पवित्र स्थान में जहाँ कोलाहल न हो, एकान्त हो, उत्तर पूर्वाभिमुख, अपने प्राणान्त के हेतु "महेश्वर" को स्वस्ति कल्याण हेतु; स्मरण करे काया सीधी, शिर ठोंडी के नीचे नेत्र बन्द कर; जैसे वायुरहित स्थान में, रक्खा दीप नहीं हिलता, मन को नियन्त्रित कर, ध्यान में स्मरण कर दृष्टि, स्पर्श श्रवण, मन, बुद्धि आदि में निरन्तर प्रभु को रमता हुआ, हृदय में धारण करे। काल और धर्म को सभी का समूह समझे। इसे द्वादशाध्यातम योग, में शत या अष्टशत मूर्ध्नि में धारण करे। इस धारण योग से प्राण, अपानादि वायु इधर-उधर नहीं जाते। तदनन्तर देह को प्रणव (ॐ) से पूर्ण करदे। ऐसा ॐकार पूर्ण योगी क्षीण नहीं होता अक्षीण हो जाता है। ये ही योगीजन अरिष्ट के ज्ञान तथा उसके निवारण में समर्थ हुए हैं, होते हैं। इसी ग्रन्थ के दुस्वप्ननाशनगण में कां० १९ सू० ५६ व ५७ आदि में निवारण विधि देखें, पढ़ें और करें।

प्रमुख अथर्ववेदीय औषधि-परिचय

अथर्ववेद में औषधियों के विविध प्रकार, उनके जातिभेद, वर्गभेद, स्वरूप और गुण, धर्मों का प्रतिपादन किया गया है। अथर्ववेद के काण्ड ८ सूक्त ७ में औषधियों का जातिभेद इस प्रकार है—**रंग भेद से**—भूरे रंगवाली, शुभ्रश्वेतरंग वाली, लालरंग वाली, चितकबरी, नीलेरंग वाली, काले रंगवाली औषधियाँ होती हैं ॥८।७।१। **स्वरूप भेद से**—मूल से ही अलग-अलग शाखाओं में फैलने वाली जैसे अनार, मेंहदी आदि औषधियाँ। एक मूल वाली जैसे आक—मदार आदि औषधियाँ। फैले हुए मूलवाली जैसे—ब्राह्मी औषधि, काँटों वाली जैसे जवासा, कटेली, नागफनी आदि औषधियाँ। सूक्ष्म अवयवों वाली जैसे-थूहर, झाऊ औषधियाँ। काण्डों (पोरों) वाली जैसे—सरपत, नरकट, सरकण्डा, ईख, बेत आदि औषधियाँ। शाखारहित, जैसे—नारियल, सुपाड़ी, खजूर, ताड़ आदि औषधि वृक्ष (८।७।४) **गुण भेद से** जीवन देनेवाली औषधि। किसी हालत में हानि न पहुँचाने वाली औषधि। स्वयं जीवनी-शक्ति रखने वाली औषधि। आन्तरिक मर्मस्थानों को शक्ति देने वाली औषधि। बाहरी घावों को भरने वाली औषधि। उन्नत करने वाली औषधि। फूलों वाली औषधि। मधुर रस वाली औषधि ॥८।७।६॥ **संशोधन तथा स्नेह वर्ग की औषधियाँ**—प्रचेतसाः (चेतना प्रदान करने वाली) और मेदनीः (दोषों को हटाकर शुद्धता, स्निग्धता लाने वाली औषधियाँ) ॥८।७।७॥ **उपयोग भेद से**—जो पुनर्भवा हों अर्थात् बार-बार नये रूप में उगने वाली हों। अग्नेर्घासः—अग्नि के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भोजन रूप हों। अपां गर्भः—जलों का सार रूप हों। ध्रुवाः—स्थिर प्रभाव वाली हों। सहस्रनाम्नीः—हजारों नामों वाली औषधियाँ रोग भेद से उपयोग में लाई जानी चाहिए ॥८।७।८॥ **जलीय औषधियों की उत्पत्ति भेद से जाति**—अवकोल्वा—जिन औषधियों में काई (सेवार) लिपटी रहती है। उदकात्मनः—जलमय जल से उत्पन्न औषधियाँ। तीक्ष्णशृङ्ग्यः जिनके पत्तों के अग्रभाग सूक्ष्म होते हैं ॥८।७।९॥ **विषनाशक औषधियों का वर्ग**—विषरुणाः—ग्राह्य। उग्राः—तीव्र गन्ध रस वाली। **विषदूषणीः**—विषनाशक। वलासनाशनी—कफ—बलगम नाश करने वाली। **कृत्यादूषणी**—कृत्या अभिचार दोषों को दूर करने वाली औषधियाँ ॥८।७।१०॥ **अन्न देनेवाली, दूध देनेवाली, घास, घृत देनेवाली, स्निग्ध औषधियों के तीन वर्ग**—इन औषधियों का मूल गुणकारी होता है। इनकी फुनगी (ऊपरी भाग) गुणकारी होता है। इनका मध्यभाग गुणकारी होता है। इनके पत्ते गुणकारी होते हैं। इनके फूल गुणकारी होते हैं। मधुर गुण वाले जल से सींची हुई ये औषधियाँ अमृत का लाभप्रद भंडार है। इनसे घी, अन्न और दूध का दोहन करना चाहिए ॥८।७।१२॥ **पत्तों वाली औषधियों का वर्ग**—पृथ्वी पर जितनी औषधियाँ हैं वे सहस्रपर्णी वाली है। मृत्युरूप रोग से मुक्त कराती है ॥८।७।१३॥ **औषधियों की मणियों के गुण**—औषधियों की मणि (वटी, गोली) सिंह जैसे प्रभावकारी रोगों से बचाती है। देहक्षति से रक्षित रखती है। रोगों को और समस्त विषकृमियों को दूर करती है ॥८।७।१४॥ "औषधि–मणि" का तात्पर्य औषधि की वटी या गोली से है। कौटलीय अर्थ-शास्त्र (अधि० १४।प्र० १७९) का यह सूत्र भी प्रमाणित करता है—औषधियों की मणियों का वर्णन ग्रन्थ में आगे "मणिवन्धन" प्रकरण में है।

जीवन्तीश्वेतामुष्कपुष्पवन्दाकानामक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः।

महौषधि वर्ग की औषधियाँ—वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल), तृणों में दर्भ (दाभ, कुश), लताओं में औषधि-राज सोमलता, प्राकृतिक द्रव पदार्थों में जल (अमृत), जङ्गमज वस्तुओं में घृत-सेवन तथा घृत हवन, अन्नों में जौ और चावल, आकाशीय भेषज रूपों में सूर्य और चन्द्र—महौषधि हैं ॥८।७।२०॥ यहाँ पर अथर्ववेद दो प्रकार की चिकित्सा का संकेत करता है—१. दैवी चिकित्सा २. औषधि चिकित्सा। **पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों द्वारा उपयोज्य भेद से औषधियों का वर्गीकरण**—अथर्ववेद के अध्याय ८ सूत्र ७ के वराहो वेद वीरुधं इस २३ वें मंत्र से लेकर यावतीषु मनुष्याभेषजंभिषज्जो विदुः—इस २६ वें मंत्र तक पशु-पक्षियों, मनुष्यों द्वारा उपयोज्य औषधियों का वर्ग बनाया गया है। **आकारभेद से औषधियों का वर्ग**—पुष्पवतीः—फूलों वाली। प्रसूमतीः फूलों से रहित किन्तु पल्लवाङ्कुरों वाली। फलिनीः—फलवाली। अफलाः—फलरहित ॥८।७।२७॥

अथर्ववेद में पृथिवी (मिट्टी), पर्वत, जल, नदी, स्रोत, मेघवृष्टि, अग्नि, बिजली, वायु, सूर्य, चन्द्र—इन प्राकृतिक पदार्थों से प्राकृतिक चिकित्सा का विधान वताया गया है। जैसे—**१. पृथिवी** (मिट्टी) सर्प विष को चूसने का गुण मिट्टी में रहता है। **२. पृथिवी-संषत्** (ऊसर, पड़ती जमीन) रेह मिट्टी में कफ, खाँसी दूर करने का गुण है। **३. देवी** (सौराष्ट्रमृत्तिका) सौराष्ट्र मृत्तिका केशों को काला और लंबा बनाती है और स्थावर विषों को दूर करती है। **४. उपजीकोद्भृत** (बाँबी की मिट्टी) बाँबी की मिट्टी में नासूर का घाव भरने तथा नशा करने वाले स्थावर विषों को दूर करने, मूर्च्छा, भय और सर्प विष नष्ट करने का गुण है। **५. गिरि** (ऊँचे टीले) **पर्वत** (पहाड़) ऊँचे टीले तथा पहाड़ पर दौड़ते हुए चढ़ जाने से सर्प का विष तुरन्त उतर जाता है। **६. जल** आपः, महत् (कुएँ का जल) नदी-स्रोत (बहता हुआ जल) अवत्क (ऊँचे से गिरता हुआ जल) शतवृष्ण्य (मेघ-जल) जल में सद्योव्रण (तुरन्त घाव) भरने। स्वप्नदोष, निद्राक्षय, वंशानुगत रोगों को दूर करने का अनुपम गुण है। नदी के बहते हुए पानी में डुबकी लगाने से सर्पविष दूर होता है, नेत्र दृष्टि बढ़ती है। झरने के पानी से हृदयशूल, हृदय दाह, नेत्रदाह दूर होता है। नये खोदे हुए कुएँ का जल, ऊँचाई से गिरता हुआ जल व्रणस्राव नाशक है। मेघ-वृष्टि का जल मूत्रावरोध, पथरी तथा मूत्राशय, पित्ताशय के समस्त रोग दूर करता है। अथर्ववेद ने जल को रसायन कहकर समस्त रोगों को दूर करने वाला

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बताया है। **७. अग्नि**–(जाठराग्नि, गृहाग्नि) (सामान्य अग्नि) भूरिधायस पर्जन्य (पार्थिव अग्नि) होता (हवन की अग्नि) अग्नि शीत रोग को दूर करती है, सर्प विष को जला (दाह) कर नष्ट करती है। कृमियों से दूषित आहार को शुद्ध करती है। मूत्रावरोध को दूर करती है। गर्भवती को सुख-प्रसव कराती है। इसमें रासायनिक गुण रहते हैं। **८. विद्युत्** इन्द्र विद्युत् (वज्राग्नि) वरुण विद्युत् (विद्युतधारा) विद्युत् से समस्त रोग दूर होते हैं। खासकर भोजन में कृमि-दोष को दूर करती है। रुके हुए पेशाब को खोलती है। **९. वायु** मरुत् (साधारण वायु) वेधा (मौसमी हवा) वृहस्पति (ऊर्ध्व वायु) मित्र (यंत्र प्रेरित वायु)—वायु रसायन है। स्वास्थ्यप्रद है। शरीर के अन्दर भेषज्य प्रभाव डालता है। सुख से प्रसव कराता है। सभी प्रकार के रोगों को दूर करता है। रुके हुए पेशाब को निकालता है। **१०. मेघ** वृषा (बादल)—गरज के साथ बरसता हुआ पानी और मेघ-गर्जन सर्प विष को दूर करता है। **११. चन्द्र** (चन्द्रमा)—चन्द्रमा की चाँदनी रुके हुए मूत्र को बाहर निकालती है और क्षेत्रिय (वंश परम्परागत) रोगों को दूर करती है। **१२. सूर्य** अर्यमा सविता आदित्य—हृदय रोग, हलीमक, कामला, अपची (गण्डमाला) और शिरोरोग को सूर्यकिरणें नष्ट करती हैं। सभी विषैले जन्तुओं का विष दूर करता है। कृमिनाशक हैं। क्षेत्रिय रोग तथा सभी प्रकार के रोग, सूर्योपासना, सूर्यस्नान, सूर्यव्यायाम से दूर होते हैं।

अथर्ववेदीय साहित्य में वर्णित औषधियाँ तथा रोगोपचार—

रोग एवं औषधियाँ। **१. विरेचन :**—निशोथ, एवं गुण के साथ त्रिफला का क्वाथ विरेचक है। **२. (वमन) :**—२, वच और मैनफल का क्वाथ वमन कारक होता है। **३. बल और पलित एवं मुँह की झुर्रियों का निवारण**—३, भृङ्गराज के रस से भावित त्रिफला १०० पल, वायविडङ्ग और लौहचूर १० भाग; शितावरी, गिलोय, चित्रक २५ पल, इन सबको चूर्ण करें, उस चूर्ण को ४ रत्ती मात्रा, मधु, घृत और तिल तेल के साथ, चाटने से बल वृद्धि और असमय की बालों की सफेदी नष्ट होती है। मुँह की झुर्रियां नष्ट होती हैं। अन्य सभी रोग नहीं होते हैं शतायुप्रद योग है। **४. सर्व रोग निवारक विविध योग**—४, मधु और शर्करा के साथ त्रिफला सेवन सर्वरोग निवारक होता है। त्रिफला और पिप्पली का चूर्ण, मधु, घृत के १/२ के अनुपात से मिलाकर सेवन करने से क्रम ३ व ४ के लाभ होते हैं। हर्रे, चित्रक, सौंठ, गिलोय और मुसली के चूर्ण के साथ सेवन से, उपर्युक्त सभी लाभ और ३ सौ वर्ष की आयु होती हैं। **५. शोथ (सूजन) :**—५, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, लोहचूर, यवक्षार तथा त्रिफला को गोमूत्र के साथ सेवनसे सूजन नहीं रहती। गुड़, सहिजना एवं निशोथ, सैंधा लवणका चूर्ण या क्वाथ, शोथ शान्तकारक है। **६. गुल्म रोग :**—६, सर्जक्षार, चित्रक, हींग, अजमोद इनके रस या विडङ्ग, एवं चित्रक के साथ तक्र-पान करे। **७. विसर्प रोग :**—७, आंवला, परवल, मूंग के क्वाथ को घृत के साथ सेवन करे। सौंठ, देवदारु और पुनर्नवा या वंशलोचन का दुग्ध में क्वाथ विसर्प रोग निवारण करता है। **८. मलबन्ध दोष :**—८, सौंठ, कालानमक और हींग के चूर्ण को सोंठ के रस में सिद्ध घृत मलबन्ध दोष और उससे उत्पन्न रोगों का निवारण करता है। **९. मुख पाक रोग :**—पाठा, दारुहल्दी, चमेली के पत्र, मुनक्का की जड़ और त्रिफला—इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर मुँह में रखे या चूसता रहे। **१०. कण्ठ रोग (सभी प्रकार के) :**—पीपली, अतीस, कुटकी, इन्द्रयव, देवदारु, पाठा और नागरमोथा—इनका गो मूत्र में क्वाथ मधु के साथ लेवें। **११. मूत्र कृच्छता :**—हर्रें, गोखुरु, जवासा, अमलतास एवं पाषाण-भेद इनके क्वाथ बनाकर पीवें। **१२. अश्मरी और शर्करा रोग :**—बाँस का छिलका और वरुण की छाल का क्वाथ बनाकर पीवें। **१३. श्लीपद रोग :**—शाखोटक (सिंहोरे) की छाल का क्वाथ, शहद और दूध के साथ लें। **१४. पाद रोग :**—उड़द, मदार की पत्ती तथा दूध, तेल, मोम एवं सैंधव लवण का योग कर प्रयोग करें। **१५. अतिसार :**—सौंठ, अजमोद सेंधानमक, इमली की छाल इन सबके समान भाग हर्रों को तक्र (छाँछ) या गरम जल के साथ पीने में अतिसार का नाश होता है। **१६. रक्तातिसार :**—इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, बेलगिरी और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नागरमोथा का क्वाथ आम सहित जीर्णअतिसार में और शूल सहित रक्तातिसार में भी पिलाना चाहिए। **१७. उदर शूल :**—ठन्डे थूहर में सेंधा नमक भर-कर आग में जला दें, फिर यथोचित मात्रा में उदर शूल वाले को गरम जल के साथ दें, अथवा सेंधा नमक, हींग, पीपल, हर्रे—इनका गरम जल के साथ सेवन करावें। **१८. बाल रोग :**—अडूसा, मुलहटी या कचूर दोनों प्रकार की हल्दी और इन्द्र यव–इनका क्वाथ बालकों के सभी प्रकार के अतिसार में तथा स्तन्य (माता के दूध के) दोषों में प्रसस्त हैं। काकड़ाश्रृंगी का अथवा केवल एक अतीस का चूर्ण करके बालकों को मधु के साथ चटावें। इससे खाँसी, वमन और ज्वर नष्ट होता है। **१८. बाल रोग :**—दूध, घृत अथवा तैल के साथ वच का सेवन अथवा मुलहटी और शंख पुष्पी को दूध के साथ, सेवन करने से, बालकों की वाक शक्ति, एवं रूप संपत्ति के साथ-साथ आयु, बुद्धि और काँति की भी वृद्धि होती हैं। वच, कलिहारी, अडूसा, सौंठ, पीपल, हल्दी, कूट, मुलहठी और सैन्धव—इनका चूर्ण बालकों को प्रातःकाल पिलावें—इसका सेवन बुद्धि वर्द्धक हैं। देवदारु, बड़ा सहजन, त्रिफला और नागरमोथा इनका क्वाथ पीपल और मुनक्का का कल्क सभी प्रकार के कृमि रोगों का नाशक हैं। शुद्ध रांगें, को त्रिफला, भृंगराज तथा अदरक के सत या मधु-घृत में अथवा भेड़ के मूत्र या गो मूत्र में अंजन करने से, नेत्र रोगों में लाभ होता है। दूर्वा रस का नस्थ नाक से वहने वाले रक्त रोग (नाशा) को शान्त करने में उत्तम हैं। घोड़े के आगे के पैरों के घुटने के नीचे छोटी सी पंख जैसी (षट्) होती हैं। उस पर वाल नही होते हैं। उसे निहन्ना से काट कर राईकी मात्रामें, पत्थर पर मांके दूधमें घिसकर दे तो "पसली" चलना बन्द हो जाता है। मात्रा राईसे अधिक नदें। **१६. कर्ण शूल तथा ओष्ठ रोग :**—लहसुन, अदरख, और सहजन के रस से, कान को भर देने पर, अथवा अदरख के रस का तैल से कान भर देने पर, वह कर्ण शूल नाश करता है तथा ओष्ठ रोग दूर करता है। **२०. दन्त पीड़ा:**—जायफल, त्रिफला, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल), गोमूत्र, हल्दी, गो दुग्ध तथा बड़ी हर्रों के कल्क से, सिद्ध किया हुआ, तिल के तैल का कन्ल (कुल्ला) करने से दन्त पीड़ा का नाश करता है। **२१. जिह्वा के रोग :**—काजी, नारियल का जल, गो मूत्र, सुपारी तथा सोंठ–इनके क्वाथ के कवल (कुल्ले) को (मुँह में रखने) से जिह्वा के रोग दूर हो जाते हैं। **२२. गण्डमाला और गण्डमाला रोग :**—कलिहारी के कल्क (पिसे हुए द्रव्य) में निर्गुण्डी के रस के साथ सिद्ध किया हुआ तैल नाक में डालने से ये रोग दूर हो जाते हैं। **२३. चर्म रोग :**—आक, पाटा, करञ्ज, थूहर, अमलतास और चमेली के पत्तों को गोमूत्र के साथ पीस कर उवटन लगाना चाहिए। **२४. कुष्ठ रोग :**—वाकुची को तिलों के साथ एक वर्ष तक खाया जाय, तो वह साल भर में, कुष्ठ रोग का नाश कर देती हैं। हर्रें, भिलावा, तैल, गुड़ और पिण्ड खजूर ये कुष्ठ नाशक औषध हैं। **२५. अर्श रोग (बवासीर) :**—पाठा, चित्रक, हल्दी, त्रिफला, और व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल) इनका चूर्ण तक्र (छाछ) के साथ पीने से अथवा गुड़ के साथ हरीतकी खाने में यह रोग नाश को प्राप्त होता हैं। **२६. प्रमेह :**—त्रिफला, दारु-हल्दी, बड़ी इन्द्रायण और नागरमोथा इनका क्वाथ या आवले का रस हल्दी, का कल्क और मधु के साथ पीना चाहिए। **२७. वात-रक्त एवं प्लीहा रोग :**—अडूसे की जड़, गिलोय और अमलतास के क्वाथ में शुद्ध ऐरण्ड का तेल मिलाकर पीने से वात रक्त का नाश होता है और "पिप्पली" प्लीहा रोग को नष्ट करती हैं। **२८. क्षय रोग :**—शतावरी, विदारी कन्द, बड़ी हर्रें. तीनों खरेटी, असगन्ध, गदहपूर्णा तथा गोखुरू (दोनों) के चूर्णको शहद और घी के साथ चाटनेसे क्षय रोग दूर होता है। **२६. पेटके रोगोंमें :**—थूहरके दूधमे अनेक बार भावना दी हुई पिप्पली का सेवन करना चाहिए, चित्रक, विडंग तथा त्रिकदु (सोंठ, मिर्च, पीपल) के कल्क से शुद्ध किया हुआ, दूध अरुचि रोग का निवारण करता है। अथवा—दूध के साथ वाटी खाय, घी से पकाया हुआ बथुवा; गेहूँ, अगहनी चावल तथा तिक्त औषध (कडुवे स्वाद वाले शाक या फल) लें। **३०. ग्रहणी :**—पीपलामूल, वच, हर्रें, पीपल और विडंग को घी में मिलाकर रखें, इनके सेवन से या केवल तक्र (छाछ) के एक मास तक सेवन करें। ग्रहणी के साथ-साथ अर्श, पाण्डु, गुल्म और कृमि रोगों का भी नाश होता है। **३१. पाण्डु रोग कमला सहित :**—त्रिफला, गिलोय, अडूसा, कुटकी, चिरायता–इनका क्वाथ शहद के साथ पीने से इन रोगों का नाश करता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३२. रक्त पित्त :—अडूसे के रस को मिश्री और शहद मिलाकर पीने से या शतावरी, दाख, खरैंटी और सोंठ–इनसे सिद्ध किया हुआ दूध पीने से यह रोग नाश होता है। **३३. भगन्दर :**—निशोथ, जीवन्ती, दन्ती मूल, मञ्जिष्ठा, दोनों हल्दी, रसाञ्जन और नीम के पत्ती का लेप भगन्दर में श्रेष्ठ है। **३४. नासूर :**—अमलतास, हरिद्रा, लाक्षा और अडूसा–इनके चूर्ण को गो घृत और शहद के साथ वत्ती बनाकर नासूर में देवें। इससे नासूर का शोधन घाव भर जाता है। पिप्पली मुलहटी, हल्दी, लोध, पद्मकाष्ठ, कमल, लाल चन्दन एवं मिर्च इनके साथ गो दुग्ध में सिद्ध किया हुआ तेल घाव को भरता है। **३५. विद्रधि की गांठ :**—हर्रें, सहजन, करञ्ज, आक, दालचीनी, पुनर्नवा, सौंठ और सैन्धव–इनका गौमूत्र के साथ योग करके, लेप किया जाय तो यह विद्रधि की गाँठ को पकाने के लिए उत्तम उपाय है। **३६. घाव भरना एवं व्रण की चिकित्सा:**—श्रीताड़, काली कपास की पत्तियों की भस्म, त्रिफला, गोल मिर्च, खरेटी और हल्दी—इनका गोला बनाकर घाव का स्वेदन करे, और इन औषधियों के तेल को, घाव पर लगाएं, दूध के साथ कुम्भीसार (गुग्गुल सार) को आग पर जलाकर, व्रण पर लेप करें। अथवा गुग्गुल सार को दूध में मिलाकर आग (अग्नि) से जले हुए व्रण पर लेप करें। या–जल कुम्भी को जलाकर दूध में मिलाकर लेने से सभी प्रकार के व्रण ठीक होते हैं। इसी प्रकार नारियल के जड़ की मिट्टी में घृत मिलाकर सेक करने से व्रण का नाश होता है।

श्वेत कुष्ठ पलित कुष्ठ रक्तविकार छाजन निवारण:–(१) नीलाथोथा, इन्द्रवारुणि (इन्द्रायण) जवासा, गोरखमुण्डी; हल्दी, दानहल्दी, वकुची के दाने, पमार के दाने, भिलावा, भांगरा (२) अथवा (नीबू १/२ तो, के रस में नमक मिला १ दिन ही पिलाये, अन्य कुछ न खायें न पियें, २४ घण्टे न सोयें, कुष्ठ, छाजन, दाद टीक होते हैं। सो जाने पर देह फूट निकलती हैं (३) अथवा आन्ने कण्ठा (जंगल के शुष्क गो मय, अर्जुन एवं चने के तेल, मिलाकर लेप लें। (४) अथवा गोदावरी, कावेरी के जल में स्नान, उसी का पान करे तो दद्रु, छाजन, कुष्टश्वित्रकुष्ठ, चर्म रोगों में लाभकारी होता है। अथवा लाल अर्क (आक) का रस फिटकरी के साथ श्वेत कुष्ठ, व्रण, विष नष्ट करती है। श्येत सरसों कुष्ठ नाशक है। चने का तेल भी कुष्ठ नाशक है। धारिणीकन्द, वाराहीकन्द, वनहल्दी, काला धत्तूरा, शंखिनी, कठूभर (काकोदुम्बरिका) शिरस, नीलक, कत्था, तिनिश चोरक, कुष्ठ, शीशम का लेप, गोमूत्र में पीसकर, कुष्ठ स्थान को जंगली सूखे गो मय से घिसकर, लोहूलुआन करने के उपरान्त लेप करें। अथवा "जरख" की विष्ठा की भस्म तैल में मिलाकर लेपें। **पागलश्वान श्रृगालादि के कांटे का विष निवारण :**—कुम्भकार की चक्र की अथवा वर्तन बनाते समय उसके पानी के पात्र में बार २ मिट्टी के हाथ धुलने से एकत्रित मिट्टी लेप करें। यदि विपप्रभाव से रोगी पागल (असाध्य) हो चुका हो तो जरम की दाड़ (पाषाण) पर घिसकर पानी में घोलकर पिलाने पर, उसके पेट के विषैले कीट नष्ट हो जाते हैं, रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। **गृध्रसी वात-पक्षाघात, कटिशूल, पृष्ठशूल नाशन**—जरख के पैर की ही हड्डी, कालेपाषाय या चुम्बक पर घिसकर, पैरों से लेकर पूरे रक्तसंचार सुन्न अङ्ग में लेप करें। अथवा–एकवीर जड़ी, निर्गुण्डी का लेप करें, **अपस्मार (मृगी) हिस्ट्रिया** जरख की खोपड़ी को रोगी के शिर पर घिसते जावें ऊपर से धीरे २ जल छोड़ते जावें, उस पानी के मुँह आदि में जाने से रोगी स्वस्थ होता है। **टूटी हड्डी तथा चोट या वात दर्द :**—संस्कृत (अस्थिसहारी) मा० हड़जोड़ी १ तोला, को पीसकर मात्रा घी में पिलाये और सरिवन, पिठवन तीनों खरैंटी, पर्वती व देशी गोखुरू, गगेरन, ऐरण्ड की जड़ दोनों (कलिहारी-कटेहरी) करञ्ज, शतावरी, पियावासा ये सब आठ २ तोले, तिलों का तेल ४ सेर, गौ या बकरी का दूध ८ सेर (अनुपात से) लें, कढ़ाई में मन्द मन्दाग्नि से जलायें, तेल सिद्ध हो जावे, तब बोतलों में छानकर भर लें, इससे मालिश करें तो प्रबलवात, चोट के दर्द सूजन टूटी हड्डी में पशु और मानव सभी को लाभ होता है, पशुओं में मात्रा अधिक त्रिगुण कर लें। **३८. राल (शाल कगोंद) :**—टूटी हड्डी को जोड़ती है, घाव भरती है, खुजली दूर करती है अग्निदाह दूर करती हैं। **हैजा, पित्तप्रकोप :** – आक की लौंग १ पाव, १ तोला कालीमिर्च, १ तो लौंग, काला नमक मिलाकर पीसें, धूप से बचाकर सुखा गोली बनायें। १।१ गोली चूसें। **दमा :**—काकड़ासींगी के बीज-१ तो, को १ पाव बकरी के दूध में खीर बनाकर पूर्णिमा की चांदनी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में रखें, प्रातः खाली पेट खिलायें। सोयें नहीं ऊपर कुछ न खायें, पियें, २४ घण्टा जागरण करें।(अथवा) सफेद प्याज कद्दू कस में कसकर, १ किलो को दो किलो सिरका में डुबाकर पुराने मिट्टी के बर्तन में रख, मुँह बन्दकर, कपड़मिट्टी करे मिट्टी सूख जावे तब खाद के गड्ढे में नीचे ४१ दिन तक गढ़ा रहने दें, ४१ दिन बाद निकाल कर मथकर, छानकर, बोतल में भर दें। सायं प्रातः १ तो मात्रा को शहद के साथ लें, तो दमा ठीक हो जाता है। **प्लीहा-यकृत जिगर-तिल्ली**—अपामार्ग की भस्म शहद के साथ दें। अथवा काली मुसव्वर—आधी ज्वार के बराबर जल के साथ सेवन करें, इससे गौ-बैल की (छइ) भी कट जाती है। **लूताविष**—मोरछली की छाल (फूल) घिसकर लगा दें। **स्थावर जंगम विष**—,कुलथी पीसकर रखें तो विष शमन होता है, अथवा अंटकटेरा—रक्खें तो यकृत, पत्थरी, पाण्डु, आमवात, पाण्डु, गठिया, अर्द्धांगवात, विषदोष में लाभ हो।

अक्षिरोग भैषज्यम—अ० कां० ६ सू० १६ आवयो इति सार्षपं तेलसंपातं वध्नाति ॥१ इससे अभिमन्त्रित तेल को डालें, मर्दन करे। गौ मूत्र से धोयें, काण्डं प्रलिप्य ॥२॥—(कां० २ सू० ३) (अदो) ऋचा से सरसों के तेल में शाक सरसों को मिलाकर अभिमन्त्रित कर रोगी को दें।

केशवृद्धिकरणे, केशपतने भैषज्यम्—(अ० कॉ० २ सू० ८) तथा (कां० ६ सू० २१) वृक्षों (हल्दी, दारुहल्दी, अपामार्ग, पुनर्नवा, आंवला) की मूल व छाल व फल को पानी में डाल औटाये और सर धोये, यह रेवती नक्षत्र या पुष्य में लाये हुए वृक्षों की सामग्री होनी चाहिये, उपरोक्त मंत्रों से अभिमन्त्रित कर ले। (कां० ६ सू० २२) (कां० ६ सू० २३) (कां० ७।२) (कां० ७ सू० ३) इन सूक्तों से जल को अभिमन्त्रित कर छींटे दें (कां० ६ सू० १३६) (कां० ६ सू० १३७) से औषधियों को खोदकर लायें। इन सबसे ही वरुण का हवन तथा दूध भात की वलि पाक यज्ञ-विधान से करे। धातुओं की क्षीणता, नपुंसकता, श्लेष्मा, नजला, यक्ष्मादि से, शरीर मे दुर्बलता से, केशों की सफेदी और केशों का उखड़ना और केशों की वृद्धि में रुकावट आ जाने के उपद्रवों के निराकरण के निमित्त, अथर्व कां० ६ सू० १३६ "केशदृंहणम्" तथा सूक्त १३, (केशवर्द्धनम्) काची माची फल और जीवन्ती फलों को जल में डालें, अभिमन्त्रित कर केशों को छींटे दें। भृङ्गराज (काला भाँगरा) से धोयें, ये उपरोक्त औषधियाँ रात्रि को जल में भिगोये, मथ जल अभिमन्त्रितकर ब्रह्ममुहूर्तमें सूर्योदयसे पूर्व धोयें। इससे श्वेतता दूर होकर,श्याम घनता भी आयेगी,उपरोक्त रोग दूर होंगे। इनमें आंवला और डालें। केशवर्द्धन, केश जनन, छोटे से बड़ा काला करने के लिये, काले उड़द, काले तिल अन्य कृष्णवर्ण अन्न की खिचड़ी में घी डाल अभिमन्त्रित कर खायें। त्रिफला का सेवन तथा अपामार्ग का चूर्ण बनाकर स्वर्ण व चांदी डालकर तप्त जल के ३/४ भाग को ठण्डा कर उसके साथ सेवन करें।

जलोदर में—कां० ६ सू०२२ व २३ चित्त्यादि चीता शान्ति औषधियों से जलोदर के रोगीको छींटेदें, और इन्हीं से वरुणदेव का उपरोक्त हवन व बलिदान करें। कां० २।१३ से भी आहुतियाँ दें। कां० २ सू० १३ से तथा कां० ६ सू० २४ से हृदयरोग जलोदर तथा कामलरोग (पीलिया) में ढाक की लकड़ी को (पर्णरस) गिलोय के रस में भिगोकर हवन करें। कुशाओं के मुट्ठों को जलाकर गिलोय का रस छोड़कर शिर पर होकर नीचे को झाड़ा दें और रोगी को जल प्रवाह के विमुख, खड़ा कर उन तृणों को बहा दे, और अन्य कुशाओं से शिर पर शान्त्यौषधियों की पोटली रख, छींटे दें।

केशकल्प विधि—(१) चम्पा के फूल, धत्तूरे के बीज, जल में पीसकर केशों पर लेप करें। (२) आँवले नीबू के रस में पीसें, २१ दिन केशों पर लगायें। इनको अ०वे०कां० ६ सू० १३६ तथा १३७ से अभिमन्त्रित कर लें।

मृत्वत्साके हेतु—रतन ज्योति पीले पुष्प की जड़ पञ्चाङ्ग सहित, जल में पीसकर पिलाये, अथवा माल काँगनी, जटामांसी के फूल निगल कर ऊपर से गौ धृत पिये।

नहरुआ का उपचार—सांप की कैंचुली गुड़ में मिला गोला बनाकर सेवन करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपस्मार (मृगी या हिस्ट्रिया)—(१) काली मिर्च घोड़े के मूत्र में पीस नास दें। (२) कबूतर की वीट २ रत्ती, पानी में घिसकर नेत्रों में लगावे। वन कालीकपास के पत्ते १ पाव पानी में पीस, छानकर पिलाये, सर्प विष भी दूर हो। **भंग धतूरे की गर्मी में**—घी व खांड मिलाकर पियें।

बिच्छू का विष—नौसादर, चूना, समभाग लें जल में पीसकर हाथों में मले और सूंघे, अथवा कान का मैल थूक में घिस कर उस कांटे पर लगावे।

अफीम—फिटकरी का चूर्ण पान के रस में ले, अफीम उतरे।

नरे चले जाने पर—देशी पुराना गुड़ १ पाव, ६ माशे सुहागे का फूला, मिलाकर सेवन करे।

गूंगेपन में—सफेद जीरा १ माशा, हींग ४ रत्ती, मिश्री १ तोला, ३ दिन प्रातः सायं दूध में मिला पिये।

बधिरता में शुद्ध—एक पुतीका लहसुन का अर्क और शुद्ध शराब कान में डालें।

सुजाक—रेवत चीनी, शीतल चीनी, दारुहल्दी, गेरू, सोड़ा, समभाग लेकर लस्सी के साथ सेवन करें, दूध भात खावें। अथवा कटेहरीकी जड़ २ तोला, पानी १ सेरमें पकाये, १/४ भाग रह जाये तब पियें, १४ दिन सेवनकर, गेहूँ, चना की रोटी बिना नमक, मिर्च, मिठाई, खाये, घी लेना चाहिये अथवा विषखपराकी जड़ ६ माशे, पानका रस ६ माशे, पारा ३ माशे, मिला हाथ में मीड़े, पीक डालता जावे, हाथ मलता जाय, १॥ प्रहर बाद ६ माशे रूमामस्तङ्गी लेप-कर हाथों को मले, गर्म जल से धोयें।

शरीर में चट उखड़ने पर—सुपाड़ी की भस्म, मुरदासन पीस, लौनी घी में मिलाकर लेप करे।

चिनग—रात्रि में टेसू के फूल भिगो दे, सवेरे मथकर छान लें और उस जल को पी जायें।

कमलवात—आक के ७ फूलों का जीरा, एक बार में खायें, ३ दिन में रोग चला जाय।

बवासीर में—दही आधा सेर, राई ६ माशे भुनी पिसी, सीपी की कलई ३ माशा, मिश्री ३ तोला मिला, ३ दिन प्रातः सायं सेवन करें।

"काशभैषज्य"—प्रसूति का या यक्ष्मादि की काश या श्लेष्मा के निराकरणार्थ का० २ सू २७ तथा शत्रु पराजय—तथा कां० ६ सू० १०५ "कास शमनम" तथा कां० ७ सू० १०७ से हल्दी को अभिमन्त्रित कर लें, या पीपली को शहद के साथ लें या पूर्वोक्त काली मिर्च १ पाव, ४ सेर जल में डाल, १/४ शेष जल में २ सेर चीनी की चाशनी लें इलायची दानों की भाँति लें। या १ से ४१ दिन तक वृद्धि व ह्रास अर्थात् प्रथम दिन १ और ४१वें दिन ४१ पुनः ४०वें दिन ४० ग्रास के साथ ८२वें दिन १ के क्रम से हरड़ें अभिमन्त्रित कर उपरोक्त जल के साथ प्रातः सूर्योदय के पूर्व लें। निगलें। जौ के सत्तू अभिमन्त्रित कर खायें। सूर्य का उपस्थान करें। तीर्थजलों को शान्ति औषधियाँ डाल स्वर्ण चाँदी के साथ उबालकर अभिमन्त्रित कर आचमन करें। अपामार्ग की दांतुन करें। गौ-मूत्र नित्यपान करें, गौ-बछड़े की हो, जिसके बच्चे न मरते हों, स्वस्थ, पुष्ट हों।

कर्णशूल—कान में दर्द हो या फुन्सी हो, उससे पीड़ा या अन्य कान की पीड़ा हो तो कान में खाना सोड़ा डालें और १० बूंद नीबू के रस, ३ या ४ बार प्रयोग करें।

उत्फुलिलका—बाल निमोनिया, डब्बा, पसली चलने के रोग में भुना तूतिया १ रत्ती करञ्ज की मींग १ नग लें, पानी या गौ-मूत्र में घोटें, मूंग के बराबर गोली बना लें, माता के दूध में घोलकर बच्चे को दें।

बाल यकृत वृद्धि—'शरपुङ्ख मूलचूर्ण[२], पुनर्नवादि मण्डूर[३], आरोग्य वर्द्धिनीवटी[४] शङ्खवटी चारों को मात्रा व अवस्थानुसार मिलाकर दें।

उदरशूल—छोटी पीपल, कुटकी, चिरायता, हरड़ का छिलका और एलुआ पीसकर गर्म कर लेप करें। लवण भास्कर चूर्ण, हिंगुष्टक चूर्ण, शङ्खवटी, लशुनादि वटी, विषमुष्टिका वटी, संजीवनी वटी सब मिला गुन-गुने पानी से लें। ३ बार दें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नपुंसकता हरणः बल वीर्यकरण विधि—१ मनसिल, २ कूठ, ३ सुहागा, ४ वीरवहोटी, ५ सफेद कन्नेर की जड़ें १/१ तोला ६ मीठा तेल आधा सेर, ७ चमेली का रस आधा सेर, सबको कढ़ाई में पकायें रस जल जावे, तेल को उतारकर छान लें, जननेन्द्रिय पर लगावें, उपर पान बाँध दें, रग फूलें, नपुंसकता दूर होती है। इसे अथर्ववेद काण्ड ६ सूक्त १३८ "क्लीवत्वम" (त्ववीरुधांश्रेष्ठतमा) इत्यादि से अभिमन्त्रित कर लें। **अन्य**—१ ढाक का गोंद १ छ० २ सैमर का गोंद १ छ०, ३ दूध में डालें खोआ करें, उसे छाया में सुखायें, पीसकर उसी के बराबर मिश्री मिला लें, प्रातः सायं १५ दिन मात्रा एक तोला अनुपान गौ का धारोष्ण दूध, शहद व गौघृत डालकर सेवन करें।

अभिमन्त्रण उपरोक्त सूक्त से सभी में अनिवार्य है—अन्य-शिववीरज, लोहा, स्वर्ण, ताँवा की भस्में ये सब मिला उपरोक्त दूध के साथ मलाई के साथ सेवन करें। **अथवा** दूध, घी, मोचरस काली मिर्च, स्याह मूसली, शहद, गोरखमुण्डी, असगन्ध, छोटी दुद्धी, शङ्खाहूली (शङ्खपुष्पी) गुडूची, पीपली, खाँड़, कैत्थ के बीज, केवड़ा, कूठ, मुलहठी, गेहूं कूट पीसकर (समभाग) परबल, पान, गिलोय, तिल तेल में मिला शरीर पर मर्दन करना। और असगन्ध नागौडी को दूध में पीना। यदि संभोग के उपरान्त पियें तो संभोग से अरुचि नहीं हो बल और काम-वृद्धि हो।

वीर्य स्तम्भन—गोरखमुण्डी, असगन्ध, जायफल, (दक्षिणी) जावित्री, अहिफेन, भंग अजवायन इनको चूर्णकर १तोले गौके धारोष्ण दूध, शहद, गौघृत मिला ऊपर पिये २१ दिन सेवनकरें। लोहभस्म एक रत्ती, सौंठ २तोला, मिश्री एक तोला, २१ दिन प्रातः सायं उपरोक्त दूध के साथ सेवन करना। अथवा पके केला, खाँड़, मधु, मिला ७ दिन प्रातः सायं, रजोदर्शन के उपरान्त स्त्री, पुरुष, संभोगानन्तर सेवन करें। पिण्डखजूर, केला पके, इनसे दूने ताल मखाने, पीसकर, उपरोक्त दूध से, स्त्री पिये तो समस्त रोग दूर हों रजस्तम्भन हो। उड़द का चूर्ण, महुआ का शहद (रस) सौंठ, विदारीकन्द मिला उपरोक्त दूध के साथ स्त्री, ऋतुस्नानान्त सेवन करें ७ दिन प्रातः सायं।

यदि शुक्राणु नष्ट हो गये हों तो—असगन्ध, शितावर, सफेद मूसली, विदारीकन्द, पर्वतीगोखुरू, ताल-मखाना हल्दी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, गोरखमुण्डी, सैमर के फूल व गोंद, सफेद दूव, बबूल का पञ्चाङ्ग ढाक के फूल और गोंद जल-जमनी, बीज लजवन्ती, बीज बन तुलसा, सभी समभाग लें चूर्ण कर, उसमें त्र्यवङ्गभस्म ६ माशा मिलाकर उपरोक्त दूध के साथ ४१ दिन सायं प्रातः एक-एक तोला सेवन करें।

जहरवाद की भेषज—त्रिकुटा (सौंठ, कालीमिर्च, पीपली) १ तोला आमले, २ तोला हल्दी, २ तोला लहसुन, २ तोला शहद में मिलाकर खायें।

थनेला (कुचरोग)—नीला थोथा, नौसादर, मुरदासन, रैबतचीनी, पारा, मेंहदी, कवेला, छोटी इलायची, सुपाड़ी की भस्म, पान, सफेद जीरा, खोआ, घी में खरल कर, ताँबे के पात्र में लोहे के मूसल से खरल करें, उसे थनेला पर मलें। **या** नीला थोथा, कत्था, सिन्दूर, नागरमोथा, समभाग लेकर पीसकर कटु तैल में जला, उसे लगाये (घाव-थनेला) ठीक हो। **या** पुरानी ईंट की लौंनी (मूसरी) काली मिर्च दोनों महीन पीसकर गौ की लौनी में मिला कर मले, तो थनेला अच्छा होता है। **या** कौंच के बीज, मीठे (तिल) तेल में जलाकर पीसकर मलें।

वायुरोग निवारक—१. समालू के पत्ते आधा सेर, गेहूं एक सेर, डेढ़ सेर पानी मे रात्रि को भिगो दें। प्रातः सबको कढ़ाही में गर्म कर पानी सुखा लें, पत्ते निचोड़ कर पानी गेहूं में डाले, सुखा लें, पत्ते फेंक दें, गेहूं सूख जावें तो पीस लें, उसे १ सेर घी में भूनें, यथेच्छ खाँड़ मिला लें। प्रातः व सोते समय १/२ छटांक दूध के साथ सेवन करें, घी भोजन में लें, वायुरोग शान्त हो।

२. कटेरी के हरे फल १०० ग्राम, २५० ग्राम घी में ढक्कनदार पात्र में ढककर भून लें, पीस लें। प्रथम ३ दिन सायं प्रातः ३-३ माशा, फिर ४ दिन ६-६ माशा फिर १ सप्ताह बन्द करके, अगले सप्ताह उपरोक्त विधि से लें फिर १ सप्ताह बन्त कर दें, फिर अगले सप्ताह वैसे ही लें, ऊपर से गौ या बकरी का दूध लें, भोजन में घी यथाशक्ति लें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अजीर्णनाशक अग्निवर्द्धक चूर्ण—सौंठ, अजवायन, छोटी हरड समभाग लेकर कूट लें, उसे हरे इन्द्रायण (फरफैंदुआ) में ठूँसकर भर दें, सूख जाने पर चूर्ण करके काला नमक मिला लें, खाना सोड़ा अनुपात से मिला लें। मात्रा ६ माशा जल के साथ सेवन करें। इन्द्रायण को पक जाने पर लावें दवा भरकर कपड़े आदि से ढककर गेंहूं या उड़दादि के भूसे में बरसात में दबा दें। वर्षाकाल के उपरान्त शरद ऋतु में चूर्ण बनायें।

अनुभूत बल वीर्यवर्द्धक भेषज—सफेद मूसली २५ ग्राम, छोटे गोखरू २५ ग्राम, बड़े गोखरू २५ ग्राम शङ्खाहूली (शङ्खपुष्पी) २५ ग्राम, सालिम मिश्री २५, पुरानी सुपाड़ी २५, नागौड़ी असगन्ध २५ ग्राम, ढाक का गौंद २५ ग्राम सैंमर का गौंद, २५ ग्राम कौंच के बीज २५ ग्राम अलसी २५ ग्राम चने का बेसन २५० ग्राम, सिंघाड़े का आटा २५० ग्राम कीकर का गौंद २५० ग्राम बादाम की गिरी २५० ग्राम बुरादागोला २५० ग्राम, चिरौंजी २५० ग्राम, सैंमर का फूल २५०, शमी (छौंकर जाटी) की फली २५० ग्राम, पीपल, गूलर, प्लक्ष (पिलखन व गूलर) के पृथक् फल व कौंपलें उत्तर की टहनियों की २५०-२५० ग्राम घी १॥ किलो, सूजी (रवा) २५० ग्राम खोया ५०० ग्राम, चीनी २॥ किलो छोटी इलायची बींज १० ग्राम, बड़ी इलायची बीज २० ग्राम, केसर ५ ग्राम केवड़ा २० ग्राम, पिस्ता १०० ग्राम, सफेद दूब २५० ग्राम, वाराही कन्द ५० ग्राम बीज शिवलिंगी नैपाली १० ग्राम। अलसी को बारीक पीसें और २०० ग्राम घी में भूनें, दोनों गोंद पीसकर धीमी आँच से घी में भूनें, बेसन २५० ग्राम घी में खोये को ७५ ग्राम घी में भूनें, सुगन्ध आने तक भूनें, पर जलने न दें। सिंघाड़े के आटे को २५० ग्राम घी में हल्की आँच पर भूनें। सूजी को ५०० ग्राम घी में भूनकर स्वच्छ बर्तन में रख लें। भूनने में कोई चीज कच्ची न रहे। न जले।

लोहे की साफ कढ़ाई में चीनी के अन्दाज से पानी डालकर दूध से सफाई करके २ तार की चाशनी लें। चाशनी से पूर्व सूजी को चाशनी में डाल दें, जब सूजी फूल जाय तो भुनी व अन्य कुटी हुई चीजों को उसमें डालकर अच्छी तरह घोटे, तदनन्तर बारीक कटे हुए मेवाओं को कढ़ाई में डालकर मिला लें। केसर को केवड़े में भली-भांति घोटकर इस रसायन में मिला अच्छी तरह घोटा दें, कि उसमें कोई गाँठ न रहने पावे। इस रसायन को घी से चुपड़ी कांसे की थाली में फैलाये, ठण्डी होने पर ५०-५० ग्राम की कतरी काट कर रख लें। प्रातः सायं १/१ गौ के धारोष्ण दूध में १ हिस्सा शहद २ हिस्सा घी व यथेच्छ खाँड़ डालकर ऊपर से लें। औटा दूध हो तो ठण्डा करके शहद मिलायें तब लें। उसमें ५० ग्राम शिलाजीत और मिला लें, रसायन में ही मिला लें। कब्ज हो तो त्रिफला १ तोला सोते समय जल के साथ ले लें। पथ्य—२ मास पूर्ण ब्रह्मचर्य गुड़, तेल, खटाई, लाल मिर्च तेल गर्म मसाले। पुरुष गर्भाधान कराने पर्यन्त लें। स्त्रियां सन्तान होने के अर्थात् जब तक बच्चा दूध पिये लें। साथ ही जल स्वर्ण व चांदी वाला लें। रसायन के परिपाक पर्यन्त अथर्व कां० २ सू० ३६ का जप अनिवार्य है। सन्तति सुन्दर सुशील, सुनहरे बाल स्वस्थ मेधावी दीर्घायु होती है। स्त्रियों का बल क्षीण नहीं होता, बाल काले होकर, मुलायम हो, बढ़ने लगते हैं, शरीर की झुर्रियाँ नहीं रहती हैं।

१. नेहरुआ—प्रायः मिट्टी खाने से, बिना छना या बिना ढका पानी पीने से, अथवा आसाम आदि कुछ प्रदेशों के, दूषित जल से, "नेहरुआ" नामक कीटों का जन्म होता है। ये शरीर के पोल स्थानों उदर, गुदा, पिंडली, जंघा नितम्ब भागों में, अपना घर बनाकर नसों से लिपट जाते हैं। इनको औषधि से मारने पर, या इन्हें चिमटी से खींच लेने में, बीच में टूट जाने से शेष, के सड़ जाने से विष उत्पन्न होकर प्राणियों को घातक हो जाता है।

निराकरण विधि—रोगी को उलटा, ऐसी प्रकार लिटायें, कि वह स्वांस या मुँह से, गन्ध ले सके। उसके मुँह से, सटा हुआ, एक कोरा (नया) मिट्टी का बर्तन, पानी भरकर १५ मिनट तक रक्खें, उस बर्तन को हटाकर दूसरा नया, तीसरा आदि पानी भरकर, एक के बाद दूसरा रखते जावें, अथर्ववेद के "क्रमिनाशन" सूक्त का पाठकर, उड़दों से रोगी पर प्रहार करें। नेहरुआ ऊपर जीवित ही, निकल आते हैं, बादमें होते भी नहीं हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—सन्निपात आदि भयङ्कर रोगों से आक्रान्त रोगी को, यदि कई दिनों से अन्न न मिला हो, और नाड़ी पथ्य पर आ गई हो, किन्हीं वैद्य की असावधानी से, समय पर पथ्य, न दिया गया हो, पथ्य के न देने से रोगी के प्राणान्त की स्थिति भी आ गई हो, तो, उसे क्रमशः शनैः, शनैः १ पाव मूंग भुनवाकर कपड़े में रखकर सुघायें, ऐसे ही १५-२० बार लगातार करें, तो रोगी को पथ्य भी गन्ध से लग जाता है, बल वढ़ता है, हृदय और शिथिल इन्द्रियाँ ठीक कार्य करने लग जाती हैं।

सुरभिगन्धयुक्त घृत—पुराना घी, जटामांसी, छोटीहरड, भूतकेशी, ब्राह्मो, कोंचके बीज, वच, खरेंटी, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी (अन्धपुष्पी) कटुकी, छोटी इलायची वराही कन्द सौंफ, सोया, सुधास्वर्ण गुग्गुल, रेणुका, देवदारु, सुधी इन्द्र-वारुणी, गन्धमासी, केशिनी (शङ्खपुष्पी) नीमगिलोय रास्ना, मालकांगनी, विछाटी, शालपर्णी—ये सभी समभाग लें जल में डालें, उसी में सोने, चाँदी, ताँबे के टुकड़े डालें, धीरे-धीरे क्वाथ करें १/८ भाग रहे छान लें, उस छने जल में घी डालें, धीरे-धीरे पानी जला दें, घी शेष को कांचपात्र में रख लें, १/२ तो० सायं प्रातः सेवन करें। (चरक-तथा पंचपा टीलिका) सोते समय कहत की जड़ १ तो० पीसकर उपरोक्त औक्ष के साथ पिलायें तो वन्ध्या को भी वीरप्रसूती बनाता है।

कामोन्माद में—प्रेमिका के प्रेम (विरह) से उत्पन्न कामोन्माद निवारणार्थ मृत व्यक्ति की समाधि स्मारक पर लगे तिथिके संगमरमर पर चुम्बक पत्थर पीसें, जलमें मिला अभिमन्त्रित कर प्रेमी-प्रेमिकाओं को पिला दें, परन्तु उन दोनों से गुप्त रक्खें—उन्माद शमन परिवार निरोध भी हो। **हृदय परिवर्तन**—प्रेमिका के शिरके बालों को मिट्टीके पात्रमें जलाकर फेंक दें, उसी पात्रमें पानी भरकर प्रेमीको पिलायें, तो पारस्परिक उनके प्रेममें परिवर्तन हो जाता है। **उन्माद**—भौमवार में ही ग्यारह (कोंच) वानरी के बीजों को, बासी जल में पीसें, उन्माद ग्रसित के, सम्पूर्ण शरीर पर लेपें, या उबटन लगवा दें, धूप में लेप के उपरान्त ११ वार घुमायें ३ भौमवार ऐसा करें। **भूतोन्माद**—हिंगोटा (इंगुदी) वृक्ष के बीजों के तेल को आवेश आते समय उस तेल के धीरे-धीरे क्रमशः ७ फाये नाक के, दोनों छिद्रों में लगायें, सुघायें, तेल सूखने पर फायों को उसकी पीठ की ओर चुपके से फेंक दें। तेल चातनगण मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर लें। **उन्माद-(मृगी) (हिस्ट्रिया)**:—ऊँट के चर्म के तावीज में कछुए और श्वान के नख, बिच्छू के डङ्करख, अभिमन्त्रित कर गले में धारण करायें। या सावित जायफल को लाल वस्त्र या धागे में मढ़कर (गूंथकर) अभिमन्त्रित कर गले में बाँध दें, या भेड़िये के दाँतों के उपर्युक्त तावीज; या भेड़िये की हड्डी के बने तावीज को उपर्युक्तगण से अभिमन्त्रित कर गलेमें धारण करायें, तो उन्माद, हौलदिली अपस्मार, हिस्ट्रिया का वेग, रोग शमन हो। "या" शनिवारमें ही घुड़वच के ग्यारह टुकड़ों को, काले धागे में गूंथकर माला बनायें, उल्लूक के पङ्ख एक-एक जला लें, उसके धुंआ को श्वेत वस्त्र में जमा करें, उसकी बत्ती बनाकर अभिमन्त्रित कर गले में, या पुरुष के दायें स्त्री के बायें बाजू में धारण करायें, हौलदिली, हिस्ट्रिया, मृगी, उन्माद शमन होते हैं। भौमवार को ही "चौरक" जड़ी (महाराष्ट्र) गठिवना (नैपाली) भंटेउर पर्यायवाची को, कच्चे वकरी के दूध में पीसें, उसमें श्वेत वस्त्र तरकर सुखा लें, उसे तावीज की भाँति उपर्युक्त प्रकार, बाजुओं में बाँधें। या ताजी ब्राह्मी की माला गले में धारण करायें। या निर्गुण्डी के बन्दे को रविवार में श्वेत कन्या के, कत्ते धागे में लपेट, बाजू में बाँधें। या सहजने की जड़ की छाल के रस में, रोगी के हाथ से नपे सवावालिश्त श्वेतवस्त्र को तरकर, छाया में सुखाकर, रोगी के सोजाने पर, मुख को २१ दिन ढक दें। उपरोक्त उन्मादों का शमन होता है। अथवा गौ के बायें सींग. (स्वयंपतित) की अँगूठी बनवाकर बायें स्त्री, दायें पुरुष के हाथ में अभिमन्त्रित कर धारण करायें।

योसापस्मार (हिस्ट्रिरिया):—गोरखमुंडी के लाल रंग के ११ या २१ फूलों का रस क्रमशः सुघायें और एक के उपरान्त एक उसकी पीठ की ओर, उन्हें फेंकते जावें तो व्याधिशमन हो जाती है। "या" सहदेवी की जड़को श्वेत धागे में "कन्या से कते हुए" में गूंथे; कन्या द्वारा ही दायें हाथ में, धारण करायें भूतोन्माद तथा भूतज्वर शमन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होते हैं वांझ ककोड़ को जड़ को उपरोक्त धागे में गूंठकर कमर में धारण करा दें भूतोन्मादी के शिर पर मैनशिल को चन्दन की भांति लेप करें जल में डूबे-उन्मादादि के रोगी को जो मृतप्राय हो, इम्ली के पत्तों के रस में खूबतर करें-तेज धूप में सुलायें तो जीवन प्राप्त करता है। यदि उन्माद से निद्रा भंग हो तो नींद लाने के लिए कृष्णपक्ष की केवल अष्टमी की अर्द्ध निशा में तालाब में विकसित कमल के फूल व जल के मध्य के "कमलकन्द" लेकर रखें, रात्रि में ही वारीक पीस लें, नेत्रों में सायंकाल में अञ्जन लगा दें। इन सभी को चातनगण से अभिमन्त्रित करना अनिवार्य है। अथवा सन्ध्याकाल में शिर पर पोईलता को धारण कर सोये। या–"काचीमाची" की जड़ को शिर पर धारण करे।

मनवशीकरण—यदि किसी प्रेतात्मा का या किसी अन्य के मन को वशीकरण करना हो तो रविवार में जब पुष्य नक्षत्र आये, उसमें प्रार्थना कर काले धतूरे के पुष्प ले आये; उसमें शुद्ध केशर; १० बूंद गौ का ही घृत तथा दो बूंद स्वकीय रक्त मिला पीसें, चन्दनसा बनाकर स्नान के उपरान्त उसका मस्तिष्क पर टीका लगाते रहें। तो द्रष्टा का मन चन्दन टीका वाले की ओर आर्कषित हो जाता है। **वालग्रह और मुखण्डी दृष्टिपात**—व्याधि शमनार्थ करञ्ज के फल को काले धागे में गूँथकर गले में धारण करायें। अथवा काले धागे में अतिवला (कंघी) वृक्ष के फल पिरोकर कण्ठ में; घुड़वचशिर में; नीम की जड़ और छाल दाहिने हाथ में और इन्द्रायण की जड़ कमर में बाँधे; ये जड़ियाँ निरन्तर धारण करें तो आधिदैविक-भौतिक-आध्यात्मिक सूक्ष्म तथा प्राण देहों की व्याधियाँ-शाप, क्रूरदृष्टि; आक्रोश (कोसा) दोष शमन होते हैं। **वाल-वमनः**–शिशुके मांके दूधपानके उपरान्त दूधपटके तो तत्काल ही उसके पास कांस्यपात्र बजायें। उसकी माता अपने मुख की वायु को पुत्र के मुख में छोड़े। **वाल-ग्रहशान्तिः**—बड़े (सांड़) विजार के पैरों में लगी मृत्तिका लें, गोरोचन मिलायें उसको मस्तिष्क पर तिलक लगायें:—

वालग्रह (स्कन्दग्रह):—गले में गुडक्च; सफेद कौरैय्या की छाल, वेल वृक्ष के ऊपर उगने वाला वन्दा; शमी, (छोंकर-जाटी) की डाल के टुकड़े इन्द्रायण की जड़ इनको सम्मिलित कर काले धागेमें गूंथे, अभिमन्त्रित कराकर गले में धारण करायें। अथवा जवासा का पौधा, सैंमल (शाल्मली) की ज़ड़, कुँदड़ की जड़; कौंच की जड़; की सम्मिलित माला धारण करायें बच्चेको चौरास्ता पर या पीपलके नीचे अभिमन्त्रित जलसे स्नान करायें। **सकुनीग्रहः**–में शिशु को शितावरके ७ टुकड़ेकर श्वेत धागेमें अलग-२ सात गाँठोंमें बाँध माला बना धारण करायें—अथवा लक्ष्मणाकन्द को श्वेत सूत्र में बांधकर गले में धारण करायें, या इन्द्रायण की जड़ धारण करायें बडी कटेरी के सात टुकड़ों को श्वेत धागे की ७ गाँठ लगी माला धारण करायें। **नेगमेह ग्रह में**:—भूई आंवले की जड़ को श्वेत धागे की ७ गाठों में बांवें गले में धारण करायें। अथवा बालछड़ की माला धारण करायें वाल को गूलर या महुए या अन्य दूध के वृक्ष के नीचे अभिमन्त्रित जल से स्नान करायें। अथवा हाथी के दाँत की मिट्टी लें उसमें गोरोचन मिला उसका त्रिपुण्ड मस्तिष्क पर लगाया करें। **हिचकी**:—शिशु के शिर व हृदय पर तेल मलें, पश्चात् तृण का टुकड़ा कर शिर से पैर तक उतारा करके पीछे फेंक दें उधर वाल न देखे।

समस्त वाल हुहों में—शिशु की गर्दन में काले भांगरे की माला धारण करायें बालकों के दन्त रोग में सूर्यास्त पर केवल निर्गुण्डी की जड़ को काले धागे में मढ़कर गले में बांधें, अथवा पुष्य नक्षत्र में लाई शंख पुष्पी की जड़ दायें वाजू में बांधे अथवा जवासे की जड़ की बनी तावीज धारण करायें—अथवा खिरनी के बीज की ताबीज धारण करायें अथवा कड़बी तुंबी के बीजों की तावीज धारण करायें इनको अभिमन्त्रित करना अनिवार्य है। **बुहारी स्पर्श से उत्पन्न शिशुरोगः**—में स्वर्णपात्र या ताम्रपात्र में जल लें उस पर घी का दीप जलायें, बच्चे के शिर से स्पर्श कराके हटा दें। व्याधि शान्त होती है। **बच्चे के बार-२ गोद से गिरने में**—माता गिरने के स्थान की मिट्टी लेकर तीन मागकर, तीन वार शिर से उतारकर चारों ओर फिराकर, शिर से स्पर्श कराकर फेंक दें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नकार जाने से उत्पन्न शिशु के कष्ट के निवारणार्थ :—नकार जाते समय ही तुरन्त माता अपने शिर के बाल के गुच्छे से उस बाल के मुख पर हवा करे। **शिशु के अनामक रोग शमनार्थ :**—बाल को स्नान-गृह में बिठाकर शिर पर चलनी के द्वारा गौ-मूत्र की मन्द धारा छोड़े, पुनः धोबी वाले रेह के क्षार जल से इसी छलनी द्वारा मन्द जल छोड़े। धूर्त साधु वेशी से कौड़ी खरीद लें, उसमें पारा डाले मुँह को मोम से बन्द कर दे, उसे काले धागे में गूँथकर गले में बाँध दें। अभिमन्त्रित करना सभी का अनिवार्य है। अथवा कमलपत्र, हरित पर, बाल को एक सप्ताह सुलाये। अथवा गौ की लीनी शिशु के शरीर में मलकर, कालेश्वान से चटवायें। अ० वे० कां० ८ सू० ७ तथा ऋग्वेद मं० १० अ० ८ सू० ९७ के सन्दर्भ में—**"अथ उपर्युक्त ३६ कोष्ठों में उल्लिखित औषधियों के वैज्ञानिक प्रभाव"**—निम्न औषधियाँ सेवन से अमरत्व प्राप्त होता है। इनका देवगण भी सेवन करते थे। नाम ये हैं :—

(१) हर्रें, (२) आंवला, (३) गोल मिर्च, (४) पिप्पली छोटी, (५) जटामांसी, (६) भिलावा, (७) सौंठ, (८) पिप्पली बड़ी, (९) गिलोय, (१०) वच, (११) निम्ब, (१२) अडूसा, (१३) शतावरी, (१४) सेंधा नमक, (१५) सिन्धुवार, (१६) कटेरी, (१७) पर्वतीगोखरू, (१८) बेल, (१९) पुनर्नवा, (२०) वला. (वरियारा) (२१) ऐरण्ड, (२२) मुण्डी (गोरक्षमुण्डी), (२३) रुचक (विजौरा, नीबू), (२४) भृङ्ग (दाल, चीनी), (२५) क्षार (यवक्षार), (२६) पपट (पित्त पापड़ा), (२७) धन्याक (धनिया), (२८) जीरक (जीरा), (२९) शतपुष्पी (सौंफ) (३०) यवानी (अजवायन), (३१) विडङ्ग (वायविडङ्ग), (३२) खदिर (खैर या कत्था), (३३) कृतमाल (अमलतास), (३४) हल्दी, (३५) बचा, (३६) सिद्धार्थ (सफेद सरसों) ये छत्तीस औषधियाँ हैं।

ये महान औषधियाँ समस्त रोगों को दूर करने वाली तथा अमरत्व बनाने वाली, शरीर में झुर्रियाँ न पड़ने देने वाली, बालों को न पकने देने वाली हैं। इनका चूर्ण या इनके रस से भावित वटी, अवलेह काढ़ा, लड्डू या गुड़ खण्ड यदि विश्वस्त शुद्ध घी या मधु के साथ खाया जाय। अथवा इनके रस से भावित घी या तैल का जिस किसी भी प्रकार उपयोग किया जाय, वह सर्वथा "मृत संजीवन" मृतप्रायः को भी जिला देने वाला है। इन्हें अथर्व काण्ड ८ सू० १ व २ तथा आयुष्यगण। आयुष्यगण अर्थात् संजीवनीयगण सूक्तों से, अभिमन्त्रित कर लेने के उपरान्त, ये ही औषधियाँ, भारी चमत्कारपूर्ण प्रभाव, करने वाली हैं। योग्यवैद्य महानुभाव अन्यथा न समझें, करके देखें। आधेकर्ष या एक कर्षभर अथवा आधापल या एकपल की मात्रा में, इसका उपयोग करने वाले, यथेष्ट आहार-बिहार में तत्पर होकर भी तीन सौ वर्ष जीवित रह सकता है। मृतसंजीवन कल्प में इससे बढ़कर दूसरा योग सम्भवतया दुर्लभ हो। इनमें प्रथम १ से तक औषधियाँ, अथवा १० से १८वीं, या १९ से २७वीं अथवा २८वीं से ३६वीं तथा की पृथक्-२ नौ संख्या की ही औषधियाँ, मनुष्य को समस्त रोगों से, मुक्त कर देने में, पूर्ण समर्थ हैं। ये १०१ संख्या की १०० मृत्युयें, तथा निर्ऋतिदोष, उन्माद रोगों से मुक्त करने वाली हैं। महामृत्यु रूपघोर अन्धकार से परे, प्रकाश में जाने में अथर्वकाण्ड १३ सू० १ व० २ तथा काण्ड १७ द्वारा निरन्तर सूर्यदेव का उपस्थान, अनिवार्य अभ्युदय प्रदान करने वाला है। इन ३६ औषधियों का ४-४ के क्रम से ९ चतुष्क होंगे। उनमें से किसी एक चतुष्क के सेवन से मनुष्य के रोग (स्थूलकाय के) शान्त हो जाते हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम कोष्ठ, (चतुष्क) की औषधियाँ सेवन से, वातरोग से, छुटकारा हो जाता है। तीसरी, बारहवीं, छब्बीसवीं और सत्ताईसवीं औषधियों के सेवन से पित्तादोष दूर होते हैं। तथा ५वीं, ६वीं, ७वीं, ८वीं, १५वीं, औषधियों के सेवन से कफदोषों की निवृत्ति होती है। २४वीं, ३५वीं, ३६वीं, औषधि धारण करने से ही, वशीकरण सिद्धि तथा गृहवाधा, भूतादि, उन्माद से लेकर निग्रहपर्यन्त सारे सङ्कटों से छुटकारा प्राप्त होता है। यही फल १, २, ३, ६, ७, ८, ९ तथा ग्यारहवीं, संख्या वाली औषधियाँ, धारण से होता है। इसे भी मनीषिगण अन्यथा न समझें, तथा अर्थलोलुपों को न दें। यदि अर्थान्ध इसका अन्यथा प्रयोग करेंगे तो, औषधियों तथा दुःखी जीवों के अभिशाप से संतप्त होंगे। यह दिव्य अमोघ औषधियाँ है, जो अन्य किसी चिकित्सा प्रणाली से सम्भव नहीं है, निष्ठा, विश्वास, दृढ़संकल्प से उपयोग करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ औषधियों के चतुष्क नाम, विशेषसंकेत और उपयोग निम्नचक्र से आगे लिखे पृष्ठानुसार समझें।

विशेष अनुभूत

अनुक्रम	औषधियों की नामावली				उपयोगी
प्रथम चतुष्क विशेष संकेत	१ भृङ्गराज ऋत्विज १६	२ सहदेवी वह्नि ३ गुण	३ मयूर शिखा नाग ८	४ पुत्र जीवक पक्ष २ नेत्र	धूप तथा उद्वर्तन
द्वितीय चतुष्क विशेष संकेत	५ अधःपुष्पा मुनि ७ शैल	६ रुदन्तिका मनु १४ इन्द्र	७ कुमारी शिव ११	८ रुद्रजटा वसु ८	अनुलेप
तृतीय चतुष्क विशेष संकेत	९ विष्णुकान्ता दिशा १०	१० श्वेतार्क शर ५	११ लज्जालुका वेद ४ युग	१२ मोहलता ग्रह ९	अञ्जन
चतुर्थ चतुष्क विशेष संकेत	१३ कृष्णधत्तूर ऋतु ६	१४ गोरक्षकर्कटी सूर्य १२	१५ मेष शृङ्गी चन्द्रमा १	१६ स्नुही तिथि १५	स्नान

इनको औषधि सूक्त (ऋग्वेदोक्त, ऋग–१० अ० ८ सूक्त ९७) तथा अथर्व कां० ८ सूक्त ७ जो आगे दिये हैं। इन दोनों ही से अभिमन्त्रित करें। आगे पृथक्-पृथक् विधि से विभिन्न व्याधि-आधियों में उपयोग करें। अन्य सभी औषधियाँ इसी क्रम से भैषज्य कर्म में उपयोग करें। मन्त्र से औषधि, भैषज रूप गुण शक्ति सम्पन्न होते ही महान प्रभावशाली, तुरन्त लाभ प्रदायिनी हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अ० वे० कां० ६ सू० ८ "शीर्षक्ति" में वर्णित व्याधिकरण

चेचक मसूरिका :—के निवारणार्थ (भैषज्य सहिता) विधि। १–चैत्रकृष्णा चतुर्दशी के दिन गृह में श्वेत कलश पर लालझण्डी युक्त सैहुण्ड की शाखा स्थापन करने मात्र से चेचक नहीं होती। २–स्त्रियों के वाम, पुरुषों के दक्षिण पार्श्व में। गीदड़ी की हाड़, या हाड़ का, बीजधारण करने पर, मसूरिका का आक्रमण नहीं होता।

३–मसूरिका ज्वर—के होते ही, रोगी अधिक जल न पिये, हवा से रहित स्थान में रहे, शरीर पर भंग का चूर्ण मले, ऊपर कपड़ा बाँध दें। ४–रुद्राक्षचूर्ण तथा कालीमिर्च का चूर्ण मिला, बासे पानी के साथ पीने से, मसूरिका (चेचक) शीघ्र नष्ट होती है। मात्रा १ माशा। ५–करेली के पत्तों के रस में, हल्दी के सेवन से, खसरे का ज्वर या चेचक नहीं होती। ६–ऊटकटेरी की जड़ या अनन्तमूल को, २ माशा से ४ माशा तक ही, चावलों के जल में, पीने से मसूरिका शान्त होती है।

७–शिरोरोग— तिल तैल ३२ तो०, आंवले का रस ६४ तो पुण्डरिया काष्ठ—मुलहटी, पिप्पली, लाल चन्दन, नीलोत्पल, ये सब २-२ तोले विधिवत सिद्ध कर लें। उसी का नस्य करायें, तो सम्पूर्ण शिररोग नष्ट होते हैं। ८–आंवले और आम की गुठली की मींग (मज्जा) समभाग पीसकर लेप करने से, लम्बी जड़ों के लम्बे, कोमल बाल उत्पन्न होते हैं। **९–काले बाल :**—भांगरे के फूल, जपाकुसुम (गुड़हर, जवा, ओड़हुल) मिलाकर, भेड़ के दूध में, पीसें, चला लें, उसे लोहे के पात्र में भरें, भली प्रकार बन्द कर गड्ढे में दवा दें। ७ दिन बाद निकालें, उसी में भांगरे का रस, घी मिला मर्दन कर शिर से लेपकर ऊपर, केले का पत्ता रख, बाँध दें। रात्रि भर बँधा रहने दें, प्रातः त्रिफला के क्वाथ से धोने से, **बाल काले** हो जाते हैं।

१०–सफेद बाल—नीम का रस (रोने से जो टपके) या नीम का तैल का नस्य १ मास लें—गौदुग्ध का सेवन नियमित करें, तो जरा सूचक वालों की, सफेदी नहीं होती है। **११–पुनः दन्त उग आना :**—लसौड़े के बीजों की गिरी को काञ्जी (राई) में पीसें, १ लोहे के पात्र में भरें, मुँह बन्द कर, धूप (तेज) में रखें—उसकी गर्मी से जो तेल निकलने, उसे एक अच्छे वर्तन में रखें—इसके नस्य, मर्दनादि से बाल काले मुलायम होते हैं, आँख, कान, ग्रीवा, दाँतों के रोग नष्ट होते हैं। १ वर्ष सेवन से, पुनः सारी दन्तपंक्ति, निकल आती है। (राजमार्त्तण्ड १४०-१४१) "भोजराजरचित"। भै० र० क्षुद्ररोग० ने भी इसे मान्यता दी है।

शय्यामूत्र—सोते-२ शय्या पर मूत्र हो जाने के, रोगी को उसकी शय्या के, नीचे के मूत्र की, मिट्टी लेकर भूनें, मधु तथा घी में चटायें। या—उचित मात्रा में अफीम का प्रयोग करायें। जौ, चावल, कालेतिल काले उड़द की खिचड़ी खिलायें। **कृमिदन्त :**—दाँतों में कीड़ा लग जावे तो—नीलीवृक्ष, या काक जन्घा या दुद्धी या सैंहुड़ किसी की जड़ रखने से क्रीड़ा मर जाता है। **जिह्वाजाड्य**—जीभ का तुतलानापन या अटककर बोलना आदि। रोग में जम्भीरी की केशर में स्वल्पमात्रा में सैहुण्ड का दूध मिला चवायें। **दाँतों का कटकटाना :**—काले घोड़े की पूँछ के सात वालों की वेणी वनाकर गले में बाँधें। सम्भव हो तो कबूतर का पङ्ख भी बाँधें। बन्द हो जाता है, समस्त गले के—(खाँसी आदि) रोगों में :—यवक्षार, तेजबल, पाढ़, रसौंत, दारुहल्दी, पिप्पली समभाग चूर्ण कर मधु के साथ गोली बनाकर चूसने से नष्ट होते हैं। या दशमूल क्वाथ तथा मूली व मैंथी के यूष लाभप्रद है।

कर्णरोग :—कर्णशूल, कैथ के पत्ते के रस, विजौड़े के रस, अथवा अदरख के रस को गुनगुनाकर कान में डालें तो शूल नष्ट होता है। लहसुन का रस, अदरख का रस, सहजने की छाल का रस तथा केले के डण्ठल का रस मिला, गुनगुना कर डालने से शूल नष्ट होता है। **कर्णनाद :**—तथा बहिरापन—में तिल तैल ४ सेर, अपामार्ग क्षार २ सेर जल १६ सेर, इन्हें २१ बार उबालकर क्षार तैयार करें। (क्वाथ में जड़ अपामार्ग १ सेर लें) इससे सिद्ध तैल को कान में डालने से कर्णनाद, वधिरपन नष्ट होते हैं। अथवा तिल तैल ४ सेर बकरी का दूध १६ सेर, गोमूत्र से पिसा विल्वफल १ सेर, सवको पाक कर तैल बना लें। समस्त कर्ण दोष नष्ट करता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्णस्राव :—कैथ के रस में मधु मिला (वट, पीपल, प्लक्ष, गूलर, वेतस) का समभाग चूर्ण कर मिला कान में डालें तो कर्णस्राव दूर हो जाता है। सर्ज (शाल) की छाल का चूर्ण, जंगली कपास के फलों का रस और मधु मिलाकर कान में डालें तो, स्राव नष्ट होता है। कपास के फल के रस का आधा मधु, मधु से आधा (शाल) का चूर्ण लें। **कर्ण के कृमि**—नष्ट करने को बैंगन को अङ्गारों पर डालकर उसके धुएँ को नली से कान में पहुँचायें, ऊपर सरसों का तेल डालें। कलिहारी की जड़ तथा हुलहुल के रस में सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, समभाग चूर्ण मिला कान में डालें तो कृमि मर कर बाहर आ जाते हैं। **कर्णरोग में:**—दातुन, शिर धोना, व्यायाम, कफप्रद, भारी द्रव्य कान में तिनका डालना, वर्फ रखना त्याग दें। चिरकालीन—प्रतिश्याम (जुकाम-नजला) में—पिप्पली, सहिजने के बीज, बायविडङ्ग कालीमिर्च, संमभाग चूर्ण कर नस्य लें। **नेत्र रोग:**—पाँच दिन तक अनशन करने से नेत्र रोग कुक्षि रोग, प्रतिश्यामव्रण और ज्वर शान्त होते हैं। हींग, सुहागा, कान का मैल इनमें से किसी को मधु के साथ आंजने से रात्र्यान्ध दूर होता है। दही में कालीमिर्च घिसकर लगाने से रात्र्यन्ध दूर होता है। वृश्चिपर्णी की जड़, सेंधा नमक, कालीमिर्च, समभागचूर्ण कर–राई (काञ्जी) के रस में ताम्र पात्र में घिसकर आंजन करने से पिच्चेट, धूम्रदृष्टि, **तिमिर रोग:**—कण्डू, क्लेद, मलअस्र्, रक्तस्राव, पिल्लरोग अर्म तथा **शुक्र रोग नेत्रों के**—नष्ट होते हैं। तुलसी के पत्रों को लहसन के रस में पीसकर, निचोड़ कर बूँद डालने से कुकरे (रोहू या गुहेरी) नहीं होती हैं। सेंधा नमक, पिप्पली, शालपर्णी, कूठ पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, त्रिफला, कालासुरमा, सुरामण्ड से पीसकर वर्ति बनाकर लगाने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं।

नेत्र रोग:–निर्मली फल, शरव ऊँटकटेरा की नाभि, सौंठ, मिर्च (श्वेत) पीपली, सैंधा नमक, खांड, समुद्रफेन, रसौत, वायविडङ्ग, मन शिला, मुर्गी के अण्डे का छिलका, इन्हें गुलाबजल में पीस, वर्ति बनायें, इसे घिसकर मधु के साथ अञ्जन से तिमिर, पटल, कांच, अर्म, शुक्र, कण्डू, क्लेद, गुहेरी, फुड़िया, परवाल आदि नेत्र रोग नष्ट होते हैं। तिल के पूल ८०, चमेली के फूल ५०, पिप्पली के दाने ६०, कालीमिर्च १६ मिलाकर पुनर्नवा के रस में पीस वर्ति बना, घिसकर लगायें, तो नष्ट हुई दृष्टि पूर्ववत् हो जाती है। **नेत्र रोग में कुपथ से सावधान रहें**—क्रोध, शोक, मैथुन, आँसू, मल-मूत्र, निद्रा, कै, इनके वेगों को रोकना, सूक्ष्म वस्तु देखना, दांत कटकटाना, स्नान, रात्रि भोजन, धूप, धूमहुक्का पानादि चवाना, अम्ल, लवण, विदाही (मिर्च) कटु उष्ण, भारी भोजन सर्वथा वर्जित हैं। **शिर पीड़ा**–भांगरे के रस, तथा बकरी का दूध समभाग धूप में गर्म कर नस्य देने से मस्तिकाशूर व आधाशीशी दूर होती है। नौसादर चूर्ण तथा चूना बोतल में बन्दकर न य लेने से शिर वेदना दूर होगी, छोटीमिर्च तथा लालमिर्च सैहुण्ड के दूध में पीसकर लेपने से वेदना दूर होगी, कौड़ी भस्म (५ भाग) उतना ही शुद्ध सुहागा, कालीमिर्च ६ भाग तथा मीठाविष ३ भाग मिला स्त्री दुग्ध में पीस वर्ति बनालें, वर्ति को घिसकर नस्य देने से, विविध प्रकार के, कफ प्रधान शिर रोग नष्ट होते हैं। आयु पर्यन्त नीरोगता, दीर्घायु, बल, वीर्य, बुद्धि, मेधा, सरस्वती, ओज, वर्ण, श्वर, को बढ़ाने तथा ब्याधि नाशक, मस्तिष्क के समस्त विकार, बालों का गिरना, श्वेत हो जाना, न बढ़ना, नजला का निरन्तर वहना आदि, तथा वहरापन, गूँगापन, नेत्रों के विकार दूर करने के लिये निम्न प्रयोग रसायनों के हैं।

(१) स्वर्णगुग्गुल—इसका विशेष विवरण पृथक आगे देखें। **(२) पिप्पली**—जो पूर्व आ चुका है।

इनके अतिरिक्त निम्न–पृथक्-पृथक् में से अपने अनुकूल प्रयोग करें। इनके सेवन से पूर्व योग्य अनुभवी वैद्य द्वारा, वमन, विवेचन द्वारा शारीरिक मल की शुद्धि, कर इनका सेवन लाभप्रद होगा। शुद्धि में अपामार्ग का स्वर्ण जल के साथ सेवन भी उत्तम, विघ्न नाशक है। [१] भोजन के १ घण्टे उपरान्त एक हरड़, भोजन से पूर्व २ बहेड़े, भोजन के पश्चात् ४ आंवले-घी और मधु के साथ, १ वर्ष सेवन से, व्याधि रहित पूर्ण आयु तक जीते हैं। [२] रात्रि के अन्त में उषाकाल अर्थात् तारों युक्त प्रभात में ३२ तोला जल सावधानी से धीरे-धीरे नाक से पीने और निकालने से, व्यङ्ग अकाल में ही श्वेत बालों का रोग, पीनस, स्वर विकार, कास, श्वास, रतोंध दूर होता है। [३] सूर्योदय से पूर्व प्रातः नियमित १॥ सेर पानी पीने से वातज, पित्तज रोग शान्त हो जाते हैं। [४] भृङ्गराज (भांगरे) का रस प्रति दिन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१ मास सेवन से ऊपर दूध का ही पथ्य करने से बल, वर्ण, दीर्घायु लाभ होता है। (५) भांगरे का बारीक चूर्ण, उसका आधा तिलकाले, आधा भाग आंवला का चूर्ण मिला पुराने गुड़ में मिला, १ तोला प्रतिदिन सेवन से रोग रहित-जरा, मृत्यु से मुक्त होते हैं। निरन्तर सेवन से दृष्टि की शक्ति, अचल को चलने की शक्ति, हाथी जैसा बली, गूंगा-वाग्मी, बहिरा दूर का शब्द सुनने में समर्थ अकाल में ही बालों के श्वेत होने आदि रोगों से मुक्त काले बालों वाला जीर्णदांतों को पुष्ट श्वेतवर्ण का बना सकता है। (६) भांगरा, आंवला तथा काले तिल-रसायन विधि से सेवन करने से बाल काले, सुन्दर, निर्मल इन्द्रियों वाला, व्याधिरहित पूर्ण जीवन लाभ करता है। (७) शङ्खपुष्पी, शितावर, वच, वायविडङ्ग कुठ, हरड़, गिलोय, अपामार्ग ये ८ समभाग ले, चूर्णकर गौघृत तथा मधु, के साथ चाटने से, मेधा, स्मृति सरस्वती को प्राप्त कर, सैकड़ों मन्त्रों को कण्ठस्थ करने, कविता करने में समर्थ होते हैं। (८) शङ्खपुष्पी की जड़, फूल, पत्तों का चूर्ण; या गिलोय का चूर्ण या मुलहठी का चूर्ण; या मण्डूकपर्णी का रस, गौदुग्ध, गौघृत तथा मधु के साथ सेवन से व्याधिनाश, दीर्घायु, बल, वीर्य, वर्ण, स्वर, मेधा, स्मृति तथा अग्निदीप्त होती है। (९) विधारा की जड़ के चूर्ण को शतावर के रस से ७ भावना देकर २ माशा प्रति दिन एक मास उपरोक्त गौघृतादि के साथ सेवन से धीवान, मेधावान, स्मरण शक्ति से पूर्ण, काले बालों वाला दीर्घायुष्य लाभ करता है। (१०) यदि प्रतिदिन प्रातःकाल (हस्तिकर्णपलाश) की छाल के चूर्ण को उपरोक्त विधि से सेवन करें तो, उपरोक्त गुणों के साथ अश्व के तुल्यपुष्ट वीर्य हो, दीर्घायु वाला होता है। इसी के (पलाश) के रस को गर्भाधान काल में स्त्री-पुरुष अपनी प्रजननेन्द्रियों में चुपड़कर गर्भाधान करें तो, वन्ध्या को भी सन्तति लाभ होती है, इसी के रस को पुंसवनकाल में स्त्री के नथने में निचोड़ें तो पुत्र ही होता है।

११. असगन्ध का चूर्ण—१ माशा से ३ माशा, १ मास उपरोक्त या तिल तैल या स्वर्ण जल के साथ सेवन से दुर्बल बल प्राप्त करता है। (१२) ६ सेर ६ छटांक ६ तोला आंवले के चूर्ण को आंवले के रस की २१ भावनायें देकर ६ सेर ६ छटांक ६ तोला मधु, इतनी ही पिप्पली का चूर्ण १ सेर ३ छटाँक ३ तोला कच्ची खाँड मिला मिट्टी के बर्तन में भली प्रकार बन्दकर वर्षाकाल में भस्मया भूसा में दवा दें, शरद आने पर उचित मात्रा में सेवन करें तो, उपरोक्त सभी व्याधियों से मुक्त हो, रूप, वर्ण, बल, ऐश्वर्य, धी, स्मृति, मेधा, वाग्मिताकी प्राप्ति होती है। (१३) हरड़ को वर्षाकाल में सैंधे नमक, शरद में खाँड के, हेमन्त में सौंठ के, शिशर में पिप्पली के, वसन्त में मधु के, और ग्रीष्म में गुड़ के साथ, सेवन से उपरोक्त लाभ होते हैं। (१४) हरड में मधु की भावना देकर सेवन करने से, अर्श, श्वास, कास, ज्वर-वमन, पाण्डु, पिपासा, नेत्ररोग, हिक्का, कुष्ठ, अतीसार-भ्रम, मद, अजीर्ण, शूल, प्रमेह, प्रदर, रक्तपित्त, रक्तस्राव, जरा अरुचि आनाह, दाह, अम्लपित्त आदि नष्ट होते हैं।

(१५) सम्भालू की जड़ का चूर्ण ६४ तोला मधु १ सेर १० छटांक मिलकर मलें, उसे पुराने घी के मिट्टी के पात्र में भर, सकोरे से बन्दकर कपरमिट्टी कर, अन्न में १ मास तक गाढ़ दें। तत्पश्चात् १ माशा से ३ माशा तक उपरोक्त दुग्ध के साथ सेवन से सुन्दरता, स्वस्थता, तेज, बल, वीर्य, दीर्घदृष्टि, बालकाले, दीर्घायु, प्राप्त करता है। इसी की जड़ को गौमूत्र के साथ सेवन से १८ प्रकार के कुष्ठ, पामाविचर्चिका नांडीव्राग, गुल्म, शूल, प्लीहा, उदरवृद्धि आदि दूर होते हैं। इसी सम्भालू की छाल के साथ सेवन करें, दीर्घदृष्टि शूकर जैसा बल, दिव्यवाणी प्राप्त करें। २ मास सेवन से पण्डित सद्-असद् के विवेचन करने वाली बुद्धि (पण्डा) प्राप्त होती है। इसी के पत्ते आधा सेर में १ सेर गेहूं मिलाकर ४ सेर जल में सन्ध्याकाल में भिगोये, प्रातः मन्द-मन्द आंच से जलायें, जब पानी जल चुके नीचे उतारें, पत्तों को अलग कर गेहुंओं में, निचोड़ कर उन्हें अग्नि पर कुछ खुश्क कर सुखायें, आटा बना पाठा के गूद में मांड़ें, घी में सेकें, पूरियों को मलकर पुनः आटा-सा बना, घी आधा सेर में भूनें, खांड मिला १/१ तोले की कतरी बनाकर ६० दिन सेवन कर घी दूध ऊपर लें। समस्त वायुरोग दूर हो, हाथी जैसा पुष्ट वीर्य, बलवान, दीर्घायु होता है।

(१६) लक्ष्मणा की जड़, हस्तिकर्ण पलाश के जड़ की छाल, सौंठ, मिर्च, पीपल (त्रिकटु) त्रिफला तथा त्रिमद (वायविडङ्ग, चित्रक, मोथा) असगन्ध ये सभी समभाग ले चूर्ण कर उसी के बराबर लौहभस्म, मिलाकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सेवन नित्य करें—वृष्य वलप्रद, पुत्रोत्पत्ति में समर्थ कन्याओं के वजाय पुत्रप्रद है, समस्त रोगों को भगाता है।

अथर्ववेदीय चारणवैद्यशाखासम्मत—अथ राजयक्ष्मादि सर्वं ज्वर नाशक सिद्धप्रयोग क्षीयन्ते अनेनेतिक्षय, अथवा "क्षीयन्ते सप्रधातवोंत्रेतिक्षयः (भगवानधन्वतरि) अनेकरोगानुगतो वहुरोग पुरोगमः। दुर्विज्ञेयोदुर्निवारः शोषो व्याधिर्महावलः॥ क्षयरोग अपने आगे-पीछे विविधरोग समुदाय को लेकर चलता है इसीसे राजयक्ष्मा रोगराज है। **सुश्रुत संहिता**—संशोषणाद्रसादीनांशोष इत्यभिधीयते। शुष्यन्तेरसादिसप्तधातवोत्र इतिशोषः॥ रसादि सातों धातुओं का संशोषण करने के कारण इसे शोष भी कहते हैं। क्रियाक्षयकारत्वाचक्षय इत्युच्यते जनैः॥ शरीर के अङ्गप्रत्यङ्ग की कार्यक्षमता का क्षय करने के कारण-क्षय कहलाता है। "रोगेषुराजति यस्मात्ततो यं रोगराजिति।" अन्य समस्त रोगों से भयंकर, प्रवल कष्टप्रद प्राण घातक होने से रोगराज इसे सुश्रुतकार ने शोष, क्षय, राजयक्ष्मा तथा रोग राज कहा है जो आयुर्वेदविदों से अनुमोदित स्वीकार्य है। **पूर्वरूप**—(१) प्रारम्भ में आखों की काली पुतली के चारों ओर अधिक सफेदी का आना। (२) कामवासना तथा मांस भक्षण में अधिक अभिरुचि का होना, (३) जुकाम, नजला, खांसी श्वास, वेहोशी, चक्कर आदि आना। (४) शरीर में पीड़ा, अङ्गों का टूटना, कफवृद्धि, तालुकी शुष्कता, कभी-कभी वमन जठराग्नि की मन्दता, नींद की अधिकता, मुखमण्डल एवं नेत्रों का फीकापन नाखूनों पर सफेदी, मुख का मीठापन, थकावट, आलस्य, अरुचि, पौष्टिक भोजन के उपरान्त दुर्बलता की वृद्धि, नख और वालों की अधिक वृद्धि का होना। अधिक स्वप्न देखना, स्वप्न मे प्रायः कौवा, तोता, सेही—नीलकण्ठ, मोर, गीध, बन्दर एवं गिरिगिट आदि पर सवारी करना, आंधी से टूटे वृक्ष, धुएँ से काले दावानल से जले रूखे ठूँठों, का देखना या अन्य वीभत्स, रोमाञ्चकारी स्वप्न देखना, पूर्व क्षय को आगमन का सूचक माना है।

क्षय का रूप—सुश्रुतकारः—भोजन में अरुचि, खाँसी, श्वास, गले में कफ के साथ रक्त का आना; रक्त वमन, तथा स्वरभेदादि ये क्षय होने पर होते हैं। ये ६ लक्षण हैं—भोज के मत से—क्षय होने पर उपरोक्त लक्षणों का प्रकाशित होना। ये खांसी, ज्वर और रक्त वमन ये ३ रूप कहते हैं। माधवनिदानकार—क्षय को त्रिदोषज होने से, दोषों के अनुसार लक्षणों के वर्गीकरण के साथ ११ प्रकार का माना है। यथा, वात से - स्वर भङ्ग, शूल, कन्धों और पसलियों मे संकोच (खिचाव) **ये ३ लक्षण पित्त से**—ज्वर, अतिसार, रक्त, वमन, तथा आँख, हथेली, पैरों के तलवे एवं सर्वाङ्ग दाह ये ४ लक्षण प्रकाशित होते हैं। **कफ से**—शिर का भारीपन, भोजन में अरुचि, खांसी और स्वर भङ्ग ये ४ दिखाई पड़ते हैं। चरक और वाग्भट की भी यही सम्मति है। **क्षय की प्रथमावस्था**—कन्धों, पसलियों में दर्द, आँख, हाथ पैर के तलवों की जलन, साधारण खाँसी, मध्याह्नोत्तर ९९/१०० डिग्री तापमान, ज्वर और कभी-कभी कफ में रक्त कणों का आना। **द्वितीयावस्था**—अन्न में अरुचि, खाँसी, श्वांस, ज्वर, रक्त, वमन, स्वरभङ्ग, ज्वरांशों की वृद्धि। **क्षय की तृतीयावस्था**—फुफ्फुसों में क्षत, वल, मांस, रक्त क्षय, ज्वर-अतिसार, काश, श्वास स्वर भेद, पसलियों में पीड़ा, वाणी की क्षीणता, हाथ पैर, पेट, अण्डकोष, एवं सर्वाङ्गशोथ अन्न से घृणा, या अत्यन्त भोजन करने पर भी वलक्षय होना, कष्ट के साथ बड़ी मात्रा में मलमूत्र क्षय, मूत्रश्वेत, नेत्रश्वेत, निस्तेज, ऊर्ध्व श्वास, ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियों की उपरता। **अरिष्ट सूचक लक्षण**—शिर में खुजली, व लाल, कालीं, पीली फुन्सियों का होना, भूख बढ़ जाना, नाक के वांस का टेढ़ा होना, ज्ञानशक्ति की वृद्धि, अपनी मृत्यु का समय व लक्षणों का अनुभव होना आदि। **क्षय का वर्गीकरण**—१. व्यवायशोष, २. शोकशोष, ३. जराशोष, ४. व्यायामशोष, ५. अध्मशोष, ६. व्रणशोष तथा उरःक्षतशोष ये ७. वर्ग ऋषियों ने माने हैं। **क्षय रोग का जीवनकाल**—रोगी, पुष्टेन्द्रिय, उचित चिकित्सा होने पर १००० दिन अर्थात् २ वर्ष ९ मास १० दिन वृद्धहारीत के मत से यह अवधि कही है। **उपचार**—जो रोग विविध दवाओं से भी ठीक नहीं होते वे कर्मज-व्याधि ही हैं। पूर्वजन्म कृत पापों का प्रायश्चित बिना भोगे नहीं जाते। जाते भी हैं तो तप स्वाध्याय यज्ञादि से पापों का क्षय होते ही जीवन लाभ होता है।

अथर्ववेद में निर्दिष्ट अहोलिङ्गगण, स्वस्त्ययन गण, अभयगण, अम्वादिगण, वृहच्छान्तिगण, पिप्पलादिगण, मातृगण,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आयुष्यगण—तथा यक्ष्मनाशनगणसूक्त (को १ सू० १२) (३ । ७-३१) (६।२०) —८५-६१-१२७) (१२।२) (१६-३८) (२०।९६) (६।१०) [१७;२३] [६।८] और (२।३३] सूक्त तथा ऋग्वेद के मण्डल १० अष्टक १२ सूक्त १६१ तथा कों १० अ० १२ सू० १६३ तथा कों मं० १० अ० ८ सू० ९७ एवं मन्त्रमहोदधि में निर्दिष्ट सर्वरोगनाशकधर्मराजमंत्र जोसिद्धमंत्र है, काविधिवत जप होमादि ही है **"ऋषिवाद्र"** कुवेर ? ते मुखामिति ऋक् तरुणाम्रपर्णैरष्टोत्तरशतं सहस्त्रंवाऽयुतंपायसाक्त तिल तण्डुलसंयुक्तं जुहुयात् । माहेश्वर सन्निपातज्वराः क्षिप्रं नश्यन्ति, सद्यसुखीभवति । अष्टोत्तर सहस्रं तर्पणं कुर्यात् । अथवा त्रिमध्वाक्तं तिलहोमा युतं सहस्रं वगुडुचीसमिद्भिः त्रिमध्वाक्ताभिर्वा दूर्वाभिर्होमेनसर्व **ज्वरशक्तिर्भवति**पलत्रयंसुवर्णंदक्षिणा । मंत्र—ॐ कुवेर ? ते मुखंरौद्रं नन्दिन्नानन्दमावह । ज्वरंमृत्युभयंत्रोरंविषं नाशयमेज्वरम् ।। १०८ आम के ताजा पत्ते ला शुद्ध गोघृत में डुवोदें । रोगी के ही कमरे में आमः पलाश; देवदारु अश्वत्थः कीसमिधाओं में प्रतिदिन १०८ आहूतियां १०८ आम्रपत्रों से ही २१ दिन दें । विषमज्वर में १५ दिन साधारणज्वरादि आदी में १७ दिन तक हवन करें, रोगी बैठ न सके तो मुँह खुला रहे । **होम की अन्य सामिग्री** मण्डूकपर्णी, भैंसागुग्गुल, इन्द्रायण की जड़, असगन्ध-विधारा, शालपर्णी, मकोय अड़ूसा दोनों देशी गुलाव के पुष्प, जटामासी, शतावर, तगर, रास्ना, वंशलोचन, जायफल, क्षीरकाकोली, पाण्डरी, गोरवरू, पिश्ता, वादामगिरि, मुनक्का, लौंग, हरडें बड़ी, मुलैठी, आंवला, अविप्रपाल, जीवन्ती, पुनर्नवा. नगेन्द्र वामडी, (निर्गन्ध वांवरी) चीड़ व चन्दन (श्वेत) के बुरादे, अपामार्ग, खूवकला, येसबसम, ४ भाग गिलोय, १।४ भाग कुष्ठ, केशर शहद देशी, कपूर, दसभाग खांड, पीपल के पत्ते फल, लकड़ी, जड़ दाढ़ी) गोघृत समिधि-ढाक, आम व शुष्कवांसा में जो उपलब्ध हो लें ।। उपर्युक्त मन्त्र प्रथम २ कोटि में है, असाध्यावस्था में—मन्त्र

ॐ चिपाद् भस्मप्रहरणः त्रिशिराक्त लोचनः । स मे प्रियः सुखं दघात् सर्वामयपतिर्ज्वरः ।।
ज्वर राजाय विद्महे त्रिशिरस्काय धीमहि । तन्नस्त्रिपात् प्रचोदयात् ।।

नावायणज्वर महेश्वरज्वर पौराणिकों के पाठ भी होते रहें । इसप्रकार जन्मजन्मान्तर कृत पाप, पाप,शाप, अभिचारादि से मुक्त हो रोगी निश्चय जीवन प्राप्त करता है लोक परलोक की भवव्याधियों से निश्चय मुक्त होता है । यह पूर्ण अनुभूत है । रोगी का अनियार्य कर्त्तव्य है कि समस्त औषधियों का परित्याग कर दे जल व दूध गौ या बकरी जो भी सम्भव हो । उसमें स्वर्ण डालकर गर्म करें, स्वर्ण निकालकर रोगी को पिलायें । गंगाजल, पीलीशीशी में भरकर सूर्य की किरणों में रक्खा रहने दें, पीलो ऊन से ढॉक दें डाट खोल लें । सायँ उठाकर डाट लगा दें । उसी जल को स्वर्णतापी जल में मिलाकर पिये । उटिनी का दूध, ऊटों के व बकरी भेड़ों की गन्ध लाभप्रद है । **विशेष अनुभूत—मरे सर्पो को उपजाऊ भूमि में** १।१ गज के फासले पर गाडें उसी स्थान पर ईख वो दें, उन भुण्डों को सावधानी से सेवा करें । प्रातः साय १।१ तोला शितोपलादि चूर्ण लें ऊपर गन्ना चूसें । **गण्डमाला, कुष्ठ, राजयक्ष्मा ही में इन्हें चूसें ।** गण्डमाला (कैन्सर) का नाम है । प्लूरसी (आन्त्रिक यक्ष्म] होती है ।

अथ गर्भस्थापन औषधियाँ--यद्यपिग्रन्थ में विविध प्रमाणितधर्मग्रन्थो, ऋषियों द्वारा निर्दिष्टगर्भ स्थापर तथा पुसवन अर्थात् पुरुष सन्तान ही हो, ऐसी कायापलटने वाली अनेक विधियाँ, औषधियाँ आ चुकी है । तथापि अथर्ववेद के कौशिक सूत्र तथा भगवान आत्रेय द्वारा निर्दिष्ट चरक कें शरीरस्थान में वर्णित औषधियों का उल्लेख यहां है ।। **गर्भस्थापन औषधिगण**--ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या (शतावर) सहस्त्रवीर्या (श्वेतदूर्वा) अमौघा (लक्ष्मणा) अव्यथा (हरड़) शिवा (हरिद्रा) अरिष्ठा (नागबला) वाष्ठपुष्पी (महाबला) विश्वक्सेन कान्ता (वाराहीकन्द) ये दस गर्भस्थापन औषधि विशेष हैं । इन्हें शिरपर, दाहिने हाथ में धारण करे । इन्हीं से सिद्ध दूध व घी का सेवन करे । इन्हीं से सिद्ध जल प्रत्येक पुस्र नक्षत्र में जब तक गर्भन रहे, पिये इन्हीं को शरीर पर मले, स्पर्श करे, सूघे । इनको ऋग्वेद तथा अथर्व के औषधि सूक्तों से अभिमन्त्रित करालें तव शीघ्र उत्तम प्रभाव होता है ऐसा अनुभव किया गया है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसीप्रकार **जीवनीयगण** के ये औषफियाँ भी हैं। जीवक, ऋषभक-मेदा-महामेदा-काकोली-क्षीरकाकोली मुग्दपर्णी मापपर्णी-जीवन्ती-मुहलटी को भी उपरोक्त विधि से सेवन करने को लिखा है। एक श्री ठाकुर खजानसिंह जिला विद्यालय निरीक्षक पंजाब ग्राम पोष्ट खेवड़ा तहसील सोनीपत जिला रोहतक वर्तमान हरियाना प्रदेश, मोरपंख के बीच विविध रंग के चन्दोवे (गोलाकार) भाग को पुराने गुड़ के साथ ऋतुस्नान से ५ दिन बाद जब तक गर्भ न रहे देते हैं, यह गर्भप्रद सिद्ध हुआ है। ये वीर्योत्पादक-बलकारक चरक के सूत्र स्थान अध्याय ४ में निर्दिष्ट है। **वृहणीय-गण** १- क्षीरणी (दुग्धिनी-शिखनी-सारिवा (निघण्टु) (विदातीकन्द (**चक्रपाणि**) अथवा खिरनी (धन्वन्तरिनिघन्टु)। २- राजक्षवक (काली सरसों (**राजबिघन्टु**)। ३- बला (खरैंटी)। ४- काकोली ५- क्षीरकाकोली ६- वात्स्यायनी (श्वेतबला) ७- भद्रौदनी (पीतबला) ८- भारद्वाजी (वनकपास) ९- पयस्या (विदारीकन्द) १०- ऋष्यगन्धा (विधारा) ये १०वृहणीयगण अर्थात मास आदि बढ़ाने वाली लिखी हैं। परन्तु वृद्ध वाग्भट्टने भद्रौदनी से ईख ऋष्यगन्धा से असगन्ध को माना है।

वल्य-बलवर्द्धक—१- ऐन्द्री (इन्द्रायण) चक्र ने कहा है। २- ऋषभी (कौंच) ३- अतिरसा (शतावर) चक्र। अन्यमत से (मुलहटी) ४- ऋष्यप्रोक्ता (शतावरी) आयुर्वेददीपिका (माषपर्णी) ५- पयस्या (विदारीकन्द या क्षीर काकोली) ६- अश्वगन्धा (असगन्ध) ७- स्थिरा (शालपर्णी)। ८- रोहिणी (जटामाँसी) (कटुकी) अन्यमत से ९ बला १०- अतिबला। ये १० बलकारक मानी हैं।

शुक्र जनन (नपुंसकता दूर करने वाली)–१- जीवक, २ ऋषभक, ३ काकोली, ४ क्षीरकाकोली, ५ मुग्दपर्णी, ६ माष पर्णी, ७ मेदा, ८ वृद्धरुहा (शतावरी) ९ जटिला (जटामाँसी) १ कुलिङ्ग (उच्चटाभेद) वृद्धवाग्भट्ट ने वृद्धरुहा की जगह वृक्षरुहा लिखा है साराँश (वन्दाक) को माना है।

शुक्रशोधकगण—१ कूठ, २ एलबालुक, ३ कूटफल, ४ समुद्रफेन, ५ कदम्बनिर्यास, (कदम्ब का गोंद) ६ ईक्षु (ईख), ७ काण्डेक्षु (काश), ८ ईक्षुरक (कोकिलाक्ष) तालमखाना, ९ वसुक (वकपुष्प अथवा राजार्क), १० उशीर (खस)। **शोणितस्थापनगण**-–रक्तस्राव को रोक कर गाढ़ापन लाने वाली औषधियें। १ मधु; २ मुलहटी ३ रुधिर (केसर) ४ मोचरस, ५ मृत्पाल (मिट्टी का ठीकरा), ६ लोध, ७ गेरू, ८ प्रियंगु, ९ शर्करा, १० लाजा (लाजवन्ती), नागड़ी असगन्ध; विधारा, सेलखरी। **शूलशमनगण**-–१ पिप्पली, २ पिप्पलीमूल, ३ चव्य, ४ चित्रक, ५ अदरक (सोंठ), ६ कालीमिर्च ७, अजमोदा, ८ अजगन्ध (अजमोदाभेद, वनयमानी), ९ अजाजी (जीरा), १० गण्डीर (कालाउष्के) ये शूल को शान्त करने वाली १० औषधियाँ हैं।

पुंसवनीय औषधियाँ–-गौशाला में उत्पन्न पीपल जिसमें जटा हो, चोड़े बड़े पत्ते हों (भिन्न लक्षण स्त्रीवाची) उपरोक्त पुलिंग, और ऐसे ही वटवृक्ष की पूर्व और उत्तर की दिशा की दो शाखाओं के गन्ध, वर्ण, रस से पूर्ण और जो उसी समय तोड़े जावें ऐसे शुङ्ग २ उढ़द के दाने; अथवा श्वेत सरसों के २ दाने. पीसें, सेर दही में डालकर पुष्य नक्षत्र में पिये। इसीप्रकार १ जीवक, २ ऋषभक, ३ अपामार्ग, ४ सहचर (झिण्डी) इनका कल्क एकसाथ करके जल या अलग २ करके या दूध में संस्कृत कर पिये। अर्थात इनके कल्क को दूध में मिलाकर जल जावे दूध ही शेष रहे उसे पुष्य नक्षत्र में पिये। अथवा १ अंजलि जल में कुण्ड्यकीटक (पंजाबी में घरेणा) और मत्स्यकीट (मत्स्यहा) को डालकर पुष्य नक्षत्र में पिये। और उसी पुष्य नक्षत्र में पकते हुए, चावलों के आटे के पिण्ड की; उष्मा को सुंघकर जल से मिश्रित चावलों के उसी आटे के रस को पिचु से लेकर स्वयं दायें नाककेछिद्रमें (नथुने में) ढाले। यह पुत्रोत्पत्तिकारक है। यदि लड़की की कामना हो तो बाये नथुने में डाले। और स्वर्णादि की प्रतिया में कन्या के लिये स्त्री प्रतिमा पुत्र के लिये पुरुषप्रतिमा बना जलया दूव में सिद्ध कर पिये। गर्म कर दही में बुझा कर पिये। ये

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुंसवन भेषज २ मास तक ही उपयुक्त हैं। मयूरपंख की भीतरी मींगसी लेकर पुराने गुड़ में चने की बराबर १० गोली बनालें, ठण्डे जल या गौ के धारोष्ण दूध से प्रातः १ ही गोली निगलें। मयूर के चदौंवे के बीच के चन्देक पीछे दी जा चुकी है। शिवलिंगी नैपाली १।१ लगातार गर्भधारणान्त १० दिन निगलें। मासिक धर्म समय से पीछे होता हो गर्भाशय में शोथ हो दर्द के साथ बूंद बूँद हो, श्वेतप्रदर हो, तो पल्साटिला नं० २०० की गोली हर चौथे दिन सात बार निगलें १ घण्टे तक उस पर कुछ न खाये। तीखी चर्परी चीजें भी न खायें। यदि समय से पूर्व होता हो, तो सीपिया ३० की गोली १ मास तक ८-८ लें बाद में १ मास कौरवोवेज **C. B.** ३० की ८-८ गोलीयाँ, दिन में चार बार १ मास लें, फिर १ मास बाद **C. B.** २०० की ५ खुराक हर ४ दिन बाद लें। फिर भोजनान्त अशोकारिष्ट लें। ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। **नपुंसकता निवारण वेदोक्तनाम तथा भाषाः**—(१) वृष (२)ऋषभ (३) गुग्गुल (४) औक्ष्यम् आयुर्वेदोक्त (१) जीवक (२) ऋषभक (३) स्वर्णगुग्गुल (४) गो दुग्ध, गोघृत, ज्येष्ठी मधु ,स्वर्णतापी जल। कौ० सू० ३४।१४ **हिन्दी भाषा में:**—(१) कपित्थकमूल (कहत की जड़) (२) श्वेतार्क (३) कृष्ण मृग की नाभि का चर्म (४) पीतगुग्गुल (५) गोदुग्ध गो घृत ज्येष्ठी छोटी मक्खी का मधु, स्वर्णतापी जल। **रोगनामः**—(१) "औक्षेणवार्षभेणवा" (ऋगवेद) (२)वृषायस्व। **वृहदारण्यकचतुर्थब्राह्मणः**—"औक्षेण बार्षभेणवा" अथर्व का ६ सूक्त १०१ "आवृष्यायस्वसिहि" ४ ॥ ४ ऋ १ से ८" यां त्वा गन्धर्वा अखनत ॥ २ ॥ ३६ ऋ ७ " इदं हिरण्यं गुल्गुलवंयमौक्षो कौशिकसूत्रकं० ५ सूत्र ४ तथा कण्डिका १० सूत्र १ शान्तिकल्प १५; वृहदारण्यक "चतुर्थब्राह्मण मंत्र ११ "यइच्छेत्पुत्रो मेपण्डितो" के अन्त भाग में औक्षेण वार्षभेण वा" [११] सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान प्रथम खण्ड अध्याय ३८ "ऋषभऔषधौच" चरक "**जीवनीयगण**" शुक्रजनन" जीवक, ऋषभक; "**शुक्रशोधनगण**" वकपुष्प अथवा राजार्क **भावप्रकाश**— "ऋषभो वृष शृंगवत्" ऋग्वेद मं० १ अ० ७ सू० १०० व ११ मं० १ "स यो वृषा वृषण्येभिः" शं० ४ उद्धरार्द्ध "ऋग्मिभिर्ऋग्मी" मं० १६ उत्तरार्द्ध" वृषणवन्त मं० १७ ॥ ऋज्राश्वः प्रष्टिभिः अथर्ववेद कां ६ स० ७१ ऋ० १ उत्तरार्द्ध "एवतेशेप सहसायमर्कोऽङ्गेनाँगसंसमकं कृणोतु" **निर्माणविधिः**—स्वर्ण को जल में डालकर गर्म करें जब १।८ भाग जल रहे उसे शीशी पीली में रखलै , मधुमक्खी छोटी का वासन्तिक मधु को मिलालै संशोधितस्वर्णगुग्गुल के ऊपर इसे प्रातः सायं पियें। तथा स्वर्णगुग्गुल को घी में मिला प्रजननेन्द्रिय से मलै, ऊपर से श्वेत अर्क का वक्कल बाँधें। विश्राम करै। अथवा काले मृग की नाभि का कच्चा चर्म ऊपर शिश्नेन्द्रिय से पूर्व क्रिया के उपरान्त बाँधे। अथवा एक तोला कहत की जड़ पीस कर दुग्धादि में मिला पिये। परन्तु उपरोक्त मंत्रों से अभिमन्त्रित करलेना अनिवार्य है। किसी प्रकार की नपुंसकता को दूर करके शुष्कवीर्य, शीघ्रपतन, मधुमेहादि, स्त्री संभोग में असमर्थ सभी बल-वीर्य ओज से पूर्ण स्वस्थ सुरतार्थिनी को गर्भधारण में पूर्ण समर्थ होजाते हैं। २ मास सेवन करें ३ मास पूर्णब्रह्मचर्य से रहे। इससे गैस (पेटादि) नष्ट हो जठराग्नि तीव्र होती है। स्मरण शक्ति बढ़ती है श्रवण नेत्रदृष्टि कण्ठस्वर समर्थ हो जाते हैं। रक्त माँसमेदा हड्डी तथा वाल नियमित रोगरहित वृद्धि को प्राप्त होते हैं। पलित (बालों का असामयकी श्वेतता या झड़ना) दूर होता है।

यवास (जवासा) –कफ, मेद, मद, भ्रान्ति, रक्तपित्त, कोढ़, खाँसी, तृषा विसर्प, वातरक्त, वमं, ज्वर, **गोरखमुण्डी**—सेंधानक, गलगंड, अपची, मूत्रकृच्छ्र, कृमि पित्त की पीड़ा, पाण्डुरोग, श्लीपद, अरुचि, अपस्मार प्लीहा, मेद और गुदा की वेदना उन्माद रोग, आमदोष, योनिशूल, ववासीर, खाँसी श्वास, कोढ़, विष विकार अतिसार वमन दूर करती है। **अपामार्ग**–चिरचिरा, लटजीरा, ओंगा, अपाङ्ग, अघाड़ा, अघेड़ो, चिचरा, दुच्चीणि, क्रे (क्षत्रप्री):— (लाल, श्वेत) लाल के फूल पीले, फल लाल-लाल, वाल पर लगे उन पर काँटे लगे होते हैं। **गुण** –वमन, कफ, मेद रोग, वात, हृदयरोग, आध्मान, बवासीर, खुजली, शूल, उदररोग अपची, आम, रुधिर विकार, मलावरोधक, क्लेदक, स्रंसन, वमनकारक, रक्तातिसार, दाद, खुजली मलावष्टम्भक, विष्टम्भकारक, व्रण, विष, खाँसी, सिध्म, दादनाशक होता है। इसके वीज-रस और पाक में दुर्जर है इसका नास (धुवाँ को सूंघना) शिर के कीड़ों को नाश करता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। बुद्धिवर्द्धक दाँतों के विकार दूर करने वाला गर्भस्थापक है। **हरिद्रा** (हल्दी) —वातनाशक, वर्ण को सुन्दर बनाने वाली, त्वचा के रोग, प्रमेह, रक्तदोष, सूजन, चोटदर्द, पाण्डुरोग, व्रण, रुधिर दोष, कोढ़, खुजली, कृमिविष, पीनस, अरुचि, पित्त, अपचीनाशक, स्त्रियों का भूषण है। **वनहरिद्रा**- (जगली हल्दी)—कोढ़, रक्तवात नाशक होती हैं। **दारुहल्दी**—व्रण, खुजली, विसर्प, त्वचा के दोष, विष, कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग नाशक होती है। **सोमराजी-कृष्णा**—सोमवल्ली, कुष्ठनाशिनी, **भाषा**—"वावची" वकुची (केदाने) **कुष्ठघ्नी, कण्डूघ्नी**—रक्तपित्तनाशनी-केशों के त्रिदोषनिवारिणी, विष्टम्भनाशिनी, हृदय को हितकारी-त्वचा को कोमल, सुन्दर बनाने वाली, श्वांस, कांस, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, शोथ, पाण्डुरोग, सभी कोढ़, ब्रण, खाज, कण्डू, सिध्मरोग तथा श्वेत कुष्ठ नाशक है। बीज या लकड़ी-मात्रा १ माशा भर। **चक्रमर्द**- (भाषा) चकवड **पमार**-हृदय को हितकारी, शीतल, कफ, श्वास, कुष्ठ, दद्रु, कृमिरोग नाशक, खाज विष, वात, गुल्म, खाँसी, दाह, शिरोरोग, (ववासीर) घाव, मेदोरोग, पामा, अरुचि, ज्वर, मल मूत्र का रुक जाना इसके बीज—मलरोधक, कफ, कोढ़, श्वाँस, खाँसी, दाह खुजली, विष, सूजन, गुल्म, वातरक्तनाशक होते हैं। पत्तों का शाक, बड़ा लाभप्रद होता है। बीज, मूल, छाल, पत्ते सभी काम में लें। **भल्लातक** (भिलावा)—मेधाजनक, अग्निदीपन, वात कफ, व्रण, उदररोग, कुष्ठ, अर्श, संग्रहणी, गुल्म, सूजन, ज्वर, कृमिरोग नाशक है। **भंग**—इसका धुँआ धनुर्वात में पिलाने से शनैः २ लाभ होता है। विशूचिका, अन्त्रवृद्धि में लाभप्रद है। दूध में पीसकर लेप करने से बवासीर को लाभप्रद होता है। भुनी हुई भंग शहद के साथ सेवन से अतिसार संग्रहणी, मन्दाग्नि दूर होती है। नवीन घाव पर पीस कर रखने से लाभ करती है, चोट के ऊपर लेपने से दर्द दूर होता है। मात्रा २ से ४ रत्ती बीज, पत्ते, जड़ काम में लिये जाते हैं।

भृङ्गराज (भांगरा)—नेत्रों को हित प्रद, केशों को काला करने वाला ज्वर, कोढ़, शिरोरोग नाशक, त्वचा, कोमल, सुन्दर बनाता है, दांतों को हितकर, मेधाजनन, सूजन, अन्त्रिवृद्धि, कामदेव, खांसी, श्वास, कृमि, आम, पाण्डुरोग, हृदयरोग, कण्डू, विषनाशक। **शण** (कड़वी शणपुष्पी) तथा (कषैली पुष्पी) पारे को बांधती है। मोहन, स्तम्भन कारक, गर्भ तथा आम रुधिर को गिराने वाली, अङ्ग टूटन को दूर करने वाली। फूल, प्रदर, रुधिरविकार दूर करते हैं। बीज भी इन्ही कामों में गुणकारी है। **त्रायमाणा**—(त्रायमान) कषैली, शीतल, मधुर, दस्तावर, (कड़वी पित्त रोग, वमन, ज्वर गुल्म, कफ, शूल, भ्रम, रक्तरोग, क्षयरोग, ग्लानि, तृषा, हृदयरोग, रक्तपित्त, त्रिदोष, बवासीर नाशक हैं। इसके पत्ते गोजिया जैसे पृथ्वी पर फैले रहते हैं, बीच में दो दण्डी सी होती हैं उसके बीज (त्रायमान) कहलाते हैं। **शिवलिङ्गी**—सर्वार्थ सिद्धि प्रदायक, दिव्य वशीकरण, लोहस्तम्भक, पारद को बाँधने वाली, सिध्म नाशक होती है। **पृश्निपर्णी, शालपर्णी**—त्रिदोषनाशक, अतिसार, खांसी, वातरक्त, ज्वर, उन्माद, व्रण, दाहनाशक, श्वांस, दूर करती है। व्यवहार में-जड़ लें।

सफेद दूब—वमन, विसर्प, तृषा, कफ, पित्त, दाह, आमातिसार, रक्तपित्त, खाँसी दूर करती है। **हरीदूब**-रक्तशोधक, रक्तपित्त, अतिसार, ज्वर, पित्त, वमन, कफ, रक्तरोग, विसर्प, दाद, त्वचा, के विकारों को दूर करती है। **गांडर**—रुधिरविकार कुष्ठ, पित्त, ज्वर विनाशक होती है, इसी की जड़ खस होती है। **विदारीकन्द**—स्तनों का दूध बढ़ाने वाली बल, वीर्य, वर्ण सुन्दर बनाने वाली, स्वर ठीक करने वाली, गर्भप्रदायक। **शितावरी**—रसायन, मेधाकारक जठराग्नि वर्द्धक, पुष्टिदायक, नेत्रों को हितकारी, गुल्मनाशक, अतिसार निवारक, शुक्रजनन, स्तनों में दूध वर्द्धक, बलकारक, शोथनाशक है, क्षय, रुधिरविकार, गुल्म, बवासीर, संग्रहणी नाशक, हृदय को लाभप्रद है। **असगन्ध**—जराव्याधि नाशक रसायन, श्वास, क्षय, क्षत, व्रण, खांसी, श्वेतकुष्ठ, विष, कृमि, सूजन, क्षतक्षय, खुजली दूर करती है। **पाठा**—टूटे हुए स्थान का जोड़ने वाला, अजीर्ण, त्रिदोष, हृदयरोग, रक्तकुष्ठ, खुजली, श्वास, कृमि, गुल्म, उदररोग, ब्रण, कफ, वात, पित्तनाशक है। **निसोत**-क्रिमि, कफ, उदररोग, कुष्ठ, कन्डू, व्रण, सग्रहणी, सूजन, पाण्डुरोग,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्लीहा, ज्वर, उदावर्त, हृदयरोग को हरने वाली है। सफेद निसोत मात्रा २ माशे से ६ माशे तक, काले निसोत–१ माशे तक लाल निसोत ३ माशे से ६ मासे तक।

नीली (नील, लील)—व्यंग, श्लेष्मा, उदररोग, मोह, हृदयरोग, भ्रम, वातरक्त, उदावर्त, आमवात, कफ, मद, खाँसी, विष, आम, वात, गुल्म, ज्वर, कोढ़, कृमि, उदर, प्लीहा नाशक है। **शरफोंका**––खांसी, रुधिरविकार, श्वांस, ज्वर, यकृत, कृमि, प्लीहां, गुल्म, व्रण, खाँसी, विष, ववासीर, हृदयरोग, झांई (व्यङ्ग) गलितकुष्ठ दूर करता है। **धमासा** (दुरालभा)—विसर्प, विषमज्वर, तृषा, वमन, प्रमेह, गुल्म, मोह, रुधिर, विकार, कफ, वातविकार, कोढ़ नाशक है। **नेत्र** कांसा, श्वेतामिर्च, पीपली, मिश्री कन्द— **वाराही कन्द**—वलकारक, आयु, शुक्र, जठराग्निवर्द्धक, प्रमेह, कफ, कोढ़, वातनाशक, स्वर ठीक करने वाला, कृमि मूत्रकृच्छ् नाशक है, "धरणीकन्द" कोढ़नाशक, खुजलीनाशक है। **मालाकन्द** –गण्डमाला नाशक, गुल्मनाशक है। "चाण्डाल कन्द"–रक्तपित्त नाशक, विषनाशक भूतघ्नी हैं। **तैल-कन्द**––वात, अपस्मार, विष, शोथनाशक, लोहे को पतला और पारे को बाँधने वाला, तत्काल सिद्ध करता है। **कालेन आलु**—महासिद्धिदायक, मुख की जड़ता को दूर करो वाले हैं। **कसेरू** (चिचोट)—नेत्र रोग नाशक, शुक्रज, स्तनों में दूध पैदा करने वाले हैं। **पुष्पाञ्जन**—कफ, हिचकी, दाह, विष, खाँसी, सर्व प्रकार के नेत्ररोग नाशक है। **नीलाथोथा**––श्वेतकुष्ठ नाशक, नेत्ररोग नाशक, विषविकार नाशक, कृमिनाशक, हृदय रोग, शूल, कुष्ठ, श्वित्रकोढ़ नाशक है।

इन्द्रवारुणि (महेन्द्रवारुणि) **हिन्दी नाम**—इन्द्रायण, फरफेंदुआ, उदररोग, कफ, कृमि, कुष्ठ, ज्वर, व्रण, श्वांस, खांसी, ग्रन्थि, मूढ़गर्भ, गलगण्ड विष, आनाह, वात, अपची, आम, दुष्टोदर, सर्वप्रकार के उदर रोग पाण्डुरोग नाशक है। कुष्ठरोग श्लीपदरोग। **कालाञ्जनि** (काली कपास) **कृष्णाञ्जनी**:––स्तनों में दूध बढ़ाने वाली, वात, पित्त, कफ, तृषा, दाह, भ्रम, भ्रान्ति, मूर्च्छा नाशक रक्त, वर्द्धक कान की पीड़ा, कर्णनाद, कान की राध, आम, कृमिनाशक, अपानावर्त्त नाशक, उदररोग नाशक है। "वनकपास" घाव, शस्त्र के घाव ठीक करती हैं। **मुञ्ज** (भद्र मुञ्ज) दाह, तृषा, बिसर्प, रुधिरविकार, मूत्ररोग, नेत्ररोग, त्रिदोष नाशक वीर्यवर्द्धक है। **काश**––मूत्रकृच्छ्, क्षय, मूत्राश्मरी रुधिरविकार, क्षतक्षय विनाशक है। **दाभ** (कुशा)––श्वास, तृषा, मूत्रकृच्छ्, वस्तिशूल, कामला, प्रदर, रक्तविकार, विसर्प, वमन, मूर्च्छा, पथरी, कामला विनाशक है। **हडसंहारी**—हड़जोड़ हड़संकरी–(वज्रवल्ली-वज्राङ्गी) इसकी वेल थूहर के समान और वेल में ४-६ अंगुल पर गाँठें होंती हैं, ये द्विधार-तिधार, चारधार, इनमें से एक हड़संहारी जाति की है। काण्ड बेल के भिन्न-भिन्न भागों में काण्ड होने से काण्डवल्ली कहलाती है।

वातकफनाशक, टूटी हड्डी जोड़ने वाली, कृमिघ्न, ववासीर दूर करती है, आँखों के रोग निवारण करती है, इसकी लकड़ी के टुकड़े की छाल का चूर्ण करे, छिलका रहित गीले उड़दों की दाल का चूर्ण ले १/२ भाग पीसें तिल के तेल में वड़ी वना सेवन करे वात नाश करती है। "चौधारा काण्डवेल" भूतोन्माद, तिमिर, अपस्मार नाशक होती है। त्रिधारी काण्डवेल—कृमि बवासीर नाशक होती है। "काण्डवल्ली" हड़संधारी कफ-गुल्म, लूता दुष्टव्रण, प्लीहा उदर, मन्दाग्नि, शूलवात, मलस्तम्भ नाशक होती है। **बाँझककोड़ा**—सर्वविष नाशक, पारे को बाँधने वाला होता है। **श्वेतपुनर्नवा**—खाँसी, ववासीर, घाव पाण्डुरोग, विष, उदरशूल, हृदग्ररोग, उर-क्षत नाशक है। इसकी जड़ पीसकर घी में मिला अंजन करे तो आँख का फूला नष्ट करता है। जड़ को मधु में मिला कर अंजन करे, रक्तस्राव नाशक है। जड़ को भांगरे के रस में घिस कर अंजन से नेत्रों की खुजली दूर हो, जड़ को केवल जल में घिस कर लगाने से तिमिर दूर हो। गाय के गोबर के रस में घिस कर लगाने से रतौंध दूर होता है।। **कटिशूल पिशाचोन्माद–अंकोट (ढेरा टेरा)** इसका रस समस्त विषविकार, कुत्ता, चूहा, विलाव, साँप के विष, दाह, क्षय, रक्तबिकार नाशक होता है - इसके वृक्ष के पत्ते एकअंगुल चौड़ें ५-६ अंगुल लम्बे, फूल सफेद, फल कच्चे नीले पकने पर लाल होते हैं। वृक्ष पर काँटे हैं। **वच**—गण्डमाला गुदभ्रंश-व्रणनाशक होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धतूरा-कुष्टदुष्टव्रण, बबासीर, विष नाशक है। **निर्गुण्डी**-गृध्रसीवात, विष, कुष्ठ, घाव, प्लीहा प्रतिश्याय, श्वाँस, खांसी, सन्धिवात, गुदव्रण, नेत्र ,केशों की व्याधिनाशक है। **शंखिनी**-कुष्ठ, विष; कृमि, सूजननाशिनी बाल कल्याण करनेवाली है। **हंसपादी** -(हंसराज) भ्रम, अपस्मार, विष, भूतोन्मादनाशक है। **मालतीलता**—मुख-रोग, व्रण, कृमिकुष्ठ नाशक। **पुष्प**-नेत्रों में लाभप्रद, कान की राध दूर करते हैं। **रीठा**-गर्भ गिरानेवाला, गर्भशान्ति करनेवाला, इसके जल के नास लेने से आंधाशीशी मस्तक के रोग ठीक होते हैं। **कठूभर**-(काकोडुम्बरिका)-व्रणश्वित्र कुष्ठ, पाण्डुरोग, कामला, बवासीर मुख और नासिका से रुधिर गिरने के रोग को दूर करती है।इसके पत्तों के छूने से खुजली हो जाती है। **शिरस**-कुष्ठ-कण्डू, बवासीर, विष, नाश। **शीषम** (श्यामा)-श्वित्र-कुष्ठ नाशक है **विजयसार**-रक्तमण्डलनाशक (नीलक) कोढ़, चित्रकुष्ठ, गुदा के रोग, कृमिनाशक, त्वचा और केशों को हितप्रद। **कत्था**-(खदिर-सार १८ प्रकार के कुष्ठनाशक। **रोहेडा**—यकृत, प्लीहा। **तिनिष**—रुधिरविकार, कुष्ठ, श्वित्रकु-ष्ठ, दाद, पाण्डु, व्रण कृमि। **अन्धपुष्पी**—(ओंध) नेत्ररोग, मूढ़ागर्भनाशन (लाणा-संजीवनी,) रसायन क्षयनाशक, मर्य्यादा (मर्यादवेल, युग्मपत्र, छगलकुरी) (गर्भ को अपकर्षण करती है। एकवीर, पक्षावात, पृष्ठ, कटिशूल नाशक। **चोरक**—कोढ़ खुजली, राक्षस, अलक्ष्मी, विष, व्रण। **कुष्ठ**-(पारिभद्रक, हारिभद्रक, किञ्जल्क,)। **शुक्रजनक**-रसायन, त्रिदोष, कुष्ठ विसर्प, कण्डू, दद्रु, लेप से वातव्याधि, वृक्ष की सुगन्धित जड़ है (सन्धु नदी तीर) मात्रा ६ रत्ती।

क्षयरोगनिवारणार्थ औषधियां--क्षय रोगनिवारणार्थ ऋग्वेद, अथर्ववेद के सूक्तों का पाठ, होम तथा अथर्वाङ्गिरस: महाशान्ति विधियाँ, तान्त्रिक मन्त्रों से होम तथा होमकी सामिग्री पुत्रेष्टि विधान में दिये गये हैं। शान्ति जल, चातनगण, अभयगण, अम्बादिगण, वर्चसगण, स्वस्त्ययनगण, अहोलिङ्गण दिये जा चुके जा हैं। कुछ औष-धियां भी जो परीक्षित बतलाई दी जाती हैं।

सितपूर्णेन्दु--दालचीनी १ तोला, छोटी इलाइची के बीज २ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, वंशलोचन ८ तोला, मिश्री १६ तोला, सत्वगिलोय ५ तोला वासासत्व २॥ तोला, शृङ्गभस्म २॥ तोला, यशदभस्म २ तोला, मुक्ता-शुक्तिभस्म २ तोला, उत्तम रससिन्दूर १ तोला, मिश्री पर्यन्त काष्ठादि को कूट कपड़ छन करे, उसी में सभी भस्में डाले खरल करके रख लें।

मात्रा-- १ माशा से ३ माशा तक, अनूपान—छोटी मक्खी का शहद, मक्खन या शर्बत वनपसा, संजीवन रसायन। साथ ही अपामार्गकी दांतुन तथा सोना,चाँदी,जल तथा अपामार्ग दूधमें डाले गर्म करे १-४ भाग जल जाये,उस जलको दूध गौ या बकरी का नित्य सेवन करै, उसी जल में पीली बोतल में गंगाजल भरैं मुँह खोलकर प्रातः से सायं तक धूप में रख दें, पीली ऊन से मुँह ढांक दें। सायं कार्क लगा दें। उस गंगाजल में से उपरोक्त जल में मिलाकर यही पीने में लें। यह सभी औषधियों में लें।

सितोपलादि अवलेह—सितोपलादि चूर्ण ५ तोला, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, शृङ्गभस्म, सत्वगिलीय लौंग प्रत्येक १-१ तोला, शहद १० तोला, उपरोक्त वस्तुयें खरल कर शहद में मिलायें,। मात्रा १-१ माशा प्रातः सायं। अनूपान बकरी का दूध या अडूसे का क्वाथ। तथा

सितोपलादि चूर्ण--दालचीनी १ तोला, छोटी इलायची के बीज २ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, वंश-लोचन ८ तोला, मिश्री १५ तोला, मात्रा केवल चूर्ण—१ से तीन माशा, अनूपान, विषम मात्रा में **शहद व गोघृत**, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, चोवचीनी,तेजपत्र,नाग केशर-कमलगट्टा की मीग,सब १-१ तोला, मिश्री २ सेर। मुनक्का १ सेर को पानी में भिगोकर बीज निकाल कर पीसे, उपरोक्त काष्ठादि का चूर्ण बनालें,पिसे मुनक्कों का कल्क बनालें,इस कल्क को शुद्ध गुलाव जल, या चन्दनार्क में २ सेर मिश्री डालकर, २ तार की चासनी बनालें, उसी में सबको मिलाकर, ठन्डाकर शीशी में रखलें। मात्रा १ से २ तोला, प्रातः सायं, रात्रि, दूध के साथ सेवन करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि खाँसी अधिक और खुश्क हो तो—१ पाव सफेद मिर्च ४ सेर पानी में आग्नेकण्डों की मध्यम आँच से मिट्टी के पात्र में औटाये। १-४ भाग रहने पर २ सेर चीनी डालकर कढ़ाई में इलायची दाने से बनालें। दिन में १-१ कर चूसते रहना चाहिये।

हिमांशु--सोनागेरु, सत्वगिलोय, वंशलोचन, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, रौप्यभस्म, स्वर्ण वङ्ग, स्वर्णसिन्दूर-१-१ तोला लें, और गुलाबजल, तथा आँवले के स्वरस में ३-३ भावनायें दें, सुखाकर रख लें। मात्रा २ से ४ रत्ती अनुपान—शहद, मक्खन, भलाई, आँवले का मुरब्बा में से एक के साथ सेवन करें

यक्षमा निवारणार्थ भेषज संजीवनार्क—गिलोय, अड़ूसा का पंचाङ्ग १-१ सेर, असगन्ध शतावर वला, गंगेरन, मुलहठी, मुनक्का, काकडासिंगी छोटी पीपल, उन्नाव, खूब कला, खस, कासनी के पत्ते, प्रत्येक २०-२० तोला, तालीसपत्र, तुलसीपत्र, तेजपत्र, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, धनियाँ, सौंफ, नागकेशर, कुलफा के बीज, हरड़, वहेड़ा आँवला, कमल के फूल, गुलाव देशी के फूल, वनप्सा गाजवां, १०-१० तोला, दालचीनीं, छोटी इलायची ५-५ तोला, सफेद कद्दू ५ सेर, बकरी या गौ दुग्ध १५ सेर, जल १० सेर, लौकी को, २४ घंटे दूध में भिगोयें, १० सेर, पानी मिलालें अन्य सबका चूर्ण डालकर भवके से २० बोतल अर्क निकाल लें, मात्रा २॥ तोला से ५ तोला, दिन में ३ बार लें सुदर्शनार्क समभाग मिलाकर लें तो शीघ्र लाभप्रद होगा। यदि अत्यन्त दुर्बल हो तो स्वर्ण भस्म, अभ्रकभस्म, स्वार्ण वसंत मालती, लक्ष्मी विलासरस, सुवर्णभूपति, राजमृगांक, मुक्तापिष्टी, क्षयकेसरी, शिलाजित्वादि लोह, स्वर्णपर्पटी, बंगभस्म शृङ्गभस्म, मुक्ताभस्म, लौहभस्म, यशदभस्म, च्यवनप्राश, द्राक्षासव का सहयोग लें। लेप लाक्षादि, तैल, चन्दनादितैल, महालक्ष्मीविलासतैल, की मालिश भी नित्य करें।

पथ्यापथ्य—गेहूँ, मूँग, चना, साठी चावल, बकरी का दूध, घी, मक्खन, सेव, सन्तरा, मौसमी, अनार आम, केला, आँवले, अंगूर, लौकी, तोरई, परवल, सोया मैंथी, ब्रह्मचर्य, प्रसन्नचित्तता सेवन करें। अपना अनुभूत विधान—जो रोग औषधि से न जावे, पूर्व कर्म फल है यातो भोग उसका समाप्त हो, तब जावेगा। अन्यथा वेदोक्त, पाप शाप, पाश, महापापादि की महाशान्ति होम से कर्मज व्याधियां निश्चय चली जाती है। वह व्ययसाध्य भी नहीं उसी से लोक-लोकान्तर में सुख, समृद्धि, ब्रह्वर्चस्व, तथा शान्ति एवं समस्त भव-व्याधियों से छूटकारा पाकर, जीव प्राण परमेश्वर को प्राप्त करने में अग्रसर होता है।

अथर्ववेद [चारणव्यूह शाखा] आयुर्वेदीय औषधि गुण परिगणन

वैश्वानर [अग्नि] चीता—अग्निदीपक, पाचक, संग्रहणी, कोढ़, सूजन, ववासीर, कृमि, खांसी, बात, कफ बातोदर, कण्डु, यकृत, आम, क्षय एवं उदररोग नाश करता है। **लालचीता**—देह को स्थूल करने वाला, पारे को बांधने वाला, लोहे में वेध करनेवाला शरीर को नूतन करने वाला है। कालाचीता—भक्षण से, केशकाले तथा दुधारू गाय के सूँघें दूध में डालने से दूध काला कर देता है। इनकी मूल की छाल ४ रत्ती, में ली जाती है। **अङ्ग अङ्ग-कोल जोङ्गक-भृङ्गज** अगर दाहागरु कृष्णागरु--त्वचा को ठीक करने वाली, कर्ण, नेत्र रोगनाशक, लेप से कोढ नाशक है। केश दोष नाशक, केश वर्द्धक, निरन्तर सुगन्धिप्रद। यह भारी होने से जल में डूब जाती है, दांतों में चिपट जाती है यह सभी तेलों में मिलाने से, विचित्र निरन्तर सुगन्धि प्रद है, इसका गोंद सभी वातरोगों में लेप किया जाता है **अजशृङ्गी** मैढ़ासिंगी, मेषशृङ्गी--नेत्रों में लाभप्रद, तिमिर नाशक, वलकारी, भेदक, दाह पित्त, कफ, खांसी, रक्त विकार, श्वास; व्रण, विष, कृमि, बबासीर, हृदय की धड़कन, हृदय का दर्द, सूजन कोढ़, वातजदर्द नाशक है। फल, हृदय रोग में वलप्रद। **अपामार्ग** औंगा, लटजीरा, चिरचिटा, आपाङ्ग, अधेड़ों, दुच्चीणि के रफ्चेफ्ट्री--दस्तावर, वमन, कफ, मदोरोग, बात, हृदयरोग, आध्मान, बबासीर, कण्डु, शूल, उदररोग, अपची, आम, रुधिर, विकार, मल रोधक है। इसका नास-सिर के कीट नष्ट करता है, वमन कारक, रक्त विकार नाशक, रक्तातिसारनाशक, दाद,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खुजली नाशक है। लाल अपामार्ग और श्वेत अपामार्ग --अभिमन्त्रित कर दिव्य गुण प्रद है। **भास्कर, विवश्वान्, अहर्मणि, विभाकर, दिवाकर** मन्दार, सप्ताश्व, अर्क, आक, श्वेतार्क अलर्क,. रक्तार्क—कृमि नाशक, तीक्ष्ण, ववासीर, कफनाशक. "फूल" कृमिदोष, शुल उदररोग, कुष्ठ, मूसे का विष, गुल्म, सूजन नाशक है। दूध कोढ़, गुल्म, उदररोग नाशक, दस्तावर है। जड़ की छाल सन्निपात लकवे में पसीना उत्पन्न करती है श्वास नाशक उपदंश नाशक है। शोथ, व्रण, कण्डूनाशक है। दोनों अर्कप्लीहा गुल्म, ववासीर, यकृत, मुख की लार गिरने को मूत्रकृच्छ्र नाशक है। राजार्क विसर्प रोग नाशक है। श्वेतार्क के तने में गणेश की मूर्ति बनती है लक्ष्मीप्रद है। नपुंसक..ा निवारक वीर्य वर्द्धक होती है। **जङ्गिड पार्थ, गाण्डीवी वीरद्रु, (कृष्णसारथी) इन्द्रद्रु** अर्जुन. कौहसार ढोल वडायो महिचेट्ट-तोरमत्ति---भग्न, व्रण, श्रम, तृष्ण, क्षत, क्षय, विष, रुधिर विकार मेद, प्रमेह, रक्तस्तम्भ, मूत्रकृच्छ्र, अस्थिभग्न, अस्थिसंहार, दाह, हृदयरोग, पाण्डु, विषवाधा, श्वास, पसीना, अन्दर के घाव भस्म रोगनाशक है। **अश्वत्थ, केशवालय, देवात्मा, (गुह्य पुष्प), सत्थ, धनुर्वृक्ष, शुचिद्रुम** पीपल, वोधिद्रु, पिंपल, पीपलो, अरली, पोव्लरलीण्ड-फिगट्री—वर्ण को उज्ज्वल बनाता है, योनिशोधक, योनिदोष, रुधिरदोष, दाह, पित्त, कफ, व्रणनाशक है। पक्वफल हृदयहितकारी, रक्तरोग, निवारक है। पत्ते-मधुमेह, शर्करारोगनाशक बुद्धिप्रद है। लाक्षा, अस्थिभग्न, अस्थिसंहार, रक्त और चोट के दर्द से दूर करती है, बलवीर्य बर्द्धक है। इसकी दाड़ी आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक विघ्न नाशक है माता, मोतीजला में पुंसवन में गर्भाधान में काम आती है। **अश्ववार, इषीका, काकेक्ष, नादेय,** कास-कांस कोशा, काण्डेक्षु, कांसडो, काजलु,—वल, वीर्यकर, दाह, मूत्रकृच्छ, क्षय, मूत्राश्मरी, (रुधिरविकार), रक्तपित्त, क्षतक्षय और पित्त रोग निवारक है। **असिक्नी, भुजङ्गाक्षी, सुरसा** नाकुली, नार्द, सर्पादिनी, नाकुलीकन्द, हरकाई चन्दा, नाईसापसन्द, [१ नाकुली २ गन्धनाकुली]–त्रिदोष, सर्वविष, सर्पविष, मकड़ी, विच्छू, मूषा, श्वान, शृगाल आदि विष नाशक कृमिरोग नाशक, व्रण दूर करनेवाली है। नाकुलीकन्द, सूरणकन्द जैसी होती है। इस पर वर्षा ऋतु में सर्पाकार, गदल लगता है। शिमला में वहत पाया जाता है। **अंजन यामुन, वाल्मीकि, वारिभव, कपोतसार, सौवीरांजन** अंजन, कालासुरमा, कालोसुरमो, कालशुर्म्मा--- नेत्रों में लाभप्रद, मलरोधक, वमन निवारक, क्षय, रक्त रोग निवारक होता है। जो घिसने में गेरू के तुल्य हो वह उत्तम है। "पुष्पांजन" हिक्कानाशक, दाहकारक, ज्वर बिष नाशक, खाँसी की पीड़ा हरने वाला, सर्व प्रकार के नेत्र रोगों को शमन करनेवाला। **ग्रहघ्न, भूतघ्न, बिम्बट** राज-धवक, श्वेत सर्षप, सरसों, लाल सरसों---कफवातनाशक, रक्तपित्त वर्द्धक, अग्निवर्द्धक, राक्षसादिवाधा कण्डू, कुष्ठ, कोढ, कृमि, गृहवाधा निवारक है। ववासीर, त्वचा के दोष सूजन, व्रण और विष नाशक है। इसके पत्तों का अन्य ३ शाकों के पत्तों के साथ या अकेले को भी सरसों के तेल में भुनी भुजिया को अभिमन्त्रित कर सेवन करने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं। **इन्द्रा, अरणा, वारुणी, माता, तारका** इन्द्रावारुणी, महेन्द्र वारुणी, इन्द्रायण. फरफेदुआ---रेचक, गुल्म, उदररोग, कफ, कृमि, कोढ़, ज्वर, उदररोग, उष्ण वीर्य, व्रण, श्वास, खाँसी, ग्रन्थि, प्रमेह, मूठगर्भ, कामला, प्लीहा, अनाह, अपची, आम, दुष्टोदर सभी उदररोग पाण्डुरोग, कण्ठरोग, श्लीपद रोग, निवारक रसायन है। ऐन्द्री-रसायन का प्रयोग शतायुप्रद है। **औदुम्बर, यमाङ्ग, कालस्कन्ध** गूलर, सदाफल, किग्ट्री उवरो उम्वर— गर्भ-सन्धानकारक, वर्ण उज्ज्वल करनेवाली, गर्भ हितकारी, योनि रोग निवारक वर्णनाशक है। कोमलफल, रुधिर विगाड़ने वाले, दोषजनक, जड़ होते हैं, पकेफल, कृमिकारक, पित्त, दाह, क्षुधा, तृष्णा, श्रम, मोह, प्रमेह, शोथ, और मूर्च्छा निवारक होते हैं। (काकोदुम्बरिका) कठूमर व्रण, श्वित्रकुष्ठ, पाण्डुरोग, ववासीर. कामला रोग निवारक है। यहदाह, रक्तातिसार, मुख, नासिका, से गिरने वाले रुधिर के गिरने को दूर करती है। इन दोनों ही की मेखें रक्षक कर्म में तन्त्र में अभिमन्त्रित कर दश दिशाओं में गाड़ने से सभी उत्पात नष्ट होकर शान्ति होती हैं। यह दुग्धवर्धक, व्रणभरने वाली, अस्थि सन्धानकारक, रोगनाशक, रक्तस्राव गर्भस्राव, वमन, प्रदररोग के निवारक 'तरुणीफल" मासवर्धक भी है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हड्डी टूटने, फटजाने, वन्दचोट १२ वर्षो की चोट सूजन, दर्द, या खून में गांठ पड़ जाने पर—

१—आमिया हल्दी, दारूहल्दी, चोटसजी, लालफिटकरी, तज, जमालगोटा, कुचला,सब १-१ तोला हाली मैदा २ तोला, रूमीमस्ताङ्गी २॥ तोला, और एलुआ २॥ तो० कूटकर कपड़छन कर लें, इनके आठ भाग कर लें। इनके १ भाग को ही गुड़ के सीरे में मिला गर्म कर एक रस कर लें, अफीम १ तो० का १।८ भाग पृथक २ भागों में सीरे में मिलायें। गर्म को कागज पर फैलायें, सुहाता सुहाता सेंक दें और उसी को बाँध दें। २४ घंटे में एक ही बार करें। इधर उधर भी यदि हड्डी हुई तो दवा शक्ति से ठीक करेगी, हड्डी जोड़ेगी, दर्द, गाँठ ठीक हो जायेंगे।

२—इन्हीं उपर्युक्त दवाओं को अलसी के १ किलो तेल में डालें। ढक दें, धीमी अग्नि से गर्म करें, जब दवायें जल जावें, उतार लें, शीशी में भर लें। गुम चोट पर तीन बार दिन में मालिश करें, ऐरण्ड या आक के पत्तों से ढककर रूई से सेकें। चोट के स्थान पर उसे ही बाँध दें। गुम चोट १ सप्ताह में ठीक हो जाती है।

ओलों के संहार से रक्षा—ग्रन्थ में "कृषी सम्बर्द्धन प्रकरण में" ओलों से रक्षा विधि मान्त्रि की दी है। उसी के साथ ग्राम या नगर की वाह्य अपनी सीमाओं में चारों ही और दुग्ध की धार दें। शूकरी के छोटे बच्चे(शूकर) को चारों ओर घुमा दें। इस तन्त्र से वहाँ ओले नहीं पड़ेंगे, यदि पड़ें भी, तो छोटे २ उनसे हानि नहीं होती, छोटे छोटे इधर उधर फट जाते हैं।

पद्मक :—(पद्माख) रक्तपित्तनिवारक, मोह, भ्रान्ति, कोढ़, विस्फोट, घाव, वमन, पिपास निवारक तथा लकड़ी घिसकर पीने से गर्भ न रहता हो या गिर जाता हो, तो गर्भ स्थिर हो जाता है।

गुग्गुल :—पाँच प्रकार का होता है–(१) महिषाक्ष (२) महानील (३) कुमुद (४) पद्म और (५) हिरण्य। इनमें (१) कोयला और अञ्जन के तुल्य, (२) अत्यन्त नीला, (३) कुमुद पुष्प के रङ्ग का, (४) माणिक्य रत्न तुल्य लाल और (५) हेम स्वर्ण तुल्य होता है। नं० १ व २ हाथियों के लिये लाभप्रद, नं० ५ हिरण्य मनुष्यों के लिये लाभ प्रद है। गुण–टूटी हड्डी जोड़ता है, रज, वीर्यवर्द्धक और उनके सभी दोष निवारक है सूक्ष्म, स्वर शुद्धकारक, अग्नि-वर्द्धक, मेदरोग, अपची, प्रमेह, मधुमेह, शर्करा, पथरी, वात व्याधि, क्लेद, कोढ, आम वात, पिण्डका ग्रन्थि रोग, सूजन, वबासीर, गण्डमाला (कैन्सर) कृमि रोग नाशक, त्रिदोषजन्य रोग निवारक होता है नवीन गुग्गुल ही उत्तम गुणप्रद होता है पुराना दुर्बलता लाता है। जो स्वर्ण तुल्य निर्मल, सुगन्धित, पकी अजवयान के स्वरूप का पीला हो वह नवीन समझे। पथ्य – खटाई, मिरचादि तीक्ष्ण सभी पदार्थ, कच्चे पदार्थ मैथुन, परिश्रम, कड़ी धूप में फिरना, मदिरा पान और क्रोध का त्यागना गूगल वे वृक्ष मारवाड़ में होते हैं, ये गर्मी में तप्त होकर, शीत ऋतु में रस बहने लगता है। **प्रथम** रस, स्वर्ण गुग्गुल दूसरा माहिष, तीसरा पद्म, चौथा भौरों के समान काला, पाँचवाँ कुमुद पुष्प तुल्य होता है। जो अग्नि में जल जावे, गर्मी में पिघल जावे, गर्म जल में गल जावे वही श्रेष्ठ समझे। शोधन विधि–गिलोय और त्रिफला के काढ़े में, पुनः दूध में पकावें। उसे घी का हाथ लगाकर कूटें पुनः ज्वार के बराबर गोली बनालें। गोली प्रातः सायं १।१ लें दूध, मधु, कन्द मिलाकर ऊपर से पियें। इसके फल को गूगलिया कहते हैं जो उदर पीड़ा विनाशक होता है।

गन्धराज गुग्गुल :—भूमि से उत्पन्न होने वाला भूतघ्न, मेधाजनक सदा सुगन्धिप्रद होता है।

चतुष्पाद-भेषज बिज्ञान—गौ आदि १-सींगवाले चतुष्पाद के सींगों में व्यथा हो तो तैल में नमक डाल कर दें। २-शृंगबेर, बला, मासरोहिणी, मक्षिका विष का क्वाथ बनाकर सेक दें सींग पर ढालें बांधें। समस्त कर्ण आदि के शूल में मज्जिष्ठ, हिंगु, सैंधा नमक से सिद्ध किया हुआ तेल दें। अथवा ४-दन्तमूल आदि शूल रोगों में विल्ववृक्ष की जड़ की छाल, अपामार्ग की जड़, धातकी 'धौ' पाटला, कुटकी को पीस कर छाल गर्म कर लेप करें। ५- दन्त शूल में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घी हींग,पकाकर दें ।परन्तु मुखरोग, जिह्वा रोगों में घी और हींग में नमक मिला कर दें । ६- गलग्रह (घुर्रका) हृदय शूल, बस्तिशूल, वातरोग, तथा क्षय रोगों में शृंगवेर, हल्दी, दारुहल्दी, तथा त्रिफला को मिला कर दें । अतिसारमें घी और त्रिफला मिलाकर पिलायें, या उपर्युक्त दोनों हल्दी, पाठ मिलाकर दै । ८- समस्त कोष्ठरोग, शाखारोग, कांश, वांस: में शृगवेर और भार्गी भारङ्गी दें ६-अंग की टूटन, सन्धिभंग के रोगों में प्रियंगु और लवण दे । वातरोग में तैल दें । पित्तरोग में मध कफ में मध सहित ताजा जल में दें । इसे वैद्य से परारर्श कर दें । १०-घाव या हड्डी की चोट आदि में, तैल, घी हरिताल, तथा लाक्षा दै । ११-पुष्टि, गो दुग्ध घृत की बहुलता के लिए-तिल उड़द, गेहूं, पशु का दूध, घी, तथा नमक को मथकर दें । १२-ग्रह दोष निवारण तथा वलतृद्धि पुष्टि हेतु-देवदारु, वच, जटामांसी, गुग्गुल, सरसों, दोनों राई, हिगोटा, हींग की धूनी दें, इसी की धूनी देकर गले में घण्टा बाधें । १३-दूध की वृद्धि हेतु अश्वगन्व, श्वेत तिल, रसायन, के तुल्य हैं । १४-गोमय का चौका देकर गोमय लक्ष्मी वासुदेव की प्रतिमा बना,पंञ्चमी को श्री सूक्त, पुरुषसूक्त का पाठ करें, पूजन करे । अन्य यक्ष्म-कुष्ठादि समस्त पशुव्याधि भेषज्य शौनकीय विधि सम्मत आगे उल्लिखित है । यह अग्निपुराणु पृ० अ० २९२ श्लोक २३ से ३७ में वर्णित शालिहोत्र विधि है ।

अथ वेद और व्याधि ज्ञान में ज्योतिष की अनिवार्यता

अथ पाणिनीय व्याकरण के भाष्यकार तथा योग-शास्त्र के पथ-प्रदर्शक देवर्षि पाताञ्जलि ने पाणिनीयमहाभाष्य में घोषणा की है—**"रक्षोहागम लघुसन्देहाः"** वेद और वैदिक ज्ञान की रक्षा प्रसार-प्रचारादि के लिये स्वाह्मणेननिष्कारणं **"षडङ्गोवेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"** षडङ्गों सहित वेद का अध्ययन मनन निनिध्यासन अनिवार्य कर्त्तव्य है । वेद के षडङ्ग-व्याकरण 'मुख' 'नेत्र' 'ज्योतिष' 'श्रोत्र' 'निरुक्त' 'पाद' छन्द शास्त्र आदि हैं । यहाँ ज्योतिष को वेद का नेत्र माना है, यह लौकिक, पारलौकिक, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष सभी को प्रत्यक्ष करने वाला है । वेदों में मूलभूत ज्योतिष का वर्णन है । यह बड़ा ही "चमत्कारी विज्ञान" है । ज्योतिर्विज्ञान की ऋग्वेद में ३६ कारिकायें यजुर्वेद में ४६ कारिकायें और अथर्ववेद में १४६ कारिकायें वर्णित हैं । अथर्ववेदीय चमत्कारपूर्ण ज्योतिर्विज्ञानका निम्नाङ्कित दिग्दर्शन किया है ।

वैदिक चमत्कारी ज्योतिर्विज्ञान

जन्म नक्षत्र--१ सम्पत्कर, २ विपत्कर, ३ क्षेमकर, ४ प्रत्वर, ५ साधक, ६ निधन, ७ मित्र, ८ परममित्र

कर्म नक्षत्र--१ सम्पत्कर, २ विपत्कर, ३ क्षेमकर, ४ प्रत्वर, ५ साधक, ६ निधन, ७ मित्र, ८ परममित्र

आधान नक्षत्र-१ सम्पत्कर, २ विपत्कर,३ क्षेमकर,४ प्रत्वर, ५ साधक, ६ निधन, ७ मित्र, ८ परममित्र

वेदों में राशियाँ बौधायन सूत्र में—"मीन मेषयोर्मेषवृषभयोर्वसन्तः" वर्णित है । कौटलीय "अर्थशास्त्र में" बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के ९७ अध्याय हैं, उसके उपसंहार क्रम की सूची में ग्रह, गुण, स्वरूप, राशिस्वरूप, विशेष लग्न, षोडशवर्ग राशि दृष्टि कथन, अरिष्टाध्याय, अरिष्ट-भङ्गादि में तथा आकाश में स्थित "भचक्र" के ३६० अंश अर्थात् १०८ भाग होते हैं । समस्त "भचक्र" १२ राशियों में विभक्त है । अतः ३० अंश अथवा ९ भाग की एक राशि होती है । यह ९ भाग अश्विनी आदि नक्षत्रों के ९ चरण होते हैं इन्हीं की जाति, रूप गुणादि वर्णित हैं । इसी में ग्रह उल्का विद्युत, भूकम्प, दिग्दाह आदि का उल्लेख है. कृष्णपक्ष में चन्द्रमा, वलहीन मानकर, अन्य ग्रहों के बल से, कार्योंका निर्देश है । महाभारत शाँतिपर्व, अध्याय १८३, अनुशासन पर्व अध्याय ६४; उद्योग पर्व. अध्याय १४३के अन्त का भाग, बराहमिहिर आचार्य के "पंचसिद्धान्तिका" नामक ग्रंथ में "पितामहसिद्धान्त" के अनुसार विषयों का ज्ञान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर लेना अनिवार्य है। कर्मज व्याधि में कौन व्याधि है; यह ज्ञान दृढ़ता से होने पर "अथर्ववेदशौनकीयशाखोक्त" शान्ति विधियाँ शाँति, फलप्रद होती हैं व्याधि क्या है; इनका ज्ञान इस प्रकार करें:-पाप; शाप; कृत्या, अभिचार, क्षेत्रीय व्याधि, नैऋतिदोष, उन्माद, वास्तुदोष; अद्भुतदोष, देवयजनदोष, देवहेडन (देवादितिरस्कारजन्य) अनज्ञात, ज्ञात अपराधजनित दोष ग्रह, नक्षत्रादि जनित व्याधियों में से क्या है? **अथर्ववेदीय शौनकीय शाखोक्त--"चमत्कारी" विशेष विज्ञान अथर्व बेद काण्ड १ सूक्त ४ "अम्बयोयन्ति"; सू० ५ "आपोहिष्ठा" सूक्त ६ "शंनोदेवी"**, इन तीनों ही सूक्तों से यह ज्ञान करे कि (१) अभीष्ट कर्म से लाभ होगा या नहीं? (२) युद्ध, विवाद, शास्त्रार्थ, द्यूत आदि में जय होगी या नहीं? (३) अनुष्ठित मन्त्र आदि कर्म से सिद्धि या अनुकूल फल होगा या नहीं? (४) रोगी ठीक होगा या नहीं? (५) नौकरी या व्यवसाय मिलेगा या नहीं? (६) नष्ट धन, चोरी गया पदार्थ; या भागा प्राणी प्राप्त होगा या नहीं? (७) परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे या नहीं? (८) वर-को वधू, कन्या को योग्य वर शीघ्र मिलेगा या नहीं? (९) पुत्र सुख प्राप्त होगा या नहीं? (१०) उत्तम वृष्टि होगी या नहीं?

आदि प्रश्नों के फल के ज्ञानार्थ—दूध, ईधन चावल समिधा; कुशा की मुष्ठी तथा पाठा को बिना गिना ही अभिमन्त्रित तीन सूक्तों से करें, और चावल, खीर, पकाकर फैलायें, और उन्हें क्रमश गिनें, यदि संख्या सम (२,४,६) आदि गिनकर बैठे तो स्वकार्य; सिद्धि, विषम हो तो असिद्धि। इसी प्रकार युद्ध वेदी के परीक्षण काल में समिधा, कुशा आदि को अभिमन्त्रित कर-पश्चात् गिनें—सम २; ४; ६ आदि हों तो जय, १ : २ ; ३ आदि हों तो पराजय समझें।

अथर्व कां. २. सू. १ "वेनस्तत्" से भी पृथक्—ज्ञान करें—१. पांच ग्रन्थियों से युक्त "बांस" की दण्डी; काम्पील वृक्ष की शाखा पृथक्-पृथक् या दोनों ही एक साथ अभिमन्त्रित करें, अपने अभीष्ट कार्य के चिन्तवन के साथ समतल भूमि में ऊपर की ओर खड़ी करें। यदि खड़ा हुआ वह दण्डादि अपनी निश्चित (जो पृथक् अपने संकल्प से निश्चय करे) दिशा की ओर गिरें तो कार्य सफल हो, विपरीत दिशा में गिरें तो असफल हो। २. इसी प्रकार वाण को अभिमन्त्रित कर धनुष पर चढ़ा, निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर फेंकें। यदि निर्दिष्ट लक्ष्य पर गिरे तो सिद्धि, अन्यत्रगिरे तो असिद्धि। ३. उत्पादक के पूर्णघट के जल को अभिमन्त्रित करें। उसमें से लोटा या कमण्डल में जल भरें; उसे अलग पात्र में पलट दें। पुनः उत्पादक के पूर्ण दूध को अभिमन्त्रित कर, उसी लोटा या कमण्डल में भरें, यह जल से न्यून या अधिक जैसा भी रहे, और पृच्छक ने न्यून या अधिक का जैसा पूर्व निश्चय किया हो—उसी अनुसार अर्थसिद्धि समझें। ४. विना पूर्व गिने दामों की मुट्ठी भरलें, अभिमन्त्रित करें। कार्य का चिन्तन कर गिनें, यदि सम २/४/६ आदि हों तो अभीष्ट सिद्धि, १:३:५ आदि विषम हों तो असिद्धि। ५. समिधायें अभिमन्त्रित कर अग्नि में छोड़ दें। यदि वे परिक्रमाक्रम से स्वतः ही जलें तो असिद्धि। ६. खेलने के पाश या गोठ बिना गिने अभिमन्त्रित कर फेंकें। अपनी (पृच्छक) की अभीष्ट संख्या के निश्चित स्थान में गिरें तो सिद्धि। ७. हाथ की दो (ही) अंगुलियों को अभिमन्त्रित करे, चिन्तनकर बोधशून्य बालक से स्पर्श करायें। यदि अपनी निश्चित अंगुलि का स्पर्श करे तो सिद्धि। ८. २१ बार शर्करा अभिमन्त्रित कर बिना गिने लें। कार्य का चिन्तन करें, दो भागों में बाँटें। अपने उद्देश्यानुसार एक भाग को गिनें। यदि सम हों तो कार्य सिद्धि, अर्थसिद्धि। इन दो भागों में से एक ही को निश्चय करें। ९. नष्टधन-चोरी गये धन, वस्तु, पशु, मानव आदि के ज्ञानार्थ जलपूर्णघट या हल या गोटें (पाशे) कोई भी या सभी नवीन वस्त्र से ढाँककर अभिमन्त्रित करें और बिना रजोधर्म (प्रारम्भ) की कन्या से कहें "उठाकर ले जाओ" वे जिस दिशा में लेकर चलें उधर ही नष्टधन, चोरी, अपहृतपशु, भागा व्यक्ति जो भी हो समझें। १०. विवाह से पूर्व क्वारी कन्या के सौभाग्यादि के लक्षण के लिये या पुत्र सुख के लिये या पुत्रके सुख के लिये या धन-धान्य समृद्धि या स्यास्थ्य के ज्ञानार्थ, उसी के पैरों की मिट्टी वामी की मिट्टी; चौरास्ता की मिट्टी और श्मशान की मिट्टी चारों को इसी से अभिमन्त्रिक करें। कन्या से कहें इनमें से "किसी एक को उठाओ।" यदि पैर या वामी में से किसी को छुये या उठाये तो कल्याण। चौरास्ता की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिट्टी स्पर्श करे तो मरण, श्मशान की स्पर्श करे, तो वैधव्य, मरणान्त कष्ट समझें। ११. कुमारी की अञ्जलि में जल-पूर्णतया भर दें—इसीसे अभिमन्त्रित करें; और उससे कहें "इसे जिस ओर चाहो फेंक दो" यदि पूर्व उत्तर को फेंके तो कल्याण। दक्षिण पश्चिम फेंके तो अकल्याण समझें। (कौशिक सूत्र ५।१)

युद्ध विज्ञान—१ : काण्ड ४ सूक्त ३० "त्वया मन्यो" सूक्त ३१ "यस्ते मन्यो" इन दोनों ही से सेनापति या राजा कोई एक अपनी और शत्रु सेना के बीच या शत्रु सेना का दूसरी ओर लक्ष्यकर, बीच में बैठे, और अपनी सेना को देखकर जपे। इन्हीं दोनों से भङ्गपाश; मुंजपाश; कच्चे मिट्टी के पात्र अभिमन्त्रित कर शत्रु सेना की ओर फेंके। इन्हीं दोनों से, जय पराजय के ज्ञान के लिये, शर (मुंजत्रर वा वाण की लकड़ी के तिनके) सेना के बीच, गाढ़कर अभिमन्त्रित करें और आङ्गिरस, (चाण्डाल) अग्नि से जलायें जिस सेना में धुआँ छा जावे वह हारेगी। २, युद्धयोग्य परीक्षा कर्म में "काण्ड ५ सूक्त २ ऋचा ६ नितद्धिषे" से जल-पात्र को अभिमन्त्रितकर, योद्धाओं में से दो, दो एक साथ राजा या सेनापति देखे। उस जल में जो दिखाई न दे उसे युद्ध में न भेजे। **का. ५ सू. ६ "ब्रह्मजज्ञानम्" से अभिमन्त्रित करें**—१. रोगी ठीक होगा या नहीं ? रोगी के शिर से पैर पर्यन्त ३ वार रस्सी नापकर अभिमन्त्रितकर अङ्गारों पर रख दें। यदि वे अङ्गारों पर रक्खी ऊपर को उठें तो रोगी जीवित रहेगा ऐसा समझें। कौशिक सूत्र २।६। २, संग्राम में जय होगी या नहीं ? अपने सेनापति या राजा के ३ व्यों, पृथक् लें-उसमें एक अपने तीन पृथक् दल की; दूसरी मध्य में मृत्यु की तीसरी रज्जु पर सेना की सङ्कल्पित कर अभिमन्त्रित करें और उन्हें पृथक्-पृथक् एक ही पास अङ्गारों पर रख दें। उन अङ्गारों पर रक्खी मृत्यु वाली रज्जु जिस पर आवे, उसकी पराजय। जो मृत्यु के ऊपर चली जाय उसकी विजय; जो सामने जाकर पड़े उसकी भी जय समझे। ३. इसी कर्म में इसी सूक्त से अभिमन्त्रिय कर एक रस्सी को अङ्गार पर रखदे तो पूर्ववत सैनिकों की जय, पराजय समझे। कौ० २।६ काण्ड १ सूक्त ५ के साथ बताये सभी कार्यों का ज्ञान करे। कौ० सू० ३।१ वहाँ कां० १ सू० ४-५-६ में कुछ कार्य ही उदाहरणार्थ दिये हैं इसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रश्नों पर इसी प्रकार–कां० २ सू० १ "वेनस्तत्" तथा कां० ५ सू० ६ "ब्रह्मजज्ञानम्" से करे।

ऐं	ह्रीं	क्लीं
चा	मुं	डा
यै	वि	च्चे

स्वानुभूत :—ताम्रदीप में यह यन्त्र घी-सिन्दूर से लिखकर उस पर अखण्ड ज्योति स्थापित करें, इन उपरोक्त सभी सूक्तों या किसी एक से अभिमन्त्रित करें, ज्योति की पूजा कर—प्रश्न करें तो दीप ज्योति में भी प्रश्नों के उत्तर अकारादि क्रम से आते हैं उन्हीं से पूरा वाक्य होने पर, उत्तर पूर्ण हो जाता है।

ज्योति में उनके स्वरूप, स्थानादि, अबोध वालक १४ वर्ष तक के और बिना रजोधर्म प्रारम्भ हुई कन्याओं को दृष्टिगोचर होते हैं। ये कृत्या, अभिचार, नैऋंति आदि समग्त कर्मज व्याधियों के ज्ञान की पुष्टि के सूचक हो जाते हैं।

कृत्या ज्ञान :—कृत्या को इस प्रकार समझें। (१) आङ्गिरस महर्षि प्रयुक्त कृत्या "आङ्गिरस कल्पाख्य सूत्र निर्माण"; आसुरीकृत्या, स्वयंकृता, ईर्ष्यालु द्वारा कृत, आक्रोश (कोसना) क्रूर दृष्टि, परिवित्ति, परिवेत्तृ, स्त्री, शूद्र, राजा, ब्राह्मण, कापालिक, अन्त्यज, शाकिनी, डाकिनी आदि द्वारा किये घातक प्रयोग—अथर्ववेद कां० १० सू० १ के अनुसार उपयुक्त कृत्या क्षेत्र में पशुओं में पुरुषों में, धनादि के विनाश के हेतु प्रयोग की जाती है। कुशाओं में, श्मशान में या क्षेत्र की सीमा में गाड़ी जाती हैं, गार्हपत्य अग्नि में की जाती है। अथर्व कां० ४ सू० शापरूप में, रस शौषणार्थ गर्भस्थ शिशु, मांस भक्षणार्थ, रक्त, मांस, पेय, खाद्य, वाद्यसाधनों में, मिट्टी के पात्र में, नील, लोहित रूप में; दुःस्वप्न, दौर्जीवन, दुर्वाचारूप, क्षुधामार, तृष्णामार, वहुभुक्रूप में; मिश्रितधान्य में; एकशफ, द्विशफ पशुओं में; शाला में संभा में; जुआ के स्थान में; सेना में; आयुधों में दुन्दुभि आदि में; कूप में; अग्नि में; चौरास्ता, यज्ञिय वृक्ष या जल के निकट, वस्त्र काट कर, बाल काट कर, चुरा कर, ऋतु धर्म में ऋतु वस्त्र डाल कर चुरा कर, आदि २ विविध रूप से प्रयुक्त की गई "कृत्यागण" की भाँति समझें। वास्तु दोष भी जो "वास्तु शान्ति" में निर्दिष्ट हैं कल्याण में बाधक होते हैं जिन पर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इनमें से, कोई बाधा होती है, उस पर औषधि, काम नहीं करती, रस नहीं बनता; नपुंसकता, वन्ध्यात्वदोष, गर्भस्त्राव, रक्तस्त्राव, रजोधर्म की अनियमितता, योनिदोष, पीड़ा, वायु (गैस) हृदय व्यथा, शिरोरोग कटि (कमर) रोग आलस्यादि का होना, पागल की भाँति होजाना आदि लक्षण हैं। घर बार, छोड़ना, भयभीत रहना, विवेक शून्य होना, क्रोध का होना, डराना आदि लक्षण पाये जाते हैं।

क्षेत्रिय रोग—आनुवंशिक, व्याधियाँ भी ऐसी ही होती हैं।

ग्रह ग्रस्त शाप ग्रस्त दोष विज्ञान—जन्म लग्न या प्रश्न लग्न से या चन्द्रमा से उपर्युक्त पद्धति के भावगत विषय 'वोधक चक्र' तथा इसी के 'ग्रहों के स्वरूप का विचार 'शीर्षक प्रकरणों को दृष्टि में रखते हुए' ८ वें या १२ वें भौम हो तो कृत्या दोष होता है। इसी में नाक, कान, नेत्र तथा शरीर के तिलादि चिह्नों को भी समझें और फलादेश कहें। उपर्युक्त प्रश्न लग्न से ६ वें केतु, राहु में से कोई हों और मंगल ८ वें हों तो ब्रह्म राक्षस आदि का दोष समझें। ८ वें शनि या भौम हों तो पीपल के वृक्ष का काटना या क्षति पहुँचाना समझें, वहाँ ब्राह्मण या ऋषि की समाधि या पूज्य देवता का स्थान समझें उससे वरुण शाप होता है। यदि जल राशि ८ वें या ६ वें पाप ग्रह के साथ हो तो प्रश्नकर्त्ता को सर्प (वरुण पाश) तथा जल स्वप्नादि में दिखाई देंगे। शनि हो तो बड़े दाँतों की चिपके गालों की बड़ी लाल डरावनी आँखें, सूअर जैसे खड़े विखरे बाल काली मूर्ति लम्बा चेहरा दिखाई पड़ेगा। यदि कापालिक कृत्या हुई तो नीला स्वरूप होगा (या) लोहित वर्ण। केतु हो तो शूद्र अन्त्यज-चाण्डाल कृत कृत्या होती है। बुध हो तो आसुरी कृत्या, यदि १२ वें गुरु हों तो दैवी, मंत्र कृत-कृत्या समझें। प्रश्न लग्न या चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में जैसी राशि और ग्रह हों वैसा ही ग्रह का स्वरूप समझें। उसके वाम (तृतीय को) दायें (५ वें ६ वें स्थान के सन्मुख १० वें स्थान को समझें। इनमें शुष्क राशि हो शुष्क स्थान जल राशि हो तो जल स्थान उसमें राहु, केतु हों तो गन्दा जल, सौम्य हों तो उत्तम जल स्थान कहें। राहु से शमी या काँटेदार वृक्ष, भौम से अश्वत्थ बुध से लतादि शनि से नीमादि कटु वृक्ष, केतु से बबूलादि काँटेदार पेड़ समझें। भौम से लाल ईंट आदि चिह्न, शनि से, कालागोमय, कूड़ा कोयला, पत्थर, राहु से पुल आदि समझें। यह कृत्या प्रयोग स्थान है। विद्वान, भविष्यवक्ता, अपने स्थान को त्याग कर बिना सम्मान पूर्वक आमन्त्रित किये, प्रश्नकर्त्ता के यहाँ न पधारें, अपनी पर्णकुटी पर, स्वआसन से ही निष्काम भविष्य वाणी करें। प्रश्नकर्त्ता निष्ठाभाव तथा पत्र-पुष्पादि उपायनपूर्वक प्रश्न करें या आमन्त्रित करें तभी दोनों सफल होंगे।

गर्भादिदोष के ज्ञान के लिये—उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त "भागवत विषय बोध चक्र" के लग्न से द्वादश भाव के अङ्गों में जैसी राशि व ग्रह हों वैसे ही उन २ स्थानें में चिन्ह होंगे। राशि से दशा तथा ग्रहों से वर्ण, अवस्था वेश-भूषा समझें। लग्न, प्रश्न, और चन्द्रमा से ५ वें या ८ वें शत्रु, निर्वलीय या पापक्रूर ग्रह हो तो पुत्र रहित मृतवत्सा द्वारा वस्त्र या बाल काटे या रजोधर्म का वस्त्र चुराया हैं (यह) स्त्रीकृत कृत्या दोष, रजोधर्म के आगे पीछे होने कमर आदि में पूर्वोक्त व्यथा, पेड़ू पर गैस, हृदय व मस्तिष्क में विकार करने वाला वन्ध्यापन (पुत्रसुख में वाधक) समझें। यदि मनुष्य के कल्याण, शरीर, स्वास्थ्य, मन, मस्तिष्क, धन, पद सम्पदा के लिए बाधक, आपत्तियों की विविध प्रकार की बर्षा करने वाला, मिथ्या,लाञ्छन, अपमानादि का प्रतीक होता है। यह भैषज्य वेद की उत्तम चिकित्सा से परे परन्तु "शौनकीय शाखा" की विधि से साध्य हो जाते हैं। **समयः**—जन्मनक्षत्र से भुक्त महादशा, अन्तर्दशा मासदशा, सूक्ष्मदशा प्राणदशा के माध्यम से निश्चित करें। **नैऋति दोष के लक्षण**—सहसा कलह, व्याधि पर व्याधि, अपव्यय, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक विविध कष्ट, पशु, कृषि की क्षति, रोग, भौतिक, भूमि सम्बन्धी विवाद। बाल, कुमार, युवाओं की दयनीय मृत्यु, बाल, तरुण युवतियों का वैधव्य, स्त्री, पुरुष माता पुत्री पिता पुत्र, स्वामी सेवक में विवाद, अकस्मात् धन हानि, मान हानि गौ, घोड़ी, तथा फलदार उद्यान में पुष्प (ऋतुधर्म) पुत्र सन्तति को बाधा आदि विघ्न होते हैं। यह यम की पत्नी नैऋति हैं। **शाप :**—प्रायः अन्याय, अधर्म से संतप्त प्राणी शाप देते है परन्तु देव द्विज, गुरु, ऋषि, गौ, सती का यदि किसी प्रकार अपमान हो और वे स्वयं शान्ति से सहन करें, मन, वाणी से किसी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का अहित न सोचें तो वहां वरुण शाप हो जाता है। शाप कर्त्ता के शाप की वाणी के शब्द ब्रह्माण्ड में शब्द ब्रह्म होने से अमिट होते हैं। शाप उनकी दया या वे स्वयं न हों तो परम्परा गत महामानव की दया अथवा अथर्व विधि से विना शाप विमोचन किये, उन दोषी जनों या कुलों का कल्याण नहीं होता है। दैवी वाणी भी ऐसी हुई है। इस प्रसङ्ग में एक ज्वलन्त उदाहरण स्मरण हो आथा है, मेरे स्वयं के परिचित तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ वैद्य जी को उनके परिवार की स्त्री को लगभग १२ वाँ मास गर्भावस्था में व्यतीत हो रहा था। उन्होंने विलोम पाठ किया, पुत्र रत्न का जन्म भी हुआ परन्तु नान्दीश्राद्ध अनुष्ठान से पूर्व न करने पर जनन शौचावस्था में ही अनुष्ठान पूर्ण किया—इसी में दैवी अपराध में शाप हो गया। उन्हें भयंकर विषैले रोग ने दबा लिया और उसीमें लीला समाप्त हुई। बे ब्रह्म ग्रह हो गये कुल को विविध प्रकार से पीड़ित किया, उनके कल्याणार्थ चारों धामों में पुण्य कर्म, यया श्राद्ध, दो बार सप्ताह की गई, परन्तु उनकी व उस कुल की व्यथा ज्यों की त्यों रही, जब इस परीक्षण विधि का उनके कुल के प्रतिष्ठित जनों ने वर्तमान तपोनिष्ट धर्म गुरुजी के आदेश से आयोजन किया तो "पितृमेध "की वर्णित ऋचाओं से जब उनका आवाहन किया तो वे एक दैवी की वाणी पर स्वयं प्रथम विघ्नरूप से बोले, संघर्ष किया, बाद में सारी गाथा बतलाई, उनके शाप से मुक्त होने पर उनको सुकृत लोक की प्राप्ति हुई और वह कुल सुखी है। यही ऐसी दूसरी गाथा मामूभानजा जिला अलीगढ़ के एक कुलीन परिवार "अग्रवाल वैश्य" का ज्वलन्त उदाहरण हैं। और भी अनेकों अनुभव में आई हैं। इनको प्रश्न, जन्म, हस्तविज्ञान स्वरोदय, चिन्ह विज्ञान आदि के साथ लक्षणों (ऊहापोह) से विचार लें। परन्तु ज्योतिष व वेद के वैदिक प्रामाण्य सिद्धान्तों की गहन शोध अनवरत अनिवार्थ समझें। **ब्राह्मण के शाप के सम्बन्ध में विशेष**—म० भा० आदि पर्व; सम्भव पर्व अ० ८१।२३-२५-२६ क्रुद्धादाशीविषात् सर्वाज्ज्वलनात् सर्वतोन्मुखात्। दुराधर्षतरो विप्रो ज्ञेयः पुंसां विजानता।। २३ ब्राह्मण को क्रोधपूर्ण विषधर सर्प तथा चहुँ ओर से प्रज्वलित अग्नि से भी अधिक दुर्धर्ष एवं भयङ्कर समझे। एकमाशीविषोहन्ति शस्त्रेणैकश्चवध्यते। हन्तिविप्रा सराष्ट्राणिपुराण्यपिहि कोपितः।। २५ दुराधर्षतरोविप्रस्तस्माद् भीरु मतो मम।।२६। सर्प और वाण एक, एक ही को मार सकते हैं। परन्तु क्रोध आनेपर ब्राह्मण समस्त राष्ट्र और नगर को नष्ट करने में समर्थ है, इसी से ब्राह्मण दुर्धर्ष होता है। नाधर्मश्चरितोराजन् सद्यः फलतिगौरिव। शनैरावर्त्यमानोहि-कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ८०।२ किये गये अधर्म का फल धीरे २ कर्त्ता की जड़ काटता है। पुत्रेषुवा नप्तृषु वा नचेदात्मनि पश्यति। फलत्येध्रुवं पापं गुरु भुक्तमिवोदरे। ८०।३ यदि वह अधर्म (पापोर्जित द्रव्य) का दुष्परिणाम अपने ऊपर दिखाई नहीं देता तो उस अन्यायोर्जित द्रव्य के उपभोक्ताओं-पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रादि पर अवश्य प्रगट होता है। **आचतुर्दश-काद्वर्षान्न भविष्यति पातकम्। परतः कुर्वतामेवं दोष एवं भविष्यति/१०७/१७** चौदह वर्ष की आयु पर्यन्त किसी को पाप नहीं लगेगा। उससे अधिक की आयु में पाप कर्त्ता को ही पाप लगेगा। (माण्डव्य का धर्म को शाप)

ॐ शान्तिः शान्तिः सर्वारिष्टशान्तिर्भवतु ।।

इस मन्त्र का दस हजार जप करने और आम के पत्तों से हवन करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त हो जाते हैं। मृत्यु भय नहीं रहता है।

१ यदि किसी को घनिष्ठा नक्षत्रमें ज्वर भीचढ़े तो दस दिन तक ज्वर रहता है। २ शतभिषा नक्षत्रमें चढ़ा हुआ ज्वर छह दिन या दस दिन रहता है। ३ पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र मृत्यु कारक होता है। ४ उत्तराभाद्रपदा का ज्वर चौदह दिन तक रहता है। ५ रेवती नक्षत्र का ज्वर पांच-छह दिन तक रहता है। ६ अश्विनी नक्षत्र का ज्वर छह दिन रहता है। ७ भरणी नक्षत्र में आया हुआ ज्वर पाँचवे दिन में मार डालता है। ८ कृत्तिका नक्षत्र का ज्वर एक सप्ताह रहता है। अथवा २१ दिन रहता है। ९ रोहिणी नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक रहता है। १० मृगशिरा नक्षत्रका ज्वर नौ दिनतक रहता है। ११ आर्द्रा नक्षत्रका ज्वर पांच दिनमें मार डालता है। अथवा४५ दिनमें मारताहै १२ पुनर्वसु नक्षत्र का ज्वर तीन दिन तक अथवा २७ दिन तक रहता है। १३ पुष्य नक्षत्र का ज्वर तीन दिन में अधिक से अधिक सात दिन में उतर जाता है। १४ अश्लेषा नक्षत्र का ज्वर बहुत दिन तक रहने के बाद मार डालता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१५ मघा नक्षत्र का ज्वर बारह दिन में मारता है। १२ दिन में न मरा तो बच जाता है। १६ पूर्वाफाल्गुनी का ज्वर मृत्युदायक होता है। १७ उत्तराफाल्गुनी का ज्वर आठ या नौ दिन तक रहता है। १८ हस्त नक्षत्र का ज्वर सात या आठ दिन में उतर जाता है। यदि नहीं उतरा तो चित्रा नक्षत्र के लगते ही उतर जाता है। १९ स्वाती नक्षत्र का ज्वर दस दिन अथवा ४५ दिन तक रहता है। २० विशाखा नक्षत्र का ज्वर २१ दिन के अन्दर मारता है। २१ अनुराधा नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक रहता है। इसके बाद रहा तो असाध्य समझना चाहिए। २२ ज्येष्ठा का ज्वर यदि पाँच दिन तक नहीं मारता है तो १२ दिन में ठीक होजाता है। २३ मूल नक्षत्र का ज्वर यदि दस दिन तक बना रह गया तो फिर उसके बाद उसके लिए कोई चिकित्सा करनी नहीं होती है। २४ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का ज्वर नौ दिन तक रहता है इससे अधिक दिन रह गया तो असाध्य समझना चाहिए। २५ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का ज्वर एक महीने तक कष्ट देता है, इस अवधि में नहीं उतरा तो ९ मास तक कष्ट देता रहता है। २६ श्रवण नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक पीड़ित रखता है। ज्वर या अन्य बीमारी कीं दवा करने से पूर्व यदि नक्षत्र-दोषों को समझ लिया जाय और दवा के साथ ही नक्षत्र-दोष की शान्ति करा दी जाए तो रोगी शीघ्र आरोग्य हो जाता है।

ज्वर शान्त्यर्थ विधान—१ कृतिका नक्षत्र के रोग दूर करने के लिए दही से अग्निमूर्द्धा० मन्त्र पढ़कर १०८ आहुतियां देनी चाहिए। २ रोहिणी नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए सर्वबीजमयी आहुति हिरण्यगर्भः० इस मन्त्र से १०८ बार देनी चाहिए। ३ आर्द्रा नक्षत्र-दोष शान्ति के लिए शहद से १०८ आहुति ॐ इमारुद्राय तव से कपर्दिने० मन्त्र पढ़कर करना चाहिए। ४ पुनर्वसु नक्ष त्र दोष की शान्ति के लिए ॐ महीमूषु० मन्त्र पढ़कर चावल की १०८ आहुति देनी चाहिए। ५ पुष्य नक्षत्र दोष की शान्ति के लिए घी और खीर मिलाकर ॐ वृहस्पते अति० यह मन्त्र पढ़कर १०८ आहुतियां देनी चाहिए। ६ अश्लेषा नक्षत्र दोष की शान्ति के लिए सर्वोंषधि से ॐ सर्पेभ्यो० यह मन्त्र पढ़कर १०८ आहुति देनी चाहिए। ७ मघा नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिऐ नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ इदं पितृभ्यो नमोस्त्वद्य० मन्त्र पढ़कर शालिधान का हवन १०८ बार करना चाहिए। ८ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ प्रार्तजितम्० यह मन्त्र पढ़कर कुंकुम का हवन १०८ बार करना चाहिए। ९ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ पुरो यमस्य० मन्त्र को पढ़कर घी की आहुति देनी चाहिऐ। १० हस्त नक्षत्र दोष निवारण के लिए तत्सवितुर्वरेण्यं० मन्त्र से दही की आहुति देनी चाहिए। ११ चित्रा नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ द्यावापृथिवी वरुणस्य० मन्त्र द्वारा मधु और खीर की आहुति देनी चाहिए। १२ स्वाती नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः० मन्त्र द्वारा घी, तिल की आहुति देनी चाहिए। १३- विशाखा नक्षत्र का दोष निवारण के लिए ॐ इन्द्राग्नि आगतं सुतं मन्त्र से नये चावल के भात से आहुति देनी चाहिए। १४- अनुराधा नक्षत्र दोष की शान्ति के लिए ॐ महीभूपाम्० मन्त्र द्वारा लहसुन की आहुति देनी चाहिए। १५- ज्येष्ठा नक्षत्र-दोष निबारण के लिए ॐ फल्गुनामो० मन्त्र से करिहारी की आहुति देनी चाहिए। १६- मूल नक्षत्र दोष-निवारण के लिए ॐ अयं ते योनि ऋॅत्वियोर्मन्त्र से अनन्त मूल की आहुति देनी चाहिए। १७- पूर्वाषाढ़ नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ इदमापः प्रवहताघप० मन्त्र से शालिधान की आहुति देनी चाहिए। १८- उत्तराषाढ़ा नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ विश्वेभ्यो मारुत० मंत्र से असगंध की आहुति देनी चाहिए। १९- श्रवण नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ इदं विष्णु विचक्रमे० मत्र से लाल पुष्प की आहुति देंनी चाहिए। २०- घनिष्ठा नक्षत्र की शान्ति के लिए ॐ वायुरग्निर्वसुः श्रवाः !० मंत्र से बरगद की बरोंत की आहुति देनी चाहिए। २१- शतभिषा नक्षत्र दोष निवारण के लिए ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मण० मंत्र से कमलपुष्प से आहुति देनी चाहिए। २२- पूर्वाभाद्रपदा की दोष शान्ति के लिए ॐ उत्तराहिर्ब्रध्नः० मंत्र से शालि चावल के भात से आहुति देनी चाहिए। २३- उत्तराभाद्रपद नक्षत्र-दोष की शान्ति के लिए ॐ अहिरिव भोगैः० मंत्र से शालि चावल के भात से आहुति देनी चाहिए। २४- रेवती नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ शस्तो तारश्च इहष्ठासि० मंत्र से फल और अक्षत से आहुति देनी चाहिए। २५- अश्विनी नक्षत्र दोष-निवारण के लिए ॐ उभा पिवत मश्विनोभा नः० मंत्र से दुधारू बृक्ष की लकड़ी से आहुति देनी चाहिए। २६- भरणी नक्षत्र-दोष निवारण के लिए ॐ मासंयमः० मंत्र से चावल से आहुति देनी चाहिए।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"जन्माङ्ग से उपासना और ग्रहयोग"

(१) जिस जातक के जन्मांक में गुरु, बुद्ध मगल साथ हों वह उपासक होता है साकार ब्रह्म का उपासक होता है। (२) गुरु के साथ बुध दशम में हों तो सात्विक उपासक बनकर (साकार ब्रह्म) उपासना करता है। (३) दशमेश कोई शुभ ग्रह हो वह चन्द्रमा के साथ हो राहु केतु से युक्त या दृष्ट न हो तो साकार उपासक हो। (४) बुध उच्चस्थान या कर्म (६) में हों, दशमेश नवम में हों राहु का योग न हो तो साकार उपासक हो। (५) दशमेश उच्च-स्थान में हो बुध साथ हो, या लग्नेश दशमस्थ हो, दशमेश नवमस्थ हो, दोनों दशाओं में किसी पापग्रह का योग न हो तो साकार उपासक हो। (६) दशमेश बुध हो गुरु बलवान हो, या चन्द्र तृतीयस्थ हो तो साकार ब्रह्म उपासक हो। (७) दशमेश शनि के साथ हो या राहु के साथ हो तो तामसी प्रकृति का उपासक हो। (१०) दशभेश रवि, शुक्र या चन्द्रमा हो तो दूसरों के सहयोग से उपासना कर्म द्वारा अनेक धार्मिक कृत्य सम्पादित करें। यह ध्यान में रख लेना अनिवार्य होगा कि केवल नवम या दशम भाव में स्थित ग्रह ही प्रवृत्ति के परिचायक ही होंगे, प्रत्युत ग्रह-मैत्री दृष्टि-बल या पंचम में बैठे ग्रह भी, प्रवाभित करते हैं। १. जिस जातक के पँचम और नवम दोनों भाव शुभ लक्षणी से युक्त हों, वह जातक सफल सगुणोपासक होकर विश्व में ख्यात होता है। २. यदि पंचम स्थानों में सम राशि हो, चन्द्रमा और शुक्र भी हों तो शक्ति का सिद्ध उपासक बनता है। (४) ५ वें सूर्य हो तो जातक शक्ति का सिद्ध उपासक होता है। ५. नवें मंगल हो या दृष्टि हो तो पशुपति नाथ का उपासक होता है। यदि ९ वें गुरु हो, या गुरु की दृष्टि हो तो शंकर-भक्त होता है। ६. शनि ५ वें या ९ वें हो (विशेष प्रभाव ९ वें में) तो तामसी उपासना में सिद्धि प्राप्त करे। यथा—

"नवमस्थाने सौरोयदि स्थित सर्व दर्शन विमुक्त; । नरनाथ योगजातो नृपोऽपि दीक्षान्वितोभवति ॥"

शनि ९ वें हों, अन्य ग्रहों का बलाबल होने पर समस्त दर्शनों को त्याग दे, राजयोग हों तो राज को त्याग दे; या दीक्षा के उपरान्त उपासक बने। ७. यदि जन्म काल में किसी भी स्थान में ४ से लेकर ७ तक ग्रह हों तो उपासक होता है। इन ४ से सात ग्रहों में एक बली तो हो, पर अस्त न हो और बली ग्रह युद्ध में पराजित भी हो; हारे बली ग्रहों की दृष्टि न हो उनमें कोई दशमेष हो तो उपासक उभय लोकों का मार्ग प्रशस्त करता है। ऐसी स्थिति में बली सूर्य साकार उपासक, चन्द्रमा तामसी उपासक; भौम से सन्यास; बुध का प्रभाव तामसी, गुरु का साकार ब्रह्मोपासक, यही शुक का प्रभाव है। ८. लग्नेश पर किसी की दृष्टि न हो, लग्नेश शनि को देखता हो तो सिद्ध प्रख्यात होता है। ९. शनि पर अन्य ग्रहों की दृष्टि न हो और शनि लग्नेश को पूर्ण दृष्टि से देखे तो सिद्ध उपासक या सिद्ध सन्त होता है। १०. शनि की दृष्टि निर्बल लग्न पर हो तो निगुण ब्रह्म उपासक हो। ११. जन्म के चन्द्र की राशि के स्वामी पर किसी की दृष्टि न हो; परन्तु उस जन्मराश्याधिपति की दृष्टि शनि पर पड़े तो प्रभावित ग्रह की अन्तर्दशा में उपासना की ओर अग्रसारित होता है। चन्द्रमा किसी राशि पर होंकर मंगल या शनि के द्रेष्काण में हों, चन्द्रमा पर किसी की दृष्टि न होकर शनि की दृष्टि हो तो निगुर्ण उपासक हो। १२. चन्द्र शनि के द्रेष्काण में हों, और उस पर दृष्टि हो तो निर्गुण ब्रह्मोपासक हो। १३. चन्द्र शनि के द्रेष्काण में हो, मङ्गल या शनि का नवाँश भी हो उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि हो तो निर्गुण उपासक हो। १४. यदि जन्म राशि निर्बल हो, उस पर शनि की दृष्टि हो तो उपासना में ही अन्तिम जीवन लगाये। १५. ९ वें भाव में शनि पर किसी बलीग्रह की दृष्टि न हो, राजा होकर भी अन्त समय ब्रह्म उपासक होता है। इस योग के प्रभाव से जातक राजसी जीवन व्यतीत करने लगता है। १६. यदि चन्द्रमा पर शनि या लग्नेश की दृष्टि हो तो उपासक बने। १७ धर्म ९ में चन्द्र हो, अन्य की दृष्टि न हो तो राजयोग होने पर भी सन्यासी, सिद्ध उपासक होता है। १८. मंगल जिस राशि में हो उसी में चन्द्र हो, चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में हो और चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि हो तो उपासक हो। १९. लग्नेश गुरु मङ्गल या शनि हो, उस पर शनि की दृष्टि हो, धर्म में गुरु हो तो निर्गुणोपासक हो। २० कर्म १०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वें तीन बलवान ग्रह हों, सभी उच्च के हों, स्वगृही हों या शुभ वर्गस्थ हों और कर्मेश बली हो तो सिद्ध उपासक हो तथा संसार में ख्यात हो। २१. कर्मेश निर्बल हो, सप्तम में हो तो तामसी उपासक हो। २२. द्वितीयेश और सप्तमेश उपासना की ओर अग्रसर करने वाले तीन ग्रहों से घिरे हों तो तामसी उपासक वन कुख्यात भी हो जाता है। २३ उपासना की ओर अग्रसर करने वाले ग्रहों के साथ रवि, शनि, मंगल हो तो तामसी उपासक हो। २४. लग्नेश बली न हो उस पर शुक्र एवं चन्द्रमा की दृष्टि हो और कोई उच्च अथवा उच्च नवाँशस्थ ग्रह चन्द्रमा को देखता हो तो धन-हीन उपासक हो। २५. हीनबल चन्द्र राशि का स्वामी केन्द्रस्थ बलवान शनि को देखता हो तो तामसी उपासक हो या धनहीन उपासक हो। २६. यदि कर्म (१०) में मीन का बुध हो या उसमें मङ्गल बैठा हो तो सिद्ध उपासक हो। और जीवन्मुक्त हो। २७. १० वें कर्मेश धर्म (९) में हो, और बली नवमेश, गुरु-शुक्र से दृष्ट हो या संयुक्त हो तो उपासक सिद्ध संसार में ख्यात हो। २९. कर्मेश (१०) शुभ ग्रह हो या कर्मेश दो शुभ ग्रहों के बीच में हो या कर्मेश शुभ ग्रह के नवाँश में हो तो सिद्ध उपासक हो। ३०. केन्द्रस्थ (१।४।७।१०) चन्द्र पर गुरु या शुक्र की दृष्टि हो तो उपासना से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है। ३१. कर्मेश शुभ ग्रह हो और उच्च स्वगृही या मित्रगृही हो तो सिद्ध उपासक हो। २३. दशमेश पांच शुभ ग्रहों के वर्ग का हो, या-सात उत्तमवर्गों का हो तो उपासना पद्धति से महान सिद्धि प्राप्त करता है। ३३. लग्नेश १० वें, ९ वें हो, दशमेश पर किसी भी पापग्रह की दृष्टि न हो तो महान उपासक वन उभय लोकत्रायक सिद्धि प्राप्त करता है। ३४. जन्माङ्ग में सभी ग्रह चन्द्र और गुरु के भीतर हों तो निर्गुण उपासक सिद्ध होता है। ३५. जन्माङ्गस्थ) में सभी ग्रह शनि और मंगल के अन्तर्गत हों तो निर्गुणोपासना में सिद्धि प्राप्त करता है। ३६. जातक का जन्म मकर राशि में हो और समस्त ग्रह सूर्य और मंगल के अन्तर्गत हों तो निर्गुणोपासक सिद्ध हो। ३३.३४.३५ वें निर्गुणोपासना के योगों में दो ग्रहों के बीच में अन्य सभी ग्रहों के रहने से (अभिप्राय है) कि यदि इस योग में मकर राशि में जन्म हो और सूर्य की राशि अंशों से आगे अन्य सभी ग्रह स्थित हों तथा अन्त में मङ्गल हों। ३७. धर्मस्थ शनि और गुरु हों या कर्मस्थ हों और एक ही नवाँश में हों तो उपासना से सिद्धि प्राप्त करता है। ३८. कर्क जन्मलग्न हो, धन के नवाँश का लग्न हो, गुरु लग्नस्थ हो १।४।७।१० वें तीन या चार ग्रह हों तो उपासना से जीवन्मुक्त हो जाता है। ३९. यदि जन्म धनराशि में हो, गुरु लग्न में हो, लग्नमेष के नवाँश का हो, मिथुन में शुक्र हो, चन्द्र कन्या में हो तो उपासना से परमपद प्राप्त करते हैं।

"जन्माङ्ग से उपासना और सहयोग में विशेष ज्ञातव्य"—४०. यदि मेष के अन्तिम नवांश का जन्म हो; लग्न में गुरु या शुक्र हो—द्वितीय स्थान में चन्द्र हो, सिंह के नवांश का मंगल हो या धन के पंचम नवांश का हो तो सिद्ध उपासक होता है। ४१. लग्न कर्क हो लग्न में गुरु हो, सिंह का शनि, वृष का चन्द्र, मिथुन में शुक्र, रवि, बुध स्थिर राशि में हो तो उपासना से सिद्धि प्राप्त करता है। ४२. कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धन में ही सातों ग्रह बैठे हों, इनमें से बिना ग्रह की राशि कोई न हो तो लब्धप्रतिष्ठि उपासक होता है।

"कार्य सिद्धि असिद्धि प्रश्न" (अ० वे० कां ४ सू० १) के सन्दर्भ में—प्रश्नकर्ता का मुँह जिस ओर हो, उस दिशा की अंक संख्या (१ पूर्व २ पश्चिम ३ उत्तर ४ दक्षिण); प्रहर संख्या (सूर्योदय से ३ घण्टे १ प्रहर समझें); वार संख्या; और नक्षत्र संख्या (अश्विनी से प्रारम्भकर) सबको जोड़ें, योग में ८ का भाग दें—शेष १।५ से शीघ्र सिद्धि; ६।४ से ३ दिन में सिद्धि; ३ : ७ से विलम्ब ; २।० से असिद्धि। २. प्रश्नकर्त्ता से १ से १०८ पर्यन्त संख्या में से कोई अंक लिखाये या जो वह समझे, बुलवायें उसमें १२ का भाग दें १।७।९ से विलम्ब, ८।४।५।१० शेष से कार्यनाश २।३।६।०।११ शेष से कार्यसिद्धि समझें। ३. प्रश्नकर्त्ता की तिथि संख्या जो प्रश्नकाल में हो—वार संख्या—नक्षत्र संख्या के योग को ३ से गुणा करें उसमें ६ जोड़ें उस योग में ९ का भाग दें—शेष १ से पक्ष में, २ से मास में, ३ से ऋतु, ४ से अयन (उत्तरायथ—दक्षिणायन ६।६ मास) ५ शेष में दिन, ६ में रात्रि, ७ में प्रहर ८ में घटी, ९ शेष में १ मिनट की अवधि कार्य होने की समझें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"लाभालाभ प्रश्न"—१. प्रश्न कुण्डली से १।८ के स्वामी ८ वें स्थान में हों और दोनों एक ही द्रेष्काण में हों तो अवश्य लाभ हो। २. प्रश्न लग्न में सौम्यग्रहों का वर्ग हो तो ग्रह भावानुसार शुभ फल हो। ३. प्रश्न लग्न में चन्द्रमा और लाभ ११ वें गुरु या शुक्र हो तथा लाभ भाव के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो प्रश्नकर्त्ता को विशेष रूप से लाभ हो। ४. लग्नेश और ११ लाभेश एक साथ हों तो भी लाभ हो। ५. लग्नेश लाभेश का इत्थशाल+योग होने पर भी लाभ हो। ६. लग्नेश चन्द्रमा से युत या दृष्ट होकर ११ वें स्थित हो तो दूसरों की सहायता से लाभ हो। ७. लग्न से १० में शनि और चन्द्रमा का इत्थशाल होने पर लाभ हो। ८. कर्म १० का स्वामी लग्नेश के साथ हो, या उनका इत्थसाल योग हो, एवं कर्मेश और लाभेश योग हो तो लाभ हो। ९. प्रश्न से ११ और ८ वें के स्वामी का योग और इत्थसाल हो तो लाभ हो। १०. जिस-जिस स्थान पर चन्द्रमा की दृष्टि हो उस-उस स्थान से पुण्यवृद्धि तथा कर्म-सिद्धि हो। ११. ८ वें पर चन्द्र की दृष्टि हो तो कार्य, धर्म, कर्म का ह्रास हो। १२. लग्नेश ६।८ में हो तो कार्य हानि-नाना कष्ट हों। १३. लग्नेश १२ भाव हों तो व्यय अधिक हो, लाभ कुछ नहीं हो। १४. प्रश्न लग्न में बुध को चन्द्र देखे, अथवा पाप ग्रहों से दृष्ट हों तो शीघ्र लाभ हो। १५ प्रश्न लग्न की राशि की कला बनाकर उसको छाया के अंगुलों से गुणा कर ७ से भाग दे शेष को एक स्थान में रख दे। यदि शुभ का उदयाँक हो तो कार्य सिद्धि, अन्य ग्रह के उदयांक से असिद्धि समझे।

"प्रवासी प्रश्न ज्ञान" :—अथर्व कां० ७ सू० ९।। प्रपथेपथाम् के सन्दर्भ से। १. प्रश्न लग्न में गुरु, शुक्र २।३ स्थानों में हों तो प्रवासी विलम्ब से आवे। यदि ये १।४ में हों तो शीघ्र वापिस आये। (२) ६।७ वें कोई ग्रह हो ५।९ वें बुध या शुक्र हो तो शीघ्र आये। २. लग्न में चरराशि हो या चन्द्रमा पर हो या द्विस्वभाव में, चर का नवांश हो तो वापिस आये। यदि स्थिर हो तो न आये। ३. लग्नेश २।३।८।९ में हो तो लौट कर मार्ग में ठहरा समझे। २।३।५।६।७ में वक्री ग्रह हो १ ४।७।१० वें गुरु या बुध हो ५।९ शुक्र हो तो शीघ्र वापिस आवे। ४. प्रश्नाक्षरों की संख्या या प्रश्नकर्त्ता से किसी फल का नाम लिवाये, उसकी संख्या को ६ से गुणा कर १ जोड़े=योग में ७ का भाग दे १ शेष से प्रवासी मार्ग में, २ से घर के समीप, ३ से घर पर, ४ से लाभ युक्त, ५ से रोगी, ६ से पीड़ित, ० से आने को तत्पर समझे।

"वैवाहिक"—१. प्रश्न लग्न से १।७ के स्वामी अथवा चन्द्रमा से इत्थशाल योग हो तो शीघ्र विवाह। २. लग्नेश या चन्द्रमा ७ वें भाव में हों तो शीघ्र विवाह होता है। ३. सप्तमेश का जिस ग्रह से इत्थशाल योग हो वह ग्रह निर्बल हो, पापयुक्त या पाप दृष्ट हो तो विवाह न हो या भारी परेशानी से होता है। ४. ७ वें भाव में अष्टमेश हो तो विवाहान्त दम्पत्ति में से १ की मृत्यु हो। विवाह में अशुभ घटनाये घटित होती हैं। ५. ७ वें या उसके स्वामी पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति हो तो ३ मास में विवाह हो। ६. लग्नेश, सप्तमेश तथा चन्द्रमा इन तीनों के स्वभाव, गुण, स्थान, दृष्टि के माध्यम से विवाह फल समझें।

अथर्व कां० ४ सू० १ संदर्भ में "शुभाशुभ ज्ञान"—प्रश्न का समय इष्ट बनायें, प्रश्न कुण्डली, ग्रह-स्पष्ट, नवमांश तथा चलित चक्र बनाकर विचार करें :—१. प्रश्नकाल में चर राशि, बलवान लग्नेश: कार्येश शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो और १।४।५।७।९।१० स्थानों में से कहीं हों तो प्रश्नकर्त्ता का कार्य शीघ्र हो। २. यदि लग्न में द्विस्वभाव राशि हो १।४।५।७।९।१० में पापग्रह हों लग्नेश, कार्येश हीनबल हो, नीच, अस्तंगत या शत्रु क्षेत्री हो तो कार्य नाश हो। ३. यदि स्थिर लग्न हो, लग्नेश, कर्मेश बलवान हो तो विलम्ब से कार्य हो। धनप्राप्ति हेतु, लग्नेश, धन, धनेश और चन्द्रमा से। सुख, शान्ति, गृह, भूमि आदि की प्राप्ति के प्रश्न में लग्न, चतुर्थ, दशम और इनके स्वामी और चन्द्रमा से। परीक्षा में यश प्राप्ति के लिये १।५।९।१० और इनके स्वामी और चन्द्रमा से। विवाहार्थ लग्न, चन्द्र, २।७ और इनके स्वामी। व्यवसाय, केश, नौकरी में चन्द्र, लग्न, दशम, एकादश और इनके स्वामी। बड़े व्यापार में—चन्द्रमा—१।२।७।१०।११ और इनके स्वामी। सन्तति में—चन्द्रमा। १-२-५ और इनके स्वामी तथा गुरु से विचार करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रोग आरोग्य, मृत्यु-ज्ञान :—१. नामाक्षर संख्या को २ से गुणा करें और मात्रा को ४ से गुणा कर योग करें उसमें ७ का भाग दें। शून्य से मृत्यु: शेष से जीवन समझें। २. चन्द्रमा से या प्रश्न लग्न से—लग्न में पाप ग्रह की राशि हो, और पाप से युक्त या दृष्ट हो या चन्द्रमा ८ में हों अथवा पाप ग्रह हों तो रोगी की मृत्यु हो। ३. प्रश्न कुण्डली में पाप ग्रह ८ या १२ वें हों या चन्द्रमा १।६।७।८ में हो तो शीघ्र मृत्यु। ४. लग्न में चन्द्र, ७ वें सूर्य, मेष का भौम वृश्चिक के नवांश में चन्द्र से युक्त या दृष्ट हो तो शीघ्र मरण। ५. प्रश्न लग्न से ७ वें पाप ग्रह हों तो महाकष्ट हो, शुभ ग्रह हों तो शीघ्र स्वस्थ हो। यदि ७ वें पाप और शुभ दोनों ही हों तो मिश्रित फल परन्तु मृत्यु नहीं होती। ६. लग्नेश निर्बल हो अष्टमेश बली हो चन्द्र ६।८ हो या शनि ८ वें भौम से युत या दृष्ट, हो तो मरण। ७. ८ वें रवि हो तो रक्त पित्त, बुध हो तो सन्निपात, राहू से युक्त सूर्य ८ वें हो तो कुष्ठ राहू से युक्त या दृष्ट शनि ८ वें हो तो वायु विकार और ८ वें शुक्र हो तो सन्निपात हो या पक्षाधातु, लकवा हो। ८. लग्नेश बली, अष्टमेश निर्बल हो तो रोगी शीघ्र स्वस्थ हो। ९. स्वाती, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, आर्द्रा और आश्लेषा में प्रारम्भ रोग मृत्युप्रद होता है। रेवती, अनुराधा, का प्रारम्भ अधिक दिन तक बीमार भरणी, शताभिषा और चित्रा का ११ दिन तक। विशाखा, हस्त और घनिष्टा का १५ दिन, मूल, कृत्तिका और अश्वनीका ९ दिन मघा का ७ दिन, मृगशिर और उत्तराषाढा का १ मास। भरणी, अश्लेषा, मूल, कृत्तिका, विशाखा, आर्द्रा और मघा में सर्प के डसे की मृत्यु समझें।

शीघ्र मृत्यु:–आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, तीनों पूर्वा: विशाखा घनिष्ठा और कृत्तिका, रवि, मंगल, शनि, ४, ९, १४, ११ और ६ तिथि में उत्पन्न रोगी का मरण होता है। स्त्री पुरुष में से किसी का निघन पहिले होगा। १ नामाक्षर संख्या को ३ से गुणा करें मात्रा संख्या को ४ से गुणा करें–दोनों को जोड़ें ३ से भाग दें। शेष १ से पुरुष, २ शेष तो स्त्री की मृत्यु कहें २. पुरुष स्त्री की जन्मराशि संख्या जोड़े ३ से भाग दें ० या १ शेष से पुरुष २ से स्त्री की प्रथम मृत्यु होती है।

अथ भावंत विषय-बोधक चक्र (ज्योतिष)

१. तनभाव—शरीर-वर्ण, लक्षण, आकृति, सुख-दुःख, वय प्रमाण सुत, सम्पत्ति, जाति, गुण-धर्म, भाई को लाभ, भाई के पुत्र की स्त्री, नाना, मामा का राज्य, मित्र का बाप, पुत्र का शाला, पुत्र के छोटे भाई की स्त्री, पुत्र का भाग्य, साले का पुत्र, स्वामी की मा, दादी, ससुर का पिता, मामा की मृत्यु, काके का मार्केश, गुरु, पुत्र, स्वसुर का राज्य व्यापार, सासु की मृत्यु, कृश, तुष्ट, दीर्घ, वामन, विकलांग, लकड़ी के सहारे चलने का, स्वास्थ्य, विलज्ज,कपटी, निष्कपटी शूर, कातर, क्रोधी, क्षमाशील, हंसमुख, द्रोही, चोर, व्यसनी, निष्कामी, नपुंसक, युवा, वृद्ध, शीघ्रता, शनैः, मोजी, भोजन शूर, चाण्डाल, पिशाच, खल्वाट, कृषक, नेत्र रोग, अन्ध, वधिर, वाग्मी, मूक, कुब्ज, (केन्द्र) का विचार करे।

२. धनाभाव—मणि-मुक्ता, स्वर्ण, क्रय-विक्रय, धन, कुटुम्ब, कोषसंग्रह, सुखभोग सत्य, वहुभाषण पूर्वार्जितधन, भाई की स्त्री का मामा, भाई की चचिया सास भाई की यात्रा, धन-हानि, व्यय, मामा की स्त्री, मामा को लाभ, मित्र के पुत्र की स्त्री, मित्र को लाभ, पुत्र के मित्र की स्त्री, पुत्र को राज्य सुख, शत्रु के भाई की स्त्री, स्त्री की मृत्यु, बाबा की मृत्यु, दादी का धन सुख, ससुरे को लाभ, गढ़ा धन, स्वोपार्जित, भ्राता, माता, वन्धु, पुत्र, शत्रु, भार्या, पिता, आदि से धन-प्राप्ति, धनलाभ दशा, परस्त्री प्रेम, शान्ति, विवाद, राजदण्ड, चौराग्नि, लोकापवाद से धन हानि, वहुकुटुम्बी, अनेक जनपालक, परिवारक्षय, भ्राता, पुत्र, शत्रु, जाया, पिता, धर्म कार्य से धन क्षय विचार, फणकर, नेत्र, मारक का विचार करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. सहजभाव से विचार—नौकर, चाकर, आभूषण, औषधि, दासकर्म, साहस, क्षुधा, दाँया कान, उपजीवका, भाई, बहिन, कण्ठमूल, हृदय, पराक्रम, भाई के शाले का पुत्र, भतीज वहू का भाई, नाना माता का व्यय, मां का चाचा, मां यात्रा, मां की मामी, मित्र की भामी, मित्र का चाचा, मित्र का व्यय, पौत्र वधू, पुत्र का लाभ, शत्रु का पिता, साले की स्त्री, स्त्री का भाग्य, नौकर, चाकर, उरुस्थल, पिता का रोग, शत्रु, दादी का भाई, बाबा का भाग्य, भ्रातृ लाभ, भ्रातृभगिनी संख्या, भ्रातृहीन, भ्रातृहानि, अनुजोत्पत्ति, अनुजहीन, भ्रातारोगी, विक्रमी, भिक्षुक, निन्द्यकर्मजीवी, काष्ठ, पाषाणादि विक्रेता, विविध व्यवसायी, आपोक्लिम, उपचय, त्रिक, दुष्ट का विचार करें।

४. सुखभाव पर—गृह, ग्राम, चतुष्पद, मित्र, क्षेत्र, उद्यम, भाईवन्धु, सुखासुख, आनाजाना, जलयात्रा, जलाशय, उद्यान, महौषधि, वृद्धि, हृदय, स्कंध, शयन, गुह प्रवेश, (सिंहासन प्राप्ति विचार) भ्राता, भोज्य वस्तु, मातृ धन, (पुत्र व्यय, यात्रा, शयन, सुख) स्वसुर, स्वामी की स्त्री, हृदय, वावा का राज्य, मान, व्यपार, दादी की माँ का सुख, गोद जाना, मातृ सुख नाश, पिता मामा की सास की मृत्यु, मातृ वध, माता जारिणी, पतिव्रता मां क्षत्राणी मां, चतुष्पद, प्रासाद, इष्टिका गृह काष्ठ गृह, तृणगृह, विचित्र गृह, अकस्मात् गृह प्राप्ति, गृहनाश, वहुक्षेत्रवान्, भ्राता, भार्या, (रिपु से क्षेत्र प्राप्ति, या क्षेत्रनाशका, भूमि विक्रेता, पुत्र स्त्री, मित्रपोषाक, या वन्धुपूज्य, वन्धूपकार कर्ता, आदि (केन्द्र, चतुरस्त्र,) का विचार करें।

५. पुत्र भाव—वुद्धि, विद्या, मन्त्र, मन्त्री, विनय, प्रवन्ध, गर्भस्थिति, नीति, पिता, हृदय, उदर, शक्ति, देवभक्ति, मामा भाई का कनिष्ठ सहोदर, भाई के साले की स्त्री, (मित्र का धन, कुटुम्ब, माता का धन, कुटुम्ब, पौत्र का साला, स्त्री को लाभ, नौकर का भाई, पेट का सुख, दुःख, पिता की मृत्यु, वावा को लाभ, अनपत्य, गर्भच्युत, सर्पशाप, पितृ,मातृ,कुलदेव शापसे सन्तति सुतहीन। शन्ततिहीन, पुत्रनाश, पुत्रसुखहीन वंशविच्छेद, विलम्ब, कष्ट व यत्नसे पुत्रयोग शीघ्र सन्तति, व कन्याप्राप्ति, दत्तकपुत्र, दासीपुत्र क्रीतपुत्र, संस्कृति, हिन्दी फारसी, अंग्रेजी, अरवी, विद्या, जज, वैरिष्टर, प्लीडर, वकीलादि, फणपर, त्रिकोण का विचार करें।

६. रिपुभावपर—रिपु, जखम, चोर, चिन्ता, शंका, क्रूरकर्म, विघ्न, क्लेश, नाभिस्थान उदर मामाकारोग, भाई का साला, मित्र का भ्राता, चाची के पुत्र का धन, कुटुम्ब, स्त्री का चाचा घ यात्रा, स्त्री की मामी, स्त्री का व्यय, (नौकर की माता तथा मित्र), कटिभाग, बाबा की यात्रा, दादी का रोग व दादी का मामा मातृवैर, पिताशत्रु, स्त्रीशत्रु व्रण, केन्सर आदि क्षयरोग, अपस्मार, दन्तादिरोग, तनुशौथ, गुल्म, संग्रहणी, (वात, पित्त, कफजरोग,) कुष्ट, शूल, अर्श, प्लीहा, रोग, जल, भय, सर्पभय, चौराग्नि भय, (श्वान, शृङ्गाल, मृग, चतुष्पादभय) आपोक्लिम उपचय, त्रिक, दुष्ट का विचार करें।

७. जायाभावपर—स्त्री का सुख दुःख, गये हुए धन का विवाद, व्यबहार, आना जाना (पास) मल,मूत्राशय, व्यभिचार, तय्यार माल का क्रय, विक्रय, युद्ध, भतीजा, नानी, मित्र की मामा, पुत्र का लघु सहोदर, पुत्र के साले की स्त्री, पुत्र का पराक्रम, शत्रु का धन, कुटुम्ब, साले के पुत्र की स्त्री, श्वसुर का मित्र, पेडू, गुप्तस्थान, बाबाश्वसुर की माता, सेनाध्यक्ष, व्यभिचारी, दम्पतिजार, मातृ सह गमन, भगिनीगमन, बृद्धा, वन्ध्या, रजस्वला, वैश्यगर्भिणी, कुब्जा, गुरुतल्पगयोग, पशुगामी, द्वि भार्या, त्रय, गुरु तल्पगयोग, पुनर्भू भार्यायोग, पतिव्रता, विकलांगी, जारिणी, सुदारा कुदारा, कुलटा, वन्ध्या, सण्ढा स्त्री योग, जायानाश, फाँसी, अग्नि, ऊपर से गिरने की स्त्री को पिशाच पीड़ा, ससुराल से धन प्राप्ति, स्त्री का परित्याग, व दाह संस्कार आदि का, केन्द्र-मारक विचार करें।

८. मृत्यु निधन भाव पर—आयु शस्त्र धारण, आयु, रोग, संकट, छिद्र, जीवित रहने, गुप्त स्थान, नदी से पार उतरना, जल यात्रा में, जहाज यात्रा में, सुख पूर्व उतरने का, समुद्र यात्रा में किसी प्रकार के दुःख का, विघ्न, होने का, किले की चढ़ाई आदि भाई की स्त्री के मामा की स्त्री, भाई के चचिया ससुरे का, मित्रका, शत्रु के भाई का, भाई का रोग,व शत्रू का, मामी के भाई का, पुत्र के मित्र को, पुत्रों का, पुत्र के स्वसुर का, स्त्री के धन, व मृत्यु का,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुप्तेन्द्रिय का, बाबा के धन का, दादी की मृत्यु का, सिंह, सर्प, शस्त्र, स्वान से मृत्यु, तीर्थ, पर्वत, वन, धन, कारागार, पतन, विद्युत, वाहन, शिला, चौर, घातादि से मृत्यु, शुभ लोक, सायुज्य, विषघात, अग्नि, पाषाण, काष्ठ, जलघात, ब्रह्म हत्यारा, कर, पाद, मस्तक, कर्ण छेद, त्रिक, दुष्ट स्थान का विचार करें ।

९. भाग्य भवन पर—भाग्योदय, धर्म कार्य शील, सन्तोष, तीर्थ यात्रा, विद्याभ्यास, व्यवहारादि यात्रा, सतशास्त्र श्रवणादि, पिता का सुखासुख वापी, कुआ, तालाब, प्याऊ, विज्ञान, उद्यान, दीक्षा, ग्रहण, मठ, धर्मशाला, पाठशाला, क्रीड़ास्थल, चिकित्सालय, गुरु, स्वामी, पौत्रादि, तपस्या, ब्रह्मविद्या, उरुस्थल, मामा मौसी, जन्मभूमि परि-त्याग, महा यात्रा, जल यात्रा, आकाश यात्रा, प्रवास काल, सन्यास, कीर्ति, सुन्दर, वेषभूषा, वाहन, मैत्री, राजा, भाभी, (भतीजे के साले की स्त्री), नानी की माता का मामा, मित्र का मामा व चाची, पौत्र, पुत्र की विद्या, रिपुमाता, शालक, नौकर की स्त्री, उरुस्थान, बाबा के भाई, बहिन, दुर्मति, वधिक आदि 'आपोक्लिम' 'त्रिकोण' का विचार करें।

१०. कर्म भाव पर—राज्य से मान, व्यापार, मुद्रा प्राप्ति, राज्य प्राप्ति, पिता का महापदाधिकार प्राप्ति, पुण्य कार्य, आज्ञा पालन करने का, कीर्ति, वृष्टि, प्रत्येक कार्य में प्रवृत्तिका, प्रवास, कर्म का, आजीविका, घुटनों का, प्रत्येक बात की पूर्ति का, कुख्याति, कलंक, पिता परस्त्रीगामी, पिता की धूर्तता, पिता के दुख, व शीघ्र मरण का, मातृ-निधन, विवाह में पिता की मृत्यु, पितृ-अदहन, पितृ-मातृ निधन काल, भाई की मृत्यु, सासु, स्वामी, जानुस्थान, पुत्र का रोग, रिपु के बाबा की मृत्यु, मित्र गृह चतुष्पद, सेनापति, दास, दुष्ट क्रूर, लोभी पापी, आलसी, विषयी, निद्रालु, मान-हीन, वेश्यागामी, ईर्ष्यालु, परधनहर्ता, स्त्री-रहित होने का, जहाज से, खान से, मणि-मोती प्राप्ति, स्त्री से धन नाश, दिज-कृपण होने वाला, चोरों से लुटने का, मिट्टी के पात्रादि बनाने, वैद्य, पुरोहित, गणक, दूसरे के कहने में चलने का, प्रचण्ड पुरुष होने का, 'केन्द्र' 'उपचय' का विचार करें ।

११. आय भाव पर—गज, अश्व, गाड़ी, मोटर, यान, पालिकी, सुनहरे वस्त्र, आभूषणादि की प्राप्ति, पिण्डली, मांगलिक कार्य, बाँया कान, शास्त्र, कन्या, विद्वान होने का, विद्या प्राप्ति का, बड़े भाई का लाभा-लाभ, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, ससुराल से धन लाभ, भाई के भाई की स्त्री, भाई के साले, साली, भाई का भाग्य, माता का भृत्य, मित्र की मृत्यु, पुत्र की स्त्री, पुत्र के पुत्र के साले की स्त्री, स्त्री की विद्या, बाबा की विद्या, बुद्धि फणपर' 'उपचय' का विचार करें।

१२. व्यय भाव पर विचार—हानि, दान कराना, अर्थदण्ड, बन्धन, पिता का धन, बायाँ नेत्र, कृषि कर्म करना, सुख भोग, गिरने का, विकार, दोनों नेत्रों का, विदेश यात्रा, भाई की सास, भाई का राज्य, सुख, मामी व माता का भाग्य, मित्र के भाई की स्त्री, चाचा, मित्र का भाग्य, पुत्र की मृत्यु, स्त्री का मामा व चाची, स्वामी का भाई, दूर की यात्रा, साले का भाग्य, बाबा का रोग व शत्रु, ऋण ग्रस्त, ऋणदाता, सत, असत, व्यय, धर्मात्मा, अन्न-दाता, त्यागी, दम्भी, 'आपोक्लिम' 'नेत्र' 'त्रिक' 'दुष्ट' स्थान का विचार करें ।

ग्रहों के स्वरूप का विचार—रवि-पिंगल नेत्र, रक्त श्याम, श्याम रंग, पित्त प्रकृति, सम शरीर, प्रतापी, अल्पकेश, सुवक्ता । **चन्द्र**-श्वेत, दुर्बल, गोलाकार, धीमान, सरल, शुभ दृष्टि, विवेकी, वात, कफ प्रकृति । **भौम**-दुष्ट दृष्टि, युवा पतली कमर, लाल श्वेत रग, पित्त प्रकृति, चंचलमती, उदारस्वभाव, प्रतापी । **बुध**-गद्‌गद्वाक, हँसमुख, श्रेष्ठधी, दूर्वास्यामरंग, वात पित्त, कफ, प्रकृति, व्यभिचारी । **गुरु**-पुष्ट देह, गौर वर्ण, कफ प्रकृति, पीले नेत्र, क्रान्ति, सुनहरे केश, विद्वान । **शुक्र**-सुखी, बली, दर्शनीय, वपु सुलोचन, घुघराले केश, अतिकामी, वात, कफ, प्रकृति, श्वेतरंग । **शनि**-सर्व कामों की क्रिया में मूर्ख, कातर नेत्र, काला रंग, दुर्बल, दीर्घ देह, बड़े दाँतों वाला, रूखे शरीर व केशों का, वात प्रकृति, कठोर शब्द बोलने वाला, निन्द्यकर्मी ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ विविध विषय सम्पन्न सर्वोपयोगी चक्रम्

ग्रहाः	रवि	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	वरुण	प्रजापति	यम
एकपाद दृष्टि	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०
द्विपाद दृष्टि	५।९	५।९	५।९	५।९	५।९	५।९	५।९	५।९	५।९	५।९	५।९	५।९
त्रिपाद दृष्टि	४।८	४।८	४।८	४।८	४।८	४।८	४।८	४।८	४।८	४।८	४।८	४।८
पूर्ण दृष्टि	०	०	४,७,८	०	५,७,९	०	३,७,१०	०	०	०		
ग्रहों के वर्ष	२२	२४	२८	३२	१६	२५	३६	४२	४२			
नेष्ट वर्ष	हरिवंश श्रवण	त्रिपुर जप	रुद्रा- भिषेक	कांस्य दान	अमा- वस्या	गो रक्षा	मृत्यु- ञ्जय	भुजंग दान	ध्वज दान			
एक राशि	१मास	यिन	मास	मास	मास	मास	मास	मास	मास	वर्ष १३		
भुक्त प्रमाण		२।	१॥	१	१३	१	३०	१८	१८	८ मास		
ग्रहों के रत्न	माणिक	मोती	प्रवाल	पन्ना	पुखराज	हीरा	नीलम	पिरोजी	लसणि			
मित्रग्रह	च,मं;बु	र;बु	र,बु,चं	र,शु,चं	र,चं,मं	र,चं,श	र,बु,शु	श,बु,शु	बुध			
सम ग्रह	बुध	मं,शु,गु,श	शु,श,रा	मं,श,गु	श,रा	गु,मं	गुरु	गुरु	×			
शत्रु ग्रह	श,रा,शु	राहु	रा,बु	चन्द्र	बु,शु	चं,र	र,मं,चं	र,चं,मं	×			
उच्चराशि	मेष १०अंश	वृष ३अंश	मकर २८अंश	कन्या १५अंश	कर्क १५अंश	मीन २७अंश	तुला २०अंश	मिथुन १५अंश	धन १५अंश			
नीचराशि	तुला १०अंश	वृश्चिक ३अंश	कर्क २८अंश	मीन १५अंश	मकर ५अंश	कन्या २०अंश	मेष २०अंश	धन १५अंश	मिथुन १५अंश			
स्वराशि	५	४	१।८	३।६	९।१२	२।७	१०।११	२	८	१२	११	
मूल त्रिकोण	५	२	१	६	९	७	११	४	१०			
वर्ग	क्षत्री	वैश्य	क्षत्री	शूद्र	विप्र	विप्र	निखाद	निखाद	निषाद			
लिङ्ग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	नपुंसक	पुरुष	पुरुष,			
आकार	चतुरास्त्र	स्थूल	चतुष्कोण	वृत्त	वृत्त	दीर्घ	दीर्घ	दीर्घ	पुच्छ			
समय	मध्याह्न	अपराह्न	मध्याह्न	प्रभात	प्रभात	अपराह्न	अपराह्न	अपराह्न	अपराह्न			
दिशा	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ईशान	अग्नेय	पश्चिम	नैर्ऋत्य				
धातु	सुवर्ण	चांदी	सुवर्ण	कांसा	हीरमुव	रौप्य	लोह	लोह				
पाद	चतुष्पद	बहुपाद	चतुष्पद	द्विपद	द्विपद	द्विपद	अपद	अपद				
सौम्यादि	उग्र	सौम्य	उग्र	शुभ	शुभ	शुभ	पाप	पाप	शुभ	उग्र		

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राशि से विविधविपाय ज्ञान

वहुप्रजराशी—कर्क, वृश्चिक, मीन, । **वन्ध्याराशी**--मिथुन, सिंह, कन्या । **विषुव राशी**–कर्क, वृश्चिक **अयनराशी**—कर्क, मकर । **आध्यात्मिकराशी**—सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक । **धार्मिकराशी**—धन, मकर, कुम्भ, मीन, । **शास्त्रीयराशि** –मिथुन, तुला, कुम्भ । **जलाश्रयीराशि** -वृष, मिथुन, कन्या, कुम्भ । **निर्जलभूमि, तलस्थ राशी**—मेष, सिंह, तुला, धन । **मनुष्यराशि**--मिथुन, कन्या, तुला, धन का पूर्वाध व कुम्भ । **कीटराशि**—कर्क, वृश्चिक । **जलचरराशि**—मकर उत्तरार्द्ध मीन । **द्वित्वशरीरराशि**—मिथुन, मीन, धन का पूर्वार्द्ध । **शारीरिक-राशि**—मेष, वृष, मिथुन, कर्क । **दीर्घराशि**—सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक । **ह्लस्वराशि**—कुम्भ, मीन, मेष, वृष । **सममध्यराशि**–मिथुन, कर्क, धन,मकर, **सजल**—कर्क, कुम्भ, मकर, मीन, वृश्चिाक, तुला । **शुष्क**—मेष, वृप, मिथुन, सिंह, कन्या, धन, **ऋक्षसन्धि**—कर्क २९ अंश, वृश्चिक २९ अंश, मीन २९ अंश ।

अथ राशि संज्ञा चक्रम्

मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन
क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सोम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सोम्य
पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्भाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव
पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	पृष्ठो०	शीर्षो०	शीर्षो०	शीर्षो०	शीर्षो०	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षो०	उभयोदय
रात्री	रात्री	रात्री	रात्री	दिन	दिन	दिन	दिन	रात्री	रात्री	दिन	दिन
क्षत्री	बिप्र	वैश्य	शूद्र	क्षात्री	शूद्र	वैश्य	विद्र	क्षात्री	शूद्र	वैश्य	विप्र
अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	बायु	जल
निर्जल	जलाशय	जलाशय	कीट	निर्जल	जलाशय	निर्जल	कीट	निर्जल	वन	जलाश्रय	जल
खनिज	उद्भिज	प्राणिज	खनिज	उद्भिज	प्राणिज	खनिज	उद्भिज	प्राणिज	खनिज	उद्भिज	प्राणिज
मस्तक	मुख	स्तनमध्य	हृदय	उदर	कटि	पेडू	लिंग	जंघा	घुटना	पिंडली	पैर
भौम	भृगु	बुध	चंद्र	रवि	बुध	भृगु	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरू

अथ राशियों के रङ्ग व द्रव्य

वस्त्र	शाली	वनफल	कन्द	मुगादिधान्य	तिलहन	साठी	लौहादिधातु	शस्त्र	अश्व	स्वर्णादिधातु	जलज पुष्प
रक्त	गोरा	हरा	पाटला	पांडुर	चित्र	नीला	सुनहरा	पिंगट	कबरा	मूंगिया	फीकाश्वेत

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

गुण	सत्व	सत्व	तम	रज	सत्व	रज	तम	तम	तम		
चरादि	स्थिर	चर	चर	द्विस्वभाव	स्थिर	चर	पक्षी स्थिर	चर	पक्ष		
रस	तिक्त	क्षार	कटु	सर्वरस	वाणी मधुर	अम्ल	कषाय	कषाय	कषाय		
भूमि	जल भूमि	दग्ध भूमि	श्मशान	सुरालय	जल भूमि	उत्कार	ऊषर	ऊषर	ऊषर		
पित्तादि	पित्त	श्लेष्म	पित्त	सम धातु	सम धातु	कफ शुक्र	वायु	वायु	वायु	जलराशी	वायु
अवस्था	वृद्धा	युवा	युवा	युवा	वृद्धा	युवा	अतिवृद्ध	वृद्ध	वृद्ध		
रङ्ग	पाटल	गौर	रक्त	नील	पीत	श्वेत	नील	धूम्र	धूम्र		
धात्वादि	मूल	जीव	धातु	जीव	जीव	मूल	मूल	धातु	धातु		
स्थान	वन	जल	वन	ग्राम	: ग्राम	ग्राम	संधि	विवर	विवर		
ग्रहोंकीधातु	हड्डी	रुधिर	मज्जा	चमड़ी	चर्वी	वीर्य	रस				
जपसंख्या	७०००	११०००	१००००	९०००	१९०००	१६०००	२३०००	१८०००	१७०००		
समय	सू० उ०	संध्या	घटी २	घ० ५	सन्ध्या	सूर्योदय	मध्याह्न	रात्री	रात्री		
समिधा	अर्क (र०)	पलाश (च०)	खदिर (म०)	अपामार्ग (बु०)	अश्वत्थ (गु०)	उदुम्बर (शु०)	शमी (श०)	दूर्वा (रा०)	कुशा (के०)		
मंत्र	ॐह्रांह्रींह्रौंसः सूर्यायनमः	ॐश्रांश्रां श्रींसः चन्द्रमसेनमः	ॐक्रांक्रींक्रौंसः भौमायनमः	ॐब्रांब्रींब्रौंसः बुधायनमः	ॐग्रांग्रींग्रौंसः गुरवेनमः	ॐद्रांद्रींद्रौंसः शुक्रायनमः	ॐप्रांप्रींप्रौंसः शनयेनमः	ॐभ्रांभ्रींभ्रौंसः राहवेनमः	ॐस्रांस्रींस्रौंसः केतवेनमः		
दान	गेहूँ	चावल	मसूर	मूँग	दालचना	चावल	उड़द	तिल	तिल		
सामिग्री	गुड़	मिस्री	गुड़	खांड	खांड	मिसरी	कुलथी	सरसों	सप्तधान		
	घी	दही	घी	घी	घी	दूध	तैल	तैल	तैल		
	रक्तवस्त्र	श्वेतवस्त्र	रक्तवस्त्र	हरावस्त्र	पीतवस्त्र	श्वेतवस्त्र	कृष्णवस्त्र	नीलवस्त्र	धूम्रवस्त्र		
	रक्तपुष्प	श्वेतपुष्प	रक्तकेशर	सर्वपुष्प	पीतपुष्प	श्वेतपुष्प	कृष्णपुष्प	कृष्णपु०	धूम्रपुष्प		
	केशर	शंख	केसर	हाथीदाँत	हल्दी	सुगन्ध	कस्तूरी	खड्ग	नारियल		
	मूँगा	कर्पूर	कस्तूरी	कर्पूर	पुस्तक	दधि	कृष्णगौ	कंवल	कवल		
	रक्तगौ	श्वेतवैल	रक्तवैल	शस्त्र	घोड़ा	श्वेत घोड़ा	भैंस	घोड़ा	वकरा		
	रक्तचन्दन	श्वेतचंदन	रक्तचन्दन	फल	पीतफल	श्वेतचन्दन	उपानह	शूर्प	शस्त्र		
	ताम्र	रजत	ताम्र	कांसी	कांसी	रजत	लोहा	सीसा	लोहा		

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अज्ञात जन्म-समय को जानने का प्रकार

जिस व्यक्ति के (गर्भाधान) या जन्म का समय अज्ञात हो, उसके प्रश्न लग्न से जन्म समय समझना चाहिये। प्रश्न लग्न के पूर्वार्द्ध १५ अंश में प्रश्न हो, तो (उत्तरायण) उत्तरार्द्ध १६ से ३० अंशों में प्रश्न हो तो (दक्षिणायन) समझें ।१।। त्र्यंशांश (द्रेष्काण) द्वारा क्रमशः लग्न, ५. ६ राशि में गुरु हो, समझकर, प्रश्नकर्त्ता की आयु, के अनुसार वर्षमान समझें, अर्थात् लग्न में, प्रथम द्रेष्काण हो, तो प्रश्नकर्त्ता के जन्म समय में, लग्न की राशि में ही गुरु था, द्वितीय द्रेष्काण हो तो प्रश्न लग्न से, ५ वीं राशि में जन्मकालीन, गुरु की स्थिति समझें। तदनन्तर वर्तमान गुरु की, राशि तक गिनें, वर्ष संख्या बनायें। यह संख्या १२ से कम होगी। इतने वर्ष का, वयस् (आयु) यदि प्रश्नकर्त्ता के अनुमान से ठीक हो, तो ठीक माने, ठीक न हो, तो उस संख्या में, १२ जोड़ता जाय। जब वयस् के अनुसार वर्ष संख्या का अनुमान हो जाय, तो उस संख्या को, वर्तमान (तत्कालीन) सम्वत में से घटाने पर प्रश्नकर्त्ता का जन्म सम्वत् होगा। उस संवत् में गुरु, उस राशि का मिलेगा ही। चाहे १ वर्ष आगे हो, या पीछे, जहाँ उस राशि में गुरु मिले, वही प्रश्नकर्त्ता का जन्म-सम्वत्सर समझें। गुरु एक राशि में १ वर्ष रहता है। लग्न में सूर्य हो तो, ग्रीष्म ऋतु समझें, ऋतु सर्वथा सूर्य राशि (सौरमास) से ही लें, लग्न के द्रेष्काण में, पूर्वार्द्ध हो तो ऋतु का प्रथम मास, उत्तरार्द्ध से द्वितीय मास समझें। द्रेष्कण के पूर्व या उत्तरार्द्ध के भुक्तांशों से अनुपात द्वारा तिथि (सूर्य के गत अंशादि) का ज्ञान करना चाहिये। (अनुपात का स्पष्ट उदाहरण इसी * चिन्ह पर अग्रिम पृष्ठ (व) पर पढ़ें)।

दिन रात्रि जन्म ज्ञान—प्रश्न लग्न में दिन संज्ञक, रात्रि संज्ञक राशियाँ हों, तो विलोम क्रम से (दिन संज्ञक राशि में रात्रि और रात्रि संज्ञक राशि में दिन) जन्म का समय समझे। लग्न के अंशादि से अनुपात द्वारा इष्ट घट्यादि को समझना चाहिये। (** पृष्ठ व चिह्न का विवरण भी * से आगे (व) पृष्ठ देखें)।

जन्मलग्न-ज्ञान--केवल जन्म लग्न ज्ञानार्थ, प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे, तो लग्न से (१:५:९ में) जो भी राशि वली हो, उसी को जन्म लग्न समझें। अथवा प्रश्न काल में, वह जिस अंग का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे उस अंग की राशि, को ही जन्म लग्न समझें।

जन्मराशि ज्ञान--जन्म-राशि जानने के लिये, प्रश्न करे तो प्रश्न लग्न से जितने आगे चन्द्रमा हो, चन्द्रमा से उतने ही आगे जो राशि हो; वह प्रश्नकर्त्ता की जन्मराशि समझें।

प्रकारान्तर से अज्ञात जन्मकालादि का ज्ञान—प्रश्न लग्न वृ० सिं० २ या ५ हो, तो लग्न राश्यादि को कलात्मक बनाकर १० से गुणा करे। मि० ३ वृ० ८ हो तो ७ से, म०१०। क० ६ हो तो ५ से गुणा करे। शेष (४, ९, ११: १२) में से कोई हो, तो उसकी कला को, उसी को संख्या से गुणा करे। यदि लग्न में ग्रह हो तो, फिर उसी गुणनफल को ग्रह गुणांकों से भी गुणा करे। यथा गुरु हो तो १० से मं० ८ से, शु० ७ से, बु० ५ से०, अन्य ग्रह (र०श० और च०) हों तो ५ से गुणा करे। इसप्रकार लग्न की राशि के, अनुसार गुणन तो निश्चित ही रहता है। यदि ग्रह होतो सभी ग्रहों का गुणा करें। पृष्ठ (अ) * (अनुपात) का उदाहरण इस प्रकार है कि ब० ५ अंश की कला ३०० में तिथि ३० (अंश) हैं, तो भुक्त द्रेष्काणाधीश की कला क्या होंगी ? उत्तर—कल्पना करो, कि किसी अनाथ अज्ञात जन्म प्रश्नकर्त्ता ने संवत् २०१० ज्येष्ठ शुक्ला १५ गुरुवार में प्रश्न किया तात्कालिक लग्न, राश्यादि २।१४।४५ हैं, और गुरु राश्यादि १।१८।२।५ (वृष में) हैं। यहाँ लग्न में द्वितीय द्रेष्काण है, अत; लग्न (मिथुन) से पाँचवी, तुलाराशि में, उसके जन्म समय में गुरु हुए। प्रश्न कालिक गुरु वृष में है। जो तुला से ८ वीं, संख्या है, अतः गतवर्ष संख्या ७ हुई। इससे ज्ञात हुआ कि उसदिन से ७, १९: ३१ प्रभृति वर्ष, पूर्व गुरु तुला में हो सकते हैं। परन्तु इन (७।१९।३१) संख्याओं में, ७ संख्या ही प्रश्नकर्त्ता की, आयु के समीप की होने से निश्चित हुई। अतः प्रश्न संवत् २०१० में, ७ घटाने पर शेष २००३ जन्म संबत हुआ। राशि के पूर्वार्द्ध में, प्रश्न लग्न है। अतः जन्म उत्तरायण में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुआ। प्रश्न में द्वितीय द्रेष्काण का पूर्वार्ध होने से, बसन्त का प्रथम मास (सौरचैत्र) हुआ। प्रश्न लग्नस्थ द्रेष्काण के, गतांशादि ४।४५।० की कला २८५ को ३० से गुणा कर, ३०० का भाग देने पर लब्ध २८।३० ये मीन के, सूर्य के भुक्तांश हुए। अतः मेष से ११ शुक्रवार को मिलता है, तो वही जन्म-मास और संवत हुआ। अब इष्ट काल ज्ञानार्थ उस दिन का उदय कालिक स्पष्ट सूर्य-राश्यादि १२।२८।२५।२० तथा सूर्य गति ५८।४५ है, तो निश्चित किये जन्म कालिक सूर्य, १८।२८।३०।० और उदय कालिक सूर्य ११।२८।१५।२० के अन्तर २४।४० कला को ६० से गुणा कर, गुणनफल ८८० में सूर्य की गति ५८।४५ का भाग देने से, लब्धि १४।४६ हुई। यह जन्म के सूर्य से अधिक होने से, उदयकालान्त, इष्ट काल हुआ। इसके द्वारा तात्कालिक अन्यग्रह और लग्नादि द्वादश भावों का साधन करके, जो जन्मपत्र वनता है। वह नष्ट जन्मपत्र कहलाता है। उससे भी, असली जन्म-पत्र के समान ही फल घटित होता है। पृष्ट (अ) ** द्वितीय चिन्ह (दिन-रात्रि-जन्म ज्ञान) के अनुपात ३० अंश में दिनमान या रात्रिमान की घटी, तो लग्न भुक्तांश में क्यों ? यह स्पष्ट किया जा चुका हैं। ज्योतिर्विद गहनता से इस पर और भी अन्वेषण करते हुए लोक-कल्याणार्थ पथ प्रदर्शन का प्रयास करें।

काल पुरुष ज्ञान—काल पुरुष के क्रमशः (मेषादिक से) मस्तक, मुख, बाहु, हृदय, उदर, कटि, वस्ति (पेडू) लिङ्ग, ऊरु, जानु, जंघा और दोनों चरण होते हैं। मं० शु० बु० चं० सू० बु० शु० मं० गु० श० श० गु० इनके स्वामी हैं। विषम राशि में, पहिले सूर्य की, सम राशि में पहिले चन्द्रमा की, फिर चन्द्र, सूर्यों की होरी बीतती है। आदि के १० अंश में, उसी का द्रेष्काण, उस राशि के स्वामी ही, द्रेष्काण के स्वामी हैं। ११ से २० अंश में उस राशि से ५ वीं रात्रि का द्रेष्काण और उसके स्वामी द्रेस्काण के स्वामी होते हैं। २१ से ३० अंशों में ३ द्रेष्काण उस राशि से ९वीं राशि का द्रेष्काण, और उसी राशि के स्वामी, उस द्रेष्काण के स्वामी होते हैं। विषम राशि में प्रथम ५ अंश तक भौम, फिर ५ अंश शनि, फिर ८ अंश तक गुरु, फिर ७ अंश तक बुध और अन्तिम ५ अंश तक शुक्र त्रिशांशेश कहे गये हैं। सम राशियों में, इसके विपरीत क्रम से, पहिले ५ अंश तक शुक्र, ७ अंश तक बुध, ८ अंश गुरु ५ अंश में भौम, त्रिशांशेश कहे गये हैं। जितने ग्रह हों, सबके गुणक से गुणा करना चाहिये। इस प्रकार गुणनफल को ध्रुव पिण्डमान उसको ७ से गुणा कर २७ से भाग दें। १ आदिशेष के अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्र समझें। इसमें विशेषता केवल यही है कि उपर्युक्त आई हुई संख्या में, कभी ९ जोड़कर, कभी ९ घटाकर, नक्षत्र लिया जाता है। प्रश्न लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो ९ जोड़कर, तृतीय द्रेष्काण हो तो ९ घटाकर, मध्य द्रेष्काण हो तो यथा प्राप्त नक्षत्र ग्रहण करें। उक्त ध्रुव पिण्ड को, १० से गुणा करके, गुणनफल से वर्ष, ऋतु, और मास समझें। गुणनफल में, १२० का भाग दें, शेष तुल्य वर्ष, इसी गुणनफल को, ६ का भाग देने से शेष, शिशिरादि ऋतु, इसी गुणनफल में १२ से भाग देने पर शेष तुल्य, चैत्रादि मास समझे। पक्ष और तिथि ज्ञानार्थ, उक्त ध्रुव पिण्ड को, ८ से गुणा कर, २ से भाग देने से शेष १ मुक्ल, २ से कृष्णपक्ष समझें। गुणनफल में ९ जोड़ या ९ घटाकर द्रेष्काण के हिसाव से भाग दें। पक्ष ज्ञानान्तर गुणनफल में, १५ से भाग दें, शेष प्रतिपदादि तिथि जानें। ध्रुव पिण्ड को ७से, गुणाकर २ से भाग दें, १ शेष से दिन, २ से रात्रि समझें। लग्न, नवांश, इष्ट घड़ी तथा होरा ज्ञानार्थ ध्रुवपिण्ड को, ५ से गुणा करके, लग्न के लिये, १२ से, (१) 'इष्टघटी' के लिये ६० से, अथवा दिन या रात्रि ज्ञान होने पर, दिन-मान या रात्रिमान घटी से, नवांश के लिये ९ से, होरा के लिये २ से भाग दें, शेष द्वारा क्रमशः सवका ज्ञान करें।

इष्टघटी उदाहरण--संवत २०१० चै० शु० ५ गु० को, आनुमानिक ३० वर्ष वाले व्यक्ति ने, अज्ञात जन्म समय जानने के लिये प्रश्न किया। उस समय लग्न २ राश्यादि १।५।२९ हैं। लग्न में कोई ग्रह नहीं है, तो लग्न राश्यादि की २१२९ कला को, वृष लग्न को गुणकांक १० से, गुणा करने पर, २१२९० ध्रुव पिण्ड हुआ। गतवर्ष ज्ञानार्थ, इस ध्रुव पिण्ड को पुनः ११ से गुणा किया, गुणनफल २१२९९०० में १२० भाग देने से, शेष २० वर्ष संख्या हुई, वह पूर्व अनुमान ३० से कम है। अतः लग्न में प्रथम द्रेष्काण होने के कारण आगत शेष २० में ९ जोड़ने से २९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुआ' यही सम्भावित गत वर्ष हुए। इस संख्या को, उक्त सं० २०१० से घटाने पर शेष १९८९ यह प्रश्नकर्त्ता का जन्म संवत् हुआ। इसी भांति दस गुणित ध्रुव पिण्ड में, ९ जोड़ा, तो २१२९०९ हुआ। इसमें २ का भाग देने से, ५ शेष से चैत्र से ५ वाँ, श्रावण का जन्म मास हुआ। पक्षज्ञानार्थ, ध्रुवपिण्ड २१२९० को, ८ मे गुणन फल १७०३२० में ९ जोड़े, २ का भाग देने पर १ शेष रहने के कारण, शुक्ल पक्ष हुआ। तिथि ज्ञान के लिये उसी अष्ट गुणित एवं नौयुक्त, ध्रुवपिण्ड १७०३२९ में, १५ से, भाग देने पर, शेष ४ चतुर्थी तिथि हुई। इष्ट घटी ज्ञान के लिये, ध्रुवपिण्ड २१२९० को, ५ से गुणा कर, ९ को १०६४५९ में ६० का भाग देने पर, शेष १९, इष्ट घटी हुई। अत: सं० १९८१ श्रावण शुक्ला ४ की, गतघटी १९ (घड़ी वीतने पर) प्रश्नकर्ता का जन्म समय निश्चित हुआ। इसी भांति पृष्ठ (अ) के चिन्हों **** के क्रमश; उदाहरण पृष्ठ (ब) पर दिये गये हैं समझें। इसके उपरान्त होरा, द्रेष्काण नवांश, द्वादशाँश को चित्रों द्वारा समझें। उनका उल्लेख पीछे आ चुका है। मेषादि के नवाँश, मेष, मकर, तुला, कर्क से प्रारम्भ होते हैं यथा (१ : ५ : ९ के मेष से) २ : ६ : १० के, (मकर से), (३ : ७ : ११ के), तुला से, (४ : ८ : १२) के, नवाँश कर्क से। २।। अंश के द्वादशांश होते हैं। ये अपनी राशि से, प्रारम्भ होकर, अन्तिम राशि पर पूरे होते हैं, उन २ को स्वामी ही द्वादशाँशेश के होते हैं। ये होरादि ही षड्वर्ग कहलाते हैं। इनमें राशियाँ— वृ. २ : म :१: ध ; ९ : क : ४ : मि : ३ ; म : १० रात्रि संज्ञक, रात्रिवली, पृष्ठोदय कहलाते हैं। किन्तु इनमें मिथुन शीर्षोदय है शेष सि ५ क ६ : तु ७ : वृ ८ : कु ११ : मी १२ दिन संज्ञक, दिनवली, शीर्षोदय हैं, परन्तु मीन उभयोदय है। इनमें विषम में, मि ३ : सि ५ : तु ७ : ध ९ : कु ११ क्रूर, सम २ : क ४ : क ६ : वृ ८ : म २० : मी २२ सौम्य हैं। ये क्रमशः पु० स्त्री नपु० होती हैं। ये मेषादि ही चर, स्थिर, द्विस्वभाव क्रमशः होती हैं। मे १ : सिं ५ : ध९ पूर्व वृ २ : क ६ मी १२ दक्षिण, मि ३ तु ७ : कु : ११ पश्चिम क ४ : वृ ८ : मी १२ उत्तर में स्थित हैं। उच्च के ग्रह र १, २ च, १० मं ६ बु०, ४ गु, १२ शु०७ श०। परमोच्च, र १(१० अं)चं २(३ अंश), १० मं(२८ अं)६वु(१५ अं), ४ गु(५अ) १२ शु (२७ अं), ७श (२० अंश) के होते हैं। इन उच्च से ७ वीं राशि में अस्त (नीच) के होते हैं। में १ : क ४ तु ७ : म १० चर में, पूर्व नवाँश वर्गोत्तम, वृ २ : सिं ५ : वृ ८ : कु ११ स्थिर में मध्य (पांचवां) नवमाँश, मि ३ : क ६ : ध ९ : मी १२ द्विस्वभाव में अन्तिम (नवाँ) नवमाँश वर्गोत्तम है। र. का (५) चं (२), मं (१), बु० (६) गु (९) शु० (७), श० (११) "मूलत्रिकोण" कहलाते हैं। ४। ८ भाव चतुरस्र। ९।५ "त्रिकोण", १२ : ८ : ६ त्रिक १ : ४ : ७ : १० केन्द्र। द्विपद १, जलचर ४, कीट ७, पशु १०, ये राशियाँ क्रमशः केन्द्रादि में 'बली' होती हैं। २ : ५ : ८ ११ भाव "फणपर" ० : ३ : ६ : ९ : १२ आपोक्लिम कहे हैं। १ रक्त, २ श्वेत, ३ शुक्र जैसा, हरित, ४ पाटल (गुलावी) ५ धूम्र, ६ गौर, ७ चितकबरा, ८ कृष्ण, ९ पीत, १० पिङ्ग, ११ नेवले के सदृश, १२ स्वच्छ वर्ण के कहे हैं। सभी राशियाँ स्वामी की दिशाकी ओर, झुकी रहती हैं। सूर्याश्रित राशि से दूसरेका नाम 'वेशि' कहा गया है। इन मेषादि राशियों के, रूप गुण, आदि तथा सूर्य आदि ग्रहों के, जाति, शील आदि बोधक चक्र देखें होरा; द्रेष्काण नवांश, द्वादशाँश ज्ञानार्थ चक्रों से विचार करें। अथर्ववेद, काण्ड १९ सूक्त ५३. ५४ में अगुत्तथ्य रूप में वर्णित अनादि, अपौरुषेय "**काल**" के सन्दर्भ में ज्योतिष नामक वेदाङ्ग जो ४ लाख श्लोकों में वर्णित, तीन स्कन्ध गणित (सिद्धान्त) जातक (होरा) और संहिता रूप में विभक्त-वेदत्रयी का नेत्रस्थानीय अङ्ग है जिसके ज्ञान से ही भूत. वर्तमान, भविष्य का आनुपूर्वीज्ञान, आधिदैविक आधिभौतिक, आध्यात्मिक, कायज, कर्मज, पापज, भव-व्याधि, आधि विविध उत्पात या माङ्गलिक वस्तु स्थिति का त्रैलोकी का ज्ञान सम्भव है, इसका उल्लेख इस शौनकीय शाखोक्त "कर्मजभवव्याधि-दैवी-चिकित्सा। में उल्लिखित विविध शान्ति विधियों से पूर्ण, अमंगल के निदानार्थ संक्षिप्त रूप में वर्णन, आवश्यक, अनिवार्यता, विना इसके व्याधि का निदान असम्भव था। ये व्याधियाँ प्राण, सूक्ष्म, वासना तथा स्थूल देहों तथा उनसे भी पृथक रहते हुए अपना भला बुरा प्रभाव प्राणियों पर डालती हैं। ये स्थूल कार्य चिकित्सा से सर्वथा भिन्न, उससे परे का, परन्तु उस पर प्रभाव डालने वाली हैं ये सभी स्वतः सामान्य महर्षियों की अनुभूत, विश्वस्त, निष्ठा, विश्वास, विशुद्ध संकल्प तथा विधिवत अनुशरणीय, अनुसन्धाननीय हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चोर विज्ञान (अ० कां० २ सू० २४ के सन्दर्भ से)—(१) प्रश्न लग्न स्थिर हो या स्थिर के नवांश में प्रश्न लग्न हो, अथवा अपने वर्गोत्तम नवमांश की, प्रश्न लग्न राशि हो, तो वन्धु, स्वजातीय उच्चजातीय या दास को चोर समझें। (२) प्रश्न लग्न प्रथम द्रेष्काण में हो, तो चोरी की वस्तु घर के द्वार के समीप है द्वितीय द्रेष्काण हो तो घर के मध्य, तृतीय द्रेष्काण में हो तो घर के पीछे भाग में। (३) लग्न में पूर्ण चन्द्र हों, उस पर गुरु की दृष्टि हो, तथा शीर्षोदय ३।५।६।८।।११ लग्न हो, लग्न में बलवान और शुभग्रह स्थित हो, और लग्नेश सप्तमेश, दशमेश लाभेश, बलवान चन्द्रमा, परस्पर मित्र हों, या इत्थशाल आदि शुभ योग करते हों, तो गई वस्तु पुनः प्राप्त हो जाती है। (४) वली या पूर्ण चन्द्र लग्न, शुभग्रह, शीर्षोदय (३।५।६।७।८।११) या ११ वें हो, शुभाग्रह से युत या दृष्ट हों, तो नष्टधन या चोरी गया धन, मिल जावेगा। पूर्णचन्द्र लग्न में हो, गुरु या शुक्र की दृष्टि हो, अथवा शुभग्रह ११ वें, हों तो वस्तु मिलेगी। (५) प्रश्न लग्न में, जो ग्रह केन्द्र में हों, उसकी दिशा, चोरी की वस्तु गई, समझे। यदि केन्द्र में दो या बहुत से ग्रह हों, तो उनमें से जो वली हों, उसकी दिशा में, नष्ट धन समझे। यदि केन्द्र में ग्रह न हों, तो लग्न राशी की, दिशा में, चोरी गई वस्तु समझे। (६) सप्तम स्थान में, शुभ, ग्रह हो, या लग्नेश सप्तम में हो, अथवा, क्षीण चन्द्रमा सप्तम में हो, तो चोरी गई या भूली हुई वस्तु नहीं मिले। सप्तमेष और चन्द्रमा सूर्य के साथ हों, तो चोरी गई या भूली वस्तु नहीं मिले। ३।५।७।११ वें भावों में शुभ ग्रह हों, तो प्रश्नकर्त्ता की खोई, या भुलाई वस्तु या धन मिल जाता है। (७' लग्न पर सूर्य चन्द्रमा की दृष्टि हो, तो चोर आत्मीय जन होता है। लग्नेश और सप्तमेष, लग्न में हों, तो कुटुम्वी चोर होता है। सप्तमेश २।१२ वें, स्थान में हो तो, नौकर चोर हो। (८) प्रश्न लग्न मेष हो, तो ब्राह्मण, वृष हो तो क्षत्री, मिथुन हों तो वश्य, कर्क हो तो शूद्र, सिंह हो तो अन्त्यज, कन्या हो तो स्त्री, तुला हो तो पुत्र, भाई या मित्र, वृश्चिक हो, तो नौकर, धन हो, तो स्त्री भाई, मकर हो तो वैश्य, कुम्भ हो तो मनुष्येतर, चूहा आदि मीन हो तो, वैसे ही भुलाई हुई समझे। (९) नाम—प्रश्न लग्न, चर हो तो, दो अक्षर के नाम वाला, स्थिर हो तो, चार अंक्षर नाम वाला, द्विस्वभाव हो तो, तीन अक्षर नाम वाला, चोर समझे। (१०) प्रश्न लग्न चर हो, तो चोर के नाम का प्रथम अक्षर संयुक्त हो। (द्वाः क्षेः व्र० त्रिआदि) स्थिर हो तो कृदन्त–पदसज्ञक, वर्णवाला (मंगल भवानी आदि २) द्विस्वभाव हो, तो स्वर वर्ण, चोर के नाम का आदि अक्षर होता है। (अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं) स्वरूप लग्न के द्रेष्काण के अनुसार होता है।

प्रश्न लग्न से चोर और चोरी की वस्तु ज्ञान—(१) चोरी की वस्तु मेष लग्न में जावे या प्रश्न लग्न मेष हो, तों चोरी की वस्तु पूर्व में–चोर ब्राह्मण नाम स अक्षर से प्रारम्भ समझे। नाम के अक्षर दो या तीन हों। (२) वृष में चोरी गई हो, बा प्रश्न लग्न वृष हो, तो चोरी की वस्तु पूर्व में, चोर क्षत्रिय जाति नाम का आदि अक्षर "भ" नाम के अक्षर चार हों। (३) मिथुन में चोरी गई या प्रश्न लग्न मिथुन हो तो चोरी की वस्तु आग्नेय में चोर वैश्य जाति का आदि नाम का अक्षर क कार से प्रारम्भ हो वर्ण ३ हों। (४) कर्क में चोरी हो, या प्रश्न लग्न कर्क हो तो, वस्तु दक्षिण में चोर शूद्र नाम के आदि के अक्षर तकरादि, से प्रारम्भ हों तीन वर्ण का नाम हो। (५) सिंह में चोरी हो, या प्रश्न लग्न सिंह हो, तो वस्तु नैऋत्य में चोर सेवक अन्त्यज या निम्न श्रेणी का नाम नकारादि, से प्रारम्भ हो वर्ण ३ या ४ का नाम होता है। (६) कन्या लग्न में चोरी हुई हो, या प्रश्न लग्न कन्या हो, तो चोरी की वस्तु पश्चिम में, चोरी नारी नाम मकरादि से प्रारम्भ हो–कई वर्ण का नाम हो कन्या लग्न में बुध और चन्द्रमा के नवांश हों तो ब्राह्मणी चोर, मंगल का नवांश हो, तो क्षत्रियाणी; शुक्र का नवांश हो, तो वैश्य जाति की नारी शनि रवि का नवांश हो, तो शूद्रा या अन्त्यज जाति, की स्त्री चोर होती है। (७) तुल लग्न होने पर पश्चिम में, चार, पुत्र, मित्र, भाई या अन्य सम्बन्धी नाम मकार, से प्रारम्भ हो, वर्ण ३ हों। तुल लग्न में गुरु, चन्द्र और बुध का नवांश हो, तो चोरी बाला परिवार का, मंगल रवि के नवांश में, दूर का सम्बन्धी, शनि का नवांश हों, तो आया हुआ अतिथि, या अन्य परिचित, (केवल जान-बूझ का) वस्तु कठिनाई से ही प्राप्त होती है। (८) वृश्चिक लग्न की, चोरी पश्चिम में,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घर से १०० या १५० गज चोर घर का नौकर--नाम सकार से प्रारम्भ हो-अक्षर चार हों। इस लग्न का नवांश गुरु या शुक्र का हो, तो वस्तु मिल जाय, चोर उत्तम वर्ण का। बुध के नवाश में चोर पड़ौस का, गौरवर्ण का कद ५ फुट ६ इंच, सुन्दर और भव्य और बातूनी हो। ९-धनु लग्न हो, या धनू की चोरी हो, तो वस्तु वायु कोंण में चोर स्त्री नाम सकार से प्रारम्भ हो वर्ण ४ हों—मंगल के नवाँश में युवती-बुध के नवांश में कन्या द्वारा, चोरी की जाती है शुक्र के नवांश में, चोर ७ : ८ वर्ष का ब्राह्मण या अन्त्यज बालक द्वारा धनु लग्न के होने पर गुरु ५।९।१।४।७।१० में हो, शनि का नवांश हो, तो चोर स्त्री पुरुष दोनों ने मिलकर की, पुरुष का ना **ह** या **र** अक्षर से प्रारम्भ हो, नारी का **स** से वस्तु प्रायः मिलती नहीं। यदि प्रश्नकाल में धनु लग्न के, अन्तिम ६ अंश शेष हों, तो प्रयास से मिलती है १०--मकर लग्न या १० का नवांश हो, तो वस्तु नहीं मिलती. गुरु का नवांश हो तो धर्मस्थान-मन्दिर, कूप, तीर्थ में समझें। ११--कुम्भ से उत्तर या वायव्य में वस्तु हो, चोर मूषक हो, १ मासमें मिल सकती है कुम्भ में बुध का नवांश हो, तो चक्की या चारपाई आदि के पीछे। शुक्र या चन्द्रमा के नवांश हों, तो शयन कक्ष या उसके बगल वाले यकान मैं समझें। १२--प्रश्न लग्न १२ या मीन लग्न में चोरी हो, वस्तु ईशान कोण में--शूद्र या अन्त्यज चुराकर, भूमिगत करता है इनका नाम **व** अक्षर से प्रारम्भ होता है, अक्षर नाम के ३ होते हैं। मीन लग्न में तीसरा नवांश हो तो चोर स्त्री (नौकरानी) या परिचित महिला होती है।

वर्णानुसार चोर या चोरी की वस्तु का ज्ञान

प्रश्न काल में फल, पुष्प, देव, नदी, तीर्थ और पर्वत में से, किसी का उच्चारण कराये, प्रश्नाक्षर ग्रहण करें–यदि प्रश्नकर्त्ता—प्रातः आये तो, पुष्प का नाम, मध्यान्ह में आये फल अपरान्ह में देवता का सायं काल नदी या पर्वत का नाम पूछकर–अक्षर ग्रहण करें—फल निम्न समझें अवर्ग के वर्ण प्रश्नाक्षर हों। या प्रश्नाक्षरों में अवर्ग के वर्णो की प्रधानता हो तो चोर ब्राह्मणी हो वस्तु मिले। क वर्ग हो या प्रश्नाक्षरों में क वर्ग की प्रधानता हो तो चोर क्षत्री हो–चोर दो होते हैं–वस्तु दूर पहुंचती है। प्रयास से मिल सकती है। चोरों का कद मध्य हो, एक के दाहिने, अङ्ग में, अस्त्र की चोट का चिन्ह हो या लगड़ा होता है। च वर्ग के प्रश्नाक्षरों से, वैश्य, कायर, व्यसनी, सन्तानहीन और दुराचारी होता है। ट वर्ग के वर्ण प्रश्नाक्षर हों या प्रश्नाक्षरों में ट वर्ग की प्रधानता हो, तो चोर शूद्र नपुंसक-पुराना जिसका विश्वास हो, आया हो, गाल या मस्तक पर, तिल का निशान होता है। त वर्ग का अन्त्यज चोरी में २ या ३ की सम्मति या सहयोग होता है। यह विश्वसनीयजनों से मिलकर की जाती है, चोरी घर से आधा मील बीच ही रहती है –व्यय और श्रम से मिल जाती है। **प** वर्ग में घर की दासी या नौकरानी होती है, सामान मिल जाता है, निम्न वर्ग की ४० या ४५ वर्ष की होती है, इसकी जानकारी घरवालों को रहती है। **य** वर्ग में चोर शूद्र प्राय घर का नौकर या परिचित होता है–वह किसी घर की नौकरी से भी सम्पर्क करता है, वही चोरी में सहायक होती है **श** वर्ग के प्रश्नाक्षर हों तो चोर वैश्य, गञ्जा सा, शिर के बाल झड़े होते हैं, कद मध्यम अवस्था ३५ या ४० के बीच हो, चोर अपने व्यवसाय में दक्ष अभ्यस्त होता है, उसके दाहिने कन्धे पर लहसुनादि चिन्ह होता है। यह अथर्व वेद काण्ठ २ सूक्त २४। शेरभक शेवृध ॥ के सन्दर्भ गत विज्ञान है।

सन्तति-विज्ञान—गुरु सन्तान कारक ग्रह हैं। सन्तान का विचार जन्म लग्न, प्रश्न लग्न से पंचम स्थान और चन्द्रमा उन लग्नों से जहाँ भी हो उससे पंचम स्थान से करें। १, गुरु पञ्चम भाव, पञ्चमेश शुभ ग्रह युक्त या दृष्ट हों तो सन्तति हो। २, लग्नेश पञ्चम भाव में हो, और गुरु बलवान हों, तो सन्तति होती है। ३. बली गुरु, लग्नेश से दृष्ट हो, तो प्रबल सन्तति योग होता है। ४. सन्तान (५ वें) भाव पर मंगल, और शुक्र की एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद दृष्टि हो। ५. १; ४; ७; १०; ५; और ९ वें भावों के स्वामी शुभ ग्रह हों, और उनमें से कोई पंचम भाव में बैठा हो। तथा पञ्चमेश ६।८।१२ भाव में न हो, पाप युक्त; अस्त; या शत्रु राशिगत न हो, तो सन्तान सुख हो। ६. पञ्चम में २; ७, ४ वृष, तुला, कर्क में से कोई राशि हो, ५ वें शुक्र या चन्द्र हो अथवा इनकी दृष्टि हो, तो बहुपुत्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योग होता है। ७. लग्न या चन्द्रमा से ५ वें भाव में शुभ ग्रह हो, या ५ वाँ भाव शुभ ग्रहों से दृष्ट हो, या पञ्चमेश से दृष्ट हो, तो सन्तान योग होता है। ८. लग्नेश, पञ्चमेश एक साथ हों, या परस्पर दृष्ट हों, अथवा दोनों स्वगृही मित्र-गृही, या उच्च के हों, तों प्रवल सन्तति योग समझें। ९. लग्नेश, पञ्चमेंश शुभ ग्रह के साथ होकर, केन्द्र १;४;७; १०वें स्थानों में हों और द्वितीयेश बली हो, तो सन्तान योग होता है। १०. लग्नेश और पञ्चमेश दोनों सप्तम भाव में हों, अथवा द्वितीयेश लग्न में हो, तो सन्तान योग होता है। ११. पञ्चमेश के नवांश का स्वामी, शुभ ग्रह से युत और दृष्ट हो, तो सन्तान योग होता है। लग्नेश और पञ्चमेश १।४।७।१० स्थानों में, शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो, तो सन्तान योग होता है। १२. पञ्चमेश और गुरु बलवान हो तथा लग्नेश पञ्चम भाव में हो, सप्तमेश के नवांश का स्वामी लग्नेश तथा धनेश, और नवमेश, इन तीनों से दृष्ट हो, तो सन्तति योग होता है। १३. पञ्चम भाव में २।४।८।१०।१२ राशियाँ, और इन्हीं राशियों के नवांश शनि, बुध, शुक्र या चन्द्रमा से युत हों तो कन्यायें अधिक तथा पञ्चम भाव में १।३।५।७।९।११ राशियाँ, तथा इन राशियों के नवांशाधिपति मगल, शनि और शुक्र से दृष्ट हों, तो पुत्र सन्तति अधिक हों। १४. पञ्चमेश २।८ भाव में हो, तो कन्यायें अधिक हों। १५. १२ वें बुध; शुक्र; या चन्द्रमा में से कोई हो, तो कन्यायें अधिक हों। १६. बुध, चन्द्र और शुक्र में से, एक भी ५ वें गया हो, तो कन्यायें अधिक हों। १७. पञ्चम में मेष, वृष, और कर्क में से, किसी पर केतु हो तो सन्तान लाभ हो।

प्रश्न लग्न में विशेष—१. प्रश्नकर्त्ता की तिथि संख्या को, ४ से गुणा कर, १ जोड़ें; योग में दिन संख्या, विष्कम्भादि योग संख्या जोड़ें, और योग में, २ का भाग दें। लब्धि को ३ से, गुणा कर ४ से भाग दें। १ शेष हो, तो विलम्ब से, दो शेष हो, तो अभाव; ० शेष से शीघ्र सन्तति लाभ समझें। २. दिन संख्या को ३ से गुणा करें उसमें तिथि जोड़ ले, याग में दो का भाग दें १ शेष हो, सन्तति लाभ ० शेष हो, अभाव समझें। ३. प्रश्न, जन्म और चन्द्रमा से पञ्चम में सिंह, वृष, वृश्चिक या कन्या राशियाँ हों, तो विलम्ब से सन्तान हो। ४. यदि प्रश्न से ५ वे पाप युति या दृष्टि हो, तो विलम्ब से सन्तति लाभ हो। ५. प्रश्न से ८ वे सिंह, मकर या कुम्भ में रवि, और शनि हों, तो सन्तति अभाव। ६. प्रश्न से ८ वें चन्द्र और बुध हों, तो विलम्ब से, १ सन्तति लाभ, चन्द्र बली हो, तो कन्या। ७. प्रश्न से ८ वें केवल बुध हो, तो सन्तान अभाव। ८. प्रश्न से ८ वें शुक्र और बुध हों, तो सन्तति होकर मर जाय। ९. प्रश्न से ८ वें मगल हो, तो गर्भपात हों। १०. प्रश्न लग्न से अष्टमेश अष्टम में हो, तो सन्तति नहीं होती है। ११. प्रश्न से ८वें शुक्र और सूर्य हों, तथा दूसरे, बारहवें और आठवें, पाप ग्रह हों, तो सन्तान अभाव तथा प्रश्नकर्त्ता को कष्ट समझें। १२. प्रश्न से बारहवें, का स्वामी १।४।७।१० में हो, और मुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो, तो दीर्घजीवी १ पुत्र हो। १३. पञ्चमेश, लग्नेश, मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुम्भ में से किसी में हों, तो १ पुत्र लाभ हो। यदि उक्त ग्रह वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन में से किसी में हों तो कन्या हो। १४. लग्नसे विषम स्थान १।३।५।७।९।११ वें स्थान में, शनि हो तो पुत्र और यदि सम २।४।६।८।१०।१२ वें स्थान में हो तो कन्या हो। १५. प्रश्न से ५ वें का स्वामी; लग्नेश या चन्द्रमा से, इत्थशाल करता हो, और शुभ से युत या दृष्ट हो, तो सन्तान लाभ हो।

गर्भस्थ सन्तान का लिङ्ग ज्ञान—१. प्रश्न से लग्न में रवि, गुरु, या भौम हो या ये ग्रह ३।५।७।९ वें स्थान में हों, तो पुत्र, अन्य कोई ग्रह हो तो कन्या। २. प्रश्न लग्न विषम राशियाँ, विषम नवांश में हो, और लग्न में रवि, गुरु चन्द्र बली हों तो पुत्र। समराशि या सम नवांश में, ये ग्रह हों तो कन्या, परन्तु विषम में गुरु या रवि हों, तो पुत्र। चन्द्र, शुक्र और मंगल, समराशि में हों, तो कन्या हो, ये तीन योग हैं। ३. प्रश्न लग्न को छोड़, अन्य विषम स्थान में शनि हो तो पुत्र। द्विस्वभाव लग्न पर बुध की दृष्टि हो, तो यमल (जुड़वाँ) सन्तति हो। ४. प्रश्न लग्न पुरुष राशि हो, और बली पुरुष ग्रह से युत या दृष्ट हो, तो पुत्र। समराशि हो और स्त्री ग्रह से, युत या दृष्ट हो तो कन्या हो। ५. प्रश्न से पञ्चमेश, और लग्नेश सम राशि में हो, तो कन्या, विषम राशि में हो, तो पुत्र हो। ६. पुरुष ग्रह–र, म, गु, बली हों तो पुत्र जन्म; स्त्री ग्रह–चं, शु, बली हों तो कन्या जन्म हो। ७. प्रश्न कुण्डली में ३।६।५।११ वें

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थान में र. मं, गु, हो तो पुत्र अथवा ५।६ भाव में बली गुरु हो, तो पुत्र जन्म हो । ८. प्रश्न दिन संख्या, शुक्ल प्रतिपदा से उस दिन तक की तिथि संख्या; प्रहर संख्या; नक्षत्र संख्या को जोड़ें, १ घंटायें, ७ का भाग दें, शेष विषम १।३।५।७ रहें तो पुत्र, २ : ४ : ६ रहें तो पुत्री । ९. गर्भिणी नामाक्षर–प्रश्न तिथि तथा योग में १५ जोड़ें । योग में ९ का भाग दें, १ : ३ : ५ : ७ : ९ शेष रहें, तो पुत्र सम २ : ४ : ६ : ८ रहें तो कन्या हो । १०. प्रश्न तिथि बार-नक्षत्र तथा गर्भिणी के नाम के अक्षर जोड़ ७ का भाग दें–शेष १ से रवि, २ से सोम के क्रम से यदि र, भौ, गु. आयें तो पुत्र शुक्र, चन्द्र, बुध आयें तो कन्या, शनि आये, तो क्षीण सन्तति समझें । ११. प्रश्न काल में प्रश्नकर्त्ता अपने दायें अंग को स्पर्श करे, तो पुत्र, बायें को स्पर्श कर पूछे, तो कन्या जन्म समझें ।

सन्तान योग-विचार :—१. अनपत्य योग :—जन्म लग्न, प्रश्न लग्न में सर्व ग्रह निर्बली (नीच, शत्रु राशि में या अस्तंगत तथा ६।८।१२ स्थान में गये हों अथवा षड्बलहीन-बली) हों तो पुत्र या पुत्री कोई भी सन्तान नहीं होवे । २. **गर्भानुत्पाद योग** :—लग्न में सूर्य, सातवें शनि गये हों, अथवा सातवें भाव में रवि, शनि गये हों और दशवें भाव को गुरु देखें तो गर्भ उत्पन्न नहीं होता ।। १ ।। छठे अथवा चौथे भाव में शनि, मंगल का योग हो तो गर्भोत्पत्ति न हो ।। २ ।। छठे भाव का स्वामी और शनि, ये दोनों छटे भाव में हों, सातवें चन्द्र हो तो गर्भोत्पत्ति नहीं होती ।। ३ ।। ३. **गर्भच्युति योग** :— पञ्चम भाव (र० मं० श० रा० के० ह० ने० प्लूटो और इनसे युक्त, दृष्ट बुध) और शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो गर्भपात हो जावे ।। १ ।। पञ्चम भाव में जिस राशि का नवांश हो, उस राशि को कोई शुभ ग्रह न देखे, और जितने पाप ग्रह देखें, उतने ही गर्भपात हों ।। २ ।। ४. **सर्प के शाप से विपुत्र योग** :—पञ्चम भाव में गया हुआ राहु, मंगल से दृष्ट हो, अथवा पञ्चम भाव में मंगल की राशि १।८ में राहु गया हो, सर्प के शाप से पुत्र नहीं होता ।। १ ।। पञ्चम भाव में गया हुआ शनि चन्द्र से दृष्ट हो, और पञ्चमेश राहु से युत हो तो सर्प के शाप से पुत्र नहीं होता ।। २ ।। पञ्चम भाव का स्वामी बुध–मंगल से युत होकर–मंगल के ही नवांश में गया हो और राहु गुलिक=लग्न में गये हों, तो सर्प के शाप से पुत्र न हो ।। ३ ।। पुत्र कारक ग्रह (गुरु) राहु से युत या दृष्ट हो, पञ्चमेश निर्बली हो, और लग्नेश मंगल से युत हो तो सर्प के शाप से पुत्र न हो ।। ४ ।। पुत्र कारक ग्रह (गुरु) मंगल से युत हो, लग्न में राहु और पञ्चमेश ६।८।१२ भाव में गया हो, तो सर्प के शाप से पुत्र न हो ।। ५ ।। पञ्चमेश भाव का स्वामी, मंगल हो और पञ्चम भाव में गया हुआ राहु, बुध से युत, या दृष्ट हो तो सर्प के शाप से—पुत्र न हो ।। ६ ।। पञ्चमेश और लग्नेश ये दोनों निर्बली हों, पञ्चम भाव सब पाप ग्रह और बुध, गुरु से युत होकर पञ्चम में हों (पांचवें–र० मं० श० रा० बु० गु०) हों तो सर्प के शाप से पुत्र न हो ।। ७ ।। लग्नेश राहु से, पञ्चमेश मंगल से युत या दृष्ट हो और पुत्र कारक ग्रह (गुरु) राहु से दृष्ट हो तो सर्प शाप से सन्तति नहीं होती ।। ८ ।।

पितृ शाप से विपुत्र योग :—१. पञ्चम भाव का स्वामी सूर्य ९वें तथा ५वें भाव में पाप ग्रहों के बीच में गया हो और पाप ग्रहों से युत; दृष्ट हो तो पितृ के शाप से पुत्र न हो । २. पञ्चम भाव में नीच राशि का सूर्य, शनि के नवांश (तुल राशि ४, पाँचवें नवांश–१।११) में गया हो, और पाप ग्रहों के मध्यम में स्थिति हो तो पितृ के शाप पुत्र न हो । ३. सिंह राशि में गुरु गया हो, पञ्चमेश सूर्य से युत, या दृष्ट हो, और पञ्चम भाव, व लग्न में पाप ग्रह गये हों, तो पितृ के शाप से पुत्र न हो । ४. आठवें भाव में रवि, व पञ्चम भाव में शनि गया हो, और पञ्चमेश राहु से युत, या दृष्ट हो तो पितृ के शाप से पुत्र नहीं होवे । ५. बारहवें भाव का स्वामी लग्न में, अष्टम भाव पञ्चम भाव में और दशम भाव का स्वामी आठवें भाव में गया हो तो पितृ शाप से पुत्र न होवे ।

मातृ शाप से विपूत्र योग :—१. पञ्चम भाव का स्वामी चन्द्रमा नीच राशि का हो, अथवा पाप ग्रहों के मध्य में (पाप कर्तरी में) हो, और चतुर्थ व पञ्चम भाव में पाप ग्रह गये हों तो माता के शाप से पुत्रहीन हो । २. लाभ भाव में शनि व चतुर्थ भाव में २–३ पाप ग्रह गये हों, और पञ्चम भाव में नीच राशि (८) का चन्द्रमा गया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो तो माता के शाप से पुत्र न हो। ३. पञ्चमेश ४।८।१२ भाव में गया हो, लग्नेश नीच राशि का हो और चन्द्रमा पाप ग्रह से युत, या दृष्ट हो तो माता के शाप से पुत्र न हो। ४. पञ्चमेश चन्द्रमा हो और वह शनि राहु व मंगल से युत या दृष्ट हो तो माता के शाप से पुत्र न हो। ५. सुखेश (४ का स्वामी) मंगल हो, और वह राहु व शनि से युत हो और लग्न में सूर्य, चन्द्रमा ये दोनों गये हों, तो माता के शाप से पुत्र न हो। ६. सुखेश आठवें भाव में पञ्चमेश व लग्नेश ये दोनों छठे भाव में तथा दशमेश और षष्ठेश ये दोनों लग्न में गये हों तो माता के शाप से पुत्र न हो। ७. राहु-सूर्य, मंगल और ५।१।८।६ इन भावों में यथाक्रम, अथवा व्यतिक्रम से गये हों; और लग्नेश ६।८।१२ भाव में गया हो तो माता के शाप से पुत्र नहीं होवे। ८. राहु-मंगल और गुरु ये तीनों ही ६।८-१२ भावों में गये हों और पञ्चम भाव में शनि चन्द्रमा का योग हो, तो माता के शाप से पुत्र न हो।

कुलदेव दोष से विपुत्र योग—१. छटे भाव में गया हुआ शनि; बुध-चन्द्र, और सूर्य से युत या दृष्ट हो, लग्न को पाप ग्रह देखें, तो कुलदेव के दोष से पुत्र न हो। २. शनि की राशि (१०-११) में गया हुआ सूर्य, पाप ग्रह से दृष्ट हो; अथवा लग्न में पाप ग्रहों का वर्ग अधिक हो' तो कुलदेव के दोष से पुत्र न हो।

सुतहीनयोग—१. लग्न सूर्य और ५वें मंगल, गया हो तो सुतहीन होवे। २. जिस राशि में गुरु स्थित हो, उस राशि से पंचम भाव का स्वामी जो ग्रह हो, वह ६।८।१२ भाव, में गया हो, और जन्म लग्न से भी, पंचम नवम व लग्न के स्वामी ६।८।१२ भाव में गये हों, या दृष्टि हो तो पुत्र न हो। ३. पंचम में गुरु गया हो और गुरु से पांचवें भाव में, पापग्रह गये हों तो पुत्र न हो। ४. पंचमेश लग्न या सप्तम भाव में गया हो, **और** वह बलवान षष्ठेश से, युत या दृष्ट हो, तो पुत्रहीन हो। ५- नवम, पंचम और सप्तम भाव के स्वामी, निर्बल होकर ६।८।१२ भाव में गये हों और पापग्रहों से, युत या दृष्ट हों, तो बहुत स्त्रियों का स्वामी भी हो, तो भी पुत्र न हो। ६- शनि और मङ्गल ये दोनों ६ वें भावों में गये हों, तो पुत्रहीन हो। ७- शनि, मङ्गल व शुक्र ये तीनों, सातवें भाव में गये हों, या दृष्टि हो, तो पुत्रहीन हो। ८- लग्नेश, छटवें भाव में शुभ ग्रह की राशि में, गया हो, और वह बुध,चन्द्र से युत-या-दृष्ट हो, (१) छटे अथवा (२) दूसरे भाव में सूर्य गया हो तो विपुत्र हो। ९- पञ्चमेश (गुरु) पाप-ग्रहों से युत-दृष्ट हो और निर्बल हो; तो पुत्रहीन हो। परन्तु पञ्चम भाव में ९. धन मीन १२ राशि हो तो ये योग होगा। १० लग्नेश पापग्रह से युत या दृष्ट हो, और पञ्चमेश ६।८।१२ भाव में से, किसी में भी गया हो तो पुत्रहीन हो। ११- पंचमेश के नवाँश का स्वामी अस्तंगत का हो. और पापग्रहों से युत, या दृष्ट हो तो विपुत्र हो। १२- पापग्रह से युत होकर गुरु ९ वें, या पांचवे भाग में गया हो, तो पुत्रहीन हो। १३- लग्नेश मङ्गल की राशि (१।८) में गया हो, और पञ्चमेश छटे भाव में गया हो, तो पुत्रहीन हो। १४- बारहवें भाव का स्वामी दशवें,अथवा लग्नमें गया हो तो पुत्रहीन हो। १५- बारहवें भावका स्वामी दशवें; किंवा; लग्न में गया हो, तो पुत्रहीन हो। १६- शुक्र या मङ्गल इन दोंनों मे. से यदि एक भी, पञ्चम भाव को देखता हो, तो कई विवाह कर लेने पर भी सन्तान नही होती। (सारांश यह है कि पंचम भाव में शुक्र या मङ्गल या शुक्र-मङ्गल दोनों ही देखते हों, तो सन्तति पुत्र होवेगा, क्योंकि वीर्य का स्वामी शुक्र और रज का स्वामी मङ्गल है, जब (ऋतु रेत) के स्वामी की दृष्टि या युतिगर्भ भाव ५ पर होगी तभी गर्भ रहेगा और इन तीन की दृष्टि न होगी तो कई स्त्रियों के हो जाने पर भी सन्तति नहीं होगी)। १७- लाभ ११ वें भाव में, चन्द्र शनि का योग, या दृष्टि हो तो पुत्र न हो।

पुत्रनाश योग—१-पंचम भाव, अथवा पंचम भाव कारक ग्रह (गुरु) पाप ग्रहों के मध्य में (पापकर्तरि में) और पापग्रह से युत-या-दृष्ट हो, तो पुत्र प्राप्ति तो होगी-जियेगा नहीं। २- पंचमेश-सप्तमेश और नवमेश ये तीनों ग्रह, जिस-जिस ग्रह के नवांश में हों, वे ग्रह पापग्रहों के नवाँश में गए हों, और पापग्रह से युत, या दृष्ट हों तो पुत्र नाश हो ३- पंचमेश, क्रूर ग्रह के नवांश में हों, और वह नीच राशि का अथवा अस्तंगत होकर पापग्रहसे युत-अथवा-दृष्ट हो तो पुत्र-नाश हो। ४. व्ययेश (१२) के नवांश का स्वामी जिस राशि के द्रेष्काण में हो, उस राशि के स्वामी से पंचमेश

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यूत,अथवा-दृष्ट हो तो पुत्र नाश हो। ५- प्रकाशावस्था में गया हुआ सूर्य, पंचम भाव में गया हो। तो जितनी सन्तान जन्मती जावें, उतने ही मरते जांय-जीवित न रहेंगे। ६- तीन-चार पाप ग्रह पंचम भाव में गये हों, तो जितनो ही सन्तान जन्मती जावें, उतनी ही मरते जावें। ७- पंचम भाव में सूर्य गया हो, तो (मृताऽपत्य) सन्तान मर जावें। ८- नवमे, पांचवें भाव में पापग्रह लग्न में क्षोण चन्द्रमा, और शनि की राशि (१०-११) में गया हुआ गुरु अस्त का हो, तो पुत्र का सुख होकर नाश हो जावे। ९- पंचम भाव में बुध गया हो, और लग्न तथा सुख इन दोनों में पापग्रह गये हों, हो पुत्र का सुख होवेगा पर नाश हो जायगा। ये सभी छोटी आयु की सन्तान होंने के योग हैं।

पुत्र सुखहीन योग—१- पंचमेश-क्रूर ग्रहों के षष्ठांश में हो, और पापग्रह से युत, किंवा दृष्ट हो, तो पुत्र का सुख नहीं होगा। २. तृतीयेश और चन्द्रमा ये दोनों १।४।७।१०।९।५ में भाव में, से किसी में भी गये हों, तो पुत्र सुख नहीं होगा। ३- सिंह राशि में गये हुए शनि या मङ्गल, पंचम भाव में होंवें, और पंचमेश छटे भाव में गया हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे। ४- पंचम भाव में मङ्गल की राशि (१.८) में गया हुआ राहु, मङ्गल से दृष्ट हो, तो पुत्र सुख नहीं होगा। ५- गुरु और शुक्र अपनी नीच राशि (१०-६) में गये हों, अथवा बुध सम राशि (२,४,६,८-१०-१२) में सूर्य विषम राशि (१।३,५,७,९,११) में गया हो, तो पुत्र का सुख नहीं होवे। ६- पंचम भाव में गुरु की राशि (९-१२) हो, तो पुत्र का सुख नहीं होवे। ७- तृतीय भाव का स्वामी ३, १२, १, २, ५, भाव में गया हो, तो पुत्र का सुख नहीं होवे। ८- पंचम भाव में गुरु की राशि (९-१२) में हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे। ९- बुध शनि लग्न में गये हों, और वृश्चिक राशि में गुरु का योग हो, तो पुत्र सुख न हो। १०. गुरु से पांचवे भाग में पापग्रह गये हों, तो सन्तान सुख नहीं होवे—परन्तु शुभ ग्रह गया हो तो सन्तान का सुख होगा। (१) पुत्र सुखहीन योग में, पुत्र न ही हो, (२) होकर मर जावे, (३) पुत्र होते हुए भी पुत्र का सुख न हो, (४) पुत्र हुआ, और न हुआ, तुल्य हो, ये तीन भेद पुत्र सुख न होने के हैं। इनमें से जिनके पुत्रहीन, अथवा पुत्र नाश अथवा वंशविच्छेद योगप्रबल हुआ हो, उनके तो पुत्र होगा ही नहीं, अथवा होकर मर जाते हैं। जिनके केवल पुत्र सुख हीन योग ही होवे, और अन्य उपर्युक्त योग नहीं हों तो पुत्र होते हुए भी पुत्र का सुख नहीं होता यथा—

वियोगान्मरणाद्-क्लैव्यात्तथा चाप्रसवादपि। देशान्तरे च गमनात्पुत्रदु:खं हि पंचधा:॥

(१) परस्पर स्त्री पुरुष या पुत्र के वियोग (२) मृत्यु (३) नपुंसकता या वन्ध्यापन (४) अप्रजन और दूर देशगमनादि पांच प्रकार से पुत्र दुख होगा।

वंश विच्छेद—१- बुध और लग्नेश ये दोनों लग्न के अतिरिक्त, दूसरे केन्द्र स्थान (४।७।१०) में गये हों, वंश विच्छेद हो। २- बारहवे, पाँचवे या आठवें भाव में, पापग्रह गये हों, तो वंश-विच्छेद हो। ३. लग्न में चन्द्र गुरु का योग हों, और सातवें भाव में शनि, अथवा मङ्गल गया हो, तो वश विच्छेद होगा। ४- पाप ग्रह (श० भौ० के०) चतुर्थ भाव में गये हों, तो वंश विच्छेद हो। ५. जन्म लग्न, किंवा प्रश्न लग्न, बारहवें, पांचवें और आठवें भाव में, सम्पूर्ण पाप ग्रह गये हों तो वंश विच्छेद हो। ६, पंचम भाव में चन्द्रमा गया हो और आठयें, लग्न में, बारहवें भाव में गुरु गया हो, तो वंश विच्छेद हो। ७. सातवें भाव में बुध-शुक्र, चतुर्थ भाव में श० भौ० ये पापग्रह और पंचम भाव गुरु, गया हो तो वंश विच्छेद हो। ८. चन्द्रमा से आठवें स्थान में पापग्रह गये हों, तो वश विच्छेद हो। ९- सव पाप ग्रह पंचम भाव में गये हों, तो वंश विच्छेद हो। १०. सप्तभाव में शुक्र, दशमभाव में चन्द्रमा और सुख भाव में पाप ग्रह, ३।४ गये हों तो वंशनाश हो। ११. लग्न में मङ्गल-आठवें शनि, पांचवे सूर्य गया हो, तो वंश विच्छेद हो। १२. वंश विच्छेद योग में, पुत्र या पुत्री कोई जीवित नहीं रहते-वंश का नाश हो जाता है।

बिलम्ब से पुत्रोत्पत्ति योग—१- लग्न, नवमे और पंचम भाव के स्वामी, शुभ ग्रह से युत, होकर ६।८। १२ भाव में गये हों, तो बिलम्ब से सन्तान होगी। २- दशवें भाव में सर्व शुभ ग्रह गये हों, तो पुत्र सुख विलम्ब से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो। ३- भौ० श० के० अथवा गुरु चतुर्थ अथवा पंचम भाव में गये हों, और ८ वें भाव में चन्द्रमा हो तो ३० वर्ष की आयु के उपरान्त सन्तान हो। ४- पापग्रह की राशि (१।८।५।१०।११) के लग्न में, पाप ग्रह युत, या दृष्ट हों और पूर्य निर्बली क्षीणांश का हो, और मङ्गल समराशि (२।४।६।८।१०।१२) में स्थित हों तो ३० वर्ष की आयु के उपरांत मन्तान हो। ५- कर्क राशि में गया हुआ, चन्द्रमा पाप ग्रहों से युत (दृष्ट) हो, और सूर्य को शनि देखता हो, तो ६० वें वर्ष में पुत्र की प्राप्ति हो। ६- लाभ भाव में (११) वें राहु गया हो तो वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्त हो और बृहत्पाराशरी के अनुसार कुछ योग इस प्रकार हैं—१- पांचवे गुरु जावे और पंचमेश शुक्र से युत हो तो ३२ व ३३ वें वर्ष में पुत्र हो। २- पँचमेश व पंचमभाव का कारक (गुरु) ये दोनों (१।४।७।१०) वें स्थान से युक्त या दृष्ट हों, तो ३० व ३६ वें वर्ष में पुत्र-प्राप्ति होती है। ३- जन्म लग्न से नवमे गुरु गया हो, और गुरु से नवमें स्थान में गया हुआ शूक्र, लग्नेश से युक्त हो, तो ३० वें वर्ष में पुत्र प्राप्ति हो।

शान्ति कर्म से पुत्र प्राप्ति योग—१. राहु-रवि और मंगल ये तीनों पाँचवे भाग में आ गये हों तो अथर्ववेद से पुत्रेष्टि यज्ञ करने से पुत्र सुख हो जाता है। २. पञ्चमेश अपनी नीच राशि में गया हो, नवमेश लग्न में और बुध केतु पञ्चम भाव में गये हों तो कष्ट से (शान्ति यज्ञ; आदि अनेक प्रयत्नों से) पुत्र सुख हो।

शीघ्र सन्तानोदय योग=पञ्चम भाव में १।२ अथवा ४ राशि में, राहु या केतु गया हो तो सन्तान की प्राप्ति में विलम्ब नहीं होता।

पुत्र प्राप्ति योग—१. सप्तमेश के नवांश का स्वामी; लग्नेश, धनेश और नवमेश, इन तीनों ग्रहों से, युत अथवा दृष्ट हो, तो पुत्र प्राप्ति हो। २. पञ्चमेश, किम्बा-पंचम भाव अथवा पञ्चम का कारक ग्रह (गुरु) शुभ ग्रह से युत हो, या दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति हो। ३. लग्नेश पञ्चम भाव में गया हो, पञ्चमेश और गुरु ये दोनों परिपूर्ण (बली) हों, तो पुत्र प्राप्ति हो। ४. पञ्चमेश गुरु पूर्ण बलवान हो, और उसे लग्नेश देखता हो तो पुत्र प्राप्ति हो। ५. गुरु अथवा पञ्चम का स्वामी वैशेषिकांश में गया हो, और शुभ ग्रह से दृष्ट हो, तो पुत्र प्राप्ति हो। ६. धन भाव का स्वामी बली होकर पञ्चम भाव में हो, और राहु से दृष्ट हो, तो पुत्र प्राप्ति हो। ७ पञ्चमेंश और लग्नेश ये दोनों परस्पर एक-दूसरे को देखते हों तो पुत्र प्राप्ति हो। ८. पञ्चमेश और लग्नेश ये दोनों अन्योन्य राशि में (पञ्चमेश की राशि में लग्नेश और लग्नेश की राशि में पञ्चमेश) गया हो अथवा पञ्चमेश व लग्नेश ये दोनों एक राशि में युत हों, तो पुत्र प्राप्ति हो। ९. लग्नेश और पञ्चमेश ये दोनों शुभाऽऽशुभ ग्रह से युत होकर-केन्द्र (१।४।७।५) स्थान में गये हों, और धनेश बलवान हो, और धनेश बलवान हो, तो पुत्र प्राप्ति हो। १०. पञ्चमेश के नवांश का स्वामी शुभऽऽशुभ ग्रह से युत हों, और दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्त हो। ११. नवमेश व लग्नेश ये दोनों सप्तम भाव में गये हों, और धनेश लग्न में गया हो, तो पुत्र प्राप्त हो। १२. पञ्चमेश मुद्दशांशादि शुभांश में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो। १३. पञ्चमेश गोपुरीशादि अंश में गया हो, तो पुत्र प्राप्त हो। १४. पञ्चम भाव का नवांश का स्वामी लग्न में, और लग्नेश के नवांश का स्वामी, पञ्चम भाव में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो। १५. गुरु के नवांश का स्वामी (१।४।७।१०) में गया हो, तो पुत्र प्राप्ति हो। १६. नवम लग्न और पञ्चमेश ये तीनों, ग्रह पारावतादि अंश में गये हो, और शुभाशुभ ग्रह से दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्त हो। १७. लग्न से अथवा चन्द्रमा से पाँचवें भाव में शुभाऽशुभ ग्रह की राशि, शुभ ग्रह से युत, दृष्ट हो तो पुत्र पैदा हो, इससे विपरीत नहीं।

कन्या प्राप्ति योग—१. पञ्चम भाव में सम राशि (२-४-६-८-१०-१२) और सम राशि का नवांश, बुद्ध या शनि से युत दृष्ट हो, और शुक्र अथवा चन्द्रमा अथवा इन दोनों से दृष्ट हो, तो कन्या-सन्तति होवे। २. नेत्र, पाणि अवस्था में गया हुआ, बुध, पञ्चम भाव में गया हो, तो पुत्र की हानि और कन्या की प्राप्ति होगी। ३. समावस्था में गया हुआ बुध पाँचवे अथवा ७ वें भाव में गया हो तो कन्या होगी। ४. पञ्चम भाव सम राशि (२-४-६-८-१०-१२) का हो और वह शुक्र चन्द्र के दश वर्ग में होकर, शुक्र-चन्द्र से ही दृष्ट हो, तो बहुत कन्या वाला हो। ५. पञ्चमेश धन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में अथवा आठवें भाव में गया हुआ हो, तो बहुत कन्या हों। ६. लाभ भाव में बुध-शुक्र किंवा चन्द्रमा इन तीनों में से एक भी ग्रह गया हो, तो कन्या प्रजा हो (जितने अधिक ग्रह का योग हो उतना ही योग बलवान होता है)। ७. बुद्ध, चन्द्र, शुक्र इन तीनों में से एक भी पाँचवे भाव में गया हो तो कन्या प्रजा होती है।

अल्पपुत्र, अनपत्य व मृतापत्य योग—१. वृषभ–कन्या, वृश्चिक अथवा सिंह राशि में चन्द्रमा गया हो तो जातक अल्प पुत्र वाला हो। २. सप्तम भाव में पाप ग्रह की राशि पाप ग्रह से युत, दृष्ट हो तो सन्तान रहित हो। ३. अष्टम भाव में गुरु अथवा शुक्र गया हो तो नष्टगर्भा (जिसके गर्भ ही स्थापित न हो सके ऐसी) अथवा सन्तान मर जाने वाली हो।

वैधव्य योग—१. सप्तम भाव में गया हुआ मंगल पाप ग्रहों से युत-दृष्ट हो, तो बाल-बिधवा योग होता है। २. लग्न या चन्द्रमा से सातवें या आठवें भाव में, पाप ग्रह (तीन चार पाप ग्रह) गए हों, तो विधवा योग होता है। ३. मंगल की राशि १।८ में गया हुआ राहु, पाप ग्रह से युत होकर ८ वें भाव में, अथवा १२ वें भाव में गया हो तो विधवा हो। ४. सप्तम, और लग्न में पाप ग्रह गए हों, (दोनों में ही पाप ग्रह गए हों) तो विवाह होने के उपरान्त ७ वें वर्ष में विधवा हो। ५. छठे किम्बा आठवें भाव में चन्द्रमा गया हो, तो आठवें वर्ष विधवा हो। (परन्तु यदि चन्द्रमा क्षीण, अथवा नीच, शत्रु राशिगत हो, और पाप ग्रह से युत, दृष्ट हो, तो उक्त फल मिलना सम्भव है। केवल चन्द्र के छठे, आठवें जाने से आठवें वर्ष रण्डा होने का योग, यद्यपि सूत्रकार ने कहा है, तथाऽपि असंगत प्रतीत हुआ है। ६. अष्टमेश, सातवें भाव में, और सप्तमेश आठवें भाव में गया हो, पाप ग्रह से दृष्ट हो, तो युवावस्था में ही, विधवा हो यह अनुभूत है। ७. छठे और आठवें स्थान के स्वामी छठे, या बारहवें भाव में गए हों, और पाप ग्रह से युत हो, तो युवावस्था में ही विधवा हो। ८. पाप ग्रह, अष्टम भाव में गया हो, और अष्टमेश के नवांश का स्वामी, जो ग्रह हो, उसकी दशा, अन्तर्दशा में विधवा हो। ९. आठवें भाव में बुध गया हो, तो काकवन्ध्या होती है। अर्थात् एकबार सन्तान होकर, फिर नहीं होवे। ये सम ९ योग पं० गंगाराम आत्मज श्रीबालकृष्ण, गाम–सेई (बतसवन) (वृज) जिला–मथुरा के अनेकों वार अनुभूत हैं। १०. शनि और रवि ये दोनों आठवे भाव में गये हों, तो वन्ध्या (बाँझ) होती है।

विवाह में गुरु विचार—पारस्कर गृह्य सूत्र के भाष्य में देवल ऋषि ने विवाह प्रकरण में निर्दिष्ट किया है कि विवाह काल में गुरु का निम्न प्रकार विचार अनिवार्य, आवश्यक है—

नष्टात्मजा, धनवती, विधवा, कुशीला। पुत्रान्विता, हतधवा, सुभगा विपुत्रा॥
स्वामिप्रिया, विगतपुत्र, धवाधनाढ्या। वन्ध्याभवेत्सुरगुरौ; क्रमशोऽभि जन्मः॥

विवाह काल में १ गुरु हो तो जन्मते ही सन्तान नष्ट हो, दूसरे धनवती ३ तीसरे गुरू हो तो बाल वैधव्य, चौथे कुशील, पाँचवे पुत्रवती, छठें स्वामी वियोग, सातवें सौभाग्यवती, आठवें विपुत्र, नवमें दम्पति को परस्पर अटूट प्रेम-दशवें मृतपुत, ग्यारहवें स्वामीधनी, यशस्वी, बारहबे वन्ध्याकारक कहे हैं जिनमें १, ३, ४, ६, ८, १०, १२ के योग अनेकों पर सिद्ध हुये हैं।

विषकन्या योग—१. शनिवार-आश्लेषा नक्षत्र और द्वितीया तिथि जब मिलें, उनमें उत्पन्न कन्या विष-कन्या होती है। २. रविवार-शतभिषा नक्षत्र और द्वादशी तिथि ये तीनों जिस दिन मिलें, उस दिन कन्या जन्म ले, तो वह विषकन्या होती है। ३. मङ्गलवार विशाखा नक्षत्र और सप्तमी तिथि जब मिलें, उस दिन की जन्मी कन्या विषकन्या होती है। ४. शुभ ग्रह से युत या दृष्ट, पाप ग्रह लग्न में गया हो, और पापग्रह छठे भाव में गये हों, ऐसे योग, इष्ट घटी में जन्मी हुई कन्या विषकन्या होती है। ५- पांचवें रवि, लग्न में शनि, नबमें, मङ्गल गया हो, ऐसे योग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में जन्मी हुई, कन्या बिषकन्या होती है । ६. जिसके विषकन्या योग हो, वह भाग्यहीना, दरिद्रा, मृतप्रजा और दुर्वचनी शोक सन्तापयुता होती है ।

विषकन्या भंग योग—१. सप्तमेश अथवा कोई शुभ ग्रह, सप्तम भाव में गया हो, तो विषकन्या योग नहीं होता है । अर्थात् जिसके विषकन्या योग हुआ, उसके जन्म लग्न से सप्तम भाव में सप्तमेश, या कोई शुभ ग्रह गया हो तो विषकन्या योग का भंग (नाश) हो जाता है ।

वैधव्ययोग—१. जातक तत्व के अनुसार—जन्म लग्न या प्रश्न लग्न या चन्द्रमा से सातवें, आठवें पापग्रह गये हों तो विधवा हो । २. मङ्गल, राहु-सातवें, आठवें या बारहवें गये हों या दृष्ट हो तो विधवा हो । ३. लग्न और चन्द्रमा पापग्रहों के बीच शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो दोनों कुलों को नष्ट करने वाली हो । ४. लग्न या चन्द्रसे सप्तमस्थ राहु दुखी, कुल दूषित करने वाली हो । ५- लग्न, और सप्तम में पाप ग्रह हों तो विवाह के ७ वें वर्ष विधवा हो । ६. छठें; आठवें क्षीण चन्द्र हो तो ८ वें वर्ष में रण्डी हो । ७. सातवें, आठवें के स्वामी छठवें गये हों, या दृष्ट हों तो, तरुणावस्था में रण्डा हो । ८ आठवें के स्वामी छठवें गये हों, बारहवें पाप ग्रह हों तो विधवा हो । ९. आठवें गुरु या शुक्र हो, तो गर्भपात हो, या सन्तान मर जावे । १०. आठवें, मङ्गल हो तो कुलटा, और शनि हो, तो पति रोगी हो । ११. आठवें राहु हो तो दोनों कुलों का संहार करे । १२. लग्न, चौथे अष्टम और बारहवें पाप ग्रह युत या दृष्ट हों, तो पति को त्याग दूसरों में आसक्त हो । १३. सूर्य अष्टम में हों और पाप युत, दृष्ट हों तो पापिनी । १४. सप्तमेश अष्टम में, अष्टमेश सप्तम भाव में पापों से युत दृष्ट हो, तो बाल विधवा हो । १५. सातवें, आठवें के स्वामी छठवें, बारहवें, ग्रहों से पीड़ित हों, तो निश्चय विधवा हो, ये योग भी पं० गङ्गाराम ग्राम, पोस्ट सेई (ब्रज) जिला मथुरा के अनुभुत हैं ।

पुत्र प्राप्ति प्रश्न विचार—प्रश्न कालीन तिथि की संख्या को ४ से गुणा करें, १ जोड़ दें, तदनन्तर वार तथा योग जो उस दिन उस समय हों, उनकी संख्या को जोड़ें, २ से भाग दें, जो लब्धि आए, उसको ३ से गुणा करें ४ से भाग दें, जो शेष रहे उससे फल कहें—एक संख्या शेष रहे तो बिलम्ब से पुत्र हो, परन्तु चिरायु के लिए पार्थिव शिव-पूजन या संजीवनी विद्या का पाठ 'प्राणविद्या' का पालन करें । दो संख्या शेष रहें तो पूर्वजन्म कृत पाप की बाधा से पुत्र नहीं होगा, पापमोचन शापमोचन अहोलिङ्गादिगण से (बृहच्छान्ति)पुत्रेष्टि यज्ञ, अथर्ववेद या ऋगवेदसे करें । तीन संख्या शेष रहें तो पुत्र तो प्राप्त होगा, सुख नहीं रहेगा । पुत्र सुख चाहें तो किसी दीन कन्या के विवाह में गुप्त दान दें या उसका विवाह कर दें । इसी ग्रंथ में शान्ति विधि देखें । और चार या शून्य शेष रहे तो सन्तान शीघ्र होगी ।

रोगों के उत्पन्न या सन्तान न होने में, देवदोष ज्ञान—१. तीसरे, नवमें, बारहवें, छटे स्थान में प्रश्न लग्न से कोई पाप ग्रह हो तो क्रमशः विष, जल, शस्त्र से मरे हुए किसी स्वकुलोत्पन्न आत्मा का दोष कहें परन्तु यह योग, पाप ग्रहों के साथ शुभ ग्रहों का योग होने पर नहीं होता है । यदि बारहवें, आठवें स्थान में राहु हो तो प्रेत दोष, गुरु हो तो पितर दोष 'चन्द्र हो तो जलदेवी का दोष, सूर्य हो तो देवी दोष अथवा लग्न, अष्टम द्वादश में सूर्य हो तो क्षेत्रपाल दोष शनि हो तो स्वगोत्र की सती का दोष, और बुध बारहवें या अष्टम हो तो पिशाच दोष, व्यय १२ तथा आठवें भौम हो तो साकिनी (कृत्या) का दोष, शुक्र हो तो जलदेवी दोष परन्तु दोष सूचक ग्रह, स्व, स्वराशि उच्च राशि में हों और बलवान हों तो उक्त दोष साध्य, और यदि चन्द्र नीच या निर्बल हो और दोष सूचक ग्रह, अपनी नीच, शत्रु क्षेत्र राशि में हों तो असाध्य कहें है । बलवान पाप ग्रह केन्द्र १।४।७।१० में हो तो असाध्य, यदि शुभ ग्रह १।४।७।१० में हों तो पूर्वोक्त देवगण साध्य अर्थात् अनुष्ठानादि से प्रसन्न हो जावे ।

प्रकारान्तर से दोष ज्ञान—२ तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, प्रहर की संख्याओं को जोड़, ८ से भाग दें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३।७ शेष हों तो देव बाधा, २।८ से पितृ बाधा, ६।४ से भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस कृत्यादि दोष । १।५ शेष हों तो शस्त्रादि अपमृत्यु प्राप्त कुल की आत्मा का दोष कहें।

स्त्री जातक की विशेषता—अग्रेपूर्वोल्लिखित "पुरुष जातक" तथा ज्योतिष ग्रन्थों में विविध प्रकार से वर्णित जो फल स्त्री जातक में सम्भव हों वे; वैसे योग में उत्पन्न स्त्री भाव के लिये समझें । जो फल स्त्री में असम्भव हों, वे सब उसके पति में समझें । स्त्री के स्वामी की मृत्यु का विचार ८ वें भाव से; शरीर के शुभाशुभ फल का विचार लग्न और चं से तथा सौभाग्य और पति के स्वरूप, गुण, आदि का विचार सप्तम भाव से करें ।१। स्त्री के जन्म समय में लग्न और चं दोनों समराशि, समनवांश में हों तो वह स्त्री अपने स्वभाव से युक्त होती है ।२। यदि उन दोनों (ल० चं०) पर शुभ ग्रह की दृष्टिया योग हो तो सुशीलता रूप आभूषण से विभूषित हो ।३।। ये दोनों (ल० चं०) विषम राशि और विषम नवांश में हों तो स्त्री पुरुषाकार, स्वभाव की होती है ।४।। यदि उन दोनों (ल० चं०) पर पाप ग्रह की दृष्टिया युति हो, तो स्त्री पाप स्वभाव वाली, गुणहीना होती है ।५।। ल० चं० के आश्रित १।८ में यदि मं का त्रिशांश हो तो स्त्री बाल्यावस्था में दुष्ट स्वभाव की हो । शु० का त्रिशांश हो तो दासी, गु० का त्रिशांश हो तो सच्चरित्रा, बु० का त्रिशांश हो तो, धूर्ता शु० का त्रिशांश हो तो उतावली हो ।६।। २।७ राशि स्थित (ल० चं०) में मं० का त्रिशांश हो तो बुरे स्वभाव की, श का त्रिशांश हो तो पुनर्भू (द्वितीय पति करने वाली) गु० का त्रिशांश हो तो गुणवती; बु० का त्रिशांश हो तो कलाओं को जानने वाली, शु० का त्रिशांश हो तो लोकख्यात हो ।७।। बु० की राशि (३।६) में स्थित (ल० चं०) में यदि मं० का त्रिशांश हो तो मायावी; श० का त्रिशांश हो तो हीजड़ी (वन्ध्या) गु० का त्रिशांश हो तो पतिव्रता, बु० का त्रिशांश हो तो गुणवती; शु० का त्रिशांश हो तो चञ्चलता होती है ।।८ चन्द्रराशि (४) से युत या दृष्ट (ल० चं) में यदि मं० का त्रि० हो तो पतिघ्नी गु० का हो तो गुणवती, बु० का हो तो शिल्पज्ञ, शु० का हो तो नीच स्वभाव की हो ।९ सिं (५) राशिस्थ (ल० चं०) में यदि मं का त्रिशांश हो तो पुरुषवत् आचरण वाली; श का हो तो कुलटा; गु० का हो तो रानी बु० का हो तो पुरुष तुल्य बुद्धिमती; शु० का हो तो अगम्य गामिनी होती है ।१०।। (६।१२) में स्थित ल० चं० में मं का त्रि० हो तो गुणवती; श० का हो तो भोगों में अनासक्ति वाली; गु का हो तो गुणवती, बु का हो तो ज्ञानवती; शु० का हो तो पति-परायणा है । ११।।१०।११ में स्थित ल० चं० में मं का त्रि० हो तो दासी; श का हो तो नीचासक्ता; गु० का हो तो दुष्ट स्वभाव की, शु० का हो तो सन्तान ही न हो । विशेषः—शु० और श० ये परस्पर (शु० के नवांश में श; श, के नवांश में शु०) हों अथवा शु० राशि २।७ लग्न में कुम्भ का नवांश हो तो इन योगों में उत्पन्न स्त्री कामाग्नि संतप्त; स्त्रियों से भी क्रीड़ा करने वाली होती है । विद्वज्जन विवेक व धैर्य से विचारकर फल, निदान, उपचार करें ।

पतिभाव—स्त्री के जन्म या प्रश्न लग्नों में से ७ वें भाव में कोई ग्रह न हो तो पति कुत्सित; ७ वां भाव निर्बल हो और शुभग्रहों की युति या दृष्टि न हों नपुंसक; ७ वें बु और लग्नेश दोनों या कोई भी हो तो नपुंसक सप्तम में चरराशि हो तों परदेश वासी, स० में सू० हो पति त्यागे, शं हो तो बाल विधवा, श० पापग्रहों से दृष्ट सप्तम में हो तो (अविवाहिता) पिता के घर रहे । १ यदि सातवें एक से अधिक ग्रह हों तो भी विधवा; शुभ पाप दोनों हो तो दूसरा पति करे, पाप ग्रह ७ वें निर्बल हो, शुभ की दृष्टि न हो तो पति उसे त्याग दे; शुभग्रह की दृष्टि हो तो पति प्रिया होती है ।२।। मं० के नवांश में शु० और शु० के नवांश में मं० हो तो परपुरुषासक्ता हो । यदि इस योग में चं० सप्तमस्थ हो तों पतिपरायणा हो ।।३ यदि चं और शु० से युत या दृष्ट श० एवं मं० की राशि (१०।११; १।८) लग्न में हों, तो कुलटा उस ल० पर पाप की दृष्टि हो तो माता सहित कुलटा; सातवें मं का नवांश हो और श० की दृष्टि हो तो रुग्णयोनि वाली; सातवें शुभग्रह का नवांश हो तो पतिप्रिया हो ।।४ श० की राशि (१०।११) का नवांश; सातवें हो तो पति वृद्ध, मूर्ख; सातवे (१।८) राशिया मं० का नवांश हो तो पति स्त्री लोलुप, क्रोधी हो । बु० की राशि (३।६) या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नवांश हो तो विद्वा। निपुण; गु० की राशि (९।१२) या नवांश हो तो जितेन्द्रिय, गुणी, चं की (४) राशियां नवांश हो तो कामी, कोमल; शु० की राशि (२।७) या नवांश हो तो भाग्यवान, रूपवान्, सू० की (५) या नवांशहो तो पति अत्यन्त मरल, अधिक श्रमी होता है ।५।। शु० और चं० लग्न में हों तो सौभाग्यवती; परम सुन्दरी; कलाविज्ञा, लग्न में तीन शुभ हों तो विविध सुख, धन. धान्य, गुणों से परिपूर्ण होती है ।६।। पाप अष्टम में हों तो वह स्त्री अष्टमेश की र शि के नवांश ग्रह के वाल्य आदि वयस् में विधवा होती है । यदि द्वितीय भाव में शुभ हों तो पति के सन्मुख मृत्यु प्राप्त करे ६;८;५ या २ राशि में चं० हो तो अल्प सन्ततिवाली; श० मध्यम वली तथा चं० शु० और वु० तीनों निर्बली हों तथा शेष ग्रह (र०मं०गु०) सवल हो, विषम राशि लग्न में हों तो कुरूपा; गु०, मं०, शु०, वु० ये चारों वली हो समराशि, लग्न में हो तो वह स्त्री अनेक शास्त्रों, गुणों की ज्ञाता ब्रह्मवेत्री तथा लोक में विख्यात होती है ।७।। जिस स्त्री के जन्म या प्रश्न लग्न में ७ वें में पापग्रह हो और ९ वें कोई ग्रह हो तो स्त्रीपूर्वोक्त नवमस्थग्रह जनित प्रवज्या योग वाली होती है । यह विवेकपूर्ण, वरवरण, विवाह या प्रश्नकालों में विचार करें । जो दोष हों उनकी शान्ति इस आथर्वण शौनकीय ग्रन्थों में पढ़ें, समझे करें ।

"प्रवृज्या योग"—यहाँ प्रवृज्या पर विचार अनिवार्य समझ उल्लेख किया जाता है । यदि जन्म या प्रश्न लग्न में ४ या अधिक ग्रह एक स्थान में वली हों तो जातक सन्यासी हो । उन ग्रहों में मं० वु० गु० शु० श० और सू० बली हों तो जातक क्रमशः शाक्त (रक्तवस्त्रधारी बौद्ध) आजीवक (दण्डी) भिक्षु (यती) वृद्ध (वृद्धश्रावक) चरक (चक्रधारी) अ ह्री (नग्न) और फलाहारी हो । परन्तु प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि अन्य ग्रह से पराजित हो तो मनुष्य प्रव्रज्या से गिर जाता है ।१।। यदि प्रवृज्या कारक ग्रह सूर्य सान्निध्यवश अस्त हो तो उसकी दीक्षा ही नहीं लेता, वह ग्रह बली हों तो "प्रव्रज्या" में प्रीति होती है । जन्म या (लग्न) राशि को यदि अन्य ग्रह नहीं देखता हो और जन्मराशि यदि शनि को देखता हो; अथवा, निर्बल जन्मराशीश को शनि देखता हो, या शनि के द्रेष्काण अथवा मं० या श० के नवांश में चन्द्रमा हो और उस पर श० की दृष्टि हो तो इन योगों में विरक्त होकर गृह त्याग करने वाला जातक सन्यास धर्म की दीक्षा लेता है ।२।। यह सूक्ष्म रूप से प्रव्रज्या के सन्दर्भ में अनुभूत उल्लेख्य है ।

अथ हस्तरेखा द्वारा सन्तति आदि ज्ञानम्—प्रश्नकर्त्ता स्त्री-पुरुष प्रातः स्नान सन्ध्या से निवृत हो, बिना ऐसी कोई भी क्रिया के जिससे रक्त में गर्मी आये, मय पत्र-पुष्पादि प्रभु का ध्यानकर, अपने संकल्प की जिज्ञासा से, विद्वान हस्तपरीक्षक से प्रश्न करें । विद्वान हस्तवेत्ता को चाहिये, कि साथ ही प्रश्नलग्न; जन्मलग्न, प्राणविद्या का भी सहयोग लें । कुछ अनुभूत हस्तपरीक्षा की, इसी सन्तति प्रकरण की बातें प्रस्तुत हैं, और वे समझें धैर्य, विवेक, शान्त, एकान्तस्थविचार करें । १–वांयां हस्त, स्त्री का प्रारब्ध का सूचक और दायां वर्तमान काल का, सूचक होने से, दोनों हाथों का, स्त्री–पुरुषों के दोनों का हाथों के, चिह्न व रेखाओं का मिलान कर उत्तर दें । दोनों में निशान एक हैं, प्रश्नफल देगा । काल की अनुकूलता तप, यज्ञादि से भी लाई जा सकती है । २-प्रश्न समय से सूर्योदय से घढ़ी दिन चढ़ने पर्यन्त, वह मास समझें, जिसमें प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे । प्रथम ५ घड़ी के उपरान्त ५।५ घड़ी के अनुक्रम से, प्रश्न घडी पर्यन्त, जो मास आये, उसी से मासादि के साथ समझें और उस पर निर्दिष्ट चिह्नादि के ज्ञान और मिलान के उपरान्त फलादेशक- है । ३–जिस तिथि में प्रश्नकर्त्ता हाथ दिखावें वही तिथि, प्रातः सूर्योदय से, ४ घड़ी तक, समझें । प्रश्नकाल तक ४।४ घड़ी के, क्रम से, जो तिथि आये, उसे भी देखें किस स्थान पर तिथि आती है। उस स्थान को हिसाव से, तथा उस पर आये चिह्नों को मिलाकर फलादेशंकहें । ४–दैनिक चिन्ह, सूर्योदय से केवल ७ घण्टे, और मासिक चिन्ह १ सप्ताह तथा वार्षिक चिन्ह प्रति ७वें वर्ष, घटते-बढ़ते हैं । इसे हाथों के लगातार देखने में अभ्यास से ही अनुभव कर सकते हैं । इनका ध्यान अनिवार्य शञ्छनीय है । ५–जो मास तर्जनी, कनिष्ठिका और करतल पर आता हो वह अशुभ अन्यत्र शुभ है । युद्ध के विचार में अङ्गुष्ठ पर और तर्जनीः पर शुभ, मध्यमा पर धनप्रद अङ्गुष्ठ पर पददायक, करतल में सदैव अशुभ समझें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६—दायैं हाथ में शुक्लपक्ष — वायैं हाथ में कृष्णपक्ष

मास	तिथि	नाम	तिथि
हथेली-श्रावण-(जुलाई)		अषाढ़ (जून)	
अंगुष्ठ भादों (अगस्त)	५-१०-पूर्णिमा	ज्येष्ट (मई)	५–१०अमावस्या
तर्जनी—क्वार (सैप्टैम्बर)	२–६–१४	वैसाख(अप्रैल)	४–६–१४
मध्यमा—कार्तिक (अक्टूबर)	३–८–१३	चैत्र(मार्च)	३–८–१३
अनामिका—मार्गशीर्ष (नवम्बर)	२–७–१२	थाल्गुत (फर्वरी)	२–७–१२
कनिष्ठाका—पूस (दिसम्बर)	१–६–११	माघ (जनवरी)	१–५–११

स्त्री का वांया, पुरुष का दाँया, वर्तमानका, स्त्रीका दांया, पुरुषका वांया प्रारब्धका समझें। ७- पक्षों(शुक्ल व कृष्ण के क्रम से) 'मध्यमा' के द्वितीय पोर में 'जनवरी' तृतीय (हथेली के समीप का) में फरवरी, 'तर्जनी' के प्रथम (नाखून वाले) में मार्च, मध्य में 'अप्रेल' तृतीय में मई, अनामिका के प्रथम पोर में 'जून', मध्य में 'जुलाई' तृतीय में 'अगस्त' कनिष्ठिका के प्रथम पोर में 'सैप्टैम्वर' मध्य में 'अक्टूबर', तृतीय में 'नवम्वर' और मध्यमा के प्रथम (नाखून वाले में 'दिसम्बर' समझें। ये पक्ष के भेद से दोनों में जैसा ही पक्ष १ शुक्ल कृष्ण का प्रश्न काल को देखें। भारतीय व पाश्चात्य दोनों पद्धति से विचारें। १ दाँये को शुक्ल वांये को कृष्ण पक्ष समझें। ८- दाँये हाथ की कनिष्ठिका के प्रथम पर्व (नाखून वाले) में एक तारीख मध्य में, २. तृतीतय में ३, अनामिका के प्रथम पर्व में ४, मध्य में ५, तृतीय में ६, मधमा के प्रथम में ७, मध्य में ८, तृतीय में ९, तर्जनी के प्रथम में १०, मध्य में ११, तृतीय में १२, अंगुष्ठ के प्रथम में १३, मध्य में १४, तृतीय में १५, वायें कनिष्टिका के प्रथम में १६, मध्य में १७- तृतीय में १८, अनामिका के प्रथम में १९, मध्य में २०, तृतीय में २१, मध्यमा के प्रथम में २२, मध्य में २३,तृतीय में २४, तर्जनी के प्रथम में २५, मध्य में २६, तृतीय में २७, अंगुष्ठ के प्रथम पर्व (नाखून वाले) में २८, मध्य में २९, तृतीय में ३० तारीख मानें। ९- 'तर्जनी' पर मिश्रफल परन्तु संग्राम में श्रेष्ठफल, 'अंगुष्ट की तिथियां भङ्ग करने वाली परन्तु धर्म, अध्यात्मवाद में श्रेष्ठ। 'कनिष्ठिका पर अशुभफल अनामिका पर रोग, और शान्ति कार्य में शुभफल देने वाली, 'मध्यमा' पर धनलाभ, साम्राज्यदायक श्रेष्ठ फलदायक समझें। ये सामान्यतया सभी को देखें इनके साथ अन्य विशेषा चिन्ह निम्न प्रकार समझें, सम्मिश्रण कर फलादेश कहें। १०- सातों प्रकार के हाथों, समकोणादि अंगुलियों, पर्वतों के उभार या निम्न या समभाव, हृदयरेखा, मस्तिष्क रेखा, जीवन रेखा, सूर्य रेखा, वुध रेखा, भाग्यरेखा, मङ्गलरेखा, गुरु मुद्रिका, शुक्रमुद्रिका, शनिमुद्रिका, तथा ऊर्ध्व या अधोरेखाओं को भली भांति देखें उन पर विशेष कोई चिन्ह हों तो उनके फल की उपेक्षा न करें, ये सब देखकर समझकर, फलादेश कहने में यश कीर्ति तथा महर्षि की अदृष्ट सेवा का फल उन्हें होगा, प्रश्नकर्ता रिक्त हस्त गुरु गोविन्द वैद्य, ज्योतिषी तथा सन्तों के पास कभी न जायें इसी में उनका भी लाभ है।

विशेष प्रभावशाली अनुभूत चिन्ह—दोनों हाथों के अंगुष्ठों के तृतीय पर्व (हथेली के पास वाले) की मूल में जितने यव (जों) के से चिन्ह स्वच्छ स्पष्ट हों, उतनी जीवित पुत्र सन्तति समझें। कटे हुओं से मृतक, अस्पष्ट हों, तो गर्भपात या होकर छोटी आयु में ही मृत्यु के सूचक समझें। ?२- आधुनिक प्रणाली के अनुसार, अनामिका से गुरु के, पर्वत की ओर, तर्जनी या अगुष्ठों के मध्य भाग, या शनि पर्वत की ओर, जानेवाली, इदय रेखा पर, वुध या सूर्य के पर्वतों, या दोनों के बीच, के भाग में से कहीं भी हृदय रेखा से, नीचे की ओर तिरछी मोटी मणि-बन्ध की ओर, स्पष्ट, जितनी रेखायें होंगीं, उतने ही दीर्घ जीवी पुत्र होंगे वारीक होंगी तो कन्यायें होंगी, कटी होंगी तो सन्तान होकर मर जावेगी, अस्पष्ट होंगी, तो गर्भपात होंगे या होकर छोटी आयु में मर जावेंगी। ?३- दोनों अंगूठों के मूल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देश से, मणि बन्ध तक, विस्तृत क्षेत्र में, हथेली के बगल में, निकली हुई स्पष्ट, सीधी मोटी रेखायें पुत्र की वारीक कन्या, अस्पष्ठ सेगर्भपात, कटीमृतवत्सा या सन्तानहीनता अति अस्पष्ट वारीक गर्भ धारण प्रसव शक्ति हीनता का भी बोधक समझें। ?४- दोनों अंगूठों के, मूल प्रदेश में, अनेक स्पष्ट, मोटी रेखायें, पुत्रदीर्घ जीवी की सूचक, वारीक कन्या अस्पष्ट गर्भपात, कटी से मृत सन्तति समझें। १५. तर्जनी अंगुली की, दूसरी पोर की गांठ में, सामने की ओर सरल, अस्पष्ट गर्भपात या अल्पायु की प्रतीक होती हैं। ये स्त्री के ही होंगी। १६. हथेली में अनेक लाल लम्बी रेखायें स्त्री के हों तो अनेक दीर्घायु पुत्र लाभ करे। १७. हाथ में तामड़े रङ्ग की रेखायें, और तामड़े ही रङ्ग के नख हों, तो स्त्री निश्चय ही दीर्घ जीवी पुत्र और पौत्रवाली होती है। लक्ष्मी का उपभोग करतीं है। १८. जिस स्त्री के, चन्द्रक्षेत्र में स्पष्ट सीधी मोटी सरल रेखायें हों, वह दीर्घजीवी, पुत्र रत्न को जन्म देती है, तथा प्रसव सुखमय होता है। १९. यदि बुध के क्षेत्र में, अनामिका के मूल देश में, सीधी मोटी स्पष्ट रेखायें हों, तो दम्पती दीर्घजीवी, व्यवसायी, पुत्र, पौत्रवान हो वारीक से कन्यापत्य, कटी सेमृतपुत्र या गर्भस्राव हो जाये। अत्यन्त वारीक टेढ़ी हों, तो जातक, चोर, वधिक, धूर्त हो, परन्तु इसके साथ ही यदि अगुष्ठ छोटा, मुग्दर (ठूंठ) जैसा हो तो वह व्यक्ति कातिल हो, फाँसी पर चढ़ेगा। ऐसा समझें। २०. यदि हृदयरेखा का मूल प्रदेश, शाखाहीन हो, और बुध क्षेत्र की ओर झुका हो, तो निश्चय ही दम्पती निपुत्री हों। यह योग ब्रह्महत्या का भी प्रतीक है। पापमोचन यज्ञ से सफलता सम्भव हुई हैं। २१. स्त्री की हथेली में स्वास्तिक के चिह्न हो, तो पुत्रवती हो। २२. जिसकी हथेली में शुक्र पर्वत, उठा हुआ हो, उसे आयु रेखा अधिक घेरे और हाथ मुलायम हो, और फूला हुआ हो, तो नपुंसक हो। २३. स्त्री के मणिवन्ध से चन्द्रमा के पर्वत पर, सीधी रेखा हो, तो वन्ध्या हो, यदि गर्भवती हो भी जावे तो प्रसवकाल में नष्ट हो जाता है। २४. यदि मस्तक रेखा पर सूर्य एवं बुध के पर्वतों के बीच के क्षेत्र में, मणिवन्ध की ओर द्वीप का चिह्न हो, तो, स्त्री पति को, पति के हो, तो पति की स्त्री की, हत्या, परस्पर मनमुटाव के कारण कर डालते हैं। २५. स्त्री के मणिबन्ध से, भाग्यरेखा शनि प्रर्यन्त, सीधी गई हो तो विधवा हो। २६. स्त्री के वुध रेखा हो, और टेढ़ी अस्पष्ट हो तो, मासिक धर्म आगे पीछे हो। सूई चुभनेजैसीसी योनिमें वेदना हो, कमरमें दर्द, हाथपैर शिथिल, सरदर्द तन्द्रा जैसी रहे, गर्भाशयमें शोथहो, प्रायः गर्भक्षीण हों या अल्पायु में सन्तति नष्ट हो। २७. यदि स्त्री के मंगल रेखा न हो, और शुक्र का पर्वत उभरा हो, तो व्यभिचारिणी हो।

२८–यदि मस्तक रेखा झुक कर, चन्द्रमा की ओरहो जाय और उसके नीचे तारे* का चिन्ह हो, तो अपघात करके,विशेषकर जल से या जल के भृत्यु होती है। २९–यदि मस्तक रेखा और हृदय रेखा अति समीप हों तो हृदय रोगीहों। ३०–यदि हृदय रेखा हो ही नहीं, तो बेरहम, धूर्त, धोखेबाज कातिल हो। प्रायः हृदय रोग से मृत्यु हो। ३१–यदि स्त्री के हाथ में शुक्र मुद्रिका हो, तो उसे हिस्ट्रिया के दौरे हों। पुरुष के हों तो मृगी के दौरे हों। ३२–यदि शनि मुद्रिका हाथ में हो तो निर्धन हों, और यदि शनि पर्वत पर *तारे का चिन्ह हो, तो साँप या बिजली से मृत्यु हो, ३३–यदि मणि-बन्ध से, बुध के पर्वत को सीधी रेखा जाती हो, तो सहसाधन प्राप्त हो। ३४–यदि शनि के पर्वत पर, मस्तक रेखा, दोनों ओर टूटी हो तो फाँसी पाता है। ३५–यदि स्त्री के अंगूठे के दूसरे पोर्व पर, *तारे का चिन्ह हो तो बहुत धनाढ्य होती है। ३६–यदि गुरू के पर्वत पर, बहुत सी खड़ी रेखाओं को एक रेखा काटे, तो ऐसी व्यभि-चारिणी बार-बार विधवा होती है। ३७–यदि मस्तक रेखा, से कोई रेखा उठकर सूर्य के पर्वत की ओर जावे तो लौटरी से धन प्राप्त होता है। ३८–यदि आयु रेखा से निकलकर शुक्र की ओर नीचे को रेखा जावे तो वह समम उसके ऊँचे से गिरने या पतन का समझें। ३९–यदि सूर्य के पर्वत पर, बहुत सी रेखायें हों तो भाग्यरेखा मणिबन्ध से चलकर मस्तिष्क रेखा तक ही रह जाय तो वह दिवालिया हों। ४०–यदि स्त्री की हथेली में अनेक रेखायें हों तो विधवा गिरायें हों तो दरिद्रा हो मत्स्य रेखायें हों तो सुभगा, स्वतिक हो,तो पुत्रवती तलवे में ऊर्ध्वरेखा होने से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विधवा, अनामिका की रेखा कटी हो, तो कलह प्रिय (मध्यमा) की रेखायें कटी होने से कुटिला, तर्जनी की कटी होने से विधवा, कनिष्ठिका की कटी होने से दुःखिनी हो। ४१--सुई सी नुकीली उँगली, छोटी हथेली वाली विलासिनी, अँगुली चौकोन अंगुष्ठ छोटा होने से गुणवती मृदुभाषिणी, परन्तु अंगुष्ठ लम्बा होने से कलह कारिणी हो। ४२--स्त्री के चरण की अनामिका उँगली तथा अंगुष्ठ चलती समय पृथ्वी पर न लगे, अधर रहे और अँगूठा चलते समय, बगल वाली उँगली पर चढ़े, तो शीघ्र पति को मार आनन्द से व्यभिचार करे। ४३--जिस स्त्री के चलते समय, पैर का आहट हो, धमधम सी हो, तो वह शीघ्र पति को मारकर स्वैरिणी हो। ४४--सीने हाथ के अंगुष्ठ पर, यव हो तो पेशाव इन्द्रि के सीधी और बायें में हो तो पेशाव इन्द्रि के बायें और तिल दोनों हाथों में यव हो तो दोनों और तिल हैं। ५३--तर्जनी के पृष्ठ पर, उभार हो तो, संयमी, अधिक उभार हो, तो निर्दयी, ऊँचाई का अभाव हो, और वहाँ आड़ी रेखायें हों, तो कायर, खुशामदी होता है। ५४--अन्तकरण रेखा, दोनों हाथों में, एकदम गुरु पर्वत पर, बन्द हो जाय तो अकस्मात् मृत्यु होती है। ५५--मस्तिष्क रेखा यदि सूर्य पर्वत पर बन्द हो जाय, तो किसी से दबकर मृत्यु होती है। ५६--यदि चन्द्रमा के पर्वत पर ×,*, गुणित या तारे के कोई चिह्न हों तो लकवा या जल से भय (डूबे, जले) ये चिह्न सर्वत्र अशुभ ही होते हैं। ५७--यदि तर्जनी के मूल में, चक्र हों तो दाता हो, भोजन वस्त्र से सम्पन्न होता है। ५८--यदि हृदय रेखा गुरु के पर्वत तक चली जावे, तो वह सिद्ध गुरु वाला, पूर्व योग भ्रष्ट, योगी होता है। ५९--शरीर के आकार के देखते कान छोटे हों तो शीघ्र मृत्यु हो, बड़े हों तो विद्वान मेधावी होता है। ६०--यदि बुध के पर्वत पर काला तिल हो, तो मुकद्दमों में पड़कर धन नष्ट होता है। ६१--हाथ में काला तिल हो, तो सदैव चिन्तातुर रहता है। ६२--यदि आयु रेखा के समीप भीतर शुक्र पर्वत की ओर जितने चतुष्कोण हों, उतनी ही वार जेल काटे, यदि रेखा से मिला हो, तो मुकद्दमों में व्यग्र रहे यदि शुक्र पर्वत पर हो, तो साधु-तत्व ज्ञानी हो। ६३--यदि मणिबन्ध पर त्रिकोण या चतुष्कोण हों अथवा आयु मस्तिष्क और मणिबन्ध के बीच त्रिकोण हो तो वसीयतें प्राप्त करें। ६४--दायें हाथ के बीच के अँगूठे के पर्व में यव का चिह्न हो तो शुक्ल पक्ष, दिन बायें में हो तो कृष्ण पक्ष रात्रि का दोनों में हो तो कृष्ण पक्ष दिन का जन्म होता है। ६५--शुक्र पर्वत पर, आयु रेखा के समानान्तर जाने वाली मंगल रेखा जिस किसी के हों, उसे गोलियों की बौछारों के बीच भी गोली से भय नहीं होता, रक्षा करती है। अनुभूत हैं। ६६. सूर्य रेखा, ख्याती, धन, धर्म, ब्रह्मवर्च की प्राप्ति हो, कई रेखायें सूर्य पर्वत पर हों तो व्यवसाय भिन्न-भिन्न हों। ६७--जीवन रेखा, अन्तःकरण रेखा, मस्तिष्क रेखा, तीनों के चिह्नों को, हाथ देखते समय, भली भाँति देखें, आयु वर्ष का मापक—जौ के बराबर १० वर्ष मानें, नाप लें। ६८--वर्ष की गणना दायें हाथ की कनिष्ठिका के नाखून वाले प्रथम पर्व से, दायें अगूष्ठ के तीसरे, हथेली वाले पर्व तक १५, बायें अंगुष्ठ के तीसरे पर्व पर ३०, इसी पुनरावृत्ति से गिनें। ये अनुभूत कुछ परिचय हैं, विशेष प्रतिभा के कुछ आगे हैं शेष स्वयं विचारें भारतीय साहित्य सर्वोपरि है, यहीं से जर्मन के "चेरो नामक विद्वान ने सीखा" और "पामिष्ट्री फौर औल" पुस्तक जिसके फल अकाट्य कहे जाते हैं, की रचना के प्रारम्भ में भारतीय गौरव गरिमा की भूरि-भूरि प्रशंशा तथा कृतज्ञता प्रगट की हैं, पढ़ें समझें।

प्रतिभा परिचय

मन्त्री—तर्जनी सुई जैसी नुकीली, कनिष्ठिका लम्बी, नख छोटे, सोम्य, चन्द्र तथा शुक्र के पर्वत पुष्ट, हृदय रेखा और शिरो रेखा मिली होती है। **सैनिक**—हस्ताँगुलि सम चौकोन, व शुण्डाकार, मङ्गलक्षेत्र पुष्ट, शुक्र गुरु, चन्द्र क्षेत्र ठीक स्थिति में हो, मस्तिष्क एवं अन्तःकरणरेखा प्रवल होती है। **इञ्जीनियर**--बड़ी चौकोन मोठी, अंगुली, विशेषकर मध्यमा, शनि, बुध, मंगल क्षेत्र पुष्ट, अन्तःकरण रेखा स्पष्ट व गहरी होगी। **शिल्पी**--शुण्डाकार उंगलियाँ, विशेष करं अनामिका, और उसकी प्रथम पोर लम्बी अवश्य हों, अंगुष्ठ लम्वा, हथेली मुलायम, रवि, चन्द्र, शुक्र उठे हुए, शिरोरेखा टेढ़ी होगी। **ग्रन्थकार लेखक**--तर्जनी, कनिष्ठिका लम्बी, कहीं शुण्डाकार रवि, भौम क्षेत्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्च, चन्द्र, शुक्र-रवि बुध क्षत्रों से, निम्न होने पर भी अपेक्षाकृत उच्च, शिरोरेखा का अन्तभाग, शाखायुक्त होकर, नीचे चन्द्र की ओर वक्र हो, गुरु उन्नत हो, या गुरु पर त्रिभुज या चतुर्भुज या खड़ी रेखा या रेखायें,त्रिकोण, चतुष्कोण चिन्ह होते हैं। पत्र सम्पादक—उँगलियाँ चौकोन, तथा ग्रन्थि पुष्ट, शिरोरेखा स्पष्ट रवि, गुरु, मङ्गल, क्षेत्र उच्च का कन्दर्प धनुष रेखा शुक्र वन्धनी होती हैं। शिक्षक—लम्बी चौकोन उँगलियां, मंगल, बुध क्षेत्र पुष्ट या गुरु शुक्र उठे हुऐ, सुन्दर सरल शिरो रेखा होती है। गणितज्ञ—हथेली कड़ी, सूखी, पुष्ट ग्रंथि की लम्बी अंगुलियां कनिष्ठिका और अंगुष्ठ अपेक्षाकृत लम्बी, बुध, शनि पर्वत उच्च, रवि, चन्द्र साधारण शिरोरेखा प्रायः प्रबल होती है। रासायनिक—लम्बी उँगलियाँ गांठें पुष्ट, मध्यमा सबसे पुष्ट हो शनि उच्च चन्द्र पर्वत साधारण,हथेली पतली उसमें चिकित्सिक के चिन्ह न हों। वह भैषज्य सम्बन्धी, नवीन आविष्कार का स्रष्टा भी होता है। चिकित्सक—हस्ताँगुलि लम्बी गांठे पुष्ठ, अग्र भाग चौकोन, रवि, गुरु, मंगल अच्छे पुष्ट, रवी, बुध क्षेत्र में विवाह रेखा के सामने, सन्तान रेखा से पृथक् ५;६ छोटी रेखायें हों, अथवा एक से अधिक सीधी रेखा होती है। धार्मिक—सुई सी नुकीली अंगुली तर्जनी की प्रथम पोर लंबी गुरु उच्च, शुक्रबालय भी हो, रवि, शुक्र चन्द्र उन्नत, शनि, भौम निम्न होते हैं। कृषीवेत्ता—शनि, मंगल, उच्च, पाश्चात्य मत से चन्द्र, शुक्र पुष्ट, लम्बे नख, स्थूल चौकोन उंगलियां, उनकी प्रथम, तृतीय ग्रंथियां पुष्ट आयु, शिरोरेखा अन्तःकरण रेखा के अतिरिक्त, थोड़ी रेखायें होती हैं। पशुपालक—बुध, रवि, चन्द्र पुष्ट, चौकोर या स्थूल उँगलियां होंगी। सुश्रूषाक—हथेली मुलायम, उंगली लंवी बुध, शुक्र, उच्च, हृदय मस्तिष्क आयुरेखायें मिली हों, कष्ट प्रदचिन्ह, राहुक्षेत्र में एक से अधिक रेखा द्वाराकटी, आयु रेखा से रहित, बुध क्षेत्र में ५-६ रेखा या एक से अधिक सरल रेखा होती है। सगीतज्ञ—उंगली कुछ लंवी अग्रभाग चौकोन या स्थूल (र० च०शु० या बुध) उठे हुए, आयु रेखा से अन्तःकरण रेखा पृथक् होती है।

दांत—(गरुड़ पुराण) दांत कराल, विषम (ऊंचे नीचे) हों तो क्लेश भय। २. मसूड़ा काला हो तो स्त्री चोरी करे। ३. बहुत बड़े (आकृति से) हों तो पति की अल्पायु हो। ४. पीले या कांले दांत हों तो पति कष्ट पाये ५. ऊपर की अपेक्षा, नीचे के दांत अधिक हों, तो मां छोटी आयु में मरे। ६. बहुत बड़े चौड़े या भयंकर हों तो विवाह न हो, या बाल विधवा हो, ७. जिनके दांतों में अन्तर एक से दूसरा पृथक् हो तो कुलटा हो।

समुद्र ऋषि—अनपत्या भवेन्नारीदन्तानां चलनं यदि। निधनत्वं च दारिद्रयं तस्याश्चैव विनिर्दिशेत्।

अर्थात् सोते में दांत किटकिटाये तो सन्तान सुख से हीन हो। **उपाय**—उस बच्चे की गर्दन में कबूतर का पंख बांधें शान्ति हो। ऐसी दशा दरिद्रा दुःख भागिनी भी होती है।

जीभ—१ काली होतो दुःखी। २ बीच जिकड़ी आगे चौड़ी दु;खी ३ मोटी हो तो दरिद्रा ४ लंबी हो तो अभक्षभक्षिणी। ५ बहुत लंबी चौड़ी नशाखोंर लापरवाह।

तालू—(स्कन्द पुराण) १. पीली तालु सन्यासी हों २. सफेद विधवा स्कन्द पुराण दु;खी हों सन्तानहीन परन्तु विधवा न हों। निर्धन, देवलियापन हों। ३. श्याम रंग, खुरदरा हों तों सन्तानहीन हों ।।४।। समुद्र ऋषि--१-सफेद हो तो दासी, २-श्याम हो तो दुःखिनी ३-काला रूखापन वाला हो तो सन्यासिनी (सन्तान हीन) गर्ग मुनिः-तालु, लालिमा लिये हों, धब्बे न हों तों चिर सुहागिनी, पुत्रवती हों।

नाक:—(भविष्य पुराण) जिसकी शरीर के अनुपात से बड़ी नाक हो–दुर्वचनी; कलहिनी हो। २. नाक का अग्रभाग-लाल हो झुका हो तो पतिसुख में बाधा हो। ३. समुद्र ऋषि :—नाक के आगे का भाग बहुत बड़ा हो तो बहुत क्रोधी छोटी हो तो दासी, चपटी हो तों विधवा हो।

नेत्र:—बायें की कानी हो तो व्यभिचारिणी, दायें से कानी हो, तो वन्ध्या हो।

स्वामुद्र-तिलक:—पीले या गो-पिंगल नेत्र हो तो चरित्र भ्रष्ट हो।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिल-मस्सा-लहसन—१. स्त्री के कंठ-ओठ-वाये हाथ या कान पर मस्सा या तिल हो तो पुत्रवती हो पुत्र उच्च पद प्राप्त करें। २. भौं के बीच मसा हो तो स्वयं उच्च पद प्राप्त करे। ३. वायें गाल पर लाल मस्सा–स्वादु भोजन। ४ हृदय पर हों तो शुभ फल। ५. नाक के अग्रभाग पर हों तो पति उच्चपदाधिकारी मिले, यदि काला हो तो विधवा। ६. पैर के टकने पर–दरिद्रा। ७. ललाट पर काला चमकीला हो तो ५ पुत्र हों सौभाग्यवती, धर्मपरायण्णा हो, ये बाये सभी शुभ हैं।

स्त्रीं के वामाङ्ग तिल का विचार—(१) मधुरङ का तिल मस्तक पर–रानी, (२) आँखों पर-पति का प्रेम, (३) गाल पर, ऐश आराम। (४) कान पर-गहने जेवर। (५) गले पर–स्वगृह में हुकूमत। (६) छाती पर पुत्रवती। (७) हाथ पर–पति की प्यारी। (८) ललाट पर–धनी पति। (९) जांघ पर–सेवक सुख। (१०) पैर पर–विदेश भ्रमण। (११) स्त्री के ललाट पर बायें भौंह और वालों के बीच हो तो अपव्ययी-स्वेच्छाचारिणी हो। ऐसी ३० वर्ष उपरान्त ही कुमार्गगामिनी-पतिद्रोहणी हो। (१२) यदि वायें भौंह के पास हो तो दुष्टा और छूत की बीमारी। (१३ (बाये भौं से ऊपर हो तो पति सुख सामान्य; एक सन्तान को तीव्र रोग, अन्य सन्तानें स्वस्थ हों। (१४) यदि वाये भौं से कनपुटी के बीच २ अंगुल ऊपर हो तो–छोटी आयु मे विवाह हो पुत्रवती हो—मोती और मूंगाधारणं करने से विशेष लाभ। (१५) वांयें भौं पर कान के बालों और भौं के बीच १ अंगुल ऊँचाई पर हो तो–कण्ठरोग। "ये 'तिल तभी अपना प्रभावपूर्णरूप से दिखाते हैं जब मुकाबिले का तिल हो काला तिल सदैव अशुभ शहद के रंग का शुभ है, तिल बिना प्रभाव नहीं रहते कम या अधिक की बात पृथक् है।

नेत्रों के आसपास के तिल	मुकावले के तिल	मुकावले के तिल
(१) दाहिनी आंख के कोने पर भौं के अन्त पर		पेट के वाम भाग पर
(२) दाहिनी आंख के नीचे		छाती के नीचे
(३) दाहिनी आंख के वांयें कोने पर		वाम उरु के नीचे
(४) दोनों भौं के मध्य भाग में		वायें या दाहिने पैर पर
(५) वाम नेत्र के कोने पर नासिका के पास	वगल के नीचे वाई भुजा के अन्दर की ओर	
(६) वाम नेत्र के नीचे		दाहिनी कोहनी के नीचे
(७) बाम नेत्र के नीचे		दाहिनी कमर पर
(८) वाम नेत्र के वांयें, नेत्र प्रान्त, कान के नीचे		सीने की हड्डी के नीचे
(९) वाम नेत्र के कोने पर		वायें कन्धे पर

फल—१. स्त्री के मुख पर २. शारीरिक व्याधि मानसिक कष्ट। ३. हो तो २० व ३० वर्ष में गुप्त प्रेम। ४. हो तो नीच जाति के व्यक्ति से प्रेम-व्यभिचारिणी ५. धन लाभ परन्तु स्वास्थ्य खराब ६. हो तो बचपन में अग्निभय चोट ३० वर्ष के लगभग विरासत से धन लाभ हो ७. हो तो सुखी। ८. बिलासिनी, बाहरी कार्यों में दक्ष। ९. हो तो स्वास्थ्य खराब बिजली या अग्नि से भय-चरित्र में सन्देह हो।

कान के पास तिल—१. चेहरे पर ऊपर कान के पास स्त्री की जल विकार या कफ के रोग से मृत्यु। २. चेहरे पर कान के मध्य भाग के पास, आचार, व्यवहार, लज्जाजनक हो। ३. कान के नीचे लौर के समीप-सम्बन्धियों को भय। ४. स्त्री के चेहरे पर बायें हों तो भयंकर व्याधि हो पर अनुष्ठान से लाभ हो। ५. दायें थोड़ी के नीचे हो तो सन्तान के सुख का अभाव। ६. स्त्री के मुख पर नीचे ओठ के पास हो तो प्रसव कष्ट प्रसव रोग।

गर्भाधान कालः ।। पारस्करः ।। भगवान आत्रेय जी ने चरक संहिता (शरीरस्थान) द्वितीय अध्याय श्लोक में अतुल्य गीत्र भिन्नगोत्रीय स्त्री जो रजोधर्म ा शुद्धं ब्रह्मविधि से विवाहित हो, को गर्भाधान की आज्ञा दी है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्यथा वंश विच्छेद कुष्ठ, अक्षि रोग, दमा, यक्ष्मादि से पीड़ित होते हैं यह द्विजाति मात्र को ही है, महर्षि याज्ञवल्क्य व्यास जी ने (पारस्कार) हेमाद्रि में शंख ऋषि एवं व्यास जी ने कहा है। उसका निम्नलिखित है।

गर्भाधान में ग्राह्य दिन व फल

दिन	फल
प्रथम	आयुक्षीण हो, प्रसव में ही नष्ट हो—गर्भस्राव या गर्भपात हो
द्वितीय	सूतिकाग्रह में ही मृत्यु हो
तृतीय	अङ्गहीन, अल्पायु
चतुर्थ	अल्पायु, दरिद्री पुत्र
पञ्चम	पुत्रवती कन्या हो
षष्ठ	मध्यम पुत्र
सप्तम	पुत्रहीन कन्या
अष्टम	प्रभुभक्त पुत्र
नवमे	सौभाग्यवती कन्या
दशमे	गुणी पुत्र हों
ग्यारहवें	अधर्मिणी पुत्री (विष कन्या)
वारहवें	उत्तम पुत्र
तेरहवें	पापिष्ठा, वर्ण संकर उत्पन्न करने वाली कन्या
चौदहवें	धर्मज्ञ, कृतज्ञ, आत्मवेदी, दृढ़व्रतपुत्र
पन्द्रहवें	पतिव्रता, सौम्या, सहृदया कन्या
सोलहवे	प्राणियों का आश्रयदाता, धर्मात्मा, राष्ट्रनायक पुत्र
पूर्व दिन	पूर्णिमा, ग्रहण, अमावस्या, एकादशी, श्राद्धदिन अष्टमी व चतुर्दशी का परित्याग कर दें।

दिन में गर्भाधान करने से, नपुंसक, षण्ढा, अल्पवीर्य अल्पायु सन्तति होती है।

स्त्री के सोलहवें और २५ वें वर्ष से आगे, स्वस्थ, प्रसन्नचित्त, सहर्षता (परस्पर) में किया गर्भाधान, उत्तम पुत्रप्रद होता है।

ग्राह्य तिथि, वार, नक्षत्र-लग्न

तिथि—१,२,३,५,७,६,१०,१२,१३, तिथियों में,

बार—सोम, गुरु, शुक्र,

नक्षत्र–रोहिणी, मृगशिर, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्टा, तीनों उत्तरा, श्रवण, शतभिषा, स्त्री का श्रेष्ठ चन्द्रबल।

गर्भाधान में त्याज्य तिथि नक्षत्रादि—गण्डान्त, दुष्टतारा, जन्मतारा, मूल, भरणी, अश्विनी रेवती ग्रहणदिन-व्यतीपात, वैधृति, श्राद्धदिन, परिघार्ब, उत्पात नक्षत्र, पापयुक्त लग्न, भद्रा, जन्म व अष्टम लग्न, षष्ठी चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या पौर्णिमा, रिक्ता ४।६।१४, दोनों सन्ध्या भौम-रवि, शनि, सङ्क्रान्तिदिन १ से ४ रजोदर्शन के दिन सर्वथा त्याज्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कन्या ऋतु धर्म वर्णन--अष्ट वर्षा भवेद्गौरी, नव वर्षातु रोहिणी, दश वर्षा भवेत्कन्या, अत ऊर्ध्वंरजस्वला । दशमे ऽनग्निका वास्यात्, द्वादशे वृषलीस्मृता । अपरा वृषली ज्ञेया, कुमारी या रजस्वला ।।कारिकायाम् ।

चरक संहिता के अष्टम अध्याय "जाति सूत्रीय शरीर' के ८ वें मन्त्र में १२ वर्ष की कन्या से छोटी अति बला और १६ वर्ष की बाला को सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति का हेतु माना है । पुरुष २५ से ३२ वर्ष की आयुवाला ही सर्वश्रेष्ठ माना है । इस कारण कन्या के सर्व प्रथम रजस्वला होने के मास, तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, योग, करण, रक्त तथा वस्त्रादि का फल तथा ऋतुकाल के धर्मों का ज्ञान होने से, वैधव्याद्रि तथा बन्ध्या आदि अनिष्टकारी फलों से रक्षार्थ शान्ति-कार्यों का वर्णन किया जाता है ।

प्रथम ऋतुकाल के मास का फल—

मास	फल	विशेष विवरण
(चैत्र)	विधवा	पुरुषोत्तम मास सर्वसुख
(वैशाख)	धनपुत्र	शुक्लपक्ष शुभ
(ज्येष्ठ)	रोग	कृष्णपक्ष अशुभ
(आषाढ़)	सन्तान मरें	
(श्रावण)	धनयुक्त	
(भाद्रपद)	दुर्भगा	
(आश्विन)	तपस्विनी	
(कार्तिक)	अल्पायु	
(मार्गशीर्ष)	वहु सन्तति	
(पौष)	जारिणी	
(माघ)	पुत्र-सुखी	
(फाल्गुन)	पतिव्रता	

प्रथम ऋतु काल की तिथियों का फल—

(१) पतिव्रता
(२) दुखी
(३) पुत्रवती
(४) बाल विधवा
(५) सौभाग्यवती
(६) कार्यनाशिनी
(७) सुप्रजा
(८) राक्षसी
(९) युवा विधवा
(१०) सुखी भोगी
(११) पवित्र
(१२) मरण
(१३) शुभावह
(१४) छिनाल
(१५) पूर्णिमा शुभ
(१६) अमावस्या अशुभ

कृष्णा १० वीं के उपरान्त अमावस्या पर्यन्त की हो तो कुलटा

प्रथम ऋतु के बार फल--रवि—विधवा, चन्द्र —सन्तान मरें. भौम--आत्म हत्या, बुध—बहु कन्या--गुरु--पुत्र-प्राप्ति, भृगु—बहु प्रजा, शनि--जारिणी होती है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथम ॠतु वर्षफल--

(अश्विनी)	सुभगा	(मघा)	द्रव्यवती	(मूल)	साध्वी पतिव्रता
(भरणी)	युवा विधवा	(पू०फा०)	धनधान्ययुता	(पू०षा०)	सौभाग्यवती
(कृतिका)	बन्ध्या	(उ०फा०)	पतिपरायणा	(उ०षा०)	धनयुक्त
(रोहिणी)	सुन्दर वाणी	(हस्त)	पुत्र-धन	(श्रवण)	सौभाग्यसम्पतिवाली
(मृगशिर)	दरिद्रा	(चित्रा)	पतिव्रता	(धनिष्ठा)	शुभ
(आर्द्रा)	क्रोधिनी	(स्वाती)	(छिनाल	(शतभिषा)	कल्याण-जननी
(पुनर्वसु)	पुत्रवती	(विशाखा)	निठुर	(पू० भा०)	लक्ष्मी युक्ता
(पुष्य)	धनधान्ययुत	(अनुराधा)	दुर्भगा	(उ०भा०)	शुभदाता
(श्लेषा)	काकबन्ध्या	(ज्येष्टा)	बालवैधव्य	(रेवती	परित्यागी

योगफल

१. विष्कम्भ	बाल वैधव्य	१५. वज्र	बन्ध्या
२. प्रीतियोग	दाम्पत्य प्रेम	१६. सिद्धि	पुत्रप्राप्ति
३- आयुष्मान	धन प्राप्ति	१७. व्यतीपात	पतिवियोग
४. सौभाग्य	पुत्र प्राप्ति	१८. वरीयान	मृत्वत्सा
५. शोभन	मंगलमय	१९. परिघ	अल्पायु
६. अतिगण्ड	युवा वैधव्य	२०. शिव	पुत्र प्राप्ति
७, सुकर्मा	शुभफल	२१. सिद्धियोग	सर्वकार्यसिद्धि
८. घृति	सम्पत्ति	२२. साध्य	धर्म परायणा
९. शूल	रोगिणी	२३. शुभयोग	सद्गुणान्विता
१०. गण्ड	दु:खी	२४. शुक्ल योग	शुभकर्मरत
११. वृद्धि	पुत्रप्राप्ति	२५. ब्रह्मयोग	पतिव्रता
१२- ध्रुव	आनन्दकर	२६. ऐन्द्रयोग	ईश्वरभक्त
१३. व्याघात	पतिघ्नी	२७. वैधृति	विधवापन
१४. हर्षण	आनन्दप्रद		

प्रथम ॠतु के रक्तवर्ण—

१. शुक्ल वर्ण रुधिर	अखण्डसुखी पुत्रवती
२. खरगोश के रंग का	पुत्रवती
३. महावरी	कन्या सन्तति
४. आकाशी नीला	मृतवत्सा
५. चित्र विचित्र	स्त्री की मृत्यु हो
६. पिंगट (श्वेतपीत मिश्रित)	मृत प्रजा
७. कृष्ण वर्ण	बालवैधव्य
८. घुंघची समान निकसे	शुभफल
९. मध्यम निकले	श्रेष्ठतर
१०. बहुरक्तस्राव	दुर्भगा

दिन में दुर्योगभद्रा
से रहित श्रेष्ठ
रात्रि-अनिष्टप्रद

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११. थोड़ा बिन्दू विदु रक्त	जारिणी
१२- लाल	पुत्रवती
१३. काला	सृतप्रजा
१४. पूक (कीच) के समान	वन्ध्या हो
१५. धौला और पीला निकले	काकवन्ध्या
१६. पीत वर्ण का निकले	वेश्या हो।
१७- सिन्दूर सम निकले	कन्या सन्ततिवाली हो

काल फल

दिन का पूर्व भाग	सौभाग्यवती	पूर्व रात्रि में हो	वन्ध्या
मध्याह्न	दरिद्रा	दोनों सन्ध्याओं में हो	वेश्या
अपराह्न	शुभदा	अर्द्ध रात्रि में हो	युवा विधवा
सायाह्न	पूर्ण भोगवती	सन्धि में हो	सर्व अनर्थ प्रद

वस्त्र फल

श्वेत	सुभगा	पीत	भोगिनी	दृढ़ वस्त्र	पतिपरायण
लाल	रुग्ण	विचित्र वर्ण	पतिव्रता	पुराना	अनर्थप्रद
नील	बालवैधव्य	सूक्ष्म	कृशांगी	मध्यम	सुभगा
				मैला (क्षीण)	मलिनता दुर्वचनी

रजस्वला का स्नान—हस्त, स्वाती, अश्विनी; मृगशिर, अनुराधा, घनिष्ठा, रोहिणी तीनों उत्तरा ज्येष्ठा नक्षत्र, रिक्ता (४-९-१४) को छोड़ अन्य तिथियों में सोम शुक्र बुध गुरुबारों में स्नान करें।

मृ० रे० स्वा० ह० अ० और रोहिणी में स्नान शीघ्र, शुभ गर्भप्रद होता है, गौ का गोवर, अपामार्ग लेपन कर स्नान करना श्रेयस्कर कहा है।

प्रथम रजोदर्शन-काल के विशेष लक्षण—प्रथम रजोदर्शन काल में हाथ में बुहारी-काठ तिनका अग्नि शूर्प–पयाल (सूखे चावल धान) की भूसी या धान-लोह-पत्थर हथियार आदि अशुभ घर के द्वार की देहली पिता के घर ऊपर सोती अवस्था में अशुम रजोदर्शन काल में पिता आदि सहेली पति का दर्शन अशुभ समझें, निवारण करायें।

वास्तु विज्ञान (ग्रामद्यानुकूल्यम)—घर आदि बनाने में ग्राम, दिशा, भूमि, मास, नक्षत्र, लाभ, व्यय, लग्न, अंश तथा शल्य शोधन करें।

ग्रामादेरानुकूलत्वं दिशोभूतग्रहस्य च। मांस ऋक्षादि शुद्धि च वीक्ष्यायव्ययभांशकान् ॥१॥

ग्रह बलम्—गुरु शुक्रार्क चन्द्रेषु स्वोच्चादि बलशालिषु। गुर्वर्कैंदुर्वलं लब्ध्वागृहारम्भ प्रशस्यते ॥२॥ वृ० शु० सू० चं० ये अपने उच्च में हों, बलवान हों, ऐसे समय में गु० सू० चं० का बल देख कर प्रारम्भ शुभ फलदाता होता है ॥२॥

विवाहोक्तान्महादोषानृते जामित्रशुद्धितः। रिक्ताः कुजार्क वारौ च चरलग्नं चरांशकम् ॥३॥

विवाहोक्त महादोषों में से जामित्र दोष शुद्धि के सिवा अन्य समस्त दोष, रिक्ता तिथि मंगल, रविवार, चरलग्न, या चर का नवांश घर बनाने में त्याग दें ॥३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्यत्त्वा कुजार्कयोश्चांश षष्ठं चाग्रस्थितम् विधुम् । बुधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद्गेहं शुभाश्रये ।।४।।

मंगल सूर्य के अंश, ६ वें चन्द्रमा, या सन्मुख चन्द्र को त्याग दें, मिथुन, कन्या, धन, मीन राशिस्थ सूर्य त्याग दें, तब गृह निर्माण करना शुभ होता है ।।५।।

द्वार शुद्धिः—द्वारशुद्धि निरीक्ष्यादौ भशुद्धि वृषचक्रतः । निष्पञ्चके स्थिरे लग्ने द्व्यङ्गे वाऽऽलयमारभेतः ।।५

प्रथम द्वार चक्र, और नक्षत्र शुद्धि वृषचक्र से देखें; पञ्चकरहित, स्थिर या द्विस्वभाव लग्नों में ही गृह-निर्माण शुभ होता है ।।५

ग्रामानुकूल्यम्— स्वनामराशेर्यद्राशि द्विशारांकेशदिङ्गितः । संग्राम शुभदः प्रोक्तस्त्वशुभः स्यात्त-तोऽन्यथा ।।६

अपनी नामराशि से ग्राम नाम राशि २:५:९:११:१० में से कोई भी एक हो तो शुभ, शेष अशुभ ।।६

प्रथमे सप्तमे व्योम गृह हानि स्त्रिषष्ठगे । तुर्यादिष्टादशेरोगा शेषस्थाने भवेत्सुखम् ।।७

अपनी नामराशि से ग्राम की नाम राशि १ या ७ हो तो शून्य; ३।६ हो घर की हानि ४, ८, १२ रोगकारक, इससे शेष ६ वें में निर्दिष्ट २:५:९:११:१० शुभ ।

शल्यशोधनम्—कुंडार्थमादौपारिशोध्यपृथ्वींपृष्ठेमुखाद्यः प्रथमः स्फुटीभवेत् ।

वागादिवर्णः किलतद्दिशिस्मृतं शल्यमुनींद्रैर्हपयैस्तु मध्यगः ।।८

स्मृत्वेष्टदेवतांप्रष्टुर्वचनस्याद्यमक्षरम् । गृहीत्वातु ततः शल्याशल्यं सभ्यग्विचार्यते ।।९

कुण्डनिर्माण-या गृहनिर्माण में निम्न भाँति शल्यशोधन करें । प्रश्नकर्त्ता मयपत्र-पुष्ष दक्षिणादि प्रभुसंस्मरण कर जो प्रश्न करे–उसके मुख से निकले प्रथम अक्षर या लिखित प्रश्न के प्रथम अक्षर या किसी भी पुष्प के प्रथम नामाक्षर जो ले या लिखे का (अ: क: च: ट: त: प: य: श) अष्टवर्गों में से जिस वर्ग का अक्षर उसका हो उसी वर्ग संख्या को अवर्ग से शवर्गान्त, ८ को पूर्व आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम वायव्य, उत्तर, ईशान इन ८ दिशाओं में क्रमशः बांटें उस दिशा को निम्न जो भी शल्य हो समझे और उसका निम्न फल भी समझें ।

प्रश्नाक्षर फलम्—यदि प्रथम अक्षर अ से अः पर्यन्त अवर्ग है तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य का हाड़ है, उसे न निकाले तो मृत्युकारक होगा । यदि प्रथम अक्षर कवर्ग का है तो आग्नेय दिशा में २ हाथ नीचे गदहे का हाड़ हो जो राजभय, त्रास, दण्डकारक है। यदि चवर्ग का हो तो दक्षिण में स्वामी की कमर के बराबर नीचा मनुष्य का हाड़ है, जो मृत्यु, रोग दुर्घटना करनेवाला है। यदि ट वर्ग हो तो नैऋति में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते का हाड़ है, जो पुत्रनाश वंशविच्छेद, गर्भस्राव, मृतापत्यादोष, स्त्री, गौ, महिषी, घोड़ी सभी को वन्ध्याकारक है ।

यदि प्रश्न का प्रथम तवर्ग का अक्षर हो, पश्चिम दिशा में लड़के का हाड़ है जो गृह स्वामी की गृहनिर्माण से पूर्व ही मृत्युप्रद है । यदि पवर्ग का अक्षर हो तो वायव्य दिशा में ४ हाथ नीचे भूसा, कोयला लकड़ी है जो मित्र, बन्धुनाश, दुस्वप्नकारक है । यदि यवर्ग है तो उत्तर दिशा में हाथ भर नीचा ब्राह्मण का हाड़ है जो, विविध क्लेश, दौर्भाग्य, दारिद्र, मिथ्यालाञ्छन, सहसा बना घर हाथ से परहस्त में चले जाने का प्रतीक है । यदि ८ वां शवर्ग का आदि का अक्षर हो तो ईशान दिशा में डेढ़ हाथ गहरा गौ का हाड़ है जो गोधन कृषि, उद्योग, उत्पादन को हानिकारक है । यदि क्ष, त्र, ज्ञ में से कोई हो तो मध्य में कमर के बराबर खोदने से मनुष्य का कपाल भस्म, लोह, है जो कुलक्षय करने वाला है ।

इस प्रकार शल्य को भली भांति कुण्ड, घर, कूप, वापी, तडाग, वागमन्दिर, धर्मशाला आदि निर्माण करने से पूर्व देखें और आगे लिखी अथर्वविधि से यदि कल्याण कीं इच्छा, निष्ठा और विश्वास हो, वास्तुशान्ति करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गृह जातक— स्वरोदय के मर्मज्ञ महर्षियों ने अ से श तक आठ वर्गों के ४९ अक्षर कहे हैं, जिनमें अ वर्ग के १६, कवर्ग के ५; चवर्ग के ५, टवर्ग के ५; तवर्ग के ५; पवर्ग के ५; यवर्ग के ५; यवर्ग के ४ शवर्ग के ४ कुल हैं। इन वर्गों के क्रमशः निम्न स्वामी हैं अवर्ग=गरुड़; कवर्ग—बिलाव; च सिंह; ट— श्वान; त—सर्प; पवर्ग; य—वर्ग हाथी; शवर्ग—शूकर। इनमें अपने नाम के अक्षर के वर्ग से ५ वाँ वर्ग शत्रु समझें। इसमें शुभाशुभ का ज्ञान कर लें।

काकिणी—१. अपने नामाक्षर वर्ग संख्या को दूना करें। ग्रामादि के नामाक्षर वर्ग संख्या को उसी में जोड़ें, तब योग में आठ का भाग दें। इसी प्रकार ग्राम या परवर्ग के नामाक्षर वर्ग संख्या को दूना करे उसमें अपनी नामाक्षर वर्ग संख्या जोड़ें और योग में आठ का भाग दें—उन शेष में जिसकी शेष संख्या अधिक हो उसी को ऋणी समझें—ग्राम अपना ऋणी हो तो उसमें घर बनायें। ऐसे ही पिता, पुत्र, पुत्री, पत्नि, स्वामी सेवक होगा।

२. कृत्तिका से आश्लेष तक के ७ नक्षत्रों में से चन्द्रमा हो तो घर का द्वार दक्षिण में; अनुराधा से चनिष्ठा तक में चन्द्रमा हो तो द्वार उत्तर में, मघा से ७ विशाखा तक चन्द्रमा हो तो द्वार पूर्व में; और घनिष्ठा से ७ भरणी तक के किसी नक्षत्र में चन्द्रमा हो तो द्वार मुख पश्चिम में समझें।

भूमि रज—आर्द्रा नक्षत्र के प्रथम चरणों में सूर्य के रहने पर भूमि को तीन दिन रज रहता है, बीजवपन भूमिखनन शिलारोपड़ आदि में विचारें।

भूमि शयन—सूर्य जिस नक्षत्र पर हो, उससे ५, ७, ९, १२, १९, २६ वें नक्षत्र में भूमिशयन होता है, उसमें सभी निर्माण, खनन, हल जोतना, बीज बोने आदि का प्रारम्भ करना अशुभ है।

शेष शिरोज्ञान—भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक में, शेषशिर पूर्व में, मार्गशीर्ष, पौष माघ में दक्षिण में फाल्गुन, चैत्र, वैसाख में पश्चिम में. ज्येष्ठ, असाढ़ श्रावण, उत्तर में शेष-शिर जानें, मुख की २ पुच्छ की २ दिशा त्याग मध्य में खात, बीजवपन आदि करें। देवालयादि, जलाशयादि-गृह आदि निर्माण में जहाँ राहु (शेष) मुख हो उसके पृष्ठ कोण में नीम (खात) खोदना, वीज बोना, आदि शुभ हैं—सूक्ष्म ज्ञान निम्न हैं—

ईशान में मीन. मेष, वृष के सूर्यों में	वायव्य में मिथुन, कर्क, सिंह के सूर्यों में	नैऋत्य में कन्या, तुला, वृश्चिक सूर्यों में	आग्नेय में धन, मकर, कुम्भ के सूर्यों में	देवालयादि प्रारंभ प्याऊ बाग, कुण्ड. धर्मशाला
मकर, कुम्भ, मीन के सूर्यों में	मेष, वृष, मिथुन के सूर्यों में	कर्क, सिंह, कन्या के सूर्यों में	तुला; वृश्चिक,धन के सूर्यों में	जलाशय, वापी, कूपादि का प्रारम्भ
सिंह, कन्या, तुल के सूर्यों में	वृश्चिक. धन ककर के सूर्यों मे	कुम्भ, मीन, मेष के सूर्यों में	वृष, मिथुन, कर्क के सूर्यों में	गृह आदि निर्माण प्रारम्भ
(खात दिशा)आग्नेय	ईशान	वायव्य	नैऋत्य	खाता करने की दिशा

बास्तु भूमि के शुभाशुभ ज्ञान की विधि (अन्य) पूर्व दिन में साय ही एक हाथ लम्बा, १ चौड़ा, १ वालिस्त गहरा गडढा खोदें (उपरोक्त) उसे सौभाग्यवती कन्या, धुले, स्नानकर, स्वच्छ वस्त्रधारणकर, पवित्र घट में पुष्प चावल, हल्दी आदि डाल, मौलि कलावा वाधें, स्वस्तिक बना, पवित्र जल से पूर्ण कर मंगल गान, हरि कीर्तन के साथ गर्त को जल से पूर्ण स्वरूप भरें। उसे प्रातः ही देखें—जल हो तो शुभ, सूख गया हो तो मध्यम, यदि जल सूख कर दरार हो गई हों तो अशुभ समझें। किन्तु देश काल-पात्र के अनुरोध पर ही करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिलान्यास---प्रथमपीठ में पूजा, प्रतिष्ठा के उपरान्त प्रथम पाषाण आग्नेय दिशामें दूसरा दक्षिण ३ नैऋत्य, ४ पश्चिम ५ वायव्य, ६ वां उत्तर, ७ ईशान, ८ पूर्व में स्थापित करें, इसी क्रम से रक्षातन्त्र की कोलें गाढ़ें, इसीप्रकार. पाषाण स्थापित करें। रक्षार्क्ष दण्ड आग्नेय में करें—आगे वास्तुशान्ति में देखें।

श्रवण मृगशिर, रेवती, हस्त, रोहिणी पुष्य, तीनों उत्तरा-शिलान्यास में हैं।

आय आदि साधन विधि--घर आदि की भूमि की लम्बाई-चौड़ाई, अन्दर की ओर से तथा देवालयादि धार्मिक निर्माण की बाहर की ओर से हाथ से नापे, परन्तु ३२ हाथ लब्बे चौड़ें मकान या चार द्वार वाले घर में आय का विचार न करें' लम्बाई चौड़ाई का गुणा कर पिण्ड बनायें। उन्हें क्रमशः ९ स्थानों पर रख और क्रमशः पिण्ड को ६।६।६।८।३।८।८४।८ से गुणा करें, उसी क्रम से ८। ७। ८। १२। ९। २७। १५। २७। १२० से भाग दें जो शेष बचें उन्हें क्रमश; आय, वार, अंश द्रव्य, ऋण. नक्षत्र, तिथि योग, आयु समझें, यदि गृह और गृहस्वामी का नक्षत्र एक हो तो मृत्युकारक है आय ८ होते हैं---१ ध्वज, २ धूम्र, ३ सिंह, ४ श्वान, ५ वृषभ, ६ गर्दभ, ७ हस्ति ८ (०) काक। इनमे विषम संख्या के शुभ,सम संख्या अशुभ है। १ ध्वज आय ब्राह्मण ३ सिंह क्षत्रिय, ७ हस्तिशूद्र ५ वृषभ आय वैश्य के लिऐ शुभ है। अन्य आय नीच (क्षुद्र) समस्त जाति को शुभ है।

घर का नक्षत्र और व्यय का ज्ञान

उपर्युक्त पिण्ड को ८ से गुणा कर २७ से भाग देने पर शेष संख्या वाला गृत का नक्षत्र होता है, इस नक्षत्र को ८ से भाग दें। जो शेष रहे वही व्यय है। आय व्यय से कम होतो शुभ, अन्यथा अशुभ।

ग्राम या घर के नक्षत्र से वासकर्ता के नाम नक्षात्र तक फल समझें। मस्तक-७-धनलाभ पृष्ठ-७-हानि निर्धनता। हृदय-७-सुख, समृद्धि। पाद-७—पर्यटन।

चरणी विचार=उपरोक्त गृहस्वामी के हाथ की लम्बाई चौड़ाई के योग को ८ से भाग दें शेष १ पशु हानिः २ पशुनाशः ३ पशुलाभः ४ पशुक्षयः ५ पशुरोग; ६ पशुवृद्धि ८-० पशुबाहुल्य समझें।

मण्डलेश ज्ञान--उपरोक्त ल० ÷चौ० के वोग को ही ९ से भाग दें, शेष का फल १ दाता, २ नृपति, ३ नपुंसक, ४ चोर, ५ विद्वान, ६ भोगी, ७ धनाढ्यः ८ दरिद्र, ९ (०) कुवेर के अनुसार समझें।

उपर्युक्त आयों के विशेष फल....१ ध्वज कीर्ति, (२) धूम्र शोक, (३) सिंह (जय): (४) श्वान (बैर) ५ वृषभ (धनः) ६ गर्दभ (निर्धन) ७ हस्ति (सुख): ८ ध्वांक्ष (रोग भय)।

व्यय साधन में विशेष ज्ञान--घर का द्वार पूर्व को बनाने में---वृषभ आय, दक्षिण, को गज आय।

गृह राशि ज्ञान—उपरोक्त पिण्ड को ८ से गुणा २७ से भाग देने पर शेष नक्षत्रों से अ० भ० कृ० हों तो घर की राशि मेष, म० पू० फा०, सिंह ५, मू० पू० षा०, उ० षा० धन (९) शेष नक्षत्रों से क्रमशः दो, दो की ही एक राशि, यथा रो० मृ० वृष० २; आर्द्रा पुन० (मिथुन) पु० श्ले०/कर्क और ह० चि० कन्या ६, स्वा० वि० तुल (७) अनु० ज्ये० (वृश्चिक ८) श्र० ध० (१० मकर) श० पू० कुम्भ उ० भा० रे० (मीन) समझें।

गृह का नामकरण -पूर्व में १, दक्षिण में २, पश्चिम में ४, उत्तर में ८ कल्पना करें। घर का द्वार जिस दिशा में हो उपरोत्त में से उसी अंक संख्या को लें, उस संख्या में, घर में जिस दिशा में जितने भी दालान हों, उस संख्या के अंकों को जोड़ें. उस योग में १ और मिला दें। अब १ से १६ तक की संख्या के अङ्कों का क्रमशः नाम समझें। १ (ध्रुवः) २ (धान्यः) ३ (जय)४(नन्द)५(खर)६ कान्त ७ (मनोहर)८ (सुमुंख)९(दुर्मुख) १० (क्रूर) ११ (रिपुदं) १२ (धनद) १३ (क्षय) १४ (आनन्द) १५ (विपुल) १६ (विजय)—फल नामानुसार समझें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अंश ग्रहण—पूर्व जो आय व व्यय बताये हैं उनमें से खर्च की संख्या को-पिण्ड (ल० + चौ०) "क्षेत्रफल" की संख्या में जोड़ें, उसी योग में घर के उपरोक्त नामाक्षर मिलायें, इन तीनों के योग में ३ का भाग दें, शेष २ अशुभ १ या ३ (०) शुभ।

ग्रह में स्थान योजना—पूर्व में स्नानालय; आग्नेय में पाकशाला, दक्षिण शयनकक्ष, नैर्ऋति में शस्त्रागार, पश्चिम-भोजनालय, वायव्य में पशुशाला, उत्तर में भण्डार (द्रव्यादि), ईशान में यज्ञशाला, देवालय बनाना शुभ है।

विशेष ज्ञातव्य—गृहादि निर्माण में गुण अधिक दोष थोड़े हों तो शुभ; परन्तु आय से व्यय, या ऋणी धनी, और नक्षत्र की विरुद्धता कदापि न लें, उसे त्याग दें।

वास्तु चक्र नाम--गृह के आरम्भ मे वृषभ चक्र; स्तम्भस्थापन में कूर्म चक्र; प्रवेश काल में कलशचक्र देखें। वास्तु चक्र बुधवार को शुभ माना है।

विशेष--गृहनिर्माण के लिये सप्त सकार योग—शनिवार स्वाती नक्षत्र; सिंह लग्न शुक्ल पक्ष, सप्तमी तिथि, शुभ योग और श्रावण मास निर्माण मुहुर्त्त में यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो "शाला" वास्तु देव की पत्नी-स्वामी या उसमें वास करने वालों को पुत्र-पौत्र स्वास्थ्य, सन्मति, सांमनस्य (परस्पर प्रीति) सम्पदा धन-धान्य वाहन, पशु, भोग्य पदार्थों से पूर्ण शास्त्रीय जनों का आश्रय होती हैं। विपरीत इसके--कृष्ण पक्ष में निर्माण प्रारम्भ में चोर भय होता है। आयादि का फल--विषम आय हैं तो शुभ सम हैं तो अशुभ दुःखप्रद।

रवि और मंगल के वार-राशि अंश वाले घर में अग्निमय, अधिक धन और न्यून आय मकान का जो नक्षत्र आया है, उससे गृहारम्भ दिन नक्षत्र तक तथा स्वामी के जन्म नक्षत्र तक, जिनकी जितनी संख्या हो उसमें ९ का भाग दे।१।३।५।७ शेष हों तो अशुभ, २।४।६।८।१ शेष तो शुभ।४।६।१४।३०। तिथियां अशुभ, शेष तिथि आयें तो शुभ, योगों में अतिगण्ड, शूल, विष्कम्भ, गण्ड, व्याघात, वज्र व्यतिपात और वैधृति आये तो नितान्त अशुभ, शेष आयें तो शुभ। आयु में भी अधिक आयु वाला शुभ-कम का अशुभ। इसी प्रकार स्वामी तथा घर का एक ही नक्षत्र आवे तो मृत्युप्रद है। गृह की आयु में विशेष--गृह निर्माण कालिक लग्न में गुरु, ६ वें रवि ७ वें बुध ४ शुक्र ३ शनि हों तो १०० वर्ष की, लग्न में शुक्र ३ रवि, ६वें भौम ५वें गुरु हो तो २०० वर्ष, लग्न में शुक्र १० वें बुध ११वें रवि, १।४।७।१० वें गुरु हो तो १५० वर्ष की १।४।७।१० वें उच्च का गुरु हो और अन्य पूर्ववत् हो तो ३०० वर्ष की, गु. शु. चं उच्च शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हों तो २०० से अधिक आ, शुक्र मूल त्रिकोण ५।६। या उच्च का होकर ४थे में हो तो गृहस्वामी सुखी सर्वप्रकार सन्तुष्ट और गृह सैंकड़ों वर्ष सुदृढ़ बना रहता है जिसके प्रारम्भ काल में चतुर्थ भाव में गु० १० वें चन्द्रमा, ११ वें मं० शु० हों तो ८० वर्ष की जिसके आरम्भ में कोई भी ग्रह शत्रु के नवांश में स्थित होकर १ या ७ अथवा १० वें में हो तो वह घर एक या दो वर्षों में ही बेचने की विवशता होती है।

गृह को आयु प्रमाण—लग्न में शुक्र, १० वें बुध ११ वें रवि और केन्द्र में गुरु गृह आरम्भ लग्न में हों तो गृह आयु २०० वर्ष। गृहारम्भ लग्न में गुरु, ४ थे शुक्र, १० बुध ६ वें रवि, ३ रे शनि हों तो १०० वर्ष। गृहारम्भ लग्न से १० वें गु० बु० शु० ११ वें रवि, भौम हों तो गृह आयु ८० वर्ष-लक्ष्मी धन-धान्ययुक्त आयु जानें। ये साधारणतया वास्तुप्रकरण की आवश्यक विचारणीय बातें हैं। इनमें से समस्त अशुभ की तथा चिर कल्याथार्थ वास्तु शान्ति विधि कौशिक सूत्र वैतान श्रौत सूत्र, शान्ति कल्प, अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा निम्न प्रकार करें।

गृह द्वार में विशेष--कुम्भ के सूर्य फाल्गुन में, कर्क के सूर्य सिंह में श्रावण में, मकर में, पौष में गृहनिर्माण करें तो द्वार पूर्व या पश्चिम का शुभ है। १।२ राशि वैशाख मास में ७।८ में अगहन में उत्तर दक्षिण द्वार शुभ है। पूर्णिमा से कृष्णा अष्टमी तक पूर्व में कृष्णा ९ से कृष्णा १४ तक उत्तर में, ३० अमासे शुक्ला अष्टमी, तक पश्चिम में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुक्ला ६ से शुक्ला १४ तक दक्षिण में बनाना शुभ है। २।३।५।६।७।१०।११ और द्वादशी में बना द्वार शुभ होता है शुक्लपक्ष में द्वार निर्माण शुभ कृष्ण पक्ष के बने द्वार में चोरी का सततभय होता है।

सूर्यस्थित नक्षत्र से द्वार निर्माण नक्षत्रों तक गिनकर क्रमशः इस प्रकार रक्खें और फल भी समझें। प्रथम ४ शिर में लक्ष्मीप्रद, आगे ८ नक्षत्र चारों कोणों में रक्खें और उनमें बने दर्वाजे से घर नष्ट (उजाड़) हो। उनसे आगे ८ बाजू (शाखाओं) में रक्खें इनमें बना सुख, सम्पत्ति वैभव हो, इसके आगे के ३ देहली में स्वामीमरण और उससे आगे के ४ मध्य भाग में रक्खे इनमें बिना दर्वाजा सुख, सम्पत्तिप्रद होता है।

गृहारम्भ के मासों का फल—चैत्र (शोक), वैशाख (धान्यप्राप्ति) ज्येष्ठ (मृत्युकारक) असाढ़ (पशुहानि) श्रावण (द्रव्यप्रद) भादों (दरिद्रपन) आश्विन (कलह) कार्तिक (सेवक नाश) मार्गशीर्ष (धनप्राप्ति) पौष (लक्ष्मीप्रद) माघ (अग्निभय) फाल्गुन (धन-धान्य-सौख्यप्रद)।

गृहद्वार—गृह को नौ भागों में बाँटें, प्रथम ५ भाग दक्षिण दिशा में, पुनः तीन भाग उत्तर दिशा में, शेष १ भाग के मध्य में द्वार शुभ है। कल्याणकामी गृह के द्वार के ऊपर द्वार कदापि न बनायें, न एक द्वार के सम्मुख दूसरा द्वार ही बनायें, ये सर्वनाश के प्रतीक हैं। प्रथम गृहद्वार निर्माण भूलकर भी न करें। उसके बनने से पूर्व स्वामी ही नहीं रहता विपद ग्रस्त होता है प्रायः दरर्वाजा ही रह जाता है बनता भी नहीं।

गृह द्वार शाखा चक्र—रवि जिस नक्षत्र पर हों, उससे दिन नक्षत्र पर्यन्त गिनें। क्रमशः फल।

स्थान	संख्या	फल
प्रथम शिर में	४	श्रीलाभ
(२) कोण	८	उद्वसन
(३) शाखा	८	सौख्य
(४) देहली	३	गृहस्वामी का नाश
(५) मध्य	४	सौख्य, समृद्धि

गृहारम्भ में वृषभ-चक्र-शुद्धि ज्ञान—रवि-नक्षत्र से दिननक्षत्र पर्यन्त अभिजित-तक गिनें।

(१) शिर	३	अग्निदाह
(२) अग्रपाद	४	शून्य-असत्-कार्य-अनर्थ
(३) पृष्ठपाद	४	स्थिरता
(४) पृष्ठ	३	लक्ष्मीप्रद
(५) दाईं कुक्षि	४	लाभ-सौख्य
(६) पुच्छ	३	गृहस्वामी नाश
(७) वामकुक्षि	४	दारिद्र, दुख, निःस्वम्
(८) मुख	३	पीड़ा-अनर्थ, आपत्तिभय

गृहमध्ये कूप-नल का विचार--१. मध्य में (अर्थहानि), २. ईशान में (सुपुष्टिः), ३. पूर्व (ऐश्वर्य), ४. आग्नेय (पुत्रनाश) ५, दक्षिण (स्त्रीनाश), ६. नैर्ऋत्य (गृहेशनाश), ७. पश्चिम (सम्पत्) ८. वायव्य (शत्रुभय) ९. उत्तर, में (सुख) प्रद होता है।

चुल्लि चक्र--रविनक्षत्र में दिन नक्षत्र पर्यन्त गिनें१, पीठ में, ६. सुखप्रद,(३)मस्तक, ४. मृत्युप्रद, (३)बाहु ८. सौभाग्य भोग्यप्रद, (४)गर्भ ५. विनाश, (५)भुज के २. भोगप्रद, (६)चरण के २. सर्वनाशकारक होते हैं। उपरोक्त शुभ नक्षत्रों में ही चूल्हा बनायें और इन्हीं शुभ नक्षत्रों में प्रथम अग्नि प्रज्वलित करें।

स्तम्भ--(पाषाण, ध्वजारोपणादि) में कूर्मचक्र।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गृहारम्भ की तिथि जो भी हो उसको ५ से गुणा करे, कृत्तिका से प्रारम्भ कर उस दिन की जो नक्षत्रसंख्या हो उसे तथा योग में १२ मिलायें, कुल योग में ६ का भाग दें। शेष ४:७:१ हों तो कूर्म जलस्थान में लाभप्रद है। ५:२:८ शेष हों तो कूर्म-भूमि पर हैं–अनर्थकारी, यदि ३:६:० शेष हों तो कूर्म आकाश में मृत्युप्रद समझें।

स्तम्भ चक्र–सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनें। (१) मूल २ धनक्षय, (२) मध्य २० सर्वसौख्य, (३) अग्र ६, मृत्युप्रद शुभफलप्रद नक्षत्र में ही स्तम्भ तथा ध्वजारोपण करें।

धनरक्षण मुहूर्त (भौमचक्र)–सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनें, निम्न प्रकार रखें, निम्न फल समझें।

(१) मूल	३	गृहस्वामी की मृत्यु, नाश
(२) गर्भ	५	सौख्यप्रद
(३) मध्य	८	पुत्र.पौत्रादि सुख
(४) पुच्छ	८	मित्रनाश
(५) अग्र	३	गृहस्वामी को सुख.सौभाग्य,पुत्र–धन, सम्प्रदाप्रद

नूतन गृह या नित्य भौमचक्र देखकर धन गिन कर रखना अभिवृद्धिकारक होता है।

गृहारम्भ के नक्षत्रादि मुहूर्त—तीनों उत्तरा, मृ० रो० पुष्य अनु० ह० चि०, स्वा० श० रे० शुभ हैं। रवि, भौम को छोड़ अन्य दिन शुभ, चन्द्रबल, रबिबल मिलता हो, स्थिर लग्न हो, शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो, शुभ नवांश हो, तब स्तम्भों का खड़ा करना शुभ होता है। अन्य कर्म में अशुभ हैं। परन्तु कूप, वावड़ी में शुभ है।

दुष्ट योग—वज्र-व्याघात, शूल-व्यतीपात, विष्कम्भ तथा परिध तथा रवि मंगल वार सर्वथा त्याज्य कहे हैं।

वास्तु शान्ति अग्निचक्र—उपरोक्त समस्त अशुभ लक्षणों से उत्पन्न विघ्न की शान्ति तथा गृह प्रवेश, अग्नि, चोर, सर्प राक्षस, यातुधान, पिशाचादि, विघ्न, रोगोपशमनार्थं, आथर्वणी-वास्तु शान्ति करें। वास्तुशान्ति होम में अग्नि विचार निम्न प्रकार करें—जिस तिथि में वास्तु देवता या अन्य शान्ति करनी हो, उसमें अग्निवास ज्ञान हेतु उसी तिथि में एक मिलायें, उसी में उस दिन के वार की सख्या जोड़ें, योग में चार से भाग दें—शेष ३ या ४ (०) हों तो अग्निवास मृत्युलोक में है। सौख्यप्रद है। १ शेष से स्वर्ग में है, प्राणनाशक है, २ शेष से पाताल में अर्थ नाशक है।

गृहाहुति क्रम—सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनें—(१) सूर्य—३—अशुभ, (२) बुध—३—शुभ (४) शनि ३—अशुभ—(५) चन्द्र—३—शुभ, (६) मंगल—३—अशुभ (७) गुरु—३—शुभ, (८) राहु—३—अशुभ, (९) केतु—३—अशुभ हैं।

गृह प्रवेश—नूतनप्रासाद प्रवेश—यात्रावापिसी में गृह प्रवेश—जीर्ण गृह प्रवेश, राजदर्शन में उत्तरायण में—प्रथम वास्तु पूजाकर—भूतबलि के उपरान्त शुभ होता है। शुभ नक्षत्र–चि०, अनु०, मृ० रे० पुष्य, स्वा० ध०, श्र० मू०, वार-चं० बु० गु० शुं० श० तिथि रिक्ता तिथियों को त्याग अन्य तिथियाँ शुभ हैं।

गृहप्रवेश में वामार्क ज्ञान व फल–गृह प्रवेश में वाम रवि शुभ है। प्रवेश लग्न से आठवें स्थानों में सूर्य हो, और गृह द्वार पूर्व दिशा में हो या। घर का द्वार दक्षिण को हो, अथवा गृहद्वार पश्चिम में हो और सूर्य प्रवेश लग्न से द्वितीय स्थान में हो अथवा सूर्य प्रवेश लग्न के ११ वे स्थान से ५ स्थानों में से किसी में हो और गृह द्वार उत्तर को हो तो वह वामार्क होता है; वही शुभ है। गृह प्रवेश में लग्नशुद्धि—प्रवेश लग्न से ९, ५, : १ ; ४ : ७ ; १० वें शुभ ग्रह हों, ३ ; ६ : ११ वें पापग्रह हों, प्रवेश लग्न स्थिर हो चन्द्रबल शुभ हो--तब प्रवेश शुभ है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुण्ड बनाने वाले की परीक्षा—परशुराम मत से, कुण्ड तथा मण्डप निर्माणकर्त्ता, सत्यवक्ता, सदाचारी, विवेकी, कार्यकुशल, स्थिरमति, साहसी, कुण्ड, मण्डपादि का अनुभवी हो, इन्द्रिय विकार रहित, स्वच्छ वस्त्र धारी, रोगी न हो; व्यर्थ आडम्बर कर्त्ता न हो मितभाषी, देव में श्रद्धा वाला हो।

मण्डप भूमि विभाग—(१) ३ से ७ हाथ के मण्डप में त्रिभाग नहीं होता, (२) ८ से १३ हाथ वाले के ३ भाग, (३' २० से २८ हाथ वाले के ५ भाग, (४) ३० से ७५ हाथ वाले के ७ भाग १०० से अधिक हाथ वाले में १० भाग करे।

मण्डप में स्तम्भ विचार—(१) में ४ नम्बर (२) में १६, (४) ६४ तथा (५) वें में १२१ मण्डप होंगे।

मण्डप-भूमि का नामकथन—(१) एकभू-द्विभू (३) त्रिभू (४) चतुर्भू (५) पञ्चभू-समझें।

अंगुलादि ज्ञान—८ परमाणु = १ त्रसरेणु। ८ त्रसरेणु = १ रथेणु। ८ रथेणु = १ वालाग्र। ८ वालाग्र = १ लिक्षा। ८ लिक्षा = १ युका। ८ युका = १ यव। ८ यव = १अंगुल। २४ अगुल = १हाथ। ५हाथ = १पुरुष समझे।

यज्ञिय भूमि विचार—(१) अग्नि कोणप्लवा भूमी-विद्वेष-मरण और व्याधि हो-पुत्र, आयु धनक्षय हो। (२) दक्षिणप्लवा—निश्चय मृत्यु हों। (३) नैर्ऋत्यप्लवा—भूमिहानि-घर की हानि (४) पश्चिमप्लवा—धननाश (५) वायुकोण प्लवा भूमि—उद्वेगकारी होगी (६) ईशानकोण प्लवा भूमि—अति शीघ्र लक्ष्मी प्रदान करने वाली (७) पूर्वप्लबा भूमि-कार्य वृद्धि (८) उत्तरप्लवा-वरदायिनी हो (९) पूर्वोत्तरप्लवा-सर्वथा, सर्वदा, सर्वाङ्ग सिद्धिप्रद होती है।

मण्डप अपनी या अन्य भूमि में विचार—(१) यज्ञ मण्डप में अपनी भूमि श्रेष्ट है। (२) दूसरों की भूमि बिना कर दिये मण्डप बनाने में निष्फल। (३) निजी घर में कुण्ड व मण्डप बना सकते हैं। (४) नदी तट आदि दूसरे की भूमि की कोटि में नहीं आते (५) जहाँ मण्डप बनायें वहाँ पहले १२×१२ अगुल का गड्ढा खोदें, फिर खोदी हुई मिट्टी उसी में निकालने के बाद भरे, भरने पर सम होतो उत्तम, कम हो जाय तो निकृष्ट समझे (प्रयोगसार के अनुसार)

बौधायनमतानुसार—(१) खोदने में भस्म निकले तो यजमान नाश। (२) चीटी निकले तो उस ग्राम का नाश। (३) गीली मिट्टी-बालू निकले तो राष्ट्र हानि। (४) केश निकलें तो स्त्रीनाश। (५) तुष निकलें तो पुत्र मृत्यु। (६) कपाल निकले तो ऋत्विगभय। (७) ईट निकले तो वन्धु-वान्धव वियोग। (८) तृण से कर्म क्षय। (९) गीली बालू से विद्यावान हो।

दिक्साधन अत्यावश्यक—(१) बिना दिक् साधे कुण्डनिर्माण से मृत्यु। कुण्डदर्पण के मत से। (४) वृहन्नारदमतानुसार—दिशा के ज्ञान व्यवहार-शून्य हो तो कुलनाश हो। (३) कुण्ड प्रदीप के मत से—धन का नाश हो। (४) विधानमाला के मत—दिशा की भ्रान्ति हो तो भ्रान्तिमान हो।

मन्डप आरम्भ में विचार—विद्यार्णव तन्त्र—(१) ऋत्विज, सदस्य एवं समाज के लोगों के सुविधार्थ, अधम-मध्यम उत्तम मण्डप बनायें। (२) नारद पञ्चरात्र (कुण्ड) मण्डप बनाने में धुयें के निकास को पूर्ण व्यवस्था हो। (३) पवित्र-शुशोभित, और चौकोर भूमि में मण्डप बनायें।

फलभेद से मण्डप रचना—कात्यायन—अधम, मध्यम, उत्तम मण्डपों में परिमाण से उत्तरोत्तर विशेष फल होने से उत्तम की रचना करें। अग्निहोत्र-ज्योतिष्टोंम में स्वर्गादि की प्राप्ति अधम से ही हो जावे तो उत्तम की आवश्यकता ही न होती। शारदा तिलक पन्ना १५७

वेदी बनाने की जानकारी—यजमान के हाथ की १ हाथ लम्बी १ हाथ चौड़ी × ४ अंगुल ऊँची कछुये की पीठ के समान ढलवाँ हो। टेढ़ी, मध्य में ऊँची, नीची या गढ़ेदार, कठोर, देखने में खराब, प्रमाण से छोटी बड़ी यजमान के सङ्कल्प को नष्टप्रद है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्रीय कुण्डों में योनि विचार--[१] योनि के न रहने से स्त्री मरण, मृगीरोग, भगन्दर, दरिद्रता, पुत्र हानि हो। [२] योनि कुण्ड के बीच में हो, योनि के मध्य मेखला में छेद हो और अग्रभाव १ अंगुल कुण्ड के मध्य, प्रवेश स्थल से ऊपर तक हो। [३] योनि को स्थण्डिल में बनाते समय पीछे की ओर नाल एक अंगुल योनि की ऊँचाई बनायें। [४] योनि के एकदम पूर्व दिशा की ओर अन्तिम सिरे की ओर ठीक बीच ही में छिद्र बनायें। उसमें एक पतली लम्बी लकड़ी लगा दें। [५] योनि की नाल के दोनों ओर मिट्टी के २ गोले अण्डे के तुल्य गोलाकार योनि-विस्तार से चतुर्थांश में बनायें, वे दक्षिण, उत्तर में मोटे, आगे से सूक्ष्म सुन्दर बनावें। [६] योनि का अग्रभाग ओठ कहाता है। [७] मुख अधोमुख पूर्व को हो। [८] योनि के बीच गढ़ा रक्खे, हवन के समय घी योनि से सुभीते से निकलता रहे वैसी व्यवस्था करें, वैसा ही मध्य करें। [९] योनि का पीछा ऊँचा, उठा आगे को ढलवाँ हो। [१०] योनि के बीच में १ अंगुल, ऊँचा लिङ्ग मध्य में और योनि के मध्य में मुख हो।

मण्डप कुण्ड नाप विचार—(१) सूत्र की अधिकता शत्रु से हानि, मित्र से शत्रुता, सूत्र की हीनता से पंगु हो। (२) छोटे खात से असिद्धि, अधिक से असुरों का बल, टूट-फूट से उच्चाटन, छिद्र हो तो मूकता, खात की हीनता से बन्धु विरोध हो।

यज्ञ मण्डप—यज्ञ का मण्डप, समतल, सुन्दर, स्वच्छ भूमि में पूर्वोत्तर शुभ होता है। दश हाथ लम्बा, दश चौड़ा (स्वामी के हाथ से) विविध तोरण माला युक्त विविध रङ्ग की ध्वजा, द्वारों पर माला, स्वस्तिक, पञ्च-पल्लव फल, कलावा से युक्त जल पूर्ण घटों को रक्खें।

यूप—ब्राह्मण	ढाक	शिर के बराबर	यूप वेदी के पाद मूल में
क्षत्रिय	वट	कण्ठ के बराबर	यूपों के दक्षिण तोरण
वैश्य	बेल वृक्ष	छाती पर्यन्त	मध्य में ब्रह्मा मान आठ भाग करें
शूद्र	गूलर	नाभि पर्यन्त	

उन उपर्युक्त आठ भागों में से, क्रमशः, उत्तरोत्तर सोमं, कुवेरं, कुविदङ्गम् धनद, धन्वनाग, "ईशावास्येति शंकरम्। नवग्रह मन्त्रों से नवग्रह देवता "त्रातारमित्तिन्द्रम्" इन्द्र। "अग्नि दूतम्" पावक। "अग्नि पृथुः" धर्मराज "तद्विष्णोः" विष्णु। "नमः सूतेति" नैर्ऋतिम् "सप्तर्षयस्तु" सप्तऋषि। "बरुणस्यो त्तंभनमसि" वरुण आदि की स्थापना करें।

होमाहुति ज्ञान—सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक २७ में से क्रमशः ३।३ नक्षत्रों के नौ त्रिकों में प्रथम सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्र, भौम, गुरु, राहु और केतु के समझें, होम के दिन के नक्षत्र तक गिनकर त्रिक बनायें, इनमें रवि, मंगल, शनि, राहु, केतु के त्रिक में हवन प्रारम्भ या पूर्णाहुति न दें।

अग्निवास और उसका फल—शुक्ल प्रतिपदा से अभीष्ट तिथि तक गिनें, उस संख्या में १ जोड़ें उसी में वार संख्या रवि से जो हो ज़ोड़ें, योग में ४ का भाग दें। शेष ३।० से अग्नि वास पृथ्वी में है-उत्तम है। १ शेष से आकाश में प्राणनाश। २ शेष से पाताल में अर्थ-नाशक होता है। विशेष यज्ञों में ध्यान देना अनिवार्य है।

मण्डप निर्माण में—सोम, बुध, गुरु और शुक्र; २।५।७।११।१२।१३ तिथि, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र मण्डप बनाने में शुभ हैं।

विशेष ध्यान देने योग्य निर्देश--१-समस्त उपासक, मंत्र की उपासना से पूर्व, अपने गुरुजी से मन्त्रोपदेश लें। गुरुदेव मन्त्रों के १० संस्कार व १ सेतु, २ महासेतु, ३ मुख शोधन, ४ कुल्लुका, ५ शापोद्धार, ६ संजीवन ७ उत्कीलन, ८ निर्मलीकरण, ९ ऋषिन्यास, १० देवन्यास, ११ अङ्गन्यास, १२ करन्यास, १३ मुद्रा, १४ अस्त्र-(ब्रह्मास्त्र ब्रह्मशीर्ष ब्रह्मदण्ड) १५ आसन, १६ प्राणायाम, आदि से पूर्णतया दीक्षित करें, इन बातों के बिना समझे, बा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बिना समझाये, कार्य करने पर मंत्रादि तो निष्फल होते ही हैं, संकट व प्रायश्चित भी होता है। २—मण्डप का तथा उसमें किस देव का स्थान कहाँ हो, चित्र में देखें।

दिशा—पूर्व या उत्तराभिमुख बैठें (देव और साधक) अर्थात् पूज्य पूजक के बीच प्राची ही दिशा मानी गई है।

पूज्य सामिग्री किधर रक्खें [गन्धर्वतन्त्र]—वीरासन, पद्मासनादि बनाकर बैठें और साधक सामनें सामिग्री रक्खें। घी का दीपक दायें, तेल का दीपक "यन्त्रपूर्व पर" बायें, धूप बायें। गन्ध-पुष्प, चावल, फल, नैवैद्यादि दायें, बायें सामने परन्तु पीठ पीछे न रखें। अर्घ्य बायें, हाथ धोने को जल पीछे, पूजा सामिग्री को मूल मन्त्र से छींटे दें। धेनुमुद्रा, मुद्रा प्रकरण दिखाकर शुद्धि करें। नैवेद्यादि, पुष्प, गन्धादि सब ढककर रखें, जब तक प्रधान का आवाहन हो। उघाड़ी हुई को राक्षस, उच्छिष्ट कर डालते हैं। पूजा घर की ईशान दिशा में वेदी पर यंत्र बनाकर प्रधान कलश स्थापित करें। पूजक का आसन पश्चिम दिशा में, क्षेत्रपाल, योगिनीपीठ वायव्य में, षोडशमातृका-सप्त-ऋषि सप्तचिरजीवी, पञ्चोंकार, उत्तर, नवग्रह वेदी पूर्वोत्तर के बीच में, पञ्चोङ्कार पूर्व में द्वादश गणेश अग्नि व दक्षिण के मध्य, ब्रह्मासन दक्षिण, वास्तु वेदी नैऋत्य, प्रधान वेदी उत्तर, पूर्व में रक्खें।

जौ बोने में शुभाशुभ ज्ञान (सिद्धान्त शेखर)—यजमान अभिवृद्धि के लिये पूजा कार्य में जौ बोयें, सम्यक् ऊँचे, पुष्ट, कोमल श्वेत पीत शुभ, धूम्र वर्ण के, अपूर्ण, तिरछे, श्याम, कुब्ज, अशुभ होते हैं।

फल—काले, सुखप्रद, धुयें के रङ्ग के कलह, अपूर्ण-जननाश, श्याम, दुर्भिक्ष तिरछे व्याधि, कुब्ज शत्रुभय होते हैं। (सारस्वत) तन्त्रका कथन है कि श्याम, कृष्ण से अर्थ हानि, तिरछे से व्याधि, कुब्ज से दुःख, दुष्प्रतिरूढ़ से मृत्यु, कटे से रोग, स्थान देश, इष्ट कार्य में हानिप्रद है। मूल मन्त्र से १०० या १००० ब्याहृति होम कर के शान्ति करें।

दीपक शुभाशुभ ज्ञान—देवता के धूप व तेल का दीपक बायें, श्वेत वर्त्तिका तेल या घी का दीप दायें, लाल बत्ती के तेल या घी के दीपक को बायें ही रक्खें।

अखण्डदीप—स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, कांस्य, लोहा, मिट्टी, गेहूँ, उड़द, मूंग जौ के चूर्णका होता है, स्वर्ण से कार्य सिद्धि, चांदी से वशीकरण, ताँवा दोनों के अभाव में लें। कांस्य से विद्वेष, लौह से मारण, मिट्टी से उच्चाट, गेहूँ के चून से वाद-विवाद में विजय, उड़द से शत्रु स्तम्भन मूंग से शान्ति कार्य, सन्धि कार्य में नदी या तालाब के दोनों किनारों की मिट्टी का बनायें।

दीपक में घृत तैल विधान (डामर तंत्र)—समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिये गोघृत मारण में भेंस, विद्वेष में ऊँटनी शान्ति कार्य में आवीका (भेड़) उच्चाटन में बकरी के घी का विधान है। अथवा सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिये तिल तेल का विधान है, घी के अभाव में मारण सरसों के तेल का भी विधान है। सुगन्धित तेल भी समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये ग्राह्य है।

वर्त्ति—बत्ती विषम संख्या की एक से सौ तक कार्य के अनुपात से रक्खें, बड़े कार्य में अधिक छोटे में थोड़ी संख्या की ली जाती हैं। बत्ती श्वेत, पीत मंजिष्ठ, कुसुम्भक कृष्णं, कर्बुर-षट कर्मों में बताई गई हैं। सब के अभाव में श्वेत वर्ती ली जाती है। देवता की खड़ी बत्ती लें।

चलाने के लिये शलाका—दीपक के चलाने को स्वर्ण, चाँदी, गूलर की १६/८/४ अंगुलों की आगे तीक्ष्ण बीच में सरल हो। भगवती के लिये त्रिशूल चिह्न हनुमान् जी के लिये मुष्टिका जैसी हो।

दीपमुख—समस्त कामनाओं की सिद्धि, स्तम्भन, उच्चाटनार्थ-पूर्वाभिमुख-रक्षा, विद्वेषार्थ पश्चिम लक्ष्मी प्राप्ति हेतु उत्तर, मारण में दक्षिण को मुख होना चाहिये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दीपदान में प्रतिज्ञा--पूर्व कलश के आगे षट कोण यन्त्र लिखें। तिथि वार आदि का उच्चारण करके अद्य हैतद्दीप शिखा सम संख्या वर्ण सहस्रावच्छिन्न, समय परिच्छिन्न, अमुकदेव अनुचरत्व प्राप्ति पूर्वक (अमुक) देवता प्रीति कामोऽद्यारभ्य नवम्यन्तमहर्निश वातादि दोषरहितमिमं दीप श्री (अमुक) देवतांक श्री (अमुक) देवता पुरतः, प्रज्वालयिष्ये। "उक्तकामेषु यद्यत्कामेषु तत्तत्कामना मुच्चार्योक्ता विधिना दीपं गन्धाक्षतादिभिः पूजयेत्।

दीप स्थान में शकुनों को पूर्णतया ध्यान से देखें--१. दीपारम्भ में जो कहते हैं वह निश्चय होता है, इस कारण अशुभ वाणी न बोले। २. दीपारम्भ में, रक्तवेश, पूर्णाङ्ग, रक्तमाला, रक्त तिलक आये या दर्शन हो तो निश्चय कार्यसिद्धि होती है। शूद्र आये तो मध्यम सिद्धि, म्लेच्छ आये या दर्शन हों तो दीपदाता का बन्धन होता है। बिल्ली चूहे के दर्शन मध्यम हैं। ३. दीपज्योति सम-सीधी, श्वेत हो मो आठ दिन में सिद्धि, यदि ज्वाला टेढ़ी हो तो बन्धुओं का तथा सम्पूर्ण कार्यों का नाश होता है। खरकङ्क हो तो दाता का मरण, ज्योति कृष्ण हो तो शत्रुओं का कार्य बने, दाता का नष्ट होता है। ४. दीपक प्रारम्भ करते ही बुझ जाये तो कार्य सिद्धि देर से हो, यदि प्रारम्भ से ३ प्रहर के अन्दर नष्ट हो तो मास या वर्ष में कार्य सिद्धि हो, यदि रात्रि में नष्ट हो तो घर में धनधान्य पशु नष्ट हों; यदि दीपक चट-चट शब्द करे तो निश्चय कार्यनाश होता है, दीपक चूता हो तो चोर भय, यदि ठीक करने पर भी चूता हो तो पशु नाश हो, दीपक फूट जाये तो १८ दिन में दाता व पारिवारिक जनों को मरणतुल्य कष्ट होता है, दीपक नष्ट होने पर यदि उसी बत्ती को जलाये तो दाता व कर्त्ता की मन्द दृष्टि हो, नई बत्ती जलाये तो ६ मास उपरान्त सिद्धि हो, प्रज्वलित दीप को अपवित्र मानव छू ले तो दाता को शारीरिक व्याधि, यदि बिल्ली, कुत्ता, श्वान छुयें तो राजभय होता है। दीप स्थापन-मन्त्र अध्याय २ में देखें।

दीप शकुन—उपरोक्त विघ्नों के रक्षणार्थ सावधानी से समय.समय पर दीप को देखना चाहिये।

दीप विघ्नों की शान्ति—घी, चीनी, तिल, चावल, कमलगट्टों से उसी देवता के मन्त्र से होम करे।

कामना भेद से कलश में विशेष पदार्थ डालें--धर्म के लिए यज्ञियभस्म, धन के लिये मुक्ता, श्री के हेतु कमलगट्ठा कामार्थीगोरोचन, मोक्षर्थीवस्त्र, विजयार्थी बड़ा खरैटी, उच्चाटनार्थ, कटेहरी, वशीकरण में मोरपंखी, मारण में काली मिर्च, सम्मोहनार्थ धतूरा आकर्षणार्थ, पारन्ती डालें।

सर्वौषधि--कूठ माँसी, हल्दी दारु हल्दी, मुरा, शैलेय, चन्दन, वच, चंपक, मुस्ता।

सप्तमृत्तिका--हाथी, घोड़ा, वामी, तीर्थ, गोशाला, रथ, समुद्र —

पञ्चरत्न--कनक, कुलिश, नील, पद्मराग, मुक्ता।

पञ्चपल्लव---पीपल, गूलर, पिलखुन (प्लक्ष) आम बट।

जौ बोने के शुभाशुभ का ज्ञान---सम्यक् ऊंचे, पुष्ट, कोमल, श्वेत, कार्य सिद्धि प्रद, काले हों तो वर्षा का नाश धुँये के रङ्ग के कलह, अपूर्ण हों तो जन नाश, श्याम हों तो दुर्भिक्ष,, तिर्यग हों तो व्याधि कुब्ज हों तो शत्रु भय, (सिद्धान्त शेखर) (सारस्वत) श्याम कृष्ण से अनर्थ हानि, तिरछे व्याधि कुब्ज से दुःख, दृष्प्ररूढ़ से मृत्यु, कटे छठे हों तो रोग स्थान, देश, इष्ट हानि हो। विघ्नों की शान्ति अपांगण से होती है।

अथ कन्या पूजनम्-कन्या २ वर्ष से अधिक आयु वाली, दो वर्ष की कुमारी, ३ की त्रिमूर्ति, ४ की कल्याणी ५ की रोहिणी, ६ की कलिका, ७ की चण्डिका, ८ की शाम्भवी, ९ की दुर्गा, १० वर्ष की सुभद्रा होती है। परन्तु उत्तम कन्या भले ही विवाहिता हो, देवी भगवती के निमित्त पूजनीया है। (देवी पुराण)। १ कुमारी--दुःख, दारिद्रय, शत्रु भय विनाश, आयु, विद्या, बल, वीर्य, ब्रह्मवर्चादि के हेतु कन्या का पूजन, भोजन, वस्त्रादि दान दें। २ त्रिमूर्ति ३ वर्ष की आयुवृद्धि, अपमृत्यु, व्याधि,पीड़ा, दुख दौर्भाग्यनाश सौख्य, धन-धान्य आरोग्य, पुत्र, पौत्रादि लाभ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के लिये। ३ कल्याणी ४ वर्ष की आरोग्य, सुख कार्यलाभ, धन, यश, कल्याणार्थ। ४ रोहिणी--यश-पदलाभ-सफलता, ऐश्वर्य के हेतु। ५ कलिका--समस्त विद्या, जय, राज्य लाभ, शत्रुसंहारार्थ ६ चण्डिका--संग्राम जय प्राप्ति हेतु। ७ शाम्भवी--दुख, दारिद्रय, राजमोहन, ब्रह्म हत्यादि पाप, महापाप, शापशमनार्थ। ८ सुभद्रा--सौभाग्य, धन-धान्यादि लाभ, अभीष्ट सिद्धि, सेवक दासी-दास, वंश, कृषि, पशु, उद्योगादि की अभिवृद्धि के हेतु पूजन करें।

वर्जित कन्या--अंगहीन, अङ्वृद्धि, कुष्ठादि की, विकारवाली, निन्द्य कुल की, स्तनदोषी रक्तस्त्राविणी घाववाली, जन्मान्ध, केकरी, काणी, कुरूपा, शरीर में रोम हों, दासी की पुत्री, निन्द्य कन्याओं का भूल या प्रमाद या लोभ से पूजन न करें। ब्राह्मणं। कन्या समस्त कामनाओं में, क्षत्रिय-विजय में, वैंश्य कन्या लाभार्थ, शूद्र वंशवृद्धि, पुत्र पौत्र प्राप्ति, अन्त्यज कन्या को दारुण कर्म साफल्यर्थ पूजन बतलाया है।

वर्णभेद से पूजा भेद--गौरवर्ण-सर्वार्थ सिद्धि पीतवर्ण की जय कीर्ति, लालवर्ण की लाभार्थ काली, मारणार्थ पूजनीय कही है (कौलावली तन्त्र)।

अथ जप विधानम्--न न्यासं योषितानाञ्च नध्यानं नच पूजनम्। केवल जपमात्रेणमन्त्रा सिद्धयन्तियोषिताम्॥
वैंछिन्नत्वादिकदोषाये पञ्चाशन्मन्त्र संस्थिता। तैर्दोषैः सकला व्याप्तामनवः सप्त कोटयः॥
अतस्तद्दोष शान्त्यर्थ संस्कार दशकंचरेत्।
जननं दीपनं चैव वोधनं ताडनं तथा॥ अथाभिषेको विमलीकरणं जीवनं तथा॥
तर्पणं गोपनं चैव आप्यायनमिति स्मृतम्॥ संस्कार दशकं प्रोक्तं मनूनां दोषनाशनम्॥

सम्पूर्ण उपासकों का अनिवार्य परम कर्त्तव्य है कि गुरुमुख द्वारा मन्त्रोपदेश ग्रहण करनेके उपरान्त मन्त्र १० संस्कार तदनन्तर सेतु, महासेतु, मुखशोधन, कुल्लुका शापोद्धार, संजीवन, उत्कालीन, निर्मलीकरण, आदि विषय गुरु द्वारा जानकर प्रयोग करें, तभी मन्त्रसिद्धि शीघ्र, सरलता से सम्भव हों सकती है। परंपरागत गुरु द्वारा समझ लें।

पाठविधि--माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः॥ धैर्यं लय समर्थञ्च षडेंते पाठका गुणाः॥६॥

पाठक के दोष--गीती शीघ्री, शिरः कम्पी तथा लिखित पाठकः॥ अनर्थज्ञोऽकल्पकण्ठश्चषडेंते।

मन्त्रजपे पाठे च भेदेः--

मनसा यः स्मेरत्स्तोत्रं वचसा व मनुं जपेत्। उभयं निष्फलं देवि! भिन्न भाण्डोदकं यथा॥

दीक्षा शब्दार्थः दिव्यज्ञानं यतोदद्यात्कुर्यात्पापक्षयं यतः। तेनदीक्षेतिलोकेऽस्मिन्कीर्तितः ७१८पारगै॥

गुरु शब्दार्थ

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रु शब्द स्तन्निरोधकः। अन्धकार निरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते॥
गकारादज्ञानसम्पत्ती रेफः पापस्यदाहकः। उकारास्च्छिवतादात्म्यं दद्यादिति गुरुः स्मृतः॥

कुलचूणामणौ--उदासीनो प्युदासीनाँ वनस्थाः वनवासिनः। यतीनाञ्चयती प्रोक्ता गृहस्थानाँ गुरुर्गृही॥
वैंष्णवे वैंष्णवो ग्राह्यः शैवे शैवस्तथा पुनः। शाक्तके त्रितयं विद्या द्दीक्षा स्वामी न संशयः॥

गुरु रपि गृहस्थ एव--सर्व शास्त्रार्थ वेत्ता गृहस्थो गुरु उच्यते।

गुरु शब्दार्थ यामले--गकारः सिद्धिदः प्रोक्तारेफः पापस्य दाहकः उकारः शक्ति इत्युक्तस्त्रितयात्मागुरुः स्मृतः॥

मन्त्र शब्द व्युत्पत्तिमाह

मननं विश्व विज्ञानं त्राण संसार बन्धनात्। यतः करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते ततः॥
मननात्त्राणनाश्चैंव मद्रपस्यावबोधनात्॥ मन्त्र इत्युच्यते सम्यङ्मदधिष्ठानतः प्रिये॥
गुप्तोपदेशतो मन्त्री मनना प्राणनादपि॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तोडल तन्त्रोक्त मन्त्र चैतन्यविधिः

सर्व मन्त्रस्य चैतन्य श्रृणुपार्वतिसादरं । सहस्रारेमहापद्मे विन्दु रूपं परं शिवम् ॥
कुण्डलिनीं समुत्थाप्य हंसेन मनुनासुधीः । नासाग्रेयास्थिरा दृष्टिर्जायते परमेश्वरी ॥
तदैवमन्त्र चैतन्यं कुण्डली चक्रग मगेत् । सहस्रारे महापद्मे कुण्डल्या सहितं गुरुम् ॥
भावयेत्सर्वमन्त्राणाँ चैतन्यं जायते प्रिये । तदेव प्रजपेन्मन्त्रं सिद्धिद नात्रसंशयः ॥

गन्धर्व तन्त्रे--तदद्याद्भास्करायार्घ्यं शंखतोयैर्महेश्वरि । यावन्नदीयते चार्घोभास्करायमहेश्वरिः ॥

शरीर में—सप्तद्वीप मानव देह में विराट

देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीप समन्वितः । सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा । पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्त्तन्ते पीठदेवताः ॥

व्यष्टि (मानव देह) में सुमेरु पर्वतः, सप्तद्वीप, समस्त सरितायें, सागर पर्वत क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि, मुनि, नक्षत्र, ग्रह, तीर्थ, और पीठ देवता निवास करते हैं।

महायोग विज्ञान-के अनुसार-अस्थिस्थान में जम्बुद्वीप, मांस स्थान में कुशद्वीप, शिराओं में क्रौंचद्वीप, रक्त में शाक द्वीप, त्वचा में शाल्मली द्वीप, लोम समूह में प्लक्ष द्वीप और नाभि में पुष्कर द्वीप विद्यमान हैं।

सप्तसागर—इसी प्रकार शरीर में सात समुद्र हैं। मूत्र में लवण सागर, शुक्र में क्षीर सागर, मज्जा में दधि सागर, मेद में घृत सागर, नाभि में इक्षु सागर, रक्त में सुरासागर अवस्थित हैं।

शरीर में सप्त तीर्थ—मस्तिष्क में श्रीशैल, ललाट में केदार, नासिका और भौंओं के बीच काशी, स्तनों में कुरुक्षेत्र, हृदय में प्रयाग, मूलाधार में कमलालय तीर्थ हैं। "प्राणविद्या" के साथ विचारें।

शरीर में नदियाँ--गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, चन्द्रभागा, वितस्ता, इरावती, ये प्रमुख तथा ७२ हजार छोटी नदियां, पन्द्रह तिथियां, सात वार, २७ नक्षत्र, १२ राशियाँ, २८ योग, ७ करण, ९ ग्रह-उपग्रह, दस दिग्पाल, ५ लोकपाल इस मानव देह में हैं। (महा योग विज्ञान)यह अथर्व काण्ड ११ सूक्त ७ में विस्तृत विवरण है। ब्राह्मणो हृदयस्थाने कण्ठे विष्णुः समाश्रितः। तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटस्थे महेश्वरः ॥

शरीर में तीर्थराज--इड़ागंगा, पिंगला यमुना और इड़ा पिंगला में सुषुम्ना सरस्वती का संगम तीर्थराज है। यही शिव तीर्थ है, इड़ा को वरणा, पिंगला को असि, कहकर इनके साथ सुषुम्ना का जहाँ संगम है वही वाराणसी है। शिव संहिता ५।१२६-१२७ आज्ञाचक्र के दायें भाग में वायीं ओर जाने वाली इड़ा ही गंगा है।

रोग--रोग का मूल पाप है। पाप का कारण मन, बुद्धि, अन्तःकरण हैं। इनके द्वारा ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के पाप होते हैं। पाप बिना भोगे नष्ट नहीं होता नाभुक्तं क्षीयते कर्म "अवश्यमेव हिभोक्तव्य कृतं कर्मशुभाऽशुभम्" यह पूर्व में आ ही चुका है। "मार्कण्डेयपुराण" कर्मफल (१६, १७, १८, १९) में वर्णित है किये पाप पुण्य के फल भोगे बिना कर्मवन्धन से छुटकारा नही होता। जो पापी हैं वे ही दरिद्र होते हैं। नाना क्लेश, भय, संकट सन्तापों से जकड़े हुए बेमौत मरते हैं,

आधिक्षयेणाधिभवाः क्षीयन्ते व्याधयीऽप्यलम् । शुद्धया पुण्यया साधोक्रियया साधुसेवया ॥
मनः प्रयाति नैर्मल्यं निकषेणेव काञ्चनम् । आनन्दो वर्धते देहे शुद्धे चेतसि राघव ॥
सत्वशुद्ध्या वहन्त्येते क्रमेण प्रांण वायवः । जरयन्ति तथान्नानि व्यधिस्तेन विनश्यति ॥ (योग वाशिष्ठ)

शरीर के रोग व्याधि, मन के रोग आदि कहलाते हैं। इन दोनों का कारण विवेक की कमी और मूर्खता प्रबलता है। अविवेक से मन बेकावू होकर, अभक्ष्य भक्षण, अगम्य गमन, अस्त व्यस्तता, अनियमितता, दुष्टसंग, मस्तिष्क

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूषित होने पर नाड़ियां शिथिल हो जाती अङ्ग काम करना छोड़ देते हैं, प्राण शक्ति का संचार अस्त-व्यस्त हो जाता है, और नाना रोग उत्पन्न हो नाना भांति दुःखदायक हो जाते हैं। मानसिक विकारों से शरीर रुग्ण होता है।

प्रायश्चित—इन कृतकर्मों के बन्धन, आधि-व्याधियों से मुक्त होने के लिए एक मात्र साधन "प्रायश्चित्त" ही है। सारांश यह कि ये पाप के अनुपात से कई गुना पुण्य करना + प्रायश्चित हैं। यह प्रथक विचार कर देखें।

मुक्ति—जपर्युक्त-देह चार प्रकार का-स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण है और भेसज भी चार प्रकार की हैं १. अर्थवाणी, २. आंगिरसी, ३. दैवी और ४. मानुषी और वाणी भी चार प्रकार की कही है परा, पश्यन्ति, मध्यमा बैखरी तथा मुक्ति, भी चार प्रकार की है-सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, और सायुज्य।

१. सारूप्य :—जो भक्त ऐसी प्रबल सदिच्छा, व क्रियायें करता है कि मैं अपने इष्ट के ही रूप में लीन हो जाऊँ; वैसा ही हो जाना सरूपता मुक्ति है। २. सालोक्य :—जो ज्ञानी भक्त ब्रह्म लोक, सत्य लोक, विष्णु लोक आदि में जाने का दृढ़ संकल्प व अनुष्ठान करता है, वह मरणोपरान्त उसी लोक को प्राप्त होता है। ३. सामीप्य मुक्ति :—जो ज्ञानी भक्त अपने इष्ट के सामीप्य का संकल्प-व्रत अनुष्ठान करता है वह उसकी समीपता में पहुँचता है, यह सामीप्य मुक्ति है। ४. सायुज्य मुक्ति :—जिन महापुरुषों की मुक्ति होती है, उनमें अपने मूल स्वरूप (महाकारण) में मिलने की प्रवलतम इच्छा होती है, ऐसी अवस्था में उनका सत्त्वगुण प्रबल हो जाता है; तब वह शरीर त्याग करता है, "स्थूल" शरीर त्यागने के उपरान्त "सूक्ष्म" शरीर में जो पृथ्वी तथा जल तत्त्व का आवरण था-उसमें से प्रथम पृथ्वी तत्त्व-अपने मूलतत्त्व में मिल जाता है, उसके उपरान्त जलतत्त्व जाता है और मूलभूत जलतत्त्व में मिल जाता है। उसके उपरान्त "तेज" कारण शरीर में स्थित हो जाता है। कारण शरीर में स्थित—"तेज" "वायु" तथा "आकाश" तत्वों में से प्रथम आकाश तत्त्व, आकाश तत्त्व में मिल जाता है; तदुपरान्त "तेज" और "वायु" तत्त्व "महत्तत्त्व" अर्थात् "महाकारण" शरीर में विलीन होते हैं। यह अन्तिम चतुर्थ सायुज्य मुक्ति कहलाती है।

अथर्व कां २ सू० ३४ मं० ५ "दिवंगच्छ। देवयानैः पथिभिः स्वर्गं याहि ज्योतिर्मय (प्रकाशवान) स्थान प्राप्त कर; देवमार्ग से स्वर्ग में जो यह अन्तिम सिद्धि—प्रकाशमार्ग तथा प्राण को वशी करने से होती है। इसी में वर्णित है। "पर्याचरन्तं प्राण" चारों ओर संचार करने वाले प्राण को स्वाधीन करें। यह प्राण का संचार जहां योग्य रीति से नहीं होता है वहां रोग होते हैं। प्राण को अपनी इच्छा से प्रेरित करने की शक्ति प्राप्त होने से सब शरीर नीरोग और दीर्घायुष्य अमरत्व निश्चित ही प्राप्त हो जाता है।

परलोक—लोकलोकान्तरगमन—जब कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है तब मूलाधरसे सहस्त्रार पर्यन्त चक्रों के अधिष्ठान देवों के लोकों के क्रमशः एक के बाद दूसरे के भ्रमण व देवों के साक्षात्कार होने लगते हैं।

ब्रह्मलोक—उनमें से ब्रह्मलोक समस्त ऋषि, मुनि, साधक, सिद्ध, पृथक-पृथक मृगासन, व्याघ्रासन, कुशासनों पर भूमितल में ध्यानावस्थित हैं। उन सभी के मध्य उच्च आसन पर ब्रह्माजी ध्यानमग्न हैं। विष्णुलोक :—यह एक विशालतम राज्य-सा ह; सुन्दर, स्वच्ज, राजप्रासाद से बने हैं—मध्य में श्री महालक्ष्मीजी के साथ विष्णु भगवान् विराजमान हैं। इधर उधर देव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध जन खडे उपस्थान कर न्याय अभ्युदय की कामना कर रहे हैं। शिवलोक :—वर्फ से आच्छादित कैलाश शिखर पर श्री सदाशिव श्री पार्वतीजी के साथ विराजमान हैं। नन्दीश्वर, सर्प, गणेश तथा समस्तगण आज्ञापालन को उत्सुक हैं। स्वर्गलोक :—अत्यन्त भव्य-मणि आदि विविध-रत्नों की बनी वीथियां हैं उनमें चमक दमक रहा है, सुन्दर नगर-भवन, उद्यान, वाटिकायें सदा खिलने वाली पारिजातादि पुष्पो की सुगन्धि से पूर्ण हैं। सभी प्रकार सुविधायें हैं, सभी स्वतन्त्रता से जप यज्ञ आदि में तल्लीन हैं।

पितृलोक—पितृलोक में जीव "वासनादेह" में बँधा हुआ है। कोई भी सुखी प्रतीत नहीं होता। विरले

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विवेकी जीव अपने अगले जन्म की प्रतीक्षा में है। कुछ सूक्ष्म शरीर से भोग भोंगने का वृथा प्रयास कर रहे हैं, पितृलोक में भारी भीड़-सी है।

नरक लोक—यहाँ तो पापियों का समुदाय स्वकृत, निन्द्य, जघन्य कर्मों के फल भोग रहे हैं। यमलोक तथा शिवलोक से सेवक आकर इनके अनिष्ट कर्मों के अनुसार यातनायें दे रहे हैं।

प्रेत आत्माओं को भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान होता है। ये वासना देह से छुटकारा पाने का यत्न नहीं करते, ये पूर्व देह के मद मत्सर, ईर्ष्या या सम्बन्ध निभाने में व्यस्त होते हैं। कोई अपने पुरातन वैर के लिये देह-धारियों को पीड़ित करते हैं। यह "प्राणविद्या" के साथ विचारे।

आज्यतन्त्र विधि वर्णन—संहिताध्ययनान्तर ही विधि का अधिकार है। संहिता विधि में शान्तिक, पौष्टिक, अभिचारिक, अद्भुतादि कर्मों का उल्लेख है। ये तीन प्रकार के कहे हैं। १. विधि कर्म २. अविधि कर्म ३. उच्छ्रय कर्म। इनकी तीन ही प्रामाणिक विधियाँ हैं। १, प्रत्यक्ष, २, अनुमान, ३, शब्द। कौशिक, अथर्व परिशिष्ट तथा दारिल, यही आम्नाय, सविधि वेद प्रत्ययः, तथा गोपथ ब्राह्मण, प्रमाणकः। आम्नाय प्रत्यय ये ही विशेषतः अभ्यास में हैं। ऐसा शिष्ट वचन है। शिष्टों द्वारा सर्वदा, संयोग से होने वाले आम्नाय कहे हैं। आम्नाय में ब्राह्मण (मन्त्रों) में निर्दिष्ट है। कर्मकर्त्ता मन्त्र का विनियोग करें। और संहिता विधि में हो कर्म करें। वैतान सूत्र में मन्त्रों के अनादेश में लिङ्ग अर्थात् मन्त्र और विधि हो उसी प्रकार करें। उसके अभाव में सम्प्रदायोक्त विधि करें। विधि कर्म, अविधि कर्म, उच्छ्रय कर्मों की सर्वथा परिभाषा में विशेष मेधाजननादि से पिंड पितृ यज्ञान्त विधि कर्म कहे हैं। मधुपर्कादि से परब्रह्म (अध्यात्म) पर्यन्त अविधि कर्म हैं। पाक यज्ञादि विधि कर्म सूक्त से विनियोग कर पश्चात् ऋचाओं के विनियोगान्त उच्छ्रय कर्म कहे हैं। इन त्रिविध कर्मों में १ आज्य, २ समिधा, ३ पुरोडाश[1], ४ पय, ५ जलओदन[2], ६ पायस, ७ पभ्रु[3], ८ व्रीहि, ९ यव, १० तिल, ११ धान, १२ करम्भ[4], १३ शुष्कली ये १३ हव्य पदार्थ कहे हैं।

यज्ञ दो प्रकार के हैं—देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, देव याग प्राङ्मुख हो दक्षिण यज्ञोपवीत के साथ करें। पितृयाग अपसव्य हो। देवयाग, पूर्वोत्तर, पितृयाग, दक्षिणाभिमुख हो करें। देवयाग में प्राक्, उदग् तथा पितृयाग में दक्षिण पश्चिम दिशा विहित है। स्वाहाकार, वषट्कार से देवताओं को स्वधाकार से नमस्कार, प्रदान पितृगणों के लिये विहित है। मीमांसामें स्मृतिपादमें कल्प सूत्राधिकरणमें १. नक्षत्रकल्प, २. वितानकल्प, ३. संहिताकल्प, ४. आङ्गिरस कल्प तथा पञ्चम शान्तिकल्प, ये वेद तुल्य तथा अन्य कल्प स्मृति तुल्य कहे हैं। जैसे ब्राह्मण अन्यार्थपरक कहे हैं ही मन्त्र भी अन्यार्थपरक हैं अर्थात् मन्त्र भी अन्यार्थपरक होते हैं। जैसे "अग्नि ब्रूमो" (अ० वे० ११।६-१) ब्राह्मण (गोपथादि) में उल्लिखित मन्त्र ब्राह्मण लिङ्ग मन्त्र है। जहाँ देवतोक्त मन्त्र न हो ऋषि, या आचार्योक्त-यथा कौशिक सूत्र, वैतान सूत्र, छान्दोग्य, परिशिष्ट, कर्मप्रदीप के मन्त्र तथा "ॐ भूर्भुवः स्वर्जन दोऽम्" ये समस्त व्याहृतियाँ श्रुतिः कहलाती है। प्रणवादि में "ॐ मन्त्र मूल स्मृतियों में वर्णित है। आम्नाय के अभाव में "मनु" आदि स्मृतियों में वर्णित विधि का प्राविधान है। अ० प० संहिता विधि में है। जहाँ आम्नाय का अभाव हो वहाँ स्वशाखोक्त विधि सम्प्रदायानुकूल करें। अर्थात् संहिता विधि, आम्नाय, आचार, सम्प्रदाय के विस्मरण होने पर ब्राह्मण शिक्षानुकूल सम्प्रदाय की रक्षा करे। उपर्युक्त देवयज्ञों में शान्तिक, पौष्टिकादि हैं।

१. **पुरोडाश**—चावल के आटे के बने लड्डू या वडे ऋग्वेद (३।२८-१), (४।३२-१६)। मै० सं० (३।१०।२) ऐ० ब्रा० १।१।२।९ अथर्व १०।९।५। २. **ओदन**—चावल पानी (दूध चावल अ० वे० ४।१४-७) श० ब्रा० (२।५।३।४) ३. **पभ्रु**—सोमरस में दही, दूध, घी में मिले पदार्थ अर्थात् पञ्चामृत का नाम है। ऋग्वेद (९।२३।३), ९।८२।२, ९।६१।१३ (८।२।३) ४. **करम्भ**—यव के सत्तू में दही, घी, सोमरस या मधु या शर्करा, पानी दूध में मिले पदार्थ का नाम है। ऋग्वेद (१।१८७-१०, ३।५२-१, वाज० स० १९-२१, तै० स०) (३।९।१०।२, श० ब्रा० २।५-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२।१४) पितृयाग मे पितृमेध, पिंड, पितृयज्ञादि हैं। देवकर्मों को आसमाप्ति प्राक्उदक (ईशान), पितृकर्मों को दक्षिण पश्चिमाभिमुख हो कर करें। देवताओं का आवाहनादि तथा वेदि परिग्रहणादि में पितृश्वरों को दक्षिणहस्त अभिमुख होकर करें। देवताओं को पर्वयुक्त र्वाह पितृगणों को समूल र्वाहहोम करें। (सांख्यायनीय कौशीतकी ब्राह्मण प० ६) के ब्राह्मण में पूर्णमासी दो, अमावस्या दो कही है। जो पूर्णमासी पूर्वकाल में हो वह 'अनुमति', पूर्णिमा अन्त में हो वह 'राका'। तथा जो अमावस्या पूर्वकाल तिथि के हो वह 'सिनीवाली', जो तिथि के अन्तमें हो वह 'कुहू' कहलाती है। इसी प्रकार व्रत, दान, जप, होम करें। समस्त कर्मों में मधु (गुड़), लवण, माँस तथा माष उड़द वर्जित है। (कौ० १।१।३२) "ममाग्नेवर्चं" इस मन्त्र से समिधा लेकर व्रत ग्रहण करें। "व्रतेत त्वं व्रतयत" ब्रह्मचर्यादि का पालन कर भूशयन दीक्षा-काल में करना अनिवार्य है। उपर्युक्त त्रयोदश हव्य पदार्थों के अतिरिक्त या इनमें भी सर्वत्र हव्य का विकल्प "पैठीनसी परिभाषा" के अनुसार है। ऐसे ही गुणों में सूक्तों का विकल्प भी है। जहाँ औषधिगण कहे हैं वहाँ औषधियों का विकल्प कहा है। "हविषां त्वां जुष्टं प्रोक्षामि" से समस्तद्रव्यों जो कर्म में सापेक्ष्य हैं, अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण अनिवार्य है। सर्वत्र हविः का उत्पवन भी युवा कौशिक आचार्य मानते हैं। आज्यतन्त्रादि समस्त वैदिक कार्यों में वृद्धि-श्राद्धसापेक्ष्य है। जहाँ उदक का प्रयोजन है वहाँ शान्तिउदक समझें। शान्ति उदक "एक या चारों ही" अपांगण— अर्थात् अम्बादिगण सूक्तों से अभिमन्त्रित करें। गणों का विवरण पृथक् दिया है देखें और समझें और उसी भाँति प्रयोग करें। सूक्तादि से सूक्त का ग्रहण करें। श्रुवहोम में सर्वत्र तन्त्रविधि-वेदी-कुशण्डिकादि अनिवार्य है, हस्त होम में विकल्प है। आज्यतन्त्र में धेनु-वस्त्रादि दक्षिणा, ब्राह्मणभोजनादि आवश्यक हैं। यज्ञ में दक्षिणा अनिवार्य है। आज्यतन्त्र विधि में पूर्वतन्त्र, उत्तरतन्त्र पूर्वोल्लिखित है। दक्षिणा (कौ० १।६।२२) "ना दक्षिणं हविः कुर्वीत यः कुरुतेकृत्यामात्मनः कुरुत इति ब्राह्मणम्"। अथर्व संहिता विधि में जहाँ-जहाँ "अश्नाति, या आशयति" वचन आये वहाँ "स्थालीपाक शेष समझें।

१. कल्पजा ऋचा—"पार्थिवस्यरसे देवा" (अ० वे० कां० २।२९।१-७) तथा "मा प्र गाम पथो" (१३।१।५९) हैं। इनकी अग्नि को प्रज्वलित करते समय उपस्थान (जप) करें। यदि हवन करते हुए अग्निप्रमाद से शान्त हो जाय तो पुनः अग्नि सन्मुखीकरण आदि न करें।

अपितु उपरोक्त (२।२९।१), (१३।१।५९) ऋचाओं का जप करें। अभ्युद्धृतोहुतोऽग्निःप्रभादादुपशाम्यति। मथिते व्याहृतीर्जुहुयात्पूर्णोहोमौ यथ ऋत्विजो ।। (कौ० ७३।४) कैय्यवं अग्नि उपस्थान में कल्पजा ऋचायें।

युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्ये नहव्यायास्मै वोढवे जातवेदः। इन्धानास्त्वा सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम वलिहृतो वयंते ॥

दक्षिण जंघा को नीचे कर (अवनम्) उदपात्र (प्रोक्षणी) अभिमन्त्रित कर छीटे दें।

"चित्राकर्म" से चैत्री पूर्णिमासी में 'चित्रा' पुष्टि कर्म गुण विधि करे। **भैषज्यानि**—से—पूर्वोल्लिखित 'औषधि तथा "भैषज्य के सन्दर्भ में" व्याधियाँ दो प्रकार की कही गई हैं। १- आहारनिमित्ता २- अशुभनिमित्ता। उनमें आहारादि वैषम्य से उत्पन्न व्याधि के निवारणार्थ अथर्ववेद की ९ वीं शाखा 'आयुर्वेद' में औषधियों के गुणादि का विज्ञान है। दूसरी---अधर्म समुत्थित व्याधियों के लिए यह कौशिक विधि कही हैं। जिसमें "भैषज्य" मंत्र ऋषि, देव, बल की सामर्थ्य से व्याधि की स्थायी निवारण विधि है। "तृपतीय" से "ये त्रिपप्ता" (अ० वे० १।१) समझें। "उदपात्रम्" से उदक संस्कार समझें। "सम्भारमाहरति" से निवासस्थान से घट, काँस्यपात्र आदि लें। परन्तु "वान-स्पति" आदि गौओं के चरने के स्थान दूर जंगल से लें ऐसा समझें। ये सूर्योदय काल में निवास स्थान से पूर्व या उत्तर दिशा से लें। "अरण्य देश" जहाँ ग्राम शब्द सुनाई न दे ऐसा समझें (एकान्त) नित्य नैमित्तिक काम्य प्रयोग उपरोक्त स्थान में ही करें। रुद्रभाष्य मत है कि सर्व होम समापनान्त "अवभृथ" स्नान अनिवार्य है। व्याधित स्त्री को पुरुष; व्याधित पुरुष को स्त्री--व्याधित को आगे कर शिर से पैर पर्यन्त अभिमन्त्रित जल से छींटे दें। निशा कर्म से--

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अहतवसन अर्थात् स्नानान्त नित्यकर्म कर एक ही वस्त्र पहिने और उसी से शरीर आच्छादित करे। तब संहिता विधि करे। समझे। स्वस्त्ययन परिभाषा--होमकर प्रति दिशा में उपस्थानकर बलिदान करना है। प्रोक्षण, आचमन, पर्युक्षण तीन बार करें। शांति कर्म में शान्ति सम्भार लें। अभिचार कर्मों में-आंगिरसकल्पोक्त रौद्र अर्थात् दक्षिण दिशा में मण्डप, दक्षिणाग्नि, दक्षिण से जल,वानस्पति आदि लें। शान्ति वृक्षों--पलाश, उदुम्बर, जामुन, कत्था, तिलक, अर्जुन, शिरस, वेतस वन्ना, कुटक, बिल्व, शाल्मलि, धायटी, मदन, (अपटा) तिनिश पूतद्रु (देवदारु) चौपद्रु चीड़ (एक वालिश्त का का तीन पत्तों का श्वेत पलाश) (वृहत्पलाश)।

शान्त औषधियाँ=चीता, (वला, अतिवला, महावला) शमी (छोंकर) शाम्यवाक (अपामार्ग सदृश) स्निग्ध फल की छोटी पुष्प गिरने पर वासकृति जैसी)। शृङ्गालवंशक तलाश.-; (मालिका) ताड़ पलाश, वास (पियावासा) अडूसा-सदंपुष्या मौलिश्री (त्रिसन्ध्या) भी कहते हैं। दर्भ, अपामार्ग, पाठा, आम्रादि पत्र, अन्नादि। वामी की मिटी, तीर्थों की रजें, यज्ञियभस्मैं। इनमें आथर्वणी, तथा आंगिरसी दो प्रकार की गोपथ ब्राह्मण (१।२।१८) में कही हैं। आथर्वणी का उल्लेख शौनक (१।८) आंगिरसी का वैतान सूत्र (५।१०) में वर्णन हैं। साम्य वाक् (काकजंघा) सदृश होती है)। शकधूम--यज्ञकर्म में दक्ष, वृद्ध, अनुभवी ब्राह्मण, शीश से नदी फेन। रस--से दधि, मधु, घृत, उदक समझें। मिश्रधान्य से--कृष्ठाधान (साठी चावल) जौ, गेहूं, उपवाक, (इन्द्र जौ) तिल, (प्रियंगु) काँगनी, समझें। ये निर्दिष्ट वस्तुयें उपलब्ध न होने पर इनके प्रतीक के प्रयोग का उल्लेख है। मात्रा कर्म, कार्य, पात्र, स्थान भेद से न्यूनादिक हो सकती है ऋषियों का संहिता कर्म में विनियोग करें; मन्त्र के देवता तथा छन्दों का यथोक्त कर्म में विनियोग करें यथा, जप, उपस्थान, मार्जन, स्नान, होम वलि भैषज्य कर्म, स्वस्त्ययनादि शान्ति कर्म या अभिचारादि कर्म में अनिवार्य समझें।

अथर्ववेद का मूल्याकन--अथर्व वेद अन्यवेदों की भांति पवित्र ईश्वरीय वाणी है। इसके अधिकाँश सूक्त उदात्त, उदार धार्मिक एव आध्यात्मिक है। अथर्ववेदीय अभिचार कर्मों के दो पक्ष हैं—वे एक व्यक्ति के लिए लाभदायक हैं तो दूसरे व्यक्ति के लिए हानिकारक हैं। अथर्ववेद का समग्र वर्ण्य विषय द्वन्द्वात्मक भावों से भरा हुआ है। अथर्ववेद हर दृष्टि से पावन, पुनीत ओर जनकल्याणात्मक है। **कल्पजा ऋचा (व्याहृति होम में गाह्य)** वृष्णे वृहते स्वर्विदे अग्नये शुल्काहरामित्विषिमते। स न स्थिरान्बलवतः कृणोतु ज्योक्वचनो जीवातवैदधात्वग्नये स्वाहा;। उत्तर पूर्वार्द्ध से आग्नेय में घृत होम करे। दक्षिणपूर्वार्द्ध में सोमाय—त्वं सोम दिव्योनृचक्षा; सुगां अलमभ्यं पथो अनुख्य;। अभिनोगोत्रं विदुषा इव नेषोऽछानो वाचमुशती जिगामि-सोमाय स्वाहा। स्वाहा प्रत्येक ऋचा के अंत उच्चारण करना अनिवार्य हैं। अथर्ववेद (काँ. १९।५९-१) से चार आहुतियाँ दें। आज्यमात्र की आहुतियां ये हैं। उत्तर पूर्व के अर्द्ध-"ईशान" तथा "आग्नेय" में आहुतियाँ दें। यदि उत्तर में आज्याहुति दी तो उसे राक्षस ग्रहण करेंगे, सोम के दक्षिण मैं पितृ देवता। इनके मध्य में देवलोक है इसी से ईशान और आग्नेय में आहुति दें।

"इस कर्मजभवव्याधि--दैवीचिकित्सा" "ग्रन्थ की वर्ण्य–कर्मज भवैंव्याधियों का वैज्ञानिक निदान" धर्मशास्त्र वेद, गणित-फलित हस्तविज्ञान और स्वर विज्ञान तथा इसके निराकरण कर्म का कल्प सांख्य, गृह्यसूत्र, प्राणविद्या, ब्रह्म कवच, ज्ञानकवच, आदि विवरण यहां दिया है। वैदिक शान्ति विधि, सरल, सुबोध, सुविस्पष्ट, पृथक पृथक आगे ग्रन्थ में हैं। अध्याय २ की विधि आगे के सभी कार्यों में अनिवार्य समझें। वेदमन्त्र ग्रन्थ भार और पुनरुक्ति दोष दृष्टि से एक बार ही दिये हैं, अलग अलग कार्यों में इनको आगे पीछे पढ़कर कार्य सम्पादन करें। शुभंभूयात् शिवंभूयात्।

॥ इति श्री कर्मजभव व्याधि दैवीचिकित्सायां प्रथमोऽध्यायः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा ३ः सर्वाः दिशः पुरुषः आ बभूवः ३ ।
पुरंयो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते । **(अथर्व० १०।२।२)**

अनन्त ब्रह्माण्ड, सारा विश्व ब्रह्म की रचना है। विश्वक्षर ब्रह्म है, पुरुष अक्षर ब्रह्म है। **अक्षर ब्रह्म** से क्षर ब्रह्म की उत्पत्ति हुई है। समस्त लोकों की रचना कर ब्रह्म स्वयं उनमें प्रविष्ट हो रहा है। ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

यह पुरी (मानव देह) चारों ओर अमृत से ढकी हुई है इसका आधार अमृत है--

यो वै तां ब्रह्मणो वेदाहमृतेनावृतां पुरम् । तस्मै ब्रह्म च ब्रह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ।।
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा । पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ।।
(अथर्व० १०।२।२९।३०)

चारों ओर से अमृत ढकी हुई इस पुरी को केवल ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। क्षेत्रज्ञ कहे जाने वाले ब्रह्मवेत्ता लोग इस शरीर-रूपी क्षेत्र को और इसके भीतर रहने वाले क्षेत्रज्ञ पुरुष को समाधि द्वारा जान पाते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ

नमः परमर्षिभ्यो नमो देवर्षिभ्यः

क्रियमाणः काम्यः नित्य नैमित्तिक कर्मों की अथर्वांगिरस विधिः

द्वितीयो अध्यायः

अथ सर्वप्रथम गुरु मन्त्रों से गुरु वन्दना कर, वैदिक ऋषि वन्दना करें।

ॐ सर्व अथर्ववेदाय, प्रजापति ब्रह्मस्वरूपाय, कायापरिवर्तनाय, ब्रह्मणे नमो नमः तदनन्तर ब्रह्म वन्दना करें। मानसिक वन्दना करने के उपरान्त, आसन, यज्ञमण्डपभूमि को पत्र-पुष्प अक्षत लेकर वन्दना कर भूशुद्धि करें।

योऽथर्वाणंपितरं देवबन्धु बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् ।
त्वंविश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवोन दभाय त्स्वधावान् ॥१॥

ब्रह्मजज्ञानंप्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचौ वेन आवः ।
स बुध्न्याऽउपमा अस्यविष्ठाः सतश्च योनिमसंतश्च विवः ॥२॥

ये त्रिषप्ताः परियन्तिविश्वारूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽअद्यदधातुमे ॥
पुनरेहिं वाचस्पतेदेवेन मनसा सह । वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥
इहैवाभि वितनूभे आर्त्नी इव ज्यया । वाचस्पतिर्नियच्छतुमय्ये वास्तुस्मयि श्रुतम् ॥३
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम् । सं श्रुतेनगमे महिमाश्रुतेन विराधिषि ॥४

जीवास्थ जीव्यास सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१
उपजीवा स्थोप जीव्यास सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३

जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायु जीव्यासम् ॥४

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१

तुस्ता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तांपावमानी द्विजानाम् ।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दुत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।

कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येऽण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१

अन्यंसश्च व्यचंसश्च बिलं विष्यामि मायया । ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥१

आसन की भूमि मण्डप, या गृह, या जल से मार्जन कर पुष्प अक्षतादि से पूजा एवं प्रार्थना करें । जल कुशा से पृथिव्य छींटे दें प्राय; व्याघ्र चर्म मृग चर्म ऊर्ण रेशम और कुशासन तथा वृक्ष त्वग्वल्कलों के आसन शुभ कर्मोत्पन्न कीटाणुओं को अपने में संग्रहीत करते हैं । नष्ट नहीं होने देते इसी से जप यज्ञादि कालकें सूक्ष्म कीटाणुओं की नित्य नियमित वृद्धि होते रहने से इन पर मनः तत्परता से समाहित हो जातां है। यही माला का भी गुण है । केवल काष्ठ, मृन्मय आसनों पर शुभ कीटाणुओं को आकर्णण शक्तिसम्पन्न भूमि अपनें में ग्रहणकर नष्ट,अपना जैसा बना देती है । इसी कारण अपने आसन, माला पुस्तक और शयन के भी विस्तर, कभी दूसरों को न दें न लें । भूमि पर आसन डालें । आसन पवित्र करें कुशा सीधे हाथ में लेकर आसन पर उत्तर से दक्षिण को फिरायें और कुशादक्षिण दिशा को फेंक दें । इन मन्त्रों से हाथ की चुटकी बजाते हुए या पीली सरसों या कुशा से पावन जलों से पूर्व से प्रारम्भ करते हुए परिक्रमा क्रम से दिक् रक्षा करें जल सरसों छोड़ें चुटकी बजायें । तदनन्तर यजमान, आचार्य याज्ञिक जप यज्ञ, पूजादि के लिये, अपने अपने स्वरों की परीक्षा करें । जिनका जो स्वर उस समय बहता हो, उसी ओर के पैर को आसन पर रक्खें या मण्डप अथवा गृह प्रवेशादि उसी पैर को आगें बढ़ाते हुए करें, परन्तु श्वास को ऊपर खींचे रहें ऐसा करनें से वे आने वाले विघ्नों का शमन स्वशक्ति से करेंगे । मण्डप, गृह, या आसन ग्रहण करने के उपरान्त सर्व प्रथम पंचगव्य पृथक् २ मन्त्रों से लेकर एकत्रित मिलायें । और उपर्युक्त ।येत्रिषप्ता से । कृतमिष्टं। मन्त्र तक जपते हुए पञ्चगव्य पर आचार्य दृष्टिपात करते हुए । अभिमन्त्रित करें, और इन्हीं मन्त्रों से प्रथम स्वयं लें और तदनन्तर यजमान याज्ञिक जापक आदि सभी को आचमन करायें यज्ञोपवीत शिखा बन्धन सभी करें ।

ॐ विमृग्वरीं पृथिवी मा वदामिक्षमां भूमिं ब्रह्मणावा बृधानाम् ।

ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतंत्वाभिनिषीदेम भूमे ॥

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेधिपतये स्वाहा ॥१

प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥२

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥३

ॐ शणश्चमा जङ्गिडश्चविष्कन्धादभि रक्षताम् । अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्योरसेभ्यः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इनसे काव्य प्रणेता देवर्षि अथर्वा अंगिरा और वृहस्पति जी का आवाहन पूजन मानसिक और उपस्थान करें। ये मन्त्र सभी कार्यो के प्रारम्भ और समापन में अनिवार्य हैं। जो प्रारम्भ क्रम १ से ६ पर्यन्त दिये जा चुके हैं।

अस्थ कां. १६ सू० ६६ (जीवास्थ) १-४ ब्रह्मा ऋषि। आपोदेवता। १ आयुर्यनुष्टुप्, २ साम्न्यनुष्टुप्: ३ आसुरीगायत्री छन्दांसि (१-४) एकावसान सू० ६७ (पश्येम) निर्दिष्टकर्माणि विनियोग।

अस्यकां १६ सू०७० म १ (इन्द्रजीव) ब्रह्मा ऋषि। इन्द्र सूर्यादयश्चदेवते। त्रिपदागायत्री। छन्द पूर्णायुष्ये-रम्भे कर्म उपस्थाने विनियोग।

अस्यकां १६ सू०७१ मं० १ (स्तुता) ब्रह्माऋषि;। गायत्रीदेवता। त्र्यवसाना पञ्चपदाऽतिजगती। सर्वकर्मा-समापने च बेदमाता गायत्री आवाहने उपस्थाने विसर्जने च विनियोग।

अस्यकां १६ सू० ७२ मं० १ (यस्मात्) भृग्वङ्गिराः ब्रह्मा। परमात्मादेवाश्च। त्रिष्टुप् छन्दासि सर्वकर्मा-रम्भे कर्म समापन्ते ब्रह्म आवाहन उपस्थाने विसर्जने च विनियोग।

उपर्युक्त कां १६ सू० ६८ मं० १ (अव्यसश्च) ब्रह्मा ऋषि। कर्मदेवता। अनुष्टुप्। छन्ससर्वकर्मारम्भे कर्म-समापने वेदत्रयी ब्रह्मवेदाधिष्ठात्री शक्ति आवाहने उपस्थाने विसर्जने च विनियोग।

कां. १६ सू. ६६ ब्रह्मा ऋषिः जातवेदा सूर्यो वज्रश्च देवता। अति जगती छन्द कर्म रक्षार्थे वज्रानुमन्त्रणे विनियोगः।

अयोजाला असुरामायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।

तांस्ते रन्धयामिहरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिसपत्नान् प्रमृणन् पाहिवज्रः ॥१॥

पश्येमशरदः शतम् ॥१॥ जीवेमशरदः शतम् ॥२॥ बुध्येमशरदःशतम् ॥३॥

रोहेम शरदः शतम् ॥४॥ पूषेमशरदः शतम् ॥५॥ भवेमशरदः शतम् ॥६॥

भूयेमशरदः शतम् ॥७॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥८॥

जलाभिमन्त्रण तथा स्वस्ति वाचन—अथर्ववेदीय शरीर पाँच प्रकार का कहा है—स्थूल, सूक्ष्म, प्राण, महाप्राण, तथा वासना देह। इसमें स्थूल तथा सूक्ष्म देहों की मरण कालीन दूषित वासनाओं से, दूषित जीवात्मायें वासना देहों के कष्ट भोगती हैं, वे सूक्ष्म होने से वैर या भोग भोगने को आतुर हो प्राणियों को प्रभावित करती हैं। गन्धर्व अप्सरा तथा पिशाच व पितरों में भी, ऐसी भोग भोगने की प्रवृत्तियां सामने आई है। इनके अतिरिक्त सभी प्रकार की कृत्यायें (घातक-तन्त्र-मन्त्र-यन्त्रों से युक्त क्रियायें) भी, प्राणियों को आघात पहुँचाती हैं। मारण, उच्चाटन, सम्मोहन-वशीकरण कर्मों की प्रयोग विधियाँ, जो अभिचार कहलाती हैं, प्रभावित करती हैं। अवैध यज्ञादि के दोष, देवदोष, विविध शाप तथा आनुवंशिक दोष, यथा पूर्वजों द्वारा किसी का धनापहरण की गई हत्या आदि....भी पुत्र-पौत्र धेंवते को प्रभाविस करती हैं। भूमि के (मकानादि के निर्माण कालीन) वास्तु दोष भी बाधक होते हैं। इनका विस्तृत विवरण पूर्व "ग्रन्थप्रसङ्ग" में, प्रथम अध्याय में तथा पृथक्-पृथक् तत्सम्बन्धी प्रकरणों में वर्णित हैं। इन सभी के परिहारार्थ अथर्ववेद की यह शौनकीय विधि ही है। परिशिष्ट (५।३) में वर्णित **"सप्तरात्रंधृताशी वाततो होमं प्रयोजयेत्। गव्येनपयसा कुर्यात्सौवर्णेनस्रुवेनतु॥ वेदानामादिमैमन्त्रैर्महाव्याहृतिपूर्वकैः"** आदि आदि....इस प्रकार व्रत के उपरान्त होमादि करें। अथर्व मन्त्र सिद्ध मन्त्र होने से अपरिमित, अप्रत्याशित अकल्प्य शक्तिप्रद सिद्ध हुए हैं। और ये वास्तव में हैं भी, इसी से प्रथम काण्ड के प्रथम सूक्त "ये त्रिषप्ता" को सूत्राकार कौशिक तथा वैतान श्रौत सूत्र एवं गोपथ ब्राह्मण ने समस्त अभिलषित कर्मों में सर्वप्रथम विनियोग किया है। तदन्तर-भगवति-श्रुति-वेदमाता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परब्रह्म का अनुमन्त्रण कर-समस्त कार्यों के प्रारम्भ और समापन कालों में गायत्री तथा शन्नो देवी मन्त्रों के प्रयोग का निर्देश किया है। अथर्व परिशिष्ट (५।२)

हेमरत्नौषधिविल्व पुष्पगन्धाधिवासितान् । आच्छादितानसितैर्वस्त्रैरभिमन्त्र्यपुरोहितः ।

सावित्र्युभयतः कुर्याच्छन्नोदेवीतथैव च । अष्टदल कमल पर ताम्रपत्र रखकर सर्वप्रथम गंगाजल पवित्र स्रोतों, तीर्थों के जल, तीर्थ रजें, यज्ञीय भस्में, सुपाड़ी, पुष्पशान्ति औषधियां, गन्ध, अपामार्ग, दाभ, दूब, शान्ति पुष्टि उन्नत कार्यों में उत्तर पूर्व दिशाओ की यज्ञीय १० वृक्षों की टहनियां और इन्हीं दिशाओं के जल लें। उग्र कर्मों में दक्षिण पश्चिम ओर के लें घट में डालें। शान्ति कर्मों में प्रातः मध्याह्न तक के, उग्र कार्यों में मध्याह्नोत्तरकाल के लें। पात्र पर स्वस्तिक बनायें गुलाबी रेशमी वस्त्र से ढकें, माला डालें। अभिमन्त्रित करें। इसी जल से संकल्पित यज्ञ के आसमाप्ति सभी कार्य होंगे, यह जल "कर्मज भवव्याधिभेषज है। इसका प्रयोग विविध भांति व्याधियों में भी उपयोग किया जायगा।

शान्ति कर्मों की दो विधियां हैं आज्यतन्त्र, पाकतन्त्र अवसेचनादि। प्रथम में होम-तत्तद्देवता के लक्ष्य से किया जाता है।

दूसरी विधि—में अवसेचन (मार्जन) स्नानादि, उपस्थान, जप, हस्ताभिमर्शन नेत्र से कल्याणात्मक निरीक्षण मन्त्रों द्वारा आशीर्वचन, मणिधारण तथा अभिमन्त्रित चरु भक्षण। इनमें से ये सभी कर्म भी आज्यतन्त्र में होते हैं। परन्तु जहां होम है वहां अवसेचन नहीं होता।

तदनन्तर अम्बादिगण के वारुणास्त्रगण मन्त्रों से जल को अभिमन्त्रित करे। इन सूक्तों में पूर्वोक्त गायत्री आदि जप के उपरान्त प्रथम कां १९ सू० २ के जप से प्रारम्भ करें।

"आपश्च विश्व भेषजी" ऋग्वेद १।२३।२० "तथा" अप्सुमे सोमोअब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेसजा" ऋ० वे० १०।९।६ पावन स्रोत, नदी, नद, आकाश जल सभी विश्व भेषज ऋग्वेद मे स्वीकृत हैं। इन समस्त सूक्तों के अतिरिक्त वृहच्छान्तिगण—अद्भुद्दर्शन के दुर्दिन निवारण प्रकरण तथा अर्थोत्थापन प्रकरणों में निर्दिष्ट जलसूक्त जल अभिमन्त्रण (अम्वादिगण कार्यो) तथा स्वस्तिवाचन में ग्राह्य सूत्रकार ने माने हैं। "अभिमन्त्रण विधि" कौ० १।९

मन्त्रमुच्चारयन्नेवमन्त्रार्थत्वेन संस्मरेत् । शेषिणंतन्मनाभूत्वास्यादेतदनुमन्त्रणम् ।
एतदेवाभिमन्त्रस्य लक्षणं चेक्षणाधिकम् ॥

मन्त्रार्थ का स्मरण करते हुए, तन्मना होकर, कर्त्ता को अनुमन्त्रणीय पदार्थ पर दृष्टिपात् करते हुए मंत्रोच्चारण के साथ अनुमन्त्रित करने का निर्देश है। यह दर्वि होम, हस्त होम और पूर्ण होमों में तन्त्र नहीं करें। **न दर्विहोमे न हस्तहोमे तन्त्रं कियत्** (कौ० १४।२७ यहां दधि.मधु घृत को रस माना है इस गण को सलिल गण भी कहा है "सलिलैः सवकामः" (कौ० ३।७) यह गण सभी कार्यों में विहित माना है। यह गण 'आदित्य नाम्नी शान्ति' में विशेष ग्राह्य है, 'सलिलगण आदित्यायाम्' न० क० १८। इसके प्रयोगों के फल इस प्रकार हैं। **"आदित्यां श्रीतेजो धनायुष्कामस्य"** (न० क. १७) श्री तेज धन-आयुप्रद यह शांति है इस अभिमंत्रित जल से यज्ञीय सभी कर्म भी होंगे विशेष कर ये हैं। **"चातनानामपनोदनेन व्याख्यातम्"** कौ० ४-१ चातनगण कर्म में (अपनोदन) जल से झाड़े का उल्लेख है, शा० क० १६ में निर्दिष्ट है कि—

'आविष्टभूत पिशाचाधुच्चाटनार्थ फलीकरण तुषावतक्षण होमादीनिआरेऽसौ०

अस्य कां १९ सूक्तस्य २ सिन्धु द्वीप ऋषिः। आपः देवता। अनुष्टुप्छन्द स्वस्ति वाचने जलाभिमन्त्रणे वरुणास्त्र प्रक्षेपणे "अमृतानाम" विश्व भेषजी शान्तये मार्जने उत्थाने, होमे च विनियोगः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंत आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याऽः । शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याऽः ॥१
शं त आपो धन्वन्याऽः शंते सन्त्वनूप्याऽः ।
शं तेखनित्रिमा आपः शंया कुम्भेभिराभृताः ॥२
अनभ्रयः खनंमाना विप्रागम्भीरेअपसः । भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपोअच्छा वदामसि ॥३
अपामहदिव्याऽनामपांस्रोतस्याऽनाम् । अपामहंप्रणेजनेऽश्वाभवथवाजिनः ॥४
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मं करणीरपः । यथैव तृप्यतेमयस्तास्त आदत्तभेषजीः ॥५

अपांभेषजम् (कां० १ सू० ६)—१-४ सिन्धु द्वीपः । (अथर्वा कृतिर्वा) (अपांनपात्) । अपः, २ आपः सोमोऽग्निश्च । देवते गायत्री, ४ पथ्यापङ्क्तिः पिप्पलादिगण । अम्वादिगण, सलिलगण, कार्येषु विनियोगः ।

शंनो देवीरभिष्टय आपो भवन्तुपीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१
अप्सुमेसोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं चविश्वशंभुवम् ॥२
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३
शं न आपोधन्वन्याऽः शमुसन्त्वनूप्याऽः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवानः सन्तु वार्षिकीः ॥४

२ "हिरण्यवर्णाः" (१।३३) भी उपरोक्तगणकर्मविधियों में है विशेष मुण्डन कर्म कराकर बाल को स्नान करायें । मधुपर्क, पाद्य, अर्घ्य भी इसी से किया जाता है । कौ० १२।१ मरुस्थल में जल की उत्पत्ति (अद्भुत कर्म-जनितानिष्टफलनिवृत्ति) में इसीसे होम करें । यज्ञ में अभिमन्त्रित जलपूर्णघट फूटने के दोष शमनार्थ नवीन कलश लाकर जलपूर्ण इसी से करें । कौ० १३।४४ अभिषेकादि के कलशाभिमन्त्रण में यही है परिशिष्ट (५।२) (वायोःपूतः) (६।५१) इसी प्रकार है ।

आपः (कां० १ सू० ३३)—१-४ शान्तातिः । (चन्द्रभाः) आपः (च) । त्रिष्टुप्छन्द. । उपर्युक्त कर्मणि विनियोगः ।

हिरण्य वर्णाःशुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निंगर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु ॥१
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निंगर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु ॥२
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निंगर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु ॥३
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयोः याः पावकास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"कृष्णंनियानम्" (६।२२)--इन तीन ऋचाओं से पेट के तुण्डादि वृद्धि घुटने के डमरू, के रोग भैषज्य कर्म में शान्ति औषधियों से युक्त घट के जल को अभिमन्त्रित कर रोगी को छीटे सन्ध्याकालों में दें मरुद्गण का होम करें। उपरोक्त विधि सभी करें। जो (१।१४) 'अम्बयो" में है।

भैषज्यम् (कां ६ सू० २२)—१-३ शान्तातिः। आदित्यरश्मिः, २-३ मरुतः। त्रिष्टुप् २ चतुष्पदाभुरिग्जगती। छन्दांसि उपर्युक्त भैषज्य कर्मषु विनियोगः।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥१
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवायदेजथाः मरुतोरुक्मवक्षसः।
ऊर्जं चतत्रं सुमतिं चपिन्वत यत्रानरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥२
उदप्रुतो मरुतस्ताँइयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति।
एजाति ग्लहा कन्येऽव तुन्नैरुंतुन्दानापत्येव जाया ॥३

कां ६ सू० २३ – १-३ शान्तातिः। आपः। १ अनुष्टुप्, २ त्रिपदागायत्री, ३ परोष्णिक् छन्दासि उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः। पृष्ठ १८४ के अन्त में भी पढ़ें।

ससुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च ससुषीः। वरेण्यक्रतुरहमपोदेवीरुप ह्वये ॥१
ओता आपः कर्मण्याऽमुञ्चन्त्वितः प्रणीतये। सद्यःकृण्वन्त्वेतवे ॥२
देवस्यसवितुः सवे कर्म कृण्वन्तुमानुषाः। शंनो भवन्त्वपओषधीः शिवाः ॥३

"हिमवतः प्रस्रवन्ति" (६।२४) उपर्युक्त समस्तगण कर्म विधियों में है। विशेष – हृदय सम्बन्धि समस्त रोग, कामलारोग, जलोदररोग, निवारण भैषज्य कर्म में नदीजल प्रवाह के अनुकूल जलका उसमें अपामार्ग, पृश्नीपर्णी, कांस, दूब-दाभ डालें, अभिमन्त्रित करें इन तीनों ऋचाओं से, छींटे दें स्नान, आचमन करायें। कौ० ४।६ इससे हृदय का दाह-नेत्र-दाह भी दूर हो जाता है। यह प्रयोग अनुभूत है। पृष्ठ १८४ के अन्त में भी पढ़ें।

हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः। आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददन् हृद्द्योत भेषजम् ॥१
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत्।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वायानद्य स्थन। दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३

शान्ति शब्द या शान्तिगण या महाशान्ति "सर्वपाप प्रशमन योजनत्वात शान्ति शब्द प्रयोगः तस्य महाशान्ति भावात्। एतानि युक्तानि महाशान्ति संज्ञामवतीति वाक्य विशेषः। (केशव) इह शान्ति उदके सर्वेषां सूक्तानां, समुच्चयः, अन्यत्र सर्वत्र यथोक्तेनन्यायेन विकल्पः। स ॥ उभयतः शान्तिगणस्य प्रारम्भे समाप्तौ च पिप्पलादि गणशान्ति-(अ० प० ३४।१) कौ० कं ८।१६

गंगादि सर्वाभिरद्भि, आनीतोदकं (अ० वे० ६।१०-१)पृथिव्यै श्रोत्राय न (वृहच्छान्तिगण के अन्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उल्लिखित) ।। इति तृचेन शान्त्युदक मध्ये शान्ति जलं प्रक्षिपतितापुनः "पृथिव्यै श्रोत्राय" इति तृचेन अग्निं प्रर्युक्षति ।

एनोनाशनम् (कां० सू० ५१)—१-३ शान्तातिः । आपः, । ३ वरुणः । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप् ३ जगती । एनोनाशने मार्जने होमे उपस्थाने च विनियोगः ।

वायोपूतः पवित्रेणप्रत्यङ्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्ययुज्यः सखा ।।१

आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वऽः पुनन्तु ।

विश्वं हिरिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ।।२

यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरन्ति ।

अचिन्त्या चेत्तवधर्मा युयोपिममा नस्तस्मा देनसोदेवरीरिषः ।।३

शान्तिगणाः (७।६९।७२)—१ शान्तातिः । सुखम् । पथ्यापङ्क्तिः । अम्बादिगणः, वरुणास्त्रगण, अपांगण, पिप्पलादिगण कार्येषु, मार्जने होमे, उपस्थाने च विनियोगः ।

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।

अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रतिधीयतांशमुषानोव्युऽच्छतु ।।१

मन्त्र ३ (अभीदुद्रोह, अनृतं, अभिरूणं तथा अवद्य मलंप्रवहत) क्रमशः अन्य से कपट, घात पात, छल करना, असत्य भाषण, अकारण निर्भीकता से गालियां आदि देना, मन, वाणी, इन्द्रियों से अन्तःकरणादि से किये गायें द्रोह जनित वरुणशाप से उत्पन्न रोग—जलोदरादि के निवारणार्थ आकाश या झरना या नदी, नदजल कार्य में लें, नदी तीर में मण्डप बना, रोगी को उपरोक्त जल के प्रवाहोन्मुख बिठायें इन सूक्तों से छींट दें, स्नान करने योग्य हो स्नान करायें । इसके साथ "इन्द्रेमं प्रतरं कृधि" ६।५-२ से इन्द्र तथा "अप्सु मे राजन्" (७।८८) से वरुण की शान्ति की जाती है । (कौ० १३।३५) न० क० (१४)

अस्य ७।८९।९४ सूक्तस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अग्निर्देवता अनुष्टुप् ४ त्रिपदानिवृत् परोष्णिक् छन्दांसि अम्बादिगण, सलिलगण, पिप्पलादिगणकार्येषु तथा अद्भुतमहाकार्ये, धूम्रकेतु दर्शनदोष परिहरणे कण्ठमाला (कैन्सर) जलोदर भैषज्ये तथा अन्त्येष्टि स्वस्त्ययन विधौ च विनियोगः ।

अपोदिव्या अचायिषंरसेनसमपृक्ष्महि । पयस्वानग्नआगमं तंमा संसृज वर्चसा ।।१

सं माग्ने वर्चसासृजसंप्रजयासमायुषा । विद्युर्मे अस्यदेवाइन्द्रोविद्यात्सहऋषिभिः ।।२

इदमापः प्रवहतावद्यं चमलं चयत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतंयच्चशेपे अभीरुणम् ।।३

एधोऽस्येधिषीयसमिदसिसमेधिषीय । तेजोऽसि तेजोमयि धेहि ।।४

न० क० १४ "अथातोद्भुतमहाशान्तौ दिशोयजते" इतिप्रक्रम्य "इन्द्रेमंप्रतरं कृधि" अस्य (७।८३।८९) सूक्तस्य शुनः शेपः ऋषिः । वरुणोदेवता । अनुष्टुप् २ पथ्यापंक्तिः ३ त्रिष्टुप् ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् छन्दांसि । जलोदरादिभैषज्ये, वारुणहोमे जपे एवं च तृतीयमन्त्रस्य दाहसंस्कारान्ते जपे स्वस्त्ययने च विनियोगः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अप्सु तेराजन्वरुणगृहोहिरण्ययोमिथः । ततोधतव्रतोराजासर्वाधामानि मुञ्चतु ॥१

धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुणमुञ्चनः ।

यदापो अघ्न्याइति वरुणेति यदूचिमततो वरुण मुञ्चनः ॥२

उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।

अधा वयमादित्य व्रतेतवानागसो अदितये स्याम ॥३

प्रास्मत्पाशान्वरुणमुञ्च सर्वान्य उत्तमा अधमावारुणाये ।

दुष्वप्न्यं दुरितं निष्वास्मदथगच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४

अस्य ६।५-२ मंत्रस्य अथर्वाऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक छन्द उपर्युक्त प्रयोजने इन्द्र स्तवने होमे च विनियोगः ।

इन्द्रेमं प्रतरं कृधिसजातानामसद्वशी । रायस्पो षेण सं सृजजीवातवे जरसे नय ॥१

यह प्रथम अध्याय में निर्दिष्ट (आकाशीजल) के विषैले जल से गिरने से उत्पन्न वरुणदोषी को चिकित्सा तथा यमपाश से मुक्ति के हेतु ही है, जो स्थूल से परे सूक्ष्म शरीर, मन, वाणी, अन्तःकरण की निर्दोषता से ही स्वस्त्यन तेज श्री दीर्घायु प्रदायक है। यह रोग जल से उत्पन्न तथा आकाशी, पावन जलों से निवृत्त होते हैं।

यव के भूषा या यवभुषी डालकर जलतप्तकर अभिमन्त्रित कर रोगी को स्नान उषा काल में कराये, जल से सेकदे। चिकित्सार्थ ऊपर से नीचे को ही शरीर पर डाले। जैसे अपान वायु नीचे जाता है सूर्य किरणें नीचे आती हैं, गौ नीचे भाग से दूध देती है वैसे तेरा रोग नीचे के मार्ग से जल से जावे (आपः अमीवचातनीः) (आपः विश्वस्य भेषजीः) (अपः इत् वैउ भेषजीः) इन उपर्युक्त समस्त रोगों की भेषज निस्सन्देह जल है। कौ० ४।४, ६।५७ इसकी आधी आधी ऋचाओं से ही वरुणदेव को आहुति दें। तीन; जौ की भूषी से युक्त, जौ के भूसे से ही तप्त पात्रों के जल को अभिमन्त्रितकर २ से अर्घ्य दे, तीसरे में तीर्थरज, वामी की रज, यज्ञीय भस्म डालकर रोगी को ऊपर से नीचे की ओर झाड़ा दें **मणि-बन्धन** में निर्दिष्ट मणि धारण भी करायें।

अस्य ६।९१ सूक्तस्यभृग्वंगिराः ऋषयः । यक्ष्मनाशनं ३ आपः देवता । अनुष्टुप् छन्द सर्वरोग भैषज्ये, जपे होमे, अर्घ्यदाने, यव मणि अनुमन्त्रणे, अवसेचने च विनियोगः ।

इमं यवमष्टायोगैः षडयोगेभिरचर्कृषुः । तेना ते तन्वो३ रपोऽपाचीनमप व्यये ॥१

न्य१ ग्वातो वातिन्यऽक्तपतिसूर्यः । नीचीनमघ्न्यादुहेन्यग्भवतुतेरपः ॥२

आप इद्वा उभेषजीरापो अमीवचातनीः । आपो विश्वस्य भेषजी स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३

इस जल के साथ गोमूत्र से भी सेक दे। जलों के झाग, नदीफेन, समुद्रफेन तथा दन्तमल में से कोई भी अभिमन्त्रित कर प्रयोग उपरोक्त व्रणादि चिकित्सा में करें। ये जल निम्न प्रकार के मन्त्रों में कहे हैं।

(१) दैवीः (दिव्यऽ) आपः (४।३) आकाशी वार्षिकी जल। (२) वार्षिकीः आपः (६:४) (३) सिन्धुः (४।३) नदी तथा समुद्रों से प्राप्त। (४) अनूप्याः आपः (६।४)। (५) धन्वन्याः आपः (६।४) स्रोतों के। मरुभूमि, रेतीलीभूमि-वालुकामय प्रदेश के जल। (६) खनित्रिमाः आपः (६।४) कुए वावली नलों के जल।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जल में औषध—(१) **अप्सु अमृतम्** (४।४) (२) **अप्सुभेषजम्** (४।४) (३) **शिवतमः रसः** (४) **आपः मयोभुवः** (५।१)। (५) **अप्सुविश्वानि भेषजानि** (५।२) (६) **आपः पृणीतभेषजम्** (५।४)

जल में समता विषमता है। "शं" से समता यो से विषमता निर्दिष्ट की है। जल,वल,वीर्य,रमणीयता,पुष्टि सुस्थिति, स्वीकार्य करने योग्य समस्त गुणों से युक्त, दीर्घायु प्रद है।

जल में वीर्य है—**(५।३) आपोजनयथाचनः। (४।४) अपामुतप्रशस्तिभि रश्वाभवथवाजिनो गावोभवथ वाजिनीः। (४।१) अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो"** आदि आदि जल में प्रजनन शक्ति के द्योतक हैं।

मेघों में विद्युत, अग्नि है, मेघों के बनने के कारण तथा विधि सू० ६।२२ में वर्णित है मेघों में जलों में वरुण का घर है। मेघों के राजा इन्द्र हैं।

अग्नि, इन्द्र, वरुण, सभी को नैरुज्य, दीर्घायुष्य यज्ञों से प्रदान करते हैं इस प्रकार अम्बादिगण, (सलिलगण) अपांगण वारुणास्त्र का वर्णन किया है।

अस्य ६।५७ सूक्तस्य शंतातिः ऋषिः रुद्रः देवता। १।२ अनुष्टुप्; पथ्यावृहती छन्दांसि मुखरहित समस्तव्रण (अदृष्ट कालावैंकरादि) कण्ठमाला (कैंसर), गण्डमाला जलोदरादि भैषज्ये वरुणास्त्र प्रयोगे च विनियोगः। कौ० ४।७

इदमिद्वा उंभेषजमिदंरुद्रस्यंभेषजम्। येनेपुमेकंतेजनांशतशल्यामपब्रवत् ॥१

जालाषेणाभिषिंश्वत जालाषेणोपंसिश्वत। जालाषमुग्रंभेषजंतेनं नोमृड जीवसें ॥२

शं चं नो मयंश्च नो मा चंनः किं चनाममत्।
क्षमारपोविश्वं नोअस्तुभेषजंसर्वंनो अस्तुभेषजम् ॥३

इसका पशु रोगों की शान्ति पुष्टि में इससे अभिमन्त्रित कर 'नमक' को खिलायें या जलादि में डालकर पिलायें। संग्राम भूमि का परीक्षण इसी से करें। आर्थिक, औद्योगिक, व्यावसायिक, क्रय-विक्रय, लाभ, वाणिज्य कर्म की उन्नति के लिये मरुद्गण के निमित्त खीर से होम करें। अर्थोत्थापन, या नष्ट, अपहृत, प्रेत धन का दोष निवारण सहित उपलब्धि के लिये एक कांसे के पात्र में श्वेत दूर्वा, नड़सल (वेतस) अशोक, पटेरादि की शाखायें, कमल गट्टे, इन्द्र जौ डालें अभिमन्त्रित कर (अपने और एक (मेष) मेढ़े के शिरों को) दूसरे पात्र में उडेलें, तब छीटे दे। उपर्युक्त वस्तु की पोटली सी बना मेष के शिर पर रक्खें। उसेस्नान करा आप स्नान करें। पोटली को जल में फैंक दें।

अतिवृष्टि, अनावृष्टि विधि अद्भुद्दर्शन दोष निवारण विधि में आगे देखें। इसी से तथा इसी गणसे वारुणास्त्र का प्रयोग भी किया जाता है।

अस्य कां १ सू० ४; सिन्धु द्वीप ऋषीः। अपानपात, सोम आपो देवता, गायत्री चन्द ४ पुरस्तावृवृती छन्दांसि प्रथमाध्यायोक्त विज्ञान कर्माणि जलाभिमन्त्रणे समस्त अपांगण, अम्बादिगण, वृहच्छान्तिगणकर्म, अद्भुद्दर्शन जनित्यारिष्ट निवारण, शान्ति, पौष्टिक, सम्पत्कर्म, अभ्युदय कर्म, सजीवनी विद्या, प्राण विद्या, दीर्घायुष्यगण, स्वस्त्ययनगण कर्मों में कर्मणु विनियोगः।

अम्बयों यन्त्यध्वभिर्जामयों अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुंनापयंः ॥१

अमूर्याउप सूर्ये याभिर्वासूर्यंः सह। तानों हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२

अपो देवीरुपं ह्वये यत्रगावंः पिबन्ति नः। सिन्धुंभ्यंः कर्त्वं हविः ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अप्स्व१न्तरमृतमप्सुभेषजम् । अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥४

कां सू० ५ सिन्धु द्वीप ऋषिः । अपानपात्, सोम, आपश्च देवते । गायत्री ४ पुरस्ताबृहती छन्दासि उपर्युक्त (सू० ४) विधौं अन्य वृहच्छान्तिगणकर्मषु विनियोगः ।

ईससे मिट्टी हवन कर्मार्थ पवित्र स्थान से खोदकर लायें । उसे ढाक के पत्र पुष्पों से युक्त जल से छींटे दे, अभिमन्त्रित कर कार्यसाफल्यार्थ खायें, खिलायें। यह सलिलगण कर्मों, वारुणास्त्र प्रयोग में पशुओं के रोग, पुष्टि, प्रजनन, अर्थोत्थापनादि सभी उपर्युक्त कर्मों में, सभी विघ्न निवारण, रक्षा कर्मों में, मार्जन, होम जपादि में विहीत है । वास्तु संस्कार में गृहभूमि को छिड़कें, "आदित्यनाम्नी महाशान्ति" लक्ष्मी, श्री, विजय, तेज, बल, ओज, ब्रह्मचर्य, धनधान्य-समृद्धि, दीर्घायुस्य संजीवनी विद्या के कर्मों में निहित है ।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥४

कां १ सू० ६ सिन्धु द्वीपऋषिः । (अथर्वाकृतिर्वा) (अपानपात) आपः , २ आपः सोमऽग्निश्च देवते गायत्री, पथ्यायोक्ति, पिप्पलादिगण, अम्बादिगण, सलिलगण, वृच्छान्तिगण, अयुष्मगण कर्मएव वारुणास्त्र प्रयोग विनियोगः ।

इन्ही को इन्द्रमहानाम्नी पूजा, राज्याभिषेक में कलश अभिमन्त्रण में प्रयोग करे । उसमें स्वर्ण, सवौंषधि, शान्ति वृक्षों की उत्तर की टहनियां दूव, दाम, सुपाड़ी, विल्वपत्र, पुष्प, कमल पुष्प, चन्दनादि, डालें । रेशमी पीत वस्त्र से ढककर पुरोहित अभिमन्त्रित करें । आद्यन्त में गायत्री और इस गण से मार्जन, स्नान, होमादि कर्म करे ।

कां ६ सू० ५१ "वायोपूत" ये सभी मन्त्र वृहच्छान्तिगण कर्मों में भी है । इन्हीं से सर्वरोग निवारणार्थ आज्य होम करें । वमनादि हैजा जैसी व्याधि निवारणार्थ सोमलता के रस से मिश्रित पलाशादि की समिधाओं से होम करें इन्हीं तीनों से जलीय डूबने आदि के संकट निवारणार्थ जल प्रवेश से पूर्व अपने को अभिमन्त्रित कर आप्लावन जल प्रवेश करें । जलसूक्त, सलिलगण, वरुणास्त्र कर्म भी इन्हीं से करें ।

कां सूक्त २३ व २४-५१ से वृहच्छान्तिगण कर्म करें । इन्हीं से "अर्थोत्थापनादि विघ्न शमनार्थ" दूध, भात आदि होम करें । अर्थोत्थापिनी ऋचाओं के साथ सामुद्रिक कर्म में अर्थोत्थापनान्त परिक्रमा करे । तथा कां ६ सू० १९, २३, २४, ५१ से अभिषेक, मार्जन स्नान करें । इन्हीं से ब्रह्मदर्शपौर्णमासयाग में प्रणीता को अभिमन्त्रित कर होम करे । तथा हृदय धड़कन, हृदयगति अवरोध, हृदयशूल, आत्मिक हार्दिक कष्ट जलोदर, कामलारोगनिवारय भैषज्य कर्म होमादि करे । जलोदर, कामलादि के निवारण में नदी प्रवाह के प्रतिकूल ले जाकर, अपामार्ग, कुशाओं से मार्जन-स्नान करें । कां १ सू० ३३ शान्ताति ऋषि चन्द्रमा आपश्चदेवते त्रिष्टुप्छन्द । उपर्युक्तषुरुमस्तकर्मषुएवं निम्नोत्वलिखित कर्मषु विनियोगः ।

कां ६ सू० २२ शान्ताति ऋषिः । आदित्य रश्मि, २-३ मरुतश्चदेवते । त्रिष्टुप् २ चतुष्पदाभुरिग्जगती छन्दांसि उपर्युक्त समस्त गणे कर्मषु विनियोगः ।

इन ३ ऋचाओं से पेट के तुण्ड वृद्धि, अफरादि व्याधियों, घुटनों की डमरू आदि की भैषज्य विधि में औषधियों से युक्त अभिमन्त्रित जल से कुशा, अपामार्ग, नीम की टहनियों को मिलाकर प्रातः सायं छींटे दें । मरुद्गण के निमित्त होंम करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ आनो भद्राःक्रतवो यन्तु व्विश्वतोऽदब्धासो ऽअपरीतास ऽउद्भिदः ।
देवानो यथा सदमिद्वृधे ऽअसन्नप्रायुवोरक्षितारो दिवेदिवे ॥१
देवानां भद्रा सुमति ऋजूय नान्देवानांꣳ रातिरभिनो निवर्ततताम् ।
देवानांꣳ सख्यमुप सेदिमाव्वयन्देवानऽआयुःप्रतिरन्तुजीवसे ॥२
तान्पूर्व्वयानिवि दाहू महेव्वयम्भगं म्मित्रमदितिन्दक्षमस्रिधम् ।
अर्य्यम णम्व्वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वतीनःसुभगा मयं स्करत् ॥३
तन्नोव्वातो मयोभुव्वातु भेषजन्तन्माता पृथिवी तत्पिताद्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतन्धिष्ण्या युवम् ॥४
तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिं न्धियञ्जिन्नवमवसेहू महेव्वयम् ।
पूषा नोयथाव्वेद सामसद्वृधेरक्षितापायुरदब्धऽ स्वस्तये ॥५
स्वस्तिनऽइन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाव्विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥६
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंय्यावानोव्विदथेषुजग्मयः ।
अग्निर्जिह्वामनवः सूरचक्षसोव्विश्वेनोदेवाऽअवसागमन्निह ॥७
भद्रंकर्णेभिःशृणुयामदेवाभद्रम्पश्येम माक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्व्यशेमहिदेवहितंयदायुः ॥८
शतमिन्नु शरदो ऽअन्ति देवायत्रा नश्चक्राजरसन्तनूनाम् ।
पुत्रासोयत्रपितरो भवन्तिमानोमध्यारीरिषतायुर्गन्तोः ॥९
अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्ष मदितिर्म्माता सपिता सपुत्रः ।
विश्वेदेवाऽ अदितिः पञ्चजनाऽअदिति र्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम् ॥१०
तम्पत्नीभिरनु गच्छेमदेवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुतवा हिरण्यैः ।
नाकङ्गृभ्णानाः सुकृतस्यलोकेतृतीये पृष्ठे ऽअधिरोचनेदिवः ॥११
आयुष्यँ व्वर्च्चस्यꣳ. रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदꣳ हिरण्यं व्वर्च्चस्वज्जैत्रायाविशतादुमाम् ॥१२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्ति रोषधयः शान्तिः। व्वनस्पतयः शान्तिर्व्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व्वꣳ शान्ति शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्ति रेधि ॥१३

यतो यतः समीहसे ततोनोऽअभयङ्कुरु। शन्नंकुरुप्रजाभ्योभयन्नः पशुभ्यः ॥१४

उपर्युक्त तथा निम्न अम्बादि गण से यज्ञ कर्मार्थ जल अभिमन्त्रित करें अन्य यज्ञीय कार्य करे। स्वस्ति-वाचन करें। सकल्प (प्रतिज्ञा) क्रियमाण कर्मार्थ जल, अक्षत, पुष्प फल दक्षिणा के साथ करें।

इस भाँति प्रणाम कर नीचे दिया हुआ संकल्प लें—

ॐ शान्तिः शान्तिः सुशान्ति र्भवतु। ॐ श्री महागणाधिपतये नमः॥ ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः॥ ॐ उमा महेश्वराभ्यां नमः, ॐ वाणी हिरण्यगर्भाभ्यांनमः॥ शचीपुरन्दराभ्यां नमः॥ ॐ मातृपितृ चरण कमलेभ्यो नमः॥ ॐ कुलदेवताभ्यो नमः॥ ॐ इष्ट देवताभ्यां नमः॥ ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्योनमो। ॐ सर्वेभ्यो तीर्थेभ्यो नमोनमः। ॐ पुण्य पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु ॐ सुमुखश्चैवकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः। लम्बोदर श्चविकटोविघ्न नाशो विनायकः॥१ धूम्रकेतुगणाध्यक्षो भाल चंद्रोगजाननः। द्वादशैतानि नामानियः पठेच्छृणुयादपि।२। बिद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा। संग्रामे संकटे चैव विघ्न स्तस्य न जायते।३। शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व-विघ्नोपशान्तये।४। अभीप्सितार्थ सिद्धयर्थ पूजितोयः सुरासुरैः। सर्व विघ्न हरस्तस्मै गणाधिपतये नमः।५। सर्व मङ्गल-माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके शरण्ये त्र्यम्बके गौरीनारायणि नमोऽस्तुते।६। सर्वदासर्वकार्येषु नास्ति तेषामङ्गलम् तेषा-मिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दन।८। :विनायकंगुरुंमानुं ब्रह्मा विष्णु महेश्वरान्। सरस्वतीं प्रणम्यादौ सर्वकार्यार्थे सिद्धये।९। सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रि भुवनेश्वराः। देवाः दिशन्तुनः सिद्धि ब्रह्मेशान जनार्दनाः॥१०॥ वक्रतुण्ड महाकाय सूर्य कोटि समप्रभा। अविघ्नं कुरू मेदेव सर्वकार्येषु सर्वदा।११।

क्रियमाणकर्म प्रतिज्ञा संकल्प—ॐ स्वस्ति श्रीमद् मुकुन्दसच्चिदानंदस्याज्ञयाप्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीयेप्रहरार्द्धे एक पञ्चाशत्तमें वर्षे प्रथम पक्षेप्रथम दिवसे अह्नोद्वितीये यामे तृतीये मुहूर्त्ते रथन्तरादि द्वात्रिंशत्कल्पानां मध्ये श्रीश्वेत वाराहेकल्पेस्वायंभुवादि मन्वन्तराणांमध्येसप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे कृत त्रेता द्वापरकलिसंज्ञानां चतुर्युगानांमध्ये वर्तमाने अष्टाविंशतितमे कलियुगेतत्प्रथम चरणे तथा पञ्चाशतकोटि योजनविस्तीर्ण भूमण्डलान्तर्गत सप्त द्वीप मध्य वर्तिनि जम्बू द्वीपे तत्राऽपि नव खण्डानांमध्ये नव सहस्र योजन विस्तीर्णेभरतखंडें तत्राऽपि परम पवित्रे भारतवर्षे अर्यावर्त्तान्तर्गत ब्रह्मावर्तैक देशे (अमुक) क्षेत्रे (अमुक) मंडले, गंगायाः (अमुक) नर्मदायाः (अमुक) यमुनाया (अमुक) दिक्भागे—

देव ब्राह्मणानां सन्निधौ श्रीमन्नृपति वीर विक्रमादित्य राज्यातीत (अमुक) संख्या परिमिते प्रवर्तमान संवत्सरे प्रमवादिषष्ठि संवत्सराणां मध्ये (अमुक) नाम संवत्सरे (अमुक) आयने (अमुक) गोले (अमुक) ऋतौ (अमुक) मासे (अमुक) तिथौ (अमुक) वासरे (अमुक) योगे (अमुक) करणे (अमुक) नक्षत्रे (अमुकराशिस्थे) श्रीसूर्ये (अमुक राशिस्थे) श्रीचन्द्रे (अमुक राशिस्थे) देवगुरौ, शेषेषु ग्रहेषुयथा यथाराशिस्थितेषु सत्सु एवंग्रहगुणगण विशेषण विशिष्ठायांपुण्यस्थितौ (अमुक) वेदान्तर्गत (अमुक) शाखाध्यायी (अमुक) सूत्रीय (अमुक) प्रवरीय गोत्रोत्पन्न (शर्मा, वर्मा, गुप्ता) दास-अहंमम (आत्मनः) अस्माकं सर्वेषां सकुटुम्बिना, बंधु-बान्धवादीनां, पशु गोष्ठयादिकानाञ्च इह जन्मनि, जन्मान्तरे वा (अमुक) देव आराधन, यजन, उपस्थान, अवसेनादि) द्वारा कृत कायिक, वाचिक, मानसिक दुरित-ध्वंसपुरस्सर, ब्रह्महत्यादि पाप विविध-शाप, ताप, नैऋति, कृत्या, वशा, क्रव्यात, अभिचार जनितत्कृत्यादि दोष, यक्ष गन्धर्व अप्सरा, यातुधान, असुर, पिशाचादि उन्माद जनित समस्तविकार, क्षेत्रीय दोष यम-वरुणादि विविधपाश जनित विकार ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्ड, ब्रह्म

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिरा, पाश्वपदास्त्र इन्दुकुलिश त्रिशूल, तिग्महेति दिव्यायुध, जनित रक्तस्रावादि विविध विकार जन्म लग्नाद्वर्ष लग्नान्मासलग्नाच्चतुर्थाऽष्टम, द्वादश. त्रिक, मार्कादिस्थानास्थित सूर्यादिक्रूर ग्रह, तज्जनितारिष्ट निवृत्ति पूर्वक, अष्टोत्तरी, विशोत्तरी योगिनीदशा अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर दशा; सूक्ष्म-प्राण दशा, दिन दशा, तज्जनितारिष्ट निवृत्ति पूर्वक, ज्वरपीडा, दाह पीडा नेत्र, कर्णोदरादि पीडा निवृत्तिपूर्वक, अल्पायुनिवृत्तिपूर्वक आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिकक्लेश, वन्ध्यात्व, नपुंसकत्व, गर्भस्राव, मृतापत्यादि दोष, दाम्पत्यद्रोह, गुरु, पितु, मातुद्रोह, ईर्ष्यादि उपशमनपुरस्सर, अहंसोन्मूलने दौर्भाग्यनाशने, अर्थोत्थापने, कृषि पशु. संवर्द्धने, मेधाजनने, पौष्टिके स्वस्त्ययने, ब्रह्मवर्चसे, दीर्घायुष्ये, विविध अद्‌भुत वैकृति तारका, उपतारका, उल्का पात, कपोत काक, गृद्धादि अद्‌भुत दुरित जनित समस्त क्लेश उपशमनार्थे वृहच्छान्तिके (अमुक) देवयजन वलिदानार्चन, विविधपीठस्थ देवर्षिपितृणां पूजनं, नान्दीश्राद्ध, पुण्याहवाचन, आचार्य ब्रह्मा, ऋत्विगादि वरणन, पति पत्नि ग्रंथि वन्धनादिक, यथा लब्धोपचारै पूजनं, पञ्च भूसंस्कार, कुशकण्डिका, स्रुवादि संस्कार, ब्रह्मवरणन, ब्रह्मस्थापन, अग्नि आनयन, सम्मुखीकरणं स्थापन, वन्दन पुरस्सर, नवग्रहादि, सर्वतोभद्रादि पीठस्थ देवानाँयजन पुरस्सर, प्रधान देवता होम, पूर्णाहुति आदिकं जगद्बीज, यज्ञस्वरूप ब्रह्म, आत्मैक महाविष्णु प्रीत्यर्थं श्री नारायणार्पणञ्चाहं करिस्ये।

इस प्रकार हाथ में अक्षत पुष्प, फल, दक्षिणा, जल लेकर समाहित शान्तमन, दृढ़ विश्वास और श्रद्धा के साथ गुरु प्रभू चरणों का ध्यान करते हुए संकल्प करें।

सहसंकल्प—उपर्युक्त कर्माङ्गभूत गणपति, विश्वकर्मा, पूजनं स्वास्ति वाचन पुण्याहवाचन, (स्थल-घृत जलादि) मातृका पूजनं वसोर्द्धारापूजनं, आयुष्य मंत्र जपं नान्दीश्राद्ध आचार्यादि वरणनमहं करिष्ये।

कर्म पात्र में (शान्ति कार्यों में से, अभिचारादि कृत्यों में दक्षिण दिशा से लाये हुए) जल से पूर्ण कर, गन्ध, पुष्प, यव, तुलसीदलादि मौन होकर डालें।

(१) अनुष्ठान स्वयं करने पर संकल्प में करिष्ये और यजमान के लिए किये जाने पर करिष्यामि करना चाहिए।

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितर्वः प्रसव ऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेणपवित्रेणसूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपतेपवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम् ॥

ॐ इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ॥ त्वामवस्युराचके।

तदनन्तर दाये हाथ में ३ बाये में २ कुशाओं की पवित्री निम्न मंत्र से अभिमंत्रित कर धारण करें।

ॐ गणानान्त्वा गणपतिर्ठ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिर्ठ हवामहे निधीनान्त्वा निधि पतिर्ठ हवामहेव्वसो मम। आहमजानि गर्ब्भधमात्वमजासिगर्ब्भधम् ॥१

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धि बुद्धि सहित श्री महाधिगणाधिपतये नमः। गणपतिमावाहयामि स्थापयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धि बुद्धि सहित महागणाधिपतये नमः। इस व्याहृति से पूजन कर विशेषार्घ्य प्रदान करें।

अर्घ्य—ॐ रक्ष-रक्ष गणाध्यक्ष रक्षत्रैलोक्य रक्षकः॥ भक्तानामभयंकर्त्ता त्राता भवभवार्णवात्। द्वैमातुर कृपासिन्धोषाण्मातुरग्रजप्रभो ॥ वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थदः ॥२॥ गृहाणार्घ्यमिदं देव सर्वदेवनमस्कृत अनेनसफलार्घ्येणफलदोऽस्तु सदामम।३। ॐ भू० सि० मग० विशेषार्घ्य समर्पयामि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रार्थना–विघ्नेश्वराय बरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय नागाननायश्रुति यज्ञविभूषिताय गौरी सुताय गणनाथ नमो नमस्ते ।१। भक्तार्तिनाशनपरायगणेश्वराय, सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय । विद्याधराय विकटाय च वामनाय, भक्त प्रसन्न वरदाय नमो नमस्ते ।।२।। नमस्ते ब्रह्म रूपाय विष्णु रूपाय ते नमः नमस्ते रूद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः ।।३।। विश्वरूप स्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे । भक्त प्रियाय देवाय नमस्तुभ्यंसततं मोदक प्रिय । निर्विघ्न कुरुमे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ।।५।।

त्वं विघ्नशत्रू दलनेति च सुन्दरेति भक्त प्रियेति सुखदेति वरप्रदेति । विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति तेभ्योगणेश वरदो भवनित्यमेव ।।६।।

अस्या ऋचायाः शौनक (सम्पत्कामः) ऋषिः । अग्निः, देवता विराट् प्रस्तार पंक्तिः ।

निम्न पढ़कर जलाक्षत पुष्प भूमि तथा दीप पात्र में रखकर खड़ी वर्ति रक्खें, छल्ला पुरोकर घी या तैल पूर्ण करे, स्वाँस जो उस समय बहता हो, ऊपर चढ़ाकर उसी हाथ से प्रज्वलित करें ।

छन्द-यज्ञ कर्मणि अभीष्ट फल लाभार्थे, दीप स्थापने जात वेदाग्नि, आवाहने, अर्चने, उपस्थाने च विनियोग। जात वेदाग्नि, आवाहने, अर्चने, उपस्थाने च विनियोगः ।

अतिनिंहो अति सृधोऽत्यचित्तीरति द्विषः ।
विश्वा ह्यग्ने दुरितातर त्वमथास्मभ्यँ सहवीरंरयिं दाः ।।

अस्यसूक्तस्य अथर्वा ऋषिः । जातवेदाः देवता । अनुष्टप्छन्द उपर्युक्त प्रयोजने विनियोगः । दीप प्रज्वलित कर पत्र पुष्प गन्ध से अर्चन करते हुए उपस्थान करें ।

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसासहस्वप्रत्यजातान् जातवेदोनुदस्व ।
इदंराष्ट्रं पिपृहिसौभगाय विश्वएनमनु मदन्तु देवाः ।।१

दीपक की पूजा कर वायु कीट आदि से रक्षार्थ छिद्रों के ढक्कन से ढक दें । इस अग्नि से हृदयाग्नि दीप्त करने को प्रार्थना करे । १४ वर्ष पर्यन्त के बालों तथा गृहाभिभूत को इन्हीं मंत्रों से शक्ति समाप्त कर दीप के पास बिठाये । वे एकाग्रह दृष्टि से देखें तो यज्ञमें आवाहित सभी देवी आसुरादि प्रेतादि सूक्ष्म शरीरी आत्मायें और घटनायें प्रायः दृष्टि गोचर होती है । वे ज्योति की "लौ" से ऊपर अपनी दृष्टि लगायें उनके द्वारा प्रश्नों के लिखित उत्तर भी यदा कदा जिज्ञासुओं को उपलब्ध हुए हैं, जो बाद में छान बीन करने पर सत्य सिद्ध हुए हैं ।

अस्या सूक्तस्य कवन्ध रिषिः : सान्तपनाग्निः देवता । अनुऽटुप् ३ ककुम्मति छन्दांसि विजये, शस्त्रधारणे, यात्रासाफल्ये, रात्रिस्वस्त्यतने, दूरान्तरप्रदेशस्वस्त्ययने, सर्वार्थ सिद्धि प्राप्ति करणे हृदयाग्नि अनुमन्त्रेण, उपस्थाने विनियोग ।

यएनंपरिषीदन्तिसमादधति चक्षसे । संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ।।१
अग्नेः सांतपनस्याहमायुषेपदमारभे । अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ।।२
यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेणसमाहिताम् । नाभिदद्वारेपदंनि दधाति समृत्यवे ।।३
नैनंघ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अवगच्छति । अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नामगृह्णात्यायुषे ।।४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो इस प्रदीप्त अग्नि के निकट चारों ओर हवनादि, दर्शनादि, बैठकर करते हैं तो हृदय में आत्माग्नि प्रकाशित होती है। इससे प्रदीप्त स्थान (आत्मादि) के बली, दीर्घायु, वाणी व नेत्र से निकला धुआं [ज्ञान] कर्म ज्ञान मार्गियों को प्रकाश देता है। आत्मसमर्पण (ज्ञानी: ईश्वर, राष्ट्र) कर्त्ता अजर अमरत्व प्राप्त करते हैं, समीप वालों से अदृष्ट हो शत्रुओं पर विजय, अभ्युदय प्राप्त करता है। (कौ० ७।१] इसके द्वारा ज्ञान, कर्म, और प्रकाश के लिये भी प्रार्थना करें।

ऋचा और सामद्वारा किया गया वेदाध्ययन देवों के कार्यों का साधन और कर्मभूमि का प्रकाश ज्ञानरूप है। यह गुरु से प्राप्त करने की प्रार्थना करें, यह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक उन्नति का ज्ञान सहायक स्थिर हो।

अस्य ७।५४ सूक्तस्य ब्रह्मा, भृगुः। ऋक्साम, इन्द्रादि देवताः। अनुष्टुप् छन्द, ज्ञान, कर्म, प्रवर्द्धने, अभ्युदयार्थे, ज्योति, उपस्थाने विनियोग। (कौ० ५।६)

ऋचंसामयजामहे याभ्यां कर्माणिकुर्वते। एतेसदसि राजतो यज्ञं देवेषुयच्छतः ॥१

ऋचंसामयदप्राक्षंहविरोजोयजुर्बलम्। एषमा तस्मान्माहिंसीद्वेदः पृष्ठः शचीपते ॥२

अस्य ७।५५ सूक्तस्य भृगुः ऋषिः। इन्द्र; देवता। विराट् परोष्णिग् छन्द मार्ग: स्वस्त्ययनें दिव्य प्रकाशार्थे जपे, होमे च विनियोगः।

इस प्रकार दीपस्थान, पूजा, प्रार्थना करें इति दीपस्थापन।

ये ते पन्थानो ऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः। तेभिः सुम्नयाधेहि नो वसो ॥१

अस्य कां० १९ सू० ६३ मं० ब्रह्माऋषि। ब्रह्मणस्पतिः विराडुपरिष्टाद् बृहती छन्द स्वसंकल्पसिद्धये, ब्रह्म आवाहने उपस्थाने च विनियोग।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं* प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय।

ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पतेदेवयन्तस्त्वेमहेउपप्रयन्तुमरुतः सुदानवऽइन्द्रप्राशूर्भवासचा ॥२

का. १९ सू०६४ मं० १-४ ब्रह्मा ऋषि। अग्निर्देवेता। अनुष्टच्छन्द यज्ञ यज्ञाधिष्ठात्री देव, यज्ञीय शक्ति स्वाहा स्वधायाः कर्मारम्भे आवाहन उपस्थाने बर प्रार्थने च विनियोगः।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु ॥१

इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि। तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥२

यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि। सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥३

एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव। आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याऽय ॥४

अस्यकां १९ सू०६५ मं० १ ब्रह्मा ऋषिः। जातवेदाः सूर्यश्च देवेत। जगन्ती छन्द सर्व कर्मारम्भे, कर्म समापने आवाहने अर्चने रक्षकमाणि उपस्थाने विसर्जने च विनियोग।

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्।

अवतां जहि हरसा जातवेदोऽविभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोहसूर्य ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वप्रथम आचमन प्राणायाम भूशुद्धि आदि ३ पूर्वतन्त्र उत्तरतंत्र के क्रमों से करें। तदनंतर सर्व प्रथम कार्यों में निम्न प्रकार से ध्यान करें। तब कार्य प्रारंभ "जो भी जब भी हो करें।

* प्राण ही महावीर, एकवीर, (एको हयैवेष बीरी यत्प्राण: जै० उ० २-५-१) दशवीर (प्राण: वैदशबीरा: शत० ४।२।१।१९) आदि अनेक नामों से विख्यात है। प्राण ही शरीरनाम मृत्पिण्ड को अर्चनीय बनाता है। (प्राणे न हि एवस्मिर् लोके ऽमृतत्वमाप्नोति। शां० अं० ५। २१) प्राणरूपी अर्क (प्राणो वै अर्क: शत० १०।४-१।२३) की रश्मियों से सर्वत्र प्रकाश का अनुभव होता है। ऐसे वरिष्ठ, श्रेष्ठ, ओजिष्ट, मंहिष्ठ देव की उपासना ले अमृतत्व की प्राप्ति होती है। प्राण ही सब अंगों के रस हैं। प्राण के न रहने से जीवन नीरस, शुष्क हो जाता है। इसलिए अयुष्यवृद्धि के लिए अथर्ववेद के प्राण सूक्त (११।४), ब्रह्मचर्य सूक्त (११।५) स्कम्भ सूत्र (१०।७) और केन पार्ष्णी सूक्त (१०।२) का पारामण करने का विधान ऋषियों ने बताया है।

अस्य "ये त्रिषप्ता" अथर्व कां १ सू० (१ ऋ० १ से ४ सूक्तस्य अथर्वा ऋपि वाचस्पतिः देवता। अनुष्टुप: ४ चतुष्पदा विराडुरोवृहती छन्दांसि सर्वकर्मारम्भे ध्याने जपे अवसेचने स्नाने यज्ञादिषु विनियोग:।

ॐ भूर्भुवः स्वर्जनदोऽम्।

अस्य सुक्तस्य ब्रह्मा ऋषि:। कर्म देवता। अनुष्टुप्छंद भगवति श्रुति (ब्रह्मवेद) अनुमन्त्रेण जपे ध्याने होमादिषु विनियोग:।

ॐ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽ अद्य दधातु मे ॥१
पुनरेहिं वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया। वाचस्पतिर्नि यच्छत मय्ये वास्तु मयि श्रतम् ॥३

अस्य सुक्तस्य ब्रह्मा ऋषि:। गायत्री देवता। त्र्यवसानापंच पदातिजगती छंद-पूर्वोक्त समस्त कर्मणि गायत्री अनुमन्त्रेणे विनियोग।

अस्य सुक्तस्य भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा ऋषय: । परमातमादेवाश्च त्रिष्टुप् छंद उपर्युक्त कर्मेषु ब्रह्म अनुमन्त्रणे विनियोग।

॥ विज्ञान कर्म विधि ॥

"वेनस्तत" सूक्त का विवरण प्रथम अध्याय में देखें। यह ब्रह्मविद्या व सभी आध्यात्मिक शान्ति, पुष्टि तथा गण कर्मों में जप, उपस्थान, ध्यान, रक्षा, पुष्टि, शान्ति अभिवृद्धि के लिऐ प्रयोग करें। इन्हीं सभी उपर्युक्त कर्मों में, "दिव्योगन्धर्वो" सूक्त का प्रयोग करें। प्राणविश्रा, "ब्रह्मविद्या" प्रकरणों में प्रथम अध्याय और आगे अध्याय के विवरण के साथ प्रयोग करें।

कर्म-योग-फल---उपस्थाय प्रथम जामृतस्य। आत्मनात्मनभिसं विवेश ।।(वा०यजु०अ. ३२ मं ११)
ऋतस्यतन्तु विततं विवृत्य। तदपश्यत्त दमवदत्तदासीत् ॥१२॥]

जीवात्मा सत्य के पूर्व प्रवर्तक परमात्मा की उपासना करके आत्मा से परमात्मा में प्रविष्ट हुआ सत्य के फैले हुए धागे को पृथक् देखकर वैसा हुआ जैसा कि पूर्व में था। यह मानव की पूर्ण अवस्था है। इससे पूर्व तीन अवस्थायें हैं, प्रथम में (अ० वे०कां० २ सु १ मं० ४-५) एकवार द्युलोक: भूलोक सम्पूर्ण लोकों में भ्रमण कर आया हूँ। "द्वितीय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवस्था' (मं०५) अमृत का फैला हुआ सुखप्रद मूल सूत्र देखने हेतु ही सब भुवनों में चक्कर लगाया। तृतीय अवस्था (मं० ४) विभिन्न जगत में अभिन्न का होना ही सच्चा सुख है। प्रथम (अज्ञानावस्था) २ (भोगावस्था) ३ (त्यागावस्था) ४ (भक्तावस्था) है। "स्वर्विद; व्राः अभ्यनूषत ॥१॥ अमृतस्यधाम विद्वान ॥२॥ यस्तानिवेंद सपितुष्पिताऽसत् ॥३॥ व्रतपालक आत्मज्ञानी अमृत के धाम को जानकर उसकी स्तुति करते हैं, वे पूर्ण समर्थ होते हैं। "यत्र विश्वं भवति एक रूपम्' १ यहाँ विविध विभिन्न जगत (विश्व) एक रूप होता है। 'सतः असतः च योनि सः विवः ॥४।१।१ सत् असत् का कारण है यह यथायोग्य ज्ञानी जानता है। और ब्रह्म ब्रह्मण; उज्जमार (४।१-३) ब्रह्म ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है।

यज्ञ—"प्रथमायधास्यबेधर्मं श्रीणन्तु' (४।१-२) सबके मुख्य आधारभूत परमात्मा के लिये यज्ञ सिद्ध करो। ब्रह्म का अर्थ परब्रह्म, परमात्मा, आत्मा, ज्ञान मन्त्र, वेद, ब्राह्मण, भक्त, तप, सदाचार, धन, अन्न, सूर्य, अग्नि, बुद्धि और प्रजापति हैं। इस यज्ञ की शक्ति स्वाहा और स्वधा हैं। स्वधा से (स्वयं शक्तिमान्) (स्वाहा) से परित्याग, सर्व-स्वार्पण है। "जुषेथां यज्ञम्' (६।६-८) यज्ञ का सेवन करो और यज्ञ से "अमृत मस्मासुधतम्" हमें अमृत प्रदान करो। 'यज्ञ येविश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे (४।१४-४) उत्तम विद्वान् विश्वाधार यज्ञ को करते है। "सदेवानामधिपतिर्बभूव (४।५-२) वही यज्ञ देवों का स्वामी हुआ।

जीव —"जीवोमृतस्य चरति स्वधाभि अमर्त्या मर्त्येमा स योनिः। (६।-६०-८) अमर जीव मर्त्यदेह के साथ समान योनि में उत्पन्न होकर विचरता है। "अद्या ममार सह्य सं ः ान' (६।६८-६) वह आज मर गया, कल प्राण धारण करता रहा आदि २। इसी जीव की उन्नति कल्याण, अभ्युदय के लिये ही कर्म योग, यज्ञ ज्ञान आदि है। 'ब्रह्म नद्विद्यात्तपसा विपश्चित् (६।६-३)।

माया--ज्ञानी कृच्छ तप से इस ब्रह्म को जाने। मायायाः (८।६.५) मायासे माया उत्पन्न होती है [५।६।८] पाप से दूर रहो, प्रशस्त सत्कर्म करों और अमरत्व प्राप्त करो। [५।६।२] उस परमात्मा के दूत दुष्टों को पाशों से बाँधने के लिये वे अपने पाश लेकर हर समय हर स्थान में तैयार रहते हैं।

सिद्धि प्राप्ति—सिद्धि प्राप्ति के चार मार्ग हैं। (१) प्रभु भक्ति करना (२) श्रेष्ठों के आदर्श सन्मुख रख कर उस पर चलना (३) पाप का भय धारण करना (४) प्रतिबन्धक विघ्न तथा शत्रु (वाह्याभ्यन्तर से) दूर करना। इसी के लिये 'स्वाहा' तन, मन, धन, सर्वस्व प्रभु, राष्ट्रीय जनहित समर्पण करना। यत् मे अस्ति तेन सह, सर्वतनूः, सर्वगुः सर्वात्मा सर्वपूरुषः त्वाप्रपद्ये त्वा प्रविशामि। (अ०वे० ११।१४) जो भी कुछ अपना कहने योग्य हो, उसे लेकर सब शरीर, सब इन्द्रिय, सब आत्म शक्तियां लेकर तुझे प्राप्त होता हूं। सर्वस्वसमर्पण की यह परम सीमा वेद में वर्णित की है। [कां. ४ सू.७ म.१] में यज्ञ में 'वैश्वानर अग्निः' से प्रार्थना की है कि यज्ञपति हमारी रक्षा करे, हमारी आयु बढ़ाये, हम चिरस्वस्थ रह मंगलमय सिद्धि प्राप्त करते रहें।

अस्यकां २ सू १ म १-५ वेनऋषिः। ब्रह्म आत्मा देवते (त्रिष्टुप्)। ३ जगती छंदः मण्डपद्वार, देहली परमधाम अनुमन्त्रणे, उपस्थाने, होमें, अम्बादिगणकार्ये, मेधाजननकर्मषु अध्यात्मकर्म प्राणविद्या, ब्रह्म कवच संजीवनी विद्यायाश्च बृहच्छान्ति परमधामानु मन्त्रणे विनियोगः।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्रविश्वंभवत्येकंरूपम्।

इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥१

प्रतद् वेचिदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्।

त्रीणि पदानि निहिताग्रुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधएकं एवतं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३
परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठेप्रथमजामृतस्य ।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे३षो अग्निः ॥४
परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्यतन्तुं विततं दृशेकम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥५

इससे आसन के नीचे, शिर पर शान्त्योषधिरखवाकर, शांति औषधियों को तोरणवत लटका कर उसके नीचे आसन पर बैठायें तब छिड़कें ।

इससे पुरोडाश बनायें अभिमन्त्रित करें । इसी से वन्ध्या को दें ।

अम्यका २ सू २ मं १-५ मातृनामा ऋषिः । गन्धर्वाप्सरसश्चदेवते । त्रिष्टुप्, १ विराड जगतीं, ४ त्रिपाद्विराण्नाम् गायत्री ५ भुरिगनुष्टुप् । छंदांसि, त्रिभुवनाधिपति उपस्थाने, उपर्युक्त प्रश्न विज्ञान कर्मणि च विनियोगः ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेकएव नमस्योऽविक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणादिव्यदेव नमस्ते अस्तु दिविते सधस्थम् ॥१
दिविस्पृष्ठो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वोभुवनस्य यस्पतिरेकं एव नमस्यऽः सुशेवाः ॥२
अनवद्याभिः समुजग्म आभिरप्सरास्वपिगन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनम आहुर्यतः सद्यआ च परा च यन्ति ॥३
अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुंगन्धर्वं सचध्वे । ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥४
याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः । ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥५

*यहाँ इस ग्रंथ में कर्मज भव व्याधियों के होने के कारणों, की निराकरण मान्त्रिकी विधि, का वर्णन होने से सभी सकाम और निष्काम कर्मों में, पूर्व पीठ के देवताओं, ऋषियों, पितरादि के आवाहन, अर्चन, वन्दना, उपस्थान के उपरान्त प्रायश्चित कर्त्ता यजमान, या स्वयं, निम्न मन्त्रों में वर्णित विधिसे ब्रह्म के समक्ष अपने को अपराधी मानते हुए, कृत अपराधों के कारण, को निराकरणार्थ निष्ठा श्रद्धा और तन्मयता के साथ हृदय और सहस्रादल को एक करके मन, इन्द्रियों को समाहित अन्तर्मुखी, दृष्टि को भ्रकुटी के बीच (सूर्य चक्र) में जमाकर, सर्वतोभावेन प्रार्थना, प्रारम्भ और कर्म समापन में करें ।

ॐ धर्मतपास्यमृतस्य धारयादेवेभ्यो हव्यं परिदां सवित्रे
शुक्रं देवाः श्रृतम् अदन्तु हव्यम्, आसञ्जुह्वानम् अमृतस्ययोनौ ॥१॥
ॐ देवानाम् अधिपा एति धर्म ऋतेन भ्राजन्नमृतं विचष्टे ।
हिरण्य वर्णो नभसोदेव सूर्यो धर्मो भ्राजन् दिवे अन्ताम् पर्यैषि विद्युता ॥२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ वैश्वानरः समुद्रं पर्येति शुक्रो धर्मो भ्राजन् तेजसा रोचमानः ।
नुदञ्छत्रुन् प्रदहन् मे सपत्नान् आदित्यो द्याम अध्यरुक्षद् विपश्चित् ।३।
ॐ विद्योतते द्योतते आचद्योतत् अप्स्वन्तरमृतो धर्म उद्यन् ।
हन्ता वृत्रस्य हरिताम् अनीकम् अनाधृष्टास्तन्वः सूर्यस्य ।।४।।
ॐ धर्मपश्चाद् उत् धर्म पुरुस्तात् अयो दंष्ट्राय द्विषतोऽपि दध्मः ।
वैश्वानरः शीतरूरे वसानः सपत्नान् मे द्विषतो हन्तु सर्वान् ।।५।।
ॐ ऋतून् ऋतुभिः श्रपयति ब्रह्मणैक वीरोधर्मः शुचानः समिधा समद्धिः ।
ब्रह्मत्वा तपतिब्रह्मणा तेजसा च धर्मः साहस्रः समिधा समिद्धः
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु ।।६।।
ॐ सपत्नान् सर्वान् मे सूर्यो हन्तु वैश्वानरो हरिः ।
धर्मस्तप्तप्रदहतु भ्रातृव्यान् द्विषतो वृषा उद्यन शुक्र आदित्योविमृधोहन्तु सूर्यः ।।७।।

ॐ देव कृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । पितृ कृतस्य मनुष्य कृतस्य आत्म कृतस्याऽऽना ज्ञाता ज्ञातकृतस्य यद्वो देवाश्चकृम जिह्वयागुरु मनसो व प्रयुतीति देवहेडनम् । अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिस्तदेनो वसवो निधेतन ।२।

ॐ इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावा पृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशोमेभवन्तु न वै त्वां द्विष्मो अभयं नो अस्तु ।।

पंचगव्य प्रमाणाद्दि--गोशकृद्, द्विगुणं मूत्रं, दुग्धं दद्याच्चतुर्गुणं । घृतं चाष्ट गुणं चैव पञ्चगव्ये तथा दधि । गोमय, गोमूत्र, गोमय भूमि से ऊपर का लें रस निकालें, गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि, कुशोदक, गोश्रृङ्गोदक ।

पञ्चगव्य सम्मेलन प्रकार

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहिधियो योनः प्रचोदयात् ।।१

इससे गो मूत्र डालें ।

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।२

गोवर का रस, मूत्र से आधा ।

ॐ आप्यायस्व समेतु तेविश्वतः सोमवृष्ण्यम् । भवावाजस्य संगथे ।।३

(दूध) मूत्र का चौगुना डालें ।

ॐ दधिक्राव्णोऽअकारिषाञ्जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभिनो मुखाकरत्प्रणऽआयुंषि तारिषत् ।।४

दही गोवर के रस का आठ गुना डालें ।

ॐ तेजोऽसिशुक्रमस्यमृतमसिधामनामासि । प्रियं देवाना मनाधृष्टं देव जनमसि ।।५

गोघृत दही के बराबर डालें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।।६

यथेच्छ कुशोदक डालें, इसी में गौ के सींग धोकर जल डालें और मिलायें ।

इससे अभिमन्त्रित करें तव चारों ओर कूर्च से भूमि पर छिड़क दें, तत्पश्चात् आचार्यादि, यजमानादि पियें तो कर्मज कालज दोषज दारुण दुःखों से मुक्त हो सत्‌चिन्मयी बुद्धि होती है ।

ॐ देवस्य त्वासवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् ।।

यजूंषियज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिहवोयुनक्तु ।।१

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन्यज्ञेमहिषः स्वाहा ।।२

इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन्यज्ञेप्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा ।।३

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नी भिर्वहतेह युक्ताः ।।४

छन्दांसि यज्ञेमरुतः स्वाहामातेवपुत्रंपिपृतेह युक्ताः ।।५

एयमगन्बर्हिषा प्रोक्षणी भिर्यज्ञंतन्वानादितिः स्वाहा ।।६

विष्णुर्युनक्तु बहुधातपांस्य स्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ।।७

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ।।८

भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्मा अस्मिन्यज्ञेप्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा ।।९

सोमो युनक्क्तु बहुधा पयांस्यस्मिन्यज्ञे सयुजः स्वाहा ।।१०

इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याऽण्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ।।११

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयंतौ ।।१२

बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयंस्वऽरिदं यजमानाय स्वाहा ।।१३

इससे अभिमन्त्रित करें तव चारों ओर कूर्च से भूमि पर छिड़क दें, तत्पश्चात् आचार्यादि, यजमानादि पियें तो कर्मज कालज दोषज दारुण दुःखों से मुक्त हो सत् चिन्मयी बुद्धि होती है। यह त्रिदोष के रोग में भी लाभप्रद हुआ है।

॥ अथ पुण्याह वाचन ॥

स्वस्ति वाचन के साथ अभिमन्त्रित घट के जल में ये खील, कांगनी, जौ, पीली, सरसों देवदारु, हल्दी, सर्वोषधि, लोध, तीर्थोदक, कुशोदक, गोशृङ्गोदक, तीर्थरज यज्ञियभस्म, डाल लें।

श्वेत वस्त्र से ढककर, उस चावलों के अष्टदल कमल के ऊपर ताम्र कलश को स्वस्तिक, मौली, मालादि से युक्त करके रक्खें।

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमान स्तदा शा स्तेयजमानो हविर्भिः ।

अहेड मानोवरुणे हवोध्युरुशंठ समानऽआयुः प्रमोषीः ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निम्न मन्त्र पढ़ैं—ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती ।। नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।१।। ॐ पुष्कराद्यनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ।। आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदामम ।।

इस प्रकार तीर्थों का जल में आवाहन करें। स्नान कर ३ कुशाओं से ऋग्वेद के ४ तथा वारुण मन्त्रों अथर्व से शिर पर जल छिड़कें। मन्त्र–

ॐ सिसृक्षो र्निखलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजापते । मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् ।।१।।
अलक्ष्मीर्मलरूपा या सर्वभूतेषु संस्थिता । क्षालयन्ति निज स्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम् ।।२।।
यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु वो नमः ।।३।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षय; क्षान्तिरास्तिक्यं विद्या भवतु वो नमः ।।४।।

तत्पश्चात् हाथों से जल लें, नासिका के पास लगाकर मानसिक "ॐ ऋतं च सत्यं" इस अघमर्षण मंत्र को पढ़ें, अपनी गुरु, कुल परामपरानुकूल तिलक लगायें। तदनन्तर, पत्र-पुष्प, फल, दक्षिणा के साथ यज्ञ मण्डप में प्रवेश करें दिग्पाल लोकपाल, देव, ऋषि पितृश्वर तथा गुरु, आचार्य, द्विजों को प्रणाम कर यथा स्थान बैठकर आचमन, प्राणायाम गुरु, इष्टदेव की वन्दना करें।

पुण्याह वाचन—पृथ्वी पर घुटना और पिंडलियों से स्पर्श कर कमल मुकुल तुल्य अञ्जलि को शिर के पास रख आचार्य सीधे हाथ से कलश को यजमानाञ्जलि में रक्खें, यजमान धारण कर प्रार्थना करें। यजमान पूर्वाभिमुख, ऋत्विजउत्तराभिमुख होकर बैठें।

दीर्घा नागा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च ।।

"यजमान-तेनायुः प्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घ मायुरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु ।" कहें द्विजः—"पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु" कहें, ऐसे ही सभी जगह यजमान प्रार्थना करें-द्विज आशीर्वाद ३ वार कहकर दें।

य० ब्राह्मणानां हस्ते सुप्रोक्षितमस्तु, "ॐ शिवा आपः सन्तु जल दें द्विज—सन्तु शिवा आपः" य० "ॐ सौमनस्यमस्तु" पुष्प दें, द्वि०—अस्तु सौमनस्यम्" ३। य० अक्षत दें। द्वि०—अस्तत्वक्षतमरिष्टं च"। य० ॐ गन्धाः पान्तु, गन्ध दें द्विज—सौमङ्गल्य ञ्चास्तु ॐ।

पुण्याह वाचन—पद्धति में यजुर्वेदीय, पौराणिक निहित है, यहाँ अथर्वाङ्गिरस पद्धति से है। इस कां.७ सू. १७ में ४ से सूर्योदय काल में सोते हुए ब्रह्मचारी तथा यज्ञ में सूर्योदय काल में सोते यजमान को जगाये। गर्भाधान में स्त्री के सम्भार (अलङ्कारों) का स्पर्श करें योग, प्राणविद्या, ब्रह्मविद्याभ्यास करें। पुण्याह वाचन में यह आशीर्वाद दें।

ॐ धातारातिः संवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नोऽअग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणोयजमानाय द्रविणं दधातु ।।१

कां. ६।४०-१ से, ग्राम, राष्ट्र-राष्ट्रसेना, गृह-गृहस्वामी के अभयार्थ, सप्तर्षियों की पूजा होम करें अभयार्थ आशीर्वाद दें।

अभयं द्यावा पृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।
अभयं नो स्तूर्वन्तरिक्षं सप्त ऋषीणां च हविषाऽभयं नोऽअस्तु ।।२
नवो नवो भवसि जायमानोऽन्हां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो विदधा स्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ।।३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ७।८१(८६)२ से विवाहादि शान्ति पौष्टिक कार्यों में चरुहोम करते ही रहें, यह यजमान को आशीर्वाद दें।

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः सम्भृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभितं स्तनीहि ॥४

पुण्याह वाचन विप्रगण करें।

इससे विजय का आशीर्वाद दें

इस मन्त्र से शत्रु दल त्रास और उनमें परस्पर विद्वेषणार्थ भेरी आदि बाजों को छींटे दें, अगर-बगर धूप दें तीन ३ बार ताडित कर, बजाने वाले को दें।

ॐ त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥

कल्याणार्थं वचन

कां. ६ सू. ४-१ से पुष्टि, शान्तिमेधाजनन कर्म करें युद्ध में शस्त्राभिमन्त्रित करें। रक्षादण्ड स्थापन कर प्रणाम करें। युग्म जनन में नवजात बालों के शिरों पर छींटे दें। विजयार्थ इन्द्राराधना करे, यह कल्याणवाची आशीर्वाद दें।

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥१

कां ६।१९ से बृहच्छान्तिगण कर्म करें, अर्थोत्थापनार्थ मरुद्गण होम करें। स्वयज्ञ में सकुटुम्ब यजमान का मार्जन करें। दीक्षा-दान में पवित्री कुशमुष्टि अभिमन्त्रित करें, ब्रह्मतेज वृद्धि का आशीर्वाद दे।

ॐ विश्वजित्कल्याण्यैऽमा परि देहि । कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥२

कां. ६ सू. १०७-३ से वृहद्‌गणशान्ति, पौष्टिक, स्वस्त्ययन हवनादि करते हुए ऋद्धि-सिद्धि लाभ के साथ अभिवृद्धि का आशीर्वाद दें।

ऋद्धि का आशीर्वाद

कां. ५ सू. १-१ से शत्रु-विजय के लिये, सांग्रामिक अग्नि दीप्त करें, शूकरके बैठने की मिट्टी की वेदी बनाये सत्तू होम करें। पुरोहित कवच, अस्त्र-शस्त्र अभिमन्त्रण कर दे, शत्रु-दमन, स्वयं की विजयार्थ वचन कहें।

ॐ ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥

कां. १।३१-४ से स्वस्त्ययन को दिगपालों, लोकपालों के लिये होम करें। विजय का आशीर्वाद दें।

ॐ स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥

स्वस्ति वाचन करें।

कां. ५।१२-६ से दिव्य बल, ओज, ब्रह्मवर्च प्राप्ति हेतु होम करें श्री विजय शान्ति, पुष्टि, मेधा वृद्धि का आशीर्वाद दें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ आसुष्वयँतीयजते उपाकें उषासानक्तां सदतां नियोनौं ।
दिव्येयोषणेबृहती सुरुक्मे अधिश्रियँ शुक्रपिशं दधाने ।।५

श्री वाचन करें ।

इससे अपमृत्यु, दुर्गति निवारणता दीर्घायुष्य का आशीर्वाद दें ।

ॐ आयुरस्मै धेंहि जातवेदः प्रजां त्वष्टु रधि निधेंह्यस्मैं ।
रायस्पोषं सवितरासुंवास्मैं शतं जीं वाति शरदंस्तवायम् ।।६

आयुष्य वाचन

ॐ एहयांतु वरुणः सोमों अग्नि बृहस्पति वसुंभिरेहयांत ।
अस्य श्री यमुपसंयांत सर्वउग्रस्यं चेत्तुः संमंनसः सजाताः ।।७

सभी से परस्पर प्रेम मैत्री रहे, अजात शत्रुता प्राप्त करें, आशीर्वाद दें ।

राजश्री वाचन करें । रक्षा तथा देव प्राप्ति का आशीर्वचन—

कां, ७ सू. २८ से होम कर्माङ्ग, कुशमुष्टि, पवित्री, कुशा सभी निरन्तर अभिमन्त्रित कर धारण करते रहें । तापत्रय निवारण, त्रैलोक्य अभिवृद्धि का आशीर्वाद दें ।

ॐ वेदः स्वस्तिद्रूँघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।
हविष्कृतों यज्ञियां यज्ञ कांमास्ते देवासों यज्ञमिमं जुषंताम् ।।८।। अथवा

इससे वेदी अनुमन्त्रण भी करें ।

ॐ त्यमूषुवाजिनँ देवजूंतं सहोवानन्त ऋ तारं स्थांनाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतना जमासुं स्वस्तये तार्क्ष्यँ मिहांहुवेम ।।९

यह अथर्वण मन्त्र हैं । आगे ऋग्यजुर्वेदीय मन्त्र हैं । अपने गृह्यसूत्रों की विधियों से सम्पन्न करें ।

ॐ भद्रं कर्णेभिः ।।१।। नतद्रक्षांꣳसि न पिंशाचास्तरन्ति देवानामोजंः प्रथमजꣳ ह्येतत् ।। योबिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ सदेवेषु कृणुते दीर्घमायुः समनुष्येषुकृणुते दीर्घमायुः ।। दीर्घायुस्तꣳओषधेरवनिता यस्मैचत्वा खनांम्यहम् ।। अथो त्वन्दीर्घायुंर्भू त्वाशतवल्शाव्विरोहतात् ।।४।। द्रविणोदा द्रविण सस्तरस्य द्रविणोदाः सनंरस्य प्रियंसत् ।

पुण्याह वाचन—यजमान—ॐ अक्षताः पान्तु, द्विज आयुष्यमस्तु० ३ इससे पंडितों के हाथ पर अक्षत रक्खें । ॐ पुष्पाणि पान्तु सौश्रियमस्तु पुष्प दें ३ ॐ ताम्बूलानि पान्तु ऐश्चर्यमस्तु सपूगीफल ताम्बूल दें । ॐ दक्षिणाः पान्तु, वहुधनमस्तु ३ सबको दक्षिणा दें विप्राः स्वर्चितमस्तु,

यजमान आचार्य आदि को प्रणाम करते हुए यजमान कहे,

श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं वहुपुत्रं चायुष्यं चास्तु, इतिभवन्तो ब्रुवन्तु ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्विजः—श्रीर्गशो विद्या विनयौ वित्तं वहुपुत्रं चायुष्य चास्तु, इत्युत्तवा दीर्घमायुःश्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्त्विति, यजमानं नुध्र्मभिषिञ्चेयुः ।।

यजमान—यंकृत्वा सर्ववेद, देवयज्ञक्रियाकरण कर्मारम्भाः शोभनाः प्रवर्त्तन्ते तमहमोङ्कारमादि कृत्वा ऋग्यजुः सामाशीर्वचनं बहुऋषिमतं समनुज्ञातंभवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं, वाचयिष्ये । ॐ वाच्यतां ब्राह्मणानां हस्तेष्वक्षतान्दद्यात्तेवमाशिषोदद्युः ।

इस प्रकार आर्शोर्वाद दें ।

व्रत जपनीयम तपः स्वाध्याय क्रतु दयादम दानविशिष्टानां सर्वेषां ब्रह्मणानां मनः समाधिवताम् । (यजमान कहें) द्विज—समाहितमनसः स्मः ।

(य०) प्रसीदन्तु भवन्तः द्वि०) प्रसन्नाः स्मः । (य०) शान्तिरस्तु द्वि०) अस्तु(य०) तुष्टि रस्तु; ॐ अस्तुतुष्टि ॐ वृद्धिरस्तु ॐ अविघ्नमस्तु ॐ आयुष्यमस्तु ॐ आरोग्यमस्तु ॐ शिवं कर्मास्तु ॐ कर्मसमृद्धिरस्तु ॐ वेदसमृद्धिरस्तु ॐ शास्त्र समृद्धिरस्तु ॐ धनधान्य समृद्धिरस्तु ॐ पुत्रपौत्र समृद्धिरस्तु ॐ इष्टसंपदस्तु ॐ अरिष्टनिरसनमस्तु ॐ यत्पापं यद्रोगं नः अशुभमकल्याणं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु ॐ यच्छ्रेय स्तदस्तु ॐ उत्तरे कर्मणि निर्बिघ्नमस्तु ॐ उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु ॐ उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः सपद्यन्ताम । ॐ तिथिकरणमुहूर्त्त नक्षत्रग्रहलग्न संपदस्तु ।।६।।

उदकसेक—ॐ तिथिकरण मुहूर्त्त नक्षत्रग्रह लग्नाधि देवताः प्रीयन्ताम । ॐ तिथिकरणे सुमुहूर्त्ते सग्रहे साधि देवते प्रीयेताम । ॐ दुर्गापाञ्चाल्यौ प्रीयेताम । ॐ अग्निपुरोगाविश्वेदेवताः प्रीयन्ताम् । ॐ इन्द्रपुरोगामरुद्गणाः प्रीयन्ताम् । ॐ माहेश्वरीपुरोगाउमामातरः प्रीयन्ताम् । ॐ अरुन्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्ताम् । ॐ विष्णुपुरोगाः सर्बेदेवाः प्रीयन्ताम् । ॐ ब्रह्मपुरोगाः सर्ववेदा प्रीयन्ताम् । ॐ ब्रह्मचब्राह्मणश्चप्रीयन्ताम् । श्रीसरस्वत्यौप्रीयेताम् । ॐ श्रद्धामेधे प्रीयेताम् ।

ॐ भगवती कात्यायनी प्रीयताम् । ॐ भगवतीमाहेश्वरी प्रीयताम् । ॐ भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवती सिद्धिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवती पुष्टि करी प्रीयताम् । ॐ भगवती तुष्टिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम् । ॐ सर्वाकुलदेवताः प्रीयन्ताम् ॐ सर्वाग्रामदेवताः प्रीयन्ताम् । ॐ हताश्च ब्रह्मद्विषः ॐ हताश्च परिपन्थिनः । ॐ देवताश्चविघ्नकर्त्तारः शत्रवः पराभवं यान्तु ॐ शाम्यन्तु घोराणि । ॐ शाम्यन्तु पापानि । ॐ शाम्यन्त्वीतयः ॐ शुभानि बर्द्धन्ताम् । ॐ शिवा उापः सन्तु । ॐ शिवा ऋतवः सन्तु । ॐ शिवा औषधयः सन्तु । ॐ शिवा नद्यः सन्तु । ॐ शिवागिरयः सन्तु । ॐ शिवा अतिथयः सन्तु । ॐ शिवा अग्नयः सन्तु । ॐ शिवा आहुतयः सन्तु । ॐ अहोरात्रे शिवेस्याताम् ।

ॐ निकामे निकामेनः पर्ज्जन्यौवर्षतुफलवत्योन्
ओषधयः पच्च्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।१

ॐ शुक्राङ्गरक बुधवृहस्पतिशनैश्चरराहु केतु सोम सहिता आदित्यपुरोगाः सर्वेग्रहाः प्रीयन्ताम् । ॐ भगवान् नारायणः प्रीयताम् । ॐ भगवान्पार्ज्जन्यः प्रीयतमाम् । ॐ भगवान्स्वामीमहासेनः प्रीयताम् । ॐ पुण्याहकालान्वाचयिष्ये । इस प्रकार यजमान प्रार्थना करें । द्विज आशिष दें ।

ब्राह्मणंपुण्यं महद्यच्च सृष्ट्युत्पादन कारकम् । वेदवृक्षोद्भवं नित्यं तत्पुण्याहं—ब्रुवन्तु नः ।।१।। भोब्राह्मणाः मयाक्रियमाणस्य (अमुक मन्त्र पुरश्चरणाख्यस्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु ओम० पुण्याहम ।।३।। प्रतिवचन ३ वार कहें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ पुनन्तु मादेवजनाः पुनन्तु मनसाधियः ॥ पुनन्तुव्विश्वाभूतानिजातवेदः पुनीहिमा ॥१

पृथिव्यामुद्धृतायां तु यत्कल्याणं पुराकृतम ।

ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुवन्तु नः ॥१॥ भोब्राह्मणामया० कर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु । ॐ कल्याणम् ॥३॥

ॐ यथेमाँव्वाचंकल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याठं, शूद्राय चार्याय चस्वाय चारणायच । प्रियो देवानां दक्षिणायैदातुरिहभूया समयन्मे कामः समृध्यतामुपमादोनमतु ।१

सागरस्ययथा वृद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता ॥ संपूर्णा सुप्रभावाच्चतां ऋद्धिं ब्रुवन्तु नः ॥ भोब्राह्मणाः मया क्रिय० कर्मणः ऋद्धिभवन्तोब्रुवन्तु । ॐ ऋध्यताम् ।

ॐ सत्रस्य ऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता ऽअभूम ।
दिव्वं पृथिव्या ऽअध्यारुहामाविदामदेवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥१

स्वस्तिस्तुयाऽविनाशाख्या पुण्य कल्याण वृद्धिदा । विनायकप्रियानित्यं तां च स्वस्ति ब्रुवन्तु नः ॥१॥ भो ब्रह्मणाः मया० कर्मणः स्वस्ति भ० ॥ ॐ स्वस्ति

ॐ स्वस्तिन ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाव्विश्ववेदाः ।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्ट नेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥१

समुद्रमथनाज्जाता जगदानन्दकारिका । हरिप्रिया चमाङ्गल्यातांश्रियं च ब्रुवन्तु नः ॥१॥ भोब्राह्मणः मया० कर्मणः श्रीरस्त्विवतिभवन्तो ब्रुवन्तु अस्तु श्रीः ॥३॥

ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुम्मऽ ऽइषाणसर्व्वलोकम्मऽइषाण ॥१

(यजमान) पुण्याहवाचन

अस्मिन पुण्याह वाचने न्यूनातिरिक्तो योविधिः सउपविष्ट ब्राह्मणानां वचनात् श्रीमहा गणपति प्रसादाच्च सर्वः परिपूर्णोस्मृ । द्विज-अस्तुपरिपूर्णम्

अभिषेकः—अभिषेक में स्त्री को वायें करके ४ विवाहित ब्राह्मण, दूध, आम की टहनी से वरुण कलश से जल लेकर यजमान दम्पत्ति का अभिषेक करें ।

१ ॐ पयः पृथिव्याम्, २, ॐ पश्चनद्यः, ३, ॐ वरुणस्योत्तम्, ४, ॐ पुनन्तु मा०, ५
ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्प्रसवेश्विनो र्ब्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्व्यन्त्रियेदधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥६
धेवस्यत्वा० सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्ने ः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवस्यत्वा० आश्विनोर्भैषंज्येनतेजंसाब्रह्मवर्च्चसायाभिंषिञ्चामि सरंस्वत्यै भैषंज्येनव्वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण वलांयश्रियैयशंसे भिषिंञ्चामि ॥८

विश्वांनिदेव सवितुर्दुरितानि परांसुवयद्भद्रंतन्न ऽआसुंव ॥९

धामच्छंदग्निरिन्द्रोब्रह्मादेवो बृहस्पतिः सचेंतसो व्विश्वेदेवायज्ञम्प्रावन्तुनःशभे ॥१०

अन्नंपतेन्नंस्यनोधेह्यनमीवस्यंशुष्मिणंः प्रप्रंदातारंन्तारिष्टाऽऊर्ज्जंन्नोधेहि द्विपदेशंचतुंष्पदे ॥११

ॐ त्वं यंविष्टदाशुषो नृंः पाहिं श्रृणधीगिरंः रक्षतो कमुतत्मनां ॥१२

ॐ द्यौः शान्तिरन्त० ॥१३॥ यतोंयतः समीहसे ॥१४॥

अमृताभिषेकोऽस्तु शान्तिः शान्तिः सुशांतिंभवतु ॥

यजमान, पत्र-पुष्प, दक्षिणा, फल, अक्षत लेकर ब्रह्मा (आचार्य) से विनय करें और ग्रन्थि वन्धनादि करे। वै० श्री० सू० १७ ब्रह्मा जप करें।

ॐ भूपते भुवनपते भुवांपते महतो भूतस्यपते ब्रह्माणं त्वा वृणीमहे।

(ब्रह्मा) यज्ञ में अपने वरण कराकर यह जपें और स्वीकार करें।

ॐ अहं भूपतिः, अहं भुवनपतिः; अहं भुवांपतिः; अहं महतो भूतस्यपतिः; तदहं मनसे प्रब्रवीमि मनो वाचे वाग्गायत्र्यै, गायत्र्युष्णिह, उष्णिगनुष्टुभे ऽनुष्टुब् बृहत्यै बृहती पङ्क्तये पङ्क्तिस्त्रिष्टुमे; त्रिष्टुब् जगत्यै जगती प्रजापतये प्रजापति विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॐ भुर्भुवः स्वर्जनदो३म्।

आचार्य यह जपें।

ॐ अहमर्वाग्वसोः सदने सीदामि, सत्यस्य सदने सीदामि, इष्टस्य सदने सीदामि पूर्तस्य सदने सीदामि मा मृषदेववर्हिः स्वासस्थं त्वाऽध्यासदेयमूर्णमदमनभिशोकम् ॥

अन्य ऋत्विजों का वरण कर पूजा करें। तदन्तर अन्य ऋत्विक जपें।

भवतं नः समनसौ समोकसावरेपसौ। माहिं सिष्टं यज्ञपतिं मायज्ञं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः। अग्निनाग्निः संसृज्यते कविर्बृहस्पतिर्युवा। हव्यवाड् जुहास्यः। त्वं अग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्सता। सखा सख्या समिध्यसे। पाहिनो अग्न एकया पाहि न उतद्वितीयया। पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जांपते पाहि चतसृभिर्वसो। समीची माहनी पातामायुष्मत्या ऋचोमा सत्सि। तनूपात्साम्नो वसुविंद लोकमनुसचराणि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथाचार्य जापक वरणनम्—उत्तम वंशोत्पन्न, सदाचारी, सन्ध्यादि षट्कर्म कर्त्ता वेद शास्त्र वेत्ता, सुशील नीरोग (वाल-वृद्धरहित) सर्वाङ्गपूर्ण, आस्तिक, स्नातक ब्राह्मणों को यज्ञ में आमन्त्रित कर पैर धोकर अर्घ्य, पूजा करें। आसनों पर पूर्वाऽभिमुख विठायें, स्वयं यजमान उतराभिमुख बैंठे, आचमनादि कर बरणहेतु अक्षत, पुष्प, माला जप-स्थली आसन वस्त्र, चरणपादुकादि लेकर आचार्य के पैरों का स्पर्श करते हुए।

देशकालौ स्मृता अमुक गोत्रोत्पन्नोमुकशर्मा-अमुक-कामनासिद्धयर्थम अमुक देवता प्रीतये करिष्येमाणामुक मन्त्र जपपुरश्चरण कर्मणि (आदि२) अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुक वेदान्तर्गत-अमुक शाखाध्यायि अमुक सूत्रीय-अमुक प्रवरीय-अमुक शर्माणं ब्राह्मणमेभिर्गन्धाक्षत ताम्वूल मुद्रिकासन माला कमण्डलु वासोभिराचार्यत्वेन त्वामहं वृणे। इति वृत्वा। ओ३म् वृतो ऽस्मीति प्रतिवचनान्तरं गन्धाक्षत पुष्प मालादिभिराचार्य सम्पूज्य। यज्ञ कंकण बांधें।

ॐ यथा शक्रस्य वागीश आचार्यः सर्व कर्मषु।
तथामया त्वमाचार्यो वृतोऽस्मिन् यज्ञ कर्मणि ॥१॥ प्रार्थयेत्

ब्रह्मा और आचार्य का वरण कर दस आठ पांच चार आदि जापकों को एक साथ ही या पृथक् पृथक् वरणन करें।

अद्यामुक गोत्रोऽत्पन्न अमुक शर्मा अमुक कामनार्थअमुक देवता प्रीतये करिष्यमागामुक मन्त्र पुनश्चारण कर्मणिवा अमुक संख्यापरिमितामुक मन्त्र जप करणार्थमुकामुक गोत्रोत्पन्नानमुकामुक शर्मणो विप्रानेभिगन्धाक्षत पुष्प माला वरण द्रव्यैः सम्पूज्य सर्वेषाँ पृथक् २ यज्ञ सूत्र वद्ध्वा प्रार्थयेत्।

ॐ जापकाश्च यथा पूर्वे शक्रादीनां मखेऽभवन्।
यूयं तथा मेभवितुं जापकाऽर्हथ सत्तमाः ॥१॥ इनि प्रार्थ्य यजमानाचार्य ब्रह्मा
जापकाः परस्परं यज्ञकङ्कणं वध्नीयुः ॥ गन्धाद्यर्चनं चकुर्युः।

अथ प्रार्थना—**ॐ अस्य यागस्य निष्पत्ती भवन्तोऽभ्यर्थितामया। सुप्रसन्नेः प्रकर्त्तव्यं शान्तिकं विधिं पूर्बकम्।१। अङ्गी कुर्वन्तु कर्मेतत्कल्पद्रुमसमाशिषः॥ यथोक्त नियमैर्युक्ता जपार्थेस्थिर बुद्धयः।२ अस्मिन् यज्ञे मया पूज्याः सन्तुमे नियमान्विताः अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्म चारिण। देवध्यानरता नित्यं प्रसन्न मनसः सदा। अदुष्ट भाषणाः सन्तु मासन्तु पर निन्दकाः।३। ममापि नियमा ह्येते भवंतु भवतामपि।४।** ऐसे प्रार्थना कर प्रत्येक को दो वस्त्र, आसन यज्ञोपवीत, अर्घ्यपात्र, आचामन पात्र जल कमण्डलु (लोटा) दो स्वर्ण की छापैं परम्परागत (रुद्राक्ष, तुलसी) माला, पान, सुपाड़ी फल समर्पण करें। आचार्य को द्विगुण दक्षिणादि भेंट करें।

आचार्य (ब्रह्मा) यजमान के सपत्नीक ग्रन्थ बन्धन करें।

आ॒शासा॑ना सौमनसंप्र॒जां सौभा॑ग्यं र॒यिम्। पत्यु॒रनु॑व्रताभूत्वा संन॑ह्यस्वा॒मृता॑य॒कम् ॥

अथ कलशस्थापनम्

पूर्वोक्त ईशान कोण वेदी पर यन्त्र वनाकर तामें का कलशस्थापन करें और उसमें वरुणादि देवताओं का आवाहन करें।) भूमि पूजा करें।

ॐ भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् परब्रह्मणे नमः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ भूरसिभूमिरस्यदितिरसिविश्वधायाविश्वस्यभुवनस्यधर्त्रीम् । पृथिवींयच्छ पृथिवींदृंहपृथिवींमाहिंसीः ॥१॥

अष्टदलकमलादि चावलों से बनायें।

ॐ धान्यमसिधिनुहिदेवान्प्राणायत्वोदानायत्वा व्यानायत्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधान्देवोवः सविताहिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेणपाणिना चक्षुषेत्वा महीनाम्पयोसि ॥२॥

(धान्य छोड़ें)।

ॐ आजिघ्रकलशम्मह्यात्वाविशन्त्विन्दवः पुनरूर्जानिवर्तस्वसानः। सहस्रंधुक्ष्वोरुधारापयस्वतीः पुनर्माविशताद्रयिः ॥३॥

घट में पवित्र जल, पुष्प छोड़ें, उस पर कलश रखें।

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्थो वरुणस्यऽऋतसदन्न्यसिवरुणस्यऽऋतसदनमसिवरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥४॥

पावन तीर्थों, नद-नदी, स्रोतों के जल से पूर्ण भर दें।

ॐ त्वांगन्धर्व्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वाम्बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमोराजा विद्वान्यक्ष्माद मुच्यत ॥५॥

गन्ध, चंदन, रोली आदि छोड़ें।

ॐ याऽओषधीः पूर्व्वाजातादेवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा। मनैनुबभ्रूणामहꣳ शतंधामानि सप्त च ॥६॥

सर्वोषधियां घट में छोड़ें। स्वस्ति वाचन में पढ़ें।

ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्तीपरुषः परुषस्परि। एवानो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेणशतेन च ॥७॥

दाभ श्वेत और काली दूर्वो को छोड़ें।

ॐ अश्वत्थेवोनिषदनं पर्णेवोवसतिष्कृता। गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथपूरुषम् ॥८॥

यज्ञिय दश वृक्षों या पञ्च पल्लवों को छोड़ें।

स्योना पृथिवी नोभवानृक्षरानिवेशनी। यच्छानः शर्म्म सप्रथाः ॥९॥

तीर्थों यज्ञों, की रज, भस्म छोड़ें।

ॐ याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳहसः॥१०

पूगीफल छोड़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ परिवाजं पतिः कविरग्निर्हव्यान्यं क्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥११॥

पञ्चरत्न छोड़ें ।

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् । सदाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम् ॥१२॥

स्वर्ण छोड़ें ।

ॐ सजातो ज्योतिषासह शर्मव्वरूथमासदत्स्वः ।
व्वासोऽ अग्ने विश्वरूपठं, संव्यं यस्वविभावसो ॥१३॥

वस्त्र और रक्त सूत्र नारियल में बाँधकर ऊपर रक्खें ।

ॐ पूर्णादर्वि परापतसुपूर्णा पुनरापत । व्वस्नेवविक्रीणावहा ऽ इष मूर्जठं, शतक्रतोः ॥१४॥

२५६ मुठी या सबसे अधिक आहार वाले व्यक्ति के तुल्य शुष्क भक्ष पदार्थों से युक्त पूर्ण पात्र रखें ।

ॐ मनो जूति र्जुषता इति प्रतिष्ठां कृत्वा तत्र । ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणावन्दमानस्तदाशास्ते यजमानोहविर्भिः । अहेडमानोव्वरुणेहवोद्ध्युरुशठंः समानऽ आयुः प्रमोषीः ॥

अस्मिन कलशे ॐ वरुण इहागच्छेहतिष्ठ इत्यावाह्य ॐ अपांपतये वरुणाय नमः गन्ध; अक्षत, पुष्प, माला से पूजन करें । प्रार्थना करें "कलशस्यमुखे विष्णु" ॐ गङ्गे च यमुने च गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥१॥

अस्मिन्कलशे सर्वाणि तीर्थानि आवाहयामि, पूजयामि नमस्करोमि । तीर्थों का आवाहन करें । आवाहन मुद्रा करें ।

नवग्रहादि पीठ पूजा

ॐ आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूरऽइष व्योति व्याधी महारथो जायतान्दोग्ध्रीधेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णुरथेष्ठाः सभेयोयुवास्य यजमानस्य वीरो जायतान्निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतुफलवत्यो न ऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमोनः कल्पताम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः पूर्वे ब्रह्मन् इहागच्छ इहतिष्ठ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं आवाहयामि स्थापयामि नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः दक्षिणे गायत्रि इहागच्छ इहतिष्ठ गायत्र्यै नमः ॥ गायत्रीमाहवाहयामि स्थापयामि नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः पश्चिमे-गोवर्द्धन इहागच्छ इहतिष्ठगोवर्द्धनाय नमः गोवर्द्धनमावाहयामि स्थापयामि नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः उत्तरे पृथिवी इहा-गच्छ इहतिष्ठ पृथिव्यै नमः । पृथिवीमावाहयाम स्थापयामि नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः मध्ये यज्ञपते इहागच्छ इहतिष्ठ यज्ञपतये नमः यज्ञपतिमावाहयामि स्थापयामि नमः । प्रतिष्ठाप्य । पूर्ववत् पाद्यादि से पूजन कराकर प्रार्थना करें ।

ॐ ब्रह्मादेवी च गायत्री तथा गोवर्द्धनेश्वरः पृथ्वी यज्ञपतिश्चैतान् पंचोङ्कारान्नमाम्यहम् । अनया पूजया साङ्गा सपरिवारा ब्रह्माद पंच प्रणवाः प्रीयान्तु नमम ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वादश गणेश पूजन

वहीं पर गणेश के समीप अग्नि कोण में वक्रादि द्वादश गणेश का पूजन कराना चाहिये।

ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्चवो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्चवो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्चवो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्चवो नमो नमः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वक्रादि द्वादश मूर्तिगणपा इहागच्छत इहतिष्ठत ॥ वक्रादि द्वादश मूर्ति गणपेभ्यो नमः। वक्रादि द्वादश मूर्ति गणपान् आवाहयामि स्थापयामि नमः। (अर्घ्य, पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना—ॐ नमो देव गणेशाय नमस्ते विघ्न नाशन। नमो मूषकमारूढ़ शुभ कर्त्र नमोनमः। नमः कात्यायनी पुत्र नमः परशुपाणये रवेरुदयतेरूप विद्या बुद्धि विचक्षणे। देहिमेरूप सौभाग्यं देहिमे पुत्र सम्पदः। इच्छा सिद्धि प्रदो देव यथोक्तं भवमेसदा। अनया पूजया सांगा सपरिवाराः वक्रादि द्वादश गणपाः प्रीयन्तु नमम। (नैर्ऋत्य कोण में)

वास्तु पूजन—

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानी ह्यस्मान्त्स्वा वेशो ऽअनमीवोभवानः यत्वेमहे प्रतितन्नो युषस्व शन्नोऽभव द्विपदे शंचतुष्पदे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वास्तु पुरुष इहागच्छ इहतिष्ठ वास्तु पुरुषाय नमः। वास्तु पुरुषमावाहयामि स्थापयामि नमः। (पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना—नाग पृष्ट समारूढं शूल हस्तं महावलम् ॥ पातालनायकं देवं वास्तु देवं नमाम्यहम्। अनया पूजया साङ्गः सपरिवारः वास्तु देव प्रीयताम नमम ॥ (वायव्य कोण में)

चतुः षष्ठि योगिनी पूजनम्—

ॐ जात वेदसे सुनवामसो ममरातीयतोनिजहातिवेदः सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वाना वेव सिन्धुन्दुरितात्यग्निः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः दिव्यादि चतुःषष्ठि योगिनीभ्यो नमः ॥ दिव्यादि चतुः षष्ठि योगिनीः आवाहयामि स्थापयामि नमः। (पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना—ॐ जयादि सर्वा योगिन्यः दुर्गा रूपाश्चताः स्मृता पूजया वलिदानेन सन्तुष्टास्संतु मे सदा। अनया पूजया सांगाः सपरिवाराः दिव्यादि चतुष्षष्ठि योगिन्य प्रीयन्तां नमम। (वायव्याद कोण में)

क्षेत्रपाल पूजन—

ॐ अजारेपिशंगिलास्वावित्कुरुपिशंगिलाशसआस्कन्दमारेशसत्याहिपन्थां विषपंति।

ॐ भूर्भुवः स्वः अजरादि पंचाशत्क्षेत्रपा इहागच्छत इहतिष्ठत अजरादि क्षेत्रपेभ्योनमः अजरादि क्षेत्रपान् आवाहयामि स्थापयामिनमः। (पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना—ॐ क्षेत्रपालन्नमस्यामिसर्वारिष्टनिषूदनात्। अस्ययागस्यसिद्धयर्थ पूजयाराधितान् मया ॥ अनया पूजयासांगाः सपरिवाराः अजरादिपंचाशत्क्षेत्रपाः प्रीणन्तु ॥ (उत्तरदिशा में)

षोडशमातृका पूजन—ॐ गौरोर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी साचतुष्पदी अष्टापदी नवपदी वभूवुषी सहस्राक्षरापरमेव्योमन्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यादिषोडशमातर इहागच्छत इह तिष्ठत ।। गौर्यादि षोडश मातृकेभ्योनमः ।। गौर्यादि-मातृः आवाहयामि स्थापयामिनमः । (पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना—ॐ गौरीपद्माशची मेधा सावित्री विजयाजया । देवसेना स्वधास्वाहामातरोलोकमातरः हृष्टि पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवताः गणेशेनाधिकाह्येता वृद्धौपूज्याश्चषोडशः । अनया पूजया सांगाः सपरिवाराः गौर्यादि षोडशमातृकाः प्रीणन्तु न मम । (ईशान कोंण में)

वरुण पूजनम्—

ॐ इमम्मे वरुणश्रुधीहवमद्या चमृडय । त्वामवस्युराचके ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुण इहागच्ज इहतिष्ठ वरुणायनमः । वरुणमावाहयामि स्थापयामिनमः । (पाद्यादि से पूजन कराकर)

प्रार्थना—नागपाशधरं देवं वरुणंनक्रवाहनम् । शुद्धस्फटिकसंकाशंत्राण रूपंनमाम्यहम् ।। पाशहस्तं च वरुणमर्णसां प्रतिमीश्वरम् ।। आवाहयामि यज्ञेस्मिन् पूजेयंप्रतिगृह्यताम् ।। अनयापूजया सांगः सपरिवारः वरुणदेवः प्रीणातु न मम । (ईशान कोण में)

पूर्वाभिमुखी रक्त पुष्पाक्षत से सूर्य की पूजा करें ।

सूर्यादि नवग्रह पूजन--

ॐ आकृष्णेन रजसावर्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च हिरण्ययेन सवितारथेन देवो यातिभुवनानिपश्यन् ।

ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्यादि नवग्रहाः इहागच्छत इहतिष्ठत सूर्यादि नवग्रहेभ्यो नमः । सूर्यादि नवग्रहानावहयामि स्थापयामि नमः । (पाद्यादि से पूजन कराकर)

नवग्रहपीठ के आग्नेय दशा में, उत्तराभिमुख चन्द्र को श्वेत पुष्पाक्षत से आवाहनार्चन बंदना करें ।

ॐ इमंदेवाऽअसपत्न ठंसुवध्वम्महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्यायमहतेजानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।। इममहममुष्य पुत्रममुष्यैपुत्रमस्यैविशएषवोमीराजोसोमोस्माकम्ब्राह्मणानाठंराजा ।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमुना तीरे देशोद्भव आत्रेय सगोत्र चन्द्र इहा गच्छतिष्ठ । ॐ चन्द्राय नमः ।। पीठ के दक्षिणाभिमुख भौम को भी रक्त पुष्पाक्षत से आवाहनार्चन करें ।

ॐ अग्निर्मूर्द्धादिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपाठंरेताठंसि जिन्वति ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अवन्ति देशोद्भव भारद्वाज सगोत्र भौम इहागच्छ इहतिष्ठ । ॐ भौमाय नमः ।। ईशान कोण में उत्तराभिमुख बुध को पीत पुष्पाक्षतों से आवाहनार्चन वन्दना करें ।

ॐ उद्बुध्यस्वाग्नेप्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सठंसृजेथामयंच अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवायजमानश्च सीदत ।

ॐ भूर्भुवः स्वः मगध देशोद्भव आत्रेय सगोत्र बुध इहागच्छ इहतिष्ठ । ॐ बुधाय नमः ।। उत्तर मण्डल में उत्तराभिमुख वृहस्पति को पीत पुष्पाक्षत से आवाहनार्चन वन्दना करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ बृहस्पतिर्नः परि पातुपश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सिन्धु देशोद्भव आङ्गिरसगोत्र बृहस्पते इहागच्छ इहतिष्ठ। ॐ बृहस्पतये नमः॥

पूर्व में प्राङ्मुख शुक्र को शुक्ल पुष्पाक्षत से आवाहनार्चन वन्दना करें।

ॐ अन्नात्परिस्रुतोरसं ब्रह्मणाव्यपिबत्क्षत्रम्पयऽ सोमंप्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानंऽ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्प योमृतम्मधु। ॐ भूर्भुवः स्वः भोजकटदेशोद्भव-भार्गवसगोत्र शुक्र इहागच्छ इहतिष्ठ। ॐ शुक्राय नमः।

पश्चिम में पश्चिमाभिमुख शनि को कृष्णपुष्पाक्षत से आवाहनार्चन वन्दना करें।

ॐ शन्नोदेवीरभिष्टय आपोभवन्तुपीतये शंय्योरभिस्रवन्तुनः॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सौराष्ट्र देशोद्भव काश्यप सगोत्र शनैश्चर इहागच्छेहतिष्ठ।

नैर्ऋत्य में दक्षिणाभिमुख राहु को कृष्ण पुष्पाक्षत से आवाहनार्चन वन्दना करें।

ॐ कयानश्चित्रऽआभुवदूती सदावृधः सखा। कयाशचिष्ठयावृता॥ ॐ भूर्भुवः स्वः राठिन देशोद्भव पैठीनसगोत्र राहो इहागच्छ इहतिष्ठ। ॐ राहवे नमः।

वायव्य में दक्षिणाभिमुख केतु को धूम्र पुष्पाक्षत से आवाहनार्चन वन्दना करें।

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्याऽअपेशसे समुषद्भिर जायथाः। ॐ भूर्भुवः स्वः अन्तर्वेदिदेशोद्भव पैठीन सगोत्र केतो इहागच्छ इहतिष्ठ। ॐ केतवे नमः॥

अधिदेवताओं का आवाहनार्चन वन्दना निम्न मन्त्रों से करें।

ॐ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुतरुद्रंहवामहे॥१॥ प्रातर्जितंभगमुग्रंहवामहे वयं पुत्रमदितेर्योविधर्ता आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह॥२॥ सर्वेअधिदेवते इहागच्छ इहतिष्ठ।

अधिदेवताओं का आवाहनार्चना वन्दना करें।

प्रार्थना—ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानु शशीभूमि सुतो बुधश्च। गुरुश्चशुक्रश्शनि-राहु केतव सर्वेग्रहा शान्तिकराभवन्तु। ॐ अधिदेवताभ्यो नमः। ॐ शिवो गौरी तथा स्कन्दो विष्णु ब्रह्मा पुरन्दरः। यमकालश्चित्रगुप्तश्चाधि देवाइमे स्मृताः॥ ॐ प्रत्यधिदेवताभ्यो नमः। ॐ अग्निरापो मही विष्णुरिन्द्ररिन्द्राणिका तथा। प्रजापतिर्भुजङ्गश्च ब्रह्माप्रत्यधिदेवताः॥ ॐ गणादि पञ्च लोक पालेभ्यो नमः॥ ॐ विनायकस्तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च॥ अश्विनौ चैव पचैता ल्लोकपालान्नमाम्यहम्॥ ॐ इन्द्रादि दशदिक्पालेभ्यो नमः॥ ॐ इन्द्रोवह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणोमरुत्। कुबेर ईशो ब्रह्मा च अनन्तश्च दिगीश्वराः॥ दशदिक्पालानावाहयामि स्थापयामि नमः॥

(पाद्यादि से पूजन करा करे)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो, ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे। विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तो महा संकटे ॥
रुद्रो येन कपाल पाणि पुट के भिक्षाटनं कारिता। सूर्योभ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥

अनया पूजया सांङ्गा सपरिवाराः सूर्यादय नवग्रहाः प्रीयन्तां नमः ॥

वसोर्धारा पूजन—

ॐ व्वसोः पवित्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ॥ देवस्त्वा सविता-पुनात व्वसोः पवित्रेणशतधारेणसुप्वा कामधुक्षः ॥

यजमान पत्नी शाखा पर तेल चढ़ायें।

श्री र्लक्ष्मीघृतिर्मेधाश्रद्धा प्रज्ञा सरस्वती। घृतेन पूजिता स्सर्वा सप्तैता घृतमातरः ॥
वसोर्धारे महामाये चामुण्डे मुण्ड मालिनी। शीघ्रं माम् वरंदेहि परांगतिं नमोऽस्तुते ॥

अथ विनायक पूजनम्

मातृका पूजन में सर्व प्रथम षट् विनायकों का पूजन अनिवार्य होने से लिखा जाता है।

स्थापना—इनकी स्थापना गेहूं आदि अन्नों को हल्दी में रञ्जित कर करनी चाहिये।

नाम—**मोदश्चैव प्रमोदश्च सुमुखोदुर्मुखस्तथा अविघ्न कर्त्ता च षडेते विघ्नविनायकाः।**

ॐ मोदायः नमः मोदं आवाहयामि।१। ॐ प्रमोदाय० प्रमोदमा।२। ॐ सुमुखाय। सुमुखम्।३। ॐ दुमुखाय, दुर्मुखमा।४। ॐ अविघ्नाय अविघ्नमा०।५। ॐ विघ्नकर्त्रे, विघ्नकर्तारमावाहयायि।६। इत्यावाह्य मनोजूति, प्रतिष्ठाप्य ॐ मोदादिषड्विनायकेभ्यो नमः। इति नाम मन्त्रेण षोडशोपचारैः सम्पूजयेत्। अनया पूजया मोदादिषड्विनायकाः प्रीयन्ताम्।

॥ अथ मातृका पूजनम् ॥

तत्पश्चात् सिनिवाली देवता, (७।४८), कुहू देवता (७।४९) राका देवता (७।५०) देवपत्न्यः (७।५१) आकूतिः (१९।४) के पूजन विशेष रूप से करें।

"सिनीवालीदेवी" का आवाहन पूजन वन्दना करें।

सिनीवालिपृथुष्टुकेयादेवानामसिस्वसा। जुषस्वहव्यमाहुतं प्रजांदेविदिदिड्ढिनः ॥१

कुहूंदेवीं कृतंविद्मनापसमस्मिन्यज्ञेसुहवा जोहवीमि।
सानोरयिं विश्ववारंनियच्छाद्ददातुवीरंशतदायमुक्थ्यऽम् ॥१॥

इससे "कुहूदेवी" का आवाहन, अर्चन वन्दना करें। तदनन्तर राका का उसके उपरान्त समस्त देव पत्नियों का आवाहन अर्चन वन्दना करें।

राकामहंसुहवांसुष्टुतीहुवेशृणोतु नः सुभगा बोधतुत्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यऽम् ॥१॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"देवपत्न्यः" देवानां पत्नीरुशतीरवन्तुनः प्रावन्तुनस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासोया अपामपि व्रतेतानोदेवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ॥१॥
उतग्न्या व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनीराट् ।
आरोदसी वरुणानीशृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥२॥

इससे "आकूतिदेवी" का आवाहन, अर्चन, वन्दना करें ।

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां तएतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतुहव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥

ॐ इमा ब्रह्मसरस्वती जुषस्ववाजिनीवती । यातेमन्मगृत्समदाऋतावरिप्रियादेवेषुजुह्वति ॥

हे अन्न बलशालिनी, सत्यपरायणा "सरस्वतीदेवी" ! निरभिमानी उपासक देवों को प्रिय लगने वाले, जिन स्तोत्रों को तेरे लिये समर्पित करते हैं, उन इन स्तोत्रों को सुनने की कृपा कर।

ॐ द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्यदिविस्पृशम् । यज्ञंदेवेषुयच्छताम् ॥

द्यु और पृथिवी दोनों ही देवियाँ, आज सुख के साधक और आकाश को छूने वाले हमारे इस यज्ञ को देवो तक पहुँचायें ।

ॐ आवामुपस्थमद्रुहादेवाः सीदयन्तुयज्ञियाः इहाद्यसोमपीतये ।

हे द्रोह न करने वाली "द्यु" और "पृथिवी" दोनों ही देवियों आज यज्ञ में सोम पीने के लिये पूजा के योग्य तुम्हारे पास ही आकर विराजें ।

प्रेतांयज्ञस्यशंभुवायुवामिदावृणीमहे । अग्निश्च हव्यवाहनम् ॥

हे कल्याणकारिणी द्यावा और पृथिवी देवियो ! हम तुम दोनों और हवि को ले जाने वाले "अग्नि" की प्रार्थना एवं कामना करते हैं, आप दोनों ही अग्नि के साथ हमारे इस यज्ञ में पधारिये । आवाहन पाद्यार्घ्यार्चन कर प्रार्थना करें ।

अनुमति का पूजन करें ।

तत्पश्चात्पुत्रवती वृद्धा जो पवित्र वस्त्रादि धारण किये हों आरती करें ।

ॐ अन्वद्यनो ऽनुमतिर्यज्ञं देवेषुमन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतांदाशुषेमम ॥

विश्वकर्मा का पूजन करें ।

ॐ ये भक्षयन्तो नवसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद्विश्वकर्मा ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजयाजया । देवसेना स्वधास्वाहा मातरोलोकमातरः ॥१॥
हृष्टिः पुष्टिस्तथातुष्टिरात्मनः कुलदेवताः । गणेशेनाधिका ह्येताः वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥२॥

ॐ गणेशाय नमः गणेशमावाहयामि ।१। ॐ गौर्य्ये नमः गौरीमावाहयामि ।२। ॐ पद्मायै नमः पद्मामावाहयामि ।३। ॐ शच्यैनमः शचीमावाहयामि ।४। ॐ मेंधायै नमः मेंधाम् ।५। ॐ सावित्र्यै नमः सावित्रीम् ।६। ॐ स्वधायै नमः स्वधाम ।१०। ॐ स्वाहायै नमः स्वाहाम ।११। ॐ मातृभ्योनमः मातृरावा० ।१२। ॐ लोकमातृभ्योनमः लोकमातृरावा ।१३। ॐ हृष्टयैनमः, हृष्टिम् ।१४। ॐ पुष्ट्यैनमः, पुष्टिम् ।१५। ॐ तुष्ट्यैनमः, तुष्टिम् ।१६। ॐ कुलदेवतायै नमः कुलदेवतामावाहयामि ।१७। इस प्रकार आवाहन कर पूजन करें । मन्त्र—

तत्पश्चात् इन आवाहितमातृकाओं के पास दीवाल या पट्ठे पर घी और कुंकुम से दक्षिण से उत्तर सात, पांच या तीन धारायें छोड़ें मन्त्र—

अथ घृतमातृकानामानि

ॐ श्रीश्च लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती ॥ माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः ॥२॥

श्रियैं नमः श्रियमावाहयामि ।१। ॐ लक्ष्म्यें नमः लक्ष्मीमा० ।२। ॐ धृत्यै० धृति ।३। मेधायै मेधामा० ।४। ॐ पुष्टयै० पुष्टिमा० ।५। ॐ श्रद्धायै श्रद्धामा० ।६। ॐ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीमावाहयामि ।७। ॐ घृतमातृकाभ्यो नमः इतिषोड शोपचारैः पूजयेत् ॥

वहीं पर चावल पिण्डों में स्थल मातृकाओं का पूजन करें । नाम—

अथस्थलमातरः

"ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः ॥"

ॐ ब्राह्म्यै नमः ब्राह्मीमावाहयामि ।१। ॐ माहेश्वर्यै० माहेश्वरीमा० ।२। ॐ कौमार्यै० कौमारीमा० ।३। ॐ वैष्णव्यै० वैष्णवीमा० ।४। ॐ वाराह्यै नमः वाराहीमा० ।५। ॐ इन्द्राण्यै० इन्द्राणीमा० ।६। ॐ चामुण्डायै नमः चामुण्डामावाहयामि । इत्यावाह्य ॐ ब्राह्म्यादि सप्तमातृकाभ्यो नमः इति नाम मन्त्रेणाषोडशोपचारैं पूजयेत् ।

अथ सांकल्पितनान्दीश्राद्धप्रयोग—तत्रादौ, आचम्य, प्राणनायम्य, देशकालौ संकीर्त्य, अद्यामुक मंत्र पुरश्चरणं कर्माङ्गत्वेन सांकल्पिक विधिना ब्राह्मणयुग्म भोजनपर्याप्तायानिष्क्रयी भूत यथा शक्ति हिरण्येन नान्दी श्राद्धं करिष्ये । इति संकल्प्य १ । ततः पाद्यादि दानाम् । सत्य वसु संज्ञकाःविश्वेदेवाः नान्दी मुखा, ओ३म् भूभुवः स्वः इदंवः पाद्य पादावनेजनं पाद प्रक्षालनं स्वाहाः संपद्यतां वृद्धिः ।२। अमुक गोत्राः पितृ पितामहप्रतितामहाः नान्दीमुखाः ओ३म् भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पाद प्रक्षालनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धि ।३। (द्वितीय गोत्राः) मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दी मुखाः ओ३म् भूभुर्वः स्वः इदं वः पाद्यं पाद प्रक्षालनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।४।

१ पूर्व अध्याय में वर्णित ऋचा १८।४-५१, ५२, १८।३।४५, ४६, ६८, ६९ से कुशादि में प्रेतात्मा का आवाहन प्राण प्रतिष्ठा कां० १८।४।८१ से ८८ तक आवाहित पितरों का उपस्थान करें ।

संलग्न आथर्वण ऋचाओं की प्रयोगविधि—ऋचा (कां ३ सू० २१ ऋचा ७) दिवेपृथिवीम्" से दक्षिण ऋचा अग्नि अर्थात् श्मशान अग्नि, चाण्डाल अग्नि की प्रार्थना करे ।

ऋचा (७।३-१।२) "अयाविष्टा" से होम देश को अभिमन्त्रित करें । ऋचा (१३।२-१) "उदस्य केतव" से पित्रेंष्टि कर्त्तागण पूर्वाभिमुख होकर बैठें । ऋचा क्रमशः (१८।१-५१ ५२, १८-३-४५, ४६, ६८, ६९ से पितृगण का आवाहन कुशाओं में, करके प्राण प्रतिष्ठा करे, (यह भस्मी, अस्थी या अर्थी में भी किया जाता है)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋचा (१८।३-४१, १८।४-७१, १८।४-७२, १८।४-७३) में दक्षिणाग्नि उपरोक्त के सहयोग से प्रतिष्ठित अग्नि में पूर्वाऽभिमुख होकर हवन करें। यजमान दक्षिण को अग्निघ्र, (ब्रह्मा) अग्नि के पूर्व को बैठें।

ऋचा (१८।४-७२) से कुशा फैलाकर परिक्रमा दे। ऋचा १८।४-५२ से प्रेतात्मा को तिलादि पुरोडाशदे।

ऋचा १८-४-५६, ५७ से प्रेत दाह में काष्ट अनुमन्त्रित कर दे। ऋचा १८-४-५८, ५९, ६१, ६२, ६३ तथा ६४ से प्रेतात्मा को अग्नि में आहुतियां दे। ऋचा १८-४:६० से यम को आहुति दे।

ऋचा १८-४-६१, ६२, ६३, ६४, ३५ ये उत्थापनी ऋचायें हैं इन्हीं से प्रेत को उठाकर शकट (अर्थी पर रखें इन्हीं से सोये अर्थ धन (भाग्य) का उत्थापन होता है। ये उत्थापनी ऋचाये, अर्थोत्थापन कर्म में भी विहित है, इनसे घट को अभिमन्त्रितकर उठायें। ऋचा २-३५-१ से माहेन्द्र का उपस्थापन, आवाहनादि करे। ऋचा (७।९२(८-७)-१) "यो अग्नौ" से त्रैयम्बक पुरोडाश (पिण्डदान) अनुमंत्रित कर प्रेतात्मा को दें।

प्रेतात्माओं के आवाहनार्थ ५ कुशायें फैलायें १-विश्वकर्मा २-मातादि ३-पितादि ४- सपत्नीक के मातामहादि ५ अन्य अपमृत्यु प्राप्त पितरों का आवाहन करें।

नन्दी श्राद्ध की अनुभूत, वैज्ञानिक विवेचना। मरणान्त यमदूतों द्वारा ले जाये जाने वाले "अति वाहक" शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत न होने पर, एक वर्ष पर्यन्त, वह अतिवाहक शरीर में, "जीवात्मा" रहकर घोर कष्ट भोगता है। क्षुब्ध होकर, वह प्रेताग्नि, कच्चा मास खाने वाली अर्थात् गर्भरक्षक, गर्भनाशक, कुमार युवाओ. की असामयिक मृत्यु पर मृत्युओं का लगातार तांता बाँधे रहती है। रोदन के अश्रुपात ठण्डे नहीं होने देती। विधवाओं, बन्ध्याओं राजयक्ष्मादि व्याधियों का अगाधत पाने वाला सामुदायिक केन्द्र गना देती है। उसका तथा मरणकालीन जीवात्मा की "वासना" वस्तु विशेष में जाने से, उसकी पूर्ति न हो सकने से वह भी सूक्ष्म शरीर (वासना देह) में तड़फनों से संतप्त रहती है। उसकी पूर्ति के अभाव में, भोग समाप्ति पर वह फट जाता है अर्थात् मृत्यु हो जाती है, यह शरीर तथा अतिवाहक शरीर समाप्त होकर सूक्ष्म शरीर में पहुँचती हैं। जघन्यकर्मी सूक्ष्म आत्मायें नारकीय यातनाओं से संतप्त लोकों में क्लेश भोगती रहती है। इनकी चर्चा प्रथम अध्याय में है।

इन विविध प्रकार से क्षुब्ध, घोर नारकीय दारुण दुःखों से संतप्त आत्मायें जो प्रायः दोष या अवसर पाकर अपनी मुक्ति, सुकृत योनि; सुकृत लोकों की प्राप्ति हेतु प्रायः प्राणियों को अविर्भूत करते रहते हैं, इनका वर्णन "रक्षघ्नेष्टि" में पढ़ें। नान्दी श्राद्ध प्रत्येक शान्ति कार्य में अनिवार्य समझें। नान्दी श्राद्ध में विश्वेदेवा' ऋषिगण, दिव्य और लौकिक पितृश्वरों की सन्तुष्टि प्रसन्नता हेतु, पत्तल आदि के पृथक-पृथक अर्थात् १. विश्वदेव और ऋषिगण, २. मातादि ३. पितादि, ४. मातृमहादिसपन्नीक का एवं प्रेतात्मा उपर्युक्त स्वकुलानुगत अथवा आविर्भूत करने वाली क्षुब्ध, अतृप्त आत्माओं का ५ वीं पत्तल पर सभी पर कुश (दर्भ) बिछाकर, आवाहन, प्राण प्रतिष्ठा, अर्चना वन्दना करना चाहिए। मांगलिक कार्यो के समारम्भ में करने से कुलागत जनन, मरणशौचादि सहसा आगत विघ्नों से प्रारम्भित सङ्कल्पित यज्ञ कर्मों में बाधक नहीं होते। वैसे श्राद्ध विधियाँ वेदों में, पार्वण, मासिक, वार्षिक आदि पितृमेध में बतलाई गई हैं। यहाँ उनसे हमारा सम्बन्ध नहीं है। उपर्युक्त पत्तलों पर फैलाई दामों में की गई प्राण प्रतिष्ठा, के उपरान्त उन क्षुब्ध आत्माओं के पाप, शाप, अभिचारादि के निवाराणार्थ 'अंहोलिङ्गगण' विधि से, अभिमन्त्रित जल से, मार्जन करें। उनसे पाप निवारण कर उन के सुकृत लोक प्राप्ति विधि करें। अर्थोत्थापन गण विधि करके, अर्थोत्थापिनी ऋचाओं से, इन पूर्व प्राण प्रतिष्ठित कुशाओं और पुष्पादि अर्चित सामिग्री को उठाकर एक कोरे मिट्टी के पात्र में भर लें, उसे मूँज या दर्भ की रस्सियों से बनायें झींके पर रखकर ग्राम से बाहर जंगल के पीपल पर लटकायें। शान्ति यज्ञ समापनान्त, या प्रेतात्मा की मृत्यु तिथि यदि ज्ञात हो तो उस तिथि में, अन्यथा कृष्ण पक्ष द्वादशी, अन्यथा अमावस्या के दिन गंगाजी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में या जगन्नाथ पुरी में पवित्रता से अर्थात् मलमूत्रादि के हाथ स्वच्छ कर पात्र को विश्राम स्थान में भी वृक्ष पर ही लटका कर और वहीं से पुनः उठाकर ले जावें गंगाजी के तीर भूमि जल से पवित्र कर रक्खें। स्वयं जल से मार्जन कर गंगा रज से प्रथम शिर, तदनन्तर नाभि पर्यन्त का प्रदेश दायें हाथ से गंगारज मलकर शुद्ध करें। अधोभाग में वाम हस्त से मलें। गंगा या तीर्थ के अधिष्ठात्री देव की प्रार्थना कर, नाभिमात्र जल में गोता लगाकर, उस घट को ले जाकर, गोते लगाते हुए प्रवाहित करें, शरीर न मलें, तौलिया से शरीर शुष्क भी न करें। तर्पण कर सूर्यार्घ्य दें, प्रेतात्माओं के कल्याणार्थ श्राद्धदेव, नारायण का उपस्थान करें तो उनको चिरशान्ती और सुकृतलोक प्राप्त हो जाता है यज्ञीय दीप में १४ वर्ष तक वालों को सभी आवाहितों के दर्शन होते हैं। इन प्रेतात्माओं को भी शान्तियाँ मिलती हैं, इनके उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। यह अनेकों स्थलों पर कर्त्ताओं को अनुभव हुए भी हैं। मानव शरीर की अर्थी में लगने वाले बाँस अथवा भस्मी भूत फूल, या दाह संस्कार का काष्ठ लें उनमें मृतात्मा की प्राण प्रतिष्ठा कर, श्राद्ध भोजी पंडित आदि को बिना उनको कुछ बतलाये उन्हें देदें। उनसे कहें अन्त्येष्टि कर्मनिवारक भोज के संकल्प हो जाने पर, पत्तलों पर भक्ष्य श्राद्धीय पदार्थ आ जाने पर वे अपने आसनों के नीचे "उसे जो दिया गया है" रख लें। गोग्रास, बलि द्रव्य के उपरान्त वह मृतात्मा सभी की पत्तलों से, पृथक-पृथक पदार्थ लेकर सूक्ष्म रूप में होते हुए भी खाती दिखलाई उन्हें, उसी रूप में दृष्टिगोचर होती है, जो मरणासन्न अवस्था थी। यह भी अनेकों ने अनुभव किया है। ये सभी इन पितृमेध मन्त्रों से नान्दीश्राद्ध में करें। यही क्रिया नष्ट द्रव्य (प्रेत धन) के ऊपर से प्रेत की मुक्ति और अर्थप्रप्ति हेतु की जाती है।

वैतान श्रौत सूत्र देखें—ऋचा ७।६-१ से ४ चरु होम का विधान है।

अस्य काँ २ सू० ३५ मन्त्र१-५ अंगिराऋषिः। विश्वकर्मा देवता। त्रिष्टुप्१ वृहतीगर्भाः ४५भुरिक, छन्दासि उपर्युक्त प्रयोजनेषु विनियोगः।

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद्विश्वकर्मा ॥१॥

अस्य काँ० (७, ६-७) मं० १-४ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः)। अदितिः। त्रिष्टुप् अदिति; आवाहने अर्चने उपस्थाने ब्रह्मवर्चसे होमें च विनियोगः।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वेदेवा अदिति पञ्चजना अदिति र्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१॥

इन दोनों सूक्तों से सव्य होकर इन दोनों (विश्वदेवा) विश्वकर्मा व अदिति का पूर्वाभिमुख होकर आवाहन पूजन नान्दी मुख श्राद्ध में करना चाहिये। सभी पितृश्चरों का दक्षिणाभिमुख अपसव्य होकर आवाहन करें।

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्।
यथापरु तन्वं१ संभरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि॥
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः। तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती॥
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंच्छुक्र आततः । सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥१८।४।६१
आ यांत पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभिनः सचध्वम् ॥
परायात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यांत नो गृहान्हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥
यद्वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयँ जातवेदाः ।
तद्व एतत्पुनराप्यायायामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥
अभूद्दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥

नान्दी श्राद्ध में संकल्प के उपरान्त प्रेत आत्माओं का कुशा या भस्मी या अस्थि या पिण्डों में आवाहन करें। प्रेतों (पितरों का) आवाहन अपसव्य होकर वायें घुटने को मोड़कर दक्षिणाभिमुख होकर करें। कां० १८ सू० १ ऋ० ५१-५२, सू० ३ ऋ० ४४-४५-४६ तथा ६८ आवाहन में वैतान सूत्रानुसार हैं।

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आगता वसा शंतमेनाधानः शंयोररपो दधात ॥
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभिगृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥५२
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥
उपहूतानः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येऽषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्न्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽऽवन्त्वस्मान् ॥४५
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥४६
अपूपापिहितान्कुम्भान्यांस्ते देवा अधारयन् । ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥६८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥८
प्रच्यवस्व तन्वं१सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥

इनसे आवाहन करें । उत्थापिनी ऋचाओं से उत्थापन करें ।

का॰ १८।४।५२ से आवाहित प्रेतात्माओं को तिल दूध कच्चा द्राक्षा, गन्धादि तिल आदि दान करें ।

प्रधान देवता के प्राणप्रतिष्ठा प्रकरण की विधि से इनकी भी प्राणप्रतिष्ठा कर लें ।

अथासनदानम्—सत्यवसुसंज्ञकाना विश्वेषां देवानां नान्दी मुखानाम् ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा नमः संपद्यतां वृद्धिः नान्दी श्राद्धेक्षणो क्रियेताम् । ॐ तथा प्राप्नुर्ता भवंतो प्राप्नुवावः ।२। अमुक गोत्राणाँ मातृ पितामही प्रपितामहीनाँ नान्दी मुखीनाम् ॐ भूर्भुवः स्व; इदमासनं सुखासनं स्वाहा नमः संपद्यतां वृद्धिः नान्दीश्राद्धेक्षणौ क्रियेताम् । ॐ तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवावः ।२। अमुक गोत्राणाँ पितृपितामह प्रपितामहानाँ नान्दीमुखानाम् ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा नमः संपद्यतां वृद्धिः नान्दीश्राद्ध॰ ।३। द्वितीय गोत्राणां मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामहानां सपत्नीकानां नान्दीमुखानां ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः नान्दीश्राद्धेक्षणौ क्रियेताम् ।४।

ततोगन्धादिदानम्—सत्य वसु संज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः इदं गंधाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ।१। अमुक गोत्राभ्यो मातृ पितामही प्रपिताभहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ।२। अमुक गोत्रेभ्यः पितृ पितामह प्रपिता महेभ्यो । नान्दी मुखेभ्यः इदं गन्धाद्यर्चन स्वाहा सँपद्यता वृध्दि ।३। द्वितीय गोत्रेभ्यो मातामह प्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धि ॥४॥

ततोभोजन निष्क्रय द्रव्यदानम्—सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दी मुखेभ्यो ब्राह्मण युग्म भोजन पर्याप्तमन्नं तन्निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यं दत्तमभृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ।१। अमुक गोत्राभ्यो मातृ पितामहो प्रपिता महीभ्यो नान्दी मुखीभ्यो ब्राह्मण युग्म॰ ।२। अमुक गोत्रेभ्यः पितृ पितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दी मुखेभ्यो ब्राह्मण युग्म भोजन पर्याप्तमन्नं तन्निष्क्रयी॰ ।३। द्वितीय गोत्रेभ्यो मातामह प्रमातामह वृद्ध प्रमाता महेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो ब्राह्मण युग्म॰ ।४।

सक्षीरसुदकदानम्—सत्य वसु संज्ञका विश्वेदेवाः नान्दीमुखा॰ प्रीयन्ताम् । अमुक गोत्राः मातृ पितामह प्रपितामह्यः प्रीयन्ताम् । पितृपितामह प्रपितामहाः सपत्नीका प्रीयताम् द्वितीय गोत्राः मातामह प्रमातामहः वृद्ध प्रभातामह सपत्नीका प्रीयताम् ।

अथाशिषो ग्रहणम्—गोत्रन्नोवर्द्धताम् (वर्द्धतां वो गोत्रम्) दातारानोऽभिवर्धन्ताम् (अभिवर्द्धन्तांवोदातार) वेदाश्चनोऽभिवर्धन्ताम् (वर्धन्तां वो वेदाः) सन्ततिर्नो वर्द्धतां (वर्द्धतां वः संततिः) श्रद्धा च नो माव्यगमत् (माव्यगमद्वः श्रद्धा) बहुदेयं चनोऽस्तु (अस्तुवोवहुदेयम्) अन्नं चनो बहुभवेत् (भवतु वो बह्वन्नम्) अतिथिश्च लभामहे (लभन्तां वोऽतिथयः) याचितारश्चनः सन्तु (सन्तु वो याचितारः) एता आशिषाः सत्याः सन्तु (सन्त्वेता सत्याशिषः) ।

इन्हीं ऋचाओं से दर्भ की इण्डली में दर्भ की रस्सियाँ बना छींके की भाँति घट को रख, पत्र, पुष्प, कच्चा दूध, मधु, घृत, तिल, आँवले, मुनक्का, मखाने अदरक उसमें छोड़ें । यदि उस प्रेतात्मा की कोई भोग सामिग्री वस्त्र, अन्नादि की कामना हो, मय विशेष विधि से संङ्कल्प के पूर्ण करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. २ सू. ३५ ऋचा १ पूर्वोल्लिखित से माहेन्द्र का उपस्थान करें।

प्रेतात्माओं का सुकृतलोक--कां १२ सू० २ भृगुऋषि । अग्नि, मन्त्रोक्ता, मृत्युर्देवते जगती छन्द । दिव्य पितृश्वराणां, लौकिकानां पितृश्वराणा मुपस्थाने, प्रेतत्वापन्ना नाँसुकृत लोक प्राप्तये कैवल्यादि मुक्तये जपे, होमे उपस्थाने च विनियोग ।

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याऽणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तराश्रितः ।
जीवानामायुः प्रतिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ॥
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ।
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥

कां १२ सु० २ ऋचा ४५ भृगुः । ऋषि, मृत्यु देवता । जगती छन्द असद्गतिप्राप्तानां प्रेतत्वापन्नानां सुकृत लोकाऽऽवाप्तयें उपस्थाने विनियोग ।

जीवानामायुः प्रतिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥

इनसे प्राण प्रतिष्ठा करें । और वासना देह में इधर उधर भटके मन को यथावस्थित लाने और उसके उद्धारार्थ मंत्र से अनुमंत्रित करें ।

कां १८ सु ४ रि० ८१ से ८८ तक के उपरोक्त आवाहित पितरों का कुछ रुष्ट अधोगति प्राप्त आत्माओं का उपस्थान करें ।

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ।
नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥
नमो वः पितरो यद्घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत्क्रूरं तस्मै ॥
नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत्स्योनं तस्मै ॥८४
नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥८५
येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्माँस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥८६
य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः । अस्माँस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥८७
आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध सा ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८८

शेष पुर्वोल्लिखित हैं । ये ८ रिचायें ८१-८८ अतिवृष्टि, अनावृष्टि में वरुण होम में भी विहित है । प्राण प्रतिष्ठा अंहोलिंगगण के कां. ५ सू. ३० ऋ. १३-१४-१५ तथा मेधाजनन में दिये कां. ६ सू. ५३ ऋ. १, २, ३ तथा कां ७-१३-४ से करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यजन की पूर्णाहुति के उपरान्त घट को जंगल के पीपल पर लटका दें उनकी विशेष तिथि यदि कोई हो तो उसको, अन्यथा अमावस्या को उसे यजमान गङ्गादि पावन तीर्थ में पवित्रता से लेजाकर पहिले तीर्थ से अलग स्नान करें, भीगे वस्त्रों से ही तीर्थ का पूजन आवाहन, आचामन, रज-मस्तिष्क पर धारण कर तीर्थस्थ देवता से स्नान व पितृगणों के कल्याण की प्रार्थना संकल्प करें। पुनः तीर्थ में प्रथम स्वयं गोता लगायें परन्तु देह न मलें तत्पश्चात् घट को साथ ले जाकर अपने साथ दक्षिणाभिमुख हो स्नान करें, करायें और नाभिमात्र जल में विसर्जन करें, तर्पण, सूर्यार्घ्य सूर्योपस्थान कर शुष्क वस्त्र धारण करें। तीर्थ में साबुन न लगायें, वस्त्र भी न निचोड़ें। इस प्रकार कौशिक सूत्र तथा वैतान सूत्रों में श्रौत स्मार्त विधि शौनकीय शाखा अथर्ववेद में निहित हैं।

प्रायः मृत आत्मायें अभिभूत रोगी के शरीर में प्रविष्ट हो, उपद्रव करती है, कर्त्तागण पूर्वोक्त शान्ति जल से तथा (पीली सरसों, देशी शक्कर, शमी (छोंकरा, जाटी) के पत्र अपामार्ग व सहदेवी के चूर्ण से मिश्रित) से रक्षोहण गण से, छींटे देकर स्तम्भन करें ताकि वे न जा सकें और उपद्रव न कर पायें। उन्हें (भैंसागूगल, राल लोहबान व उपरोक्त सामिग्री से मिश्रित धूनी दे। यदि वे बौखलायें तो घबरायें नहीं अपनी क्रिया करते रहें।

इस विशेष से विधि नान्दी श्राद्ध के साथ रोगी के तथा प्रेतात्मा के कल्याणार्थ करें। पूर्णतया अनुभूत है, संशय का कोई कारण शेष नहीं।

ये मन्त्र पुण्याहवाचन नान्दी श्राद्ध दक्षिणा व समस्त दान कार्यों में स्थूल सूक्ष्म, वासनादेहों के कल्याणार्थ विनियोग करें।

उपरोक्त दक्षिणादि, दान संकल्प :—करके यजमान दान करें (वैतान सूत्र) ॐ प्रजापते र्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वान् अक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वामामेक्षेष्ठाः अमुत्राऽमुष्मिल्लोक इह च प्राणां पानो मेपाहि समान व्यानो मेपाहि उदान रूपे मेपाहि; ऊर्ग असि ऊर्जं मे धेहि, कुर्वतो मे माक्षेष्ठा ददतो मे मोपदस, प्रजापतेरहं त्वया समक्षम ऋध्या सम् । (गो० ब्रा० २।१।७) दक्षिणादि दाता तथा प्रतिगृहीता लेते समय जपें :—यह समस्त यज्ञ कर्म में करने से उभय पक्ष का कल्याण होना सम्भव है।

ॐ क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ॥
कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते ॥ अ. कां. ३ सू. २९ ऋ. ७ व ८ व कां. १९ सू. ५२
ॐ भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८
ॐ कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२
ॐ दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ कामेन मा काम आगन्हृदयाद्धृदयं परि । यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥४

ॐ यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।

तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५

ॐ यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।

यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।

यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोतासुहुतं कृणोतु ॥२

यदन्नमग्न्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।

वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥३

ॐ पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।

पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥

दक्षिणादानम्——सत्य वसु संज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दी मुखेभ्यः कृतस्य नान्दी श्राद्धस्य फल प्रतिष्ठा सिद्धयर्थं द्राक्षामलक यवमूल निष्क्रयी भूतां दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे संपद्यतां वृद्धिः ।१। [यव मूलमार्द्रम्] अमुक गोत्रेभ्यो पितृ पितामही प्रपितामहीभ्यो नान्दी मुखीभ्यः कृतस्य० ।२। अमुक गोत्रेभ्य पितृ पितामह प्रपिता महेभ्यो नान्दी मुखेभ्यः कृतस्य ।३। द्वितीय गोत्रेभ्यो मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दी मुखेभ्य कृतस्य ।।४।। ततो नांदी श्राद्ध संपन्नमिति पठित्वा ॥ ॐ व्वाजेव्वाजे ।१। आमावाजस्य २ इति मन्त्र द्वये न विसर्जयेत् । अस्मि न्नादी श्राद्धे न्यून-मतिरिक्तोयो विधिः स उपविष्टः व्राह्मणानां वचनात् नान्दी मुख प्रसादात्सर्वाः परिपूर्णास्तु [अस्तुपरिपूर्णः] इति नान्दी श्राद्धम् ।

कां. १९ सू. ४ "यामाहुति" (१९।४) इन तीन ऋचाओं से मानसिक-वाचिक-कायिक समस्त अभीष्ट तथा जन्मान्तरीय ज्ञान फल प्राप्ति हेतु जप, उपस्थास-होम करें ।

१-४ अथर्वाङ्गिराः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पञ्चपदाविराडति जगती, २ जगति ।

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।

तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतुहव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥१॥

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।

यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि । अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥३॥

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।

यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसके साथ "यज्ञस्यचक्षुः (१६।५६), "अग्नावाग्नि" (४।३६-६) ॥ हृदापूतं" ४-३६-१०) "पुरस्ताद्युक्तः" (५।२६-१) यज्ञारम्भ में आज्य होमार्थ विहित हैं। मन्त्र के "जूतिः:" केपर्यायी:—मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः सकल्प क्रतुरसुः कामोवश" हैं ये सब दिव्य के ही नाम हैं। प्राण की साधना जो प्राण विद्या में आगे हैं, के साथ इन से मानसिक यज्ञ ध्यान के साथ करने से आध्यात्मिक परमतत्व ज्ञान की उपलब्धि होती है। चित्त की स्थिरता और इन्द्रियों का निग्रह स्वतरां होने लगता है। चित्त समाधिस्थ होता है। हृदय और अथर्वा का शिर" सहस्त्रारचक्र" एक करते हुए, सूर्य "आज्ञा" चक्र पर दृष्टि अन्तर्हित कर, पद्मासन पर बैठे। प्राण विद्या की उपलब्धि के साथ यह "सजीवनी विद्या" का अभिन्न अनिवार्य अङ्ग है।

कां० १६ सू० ५८ ब्रह्मा ऋषिः। यज्ञ। बहवोदेवताश्च। त्रिष्टुप्। २ पुरोऽनुष्टुप। ३ चतुष्पदाति शाक्वरी ५ भुरिक्। छन्दांसि ब्रह्मयज्ञे अग्नौ प्रथम, यज्ञात्पूर्व आज्य होमे विनियोगः पञ्चेध्मदान से पूर्व की विधि में ग्राह्य है।

घृतस्य जूतिः समना सदेवासंवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नोनो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१
उपास्मान्प्राणो ह्वयतामुप वयंप्राणं हवामहे।
वर्चो जग्राह पृथिव्य ऽन्तरिक्षंवर्चः सोमो वृहस्पतिर्विधत्ता ॥२
वर्चसोद्यावा पृथिवीसंग्रहणी वभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनुसंचरेम।
यशसंगावो गोपतिमुपतिष्ठन्त्यायतीर्यशोगृहीत्वापृथिवीमनुसंचरेम ॥३
व्रजंकृणुध्वंसहिवोनृपाणो वर्मासीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्व मायसीरधृष्टामावः सुस्रोच्चमसोदृंहतातम् ॥४
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं चवाचाश्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणादेवायन्तु सुमनस्यमानाः ॥५
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञियायेभ्यो हव्यं क्रियतेभागधेयम्।
इमं यज्ञं सहपत्नीभिरेत्ययावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६

कां १६ सू० ४२ ब्रह्मा ऋषि। ब्रह्म देवता। अनुष्टुप्। २ त्र्यवसानाककुम्मति पथ्यापङ्क्तिः ३ त्रिष्टुप्। ४ जगती छन्दांसि पापमोचनं ब्रह्मयज्ञे ब्रह्म अनुमन्त्रणे यज्ञोपस्थाने विनियोगः। एवञ्चहव्यादाने इन्द्रस्तवने विनियोगः।

ब्रह्महोता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः। अध्वर्यु ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीब्रह्मणा वेदिरुद्धिता।
ब्रह्मयज्ञस्यतत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः शमिताय स्वाहा ॥२
अंहोमुचेप्रभरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः।
इदमिन्द्र प्रतिहव्यं गृभायसत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तंप्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवेधियंइन्द्रियेणंत इन्द्रियंदत्तमोजः ।।४

अहोमुचादि से यज्ञ में हविग्रहण करने को इन्द्रदेव से प्रार्थना करें ।

रक्षोहण मन्त्र—

ॐ रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिद महन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेद महन्तं व्वलगमुत्किरामि यम्मे समानोनिचखानेद महन्तं व्वलगमुत्किरामि यम्मे स वंधुर्यममवंधुर्नि च खानेद महन्तं व्वलगमुत्किरामि यम्मे सजातोयम संजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ।।१।। रक्षोहणो वो व्वलगहनः प्रोक्षामिवैष्णवात्र'क्षोहणो वोव्वलगहनो वंनयामि वैष्णवात्र'क्षोहणो वोवल गहनो वंस्तृणामि वैष्णवात्र'क्षो हणो वां वलगहनाऽउ पंदधामि वैष्णवीं रक्षोहणौ वां वल गहनौपर्यूहामि वैष्णवमसिवैष्णवास्थ ।।२।। रक्षसांभागोसि निरस्तठं, रक्षऽइदमहठं, रक्षोभितिष्ठामीदमहठं, रक्षोववाधऽइदमहठं, रक्षोधमन्त मोनयामि । घृतेनंद्यावा पृथिवी प्रोर्णु वाथां व्वायोव्वेस्तोका नामाग्निराज्यंस्य वेतुस्वाहा स्वाहा कृतेऽऊर्ध्वं नभसम्मारुतं गच्छतम् । रक्षोहा विश्व चर्षणिरभि योनि मयोहते ।। द्रोणं सधस्थ मासदत् ।।४।।

किसी भी अनुष्ठान से ३ दिन पूर्व क्षौरादि बनवाकर शुद्ध हो लें । जप या होम स्थान की चारों ही दशाओं में क्रमशः १।१ बालिश्त लम्बी, पीपल, गूलर, पिलखुल वट की मेखें "ॐ नमः सुदर्शनायास्त्रायफट् । इस मन्त्र से १०८ वार अभिमन्त्रित करें पूजा करके, इस मंत्र को पढ़ें ।

ॐ ये चात्र विघ्न कर्त्तारो भुवि दिव्यन्तरिक्षगाः । विघ्नभूताश्च ये चान्ये ममंमन्त्रस्य सिद्धिषु ।।१।।
मयैतत्कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरतः । अपसर्पन्तुते सर्वे निर्विघ्नं सिद्धिरस्तुमे ।।२।।

इन्हें पढ़ कर मेखों को चारों दशाओं में पूर्वादि क्रम से गाड दें । उन्हीं पर "ॐ सुदर्शनायास्त्रायफट्" इस मन्त्र से अस्त्रों की पूजा करें । और वहीं पूर्वादि क्रम से पांचों लोकपालों का आवाहन पूजन करें । जप स्थान के बीच श्रीगणेशाम्बिका का आवाहन पूजन करें, कूर्म अनन्त, पृथ्वी, क्षेत्रपाल, वास्तुपुरुष, तथा व्राह्मणों का पूजन करें । दिक्पालों, क्षेत्रपाल वास्तु, गणपति को उड़द की दाल, सिन्दूरादि सहित बलि देकर बाहर भूत बलि दें । मन्त्र—

ॐ ये रौद्रा रौद्र कर्माणो रौद्रस्थान निवासिनः । मातरोऽप्युग्ररूपाश्च गणाधिपतयश्च ये ।१।
विघ्न भूताश्च ये चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः । ते सर्वे प्रीतमनस प्रति ग्रहणन्त्विममंबलिम् ।२।

पूजन के पूर्वाङ्ग—तान्त्रिक रक्षा सरसों लेकर दिग्रक्षा पूर्ववत् करें ।

ॐ अपसर्पन्तु तेभूता ये भूताभुवि संस्थिताः ये भूताविघ्न कर्त्तारस्तेगच्छन्तुशिवाज्ञया ।१
अपः क्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् । सर्वेषामवरोधेन पूजा कर्म समारभे ।।२।।

(भूमि को छूते हुए दिग्बन्धन करें ।)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ सूर्यः सोमोयम कालसन्ध्येभूतान्यहक्षपा ।
पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचरामरा । ब्राह्म्यशाशसनमास्थाय कल्पध्वमिहसन्निधिम् ॥

अथ प्रधानदेव आवाहन पूजनविधानम्—उपर्युक्त घट की स्थापना व पूजा के उपरान्त यदि सर्वतोभद्रवेदी अथवा लिङ्गतो भद्र पीठ न हो तो उसी पर श्वेत वस्त्र फैलाकर उसके ऊपर गन्ध से श्री लक्ष्मीनारायण या जो भी अपने अभीष्ट देवता हों, उनके लिये अष्ट दलकमल, गन्ध और अनार की लेखनी से बना लें। उसके बीच पुष्प तुलसीदल रखकर उसके ऊपर स्वर्णमयी देवमूर्तिया यन्त्र या शालिग्राममूर्ति जो भी सम्भव हो अग्न्युत्तारणपूर्वक स्थापित करें और पूजन करें।

ॐ हिरण्यवर्णामितिपञ्च दशर्चस्य श्री सूक्तस्य श्री आनन्द, कर्दमचिक्लीतेन्दिरासुता महर्षयः ।
श्रीराग्निर्देवता, आद्यस्तिस्रोऽनुष्टुभः चतुर्थी वृहत्ती, पञ्चमी षष्ठ्यौ त्रिष्टुभौ, ततोऽष्टावनुष्टुभः ॥

अन्त्या प्रस्तार पंक्तिः हिरण्य वर्णामितिवीजम्, ताम्मावह जातवेदेतिशक्तिः ।
कीर्तिमृद्धिददातु मे इति कीलकम् । मम श्रीमहालक्ष्मीप्रसाद सिद्धचर्थेन्यासे जपे (पाठे) होम च विनियोगः ।

इस सूक्त का विल्व वृक्ष के नीचे नियमित निर्द्धारित काल में नियत आसन पर, नियत आसन से १०८ पाठ नित्य ४१ दिन करें। दशांश होम, कमल पुष्प, कमलगट्टा, विल्वफल, पत्र, रक्त चन्दन, तिलों से होम करें। इससे आर्थिक, स्वास्थ्य, व्यावसायिक, औद्योगिक, वाणिज्यादि द्वारा अभिलषित कामनाओं की सफलता निश्चय होती हैं, अन्नपूर्णा अक्षय होती है।

देवोभूत्वा देवंयजेत् ॥ इस श्रुति के आदेशानुसार प्राणप्रतिष्ठा या पूजा से पूर्व अङ्ग न्यास करें पश्चात् प्राणप्रतिष्ठा अग्न्युत्तारण करें। पहिले पुरुष सूक्त से न्यास करें; तत्पश्चात श्रीसूक्त, रुद्रसूक्त आदि से करें। इसी प्रकार देवमूर्ति से फूल लगाकर देवमूर्ति में भी इन्हीं से न्यास करें। यहाँ उदाहरणार्थ क्रिया में श्रीसूक्त से न्यास दिया जाता है। अन्य देवों के उनके मन्त्रों से न्यास करें।

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥१॥ शिरसि ।
ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मी मनपगामिनीम् ।
यस्यांहिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषा नहम् ॥२॥ शिखायाम्
ॐ अश्वपूर्णां (वां) रथमध्यां हस्तिनाद प्रमोदिनीम् ॥
श्रियं देवी मुपह्वये श्रीर्मादेवीजुषताम् ॥३॥ कर्णयोः ॥
ॐ कांसोस्मितां हिरन्यप्राकारांमार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ॥
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहो पह्वये श्रियम् ॥४॥ घ्राणयो ॥
ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ॥
पद्मनेमीं (की) शरणमहंप्रपद्ये अलक्ष्मीर्मेनश्यतां त्वां वृणे ॥५॥ मुखे ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ आदित्यवर्णे तपसोधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोथबिल्व ।।

तस्य फलानितपसानुदन्तु मायान्तरायाश्चवाह्याअलक्ष्मीः ।।६।। ग्रीवायां ।।

ॐ उपैतुमाँ देवसखः कीर्तिश्चमणिनासह ।

प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेस्मिन् - कीर्तिमृद्धिंददातुमे ।।७।। करयोः ।।

ॐ क्षुत्पिपासाममलाँ ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।

अभूतिमसम्मृद्धिं च सर्वान्निर्णुदमेगृहात् ।। हृदि ।।८।।

ॐ गन्धद्वाराँ दुराधर्षां नित्यपुष्टाँ करीषिणीम् ।

ईश्वरीं सर्वभूतानाँ तामिहोपह्वयेश्रियम् ।।९।। नाभौ ।

ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।

पशूनाँरूपमन्नस्यमयिश्रीः श्रयताँयशः ।।१०।। लिङ्गे ।

ॐ कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभव कर्दम ।

श्रियँ वासयमेकुलेमातरंपद्ममालिनीम् ।।११।। गुदे ।

ॐ आपः स्त्रजन्तुस्निग्धानि चिक्लीत वसमेगृहे ।

निचदेवीं मातरंश्रियँ वासयमे कुले ।।१२।। ऊर्वोः ।

ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलाँपद्ममालिनीम् ।

चन्द्राँहिरण्मयीं लक्ष्मींजातवेदो ममावह ।।१३।। जानुनोः ।

ॐ आर्द्रां यस्करिणींयष्टींसुवर्णां हेममालिनीम् ।

सूर्यांहिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मआवह ।।१४।। जघयोः ।

ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।

यस्याँ हिरण्यंप्रभूतिंगावोदास्योश्वान् विन्देयंपुरुषानहम् ।।१५।। चरणयोः ।

यः शुचिः प्रयतोभूत्वा जुहुयादा ज्यमन्वहम् । सूक्तँ पञ्च दशर्चं च श्रीकामः सततंजपेत् ।।१६

इस प्रकार न्यास करके आचार्य और यजमान—देशकालौसंकीर्त्य । अस्या सुवर्णमयी श्रीलक्ष्मी उद्दान्यदेवताया ॐ प्रतिमायाः (यंत्रस्यवा) घटनादि दोषपरिहारार्थ अग्न्युत्तारणपूर्वकं प्राणप्रतिष्ठां करिष्ये ।।

अग्न्युत्तारणम्—स्वर्णादि की मूर्ति या यन्त्र जो भाये उसे पास में रखकर घी से उबटन करके दूध व जल की धारा उस पर छोड़ें और नीचे लिखे मन्त्र पढ़ें । इससे पूर्व दिग्रक्षा व स्थान रक्षार्थ रक्षोघ्न सूक्त अथर्व वेद तथा ऋग्वेद पढ़ें और यव कुशा, दूर्वा सरसों, चावल, गोमय, दही, कालीमिर्च, कुशा और दक्षिणा जल तामे के पात्र में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डालकर पहिले इसे अभिमन्त्रित करें। तब दूब तथा कुशा से उस जल से पूर्वादि क्रम (परिक्रमा क्रम) से यज्ञ मण्डप तथा समस्तभूमि याज्ञिक आदि को छींटे दें। सरसों को भी उसी भाँति छिड़कें (विकिरेत्)।

तदन्तर पञ्च गव्य मिलायें सभी सामिग्री को छिड़कें। वारुणमन्त्र से कर्म भूमि को छीटे दें। (हिंरण्यवर्णादि मन्त्र) हैं। जो पीछे दिये हैं उनके पाठ के साथ लक्ष्मी या नारायणादि मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करें।

अथ अग्न्युत्तारण मन्त्राः—

समुद्रस्य त्वाव्वक याग्ने परिव्ययामसि। पावको ऽअस्मभ्यंठं शिवोभव ॥१॥
हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि। पावको ऽअस्मभ्यंठं शिवोभव ॥२॥
अपामिदं न्ययनंठं. समुद्रस्य निवेशनम्।
अन्याँस्तेऽ अस्मत्त पन्तुहेतयं ÷ पावकोऽ अस्मभ्यंठं. शिवोभव ॥३॥
नमस्ते हरसेशोचिषे नमस्तेऽ अस्त्वर्च्चिषे।
अन्याँस्तेऽ अस्मत्तपन्तु हेतयं ÷ पावकोऽस्मभ्यंठं. शिवोभव ॥४
ॐ अग्ने पावक रोचिषामन्द्रया देवजिह्वया। आदेवान्वक्षियक्षिच ॥५॥
ॐ सनः पावक दीदिवोग्ने देवाँ२ ऽइहावह। उपयज्ञंठं हविश्चनः ॥६॥
ॐ पावक यायश्चितयन्त्वा कृपाक्षामन् रुरुच ऽउषसोनुभानुना।
तूर्वन्नया मन्नेतशस्य नूरण ऽआपोघृणेन ततृषाणो ऽअजरः ॥७॥
ॐ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽअस्तवर्चिषे।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तुहेतयः पावको अस्मभ्यंठं शिवोभव ॥८॥
ॐ नृषद्देवेडत्सुषदेव्वेड् वर्हिषदेव्वेड् वनसदेव्वेड् स्वर्विदेव्वेट् ॥९॥
ये देवा देवानांयज्ञिया यज्ञिया ठं संवत्सरीणमुपभागमासते।
अहुतादोहविषोयज्ञे ऽअस्मिन्तस्वयं पिवन्तु मधुनो घृतस्य ॥१०॥
ॐ ये देवा देवेष्वधि देवत्वमा यन्ये ब्रह्मणः पुर एतारो ऽअस्य।
येभ्योनऽऋते पवतेधाम किञ्चन नतेदिवोन पृथिव्याऽ अधिस्नुषु ॥११॥
ॐ प्राणदा अपानदा व्यानदा व्वर्चोदा व्वरिवोदाः।
अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यंठं शिवोभव ॥१२॥

प्राण प्रतिष्ठा—ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं हं सः सोहम् अस्याः श्री (अमुकदेव) प्रति माया: प्राणा इह प्राणाः ॥ ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं ह सः सोहं अस्याः श्री (अमुकदेव) प्रतिमायाः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीव इहस्थितः ।। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं हं सः सोहं अस्याः श्री (अमुक देवादि) प्रतिमायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक् चक्षुः श्रोत्र जिह्वाघ्राण पाणि पाद पायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।।

कां० ५ सू० ३० ऋचा १३, १४, १५ उन्मोचन ऋषिः । आयुष्कामो देवता १३, १५ अनुष्टुप; १४ विराट प्रस्तार पंक्तिः कुशा, अस्थि, शरीरादिषु प्रतिमायाञ्च पुनः प्राण, मन, इन्द्रियगण, बल, जीवादि आमन्त्रणे विनियोगः ।

ऐतुं प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलंम् । शरीरमस्य सं विदां तत्पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ।।१३।।

प्राणेनांग्ने चक्षुंषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३सं बलेन ।

वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ।।१४।।

मा तें प्राण उपं दसन्मो अपानोऽपिं धायि ते ।

सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायंच्छतु रश्मिभिः ।।१५।।

पुनं प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।

वैश्वानरो नो अदंब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ।।६।५३।२

सं वर्चसा पयंसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेनं ।

त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनुं नो मार्ष्टु तन्वो३ यद्विरिष्टम् ।।६।५३।३

इनसे प्राण प्रतिष्ठा करें, और वासना देह में इधर उधर भटके मन को यथावस्थित लाने और उसके उद्धारार्थ मन्त्र से अनुमन्त्रित करें । परन्तु देव प्रतिमा में इसे न करें । कुशादि में ही "यद्वोमन" करें ।

यद्वो मनः परांगतं यद्बद्धमिह वेह वां । तद्व आवर्तयामसि मयिं वो रमतां मनंः ।।७।१३।४

ततः देव प्रतिमा को पंचामृतेन संस्नात्य ।

ॐ मनों जूति र्जुषतामाज्यस्य० । प्रतिठाप्य ॐ गौर्य्यादिषोडशं मातृकाभ्योनमः नाममात्रेणषोडशोपचारै सम्पूजयेत् ।।

ॐ एष वै प्रतिष्ठान्नामयज्ञो यत्रै तेन यज्ञेन यजन्तं सर्वमेवप्रतिंष्ठितंम्भवतु ।

इति प्रतिष्ठाप्यः । **नेत्रोन्मीलनम्**—ॐ वृत्रस्यासि कनींन कश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मेदेहि ।

गन्धादि पंचोपचारान्दत्वा संस्कार सिद्धये षोडश प्रणवावृत्ति कुर्यात् अनेन अस्याः श्री (अमुक देव) प्रतिमायाः गर्भाधानादि षोडश संस्कारान् सम्पादयामि ।। एवं वदेत् ।। पुनः न्यासंविधाय कलशं शंख घंटे च सम्पूज्य देवं ध्यायन् घंटा नादं कृत्वा पूजां कुर्यात् ।

अथ प्रधान देवतां पूजन तथा न्यास मन्त्राणि

ये पुरुष सूक्त तथा श्री सूक्त मन्त्र, न्यास, प्राण प्रतिष्ठा और प्रधान देव पूजा में प्रयोग करें । पुरुष सूक्त श्रुति, स्मृति और वेदत्रयी में प्रनिपादित है । अथर्व कां १९।६ के इस सूक्त और ऋग्वेद के श्री सूक्त "हिरण्य वर्णाम्" अथर्व कां० १० सूक्त ८ ज्येष्ठ ब्रह्म के ७ अथर्व कां १७ मं० ७ में वर्णित उच्छिष्ट ब्रह्म (प्रजापति); जो अथर्व कां ८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सू० ९ में वर्णित एक ही उपास्य देव तथा अथर्व कां १० सू० ७ में वर्णित सर्वाधार, सर्वस्रष्टा, भर्त्ता और हर्त्ता भिन्न में भी अभिन्न, ज्ञान चेतन स्वरूप हैं। इन दोनों की १।१ ऋचा का जप १।१ ऋचा से होम, अर्पित पुष्पाँजलि ज्येष्ठ ब्रह्म नारायण को प्रीतकर है। समस्त कामना प्रद है। इससे निष्पाप महा पातक का दुखदारिद्रय, संकटो का नाश, शाप अभिचारादि जनित अनिष्ट निवारण होता है। अस्वत्थ या विल्वमूल में गंगादि पावन क्षेत्र में इनका पाठ, होमादि करें। जो दिव्य गुरु द्वारा वेद मन्त्रादि दीक्षा (एक लव्य) की भांति चाहें वे १०८ पाठ उपर्युक्त भाँति से उपर्युक्त पावन क्षेत्र में व्रत लेकर सुनायें। पाठ पूर्ण करें, नित्य पीपल की एक एक कोपल अभिमन्त्रित कर खायें तो उनको दीक्षा फल उपलब्ध होता है। अश्वमेध प्रजापत्य तथा ग्रह शान्ति में आदि नारायण का जप होम इसी से करें। पुत्रेष्टि में भी विहित है।

ॐ सहस्त्र शीर्षा पूरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । सभूमिर्ठ. सर्व्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥१

श्री नारायणंमावाहयामि। (अनन्तर आसन के लिए पुष्प हाथ में लेकर)

ॐ पुरुषऽएवेदर्ठ सर्वंयद्भूतं यच्चंभाव्यम् । उतामृतत्व स्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२

इत्यासनम् समर्पयामि। पाद्य के लिये जल में, श्यामाक, विष्णु क्रान्ता, कमल पुष्प, दूर्वा, जल आदि मिलाकर लें।

ॐ एता वानस्य महिमा, तोज्यायाँ श्चपूरुषः ।

पादोस्य व्विश्वा भूतानि त्रिपाद स्यामृतन्दिवि ॥३॥ इति पाद्यम् ।

अथ अर्घ्यम्—अर्घ्य के लिये दूर्वा, तिल, दर्भ, सरसों, जौ, चावल, चन्दन, जल में डालें तब अर्पण करें।

ॐ त्रिपादूर्ध्वऽ उदैत्पुरुषः पादोस्ये हाभवत्पुनः ।

ततो व्विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽ अभि ॥४॥

ॐ ततो व्विराड जायत व्विराजोऽ अधिपूरुषः ।

सजातोऽ अत्यरिच्य तपश्चाद्भूमि मथोपुरः ॥५॥

मलापकर्षण स्नानम्—

ॐ तस्मा द्यज्ञात्स व्वंहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ।

पशूँस्ताँश्चक्रे व्वायव्यां नारण्याग्ग्राम्याश्चये ॥६॥

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्त रिक्षेपयोधाः ।

पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् । पयः स्नानम् ततोशुद्धोदक स्ना० ।

ॐ दधिक्राव्णो ऽअकारिषं जिष्णो रश्वस्य व्वाजिनः ।

सुरभि नो मुखा करत् प्रणऽआयूᳪषितारिषत् । दधिस्नानम्—ततोशुद्धोदक० ॐ घृतं घृत पावानः पिवतव्वसां वसापावानः पिवतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऽआदिशोविदिशं ऽउदिशोदिग्भ्यः स्वाहा ॥ घृतस्ना० ततोशु० स्ना० ॐ मधुव्वाता ऽऋतायतेमधुक्षरन्तिसिन्धवः माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः ॥

ॐ मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवᳬ रजः । मधुद्यौरस्तुनः पिता । मधुस्ना० । शु० स्ना० ॐ अपाᳬरस मुद्वयसᳬ सूर्ये सन्तᳬ. समाहितम् । अपाᳬरसस्ययो रसस्तं व्वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतो सीन्द्रायत्वा जुष्टं गृह्णाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टत मम् । शर्करास्ना० ततोशुद्धो० ।

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवानोदूर्वेप्रतनुसहस्रेणशतेन च । सुगन्धित तैल स्ना०, ततोशु० स्ना० ।

पंचामृत स्नान । गन्ध (चन्दन) स्नान ।

ॐ अᳬ० शुनातेऽअᳬ० शुः पृच्यताम्परुषापरुः । गन्धस्तेसोममवतुमदायरसोऽअच्युतः ॥

सुगन्धित (उवटन) स्नान । श्रीसूक्त पुरुषसूक्त रुद्रसूक्तों से शंख में से जल छोड़कर महाभिषेक करें ।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतऽऋचः सामानिजज्ञिरे ।
छन्दाᳬसिजज्ञिरे तस्माद्यजु स्तस्मादजायत ॥७॥

वस्त्रयुग्मं समर्पयापि ततो आचमनम् ।

ॐ तस्मादश्वाऽअजायन्त येकेचोभयादतः । गावोहजज्ञिरे तस्मात्तस्मा ज्जाताऽअ जावयः ॥८

यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

ॐ तंय्यज्ञं बर्हिषिप्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः । तेन देवाऽअयजन्तसाध्याऽऋषयश्चये ॥९॥

चन्दनं समर्पयामि ।

ॐ अक्षन्नमीमदन्तह्यव प्रियाऽअधूषत ।
अस्तोषतस्वभानवोविप्रानविष्ठयामती योजान्विन्द्रते हरी ॥

अक्षतान् समर्पयामि ।

हरिद्रा रञ्जितो देव? सुख सौभाग्य दायकः । तस्मात्वां पूजयाम्यत्र दुःखशान्ति प्रयच्छ मे ॥ हरिद्रा चूर्ण समर्पयामि । कुंकुमं कान्तिदं दिव्यं कामिनी काम सम्भवम् । कुंकुमेनार्चितो देव प्रसीद परमेश्वर ॥ कुंकुमं समर्पयामि । सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुम सन्निभम् । पूजितोऽसि मया देव प्रसीद परमेश्वर ?॥ सिन्दूरं समर्पयामि । चक्षुर्भ्यां कज्जलं रम्यं सुभग ? शान्ति कारकः । कर्पूर ज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वर ॥ कज्जलं समर्पयामि ।

दूर्वांकुरान् समर्पयामि ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः।
श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च नमो घृष्णवे ॥

अनेन तुलसीदलानि, विल्व पत्राणि च समर्पयामि।

ॐ अश्वत्थेवो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज ऽइत्किलासथ यत्सनवथपूरुषम् ॥

ॐ याः फलिनीर्या ऽअफला ऽअपुष्पायाश्च पुष्पिणीः। बृहस्पति प्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥

फल मालां समर्पयामि।

ॐ परित्वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानिदाशुषे ॥

रत्नमालां समर्पयामि,

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुम्मं ऽइषाण सर्व्वं लोकम्मं इषाण ॥ पुष्प माला सं० ॥

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यं कल्पयन्। मुखङ्किमस्यासीत्किम् वाहू किमूरूपादाऽउच्येते ॥१०

पुष्पाणि समर्पयामि। सुगन्ध द्रवं समर्पयामि।

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳशूद्रोऽअजायत ॥११॥

ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योस्मान्धूर्वति तं धूर्वयं वयंधूर्वामः।
देवानामसि वन्हितमꣳ सस्नितमं पप्रितमञ्जुष्टतमन्देव हूतमम् ॥

धूपं आघ्रापयामि।

ॐ चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षोः सूर्योऽजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥

ॐ अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योति ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्च्चो
ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्योवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥

दीपं दर्शयामि। दीपक जलायें और अक्षत छोड़कर घंटा बजायें।

ॐ नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णोद्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्याम्भूमिर्दिशःश्रोत्रात्तथालोकाँ २ ऽअकल्पयन ॥१३॥

आदौनैवेद्य जलेनाभ्युक्ष्य, गन्धपुष्प तुलसीदलादिभिराच्छाद्य। धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य। योनिमुद्रां प्रदर्श्य। सत्यन्त्वर्तेन परिषिंश्चामि प्रातः (सायं) ऋतं त्वा सत्येनपरिषिंश्चामि ॥ घंटां वादयेत् ॥ ग्रास मुद्रां प्रदर्श्य। ॐ प्राणाय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वाहा (अंगुष्ठ अनामिका कनिष्ठाभिः) । ॐ अपानाय स्वाहा (अंगुष्ट तर्जनी मध्यमाभि) । ॐ उदानाय स्वाहा (अंगुष्ठ तर्जनी मध्यमानामिकाभिः) । ॐ समानाय स्वाहा (सर्वाङ्गुलिभिः) । नैवेद्यं निवेदयामि नमः मध्ये-मध्ये आचमनीयं समर्पयामि नमः उत्तरापोषणार्थेपुनर्नैवेद्यं निवेदयामि नमः । पुनराचमनीयं समर्पयामि नमः ।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवायज्ञमतन्वत । व्वसन्तोस्यासीदाज्ज्यङ्ग्रीष्मइध्मः शरद्धविः ॥१४॥

आचमनम् समर्पयापि नमः ।

करोद्वर्तनकं ईश? सुगन्धैः परिवासितैः । ईप्सितंमेवरं देहि परत्र चपरांङ्गतिम् । करोद्वर्तनम् समर्पयामि नमः । हस्त प्रक्षालनार्थे जलम् । गन्धतोय समानीतं सुवर्ण कलशे स्थितम् । हस्त प्रक्षालनार्थाय पानीयं ते निवेदये ।

ॐ याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पायाश्चपुष्पिणीः । बृहस्पतिं प्रसूतास्ता नोमुञ्चन्त्वᳫंहसः ॥

ऋतु फलानि समर्पयामि नमः ।

ॐ सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ।

देवायद्यज्ञन्तन्वानाऽअबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥१५॥

ताम्बूल पुंगीफलानि समर्पयामि नमः ।

ॐ हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् ।

सदाधार पृथिवींद्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥

स्वर्णमयीं दक्षिणां समर्पयामि नमः ।

ॐ यज्ञेनयज्ञमयजन्त देवास्तानिधर्म्माणिप्प्रथमान्न्यासन् ।

तेहनाकम्महिमानः सचन्त यत्रपूर्वेसाध्याः सन्ति देवाः ॥

साष्टांग प्रणामः ।

नीराजनम्—घृत की वर्ति व कर्पूर से आरती पात्र में रखकर गन्ध पुष्प से पूजन कर खड़े होकर आरती करें और घंटे वजते रहें मंत्र—

ॐ आरात्रि पार्थिवᳫं रजः पितुरं प्रायिधामभिः ।

दिवः सदाᳫंसिबृहतीवितिष्ठसऽआत्वेषं वर्तते तमः ॥

मन्त्र पुष्पाञ्जलिः—ॐ राजाधिराजायप्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे समे कामान्काम कामाय मह्यं । कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु कुवेरायवैश्रवणाय राजाधिराजाय महाराजाय नमः । ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायीस्याद् सार्वभौमः सार्वायुषः आन्तादापरार्धात् । पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति । तदप्येषश्लोकोभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्या वसन्गृहे । आवीक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखो विश्वतो वाहुरुत विश्व तस्पात् ।
सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥

सेवन्तिका वकुल चम्पकपाटलाब्जैः । पुन्नागजाति करवीर रसाल पुष्पै । विल्वप्रवाल तुलसीदल मञ्जरीभिः त्वां पूजयामि जगदीश्वर ? मे प्रसीद । मंत्र पुष्पांजलिं समर्पयामि नमः ।

ध्यानम् नमस्कारः—

ॐ अद्भ्य÷ सम्भृतः पृथिव्यैरसाच्चविश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१॥
ॐ व्वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्य वर्णन्तमसः परस्तात् ।
तमेवविदित्वातिमृत्युमेतिनान्न्य÷ पन्थाविद्यतेयनाय ॥२॥
ॐ प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽअन्तरजायमानोवहुधाव्विजायते ।
तस्ययोनिम्परिपश्यन्तिधीरास्तस्मिन्न्हतस्थर्भुवनानि व्विश्वा ॥३॥
ॐ योदेवेभ्यऽआतपतियोदेवानाम्पुरोहितः । पूर्व्वोयोदेवेभ्यो जातो नमोरुचाय ब्राह्मये ॥४॥
रुचम्ब्राह्मञ्जनयन्तो देवाऽअग्रेतदब्रुवन् । यस्त्वैवम्ब्राह्मणो व्विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे ॥५॥
ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्क्न्या वहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणिरूपमश्वि नौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणाम्मुम्म ऽइषाण सर्व्वलोकम्म ऽइषाण ॥

ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय च धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।
ॐ महादेव्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवीप्रचोदयात् ॥

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवायधीमहि । तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् ॥

ॐ महाविष्णवे नमः स्तुति पाठं स० ॥ ततः—

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूवज ॥१॥
नमो हिरण्यगर्भाय प्रधान व्यक्तिरूपिणे । ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञान स्वरूपिणे ॥२॥
देवानां दानवानां चसामान्यमसिदैवतम् । सर्वदाचरणद्वन्द्वं व्रजामिशरणं तव ॥३॥
एकस्त्वमसि लोकस्यस्रष्टा संहारकस्तथा । अध्यक्षश्चानुमन्ता चगुणमाया समावृतः ॥४॥
संसार सागरंघोरमनन्तां क्लेश भाजनम् । त्वमेवशरणं प्राप्य निस्तरन्तिमनीषिणः ॥५॥
न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम् । तथाऽपिपुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे ॥६॥
नैवकिञ्चित्परोक्षं ते प्रत्यक्षोऽसिन कस्यचित् । नैकं किञ्चिदसाध्यंतेन च साध्योऽसिकस्यंचित् ॥७॥
कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम् । योगिनां परमां सिद्धिं.परमं तेपदं विदुः ॥८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अहंभीतोऽस्मिदेवेशसंसारेऽस्मिन्महाभये । त्राहिमांपुण्डरीकाक्षन जाने शरणंपरम् ।।६।।
कालेष्वपि चसर्वेषु दिक्षुसर्वासु चाच्युत । शरीरेऽपिगतौ चापिवर्ततेमेमहद्‌भयम् ।।१०।।
त्वत्पादकमलादन्यन्नमे जन्मान्तरेष्वपि । निमित्तं कुशलस्यास्तियेनगच्छामिसद्‌गतिम् ।।११।।
विज्ञानंयदिदं प्राप्तं यदिदं ज्ञानमर्जितम् । जन्मान्तरेऽपि मेदेवमाभूदस्यपरिक्षयः ।।१२।।
दुर्गतावपि जातायां त्वंगतिस्त्वंमतिर्मम । यदिनाथं चविज्ञेयं तावतास्मि कृती सदा ।।१३।।
आकाम कलुषं चित्तं ममते पादयो स्थितम् । कामये वैष्णवत्वंतुसर्वजन्मसुकेवलम् ।।१४।।
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने । प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ।।१५।।
परिवर्तितेषुकालेषुपरिक्षीणेषुवन्धुषु । त्राहिमां कृपया कृष्णशरणागतवत्सल ? ।।१६।।
कृष्णं नारायणं वन्दे कृष्णं वन्दे वृजप्रियम् । कृष्णं द्वैपायनं वन्दे कृष्णं वन्दे पृथा सुतम् ।।१७।।

आत्मसमर्पणम्

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा, देयं किमस्तिभवते जगदीश्वराय ।
राधा गृहीतमनसेऽमनसे च तुभ्यं, दत्तं मयानिजमनं तदिदं गृहाण ।।१।।
हे कृष्ण ? कृष्ण ? भगवान् ? मम चित्तभृङ्गः, आयाति कदापिभवतश्चरणारविन्दे ।
देहादिसुष्पनिरत कृपया तदानीम्, विक्षस्य से वामनयेन निजपादाब्जम् ।।२।।
संसार सागरान्नाथो पुत्र-मित्र-गृहाकुलात् । गोप्तारौमेयुवामेवप्रपन्नभयमञ्जनौ ।।३।।
योऽहं ममास्तियत्किञ्चिदिहलोकेपरत्र च । तत्सर्वंभवतेरद्य चरणेषु समर्पितम् ।।४।।
अहमस्मि अपराधानामालयस्त्यक्त साधनः । अगतिश्चततो नाथौ भवतामेवमेगति ।।५।।
तवैवा ऽस्मिराधिकाकान्त कर्मणा मनसा गिरा । कृष्णकान्तेतवैवाऽस्मित्वमेवगतिर्मम ।।६।।
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ । प्रसादं कुरुतं दास्यंमयिदुष्टे अपराधिनि ।।७।।
मज्जन्मनोफलमिदं मधुकैटभारे । मत्प्रार्थनीयमदनुग्रहमेषमेव ।
त्वद्‌भृत्य भृत्य परिचारक, भृत्यभृत्यः । भृत्यस्यभृत्यमितिमांस्मर लोकनाथ ? ।।८।।
पापोऽहंपाप कर्माऽहंपापात्मा पापसम्भवः । त्राहिं नां सर्वदा नाथ सर्वपापहरोभव ।।९।।
अनायासेनमरणं विना दैन्येन जीवनम् । देहान्ते तवसान्निध्यं देहिमे जगदीश्वरः ।।१०।।

इस महापुरुष विद्यास्तव तथा शरणागत स्तोत्र से प्रार्थना व आत्मसमर्पण करें ।

प्रदक्षिणा

ॐ यः शुचिः प्रयतोभूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहन् । सूक्तंपञ्चदशर्चश्च श्रीः कामः सततं जपेत् ।।१।।
ॐ ये तीर्थानिप्रचरन्तिसृका हस्ता निसङ्गिणः । तेषाUसहस्रयोजनेवधन्वानि तन्मसि ।।२।।
यानिकानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च । तानि तानि च प्रणस्यन्ति प्रदक्षिणां पदे पदे ।।३।।

तदनन्तर महाप्रभु को साष्टांग प्रणाम करे । मनः, शिर, दृष्टि, वक्ष, वाणी, पैर, हाथ, जानु से युक्त साष्टांग हाथ, पैर, शिर, मन, बुद्धि, युक्त पंचाङ्ग प्रणाम होती है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिक्रमा, देवी की एक, रवि की सात, गणेशजी की तीन, केशव की चार, शिवजी की आधी कही गई है । इस प्रकार भगवान पुरुषोत्तम की पूजा करके सूक्त की प्रत्येक ऋचा से या अन्य मन्त्र से भगवान पापापहा महा विष्णु का तर्पण करे । मन्त्र में जोड़कर तर्पण करे ।

भगवान् पापापहामहा विष्णु स्तृप्यन्ताम् ।।

यज्ञ कर्म में दर्भ (कुश) की अनिवार्यता:—कुश को वैदिक भाषा में दर्भ कहा है । इन दर्भों का विस्तृत विश्लेषण अथर्व कां १९ सूक्त २८, २९, ३० तथा ३२ और ३३ तथा कां १ सूक्त २७ इन ६ सूक्तों में किया गया है । इन कुशाओं का वर्णन (सौपर्णाख्यिान में दिया गया है । ऐ० ब्रा० २५-२८) (शतपथ ३।२।४) में भी उल्लेख किया गया है । कुशाओं का प्राणों से सम्बन्ध है । यज्ञादि समस्त कर्मों में दोनों ही हाथों की अनामिका अङ्गुलियों में प्राण और "अपान" के प्रतिनिधि स्वरूप २ व ३ समूल दर्भों की पवित्री (पैंती) धारण करना अनिवार्य है । शिखा में व्योम के उत्पातों से रक्षा तथा "ब्रह्मरन्ध्र" की चैतन्यता के लिये कुश धारण की जाती हैं । जप काल में वाम हस्त में कुश मुष्टि तथा अधोलोकों के उत्पातों से रक्षार्थ आसन के नीचे कुशा और कुशासन की अनिवार्यता है । ये सभी उत्पातों, भय, संकटों से रक्षा के साथ मन और इन्द्रियों को समाहित करती हैं । इनमे पुण्य सञ्चित रहने से मन समाहित होता है (तै० ब्रा० ३।३।४।४) कुश कण्डिका की अनिवार्यता वर्णित कर रहा है । इस ग्रन्थ में प्रथम अध्याय में उल्लिखित है । याज्ञिकों द्वारा यज्ञ में आवाहन करने पर जब अग्निदेव पदार्पण करते हैं, तब उनका गात्र नग्न होने से, यज्ञ में पदार्पण से भयभीत होकर, कुश परितरण का अभिमत प्रगट करते हैं ।

सहैषयज्ञउवाच नग्नताया वै बिभेमि, का ते नग्नतेति, अभितएव मापरिस्तृणीयुः तस्मादेतदग्निमभितः परिस्तृणन्ति ।।

अग्नि सन्मुखीकरण की अनिवार्यता :—याज्ञिक मन्त्रों द्वारा प्रार्थित अग्निदेव कुश परिस्तरण के उपरान्त अपने अधोमुख से पदार्पण करते हैं । आहुति उस स्थिति में देना अनर्थ का मूल है । इस कारण ब्रह्मा (आचार्य) अपने हाथ में मय दर्भ अक्षतों के जल पात्र लेकर अग्नि परिक्रमा करते हुए प्रार्थना करते हैं, तब सन्मुख (ऊर्ध्वमुख) होकर आहुति ग्रहण करते हैं ।

अग्निदेव का स्वरूप :—आधार होम में केवल आज्याहुतियों का ही प्राविधान है । ये आधार नाम की "दो" आहुतियाँ उत्तर में दी जाती हैं । ये यज्ञों के नासिका के छिद्र हैं । आज्य भाग नाम की २ (दोनों नेत्र) प्राजापत्य नाम की १ (मुख) व्याहृति होम (कटि), पञ्चवारुण होम की, २ हाथ; २ पैर, और १ मस्तिष्क हैं । स्विष्टकृत होम, तथा पूर्णाहुति, ये दोनों अग्निदेव के कर्ण हैं । अग्निदेव के २ मुख, १ हृदय, ४ कर्ण, २ नासिका, २ मस्तिष्क, ६ नेत्र, ७ जिह्वा पिङ्गल वर्ण हैं । वाम भाग में ३, दक्षिणभाग में ४ हस्त हैं । स्रुक, स्रुव, अक्षमाला शक्ति दायें हाथ में हैं । उनके ३ मेखला, २ पैर हैं । हाथ में घृत पात्र लिये हुए हैं । २ चँवर, मेष वाहन, ४ सींग, अरुण कान्ति, यज्ञोपवीत, जटा और कुण्डलों से सुशोभित हैं । ऐसा ध्यान कर आहुतियाँ दें ।

आहुति कहाँ दी जावें :—अग्नि के मुख में ही आहुतियाँ देना अनिवार्य और कल्याण प्रद है । प्रज्वलित अग्नि ही "अग्निदेव" का मुख है । यज्ञ में धुवां (शिर) है । जिसमें धुवां भी न हो, और प्रज्वलित भी न हो, वह अग्नि "नेत्र" है । जो कालिमा लिये हो और जलता हो, वह अग्नि "कर्ण" है । जो केवल काष्ठ में ही जलता हो यज्ञ मध्य में प्रज्वलित न हो, वह अग्नि का "मन" है । प्रज्वलित अग्नि, ही जिह्वा सहित मुख होता है । भेरी वादन की सी मन्द-मन्द गम्भीर स्वर वाली, हस्ति की मध्यम गति वाली, स्वर्णिम वाल सूर्य, केसर के तुल्य शोभन वर्ण की प्रज्वलित अग्नि समस्त कल्याणों की निधि होती है । ऐसी स्थिति में ही आहुति मुख में दें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तरतन्त्र विधि :-पूर्व पीठ में वर्णित, संकल्प, देवऋषि, पितृगणों का आवाहनार्चन, वन्दना, पुण्याहवाचन ब्रह्मा, आचार्य, याज्ञिक और यजमान का वरणार्चन, ग्रन्थिवन्धन के अनन्तर, वेदी अथवा कुण्ड एक या अधिक जैसा लघु या बृहत्कार्य हो, उसके अनुकूल तैयार कर वेदी के पश्चिम दिशा में, यजमान बैठें, शिखा, सूत्र, पवित्री धारण कर, आचमन, प्राणायाम, संकल्पादि करें। आचार्य पञ्चगव्य को अभिमन्त्रित कर स्वयं पान करें और सभी को पान करायें।

याज्ञिक यजमानाचार्य निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर मधुपर्क पान करें। "सोमेन वक्ष्यमाण:" ऐन्द्राग्नम अजुष्टम् "यस्य पिता पितामहाः सोमं न पिबेत्। (गो० ब्रा० २।१।१६) वै० श्रौ० अ० ३ कं० ६ (११ सू० १) ऋत्विजो वृणीते ।।२।। सोमेन "वक्षमाणः ऋत्विजः" ब्रह्माऽऽद्यान् वृणीते। यज्ञकर्म कर्तृतया स्वीकुर्वते वृणीते ऋत्विजः गृहीत मधुपर्कान्। येन सोम" (अ० वे० ६।७-१)।

ॐ येनं॒सोमादि॑तिः प॒थामि॒त्रावा॒यन्त्य॒द्रुहः॑ । तेना॒नोऽव॒साग॑हि ।।१
येनं॒सोमसाह॒न्त्यासु॑रान॒न्धयां॑सिनः । तेना॑ नो॒ अधि॑ वोचत ।।२
येनं॑दे॒वा असु॑राणा॒मोजां॒स्य वृ॑णीध्वम् । तेना॑ नः॒ शर्म॑ यच्छत ।।३

अ० वे० कां० ७ सूक्त २६। वेदा स्वस्ति। दर्शपूर्णमासादि यागेषु दर्भमुष्टि; वेद अनुमन्त्रणे, पवित्री धारणे च विनियोग। इससे दर्भ मुष्टि अनुमन्त्रित करें।

यजमान—आचार्य, अध्वर्यु, याज्ञिकों के देव सन्निधि में, प्रायश्चित्त होने की विधिवत् प्रार्थना करें।

तदनन्तर "वेदा स्वस्ति" पुण्याह वाचन में उल्लिखित मन्त्र से वेदी की परिधि का अनुमन्त्रण कर, वेदी के हवनीय प्रदेश की परिधियों को भी अनुमन्त्रित करें। कां. १२ सू. १ मं. २७।

ॐ यस्यां॑ वृ॒क्षा वा॑नस्प॒त्या ध्रु॒वास्तिष्ठ॑न्ति वि॒श्वहा॑ । पृ॒थि॒वीं॑वि॒श्वधा॑यसं॒धृ॒ताम॒च्छाव॑दामसि ।।

पूर्व भांति से ऋत्विज् ब्रह्मा आदि को वरण कर, याज्ञिकों को और स्वयं भी यजमान मधुपर्क पान करायें और करे। (कौ० सू० ४६।४) याज्ञिक अनुभवी वृद्ध श्रोत्रिय हों अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणम्। सामावदम् उद्गातारम्। ऋग्विदं होतारम् यजुर्विदम् अध्वर्युम् (वै० सू० ख) को ही, या तत्सदृश्य योग्य को वरण करें। इस भांति ब्रह्मा, उद्गाता होता और अध्वर्यु आदि का वरण व मधुपर्क करने के उपरान्त अध्वर्युः ब्रह्माजी से यज्ञारम्भ की प्रार्थना करें कि निम्न भांति के सभी जन्म-जन्मान्तरीय, क्षेत्रीय पाप, शाप, दुख, संकट निवारक यज्ञ प्रारम्भ की आज्ञा शक्ति क्षमता प्रदान करें। यह इस अध्याय के प्रारम्भ में "धर्मस्तपामि" से "निधेतन" तक पढ़ें। उसी क्रम में यह मन्त्र भी प्रायश्चित्त के हैं।

ॐ उभा कवी युवाना सत्यादा धर्मणस्परि। सत्यस्य धर्मणा विसख्या निसृजामहे। वै० श्रौ० अ० ३ कं० १३।२३।१४

इसी के साथ अथर्व कां० ६ सू० ११३ व ११४ से प्रार्थना करें।

ॐ यद्दे॑वादे॒वहेड॑नं॒ देवा॑सश्चकृ॒मावयम् । आदि॑त्त्या॒स्तस्मा॑न्नोयूयमृ॒तस्य॒र्तेन॑ मुञ्चत ।।१
ऋ॒तस्य॒र्तेना॑दित्त्या॒यजं॑त्रामु॒ञ्चते॒हनः॑ । य॒ज्ञंयद्य॑ज्ञवाहसः॒ शिक्ष॑न्तो॒नोप॑शेकि॒म ।।२
मेद॑स्वता॒ यज॑मानाः स्रु॒चाज्यानि॒ जुह्व॑तः । अ॒का॒माविश्वेवोदे॒वाः शिक्ष॑न्तो॒ नोप॑शेकि॒म ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येऽषुममृजे ।
ततो यदि त्वाग्राहिरानशे तां तें देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ (अ० ६।११३-१)
मरीचीर्धूमान्प्रविशानुपाप्मन्नुदारान्गच्छोत वानीहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान्विनश्यभ्रूणघ्नि पूषन्दुरितानिमृक्ष्व ॥२
द्वादशधानिहितं त्रितस्यापमृष्टंमनुष्यैनसानि ।
ततोयदि त्वाग्राहिरानशे तां तें देवाब्रह्मणा नाशयन्तु ॥६।११३-३

ये मन्त्र आहुति, मार्जन, अवभृथस्नान, मन्त्रों के कर्मों में भी विनियोग करें। सर्व प्रायश्चित होम, आदित्यादिग्रह होम, पूर्णाहुति आदि में भी प्रयोग करें। उपरोक्त रीति से ब्रह्मा से अध्वर्युः प्रार्थना करते हुए यह भी जपें। प्रार्थना करें।

ॐ भूर्भुव स्वर्जनदोऽम् । ॐ ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि, तव प्रणय ।

यह ब्रह्मा, अध्वर्युः और यजमान को आदेश दें और जपें।

ॐ यज्ञं देवता वर्धयत्वम् । नाकस्यपृष्ठेस्वर्गेलोकेयजमानोऽस्तु, सप्त ऋषीणां सुकृतां यत्र लोकस्त्रेमं यज्ञं यजमानंधेहि; ॐ भूर्भुव स्वर्जनदो३म् । प्रणय । श्रौ.सू.कं. २।१ कौ.सू.१।१४

तत्पश्चात्पश्चभू संस्कार करे। विशेष आथर्वणी विधि यहाँ दी जाती है, शेष पौराणिकी आगे दी हुई है अपनी परम्पराओं से जो जिस शाखा के गृह्य सूत्रों में हो करें। यह विधि कौशिक गृह्य सूत्र की है। वेदी का जल के पात्र में चावल, जौ, शमीपत्र, पुष्प, चन्दन डालकर उपस्थान करें।

ॐ यस्यामन्नं व्रीहियवौयस्या इमाः पञ्च कृष्टयः । भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तुवर्षमेदसे ।

यज्ञमण्डप के द्वारों का पूजन—कां. ५ सू. १२ ऋ. ५—अङ्गिराऋषिः। जातवेदा देवता। अनुष्टुपछन्द यज्ञमण्डप द्वार अनुमन्त्रणे विनियोग।

व्यचस्वतोरुर्विया विश्रयन्तांपतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्योभवतसुप्रायणाः ॥५

इनसे वेदी के चारों द्वारों का पूजन करें और चारों वेदों और उनके ज्ञाता आथर्वणी, आङ्गिरषी विधिवेत्ता ब्रह्मा, सामवेत्ता (उद्गाता); ऋग्वेत्ता होता और यजुर्वेत्ता अध्वर्यु का भी पूजन करें। आचार्य ये मन्त्र जपें—

ॐ इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौचित्राइमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौयोक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥१९।१३-१ अथर्व
ॐ आशुः शिशानो वृषभोनभीमोघनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिषएकवीरः शतंसेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संक्रन्दनेननिमिषेण जिष्णुना ऽयोध्येन दुच्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वंयुधो नरइषु हस्तेन वृष्णा ॥३
सइषु हस्तैः सनिषङ्गिभिर्वशीसंस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपाबाहुशर्ध्युग्रधन्वाप्रतिं हिताभिरस्ता ॥४
ॐ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजीसहमान उग्रः ।
ॐ अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥५
इमंवीरमनुहर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनुसं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं बज्रबाहु जयन्त मज्मप्रमृणन्त मोजं सा ॥६
अभिगोत्राणि सहसागाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुच्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकंसेना अवतुप्र युत्सु ॥७
बृहस्पते परिदीयारथेन रक्षोहामित्रां अपवाधमानः ।
प्रभञ्जंछत्रून्प्रमृणन्नमित्रानस्माक मेध्यविता तनूनाम् ॥८
इन्द्र एषांनेता बृहस्पतिर्दक्षिणायज्ञः पुरएतुसोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जन्तीनां जयन्तीनांमरुतो यन्तुमध्ये ॥९
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्यराज्ञ आदित्यानांमरुतांशर्धउग्रम् ।
महामनसांभुवनच्यवानांघोषोदेवानां जयतामुदस्थात् ॥१०
अस्माकमिन्द्रः समृतेषुध्वजेष्वस्माकंयाइषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीराउत्तरेभवन्त्वस्मान्देवासोऽवताहवेषु ॥११

तदनन्तर यज्ञ में काम आने वाली सभी कुशाओं को निम्न मन्त्र से अनुमन्त्रित करें—तब उपर्युक्त कार्यों में प्रयोग करें ।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
सनोऽयंदर्भः परिपातुविश्वतो देवोमणिरायुषा संसृजाति नः ॥१९।३३।१

सप्तउपयमन कुशाओं को अनुमन्त्रण कर घी में डुबाकर प्रज्वलित करके स्वआसन पर स्थित रह सव्य (प्रदक्षिणा क्रम से तीन बार वेदी की परिक्रमा कर तूष्णीं अग्नि में छोड़ें ।

प्रादेशमात्र (तर्जनी ओर अंगुष्ठ के बीच की चौड़ाई) की शान्ति पौष्टिक आथर्वणी विधि में ३ और आङ्गिरषी विधि में ५ समिधायें एवं अन्य यज्ञोपयोगी समिधाओं को अनुमन्त्रित इस मन्त्र से करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधायमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहेसनो मुञ्चत्वंहसः ।।४।२३-१

तदनन्तर वेदी को कुशाओं से बुहार कर, उन्हें ईशान दिशा में फेक दें। स्वस्थ गौ का धरती पर गिरने से पूर्व अधर से लिये गोमय से लीपें।

ॐ यस्यामन्नं व्रीहियवौयस्या इमाः पञ्च कृष्टयः । भूम्यैपर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तुवर्षमेदसे ।।

इससे स्रुवा के मूल में ३ अंगुल छोड़कर मौली बांधे, रोली लगायें, तदनन्तर कुशा की मूल से स्रुव मूल, मध्य से मध्य और अन्त से अन्त स्रुवा का स्पर्श करें, जल से छीटें देकर अभिमन्त्रित करें।

ॐ विष्णोर्हस्तोऽसिदक्षिणः पूष्णादत्तो बृहस्पतेः । तंत्वाहंस्रुवमाददेदेवानां हव्य वाहनम् ।।
अयंस्रुवो विदधाति होमाञ्छताक्षर छन्दसा जागतेन ।
सर्वायज्ञस्य समनक्ति विष्टा बार्हस्पत्येष्टिः शर्मणा दैव्येन ।।
ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यांपूष्णोहस्ताभ्यांप्रसूत आरंभे गोमयोदकेन उपलिप्य ।

स्रुव मूल से उत्तर से दक्षिण प्रादेश मात्र की ३ रेखाये खींचें। उसी क्रम से अनामिका और अङ्गुष्ठ से मिट्टी उठाकर, ईशान को फैंकें।

ॐ इन्द्रः सीतां निगृह्णातुतां पूषाभिरक्षतु । सानः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ।।

द्वितीय अध्याय के आरम्भ के मन्त्र "पृथिव्यैश्रोत्राय" से वेदी को छीटे दें वेदी के हवनीय प्रदेश को निम्न मन्त्र से अनुमन्त्रित कर पाषाण रक्खें।

ॐ यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा । पृथिवींविश्वधायसंधृतामच्छावदामसि ।।

उपर्युक्त अभिमन्त्रित कुशाओं में से १६ कुशा लेकर ४।४ के हिसाब से विभक्त करे। पहिली ४ कुशायें पूर्वाग्र क्रम से अग्नि से ईशान पर्यन्त, दूसरी ४ प्रागग्र ब्रह्मा से अग्नि पर्यन्त, तीसरी ४ क्रमशः प्रागग्र नैऋत से वायव्य पर्यन्त और चौथी ४ उसी प्रागग्र क्रम से अग्नि से प्रणीता पर्यन्त ।।परिस्तृणीहि" मन्त्र से फैलाये।

ॐ परिस्तृणीहि परिधेहिवेदिं माजामिमोषीरमुयाशयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्काएते यजमानस्यलोके ।।

तदनन्तर यज्ञ देव का आवाहन करें।

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता सएनान्यक्षीषितोयजीयान् ।।३

आथर्वणी विधि (शान्तिपुष्ठि) में जातवेदाग्नि का आवाहन करें।

इहेत देवीरमृतं वसाना हिरण्यवर्णा अनवद्यरूपाः ।
आपः (१) समुद्रो वरुणश्च राजा संपातभागान्हविषो जुषन्ताम ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्र प्रशिष्टा वरुणप्रसूता अपः समुद्रादिवमुद्वहन्तु ।

इन्द्र प्रशिष्टा वरुणप्रसूता दिवस्पृथिव्याः श्रियमा वहन्तु ॥ इति । कौ. कं. २।३

कांस्यपात्र या स्वनिर्मितमृन्मय पात्र को "पृथिव्यैश्रोत्राय" से मार्जन करके पात्र में अग्नि रखकर, दूसरे पात्र में ढककर आग्नेय की ओर से लाये। यदि अरणियों से उत्पन्न करे तो "प्रथमं जज्ञे" इस से आमन्त्रित करें।

प्रथमं जज्ञे अग्निराभ्यो योनिभ्यो अधिजात वेदाः ।

सगायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यनुष्टुभा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतुप्रजानन्निति जनयित्वा ॥६

यदि मारण उच्चाटन, विद्वेषण, सम्मोहन, स्तम्भन या कृत्यादूषण अथवा संग्राम वाद विवादादि उपद्रव हों तो उनमें "सांग्रामिक" अर्थात् "चाण्डाल" प्रेताग्नि "कच्चा मांस खाने वाली" आवाहन करें। यही वैतानाग्नि कहलाती है। यह श्मशान काष्ठ समिधा, या गृद्ध, उलूकों के नीड़ों, घोंसलों की लकड़ी, वाणों की लकड़ी अथवा ओलों से गिरि समिधाओं में स्थापित करें। इनमें कोई भी हों।

ॐ वाजं अग्ने वाजजितंवाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं संमार्ज्मि ॥ वै. श्रौ. सू. कं. २ सू. १२

अग्निपात्र का मार्जन कर उसमें अग्नि रख कर, दूसरे से ढककर, आग्नेय से लाकर सन्मुख स्थापित कर आवाहन करें।

ॐ पुरीष्योऽसि विश्वभराः । अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ॥१

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥२

त्वमु त्वादध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥३

त्वमु त्वापाथ्यो वृषासमीधेदस्युहन्तमम् । धनं जयंरणेरणे ॥४ वै. श्रौ. कं. १ (५) सू. १३

एक पात्र में अक्षत, पुष्प, सुपाड़ी, कुशा, जल डालकर अग्नि सन्मुखी करण करें।

ॐ वाजं त्वाऽग्ने जेष्यन्तं सनिष्यन्तं संमार्ज्मि वाजं जयः ।

ॐ अर्वाञ्चं प्रतीचीनं त्रिरुप वाजयति ॥ वै. श्री. कं. २ सू. १३

ये सब आग्नेयास्त्र मन्त्र होने से आग्नेयस्त्रानुमन्त्रण प्रक्षेपण में युद्ध में करें। आजकल के अणु आयुध, तोप, गनमशीन, मिशायलादि आधुनिक नाम हैं।

ॐ यद अक्रन्दः प्रथमं जायमानउद्यन्त्समुद्रादुत् वा पुरीषात् ।

श्येनस्यपक्षा हरिणस्य वाहू उपस्तुस्त्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१

ॐ यद अक्रन्दः सलिले जातो अर्वन् सहस्वान् वाजिन् वलवान्वलेन ।

तं त्वाऽऽदधुर्ब्रह्मणेभागमग्ने अथर्वाणः सामवेदो यजूंषि ॥२

ॐ ऋग्भिः पूतं प्रजापतिरथर्वणेऽश्वं प्रथमं निनाय ।

तस्य पदे प्रथमं ज्योतिरादधे समा वहाति सुकृतां यत्र लोकः ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ अभितिष्ठ प्रतन्यतो मह्यंप्रजां आयुश्च वाजिन् धेहि ।
त्वया वधेयं द्विषतः सपत्नान् स्वर्गं मे लोकं यजमानाय धेहि ॥४
ॐ अभितिष्ठ प्रतन्यतः सहस्व पृतनायतः ।
यथाऽहम् अभि भूः सर्वाणि तानि धूर्वतो जनान् ॥५ वै. श्रौ. अ. २ कं० ६ सू. १

आथर्वणी शान्तिक, पौष्टि, आदि अभ्युदय कर्मों मे "जातवेदाग्नि" का आवाहन करें।

ॐ अग्नेप्रेहिप्रथमोदेवतानां चक्षुर्देवानामुतमानुषाणाम् ।
इयंक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वऽर्यन्तु यजमानास्स्वस्ति ॥४।१४–५

अग्नि स्थापन के उपरान्त सम्मुखीकरण इस मन्त्र से करें।

ॐ विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्य वक्षा जगतोनिवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रं ऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥१२।१–६

इसके उपरान्त अग्नि से उत्तर पश्चिम दिशा में "सहस्रार्ध" मन्त्र से पवित्र छेदनार्थ ३ कुशायें, और पवित्र करणार्थ २ कुशापत्र, प्रोक्षणी पात्र और उसमें २ कुशा रक्खें। उसी क्रम से आज्यस्थली, चरुस्थली और ५ सम्मार्जन कुशायें, ७ उपयमन कुशायें प्रादेश मात्र की ५ या ३ समिधायें, खदिर का स्रुवा, हस्त मात्र, गो घृत अथवा (तिल तैल) धुले चावल, ब्रह्माजी के लिये मय वस्त्रादि पूर्ण पात्र वर और दक्षिणा रक्खें। ३ पवित्र छेदनार्थ कुशाओं को पूर्व स्थापन क्रम से उठायें और वस्तु मात्र का प्रोक्षणी जल से मार्जन करें।

ॐ दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याऽणिदर्भंबिभ्रदात्मनामा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्च्चसाधान्यान्त्सूर्यइवाभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१६।३३–५

पवित्र करणार्थ, पूर्व स्थापित २ कुशाओं की मूल के ऊपर तीन कुशाओं के अग्रभाग को रखकर, परम्पर दो से तीन कुशाओं को काट दें। दो के मूल और तीन के कटे हुए अग्रभाग को फैंक दें। शेष तीन की मूल, दो के अग्रभाग की पवित्री बना लें।

"दर्भेणत्वा" से अभिमन्त्रित करके, प्रणीतापात्र में रक्खें। पवित्री युक्त हस्त से प्रणीता जल को ३ वार प्रोक्षणी पात्र को छिड़क कर डालें। अनामिका और अंगुष्ठ से पवित्री को इधर-उधर से पकड़कर, प्रोक्षणी पात्र के जल को ३ बार नीचे से ऊपर को उछालें। प्रोक्षणी पात्र को सव्य (दक्षिण हस्त) की ओर स्थापित करें।

ॐ घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वांमनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नप्त्य१ आवहन्तु घृतंतुभ्यं दुह्रतांगावो अग्ने ॥ अथर्व ७।(८२)८७–६

घृत निरूपण और कुशा से अपद्रव्य निकाल कर फैंकें और अभिमन्त्रित करें।

ॐ येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानांश्रैष्ठ्य आधेह्येनम् ॥ अथ (१।६–३)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आज्य को स्रुवा से उठायें और चलायें, तब आज्य स्थली में डाले ।

ॐ यद्यंत कृष्णः शकुन एहगत्वातसर न्विषक्तं विल आससाद ।

य द्वादास्याऽऽद्रहस्ता समङ्क्त उलूखलंमुसलं शुम्भतापः ॥१२।३–१३ अथर्व

इससे धानों को उल्लूखल में डालें, मूसल से कूटें ।

ॐ यत् त्वा शिक्वः परावधीत्तक्षा हस्तेन वास्या ।

आपस्त्वा तस्मांज्जीवलाः पुनन्तुः शुचय शुचिम् ॥१०।६–३

चावल आदि को धो कर शाकल्य मे मिलायें और चरुस्थली में डालें । अनुमन्त्रित करें । इन आज्य और चरु इन दोनों को ही, एक साथ अग्नि पर स्थापित कर सिद्ध करें । जलती कुशाओं को इन आज्य और चरु के चारों ओर परिक्रमा क्रम से आचार्य घुमायें और मौन होकर, खड़े होकर अग्नि में छोड़ें ।

घृतादुल्लुप्तो मधु मान्पयस्वान्भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।

नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन्दर्भारोहमहतामिन्द्रियेण ॥१९।३३।२

दक्षिण हस्त में स्रुव लेकर, अधोमुख करके, तपाकर, अपसव्य हस्त में धारण कर, दक्षिण हस्त में सम्मार्जन ५ कुशाओं से, स्रुवा को मूल से आगे पर्यन्त, मूल के अग्रभाग से आरम्भ कर, नीचे से मूल पर्यन्त, मार्जन करें पुनः स्रुव को अग्नि में तपाकर दक्षिण हस्त की ओर स्थापित करें ।

अग्नि के ऊपर से आज्य उठाकर पश्चिम को ले जाकर आज्य के उत्तर में रखकर, अग्नि पर पुनः आज्य को रक्खें । चरु को लेकर आज्य के उत्तर दिशा में रक्खें । पुनः पूर्व भाँति आज्य का संस्कार करके पुनः निरीक्षण कर अपद्रव्य निकाल कर पुनः प्रोक्षणी जल से मार्जन करें । इसके उपरान्त ७ उपयमन कुशाओं को लेकर खड़े होकर प्रजापति का मानसिक ध्यान इस अध्याय के प्रारम्भ में ।।यस्मात्कोशात।। मन्त्र से करते हुए, चुप घृक्त युक्त ३ समिधायें अग्नि में छोड़ें । पुनः बैठाकर प्रोक्षणी जल से, पवित्री से उदक पर्यन्त परिषेचन कर, दक्षिण जानु झुकाकर, ब्रह्मा का अन्वारब्ध करें । प्रत्यक्ष ब्रह्मा के अभाव में, ५१ कुशाओं की दर्भमुष्ठी निर्मित करके प्राण प्रतिष्ठा कर, ब्रह्माजी को आसन पर स्थापित करे । प्रणीता और प्रोक्षणी पात्रों को जल से पूर्ण करके, आगे रखकर, ३ कुशाओं से ढक दें । ब्रह्माजी के दर्शन कर, अग्नि के उत्तर कुशाओं पर स्थापित कर दें । तदनन्तर ब्रह्मा यजमान से यज्ञ प्रारम्भ करायें । कां. १९ सू. ५९ "घृतस्यंजूति", कां. १९।४२ "ब्रह्महोता" कां. ५।१२–३ "आजुह्वानं" मन्त्रों से यज्ञ यज्ञाधिष्ठात्री देवता यज्ञ की शक्ति स्वाहा, स्वधा का जो द्वितीय अध्याय पूजन में हैं, से आवाहन उपस्थान करें ।

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामिरातिम् ।

यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥४ (१२)

इससे यज्ञदेव को आसन प्रदान करें । तदनन्तर यज्ञदेव का उपस्थान करें ।

तदन्तर "जातवेदाग्नि" अथवा सांग्रामिक अग्नि अपने संकल्पों के क्रम से ही उपस्थान करके पूर्वोल्लिखित क्रम से प्रथम आज्य से आघारादि होम करने के उपरान्त नव ग्रहादि पीठों के आवाहित देव के लिये होम करके प्रधान होम करें । शेष विधि ग्रन्थ के अनुसार अपने-अपने गृह्य सूत्रों की विधियों से करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ पञ्चभू संस्कारपूर्वकमग्नि स्थापनम् (यजुर्वेदीय)— अथाचार्यो स्थण्डिले कुण्डे च पञ्चभू संस्कारान्कृत्वा लौकिकमग्निं स्थापयेत् अथ पञ्चभूसंस्काराः। तत्रकुशैर्हस्त परिमितांचतुरस्त्रां भूमिं परिसमूह्य (३वार) तान् कुशानैशान्यांनिक्षिप्य। गोमयोद्‌केनोपलिप्य (३वार) स्रुवमूलेनप्रादेशमात्रमुत्तरोत्तर क्रमेणप्रागग्रं त्रिरुल्लिख्य । उल्लेखनक्रमेणानामिकांगुष्ठाभ्यांमृदमुद्धृत्य (३ वार) वारिणातंदेशमभ्युक्ष्य (३ वार) कांस्यपात्रस्थं लौकिकाग्निमग्निकोणादानीय प्रत्यङ्‌मुखमुपसमाधाय । क्रव्यादांशस्य-जेदनेनमंत्रेण ॥

ॐ क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमिदूरंयमराज्यंगच्छतुरि प्रवाहः। इहैवा यमितरो जातवेदा देवेभ्योह-व्यंवहन्तु प्रजानन्।

अथावाहनम्—ॐ अग्निं दूतंपुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँऽआसादयादिह। अग्न्यानीतपात्रे साक्षतोदकंनिषिञ्चेत् ॥

सम्मुखीकरणम्—ॐ चत्वारिशृङ्गात्रयोऽअस्य पादाद्वेशीर्षेसप्तहस्तासोअस्य। त्रिधाबद्धो वृषभो-रोरवीति महोदेवो मर्त्यांऽआविवेश। अग्ने वैश्वानरशाण्डिल्यासितदेवलेतित्रिप्रवरान्वितभूमिमातः वरुणपितः मेषध्वज प्राङ्‌मुख मम सम्मुखोभव।

वरदनामाग्निप्रतिष्ठाय। वरदनामाग्नये नमः। इतिनाममंत्रेणवायव्यकोणेस्थंडिलाद्वहिरग्नि-पूजनंविधाय। अथध्यानम्। ॐ (१) रुद्रतेज समुद्भूतंद्विमूर्द्धा नं द्विनासिकम्। षण्नेत्रं च चतुः श्रोत्रं त्रिपादं सप्तहस्तकम्। याम्यभागेचतुर्हस्तकम्। श्रुवंश्रुचि चर्शक्तिश्च अक्षमालां चदक्षिणे। तोमरं व्यञ्जनं चैव घृत पात्रं तुवामके। विभ्रन्तं सप्तभिर्हस्तैर्द्विमुखंसप्तजिह्वकम्। दक्षिणे च चतुर्जिह्वं त्रिजिह्वं चोत्तरेमुखे। द्वात्रिं-शत्कोटिमूर्त्याख्यं द्विपञ्चाशत्कलायुतं स्वाहास्वधावषट्कारैरकितं मेषवाहनम्। रक्तमाल्याम्बरं रक्तरक्त-पद्मासने स्थितं। रुद्रं त्वां शुभनामाहं वन्हि मावाहयाम्यहम्। त्वं मुखंसर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युते। आगच्छभगवन्नग्ने यज्ञेस्मिन्सन्निधिंकुरु।

ॐ अग्निं प्रज्वलितंवन्दे जातवेदंहुताशनम्। हिरण्यवर्णमनलंसमृद्धं विश्वतोमुखम्।

अथकुशकण्डिका विधिः—तत्रादौ (कुण्ड) स्थण्डिल पश्चिमे यजमानउपविश्य। देशकालौसंकीर्त्य अमुक गोत्रोऽमुकवर्माशर्माऽहं (अमुक यज्ञ) कर्मणि इदं हविर्द्रव्यमयं गणेशपञ्चोङ्कार द्वादश विनायकषोड-शमातृका वास्तुपुरुषसपैतृकंविश्वेदेवा ६४ योगिनी सप्तवसोर्धारा सूर्यादिग्रहा ईश्वराद्यधि देवताग्न्यादि प्रत्यधिदेवता पञ्चलोकपाल १० दिक्पाल ब्रह्मादिसर्वतोभद्र मण्डलल्थ पञ्चाशद्देवताभ्यो नमम। तत आचार्योग्नेर्दक्षिणतः परिस्तरणभूमिं त्यक्त्वा ब्रह्मणे आसनं दत्वा तदुपरि प्रागग्रानुदगग्रान् कुशानास्तीर्य-ब्रह्माणमग्नि प्रदक्षिण क्रमेणानीय अस्मिन् (अमुक) यज्ञे त्वंमेब्रह्मा भव। इत्यभिधाय। वरण कर्मणा पूर्वं सम्पादितं ब्राह्मणं तदभावे ५१ कुशनिर्मितं (ब्रह्माणं) कल्पितआसनेउपवेशयेत्पूजयेच्च। ततः प्रणीतापात्रं पुरतःकृत्वा जलेनापूर्यकुशत्रयेणाच्छाद्य ब्रह्मणोमुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्।

ततः परिस्तरणम्—र्वहिषश्चतुर्थ (१६) भागमादाय चतुर्भिदर्भैः पूर्वाग्रै राग्नेयादीशानान्तम् ।४। प्रागग्रै र्ब्रह्मणोग्निपर्यन्तम् ।।४।। प्रागग्रै र्नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् ।।४।। प्रागग्रै रग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् ।।४।। परिस्तरणं कृत्वा। ततः अग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशिपवित्र छेदनार्थं कुशत्रयम्। पवित्रकरणार्थं पवित्रेसाग्रे अनन्तगर्भे द्वे कुशपत्रे ॥ प्रोक्षणीपात्रम् ॥

आज्यस्थाली। चरुस्थाली। सम्मार्जन कुशाः पञ्च। उपयमनकुशाः सप्त। समिधस्तिस्त्रः पालाश्यः प्रादेशमात्राः। स्रुवः खादिरो हस्तमात्रः। आज्यंगव्यम्। शोधिता स्तन्दुलाः। पूर्णपात्रम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दक्षिणा वरोवा। पवित्र छेदन कुशानां पूर्वपूर्वं विशिक्रमेणासादनीयम्। ततः पवित्रच्छेदनैः पवित्र करणम्। द्वयोः पवित्रयोरुपरि पवित्र त्रयंनिधाय। अग्रतः प्रादेशमात्रं विहाय त्रिभि कुशैर्द्वौ कुशतरुणे प्रच्छिद्य। द्वयोर्मूलं त्रीणि श्चोत्तरतः क्षियेत्। ततः सपवित्रहस्तेनप्रणीतोदकं त्रिप्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य। अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनम्। प्रोक्षणीपात्रस्य सव्यहस्ते करणम्। अनामिकागुंष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वात्रिरुद्दिङ्गनम्। ततः प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणं। प्रोक्षणी जलेन आज्यस्थाल्यादीनि पूर्णपात्रपर्यन्तानि क्रमेणैकैकशः प्रोक्ष्यः। असञ्चरो प्रणीताग्न्योरन्तराले प्रोक्षणी पात्रंनिधाय। आसादितमाज्यंपश्चादग्ने निहितायामाज्यस्थाल्यां प्रक्षिप्य। चरुस्थाल्यां प्रणीतोदकमासिंच्य। आसादितांस्तंडुलान् प्रक्षिप्य। तत्राज्यं ब्रह्माधिश्रयति। तदुत्तरतः स्वयंचरुमेवयुगपदग्नावारोप्य ईषच्छृतेचरौ ज्वलदुल्मुकं प्रदक्षिणं आज्यचर्वोः समन्ताद्भ्रामयेत्। दक्षिणपाणिनास्रुवमादाय। अधोमुखमग्नौ तापयित्वा सव्यपाणौ कृत्वा।

कुशकण्डिका—दक्षिणेन संमार्जनाग्रैर्मूलतोग्रपर्यन्तं मूलैरग्रमारभ्य अधस्तान्मूल पर्यन्तं। संमृज्य प्रणीतोदकेनाभिषिञ्च्य। पुनः प्रतप्य दक्षिणतोनिदध्यात्। ततः आज्यम् उत्थाप्य। आज्यस्योत्तरतः स्थापयित्वा आज्यमग्नेः पश्चादानीय। चरुंचानीय। आजस्योत्तरतो निदध्यात्। ततः पूर्ववत्पवित्राभ्यामाज्यमुत्पूय। अवलोक्य। तस्मादपद्रव्य निरसनंपुनः प्रोक्षिण्युत्पवनं। ततः उपयमनकुशानादाय। उत्तिष्ठन् प्रजापतिम्मनसाध्यात्वा। तूष्णीमग्नौ धृताक्ताः समिधस्तिस्त्रः प्रक्षिपेत्। ततः उपविश्य। प्रोक्षिण्युदकेन-सपवित्रेणाग्निमीशानादि उदक्पर्यन्तं परिषिच्य। दक्षिणजान्वाच्य।

ब्रह्मणान्वारब्धः। यजमानेनान्वारब्धश्च समिद्धतमेग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात्। तत्राधारावाज्यभागौ च कृत्वा अनन्तरं स्रुवावस्थित हुतशेषं घृतस्यप्रोक्षणीपात्रेप्रक्षेप।

'घृतस्यजूतिः' (१६।५८) 'यज्ञस्य चक्षु' (१६।५६) 'अग्नावग्नि' (४।३६-६) 'हृदापूतम्' (४।३६-१०); 'पुरस्ताद्युक्तः' (५।८६-१) इनसे यज्ञ प्रारम्भ में आज्य होम करें। जूति शब्द के पर्यायवाची (ऐ. आ. २।६-१) श्रुतिः—'मतिर्मनीषाजूतिः स्मृतिः संकल्पक्रतु रसुः कामोवश' ये सब विज्ञान के ही नाम हैं—मानसिक यज्ञ इनसे करें तो आध्यात्मिक तत्व ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसी अध्याय में ये मन्त्र पीछे देखें।

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऋषीणांपुत्रो अभिशस्तिपा उं।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोभिमादेवानां मिथुया कर्म भागम् ॥४।३६-६
हृदापूतंमनसा जातवेदो विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्।
सप्तास्यानि तव जातवेदुस्तेभ्यो जुहोम्रिस जुषस्वहव्यम् ॥४।३६-१०

कां. ५।२६-१ 'पुरस्ताद्युक्तौ' रक्षोहणगण के साथ उल्लिखित है। कां. १६।५८ 'घृतस्यजूतिः' कां. १६।५६ 'यज्ञस्यचक्षु' इसी द्वितीय अध्याय में पूर्वोल्लिखित को देखें और सभी से यज्ञारम्भीण काल में होमाहुति दें।

अथहोमः—अग्नेरुत्तरभागे। ॐ (नमः) प्रजापतयेस्वाहा, प्रजापतयेइदन्नमम। अग्नेर्दक्षिणभागे। ॐ इन्द्रायस्वाहा, इन्द्रायेदन्नमम। इत्याधारौ। मध्येसमिध्यतमे। ॐ अग्नयेस्वाहा, अग्नये इदन्नमम। ॐ सोमायस्वाहा, सोमायेदन्नमम। इत्याज्यभागौ। अथाचार्य्यो अग्निं सम्पूज्य। ततः गणेशादि मण्डल स्थापितदेवानां हवनं कुर्यात्तथैवसर्वतोभद्र मण्डलस्थ देवानामपि कुर्यात्। ततो महाव्याहृति, वेदमाता गायत्रीं श्चजुहुयात्। ततोहुतशेषं हविर्द्रव्यं गृहीत्वा ब्रह्मणान्वारब्धः स्विष्टकृद्धोमं कुर्यात्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये०। ततोभूराद्यानवा हुतय। ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये। ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे, ॐ स्वः स्वाहा इदमग्नि वायुसूर्येभ्यः। ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य-हेडोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठोवह्नितमः शोशुचा नो विश्वाद्वेषां सिप्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा, इदमग्नी वरुणाभ्याम्। ॐ अयाश्चाग्नेस्य नभिशास्तिपाश्च सत्वमित्वमयाऽअसि। अयान्नो यज्ञं वहास्ययानोधेहि भेषजठं स्वाहा; इदं अयसेऽअग्नये। ॐ येतेशतं वरुणये सहस्त्रं यज्ञियापाशा विततामहान्तः। तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुर्मुचन्तुः स्वर्काः स्वाहा, इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवेविश्वेभ्योदेवेभ्य मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च।

इन उपर्युक्त आधारादि व्याहृति होम के आथर्वण मन्त्र निम्न हैं इसी प्रकार आहुतियाँ दें।

पूर्वोक्त पञ्च इध्म (पाँच प्रादेश मात्र अर्थात् अंगुष्ठ से तर्जनी की चौड़ाई के) बराबर की ५अश्वत्थ (पलाश) खदिर की समिधायें पूर्व मन्त्र से अनुमन्त्रित कर एक-एक को निम्न ऋचाओं से प्रज्वलित अग्नि में छोड़ें (कौ० सू०) (कुशकण्डिका के उपरान्त) तदनन्तर अमुक कर्म प्रारम्भ निमित्तं पञ्चेध्मं सकृञ्जु होति। प्रथम व्याहृति होम एक-एक से आज्याहुति दे प्रथम "घृतस्यजूति" १६।५६ (अ. २ पूजन में देखें)।

ॐ अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो विभ्रत्यग्नि रश्मं सु।
अग्निरन्तःपुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ (१) (१२।१-१६)
ॐ अग्ना वग्नि श्चरति प्रविष्ट ऋषीणांपुत्रो अभिशास्तिपा उ।
नमस्कारेण नमसाते जुहोमि मादेवानां मिथुया कर्मभागम् ॥
ॐ भूः शम्भूत्यै त्वा गृह्णे भूतस्य। इति प्रथमं ग्रहं गृह्णाति (१)
ॐ अग्निर्दिव आतपत्यग्नेदेवस्योर्वं१न्तरिक्षम्।
अग्निमर्तासइन्धतेहव्यवाहँघृत प्रियम् ॥१२।१-२० (२)
ॐ हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्।
सप्तास्यानि तवं जातवेद स्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥४।३६-१०
ॐ भुवः शंपुष्ट्यै त्वा गृह्णे पुष्ट्य। इति द्वितीय ग्रहं गृह्णाति। (२)
ॐ अग्निर्वासा पृथिव्यऽसितज्ञूस्त्विषींमन्तं संशितंमा कृणोतु ॥ (३) ॥ १२।१-२१
ॐ पुरस्तांद्युक्तो वंह जातवेदोऽग्नें विद्धि क्रियमाणं यथेदम्।
त्वं भिषग् भेषजस्यासिकर्त्ता त्वयागामश्वंपुरुषं सनेम्। (५।२६-१)
ॐ स्वः शं त्वा गृह्णेऽपरिमिताय पोषाय। इति तृतीयं ग्रहं गृह्णाति। (३)
ॐ एतमिध्मंसमाहितं जुषाणो अग्नेप्रतिं हर्य होमैः। तस्मिन्विदेमसुमतिं स्वस्तिप्रजांचक्षुः पशून्तसमिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ (४) ॥ (१०।६-३५)
ॐ यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेणमनसा जुहोमि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इमं यज्ञं वितंतं विश्व कर्मणा देवायन्तु सुमनस्यमांनाः ॥ (२।३५–५)

ॐ जनञ्छं त्वा गृह्णे ऽपरिमित पोषाय । इति चतुर्थ ग्रहं गृह्णाति । (४)

ॐ अस्मैक्षत्राणिंधारयंन्तमग्नेयुनज्मित्वा ब्रह्मंणादैव्येंन ।

दीदिह्य१स्मभ्यंद्रविंणेहभद्रंप्रेमं वोंचो हविर्दांदेवतांसु ॥ (५) ७।७८-२.

ॐ यज्ञस्य चक्षुः प्रभृंति मुंखँ च वाचा श्रो त्रेंण मनंसा जुहोमि ।

इमं यज्ञं वितंतं विश्वकर्मणा देवा यंन्तु सुमनस्यमांनाः ॥ (१९।५८–५)

(राजकर्माऽभिचारिकेषु; अमुष्य त्वा प्राणायगृह्णे)

ॐ प्राणायगृह्णेऽपानाय व्यानाय समाना योदानाय । इति षञ्चमं ग्रहं गृह्णाणि ॥ (५)

तदुपरान्त ऋचा (१९।३३–५) से सम्प्रोक्षण करें ।

इसके उपरान्त, अथर्व व यजुर्वेदोक्त व्याहृति होम कर, गणपति वेदी-नवग्रह वास्तुवेदी, सर्वतोभद्रादिपीठस्थ देवताओं का होम कर कर्म-प्रधान देवता का होम करें । तदुपरान्त छाया दान (क्षेत्रपालका) बलिदान स्विष्टकृद्धोम पूर्व मण्डल-भद्रपीठ के देवता दिक्पालों का बलिदान करें ।

होम मन्त्रों के दशांश मन्त्रों से या महाव्याहुतियों या गायत्री मन्त्र या प्रधान देवता के मन्त्र से ऋत्विगादि मयसपत्नीक यजमान हाथों में कुशा लेकर पात्र में कच्चा दूध व जल डालकर तर्पण उसके दशांश मन्त्रों से मार्जन कर पुर्णाहुति करें । पूर्णाहुति विधि आगे है विशेष इस प्रकार है ।

कां. १९।६४ मन्त्र १–४ ब्रह्मा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

अग्नें समिधमाहांर्षं बृहते जातवेंदसे । स में श्रद्धां चं मेधां चं जातवेंदाः प्रयंच्छतु ॥१

इध्मे नं त्वा जातवेदः समिधां वर्धयामसि । तथा त्वमस्मान वंर्धय प्रजयां च धनेंन च ॥२

यदंग्ने यानि कानिं चिदा ते दारूंणि दध्मसिं । सर्वं तदंस्तु मे शिवं तज्जुंषस्व यविष्ठ्य ॥३

एतास्तें अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव । आयुंरस्मासुं धेह्यमृतत्वमांचार्याऽय ॥४

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्य दवाधमे विमध्यम ठं० श्रथाय ।

अथा वयमादित्य ब्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणाय

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये ॥ ॐ अग्नयेस्विष्ट कृतेस्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते ॥

अथ बलिदानम्—ॐ अद्यकृतस्य कर्मणः सांगता सिद्धचर्थे दिक्पाल पूर्वकं आदित्यादि ग्रहमण्डल स्थापित देवताभ्यो बलिदानञ्च करिष्ये ॥ पूर्वे ॥

ॐ त्रातारमिन्द्रंम वितारमिन्द्रठंहवेंहवेसुहव ऽशूरमिन्द्रम् ।

ह्वयांमि शक्रम्पुंरुहूतमिन्द्रंठंस्वस्तिनों मघवां धात्विन्द्रं ÷ ॥४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्रायनमः सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पादिना सम्पूज्य सर्वत्र ।। ॐ इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्त बलिं समर्पयामि । भो इन्द्रदिशंरक्ष बलिंभुङ्क्ष्वमम सकुटुम्बस्य अभ्युदयं कुरुआयुःकर्त्ता क्षेमकर्त्ता शान्तिकर्त्ता पुष्टिकर्त्ता तुष्टिकर्त्ता निर्विघ्नकर्त्ता वरदोभव ।। अनेन बलिदानेन इन्द्रः प्रीयताम् ।। अग्निकोणे ।।

ॐ त्वन्नोऽअग्ने तव देवपायुभिर्म्मघोनोरक्षतन्न्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तन ये गवामस्य निमेषꣳरक्षमाणस्तव व्रते ।।५।।

अग्नये नमः ।। अग्नये सा० ।। भोअग्ने दिशं० दक्षिणेयमम् ।।

ॐ यमाय त्वाङ्गिर स्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा धर्म्मायस्वाहा धर्म्मः पित्रे ।।६।।

यमायनमः । भोयम० । नैऋत्यां ।।

ॐ असुन्न्वन्तमयंजानानमिच्छस्तेनस्येत्यामन्न्विहितस्त्करस्य ।
अन्न्यमस्म्मदिच्छ सातं ऽइत्या नमो देविनिर्ऋते तुब्भ्यमस्तु ।।७।।

निर्ऋतयेनमः । पश्चिमे ।

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणाव्वन्दमानस्तदाशास्तेयजमानो हविर्ब्भिः ।
अहेडमानोव्वरुणे हवोध्युरुशꣳसमानऽआयुःप्रमोषीः ।।८

वरुणायनमः ।। वायव्यां ।।

ॐ आनो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳसहस्त्रिणीभि रुपयाहियज्ञम् ।
व्वायोऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयम्पात स्वस्तिभिःसदानः ।।९

वायवे० ।। उत्तरे ।।

ॐ व्वयꣳसोमव्रते तव मनस्तनूषु विब्भ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ।।२।।

सोमाय ।। ईशान्यां ।।

ॐ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्प्पतिंन्धियञ्जिन्न्वमवसेहू महेव्वयम् ।
पूषानो यथाव्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धःस्वस्तये ।।३।।

ईश्वराय० ।। पूर्वेशानयोर्मध्ये ।। उर्ध्वे ।।

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्याऽउपमा अस्यविष्ठाः सतश्चयोनिमसतश्च वि वः ।।१।।

ब्रह्मणे० निर्ऋति पश्चिमयोर्मध्ये अधोभागे ।।

ॐ स्योनापृथिवी नोभवानृक्षरानिवेशनि । यच्छानःशर्म्मसप्रथाः ।।१०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनन्ताय० ।। ततोग्रहवेदिसमीपे सूर्यादिग्रहाणांवलिः ।। सूर्यादिग्रहाणांवलिः ।। सूर्यादिग्रहेभ्यः अधिदेवता, प्रत्यधिदेवतासहितेभ्यः साङ्गेभ्यसप० सश० इमंसदीपदधिमाषभक्त वलिं समर्पयामि । भोभो-सूर्यादिदेवता दिशः रक्षत वलिभक्षतदीप पश्यत । मम (यजमानस्य) सकुटुम्बस्याभ्युदयं कुरुत ।। आयुः कर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टि कर्त्तारः तुष्टिकर्त्तारः निर्विघ्नकर्त्तारः वरदाभवत ।। अनेन वलिदानेन सूर्यादिग्रहाः प्रीयन्ताम् । ततो १६ मातृणामेकर्वालं दद्यात् ।। ॐ समख्येदे व्याधिवासं दक्षिणयो-रुचक्षसा । मामऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहन्तववीरम्बि देयतवदेविसंदृशि ।। गौर्यादिमातृभ्य इमं वलिं गृहीत मम (यजमानस्य) सकुटुम्बस्याभ्युदयंकुरुत आयुः कर्त्र्यः क्षेमकर्त्र्यः शान्तिकर्त्र्यः पुष्टिकर्त्र्यः निर्विघ्न कर्त्र्यः वरदाभवन्तु ।। वलिदानेनानेन गौर्यादि षोडशमातरः प्रीयन्ताम् ।।

अथ क्षेत्रपाल बलिदानविधिः—एकस्मिन्वंश पात्रे कुशानास्तीर्य तदुपरिआहार चतुर्गुणं द्विगुणं दधिमाषभक्तं दध्योधनं जलपात्रं च निधाय हरिद्रा सिन्दूर कज्जल द्रव्य पताका दीपयुतं कृत्वा ।। ॐ अद्येत्यादि० सकलारिष्ट शान्तिपूर्वकं प्रारिप्सितस्य कर्मणः सांगतासिद्धयर्थ क्षेत्रपाल वलिदानं करिष्ये । इति प्रतिज्ञा ।। अक्षतान्गृहीत्वा ।। ॐ नहि स्पृशमविदस्यन्यमस्माद्वैश्वानरापुर एतारमग्नेः ।। एमेनवृधन्न-मृताऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्यायदेवाः । ॐ ह्रीं (क्षं) क्षत्रपालायनमः ।। इति मंत्रेण यथोपचारैः सम्पूज्य-ध्यायेत् । ॐ नीलाञ्जनाद्रि निभमूर्ध्व पिशंगकेशम् । वृत्तोग्रलोचन मुदात्तगदाकपालम् ।। आशाम्बरभुजग भूषणमुग्र दंष्ट्रं । क्षेत्रेशमद्भुत तनुं प्रणमामिदेवम् ।।

प्रार्थना

ॐ नमोक्षेत्रपालस्त्वंभूतप्रेतगणैः सह । पूजा वलिंगृहाणेम सौम्योभवतुसर्वदा ।।

आयुरारोग्यं मे देहि निर्विघ्नं कुरु सर्वदा । अनेनपूजनेनक्षेत्रपालः प्रीयताम् ।।

ततोवलिदानम्—ॐ क्षेत्रपाल महावाहो महाबलपराक्रम । क्षेत्राणांरक्षणार्थाय वलिंगृह्णनमोऽस्तुते क्षं क्षेत्रपालाय साङ्गायभूतप्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी वेतालादिपरिवारयुतायसायुधाय सशक्तिकाय सवाहनायइमं सदीपदधिमाषभक्तवलिं समर्पयामि नमः भोभोक्षेत्रपालसर्वतो दिशं रक्षवलिंभक्षदीपपश्यमम (यजमानस्य वा) सकुटुम्बस्यअभ्युदयं कुरु आयुः कर्त्ताक्षेम कर्त्ताशान्ति कर्त्तापुष्टिकर्त्तानिर्विघ्नकर्त्ता शुभदोवरदोभव । वलिदानेनानेन क्षेत्रपः प्रीतयाम् । इदं वलिं अनवेक्षमाणेनदुर्ब्राह्मणेन नीत्वा चतुष्पथे निक्षिपेत् सयजमानो अपि तस्यपृष्ठतो द्वारपर्यन्तं जलंक्षिपेत् । इतिक्षेत्रपालवलिदानविधिः । हस्तौपादौ-प्रक्षाल्य आचम्य आसन उपविशेत् । वलिदानानन्तरं गणेशादीनां उत्तरपूजनं कुर्यात् ।

अथ छायापात्र दानविधिः—कांस्य पात्रे स्थितमाज्यं च आत्मरूपं निरीक्ष्यतु । ससुवर्णन्तुयो-दद्यात्सर्वविघ्नो पशान्तये । मन्त्रः । ॐ रूपᳪ रूपं प्रतिरूपो वभूवतदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपऽएते युक्ताह्यस्य हरयः शतादोशात्यय वै हरयो यं दश च सहस्राणि वहूनिचनन्तातदेतद्ब्रह्मपूर्वमन-वाह्य नमनु सर्वानुशासनम् । इत्याज्ये मुखमवलोक्य । संकल्पः । अद्येत्यादि० ममैतच्छरीरावच्छिन्न समस्तपापक्षय सर्वग्रहपीड़ाशान्ति शरीरोत्थार्तिनाशाय देव प्रासाद वांछायुरारोग्यादि सर्वसौभाग्य प्राप्तयेच इदंस्वदेह छायावीक्षिताज्यपूरितकांस्यपात्रं ससुवर्णं (सदक्षिणाकं) विष्णु दैवतं अमुक गोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणायसुपूजिताय तुभ्यमहं संप्रददतेनमम ।। मन्त्रो—

ॐ या लक्ष्मीर्यच्चमेदौरस्थ्य सर्वाङ्ग समुपस्थितम् । तत्सर्वं नाशयाज्यत्वं श्रियमायुश्च वर्द्धय ।।१

ॐ आज्यं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् । आज्यपात्रप्रदानेन शान्तिरस्तुसदामम ।।२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुद्रकल्पे वरण द्रव्याणि---

भोजनं भोजनाधारश्छत्रोपानत्कमण्डलुम् । आसनं वसनं मुद्रा कर्णभूषोपवीतकम् ॥

एतद्दशविधं देयं पदं वरण सिद्ध ये । पादभावे त्रयं देयं पात्र वस्त्रांगुलीयकम् ॥१॥

पूर्णाहुति होममन्त्राः—आहुति, तर्पण, मार्जन, क्षेत्रपाल बलिदान के उपरान्त सपत्नीक यजमान देशकालौ स्मृत्वा कृतस्य कर्मणः सांगतासिद्धयर्थं वसोर्धारासमन्वितं पूर्णाहुति होमं करिष्ये । संकल्प कर घी आज्याधिश्रयणमाज्योद्वासनमवेक्षणमुत्पवनं स्रुक्, स्रुवप्रतपनं सूत्रेण वेष्ठनं चतुर्गृहीतेन ज्यग्रहणं तदुपरिघृतप्लुत नारिकेलस्यनिधानं तस्वपूजनं च कृत्वा सपत्नीको यजमानगुरोर्दक्षिण स्कन्धं स्पृशन् जुहुयात् ।

ॐ समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२ उदारदुपा, ᳪशुना सममृतत्त्वमानट् ।

घृतस्य नामगुह्यं यदस्तिजिह्वादेवा नाममृतस्य नाभिः ॥११

पुनस्त्वादित्या रुद्राव्वसवः समिन्धताम्पुनर्ब्रह्माणोव्वसुनीथयज्ञैः ।

घृतेनत्वन्तन्वं व्वर्धयस्वसत्याः संन्तुयजमानस्य कामाः ॥१२

सप्त ते ऽअग्नेसमिधः सप्तजिह्वाः सप्तऽऋषयः सप्तधामप्रियाणि ।

सप्तहोत्राः सप्तधात्वायजन्ति सप्तयोनी राष्णस्वाघृतेनस्वाहा ॥१३

ॐ यस्योरुषु त्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षियान्ति भुवनानि विश्वा ।

उरु विष्णो विक्रमस्योरु क्षयायनस्कृधि । घृतंघृ तयोनेपिवप्रप्रयज्ञपतितिर ॥७।२६।२७-३

पूर्णादर्व्विपरापतसुपूर्णापुनरापत । वस्नेवव्विक्रीणावहाऽइषमूर्ज्जᳪ शतक्रतो स्वाहा ॥१४

इदमग्ने वैश्वानरायवसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवेसप्तवतेअग्नये अद्भ्यश्च नमम ।

वसोर्धारामन्त्राः—अस्य कां. ५ सू. १५ विश्वामित्रः । ऋषिः । मधुलावनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ पुरस्ताद्वृहती, ५-७-८-६ भुरिकछन्दासि ।

एकाचमे दशचमेऽपवक्तारं ओषधे । ऋतंजातऋतावरिमधुमेमधुलाकरः ॥१

द्वे चविंशतिश्चमे ऽपवक्तारं ओषधे । ऋतंजातऋतावरिमधु मेमधुलाकरः ॥२

तिस्रश्चमेत्रिंशच्चमे ऽपवक्तारं ओषधे । ऋतंजातऋतावरिमधु मेमधुलाकरः ॥३

चतस्रश्चमे चत्वारिंशच्चमे ऽपवक्तारं ओषधे । ऋतंजातऋतावरिमधु मेमधुलाकरः ॥४

वसोर्धारा में वंश द्वारा यज्ञ में घृत छोड़ते रहें इनसे उपस्थान करते रहें ।

वसोर्द्धारामन्त्राणि

ॐ सप्ततेऽअग्ने समिधः सप्तजिह्वाः सप्तऽऋषयऽय सप्तधामप्रियाणि ।

सप्तहोत्राः सप्तधात्वायजन्ति सप्तयोनीरापृणस्वघृतेन स्वाहा ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घृतम्मिमिक्षेघृतमस्य्योनिर्घृतेश्रितो घृतम्वस्य्धाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्स्व स्वाहाकृतं वृषभव्वक्षि हव्यम् ॥१०॥ इति वसोर्धारा ॥

त्र्यायुषकरणम्—

श्रद्धां मेधां यशः विद्यां पुष्टिं श्रियं वलम् । तेज आयुष्यमारोग्यं देहि मे हव्य वाहन ॥१
ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेरितिललाटे । कश्यपस्यत्र्यायुषमितिग्रीवायाम् ॥
यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणांसे । तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषमिति हृदि ॥

संस्रवप्राशनम् । पवित्राभ्यां मार्ज्जनम् अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः ।

ब्रह्मणेपूर्णपात्रदानम् । तद्यथा-अद्यकृतैतदमुकजपदशांशहोम वृहच्छान्ति कर्मप्रतिष्ठायांमिदंपूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणेतुभ्यमहं सम्प्रददे । ॐ स्वतीतिप्रति वचनम् । ततो ब्रह्मग्रन्थि विमोकः । ततः प्रणीतोदकेन ।

ॐ सुमित्रियानऽआपऽओषधयः सन्त्विति ।

ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तुभेषजमिति चयजमानमूर्द्धानमभिषिञ्चति ।

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मैसन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयंद्विष्म ।

इतिईशान्यां प्रणीतां न्युब्जी कुर्यात् । ततः आस्तरण क्रमेण वर्हिरुत्थाप्याज्येनाभिधार्य ।

ॐ देवागातु विदोगातुम्वित्वागातुमितमनसस्पतऽइमं देवयज्ञठं स्वाहावातेधाः स्वाहा ।

इतिमन्त्रेणहस्तेनैव जुहुयात्—इस होम को पूर्ण कर जल में जल देवता की पूजाकर होम के १/१० दशवें भाग के मन्त्र से अथवा गायत्री मन्त्र से दूध और जल मिला मन्त्र से—ॐ अमुकं देवतां तर्पयामि । तर्पण करें । तर्पण दशांश से मूल मन्त्र से - आत्मानमभिषिञ्चामि नमः, तदनन्तर पुत्र कामना वाले, समस्त रोग, उन्मादादि उत्पातों से संतप्त जनों के शिर पर अभिषेक करें तत्पश्चात् ग्रह देवताओं के कलशों के जलों को किसी पात्र में मिला दूब, पञ्च-पल्लव, यव, कुशा से उत्तर को मुंह कर आचार्य बैठकर जापक, ऋत्विजों, सपत्नीक यजमानादि द्वारा सपरिकर-बन्धु-बान्धवादि को पूर्वाभिमुख बिठाकर छींटे दें । अभिषेक में स्त्री बायें बैठे । मन्त्र अ. वे. कां. १६ सू. ६, १० पिप्पलादि शान्ति में हैं । कां. ४ सू. ३३ ॥ अपनः ॥ भी अभिषेक में लें ।

पौराणिक मन्त्राः—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथासंकर्षणोविभुः ॥१
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयायते । आखण्डलोग्निभगवान्यमो वैनिर्ऋतिस्तथा ॥२
वरुणः पवनश्चैवधनाध्यक्षस्तथाशिवः । ब्रह्मणासहितासर्वेदिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥३
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधापुष्टि श्रद्धाक्रियामतिः । बुद्धिर्लज्जावपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिस्तु मातरः ॥४
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तुदेवपत्न्यः समागताः । आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुध जीवसितार्कजाः ॥५
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्चतर्पिताः । देवदानवगन्धर्वाः यक्षराक्षसपन्नगाः ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋषयोमुनयोगावोदेवमातरएवच । देवपत्न्यो द्रुमानागा दैत्याश्चाप्सरसांगणाः ।।७
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानोवाहनानि च । औषधानि चरत्नानिकालस्यावयवाश्चये ।।८
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः । एते त्वामभिषिञ्चन्तुसर्वकामार्थसिद्धये ।।९
आदित्या वसवोरुद्राविश्वेदेवामरुद्गणाः । अभिषिञ्चन्तुतेसर्वेधर्मकामार्थ सिद्धये ।।१०
अमृताभिषेकोऽस्तु ।।

अवभृथस्नानम्—अभिषेक के उपरान्त सर्वोषधि सुगन्धित इत्र तैल के साथ; स्त्री-पुरुष शरीर पर मलें शुद्ध जल से स्नान करें, अपने स्नान के समस्त वस्त्रों को त्यागकर नवीन या धुले श्वेत वस्त्र माला चन्दन आदि धारण कर सपत्नीक यजमान अपने आसनों पर बैठें आचमन करें घी में मुंह की छाया को देखें । मन्त्र—

ॐ रूपेणंवो रूपमभ्यागांतुथोवो विश्ववेदाविभजतु ऋतस्यपथाप्रेतश्चन्द्र दक्षिणा विस्वऽपश्यव्यन्तरिक्षंयतंस्वसदस्यैः ।।१।। रूपं०ठ० रूपम्प्रतिरूपो बभूवतदस्यरूपम्प्रति चक्षणाय इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपं ईयतेयुक्ताह्यस्य हरयःशतादशोत्ययं वैहरयौयं वेदशचसहस्राणिबहूनि-चनन्तातदेतद्ब्रह्मपूर्वमनमवाह्यजमनुऽसर्वानुशासनम् ।।२।।

देशकाल का स्मरण कर—ममायुरारोग्यप्राप्तये स सुवर्णमिदमाज्यपात्रममुक गोत्राय अमुक शर्मणे ब्राह्मणाय-तुभ्यमहं संप्रददे । किसी ब्राह्मण को दान कर दें ।

ब्राह्मण भोजन संकल्प—"कृतस्य कर्मण, साङ्गतासिद्ध्यर्थममुक संख्याकब्राह्मणान् भोजयिष्ये ।" समस्त-ऋत्विजों, ब्राह्मण आचार्य को दक्षिणा दें । आचार्य को दुगुण दें । सब आशीर्वाद दें ।

आशीर्वाद

ॐ श्रीवर्चस्यमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानम्महीयतेंधान्यंधनंपशुंवहुपुत्र लाभं शतसं वत्सरं दीर्घमायुः ।।१।।

पुनं स्त्वादित्यारुद्रावसंवः समिन्धताम्पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथयज्ञैः । घृतेनंत्वन्तन्वं वर्द्धय-स्वसत्याः संन्तुयजमानस्य कामाः ।।२।।

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथा । शत्रूणाँबुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ।।४।।

पूर्णाहुतिः प्रायश्चित होम के उपरान्त आवाहित समस्त पीठस्थ देवों, ऋषियों, पितृगणों तथा यज्ञपति, यज्ञ अग्निदेव आदि की उत्तर पूजा, आरती ।

वर याचना—कां. ७ सू. ९७ अथर्वा ऋषिः । इन्द्राग्निः । देवते । त्रिष्टुपादि छन्दासि यज्ञान्ते वर अभि-याचने देवविसर्जने च विनियोगः ।

यदद्य त्वांप्रयति यज्ञे अस्मि न्होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुताशविष्ठ प्रविद्वान्यज्ञमुपयाहि सोमम् ।।१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समिन्द्र नो मनसानेषगोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणादेवहितं यदस्तिसं देवानां सुमतौयज्ञियानाम् ॥२
यानावह उशतोदेवदेवाँस्तान्प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवाँसः पपिवाँसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥३

इस भाँति वर याचना कर विसर्जन करें ।

विसर्जन

सुगावो देवाः सदना अकर्मय आजग्मसवनेमा जुषाणाः ।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं धर्मदिवमारोहतानु ॥४
यज्ञ यज्ञंगच्छ यज्ञपतिंगच्छ । स्वांयोनिं गच्छ स्वाहा ॥५
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ॥६
वषड्डुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः । देवागातुविदोगातुं वित्त्वागातुमित ॥७

यज्ञमान द्वारा (आचार्य–ऋत्विजों के प्रति विनम्र होकर ।

आत्म समर्पण करें

मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वातेधां स्वाहा ॥८

यज्ञान्त चरु पुरोडाश (अवशेष) अभिमन्त्रित कर प्रथम आचार्य ऋत्विज लें, यजमान को तदभीष्टकामनार्थं अभिमन्त्रित कर दें । यजमान स्वयं भक्षण कर पत्नि को दें, वह बिना किसी अन्य के दृष्टिपात से सुरक्षित प्रणाम कर भक्षण करें ।

तत्पश्चाद्देवताग्निविसर्जन करें—

यान्तु देवगणाः सर्वेस्वशक्त्या पूजितामया । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥१
ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पतेदेवयन्तस्त्वेमहेउपप्रयन्तुमरुतः सुदानवऽइन्द्रप्राशूर्भवासचा ॥२
उमान्तिकेगणपतिर्ब्रह्माण्डे ब्रह्मगच्छतु । वैकुण्ठेभगवान्विष्णुः कैलाशे च महेश्वर ॥३
लक्ष्मीर्विष्णुसमीपेच कलशश्चैवसागरे । पन्नगायान्तुपातालेकाश्मीरे च सरस्वती ॥४
स्वात्मपीठेषुयोगिन्यः क्षेत्रपालोमहावलः । वेदाश्चब्रह्मणः पार्श्वेमातरोमातृमण्डले ॥५

रविकलिङ्गं यमुनां च चन्द्रमा भौमोह्यवन्तीशशिजश्च कोशलान् । सिन्धुगुरुर्भोजकटं भृगुश्चमन्दसुराष्ट्रंपवनं चराहुः । केतुर्गिरीशक्रमुखाश्च देवाः स्वांस्वांपुरीं यान्तु यथाक्रमेण ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मोद्धंतां नाणपतिस्तथाऽधोयाम्यामगस्त्योध्रुवउत्तरां च । सप्तर्षयो राशिमयोगपक्ष गन्धर्वायक्षा गिरयो नदाश्च । स्थानानिगच्छन्तुयथासमायुर्ह्याशीश्च सन्तानसुखं प्रदद्यु ॥७

गच्छगच्छसुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर । यत्रब्रह्मादयोदेवास्तत्रगच्छ हुताशनः ॥१

ॐ यज्ञंयज्ञंगच्छयज्ञपतिंगच्छ स्वांयोनिंगच्छ स्वाहा । एषत यज्ञोयंज्ञपते सहसूक्त वाकुऽ सर्व्ववीरस्तज्जुषस्व स्वाहा ॥२

यज्ञ नारायण स्वस्थाने गच्छ । आवाहितदेवताः स्वस्वस्थानानि गच्छत ॥३

देवताओं को विदाकर यज्ञ के उपकरण ऋत्विजों को दान दें । गुरु, आचार्य, कुल, ग्राम वृद्धों की पूजा कर अञ्जलि बना प्रार्थना करें ।

प्रार्थना—मैंने अमुक देवता मन्त्रपुरश्चरणनाम यज्ञ कर्म, जो काल, भक्ति, श्रद्धा, द्रव्य भाव निष्ठा-विनय हीन किया, अथवा ज्ञात, अज्ञात, मुझसे, मेरे प्रियजन, शुभचिन्तक आदि से अपराध इस यज्ञ में हुए हों वे सब, आप ब्राह्मणों, गुरुजनों के आशीर्वादों से श्रीसूर्यादि आवाहित देवताओं की कृपा से सर्वप्रकार पूर्ण हो । ब्राह्मण आशीर्वाद दें।

"अस्तु परिपूर्णम्" तीन बार ब्राह्मण कहें । मार्जन मन्त्र के दशांश या यथाशक्ति ब्राह्मणों को रुचिकर पवित्र प्रसाद से भोजन करा, दक्षिणा आदि दें । निम्न आशीर्वाद कर्म के प्रारम्भ व अन्त का है। "नान्दीश्राद्ध" में देखें तदनन्तर इसी अध्याय में "धर्मतपामि" पढ़ें और प्रार्थना करें ।

ॐ यस्य स्मृत्या चनामोक्त्या तपः पूजा क्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णतांयाति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१
प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषुयत् । स्मरणादेव तद्विष्णो सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥२
ॐ विष्णवे नमो विष्णवे नमः ।

ऐसी प्रार्थना कर परिवारी प्रियजनों के साथ स्वयं भी भोजन करें । मङ्गल गान, बाजे आदि के साथ सभी मङ्गल ध्वनि के साथ यज्ञ भगवान को अपनी श्रद्धा भक्ति समर्पित कर कृपा पात्र बनें ।

अथ यजुर्वेदादिमन्त्र प्रयोग विधि तथा फल

"ॐ भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्" ये महाव्याहृतियाँ समस्त पाप, दौर्भाग्य सर्वाभीष्ट फलदायिनी हैं । इनसे देवाराधन, जप, उपस्थान के उपरान्त एक सहस्र से घृत से होम करें । घृत के संशय में तिल तैल ग्राह्य है । मानसिक अभीष्ट कार्यों की सफलता हेतु नियमित अनुष्ठान करें, एक समय भोजन, शाकाहार, भूशयन, मौन, ब्रह्मचर्य, सत्याहिसा दया अनिवार्य है । नान्दीश्राद्ध, शान्तिघट, जौ सिद्ध वैष्णवपीठ या पीपल पिल्वमूल में स्थापित करके, अश्वत्थ या ढाक की समिधाओं से होम करें । कृषि, पशु, पुत्र-पौत्रादि सम्बर्द्धनार्थ गूलर की समिधायें लें, अन्न-प्राप्ति अन्न-वृद्धि हेतु, दही, मधु शर्करा से, अरिष्ट निवारणार्थ पूर्ण नीरोगता हेतु दुग्ध से, बहुस्वर्णादि प्राप्ति हेतु अपामार्ग समिधाओं से होम करें । कन्या के चिर सौभाग्य, शीघ्र योग्य अनुकूल वर प्राप्ति हेतु, अथवा वर को उभयकुलतारिणी उभय लोक सफल बनाने वाली सुशील अर्द्धाङ्गिनी प्राप्ति हेतु चम्पा के पुष्पों से, ग्राम, भूमि प्राप्ति हेतु तिल, चावल से, शासक अथवा भ्रष्ट अधिकारी, स्वामी या दुष्टात्मा, चोर, वधिक के वशीकरणार्थ, सहदेवी, पृश्निपर्णी (पिठवन) तथा अपामार्ग से, समस्त व्याधि निवारणार्थ, अजश्रृङ्गी (मेंढासींगी) और गिलोय से, समस्त घातक एवं मारण, उच्चाटन, सम्मोहन, विद्वेषण, वशीकरण जनित अभिचार दोष निवारणार्थ, पूर्णरक्षार्थ, विपक्षी के पराजय और वशीकरण में क्रोधावेश मुद्रा में तारस्वर से, दक्षिणाग्नि में अथवा शान्ति और अभिचार उभय कर्मों में "ॐ आशुशिशानो" की उल्लिखित या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पन्द्रहों ऋचाओं से अग्नि प्रणयन करके (शमी, रैमंजा, छौंकरा, विल्व, वदरी करीर, ऊंट कटेरा, सत्यानाशी की समिधाओं से, भैंसा गूगल, काली मिर्च लवण, बहु अन्नों के सत्तुओं, शमीपत्र, मिश्रित चरु से कटु तैल से होम करें। प्रथम व्याहृति होम कर, आद्यन्त में "आशुशिशानों की ऋचाओं" यद अक्रन्द से प्रारम्भ कर पाँचवीं "अभितिष्ठ पर्यन्त की ५ ऋचाओं, आग्नेयास्त्र, तमशास्त्र, सम्मोहनास्त्र के अग्नि (रौद्र) मन्त्रों से स्वामी की मिट्टी की वेदी बनाकर होम करें। शान्ति कर्म में यह विहित नहीं है उग्र दारुण कर्मों के निवारणार्थ ही है इनकी प्रत्येक आहुति तीक्षण अस्त्र जैसा प्रहार करती हैं। राष्ट्रीय युद्ध में, राष्ट्रीय सैन्य बल वृद्धि में मात्रा अनुपात से बढ़ा दें। विद्वान वेदज्ञ (गेहूं, जौ, काले धान, सवां, मकरा, उड़द और तिलों को मिलाकर, अविवाहित बिना रजो-दर्शन की कन्या के हाथ से धुलवाकर, सुखाकर उसी से पिसवाकर उस आटे की लोई बनवा लें उससे विपक्षी राष्ट्रनेता, रक्षामन्त्री सेनाध्यक्ष की प्रति कृति बनायें, ग्रन्थ की दी हुई विधि से प्राण-प्रतिष्ठा करें, उसकी श्मशान के कोयले को अपने पक्ष के राष्ट्रनेता रक्षामन्त्री या सेनाध्यक्ष जो भी सम्भव हो उसके वाम पैर के अँगुष्ठ के धुले जल में घिसकर उसका तिलक विपक्षी के करें। काले, नीले पुष्प चावलों से पूजा करें। रात्रि में दक्षिणाभिमुख, अपसव्य राष्ट्रनायक, सेनाध्यक्ष या उनके वर्णित संकल्पित प्रतिनिधि) होकर ग्रन्थ में उल्लिखित विधि विधान से एक सहस्र कम से कम आहुतियाँ दें। अपने दल के बाजे, कवच अस्त्र-शस्त्र अभिमन्त्रित कर राष्ट्र के शुभ-चिन्तक रक्षकों को दें। वे "प्राणविद्या" की उल्लिखित विधि प्रस्थान युद्धारम्भ में स्वर और अपने पैर हस्तों को समझकर कार्य करें। "युद्ध विज्ञान" प्रथम अध्याय की विधि से सैनिक उनके अध्यक्षों के मरण जीवन का विचार करना अनिवार्य और हितकर समझें। जिनको उस दिन की यात्रा अशुभ समझें उसे उस दिन पीछे अन्य कार्य सौंपें, युद्ध में न भेजें। इस प्रकार विपक्षी दल सशस्त्र, सामिग्री और भेंट के शरण में आकर सदा की पराजय स्वीकार करेगा। यही ब्रह्म बल पूर्ण देवासुर संग्राम विधि है। यह आङ्गिर्वणी विधि के साथ की जाये तो आधुनिक संहारकारी अणु आयुध निर्विवाद व्यर्थ सिद्ध होंगे "राष्ट्रीय परीक्षण करने को दृढ़ता से अग्रसर होना चाहिये" वाल्मीक, अध्यात्म और अद्भुत रामायणों में वर्णित, यम और लव का संग्राम तथा वशिष्ठाश्रम में आये राजा विश्वामित्र के ब्रह्म बल और क्षत्रिय बल की तुलनात्मक परीक्षण पढ़ें और परीक्षण करें विश्वामित्र जी को यह हताश होकर मानने की विवशता हुई।

धिकवलंक्षत्रियवलं, ब्रह्मतेजोवलंवलम् । एकेमब्रह्मदण्डेन, सर्वास्त्राणि हतानि में ।।

सार्वभौम क्षात्र बल को धिक्कार है, बल तो ब्रह्म बल है, जिसके प्रभाव से अकेले ब्रह्म दण्ड ही ने बिना प्रत्यक्ष कुछ किये ही मेरे कठोर तपस्साध्य अस्त्र निरस्त कर डाले।

इन्हीं से दिव्य, बहु वस्त्र लाभार्थ सुगन्धित पुष्पों से शारीरिक, मानसिक आधिव्याधि निवारणार्थ श्वेत दूर्वा युक्त चरु से ब्रह्म तेज के लिये सुगन्धित द्रव्य युक्त चरु से मेधाजननार्थ, शितावर, शंखपुष्पी, अन्धपुष्पी, यज्ञिय भस्म युक्त चरु से होम करें। विपक्ष वर्ग में उनमें परस्पर भेद डालने के लिये, काक, गृद्ध, उलूक के घौंसलों की समिधा या ओलों से टूटी समिधाओं से दुआं (तारामीरा) या अलसी के तेल से होम करें। ग्रहण काल में शीघ्र श्रेष्ठफल प्रद ये सभी में समझें। मेधा प्राप्ति हेतु (दुधवच) उपर्युक्त वस्तुओं में समभाग मिला, मेधाजनन सूक्तों से अभिमन्त्रित कर गोघृत धारोष्ण गोदुग्ध, शहद के साथ ३ मास भी सेवन करलें तो बज्रमूर्ख, वाणी दोषी (जाड्य) भी आशु कविता की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

विष्णोरराटमस्ति—मन्त्र जप होम सर्वबाधा निवारक है।

मधुव्वाता ऋतायते—मन्त्र जप ४१ दिन एक सहस्र नित्य अश्वत्थ मूल में जप से ब्रह्म हत्या निवारण तथा सर्व सिद्धि प्राप्त होती है।

दधिक्राव्णोऽकारिषम्—का जप वन्ध्या को पुत्र सुख प्रदायक है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घृतवती तथा घृतं पावानः—ये मन्त्र घृत से होम करने पर, गतायु को निरोगता एवं दीर्घायुष्य प्रदायक है।

स्वस्तिन इन्द्रो—मन्त्र जप होम सर्वबाधा विनाशक है।

अन्नेन अन्नपते—का जप होम, अन्नाभावनाशन अन्नलाभ, अन्नवृद्धि कारक है।

युवासुवासा—का जप होम, विचित्र, विविध वहुवस्त्र लाभप्रद है।

काण्डात्काण्डात—मन्त्र से श्वेत व काली दूर्वा, कास, दर्भ से होम करने से गोष्ठ घर ग्राम, नगर, प्रदेश एवं राष्ट्र के उपद्रव शान्त होते हैं।

मधुमान्नो वनस्पति—के १ सहस्र होम से गूलर की समिधाओं से, रोगी, रोग से, दुःखी दुःख से, बन्धकी, बन्धन से मुक्त हो, ऋणी ऋण से मुक्त हो, धन, सम्पदा, महासौभाग्य, व्यांवहारिक पटुता प्राप्त करते हैं।

प्रमुञ्चधन्वन—इन ६ से आयुध कवच अभिमन्त्रित कर धारण करे तो शत्रु संहार करे।

नमस्तेरुद्र— का जप होम, समस्त उपद्रवनाशक, महापातक नाशक सर्वत्र शान्तिप्रद है।

आकृष्णेनरजसा—का फल उपर्युक्त व्याहृतियाँ की भाँति ही है।

पञ्चगव्य – के ५ लक्ष्य जप से चिरस्थायी लक्ष्मी प्राप्ति होती है।

यथबध्नन् दाक्षायण— से १ सहस्र, होमान्त में स्वर्ण अभिमन्त्रित कर शरीर पर या स्वर्णतापी जल, दुग्ध पान करने से रोग, उपद्रव, कण्ठमाला उल्टे मुँह के फोड़े,अदृष्ट दुष्टव्रण, शत्रु, संकट निवारण, बलवीर्य,तेजप्रद होता है।

आशुशिशानो—का फल व्याहृतियों के समान दिया गया है।

गणानान्त्वा गणपति—के जप, बहुमिश्र धान्यों से, चौरास्ता पर होम, बलिदान करने से, समस्त प्राणी वर्ग सूक्ष्म दुष्ट आत्मा ये वशी होते हैं। सप्त धान्य को पूर्वोक्त भाँति क्वारी कन्या से पिसवाकर चौमुखा या खड़ी लाल वत्ती, तिल तैल दीप अभिमन्त्रित कर चौरास्ता पर निशा में रखने पर, चौर बधिक, आतताई, जनद्रोही, घातपात कर्त्ता, दुष्ट प्रकृति वाले प्राणी वशीभूत, स्तम्भन गति अवरुद्ध, संकटापन्न होकर, चोरी या हत्या के भेद स्वत; बक उठते हैं। बन्दी कारागार से मुक्त होते हैं। न्यायालय या कारागार या राजद्वार की किसी भी सीमा में जलाने से, न्यायाधीश कारागार वाले, राज्याधिकारी वशीभूत हो जाते हैं। भागे हुए, बिछुड़े हुए ४१ दिन करने पर फिर वापिस आकर मिल जाते हैं।

शन्नोदेवी—जप होम अभिषेक से समस्त उपद्रव शान्त होते हैं।

गायत्री मन्त्र—नारायण की पराशक्ति वेदमाता है। इसका जप जन्म-जन्मान्तर से समस्त लोक-लोकान्तर के पातक, क्लेश सङ्कटों का नाशक समस्त अभीष्ट फलप्रद, दुरित अभिचारादि जनित अनर्थों का मूलोच्छेदक है।

हरि ॐ तत्सत—का प्रातः, मध्याह्न जप, 'हरि ॐ शान्ति' का सायं महानिशा में जप, समस्त अनर्थ, अघ, दुरितं, दौर्भाग्य नाशन, पराशक्ति, आरोग्य, मनोबल, इन्द्रियबल वर्द्धक, मन, आत्मा को शान्ति प्रदायक कहा है।

नेत्र ज्योतिर्वर्द्धनार्थ—गो मूत्र अथवा त्रिफला जल, अभाव में शुद्ध ताजा कूप स्रोत जल छानकर आप प्रणीत मन्त्र अ कां. १६।२ से अभिमन्त्रित कर नेत्र को खोलकर छींटे दें।

शनिग्रह दोष निवारण मणि—शुक्ल पक्ष चौथ नवमी चतुर्दशी में से कोई सी तिथि हो और पुष्य नक्षत्र भी भाग्य से मिल जायें तो, न मिले तो भी, पर्वतीय क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली बिच्छू जड़ी की जड़ को शुक्रवार को निमन्त्रण देने के उपरान्त पूजन कर शनि को ले आयें। उसके माला जैसे दाने बन वाले या टुकड़े कर १ टुकड़ा चाँदी में भरकर निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित कर प्राण-प्रतिष्ठा कर पूजा धूप देकर उपरोक्त तिथि वारों में गले में धारण करें अथवा मध्यमा अँगुली में धारण करें। यह नीलम जैसी ही फल प्रदायिनीजन साधारण के हेतु मणि है। 'शन्नोदेवी' पूजन में देखें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गठियावात—इसी बिच्छू जड़ी के पत्तों को पानी में उबालकर कुछ कुछल लें। उन्हीं की घृत में भूजी (भुजिया) बनालें। १ तोला पत्तों की लगभग १ माशा रह जायेगी। इसी को अभिमन्त्रित उपर्युक्त मन्त्र से करके १ दिन सेवन करें। यदि हाथ या होठ कँपते हों तो २१ दिन कम से कम प्रातः सायं लें।

आधाशीशी—सूर्योदय से मध्याह्न तक दक्षिण नेत्र या कर्णपुरी में होने वाले दर्द के निवारणार्थ, रविवार या भौमवार को ही ठीक सूर्योदय काल में सिर पर लाल वस्त्र ढककर ताम्र-पात्र में रक्त-चन्दन, रक्त-पुष्प ढालकर (अरुण) सूर्य को अर्घ्य दें और जल धारा में सूर्य विम्ब के दर्शन करें। यदि वैदिक मन्त्र न कर सकें तो इस सांवर मन्त्र से अर्घ्य दें।

ॐ भेषजमसि भेषजङ्गवेश्श्वायपुरुषायभेषजम्। सुखम्मेषायंमेष्ष्यै॥

वन में जाई अञ्जनी उसने जाये हनुमन्त। आधाशीशी सूर्यजा सूर्य अघन्ते पहिलेजा॥

पतित्वनी पारस्परिक द्रोह निवारण—(यावन मन्त्र)—

इलाही इलाइम औलिया लखेकुं वलेहुं। यहजनूरतयाजवाइलया आहद॥

इसे अनार की कलम से अलग-अलग कागज पर १०८ वार रक्त चन्दन से लिखें, इस मन्त्र को जपें। सन्ध्या काल में गुरुवार से २० दिन तक नित्य मन्त्र बोलते हुए बहते पवित्र जल में १।१ बहा दें। २१ वें दिन पश्चिमाभिमुख हो इसे लिखें और लोहवान, गूगल की धूप दें, कुछ चावल सिद्ध (पका) कर इसी मन्त्र के साथ २१ वार एक-एक करके मन्त्र बोलते हुए लिखे हुए को बहा दें। इसी मन्त्र को इस प्रकार सिद्ध कर, इसी से अभिमन्त्रित कर जल किसी भी प्रकार द्रोही स्त्री हो तो पति, पति हो तो स्त्री, उसे बिना जताये पिला दें। इसी विधि से निम्न वैदिक मन्त्र जो स्वयं सिद्ध हैं, करके जल अभिमन्त्रित कर द्वेषी को पिलायें।

ॐ क्लीं त्र्यम्बकंय्यजामहेसुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीय-मामृतात्। त्र्यम्बकंय्यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम्॥ उर्व्वारुकमिव बन्धनादितोमुक्षीय मामुतः॥

दौर्भाग्य दारिद्रय नाशन— लक्ष्मीनारायण का पञ्चोपचार या षोडशोपचार से पूजन कर २१ दिन अश्वत्थ मूल में १६००नित्य मन्त्र जपें, कमल-पुष्प, कमलगट्टों से सम्भव हो तो गो घृत अन्यथा तिल तैल से होम करें। उत्तम हो साथ ही रुद्राभिषेक भी नित्य करें। ऋग्वेदीय "हिरण्य वर्णा" जो इसे न कर सकें तो अनुभूत तान्त्रिक मन्त्र करें। ॐ सुवर्ण वृद्धि कुरु में गृहे श्रीः सुधान्य वृद्धि कुरु मे गृहे श्रीः कल्याण वृद्धि कुरु में गृहे श्रीः विभूति वृद्धि कुरु मे गृहे श्रीः ॐ। यह "ॐ हिरण्यवर्णा" के तुल्य ही है, जो इस द्वितीय अध्याय में है।

हजीरा (कण्ठ रोग)—इसमें कण्ठ के दोनों ही ओर (गाँठ) सी होती है। इसे कनफेर भी कहीं-कहीं कहते हैं। यह (विध्रती) जैसी होती है। पेट में भी यह हो जाती है। पककर फटकर विष फैला देती है। इसमें ज्वर स्वाभाविक ही रहता है। इसे गोमूत्र से सेकें, तदनन्तर यज्ञिय भस्म इस पर चारों ओर गोलाकार (ॐकार) बनाकर लेपे। ७ दिन करें। इस मन्त्र से गोमूत्र और भस्म अनुमन्त्रित करलें (यजुर्वेद १६।६)।

असौयस्ताम्रोऽ अरुणऽ उतबभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनंᳩरुद्राऽअभितोदिक्षुश्श्रिताः सहस्रशोवैषाᳩहेडऽईमहे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथवा लोहे की गोली लाल रेशमी वस्त्र में बाँध, अभिमन्त्रित निम्न मन्त्र से करके २१ वार यह मन्त्र नित्य पढ़ें और पीड़ित स्थान का स्पर्श करता हुआ बाँधें।

यातेरुद्द्रशिवातन्नूरघोरापापकाशिनी। तयां नस्तन्न्वाशन्तं मया गिरिंशन्ताभिचांकशीहि।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तुमाकश्चिद्दुःख भाग्भवेत।
पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः। पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपाप हरोहरिः॥१॥
न त्वहं कामये राज्यं न चापि पुनर्भवम्। कामये दुःख तप्तानां, केवलमार्ति नाशनम्॥२॥
अनायासेनमरणं विनादैन्येन जीवनम्। देहान्तेतवसान्निध्यं देहिमे परमेश्वर॥३॥
समर्पणं तवचरणाम्भोजे समर्पणंमातुरनीश्वरी, समर्पणञ्जगतां तात मात भ्रात पितुष्पिता।
समर्पणं जगदाधारं समपणं गुरु धर्मेरितान्, समर्पितं स्वीकुर्युः जगदानन्द कर प्रभो॥४॥

इति श्री आनन्दकन्द मुकुन्दपदरज मण्डित ब्रजमण्डलान्तर्गत लोहई निकाय वास्तव्यानां शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिनशाखाध्यायिनां कातीय सूत्रीयत्रिप्रवरीय वशिष्ठ गोत्रोद्भवानां ब्रह्मवर्चस्विनाम् श्रीमदारामीरामशर्मणाम् प्रपौत्रेण गोकलविन्दोपासकानां शान्तदानाद्विज वराणां श्रीमद्धूरेलालशर्मणामात्मजेन विविध विद्याविद्योति तनाः करणानां पदवाक्य प्रमाण तत्त्वज्ञानांवेद विद्या ज्ञानप्रदायिनां श्रीमच्छंकर-चरणचञ्चरीकानां गुरुवर्याणाम् श्रीमद्विजय प्रकाशाचार्याणाम् श्रीमद्भीष्मदत्तवेदपाठिनाञ्चान्तेवासिना सर्वतंत्र स्वतंत्रेण वृन्दावन विहारिणांपादाम्बुज समुपासकेन श्रीमद्राधागोपाल विद्वद्वराणांचरणचञ्चरीकेन श्रीकेशवदेव शास्त्रिणा विरचितः कर्मजभवव्याधि दैवीचिकित्साविज्ञानस्यद्वितीयोऽध्यायः। (सम्पादक)

इति श्री कर्मजभवव्याधि–दैवीचिकित्सा–ग्रन्थस्य द्वितोयोऽध्यायः।

नोट—यह यज्ञीय विधि आगे के सभी कार्यों में विहित है आगे के पृथक् २ प्रकरणों या कार्यों के प्रधान देवताओं का आवाहनादि तथा तत्कर्मों के अभीष्ट फल के विनियोगों में ही अन्तर होगा। जहाँ अवमार्जन होगा वहाँ आज्य-तन्त्र नहीं, जहाँ आज्यतन्त्र होगा वहाँ अवमार्जन (झाड़ा) नहीं होगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ 卐 ॥

ॐ यदाशसा वदतोमेविचुक्षभेयद्याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनितन्वोऽमे विरिष्टंसरस्वती तदा पृणद्घृतेन ॥१
सप्तक्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रेपुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभेइदस्योभेअस्यराजतउभेयतेतेउभे अस्यपुष्यतः ॥ (अथर्व० ७।५७)

ॐ पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिगुणेभिरावृतम् । तस्मिन्यद्यमात्मन्वत्तद्वैब्रह्मविदो विदुः ॥१

नव द्वार वाला कमल, (सत्त्व, रज, तम) तीन गुणों से घिरा हुआ है । उसमें जो आत्मा वाला पूज्य देव है, उसे ब्रह्म ज्ञानी जानते हैं ।

ॐ एषा सनत्नीसनमेव, जातैषा पुराणी परिसर्वं बभूव । सैकेनैकेन मिषता विचष्टे ॥२२

यही सनातन शक्ति है, जो सनातन काल से विद्यमान है, यही पुरातन शक्ति सब कुछ बनी है, जो अकेले-अकेले प्राणी के साथ दीखती है ।

ॐ येनदेवाः स्वऽरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेनगेष्म सुकृतस्यलोकंधर्मस्य व्रतेनतपसायशस्यवः ॥३॥

जिसकी सहायता से देव शरीर का परित्याग करके, अमृत केन्द्र (आत्मीय प्रकाश) पर चढ़े थे, उस प्रकाश-पूर्ण के दृढ़ व्रत और कृच्छ तप से, यज्ञ वृद्धि कामी हम, सुकृत के लोक में अपने स्थान को प्राप्त करेंगे ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ कर्मजभवव्याधि-दैवीचिकित्सायाम्

* वृहच्छान्ति विधिः *

तृतीयो अध्याय

कर्मज, पापज, शापज, दैहिक, दैविक, आध्यात्मिक, एवं समस्त संकट मूल व्याधियों का उल्लेख, एवं, धर्मशास्त्रीय, अथर्वज्योतिर्विज्ञान, हस्तविज्ञान अनुभूत चिह्नविज्ञान, एवं प्राणविज्ञान द्वारा निदान जो प्रथम अध्याय में वर्णित हैं। उन सभी की, और जिनका उल्लेख नहीं भी किया है अथवा जो भविष्य में भी अपने विचित्र विभिन्न विकृत विकराल रूपों में हों, उन सभी के निराकरण की सर्वोच्च, सार्वभौम, सर्व वेदमयी वृहच्छान्ति विधि का उल्लेख निम्न भांति से प्रस्तुत है। यह आधुनिक परमोच्च न्यायालयीय "रिटपिटीशन" जैसा है जिसका कोई समय, कोई साधन, कोई नियमोपनियम कोई चारा शेष न हो, उन सभी के अभाव में यह "वृहच्छान्ति विधिः" सक्षम सफल प्रभावशाली वर्णित है।

द्वितीय अध्याय में भू शुद्धिः, आसन शुद्धिः, सूरक्षा और शान्ति जलाभिमन्त्रण विधि आ चुकी है। वह सब इसका अङ्ग है। इसके साथ उसका प्रयोग करें। यद्यपि यह अकाट्य तर्क है कि :—चराचर जगत प्रतिक्षण, जागते, सोते, अनवरत शुभाऽशुभ कर्म करता रहता है। कृतकर्म "आयु, भोग, प्राण" इन तीन समभागों में विभक्त होता है। इन तीनों का परस्पर अभेद्य, अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। इसी का शुभाऽशुभ फल दैव बनकर प्राणियों को भोगने की विवशता होती है। 'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमित्युच्यते"। "नाभुक्तं क्षीयतेकर्म" बिना भोगे यह कर्म क्षय भी नहीं होता। "अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्" शुभा अशुभ कृत कर्म, अनिवार्य रूप से भोगने की विवशता होती है।

मूर्खोवा पण्डितो वापि नारी वा देव एव वा। प्रारब्धं वर्तमानं तु भोगादेवप्रणश्यति ॥

मूर्ख हो या पण्डित, नारी हो या देव, पूर्वकृत कर्मरूप वर्तमान प्रारब्ध (दैव) भोगने से ही नष्ट होगा। यह श्रुति है। इस भोग के कारण ही—

मरणं व्यसनंञ्चैव बन्धनंञ्च विशेषतः। प्रणिपातोन्मत्ततावामि दैवोपहतिरेवच पुत्राविधननाशश्च गृहे दोषान् बहूनपि ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मरण, दुर्व्यसन, बन्धन (दासता, कारागार, ऋण बन्धनादि) दैवी उत्पात उन्मत्तता, निर्ऋति, वज्रपातादि पतन, अधःपतन, पुत्र, धन, गृहादि नाश, ये अनेक भाँति से, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्रोह, भिन्न मति, भाग जाना, आदि-आदि अनेक प्रकार हृदय विदाही, शिर को नीचा बना देने वाले, गर्व, खर्वादि के रूप में भोगने पड़ते हैं।

प्रत्यक्षानुमत्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एवं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदिता ॥

प्रत्यक्ष या अनुमति से जिसका समाधान दृष्टिगोचर या बुद्धिमें नहीं हो सके, उसे वेद से ही जाना जा सकना सम्भव है यही वेद की वेदता है।

अथर्वासृजतेघोरमशुभंशमयेत्तथा अथर्वारक्षतेयज्ञं यज्ञस्यपतिरङ्गिराः।

ब्रह्माशमयेन्नाध्वर्युर्नच्छन्दोगो न वह्वृचः। रक्षांसि रक्षति ब्रह्मा, ब्रह्मा तस्मादथर्वविदः।

अथर्ववेद, महाभयङ्कर होने वाले, अशुभ के शमन करने में पूर्ण समर्थ है। ये ही यज्ञों के रक्षक यज्ञाचार्य अङ्गिरा हैं, जो दिव्य, अन्तरिक्ष, भौमादि अनेक भाँति के उत्पातों के शमन करने वाले ब्रह्म वेदज्ञ हैं, अथर्वविद राक्षसों अनाचारों आदि के विनाशन में समर्थ होता है।

यत्र ज्योतिरजस्रंयस्मिँल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षिते ॥

(ऋ. ये. ९।११।७)

इसी का समर्थन निगम् (३।७।२०) ने किया है।

समत्वमाराधनमच्युतस्य। सममतिरात्मा सुहृद्विपक्षपक्षे। न हाति न चहन्ति किञ्चिदुच्चैः।

इस उपर्युक्त भोगरूपाप केशमन में एक मात्र वेद "योग यज्ञ अध्यात्म रूप से पूर्ण स्वतः प्रामाण्य, कामधेनु ही है। इसके आश्रय से ही स्वर्ग आदि की उपलब्धि सुलभ हो सकती है।

दुःखेन यन्नसंभिन्नं, न चग्रस्तमनन्तरम्। अभिलाषोपनीतं यत्सुखं स्वर्गपदास्पदम् ॥

यही नहीं "वेद" भोगरूप पापसमुच्चयरूप, शुष्क काष्ट के, दहन कर देने वाली और अमृतवृष्टि से, पुनः प्राणवान् "बना देने वाली सरल सुबोध विधि है। ऋग्वेद ८।८।१६ मुञ्चामित्वा" के विधान में वर्णित है कि कृतकर्म के मूलभूत कारणं के निराकरण में समर्थ, वैदिक, विधि के अनुशरण से कर्मक्षय होकर पुण्यवृद्धि के साथ १०१ मृत्युयें आदि नष्ट होकर दीर्घायु प्राप्त कराने में योग यज्ञ, जप समर्थ हैं।

ऊर्ध्वरेखाप्रदधते विष्णुरिममिन्द्राग्नी अमृतं जुषेथाम। मह्यं दधाना उपदीर्घमायुरस्मेधत्तं पुरुभुजापुरन्धिः ॥

सारांश कृतकर्म काक्षय नही हो सकता; यह भ्रमपूर्ण कहा जा सकता है अन्यथा अपौरुषेयवेदज्ञान व्यर्थ हो जायगा। "वेद" की प्रामान्य विधि, कृतकर्म भोग परिक्षय में पूर्ण समर्थ है जिसकी अनुभूत विधि का यहाँ उल्लेख है।

"बृहस्पतेजनं सुनीतिभिः नयसि, तं अहः म अश्नवन"।

जिसको ज्ञानी (गुरुदेव) उत्तममार्ग से ले जाते हैं, उन्हें पाप नहीं खा सकता है। "सुगोपाः यं रक्षसि, अस्मात् इत् विश्वाः ध्वरसः विवाधसे" सर्वोत्तम रक्षक ज्ञानी (गुरुदेव) जिसकी रक्षा करते हैं, उसका हिंसक कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते है। परन्तु "ब्रह्मद्विष तपनः मन्यु भीः असि" वेदज्ञानी (गुरुदेव) ऐसे ज्ञान द्रोही पापी को नष्ट कर डालता है।

यः नः हरःअभिदधे तंस्वा दुच्छुनाहरस्वतीमर्मर्तु"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो ज्ञानी भद्रपुरुषों के प्रति कुटिल बुद्धि का प्रयोग करता हैं, वह दुष्ट अपनी ही स्वयं की कुटिल बुद्धि से मारा जाता है। "ये अभिद्रुहः पदे निरामिषः, हृदिदेवानां व्रयः वि ओहते, स्तेनभ्यः नः मा" जो दूसरों से अकारण द्रोह करते हैं, हृदय में देवताओं का द्रोह करते हैं, ऐसे चोर दस्युओं से हमें भय न हो। "अरणः न कि" छल कपट से समृद्धि की चेष्टाओं वाले, प्रथम ही समृद्ध दृष्टिगोचर होते हैं, पर अन्त में समूल नष्ट हो जाते हैं। मनु जी का कथन है—

अधर्मेणैधते तावत्तत्तो भद्राणिपश्यति। ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तुविनश्यति॥

अधर्मी, प्रथम अधर्म से बढ़कर, अपने चारों ओर समृद्धि देखता है। तदनन्तर अपने शत्रुओं को जीतता है, अन्त में समूल नष्ट हो जाता है। "भूर्यक्षः अन्तः वृजिना उतसाधुपश्यान्ति" देवगण अनेकों आंखों वाले होने के कारण की कुटिलता और सज्जनता सभी को देखते रहते हैं। " **यजतः दित्सन्त भूयः चिकेत्** "।

वह पूज्य देव परोपकारी को और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है। "दाशुषेपुरूणि अप्रतीनिदाशत्" दानी को वह अप्रतिमधन भी देता है। इस सब को भलीभांति गहनता से विचार, ज्ञानी, गुरु, देव, यज्ञाधिपति से ही यह कामना करें। "श्रेष्ठानि, द्रविणानि, दक्षस्य चित्ति सुभगत्वं, रयीणांपोषं, तनूनां अरिष्टि वाचः स्वाद्मानं, अह्नांसुदिनत्वदेहि" हे देवी तू ही हमें श्रेष्ठधन, वल, सौभाग्य, ऐश्वर्य की वृद्धि, शरीरों की नीरोगता, वाणी की माधुर्यता, और उत्तमोत्तम दिन प्रदान कर "वीर्यैः साकं वृद्धः" मनुष्य अपने शुभ कर्मों के कारण ही वढ़ता जाता है। "उदिजः अप्तुरः मनोषिणः यज्ञेनगातुं विविद्रिरे" समृद्धि कामी, तथा शीघ्र कार्य सम्पादनकर्त्ता, धीवान "यज्ञ" के द्वारा ही योग्य मार्ग का पता लगाते हैं। "विश्वासांधियां ऊधः" सभी उत्तम कर्मों का स्रोत "यज्ञ" ही है। "यज्ञोवैश्रेष्ठतमंकर्म" यह यज्ञ निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ कर्म हैं। "यजीयानऊर्ध्वस्तिष्ठति" यज्ञकर्त्ता सदा उन्नत रहते हैं। "वेधसांमनीषाप्रतिरति" यज्ञ से धीवानों की भी बुद्धि बढ़ती है। "ज्ञान का महत्व" "शूपंप्रविदा" सच्चा सुख ज्ञान से ही प्राप्त होता है। "विप्रः एषां यन्ताः" ज्ञानी ही मनुष्यों पर शासन कर सकता है। मनु जी का कथन है—

सैनापत्यञ्च राज्यश्च दण्डनेतृत्व सेवच। सर्वलोकाधिपत्यञ्च वेदशास्त्र विदर्हति" ॥

वेदशास्त्र ज्ञाता सेनापति का कार्य, राज्यसंचालन, दण्ड देने का कार्य और सब मनुष्यों पर शासन का कार्य कर सकता है। " विजानन् तमसः ज्योतिः वृणीत।" ज्ञानवान ही मृत्युरूप अन्धकार को पार कर के परम ज्योति को प्राप्त करता है। ब्रह्मणः शिरः" ज्ञान द्वरा सभी का मस्तिष्क प्रकाश युक्त होता है। "बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति" वुद्धिज्ञान से ही शुद्ध होती है।

यज्ञ से लाभ—यज्ञ शब्द वहुव्यापक है, केवल आहुति मात्र डालना तो यज्ञ का स्थूल रूप है। इस यत्र का सूक्ष्म अर्थ है मन, वाणी और इन्द्रियों द्वारा होने वाला समस्त व्यापार देवों, महापुरुषों, दीनों निर्वलों, निराश्रयों की सेवा, राष्ट्र का संगठन द्वारा अभ्युदय, दानादि देवों के मार्ग का अनुशरण करते हुए स्वयं को श्रेष्ठ बनाते हुए परमजोति को प्राप्त करना। 'सुकृत्यया अमृतत्वएरिरे" मनुष्य यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों से ही "अमृत" को प्राप्त करते हैं। "इद ब्रह्म भारतं जनं रक्षति" यह वेदज्ञान ही भारतों की रक्षा करता है। (भा-तेजः तस्मिन्रताः ये, ते भारत जो तेज में सदा रत रहते हैं, अपने सभी कर्म या आचरण, जो तेज के प्राप्ति हेतु ही निरन्तर करते रहते हैं वे भारत कहलाते हैं। ऐसे तेजस्वियों के निवास के कारण ही यह हमारा देश आर्यावर्त "भारत" कहलाया। वेद उन तेजस्वी आर्यों "भारतों" की अमूल्य निधि है। इस तेज से रक्षित रह कर उन भारतों ने सर्वत्र अपना यज्ञ "वेदज्ञान" फैलाया। यह वेदज्ञान ही 'ब्रह्म" महान् और सर्वत्र व्यापक है। यह शाश्वतकाल से चला आ रहा सनातन ब्रह्म है। वेद परमात्मा के द्वारा प्रगट हुए हैं। इस कारण इन वेदों में (ब्रह्म) में परमात्मा की ज्योति निहित है। इसी ज्योति के मार्ग का अनुशरण समस्त कर्म विपाक को भस्मीभूत कर पापपूत बनाकर, परमज्योतिस्वरूप अमृत सिन्धु की निरतिशय आनन्ददायिनी तरङ्गों से अमृत रसपान कराने में समर्थ है। यही "ब्रह्मवेद" अथर्व वेद की कर्मजभव व्याधि निवारिणी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विधियों का गृह्यसूत्रोक्त वरणन का श्री गणेश किया जाता है। यह स्वयं का ३० वर्षों का धर्म गुरुओं के तत्त्वावधान में बहुविधि से अनेकों ही बार का अनुभूत, भारत सरकाव की विशेषज्ञ समिति के उद्भटमनीषियों द्वारा मान्यता प्राप्त मात्र विषयों का ही इसमें विवरण है। सर्व प्रथम वृहच्छान्ति विधि वर्णित है। अन्य विधियांक्रमशः वर्णित की जयेंगी। दयालु मनीषी पाठक, स्वयं भी गहनतासे देश, काल पात्र के आधार पर विचार कर कार्य करने की कृपा करें।

अंहोलिङ्गगण—"आशा नाम आशापाला" (१।३१-१) "अग्नेर्मन्वे" (४।२३,से २६) या ओषधयः सोमराजीः (६।९६) एक "वैश्वानरोन आगमत्" (६।३५-२) "शुम्मनीद्यावा पृथिवी" (७।११७-१), "यदर्वाचीनम्" (१०।५-२२) "मुञ्चन्तुमा" (११।६) "भवशर्वाविदम्" (११।६।६) "या देवीपञ्च" (११।६-२२) "यन्मातली रथ०" (११।६-२३) इन चार को छोड़ (अग्निब्रूमो) (११।६) अर्थसूक्त सहित-अंहोलिङ्गगण वर्णित है। परन्तु वैतान सूत्र (७।३) में निदिष्ट-यज्ञकर्म में व्याधित यजमान या माणवक के ऋषि हस्त से शरीर के अनुमन्त्रित करने में अंहोलिङ्गगण के कार्यों में निम्नसूक्तों को भी रक्खा गया है। "अक्षीभ्यांते" (२।३३) "मुञ्चामित्वा" (३।११) "उतदेवाः" (४।१३) **लघुशान्तिगण** में निम्न सूक्त है। ये सूक्त हैं। "अम्बयोयन्ति" (१।४) शंभुमयोभू, (१।५,६) हिरण्यवर्णाः (१।३३) शतातीयं (४।१३) यद्यन्तरिक्षे (७.६८) पुनर्मैत्विन्द्रियम् (७।६६) शिवानः (७।७१) शंनो वातो वातु (७।७२) अग्नि ब्रूमोवनस्पतीन् (११।६) उत देवा (४।१३)। ये दोनों लघु तथा व्रहत् शोन्तिगण ही कहे हैं परन्तु इनमें अपांसूक्त ('।४,-५, ६,३३) यददः (३।१३) पुनन्तु मा (६।१९) सस्रुषी (६।२३)। प्रातरग्निम् (३।१६)के उपराग्त समस्तपूर्णशान्ति पुष्टि मेधाजनन् आदि कर्मों में इन तीनों, **'अपांगण'** लघुशान्ति एवं वृहच्छान्तिगण से ढाक-आम-गूलर आदि शान्ति (यज्ञिय) वृक्षों की समिधाओं पर तिल आदि से होम करे। लाभ हानि जय पराजय आदि अभीष्टकर्म की सिद्धि या असिद्धि के ज्ञानार्थ निर्मित खीर आदि का भोग, कुशोदक से अभिमन्त्रित जल से छोंटे स्नान आदि तथा जप उपस्थान करे।

वृहच्छान्तिगण में—निम्नसूक्त विहित हैं। "अपनः"(४।३३);"अग्नेर्मन्वे" (४।२३से२९ पर्यन्तु, "पुनन्तुमो" (६।१९); "सस्रुषी" (६।२३) "अम्वयोयन्ति" (१।४) "शंभुमयोभूः" (१।५,६) "हिरण्यवर्णाः" (१।३३) "निस्सात्नाम्" (२।१४) "ये अग्नयो" (३।२१) "व्रह्मजज्ञानम्" (१।१-१ मात्र) उतदेवा, (४।१३); "हिमवतः प्रस्रवन्ति" (६।२४) "वायोपूतपवित्रेण" (६।५१) शंचनोमयश्चनः (६।५७-३) "अनड्डुचस्त्वं प्रथमम्" (६।५९) मह्यमापो (६।६१) वैश्वानरोरश्मिमि; (६।६२) यमोमृत्युः (६।६३) विश्वजित् (६।१०७) "संज्ञानं नो" (७।५४) यद्यन्तरिक्षे (७।६८) "पुनर्मैत्विन्द्रियम्" (७।६६) शिवानः (७।७१) शंनोवातो वात (७।७२) "अग्निब्रूमोबनस्पतीन्" (११।६) ये ही वैतानसूक्त (३।६) तथा कौशिकसूक्त (१।६) में निर्दिष्ट वृहच्छान्तिगण के नाम से ख्यात है। तदनन्तर "प्रातरग्निम्" (३।१६) "गिरावरगराटेषु (६।६९) दिवस्पृथिव्या; (६।१) ममाग्नेवर्चः (५।३) सूक्तों से उपस्थानमुद्रा से व्याधित को सूर्योन्मुख खडाकर भगवान भास्कर का उपस्थान कराये।

तदनन्तर अध्याय २ की यज्ञतन्त्र में वर्णित विधि से अग्नि आदि स्थापन कर इन्हीं लघु अथवा वृहच्छान्तिगण से होम कराये। यज्ञ में मार्जन न करें अभिषेक कर्म में कालावस्त्र जो पूर्वनिर्दिष्ट है विहित नहीं है। इस वृहच्छान्तिगण के साथ आयुष्यकामी आयुष्कर्म में वर्णित गण से अर्थार्थी, अर्थोत्थापनगण से; मेधा तथा वर्चष्कामी-उनगणों से विशेष कर्म में होम करै।

पूर्वोक्त विधि से जिस स्त्री के बच्चे मर जाते हों या गर्भ क्षीण हो जाते हों या मासिकधर्म होकर यौवनापन्न होते हूए भी बन्द हो गया हो या मासिक धर्म होता ही न हो, या एक सन्तान होकर बन्द होगई हों (काकवन्ध्या) या सन्तति होती ही न हो या कन्या ही होती हों, वन्ध्यादोष निवारण विधि में निर्दिष्ट विधि से तीनमण्डप बनादोष का परिहार करै। यदि किसी कुल में स्त्रीं-गौ-घोड़ी महिषी हस्तिनी सभी वन्ध्या ही हों और फलदार वाटिका भी फल न दे, कृषि हानिकर हो पशु (युवा) पुरुष-कुमारों की मृत्यु हों भूमि आदि विवादों में धन क्षय हो गया हो उद्यम सभी प्रकार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से हानि कर हो तो वह चर दैवहत होता है उस सबकी भी उपरोक्त विधि से शान्ति करे। फूलदार वृक्ष यज्ञिय वृक्ष, देवमन्दिर कूप वापी, प्याऊ यथाशक्ति बनाकर जन हितार्थ दान करें। रक्षातन्त्र करे अर्थात् मणि आदि विघ्न शमनार्थ तेज-बल-वर्च की अभिवृद्धचर्थ धारण कराये।

द्वितीय अध्याय की विधि से जल अभिमन्त्रित करने के उपरान्त नित्य कर्म से निवृत होकर शिखा बन्धन के साथ यज्ञोपवीतधारण कर द्वितीय अध्याय की विधि से भू शुद्धि, आसनशुद्धि आचमन: प्राणायाम गुरु, इष्ट वन्दना कर सङ्कल्पादि के उपरान्त पूर्व पीठपूजा करें उत्तर तन्त्र विधि (यदि होम करें) सम्पन्न करें। दिकरक्षा, आसन रक्षा निम्न प्रकार करें। औद रक्षा के लिये पीली सरसों लेकर निम्न मन्त्र से सभी (दशों) दिशाओं में पूर्व से प्रारम्भ करते हुए छिड़कें।

निरस्तः परागवसुः सहपाप्मना निरस्तशोऽस्तुयोऽस्मान्द्वेष्टियञ्चवयंद्विष्मः।
विशोर्षाणंत्वाष्ट्रं अहनन् अरूनुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रावच्छन्॥

बल-विजय, पुष्टि पशुप्राप्ति, पशुवृद्धि (पशु से इन्द्रियगण) भी यहां समझे) में परचक्र, कुचक्र, भूत, चोर, यातु-राक्षसादिभयनिवारणार्थ आसनीय देवों का ध्यान करें। इन्द्रप्रशिष्टा वरुणप्रसूता, अपः समुद्राद्दिवमुद्वहन्तु इन्द्र प्रशिष्टा वरुण प्रसूता दिवस्पृथिव्याः श्रियमावहन्तु जल सूक्त से यज्ञभूमि को छीटे दें। "ॐ शणञ्चमा" (२१४-५) ऋचासे आसन डालें "पृथि यैश्रोत्राय" (६।१०) से पवित्र करे। यदि पूर्व जन्म कृतपाप शाप से युक्त कोई व्यथा हैं तो "वेनस्तत्पश्यत" (२।१) से परमधामका अनुमन्त्रण करें, तदनन्तर 'दिव्योगन्धर्व" (२।२) से त्रिभुवनाधिपति का अनुमन्त्रण करे, पुनः "येत्रिषप्ता" (१।१) से गुरुदेव का "ॐ अयसञ्चव्यचसञ्च" (१६।६८) से वेदाधिपति का अनुमन्त्रण करे। "ॐदीर्घायुत्वाय" (२।४) से अर्जुन के अभाव में ढाक के पत्तों को "इन्द्रजुषस्व"(२।५) से सेंमर, अभाव में (सिरस) शमी जो भी सम्भव हो कीपटली (लकड़ी) को अभिमन्त्रित करे किसी भी प्रकार की कर्मज व्याधि-कृत्याः अभिचारजनिय उत्पात उन्माद, ज्ञात अज्ञात व्यक्त, अव्यक्त व्याधि युक्त को प्रथम पूर्वोक्त अर्जुन या ढाक के पत्ते पर उपरोक्त अभिमन्त्रित पटली को रखकर पुनः 'पृथिव्यैश्रोत्राय" (६।१०) से पवित्र कर उस पर बिठाये, एक वस्त्र से ही अर्थात् अर्द्ध को धारण कर अर्द्धवस्त्र से तन ढक काला वस्त्र शिर पर ढकले। उपरोक्त औषधियों को अभिमन्त्रित कर ढाक के अभिमन्त्रित पत्ते में रखकर पोटली बना कलावे से लपेट कर व्याधित के शिर पर रखदे उपरोक्त अभिमन्त्रित शान्ति वृक्षों की टहनियों को कुशा से बाँध व्याधित्व के ऊपर शिर पर तोरण की भाँति लटका दे। समय तारागण से युक्त निशा में (एकान्त शान्त, निर्जन स्थान नदीतट या पावन भूमि अश्वत्थमूल में करें) रोगी (व्याधित) को पूर्वोत्तर ईशानाभिमुख बिठाकर आचार्य योग्य याज्ञिक द्वारा बृहच्छान्तिगण से अवसेचन करायें। तदनन्तर विधिवेत्ता विद्वान आचार्य "अपनः शोशुचदघम्" (४।३३) को पढ़ते हुए, उपरोक्त अभिमन्त्रित घट के जल से ही स्नान करायें। व्याधित जीर्ण वस्त्रादि का परि त्याग कर श्वेत-चौल वस्त्र, गन्ध मालादि धारण करें।

अ० कां १० सू० ५ मन्त्री २२२ सिन्धुद्वीपऋषिः आपश्चदेवता। त्रिपदाविराठ् गायत्रीछन्दः। गतवर्षत्रय जन्मत्रयकृत असत्यभाषण, चौर, हिंसादिपाप जनित कर्मजभवव्याधिभैषज्ये, अंहसोन्मूलने, स्वस्त्ययने अभ्युदये निश्रेयसेः जलाधिष्ठात्री वरुणदेवस्तवने, मार्जने, स्नाने सूर्योपस्थाने होमेचविनियोगः।

ॐ यद॑र्वाचीनँ त्रैहाय॒णादनृ॑तं किं चो॑दि॒म।
आपो॑मा॒तस्मा॑त् सर्व॑स्मात् दु॒रि॒तात् पान्त्वंह॑सः॥२२

अ. कां. १४ सू. २ ऋचा ४५ सूर्यासावित्री ऋषिः। मंत्रोक्तादेवाः। अनुष्टुपछन्दकर्मजभव व्याधि भैषज्य कर्मणि मार्जने, जपे स्नाने, उपस्थाने होमेच विनियोगः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ शुम्भंनी द्यावा पृथिवी अन्तिसुम्ने महिंव्रते ।

आपः सप्त सुस्त्रुबुर्देवीस्ता नौ मुञ्चन्त्वंहसः ।।४५

कां १४ सू २ मं ४५ 'शम्भिनी' । द्यौ और पृथिवी दोनों ही लोक समीप से अत्यन्तसूखप्रद, सुशोभित दृढ़ व्रतपालक हैं । दिव्यप्रवाही सातों ये जल प्रवाह हम सब की पाप से रक्षा करें ।

अ० कां ७ सू ११२ (११७) वरुण ऋषिः । आपोवरुणश्चदेवते । अनुष्टुप १ भुरिककन्दांसि महानकल्याण निधि, द्यौ एव भूलोकस्थदिव्य यज्ञस्रोतादि (कर्मेन्द्रिय मन बुद्धिप्रभृतिक सप्तसूर्यरश्मयश्च) शाप पापादि कर्मजभवव्याधि एवं यमवरुणादि समस्त देव उपशमनार्थे पूर्णस्वस्त्यने नैरुज्ये अंहसोन्मूलने सतताभ्युदये, निश्रेय से कर्मजव्याधिभैषज्ये उपस्थाने जपे मार्जने स्नाने, भैषज्य पुरोडाशादि अनुमन्त्रणे, होमे च विनियोगः ।

शुम्भंनी द्यावांपृथिवी अन्तिसुम्ने महिंव्रते । आपं; सप्त सुंस्त्रुवुर्दे वीस्ता नौमुञ्चन्त्वंहसः ।।१

मुञ्चन्तु माशपथ्या३ु दथौ वरुण्याऽदुत ।

अथोयमस्य पड्वीशाद् विश्वंस्माद् देवकिल्बिषात् ।।२

"वैश्वानरो न अतये" (६।३५) तथा ऋत वानं वैश्वानरम् (६।३६) इन तीनों ऋचाओं से समस्त भैषज्य कर्मों में जल हल्दी घी आदि पेय पदार्थ अभिमन्त्रित कर पिलायें । कौ. ४।७ अंहोलिङ्गगण कार्यों में भी है 'या ओषधयः' (६।९६ अंहोलिङ्गगण है । इन तीन ऋचाओं से ब्राह्मणशाप निवारण तथा जलोदर की भैषज में सोमलता या गिलोय अग्नि में डालकर रोगी, दोषी की धूप दें । शहद, दही अभिमन्त्रित कर पिलायें । दूध को मट्ठा में मिलाकर अभिमन्त्रित कर पिलाये । दही, शहद, दूध और जल मिलाअभिमन्त्रित कर पिलायें । कौं. ४।७ । इसीसे असत्य भाषणादिकावरुणादि शाप भी दूर होता है श्रुतिः "अनृते खलुवैक्रियमाणे वरुणोगृह्णति" वै. वा. १।७।२ ६। "मायाः पाशाः अभि द्रुहे रिपवे- विचृता" इन वरुणदेव की माया और फांसे जनद्रोहीं, पापी शत्रुओं पर ही फैले रहते है "मदागः रशनाइवश्रथय" हे वरुण मेरे पापोंकी रस्सी के समान मुझसे शिथिलकर । प्रार्थना करे अस्य कां ६ सू. ३५ कौशिक ऋषिः । वैश्वानरोदेवता अंहसोन्मूलने उपयुक्तव्याधि भैषज्ये होमे मार्जने उपस्थाने च विनियोगः । "दीर्घाः तमिस्त्राः नः मा अभिनशत् । मृत्यु- रूप दीर्घान्धिकार हमें कभी व्याप्त न हो । प्रार्थना करें ।

वैश्वानरो नं ऊतय आप्रयांतु परावतंः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुपं ।।१

वैश्वानरोन आगंमदिमं यज्ञंसजूरुपं । अग्निरुक्थेष्वंहसु ।।२

वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोमं मुक्थं चं चाक्लृपत् । ऐषुंद्युम्नं स्वऽर्यमत् ।।३

कां ६।३५ "वैश्वानर" विश्वविधाता, अपने दिव्य धाम से, हमारे संरक्षणार्थ, हमारे समीप पधारें और वे तेजोमयदेव हमारी उत्तम स्तुतियां स्वीकार करें । स्तुतिकाल में, वह प्रेमधाम, दयालु इस हमारे यज्ञ में पधारे । विश्व स्रष्टा, ज्ञानी ऋषियों के दिव्य स्तोत्रों को समर्थ, तेजोमय आत्मशक्ति से स्थिर, समर्थ करता आया है ।

अ० कां ६ सू ९६ भृग्वाङ्गिरा ऋषयः वनस्पति, सोमदेवते, अनुष्टुप ३, त्रिपा द्विराट् नाम गायत्रीछन्दांसि दुर्वचन, निष्ठुरवचन, नेत्र, मन, वाणी, ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय जनित जागृतस्वप्नावस्थादिषुकृतः ज्ञात, अज्ञात पापजनित समस्त कर्मजभवव्याधिषु, एकोत्तर शतसख्याकापमृत्यु, निर्ऋति (दुर्गति) जनितदारुणवन्धनादि घोरक्लेश प्रद, संकटादि निवारणभेषज्ये, मार्जन, लेपने स्नाने उपस्थाने, होमे, भेषज; पुरोडाश; रसादि अभिमन्त्रणे च विनियोगः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अ. कां. ६। सू.९६ चिकित्सासूक्तस्य १–३ भृग्वङ्गिराः। ऋषि। वनस्पतिः, ३ सोमः देवता–अनुष्टुप्, ३ त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री छन्दांसि. अंहोन्मोचन भैषज्य कर्मणिविनियोगः।

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः बृहस्पतिप्रसूतास्तानोमुञ्चन्त्वंहसः ॥१

मुञ्चन्तुमाशपथ्या३दथो वरुण्याऽदुत। अथोयमस्यपड्वीशाद्विश्वस्माद्देवकिल्विषात् ॥२

यच्चक्षुषामनसायच्चवाचोपारिम जाग्रतोयत् स्वपन्तः। (२९६)

सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥३

"शयेनोऽसि" (६।४८) तथा "अग्निः प्रातः सवने" (६।४७); "यथासोमः प्रातः सवने" (६।१।११) से प्रातः; मध्याह्नः; सायं-यथाक्रम, सन्ध्या के उपरान्त होम करें। वैं० (३।११) ये सवन त्रयरूप ही सोमयागः है। वे सवन गायत्र, त्रैष्टुभ, जागत के क्रम से नियत छन्दरूप हैं। 'अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वा' (ऋग्वेद) १०, १३०, ४)

१–३ अङ्गिराः, प्रचेताः। श्येनः, २ ऋभु, ३ वृषा। उष्णिक्।

श्येनोऽऽसिगायत्रच्छन्दाअनुत्वारभे। स्वस्तिमा संवहास्ययज्ञस्यो द्दचि स्वाहा ।१

ऋभुरसिजगच्छन्दाअनुत्वारभे। स्वस्तिमासंवहास्ययज्ञस्योद्दचिस्वाहा ॥२

वृषाऽसित्रिष्टुप्छन्दाअनुत्वारभे। स्वस्तिमासंवहास्ययज्ञस्योद्दचिस्वाहा ॥३

"य आशानाम" (१।३१) यह अहोलिङ्गगण तथा वास्तुगण कार्यों में है। इसीसे धूम्रकेतु, उल्कापात, भूचाल भूस्स्खलन, आदि अश्रुत, अनज्ञात अनहोनी सारी ही वातों से उत्पन्न समस्त दोष तथा समस्त शान्तिकार्य, ग्राम नगर देश सीमा आदि निर्द्धारण सरक्षण सम्वर्द्धनार्थ, छीटे दें, स्नान करायें, देव उपस्थान, देव, पितृ,ऋषि, लोकपाल दिक्पालादि के लिये होम; जप, उपस्थान पूजा दान आदि करें। कौ. ५।२०।१३।३५ तथा ८।६। अश्वमेधयज्ञ में छोड़े अश्व की दिशाओं की रक्षाकार्यवाही करें। "याः दूरे या तडितः अरातयः सन्तिताः अन् अप्नसः जम्भय" जो अहित कारी शत्रु गण हमारे पास हों या दूर उन अकर्मण्य, निन्द्यकर्मी, कर्म हीनों को आप नष्ट कर दो प्रार्थना करें।

अ. कां. १ सू ३१ पाशमोचनम्। १-४ ब्रह्माऋषिः। आशापालाः, (वास्तोष्पतिः) देवता अनुष्टुप् ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् छन्दांसि अंहोन्मोचन भैषज्यकर्मणि विनियोग।

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः इदंभूतस्याध्यक्षेभ्योविधेमहविषावयम् ॥१

य अशानामाशापालाश्चत्वारस्थनदेवाः। तेनोनिर्ऋत्याः पाशेभ्योमुञ्चतांहसोअंहसः ॥२

अस्रामस्त्वाहविषायजाम्यश्लोणस्त्वाघृतेनजहोमि।

य आशानामाशापाल स्तुरीयो देवाः सनः सुभूतमेह वक्षत् ॥३

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्तिगोभ्यो जगतेपुरुषेभ्यः।

विश्वं सुभूतंसुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेवदृशेम सूर्यम् ॥४

का १ सू ३१ "आशानाम" जगताध्यक्ष से निर्मित जगत के ये चार अध्यक्ष हैं। उनकी हम बन्दना करते हैं। वे हमें प्रत्येक पाप से बचाकर, दुर्गतियों से मुक्त करें। मैं विनाथकाबद्ध के उनकी आराधना करता हूं अपङ्ग,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मूलकता हीन धृताहुति, चारों दिक्पालों के अधिष्ठाता को, सुखसमृद्धि के साथ उत्तमगति, श्रेष्ठत्वप्राप्तिहेतु, समर्पित करता हूं। हमारे जन्म जन्मान्तरीयपितृगण वन्धुवान्धव इष्टमित्रपशु आदि सभी सुखी हों, सर्व प्रकार अभ्युदय, दीर्घायुत था ज्ञान के साथ हम बढ़ें।

"यो न शपात्" (७।६१) से अपने बिना कुछ भी कहने सुनने पर भी जो व्यर्थ निन्दित वाक्यों से अपनी भर्त्सना करे और जब उसे प्रत्युत्तर से प्रेम से समझायें तो भी और क्रुद्ध हो कठोर वचनों से डाँटे या निन्दितवातें कहें तों उसे पुत्र पौत्रादि भूल सहित नष्ट करने के अभिचार में ओलों से टूटी समिधाओं से होम करें।

"इदयत्" (७।६६) इससे काक स्पर्श-या काक की चोंच मारने आदि के दोषशमनार्थ जल अभिमन्त्रित करें छिड़कें धोयें स्नान करयें, उल्मुक जलाकर अमिमन्त्रित कर उसके शरीर पर होकर उतारें। "यः नः ह्वरः अभिदधेतंस्वादुच्छुना हरस्वतीमर्मतुं। जो हम ज्ञानियों के प्रति अकारण कुटिलता धारण करें। वे स्वयं की ही कुटिलबुद्धि से मारे जावें। प्रार्थना करें।

१ वादरायणिः। अरिनाशनम्—अनुष्टुप्।

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्। वृक्षइव विद्युता हत आ मूलादनुशुष्यतु ॥१

अ० कां ११ सू० ६ शान्तादिऋषयः। चन्द्रमा मन्त्रोक्ताश्चदेवते। अनुष्टुप, २३ वृहतीगर्भाछन्दांसि जन्म-जन्मान्तरीय, स्वकीय एव क्षेत्रीय, पारस्परिक पारम्परिक, कृत क्रियमाणः पापशाप. शपथ, मिथ्यालाप, द्रोह, द्वेष, ईर्ष्या, घात, पात, अभिचार अनाचार, दुराचारादि, अद्भुद्दर्शनादिजनितारिष्ट, वास्तुजनित, निर्ऋति दारुणदैव, यमपाश, एकोत्तर शत संख्यांक अपमृत्यु शारीरिक, मानसिक वौद्धिक, पारवारिक, कृषि, पशु उद्योगादि विनाशकर विघ्नोत्पातादि निवारणं भैषज्य कर्मषु अनुमति आकूती अदिति, सिनीवाली,, कुहू, आसा. राका, मेधा सरस्वती, इड़ाभारती, गायत्री लक्ष्मी वरुणानि, समस्त देवमातृ काः, अग्नि, वनस्पति, औषधि, लता द्रुम, इन्द्र, वृहस्पति, द्वादशादित्य द्वादश गणेश, पञ्चलोक, दिक्पाल, वरुण, मित्र, भग, अंश, विवस्वान् सविता धाता, पूषा, त्वष्टा, गन्धर्व, अप्सरसांगणा, अश्विनीदेव, वृहणस्पति अर्यमा अहोरात्र, चन्द्रादि नक्षत्रगणा, एकोनपञ्चाशन्मरुद्गणाः, पर्जन्य, अन्तरिक्ष दिशा, विदिशा उषा, सोम, भव शर्व मृड् ऐकादशरुद्रगणा यक्ष, पर्वत. भूमि, द्यु, समुद्र, नद, नद्य, जलस्रोत प्रजापति, लौकिक दिव्य पितृगण आङ्गिरा, अथर्वा समस्तऋषि, ब्रह्मर्षि, देवर्षिगणाः यज्ञ, यजमान, वेद, छन्द, श्रुति, स्मृति, ब्राह्मण, गृह्यसूत्र पुराणेतिहास रचयिता मनीषीगण, काम, कालावयव, संकल्प राष्ट्रनायक, ओषधिगण, धान्य, अराजकराक्षसगणः, सर्पगणः पुण्यजनः, एकोत्तरशत सख्याकान मृत्युगणांञ्चोपस्थाने, अर्चने, मार्जने, स्नानेः, होमें, अंहसोन्मूलने, सतत नैरुज्ये, पूर्ण स्वस्त्ययने, दीर्घायुष्ये, समृद्धये, दिव्यलोकावाप्तये निश्रेयसे च विनियोगः।

ॐ अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः। इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम्। अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्। त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम्। अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा। विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः। आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुञ्चन्तु मा शपथ्याऽदहोरात्रे अथो उषाः । सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥७*
पार्थिवाः दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः । शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥८
भवाशर्वा विदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः । इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥९*
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् । समुद्रान्नद्योऽवेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१०
सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् । पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११
ये देवा दिं विषदो अन्तरिक्षसदश्च ये । पृथिव्यां शक्राये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१२
आदित्यारुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः । अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा । यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१४
पञ्चराज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः । दर्भो भङ्गोयवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् । मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१६
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् । समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१७
एतं देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवा समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१८
विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्य संधानृतावृधः । विश्वाभिः पत्नीभिः सहते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१९
सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः । सर्वाभिः पत्नीभिः सहते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२०
भूतं ब्रूमोभूतपतिं भूतानामुत यो वशी । भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२१
या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥२२*
यन्मातला रथक्रीतममृतं वेदभेषजम् । तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥२३*

कां. ७।६४ (६६) यमऋषिः । आपः; अग्निः; निर्ऋतिः देवते, भुरिगनुष्टुप्, स्वङ्कुसारिणी बृहतीछन्दासि अंहसोन्मूलन भैषज्ये तथामृत्यु भीति निवारणे, मार्जने, स्नाने होमे विनियोगः ।

कां. ७ सू ४ यमऋषिः । मन्त्रोक्ता. निर्ऋति" देवते । भुरिगनुष्टुप, स्वङ्कुसारिणी बृहतीछन्दोह्नि मृत्यूसूचक्र, प्रगाढ़ान्धकार, काकोलूकादिनां नभचारि निन्द्यजीवानाँ निन्द्यश्रृगालादिवन्यजीवानां स्पर्शने गृह, ग्राम, पत्तनादिष्वागमने, ग्राम वासिजीवानां विलावादीनाञ्च वनप्रवेशादि केषु, विविधपात केषु, अंहसोन्मूलने नैरुज्ये, पूर्णस्वस्त्ययने, दीर्घायुष्ये, सतत अभ्युदये, जपे मार्जने स्नाने होमे च विनियोगः ।

इदंयत्कृष्णः" (७।६४ (६६)) इन दोनों ऋचाओं से अंहोलिङ्गगणकर्म करें । विशेषकर–मृत्युसूचक–काक, उलूक, विषचिड़ियादि निन्द्यपक्षियों के गृहप्रवेश, शरीर स्पर्श, शिरादि में चौंच, पैरादि से घात जनित, मृत्यु सूचक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अरिष्ट निवारण भैषज्य कर्म में, उपर्युक्त के अभिमन्त्रित जल से झाड़ा दें स्नान करायें तथा व्रण के ऊपर उल्मुक अभिमन्त्रित कर तपायें। इसी (इन्हीं) काकादिस्पर्शादि कर्मों में तथा "श्यावदता" (७।६५।६७) में वर्णित रोगों की भैषज्य में "प्रतीचीन फलोहि"७(६५)६७ इन ३ ऋचाओं से उपर्युक्त कर्म करें। अपामार्ग समिधाओं से होम करें (कौ. ५।१०)

इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्न पीपतत्।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥१
इदं यत् कृष्ण शकुनिरवामृक्षन्निऋते ते मुखेन।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु ॥२

अथर्व कां २३ से २९ पर्यन्त केसूक्तों के मन्त्र दृष्टा ऋषि "भृगार" है। भृगार का अर्थ है आत्मशुद्धि कर्त्ता इन सूक्तों केक्रमशः अग्नि, इन्द्र, (वायुसविता) (द्यावापृथिवी) मरुद्गणः, (भव, शर्वरुद्र) और मित्रावरुणदेवतायें हैं। जो स्थूलकायों में क्रमशः वाक्-शक्ति, बल, (प्राणनेत्र) (स्थूल सूक्ष्म शक्तियाँ) (प्राण) (वर्धक और घातक शक्तियां) (मित्रभाव और श्रेष्ठ भाव) इन को कार्यरूप में वाक्संयम, वलों कासदुपयोग प्राणायाम और कल्याणपरकदृष्टि, सत्कर्मों में ही सर्वस्वार्पण करना, व्यष्टि और समष्टि में व्याप्त समस्त शतशक्तियो का सदुपयोग उचित स्थान में ही करके श्रेयस लाभ सम्भव है। ऐसी सत्कर्मी पुण्यात्मा‌ओं का सूक्त २९ में उल्लेख भी है (१) सत्यवान (२) अङ्गिरस, (३) अगस्ति (४) जमदग्नि (५) अत्रि (६) कश्यप (७) वसिष्ठ (८) वध्य्रस्व (९) श्यावाश्च (१०) पुरमीढ (११) विमद (१२) सप्तवध्रि (१३) भरद्वाज (१४) गविष्ठिर (१५) विश्वामित्र (१६) कुत्स (१७) कक्षीवान् (१८) कण्व (१९) मेधातिथि (२०) त्रिशोक (२१) उशनाकाव्य (२२) गोतम और (२३) मुद्गल के नामविशेषरूप से उल्लिखित हैं। इन पुण्यात्माओं के निर्द्धारित मार्ग उस परम तेजोमयी शक्ति को साक्षात्कार कराने में निर्विवाद रूप से पूर्ण समर्थ है।

अंह—पाप, शाप आदि उनके सूचक लक्षणों से उत्पन्न सभी प्रकार के ज्ञात अज्ञात, श्रुत, अश्रुत, दृष्ठ, अदृष्ट, पठित, अपठित; विविध प्राण सूक्ष्म स्थूल कायिक; आधिदैविक आधिभौतिक; आध्यात्मिक उत्पात; प्रज्ञानष्ट बुद्धिभ्रंशः प्रभृतिक्लेश निवारणसमर्थ अथर्ववेदशौनकीयशाखोक्त भृगार सूक्त १० जो "उतदेवाः" (४।१३) से प्रारम्भ होते हैं; उनमें से "उत्तमं वर्जयित्वा" उत्तम "आगावः" (४।२१) "इमम इन्द्र" (४।२२) तथा "अहंरुद्रेभिः" (४।३०) को छोड़कर शेष ४।२३ से ४।२९ पर्यन्त के सूक्त-अहोलिङ्गगण में हैं ये "भृगारसूक्त" भी कहलाते हैं इनका विनियोग अंहोलिङ्गगण कर्म, लघुशान्ति तथा वृहच्छान्तिगण कर्मों में करें। समस्तरोग, समस्त दोष निवारण में विनियोग का उल्लेख है। कौ. सू. ४।८ इसके साथ ही "अग्नेर्मन्वे" (४।२३) से सामिधेनी अनुमन्त्रित करें (वैं० १।२) इन्ही से पाञ्चयज्ञ (१ देवयज्ञ २ पितृयज्ञ ३ सूतयज्ञ, ४ मनुष्ययज्ञ तथा ५ ब्रह्मयज्ञ) ये नित्यकर्म करें। ये यज्ञ (१ गन्धर्व २ अप्सरा, ३ देव ४ असुर और ५ राक्षस) उनमें होने वाले पाञ्चयज्ञ कहे गये हैं। इनमे से "वायोःसवितुः" (४।२५) से "वायव्यनाम्नी" शान्ति का विनियोग करें (न० क० १८) "वायो सावित्र आयोधुग्म्यांचरुः" तै० सं० (७।५।२२।१) में वायुसविता देवताओं को हविर्दान करने का प्राविधान है। इसी प्रकार "मन्वे वाम्" (४।२६) से "सोमयाग (पुत्रेष्टि) में गूलर समिधाओं से आज्य होम का विनियोग करें (वै० ३।५)

अ. कां. (४।२३) १–७ भृगारः। प्रचेता अग्नि। त्रिष्टुप् ३ पुरस्ताज् ज्योतिष्मती, ४ अनुष्टुप् ६ प्रस्तारपंक्तिः।

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा हुव्यं वहसि जातवेदोयथायुज्ञंकुल्पयसि प्रजानन् ।
एवादेवेभ्यः सुमतिं न आ वहस नो मुञ्चत्वंहसः ॥२
यामन्यामन्नुपंयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् ।
अग्निमीडेरक्षोहणं यज्ञवृधंघृताहुतसं नो मुञ्चत्वंहसः ॥३
सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् । हव्य वाहं हवामहे स नो मञ्चत्वंहसः ॥४
येन ऋषयो बुलमद्योतयन् युजायेनासुराणामयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय सनो मुञ्चत्वंहसः ॥५
ये न देवा अमृतमन्वविन्दन् येनौषधीमतीरकृण्वन् ।
ये न देवाः स्वरुराभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचतेयज्जातं जनितव्यंऽच केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमिस नो मुञ्चत्वंहसः ॥७ (१६०)

अ. कां. (४।२४) १–७ भृगारः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ शाक्वरीगर्भा पुरःशक्वरी ।

इन्द्रस्यमन्महेशश्वदिदस्यमन्महेवृत्रघ्नस्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेतिस नो मञ्चत्वंहसः ॥१
य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।
ये न जिताः सिन्धवोयेनगावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२
यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मैग्रावाणः प्रवदन्तिनृम्णम् ।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३
यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्तेस्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः सनोमुञ्च त्वंहसः ॥४
यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्तेयं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रियेयस्मिन्नोजः स नो मुञ्च त्वंहसः ॥५
यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यंऽप्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतोवज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्च त्वंहसः ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यः सँग्रामान्नयति संयुधे वशीयः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७

अ. कां. (४।२५) १–७ भृगारः । सविता, वायुः । त्रिष्टुप्, ३ अतिशक्वरी, ७ पथ्या बृहती ।

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्य परिभूर्बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहस ॥२

तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यू३र्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४

रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६

उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७

अ. कां. (४।२६) १-७ भृगारः । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्, १ अष्टिः, २-३ जगती, ७ शाक्वरगर्भातिमध्येज्योतिः ।

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥१

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥२

असंतापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये३ ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये अमृतँ विभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या विभृथो ये मनुष्याऽन् ।
द्यावा पृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४

ये उस्रिया विभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावा पृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥५

ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं च नशक्नुवन्ति ।
द्यावा पृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६

यन्मेदमभि शोचति येन येनवा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावा पृथिवी नाथितो जोहवी मिते नो मुञ्चतमंहसः ॥७

"मरुतामन्वे" (४।२७) स बल प्राप्ति हेतु "मारुद्गणी शान्तिहोम" का उल्लेख है "प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः" (७।८५।३) वै०; न० क० १८ तथा च (४।२७-७) से साकंमेध्यपर्व पर "गृहमेधयाग" करे। (वै० २।५) "भवाशर्वौ-मन्वेवाम्" (४।२८) से सर्व व्याधि निवारण कर्म में जल से युक्त ७ शान्तिवृक्ष (काम्पीलादि) की शाखाओं से अभिमन्त्रित जल से रोगी को झाड़ा दें स्नान, आचमन करायें, होम करे। कौ० सू० इन (४।४) अंहोलिङ्गगण; लघुशान्तिगण तथा वृहच्छान्तिगणों में निर्दिष्ट गण सूक्तमन्त्र समस्तशान्ति पौष्टिक आभ्युदयिक आध्यात्मिक जप तप,दान, होमादि कर्मों में विनियोग विहित है। अ० प० १४ "अग्निव्रूमो" ११।६ प्रभृति सभी का उपर्युक्त कर्मों में विनियोग करे।

अ. कां. (४।२७) १-७ भृगारः। मरुतः। त्रिष्टुप्।

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१

उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदाय आसिञ्चति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातृस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥२

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्च त्वंहसः ॥३

अपः समुद्राद् दिवमद् वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४

ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन येवा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मञ्चन्त्वंहसः ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६
तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥७

अ. कां. (४।२८) १–७ भृगारोऽथर्वा वा । भवाशर्वौरुद्रो वा देवते । त्रिष्टुप्, १ अतिजागत गर्भाभुरिक् ।

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१
ययोरभ्यध्व उत यद् दूरेचिद् यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२
सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३
यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्रचेदस्राष्टमभिमां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४
ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५
यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहस ॥६
अधिनो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७

अ. कां. (४।२९) १–७ भृगारः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्, ७ शक्वरीगर्भाति जगती ।

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणोयौनुदेथे ।
प्रसत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्रसत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथोयौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३
यौश्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणापुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४
यौभरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुणमित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणा वुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोतमद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६
ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिमिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमितौनो मुञ्चतमंहसः ॥७

"अपन शोशुचद्" (४।३३) यह वृहच्छान्ति, अंहोलिङ्गगण कार्यों में है । इससे स्त्री की पुरुष, पुरुष की स्त्री के प्रति-अभिरतिनिवृति (सांसारिक वासना) के लिये अगणित शर्करा सरसों अभिमन्त्रित करें और जिसकी कामना हो उस स्त्री या पर गृह की ओर फैंककर जावें । कौ० (४।१२) । इसीसे अपशकुनों के होने पर, काक मैथुन आदि विरुद्ध वातों के दृष्टिगोचर होने में अन होनी अनेक, अजीव घटना घटित होने से उत्पन्न संकट निवारणार्थ, अन्त्येष्टि दाह से लौटते समय मृतक की ओर पीठ कर वान्धवों के साथ आते समय, तथा मृतदाहान्तर स्नान काल में एवं सभी प्रकार के पापों की निवृत्ति में इसीसे छींटे स्नान जप उपस्थान होम करें । कौ० ५।६

१–८ ब्रह्मा । पाप्मनाशनोऽग्निः । गायत्री ।

अप नः शोशुचदघमग्नेशुशुग्ध्या रयिम । अप नः शोशुचदघम् ॥१
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया चं यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥२
प्रयद् भन्दिष्ठएषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥३
प्रयत् ते अग्नेसूरयो जायेमहिप्रते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥४
प्रयदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्तिभानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥६
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥७
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥८

कां ६ सू० २६ "अव मा पाप्मन" की ३ ऋचाओं से सूक्त में निर्दिष्टरीति से प्रथम रात्रि में रक्षातन्त्र करें, दूसरे दिन चारों ओर चौरास्ताओं पर ३।३ वलि अभिमान्त्रित कर, इसी से पूजा, व जप करते हूए रक्खें । बलिद्रव्य—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उड़द के बड़े, भीगी दाल, दही, सिन्दूर, दक्षिणा हल्दी, कज्जल, चावलों का भात, गुड़, लड्डू, फूल-चौमुखे दीपक, लाल वत्तियां, मीठा तेल, कच्चा दूध-जल, पताका बांस की टोकरी में रख, कुशा बिछाकर ढाक की पत्तल पर रक्खें।

१–३ ब्रह्मा। पांप्मा। अनुष्टुप्

अवमापाप्मन्त्सृज वशीसन् मृडयासिनः। आमाभद्रस्यं लोके पांप्मन् धेह्यविहुतम् ॥१

योनः पाप्मन् नजहासितसु त्वा जहिमोवयम्। पथामनुव्यावर्तनेऽन्यंपाप्मानुपद्यताम् ॥२

अन्यत्रास्मन्न्युऽच्यतु सहस्त्राक्षोअमर्त्यः। यं द्वेषाम तमृच्छतु यमुद्विष्मस्तमिज्जहि ॥३

कां ६।४४ भृगुः। यमः निर्ऋतिः। जगती, २ त्रिष्टुप्।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत्।
अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्व स्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव ॥१

शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च। श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोग नाशनम् ॥२

रुद्रस्य मूत्रमस्य मृतस्य नाभिः।
विषणका नाम वा असि पितृणां मूलादुत्थिता वाती कृत नाशनी ॥३

(७।४३) "सोमरुद्रा" (७।३०) "अग्निविष्णु:" इन दो ऋचाओं में समस्त व्याधि भैषज्यार्थ व्याधित के शरीर को मूज की रस्सी के पाशों से गाँठो को बाँधें शरकण्डें के मुट्ठे से युक्त घड़े के जल को अभिमान्त्रित कर छींटे दें, स्नान करायें कौ. ४।८। इन्हीं दोनों से सर्व सम्पत्कामों की सिद्धयर्थ, सोमतथा रुद्र का जप, होम उपस्थान करें।

अ. कां. (४२–४३) १–२ प्रस्कण्वः। सोमरुद्रौ। त्रिष्टुप्।

सोमारुद्रा विवृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।
बाधेथां दूरंनिर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुमुक्तमस्मत् ॥१

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अवस्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥२

कां ७।४३ "सोमरुद्रा" हे सोम और रुद्रो जो भी रोग हमारे शरीर एवं घर में फैला है, उसे विशेषकर दुर्गति, एवं हमारे कृत और क्रियमाणपाप हों, उन सबसे हमें मुक्त कर दो। तुम दोनों ही हमारे शरीर में सभी व्याधि निवारक भैषजों को भरदो शारीरिक पापों से बचाओं रुद्र, प्राण हैं, सोम औषधि रूप ही हैं।

(७।४४) "शिवास्त" इससे अकारण ही की गई निन्दा के यानिन्द्य की स्तुति, स्तुत्य की निन्दा से उत्पन्न अपवाद तथा तज्जनित दोष शमनार्थः भोजन मधुपर्कादि अभिमन्त्रित कर खायें। तथा इसीसे पाप, शाप, सन्ताप नाशिनी "पलास, लोह, ताम्र-चाँदी, हिरण्यादि निर्मितमणि पूजाप्रतिष्ठा कर, अभिमंत्रितकर बाँधें। इससे प्रशंसनीय की निन्दा निन्दनीय की प्रशंसा-करने, सुनने से उत्पन्न दोष निवारण होजाता है। कौ ५।१०

कां० (७।४३।४४) १ प्रस्कण्वः वाक्। त्रिष्टुप्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिवास्तु एका अशिवास्तु एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका विपपातानुघोषम् ॥१

काँ ७।४३ तेरे हृदय में परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी बांणियां क्रमशः नाभिः हृदय, वक्ष के ऊपर और मुख के द्वारा उच्चारित होती हैं । प्रथम तीनों गुप्त, चौथी प्रकट शुभाशुभ दोनों ही प्रकार बोली जाने वाली हैं । इससे विशुद्ध मन से बोलें तो शुभ मंगलप्रद है । प्रिय, मधुर, मित भाषी वनें ।

(७।४५) "उभाजिग्यथु" से परस्पर संमानता (सन्धि) के निमित्त सन्धि-मैत्री के अभिलाषियों के पैर धुला, हाथी आदि की उपयुक्त सवारी को अभिमन्त्रित कर, उस पर बिठायें, स्वगृह में लाकर भोजनादि अभिमन्त्रित कर साथ साथ ही खिलायें और खायें । कौ. ५।६

कां ७ [४४ (४५)] १ प्रस्कण्वः । इन्द्रः । विष्णुः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥१

कां ७।४४(४५) "उमाजिग्यथु"—हे वलिष्ठ तेजस्वी प्रभो ? हम सब परिपूर्ण ज्ञानी, शत्रु दलन बिनाश भञ्जन, तुम परमेष्ठी की अहर्निशि, निरन्तर, वहुभांति से स्तुति करते है ।

"उपरोक्त" (७।४३) सोमारुद्रा "सिनीवालि" (७।४८) "वितेमुञ्चामि" (७।८३) "शुम्भिनी" (७।११७) से व्याधित भैषजकार्य करें । "सिनीवाली पृथुष्टु के (७।४८) "वृहस्पतिर्नः" (७५३) इन ६ से सिनीवाली, कुहू, राका देवपत्न्य इनचारों का जप, होम उपस्थान, सर्वेष्ट सिद्धयर्थ करें । ७।१०

काँ ७ [४७ (४६)] "कुहू देवी" ७ [४८ (५०)] "राकामहं" कां ७ [४६ (५१)] "देवानांपत्नी" इसी ग्रन्थ के अध्याय ७ "मातृ का पूजन में पढ़ें ।

कां ७ [७८ (८३)] वितेमुञ्चामिः—हे अग्ने ? मैं तेरे उच्च, मध्यम, निम्न तीनों ही वन्धनों को खोलकर तुझे मुक्त करता हूं । मुक्त हुआ तू निवास कर । वीरताधारण करके दिव्य ज्ञान युक्त हों, हमें धन दे, देवों को हवि अर्पणकरने में समर्थ बना ।

१–२ अथर्वा । अग्निः । १ परोष्णिक्, २ त्रिष्टुक् ।

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम् । इहैव त्वमजस्त्र एध्यग्ने ॥१
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥२

"पृथिव्यै श्रोत्राय" (६।१०) इन तीन ऋचाओं से समस्त सम्पत्कर्मों में घृत होम करें । (कौ २।३)

"य द्यन्तरिक्षे" (७।६८) "पुनमैत्विन्द्रियम् "शिवानः" ये वृहच्छान्तिगण में हैं वे सभी कार्य करें । तथा नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मों में, पाक् यज्ञ में-कर्म समापन कर न्यूनातिरिक्त दोष शान्ति हेतु अपने को अनुमन्त्रित करें ।

कौ. ५।६ विशेष "ज्ञातव्यः" वेद मन्त्र ब्राह्मणात्मक हैं, मेघवृष्टि; में आँधी; घनीभूत छाया में, हरी फसलों के समीप, पशुओं के समीप भलीभांति पढ़ा वेद निर्वीय हो जाता है । (आप० स्त० १५।२१।८) तथा "मन्त्र ब्राह्म णयोर्वेदा नामधयम्" आपस्तम्भ श्रो. सू. उपरोक्त अवस्था और काल मे पढ़े निर्वीयता को प्राप्त हुआ वेदका वीर्यत्व "यद्यन्तरिक्षे" (७।६८) से प्राप्त हो जाता है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां ७ [४४ (४५)] "उभाविग्नथु" "विष्णु" (व्यापक परमात्मा) "इन्द्र" इन्द्रियबलदाता (जीवात्मा) दोनों नर नारायण, विजयी शरीररूपरथ पर विराजमान हो विजय प्राप्त करते हैं। ये ठीक प्रकार से अपने शत्रु को भगा देते हैं।*

(६।५७) शान्तातिः। रुद्रः। १-२ अनुष्टुप्, ३ पथ्यावृहती

"इदमिद वा उभेषजम्" (७।५७ से मुखरहित व्रण कालावैङ्कर की भैषज्यकर्म में 'अभिमन्त्रित गोमूत्र से धोयें, उसी को फाये के रूम में बाँधें। अभिमन्त्रित कर दाँतों का मैल लगायें पानी, दूध के झागों को अभिमन्त्रित कर लगायें। कौ० ४।७।

इदमिद् वा उभेषजमिदं रुद्रस्यभेषजम्। येनेषुमेकंतेजनांशतशल्यामपब्रवंत् ॥१

जालाषेणाभिषिंश्चतजालाषेणोपंसिश्चत। जालाषमुग्रंभेषजंतेनं नोमृडजीवसें ॥२

शं चं नो मयंश्च नोमाचंनः किं चनाममत्। क्षमारपोविश्वंनो अस्तुभेषजंसवंनोअस्तुभेषजम् ॥३

कां. ६।५७ 'इदमिद्वाउ' यह जल निस्सन्देह सार्वभौमरूद्र भेषज है। यह शस्त्रों के अनेक फल वाले, दण्ड आदि के घाव ठीक करता है। जल से पूर्ण, अर्द्ध कटि स्नान से पाप रोग नष्ट होकर दीर्घायु, स्वास्थ्य, शान्ति, समता, सुख, आमाशय के रोग, सड़ावट के रोग नष्ट करने की अचूक, सर्व रोग निवारक भेषज है, वह हमें प्राप्त हो।

(६।१०७) शान्तातिः। विश्वजित। अनुष्टुप्

विश्वंजित् त्रायमाणायैमा परिं देहि। त्रायंमाणे द्विपाच्चसर्वंनोरक्षचतुंष्पाद्यच्चं नः स्वम् ॥१

त्रायंमाणे विश्वजितेमापरिं देहि। विश्वंजिद् द्विपाच्चसर्वंनोरक्षचतुंष्पाद्यच्चं नः स्वम् ॥२

विश्वंजित् कल्याण्यैऽमापरिं देहि। कल्यांणिद्विपाच्चसर्वंनोरक्षचतुंष्पाद्यच्चं नः स्वम् ॥३

कल्यांणि सर्वविदेंमापरिंदेहि। सर्वंविद्द्विपाच्चसर्वं नो रक्ष चतुंष्पाद्यच्चं नः स्वम् ॥४

कां. ६।१०७ "विश्वजित" हे विश्वविजेता ? मुझे रक्षक सामर्थ्यप्रदान कर। हमारे द्विपाद चतुष्पाद ऐश्वर्य, सम्पदा की रक्षाकर। हे रक्षक शक्ति ? विश्वविजय शक्ति सम्पन्न कर हे जगद्वि जेता ? मुझे कल्याण कारिणी शक्ति दे। हे कल्याणि ? मुझे सर्वज्ञ के पास पहुंचा हे सर्वज्ञ ? मेरे द्विपाद, चतुष्पाद, धन, धान्यसमृद्धि की रक्षाकर।

"उपप्रियम" (७।३३) समष्टि को प्रिय, प्रार्थनारूप, यज्ञस्वरूप, भोगादिस्वरूप उपस्थानादिस्वरूप समस्तक्रियमाण और करिष्यमाण कर्म तारुण्यता को प्राप्त हो इसे धारण करते रहने के शुभअवसर प्रभु प्रदान करें। ब्रह्मचारी के शिर पर हाथ रख आचार्य आशीर्वाद दें। कौ० ७।६।

[७।३२ (३३)] ब्रह्मा आयुः। अनुष्टुप्

उपंप्रियं पनिंप्नतं युवांनमाहुतीवृधंम्। अगंन्मबिभ्रंतो नमों दीर्घमायुः कृणोतुमे ॥१

कां. ७ [३२ (३३)] "उपप्रियं" हे प्राणधन ? स्तुत्ययुवा, आहुतियों से बढ़ने वाले ? अग्निदेव की शरण में अन्न धारण करने की दीर्घायु प्राप्ति हेतु विनय करते हैं।

७ [६६ (६८)] ब्रह्मा। ब्रह्म। त्रिष्टुप्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्यन्तरिक्षेयदि्वात आसयदिं वृक्षेषुयदि्वोलंपेषु ।
यदश्रवंन् पशवंउद्यमांनं तद् ब्राह्मणंपुनंरस्मानुपैतु ॥१

कां. ७ [६६(६८)] "यद्यन्तरिक्षे" जो ब्रह्म, आकाश, वायु, वृक्ष, घासादि में पशुओं, प्राणियों, स्थिरचर, सभी में, सर्वत्र प्रकाशित होकर विराजमान हैं, वह हमें प्राप्त हो ।

आत्मा ७ [६७ (६९)] ब्रह्मा । आत्मा । पुरः परोष्णिग्वृहतो ।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनंरात्माद्रविंणं ब्राह्मणं च । पुनंरग्नयोधिष्ण्यांयथास्थाम कंल्पयन्तामिहैव ॥१

कां ७ [६७(६९)] "पुनर्मैत्विन्द्रियं" मुझे इन्द्रियशक्ति, आत्मा, ज्ञान, चेतना, बुद्धि, प्रभृति सभी चैतन्यशक्तियां उन्नति के साथ उपलब्ध एवं समर्थ हों ।

इति लघु तथा वृहच्छान्तिगण (अंहोलिङ्गगण)

"पार्थिवस्य" (२।२९) से अत्यन्ततृषा से पीड़ित रोगी के भैषज्य कर्म में दो कल्पित व्याधित- अव्याधित प्रति कृति वनायें ये मार्थिव ही बनायें, व्याधित को पूर्वाभिमुख, अव्याधित को उत्तराभिमुख-टहनी पर विठाकर सूर्योदय काल ही में वैतस चमस में वेत की शलाकाओं से फलों का रस व्याधित के शिर पर मथें, अभिमन्त्रित करें—तृषार्त (व्याधित) को दें । पिलायें ।

इसी सूक्त से नदी आदि के जल को अभिमन्त्रित कर—जल को लायें "सवासिनौ" (२।२९–६) की आधी ऋचा से एक अभिमन्त्रित टहनी पर उपरोक्त कल्पित पार्थिव प्रति कृतियों को उपर्युक्त रीति से विठाकर एक वस्त्र से ढांक दें और दोनों ही को अभिमन्त्रित जल को वेत की शाखा से मथित कर पिलायें । कौ० (४।३)

ये यहाँ से※(२।२९-१) (कौ० सू० अ० १ क० ६ सू० १८) कल्पजा ऋचायें भी हैं १-७ अथर्वा । अग्नि, सूर्यः, वृहस्पतिः, २ जातवेदाः, सविता, ३ इन्द्रः, ४-५ द्यावा पृथिवी, विश्वेदेवा, मरुत; आप, ६ अश्विनौ, ७ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् ४ परावृहतीनिचृत्स्तारपङ्क्तिः ।

पार्थिवस्य रसेदेवा भगंस्यतन्वो३ बलें ।
आयुष्यऽमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आधाद् वृहस्पतिः ॥१
आयुंरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरासुंवास्मैशतं जीवाति शददस्तवायम् ॥२
आशीर्ण ऊर्जमुतसौप्रजास्त्वंदक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधंरान्त्सपत्नान् ॥३
इन्द्रेणदत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगंन ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थेमा क्षुंधन्मा तृषत् ॥४
ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वतीधत्तंपयो अस्मैपयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवामरुत ऊर्जमापः ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥६
इन्द्र एतां संसृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधमजरां सा त एषा ।
तया त्वं जीवशरदः सुवर्चा मात आसुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥७॥

कां २।२९ "पार्थिवस्य" हे देवो ? इस प्राणी को अग्नि, सूर्य, वृहस्पति आदि देवों की कृपा से वह चिरायुष्य पार्थिव ऐश्वर्य, अन्न, वल, तेज, ओज, नीरोगता का जीवन उत्तम सन्तति, ऐश्वर्यमयी उत्तम पुष्टि प्रदान करो। हे देवो! वल, सुप्रजा, दक्षता, धन, धान्य, स्वभुज वल से सर्वत्र विजय शत्रु संहारक शक्ति प्रदान करो। यह प्राणी परमात्मा से रचित, गुरु से दीक्षित, बीरों से उत्साहित, शौर्यवान होकर आया है और कर्मरत है मातृभूमि का उपासक यह वीर कदापि भूख प्यास से पीड़ित न होवे जनक सूर्य जननी भूमि इसे अन्न, रस, बल, ओज प्रदान कर सहायता करें पुनीत विद्याओं द्वारा तेरा हृदय तृप्त करता हूं। तू नीरोग, तेज, सदानन्द मय होकर, सब से मिलकर, अपना सर्वस्व, वुद्धि एवं कर्त्तव्य परायणता के साथ इस दैवीरस को पी।

अध्यात्म—प्रकरणम्। (अ० वे० १३।१-५९) (कां० सू० १८ क० ६ अ० १—कल्पजा॥ब्रह्मा। रोहितादि-दैवत्यम्। गायत्री।

मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः। मान्तस्थुर्नो अरातयः ॥५९॥

का १३।१-५९ "माप्रगाम" तथा ऋग्वेर (१०।५७-१) हे इन्द्र ? हम अपना पवित्रमार्ग कभी न छोड़ें यज्ञ कर्मों से लेशमात्र दूर न हों, हमारी प्रगति के मार्ग में शत्रुगण कदापि वाधक न हो सकें।

विजय प्राप्तिः। (१०।५-२३,२४) (कौ० कं० ६ अ० १ सू० १७) सिन्धुद्वीपः। आपः, चन्द्रमाः। २३ अनुष्टुप्, २४ त्रिपदाविराड्गायत्री)

समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमपीतन। अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥२३॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत्। प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२४॥

कां १०।५-२३:२४ "समुद्रंवः"—हेजलो ? तुम्हें समुद्र के प्रति भेजता हूं, तुम अपने उद्गम स्थान को प्राप्त करो, अहिंसित होते हुए, सम्पूर्ण आयुपर्यन्त हम सबको कोई अरिष्ट न हो। जल निर्दोष होने के कारण, हम सबसे दोष दूर करें, उत्तम रूपवाला। जल हम सबसे पाप और मलों को दूर करते हुए, दुष्ट स्वप्नों और मलों को बहाकर दूर ले जावें।

कल्पजा (अ० वे० १९।३३।३) को० कं० २ अ० १-सू० १ अनुमृता

दर्भः। (१९।३३-३) भृगुः। दर्भः। ३ आर्षी पङ्क्तिः।

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥३॥

ॐ; भूः; भुवः; स्व. जनः (ये कल्पजा ऋचा व्याहृतियां) हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्य कां० १ सू० ३२ ऋ० १-४ ब्रह्माऋषिः, द्यावापृथिवीर्देवते। अनुष्टुप् २ ककुम्मत्युनुष्टुप् छन्दान्सिः कल्पजाऋग्भि, ब्रह्मविद्ययाँ, ब्रह्मोपासने ब्रह्मज्ञाने, ब्रह्मकवचावधारणे, स्तवने, ध्याने, होमे च विनियोग।

इ॒दं जना॑सो वि॒दथ॑म्म॒हद्ब्रह्म॑ वदिष्यति। न तत् पृ॑थि॒व्यां नो दि॒वि येन॑ प्रा॒णन्ति॑ वी॒रुधः॥१

अ॒न्तरि॑क्ष आसां॒ स्थाम॑ श्रान्त॒सदा॑मिव। आ॒स्थान॑म॒स्य भू॒तस्य॑ वि॒दुष्टद्वे॒धसो॒ नवा॑॥२

यद्रोद॑सी॒ रेज॑माने॒ भूमि॑श्च नि॒रत॑क्षतम्। आ॒र्द्रं तद॒द्य स॑र्व॒दा स॑मु॒द्रस्ये॑व स्रो॒त्याः॥३

विश्व॑म॒न्याम॑भी॒वार॒ तद॒न्यस्या॒मधि॑ श्रि॒तम्। दि॒वे च॑ वि॒श्ववे॑दसे पृथि॒व्यै चा॑करं॒ नमः॥४

१—इस दृश्य जगत में स्थूल पर्वतादि, अतिस्थूल, वनस्पति पक्षी, पशु, बढ़ने हिलने वाले, मानव, बढ़ने, हिलने उन्नतज्ञान वाले उच्चश्रेणी के प्राणी हैं। इनमें विद्यमान जो संजीवनीयतत्व है, जिससे सभी प्राणी प्राणधारण करते हैं, वह न तो पृथ्वी, न द्युलोक में ही है वह इनसे पृथक, इनमें व्याप्त, अतिसूक्ष्म है। २—यह सृष्टि विद्याविदों के ज्ञान में है। इसी वनीसृष्टि को भूत और इस विद्या का नाम ही भूतविद्या है। इन सबका आधारतत्व, सूक्ष्मतत्व है, जिसे अध्यात्म विद्याविद्ही जानते हैं इनके जिज्ञासु, ऐसे तत्वज्ञगुरुजनों से "जीवनरस विद्या" प्राप्त करें। वे ही ब्रह्मज्ञान के वस्तुत उपदेष्टा हैं। ३— जो इस द्यौपृथिवी लोक में वनापदार्थ है, वह अनादिकाल से आजपर्यन्त, सदा सर्वदा निरन्तर सबको जीवन देते रहने पर भी लेशमात्र न्यून न होकर अगाध जीवन रस का महासागर है। भूजगन्माता, द्यौ पिता हैं। भूलोक, द्युलोक, भूमि और सूर्यः स्त्री और पुरुष शक्तियां, ऋण, धन, रायं और प्राणशक्ति, प्रकृति और पुरुष प्रकृति और आत्मा, इन्हीं दो शक्तियों से जगत उत्पन्न हुआ है। इस कारण ये माता, पिता है। ४—विश्व स्थूल जगत का आधार सूक्ष्म है, उसके बाहर भीतर सब विश्व है। यह सूक्ष्म, कारणतत्व पर आश्रित है, यह महत्तत्व पर आश्रित है उसी महत्तत्व का जीवन रस रूप महासागर में ही छोटे बड़े स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं। यह तत्वज्ञान ज्ञानीगुरु से जिज्ञासु मन में धारण कर स्थिर करें वेही इस ब्रह्मविद्या ब्रह्मज्ञान का मौलिक रस प्राप्ति रसाश्वादन कर जीवन रस से कृत कृत्य हो सकेंगे।

"यन्मसा ध्यायति तद्वाचावदति, यद्वाचावदतितत्कर्मणा करोति, यत्कर्मशाकरोति, तदभि सम्पद्यते। (उपनि०)"

प्राणी जिसका मन में ध्यान करता है, उसीको बाणी से बोलता है, जों बोलता है उसे कर्म में लाता है, जो करता है, उसका फल भोगता है, विचार क्रिया, भक्ति और एकाग्रता में जो परस्पर सम्बन्ध है, वही चारों वेदों में भी है। ऋग्वेद (सुविचारवेद) यजुर्वेद (सत्कर्मवेद (उपासनावेद) होने से वेदत्रयी कहलाती है यही "त्रयी विद्या" है। परन्तु "अथर्ववेद" योग प्रधान सर्वसाधारण की बुद्धि व क्षमता से परे विशेष स्थिति वाले 'स्थित प्रज्ञों' की योगसाधन द्वारा प्राप्त होने वाला चित्त वृत्ति निरोधकर्त्ता "अथर्व" है उसी विद्यासागर, प्रकाशवान वेद के ज्ञान कराने वाली ये "कल्पजा ऋचायें" हैं। जो अन्तर्मुख अन्तकरण की एकाग्रता और नित्यनिरन्तर मननशील हैं।

आसन्नीय ब्रह्मजप

इस ग्रन्थ में साधक सर्व प्रथम कां १२ सू १ ऋचा २९ "विभृग्वरी" ऋचा जो द्वितीय अध्याय में है इससे भू० शुद्धि और बन्दना करे। 'मन्त्रभाव' विशेष अनुसन्धाननीय, अनन्त शक्तिवान प्रभु की अप्रमेयशक्ति से धारण की गई बल, पुष्टिप्रद घृतादि भोग्य पदार्थों से परिपूर्ण, विस्तृत, प्राणिमात्र को धारण करने वाली मातृभूमि से प्रार्थना है। हे मातृ भूमि हमें सहारा दो।—इसके उपरान्त अ० कां० १।४ "अम्बयोयन्ति" से मार्जन कर पवित्र करें। उस पर आ. कां. २ सू. ४ ऋ. ५ "शणश्च" जो इस ग्रन्थ के आरम्भ में हैं: से आसन बिछायें। परन्तु ध्यान रक्खें "वंशासनेतु दारिद्रयं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाषाणे व्याधिरेवच । धारिण्यां दुःख सम्भूतः दौर्भाग्यं छिद्रश्चासने । आसन बाँस, पत्थर, पृथ्वी तथा छिद्रवाला न हो, यह प्रथम और द्वितीय अध्याय में पढ़ें । "पर्वताग्रे नदीतीरे विल्वमूले जलाशये। गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थेउद्यानेतुलसी वने" एकान्त में एकाकी मन एकाग्रकर अन्तकरण का निरोध कर बैठे । अ. कां. १ सू. ५ 'आपोहि' से आसन को छींटे देकर पवित्र करें कां. १ सू. ६ "शंनोदेवी" से आचमन करें अपने को छींटे देकर पवित्र करें । कां० १ सू० ७ ऋ० ४ "चातन ऋषिः । जातवेदाः देवता । अनुष्टुप् छन्द

अ॒ग्निः पूर्व॒आरभ॑तांप्रेन्द्रोनुदतुबाहुमान् ब्रवीतुसर्वोयातुमानयम॒स्मीत्येत्य ॥१।७।४

वृष्टिविद्या और आत्मविद्या का पूर्णविज्ञ, समाधि की अन्तिम अवस्था का आत्मानुभवकर्त्ता प्राणायाम आसनादि योगाभ्यास से काया सिद्धकर्त्ता, इन्द्रियनिग्रह कर्त्ता उपदेष्टागुरु अपने मनोबल बुद्धिमत्तापूर्ण उपदेश से एवं इन्द्र अपने क्षात्र बल से "यातु" पथभ्रष्ट भटकने वालों और उनके अधिपतियो ऐसे अविवेकियों के संरक्षकों दुष्टों, दस्युओं वधिकों बटमारों आततायियो, धर्मद्विटों को अपने सदुपदेशों से कुमार्ग से सुमार्ग में लावे वेभी अपने दुष्टतापूर्ण जीवनचर्या के प्रति स्वय धिक्कारने लगे यह दीक्षा एवं शक्ति समाप्त कर आसन लगायें ।

अथायुष्यगणाः कां० (२।१९-१) (१।३०-१) (१।३५-१) (५।२८-१) अ० वे० कां० ११९ सम्पत्कर्म आयुष्यगण कर्म मे होम जप करें, दही मधु में मणि त्रयोदशी से ३ रात्रि डग्लें अभिमन्त्रित कर धारण करें दही को पिये ।

१-४ अथर्वा । १ वसवः, इन्द्रः, पूषा, वरुण, मित्र, अग्नि, आदित्याः, विश्वेदेवाः । २ देवाः, सूर्यः, अग्निः, हिरण्य, ३-४ अग्निः, (जातवेदाः) । त्रिष्टुप्

अ॒स्मिन् वसु॒ वसवोधारय॒न्त्विन्द्रः पू॒षावरु॒णोमि॒त्रोअ॒ग्निः ।
इ॒ममा॑दि॒त्या उ॒तविश्वे चदे॒वाउत्तरस्मि॒न् ज्योतिंषिधारयन्तु ॥१
अ॒स्यदेवाः प्र॒दिशि॒ज्योतिरस्तु॒ सूर्यो अ॒ग्निरु॒त वा हिरण्यम् ।
स॒पत्ना॒अ॒स्मदधरेभवन्तूत्त॒मं नाकु॒मधिरोहये॒मम् ॥२
येनेन्द्रायस॒मभरः पयांस्युत्त॒मेन॒ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन॒त्वमग्नइ॒हवर्धये॒मं स॒जातानां श्रैष्ठ्यआधेह्येनम् ॥३
ऐषां य॒ज्ञमु॒तवर्चोददे॒ऽहं रा॒यस्पोषम॒तचि॒त्तान्यंग्ने ।
स॒पत्ना अ॒स्मदधरे भवन्तूत्त॒मं नाकु॒मधि रोहये॒मम् ॥४

कां० १ सू० १ (१) इससे साधक इसी ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में निर्दिष्ट चित्रों में, व्यक्ति में देवतांश, समाज में देवतांश, विश्व में देवता, के बोधक चक्र को गहनता से मनन करें, पूर्व मन्त्रोक्त को प्राणी जो मन की वृत्ति परिवर्तन के कारण अपने कल्याण परक, मार्गदर्शक ध्यान धारणासे ध्येय की प्राप्ति को अग्रसर हुए हैं,अपने शरीरस्थ उन देवतांशों को उद्बोधित करते हुए, अपने अन्तरात्मा में क्षात्रबल पुष्टि, शान्ति, सभी से मित्रता, तथा वाणी की शक्तियों से समाराधना पन करें, उत्तम तेज स्थापन की प्रार्थना करें । (२) हे देवो (वाह्यज्योती का अशतेजोमय, सूर्यांश नेत्र, अग्निकाअंश वाणी, आत्मविजयप्रदायक शक्ति, बल ओज, इस (नव प्रविष्टसाधक) की शक्ति में रहें और इसके सभी वाह्य, आन्तरिक, अहितकर्त्ता विद्वेषी पतन को प्राप्त होजाय, इसको उत्तम सुख की अवस्था प्राप्त हो । (३) जिस श्रेष्ठ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्वज्ञान से क्षत्रिय को उत्तमोत्तम जीवन रस (भोग) प्राप्त होते हैं हे उपदेष्टापूर्वमं १ में निर्दिष्टगुरुदेव, उसी उत्तमज्ञान से इस मनुष्य की भी यहां उन्नति करो, अपनी समाज राष्ट्र और साधनादि में इसे श्रेष्ठता प्राप्त हो। (अपनी शक्तियों का विकाष मंत्र २ स्वशक्तियों का संयम मंत्र ३ हे ज्ञानपति वृद्धि द्वारा स्वश्रेणी में सन्मान) के लिये मंत्र ४(स्वशरणागत साधकों) के अन्तकरण अपनी ओर आकर्षित करो, इन लोगों के धनों की वृद्धि कर, उनके प्रसस्त कर्मों को विस्तीर्ण करो, जिससे, प्रशस्तकर्मों में वाधक शत्रुओं को निरस्तकर जनकल्याण में ये सफलताप्राप्त कर सकें। यह गुरुदेव आशीर्वाद दें और इन्द्र उनकी सम्पुष्टि संरक्षक अपनेक्षात्र वल से करे। यह साधक अपने अन्दर शक्ति वल सम्बन्धर्द्धन करते हुऐ आसन पर ब्रह्मविद्या, ब्रह्मज्ञान के लिये ध्यानावस्थित हो निम्न भांति अन्तर्हित वृत्ति से समाहित हो ध्यान करें।

अ० कां० २ सू० २ यह द्वितीय अध्याय में देखें। इसका भाव इस प्रकार चिन्तवन करें। यही आगे दी जाने वाली ब्रह्मविद्या का अङ्ग है। इसे उसके साथ देखें।

अथ आसनीय-ब्रह्मजप (१२।१-२९) (१४) (२१४-५) (२।२) (१४;७) (१६;९)

अहमवग्विसोः सदने सीदाम्यृतस्य सदने सीदामि सत्यस्य सदने सीदामीष्टस्य सदने सीदामिपूर्तस्य सदनेसीदामि मामृषदेववर्हिः स्वासस्थं त्वाध्यासदेय मूर्णमदमनधि शोकम्।

कां (६।१०) शान्तातिः। १ पृथिवी, श्रोत्रं, वनस्पतिः, २ प्राणः,; अन्तरिक्ष, वयः, वायुः ३ द्यौः, चक्षुः, नक्षत्राणि, सूर्यः,। द्वैपदम्, १ साम्नी त्रिष्टूप्; २ प्रजापत्यावृहती ३ साम्नी वृहती।

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥१

प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्योवायवेऽधिपतये स्वाहा ॥२

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥३

नोट—इन तीनों ही ऋचाओं से कर्त्ता लाए हुए शान्तिजलों को–घट के शान्तिजल में डालकर अभिमन्त्रित करें। इन्हीं से आचमन, संप्रोक्षण, आसन अग्नि आदि का मार्जन करें।

कां ६।१७ "पृथिव्यै" पृथ्वी, कान, वनस्पति तथा पृथ्वी के अधिपति अग्नि के प्रति सर्वतोभावेनसर्वस्वार्पण-स्तुति कहते हैं। अन्तरिक्ष, प्राण, पक्षी, अन्तरिक्षाधिपतिवायु के प्रति स्तुति करें। द्युलोक, नेत्र, नक्षत्र, द्युलोकाधिपति सूर्य की मैं स्तुति करता हूं।

कां [७।५२ (५४)] संज्ञानम्" वृहच्छान्तिगणकार्यों के साथ है। इन ऋचाओं से ग्राम में पारस्परिक सुहृदयता के लिये अभिमन्त्रित औषधियों के जल से ग्राम की धार दें और ग्राम के बीच शेष को छोड़ें। इन्हीं से अभिमन्त्रित अन्न व पेय को लें। तीन वर्ष की गौ की वछिया के मुंह के भाग या गोमूत्र अभिमन्त्रित कर खायें। कौ० २।३

सांमनस्यम्। ७ [५२ (५४)] अथर्वा। सांमनस्यं, अश्विनौ। १ ककुम्मत्यपुष्टुप्, २ जगती।

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः। संज्ञानमश्विनायुवमिहास्मासुनियच्छतम् ॥१

सं जानामहैमनसासंचिकित्वामा युष्महिमनसादैव्येन।

मावोषाउत् स्थुर्वहुले विनिहे तेमेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥२

कां० ७ सू०५४ 'सज्ञानम्" हे अश्विनीदेवो! हमें स्वजनों उच्च एवं निम्न (संकुचित विचारधाराओं वाले) सभी के साथ, तथा सभी भांति के संसार के प्राणियों के साथ (पारस्परिक)उत्तम ज्ञान स्थापित कराओ। (२)हम हृदय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से उत्तम ज्ञान प्राप्त कर एक मत से रहें परस्पर विरोध न करें, हम दिव्य मन वाले हों। बहुतों का बध होने पर भी दुःखी न हों और भविष्य में इन्द्र का (विश्व रक्षक) वाण हम पर न गिरे।

शेष पूर्वोलिखित हैं, यह वृहच्छान्तिगण या उपर्युक्त लघुशान्तिगण दोनों से या किसी भी एक से शान्तिकर्म का विधान है। कौशिककण्डिका में देखें।

"मुञ्चामित्वा" (३।११), यह उपर्युक्त "अंहोलिङ्गगणकर्म" के अतिरिक्त, बालग्रह तथा निरन्तर स्त्रीसम्भोग ...क्ष्मा" की निवारण भैषज्य में भी है जो राजयक्ष्मादि व्याधि निवारण के साथ उल्लिखित है। इसमें ... उत्पन्न "राज... वाली विशेष मछली के जल में बने भात, व जल को अभिमन्त्रित कर रोगी को दें (खिलायें, "पूतिगन्ध" पक्षि... ...खी फलियों, लकड़ियों को डालकर उन्हीं से तप्त जल से उषाकाल में निर्जन स्थान में रोगी पिलायें)। इसीसे तिलों की ... गलीसन, जंगलीशुष्क गोमय से शान्ति औषधियों की पोटली पड़े जल को तप्त तथा को झाड़ा दें स्नान करायें, तथा ... ...ान में स्नान, झाड़ादि दें। तथा समस्त व्याधिनिवारणार्थ रोगी को स्पर्श करके अभिमन्त्रित कर, उषाकाल में निर्जन स्... अभिमन्त्रणादि कर्म करें।

अ. वे, कां ३।११ ऋग्वेद। मण्डल १० ...वक १२। सूक्त १६१-ऋषिर्यक्ष्मनाशनः। ...रिकत्रिष्टुभ। २ त्रिष्टुभः। ५ निचृति अनुष्टुप्-३ प्राजापत्य.। देवता-राजयक्ष्मघ्ननम्।—१-४ ... दि भैषज्ये, जपे, उपस्थानः मार्जने स्नाने, एकोत्तरशत निचृत्-त्रिष्टुभ। छन्दासि अंहोसन्मूलने, कर्मजभवव्याधि राजयक्ष्मा। ...ख्याअपमृत्युनिवारणे भैषज्यानुमन्त्रणे होमे विनियोगः।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥२
सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषा हार्षमेनम्।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥४
आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥५

कां ३।११ "मुञ्चामित्वा" तुझे सुखमय दीर्घायुष्यमयजीवन प्राप्ति कराने हेतु, ज्ञात अज्ञात रोगों, राजयक्ष्मादि ...क रस शोषक जकड़ने वाले रोगों की पीड़ा से इन्द्र और अग्नि को हवि प्रदान कर छुड़ाता हूं। किसी की आयु समाप्त ...गई हो जो मरने के निकट पहुंच चुका हो मृत्युको ही प्राप्त होने को हो उसे विनाशसे वापिस कर, शतायुष्यार्थ सुरक्षित ...रताहूं सैकड़ों शक्तियों, बलों, शतायुप्रद होम द्वारा इसे लाया हूं। इसे समस्त क्लेशों से पार करता हूं। निरन्तर वृद्धि ... साथ सैकड़ों शरद हेमन्त, वसन्त पर्यन्त आयु के साथ की, इन्द्र, अग्नि वृहस्पति, सविता की हविसे लाया हूं। ...शाला में बैलों के प्रवेश की भांति प्राण, अपान शरीर में प्रविष्ट होकर, अन्य प्रकार की अनन्त अपमृत्युयें दूर करें। ...म दोनों यहीं रहो, इस शरीर को छोड़ अन्यत्र, दूर न जाओ पुनः सर्वाङ्गों को वृद्धावस्थापर्यन्त सबल करो।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुझे नीरोग सुखप्रद वृद्धावस्थातक पहुँचाने वाली आयु, सैकड़ों अन्य अपमृत्युओं को निरस्त करके, बुढ़ापे से सम्बन्धित करताहूं। जिस मृत्यु ने तुझे उत्पत्ति काल ही से मृत्युपाश से सभी भांति से बांध रक्खा है, तेरे उस मृत्युपाश को, तपपूर्ण सत्य के दोनों हाथों से देवगुरु बृहस्पति छुड़ा देते हैं। यही भाव ऋग्वेद मन्त्र का भी हैं।

"मधुमेह तथा राजयक्ष्मा निवारण"—नीम का मद १ पाव, नीम का तेल १ सेर, नीम की पत्तियों का रस १ सेर, करेला की पत्ति या फलों का रस १ सेर, वकायन पत्तियों का रस १ सेर, गेंदा की पत्तियों का रस १ सेर। इन सबको मिलाकर शुद्ध लोहे के पात्र में डालकर ढकदें और नीम की लकड़ियों की मन्द मन्द अग्नि से पाक करें। जब रस जल जावे, तेल मात्रशेष रहे तो ठण्डा करके छानलें उसे हरेरङ्ग की बोतल में भर दें। तदनन्तर २तोला कपूर, २ तोला पोदीना सत्व, २ तोला अजवायन का सत्व डालकर नीम की लकड़ी से भली प्रकार मिलालें। १ सप्ताह रक्खा रहने दें। उसके उपरान्त कैंपशूलों में भरलें। प्रातः मध्याह्न और सायं १।१ कैंपशूल प्रतिदिन लें (एक दिन में तीन) ही लें। यदि मुह में डकार के बाद कडुआहट प्रतीत हो तो भुने चने छिलके सहित लें। थोड़े लेलें। २१४ दिन बाद जब भूख अधिक सताने लगे तो फल अथवा शहद दूध लें, अन्न कम लें। इसके १ घण्टे बाद ही शुद्ध किये हुए स्वर्ण-गुग्गुल की ज्वार के बराबर की १-१ गोली प्रातः सायं सोते समय दूध के साथ (सम्भव हो सके तो आधा तोला गोघृत चौथाई तोला मधु) मिश्रित करलें। इसके प्रभाव से रक्त शुद्ध होगा एवं रक्तचांप (ब्लडप्रैसर) सम रहेगा तथा दाह घबराहट मस्तिष्क के रोग शरीर की ऐंठन, टूटन, आलस्य, कास आदि राजयक्ष्मादिव्यांधियां तथा मधुमेह (डाइविटीज) समूल नष्ट होंगे वल, वीर्य, ओज, मेधा, नेत्रज्योति की वृद्धि होगी बालों का गिरना बन्द होगा। "यह दोनों भेषजों को सिद्ध करने के उपर्युक्त तैल को अं० कां० ३ सू० ११, कां २ सू० २९ व ३३ ऋग्वेद मण्डल १० अष्टक १२ सूक्त १६१ व १६३ से अभिमन्त्रि करले तथा स्वर्ण गुग्गुल २ तोला को कां० १९ सू० ३८ से अभिमन्त्रित करलें।

२—मधुमेह (डाइविटी) निवारणार्थ दानामेथी २४ घन्टे मिट्टी के वर्तन में भिगो कर मथ कर प्रातः सायं केवल ६ मासे लें मैथी के पत्तों का रस लें कच्चां साग खायें।

कौशिकसूत्र (४१६) में निर्दिष्ट अंहोलिंगगणसूक्त "अक्षीभ्यांते" (२।३३); "मुञ्चमित्वा" (३।११); "उत-देवा:" (४।१३) "आवतस्ते" (५।३०) तथा "शीर्षक्तिम्" (९।८) ये पांचगण भी कौशिक (४१६) के अनुसार अन्यकर्मों के अतिरिक्त, अंहोलिगगण के समस्तकर्मों में विनियोग करने का प्राविधान है। ये पाप निवृत्तिकर मन्त्रों की भांति ही भैषज्य अर्थात्, प्राण, सूक्ष्म, वांसना, स्थूलशरीर की स्वयं की जन्मान्तरीय, पितामहादि, वृद्धमातामहीजनित क्षेत्रीय, दैवहत वरुणादि देवों की शाप जनित, तन्त्र, मन्त्रादिकृत, मारणोच्चाटनादि, प्रभृतिक पापजनित व्याधियों एवं क्रूरदृष्टि-निपात, वाक्प्रहारजनित लौकिक वैदिक शापजनित, यक्ष, गन्धर्व, ब्रह्मग्रहादिउन्मादि, ईति, भीति काम,क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, द्वेष जनित व्याधियों के भैषज्यार्थ, होम, प्रणीता तथा घट के जल से व्याधि शरीर को झाड़ा स्नान, आच-मन, उपस्थान, वलिदान, छायादि विविधदान गोदान, ब्राह्मणभोजन, दक्षिणादिदान, पुरोडाशभक्षणादि कर्मों में विनियोग करें। इन्ही "अंहोलिङ्गगण" मे बर्णित समस्त सूक्तों से पुत्र कामिनी वन्ध्या, मृतवत्सा, कन्याऽपत्या, गर्भ स्राविणी, काक वन्ध्या, की भैषज्य का विधान भी है। कौ० ४१६।

सारांश अथर्वमन्त्र, स्वतः प्रामाण्य, सिद्ध मन्त्र होने से अपरिमित शक्तिप्रद माने गये हैं, ये समस्त अभिलषित काम्य तथा निष्काम कर्मों में अकथनीय फलप्रदाता माने गये हैं।

इन्ही से "अश्वमेध" आदि यज्ञ व्रत दीक्षा कामी यजमानादि की यज्ञ कर्म में उत्पन्न व्याधि भैषज्य का भी प्राविधान है। वै० (७।३) "अक्षीभ्यां" (२।३३) इस सूक्त से, आंख, नाक, कान, शिर. जिह्वा, गर्दनादि रक्तवाहिका नाड़ियों के समीप के पोलस्थानों की "गण्डमाला" वर्तमान कैन्सरादि में व्याधित के अवयवों की भैषज्य में. वांह आदि की ग्रन्थियों को बांधें और अभिमन्त्रितजल छोड़े, गांठों को छोड़कर अन्य अवयवों को झाड़ा दें। कौ० ४।३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ यक्ष्मघ्नसूक्तेव ऋग्वेद, मन्त्र १०। अ० १२ सू० १६३ ऋषिर्विवृहा काश्यप-देवता यक्ष्मघ्नम् छन्दः १-२ अनुष्टुप् । २-५ निचृत् अनुष्टुप् छन्दासि (अंहोलिगगण) कर्मषु कर्मजभव समस्तअद्भुद्दर्शन जनित दोषनिवारणे राजक्ष्मादि भैषज्ये, होमे जपे उपस्थाने, अभिमर्शने एकोत्तरशतसंख्याक अपमृत्युनिवारणे अभ्युदये निश्रेय से च विनियोग ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यंऽमस्तिष्कांज्जिह्वाया विवृहामिते ॥१
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१ं मंसाभ्यां वाहुभ्यां विवृहामि ते ॥२
आन्त्रेभ्यस्त गुदाभ्यो वनिष्टोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो विवृहामि ते ॥३
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णीभ्या प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासंसाद्भंससोविवृहामि ते ॥४
मेहनाद्वनं करणाल्लोमभ्यस्तेनखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते ॥५
अंङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नोजातंपर्वणि पर्वणि। यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते ॥६

कां २।३३ "अक्षीभ्या" भावार्थ—नेत्र, नाशिका, कर्ण, ठोड़ी, मस्तिष्क जिह्वा, शिर सम्बन्धी गले गुर्दे की नाड़ियों, पसलियों, हड्डियों, रीड़, कन्धा, भुजाओं, हृदय, फैफड़ों पित्ताशय, दोनों कोखों, गुर्दों, तिल्ली, जिगर, आंतों, गुदा मलस्थान, उदर कोखों, अन्दर की थैली, नाभि, जंघाओं, घुटनों, एड़ियों पैरों, कूल्हों, गुह्यस्थान कटि सम्बन्धितगुह्य, हड्डियों, मज्जा, पुट्ठों, नाड़ियों, हाथ, अंगुलियों, नखों प्रत्येक अङ्ग, प्रत्यङ्ग, लोम, प्रत्येक जोड़, त्वचा सम्बन्धी फैलने वाले जकड़ने वाले, बहने वाले सभी आधि व्याधि रोगों क्लेशों की जड़ क्षय को, तपसाध्य कश्यप ऋषि के वल (विधान) से हटाता हूं ।

"अक्षीभ्यांते" नेत्रों में कुछ ऐसे सूक्ष्मतर विशिष्ट तन्तुओं का समुदाय है जो हृदयास्थ जाठराग्नि कण्ठ कर्ण पुटी ब्रह्मरन्ध्र से सम्बद्ध है, उस तन्तु विशेष में आकाशजल (ब्रह्मरध्र। के नजला कमलवात श्लेष्मादि के विकृत हो जाने पर (स्थूलदेह) अथवा वरुण शाप से विकृत होकर, गण्डमालायें (कैन्सर) रक्तवाहिनी नाड़ियों के द्वारा प्रवाहित रक्त को कुछ गाढ़ा या विकृत कर (कैंन्सर) का रूप ले लेता है, इसी का दूसरा प्रभाव यह भी होता है कि ब्रह्मरन्ध्रस्नायुओं की विकृत मृगी उन्माद अथवा लकवा का रूप धारण कर किसी भी भाग अथवा अर्द्धाङ्ग अथवा अर्धमुख को विकृत कर देता है । इसी का तीसरा विकृत विशिष्टरूप नेत्र ज्योति परकाले पानी के रूप में या आगे बढ़ा तो जठराग्नि को ही एक दम ध्वस्त कर डालता है, कुछ भी खायें पियें अथवा औषधि के रूप में लें तो उलटियों का तातां या लम्बी लम्बी डकारें अपचन का रूप धारण कर न केवल नेत्र को अपितु पूरे शरीर ही को क्षति प्रद हो जाता है । यह स्थूल काय-चिकित्सकों के गहन शोध का महत्वपूर्ण विषय है । इस पर मनीषि वर्ग अभिमत सापेक्ष्य है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नेत्र को सन्दर्भ में प्रथम अध्याय में सामान्य चर्चा हुई है। यह भी स्थूल नेत्र चिकित्सा के कुछ तथ्य यहां हैं आगे के प्रसङ्ग में मन्त्र की क्रिया दी जायेगी।

रात्र्यन्धः—(रतौंधी) गौ के दही के छूटे हुए जल में सफेद मिर्च (गोल) घिसकर लगायें। २ केशर मधु में घिस कर आजें, (जलन, खुजली नष्ट हो) ३ मिश्री कुञ्जा की १ तोला, नीलाथोथा २ तोला, लाल फिटकरी का फूला १ तोला, सफेदा ८ तोला, सोंठ ६ माशा, काले सिरस के बीज ४ माशा, सांठ की जड़ १ तोला गुलाब जल में घोटें गोलियां बनालें। त्रिफला जल या गोमूत्र या वासी जल में घिसकर नेत्रों में लगायें तो उपर्युक्त सभी रोगों को हितकर होगा। ४ नेत्र जलन (लाली)—श्वेत वारीक वस्त्र को फिटकरी के जल में भिगोकर छाया में सुखाकर उसे बकरी या स्त्री के दूध या गदही के दूध में तर करके आंखों पर रक्खें। नेत्रों का फूला, कोंचाः—नीबू के रस में कुञ्जे की मिश्री घिसकर आंजें। अथवा सैन्धव नमक शहद में घिसकर, आंजें।

कां २ सू ३३, ब्रह्मा, ऋषिः। यक्ष्मनिवर्हणं, चन्द्रमाः, आयुष्यम्। देवते अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती ४ चतुष्पदाभुरिगुष्णिक्, ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३ उष्णिगगर्भानिचृदनुष्टुप्, ७ पथ्यापङ्क्तिः। अहोलिङ्गगणउपर्युक्तकार्येषु, अक्षि, नासाकर्ण, शिरो, जिह्वाग्रीवादि समस्त अवयवजन्य रोग, यक्ष्मादिरोग-भैषज्यार्थे होमे, उदकेचने अवमाजने विनियोगः।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यांछुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यंऽमस्तिष्कांज्जिह्वाया विवृंहामि ते ॥१
ग्रीवाभ्यस्तउष्णिहाभ्यःकोकसाभ्यो अनूक्याऽत्।
यक्ष्मंदोषण्यंमंसाभ्यां वाहुभ्यां विवृंहामि ते ॥२
हृदयात् तेपरिक्लोम्नोहलीक्ष्णात्पार्श्वाभ्याम्। यक्ष्मंमतस्नाभ्यांप्लीह्नोयक्नस्ते विवृंहामसि ॥३
आन्त्रेभ्यस्तेगुदाभ्योवनिष्ठोरुदरादधि। यक्ष्मंकुक्षिभ्यांप्लाशेर्नाभ्या विवृंहामि ते ॥४
ऊरूभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मंभसद्यंश्रोणिभ्यां भासदं भंससो विवृंहामिते ॥५
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्योधमनिभ्यः। यक्ष्मंपाणिभ्यामङ्गुलिभ्योनखेभ्योवि वृंहामिते ॥६
अङ्गे अङ्गे लोम्नि लोम्नियस्तेपर्वणिपर्वणि।
यक्ष्मं त्वचस्यंऽते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वंञ्चंविवृंहामसि ॥७

अ. कां. २ सूक्त ३३ का समर्थन अ. कां. २० सूक्त ९६ मन्त्र १७ प्रभृतिक एव ऋग्वेद मण्डल १० अष्टक १२ सूक्त १६३ जिसके मन्त्र दृष्टा ऋषि विवृहा कश्यप हैं। ये भी वेद की स्वतः प्रामाण्यता और अक्षुण्ण प्रवाही अदम्य अप्रतिहत चमत्कारी देवीवैज्ञानिक सामर्थ्य की सम्पुष्टि करते हैं। मन्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है कि बिना किसी भी अन्य औषधि आदि के मात्र अभिमर्शनसे हीगतायुष्य व्याधित के अङ्ग-अङ्ग लोम-लोम अस्थि-अस्थि आदि से पाप जन्य समस्त व्याधियों का निराकरण कर नैरुज्यत्व अमितायुष्य प्राप्त हो जाना निर्विवाद ध्रुव सत्य है। अन्यथा निष्कामी दया के धाम, तपोधन देवर्षिगण पृथक् २ घोषणायें कदापि न करते।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी प्रकार अ. कां. ८ सू. ६में गर्भ दोष निवारण परकमन्त्रों का अ. कां. २० सू. ९६ में दृढ़तापूर्वक घोषणा वेद की अचिन्त्य अतर्क्य चमत्कारिणी वैज्ञानिक सामर्थ्य का निश्चयात्मकउद्घोष है यही संजवनी विद्या और ज्ञान कवच, नैरुज्यता निर्जरत्व एव अमरत्वप्रदायक है।

अ० कां० ३ सू० ११ एवं २०।९६-६ ब्रह्मा ऋषि, भृग्वङ्गिराश्चऋषयः। इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम् देवते। त्रिष्टुप्। शक्वरिगर्भा जगती, ५-६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिग्बृहतीगर्भा पथ्यापङ्क्ति, ८ त्र्यवसाना षड्पदा बृहतीगर्भा जगती-छन्दान्सि, अंहोलिङ्गवृहच्छान्तिगण कर्मषु, संजीवनी विद्यायांञ्च राजयक्ष्मादि एकोत्तरशत संख्याक अपमृत्यु, निर्ऋतिजनित अद्भुद्दर्शन जनित समस्त ज्ञाताज्ञात ने श्रुताश्रुत, दृष्टादृष्ट शाप, कृत्यादूषणादि समस्त कर्मजभव व्याधि भैषज्यकर्मणि जपे, उपस्थाने, मार्जने अभिमर्शने स्नान पुरोडाश, रस, भैषज्यानुमन्त्रणे ब्रह्मकवच, ज्ञानकवच अनुमन्त्रणे अवधारणे, अस्थि, भस्मदर्भ शमशानकाष्ट, अथवावेद प्रतिमाया पुनः प्राणेन्द्रिय वलवीर्य, ओज संस्थापने चविनियोगः।

जिस व्यक्ति का जन्म पैरों की ओर से ही हुआ हो उसकी ठोकर से कमर की चिग, कूल्हू डिगजानादि ठीक होंगे। जिसके एक हाथ में ६ अंगुलियां हों उनके हस्ताभिमर्शन मात्र से पित्ती, माता, मोतीझला का शमन होता है।

मुञ्चामिं त्वा हविषाजीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुतराजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राहयद्येतदेनं तस्याइन्द्राग्नीप्रमुमुक्तमेनम् ॥१
यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो यदिमृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमाहरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनंशतशारदाय ॥२

("श्रुति"। राजनं यक्ष्म आरद इति तद राजयक्ष्मस्य जन्म" तै० सं० २,५,६,५,)

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतंहेमन्तान्छतमु बसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषाहविषाहर्षमेनम् ॥४
प्रविशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्। व्यन्ये यन्तुमृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥५

"मृत्यु १०१ हैं" आम्नात वचन (२।२९-१) मेमम अन्येमृत्यवोहिंसिपुशतंये" (अन्य शाखा तै० ब्र० ३,१०, ८, २) ये ते सहास्रम् अयुतंपाशामृत्यो मर्त्यायिहन्तवे"

इहैवस्तं प्राणापानौमापगातमितोयुवम् शरीरमस्याङ्गानि जरसेवहतं पुनः ॥६
जरायैत्वापरिद्दामि जरायैनिधुवामित्वा।
जरात्वांभद्रानेष्ट्व्यन्येयन्तुमृत्यवोयानाहुरितरान्छ तम् ॥७
अभित्वांजरिमाहितगामुक्षणमिवरज्ज्वा। यस्त्वां मृत्युरभ्यधत्तजायमानं सुपाशया।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"पाश" "मौञ्जेन दाम्नाज्य तरतः पाशेन" आप० सू० २,५, ४

मन्त्रद्रष्टा महर्षि कश्यप जी का संस्मरण उनके अमोघ वीर्य, वल, तप के प्रभाव से समस्त दुःसाध्य रोगों की शान्तिका प्रतीक है। जो कभी अंव्यर्थ नहीं हो सकता है।

कां ३ सू ११ का विश्लेषणः—इस सूक्त की सभी वर्णित कर्मजभवव्याधियों और उनके निवारण को अथर्व कां २० सूक्त ९६ मन्त्र ६ से प्रारम्भ होने वाली विधियों के अतिरिक्त ऋग्वेद मण्डल १० अष्टक १२ सूक्त १६१ जिसके ऋषि यक्ष्मनिवर्हण हैं प्रामाण्यपूर्ण समर्थ विधि से किया है। इन तीनों ही में यह निर्विवाद दृढ़ता के साथ घोषणा की है। जो इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय "निदान" में उल्लिखित है। ये ज्ञात, अज्ञात, राज यक्ष्मादि से पकड़ने वाली समस्त कर्मज पापज क्षेत्रीय भयङ्कर भव व्याधियों का निराकरण जप योग यज्ञों द्वारा किया जा सकना निश्चित ही आसन्न लक्षण वाले, वल, ओज शक्ति क्षीण व्याधित ही नहीं, अपितु मृत्यु दूतों द्वारा स्थूल शरीर से अतिवाहक और सूक्ष्म प्राण तथा महाप्राण देह ले जाया गया, उनसे ही नहीं महावली यमराज के चङ्गुल से भी पुनः वापिस लाकर पूर्वत्यक्त स्थूल काय में पूर्ववतस्थापित कर उसके पैरों पर खड़ा हो सकता है। इस राष्ट्र को यह महान गौरव है कितनी ही पुण्य-आत्मायें जो पवित्रराष्ट्र में उत्पन्न हुई, आज भी अजर-अमर हैं। कितने योगी सिद्धजन अपने पार्थिव शरीरों को त्यागकर अन्य शरीर में प्रवेश कर चुके हैं और पुनः अपने ही शरीर में वापिस आये हैं। सत्यवाहन राम रावण युद्ध में मृत वानरगण, दशरथ सारथी सुमन प्रभृक्तिकों के सूक्ष्म शरीरों को वापिस लाकर सजीवता प्राप्त कराई गई नचिकेता से यमराज को अपनी पराजय माननी पड़ी। [येही ब्राह्मीविद्या ब्रह्म कवच, ज्ञानकवच और संजीवनीविद्याओं की अकाट्य, दृढ़ ज्वलन्त प्रतीक वेदवाणी है। इन सभी मन्त्रों का गहन से मननता कर एक जीवन ही नहीं, प्राणी मात्र का कल्याण कर सकना वेद का अद्भुत चमत्कारी विज्ञान है। आश्चर्य और खेद है कि चमत्कारी वैदिक विज्ञान को राष्ट्रभुलाने में ही कृतसङ्कल्प है। इससे विश्वात्मा और उनके प्रकट कर्त्ता देवर्षियों का तो कोई अनर्थ का प्रश्न ही नहीं। विश्व का भविष्य निश्चय अन्धकार पूर्ण प्रतीत होता है। ये सूक्त अंहोलिङ्गगण आयुष्यगण, यक्ष्मनाशनगण वृहच्छान्तिगण कर्मों और प्राणविद्याः संजीवनीविद्या, ज्ञानकवच कर्मों में विहित है।]

"उतदेवाः" (४।१३), "आवतस्ते (५।३०) मृत्युञ्जयप्रकरण (संजीवनीविद्या) में आयुष्यगण में तथा "शीर्षक्तिम्" (९।८) राजयक्ष्मादि निवारण प्रकरण में देखे।

कां० ४।१३ "उतदेवा" इसके मंत्र ७ सूक्त से विश्वात्मस्वरूप देवर्षि, ब्रह्मर्षि सिद्ध परमहंसादि, समस्त तपोधनों की, वैदिक, वैज्ञानिक अप्रतिहत महती चकाचौंध में डालदेने वाली चमत्कारिणी मन, बाणी, अन्तर्रात्मा और हस्त की अप्रेमय सामर्थ्य की घोषणा की है। यह हस्तस्पर्श, हस्ताभिमर्शन मात्र से ही रोग निराकरण की अद्वितीय सामार्थ्य है। आज का युग इसी को "मैंस्मेरिज्म" कहता है परन्तु खेद है कि हम भारतीय अनादि. अपौरुषेय सामर्थ्य को अपने हीं हाथों से ध्वस्त करने को तुले हुए बैठे हैं। धर्म शास्त्र का वचन है **"जिह्वादग्धापरान्नेन, हस्तौदग्धौ, प्रतिग्रहात्। परस्त्रिभिर्मनोदग्धं, कुतोसिद्धि र्वरानने।"** निकृष्ट परान्न भक्षण से वाणी की शक्ति, निकृष्ट दानों के लेने से हस्ताभिमर्श सामर्थ्य, पर स्त्री को दूषित भाव से मनन करने से मानसिक अन्तःकरण की सामर्थ्य भस्मीभत होगई, तो सिद्धि भला कैसे हो। यह परम आल्हादिनी परम कारुणिकी पापिष्ठतरों के जघन्य दारुणपापों को निरन्तर करने पर भी मातृवात्सल्य स्नेह में ओतप्रोत परमशक्ति, जीवों के कृतकर्मों के न्याय सङ्गत परिणामों के भुगतान को आतुर प्रभु को, अपने विविध आमोदप्रमोदादि से, प्रसन्नकर प्रभु को ही जीवों पर दया करने को, उनके अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर विवश करने वाली हैं। मन्त्र (१) देवात्मायें पतिततर प्राणियों को, जो निरन्तर पाप करते हैं, उन्हें भी पुनः सुधारने के लिये, पुनः पुनः उठाती हैं। (२) यह दोनों प्राण तथा अपान वायुयें हैं। प्राण फेंफड़ो के अन्दर रुधिरपर्यन्त, अपान दूषिततत्वों को बाहर ले जाने वाला है। प्रथम बलदायी, द्वितीय दोषदूरकर्त्ता है। (३) "प्राण" रोगनिवारक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भेषज लाने वाला, 'अपान' रोग, दोषरूप पापों को दूर हटाने वाला समस्त रोग निवारक देवों का अग्रणी दूत है । (४) जीवपुरी (शरीरस्थ) समस्त इन्द्रियों की अधिष्ठातृदेवतायें, एकोनपञ्चाशन्मरुद्गणांशएकादश प्राण, मन तथा विश्व के समस्त जीवधारी "भूत" इस रोगी की रक्षा करें, यह अविलम्ब नीरोग होजावे । (५) ऋषिघोष ओभोले रुग्ण जीवात्मा ! मैं विनाश निवारक समस्त गुणों, और शान्ति कल्याण कारिणी सामर्थ्य के साथ, तेरे पास आया हूं तेरे अन्दर प्रकृष्ठतम बल भर देता हूँ, तेरी व्याधियों को मैं समूल दूर करता हूँ । इस प्रकार तू निस्सन्देह, नीरोग और पूर्ण स्वस्थ हो जायगा । (६) हे रुग्ण ! मेरा यह हाथ (उपर्युक्त दोष रहित, तपोबल से युक्त) पूर्ण सामर्थ्यशाली है और यह दूसरा हाथ तो उससे भी कहीं अधिक सामर्थ्यवान् है, मानो यह मेरा हाथ समस्त औषधियों की शक्ति से सम्पन्न, दूसरा मंगलप्रद है । (७) हे भोले रुग्ण जीव ? ये दश उंगलियों के साथ मेरे दोनों हाथ, समस्त रोग निवारक है, अब मैं तेरा इनसे स्पर्श करता हूं इस स्पर्श (अभिमर्शन से तेरा समस्त रोग निरस्त होगा और तू पूर्ण नीरोग हो जायेगा, अब तू स्वास्थ्य युक्त हुआ है, यह मैं (सत्य, जप, तप से पवित्र) अपनी अन्तरात्मा से और अन्तरिम तीनों वाणियों की शक्ति से वैखरी वाणी से तुझे आशीर्वाद देता हूँ ।

(विश्वात्मा का अंश जीव है, उसकी उपर्युक्त महती शक्ति जीवात्मा में निहित होना स्वाभाविक ही है, उसकी महती करुणा के भागी हो जाना भी सहजस्वाभाविक है यह वैदिक सामर्थ्य सनातनी दैवी शक्ति ही है ।

आस्य कां० ४ सू० १३ ऋचा १-५ पर्यन्तस्य, शंताति ऋषिः । चन्द्रमाः विश्वेदेवाः छन्दान्सि "विदेवाजरसा" (३।३१), "आवतस्ते" (५।३०) 'विषासहिन्' (१७।१) सूक्तभिः अभिमर्शने, अंहोलिङ्गगण, समस्त कर्मषु, लघुशान्तिगण कर्मषु. एवं "हिरण्यवर्णः" (१।३३) "शतातीयम्" (४।१३), "यद्यन्तरिक्षे" (७।६८) सूक्तेन साकंशतातीय गण कर्मषु, यज्ञकाले यजमानादि रोगोपशमने अक्षीभ्यांते (२।३३), मुञ्चाभित्वा (३।११) सूक्तभिः, साकं होमे मार्जने, स्नाने अभिमर्शने पुरोडाशाभिमन्त्रणे च विनियोगः ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः । उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः । दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः ॥२

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः । त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४

आत्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः । दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।

अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभिमृशामसि ॥७

का०५ सू० ३० 'निम्न", तथा कां० २ सू० ३३ "अक्षीभ्यांते", कां ३।११ "मुञ्चामित्वा" एवं "उतदेवाः" ४।१३; एवं 'शीर्षक्तिम्" कां० ९।८ ये पांचों ही सूक्त वृहच्छान्तिगण में उसी विधि में तथा राजयक्ष्मगण में होने से यक्ष्मविनाशन में और आयुष्यगण में होने से संजीवनप्रदायक हैं । नेत्र, कर्ण, नासिका. शिर, जिह्वा, गर्दन आदि समस्त अवयवों के व्याधिग्रहीतों, हृदयरोगियों आदि सभी के भैषज्य विधि में वाहों आदि की ग्रन्थियों को मूंजादि से बाँधें, गांठों को छोड़कर अभिमन्त्रित जल से छींटे दें और शिर के ऊपर से जल छोड़े स्नान करायें । इसी के साथ "उतदेवा" ४।१३ तथा निम्न ७।५३ इनसे दीर्घायु, नैरुज्यता, पूर्णस्वास्थ्य, बल, वीर्य, ओज, शक्ति ब्रह्मवर्चस्व

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा व्याधि से क्षीण इन्द्रिय आदि की शक्ति और पूर्ववत् स्वास्थ्य, बल प्राप्ति हेतु, व्याधित की नाभि को स्पर्श कर जपें। उपस्थान, मार्जन, स्नान, होम करें, दुग्धादि भेषज अभिमन्त्रित कर पिलायें।

१–१७ उन्मोचनः (आयुष्कामः) आयुष्यम्। अनुष्टुप्; १ पथ्यापङ्क्तिः, ६ भुरिक्, १२ चतुष्पदा विराङ्-जगती, १४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः, १७ त्र्यवसाना षट्पदाजगती। छन्दासि उपर्युक्त अंहोलिङ्गादि कर्मणि विनियोगः।

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितृनसुं बध्नामि दृढम् ॥१
यत्त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः। उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥२
यद्दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या। उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥३
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत्। उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥४
यत्ते माता यत्ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः। प्रत्यक्सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥५
इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह। दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥६
अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः। आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥७
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा। निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अंगज्वरं तव ॥८
अंगभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः। यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद्वाचा साढः परस्तराम् ॥९
ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः। तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥१०
अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते उदेहि मृत्योर्गम्भीरात्कृष्णाच्चित्तमसस्परि ॥११
नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये ॥१२
ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम्। शरीरमस्य सं विदां तत्पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥१४
मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते। सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥१५
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा। त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥१६
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः। यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥१७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां ५ सू० ३० "आवतस्त" अथर्वमन्त्रद्दष्टादेर्वाष श्रीअथर्वाजो का कृच्छ, तपसाध्य, अहैतुक, प्राणिदयापरक समर्थ उद्घोपनिश्चयद्दढ़ आस्था विश्वास के साथ शिरोधार्य, पूर्णतया कल्याणपरक निम्न मन्त्रों द्वारा पढ़ें, समझें और अनुशरण करते हुए जीवकल्याणार्थ कर्त्तव्य पालन का मार्ग प्रशस्त करता है।

(१) ऋषि घोषणा—हे व्याधिग्रस्त ? तेरे प्राणों को जो अत्यन्त समीप, या अत्यन्त दूर भी जा चुके हों, उन्हें तेरे अन्दर दृढ़ता से बाँधता हूं। तू इस मनुष्य लोक में दीर्घकाल तक स्थिर रह, शीघ्र न मर। मृतक पूर्वजों के पीछे न जा। (२) यदि तेरा निजी सम्बन्धी, अथवा अन्यक्षीण प्रवृत्ति का व्यक्ति तेरे ऊपर कोई, कैसा भी प्राणघातक प्रयोग करता है, तो उससे रक्षणार्थ अपनी महावाणी से मुक्त होने (बचने) और दूर रहने की विद्या का उपदेश करता हूं। (३) यदि स्त्री या पुरुष ने अज्ञान से द्रोह किया है, किंवा शाप दिया है, तो उससे भी छूटने और पृथक् रहने की विद्या का उपदेश करता हूं। (४) यदि माता-पिताओं के कृतपापों से तू रोगशय्या पर है। (५) तो माँ, बाप, बहिन, भाई स्वजनों द्वारा निर्मित भेषज उचित रूप से सेवन करें, मैं तुझे वृद्धावस्था का दीर्घजीवी बनाता हूं। (६) हे रुग्ण-मानव ! दृढ़विश्वास और निष्ठावान् होकर इस जोवात्मा की नगरी (शरीर) में दीर्घकाल पर्यन्त रह, मृत्यु दूतों के बश में न जा। (७) हे मानव ! नीरोगता की उन्नति के मार्ग को समझते हुए, रोगों पर आक्रमण कर, परास्त कर। (८) हे भोलेरुग्ण ! तू भयभीत न हो, तू मरेगा नहीं, तेरी दीर्घायु करता हूं, तेरे शरीर के प्रत्येक अङ्ग से ज्वरादि क्षयरोगादि की पीड़ाओं को दूर करता हूं। (९) तेरे शरीरावयवों की पीड़ा अङ्गज्वर, हृदयादिरोग, क्षयरोगादि सभी, वाणी की सामर्थ्य (आशीर्वाद) से वाजपक्षी की भांति दूर भाग जावें। (१०) ये बोध और प्रतिबोध रूप दोनों निरालस, जागरूक रहते हुए, तेरे प्राण की रक्षा करें। (११) इस जीवात्मा की नगरी (शरीर) में प्राणविद्या की सहायता से अन्तःकरण में आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रकाशित होगा, इस प्राणविद्या से मृत्युरूप प्रगाढ़ अन्धकार दूरकर, आत्मप्रकाश से प्रकाशित हो। (१२) हमारी ले जानेवाले यम और मृत्यु को नमस्कार है मृत्यु के उपरान्त (अतिवाहक शरीर को ले जानेवाले) पितरों को नमस्कार है। मृत्यु से पार करने वाली प्राणविद्या (संजीवनी विद्या) का अवलम्ब कर। (१३) तेरे प्राण, मन, चक्षु, बलादि सभी शक्तियां पुनः शरीर में आकर स्थिरता से निवास करें, यह शरीर पुनः स्वसामर्थ्य से अपने पैरों पर खड़ा होवे। (१४) यह प्राण और चक्षु की शक्तियों से युक्त हो, शारीरिक बल से प्रेरित हो, तू अमृत (संजीवनी विद्या) का ज्ञाता हो; जिससे तेरा प्राण न जावे, वृथा मरकर मिट्टी में न मिल। (१५) प्राण-विद्या से, तेरे प्राण नष्ट नहीं होने के। अपान के साथ प्राण (जीवात्मा की नगरी) शरीर में दृढ़ता से रहें, सूर्य अपनी किरणों से जीवन प्रदान करें (नग्न गात्र से सूर्य किरण स्नान, सूर्योपस्थान सूर्यचक्र में मन और दृष्टि की एकाग्रता से प्राणविद्या के द्वारा संजीवन प्राप्त होता है)। (१५) बोली जाने वाली वैखरी वाणी से (अन्तर्हित परा, पश्यन्ति, मध्यमा) वाणी की शक्ति से आशीर्वाद रूप घोषणा करता हूं कि तेरे जन्मकाल से ही पीछे लगने वाली क्षय रोगों की शक्तियां, ज्वर और शतमृत्युओं की दुस्सह पीड़ा को, आशीर्वाद, अभिमर्शन, अवमार्जन उपस्थान, होम, प्राणविद्या, संजीवनी विद्याओं से दूर करता हूं। (१७) हे जीवात्मा ! तू देवों का प्रिय (स्वरूप) है, यद्यपि मृत्युलोक में जन्म लेने से मरणधर्मा है, तथापि हमारा यही निर्देश है कि तू वृद्धावस्था से पूर्व मत मर। (प्राणविद्या, संजीवनीविद्या, ज्ञान-कवच, ब्रह्मकवच) तथा (यक्ष्मनाशिनी विद्यायें ग्रन्थ में आगे प्रसङ्गों में हैं। ये मन्त्र भी उसे के अङ्गभूत हैं)।

दीर्घायु के लिये वर्जित आहारविशेष—

(१) दूध पीकर पान खाना। (२) दूध के साथ पेठे के पदार्थ खाना। (३) शराब के साथ दूध पीना। (४) मास पदार्थों के साथ दूध पीना। (५) नीबू, नारंगी, सन्तरा, प्याज, लहसन आदि के ऊपर दूध पीना। (६) खरबूजा खाकर दूध पीना। (७) दूध पीकर पानी पीना। (८) कुल्फा या बथुआ खाकर दूध पीना। (९) क्वार में करेला खाना। (१०) चैत्र में गुड़ खाना। (११) भादों में मूली खाना स्वास्थ्य को नष्टकारक, राजयक्ष्मादि व्याधियों का मूल है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"पुनन्तुमा" (६।१९) "वायोः पूतः" (६।५१) "वैश्वानरो" (६।६६२) "सस्रुषीः" (६।२३) हिमवतः (६।२४)वृहच्छान्तिगण में हैं। समस्तरोग भैषज्यार्थं ढाकादि की समिधाओं से आज्यहोम करें, अर्थोत्थापनादिविघ्नशमनार्थ अभिमर्षण अवसेचन, खीर का होम स्नादि अर्थोत्थापन करते हुए करें।

(अथपवित्रगण) अथव कां ६ सू० १९

१-३ शान्ताति। चन्द्रमाः, १ देवजनाः, मनवः, विश्वाभूतानि, पवमानः, २ पवमानः ३ सविताः गायत्री, १ अनुष्टुप्। छन्दासि वृहद्गण कर्मणि विनियोगः।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तुमनवो धिया पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥१

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे। अथो अरिष्टतातये ॥२

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। अस्मान्पुनीहि चक्षसे ॥३

कां० ६।१९ "पुनन्तुमा" दिव्य वुद्धि से, विश्व के प्राणी आषिशों से पवित्र करें। कर्म, वल दीर्घायुष्य, कल्याणवृद्धि, पावनदेव, पवित्रता, विश्वस्नष्ठा दर्शनों, दोनों पवित्र विचार, यज्ञ से हम सबको पवित्र करें।

(६।६२) १-३ अथर्वा। रुद्र, वैश्वानर, वातः द्यायापृथिवी। त्रिष्टुप्

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥१
वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वोऽवीतपृष्ठाः।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२
वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥३

कां ६।६२ "विश्वानरो" विश्व का नेता, हमारी रक्षार्थ, निजपरमधाम से पधारकर तेजोमयदेव हमारी उत्तम स्तुतियां स्वीकार करे। वह तेजस्नी, विश्वसंचालक, प्रेमधाम हमारे यज्ञ में पधारें। वैश्वानर ज्ञानियों, ऋषियों, मुनियों के स्तोत्य दिव्यस्तोत्रों को तेजोमय सामर्थ्य से सक्षम बनाता है।

"वायोः पूत" (६।५१) बृहच्छान्तिगणकर्म विधान में है। इससे समस्त रोगों की भैषज्य में पलाश, पीपल आदि शान्ति वृक्षों की समिधाओं से होम करें। अर्थोत्थापन विघ्नशमन में "पुनन्तु मा" (६।१९) में वर्णित क्षीरौदन हवन आदि करे। यह तीन ऋचायें: (वारुणमन्त्रगण) अपांसूक्त में भी हैं छींटे, स्नान आचमनादि भी करें। कौ० ८।९

कां (६।५१) १-३ शान्तातिः। आपः, ३ वरुणः। १ गायत्री २ त्रिष्टुप्। ३ जगती

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१

आपो अस्मान्मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।

विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याऽश्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥३

कां. ६।५१ "वायोः पूतः" वायु के पवित्रकर्त्ता यज्ञों से, प्रत्यक्ष निष्काषित सोम, इन्द्रशक्ति का योग्य मित्र है। वात्सल्य प्रेमपूर्ण मा की भांतिपावन जल हमें शुद्ध करें। सब दोष बहा दें, इनसे शुद्ध होमैं अग्रगामीबनू । हे वरुण ! दिव्यात्माओं के प्रति अनाड़ी जो भी अपराध करते हैं, जो अज्ञ तेरे निर्दिष्ट पवित्र धर्मों का उल्लंघन करते हैं, हम सबको उन पापों से नष्ट न कर।

पापमोचनम्—ऋ० वे० मं० ४ अ० २ सू० वामदेव ऋषीः अग्निर्देवताः । ४ भुरिक् पंक्ति,: ५ निचृदनुष्टुप् ६ पंक्तिः । जन्मान्तरीय पाप, शाप निवारणे विनियोगः । (ऋग्वेद)

यच्चिद्धिते पुरुषत्रा यविष्ठा चित्तिभिश्चकृमाकच्चिदागः ।
कृधीश्व ३ स्मा अदितेरनागान्व्येनांसिशिश्रथोविष्वगग्ने ॥४
महश्चिदग्न एनसो अभीके ऊर्वाद्द्विषानामुतमर्त्यानाम् ।
माते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छातोकाय तनयायशं योः ॥५
यथा हत्यद्वसवोगौर्यंचित्पदि षितामसुञ्चतायजत्राः ।
एवोष्वा१ स्मन्मुञ्चताव्यंहः प्रतार्यग्नेप्रतरं न आयुः ॥६ (१२)

भावार्थ—४-हे पापों को दूर करने वाले प्रभो ! हमें अपराधों से पूर्ण रूप से रहित करो जन्म जन्मान्तर कृत भीषण अपराधों को दूर करो, जो कुछ भी, जब कभी जैसे भी मूर्खता, ढीठतावश हमने किये हैं।

(५) हे महाप्रभु ! हम महापुरुषों की शरण में, महानपापों से दूर रहें, तेरी कृपा के पात्र हों, कभी, किसी भांति पीड़ित न हों, तू ! हमारे पुत्र-पौत्रों, परिजनों, प्रियजनों को भी, शान्ति, सुख, पाप, ताप निवारणता प्रदान कर।

(६) हे याज्ञिकों ! वसुओं ! जैसे भी सम्भव हो पैरों में बंधी गौ के तुल्य (ज्ञातव्य सम्बन्धों में बंधी हुई उस श्रेष्ठ-कल्याणकारी वाणी को, जो अन्यों को प्रदान करते हो; उसी प्रकार हमसे हमारे सभी प्रकार के पापों को दूर करके, संसार सागर से पार करने के, सुदीर्घ आयु प्रदान करने की कृपा करो।

ऋ. मं. ७। अ. २। सू. ३२ मन्त्र २७ वसिष्ठ, ऋषिः इन्द्रोदेवता-वृहती छन्द, जन्मान्तरीय सङ्कट मोचने उपस्थाने विनियोगः ।

मानो अज्ञाता वृजना दुराध्योऽमाशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूरतरामसि ॥२७ (२१)

हे करुणामय प्रभो ! हमें अज्ञात, निषिद्धि, हिंमक (आसुरी, दैवी, मानवी) दुःखदायी आपत्ति-जनक, अकल्याण कारी, आत्मायें न सतायें। हे पापप्रतारण प्रभो ! हम तेरी शरण में रहें, अनादिकर्म बन्धनों की भीषण प्रवाहित नदियों से पार हो जावें ऐसी कृपा करो।

संकट मोचन-शापविमोचनम्—ऋ. वे. मं. ७। अ. ५ सू. ८९—वशिष्ठ ऋषिः वरुणोदेवता। १-४ आर्षि-गायत्री ५-पादनिचृत् जगती छन्दः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मोषु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥१

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्नध्मातो अद्रिवः । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥२

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमाशुचे । मृडा सुक्षत्र मृडयः ॥३

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥४

यत्किञ्चेदं वरुणदैव्ये जनेभिद्रोहं मनुष्या३श्चरामसि ।

अचित्तीयत्तव धर्मा युयोपिम या नस्तस्मादेनसोदेव रीरिषः ॥५-११-५

अस्य कां० ६ सू० ८ अर्थसूक्तस्य २२ भृग्वङ्गिराः । ऋषिः । सर्वशीर्षामयाद्यपाकरणम् । देवता अनुष्टुप्, १२अनुष्टुप् गार्भा ककुम्मती चतुष्पदोष्णिक्, १५ विराड् नुष्टुप्, २१ विराट् पथ्या बृहतीः । २२ पथ्या पङ्क्तिः । छन्दांसि । मन्त्रोक्त राजयक्ष्मादि, शीर्षण्यकर्मजभव व्याधि भेषज्ये, अंहोलिङ्गगणकर्मणि, राजयक्ष्मादिगणकर्मविधौ, अभिमर्शने-मार्जने-स्नाने-होम, २२-२३ ऋग्भ्यां सूर्योपस्थाने कां० २ सू० ३३ सूक्तविधौ च विनियोगः । शिरोरोगादि सर्वभैषज्यकर्मणि, व्याधितमभिमर्शने; आदित्युपस्थाने अंहसोन्मूलनादि-जप, होम, अवसेचनावमार्जन, स्नानादिषु विनियोगः । कौ० ४-८;

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् । सर्वं शीर्षण्यंऽते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥१

कर्णाभ्यां ते कंकूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् । सर्वं शीर्षण्यंऽते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥२

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः । सर्वं शीर्षण्यंऽते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥३

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् । सर्वं शीर्षण्यंऽते रोगं बहिर्निर्मन्त्रया महे ॥४

अंगभेदमंङ्गज्वरं विश्वांग्यंऽविसल्पकम् । सर्वं शीर्षण्यंऽते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥५

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् । तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥६

य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके । यक्ष्मं ते अन्तरंगेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥७

यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि । हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥८

हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात् । यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९

आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् । यक्ष्मांणांसर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१०

बहिर्बिलं निर्द्रवतुकाहाबाहं तवोदरात् । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥११

उदरात्ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१२

याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानंप्रत्यर्षणीः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ।१३

या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१५
यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते । अहिंसन्तीरनामयानिर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१६
या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१७
या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१८
ये अंगानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१९
विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥२०
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परिभंससः ।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्षो रोगमनीनशम् ॥२१
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्य न्नादित्यरश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥२२

ऋ० २१-२२ से सूर्य उपस्थान अरुणसूर्य का प्रातः करने से, समस्त रोग शान्त होते हैं। ब्रह्मवर्च, स्वास्थ्य सौभाग्य सम्वर्द्धन होता है। लाल वस्त्र धारण करें, ताम्रपात्र में लाल चन्दन, लाल चावल, लाल ही पुष्प डालें, लाल अरुण सूर्य को अर्घ्य दें।

नरक की उत्पत्ति:—

"व्यन्तः दुरेवाः अनृताः असत्याः पापासः इदंगम्भीरं पदं अजनत्" (ऋग्वेद)

कुमार्गगामी भी, दुराचारी, अनैतिक, मानवीय नियमों के उल्लंघन करने वालों ने, असत्यपरायण पापिष्ठों ने ही इस गम्भीर नरक का निर्माण किया है। इन जीवों के, नारकीय घोर संकट निवारणार्थ, अंहोलिंगगणविधि दी है। कां० ९।८ "शीर्षक्ति" शिर और शिर सम्बन्धी रोग (शिरदर्द, कर्णशूल, रक्तहीनता, रक्तदूषण, रक्तचाप, पाण्डुरोग, मस्तिष्क विकार, जुकाम, नजला, उन्माद; विभ्रम, निद्राहीनता, प्रगाढ़निद्रा) आदि। कान के भीतरी भाग में विशेष पीडा देने वाले कर्णशूल, कर्णमूल (कनफेरे) कान या मुख से बहने वाले यक्ष्मादि रोग सभी। वधिरपन, रात्र्यन्ध, अन्धापन, अङ्गों को तोड़ने वाले, अङ्गज्वर, समस्त अङ्गों में पीड़ा करने वाले, भयंकर रूप से कम्पन करने वाले, वर्षपर्यन्त होने वाले उत्पीड़ित करने वाले, कभी ताप कभी शीत पैदा करने वाले, जंघाओं तक बढ़ने वाले, नाड़ियों में प्रवेश करने वाले, अन्तड़ियों में रहने वाले, कामवासना से उत्पन्न, अथवा अन्य कारणों से, हृदय. हृदय के ऊपर, हृदय के अन्तर के, कफ, वात को हृदय और सभी अङ्गों से, अभिमर्शन मार्जन, सूर्यकिरणों से, सूर्योपस्थान द्वारा ऊपर से नीचे उतार कर बाहर करता हूं। तेरा पाण्डुरोग, कामला, रक्तहीनतादि रोगों को, तेरे शरीर के अवयवों से, उदरतुण्ड, की ओर जलोदर, पाषाण, प्लीहा, जिगर, यक्ष्मरोग समुदाय को, कफ थूकादि विकृतरूप से बाहर जाने वाले आम, मूत्र, रक्त, बवासीर, भगन्दर, पेट में तारस्वर करनेवाले, मूत्राशय के विषैले, विकृत रोगों को। सीमाप्रदेशों के उत्पीडन करने वाले फेंफड़ों, नाभिप्रदेश, बगलों, बक्षस्थल, हृदय पर आक्रमण करने वाले, हृदयविदाही. हृदकम्पन करनेवाले, व्याधिमूल, पसली की हड्डियों में रमने वाले, पीड़ित करने वाले, पृष्ठभाग के, रीढ़ की हड्डी के तिरछा, व्यंग बना देने वाले, लकवास्वरूप, पसलियों में प्रवेश करने वाले गुदापर्यन्त फैलनेवाले, आंतों को रोकने वाले, मज्जाओं को रस, रक्तहीन बना देने वाले, जोड़ों में पीड़ा करने वाले यक्ष्मगण, व्याकुल करते हुए, तेरे अङ्गोंको मद, आलस्ययुक्त बनाने वाले, पीड़ा, सर्वत्र की सूजन. बात व्याधियों और इन विषों के दुष्प्रभावों को, तेरे पावों, जानुओं, कूल्हुओं, गुप्तभागों, रीढ, गुदा की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाड़ियों, रेंगने वाली वायु आदि स्वरूपों को और शिर की पीड़ाओं, मस्तिष्क विकारों, व्याधियों, हृदय के क्लेशों रोगों को उपर्युक्त प्रकार से उदित सूर्य किरणों से, शिर के रोगों को तुझसे तेरे अन्दर से, तेरे ऊपर से, उतार कर, निकाल कर बाहर करता हुआ तेरे अङ्गों की व्याधियों, पीड़ादि को शान्त बनाता हुआ, पापों से पापकर्मों के व्याधि-रूप बन्धनों से मुक्त करता हुआ, पवित्र नीरोग स्वस्थ, पूर्णायु वाले वृहच्छान्ति प्रदान करता हूं।

अ० कां० ६ सू० ८ "शीर्षक्ति" की कतिपय स्थूलकायिक व्याधियों के निराकरणार्थ अभिमन्त्रित कर निम्न औषधियों का प्रयोग हितप्रद है। प्रथम अध्याय में भी कुछ औषधियों का उल्लेख हो चुका है। एक ही ओषधि सबको अनुकूल होना कठिन है। वात, पित्त, कफ प्रकृति वालों के भेद से ओषधि भेद भी स्वाभाविक है। **मस्तिष्कदर्द**–कर्पूर, केशर, गोघृत में मिलाकर लेपें। अफीम, लालकनेर के फूल की पराग, पीसे गुनगुना कर लेप करें। सौंठ गोघृत में घिसकर, रुई के फाये में शिर पर रक्खें। शिर में जलन हो; तो गोदुग्ध का फाया शिर पर रक्खें। ७ कालीमिर्च १ तोला मिश्री और मक्खन मिला प्रातः चाटें। पानी में धनियां पीसकर लेपें। पीली मिट्टी का लेप करें। **आधाशीशी**—गोघृत नाक से प्रातः चढ़ायें। केसर घी में पीसकर नस्य लें, इससे **पीनस** भी नष्ट होती है। **मुख का घाव, छाले**–शीतलचीनी मिश्री मुँह में रक्खें। **जिह्वा का घाव**–पके केलों को दही के साथ प्रातः सन्ध्याकाल में खाये। **नाक से रक्त बहने में**–आमले पीसकर, घी में भूनकर शिर पर लेपें। पीली मिट्टी का लेप या सफेद दूब पीसकर लेपें, रस पियें। **मुख पर छांई**–हल्दीचूर्ण में वट दुग्ध मिलाकर मलें। **कर्णशूल या वहरापन**–चूहों की मिगी और हल्दी पानी में पीसकर कान पर लगायें। गोमूत्र गुनगुना कर कान में भर दें, उसी से धोयें।

प्लीहा—यकृत (तिल्ली-जिगर) अभिमन्त्रित कर नागफनी की जड़ की माला धारण से स्वतः ही नष्ट होते हैं। अथवा रवि या गुरुवार को जब पुष्य हो तो बांझककोड़ा की जड़ पूजा, प्रार्थना कर लायें, अभिमन्त्रित करें, रोगी पर ऊपर शिर से एड़ी पर्यन्त ७ बार उतारें, स्वांस के सामने कर ७ बार स्वांसोच्छ्वास लें। (रोगी के वहतेस्वर के हाथ से स्वांस ऊपर खींचें) तब जलते चूल्हे या अंगीठी से बांधें, गाँठ जैसे २ सूखेगी, तिल्ली जिगर भी नष्ट वैसे ही होंगे। **पथरी**—शुद्ध लोहे की अंगूठी अभिमन्त्रित कर दाये हाथ की मध्यमा में बाँधे। **मृगी**—रवि गुरु पुष्य में जायफल को अभिमन्त्रित कर शुद्ध रेशम के धागे में गूथकर वांह या गले में धारण करें। अथवा शुद्ध हींग अभिमन्त्रित कर रेशमी वस्त्र में ताबीज बनाकर काले रेशमी धागे में पुरोकर गले में बाँधें। अथवा गौ के स्वतः गिरे बाँये सींग की ही अंगूठी बना अभिमन्त्रित कर, कनिष्ठका उंगली में धारण करें। **आधाशीशी**—(१) सूर्योदय से पूर्व दक्षिण दिशा की ओर मुंह करके गुड़ की डेली दांत से दवायें—(२) जवामिर्च चन्दन की भांति पीसकर सूर्योदय से पूर्व दर्द की विपरीत कनपटी पर शुक्र और शनिवार को लगायें। (३) कालीमिर्च १२, नीम की कौंपल १२, चावल १२, वारीक पीसकर सूर्योदय से पूर्व लगातार ५।७ मिनट ४।६ दिन सूंघें। **हिचकी**—(१) रोगी को नीचे मुखकर लिटायें। (२) रोगी को अचानक हटा दें। (३) अचानक मुंह पर छींटे मारें। **दांत का दर्द**—छोटे बच्चे के गिरे दूध के दांत का ताबीज अभिमन्त्रित कर बाँधें। **दस्त**—बच्चों या बड़ों के अधिक दस्त निवारणार्थ रवि गुरु पुष्य में पूजा कर लाई, सहदेवी की जड़ ७ टुकड़े करके लाल धागे में लपेट कर अभिमन्त्रित कर कमर में बाँधें। **संग्रहणी**—गैंहुआ रङ्ग के सांप की कैंचुली, लाल कपड़े में बाँधकर अभिमन्त्रित कर कांटेदार पेड़ पर बांध दे। **दाड़ या दांतों का दर्द**—बच्चे के गिरे दूध के दांत कपड़े में ताबीज बना, अभिमन्त्रित कर गले में बाँधे। **बालक के दाँत निकलने में**—बालक के दांत निकलने की पीड़ा में सीपियों की माला अभिमन्त्रित कर धारण करायें। अथवा—संभालू की जड़ अभिमन्त्रित कर गले में बाँधें। **बिच्छू दर्द** अपामार्ग की जड़ अभिमन्त्रित कर घिसकर लगायें, कांटें से स्पर्श करायें अथवा २।४ बार दिखायें। **दाद**—(१) ढाक के बीच और कत्था समभाग लें पीसें; लेप करें। (२) पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, मुशकापूर १ तोला, राल १ तोला, नीलाथोथा २ माशा, सुहागा १ तोला, गेरू १ तोला, मिलाकर, मरहम बना लें, दाद को शुष्क जंगली गोमय से घिसकर, उस पर लगायें। **काली खाँसी**—छोटे बच्चों के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गले में लहसुन की कलियों की माला अभिमन्त्रित कर बाँधें। **मुँह के दाग**—तुलसीदल और नीबू के रसों को मिलाकर मलें। **उदर विकार**—गुलाब जल, १ पाव में अनारदाना भिगोकर. रात्रि के अन्त में छानकर, मथकर पीयें। **हैजा**—१ छ० प्याज, १४ कालीमिर्च पीसकर, पानी में मिलाकर १।१ घण्टे बाद दें। **कण्ठमाला**—काशीफल के टुकड़ों को पानी में गर्म कर गरारे करें। **दाड़ का दर्द**—जवामिर्च पीसकर छानकर, गुनगुना कर दर्द की विपरीत दिशा के कान में डालें। यदि कान में जलन हो तो गुनगुना घी कान में बाद में डाल दें। **शिर की गञ्ज**—वट की कोपलें असली तेल में भूनकर तेल को मलें। **तुतलाना**—कुछ दिन तक सत्यानाशी की टहनी जीभ पर लगायें, कुछ घण्टे बाद उसी के दूध को जीभ पर मलें। **पेट के कीटाणु**—इन्द्रायण की जड़ कपड़छन कर ३ माशा, पुराना गुड़, १ तोला कूटकर, गुलाब जल के छींटों से नरम करके गोली बना लें, प्रातः सायं १।१ गोली गरम जल से निगलें। **जमजूंये**—धतूरे के पत्तों का अर्क शिर में मलें। **पेट दर्द**—पीपल की लाल कौंपल पीसकर गुड़ में मिलाकर सेवन करें। **काले बिच्छू का जहर या चूहे आदि का जहर**—हुलहुल की जड़ १०।१२ बार सुंघायें। **मृगी**—२ माशे तम्बाकू के पत्ते, १ पाव जल में औटायें, १ घण्टे बाद छानकर, १ छटांक, प्रातः सायं पिलायें। **अर्श**—हरड़ और लहसुन ४।४ माशे, हड़जोड़ी ८ माशे में नमक तेल मिलाकर लगायें। **उन्माद**—ईख, कुटकी समभाग, दूध व शक्कर मिला, नस्य लें। **स्तनों के दूध की वृद्धि**—कमलगट्टों की खीर लें। बिनौले की मिगी २ तोले की दूध में खीर बनाकर सेवन करें। **खांसी**—काकड़ासीगीं, अतीस, मुलहटी, समभाग लें, चूर्ण २ माशे मात्रा, शहद के साथ सेवन करें। **नेत्रदुखना**—बबूल या हुलहुल या गैंदा की पत्तियों की टिकिया बनाकर बाँधें।

मरहम नासूर—३ तोला मुरदासन, १ तोला सिंगरफ, पीली कौड़ी २४ दाने इनको नीम के कोयलों में किसी चीज में रखकर ढक कर फूकें। मिट्टी के बर्तन में जस्ता २ छटांक या अधिक भी रखकर बर्तन गरम कर फूंकें। इन सब भस्मों को २ बार गैया भैंस के मक्खन में मिलाकर पीतल के बर्तन में रखकर, पीतल की ही चीज से घिसें। उस मरहम को कांच के बर्तन में रख लें। नासूर को नीम के पानी से धोयें, रुई से शुष्क कर लें। उस पर मरहम का फाया लगावें। ४ या ५ दिन में नासूर ठीक होता है। घुटाई ७२ घण्टे करें।

गहरा जख्म—कुदुरूगौंद, मुश कर्पूर, राल, पारा ये सब २।२ तोला नीलाथोथा १।। तोला, को १ छटांक घी में मिला, पीतल के बर्तन में, पीतल से ही घिसकर मिला लें। २४ घण्टे घोटें। उसमें से १।१ फाया लगाये।

सूजाक—(१) शंख जरापत्थर, भुने चनों की दाल, ३।३ तोला, वैरोजा का तेल २ तोला, इनको मिलाकर उड़द के बराबर गोलियां बना लें १।१ गोली पानी के साथ लें।

सूजाक (आतिशक) जिरयान—(२) २ रत्ती पारा, १२ रत्ती अफीम और तुलसी का रस, को लोहे के पात्र में नीम के सोटे से घोटें, एकरस हो जाने पर २ रत्ती तुलसी का अर्क, मिलाकर, तुलसी में घोटकर, जावित्री ३२ रत्ती, खुरासानी अजवायन ३२ रत्ती, जायफल ३२ रत्ती, अकरकरा ३२ रत्ती, सबके योग से द्विगुण कत्था डालकर फिर तुलसी के रस में मिलाकर गोली बना लें। बबूल के गोंद को पानी में भिगो दें मथकर उसे दूध में मिलाकर, गोली के ऊपर पियें। १।१ गोली मात्रा है।

(३) थवांसर ६ मासा, इलायची छोटी ६ माशा, मुसकापूर ६ माशे, राल ६ माशे, दालचीनी ६ माशे, मिश्री ३ तोले, कच्चे दूध के साथ खायें।

(४) पत्थर बेर १ तोला, कलमीखुदरा १ तोला, सत्यानाशी का रस २ तोला मिलाकर लगाये।

मलेरिया ज्वर—हुलहुल के पत्तों का अर्क रोगी के कान में डाले, "विषैले, फोड़े, वद" आदि जो पकें नहीं, लाल हों, तर्राते, बढ़ते हों, उन पर पीपल की जड़ की मिट्टी का लेप करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मरोड़ादर्द—सुरमा १ तोला, कत्था १ तोला, अफीम ६ माशा, इनकी कालीमिर्च के बराबर गोली बना लें। पानी के साथ १।१ गोली (१।१ घण्टे बाद यदि तेजी हो तो) दें।

वायुरोग—५ तोले बादाम, ५ तोले मुनक्का, १।। तोले सनग्य, ५ तोला मिश्री इन सबको घोटकर, लड्डू बना लें।

रक्तशुद्धि—चिरायता ९ माशा, हरड़ ६ माशा, शहद १ तोला, पानी ४ छटांक, मिलाकर पियें।

२:— वहलावा १ तोला, तिल १ तोला, फशतमा १ तोला, मगज १ तोला, अजवान १ तोला, जाराजी १ तोला, गोड़ ४ तोला, इन सबको मिलाकर, ६।६ माशा की मात्रा में प्रातः सायं लें।

३ :—१ तोला संखिया, खरल में पीसकर, उसमें १ पाव नीबू का रस मिलाकर घोटें, शुष्क सा हो जाने पर बाजरा के बराबर गोली बना ले। १।१ गोली मलाई या मक्खन के साथ सेवन करे।

"छाजन-अपरस" पर अनुभूत—सफेद कनेर के पत्ते हरे १ सेर। पीली सरसों या दुआँ (तारमीरा) के तेल १/२ सेर को कढ़ाई में डालें धीमी २ अग्नि से सिद्ध कर छानकर बोतल में रख लें, लकडी पर रूई लगाकर उसमें डुबाकर, छाजन पर लगाकर, हल्का कपडा ऊपर से लपेट दें। ५।६ दिन करने पर ठीक हो जाता है।

कां० ६ सू० १३ "नमोदेववधेभ्यो"—इन तीन ऋचाओं से विजयेच्छु अपनी सेना के चारों ओर प्रतिदिन उपस्थान करें। वैश्य हो तो उसके लिये आक्रामक शत्रुओं की ओर दृष्टिपात करके जपें, और इन्हीं से घी (तेल) सत्तु का होम, धनुष की लकड़ी, शरों की समिधाओं से होम करें इन्हीं से अभिमन्त्रित कर अस्त्र-शस्त्र धारण करायें।

(कौं० २।६) इसीसूक्त से तथा अभिमन्त्रित कर, कां ६ सू० १० "परिद्योमिव" की ऋचाओं से सर्प विष भैषज्ये में, सर्पविष निवारणार्थ, तथा सभी विष निवारणार्थ, कां ३।२६ "येऽस्यांस्थ" में वर्णित (स्वसेना के मनोबल सम्बर्द्धनार्थ, प्रत्येक ऋचा से प्रत्येक दिशा में उपस्थान करें) एवं समस्त विष निवारणार्थ (मधुकीट) कच्ची दीवाल के (कोयले), अथवा "छत्ते को जीव विशेष" को पिलायें, और विशेष कर नीम से झाड़ा दें, इसी कर्म में कां० ४ सू० ६ ब्राह्मणोजज्ञे" की भी ३ ऋचायें हैं। (कौ० ४।५) में वर्णित कर्म करें। इन्हीं उपरोक्त ऋचाओं से सिकता अभिमन्त्रित कर सेना के रक्षणार्थ, तथा पर सेना में परस्पर विद्वेषणार्थ बालू चारों ओर छिड़कें, विषाक्त जीव पर भी छिड़कें, गुडूची अपामार्ग, शिरस, श्वेत पीत सरसों तथा अध्याय १ में उल्लिखित विषनाशन औषधियों से होम करें। इन्हीं ३ ऋचाओं से प्रेत दाहान्त, स्वगृह की शुद्धि तथा प्रेतात्माओं की मुक्ति, और गृह वासियों की उन से मुक्ति के हेतु हवन करें। इस कर्म में कां० ३ सू० २१ "ये अग्नय" भी वर्णित है। इन्हीं ३ ऋचाओं से ब्राह्मण के हथियार धारण, देवप्रतिमानर्तना हसने वन्ध्या के स्तनों से दुग्ध आने, अदि समस्त "अद्भुद्दर्शन जनितारिष्ट निधारण भैषज्य कर्मों में होम करें। इसीकर्म में" कां० १ सू० १६ 'मानोविदन्" जो ग्रन्थ में आगे है यह भी है। कौ० (१३।१२।१२) इन्ही सब ऋचाओं से बाज काकोलूक श्रृगाल आदि दूषित जीवों के गृह प्रवेश स्पर्श आदि दूषित जीवों के गृह प्रवेश स्पर्श आदि जनित दोष निवारणार्थ प्रायश्चित्त होम करें। ४०१ मृत्यु सूचक समस्त व्याधि निवारण भैषज्य कर्म में, मृत्यु को इन्हीं से प्रार्थना करते हुए रक्षा कर्म करें।

१-३ अथर्वा (स्वस्त्ययन कामः)। मृत्युः। अनुष्टुप् उपर्युक्त कर्माणि मार्जने भैषजानुमन्त्रणे, उपस्थाने होमे च विनियोगः।

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः। अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥१

नमस्ते अधिवाकाय ते नमः। सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥२

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः। नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ६ सू० १३ "नमोदेबवधेभ्यो" (१) (देववध) देवों द्वारा होनी वाली मृत्युयें, या वध; जैसे अग्नि, वायु जल, ब्राह्मण, तपोधनादि देवगण, भौम उत्पात, सौर मण्डलीय ग्रह, नक्षत्रों आदि द्वारा होने वाले वध, विद्यु त्पातादि। (२) (राजवध) राजा द्वारा मृत्युदण्ड, अथवा राज विग्रहों में अनेक प्रकार होने वाले वध, मृत्युयें। (३) (विश्यानांवधः) वैश्यों, धनिकों, साम्राज्यवादियों पूंजीवाधियों द्वारा कराये जाने वाले वध अथवा मृत्युयें। (४) (परावाक्) प्रतिकूल वचन (५) (दुर्मति) दुष्टमति, क्रोध, मोह, मद, अहंकार द्वारा होने वाली मृत्युयें। (६) (यातुधान) यातनादेने वाले, चोर, वधिक, आततार्इ, मारण, उच्चाटन विद्वेषण घात पातादि कर्त्ताओं द्वारा होने वाली मृत्युयें। (७) (भेषज) प्रतिकूल भेषज, या भेषज संक्रमण जनित विपरीत प्रभाव से होने वाली मृत्युयें। आदि आदि इन सभी में निराकरणार्थ ब्रह्मवेद ब्राह्मणों के शास्त्रों, क्षत्रियों के शस्त्रों, वैश्यों के कुचक्रों तथा मृत्युदेव तेरे लिये भी विनम्र नमक करते हैं। (२) आपके आशीर्वाद, वददुआ (दुर्वचनों) आपकी उत्तम मतियों और दुर्भावनाओं के लिये भी विनम नमन है। (३) तेरे रस वल, रक्त, धन, श्रनशोषक विविधदारुण दुःखप्रद भयङ्कर रोगों को, तेरे भैषज्य, एवं औषध उपायों को और मृत्युदेवी ! तेरे सभी मृत्युओं के मूलकारणों को एवं ब्राह्मणों को भी मेरा विनश्च नमन है।

कां. ६।८४ विविध प्रकार की महामारी, कारावासकष्ट, परदासता (व्यष्टि समष्टिया राष्ट्रिय) पितृप्रलोक यमलोक आदि के कष्ट–सांसारिक वन्धनजनित घोर आपदाओ से मुक्ति पाने हेतु,जप, उपस्थान होम करें। भूतबलि, भूत शुद्धि, प्राणशुद्धि करें यमराज की अराधना करें। आगे धर्मराज का तान्त्रिक मन्त्र भी हैं।

१–४ मगः। निर्ऋतिः। १ भुरिग्जगती, २ त्रिपादार्षी बृहती, ३ जगती, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् (जगती)।

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम्
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥१
भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु। मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥२
एवो ष्व१स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान्।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम्।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४

कां० ६ सू० ८४ "यस्यास्त" (१) हेदुर्गति ! हेदासता ! जिस तेरे भयावहकाल दंष्ट्राओं में फंसे हुओं की मुक्तता के लिये, निज सर्वस्व अर्पिन करता हूँ। उसऐसी तुझे अनेकों अपना आश्रय मानते हैं, परन्तु मैं समस्त संकटों की जननी ही मानता हूँ। (२) हे उत्पन्न हुई दुर्गति ! मैं सत्य कहता हूँ, जो यह तेरा भाग (अंश) है, इनको समस्त पापों, संकटों से मुक्त कर और यज्ञ करने वाली हो। (३) हेदुर्गति ! तू अविनाशिका बनकर, सभी रज्जु, लौह कर्म वाणी आदि के पाशबन्धनों का खोल दें। इन पाशों से मुक्त करने के लिये ही यमराज जीवको बार-वार जन्म देकर तेरे लिये सौंपता उसैं है, मृत्युदेव के लिये नमस्कार है। (४)हेदुर्गति पराधीनता रूप, सैकड़ों हजारों, अगणित आपत्तियों वाले, कर्मपाशों, रज्जु, लोंह, वाणी, परदासता के पाश जो गले में (जन्म से ही) अटके हुए हैं, जो विविध मृत्युओं, संकटों, दारुण यातनाओं से पूर्ण हैं उन सभी दारुणबन्धनों से मुक्त कर, स्वतन्त्रतापूर्वक स्वर्गधाम में पहुँचा दें।

कां ८ सू ६ [७।५३(५५)]इस सूक्तकी प्रथम छैं ऋचाओं से व्याधितकी नाभि स्पर्श कर जपैं, इसी सूक्तके साथ "आयातुमित्र" भी इसी कर्म में जप, उपस्थान होम में है। तथा इन दोनों सूक्तों तथा "बृहस्पति र्नपरिपातु" कां ७।५१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इनसे राज्य 'श्री' ब्रह्मवर्च प्राप्ति हेतु (बार्हस्पत्य नाम की महाशान्ति का विधान है न. क. १८ जप, उपस्थान होम तथा अभिमर्शन करें।

१–७ ब्रह्मा। आयु. बृहस्पति, अश्वनौ च। त्रिष्टुप्, ३ भुरिच् ४ उष्णिग्गर्भर्षी पंक्ति, ५-६ अनुष्।

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥१
सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम्।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वशिष्ठः ॥२
आयुर्यद् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम्।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥३
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात्।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ॥४
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्। अयं जरिम्णः शेवधिरिष्ट इह वर्धताम् ॥५
आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते। आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥६
उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥७

कां. ७।५३ "अमुत्रभूयात्" (१) हे तेज और ज्ञान के भण्डार, देवगुरु वृहस्पति, ऐवं देवों के वैद्य अश्विनी देवो ! ❋ (प्राण अपानो !) स्थूल शरीरान्त, परलोकों के घोरदारुण दुःखों एवं मृत्युओं से प्राणी की रक्षा करो इसकी सभी इन्द्रियों और उनके पुरुषार्थों की वृद्धि करो अपनी शक्तियों से यमयातनाओं से दूर करो। (२) हे प्राण और अपानो ? शरीर में उत्तम प्रकार से निरन्तर संचार करते रहो इसे कदापि न त्यागो। ये दोनों ही जीव के सहचारी सच्चे निष्कामी मित्र हैं। बढ़ता हुआ सौ वर्ष तक जीवित रह। तेरे रक्षक, पालक, संवर्धक और सुखमय जीवतदाता एक मात्र परमेष्ठी है।(३) तेरे मिथ्याहार विहार, विपरीत धर्माचरणों से क्षीण हुई आयु को वे तेजस्वी प्राण,पुनः यथास्थान ले आयें और इसी शरीर में स्थापित करें। (४) इस प्राणी को प्राण और अपान छोड़कर दूर न जावें, इसे सप्तर्षियो (५ ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि) को सौंपता हूँ। वे इसे सुख से वृद्धावस्था तक पहुँचायें। (५) हे प्राण अपानो ? गौशाला में बैल की भांति तुम दोनों इस शरीर में प्रविष्ट हो जाओ। (६) मैं तेरे प्राणों को प्रेरित कर क्षयादि रोगों को दूर करता हूँ। यह श्रेष्ट जातवेदअग्नि, हमारे अन्दर दीर्घायु प्रदान करे। (७) हममृत्युरूप अन्धकार से ऊपर प्रकाशमय पूर्ण स्वर्ग को प्राप्त करते हुए, सबके रक्षक, तेजोमय प्रभु को प्राप्त करते है।

❋ अश्विनी देवता कौन हैं:—(१) सबका भक्षण करने से द्यौपृथिवी हैं। (२) दोनों कान (३) दोनों नाक (४) दोनों नेत्र (५) दोनों अध्वर्यु (६) देवों के वैद्य है (ऐ० आ० १।१८) इन्हें यज्ञ में सोम पान कां अधिकार राजाशर्याति ने अपनी कन्या के अन्धे, वृद्ध पति च्यवन को तरुण तथा ज्योति प्रदान करने के फलस्वरूप प्रदान कराया। ऋग्वेद (१।१५ ७।६) **"हस्तभिषजाभेषजोभि"** इनमें एक शल्य चिकित्सा में दक्ष दूसरे औषधि में परम दक्ष है।
"जुजुरषोनासत्योत वव्रिंप्रामुचतं द्रापिमिवच्यवानात्। प्रतितरं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम्" (ऋ० १।११६।१०) हे अश्विनीदेवो तुमने कवच के समान च्यवन की चमड़ी को (कल्प द्वारा) उसकी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आयु बढ़ा दी और कई कमनीययोषितों का पति बनाया। पुनः **"युवं च्यवानं जरन्तंपुनर्युवानंचक्रथुः शचीभि"**: ऋ० १।११७।१३) तुमने वृद्धच्यवन को अपने सामर्थ्य से युवा बनाया। **"युवं वन्दनं निर्ऋ तेजरण्यया दस्राकरणा समिन्वथः।"** ऋ० १।११९।७) इसी प्रकार वन्दन व्यक्ति को भी उत्तम बनाया। **"उतवन्दनं ऐरयतं स्वदृशे"** (ऋ० १।११२।५) तुमने अन्धे वन्दन को पुनः आँखें दीं। **"त्रिधा हश्यावं विकस्तं उज्जीवसेऐरयतं"** ऋ. (१।११७ २४) तीन स्थान पर कटे, जख्मीश्याव को पुनःर्जीवन दे चलने योग्य बनाया। **"प्रान्धंश्रोणं चक्षसएतवेकृथः** (ऋ.१। ११२।८ **"प्रतिजंघां विश्पलाया अधत्तम्"** ऋ. १।११८।८ खेलराजा की पुत्री विश्पला की युद्ध में टूटी हुई टांग की जगह लोहे की टांग लगा चलने योग्य बना दिया। वन्ध्यागौ को दुधारु बनाया। (ऋ० १।११२।३, ११७।२०, ११९।६) अश्विनौ के रथ आकाश में उड़ता था, उसमें पक्षी जोड़े गये थे। ऋ० १।११८।४ "विना घोड़ों के भूमि पर चलने वाले अश्विनौ के रथ थे (ऋ० १।१२०।१०)। तुमने तुग्रपुत्र के लिवे पंख युक्त नौका बनाकर महासागर में चलवाई (ऋ० १।१८२।५) यह नौका जल और नभ दोनों ही में उड़ती थी। अश्विनौदेव बड़े ही वेग से उड़नेवाले, त्वरासे दौड़ने वाले, दैवी शक्ति सम्पन्नयानों से बड़ा आश्चर्यजनक पराक्रम करते थे (ऋ० १।११६।१:२) अश्निौ के जहाज जल थल, आकाश में सर्वत्र आसानी से बिना इन्धन चलते थे। (ऋ० १।१६।४)। ऐसे कुशल कारीगर भी थे। इन अथर्व तथा ऋग्वेदों के उद्घोधों से जो आदर्श होते हुए भी आज अप्राप्य सर्वथा अलभ्य हम भारतीयों के दौर्भाग्यपूर्ण प्रमाद ने परदासताने बनाया उसे समुद्र की तह से निकालकर जन कल्याणार्थ प्रस्तुत करने वाला वैदिक साहित्य उसकी गहन अन्वेषणपरक, अनिवार्य तीव्र कार्य रूप में परिणित करने वाली बुद्धि सामर्थ्य इस राष्ट्र की कर्त्तव्यता की ओर टकटकी लगाये हुए भारत माके सपूतों को निरन्तर निहार रही है। क्या कोई धर्म, ध्वज मां का लाल इधर ध्यान देगा।

अथसंजीवनीविद्याक्ष इसग्रंथ में विषय प्रवेशमें निर्दिष्ट संजीवनी विद्या" की समीक्षा तथा विधि का उल्लेख इस प्रकार है। पूर्ण आयु कलियुग में १०० वर्ष. द्वापर में १०००, त्रेता में १०००० सतयुग में अमित आयु की जीवन विधि मानी है। अपनी पूर्ण आयु पर्यन्त प्राणी, आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक कष्टों से रहित अकाल मृत्यु से मुक्त सौ वर्ष, ज्वरादि १०१ मृत्यु के पाशों से रहित, परम आयु भङ्ग करने वाले समस्त विघ्न रहित मन-वाणी तथा दश इन्द्रियों की स्वस्थता युक्त शत संवत्सर आयु प्राप्ति हेतु कौशिक सूत्र कं (३४।११;२); (३२।२९); (५२।१८); (५४।११) मे वर्णित तथा नक्षत्रकल्प (१८) में वर्णित निम्न विधि से अथर्वाङ्गिरसविधान का अनुष्ठान करें। **"आयु-ष्यश्चाभयश्चैव तथा स्वस्थ्ययनोगण"** ।एतान् पञ्चगणान् हुत्वा। "विश्वदेवा" इति वैश्वदेव्या न. क. १८ आयु-ष्यगण अभयगण, तथा स्वत्ययनगण से, वैश्वदेवेष्टि करें। तथा "वैश्वदेवींगतायुषम्" (न. क. १७) अल्पायु, गतप्राय क्षीण आयु के निवारणार्थ वैश्वदेवेष्टि करे। "मैधाजननायुष्यैर्जुहुयात्" कौ० (७।८) "आयुष्यैं स्वस्त्ययनैरात्र्यैर्जुहुयात्" कौ० (१४।३)। इस वैश्वदेवेष्टि में वैश्वदेवा- इन्द्रादि समस्तदेवगण के निमित्त होम, जप, उपस्थान करे (कौ० ७।१०)तथा विशेष भोग-तथा मक्खन को अभिमन्त्रितकर खाये(कौ० ७।३)उपनयमकर्म में कुमार की भुजाओं को पूर्व को कराते हुए, दक्षिण (सीधे) हाथ से उसकी नाभि को स्पर्श कर जपे "विश्वदेवा कौन है" कौ० १।९ (तै० सं० १।४।१०।१) "ये देवा दिव्येकादशस्थपृथिव्यान् अध्येशकादस्थ। अप्सुपदो महिनैकादशस्थ" स्वर्ग, मध्य, अधोलोकों के अभिमानी देव, जो, अन्न, जल, पशु, गौ आदि में, विद्यमान है उन सभी का बोध "विश्वेदेवा" से होता है। अ० वे० १०।५१ ८) में वर्णित है। "प्रयाजान् मे अनुयाजाश्च केवलान् ऊर्जस्वन्त हविषोदत्तभागम्" तथा दिशाओं के अभिमानी देवगण "पथ्यां स्वस्तिन् अयजन् प्राचीमेंवतया दिश प्राजानन्" इति श्रुति (तै० सं० ६।१।५।२) से समस्त दिशाओं के देवगण की भी "विश्वेदेवों" में ही गणना है।—"सजीवनगण आयुष्यगण"—"अस्मिन्वसु" (१।९-१) "विश्वेदेवावसवो" (१।३०) "यदावध्नन्" (१।३५). 'अयंदेवाना" (१।१०-४) 'उतदेवा" (४।१३) नव प्राणान्" (५।२८) अन्त कायमृत्यवे '(८।१) "आरभस्व" (८।२)"तुभ्यमेव जरिमन्" (२।२८) "अक्षीभ्यां"(२।३३)। "आयातुमित्र" (३।८) "अमुत्रभूयात्" (७।५५)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"प्राणायनमः" (११।४) "विषासहिम्" (१७।१) । को. ७६ "**शर्मवर्मगणश्चैव तथास्यात् अपराजित । आयुश्चा मयश्चैवतथास्वस्त्ययनोगणः** । एतान् पञ्चगणान् हुत्वा वाचयेत द्विजोत्तमान् ।। इति (प० ५-३)

"**अभ्युदयकर्म**" ब्रह्मवर्च, स्वस्त्ययन, दीर्घायु, सर्वत्र विजय उत्कृष्टमेधा के लिये शर्मवर्मगण, अपराजित (साग्रामिकगण) आयुष्यगण, स्वस्त्ययनगण, अभयगण इन ५ से होम, स्नान, आचमन, अभिषेक उपस्थान जप तथा मणिधारण करे। त्रयोदशी से ३ दिन पर्यन्त दही, मधु संपूर्ण पात्र में जुड़वां दो काली धागों से युक्त मणि को डाले रक्खे, चौथे दिन उसकी प्राणपतिष्ठा, पूजा कर अभिमन्त्रित कर धारण करें। उस दही-मधु को खायें।

"**सर्वसम्पत्कर्म**" यही कर्म सर्व सम्पत्कार्य में, राज्य श्री, ब्रह्मवर्च, उपनयन, राज्य से भागे जाने के उपरान्त पुनः राज्यप्राप्ति के प्रवेशकाल, राज्याभिषेक में करें।

जलोदर "अयदेवानाम्" (१।१०) से जलोंदर रोग निवृत्ति के लिये, घर की छान के तृण, दाभदूव अपामार्ग की मुष्टी से युक्त, घट के जल से अभिषेक करे, २१ दिन २१ बार आधे शिर को छींटे दें। (कौ० ४।१) । यह रोग मिथ्या बोलने, कृत संकल्प के पूरा न करने, धोका देने वरुण देव के क्रोध से, अन्यान्यपापकर्म के कारण होता है। वरुण-देवता का यज्ञ जप, तप, उपस्थानादि सब पूर्ववत् करे। 'विश्वेदेवाः' (१।३०) सूक्त से उपरोक्त सभी कार्य करते हुए गोमूत्र के ३ भागों को अभिमन्त्रित कर खायें। (विशेष कर्म है)

"यदा वध्नन्" (१।३५) से उपरोक्त समस्त कार्यो के लिये उपरोक्त कर्मो के साथ ही इन (१।३५) "यदा वध्नन्" "नवप्राणात्" (५।२८) से दुहरी काली धागे से युक्त स्वर्णमणि को पूर्ववत ३ दिन मधु-दधि युक्त पूर्णपात्र में रख १२ वें दिन मणि (स्वर्ण) धारण करे उसे खाये, तथा क्षीर में घी मिला पुरुष की आकृति लिखकर (बनाकर) अभिमन्त्रित कर खायें। इस श्रुति से तेज, धन, आयु वृद्धि होती है। (कौ० ७।३) न. क. १७।

नेत्र, नासा, कर्ण, शिर, जिह्वा, ग्रीवा, उदर, अन्त्रि, आदि समस्त शरीर के भागों के रोग निवारणार्थ रोगी की वाहु आदि की गाँठों को कांस या दर्भ की रस्सी से बाँधे, अभिमन्त्रित जल से छींटे दे गांठों को खोल दे पुनः अक्षीभ्यांते (२।३३) "मुञ्चाभित्वा" (३।११) 'उतदेवाः" (४।१३) "आवतस्ते" (५।३०) शीर्षशक्तिम्" (९।८) से धोये छींटे दें। अन्य सभी कर्म पूर्वगणों में वर्णित करे।

बाल ग्रह रोग में, या निरन्तर स्त्री सङ्गति से उत्पन्न यक्ष्मा में **पवित्रगन्धवाली** मछली युक्त भात अभिमन्त्रित कर रोगी को नित्य पिलाये तथा जगली शुष्क गोमय, जंगली सन, तिल की लकड़ियों की अग्नि से तप्त किये जल से रोगी को उषाःकाल में छींटे आचमन कराये। रोगी का स्पर्श कर इन उपरोक्त सूक्तों से अभिमन्त्रित करे। (वै० सू० ७।३) इन्हीं सूक्तों से उपनयन के उपरान्त कुमार की दीर्घायु के लिये आचार्य अभिमर्शन कर अनुमन्त्रित करें। (कौ० ७।९)

"अन्तकाय मृत्यवे" (८।१) "आरभस्व" (८।२ इन दोनों ही अर्थसूक्तों से तथा "उपप्रियम्" (७।३३) से उपनयन कर्म में, कुमार की नाभि तथा दीर्घ आयु की, कामना वाले के शरीर को आचार्य (ऋषि) गुरु अभिमन्त्रित करे। और इसका जप, होम, उपस्थान अभिमर्शन करे। देवदारु की बनी मणि को अभिमन्त्रित कर- नामकरण में तथा दीर्घायु कामी के बाँधे। नवजात शिशु के भी इसी मणि को घिस कर पिलाये। कुमार के नाम करण के समय हाथ पर लगातार जल की धारा इन्हीं अर्थ सूक्तों से तथा "प्राणायनमः" (११।४) "विषासहित" (१७।१ से छोड़े। अभिमर्शन करे। यही ३० प्रकार की सभी महाशान्तिकर्मों में "आ रभस्व" (८।१) का जप तथा मणि बन्धन का विधान (न- क. १९) से विहित है। यही सब संजीवनीविद्या का रहस्य है। उसी के सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है।

पूर्वोक्त इन्द्रियगण के अवयवों की व्यथा, अकालमृत्यु अपमृत्यु प्रक्षेपणास्त्र शस्त्र, पाषाण, देवद्रोह ऋषिद्रोह जनित व्यथा, आसुरी व्यथा, ग्रहदोष शाप अभिचार जनित पीड़ा, क्रूर दृष्टि जनित व्यथा, अदृष्ट-दिव्य व्यथाके निराकरणार्थ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विजय कामी (बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुगण विजय पर काम, क्रोध, लौभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या द्वेषादि) राज्य, श्री कल्याणयुक्त शत संवत्सर आयु की कामना के लिये, "शर्म वर्मगण" जिसे विश्वकर्मणगण भी कहा गया है तथा स्वस्त्ययन-गण जिसे जल सूक्त भी कहा गया है जो अध्याय ५ में है उनकी उपयोगीविधि निम्न प्रकार है।

शर्म वर्मगण—"आरेऽसौ" (१।२६), "अष नः शोशुचत" (४।३३)। कौ २।५ इनसे पूर्वोक्त सभी कर्म किये जाते हैं। विशेष कर्म (१।२६)से सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्र प्रक्षेपणास्त्र सम्मोहनास्त्र, तमसास्त्र, पाश्वपदास्त्र,वज्र त्रिषन्धि-वज्र ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मशिरा, ब्रह्मदण्ड कुलिश वारुणास्त्र अग्नेयास्त्र आदि से रक्षा के लिये फली तथा-भूषा आदि से होम करे मह पूर्वोक्त शान्ति सामिग्री में ही है। अभिमन्त्रित जल से छीटे स्नान अभिषेक करें।

शस्त्र मारने फेकने, छोड़ने को उद्यत शत्रु को देखते हुए उपर्युक्त कोई सी ये वस्तु हाथ में लेकर इसे जपें। विजय कामी—होम करके शस्त्र तथा कवच की पूजाकर अभिमन्त्रित, कर धारण करे।

अभ्युदय कल्याण तथा प्रसन्नता, पुष्टि हेतु, रात्री के शयन काल में, इसे जपते हुए, शिर, मुख आदि को, हाथ में स्पर्शकर सोये। सोने के बाद, उठते समय परदेश प्रस्थान काल में, श्वास को ऊपर खींचकर जो स्वर उस समय चलता हो उसी ओर के पैर से प्रथम ३ पग चले और स्वर की ओर के हाथ का स्वास ऊपर चढ़ा सोते से उठते समय इसको जपता हुआ शरीर पर ३ बार फिराये अर्थात् अभिमन्त्रित कर उठे। यह "प्राण विद्या" में विष्पष्टरूप से पढ़ें समझे और करे।

अद्भुद्दर्शन, काक मैथुन आदि आदि अद्भुत अनिष्टकारी लक्षणों से उत्पन्न, अरिष्टकारी, भविष्य के, कल्याण मय बनाने के लिये, इसोसे छींटे स्नान अभिषेक जप होम करे।

"अप नः शोशुचद" (४।३३) अंहोंलिङ्गगण के तथा उपरोक्तगण के समस्त कार्यों के लिये विहित है। इसका विशेष विनियोग निम्नकार्यों के लिये भी है। स्त्री की पुरुप और पुरुष की स्त्री के प्रति अभिरति की निवृति में, इससे किसी निश्चित संख्या के बिना शर्करा अभिमन्त्रित कर व्यभिचारिणीस्त्री व परस्त्री गामी पुरुषके नियन्त्रणार्थ उनकी दृष्टि से ओझल होउनके घरो में छिड़क कर चल दें। (कौ० ४।१२)

अन्यच्च अन्तिम दाह सस्कार, के उपरान्त अपने वांधवों, को साथ ले, चिता को पीठ देते हुए, वाम हस्त से पीछे को मृत्तिका फैंके। इसे जपते हुए वहां से चल दें। दाहकर्म के स्नान के उपरांत भी, इसे जपें और घर आकर दाहकर्म करने वाला इसी से "श्यामा की" समधिदान करे। को ५।६।

यह शर्म वर्म (विश्वकर्मणगण) के विशेष तथा पूर्वोक्त सभी कर्म करे स्वस्त्ययनगण कर्म विधि इस प्रकार है। कौ० कं २५।३६

"स्वस्त्ययन या स्वस्ति वाचनगण" "मित्रावरुणौ" (५।२४-५) "वातरंहाभव" (६।९२), "तांसवितः" (७।१६) "इन्द्रोति" (७।३१) "त्यमूपु" ७।८५) "त्रातारमिन्द्र" (७।८६) "वर्ममेद्यावा" (१९।२०-४) 'प्रजापति जन-यति (७।१८) "अन्वद्य" (७।२०) "अमूपारे" (१।२७) "आरेऽसा" (१।२६) "हिमवतःप्रस" (६।२४) "पञ्चच या" (६।२५) "उपप्रागात" (६।३७) "आमिन्द्रैरिन्द्रः" (७।११७) "मर्माणिते" (१।११८) "अयंप्रतिसरो" (८।५-१९) "सत्यं बृहत्तमुग्रम्" (१२।१-११,१२-३१-२)।

पूर्वोक्त वाधाओं के निराकरणार्थ, आयुष्यगण, अभयगण, शर्म वर्मगण के कर्मों में, स्वस्त्ययनगण की विधि है। इसकी विशेष विधियों का उल्लेख निम्नप्रकार है। यह बृहच्छान्तिगण के कार्यों में विहित है अर्थोत्थापन मे भी है। हृदयगति रुकना, हृदयधड़कना, हृदयशूल, हृदयदाह, घवराहटादि इससे हृदय दोष, जलोदर, कामला, आदि रोगों के निवारणार्थ रोगी को नदी के प्रवाह की ओर लेजाकर-कुशा, काष अपामार्ग, दूर्वा की मुट्ठी से अभिमन्त्रित कर रोगी को २१ दिन भी छींटे दे, झाड़ दें, आचमन कराये। (कौ० ४।६)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"तांसवित:" (७।१६) इस ऋचा से एक ही बार की ब्याई गौ के, बांधने की रस्सी, की मणि बना, अभिमन्त्रित कर, पुष्टि, कार्य में बांधे।

"पातंन:" (६।३) इन ५ ऋचाओं से पूर्वोक्त १३ वस्तुओं से करे। शेष (६।७६), में वर्णित कर्म करे। "त्वष्टा मे दैव्यं वच:" (६।४) "उपेनमुत्तंर" (६।५) से राज्यभूमि ग्रामप्राप्ति की कामना वाले, इन्द्र का उपस्थान होम करे।

"येनसोमादिति" (६।७) इन ३ ऋचाओं से यज्ञ के विघ्नशमनार्थ, अथवा अनधिकारी के द्वारा या अनधिकारी के, ही लिये यजन के, दोष शमनार्थ, यज्ञ की समाप्ति के, अनन्तर, गौ के दूध में पकीखीर, से होम करे और अवशिष्ट को अभिमन्त्रित कर खायें। कौ० (५।१०)

"नमो देवबंधेभ्य" (६।१३) इन ३ ऋचाओं से जय के लिये अपनी सेना के चारो ओर जप करें। (कौ.२।५) वैश्य की विजय के लिये, शत्रु को प्रहार करने को उद्यत देख जपे। इन्हीं ३ से ओले, अभिचार, कृत्या, टिड्डी, शलभ उत्पातों में अभिमन्त्रित कर बालू छिड़के, अपामार्ग, गुडूची (गुड़वच) छिड़के, इन्हीं से होम करे। सूअर के बच्चे को अभिमन्त्रितकर ग्राम खेतनगर के चारों ओर घुमायें।

"इमं यवम्" (६.९१) तथा दिवेस्वाहा (५।१६) इन ३ ऋचाओं से, सर्व रोगों की चिकित्सा में आधी आधी ऋचाओं से घृत होम करे। मिट्टी के ४ पात्रों में जौ, इन्द्रजौ डालकर यज्ञिय भस्म मिला, अभिमन्त्रित कर दो से रोगी को स्नान कराये, छींटे दे। अभिमन्त्रित कर उस यवभणि को बांधे। २ से पृथिवी पर धार दें, दोसे उपरोक्तकर्म करे।

"त्यमूषु" (७।९०) त्रातारम् (७।९१) "आमन्द्रैरिन्द्र" (७।२२) इनसे इन्द्रदेव का स्वस्त्ययन होम करे। "यौऽग्नौ" से स्वस्त्ययनार्थं रौद्रगण से उपस्थान करे। (कौं १४।३ व ४)।

वन्ध्या—"प्रजापतिर्जनयतु" (११९६) से, वन्ध्या को पुत्र प्राप्ति हेतु, होम करे और लाल बकरी के दूध में काले उड़दों की खीर बना आहुति दें, यज्ञावशेष को अभिमन्त्रित कर खिलाये। तथा मिट्टी के पात्रों में जल भरे स्त्री की नाभि पर रखकर इसे जपे तब गर्भाधान कराये। जिसके कन्या ही होती हो उसके अलावा ७ प्रकार की वन्ध्याओ के लिये ही है। अन्य अभीष्ट काम की सिद्धि के लिये, प्रजापति का होम या जप करे।

"अन्वद्य नोऽनुमति:" (७।२१) "प्रजापयिर्जनयतु" (७।२०) "धातादधात" (७।१८) के सभी कर्म एक से हैं। ये वन्ध्यादोष निवारण के पुत्रेंष्ठि प्रकरण में विस्तार से दिये हैं।

अन्य सभी स्वस्त्ययनगण के कार्य, पूर्वगणों के विहित कार्यों के तुल्य, करने का विधान है। यह गण स्वस्तिवाचनार्थ पृथक भी प्रयोग आता है जो गृह्यसूत्रोक्त ही। है

अपराजित अर्थात सांग्रामिकगण कार्य की आयुष्य आदि कार्यों में विहित होने से उस गण के विशेष कार्यों का वर्णन आगे है।

अथ संजीवनी विद्या एवं अभ्युदय—

वेद विज्ञानकर्म कौशिल्य में कल्पों का ज्ञान अनिवार्य है। इससे भी बढ़कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन मूल, शरीर है। "यावज्जीवेद्विद्यां, अर्थश्चचिन्तयेत्" जब तक जीवित रहे, तब तक लौकिक, पारलौकिकी विद्या और अर्थचतुष्टय का चिन्तवन करते रहें यह चिन्तवद्, शरीर (स्थूल, सूक्ष्म, प्राण) की शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बौद्धिक, मस्तिष्कादि की पूर्व स्वस्थता, नैरुज्यता और दीर्घायुष्य पर निर्भर होता है। सतयुग में प्राणी की अमितायु, त्रेता में १००० वर्ष दस सहस्र, द्वापर में सहस्र और कलियुग में शतवर्ष पूर्ण आयु के उल्लेख हैं।

यदि मानव संयम आहार-विहार तथा दैवी आराधना से रहे तो अमितायु, चिरजीवत्व की प्राप्ति में आत्मनिर्भर होता है। शरीर व्याधियों का समुच्चय है, कृतकर्म, बिना भोगे समाप्त नहीं होता, भोगना अवश्यम्भावी होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसे १०१ अपमृत्युयें, तथा नैऋ्ऋतिपाश वरुणादि देवों के शाप या कोपजनित दैवीपाश, बिना इच्छा और बिना कल्पना के ही आकर घेर लेते हैं। महामृत्यु तो जीवधारी की है ही वह तो पुराने का त्याग, नवीन शरीर धारणक्रम में विशेष दुःखदायी नहीं ये अपमृत्युयें तो घोर नारकीय यातनाओं से इस भूलोक के दुःखों से भी अनन्तकोटि भयानक अचिन्त्य काल तक सूक्ष्म-प्राण शरीरों द्वारा भोगनी पड़ती हैं वहाँ कोई भी सहायक, चारा शान्ति कर सम्भव नहीं यही भूलोक का स्थूल शरीर (सूक्ष्म, प्राण, महाप्राण) शरीरों के साथ कर्म करने में सक्षम होने से जो भी सत्कर्म यहाँ किया जाता है, एकमात्र सहायक होता है। मृत्युलोक, पितृलोकों से भी भयावह नरकों के दुःख हैं। इस लोक में मिथ्या आहार-विहार से उत्पन्न आधिव्याधियों का होना तो सहज है उनके अतिरिक्त निम्न ऐसे भी हृदयविदाही क्लेश-संकट हैं जिनका प्राणी के शरीर, मन, आत्मा, बुद्धि मस्तिष्कादि पर गहरा कुप्रभाव हठात डालते हैं। यथा—

"मरणं व्यसनञ्चैव बन्धनं च विशेषतः। प्रणियातोन्मत्तता वा दैवोपहतिरेव च। पुत्रादि धन-नाशश्चगृहेदोषाबहूनपि ।।" तथा

व्रतोपवासैर्यैविष्णुर्नान्य जन्मनि तोषतिः। ते नराः मुनिशार्दूल ग्रहरोगादि भागिनः ।।

जब प्राणी चारों ही ओर छाई निराशाओं, आपादाओं, क्लेशों, संकटों से आवृतघनीभूत घोर अन्धकार मृत्यु के पाशों में घिरा हो और महायात्रा (गतायु! की कोटि में हो तो उस संकट से विश्वदेवाओं के निमित्त "**वैश्वदेवी**" शान्ति की सफल विधि का आश्रय ले।

वैश्वदैवीं गतायुषम्" न० क० १७ यही क्षीण आयु निवारण में उपर्युक्त "संजीवनी विद्या" कही गई है। तै० सं० (१।४।१०।१) में वर्णितविश्वेदेवाओं का परिगणन निम्न प्रकार माना है।

"येदेवा दिव्येकादशस्थ, पृथिव्यामध्येकादशस्थ । अप्सुषदोमहिनैकादशस्थः" स्वर्ग, मध्य, अधोलोक के अभिमानी देव जो, अन्न, जल, पशु गौ, ओषधि, आदि में विद्यमान हैं, वे सभी विश्वेदेवा हैं। ऋ० वे० (१०।५१-८) में भी वर्णित है तथा "प्रयाजान् मे अनुयाजांश्च केवलान्, ऊर्जस्वन्तं हविषोदत्तभागम्" पथ्यां स्वस्तिम् अयजन् प्राचीमेवतया दिशं प्राजानान् तै. सं. ६।१।५।२ दिशाओं के समस्त अभिमानीदेवता भी विश्वेदेवा में परिगणित है।

"वैश्वदेवी शान्ति" में इन्द्रादि समस्त देवगणों के निमित्त निम्न प्रामाण्यगणों से जप, होम, मार्जन, उपस्थान, परिक्रमा, ध्यान, मणि बन्धन, स्नान, भैषज्य का प्राविधान है। परिशिष्ट (५-३) यथा शर्म वर्मगणश्चैव तथा अपराजित, आयुश्चाभयश्चैव तथास्वस्त्ययनोगणः एतान् पञ्चगणान् हुत्वा वाचयेत् द्विजोत्तमान्'।

१. शर्मवर्म, २. अपराजितगण (सांग्रामिकगण) ३. आयुष्यगण, ४. अभयगण तथा ५ स्वस्त्ययनगणों से उत्तम वेदविगों द्वारा शान्ति कर कल्याण प्राप्त करें। ये गण सजीनप्रद, अभ्युदय, ब्रह्मवर्च, राज्यश्री और पवित्रता प्रदायक होने से "**सजवनीयविद्या**" **संजीवनीयगण**" माने हैं। आगे प्राण विद्या संजींवनी विद्या प्रकरण देखें

इन पांचों गणों का सक्षिप्त विवरण तदगणों के साथ ही दिया है ये पृथक् २ तथा सामूहिक, गणकर्म विधियों में मरने गये हैं। कां ४।१३ "उतदेवा"

कां ८ सू १ "अन्त कायमृत्यवे" तथा सूक्त २ "आरभस्व" ये दोनों ही अर्थ सूक्त हैं इनसे स्वयं आचार्य, अपने को तथा ब्रह्मचारी या व्याधि ग्रस्तों को होम तथा उपस्थान के उपरान्त शरीर का अभिमर्शन तथा शक्ति सम्पा.. करें।

यह वैदिक तीस प्रकार की महाशान्ति तन्त्रभूत शान्तिकर्म में जपे जाते हैं। स्वर्णपुरुष, या स्वर्णदान ग्रहणदान में दानदाता की रक्षार्थ उसे अभिमन्त्रित करे। हिरण्यमाला अभिमन्त्रितकर धारण करायें। नाम करण में शिशु के हाथ पर अभिषिक्त जल से छींटा दें। देवदारु वृक्ष की बनी मणि अभिमन्त्रित कर धारण करायें। उसी देवदारु को घिसकर बालकों को चटायें। मरणान्त अवस्था में मृत्यु से पूर्व इसे जपते हुए व्याधि ग्रस्त के भी देवदारुमणि बाँधें, चाटसके तो चटायें कलह दुर्गतिरूप निर्ऋति गृहीत कुलमें शान्ति होम करे। ये ही मृत्युञ्जयगणकी आधारभूत शान्तिमें काम आते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अन्तकायमृत्यवे" (८।१); "आरभस्व" (८।३) ये दोनों ही अर्थसूक्त हैं। इन्हीं के साथ "उपप्रियम्" (७।३३) ये अर्थसूक्त आयुष्यगण कर्मों में जप उपस्थान, होम हाथ से शरीर के अभि मर्शन में मृत्यु-निवारण तथा दीर्घायु नैरुज्य स्वस्त्ययनकर्मों में हैं। दाये हाथ से नाभि का अभिमर्शन, शिर का अभिमर्शन शरीर के अङ्ग इन्द्रियों का अभिमर्शन ऋषि करें।

यह एक मात्र ऋषियों की तपश्चर्या–मन्त्रसामर्थ्य तथा देवबल (ब्राह्मी शक्ति) ही है मृत्यु से निर्भय (मृत्यु रहित) स्वस्थ, दीर्घायु प्रदान में निर्विवाद पूर्ण समर्थ है। जैसा कि पृथक् पृथक् ऋचाओं के निर्देश से विस्पष्ट है। (आरभस्वः) ८।२ (५;३, ८,६,१०) ऋचायें प्रत्यक्षप्रमाण हैं। इसमें जीवन प्रदातृ (पाठा) नाम की औषधि विशेष उल्लेखनीय है।

अस्य कां ८।१ सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। आयुर्देवता। १-२१ ब्रह्मा। आयुः त्रिष्टुप्; १ पुरोवृहती त्रिष्टुप्; २-३ १७-२१ अनुष्टुप्; ४,६,१५,१६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ त्रिपदा विराड्गायत्री, ८ विराटपथ्यावृहती, १२ त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती, त्रिपाद्भुरिङ्हावृहती, १४ एकावसाना द्विपदा साम्नी भूरिग्वृहती। उपर्युक्त कर्मषु होमे जपे, अभिमन्त्रणे अभिमर्शने च विनियोगः।

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम्।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ।।१
उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान्। उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ।।२
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः। उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ।।३
उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ।।४
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ।।५
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ।।६
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन्।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ।।७
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम्।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ।।८
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ।।९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तमं एतत् पुरुष मा प्र पंत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥१०
रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वं१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धतें ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धांग् विद्युता सह ॥११
मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥१२
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१३
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥१४
जीवेभ्यस्त्वा समुद्रे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥१५
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥१६
उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् । उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७
अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः । इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥१८
उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः । मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् ॥१९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥२०
व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत् । अपत्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥२१

अ० कां० ८ सू० १—"अन्तकायमृत्यवेनमः" समस्त विश्वसंहारक ईश्वर को प्रणाम हैं । हे मनुष्य तेरे प्राण और अपान, तेरे शरीरमें; सुखसे चिरकाल तक रहे। तेरे जीवनीय प्रकाशमय सूर्य अमृतमय, यथेच्छ दीर्घकाल तक विचरता रहे। (२) समग्रऐश्वर्यवान् भग ने इसे सर्वोच्च उन्नत स्थान पर स्थापित किया है । सोम ने उन्नत और मरुद्गण(प्राणों)ने इसे बनाया है इन्द्र और अग्नि इसका कल्याण कर अभ्युदय प्रदान करें । (३) हे मनुष्य ! इस स्थूल शरीर में तेरा प्राण, आयुष्य मन और जीवन स्थिर रहे । क्लेशों की जननी दुर्गति के पाशों से हम सब (देवगण) तुझे उन्नत बनाते हैं । (४) हे मानव ! तू मृत्यु से ऊपर उठ, अधःपतन की ओर न जा, इन १०१ मृत्यु बन्धनों से स्वयं को मुक्त कर दीर्घ-जीवन प्राप्त कर और मर्त्यलोक से, तेजोमय सूर्य प्रकाश दर्शन से अपने आपको दूर मत कर । (५) अन्तरिक्षव्यापी वायु, जल और सूर्य तुझे पाप रहित, पवित्र बनाये, शान्ति प्रदान करें । मृत्यु की दया से, दीर्घजीवन प्राप्त कर, मत मर । (६) हे मनुष्य ! उन्नति कर, अवनति न कर इसी के हेतु तुझे जीवन और बल प्रदान करता हूं । तेरा वह उत्तम सुख-प्रद शरीररूपी रथ है, जो अजर, अमरत्व प्रदायक है । इसमें ही रहते हुए, अमरत्व प्राप्त कर, अभ्युदय का अनुभव हो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जानेपर, अन्यों को योग्यमार्ग दर्शन कर। (७)तू क्षीण मनसे प्रेतों के लिये रोदन न कर,नहीं तू प्रेतात्माओं के पास चला जायगा। यहीं कार्यक्षेत्र में आ, मृत्युरूप अन्धकार का परित्याग कर, संजीवनी ज्ञान के प्रकाश में विचर, इसी के लिये तुझे सहयोग करते हैं, (हाथ पकड़ते हैं)। (८) गये हुओं का शोक करने से तो क्षीणता और विनाश की ओर जाते हैं, अपने कर्त्तव्य में बिना प्रमाद, आगे कार्यक्षेत्र में बढ़, हम तेरी रक्षा करेंगे। (९) सर्वनियन्ता के दिन (प्रकाश) और रात्रि (अन्धकार) (ज्ञान-अज्ञान) दो मार्गदर्शक आश्वास्त हैं। ये तेरी रक्षा करेंगे, तू आगे उन्नति की ओर बढ़, प्रलाप में समय न खो, विनाशोन्मुख कदापि न हो। (१०) इस दुर्धर्ष भयङ्कर (पतनशील) मार्ग से न जा। जो त्याज्यमार्ग है उससे न जा मैं आदेश देता हूं। तू इसी उन्नतप्रद मार्ग पर चलेगा, तो यहाँ निर्भय रहेगा। (११) जल विद्युत (वडवानल) दावानल, जाठराग्नि और सूर्य तेज तथा महानात्माओं का सङ्ग, इनमें से किसी से भी तेरा अनर्थ न होगा, ये तेरी उत्तम रीति से रक्षा करेंगे। (१२) घातपात करने वाले, नृशंस, पतितजनों से तेरी रक्षा हो। भूर्भुवः स्वर्लोक, चन्द्र, सूर्यादि तेरी रक्षा करें। (१३) ज्ञान-विज्ञान, स्फूर्ति, निर्भीकता, रक्षक और प्रबोधकर्त्ता तेरी रक्षा करें। (१४) जो तेरे रक्षक और पालनकर्त्ता हैं उनकी वन्दना कर, आत्मसमर्पण कर। (१५) रक्षक, पोषक, प्रेरणा के स्रोत, जीवनदाता प्रभु, सभी जीवों और तुझे उन्नत पथगामी बनायें। तेरे पास प्राण और बल पूर्णायु पर्यन्त रहें, हम बुलाते हैं। (१६) कोई हिंसक, नाशकर्त्ता तेरे पास भी न जाय, अज्ञान (मोह, मद, लोभ, अहंकार) और उनसे उत्पन्न मृत्युरूप अन्धकार तेरे पास न आवें। शाप, आक्रोशादि दुर्वचनों का प्रयोग भी तेरे से न करे। भला तू सर्वस्वार्पण (होम) कर्त्ता, घातक कैसे हो सकेगा? द्वादश सूर्य, अष्टवसु इन्द्र, तीनों अग्नियां तेरा कल्याण कर उच्च शिखर पर पहुंचायें। (१७) द्यौ, पृथिवी और प्रजापालक प्रभु तुझे पूर्णायुष्यवान् बनायें, जिनके प्राणदाता सोम हैं वे ओषधियां तेरी रक्षा करें। (१८) हे देवो! यह मनुष्य दीर्घजीवी हो, मृत्यु इससे दूर ही रहे, हमने सहस्रों बल सम्पन्न ओषधियों (संजीविनी विद्या) की सहायता ने इसको मृत्यु से पार किया है। (१९) अब यह मृत्यु को पार कर चुका है जीवनदाता, इसे पूर्णायु प्रदान करें, अब स्त्रियां या पुरुष इसके लिये रोदन न करें। यह संजीवन प्राप्त कर चुका है। (२०) ऋषि-घोषणा—मैं तुझे मृतशय्या से उठा नीरोगता में लाया हूं; मानो तू नया ही हो गया है। सारे तेरे अङ्गपूर्ण तथा तेरी चक्षु आदि सभी इन्द्रियगण और आयु तुझे प्राप्त हो गई है, अब तू दीर्घजीवी रहेगा। (२१) हे मानव! अब तेरे पास से अन्धकार चला गया है, तेरा चारों ओर प्रकाश फैल चुका है, दुर्गतियां और १०१ मृत्युयें दूर हट गई हैं, रोग समुदाय सुदूर भाग गये हैं, तू सभी प्रकार नीरोग और पूर्ण आयु का हो गया है।

"अन्तकायमृत्यवे" (८।१) "आरभस्व" (८।२) इन दोनों ही अर्थ सूक्तों से तथा "उपप्रियम्" (७।३३) से उपनयन कर्म में कुमार की नाभि तथा दीर्घआयु की कामना वाले के शरीर को आचार्य (ऋषि) गुरु अभिमन्त्रित करें। और इसका जप, होम, उपस्थान, अभिमर्शन करें। या अर्जुन देवदारुमणि को अभिमन्त्रित कर—नामकरण में तथा दीर्घायु कामी के बांधे। नवजात शिशु को इसी मणि को घिसकर पिलायें। कुमार के नामकरण के समय हाथ पर लगातार जल की धारा इन्हीं अर्थसूक्तों से तथा "प्राणाय नमः" (११।४) "विषासहिम्" (१७।१) छोड़ें। अभिमर्शन करे। यही ३० प्रकार की सभी महाशान्ति कर्मों में जप, उपस्थान तथा "वैश्वदेवीगतायुषम्" मृत्युतुल्य महाव्याधि में "आरभस्व" (८।१) का जप तथा मणिबन्धन का विधान (न० क० १९) में विहित है।

कां० ८ सू० २। १–२८ ब्रह्मा। आयुः। त्रिष्टुप्: १-२.७ भुरिक्; ३,२६ आस्तारपङ्क्तिः, ४ प्रस्तारपङ्क्तिः; ६, पथ्यापङ्क्ति; ८ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती; ११ विष्टारपङ्क्तिः; १२,२२,२८ पुरस्तादवृहती; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १९ उपरिष्टाद्वृहती; २१ सतः पङ्क्तिः; ५,१०,१६,१८,२०,२३,२५,२७ अनुष्टुप् (१७ त्रिपाद्)।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥१
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन्मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥२
वातात्ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत्ते मनस्त्वयि तद्धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥३
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥४
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि । कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥७
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥८
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्त पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥९
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥१०
कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥११
आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि ॥१२
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥१३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥१४
शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥१५
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे३ तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥१६
यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु । शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥१७
शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ । एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥१८
यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः । यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥१९
अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि । अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥२०
शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥२१
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥२२
मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् । तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद् भरामि स मा बिभेः ॥२३
सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः । न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥२४
सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः । यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥२५
परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥२६
ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः । मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥२७
अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा । अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥२८

कां० ८ सू० २ "आरभस्व"—(१) हे व्याधिग्रस्त ! तू इस संजीवनी विद्या और संजीवनी ओषधि रस पान कर, और दीर्घजीवी बन प्राप्त कर । तेरे अन्दर पुनः प्राण स्थापित करता हूं । तू नश्वरभोगी, अज्ञानी न बन, शीघ्र न मर । (२) जीवित मानवों के विशेष तेज (ओज) को प्राप्त कर, सौ वर्षावधि तक जी, मृत्यु के बन्धन काट,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुझे अमित आयु प्रदान करता हूं। (३) तुझे पुनः वायु से प्राणशक्ति, सूर्य से ज्योति और तेरे अन्दर (विवेकी) मन संस्थापित करता हूं। तेरे सारे अवयवों की पुष्टि हो, तू उत्तम वाणी का उच्चारण कर। (४) नवप्रदीप्त अग्नि की भांति, तुझे द्विपाद, चतुष्पादों के प्राणों से युक्त करता हूं। हे मृत्युदेव ! तेरी मैं तेरी (तीक्ष्णदृष्टि) और प्राण के लिये नमस्कार करता हूं। ५. हम इस जीव में दीर्घजीवनवाली, अमरत्वशक्ति का संचार करते हैं। इसकी भेषज करते हैं, जिसके प्रभाव से यह न मरे। ६. इसके दीर्घ जीवनार्थ, संजीवनी हितकारी रक्षाकर्त्री, व्याधि निवारक बलदायिनी ओषधि देता हूं। ७. इस दीर्घजीवन प्रदाय की स्वानुभूति विधि का, जनकल्याणार्थ उपदेशकर। कोई अनाचार न करे। इससे निर्दोष (नीरोग) होकर, यह जगत में संचार करे दीर्घजीवी हो। इसे नीरोग काया मिले, व्याधि और पाप दूर हों और पूर्ण आयु तक जीवित रहे। हे भव ! शव ! आप दोनों इसे सुखमय निरोग पाप रहित जीवन प्रदान करो। ८. हे मृत्यो ? इस समय इस पर कृपाकर, इसे संजीवनी विद्या का उपदेश कर। यह सभी प्रकार अभ्युदय प्राप्त करे। इसके सभी अङ्ग, पीड़ा रहित पुष्ट उत्तम ज्ञानप्रदायक श्रवण शक्ति के साथ सौवर्ष पर्यन्त अपनी शक्ति से भोग उपार्जन करे। ९. दैवीशस्त्रों से बचा, भोगी जीवन से परे, मृत्यु से सुरक्षित करता हूं। प्रेतदाहिनी अग्नि से पार पूर्णायु की चरम सीमा तक जीवित रह। १०. यद्यपि मृत्यु अजेय हैं, तथापि उससे, इस जीव की रक्षा करते हैं। इसे रक्षार्थ "ज्ञान कवच" देते हैं। ११. तुझे प्राण, अपान, वृद्धावस्था, दीर्घायु के कारण सुखी बनाता हूँ। तेरे अज्ञात (सभी) सूर्यपुत्र यम के सर्वत्र विचारने वाले दूतों को दूर करता हूँ। १२. ज्ञात अज्ञात (सभी) अहितकर्त्ता, दुर्गति, रोग, हिंसक मांस-भक्षण के जीव जन्तु सभी को ज्ञान के प्रकाश से अन्धकार की भांति तुझसे दूर भगाता हूं। १३. मैं आयुप्रदायक अमर अग्नि से तेरे लिये प्राण लाता हूं इससे (ज्ञानाग्नि) से तेरी मृत्यु नहीं होगी। तू इस शरीर से अमर है विनष्ट न हो, इसीके सहयोग से समृद्धि युक्त हो। १४. द्यौ अन्तरिक्ष भूलोक के (सूर्य, वायु जलादि) सभी तुझे सुख शान्ति दे। १५. सब ओषधियां अपने गुणों से सुख दें, इस (जीव को) क्षीण मृत्यु की अवस्था से, उच्चारोग्यावस्था में लाया हूं। इस शरीर में, सूर्यचन्द्रादि ग्रह नक्षत्र तेरी रक्षा करें १६. तेरे पहनने ओढ़ने के वस्त्र हैं और जिसे तू कमर पर बाँधता है उन्हें हम तेरे शरीर को सुख देने वाले बनाते हैं वे मृदु सुखप्रद हों। (१७) नाई तू स्वच्छ तेजधार के उस्तरे से शिर और मूंछों का मुन्डन कर सुन्दर चेहरा बना, वह नाई तू किसी की आयु नष्ट न कर। १८, तेरे भक्ष्य भोग्य धान्यादि तेरे लिये सुखदायी, खाने में स्वादु कफादि दोषरहित, नीरोगताप्रद और पापवृत्ति नष्ट करने वाले हों। १९. भक्ष, पेय कृषि धान्य और गोदुग्धादि, सभी विष रहित हों। २०. दिन और रात्रि काल में अनर्थकारी शत्रुओं से तेरी रक्षा हो। २१. तुझे सौ वर्ष की आयु प्राप्त हो और इस आयु के दोनों सन्धिकाल, सर्दी गर्मी, बृष्टि तीनों ऋतुयें सुखदायी हों। २२. यथाक्रम तेरी आयु की बाल्यादि अवस्थायें प्राप्त हों। २३. सभी द्विपाद चतुष्पाद प्राणी मृत्यु के वश में हैं। मैंने उस मृत्यु के पञ्जे से तुझे छुड़ा लिया है अब भयभीत न हो। २४. तू अब निश्चय से ही नहीं मरेगा, भयभीत होने का अब कोई भी कारण नहीं है। तुझे उस उच्चकोटि में ले आया हूं जहां अज्ञान और मृत्यु का निशान ही नहीं है। २५. जहां यह (ब्रह्मज्ञान) और (संजीविनी विद्या) और (ज्ञान कवच) है वहां गौ, घोड़ा, पशु आदि भी सभी सुखी होते हैं। २६. हेमनुष्य ! अपने (तेरे) बन्धु-बान्धवों के आक्रमणों से भी तेरी रक्षा करते हैं। तू नीरोगता के साथ दीर्घजीवी हुआ है अब तेरे प्राण तेरा परित्याग नहीं करेंगे। २७. हे व्याधित प्राणी ? ये जो सैंकड़ों प्रकार की मृत्युयें हैं और विनाश के जो अन्य प्रकार हैं, वे सभी परमेष्ठी की कृपा से दूर हों। २८. तेरा तेजोमय शरीर है तू (स्वयं ही) घातकों को नष्ट करने वाला है, स्वयं रोगों को दूर करने वाला है। तेरे पास पवित्रता वृद्धि और गति प्रदायिनी भेषज (मंत्रमयी ब्रह्म-विद्या संजीविनीविद्या ज्ञान) हैं; अतः उससे दीर्घजीवी हो। यह ऋषिघोष है।

पेट की पथरी (किडनी), निर्गुण्डी (धवई (म० प्र०) क्वार की नवदुर्गाओं से इस बूटी पर लाल फूल कुछ लम्बा से शंखपुष्पी से लम्बा निकलता है यह सर्प के आकार की जड़ में निर्गुण्डी निकलती है पत्ता पीछे भूरे आगे हरे अरहर जैसे होते हैं कुछ करील जैसा झाड़ीनुमा होता है, कांटे होते नहीं, डार चिकनी होती हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसके पत्ते छाया में सुखा लें, पीसकर कपड़ छन करके एक पाव, पानी ताम्रपात्र में भरकर रात को रक्खें बासे पानी के साथ प्रातः ३ दिन लें पथरी खतम। यदि लाभ न हो तो बीच में कुछ दिन रुक करके पुनः ३ दिन लें।

निर्गुण्डी सांप जैसी निकलने वाली को–गोरखमुण्डी, गौ का घी और शक्कर में मिलाकर सेवन करें तो वल-वीर्य वर्द्धक वाजी करण है। विन्ध्याचल सतपुड़ा हुशङ्गावाद में मिलती है।

नूरी (म० प्र०) धातुपुष्पी वायुविकारों की सुत्रजनन की जड़ी है।

"अयंदेवानामसुर" (१।१०) इससे जलोदर रोग निवारणार्थ घर की छान का फूस दाभ, दूर्वा, अपामार्ग की मुष्टिक को शान्ति औषधि युक्त जल खे घट में डालें अभिमन्त्रित करें, रोगी को एक वस्त्र धारण कर काले वस्त्र से ढांक कर आधे शिर पर अभिषेक करें। कौ. ४।१

"अन्तकाय भृत्यवे" (८।१) "आरभस्व' (८।२) इन दोनों अर्थसूक्तों का विवरणपूर्व लिखा जा चुका है।

अथायुष्यगण (कौ० कं० ३४ सू० ११ व २) (कं० ३२।२६) (५२।१८।५४।११) अ. वे. (१।३०-१) (२। १५,१७,२८।३३) (३।११) (१।१०-४) (४।१३) (५।३०) (७।२२) (८।१,२) (११।४) (१७।१-४)

पाश विमाचनम् (१।१०-४) अथर्वा १—असुरः, २—४ वरुण।। त्रिष्टुम् ३ ककुम्मती अनुष्टुप् ४ अनुष्टुप्।

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥१

नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम्।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२

यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु। राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥३

मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि। सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥४

कां १।१० "अयंदेवानाम्"—देवों को भी जीवन शक्ति प्रदाता ईश्वर प्रकाशित हो रहा है। राजा वरुण का संकल्प (इच्छा) सत्य होते हुए भी अर्थात् उसकी इच्छा के प्रतिकूल कोई भी नहीं जा सकता है, तथापि ज्ञान से परिपक्व मैं, निम्न लिखितमार्ग से पापी अज्ञानियों को भी ईश्वर के क्रोध से मुक्त कराता हूं। २—हे प्रभु! तेरे क्रोध के समक्ष हम नमनपूर्वक आत्म समर्पण करते हुए शिर झुकाते हैं। तू भलीभांति सबके पापों को जानता है हम अपने पापों को तुझ से छिपा नहीं सकते। हे प्रभो! यह बात मैंने हजारों ही गोष्ठियों में स्पष्ट करदी है। यह निर्विवाद सत्य मनुष्य बिना तेरी भक्ति और कृपा के सौंवर्ष की वृद्धावस्था प्राप्त नहीं कर सकता है, अन्यथा इस का रक्षक कौन हो सकता है। ३—हे पतिततर प्राणी! तू असत्यः कटु दुर्वचन बोलता है। इस तेरे पाप से तेरी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है। मैं तुझे एकमात्र प्रभु की शरण में लेजाकर तेरी रक्षा कर सकता हूं। ४—हे पापी मनुष्य? तुझे जगदीश्वर के न्यायोचित क्रोध से इसी प्रका छुड़ाता हूं। हे वीर! तू अपनी जाति के स्त्री पुरुषों के सन्मुख अपने सभी कृत पापों को स्पष्टतया वता दें यही सबसे वड़ा प्रायश्चित्त होगा, इससे तेरामन पवित्र होगा। जो अपने पापों को जनता के सन्मुख कह देते हैं, वे पवित्र होकर शीघ्र दिव्यात्मा बन जाते हैं।

"यदाबध्नन्" (१।३५) से उपरोक्त समस्त कार्यों के लिये उपरोक्त कर्मों के साथ हीं (१।३५) "यदाबन्धन्" "नव प्राणान्" [५।२८] से दुहरी काली धागे से युक्त स्वर्णमणि को पूर्ववत ३ दिन मधु-दधि के पूर्णपात्र में रख; चौथे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिना मणि (स्वर्ण) धारण करे उसे खाये, तथा खीर में घी मिलापुरुष की आकृति लिखकर [बनाकर] अभिमन्त्रित कर खाये। इससे श्रुति-तेज, धन आयु वृद्धि होती है।]कौ ७।३] न. क. १७।

नेत्र, नासा, कर्ण, शिर, जिह्वा, ग्रीवा, उदर, अन्त्रि, आदि समस्त शरीर के भागों के रोग निवारणार्थ रोगी की बाहु आदि की गांठों को मूंज की रस्सी से बांधें। पूर्वसूक्त अभिमन्त्रित जल से छींटे देता चले गांठों को खोलता चले पुनः "अक्षीभ्यां ते" [२।३३] "मुञ्चामित्वा" [३।११] "उतदेवाः" [४।१३] "आवतस्ते" [५।३०] "शीर्षक्तिम्" [६।८] से धोये, छींटे दे। स्नान, उपस्थान [एकादश दिन]।

बाल ग्रहरोग में; निरन्तर स्त्री सङ्गति से उत्पन्न यक्ष्मा में, पवित्र गन्धवाली मछली युक्त भात अभिमन्त्रित कर रोगी को नित्य खिलाये तथा जंगली शुष्क गोमय, जगली सन, तिल की लकड़ियों की अग्नि से तप्त किये जल से रोगी को उषाकाल में छींटे, आचमन, स्नान कराये। रोगी का स्पर्श कर इन उपरोक्त सूक्तों से अभिमन्त्रित करे। [वै० सू० ७।३] इन्हीं सूक्तों से उपनयन के उपरान्त कुमार की दीर्घायु के लिये आचार्य, अभिमर्शन कर अनुमन्त्रित करें। [कौ० ७।६]

कां० १।३५ अथर्वा [आयुष्कामः]। हिरण्यम्, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः। जगती, ४ अनुष्टुब्गर्भाचतुष्पदा त्रिष्टुप्। कां० १।६ की भांति प्रयोग करें।

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥१
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥२
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ॥३
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥४

कां० १।३५ तथा कां० १६। "यदाबध्नन्" [१] बलवर्द्धक और मनमें शुभ संकल्प पैदा कर्त्ता है श्रेष्ठ महापुरुष, सैकड़ों प्रकार के बल सञ्चालक के शरीर पर उपर्युक्त बलादि प्रयोजनार्थ, जिस स्वर्णाभरण को धारण कराते रहे हैं वही स्वर्णभूषण, तेरे जीवन सुधार, तेज, ओज, बल, वुद्धि, शक्ति, धैर्य, सामर्थ्य की वृद्धि के लिये सौ वर्ष की आयु के लिये [पेयों, भक्षों, भस्म, आभूषणादि] धारण कराता हूं। [२] इस स्वर्णधारण कर्त्ता वीर के आक्रमण को राक्षस, पिशाच सहन नहीं कर सकते हैं। वे इसके हमले से भयभीत होकर दूर भाग खड़े होते हैं; क्योंकि यह देवों का अंश [तेज] सर्वोत्कृष्ट बल ही है। इसी का नाम दाक्षायणहिरण्य है जो इसे [दाक्षायणहिरण्य, तेज को] धारण करता है वह मानव सबसे अधिक आयु वाला होता है। यह [दाक्षायण हिरण्य वीर्य ही है]। [३] जैसे परमात्मा, आत्मा में, आत्मा जीवात्मा में, जीवात्मा में इन्द्रियां रहती हैं उसी भांति जल के तेज कान्ति, पराक्रम, बल तथा सभी औषधियों के वीर्य इसी पुरुष में धारण कराते हैं। इस प्रकार बल बढ़ाने के अभिलाषी सुवर्ण धारण करें। [यास्कवचन] यह सुवर्ण हितकारक और रमणीय है। [यजुर्वेद ३४।५२]—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्दाबध्नन्दाक्षायणाहिरण्यं; शतानीकायसुमनस्यमानाः।
तन्म आबध्नामिशतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥

श्रेष्ठ मनस्वी दाक्षायण लोग शतायु के लिये जिस सुवर्ण को धारण कराते रहे, वह स्वर्णाभूषण; मैं इस उत्तमायु के साथ सुखी वृद्धावस्था का, सौ वर्ष की पूर्णायु प्राप्ति के हेतु धारण करता हूं। यजु० ३४।५१ तथा ३४।५० का भाव यह देवों से उत्पन्न सर्वश्रेष्ठ तेज है, इससे राक्षस और पिशाच भी पार नहीं हो सकते, जो दाक्षायण स्वर्ण (संशोधित परमार्जित स्वर्ण, अथवा वीर्य) धारण करता है, वह देवों और मनुष्यों में दीर्घायु प्राप्त करता है [य० ३४। ५०] दीघायुप्रद, कान्तिवर्द्धक, शोभा, पुष्टिप्रद, ऊपर उठाने वाला, तेज, ओजवर्द्धक, विजयप्रद स्वर्ण मेरे शरीर में प्रविष्ट हो। [४] दो-दो मास का एक ऋतु है। प्रत्येक ऋतु की शक्ति भिन्न है, मानो संवत्सररूप कामधेनु को निचुड़ा दूध ही ६ ऋतुयें हैं। इस दूध को मनुष्य पिये, वलिष्ठ हो, इसकी अनुकूलता इन्द्र, अग्नि और सब देव करें।

बाल रोग :—(मुँह के छाले, घाव, मसूड़े फूलजाना, लार डालना) सेलखड़ी, गेरू लालनरम (गिले अरमनी), गेरू सख्त कुछ श्यामलता वाला लाल, ये १।१ तोला, फिटकरी का फूला १ रत्ती, पीसकर कपड़छन कर; पूरे दिन में ६ बार, थोड़ी २ मुँह में उंगली से मुंह में लगायें।

दांत—पीपरामूल, चव्य, चीता, पीपली, सौंठ, अजवायन, अजमोद, मुलहटी, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, नागकेशर, नागरमोथा, काकड़ासींगी, कचूर, छोटी इलायची, सेंधा नमक और विरिया समभाग लें कूटकर छान लें उसमें शङ्खभस्म, लोहाभस्म, सोनामक्खी भस्म, अभ्रकभस्म, ये ३।३ माशे मिला गोमूत्र के साथ खरलकर २।२ गोलियां बना, छाया में सुखायें, पानी के साथ घिसकर, मसूड़ों पर लगायें। ३।४ बार नित्य लगायें। दांत सरलता से शीघ्र निकल आते हैं। [२] कच्चे आमलों का रस मसूड़ों पर मलें। [३] शहद में पीपली और धाय के फूल पीसकर मसूड़ों से मल दें। [४] सीप, तुम्बरू के बीज कांयफल का टुकड़ा और सिरस के बीज एक साथ या पृथक् कोई सा भी गले में बांधें तो दांत सरलता से निकलते हैं। [५] कौड़ी की भस्म या सुहागा शहद के साथ मसूड़ों से मल दें। [६] १ भाग चूना, उसकी दुगुनी मिश्री मिला, १ पाव पानी में डालें, उसका केवल नितरा पानी १०।१२ बूँद नित्य पिलायें।

बाल की खांसी—सरसों का तेल छाती पर मलें और गुदा में भी डालें। "छाती पर कफ" जमा हो तो गोघृत या पुराना घृत छाती पर मलें।

श्वांस — डब्बा गोमूत्र में नमक मिला गर्म कर पिलायें तो पसली, डब्बा, कफरोग नष्ट हों।

चनूने कीड़े—एरण्ड के पत्तों का रस गुदा में डालें। **पेट के कीड़े**—काला जीरा का चूर्ण शहद के साथ चटायें। **तुतलाना**—ब्राह्मी के पत्ते हरे खिलायें। **पेटदर्द अजीर्ण**—सौंठ और धनिये का कांढा दें। **दस्त**—रैवत-चीनी की जड़ घिसकर दूध के साथ चटायें। "केवल डिब्बे का रोग" हो तो, दोनों (या एक ही) अड़ूसो के पत्ते, नागरपान, केले के पत्ते और जामुन की छाल इनका रस समभाग मिला, उसमें बच घिसकर १० दिन चटायें। माता और बच्चे के पथ्य में सावधानी बर्तें।

कां० १।३१।४ अथर्वा [आयुष्कामः]। विश्वेदेवाः [१ वसवः, आदित्याः, १-४ देवा] त्रिष्टुप्, ३ शाक्वरगर्भा-विराङ्जगती।

विश्वे॑ दे॒वा वस॑वो॒ रक्ष॑ते॒ ममु॒तादि॑त्या जागृ॒त यू॒यम॒स्मिन् ।
मेमं सना॑भिरु॒त वा॒न्यना॑भि॒र्मेमं प्रा॒प॒त् पौरु॑षेयो व॒धो यः ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येऽनं जरसे वहाथ ॥२
ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥३
येषां प्रयाजा उतवानुयाजा हुतभागा अहुतादश्चदेवाः ।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥४

कां० १ सू० ३० "विश्वेदेवा" कौन हैं ? यह संजीविनी विद्या समीक्षा में श्रुतिसम्मत उल्लेख है । [१] ऋषि घोषः—हे विश्वदेवो ! हे वसुदेवो ! इस शरणागत व्याधिग्रहीत की रक्षा करो। हे द्वादश आदित्यो ! तुम मनुष्य में जागृत रहो [ज्योति जगाये रहो] । इसका अपने ही सम्बन्धियों या अन्यसे बध न हो । [२] हे देवो ! आपके जो पिता और पुत्रादि हैं, वे भी सब पूर्ण सावधानी से मेरा उद्घोष सुनें । इस मनुष्य को पूर्ण आयु पर्यन्त तक ले जाना; निश्चय तुम्हारे ही अधीन है । अतः इसकी दीर्घायु करो । (३) जो देव, द्यु, अन्तरिक्ष भूलोकों में, औषधि, पशु, जलादि में अंशरूप से विद्यमान हैं । वे सभी मिलकर मनुष्यों की दीर्घायु करें । तुम सबकी सहायता से मनुष्य सैकड़ों अपमृत्युओं से बचे । (४) विशेष याज्ञिक, अनुकूल याज्ञिक, यज्ञभागाधिकारी तथा होमाहुत न खाने वाले देव, जिन्होंने पञ्चयज्ञ (दिशायें) विभक्त किये हैं; वे सभी आपदेवगण, मनुष्य की आयुवर्द्धक सभा के समासद बन मनुष्य की आयु वर्द्धन में सहायता करे ।

१०१ प्रकार की अपमृत्युओं, महामारी आदि नैर्ऋति पाशों तथा मित्र, शत्रुओं द्वारा किये जानेवाले असामयिकवधों (घातों)से रक्षार्थ, प्राण, अपान के पूर्णतया स्वस्थता, दीर्घायुष्य तथा पाप, घोर अन्धकाररूप मृत्युसे बचने, भोग और पराक्रम की वृद्धि तथा देवों की सहायता के लिये महान देव का जप, उपस्थान, होम, अभिमर्शनादि करे ।

कां २।२८—१-५ शम्भुः । १,२ जरिमा आयुः, २ मित्रावरुणी, ३-५ द्यावापृथिव्यादयो देवाः । त्रिष्टुप्, १ जगती, भुरिक । मुण्डन, चौलकर्म में माता-पिता ३ वार पुत्र को परस्पर प्रत्यर्पित करें, मक्खन अभिमन्त्रित कर चटायें । शेष आयुष्यगण कर्म करे ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः ॥१
मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरा मृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥२
त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥३
द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥५

कौ. सू. २८ "तुभ्यमेव" (१) मनुष्यपूर्ण अवस्था तक दीर्घायु वाला हो । सैंकड़ों मृत्युयें, प्रयत्न करने पर भी इसे बीच में न मार सकें । वात्सल्यरसवाली माता की भांति, प्रियपुत्र को गोद में लेकर पालन करने को, सबका मित्र देव इस पुरुष की भी; मित्रों के पापों से रक्षा करे । (२) शत्रुदलन मित्र और वरुण इसे दीर्घायु प्रदान करे । सबचारित्र्य ज्ञाता (देवगुरु) इसे सब देवों के जीवन चरित्रों का उपदेश करे । (३) हेप्रभु ! आप भूलोक के जन्मे हुए और जन्मने वाले भूलोक वासियों के स्वामी हो । इसे प्राण, अपान न छोड़ें मित्र न मारें, और शत्रु भी सहार न करें । (४) द्यौ पितासूर्य और माता पृथिवी, तुझे वृद्धावस्था तक जीवित रक्खें । इससे तू भी मातृ-भूमि की गोदी में, प्राण अपानों से सुरक्षित हो सौवर्ष तक जीवित रह । (५) हे अग्नि, वरुण, मित्र राजन ! इसे प्रिय भोग और वीर्य, वल, दीर्घायु से युक्त तेजस्वी जीवम प्रदान करो । आदि शक्ति माता के तुल्य सुख दे और अन्यान्य विश्वदेव सौवर्ष पर्यन्त की सुखी वृद्धावस्था तक जीवित रहने की सहायया करें ।

कां २।२९ अर्था । १ अग्निः, सूर्यः बृहस्पतिः, २ जातवेदाः सविता, ३ इन्द्रः, ४-५ द्यावापृथिवी विश्वदेवाः, मरुतः आपः आपः, ६ अश्विनौ, ७ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ४ परावृहती निचृत्प्रस्तारपङ्क्तिः । अंहोलिंगगण, आयुष्यगण, यक्ष्मगण कर्मषु विनियोगः ।

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो३ बले ।
आयुष्यऽमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥१
आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२
आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥३
इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥४
ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावा पृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥५
शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥६
इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्न ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा ।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां २।२६ "पार्थिव स्परसे" हे देवो ! इस मनुष्य को, अग्नि, सूर्य गुरु आदि देवों की कृपा से, पार्थिव ऐश्वर्य युक्त भोग अन्नः बल, तेजोमय दीर्घायुप्रदान करो। (२) हे देवो ! इसे श्रेष्ठ सन्तति, ऐश्वर्य, पुष्टिः ओज और दीर्घायु-प्रदान करो (३) हे देवो ! हमें बल, बुद्धि, कौशिल्यता, सुप्रजा और धन प्राप्ति का आशीर्वाद दो। यह मनुष्य अहित कर्त्ता शत्रुगणों को परास्त करता हुआ, स्वशक्ति से विविध क्षेत्रों में विजयी हो। (४) यह मनुष्य प्रभु से निर्मित, देवगुरु से शिक्षित वीरों द्वारा उत्साहित पराक्रमी बन हमारे बीच आकर, सत्कर्म परायण हो मातृ-भूमि का पुजारी यह वीर कभी भी भूख प्यासादि से दुखी न हो (४) पिता सूर्य, मा भूमि इस अन्न, रसः बल और ओज प्रदान करें, वरुणादि सभी देव इसकी सहायता करें। (५) हे मनुष्य ? मैं तेरे मन को उत्तम विद्याओं से तृप्त करता हूं। तू सदा निरोग और तेजस्वी बनकर सुखी हो। मिलजुल कर रह, अपना सौन्दर्य, यश, कीर्ति, बुद्धि और कर्म की शक्ति को बढ़ाता हुआ इस ज्ञाना अमृत रस का पान कर।

कल्याण, अभिवृद्धि विधि—ये दोनों सूक्त-शर्म वर्मगण के नाम से वर्णित हैं सभी कर्मों तथा गणों में इनका विनियोग अनिवार्य है।

कां. १।२६ व १।४ ब्रह्मऋषि, १ देवाः, २ इन्द्र, भागः, सविता, ३-४ मरुतश्चदेवते गायत्री, वसाना साम्नी-त्रिष्टप्. एकावसाना पादनिचन। २ त्रिपदाएकासानाछन्दासि समस्त कर्मणिहोमे जपे मार्जने उपस्थाने विनियोग।

आरे३सावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत् आरे अश्मा यमस्यथ ॥१

सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः सविता चित्रराधाः ॥२

यूयं नः प्रवतो नपान्मरुतः सूर्यत्वचसः। शर्म यच्छाथ सप्रथाः ॥३

सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥४

इस सूक्त से शत्रु प्रयुक्त समस्त अस्त्र, शस्त्र भय निवारण, पिशाचादि गृहीत, क्रूर दृष्टि, कृत्या परिहरण, समस्त अपशकुन, अशुभदर्शन पाप लक्षण युक्त, प्राणी, मूलादि दोष परिहारार्थ अपनोदन में शिर पर शान्ति जल से, शान्ति औषधियों को पलाशपत्र में पोटली में रखकर अर्द्धवस्त्र ओढ़े, आधा काछे हुए प्राणी को, ढाक के पत्ते पर सैंमर या शमी की लकड़ी रखकर उस पर विठा, छींटे दे, स्नान भी कराये सूर्यार्घ्य व उपस्थान करे। "इन तीनों निम्न सूक्तों कां. १।२६; कां. २।४ सूक्त ४।३३ का जपः, होम करे जप में १।२६ भी है। इनमें चातनगण, आयुष्यगण, स्वस्त्ययनगण का भी विधान किन्हीं महर्षि का है। सूक्त २।४ से अर्जुन की टहनी जो सभी प्रकार के दर्द विषैले फोड़े ठीक करता है। को अभिमन्त्रित कर बांध दें इसी सूक्त से ढाक के पत्ते को अभिमन्त्रित करे। सू. २।५ से शमी की लड़की अभि-मन्त्रित करे। ढाक की कोपलें खिलाये अर्जुन की वक्कल के तप्त जल से; स्नान कराये इसी की मणि बाधे।

कां ५।२८ अथर्वा। त्रिवृत्, अग्न्यादयः। त्रिष्टुप्, ६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७,६,१०,१२ ककुम्मत्यनुष्टुप्, १३पुर उष्णिक्। समस्त सम्पत्कर्म आयुष्य उपनय, आदि तथा अन्नविनाशनिवारण अन्नवृद्धि में वैष्णवी इष्टी के साथ होम करें। स्वर्ण, चांदी, लौह तारों से बनी अंगूठी या स्वर्णमणि अभिमन्त्रित करके धारण करायें। अन्य क्रियामणि बन्धन की सभी एक है। मणि बन्धन प्रकरण में पढ़ें।

नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।

हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥१

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च।

आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पातयन्तु ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥३
इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥४
भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥५
त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥६
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥७
त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥८
दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् । भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥९
इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः । तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥१०
पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥११
आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः । अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥१२
ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा । संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥१३
घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥१४

अ.कां. ५ सू २८ "नवप्राणान्" ।—यह सूक्त हमें यज्ञोपवीतमणि धारण करने से लाभ और उसके स्वरूप का निर्देशक है । यह रीर्घजीवी, ओजस्वी, वलिष्ट, तेजश्वी बनाने में कैसे समर्थ है, इसका भी उपदेश करता है । पुरा काल में "यज्ञोपवित" या मणि स्वर्ण, रजत, लौहमय धारण की जाती थी । (१) सैंकड़ों वर्षों की दीर्घायु के लिये (धनञ्जय के अतिरिक्त) नौ प्राणों को, नौ इन्द्रियों से सम्पृक्त (मिला) करें । इनमें स्वर्ण के ३, रजत के ३ और लोह के ३ मिला ९ धागे तेज के साथ विशेषरूप से अवस्थित हैं । (२) इसके तीनों धागों में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, भूमि, जल, द्यौ, अन्तरिक्ष, ४ उपदिशायें, ४ दिशायें, षट ऋतुओं से युक्त, ऋतुभाग, इन तीनों के योग से निर्मित (यज्ञोपवीत-मणि) समस्त दुःखों से पार कर दीर्घ जीवन प्रदान करे । (३) इस त्रिपुटी (तिहरे) उपवीत में, तीन प्रकार की पुष्टियाँ मिली हुई हैं । पूज्यदेव हमें घी और दूध से परिपूर्ण करें । अन्नवृद्धि, मनुष्यबाहुल्य तथा पशु समृद्धि, ये सभी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेरे स्थान सदा स्थिरता से रहें। (४) द्वादशादित्य हमें अष्ट वसुओं (लोकपालों) की शक्ति प्रदान करें। अग्नि (तीनों) वृद्धि करें। इन्द्र वीर्य-बल वृद्धि करें। इस भांति यह त्रिगुणात्मक मणि, सर्वसंकट नाशन हमारा पोषण करे। (५) भूमि सुवर्ण द्वारा तेरी रक्षा करे। सर्व पोषक कल्याणमयी अग्नि लौह द्वारा तुझे परिपूर्ण करे। (६) स्वभावतः स्वर्ण तीन प्रकार का है। इनमें एक अग्नि का प्रिय है। दूसरा निचोड़े हुये सोम से निकलता है। तीसरा भक्ष भोगों का साररूप जल का वीर्य है। इस प्रकार त्रिगुणात्मक स्वर्णमणि मेरी आयु की वृद्धि करे। (७) जमदग्नि की तिगुनी आयु, कश्यप की तिगुणी आयु अमृत का साक्षात्स्वरूप है। इनसे मैं (बाल, युवा, वृद्धा) से युक्त तुझे बनाता हूं। (८) एकही (ॐकार में) अ—उ—म् को तीन महाशक्तियां (भूर्भुवः स्व) से सम्पृक्त हैं। ये तीन अक्षर यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हैं। जिनसे महानाद उत्पन्न होता है। ये जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिरूप तीन अवस्थायें हैं, जिनमें मानवजीवनरूप महा यज्ञोपवीत धारण करने से, १०० मृत्युएँ और तज्जनित दुःखों, संकटों का नाश होता है। इसी कारण वेदोक्त धार्मिक समस्त कार्यों का दायित्व भार यज्ञोपवीत धारियों पर रखा गया है। शरीर में द्युलोक शिर में, अन्तरिक्ष नाभि में और भूलोक पैरों में हैं, इसी से शिर में स्वर्ण, मध्य भाग में चांदी और पैर में लौह धारण के तुल्य ही, तिहरा यज्ञोपवीत धारण कर्त्ता की रक्षा करे। (१०) यज्ञोपवीत के ३ धागे देवो के ३ भूलोक भुवलोक और स्वर्गलोक है। जो अनन्त दैवी शक्तियों से ओतप्रोत है। इस श्रद्धा से इसके धारणकर्ता तेज, बल, वीर्य सम्पन्न होंगे। जिनसे उनके सभी प्रकार के अहितकर्त्ता शत्रु क्षीण होंगे। इसके धारणकर्त्ता को प्रणाम है। यह देवत्व प्रदायक है, जो पुनीत श्रेष्ठजनों की कृपा से ही सम्भव है। (११) मैं इस त्रिगुणात्मक यज्ञोपवीत को धारण करता हूं। मणि त्रिगुण कृपा करें। समर्थ महानुभाव योग्य मनुष्य को ही यज्ञोपवीत धारण का उपदेश करते हैं, सबको नहीं। स्वतः धारण किया हुआ यज्ञोपवीत भी इस महाशक्ति का प्रदाता नहीं होता। (१२) इस त्रिवृत् यज्ञोपवीत के तीन सूत्र (अर्यमा, पुष्प और वृहस्पति हा हैं) अर्यमा श्रेष्ठ और निकृष्ट निर्णायक, पूषा (पुष्टिकर्त्ता), वृहस्पति (ज्ञानी) का नाम है। इससे ज्ञान पुष्टि और न्यायिक क्षमता के प्रदाता ये तीन धागे हैं। (१३) एक वर्ष में तीन ऋतु हैं. उसी प्रकार मानवजीवन की पूर्णायु १२० वर्षों की ६ ऋतुयें हैं। ये तेज, बल और दीर्घायु प्राप्ति के सूचक हैं। (१४) इस यज्ञोपवीत में कोन से गुण हैं? और इसके धारण से क्या लाभ है? लाभ—दुःखों से पार कर कष्टों से रक्षा, सभी प्रकार के पतन से बचानेवाला, मातृभूमि को बली बनानेवाला, शत्रुसंहारक, विरोधियों को गिरादेने वाला, दुष्टात्माओं को हीनबल कर्त्ता, सभी प्रकार की मधुरता प्रदायक, घृतादि पोषक भोगों के तत्वों से पोषण कर्त्ता, इन समस्त गुणों से युक्त यज्ञोपवीत मेरे शरीर पर विराजमान हो। इस भावना, निष्ठा और श्रद्धा से द्विजाति ही यज्ञोपवीत धारण की दीक्षा लेकर धारण करें और विहित कर्त्तव्य पालन करें।

अथ गर्भदोष निवारणम्— (अ. वे. कां. ८ सू. ६ मं. २१ प्र. १८ अनु. ३) अ. कां. ८।६ मातृनामा, मन्त्रोक्ताः, मातृनामा, १५ ब्रह्मणस्पति। अनुष्टुप्, २ पुरस्तद् वृहती, १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ११, १२, १४, १६ पथ्यापंक्तिः १५ त्र्यवसाना, सप्तपदा जगती। कर्मषु, तद्विहित विधिना, गर्भदोष निवारणे, राजयक्ष्मादि दोष निवारणे, रजोदोष निवारणे गर्भ स्थैर्ये, अन्य गर्भोत्पान्निवारणे, सीमन्तोनयने श्वेत, पीतसर्षपाभिमन्त्रणे, बन्धने, मार्जने, स्नाने होमे च विनियोगः। व्याख्या ग्रन्थ के अ. १ में पढ़ें। अर्थसूक्तस्य मातृगण, वास्तोष्पतिगण सीमान्तोन्नयन में श्वेत पीस सरसों अभिमन्त्रित कर गर्भिणी के बांधें। यह मातृनामागण, वृहच्छान्तिगण यक्ष्मनाशनगण आयुष्यगण कर्मों में विहित है।

यौ ते॑ मा॒तोन्म॒मार्ज॑ जा॒ताया॑ः पति॒वेद॑नौ। दु॒र्णामा॒ तत्र॒ मा गृ॑धद॒लिंश॑ उ॒त व॒त्सप॑ः ॥१

प॒ला॒लानु॑प॒ला॒लौ श॒र्कुं कोकं॑ मलिम्लु॒चं प॒लीज॑कम्। आ॒श्रेषं॑ व॒व्रिवा॑ससमृ॒क्षग्री॑वं प्र॒मी॒लिन॑म् ॥२

मा सं वृ॑तो॒ मोप॑ सृप ऊ॒रू माव॑ सृपो॒ऽन्त॒रा। कृ॒णोम्य॑स्यै भेष॒जं ब॒जं दु॑र्णाम॒चात॑नम् ॥३

दु॒र्णामा॑ च सु॒नामा॑ चो॒भा सं॒वृत॑मिच्छतः। अ॒राया॒नप॑ हन्मः सु॒नामा॒ स्त्रैण॑मिच्छताम् ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः । अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोप हन्मसि ॥५
अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् । अरायाँछ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥६
यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च । बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥७
यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् । छायामिव प्रतान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥८
यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् । तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥९
ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः । कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ॥१०
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय । ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥११
ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥१२
य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति । स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥१३
ये पूर्वे वध्वो यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेष्ठाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥१४
येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥१५
पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥१६
उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् । उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम् ।
पदा प्रविध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥१७
यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते । पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥१८
ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥१९
परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत् । गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥२०
पवीनसात् तङ्गल्वाच्छायकादुत नग्नकात् । प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥२१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ह्याऽस्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः। वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥२२
य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः। गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥२३
ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि। बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४
पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्। आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥२५
अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम्। वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६

(१-२४) १-५ पूरणः; (६-१० यक्ष्मनाशनः; ११-२६ रक्षोघ्नः, १७-२३ विवृहा; २४ प्रचेताः। १-५ इन्द्रः; ६-१० यक्ष्मनाशनम्; ११-१६ गर्भसंस्रावः १७-२३ यक्ष्मनाशनम्; २४ दुःस्वप्नघ्नम्। १-१० त्रिष्टुप्; ११-२४ अनुष्टुप् छन्दांसि गर्भदोषनिवारणे रक्तस्रावे, गर्भस्रावे, ज्वरातीसार, अतिमूत्र, कृच्छ्रमूत्र, अश्मरी (पाषाद्या), योनिव्रणः, राजयक्ष्म, अपवादनिवारणे, दुःस्वप्नादिकर्मज व्याधि निवारणे भैषज्ये, मार्जने, स्नाने, होमे च विनियोगः।

कां. ८ सू. ६ ; कां १ सू. २ ; कां. २ सू. ३ ; कां ६ सू. ४४ आदिसूक्तोक्त कर्मज दोषनिवारण में स्वयंपतित गौ का सींग धोकर अभिमन्त्रित कर पिलायें। रक्तस्राविणी नाड़ी को मूञ्ज की रस्सी अभिमन्त्रित कर बांधें, जुते गेहूं के क्षेत्र की मिट्टी को नाभी से नीचे गर्भाशय पर लेप करें, पेड़ू पर घी मलें, गुदा, पेशाव इन्द्रियों के घावों को लपेट कर बांधें और अ. १ में दी हुई विधि पढ़ें; करें।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥१
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम्।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीऽत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥७
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥८
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥१०
ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः । अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥११
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये । अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥१२
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् । जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१३
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये । योनिं यो अन्तरारेल्हि तमितो नाशयामसि ॥१४
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि॥१५
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।१६
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१७
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्याऽत् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥१८
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥१९
अन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि । यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥२०
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्य१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो विवृहामि ते ॥२१
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥२२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यंऽते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वंञ्चं वि वृहामसि ॥२३
अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर । परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥२४

अ० कां० ८ सू० ६ "यौ ते मातोन्ममार्ज" से प्रारम्भ २६ मन्त्रों के दोष और उनकी निवारण विधियां अ० कां० २० सू० ९६ "तीव्रस्याभिवयसो" तथा कां० ३ सू० ११ "मुञ्चामित्वा" एवं कां० २ सू० ३३ "अक्षीभ्यां ते" में दिये गये व्याधियों के मूल कारणों के ज्ञान और उनकी निराकरण विधियां, इसी ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में तथा तृतीय के "वृहच्छान्तिप्रकरण" में उल्लिखित हैं । तथापि गर्भ दोषों का सूक्ष्मविवरण उससे अतिरिक्त निम्न भांति पढ़ें ।

मं० १ बालक के उत्पन्न होते ही प्रसुतिग्रह में, प्रसूतिका और बालक पर, दुर्णामा और वत्सप, ये रोग मूल प्रभावी होते है । उसके लिये सूर्य किरण, अग्नि धूप तथा "वज" पीली सरसों का प्रयोग लाभप्रद होता है । (३) रोग बीज कीटाणु— दुर्नामा और सुनामा दो प्रकार के होते हैं । दुर्नामा बुरे प्रभाव वाले और सुनामा कीटाणु, हितकारी होते हैं । इन दुर्नामा दुष्ट क्षीण भावनावालों का हम नाश करते हैं । इनका निवारण और भाव ग्रन्थ के अ० १ तथा ३ उपर्युक्त मन्त्रों के साथ पढ़ें और उसी विधि का प्रयोग करें ।

(३) "आस्रावस्य-भंषजम्" । (अ० वे० कां० सू० ३ मं० १ प्र० ३ अनु० १) अस्य कां० २ सू० ३ अङ्गिराः । भैषज्य, आयुः धन्वन्तरिः । अनुष्टुप्, ६ त्रिपदास्वराडुपरिष्टान्महा वृहती । ज्वर, अतीसार, नाड़ी, व्रण, अतिमूत्र शान्ति में मूंज की रस्सी से शिर, नाड़ी आदि को बांधे, वामी दीमक या क्षेत्र की मिट्टी लेपें, पेडू पर घी को लेपें ।

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात् । तत्ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥१
आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते । तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् ॥२
नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत । तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥३
उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् । तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥४
अरुस्राणमिदं महत्पृथिव्या अध्युद्भृतम् । तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥५
शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आराद्विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥६

गर्भसंस्राव में प्रायश्चितसूक्त—ऋ० वे० मं० १० । अ० १२ । सू० १६२ । रिक्षोहा ब्राह्मः । गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम । १-२-४ निचृत्रिष्टुप् ३-५-६ अनुष्टुप् । वृहच्छान्तिगण कर्मण, गर्भस्रावादि कर्मजव्याधि भैषज्ये होमे मार्जन, उपस्थाने, स्नाने मणिवन्धने च विनियोगः ।

ब्रह्मणाग्निः संविदानोः रक्षोहा बाधतामितः । अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनि माशये ॥१
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये । अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२
यस्ते हन्ति पतयन्तंनिषत्सनुं यः सरीसृपम् । जातं यस्तेजिघांसति तमितो नाशयामसि ॥३
यस्त ऊरु विहरत्यन्तरादम्पतीशये । योनिं यो अन्तरारडिहतमितो नाशयामसि ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥५

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥६

गर्भस्राविणी उपनिषद् । उत्तम प्रसवविज्ञान—ऋ० मं० ५ । अ० ६ सू० ७८ सप्तवध्रिरत्रिये ऋषय । अश्विनौ देवते । ६ गर्भस्राविणी उपनिषद् । १-२-३ उष्णिक । ४ निचृत् अनुष्टुप् । ५-६ अनुष्टुप्, ७-८-९ निचृदनुष्टुप् । गर्भस्राव निवारण भैषज्ये, सुखदप्रसवे, होमे, उपस्थाने, मणिबन्धने च विनियोगः ।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् । हंसाविव पतत मा सुताँ उप ॥२

अश्विना वाजिनी वसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पतत मा सुताँ उप ॥३

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव । श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये । मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति । एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि । निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९

अथकामसूक्तम्—"देवाः कपोतः" (६।२७) "ऋचा कपोतम्" (६-२८) "अमूर्हेतिः" (६।२९) ये गृह आदि में अशुभ कपोत, उलूक, टट टिहरी, चमगादड़, कौआ आदि पक्षी, सहसा घरों या गोष्ठों में घुस आयें या बोलें, तो मनुष्य एवं पशुओं को यमराज के महमान बनाने के अशुभ लक्षण होते हैं। इस अनिष्ट से उज्ज्वल भविष्य के लिये "महाशान्तिगण" में वर्णित अभिमन्त्रित जल से घर, गोष्ठ, पशु तथा मनुष्यों को छींटे इन्हीं से देकर शान्ति करें। 'परीमे अग्निम्" सूक्त ६।२८-२ से, उपरोक्त अशुभकारी पक्षियों के प्रवेशस्थान, घर, गोष्ठ, अन्नादि भण्डारादि में गौ तथा अग्नि को अभिमन्त्रित कर, इनके जाप के साथ ३ बार परिक्रमा कर घुमायें। कौ० ५।१०

कां० ६ । सू० २७ । ऋ० ३ भृगुः । ऋषिः । यमः निर्ऋतिः । देवते । जगती २ त्रिष्टुप्-छन्दासि कपोतादि अरिष्टशमने, शाक्त्युदकादौविनियोगः ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हेतिः पक्षिणी न दंभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्यं उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत्कपोतं ॥३

कां० ६।२८ ऋ० ३ भृगुः । यमः, निर्ऋतिः । त्रिष्टुप् २ अनुष्टुप्, ३ जगती, उपरोक्त विनियोग ।

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गाँ नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात्पथिष्ठः ॥१
परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत । देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥२
यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३

यदि काक, उलूक आदि अनिष्टसूचक पक्षी अङ्ग स्पर्श करें, प्रतिकूल, घर, ग्रामादि में प्रविष्ट हों, भयङ्कर अन्य उत्पात हों, मृत्यु १०१ में से या नैर्ऋति आदि के पाशों से अरिष्ट या दुष्वप्नजनितारिष्ट हो तो जलाशय के दोनों किनारों की मिट्टी दोनों हाथों में लें या चौरास्ता की लें या उर्द की दाल लें, इनकी प्रतिकृति बना प्राणप्रतिष्ठा कर पूर्णतया श्रृङ्गार आदि कर उसे बलिदान विधि से जल या चौरास्ता पर रक्खें या अग्नि में छोड़ दें । उससे पूर्व, रोगी के शिर से पैर पर्यन्त २१ बार सीधे उतारें, रोगी की स्वांस (प्राणवायु) भी उसमें लगाने दें, ऐसा करने से घोर अरिष्ट शान्त होता है । प्रतिकृति के हाथ, पैर आदि को सन या मूंज से बांधे तब पुनः उन्हें "यद्विद्वान्सो" आदि से पाशों को खोलें । कां ७ सू० ४२ "सोमारुद्रा" ७।८३ "वितेमुंचाये" ७।६६ "इदंयत्कृष्ण" तथा उपरोक्त अनुभूत ४।३३ "अपः नः शोशुचद" सूक्तों से प्रयोग करें ।

अ. कां. ९।२ अथर्वा । कामः । त्रिष्टुप्; ५ अतिजगती; ७-१४-१५, १७-१८, २१-२२ जगती, ८ द्विपदा आर्षी पंक्तिः; ११, २०, २३ भुरिक्, १२ अनुष्टुप्; १३ द्विपदार्ची अनुष्टुप्; १६ चतुष्पदा शक्वरीगर्भा परा जगती । कामाग्नि शमने बृहच्छान्तिगण कर्मणि विनियोगः ।

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येऽण ॥१
यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥२
दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥३
नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमाँस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥४
सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नांछम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥६
अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥७
इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् । कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥८
इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान्मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥९
जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥१०
अवधीत्कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥११
तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥१२
अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः । यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥१३
असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत्सपत्नान् ॥१४
च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद्बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् ।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान्नुदतां मे सहस्वान् ॥१५
यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यंऽकृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥१६
येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥१७
यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥१८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥१९
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२०
यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥२१
यावतीर्भृङ्गा जत्वऽः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्योऽवभूवुः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२२
ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।
ततस्त्वमसि ज्यायान विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२३
न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२४
यास्ते शिवास्तन्वऽः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥२५

कां. ९ सू. २ "सपत्नहमृषभं"—१ काम, "संकल्प" का पर्यायवाची है। यह अत्यन्त बलिष्ट शत्रुसंहारक है। इसे "यज्ञ" से दीक्षित करना श्रेयस्कर है। वह वड़े पराक्रम (वीर्य) से प्रशसित होने पर शत्रुओ को क्षीण करता है। (२) मुझे जो कष्टप्रद, अप्रिय है जो मेरा अनादर करता है; वह दुष्ट स्वप्न मेरे रिपुगणों की ओर चला जावे, मैं इस दृढ़ संकल्प शक्ति से उत्पन्न होता हूं। (३) दुष्ट स्वप्न, पाप, वशहीनता, दारिद्र, दुःख, संकट ये सभी हमारे शत्रुओं पर चले जावें, जो हमें पाप की जननी दुर्गतियों की ओर ले जाते हैं। (४) काम 'संकल्प' हमारे द्वेषियों को दूर हटा दे, उन शत्रुओं को विपत्ति घेरें और जब वे मृत्यु, मोह और अविवेक में पड़ें तब अग्नि उनके घरों को दहन कर दे। ५-सभी कवियों का कथन है कि वाणी, संकल्प की दुहिता है। इस वाणी द्वारा हमारे सभी शत्रु दूर चले जावें और उन्हें प्राण, इन्द्रियां और आयु त्याग दें। (६) अगाध समुद्र में जिस भांति नाविक नौका को चलाते हैं, इसी भांति मैं देवों के बल से शत्रुओं को भवसागर में झोकता हूं। (७) अति बलिष्ट तेजस्वी काम मेरा स्वामी है। यह मुझे अजातशत्रु बनाये। देव मेरे संरक्षक होवें और मेरे आत्मयज्ञ में पदार्पण करें। (८) जिनमें श्रेष्ठ संकल्प 'काम' है वे देव मेरे आत्मयज्ञ में आकरः इस यज्ञ द्वारा तृप्त हो और मुझे शत्रु (क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर, ईर्ष्या, राग, द्वेषादि) से रहित बनायें। (९) हे इन्द्र अग्नि और काम ! तुम मेरे सब शत्रुओं का अध, पतन करो। वे अन्धकाराभिभूत हो जावें और अग्नि उनके घरों का दहन कर दे। (१०) हे काम ! मेरे सभी प्रकार के शत्रुओं का संहार कर, वे निविडतम अन्धकाराभिभूत होकर, इन्द्रियहीन, निसत्व हों, एक भी दिन जीवित न रहें। (११) इस काम 'संकल्प' से मेरे सभी शत्रु दूर हो गये। मुझे बड़ा विस्तृत कर्मक्षेत्र उपलब्ध हुआ है, चहुँदिशि निवासी मेरे सन्मुख अवनत हो चुके हैं और विस्तीर्ण भूमंडल मुझे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राप्त हो चुका है। (१२) बिना बँधी (खुली) नौका जैसे महासागर में डिगमिगाती है, वैसेही मेरे द्वेषिगण सम्भ्रान्तावस्था में हैं। वे कदापि पूर्व की अपनी स्थिति में नहीं आ सकते हैं। (१३) सारे देवगण मुझ पर कृपा करें और मेरे शत्रुओं को दूर भगा दें। (१४) हमारे पुरुषार्थ से भगाये शत्रुगण इतस्ततः भटक रहे हैं। वे वीरों और निजी मित्रों, परिवारीजनों से हीन हैं। मेरी सभी देवगण सहायता करें; मेरे उन शत्रुओं को भगा दें। (१५) इन विद्युत और सूर्य के अधिष्ठातृ देवतायें मेरे शत्रुओं को दूर भगा दें। (१६) इस काम 'संकल्प' का वृहत् 'ज्ञान व कवच' सर्वानन्दप्रद है। मैं इसे धारण करता हूं। इससे शत्रूओं के अस्त्र-शस्त्र मेरा वेध नहीं कर सकेंगे, और अरिदल प्राण, इन्द्रिये और आयुहीन हो जावेंगे। (१७) जिस महान शक्ति से देवों ने असुरों का और इन्द्र ने दस्युओं का पराभव किया, उसी शक्ति से, इस स्थान से, मैं अपने शत्रुसंघ को भगा दूंगा। (१८) काम (संकल्प) सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। देव, पितृगण, मानवगण, उसके अनन्तर उत्पन्न हुए, इसी से काम सर्वश्रेष्ठ है, इससे मैं उसको प्रणाम कर शिरोधार्य करता हूं। (२० से २२) यावत् भूविस्तार और जल, आकाश, दिशा, विदिशायें विस्तृत हैं, जहां तक पशु-पक्षिओं की दौड़ने की परिधि है, उन सब की व्याप्ति से बढ़कर काम की व्यापकता है। (२३-२४) हे काम ! हे उत्साह ! तेरी शक्ति उन पलक मारने वालों, ठहरने वालों से भी अग्रिम है। भू, जल, वायु, तेज, आकाश, सूर्य, चन्द्र सभी से बढ़कर है। (२५) अतः हे काम ! (संकल्प) शुभ मंगलमय सत्य, मेरे पास ही रहो, और हीन पाप बुद्धि मुझसे दूर चली जावे।

अनुभूत विवेचना—

*अ. कां. ६ सू. २७ तथा कां. ६ सू. २८ एवं कां ६ सू. २९ क्रमशः "देवाकपोत" "ऋचाकपोत" "अमृतहेति तथा कां. ७।६४ "इदंयत्कृष्णः" पर विशेष स्वयं तथा मनीषियों द्वारा बहुभाँति अनुभूत विवेचना है।

चमगादड़ :— का मकान में बास प्रारम्भ करना ही दुःखदारिद्रय तथा मकान की पूर्ण रिक्तताप्रद होता है।

नीले रंग की मक्खी :—इसका शिर पर बैठना मृत्युसूचक है।

मधुमक्खी :—का निवासगृह में छन्ना बनाना बिपत्तियों का सूचक है। मकान शून्य होता है।

शृगाल :— दिन के प्रथम प्रहर में पूर्व, आग्नेय (ईशान) में बोले तो श्रवणकर्त्ता को भय होता है। यदि दिन के द्वितीय प्रहर में वोले तो भय-बन्धन शरीराघात हो। यदि तृतीय प्रहर में, आग्नेय, दक्षिण या नैऋत्य में बोले तो भी यही फल होता है। यदि दिन के चौथे प्रहर में नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य में बोले अथवा रात्रि के प्रथम प्रहर में इन दिशाओं में बोले या रात्रि के तृतीय प्रहर में वायव्य, उत्तर, ईशान में अथवा रात्रि के चौथे प्रहर में उत्तर, ईशान या पूर्व में से किसी ओर धोले तो निश्चत उपर्युक्त अनिष्ट फल होता है।

चील :—इनका मकान पर प्रायः बैठना या वास करे तो विपत्ति हो, मकान शून्य हो। यदि किसी के शिर पर बैठे तो मृत्यु सूचक है।

श्वान :—यदि यात्राकाल में कान फटफटाये, या ऊपर को पैर कर शिर खुजलाये या यात्राकाल में ऊपर को पैर कर सोता दिखाई पड़े तो कदापि यात्रा न करें। घोर अनर्थसूचक है। यदि यात्री को यात्रा प्रारम्भ में लड़ते श्वान दिखाई दें अथवा रोते हों, अथवा सूर्योदय काल में मध्यग्राम में सूर्योन्मुख रोवें; तो वे अनिष्टप्रद होते हैं।

काक :—शिर पर बैठे तो मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट, कलह, धननाश। कमर या कन्धा पर बैठे तो अशुभ। स्त्री के मस्तक का स्पर्श करे तो पति, पुत्र सुखाभाव। काक मैथुन दर्शन से 'छ मास के अन्तर्गत मृत्यु, सभी सोचे कर्म विफल हों, इन सभी के निवारण की विधि के साथ उड़द के आंटे और चौरास्ता की मिट्ठी से इनकी मूर्ति बनायें, प्राण-प्रतिष्ठा कर मिट्टी के कोरे पात्र में रक्खें; उड़द, चावल, घी, मिष्टान्न की बलि दें।

काकशकुन :—यदि बैशाख में काक हरेभरे बृक्ष पर घोंसला बनावे; तो सुभिक्ष मंगलप्रद हो यदि काटेदार पर बनाये तो; घोर दुर्भिक्ष। यदि शरदऋतु में वृक्ष की पूर्व दिशा की टहनी पर घोंसला रक्खे तो सर्वप्रथम पश्चिम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिशा में वर्षा हो। यदि दक्षिण या उत्तर दिशा की टहनी पर रक्खे तो घोर वर्षा हो, यदि अग्नि कोण की ओर की टहनी पर बनाये तो क्षेत्रीय(मण्डल)वृष्टि हो। यदि नैऋत्य कोण की ओर की टहनीपर रक्खे तो शरत्कालीन खेती अच्छी हो। यदि ईशान कोण की ओर की टहनी पर रक्खे तो सुभिक्ष हो और यदि वायव्य कोण की पर घोंसला रक्खे तो चूहे टिड्डी आदि कृषिविनाशक जीवों का उपद्रव बढ़े। यदि किसी स्थान पर अकारण बहुत काकमण्डली एकत्रित होकर शब्द करे तो दुर्भिक्ष हो। यदि गोलाकार घूमे तो प्रकृति प्रकोप हो। यदि निर्भय होकर मनुष्य में चोंच मारे तो शत्रुओं का प्रकोप हो। यदि रात्रि में विचरन करें तो मनुष्यों, चौपायों में महामारी पड़े। यदि सुन्दर वृक्ष पर बोले तो आनन्दकर समझें।

इन सभी की उपर्युक्त *मन्त्रों तथा कां४।३३"अपनः शोशुचतथा"कां से होम तथा अभिमन्त्रित जलसे स्थान, व्यक्ति का मार्जन, स्नान कराकर पीली सरसों, देशी शक्कर, राल, लोहबान, भैंसागूगल, से धूप देनी चाहिये, रक्षोहण-गण मन्त्र से स्थान कीलकर रक्षा आवश्यक हितकर होती है।"

कां. ३ सू. २१ "ये अग्नयः"— इसके प्रथम ७ ऋचाओं से मांसभक्षक प्रेताग्नि दोष से नष्ट गृह, वंश, गोष्ठ, क्षेत्र, कुटुम्ब, धन, धान्य की शान्ति हेतु होम करें। रक्षामणि धारण करें। जप, उपस्थान, अभिमन्त्रित पावन जलों से अवसेचन, स्नान, पान, आचमनादि भी करें। ढ़ाकवृक्ष की मणि धारण करें। उसी के कटोरों में शमी, ढाक, इन्द्र जौ; कुशा, तिल, चावल, मुनक्का भरकर होम करें। इन दसों मन्त्रों से क्रव्यात् (प्रेताग्नि) दोष निवारणार्थ सत्तू, जल काम्पील की दो टहनियों से मथकर, उसमें घृत, मधु मिलाकर, पलाश के ही श्रुवा से, प्रत्येक मन्त्र से पृथक् पृथक् होम करें। इसी सूक्त से बन्ध्या गौ, या जो एक बार ही ब्याकर फिर ब्याना बन्द हो गया हो, उसे अभिमन्त्रित कर निजकुल कल्याणार्थ दान दें। वाटिका में जिसका फल न लगते हों तो उसे भी होम करने के उपरान्त की प्रथम आनेवाली सारे फलों को दान कर दें। इस प्रकार क्रव्यात् (प्रेताग्नि) जनित पारिवारिक गौ, घोड़ी, वाटिकादि का वन्ध्यात्व दोष शान्त होता है। (कां. ५।७) उस यज्ञ कर्मान्त में दिये गये बलि द्रव्य को यदि काक, कुत्ता, उलूक, चतुष्पाद् या पतित मनुष्यादि ले जावें तो उसके प्रायश्चित्तार्थ भी इन्हीं १० मंत्रों से पुनः घृत होम करे। यह इस कां.३।२१ के साथ 'नमो देवबन्धेभ्यो' (कां. ६।१३) भी है, जो वृहच्छान्ती गण, कर्मों में विहित हैं। कौ. १३।३१

"आवसथ्याधार्" मांसभक्षी क्रव्यादग्नि दोष निवारण करके घर आकर इन्हीं ७ मंत्रों से होम करें। इनमें अन्तर्धि०'(कां. १२ सू. २ में ४४) "प्रत्यञ्चमर्कम्" (कां १२ सू. २ मं.) तथा "येऽग्नय. (कां. ३।२१) 'नमो देववधेभ्यो' कां ६ सू. १३ भी विहित हैं। कौ. ६।४ इसमें "हिरण्यपाणिम्" कां. ३ सू. २९ मंत्र ८ भी हैं। उपर्युक्त सत्तुमन्थ का होम करें। "व्याकरोमि" (कां. १२ सू. २ मं. ३२) से गार्हपत्य क्रव्यादि का सांकल्पित पूजनादि कर 'अन्येभ्यस्त्वा' कां. १२ सू. २ मं. १६; हिरण्यपाणिम्' कां. ३ सू. २१ मं. ८, १० से शान्ति करने का विधान है। कौ. ६।८)

चतुर्मास (शारदीय) के साकमेध पर्व पर आतिथ्येष्टि के उपरान्त 'दिवंपृथिवीम्" (कां. ३ सू. २१ मं. ७) से अग्नि का उपस्थान करें। "उदस्य केतवः" कां. १३ सू. २ से आदित्य का उपस्थान करें। कौ. २।५

यह क्रव्यादग्नि, जहाँ रूष्ट होती है उस कुल में गर्भस्राव, गर्भपात, बाल, कुमार, युवाओं की असामयिक अर्थात् अपने से बड़ों के रहते कनिष्टों की मृत्युयें, विधवायें, वन्ध्यायें ही लगातार होती है। राजयक्ष्मावि व्याधियाँ, धन-धान्य, पशु, कृषि विनष्ट होते हैं। स्त्रियों के बाल खुले, अश्रुपात, करुणा-क्रन्दन ही एक पर एक; नई व्याधियों की झड़ी लगी रहती हैं। इसकी शान्ति अनिवार्य आवश्यक है।

अ. कां. ३ सू. २१ शान्तिः। १–१० वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्, १ पुरोनुष्टुप्; २, ३, ८ भुरिक्; ५ जगतीः ६उपरिष्टाद्विराड्बृहतीः ७विराड्गर्भा, ९निचृदनुष्टुप् १०अनुष्टुप्। उपर्युक्त कर्मषु तथा वृहच्छान्तिगण कर्मषु विनियोगः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये अ॒ग्नयो॑ अ॒प्स्व१॒॑न्तर्ये वृ॒त्रे ये पुरु॑षे॒ ये अश्म॑सु ।
य आ॑वि॒वेशौष॑धी॒र्यो वन॒स्पती॒ंस्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥१
यः सोमे॑ अ॒न्तर्यो गोष्व॒न्तर्य आवि॑ष्टो॒ वयः॑सु॒ यो मृ॒गेषु॑ ।
य आ॑वि॒वेश॑ द्वि॒पदो॒ यश्चतु॑ष्पद॒स्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥२
य इन्द्रे॑ण स॒रथं॒ याति॑ दे॒वो वै॑श्वान॒र उ॒त वि॑श्वदा॒व्य॑ः ।
यं जोह॑वीमि॒ पृत॑नासु सास॒हिं तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥३
यो दे॒वो वि॒श्वाद्यमु॒ काम॑मा॒हुर्यं दा॒तारं॑ प्रतिगृ॒ह्णन्त॑मा॒हुः ।
यो धीरः॑ श॒क्रः प॑रि॒भूरदा॑भ्य॒स्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥४
यं त्वा॒ होता॑रं॒ मन॑सा॒भि सं॑वि॒दुस्त्रयो॑दश भौव॒नाः पञ्च॑ मान॒वाः ।
व॒र्चो॒धसे॑ य॒शसे॑ सू॒नृता॑वते॒ तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥५
उ॒क्षान्ना॑य व॒शान्ना॑य॒ सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑ । वै॒श्वान॒रज्ये॑ष्ठेभ्य॒स्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्व॒तत् ॥६
दिवं॑ पृथि॒वीमन्व॒न्तरि॑क्षं॒ ये वि॒द्युत॑मनु॒सं॒चर॑न्ति ।
ये दि॒क्ष्व१॒॑न्तर्ये वाते॑ अ॒न्तस्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥७
हिर॑ण्यपाणिं सवि॒तार॒मिन्द्रं॒ बृह॒स्पतिं॒ वरु॑णं मि॒त्रम॒ग्निम् ।
विश्वा॑न्दे॒वानङ्गि॑रसो हवामह इ॒मं क्र॒व्यादं॑ शमयन्त्व॒ग्निम् ॥८
शा॒न्तो अ॒ग्निः क्र॒व्याच्छा॒न्तः पु॑रुष॒रेष॑णः । अथो॒ यो वि॑श्वदा॒व्य१॒॑स्तं क्र॒व्यादं॑मशीशमम् ॥९
ये पर्व॑ताः॒ सोम॑पृष्ठा॒ आप॑ उत्ता॒नशी॑वरीः । वातः॑ प॒र्जन्य॒ आद॒ग्निस्ते क्र॒व्याद॑मशीशमन् ॥१०

कां. ३ सू. २१— (१) 'येऽग्नेयो'' जो अग्नि [तेज], जल, मेघों, प्राणियों, शिलाओं, वनस्पतियों और औषधियों में है, उसकी प्रसन्नता हेतु यह 'आत्मयज्ञ' है। (२) जो तेज (अग्नि), सोम, गौ, पक्षी, मृग, पशु, द्विपाद और चतुष्पदों में अन्तर्निहित है, उसके लिये यह यज्ञ है। (३) सर्वसंहारक (दाहक) परन्तु सर्व सचालक यह देव जो रथारूढ़ इन्द्र के साथ भ्रमण करता है, जो संग्राम विजेता है, उसके लिये यह आत्म समर्पण यज्ञ है। (४) जो अग्नि विश्वभक्षक, 'काम' कहलाता है, जो दाता और प्रतिग्रहीता है, जोधीवान, सामर्थ्यवान, सर्बत्र गमनशील अदम्य है, उसके लिये आत्मसमर्पण यज्ञ है। (५) त्रयोदशभुवन क्षेत्र, और मानब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, अन्त्यज्यादि ५ जातियां इसी अग्नि को हृदय से दाता मानती है। तेजवान, सत्यनिष्ठ के प्रेरक यशोधन इस अग्नि के लिये, आत्मसमर्पण है। (६) जो सांड़ और गौ का अन्नदाता, पीठ पर औषधियों का वहन करता, सबका धारक, उत्पत्ति कर्त्ता मानव श्रेष्ठ उस अग्नि को आत्मसमर्पण है। (७) द्यु, अन्तरिक्ष, विद्युत, दिशायें, वायु आदि में व्याप्त अग्नि को आत्मसमर्पण है। (८) सविता, इन्द्र, वृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि और अङ्गिरस आदि समस्त देवों से हम विनय करते हैं कि वे सव देव इस मांसभक्षक प्रेताग्नि को शान्त करें। (९) यह मांसभोजी प्राणिनाशक, समस्त जगत्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का दहन कवनेवाली (प्रेताग्नि) शान्त हुई है, मैंने इसे शान्त किया है। (१०) सोमरसयुक्त औषधियों के धारणकर्त्ता पर्वतशिखर ऊर्ध्वगति प्रवाही, जल प्रवाह, वायु पर्जन्य तथा अग्नि ये समस्त देवगण, मांशभक्षक (प्रेताग्नि) को शमन करने में सहायता देते हैं।

कां. ३ सू. २५ "उत्तुदः" काम से विशेष उत्पीड़ित "स्वैरिणी" स्त्री के वशीकरणार्थ इसको मध्य निशा में जपें। स्त्री की, अनेको मिश्रित धान्य के आँटे में; चतुष्पाथ की मृत्तिका तथा श्मशान की मृत्तिका मिला कर एक प्रतिमा बनायें, पूर्ण शृङ्गार कर, प्राणप्रतिष्ठा कर जपकाल में सामने रक्खें। जप के साथ उसको उङ्गली से निर्देश वार २ करते जावें। २१ बेर के कांटे २१ सरफोंका एकत्रित करे, काले धागों से उनके शिर को लपेटें। प्रतिमा के शिर से स्पर्श करा कर, २१ वार घी में डुवाकर, गृहाग्नि में होम करें। इसी मन्त्र से स्त्री की चारपाई का स्पर्श कर, चारपाई के पास नीचे सोवें, इसे जपते रहे। उपर्युक्त प्रतिमा को तीन पाद के छींके पर लटका कर उस पर इस मन्त्र से, अभिमन्त्रित कर, गर्म जल ढालें (स्नान करायें) सोते समय अंगुष्ठ से प्रतिमा को मसलें (दवायें)। प्रतिमा के हृदय में बाण या शूल इसी से अभिमन्त्रित कर के बार-वार छेदें। कौ. ४।११

"प्लीहा रोग"—निवारणार्थ भी यही प्रक्रिया करें। कामसम्भोगान्त वड़े वेग से अतिप्रवृद्ध हो जाता है। उस स्थिति में कामातुर स्त्री के काम की तृप्ति न हो सकने पर प्लीहा जिगर बढ़ते हैं। मन्दाग्नि होकर गैस का रूप ले लेती है। उससे हृदय की घवराहट, दिल के दौरे और मस्तिष्कविकार होकर, अन्तडियोंमें गण्डमालायें (कैन्सर)बवासीर भगन्दर, अतिमूत्र, श्वेतप्रदर (मधुमेह), यक्ष्मरोगों का जन्म होता है। उसकी प्रथम कामाग्नि, द्वितीय प्लीहा को ही शान्त कर लेना हितकर हैं।

कुष्ठरोग—निवारण में भी इसी से मक्खन अभिमन्त्रित कर, घावों पर ३।४ बार चुपड़े और जङ्गली शुष्क गोमय (आन्नाकण्डा) की अग्नि से घावों को सेक दें।

अ. कां. ३ सू. २५ कामस्य इषुः। १–६ भृगुः। मित्रावरुणौ, कामेषुः। अनुष्टुप्। उपर्युक्त कर्मणि तथा वृहच्छान्तिगण कर्मणि विनियोगः।

उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे। इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥१

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम्। तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥२

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता। प्राचीनपक्षा व्योऽषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥३

शुचा विद्धा व्योऽषया शुष्कास्याभि सर्प मा। मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥४

आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः। यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥५

व्यऽस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम्। अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥६

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याऽणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥४४

प्रत्यश्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान्पन्थां वि ह्याऽविवेश।

परामीषामसून्दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥५५

भूमिष्ट्वा प्रतिं गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत्।

माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यंऽहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥३२
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥१६

"कामस्तदग्रे" (१६।५२); "कः इदं कस्माअदात्" (३।२६।७) "यदन्नम्" (६।७१) "पुनर्मैत्विन्द्रियम्" (७।६६) इनसे अभिमन्त्रित कर दाता यज्ञादि में देय पदार्थ दें और इनको जपते हुए प्रतिगृहीता-ग्रहण करें। इससे ग्राह्यग्राह्य प्रतिग्रहजनित दोष शमन होकर कल्याणकारी हो जाता है। (नान्दीश्राद्ध के साथ, प्रथम अध्याय में भी उल्लेख है।)

१-५ ब्रह्मा। कामः। त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा उष्णिक्, ५ उपरिष्टाद् वृहती।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वऽः ॥३
कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि । यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥४
यत् काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५

(६।४७) "अग्निः प्रातः सवने" तथा "श्येनोऽसि" (६।४८) "यथा सोमः प्रातः सवने" (६।१-११) से तीनों सवन (सन्ध्या) की समाप्ति में होम करें (वै० ३।११)

'श्येनोऽसि'[१] (६।४८) इससे यज्ञोपवीत कर ब्रह्मचारी को आचार्य अभिमन्त्रित कर "पलाश" का दण्ड धारण करने को दें और ब्रह्मचारी भी इसे जपता हुआ दण्ड ग्रहण करें। (कौ० ७।६) इसी ऋचा से अभय प्राप्ति निमित्त सप्त ऋषियों का जप, होम, उपस्थान करें। [कौ० ७-१०]

कां.६-४७ अङ्गिराः प्रचेताः। १ अग्निः, २ विश्वदेवाः, सुधन्वा। त्रिष्टुप्। (छन्दांसिमेधाजनने, वर्चस कर्माणि आतरग्निरं ३।१६ "यथासोम प्रातः सवने" ६।१ मं. १२–२४ पर्यन्त "गिरावरगराटेषु" (६।६६) दिव स्प्टार्थव्या (६।१) सोमयागे बृहच्छान्तिगणकर्मणि त्रिकालहोमे उपस्थाने च विनियोगः।)

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥१
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्वऽरानशानाः स्विऽष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥३

"कालादाप्" (१९-५४) "कालोऽश्वोवहति" (१९-५३) तथा "सहस्रवाहु" (१९-६) इन अर्थसूक्तों से आज्य होम कर स्वर्ण-भूमि-प्रतिमा आदि दान करें। (पृ० १०-१) "सहस्रवाहु" अ. २ प्रधानदेवता पूजन में पढ़ें।

कां० १९-५४ भृगुः। कालः। अनुष्टुप्। त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री। ५ त्र्यवसानाषट्पदाविराऽष्टिः।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः। कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥१
कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही। द्यौर्मही काल आहिता ॥२
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा। कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥३
कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमक्षितम्। काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥४
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः।
सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥५

कां. ३ सू. १० "प्रथमाहव्युवास" इस पूरे सूक्त से समस्त शान्ति, पुष्टि, कार्यों में ही थी, शाकल्यादि से होम करें, बलि द्रव्यों से ३।३ बार होम करें। यह अष्टका कर्म के लिये है। ऐसे ही नौ बार सूक्त पढ़ें। माघ कृष्णा अष्टमी को ही "अष्टका" कहा गया है। यथा—

या माघ्या, पौर्णमास्या उपरिष्ठाद् द्व्यष्टकातस्यामष्टमी ज्येष्ठया सम्पद्यते। तामेकाष्टकेत्याचक्षते।
(आप० गृ० २१)

उसमें उपर्युक्त कर्म करे। उसमें पञ्जीरी, पूड़ी, अपूप, दही, खीर, मोहनभोग आदि-आदि का पूजनान्त भोग लगायें। होम करें तथा होम से पूर्व मधुपर्क, घी, मधु, दही विधिवत आमन्त्रित कर भोग लगायें। उपर्युक्त पदार्थों को पृथक्-पृथक् इक्कीस भागों में विभक्त करें। गौ के दायें ओर के रोमों से नीचे के खुर को धोकर जल रख लें। इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा से आहुतियाँ दें। क्रम इस प्रकार है। "आयमगन्त्संवत्सरः" मं. ८ व ९ ये दो "इडयाजुह्वतोवयम्" मं. ११ व १२ ये दो, "प्रथमाहव्युवासः" (कां. ३ सू. १९ मं १ से ५ तक) इस प्रकार नौ मन्त्रों से ९ पिण्डों की आहुतियाँ दें। 'ऋतुभ्यस्ता" कां. ३ सू. १० मं. १० से "ऋतुभ्यष्ट्वा यजे स्वाहा; आर्तवेभ्य स्त्वायजेस्वाहा" इस प्रकार सानुचर आठ स्थानों में विभाजित मन्त्रों से ८ पिण्डों का होम करे। "इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे" कां. ३ सू. १० मं. १३ इस अन्तिम ऋचा से १८वीं का होम करे। "अहोरात्राभ्यां त्वायजेस्वाहा" (कौ. १४।२) इस सौत्र मंत्र से १९वीं का होम करे। इडायास्पदम्" कां. ३।१० मं. ६ से एक "आमापुष्टे च" कां. ३ सू. १० म. ७ से दूसरी, इन दोनों से पशु की दक्षिणवाहु, बीसवीं का होम करें। "पूर्णादर्वि" कां. ३ सू. १० मं. ७ इसके प्रथम अर्ध को छोड़ दें। इससे आगे की अर्द्ध से २१वीं पिण्डी को होम करें। तथा उपर्युक्त पूरी आदि भक्ष्य पदार्थों को भोग लगायें, बलि वैश्वदेव करके "प्रथमा हव्युवासः" इस पूरे ही सूक्त मन्त्रों से पुनः ३ आहुतियाँ दें। इस प्रकार शान्ति पुष्ट्यर्थ "अष्टका पूजन विधि है। (कौ. ३।२) यह विशेष पूजा क्रम है। नित्य अष्टका क्रम में आदि; अन्त के सूक्त होम को छोड़, पूर्वोक्त ऋचाओं से २१ आहुतियाँ दें। कौ. १४।२ सोमयाग में सोमक्रयणी पद होम "इडायास्पदम्" कां ३।१० मं. ६ से करें (वै. सू. ३।३ कार्तिकी पर साकमेधयाग में "पूर्णादर्वि" कां. ३ सू. १० मं. ७ से होम करें। (वै. सू. २।५)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ३ सू. १० रायस्पोषप्राप्तिः । १-१३ अथर्वा । अष्टका, १ धेनुः. २-४ रात्रिः, धेनुः; ५ एकाष्टका, ६ जातवेदाः, पशवः; ७ रात्रिः, यज्ञाः; ८ सवत्सरः, ९ ऋतवः, १० धाताविधातारौ, ऋतवः; ११ देवाः, १२ इन्द्रः, देवाः १३ प्रजापतिः । अनुष्टुप्, ४-६, १२ त्रिष्टुप्, ७ त्र्यवसाना षट्पदा विराड्गर्भातिजगती ।

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद् यमे । सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥१

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् । संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥२

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥३

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥४

वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५

इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥६

आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत । सर्वान्यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥७

आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥८

ऋतून्यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् । समाः संवत्सरान्मासान्भूतस्य पतये यजे ॥९

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः । धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥१०

इडया जुह्वतो वयं देवान्घृतवता यजे । गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥११

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून्हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥१२

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः । कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥१३

अ. कां. १९ सू. ५३ कालः । १–१० भृगुः । काल; । अनुष्टुप्; १–४ त्रिष्टुप्; ५ निचृत् पुरस्ताद्बृहती ।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२
पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योऽमन् ॥३
स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥४
कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत । काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥५
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः । काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥६
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥७
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् । कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥८
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् । कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥६
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् । स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥१०

कां. ३ सू. १० "प्रथमाह" १—काल की विवरण ग्रंथ में प्रथम अध्याय में उल्लिखित है :— **अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः** ।। योग दर्शन के यम (नियमों) के अन्तर्गत प्रथम "उषा" की बेला का प्रादुर्भाव हुआ । नियम पालकों के लिये यह कामधेनु के तुल्य 'अमृत'रस प्रदायिनी है। इस हेतु यह भविष्य में भी अमृतरस प्रवाहित रहे, यह कामना और प्रार्थना की जाती है। (२) आनेवाली इस रात्रिरूप कामधेनु को देख देवगण हर्षित होते हैं। वह सम्वत्सर की पत्निरूप उत्तम वेला हमारे लिये मंगलप्रदा हो । (३) यह रात्रि सवत्सर की प्रतिमारूप है । हम इसकी आराधना करते हैं । यह हमारी दीर्घायु पुण्यवाली सन्ततियों को धन, बल से पुष्ट करे। (४) यह वही वेला है जो प्रथम प्रगट हुई और सभी से सम्पृक्त होकर चलनी है । इसमें अनेकों विचित्र महत्वपूर्ण शक्तिय हैं। यह वीर प्रसूता बधू की भाँति कुलगौरववर्द्धिनी, विजय दात्री है । (५) आज सांवत्सरिक यज्ञ सामग्री निर्माता, पाषाण, सोमरस निकालने को, काष्ठयन्त्र के साथ उद्घोष कर रहे हैं । हे एकाष्टके ! हम उत्तम सन्ततिवान्, धनी वीरों वाले हों । (६) हे जातवेद ! गोघृतयुक्त श्रवणशील हव्य को आप ग्रहण कीजिये । ग्रामीण विविध रङ्ग-रूप वाले पशु, स्नेहयुक्त मेरे यहाँ सदैव रहें । (७) हे रात्रि ! हमें सुपुष्टि और शक्ति सम्पन्न बना देवों की कल्याणमयी प्रेरणायें हमारी सहायक होती रहें। हे चमस! तू घी से परिपूर्ण हो आंहुति के लिये अग्रसर हो, वहाँ (यज्ञ) की दैवीशक्ति से सम्पन्न होकर, हमारे निकट आकर हमें विपुल अन्नादि भोज्य पदार्थ बल प्रदान कर। (८) हे एकाष्टके ! यह सम्वत्सर तेरा पति होकर आया है। हमारी सन्ततियों को आयुष्यवान, धनी, बलवती बना। (६) १२मास, ६ऋतुयें, शीत, उष्ण,वर्षा ऋतुयें, उत्तरायण, दक्षिणायन, "हायनकपी तीस दिनों की समा" ३६० दिन का वर्ष, ३६५ दिन का सम्वत्सर, सौरवर्ष, ३५४ दिन का चान्द्र वर्ष तया उसमें १३ वाँ "पुरुषोत्तम मास" वाले अपना जीवनकाल को रूपयज्ञ की पूर्णाहुति प्रजापालक, प्रजारत प्रजापति को समर्पण करता हूँ। वे दुष्टदलन, सन्तपालक हैं। उनको तन, मन, धन अर्पण कर "आत्मयज्ञ" सम्पन्न करता हूँ। (१०) धारक, निर्माता, प्रजापालक के लिये आतमसमर्पण कर्त्ता, लोकोत्तर, दिव्यपुरुष सर्वत्र बन्दनीय होते हैं। (११) मैं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरन्तर गोघृत से देवयजन करके, निज गृह प्रवेश करता हूं। हमारे यहां वहुदोग्ध्री गौयें निरन्तर रहें, कभी किसी का अभाव न हो, न हमारे यहां कृपणता ही रहे। (१२) हे एकाष्ठके ! हे अहोरात्रे ! तुमने तपश्चर्या से, अत्यन्त ओजस्वी (इन्द्ररूप) गर्भधारण कर 'सूर्यरूपी' प्रकाशमान पुत्र को प्रगटकर निशान्धकाररूपा निशाचरों को दूर भगाया। वही तेजोमय ब्रह्म शत्रुदलन है। हे इन्द्र (सूर्य) जननी ! हे सोम जनित्री ! हे अहोरात्रे ! तुम प्रजापति (काल) की पुत्री, इस काल यज्ञ में, आत्मसमर्पणरूप पूर्णाहुति हवि को स्वीकार करो और हमारी समस्त कामनायें पूर्ण करो।

भावार्थ :—स्वयं ज्ञान प्राप्त कर अन्यों को प्रकाश दें। कलानिधि चन्द्र के तुल्य कलाकार शान्तिजीवन रसप्रदाता बनकर उन्नत हों। सूर्य के तुल्य ज्ञान, तेज प्रदान कर, लोक [illegible] करें। देवियां भी ऐसे ही पुत्र को जन्म देकर जीवन सफल, सुधन्य बनायें।

कां० १९।५५ १-६ भृगु। अग्निः। त्रिष्टुप्, २ आस्तारपंक्तिः [illegible] ५ अवसानापञ्चपदापुरस्ताज्योतिष्मती-छन्दांसि। वृहच्छान्तिगण। स्वस्त्ययनगण कर्मणि विनियोगः।

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै [illegible]।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्र[illegible] रिषाम ॥१
या ते वसोर्वात इषुः सा तं एषा त[illegible] मृड।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते [illegible]तिवेशा रिषाम ॥२
सायंसायं गृहपतिर्नो अ[illegible] प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसो[illegible] एधि [illegible] त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥३
प्रातःप्रात[illegible]पतिर्नो [illegible] सायंसायं सौमनस्य दाता।
व[illegible] एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥४
[illegible] द[illegible]न्नस्य भूयासम्। अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये।
स[illegible] सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥५
[illegible]मिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत्।
अहरहर्बलिमित् ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥६

अथ प्राणविद्या, संजीवन विद्या, ब्रह्मविद्या, ज्ञानकवच :—

अथर्व कां. ११ सूक्त ४ में, प्राणविषयक, गहन, अद्भुत, ज्ञान का निर्देश किया जाता है। [illegible] दैवी चिकित्सा" में विषय प्रवेश पृष्ठ ६३ से ८० पर्यन्त उल्लेख है। प्राण क्या है ? कहा से उ[illegible] पर, कैसे स्थित है ? लौकिक पारलौकिक हित साधना में कैसे प्रयोग किया जाय ? आदि का मौलि[illegible] [illegible]रगर्भित ज्ञान ही "प्राणविद्या" है। इसे इस प्रकार समझना उपयुक्त होगा। यह श्रुति, स्मृति वेद सम्मत [illegible] ब्रह्माण्ड तत्वों से उत्पन्न, तत्वों से ही परिपालन और तत्वों में लय होता है। माया रहित ज्ञानस्वरुप, [illegible] [illegible]राकार स्वरूप ही ज्येष्ठ ब्रह्म, परमेश्वर है। उससे आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से [illegible] [illegible]थ्वी ये पांच सूक्ष्म तत्व उत्पन्न हुए हैं। इन पांचों मे प्रत्येक पांच, पांच भेदों वाला है। जो सब प[illegible] ब्रह्माण्ड

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की उत्पत्ति, परिपालन और लय होकर, इन्हीं में अतिसूक्ष्म से बना रहता है। (हंसः; सोऽहं) जो त्रिकाल भूत, भविष्यत वर्त्तमान के ज्ञान कराने वाले शरीर में व्याप्त, आकारादि स्वर हैं। इन स्वरों में ही वेदत्रयी और त्रिलोकी है, स्वर ही (परमात्मा, आत्मा, जीवात्मा स्वरूप है)। अ.कां. ४।१४।१)।। हि अग्ने शोकात् अजः अजनिष्ठ) इसी विश्व प्रकाश तेज से अजन्मा जीवात्मा प्रगट हुआ है। (कां. ७ सू. २-१) विषय प्रवेश में देखें। कां. ७ सू.४ यह प्राण, नाड़ी इसी के भेद हैं। स्वर के रचे ब्रह्माण्ड, खण्ड और पिण्ड हैं। स्वरोदय में तिथि, नक्षत्र, वार और देवता, भद्रा, व्यतिपात आदि का दोष नहीं है।

नाभिस्थान के केन्द्र के ऊपर अंकुर जैसी ७२००० हजार नाड़ियां हैं। नाड़ी में सर्पाकार सोतीहुई कुण्डलिनी शक्ति है। उससे ऊपर दस और नीचे भी दस नाड़ियां मुख्य हैं। २ दो नाड़ी तिरछी गई हैं। ये २४ नाड़ी हैं, प्रधान इनमें दस हैं और दस ही वायु को प्रवाहित करती हैं। इनमें तिरछी ऊपर नीचे स्थित और वायु, और देह के आश्रित सब नाड़ी देह में चक्र के तुल्य और प्राण के आधीन हैं। उनमें दस और दस में से तीन ही श्रेष्ठ हैं। १ इड़ा, २ पिंगला ३ सुषुम्ना, ४ गान्धारी ५ हस्तिजिह्वा ६ पूषा ७ यशस्विनी, ८ अलम्बुषा ९ कुहू और १० शंखिनी कहलाती है। इड़ा वाम भाग में, पिंगला दक्षिण भाग में, सुषुम्ना मध्य भाग में, गान्धारी वाम नेत्र में, हस्तिजिह्वा दक्षिण नेत्र में, पूषा दक्षिण कर्ण में, यशस्विनी वामकर्ण मे, अलम्बुषा मुख मे, कुहु लिंग में और शंखिनी गुदा में अर्थात् शरीर के दस द्वारों में दस नाड़ियाँ हैं। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्राणमार्ग मे स्थित हैं। इन दस नाड़ियों के आश्रित १० प्राणवायु हैं। १ प्राण, २ अपान, ३ समान, ४ उदान, ५ ब्यान, ६ नाग, ७ कूर्म, ८ कृकल, ९ देवदत्त और १० धनञ्जय हैं। इनमें प्राणवायु हृदय में और २ अपान गुदा में है। ३ समान, नाभि में ४ उदान कण्ठप्रदेश में, ५ व्यान शरीर में व्याप्त है। ५ प्राणादि आर ५ नागादि हैं। ६ उगलने में नाग ७ नेत्रोन्मीलन में, कूर्म, ८ छींकने में कृकल, जम्भाई में देवदत्त और [illegible] शरीर व्यापी १० धनञ्जय है। जो मृत्यु हो जाने पर भी नहीं त्यागता है। जीवरूपी ये १० वायुनाड़ियों में वहती हैं। देह में प्रगट प्राणसचारी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ही हैं। शरीर के वाम भाग में इड़ा, दक्षिण भाग में पिंगला है। इड़ा में चन्द्रमा, पिंगला में सूर्य और सुषुम्ना (हसरूप) रूप में स्थित है। स्वर के निकलने, [बाहर जाने] में "हकार" [illegible] (भीतर जाने में) "सकार" समझें। वामनाड़ी "इड़ा" का वाहक "चन्द्रमा" दक्षिण नाड़ी (पिंगला) का वाहक [illegible] है। जब श्वास (सकार में) अन्दर हो, उस समय का दान जपादि सभी कोटिगुण फलप्रद होता है। प्राणवेत्ता [illegible] तथा इन्द्रियगण को सब ओर से खींचकर एकाग्रचित्त से तत्व का भान करें। अस्थिर चित्त में कदापि न करें। [illegible] स्वरों के सफलसाधक भूत, भविष्यत् सभी का ज्ञान करें। वामभाग की नाड़ी (इड़ा) चन्द्रमा से प्राप्त अमृतरूप [illegible]पक और दक्षिण की (पिंगला) विश्व स्रष्टा है। मध्यमा (सुषुम्ना) क्रूरा संपूर्ण कार्यविनाशिनी तथा (इड़ा) [illegible] सम्पूर्ण शुभ कार्य सिद्ध प्रदायनी है। यह इड़ा गमन में, और प्रवेश में पिंगला शुभ होती है। (इड़ा) सम, [illegible] विषम, (इड़ा) स्त्री, (पिंगला) पुरुष, चन्द्र, गौरवर्ण, सूर्य कृष्णवर्ण हैं। चन्द्र (इड़ा) के प्रवाह में सभी शान्ति [illegible] और सूर्य (पिंगला) के प्रवाह में भीषण (उग्र) युद्ध, वाद, मारण, उच्चाटन, सम्मोहन, विद्वेषण, अभिचा[illegible] सुषुम्ना में समस्त भोग और भुक्तिप्रद कार्य करें। शुक्लपक्ष प्रारम्भ से प्रथम चन्द्रस्वर, कृष्णपक्ष में प्रथम [illegible] स्वर [illegible] है। ये प्रतिपदा से तीन दिन क्रमशः चन्द्र और सूर्यस्वर बलवान रहते हैं। ये क्रमशः चन्द्रमा शुक्ल में [illegible] तदनन्तर सूर्य, फिर चन्द्र, फिर सूर्य, इसी क्रम से १।१ घंटे से २४ घंटों में बहते हैं। इसी प्रका[illegible] प्रथम सूर्य, फिर चन्द्र, फिर सूर्य १।१ घंटे के हिसाव से वहते हैं। इन्हीं प्रत्येक २।। घड़ी (१ घंटे) [illegible]। उपर्युक्त शुक्ल और कृष्ण के नियमित चन्द्र और सूर्य स्वरों के विपरीत; चन्द्र में सूर्य और [illegible] तो उन्हें रोकें, बदलें अन्यथा अशुभ होते हैं। प्राणवेत्ता शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से प्रथम वाम, कृष्ण पक्ष में [illegible] स्वर को एकाग्र अन्तःकरण से समझें। यदि रात्रि में चन्द्र और दिन में सूर्य वहें तो उन्हें बचकर ठीक कर[illegible] दिन में सूर्यस्वर को मध्य सूर्य से, रात्रि में चन्द्र से ही चन्द्रस्वर को रोके। इसके द्वारा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वशीकरण में सफल होते हैं। यदि चन्द्र के स्वर में सूर्य का उदय हो, और सूर्य के स्वर में अस्त हो, तो अनेक भाँति से लाभप्रद है, परन्तु उलटा हो तो वर्ज दें। गुरु, शुक्र, बुध, सोमवारों में बाम, और शुक्ल पक्ष में हो तो अत्यन्त लाभप्रद होता है। कृष्ण पक्ष रवि, मगल, शनिवारों में सूर्य दक्षिणस्वर अत्युत्तम होता है।

तत्वविवेचन—(१) हर तत्व में प्रथम वायुतत्व, (२) द्वितीयबार अग्नितत्व, (३) तृतीयबार भूमितत्व, (४) चौथीबार वरुणतत्व और पांचवीबार आकाशतत्व बहते हैं। ये १ घण्टे में क्रमशः १२।१२ मिनट बहते हैं। इन एक, एक नाड़ी में भी, क्रम से ५।५ तत्व उदय होते हैं।

संक्रान्ति—रात्रि और दिन के मध्य, चन्द्र और सूर्य की १२ संक्रान्ति होती हैं। उनमें वृष, कर्क कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन, चन्द्र की संक्रान्ति होती हैं। सूर्य की मेष, सिंह, कुम्भ, तुला, मिथुन और धन होती हैं।

दिशा—चन्द्रमा पूर्व उत्तर में, सूर्य की पश्चिम, दक्षिण समझें। सूर्य (दक्षिणनाडी) में दक्षिण पश्चिम यात्रा में कदापि न जावे। वाम (चन्द्र) नाड़ी के प्रवाह में पूर्व, उत्तर न जावे, अन्यथा शत्रुभय, मृत्युवत, संकट, मृत्युप्रद होते हैं। यदि शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन; सूर्य के प्रवाह में चन्द्र वहे; तो लाभप्रद, यदि उसमें सौम्य, शान्ति, पुष्टि, अभ्युदय कार्य किये जावें, तो महान सौख्यप्रद समझे। यदि सूर्य के स्वर में सूर्य, चन्द्र में चन्द्र वहें, तो दिवारात्रि में किये गये; सभी कर्म सिद्ध होते हैं। यदि चन्द्र में सूर्य और सूर्य में चन्द्र वहें, उस समय के कृतकार्य, उद्वेग, कलह, हानि, पराजय, अनिष्टप्रद होते हैं। इन सूर्य, चन्द्र के विपरीत प्रवाहों में; अगम्य कदापि न देखें, न सुनें, न करें।

विपरीत लक्षण—जब प्रातःकाल से ही, विपरीत चन्द्र में सूर्य, सूर्य में चन्द्र वहे, तो पहिले में मनोद्वेग, दूसरे में धन हानि, तीसरे में व्यर्थ गमन, चौथे में कार्यनाश, पांचवें में राज्यध्वंस, छठवें सर्वार्थ नाश, सातवें व्याधि क्लेश, आठवें मृत्यु समझें। जब प्रातः और मध्याह्न में चन्द्र, सायं सूर्य वहै, तो जय लाभ; विपरीत हों तो, अनिष्टफलप्रद होता है।

यात्रा विधि—यात्राकाल में वायां या दायां, जो भी स्वर वहै; उस समय दायें से तीन वायें से ४ पद, बहने वाले स्वर की ओर के स्वांस को ऊपर चढ़ाकर पूर्णपाद आगे चले तो यात्रा सिद्धिप्रद होती है। सोने के उपरान्त उठने से पूर्व, जो स्वर वहै उसी ओर स्वर के अङ्ग के हाथ से, स्वांस ऊपर चढ़ा परिक्रमा क्रम से, शिर का मुख से शिखा पर्यन्त, मुखमण्डल का हथेली से स्पर्श करता हुआ, मुख से चुम्बन करे, तो अभीष्ट लाभ हो।

दानादिविधि—दूसरे को दान देने या लेने या गमन में, बहते अङ्ग की नाड़ी के हाथ और पैर को आगे करके ग्रहण आदि यात्रा करे तो न तो हानि हो, न कलह, न संकट, न शत्रुभय, न विषभय ही होगा, वह सर्वदा सुखी, निरुपद्रव रहता है। इसी क्रम से, हाथ में, पत्र, पुष्प, फलादि लेकर गुरु, योगी, राजा, मन्त्री, सिद्ध, वैद्य, दैवज्ञ, वेद-विद, न्यायाधीश देव, दर्शन या भेट करे, तो अभीष्ट लाभप्रद होता है। यदि अग्निदाह, चौरकर्म, मारण, उच्चाटनादि अधर्म कर्म रिक्त हाथ से करे, तो जय-सुखप्रद होता है।

यात्रा—दूर की हो तो चन्द्र समीप में सूर्य स्वर ठीक है। जल्दी के कार्य चन्द्र से, स्थाई कार्य सूर्य में करें। पीने के पदार्थ चन्द्र में, खाने के सूर्य में, ये सब युद्धादि में पूर्ण स्वर के वहने पर ही अभीष्ट लाभप्रद होते हैं। यदि शून्य या विपरीत नाड़ी वहे तो; उलटा फल हो। व्यवहार, दुष्टजन उच्चाटन, द्वेषी, विद्यादि के ठगने, स्वामी प्रकोप, चौर-कर्मादि में, पूर्ण स्वर नष्ट करने वाला है। दूरगमन में, चन्द्र स्वर निश्चय शुभ निर्विघ्नताप्रद है। प्रवेशकाल में सूर्यनाड़ी शुभ है। चन्द्र स्वर में अपराधी के अपराध को और सूर्य स्वर में बलवान को वश करने में सुषुम्ना, भुक्ति, मुक्तिप्रद होते हैं।

इडा के कर्म—स्थिर सभी कर्म, भूषणक्रय, भूषण धारण, दूर गमन, आश्रम मन्दिर, घर की वस्तु संग्रह, वावड़ी, कूंप, तालाब, देव, स्तम्भ प्रतिष्ठा, यात्रा, दान, विवाह, वस्त्र, अलंकार, आभूषण शान्ति, पुष्टि, दिव्यौषधि,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वामी, मित्रदर्शन, अन्नसंग्रह, गृहप्रवेश, सेवा, कृषि, बीज बोने, मेल और गमन शुभप्रद हैं। विद्यारम्भ, वान्धवादि दर्शन, जन्म, मोक्ष, कर्म, योग, यज्ञ, मन्त्रसिद्धि, काल ज्ञान, सूत्र, चतुष्पाद के गृह आगमन में विष, काल व्याधि चिकित्सा, स्वामी के बुलाने में हाथी अश्व सवारी में, हस्ति, अश्वबन्धन, परोपकार, कोषसंग्रह, गीत, वादन, नृत्यशास्त्र विज्ञान, पुर, ग्राम प्रवेश, राजतिलक, क्षेत्र अधिकार प्राप्ति में चन्द्रनाड़ी शुभ होती है। रोग, शोक, उदासी, ज्वर, पीड़ा, मूर्च्छा, अपने जन और स्वामी अन्न, लकड़ी संग्रह, स्त्री के दन्तभूषण, वृष्टि आगमन, गुरु पूजा, विषादि निकालना और योग, क्षेम शुभ होते हैं परन्तु चन्द्रस्वर में वायु और आकाश तत्व त्याज्य हैं। इडा के दिन और रात्रि के सभी शुभकार्य उत्तम होते हैं।

पिंगलाकर्म—कठिन, क्रूर, मारणा, छेदन, भेदन, उच्चाटन सम्मोहन, वशीकरणादि, विद्याओं का पठन-पाठन, स्त्रीसंग, वेश्या गमन, नौका या यान पर चढ़ने में भ्रष्ट कार्य, सुरापान, वीरमन्त्रादि की उपासना, व्याकुलता देश, ग्रामध्वंस, शत्रु संहार या शत्रु को विष देना, शास्त्राभ्यास, गमन, आखेट, पशुविक्रय, काष्ठ, पाषाण, रत्न का घिसना, तोड़ना, गमन का अभ्यास, यन्त्र, तन्त्र, किला, पर्वतादि का चढ़ना, जुआ, चोरी, हाथी, रथ, अश्व, ऊंट की सवारी या साधना, व्यायाम, यक्षिणी, वैताल-पिशाच, विष आदि का निग्रह (वन्द दूर करना) नदी पार करना, औषध बनाना या औषध करना, लीपनादि, लिखनादि सभी अभिचार कर्म प्रेरित करना, कृषि करना, क्षोभ, दान लेना या देना, प्रेत का बुलाना, शत्रुनिग्रह, शस्त्र उठाना, शत्रु से संग्राम करना, भोग, राजा से साक्षात्कार, भोजन स्नान, व्यवहार, प्रकाशन, प्रकाशितादि, भोजन द्वारा मन्दाग्नि करना, स्त्रियों का वशीकरण, सोना, सम्पूर्ण क्रूर कर्म, विविध भांति के चरकर्म आदि सब सूर्यनाड़ी (पिंगला) में सिद्ध होते।

सुषुम्ना कार्य—जब प्राणवायु क्षणभर दांया, क्षणभर बांया चले वह सुषुम्ना (कुम्भक) होता है, इस समय के सारे कार्य नष्ट होते हैं। उस नाड़ी में टिकी हुई (स्थापित अग्नि, कालरूप, विषाग्नि, सर्व कार्य विनाशिनी होती है। अपने स्वाभाविक क्रम का, उल्लङ्घन करके, जब सुषुम्ना वहें, तब निश्चय से ही अशुभ होती हैं। सुषुम्ना नाड़ी का संचार, विषाक्त सभी सौम्य और क्रूरकर्मों को नष्ट करती है। जीवन-मरण (प्रश्न) लाभालाभ, जय-पराजय विषम, विपरीत स्वर के चलने में वर्जित हैं। केवल ध्यान, जपादि योगाभ्यास, समाधि लगाना, समाधि लेना, हितकर होता है। सूर्य की नाड़ी (सुषुम्ना) में दिये वरदान या शाप भी विपरीत ही होते हैं इड़ा पिंगला की सन्धि, सुषुम्ना या तत्वों के सन्धिकाल के सभी शुभ, पुण्य, दान आदि त्याज्य हैं। विपरीत (सुषुम्ना) स्वर या तत्वों में किसी कार्य अन्य कार्य या यात्रा का संकल्प ही, न करे अन्यथा क्लेश, हानि, द्रोह, मृत्युप्रद होता है। जब प्रथम वामस्वर, तदनन्तर चन्द्रस्वर और उसके उपरान्त दक्षिण, सूर्यस्वर का उदय हो, ये दोनों क्रम पूर्ण और रिक्त (खाली) समझें। वामस्वर से पीछे या पहिले, आता हुआ दूत, वाम भाग में स्थित हो और दक्षिणस्वर के पीछे या पूर्व; आता हुआ दूत दक्षिण भाग में स्थित होय, तो शुभ होता है। एक रस वहती (सुषुम्ना) से, ब्रह्म की प्राप्ति होना ही सन्ध्या है। वेद वेद नहीं, परब्रह्म की प्राप्ति का, साधनभूत ज्ञान ही, वेद है। सन्ध्या, सन्धि नहीं है, अपितु जब विषम सन्धि में प्राण हो, वही सन्धि है।

नाड़ीभेद—स्वर ज्ञान रहस्य ही परम इष्टदेव है, जो योगी स्वर ज्ञानरत हैं वे ही परमयोगी हैं। सृष्टि पांच तत्वों से उत्पन्न और तत्वों में ही लय होती है। परमतत्व पांच ही हैं, ब्रह्म इन तत्वों से परे है। योगियों को सिद्धि के योग में तत्वों के नाम, रूप, गुण समझना आवश्यक है। उत्तम स्वरज्ञाता सब प्राणियों के, दुष्ट लक्षणों को जान लेते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पञ्चभूतात्मक विश्व का ज्ञाता पूज्य है। भूलोक से सत्यलोक पर्यन्त, सभी सूक्ष्म स्थूल शरीरधारी जीवों की पृथक् २ नाड़ीभेद हैं, "देह भिन्न २ तत्व स्वरूप नहीं हैं।" वामभाग या दक्षिण भाग में पांच २ उदय होते हैं। उनके आठ प्रकार होते हैं। [१] तत्वों की गिनती [२] श्वास की सन्धि [३] स्वरों के चिह्न [४] स्वरों के स्थान [५] तत्वों के रङ्ग [६] प्राण [७] स्वाद और [८] गति के लक्षण प्रातःकाल से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरन्तर स्वर के समझें। योगीजन कालक्षेपमात्र के लिये ही, कर्म करते हैं, वे स्वर और तत्वों को भलीभांति जानते हैं।

तत्वस्वरूपज्ञानविधि—दोनों कानों में, दोनों अंगूठे, दोनों नाक के छिद्रों में, मध्यमा अंगुलियां, दोनों होठों के मेल में और नेत्रों में शेष अंगुली, अर्थात् दोनों नेत्रों में, दोनों तर्जनी और अनामिका और कनिष्ठिका मुख के अन्त में लगावें। तब पृथ्वी आदि तत्वों का ज्ञान करें।

तत्वों के रङ्ग—पृथिवी का पीत, जल का श्वेत, तेज (अग्नि) का लाल, वायु का श्याम और आकाश का चित्रवर्ण विन्दुओं जैसा प्रतीत होता है। उस समय दर्पण में मुख देखता रहे, श्वांस छोड़ता रहे, आकार देखकर तत्व के भेद को समझें।

तत्वों के आकार—उपर्युक्त रीति से, नेत्रों के आगे बिन्दुओं के रूप में १. चौकोर (पृथ्वीतत्व) २. अर्द्धचन्द्राकार (जलतत्व) ३. त्रिकोण (अग्नितत्व) ४. गोल (वायु) और ५. बिन्दु जैसा आकाश का आकार समझें।

तत्वों का स्थान—मध्य में पृथ्वी, नीचे जल, ऊपर अग्नि, तिरछी वायु. दोनों स्वरों का संक्रमण, आकाशतत्व होता है।

तत्वों के वर्ण—जलों का श्वेतवर्ण पृथ्वी का पीतवर्ण, अग्नि (रक्त) पवन (नील और आकाश समस्त वर्णरूप होते हैं।

स्थान परतत्व से तत्वज्ञान—दोनों कन्धों पर (अग्नि), नाभिमूल में (पवन), गोड़ों में (पृथ्वी), चरण के अन्त में (जल) और मस्तक में (आकाशतत्व) का स्थान है।

स्वाद में तत्वज्ञान—पृथ्वी (मीठा), जल (खारा), अग्नि (तीखा), पवन (अम्ल) और आकाश (कड़वा) होता है।

गति से तत्वज्ञान और कर्म—वायु ८ अंगुल, पवन ४ अंगुल, पृथ्वी १२ अंगुल, जल १६ अंगुल। ऊर्ध्व स्वर चले, तो मृत्यु. नीचा चले तो शान्ति तिरछा चले, तो उच्चाटन मध्य चले, तो (स्तम्भन, रोकना) ये कर्म करें, आकाशतत्व सबमें मध्यम होता है। पृथ्वीतत्व में (स्थिर) जल में (चर) अग्नि में (क्रूर) पवन में मारण और उच्चाटन कर्म श्रेष्ठ रहते हैं। आकाश में कुछ न करें, परन्तु योगाभ्यास करना उत्तम होता है। पृथ्वी और जल से (सिद्धि) अग्नि में (मृत्यु) पवन में (नाश) और आकाश में सभी (निष्फल) होते हैं। पृथ्वीतत्व से अधिक लाभ, जल से तत्क्षण लाभ, वायु, अग्नि से हानि, आकाश से निष्फलता होती है।

पीतवर्ण—शनैः २, या मध्यम चलने वाला और ठोढ़ी पर्यन्त जिसका शब्द भारी हो और जो कुछ गर्मसा हो, ऐसे पृथ्वी सम्बन्धी वायुस्वर को; स्थिर सभी कर्मों में सिद्धिप्रद समझें। जो नीचे को वहे और जिसकी ध्वनि भारी हो, शीघ्र चले और जिसकी स्थिति शीतल हो, और जो १६ अंगुल हो, वह जल का स्वर सभी शान्ति, पुष्टि, अभ्युदय कार्यों में उत्तम होता है। जो भौंहों तक चले, अत्यन्त गर्म हो, लाल हो, चार अंगुल तक नासा से, चलता हो, ऊपर को चलता हो वह अग्नि स्वर है, सभी क्रूर अभिचारादि के लिये उत्तम होता है। जो शीतोष्ण और कृष्णवर्ण हो, तिरछा चले और आठ अंगुल का हो वह वायुतत्व का स्वर है, उसमें चर कार्य सफल होते हैं। जो पवन स्वर एक रस हो और सब तत्वों के गुणों का वहन करे, उस स्वर को आकाश का समझें, वह स्वर योगियों को सफल योग प्रदाता होता है। जिसका वर्ण पीत हो, चौकोर हो, मधुर हो, मध्य में बहे, जिसका बारह अंगुल का प्रवाह हो, वह पृथ्वी तत्व होता है, भोग प्रदाता होता है। जिसका वर्ण श्वेत हो, अर्ध चन्द्रा का स्वादु, कसैला गीला हो, सोलह अंगुल प्रवाह का प्रमाण हो, वह जलतत्व लाभप्रद होता है। जिसका रंग रक्त हो, तिकोना हो, तीक्ष्ण हो और जिसका प्रवाह ऊपर का हो, जो प्रकाशमान हो और जिसका प्रमाण चार अंगुल का हो वह तत्व तेज सम्बन्धी होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो नीला, गोला, खट्टा, तिरछा चलता हो, चपल हो और जिसका प्रवाह आठ अंगुल का हो, वह वायुतत्व होता है। वर्ण, आकार, स्वाद, प्रवाह में जिसकी अव्यक्तगति हो, समिश्रित हो, वह आकाश तत्व सभी कार्यो में वर्जित है, परन्तु पूर्वोक्त योग, ध्यान, जप, समाधि में उपयुक्त है। पृथ्वी तत्व और जल तत्व शुभ, अग्नि तत्व मध्यम, आकाश और वायु तत्व हानि, मृत्यु, कलह, क्लेशप्रद, अशुभ समझें।

दिशा :—पूर्व से पश्चिम पर्यन्त पृथ्वी दक्षिण में अग्नि, उत्तर में वायु और मध्य कोणों में आकाशतत्व समझें। चन्द्रस्वर में पृथ्वी और जल सुर्यस्वर में, अग्नितत्व जब बहे तब क्रमशः अच्छे और बुरे कर्मों की सिद्धी होती है। दिन में पृथ्वी और रात्रि में जलतत्व हितप्रद है। अग्नितत्व में मृत्यु, बायुतत्व में नाश और आकाशतत्व में कभी कभी दाह भी हो जाता है। जीवन, जय, लाभ, कृषि, धन का कर्म, मन्त्र, युद्धकार्य, प्रश्न, गमन और आगमन में पृथ्वी तत्व श्रेष्ठ है। यदि जल का तत्व हो तो शत्रु आगमन, पृथ्वीतत्व में शुभ, वायुतत्व में शत्रु अन्य स्थान में चला जायेगा। आकाश और अग्नितत्वों में शत्रु हानि व मृत्यु होती है।

प्रश्नज्ञान :—प्रश्नकर्ता के प्रश्न काल में पृथ्वीतत्व हो, तो मूल (वृक्षादि)। जल या वायुतत्व हों, तो जीव, तेजतत्व हो तो धातु और आकाशतत्व में किसी की भी चिन्ता नहीं समझें। पृथ्वीतत्व हो तो एक से अधिक अनेकों के साथ गमन, जल और वायुतत्व में अकेला ही, तेजतत्व में दो पुरुष यात्रा करेंगे और आकाशतत्व में यात्रा स्थगित समझें।

ग्रहज्ञान :—अग्नितत्व में (मंगल), पृथ्वीतत्व में (सूर्य), जलतत्व में (शनि), वायुतत्व में (राहू), ये सूर्य स्वर में समझें। यदि वाम (चन्द्र) स्वर हो तो जलतत्व में (चन्द्र), पृथ्वीतत्व में (बुध), पवनतत्व में (गुरु), अग्नि-तत्व में (शुक्र) सभी कार्यों में उपर्युक्त तत्वों में रहते हैं। पृथ्वीतत्व में (बुध), जल में (चन्द्र), अग्नि में (भौम), वायु में (राहु), और आकाशतत्व में (गुरु) समझें।

विदेशगमन प्रश्न :—यदि किसी परदेश गये के सम्बन्ध में प्रश्न करे और उस समय सूर्यस्वर में राहु स्थित हो तो परदेशी किसी अन्यत्र स्थान को चल चुका है। यदि जलतत्व हो तो परदेशी आयेगा, यदि पृथ्वीतत्व हो तो वह जहां गया है वहीं सुख से है। यदि वायुतत्व हो तो अन्यत्र चला गया है; और अग्नितत्व हो तो परदेशी मर गया है। पृथ्वीतत्व में वृक्षादि मूल समझें। जलतत्व में शुभ कार्य, अग्नि में धातुज्ञान और आकाश में किसी को भी न समझें; खाली है यदि परदेशी के प्रश्न में, पृथ्वी व जलतत्व हों, तो सन्तोष. पुष्टि, प्रीति, रति, क्रीड़ा, जय, हर्ष, यदि अग्नि या वायु में कोई हो, तो ज्वरग्रस्त, कम्पनादि पीड़ा, यदि आकाशतत्व हो, तो मृत्यु समझें। ये १२ प्रश्न हैं।

दिशा में स्वर बल—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में, क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु तत्व बलवान होते हैं। इन पंचतत्वरूप ही देह है।

अस्थिमासादि-ज्ञान—"पृथ्वीतत्व" के हाड़, मांस, त्वचा, नाडी और रोम गुण हैं। "जलतत्व" के, वीर्य, रुधिर, मज्जा, मूत्र और लार ये पांच गुण हैं। "अग्नि" के, क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति और आलस्य गुण हैं। "वायु" के, दौड़ना, चलना, गांठ देना, सकोड़ना और फैलाना ये गुण हैं। "आकाशतत्व" के, वैर, लज्जा, भय, प्रीति और मोह ये पांच गुण होते हैं।

समय-ज्ञान—देह में पृथ्वी ५० पल, जल ४० पल, अग्नि ३०, वायु २० और आकाश १० पल के क्रम से वहते हैं।

लाभालाभज्ञान—पृथ्वीतत्व में, देर से लाभ, जल में, तत्क्षण, पवन में, थोड़ासा लाभ, अग्नि में कार्य नाश समझें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुण ज्ञान—पृथ्वी के ५ गुण, जल के ४; अग्नि के ३, वायु के २ और आकाश का एक गुण होता है। पृथ्वी फूटी, फटी, वृथा पड़ी होने से, अपनी अवस्था के तुल फल देती है।

नक्षत्र ज्ञान—"पृथ्वीतत्व के" धनिष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित और अषाढ़ा ये ७ नक्षत्र, "जल के" पू० षाढ़ा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उ० भाद्रपद और शतभिषा, "अग्नि के" भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पू० फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशिर नक्षत्र होते हैं।

प्रश्न ज्ञान—बहते हुए स्वर की ओर आकर जो दूत या प्रश्नकर्त्ता, शुभाशुभ पूछे, उसे सिद्धप्रद समझे, और वन्द (शून्य) की ओर आकर पूछे तो कार्य भङ्ग समझें।

विशेष ज्ञान—सूर्य या चन्द्र, श्वास में,भले ही पूर्ण बहता हो, तो भी हानिप्रद होता है। यदि दोनों तत्वों का मेल हो, तो सम्पूर्ण सिद्धिप्रद होता है।

स्वर ज्ञान—में जन्मान्तरीय संस्कार, पिता-पुत्र के, और गुरु की महती कृपा ही, निर्मल आत्माओं के तत्व-ज्ञान का मूल है। "कर्मजभवव्याधि, दैवीचिकित्सा" के विषय प्रवेश में स्वर और चक्रों का चित्र देखें (लं) बीज पृथ्वी तत्व में चौकोर, सुवर्ण तुल्य प्रकाशमान, पीत वर्ण, सुगध रूप में ध्यान करें, तो ध्याता कांति तथा देह की लाघवता को प्राप्त करता है। (वं) बीज का जलतत्व में ध्यान करे और अर्द्धचन्द्राकर ध्यान करे तो क्षुधा और तृषा की वाधा नहीं रहती, और जल में डूबे रहने की सामर्थ्य होती है, डूबता भी नहीं है। यह ग्रन्थ में एक अनाहारिणी योगिनी का संकेत दिया जा चुका है, यही क्रिया उसकी साधना की मूल है। (रं) वीज अग्निकोण में तिकोना, रक्तवर्ण ध्यान करने से, वह अन्नादि भक्षण और उसे पचाने की, धूप और अग्नि के ताप को सहने की शक्ति हो जाती है। (य) वीज पवनतत्व (गोल) श्यामरङ्ग में ध्यान करने से आकाश में, पक्षियों के तुल्य गमन करने की सामर्थ्य हो जाती है। (हं) आकाश वीज, निराकार, अत्यन्त कान्तिस्वरूप ध्यान करने से भूत, वतंमान और भविष्य का ज्ञाता, अणिमादि अष्टसिद्धि लाभ करता है। स्वरज्ञान से बढ़कर कोई धन नहीं जो स्वरज्ञान से गमन या कार्यारम्भ करता है, उसे अनायास शुभ फल प्राप्त होता है। जन्मजन्मातरों का सच्चा; निष्काम मित्र और अक्षय धन है।

त्रिकाल ज्ञान विधि—स्वर (प्राण) ज्ञान ही भूत, वर्तमान, भविष्य, जय, पराजय, सिद्धि, असिद्धि का मूल है। सभी शुभाशुभ, जय, पराजय, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष आदि तत्वों के अधीन होते हैं, यही तत्व तीनों कालों का कर्त्ता कहलाता है। यही परममित्र, सर्वार्थसिद्धि प्रदाता सखा, वन्धु, यह प्राण ही है। इस कायारूपी (पुरी) में टिका हुआ प्राणवायु ही रक्षपाल है। यह प्राण निकलते समय १२ और प्रवेश काल में १० अंगुल का है। गमनकाल में २४ अंगुल, दौड़ने में ४२ अंगुल का, सम्भोगकाल में ६५ अंगुल का, सोने में १०० अंगुल का कहा गया है। स्वाभाविक गति १२ अंगुल की, भोजन और वमन काल में १८ अंगुल की कही गई है। यदि योगी इस प्राण की गति १ अंगुल कम कर लें, तो निष्कामता की सिद्धि, २ अगुल कम कर ले, तो परमानन्द की, ३ अगुल कम कर ले तो, कविता की, ४ अंगुल कम करने से वाणी की सिद्धि, ५ अंगुल कम कर लेने पर, दूर दृष्टि, ६ अंगुल कम कर लेने में, आकाश गमन शक्ति, ७ अंगुल कम कर लेने में, प्रचण्ड वेग, ८ अंगुल कम कर लेने पर अणिमादि सिद्धियां, ९ अंगुल कम कर लेने पर नौ निधियां, १० अंगुल कम कर लेने में, अनेकरूपता, ११ अगुल कम कर लेने पर, देह की छाया का अभाव, १२ अंगुल गति कम कर लेने पर "हस" गति, गंगाजल तुल्य अमृत रसपान की शक्ति प्राप्त होती है। यदि योगी शिखा से नखों पर्यन्त प्राणों को पूर्ण कर ले, तो भक्ष्यभोजन निवृत्ति हो जाती है। इस अमोघ प्राणशक्ति का ज्ञान केवल गुरु वाक्य से ही होता है। ग्रन्थों से नहीं, ग्रन्थगत विषय साधक के साध्य के साधनमात्र हैं। योग्यगुरु की शरणमें रहकर साधना करें।

स्वर परिवर्तन प्रक्रिया—यदि दैववशात् प्रातः चन्द्रस्वर और सायं सूर्यस्वर न मिलें तो मध्याह्न में, या मध्यनिशा में परे मिलते हैं। दूर देश में युद्ध अनिवार्य हो, तो चन्द्रस्वर जयप्रद होता है, और समीप के युद्ध में सूर्य-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर। बहती हुई नाड़ी के समय गमनकाल में पैर रक्खा जावे तो बहुभांति सिद्धिप्रद होता है। यात्रा के आरम्भ में, विवाह, गृह, नगर प्रवेशादि शान्ति, शुभ, पुष्टिकर्म चन्द्रस्वर में हितप्रद होते हैं। अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन) तिथियां, बार इनके स्वामियों सहित, यदि दैववश पुरुषों का अपना पूर्वविहित स्वर, या तत्व वहै, तो वह योगी, अनेक भाँति के शत्रुदल को स्वप के रोकने (स्तम्भमात्र) से ही जीत लेता है उसे वैकुण्ठादि लोकों में भी विघ्न नहीं होता।

सार्वभौम युद्धविज्ञान—जो प्राणी "युद्धकाल में" (रक्षाकवच) और "जीवंरक्ष, जीवंरक्ष" मन्त्र को जपता हुआ, वस्त्र, कवच धारण कर युद्ध करता है, उसके पास कोई घातक अमोघशक्ति नहीं भी फटकती है और विजय और स्वस्थता तथा कीर्तिलाभ करता है।

गमनविधि—शान्ति, पुष्टिकार्यों में पृथ्वी या जलतत्व में, उग्र कार्यों में अग्नि और वायुतत्वों में, उपर्युक्त दोनों प्रकार के कार्यों में, आकाशतत्व में गमन करें।

शस्त्रधारण :—जिस ओर का स्वर बहता हो, उसी हाथ से श्वाँस ऊपर चढ़ाते हुए शस्त्र धारण करें और बहते स्वर के हाथ से ही, शस्त्र को खोलें और बहने वाले स्वर के हाथ से ही स्वर चढ़ाते हुये शस्त्र को फेंके तो युद्ध मे शत्रु भाग खड़ा होता है। हथियार डालकर आत्मसमर्पण और भेंट करने को आतुर हो जाता हैं। जो प्राणी बहते स्वर के पैर को आगे ऊपर कर, स्वांस चढ़ाकर किसी भी वाहन पर सवार होता है और स्वर के ऊतार पर वाहन को वढ़ाये, वह जय प्राप्त करता है। यदि पूर्ण बन्दस्वर में शत्रु की सामग्री और सम्पूर्ण बहते स्वर में अपनी सामग्री ओर शैंन्यबल हों तो पूर्ण तत्व में टिका हुआ पुरुष अकेला हीं सब पर विजय प्राप्त कर लेता है।

अपने अंग की बहती नाड़ी और उस नाड़ी के देवता, तथा उसकी दिशा के सम्मुख हो तो सर्वथा सिद्धप्रद होती है। वैदिक तान्त्रिक तथा सावर, मन्त्रमणि, यन्त्र आगे पढ़ें उनके साथ प्रयोग करें।

मुद्राविधि :—जो युद्धकाल में सर्पमुद्रा के साथ युद्ध करता है, वह विजयी होता है।

युद्धविज्ञान :—चन्द्र या सूर्य स्वर प्रवाह काल मे जलतत्व हो और तत्ववेत्ता को अनुभव हो जाय तो सभी योद्धा सकुशल वापस आ जाते है। ओर यदि अन्य स्वर हो, अर्थात् वायु या आकाश तत्व हो तो योद्धाओं पर संकट समझें। जिस दिशा का पवनतत्व बहता हो उसी दिशा में युद्ध के लिये सेना को भेजे, तो भलेही शत्रु यम ही हों उसे भी सेना पराजित करेगी। जिस चन्द्र या सूर्य नाड़ी का स्वर बहता हो, उसी नाड़ी के पवन को कर्ण पर्यन्त खींचकर गमन करे, तो इन्द्र जैसे पराक्रमी पर भी जय प्राप्त होती है। जो योद्धा शत्रु के प्रहारों से उपर्युक्त विधि से अपने सम्पूर्ण अङ्गों की रक्षा करता है। उसे निश्चय जय प्राप्त होती है। अंगुठा और तर्जनी अंगुली इनके वंश में और चरण के अंगुष्ठ में युद्धकाल में जो ध्वनि शब्द करे तो लक्ष्यों योद्धाओं को पराजित करता है।

चन्द्रमा या सूर्य के प्रवाह में यदि वायु तत्व हो तो उस समय प्रस्थान करना दिगन्तों की रक्षा के साथ निरन्तर विजयी होता है। मनुप्य के स्वास के प्रवेश काल में दूत अपने मुख से वांञ्चिछत बात को कहै तो गमन करते ही जय होती है। उपर्युक्त पूछे गये, कहेगये; लाभ जयादि सभी सम्पूर्ण बहते स्वरों के प्रवेश समय में सिद्ध होते हैं। स्वर निकलते समय पूछे गये सब नष्ट होते हैं।

पुरुषों की अपनी दक्षिण सूर्यनाड़ी, स्त्रियों की चन्द्रनाड़ी और युद्ध में कुम्भक नाड़ी श्रेष्ठ होती है। ये तीन नाड़ी हैं, तीन ही इनकी गति हैं।

हंस—हकार और सकार के भेद बिना, स्वरज्ञान नहीं हो सकता है, इस कारण जीव "सोऽहं; हंसः" इन दो पदों से ही सर्वदा जय प्राप्त करता है। अङ्ग शून्य अङ्ग (बन्द स्वर) को पूर्ण कर स्वांस खींच कर (जीवं रक्ष, जीवं रक्ष) जपता हुआ बहते स्वर के; अङ्ग की रक्षा करे तो जय प्राप्त होती है। क्योंकि जीवाङ्ग बहते स्वर की ओर घात

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(नाश) और शून्याङ्ग सदैव रक्षा करता है। यदि वाम या दक्षिण की ओर बैठा हुआ युद्ध का प्रश्न करे और उस समय पूर्णस्वर हो, तो नाश नहीं होता है। शून्य होय तो घात (नाश) होता है। प्रश्नकाल में पृथ्वीतत्व हो, तो उदर में, जल हो, तो पैरों में, अग्नि हो, तो जंघाओं में वायु हो, तो हाथों में शस्त्र लगेगा। आकाशतत्व बहता हो, तो शिर में घाव होगा। ये ५ प्रकार के घाव समझें। युद्धकाल में चन्द्रस्वर हो, तो स्थायी जिस पर चढ़ाई की जाय, की जय होगी। जो सूर्यस्वर हो तो चढ़नेवालों की जंय होय। यदि जय के मध्य संशय हो, तो नाड़ी के मध्य को देखे, यदि सुषुम्ना नाड़ी बहती हो, तो संग्राम में शत्रु को संकट होगा।

विजयप्रद रणरीति—योद्धा युद्धकाल में, अपने बहते स्वर की दिशामें, अर्थात् चन्द्रनाड़ी में पूर्व या उत्तर में, सूर्य-नाड़ी में दक्षिण या पश्चिम में, खड़ा हो, तो निश्चय जय प्राप्त करता है। यदि युद्धकाल में चन्द्र स्वर बहे तो जिस पर चढ़ाई की है, उसकी जय, चढ़नेवाला शत्रु के वश में हो जाता है। सूर्यस्वर लगातार वहे, तो देव, दानव युद्ध की भाँति चढ़नेवालों की जय होती है। यदि वामनाड़ी प्रवाह काल में युद्ध भूमि में प्रवेश करे, तो शत्रु से हारे। सुषुम्ना में गमन करे, तो स्थान प्राप्त करे, युद्ध न हो, सूर्यनाड़ी में गमन करे, तो जय प्राप्त करे। यदि एक साथ दो युद्ध विषय के प्रश्न हों; और उस समय पूर्ण स्वर बहता हो, तो प्रथम का विजय, रिक्तस्वर बहे तो दूसरे का जय समझे। यदि पूर्ण नाड़ी में गया हो, तो शत्रु भाग जावे बन्दनाड़ी का अङ्ग हो, तो शत्रु आगे आये, शून्य स्थान में किया हो तो; शत्रु मृत्यु को प्राप्त होता है। यदि कोई वामभाग में बैठकर प्रश्न करे, तो उसके प्रश्नाक्षर गिने, यदि सम [२,४,६] हों, तो जय, विषम(१-३-५)हों तो पराजय समझें। प्रश्नकाल में चन्द्रस्वर हो, तो सन्धि सूर्यस्वरमें, युद्ध समझें। पृथ्वीतत्व में युद्धारम्भ हो; तो युद्ध में बराबरी, जलतत्व में जय, अग्नि में नाश, वायु और आकाशतत्वों में मृत्यु समझे। यदि प्रमाद से स्वर का ठीक पता न चले तो, दृढ़ संकल्प से, अपने हाथ से पृथ्वी पर, फूल गिराये, जो अपने अग्रभाग में पुष्प गिरे, तो जय, दूर पड़े; तो शून्य फल। विशेष ज्ञान प्रथम अध्याय में तथा आगे सांग्रामिक गणकर्म मन्त्रों को पढ़ें।

विजयरीति—जो खड़ा होकर और बैठकर अपनी प्राणवायु को दृढ़निश्चय से अन्दर खींच लेता है, उसे सभी ओर सफलता प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया से काल विविध भयानक जीवों, शस्त्र, अस्त्र, सर्प, शत्रु, व्याधि ब धक और चौर, ये शून्य स्थान में टिके हुए सभी नाश करने का संकल्प तक नहीं करते, मित्रता करते हैं।

अथ शिवस्वरोदय विचार—

महेश्वरं नमस्कृत्य शैलजां गणनायकम्। गुरुं च परमात्मानं, भजे संसारतारणम्॥

स्वस्त्रीवशीकरण में प्राणविद्या—स्त्री के चन्द्रस्वर को अपने सूर्यस्वर से अपने जीवस्वर को मंडल (कमलदल) में टिकाये तो स्त्री जन्मभर वश में हो जाती है। वेद तथा तान्त्रिक मन्त्रों का साथ में प्रयोग करें।

प्राणविद्या द्वारा पति वशीकरणम्—पुरुष अपने जीवस्वर से, स्त्री के जीवस्वर को ग्रहण करे और स्त्री के जीवस्वर में अपना जीवस्वर दे, इस प्रकार जीव के स्थान में गया हुआ जीव जिसका ऐसा पुरुष जन्मभर स्त्री के वश में रहता है।

प्राणविद्या द्वारा समस्त स्त्री वशीकरणम्—रात्रि के अन्तिम प्रहर के समय जो मनुष्य, ब्रह्म, जीव (सुषुम्नास्वर) को पीता है, अर्थात् प्राणवायु को अष्टदलकमल (कुण्डलिनी में) निरोध करता है. वह स्त्रियों के प्राणों को वश में करता है। स्वर, वेद मन्त्र, मणि, यन्त्र, तांत्रिक तथा सावर मन्त्रों का सभी कार्यों में उपयोग अनिवार्य फलप्रद है।

प्राणविद्या द्वारा सम्मोहन—उपरोक्त काल व्यतीत होने पर "ॐ जीवं रक्षः, जीवं रक्षः" को जपकर अपने चन्द्रस्वर की वायु स्त्री को देने से, कामिनी उसी क्षण सम्मोहित हो जाती है। शयन, स्त्री संगम, या स्पर्श के समय मनुष्य अपने सूर्यस्वर से स्त्री के चन्द्रस्वर को पीये (स्त्री की श्वांस) को खींचे तो कामदेव के तुल्य मोह ले।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गर्भाधान में प्राणविद्या—गर्भाधान समदिन में ऋतु स्नान के अनन्तर पुरुष के सूर्य (दायें) स्त्री के चन्द्र (बायें) स्वरों में संग हो, तो पुत्र हो।

पुत्रप्रद भैषज्य—जब पृथ्वी और जल तत्व चलें तब स्त्री को बछड़े की गौ के दूध में शंखपुष्पी पिलायें और तीनबार सङ्गम करें तो रूपवान् पराक्रमी सुन्दर रत्न होता है [अनुभूत]।

यदि बच्चे मर जाते हों या गर्भपात हो जाता हो, तो उपरोक्त अष्टाक्षरी मन्त्र का संगमकाल में मानसिक दोनों ही जप करते रहें।

प्राणविद्या से गर्भवती के प्रश्नों का फल ज्ञान स्वरोदय काल से देखें—

विशेष ज्ञान—गर्भ के प्रश्नकर्ता के प्रश्न समय, वायां स्वर होय तो कन्या दायां हो, तो पुत्र, दोनों (सुषुम्ना) हों तो नपुंसक हो, यदि प्रश्नकर्त्ता दूत पूर्ण अङ्ग का हो तो पुत्र होता है। प्रश्नकर्त्ता के अङ्ग शून्य होवें तो शून्य, दो स्वर चलें या युग्म (दो) यदि (सुषुम्ना) होय तो गर्भपात समझें।

अथ प्राणविद्या से सन्तान ज्ञान—

गर्भवती के गर्भ की जो कोई पूछै आइ। बालक होइ, कै बालिका, जीवै कै मरजाय ॥१॥
पृच्छा बालक होन की, जो कोइ पूछै तोइ। वाँयैं कहिय छोकरी, दहिने बेटा होय ॥२॥
दहने स्वर के चलत ही, जो यह पूछै आय। वाको वायौं स्वर चलें, बालक होइ मरजाय ॥३॥
दहने स्वर के चलत ही, जो यह पूछे वेन। वाहू कौ दहिनौ चलै, लड़का होय सुख चैन ॥४॥
वायें स्वर के चलत ही, आय कहैं जो काइ। बेटा होइ जीवै नहीं, वाको दहिनो होय ॥५॥
वायें स्वर के चलत ही, जा यह पूछै बात। वाहू कौ वाँयौं चलै, बेटी होइ कुशलात् ॥६॥
तत्व आकाशके चलत ही,कहे गर्भ की आय। होइ नपुसक-हीजड़ा, कै सतमासौ जाय ॥७॥
लेन परीक्षा गर्भ की, जो कोई पूछै आय। अग्नि होय जो ता समय,ओछा ही गिरि जाय ॥८॥
छिन वाँयें छिन दाहिनों,दोस्वर सुषुम्ना होय। पूछन हारे सौं कहै, बालक उपजैं दोय ॥९॥
वायु तत्व के चलत ही, जो कोई पूछै आय। छाया होइ वाढै नहीं, पेटहिं माँहि विलगाय ॥१०॥
जो काइ पूछै आय कैं, याकौं गर्भ कि नाहि। दहनौ वायौं स्वर लखौ, सन्धि स्वाँस के माँहि ॥११॥
वन्द ओर जो आय करि, यह पूछै जो कोय। वन्द ओर तो गर्भ है, वहते स्वर नहि कोइ ॥१२॥
दहनै सेती आय करि, वाय पूछै कोइ। जो वाको स्वर वन्द है, सुफल काज नहि होय ॥१३॥
वायें सेती आय करि, दहनै पूछे जाय। जा दहिनौ स्वर वन्द है, कारज विफल बताइ ॥१४॥
जव स्वर भीतर कौं चलै, कारज पूछै कोइ। पैज बाँधि वासौं कहौ, मनसा पूरन होइ ॥१५॥
जब स्वर वाहिर कौं चलै,तव कोइ पूछे तोय। वाकौं ऐसैं भाषिये, नहिं कारज सिद्धि होय ॥१६॥

प्राणविद्या से गर्भाधान—

जल-पृथ्वी के योग में, गर्भ रहै सोपूत। वायुतत्व में छोकड़ी, अम्बर सूतक सूत ॥१७॥
पृथ्वी तत्व में गर्भ जो, बालक होवै भूप। धनवन्ता सोई जानिये, सुन्दर होय सरूप ॥१८॥
अग्नि तत्व जब चलत हो,कहीं गर्भ रहि जाय। गर्भ गिरै माता दुःखी, होत मात मरि जाय ॥१९॥
वायुतत्व स्वर दाहिनै, करै पुरुष जब भोग। गर्भ रहै जो ता समय, देही आवै रोग ॥२०॥

प्राणविद्या से तत्वज्ञान—

धरती मीठो स्वाद है, खारो स्वाद सुनु नीर। अग्नि चरपरौ स्वाद है, खट्टो स्वाद समीर ॥२१॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खट्टा-मीठा चरपरा, खारीपन, मन होय। जब ही तत्व विचारिये, पाश्वतत्व में कोइ ।।२२।।
स्वाद नाप अरु रङ्ग हैं, और बताई चाल। पांच तत्व को ये गति, इह साध पावत तत्काल।।२३
त्रिकोणी पावक चलै, धरती तत्व चौकोर। शून्य स्वभाव आकाश कौ,पानी लम्बा गोल ।।२४।।
अग्नितत्व गुण तामसी, कह्यो रजोगुणवायु। पृथ्वी, नीर-सतोगुणी, नभ है अस्थिर भाय ।।२५।।
नीर चलै जब श्वांस में, रण ऊपर चढ़ि मीत। वैरी को शिर काटि कैं, घर आवैं रण जीत ।।२६।।
पृथ्वी के परकाश में, युद्ध करै जो कोइ। दोउ दल रहैं बराबरी, हार वाइ में होय ।।२७।।
अग्नितत्व के वहत ही, युद्ध करन मति जाय। हार होइ वहुरै नहीं, अरु आवै तन घाव ।।२८।।
तत्वआकाशमें जो चलैं,तो वहाँ ही रहि जाय। रणमाहीं काया छुटै, घर नहिं देखै आय ।।२९।।
पृथ्वीकाल जामै रहैं, मुखहि जानिये छार। पीलौ रङ्ग पहचानिये, पौवन खान अहार ।।३०।।
पित्तहि में पावक रहै, नैन जानिये द्वार। लाल रङ्ग है अग्नि कौ, मोह लोभ आहार ।।३१।।
जल कौ वासा भाल है, लिङ्ग जानिये द्वार। मैथुन कर्म आहार है, कालौ रङ्ग निहारि ।।३२।।
पवन नाम में रहत है, नासा जानिये द्वार। हर्यौ रङ्ग है वायु कौ, गन्ध सुगन्ध आहार ।।३३।।
आकाश शीषमें वास है, श्रवण द्वार पहचान। शब्द कुशब्द अहार हैं, ताकूँ श्याम पहिचान ।।३४।।

यम पर विजय—स्वर (प्राणविद्या) का बल सार्वभौम वल है। यह यमराज पर भी विजय प्रदायक है। मृत्यु आने का ज्ञान होते ही स्थिर समाधिस्थ हो, कुम्भक प्राणवायु में, स्वर प्राणों को और मन को सब स्थानों से खींचकर अपान को प्राण में संयोग कर, प्राण को कण्ठ से ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में ले जावे, मन को आज्ञाचक्र; पर टिका दे, ब्रह्मचिन्तवन (ध्यान) करे तो, उसको महालाभ और विजय प्राप्त होती है। निराकार, ज्योति स्वरूप, प्रकाशवान ज्येष्ठ ब्रह्म से, कनिष्ट ब्रह्म की उत्पत्ति हुई है। उससे आकारवान उच्छिष्ट ब्रह्म प्रजापति की; उनसे सारा दृश्यवान जगत उत्पन्न हुआ है। निराकार के ज्ञान से, वह जगत आकारवाला उसी क्षण हो जाता है।[1]

प्राणविद्या से संवत्सर फल—चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को, सूर्योदय काल में, योगी दक्षिणायन और उत्तरायण का फल देखें। यदि चन्द्रस्वर के समय पृथ्वी, जल या वायु तत्व चलें, तो सभी कृषि सुभिक्षप्रद हो, यदि चन्द्र में, अग्नि, आकाश तत्व वहें, तो घोर भय, दुर्भिक्ष, इन्हीं तत्वों के अनुसार, वर्ष, मास, दिनों का फल समझें। सुषुम्ना में, देशभंग, महारोग, क्लेश, कष्ट, विपत्ति, अत्यन्त संकटापन्न समझें। मेष की संक्रान्ति के समय से भी उपर्युक्त भाँति ज्ञान कर फल समझें। यदि उस मेष की संक्रान्ति के समय पृथ्वी तत्व बहे, तो "सुभिज्ञ" देशवृद्धि, वहुअन्न, बहुवृष्टि, और वहु सुख समझें। यदि जलतत्व हो, तो अतिवृष्टि, सुभिक्ष, आरोग्य, सुख और आरोग्य, हरित, श्वेत क्रांति होती है। यदि अग्नितत्व चलता हो तो दुर्भिक्ष, देशभंग, उत्पत्ति नाश, स्वल्प वृष्टि होती है। वायुतत्व हो, तो उत्पात, उपद्रव, भांति, अल्पवृष्टि, "अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषिकाश्शलभाः शुकाः। अत्यासन्नाश्च राजानः षडेताईतय; स्मृताः।।" होते हैं। यदि आकाशतत्व हो तो सस्यादि सुख का अभाव समझें। यदि श्वास का पूर्ण प्रवेश हो; तो तत्व से धान्य की सिद्धी हो। यदि तत्वों के उदय काल में, सूर्य व चन्द्रस्वर विपरित हो जावें और चन्द्र के योग में सूर्य, और सूर्य के योग में चन्द्र हो तो अन्न संग्रह से लाभ हो। यदि दक्षिण विषम स्वर में अमृत तत्व हो या केवल आकाश तत्व हो, तो उस समय वस्तु संग्रह से; दो मास में मंहगा होता है। यदि निशाकाल में सूर्यनाड़ी बहे और प्रातःकाल में चन्द्र बहने लगे और उस समय आकाश, पवन, अग्नि तत्वों का योग हो जाय, तो भूतल पर महान अनर्थकारी, कम्पायमान, वीभत्सकारी घटनायें घटित होती हैं।

प्राणविद्या से रोगज्ञान :—(१) प्रश्नकाल में पृथ्वी तत्व बहता हो, तो "कर्मज भवव्याधि"। (२) जलतत्व सै मातृगण दोष। (३) अग्नि हो तो शाकिनी या पितृगण दोष; रोग के मूल समझें। (४) यदि पृच्छक पहिले बन्द स्वर की ओर आया हो,बाद में पूर्ण बहते स्वर की ओर बैठ गया हो, तो पृच्छक का मृत प्राय रोगी भी ठीक होजायेगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बहते स्वर की ओर पृच्छक बैठा हो तो चिर व्याधिग्रस्त भी जोवेगा. स्वस्थ्य होगा। यदि दायाँ स्वर चलता हो और दूत के मुख से भयानक शब्द निकले तो रोगी ठीक होगा और चन्द्रस्वर हो तो भी यही फल समझें। परन्तु "पृच्छक" जीवाकार धारण कर उसे हृदय से देख चिन्तन कर प्रश्न करे, तो ही उपर्युक्त फल होगा। इड़ा या पिंगला में से किसी के भी चलने अथवा प्रवेश करने के समय यदि प्रश्न करे तो निश्चय सिद्धिप्रद होता है। यदि दूत ज्ञानी से; निम्न स्थान में बैठा हो, तो रोगी निश्चय जीवे। ऊपर बैठ कर प्रश्न करे तो, रोगी यमसदन ही जाता है। यदि सुषुम्ना नाड़ी का उदय हो और पृच्छक बन्द नाड़ी में ऐसा पूछे और प्रश्न के विषम (१-३-५) आदि अक्षर हों तो विपरीत फल समझें। यदि अपनी श्वास वायु इड़ा में हो और पृच्छक सूर्य(पिंगला)के चार में स्थित हो; तो निर्विवाद रोगी मरेगा। यदि पिंगला में स्वर हो; और दूत वामभाग में स्थित होकर पूछे तो उस समय ही रोगी की मृत्यु ही होती है। एक तत्व के विपरित होने से भी प्राणी रोगग्रस्त होता है। दो तत्वों की विपरीतता हो, तो बन्धु, मित्रादि से विपत्ति होती है। यदि १ मास तक विपरीत स्वर बहता चला जावे, तो मृत्यु होती है।

प्राण से काल ज्ञान :—प्राण वायु के प्रवाह से मास, पक्ष और वर्ष के क्रम से मरण का ज्ञान करें। जो मनुष्य प्राणवायु बांध कर दिन भर सूर्यस्वर का बन्धन करता है। ऐसे अभ्यास के वल से सूर्य काल का निराकरण करके वह जीव जी सकता है। ब्रह्मरन्ध्र (आकाश) में प्राण को स्थिर करने से, इड़ा (चन्द्र) से अमृत गिरकर देहरूप कमल को सींचती है, ऐसे 'क्रियायोगी' चन्द्र के आश्रय के अभ्यास से अमरत्व, युवावस्था, प्राप्त करते हैं। जो रात्री में चन्द्रस्वर का और दिन में सूर्य का निराकरण करता है, ऐसा अभ्यासी ही 'योगी' है।

स्वर से मृत्यु समय ज्ञान— जिसका प्राण वायु दिन रात, एक ही स्थान पर बहता रहे, तो उसकी मृत्यु ३ वर्ष में हो जायेगी। जिसके प्राण की गति पिंगला में रहे, २ अहोरात्र यही वहे वह २ वर्ष जिवेगा। जब प्राणवायु ३ रात्रि एक ही नासिका के स्वर में स्थिर होकर बहे; तो उसकी आयु १ वर्ष की ही समझें। जिसका रात्रि में चन्द्रस्वर दिन में सूर्य स्वर; निरन्तर बहे, उसकी आयु ६ मास की समझें। जिसे जल में सूर्य प्रतिबिम्ब कटा हुआ, क्रमशः दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व में दिखाई दे, वह क्रमशः ६, ३, २ १ मास जिवेगा। यदि सूर्य प्रतिबिम्ब में, छिद्र दीखें तो १० दिन, यदि सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब में 'धुआं' सा प्रतित हो, तो उसका उसी दिन शरीरान्त समझें।

प्राणविद्या के प्रश्न से कालज्ञान—यदि प्रश्नकर्त्ता दूत, काले, भगवे वस्त्र धारणकर आया हो अथवा दूत के दातों में घावादि हो, या मुंडित केश हो, या नग्न शिर हो या तेल लगाये हुये हो या हाथमें अस्त्र, शस्त्र लिये हो, सवारी पर हो दीन वाणी हो, उत्तर देने में अशमर्थ और भस्म, अङ्गार, कपाल, मुसलादि में कोई, हाथमें हों, जो सूर्यास्तकाल में आये, जिसके पैर डगमगाते या अचल से हों, तो रोगी यम का मेहमान होगा। जिस रोगी के चित्त में अकस्मात् विकार हो जाय, सहसा ठीक हो जावे और सहसा इन्द्रियों में विकार हो जाय, तो सन्निपात समझें। जिसका शरीर शीतल हो, प्रकृति में विकार हो, वह अरिष्ट समझें, जो खोटे शब्द और कभी शुभ शब्द कहे और पीछे मे पश्चात्ताप करे, उसकी मृत्यु निकट समझें। जिसका हुंकार शीतल हो और फुत्कार अग्नि के तुल्य हो; उसकी निश्चय मृत्यु समीप समझें। जो मनुष्य जीभ, आकाशध्रुव, आकाशगङ्गा (देवमार्ग), मातृकाओं का मंडल, अरून्धती, चन्द्रमा, शुक्र और अगस्त इनमें से एक को भी कहने से न देखे वह वर्ष के अन्दर ही निश्चय मरेगा। जिसको सूर्य और चन्द्रमा के प्रतिबिम्य और अग्नि के किरण न दिखाई पड़े, उसकी ११ मास में मृत्यु समझें। जिसे श्वप्न या जाग्रत अवस्था में बावड़ी में मल-मूत्र, स्वर्ण, चांदी दिखाई दे; वह दस मास से आगे नहीं जिवेगा। जो कभी कभी दीपक को, अथवा कशोटी मे लगाया हुआ स्वर्ण, और सम्पूर्ण भूत विपरीत दिखाई पड़े वह नौ मास जीविर रहेगा। जिस मनुष्य का स्वभाव ऐसा चचल हो जाय कि स्थूल होव तो सहसा कृश हो जाय, कृश हो तो एकदम स्थूल हो जाय, क्रूर या कृष्ण हो तो स्वर्ण तुल्य कांतिमान हो जाय, शूर होकर भीरू; हो जाय, धार्मिक होकर अधर्मी हो जाय और शान्त होकर एकदम चञ्चल हो जाय तो वह आठ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मास ही जिवित रहेंगा। जिसके हाथ की हथेली पर जिह्वा के मूल में रुधिर काला हो जाय, जिसके हाथ में नोचने से दुःख न हो वह ७ मास जीवित रहे, जिसके बीच की या तीन अंगुली न मुड़ें, बिना रोग के कंठ सूख जायें, बार २ पूछने से जड़ता हो जाय, पूर्वा पर का विवेक न रहे, वह छ मास जीवित रहेगा। जिसके स्तनों का चर्म बधिर हो जावे, वह पांच मास ही जियेगा। जिसके दोनों नेत्रो में प्रकाश न हो, दोनों नेत्रों में पीड़ा हो उसकी चौथे मास मृत्यु हो। जिसके दांतों और अण्डकोशों में दबाने से पीड़ा न हो वह तीसरे मास मर जायेगा। जिसकों दूरस्थ काल भी जिस उपाय से दिखाई पड़ जाय वह इस प्रकार ज्ञान करे।

कालविज्ञान—एकान्त, निर्जन वन में, जाकर सूर्य को पीठ पीछे करके, अपनी छाया को; सावधानी से, कंठ देश में देखे तदनन्तर आकाश देखे और "ह्रीं परब्रह्मणे नमः" का १०८ वार जप करे, तो वह मृत्युञ्जय को देखेगा। जो स्फटिक तुल्य गौरवर्ण हैं, जो विविध रूप धारण करते हैं; ऐसा छै मास अभ्यास करने से, प्राणियों का राजा होता है। दो वर्ष के अभ्यास से, कर्ता, हर्ता, स्वयम्भू होजाता है और निरन्तर अभ्यास से, त्रिकालज्ञ हो, आनन्द प्राप्त करता है; उसको कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। जिस योगी को, निर्मल आकाश में यह उपर्युक्त स्वरूप दिखाई पड़े, वह छः मास में मृत्यु का अतिथि बनेगा। पीला दीखे तो व्याधि, लाल दीखे तो भय, नीला दीखे तो हानि, नाना वर्ण दिखाई पड़े तो योगी सिद्धियां प्राप्त करेगा। यदि छाया में टकने, पेट, या भुजा न दीखे तो निश्चय से योगी का प्राणान्त समझें। यदि वामभुजा न दीखे तो स्त्री नष्ट, दक्षिण भुजा न दीखे तो बन्धुओं का नाश और एक मास में अपनी मृत्यु समझें। शिर न दीखे तो मास भर, जंघा न दीखे तो ८ दिन में, कन्धे न दीखे तो ८ दिन में, सर्वथा छाया न दीखे तो उसी क्षण मृत्यु समझे। जो प्रातःकाल, पीठ की ओर सूर्य करके छाया पुरुष के अंगुली और होट न दीखे, तो निनिष मात्र में और फिर छाया को और अपने को न देखे, तो आधे निमिष में मृत्यु होगी और छाया के कान, कन्धे, हाथ, मुख, पार्श्व, हृदय न दीखें तो आधे क्षण में मृत्यु होगी और छायापुरुष का शिर न दीखे, और स्वयं दिशाओं का ज्ञान न रहै तो प्राणी छै मास जीवित रहेगा। जिस व्यक्ति का एक से १६ दिन पर्यन्त, निरन्तर सूर्य स्वर ही चलता रहे, उसकी मृत्यु १५ दिन में ही हो जायगी। जिसका निरन्तर सूर्य स्वर ही चले और चन्द्र स्वर कभी भी न चले, तो उसकी मृत्यु १ पक्ष में समझें। जिसके मूत्र, मल, वायु एक ही साथ निकले, वह १० दिन में निश्चय मरेगा। जिसका निरन्तर चन्द्र स्वर वहै, सूर्य एक बार भी न चले, वह एक मास में मरेगा। अरुन्धती, ध्रुव, विष्णु के ३ पद, (तीन गांठ का पैना) चौथा मातृकाओं का मण्डल, जिसे न दीखें उसे मरणासन्न समझें। यहां (जिह्वा का अर्थ अरुन्धती, नासिकाग्र भाग का ध्रुव, भृकुटियों का, विष्णुपद और तारिकाओं का अर्थ मातृ मण्डल है)। जो भृकुटी न दीखे, तो ६ दिन में, कानों का शब्द न सुने तो ७ दिन में, तारागण न दीखे तो ५ दिन में, नासिका न दीखे तो ३ दिन में, जिह्वा न दीखे तो तत्काल निश्चित मरण समझें। नेत्रों के कोणों को, अंगुलियों से दवायें, यदि दबाने से जलविन्दु न निकले, तो १० दिन में मृत्यु जाने। जो तीर्थों के स्नान, दान, तप, सुकृत, जप, ध्यान, योगादि जो काल के टालने में समर्थ हैं, करें—यही प्राणविद्या, संजीवनी विद्यायें हैं; जो काल को टाल सकती हैं।

योग की महत्ता—धातु और मल ये शरीर को नष्ट करने वाले है, प्राण वायु की समानता बल और तेज बढ़ाने वाली है। धर्म और सर्वकल्याण मूल शरीर की रक्षा 'प्राणविद्या" क्रियायोग से ही सम्भव होती है, यही परम तप रूप है योग की महत्ता से असाध्य भी साध्य हो जाते हैं, बिना योगाभ्यास मृत्यु के शिकार होते हैं, अन्य कोई मृत्यु का समर्थ निराकरण नहीं है। जिनके हृदय (मान सरोवर में, अनादि, अद्वितीय, प्रगाढ़तम मृत्यु रूप अन्धकार नाशन, गोपनीय, तेज) "प्राणविद्या" "संजीवनी विद्या" का प्रदीप्त होता है, उन अखण्ड, अमृतदाता चन्द्रमा के तुल्य देदीप्यमान, प्राणवेत्ताओं को स्वप्न में भी काल का भय नहीं रहता है।

शरीर में ही तीर्थ और देव हैं—इडा नाड़ी गंगा, पिंगला यमुना, सुषुम्ना सरस्वती ही हैं इनका संगम प्रयाग,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीर्थराज है। प्रधान प्राण साधन ही शीघ्र प्रतीति का मूल है इसी से योगी पद्मासन को बाँधकर, उड्डीयानक आसन को बाँधे (अपान को ऊपर उठा, नाभि रन्ध्र के पाशाटिकावे योगी अपनी काया शोधनार्थ, पूरक, कुम्भक, रेचक, प्राणायामों की साधना गुरु द्वारा करे उनमें बाहरी वायु को भीतर खींचना (पूरक) से, वृष्टि से (अमृततुल्य) देह को सींचता है और सम्पूर्ण शारीरिक धातुओं की समता करता है भीतर, बाहर की वायु को स्थिर करना (कुम्भक) देहगत धातुओं को स्थिर बनाता है और यही जीव की रक्षा करता है। भीतरी वायु को बाहर निकालना (रेचक)प्राणायाम से, पाप रोग को दूर किया जाता है। जो इस "प्राणविद्या" को जान कर करता है, वही योगी होता है। जो योगी निरन्तर अभ्यास कर समाधि में स्थिर रूप से टिकता है, वह लयवन्ध अर्थात् मृत्यु रोकने में समर्थ होता है।

प्राणायाम विधि—साधक स्वाभाविक वायु को, शनैः शनैः अपनी शक्ति के अनुसार (कुम्भक) प्राणायाम से रोकें, चन्द्रस्वर से ही रेचक करे, बायु निकाले और सूर्य स्वर से (पूरक) वाह्य वायु को खींचे। जिसके चन्द्रस्वर को सूर्य, सूर्य स्वर को चन्द्र पियें, वह अमित आयुवान हो जाता है। जो योगी अपने अङ्ग की, बहने वाली नाड़ी को रोककर, अपने मुख को बांधकर, मुख से पवन को न निकलने दे, वह वृद्धावस्था से युवा हो जाता है। मुख, नासिका, नेत्र, काम इनको पूर्वोक्त विधि से अपनी अंगुलियों से रोके, यही तत्वोदव (षण्मुखीकरण) अभीष्ट होता है। इससे योगी जगत में तत्वों के परस्पर हेलमेल में पृथक् मार्ग दर्शन करता हुआ तत्वों के रूप, गति, स्वाद, मण्डल, लक्षण इन सबको जान लेता है। निष्कामता, निश्चिन्तता से; वासनाओं के त्याग से; शुद्ध योगी, अनायासकाल पर विजय प्राप्त कर लेता है।

विश्वज्ञान दर्शन का जिज्ञासु योगी, १ प्रहर इस उपर्युक्त प्रकार से समाधि में टिक जाये, तो वह शक्ति दिव्य नेत्रों से उसे दृष्टिगोचर होती है। उसकी आयु नित्य ३ घड़ी के प्रमाण से बढ़ती चलती है। योगी पद्मासन बांधकर गुदा में स्थित (अपान) वायु को रोककर, उसे ऊपर ले जावे, अपान रन्ध्र में स्थिर हुए, अपान को प्राण के साथ रोकते हुए, दोनों को मिला दें। जब अपान प्राण, एक हो जावें, तब सुषुम्नारन्ध्र (कुम्भक) में पहुंचा दे, तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर, आकाश मार्ग (ऊर्ध्वगति में) छोड़ दे अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र भेदन कर प्राण का उत्सर्जन करे; तो कैवल्यमुक्ति प्राप्त कर, सच्चिदानन्दघन स्वरूप में लीन हो जाता है। इस "प्राणविद्या" के ज्ञाता का वही परमोच्चस्थान है जो वेदों में ॐकार का, ब्राह्मणों को सूर्य का है। इन तीनों नाड़ियों के ज्ञाता "क्रिया योगी" तत्ववेत्ता के तुल्य, लक्ष, कोटि रसायनें भी नहीं हो सकती हैं यह श्रुति, वेदसम्मत "प्राणविद्या" का विवेचन है। उपनिषदों में वर्णित "प्राणविद्या" का दिग्दर्शनमात्र, निम्न प्रकार है। उससे अन्त में ब्रह्मवेद की "प्राणविद्या" को पढ़ें और यत्न से सद्गुरु द्वारा जानकर जीवन में उतारें तो अमृतपान (अमरत्व) परमपद लाभ का सौभाग्य हो सकता है।

अथ प्राणविद्या—

प्राण की श्रेष्ठता—"प्राणोब्रह्मेतिव्यजानात्, प्राणाद्धयेवखल्विमानिभूतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवन्ति, प्राणं प्रयंत्यभिसं विशंतीति"। (तै० उ०) प्राण ही ब्रह्म है, इसी से ये भूत उत्पन्न होते हैं, प्राण से ही जीवित रहते हैं और अन्त में प्राण ही में आकर मिल जाते हैं। "स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणश्च। आदित्योह वै प्राणो, रयिरेवचन्द्रमा, रयिर्वाएतत्सर्वं यन्मूर्तश्चामूर्तश्च, तस्मान्मूर्ति रेव रयिः"। (प्र० उ०) सर्वप्रथम प्राण और रयिशक्ति ही प्रगट हुए सूर्य (पूरक) प्राण, चन्द्र (इडा) रेचक रयि हैं। देह में सीधी बगल प्राण है, बांई रयि है, ये दोनों एक दूसरे के अन्दर व्यापक हैं। ये प्रजापति हैं। "प्राणो वाव ज्येष्ठश्चश्रेष्ठश्च" (छां० वृ० आ०) प्राण ही सबके मुख्य और श्रेष्ठ है। "प्राणो वै बलं, तत्प्राणे रतिष्ठितम्" (वृ० आ०) प्राण ही बल है, वह प्राण में रहता है। "प्राणो वा अमृतोहम्। प्राणोवैसत्यम्। प्राणोवैयशोबलम्।" प्राण ही अमृत, सत्य, यश और बल है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राण का उत्पत्ति स्थान—"आदित्यउदयनयत्प्राचींदिशंप्राविशतितेनप्राच्यां प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ।" सूर्योदय में सभी दिशाओं में सूर्य किरणों द्वारा प्राण रखा जाता है । "स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते ।" यह सूर्य ही प्राणरूप अग्नि (तेज) है ।

प्राणस्तुति—एषोऽग्निस्तपत्येषा सूर्य एव, पर्जन्योमघवानेष वायुरेष, पृथिवीरयिर्देवः सदसच्चामृतंच्चयत् ॥१॥ अरा इवरथानाभौ प्राणेसर्वंप्रतिष्ठितम् । ऋचोयजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥२॥ प्रजापतिश्चरतिगर्भेत्वमेवप्रतिजायते । तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा वलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥३॥ देवानामसिवह्नितमः पितृणां प्रथमास्वधा । ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥४॥ इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसारुद्रोऽसिपरिरक्षितः । त्वमन्तरिक्षे चरसिसूर्यस्त्वं ज्योतिषांपत्तिः ॥ यदात्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजाः । आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नंभविष्यतीति ॥५॥ व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ताविश्वस्यसत्पतिः । वयमाद्यस्यदातारः पितात्वंमातृरिश्वनः ॥६॥ यातेतनूर्वाचिप्रतिष्ठिता याश्रोत्रे या च चक्षुषि । या चमनसि सतताशिवां तां कुरुमोत्क्रमीः ॥७॥ प्राणस्येव वशेसर्वंत्रिदिवेयत्प्रतिष्ठितम् । मातेव पुत्रान् रक्षस्वश्रीश्च प्रज्ञाश्चविधेहि न इति ॥८॥ (प्र०उ०)

यह प्राण–अग्नि, वायु, सूर्य, पर्जन्य, इन्द्र, पृथिवी, रयि आदि है । इसी के आधार से ऋचा, यजु, साम, यज्ञ, छत्र, ज्ञान, रथ की नाभि के अरों की भांति जुड़े हैं इन सभी सार्वभौमविशिष्टताओं वाला तू ही व्रात्य, एक ऋषि, विश्वेश्वर है । त्रैलोकी का सर्वस्व तू ही है, माता की भांति तू संरक्षण करते हुए ओज, बल, तेज, प्रज्ञा एवं प्रकाश हमें प्रदान कर हमारा कदापि साथ न छोड़ना ।

"प्राणो वैरं प्राणेहीमानिसर्वाणिभूतानि रमन्ते, प्राणोवाऽउक्थंप्राणेहीदं सर्वमुत्थापयति ॥१॥ प्राणो वै यजुः प्राणेहीमानिसर्वाणिभूतानियुज्यन्ते ॥१॥ प्राणो वै साम प्राणेहीमानिसंर्वाणिभूतानिसम्यञ्चि । प्राणोवैक्षत्रं प्राणोहिवैक्षत्रं त्रायते ॥२॥ (वृ० उ०) प्राण में ही सब भूत रमते हैं, यही सबको उठाता है, इसी में सब भूत संयुक्त होते हैं, इसी में सबभूत सम्यक् रीति से रहते हैं । यही क्षत्र है, सकटों से, काल से रक्षा करता है । "प्राणोहपिता, प्राणोमाता, प्राणोभ्राता, प्राणःस्वसा, प्राणआचार्यः, प्राणो ब्राह्मणः ॥ (छा० उ०) प्राण ही पितादि समस्तहितकर्ता बान्धव है ।

प्राण में लोक—"वागेवायं लोकः मनोअन्तरिक्षलोकः प्राणोऽसौलोकः ॥" (वृ० उ०) यह वाणी भूलोक, मन, भुवर्लोक और प्राणस्वर्लोक है । इसी कारण "प्राणविद्या" से स्वर्लोक की प्राप्ति होती है । यह सूक्ष्म रूप से उपनिषदों में वर्णित "प्राणविद्या" का महत्व है । इसी कारण "प्राणविद्या" ही सर्वोच्च फलदायिनी, संजीवनप्रदायिणी, महान अमोघ, निष्काम निरन्तर जागने वाली, रक्षा करने वाली, काल से, भय से रक्षा करने वाली जीवनीय शक्ति है ।

असुनीति—राजनीति, गृहनीति, समाजनीति की भांति वेदों में "जीवन का मार्ग" दर्शन करने वाली "असुनीति" का वर्णन है । "असुनीति" प्राणधारण की नीति के ज्ञान होने पर, हीनचक्षुशक्ति, पुनः उत्तम सूक्ष्मतर दृष्टि प्राप्त कराने में समर्थ होती है । प्राण निकलने की सम्भावना होते ही, प्राण पुनःस्थिर किया जा सकता है । भोगने की शक्ति की असमर्थता होने पर भी भोग भोगने की सामर्थ्य लाई जा सकती है । मृत्यु के पास आ जाने पर भी, दीर्घायुष्य एवं सूर्य दर्शन किये जा सकते हैं । यह ऋग्वेद की घोषणा कदापि व्यर्थ सिद्ध नहीं हो सकती । "असुनीतेपुनरस्मासु चक्षुः, पुनः प्राणमिहनोधेहिभोगम् । ज्योक्पश्येमसूर्यमुच्चरन्तमनुमतेमृडया नः स्वस्ति ।" (ऋ० १०।५९।६) हे असुनीते ! यहां हमारे अन्दर पुनः चक्षु प्राण, भोग, निरन्तर सूर्य दर्शन, सुख और पूर्ण आयुष्य प्रदान करो ।

"असुनीतेमनो अस्मासुधारय, जीवातवेसुप्रतिरानआयुः । रारन्धि नः सूर्यस्यसंदृशि, घृतेनत्वंतन्वं वर्धयस्व ।" (ऋ० १०।५९।५) हे असुनीते ! हम मनःशक्ति प्राप्त करें, हमारी दीर्घायु हो, सूर्य का निरन्तर दर्शन करें, तु प्राणरूप, वीर्य, घृत से हमारे बल, तेज पुष्ट कर ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राण की प्रतिष्ठा— "विश्वस्मैप्राणायापानाय व्यानायउदानाय प्रतिष्ठायैचरित्राय" । (य० १३।१९) विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायविश्वं ज्योतिर्यच्छ" । (य० १३।१४) "प्राणायम्वाहापानायस्वाहा व्यानायस्वाहा ।" (य० २२।२३) प्राण, अपान, व्यान उदानादि दशों प्राणों की प्रतिष्ठा के लिये इन्द्रियगण के, नश्वरभोगों का सर्वतोभावेन परित्याग करके सर्वेश्वर प्राण (वीर्य) की शक्ति सम्वर्द्धन करना परमावश्यक, पुनीत अनिवार्य प्रथम कर्त्तव्य है ।

प्राण की उपासना—"आयुर्यज्ञेन कल्पतां, प्राणोयज्ञेनकल्पतां" (यजु० ९।२१) "प्राणश्चमेऽपानश्च मे व्यानश्च मे असुश्च मे यज्ञेनकल्पताम् । (य० १८।२) "प्राणश्च मे यज्ञेनकल्पताम् । (य० १८।२२) मेरी आयु "प्राणयज्ञ" से बढ़े प्राणवीर्य से समर्थ हो, मेरे दसों प्राण, प्राणायाम द्वारा बलिष्ठ हों, मेरा प्राण "आत्मयज्ञ" ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मप्राप्ति के हेतु समर्पित हो ।

प्राण दाता अग्नि—"प्राणदाऽपानदाव्यानदावर्चोदा वरिवोदाः, प्राणपामेऽपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्चमे । वाचो मे विश्वभेषजोमनसोऽसि विलायकः ।।" (य० २०।३४) परमात्मा, आत्मा (जीवात्मा) तू प्राण, अपान, व्यान, तेज का संरक्षण, बल, ओज, तेज, ब्रह्मवर्च, स्वातन्त्र्य प्रदाता, चक्षु आदि इन्द्रियों का रक्षक, मन, अन्तःकरण के पापों को नष्ट करने वाला, वाणी को प्रवृद्ध, पवित्र करने वाला हो, इस प्रकार प्राण की बलिष्ठता से इन्द्रियों का विकाश और बलिष्ठता होती है । (य० ४।१५) "पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनर्प्राणः पुनरात्माम आगन् । पुनः चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् । वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपाऽग्निर्नः पातु दुरिता दवद्यात् ।।" मेरा प्राण, मन, आयुष्य, प्राण, आत्मा, चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियें पुनः मुझे प्राप्त हुए हैं । शरीर रक्षक, सर्वहितकर्त्ता, आत्मा, पापों से हम सबकी रक्षा करे । हमारे प्राण का विश्वसृष्टा, विश्वव्यापी, विश्वात्मा प्राण से सम्बन्ध है, उसी की शक्ति प्राण की साधना "प्राणविद्या" की रीति से हमारी सार्वभौम, रक्षक, अमोघ शक्ति है ।

विश्वव्यापक प्राण—"स प्राणः प्राणेनगच्छताम् ।" (य० ६।१८) "सं ते प्राणोवातेनगच्छताम् (य०६।१०) अपना प्राण अन्तरिक्ष में व्याप्त सार्वभौम प्राण से संयुक्त होकर श्वास, उच्छ्वास, पूरक, रेचक द्वारा प्रविष्ट होकर स्थिर (कुम्भक) होवे । श्वास उच्छ्वास द्वारा ही प्राण, अपान के योग से अमृतमार्ग बनता है ।

पीछे सुषुम्ना (सरस्वती) के प्रवाह में, क्रिया योग "समाधिस्थ ध्यान का उल्लेख हो चुका है, तदपि इस विषय में वैदिक विम्ब मंत्र उल्लेखनीय है । वेदों में "सरस्वती शब्द" सुषुम्ना का ही द्योतक है । शरीरस्थ दस प्राणों की प्रेरक "सुषुम्ना" ही है । सुषुम्ना के प्रवाह में ब्रह्म चिन्तन सर्वोत्तम, शीघ्र लाभप्रद होता है । इसी में ही प्राण की प्रेरक शक्ति है । यही परब्रह्मप्रेम का बल बढ़ाती हैं । इसी के द्वारा प्राणों का भी सामर्थ्य प्रगट होता है, यजु०२०।८० ।

सरस्वती में प्राणः—आश्विनातेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बले मेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ।। अश्विदेव तेज के साथ चक्षु, सरस्वती प्राणशक्ति के साथ वीर्य, इन्द्र जीवात्मा के लिए और बल के साथ, इन्द्रिय शक्ति अर्पण करते हैं । यहाँ सरस्वती "सुषुम्ना" की वाचक ही है ।

भोजन और प्राणः—धान्यमसिधिनुहि देवान् प्राणायत्वोदानाय व्यानायत्वा दीर्घामनु प्रसितिमायुषेधाम् ।। (य० १।२०) ।। प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसेपवस्वोदानाय मे वर्चसे पवस्व ।। (य० ७।२७) तू धान्य है देवों को धन्य कर । प्राण, अपान, उदान, व्यान के लिए, दीर्घायुष्य के लिए, प्राण के तेज की वृद्धि के लिए शुद्ध बन । सारांश शुद्ध धर्मनीति से उपार्जित, पवित्रता से सिद्ध, सात्विक मिताहार–अन्न' 'प्राणविद्या' की श्रेष्ठता के लिए, अत्यन्त अनिवार्य है । अन्यथा सिद्ध योगी का भी अधः पतन कर देता है ।

सहस्राक्ष अग्निः—(१७।७१) अग्ने सहस्राक्षशतमूर्ध्वञ्छतं ते प्राणाः सहस्रंव्यानाः । त्वं साहस्रस्यरायईशये । तस्मै ते विवेम बाजाय स्वाहा । हे सहस्राक्षाग्नि (आत्मा) तू शरीर में व्याप्त सहस्रों प्राणों वाला, सहस्रों व्यान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदानों वाला है । जो सब प्राण के अधीन हैं । प्राण की शुद्धि, पुष्टि से, पुष्ट ये प्राण निरोगता, दीर्घायुष्य प्रद होते हैं । इनको सभी ओर से समेट कर, अपान को ऊपर उडा कर, प्राण से मिलाकर, जब योगी सहस्रार चक्र में टिका देता है, तब काल पर विजय प्राप्त करता हुआ वृद्ध भी युवा हो जाता है, यही नहीं प्राण को कुम्भक में अवरूद्ध कर, विश्व को स्तम्भ करने में, सूक्ष्मगति, सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त कर लेता है । यही प्राण, पृथ्वी और द्युलोक के धारण में समर्थ है । (अ. वे. ४।११-१)

आथर्वणिक "प्राणविद्या" प्रातः शय्या त्याग से पूर्व, गुरु तथा परब्रह्म का ध्यान करें । अपने स्वर को देखें, जो स्वर उस समय बहता हो, उसी हाथ से स्वर को ऊपर खींचते हुये, तीन बार सहस्रार चक्र से कण्ठ पर्यन्त, तीन बार, परिक्रमा क्रम से, अभिमर्शन करें और इस मन्त्र को पढ़ें । अस्य कां. २ सू. १६ ब्रह्माऋषिः । प्राण, अपान, आयुर्देव ते एकावसानम्, २एकपदासुरी उष्णिक्, ४.५ एकपदासुरी गायत्री छन्दासि प्राणरायुरभिमन्त्रणे संकट निवारणे संरक्षणे अभयार्थे च विनियोगः ।

प्राणापानौ मृत्योर्मापातं स्वाहा । द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा । सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा । अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा । विश्वंभर विश्वेन मा पाहि स्वाहा ॥५

हे प्राण, अपानो मुझे मृत्यु से बचाओ । मुझे कदापि, कभी न छोड़ो । आधि भौतिक आधि दैविक उपद्रवों से द्यौ. पृथ्वी रक्षा करो । सूर्य, जठराग्नि, प्रकाश-ओज, वर्चस और दिव्य दृष्टि के साथ रक्षा करें । वैश्वानर, विश्वदेवों के प्रति कृत अपराध जनितारिष्ट से रक्षा कर । हे विश्वम्भर ! हे प्राणेश्वर विश्व-भरण-पोषण के द्वारा सर्वताभावेन मुझे पुष्ट और मेरा परिपालन कर । उपर्युक्त स्वर को ऊपर टिकाते हुए; जो स्वर बहता हो; उसी ओर के पैर को, पृथ्वी को नमस्कार करते हुए बिस्तर से नीचे रखे ।

[अ. वे. का. ५-९-७] अस्यसूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः वास्तोष्पतिः, आत्मा देवते । १.५ दैवी वृहती, २.६ दैवी त्रिष्टुप; ३.४ दैवी जगती ७ विराडुष्णिग्वृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती, ८ पुरस्कृति त्रिष्टुब्वृहतीगर्भा, चतुष्पदा व्यवसाना जगती छन्दान्सि बल, तेज, पुष्टि प्राप्तये, संरक्षणे, अभयार्थः प्राण, आत्मा, मन इन्द्रिय शरीर अनुमत्रणे उपस्थाने च विनियोगः ।

दिवे स्वाहा । पृथिव्यै स्वाहा । अन्तरिक्षाय स्वाहा । सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् । अस्तृतोनामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधेद्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ।

सूर्यतत्व, मेरा नेत्र, वायु तत्व प्राण, आकाश तत्व आत्मा और पृथ्वी तत्व मेरा पार्थिव देह है ऐसाअपराजित मैं, (आत्मा) अपने सर्वस्व को, सर्वतो भावेन, जो इस लोक या परलोक के अन्तर्गत है, उस सबके संरक्षणार्थ समर्पित करता हूँ । ऐसा करने से, पृथ्वी अन्तरिक्षादि के उत्पातों से संरक्षण होता है । यह घर से बाहर समीप या दूर की कैसी भी स्थली, जली, अन्तरिक्ष की यात्रा के प्रारम्भ में करे, और किसी भी प्रकार के वाहन पर सवार होने से पूर्व, वहते स्वर के पैर को, स्वांस ऊपर चढ़ाकर, बाहन पर रखें, नद, नदी, समुद्र पार करने में भी करे, तो डूबन का अपना भय तो जायेगा ही और सवारों की भी रक्षा होती है । कैसी भी दुर्घटनायें नहीं होती हैं । अथाह जल पर स्थलवत् चलने, आकाशचारियों की जैसी गति भी होती है । संग्राम में कवच जो आगे है, धारण करते समय. बहते स्वर के हाथ मे स्वांस खींचकर धारण करे, उसी प्रकार शस्त्र उठायें, शस्त्र खोलें, लेखक लेखनी उठायें, दवात से स्याही भरना प्रारम्भ करें, तो सभी संकटो से पूर्ण सुरक्षा और हर्ष, वल, विजय प्राप्त होने में लेशमात्र संशय नहीं । इस प्रकार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्ऋति पास, सभी दुर्व्यसन, दुर्व्यसनी, भ्रम-भ्रामक, आलस्य, छल, छली, वध, बधिक, ईर्ष्या, ईर्ष्यालु, राग, द्वेषों, अनाचारों, सभी प्रकार के वन्धनों से संरक्षणार्थ उपर्युक्त प्राणक्रिया, निम्न मंत्र से अपने, प्राण, आत्मा को अनुमान्त्रत करें।

अस्य कां. १९ सू. ४४ भृगुः ऋषिः वरुणः देवता, चतुष्पदा शंकुमतिउष्णिग्छन्दः। उपर्युक्त प्रयोजने प्राणानुमन्त्रणे विनियोगः।

प्राणं प्राणं त्रायस्वासो असवेमृडा निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च। वातः प्राणः सूर्यश्चक्षु दिवस्पयः।

इसी के आधार पर योगियों को अनिवार्य यम-नियमों का सृजन् और निर्देश है। विश्वरूप सागर (मानसरोवर) का "हंस) जीवात्मा, भूतत्व और समुद्र का रेत हिरण्यवत् प्रकाशवान् (देदीप्यमान्) 'भौमायन' प्राण का चाबुक, (योगक्रिया) से ही प्राण और अमृत पान की शक्ति उपलब्ध करने के लिये, अमृत पान कर अमरत्व, युवापन, संजीवन प्रदान करने के लिये "अश्विनी" देव प्राण, अपान, नासिका द्वारा प्रविष्ट होकर संरक्षण, संवर्द्धन तथा पाप के निस्सारणार्थ श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया को प्रवृद्ध करते हैं। यही तेज और चेतना प्रदायक है।

अस्य कां. ९ सू. १ मं. २१४ अथर्वाऋषि। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुपाभी पक्तिः छन्द उपर्युक्त कर्मणि प्राण सम्वर्द्धये अमृतावाप्तये, अमरत्वे, संजीवने पुष्टयर्थे प्राणायाम्विघ्नः निवारणे प्राण अनुमन्त्रणे विनियोग।

महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्यं त्वोत रेतं आहुः।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम्॥२
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् गर्भश्चरति मर्त्येषु॥४

सुषुम्ना जो प्राणों की जननी, पोषण करने वाली, अष्टचक्रों से उत्पन्न, इन्द्रियों और प्राणों की रक्षा, बल, तेज प्रदायिनी अमृत की कुञ्जी है, जहां से जिससे प्राण प्रेरित होता है, उसकी साधना से विश्वप्राण से योग हो सके इस हेतु अनुमन्त्रित करते है। इससे रोगों का निराकरण, मृत्यु से रक्षा, दीर्घायुष्य, यौवनशक्ति और अमरत्व की प्राप्ति होती है। निम्न मन्त्र से प्राणों को स्वतन्त्र बनाने हेतु अङ्गन्यास, बहते स्वर के हाथ से स्वर खींचकर करे, और इन्हीं से इन्द्रीयों के क्षीण बल को पूर्ण करें।

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः।
उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुपवयं प्राणंहवा महे॥

विविध रोग व्याधि के कारण इन्द्रिय और प्राणों की क्षीण शक्ति को पुनः परिपूर्ण कर दीर्घायुष्य ब्रह्मचर्य का सम्बर्द्धन करते हुये मेरी नासिका में प्राण स्थिरता से रहे, मैं आवाहन करता हूं।

प्रविशतं प्राणापानावनड्वाहा विव व्रजम्।

मैं व्याधियों को दूर करता हुआ वृद्धावस्था के परम बल प्राण को बुलाता हूँ। मेरे क्षीण (हीन) बल, प्राण, अपान, सवल पुनः प्रविष्ट हों।

इहै व प्राणः सख्ये नोऽस्तु तं त्वां परमेष्ठिन्, पर्यग्निरायुषा वर्चसादधातु। १३।१।१७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे शरीर में प्राण बलिष्ठ होकर रहे, अल्पायु में दूर न हो, दीर्घायुष्य प्रदाता हो, और परमेष्ठी की उपासना प्राप्ति में सहायक हो। प्राणविद्या द्वारा योगी इस प्रकार स्थापित करे।

पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।

इससे मरणावस्था में गई प्राणशक्ति को तथा क्षीण इन्द्रियों के बल को दृढ संकल्प से मैं पुनः अपने अन्दर बुलाकर दृढता से स्थापित करता हूं।

प्राणविद्या, संजीवनीविद्या, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्मकवच तथा ज्ञानकवच धारण में सर्वप्रथम प्राण, आत्मा एवं इन्द्रिय, शरीरानुमन्त्रण करते हुए आत्मरक्षा करें।

अथर्व कां० २ सूक्त १६ ब्रह्मा ऋषिः। प्राण, अपान, आयुर्देवते १-३ एकपदा आसुरीत्रिष्टुप् २ एकपदासुरी उष्णिक् ४-५ एकपदासुरी गायत्री छन्दांसि दीर्घायुष्ये नैरुज्ये प्राणानुमन्त्रणे जपे होमे च विनियोगः।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ।१। द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ।२। सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ।३। अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ।४। विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥५

कां० २ सू० १७ ब्रह्माऋषिः। प्राणः, अपानः, आयुर्देवते। एकावसानम् १६ एकपदासुरी त्रिष्टुप् ७ आसुरी उष्णिक् छन्दांसि प्राणानुमन्त्रणे, क्षीणप्राण, बल, आयुष्यपुनः संस्थापने सम्बर्द्धने, प्राणेन्द्रियानुमन्त्रणे सूर्योपस्थाने आत्मयज्ञार्पणे च विनियोगः।

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ।१। सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ।२। बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ।३। आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ।४। श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ।५। चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ।६। परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७

उपर्युक्त भांति से प्राणानुमन्त्रण, क्षीण बलशक्ति, ओजसंस्थापित कर प्रभु का ध्यान करे।

कां० ७ सू० ७१ अथर्वाऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्द परब्रह्मोपस्थाने विनियोगः।

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि। धृषद् वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥१

हे परब्रह्मन्! पूर्णबलिष्ठ तेजोमय देव! हम सब परिपूर्ण, ज्ञानी, शत्रुदमनकर्ता, विनाशकहन्ता आप सर्वेश्वर की नित्य निरन्तर सर्वाङ्गों सहित स्तुति करते हैं, इन सभी गुणों से हम परिपूर्ण हों।

अ० कां० १९ सू० ६० से सर्वाङ्गों के क्षीण बल, ओजादि को पुनस्संस्थापित और प्रकृष्ट करें।

तदनन्तर कां ५ सू० १० मन्त्र ८ से मनादि इन्द्रियगण को अभिमर्शन करते हुए निग्रह करे। इसी के साथ को ६ सू० ५३ "द्यौश्चमे" तथा कां० ७ सू० ६९ "पुनर्मैत्विंयं" से ब्रह्मानुमन्त्रण कर समाधि में ध्यान लगायें।

वाङ् म आसन् नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहुबाह्वोर्बलम् ॥१
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः। प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ । सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा । (कां० ५।१०।८)

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥१
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥२
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विरिष्टम् ॥३ (कां० ६।५३)

तेजोमय ज्ञानस्वरूप प्रभो ! मैं पूर्ण परिपक्वविज्ञानयुक्त मन, वायु से एकादश प्राणापान सूर्य से नेत्र दिव्यदृष्टि, अन्तरिक्ष से कर्णनाद, पृथिवी से नीरोगपुष्टगात्र, मनन से युक्तसदसत्‌द्विवेचिनी पराविद्या के साथ दिव्य प्रगल्भवाणी प्रदान हेतु प्रार्थना करता हूं ।

सूर्यं चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे । अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ।११।८।३१

कां० ७ सू० ६७-६९ "पुनर्मैत्विन्द्रियम्"—मुझे इन्द्रियशक्ति पुनः प्राप्त हो. मुझे जीवात्मा, आत्मा, परमात्मा (सूक्ष्म प्राण, महाप्राण शरीर) पुनः प्राप्त हो, मन बुद्धि, एकादश प्राण, इन्द्रियों की चैतन्याग्नियां यथायथा योग्य स्थानों में यहां (स्थूल) ही में पुनस्संस्थापित, समर्थ हों । कां० ७ सू० ६६-६८ "यद्यन्तरिक्षे" जो अन्तरिक्ष में, वायु में, वृक्षों, घासादि में नित्य निरन्तर रहता है, जो प्राणिमात्र में प्रस्फुटित हो प्रगट होता है, वही ब्रह्म हमें पुनः प्राप्त होता है। तदनन्तर कां० ५ सू० १० *"अश्मवर्म" मेऽसि रक्षा कवच धारण करें । तदनन्तर बृहच्छान्तिगण में उल्लिखित "संजीवनीविद्या तथा आयुष्यगणों" में विहित अ० कां० २ सू० २९ से गुरु, ऋषि, ज्ञानी वृद्ध तपोधन आबालवृद्ध रुग्ण, व्याधित का दक्षिण हस्त से हस्ताभिमर्शन करें । भाव—हे देवगणो ! अग्नि, सूर्य और बृहस्पति इस प्राणी के पार्थिव शरीर के लिये ऐश्वर्य रस, बल, ओज, दीर्घायुष्य, ज्ञानदातादेव, ज्ञान रचयिता, प्रजा प्रेरक देव, धन, पुष्टि, उत्तमसन्तति, दक्षता इन्द्रदेव ! विजय के साथ बाह्याभ्यन्तरारिक्षय करें, यह क्षुधा, तृष्णा से उत्पीड़ित न हो, सभी उपभोग्य पदार्थों के साथ शक्ति दें । मैं चिरस्थिर कल्याणमयी "प्राणविद्या संजीवनीविद्या, ब्रह्मविद्याओं" द्वारा तेरे हृदय को परिपूर्ण तृप्त करता हूँ । तू नीरोग, स्वस्थ, चिरायुष्य, तेज, सद्बुद्धि, सत्कर्म, सच्छक्ति, अजर, अमर, अभ्युदय, ऐश्वर्य के साथ इस ब्रह्मपुरी में विवेक के साथ निवास कर । यह आशीर्वाद मन्त्र के अभिमर्शन के साथ दें, इसी से अभिमन्त्रित कर पुरोडाश या पञ्चगव्य दें ।

अथ ब्रह्म कवच—

उत त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति । तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ।१३।१-६

ज्ञानमय तेजोमय ब्रह्म के प्रकाश से मन्त्रघोष और समस्त यज्ञारम्भ होते हैं । सूर्य किरणें सर्वत्र फैलकर समुद्र पार तक प्रकाश करती हैं ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति । हन्त्वैनानुप्रदंहत्वरिर्योनः पृतन्यति । अधासपत्नान् मामकानग्ने स्तेजोभिरादिषि । अग्ने सपत्नानधरान्पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।

जो दृश्य सूर्य ज्ञानस्वरूप स्वयं ब्रह्मस्वरूप है, वही "ब्रह्म नाम" मन्त्र स्तुतियों से परिवर्द्धित किया जाता है। वह हम पर आक्रमणकारी शत्रु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर,ईर्ष्या द्वेषादि) को पूर्णरूपेण भस्म कर दे, अत्यन्त सामर्थ्यवान् वज्र (ब्रह्मास्त्र) से नीचे कुचलकर नष्ट कर दे, कष्टप्रद सजातीय शत्रुओं को देव-गुरु, ज्ञान, से, व्यथित कर दें।

स्वार्विदोरोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।

इसी आत्मज्ञान स्वरूप सूर्य मन्त्रों से उष्णता, सर्दी और यज्ञ का मूल अग्नि प्रदीप्त किया जाता है। यह सूर्य चक्र में ही प्रदीप्त होता है।

यश्चगांपदास्फुरति प्रत्यङ् सूर्यंश्चमेहति, तस्य वृश्चामि ते मूल मनच्छायां करवोऽपरम् ।

जो गौ को पैर से ठुकराता है (वे वाणी का अनादर करता है) किंवा सूर्य के सन्मुख मल-मूत्र त्याग करता है वह दण्डनीय है।

नमस्ते अस्तुपश्यत पश्यमापश्यत । अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मण वर्चसेन ।

यही देव धाता, विधाता अग्नि, वायु रुद्र महादेवादि है, उसी में सब देवों का वास है, वह एक निस्संदेह एक ही है जो यह जानकर धारण करता है, वही तेजस्वी, वर्चस्वी समस्तभोगों से सम्पन्न होता है।

प्रजानन्तः प्रतिगृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् । दिवंगच्छप्रतितिष्ठाशरीरैः स्वर्गयाहि पथिभिः देवयानैः ।

ज्ञानी संचरणशील प्राण को सर्वत्र से समेटकर, स्वाधीन करें, वे शरीर से सूदृढ़ हो, दिव्यमार्ग से सीधे स्वर्ग को जा, प्रकाशस्थान प्राप्त करें।

रुजश्चमावेनश्चमाहासिष्टांमूर्धावचमा विधर्मा च मा हासिष्टाम् । बृहस्पतिर्मे आत्मा नृमणा नाम हृद्यः । असंतापं मे हृदयम् मामां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहायपरागात् । सूर्योमाह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद्यमोमनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ।

यह दृढ़ संकल्प से धारण करें, तेज़ और कान्ति, स्वस्थ मस्तिष्क, विशेषधर्म, मेरा परित्याग कदापि न करें। मेरा हृदय सन्तापरहित हो, प्राण, अपान मेरा परित्याग कर दूर न चले जावें। दिन में सूर्य, रात्रि में अग्नि पार्थिव से वायु अन्तरिक्ष से, यम मनुष्यों से, सरस्वती पार्थिव पदार्थों, संकटों, भयों से मेरी रक्षा करें। मित्र वरुण मुझे प्राण, अपान और अग्नि मुझ में बल धारण करायें।

अस्य कां १९।४३ ब्रह्मा । ब्रह्म, बहुदैवत्यम् । त्र्यवसाना शङ्कुमती पथ्यापङ्क्तिः । दीक्षाग्रहणे, उपस्थाने च विनियोगः ।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह ।
सूर्यो॑ मा॒ तत्र॑ नयतु॒ चक्षुः॒ सूर्यो॑ दधातु मे । सूर्या॑य॒ स्वाहा॑ ॥३
यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह ।
च॒न्द्रो मा॒ तत्र॑ नयतु॒ मन॑श्च॒न्द्रो द॑धातु मे । च॒न्द्राय॒ स्वाहा॑ ॥४
यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह ।
सोमो॑ मा तत्र॑ नयतु॒ पय॒ः सोमो॑ दधातु मे । सोमा॑य॒ स्वाहा॑ ॥५
यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह ।
इन्द्रो॑ मा॒ तत्र॑ नयतु॒ बल॒मिन्द्रो॑ दधातु मे । इन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ ॥६
यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह ।
आपो॑ मा॒ तत्र॑ नयन्त्व॒मृत॒ं मोप॑ तिष्ठतु । अ॒द्भ्यः स्वाहा॑ ॥७
यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह ।
ब्र॒ह्मा मा॒ तत्र॑ नयतु ब्र॒ह्मा ब्रह्म॑ दधातु मे । ब्र॒ह्मणे॒ स्वाहा॑ ॥८

कां० १९ सू० ४३ ''यत्रब्रह्मविदा'' दीक्षा और तप के साथ, जहाँ ब्रह्मज्ञानी जाते हैं; अग्नि वहाँ ले जावे। अग्नि मुझे मेधा बुद्धि दे। मैं अग्नि की शरण हूं। (२) वायु मुझे वहाँ ले जावे, मेरे अन्दर वायु प्राणों को धारण करे। (३) सूर्य मुझे वहाँ ले जावे, और मेरे दिव्य नेत्र धारण करायें। (४) चन्द्र मुझे वहाँ ले जावे और मुझ में (दिव्य) मन संस्थापित करें। (५) सोम मुझे वहाँ ले जावे, (६) इन्द्र मुझे वहाँ ले जावे, और मुझे बल दे। (७) दिव्य आप मुझे वहाँ ले जावें और अमृत पान करायें। और मुझे दुग्ध देवें। (८) ब्रह्म मुझे वहाँ ले जावे: और मुझे ब्रह्मज्ञान प्रदान करें।

कां० १९। सू० ५९ ऋषि ब्रह्मा। अग्नि देवता। त्रिष्टुप्, गायत्री छन्दांसि, आत्मतत्वसशोधने आत्मयज्ञे जातवेदाग्न्युपस्थाने च विनियोगः।

कां० १९। सू० ६० ब्रह्मा। वाक्, अङ्गानि च, १ पथ्यावृहती, २ ककुम्भतीपुर उष्णिक् छन्दासि भूतत्व आत्मतत्वसंशोधने उपस्थाने च विनियोगः।

त्वम॑ग्ने व्रत॒पा अ॑सि दे॒व आ मर्त्ये॒ष्वा । त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑ ॥१
यत् वो॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॑ वि॒दुषां॑ देवा॒ अवि॑दुष्टरासः ।
अ॒ग्निष्टद् वि॒श्वादा पृ॑णातु वि॒द्वान्त्सोम॑स्य॒ यो ब्रा॑ह्म॒णाँ आ॑वि॒वेश॑ ॥२
आ दे॒वाना॒मपि॒ पन्था॑मगन्म॒ यच्छ॒क्नवा॑म॒ तद॑नु॒प्रवो॑ढुम् ।
अ॒ग्निर्वि॒द्वान्त्स य॑जा॒त् स इद्धोता॒ सोऽध्व॒रान्त्स ऋ॒तून् क॑ल्पयाति ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राष्ट्र के रक्षक, सैनिक, एवं प्राणवेत्ता योगीजन, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, द्वेष, तथा समस्त आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक, अभिचारादिकर्त्ता, शत्रुदल और काल पर विजय प्राप्ति के लिए इन्द्रियों और प्राणों का अनुमन्त्रण करें और इस मन्त्र से रक्षा कवच, योगी (ब्रह्म कवच) धारण करें। (का० ५।१०) अश्मवर्म मेऽसि।※ (१) यह दृढ़ सङ्कल्प भी करते हुए योगी अपने प्राणों को सभी ओर से समेटकर, सुषुम्ना द्वारा प्राणों को सहस्रार चक्र में ले जाकर टिकायें। राष्ट्र रक्षक **सर्पमुद्रा** से रक्षभूमि में जा डटें। निम्नमन्त्र पीछे पढ़ें।

अस्य का० १९। सू० ५१–ब्रह्मा ऋषिः। आत्मा सविता च देवते, अपरिपूर्णत्वापन्ने, प्राणा, आत्मानुमन्त्रणे उपस्थाने च विनियोगः। सविता की प्रेरणा से, अश्विनों के भुजाओं से, पूषा के हस्तों से उत्पन्न मैं इस कर्म का प्रारम्भ हूँ।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥१

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥२

मैं जीवात्मा, आत्मा, नेत्र, कर्ण, प्राण, अपान, व्यान सहित सर्वथा परिपूर्ण (ब्रह्म) हूँ। इससे योगी ब्राह्मी-गति को, राष्ट्रीय प्रहरी ब्रह्म (सूर्य) गति को प्राप्त कर तेजोमय, अविनाशी को प्राप्त करता है।

मनस्थिरीकरण—योगी निम्न मन्त्र से ब्रह्म कवच धारण करे, और इन्द्रियों और प्राणों को अनुमन्त्रित कर, इन्द्रियों का निग्रह करके "प्राणविद्या" के द्वारा मन और बुद्धि को क्षीण वृत्तियों से हटाकर, दृढ़ सकल्प से इधर-उधर भटकने से बन्दकर, ब्रह्मचिन्तन में इस मन्त्र से लगायें।

"प्राणाय नमः" (११।६) ये ३ अर्थसूक्त हैं। "आभस्व" (८।२) "विष्ठासहिम्" (१७।१) से उपनयन में ब्रह्मचारी की नाभि का दीर्घायुष्यार्थ अभिमर्शन करें। दायें कान में मन्त्रदीक्षा दें। शरीर का अभिमर्शन करे। (कौ० ७।६) इससे पूर्व का० १९ सू० ५९ तथा ६० से क्रमशः आत्मान्यास, अङ्गन्यास, इन्द्रियन्यास करें।

समस्त विघ्न शमनार्थ महाशान्ति लक्ष्य होम में 'भवाशर्वो" (११।६) की भाँति समस्त कर्म करें।

ग्रहयाग में (११।६) 'प्राणायनमः' के साथ 'सहस्त्रबाहु' (१९।६) केनपार्ष्णी (१०।२) से शनिग्रह दोष निवारण थरें। (शा० क० १५)।

कां ११।६ भार्गवो वैदर्भिः। प्राणः अनुष्टुप्, १ शकुमती, ८ पथ्यापंक्तिः। १४ निवृत, १५ भुरिक्, २० अनुष्टुप् गर्भात्रिष्टुप्, २१ मध्येज्योतिर्जगती, २२ त्रिष्टुप् २६ वृहतीगर्भा छन्दासि प्राणविद्या, सजीवनी विद्या, ब्रह्मविद्या एव उपर्युक्त समस्त कर्मसु वृहच्छान्तिगण कार्येषु प्राणानुमन्त्रणे, मार्जने, स्नाने, अभिमर्शने पुरोडासरसादि अभिमन्त्रणे अद्‌भुतदर्शन जातारिष्ट निवारण भैषज्ये होमे च विनियोगः। विषासहिम (१७।१) सूर्योपस्थान तथा 'आरभस्व' कां ८। २।१ संजीवनी विद्या 'आयुष्वगण में देखें।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२

यत्प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः। प्र वीयन्ते गर्भान्दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥३

यत्प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः। सर्वं तदा प्र मोदते यत्किं च भूम्यामधि ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम् । पशवस्तत्प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् । आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥७
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥८
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी । अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥९
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥१०
प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते । प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥११
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते । प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते । यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥१३
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा । यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥१४
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते । प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१५
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत । ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥१६
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् । ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥१७
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः । सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिल्लोक उत्तमे ॥१८
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः । एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥१९
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥२०
एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥२१
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२२
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः । अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥२३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः । अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥२४
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते । न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥२५
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥२६

अ० कां० ११ । सू० ४ : "प्राणाय नमो"—

(१) जिसके अधीन सारा विश्व है, उस सर्वेश्वर, विश्वाश्रयी प्राण के लिए मेरा नमस्कार है । (२) गर्जने वाले, मेघों में नाद करने वाले, मेघों में विद्युत के रूप में चमकने वाले, अमृत वृष्टि करने वाले प्राण ! तुम्हें नमस्कार है । (३) हे प्राण ! वर्षा ऋतु में जब तू औषधियों के सामने उद्घोष करता है, तब पृथ्वी का सर्वस्व प्रफुल्लित हो उठता है । (५) जब प्राण भूमण्डल पर वृष्टि करता है, तब अपनी निश्चयात्मक अभिवृद्धि की कामना से पशु-पक्षीगण हर्षित होते हैं । (७) (बाहर) आनेवाले प्राण को, तथा अन्दर जाने वाले प्राण को नमस्कार है । स्थिर रहने वाले और बैठने वाले तुझ प्राण को भी नमस्कार है । (८) हे जीवनदाता (प्राण) ! दोषापहारी (अपान) आगे बढ़ने वाले और पीछे हटने वाले, सब कार्य करने वाले प्राण ! तेरे लिए नमस्कार है । (९) हे प्राणी ! मेरा प्रिय शरीर तेरा प्रिय अंश है । उसके दीर्घ जीवनार्थ अपना औषध प्रदान कर । प्रिय पुत्र के साथ पिता के तुल्य ही प्राण सब प्रजाओं के साथ रहता है । प्राणाधार कर्त्ताओं और न धारण कर्त्ताओं (सभी का) ईश्वर प्राण ही है । (११) प्राण (शरीर से निकल जाने पर) मृत्यु और (शरीर में रहने पर) जीवन शक्ति हैं, इसी कारण सभी देव प्राण की उपासना करते हैं । क्योंकि सत्यवादी को प्राण ही उत्तम लोकों में स्थापित करते हैं । (१२) प्राण परम तेजस्वी, सबका प्रेरणा स्रोत होने से ही सबका उपास्यदेव है । सूर्य, चन्द्रमा, और प्रजापति भी प्राण ही हैं । (१३) प्राण चावल, अपान जौ हैं । प्राण ही मुख्य विजार (बैल) हैं । जौ में प्राण परिपूर्ण है और चावल को अपान कहा गया है । (१४) जीव ही गर्भ के अन्दर प्राण और अपान के व्यापार (व्यवहार) करता है । हे प्राण ! तेरी प्रेरणा से ही जीव पुनः उत्पन्न होता है । (१५) प्राण मातरिश्वा और वायु ही प्राण है । भूतः भविष्यत् और वर्तमान काल में जो भी कुछ है वह सब प्राण ही में प्रतिष्ठित है । (१६) हे प्राण ! जब तक तू प्रेरणा करता है (शरीर में हलचल करता रहता है) तभी तक १ आथर्वणी २ आङ्गिरसी, ३ दैवी और ४ मानवकृत औषधियाँ लाभदायक होती हैं । (१७) जब भूमण्डल पर प्राण वृष्टि करता है, तब सब औषधियाँ और वनस्पतियां बढ़ जाती हैं । (१८) हे प्राण ! जो तेरी शक्ति के ज्ञाता हैं और जिस प्राणी में तू प्रविष्ट होता है, वह मानव सभी लोकों में पूज्य, वन्दनीय है । (१९) हे प्राण ! जिस भाँति सारा प्राणिवर्ग सत्कार करता है, उसी भाँति वे यशस्वी हैं जो तेरी अपार सामर्थ्य का श्रवण करता है उसके लिए भी आत्मसमर्पण करते हैं । (२०) इन्द्रियादि में व्यापक प्राण ही गर्भ के अन्दर जाता है । जो पहिले हुआ था, वही पुनः उत्पन्न होता है, जो पूर्व हो चुका है, वह ही अब होता है और आगे भी होगा । अपनी सारी शक्तियों के साथ पिता ही पुत्र में प्रविष्ट होता है । (यह सब ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में तथा महाप्राणविद्या में पढ़ें, मनन करें) । (२१) हंसजल से ऊपर उठते समय एक पैर को नहीं उठाता । हे प्राणेश्वर ! यदि वह उस पाँव को भी उठा ले तो आज-कल रात्रि, दिन, प्रकाश और अन्धकार कुछ भी न हो, अर्थात् जीवन का ही अन्त हो जाय । (२२) आठ चक्रों से युक्त सहस्राक्षरों (सहस्रारदलकमल) का एक धुरी वाला, यह प्राणचक्र, आगे-पीछे हलचल करता है । इसी के अर्धभाग से तो समस्त भुवन उत्पन्न होता है, परन्तु शेष अर्द्धभाग किसका द्योतक है ? यह ज्ञातव्य ही है । (२३) हे प्राण! तुम सबके जनक, हलचलकर्त्ता विश्वेश्वर हो ऐसे सब अन्य जीवों में गतिमान, तुमको प्रणाम है । (२४) जन्म धारणकर्त्ता और हलचलकर्त्ता, विश्वात्मा, धैर्यमयप्राण, आलस्यरहित हो, आत्मशक्ति सम्पन्नता के साथ, सदा मेरे पास निरन्तर विराजमान रहे । (२५) सबके सो जाने पर भी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो खड़ा रहकर जागरूक रहता है और निश्चय ही तिरछा गिरता है, सबके सो जाने पर उसका सोना किसी ने भी नहीं सुना। (२६) हे प्राण ! मेरा परित्याग न कर। मुझसे दूर भी न जा। पानी के गर्भ के तुल्य हे प्राणी ! तुझे अपने जीवन के लिए अपने अन्दर दृढ़ता से बाँधता हूं।

कुण्डलिनी जागरण विधि : (सन्तों से श्रुत)—

(१) साधक को सर्वप्रथम नेती, धोती, वस्ति आदि क्रियाओं से देह शुद्धि करना चाहिये। (२) आठ प्रकार के प्राणायामों को योग्य अनुभवी गुरु द्वारा विधिवत् समझें। (३) महामुद्रा, महाबोध, महाबन्ध, विपरीत करणी, तारण परिधान, युक्तिचालन, शक्तिचालिनी आदि मुद्रा समझ कर प्राणायाम के साथ वन्धत्रय के साथ करना चाहिए, अन्यथा विपीत परिणाम सङ्कट में डाल देता है। (४) राजयोग विधि से षट्चक्रों में भावनायें भरें। (५) प्रातः देहशुद्धि के उपरान्त ५ से ६ बजे तक भात्रिका प्राणायाम दोनों प्रकार के ५ से २५ प्राणायाम तक करें। (६) शक्तिचालिनी मुद्रा उभय प्रकार की प्रत्येक ५ से १० तक। (७) ताड़न मुद्रा ४ प्राणायाम में १०१ तक (८) परिधान युक्तिचालन ४ प्राणायाम में १०१ तक (९) पश्चात् बांकी समय में षट्चक्र भेदन की मानसिक क्रियायें या संयम। पुनः सायं ४ बजे से ६ बजे रात्रि तक। (१०) महामुद्रा—प्रत्येक पैर पर ५ से २५ तक। (११) महाबन्ध प्रत्येक पैर ५ से २५ अक। (१२) महाबोध—उभय प्रकार का ५ से १० तक। (१३) विपरीतकरणी मुद्रा ५ से १० तक। (१४) शेष समय में षट्चक्रभेदन की क्रियायें राजयोग विधि से करें। यह गुरुबोधगम्य, श्रद्धा, मुमुक्षु ही के लिए उपयुक्त है।

प्रतिदिन अभ्यास के अन्त में (१) मैं पूर्ण आरोग्य स्वरूप हूँ। (२) मैं पूर्ण ज्ञान स्वरूप हूं। (३) मैं पूर्ण आनन्द स्वरूप हूं। (४) मैं पूर्ण सर्वोन्नति मूल हूं। (५) मैं काल, कर्म तथा माया से मुक्त हूं। (६) मैं अजर-अमर-अविनाशी निर्लेप, निर्बिकार, ब्यापक तथा शान्त स्वरूप हूँ। यह आत्मयज्ञ मानसिक सङ्कल्प से करे।

गुरु प्रभु कृपा से कुण्डलिनी जागरण हो जाने पर सहस्रार चक्र में अधिक देर तक प्राण को रोकने का नित्य, निरन्तर अभ्यास आवश्यक है। प्रायः साधन के बीच कभी-कभी प्राणवायु सुषुम्ना में ऊपर चढ़ जाने पर कटिदेश, वक्षःस्थल तथा कण्ठदेश में एक बन्धन सा बन जाता है उससे न घवरायें। प्राणवायु की निम्न गति के साथ वह बन्धन भी जाता रहता है। यदि क्रिया द्वारा पेशाव रुक जावे, तो पलाश पत्र पीसकर कन्द स्थान में लेप करे।

ब्रह्म कवच धारण—

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च। सहस्रायुः सुकृतश्च रेयम्।

मैं आत्मा प्रजापति के ज्ञानरूप कवच को धारण करता हुआ, सर्वद्रष्टा के बल, एवं तेज से परिपूर्ण होकर पूर्णायु पर्यन्त सुकर्मरत हूँ।

अह ब्रह्मणा वर्मणा ज्योतिषा वर्चसा च परिवृतः। ऋतेन गुप्त भूतेन भव्येन च गुप्तश्चरेयम्

मैं ज्ञान, आत्मरक्षा के पूर्ण सामर्थ्य, तेज, बल, से परिपूर्ण हो, सत्य से सतत सुरक्षित, भूत-भविष्यत्, वर्तमान में होने वाले कर्मों से सुरक्षित हो, सदाचार से युक्त ब्रह्मचिन्तवनरत होता हूँ।

पाप्मामममाप्रापत, मृत्युः मामाप्रापत। अह वाचः सलिले आदधात्।

पाप और पापी, मृत्युभय मेर पास अब कदापि न आयें, मैं अपनी पवित्र दृढ़ सङ्कल्प से वाणी को शुद्ध जीवनयुक्त करता हूं। तदनन्तर सङ्कल्प करे। 'सहस्रवीर्येण इमसृत्योः उत्पारयामसि''। हजारो वीर्य के बल वे इस मृत्यु के भय को पार कर सकेंगे।

''अवमुञ्च मृत्युपाशानशस्तिद्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि।'' इस प्रकार ''प्राणविद्या'' से योगी मृत्यु पाश और दुर्गति, अवनति पाशों के कारणों को निरस्तकर पूर्ण इन्द्रियबल के साथ युवा होकर दीर्घायुष्य और परमेष्ठी के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काश्यप वेश में, हिरण्यलोक का आनन्द लेता हुआ अमृतपान करता है। इसी सन्दर्भ में कां० ११ सू० ४ में विशद 'प्राणविद्या'' का प्राविधान है। इस "प्राणविद्या रक्षाकवच" "ज्ञानकवच" एवं ब्रह्मकवच" धारी योगी को काल भी प्रत्यक्षरूप में नमन करता है। "नचिकेता" और यम का सम्वाद कठोपनिषद् में सत्य और अनुकरणीय प्रमाण है। यही प्राणविद्या योगी का परम श्रेयस्कर सामर्थ्य है। योगी दोनों सन्ध्याओं में, तथा ठीक मध्याह्न में और मध्यनिशा में, एकान्त, निर्जन, पवित्र आसन से कुशायाऊर्ण आसन पर, मलमुत्र से निवृत्त हो, बिना भरे पेट से नित्य निरन्तर सद्गुरु के तत्वावधान में साधना करें, तो लोक परलोक के सभी अगम्य दुर्लभ कार्यों में सिद्ध योगी पूर्ण सफलता प्राप्त करते हैं।

—: ब्रह्मकवच धारण :—

"अश्मवर्म" (५।१०) ब्रह्माऋषिः। वास्तोष्पति देवता। यव मध्या निचृद्गायत्री छन्दः शाला निर्माणे, ग्राम वासे, पत्तनादि स्थापने, निर्माणे, पाषाण, अनुमन्त्रणे, स्थापने, ब्रह्मकरच ज्ञानकवच रक्षा कवचात्रधारणे रक्षोहणे च विनियोगः।

अ॒श्म॒व॒र्ममे॑ऽसि॒यो मा॒ प्रा॒च्यांदि॒शो॑ऽघायुर॑भि॒दासा॑त्। ए॒तत्सऋ॑च्छात् ॥१

अ॒श्म॒व॒र्ममे॑ऽसि॒यो मा॒ दक्षिणाया दि॒शो॑ऽघायुर॑भि॒दासा॑त्। ए॒तत्सऋ॑च्छात् ॥२

अ॒श्म॒व॒र्ममे॑ऽसि॒यो मा॑ प्र॒तीच्यां दि॒शो॑ऽघायुर॑भि॒दासा॑त्। ए॒तत्सऋ॑च्छात् ॥३

अ॒श्म॒व॒र्ममे॑ऽसि॒यो मोदी॑च्या दि॒शो॑ऽघायुर॑भि॒दासा॑त् ए॒तत्सऋ॑च्छात् ॥४

अ॒श्म॒व॒र्ममे॑ऽसि॒यो मा॑ ध्रु॒वायां दि॒शो॑ऽघाय॒र॑भि॒दासा॑त्। ए॒तत्सऋ॑च्छात् ॥५

अ॒श्म॒व॒र्ममे॑ऽसि॒यो॒मो॒र्ध्वायां दि॒शो॑ऽघायुर॑भि॒दासा॑त्। ए॒तत्सऋ॑च्छात् ॥६

अ॒श्म॒व॒र्ममे॑ऽसि॒यो मा॑ दि॒शाम॑न्तर्दे॒शेभ्यो॑ऽघायुर॑भि॒दासा॑त्। ए॒तत्सऋ॑च्छात् ॥७

इसका मन्त्र आठ पृष्ठ ३४८ पर पढ़ें।

हे अविनाशी! चैतन्य तेजोमय! मेरा पाषाण तुल्य दृढ कवच तूही है। जो पापी, द्वेषी, हिंशक, बधिक पूर्व पश्चिम दक्षिण, उत्तर ध्रुव, ऊर्ध्व और इन दिशा उपदिशाओं के मध्य प्रदेशों से मेरा नाश करे, वह स्वयं ही इस विनाश को स्वयं प्राप्त हो जाय। मैं परिपक्व ज्ञान के साथ मन विशुद्ध स्थिर मन, बुद्धि मांगता हूं। वायु से एकादश प्राणापानादि, सूर्य से दिव्य नेत्र, अन्तरिक्ष से कर्णनाद, पृथ्वी से नैरुज्य स्वस्थपूर्ण गात्र, नित्य निरन्तर मननयुक्त परा अपरा व विद्यायुक्त पवित्र पुगल्भ बाणि की प्रार्थना करता हूं। इस ज्ञानात्मक रक्षा कवच को अहर्निश धारण करने से अस्त्र-शस्त्रादि दैवी (प्राप्ति) आसुरी, मानवीय, हिंसक जीवादि के घातक प्रहार और कृत्या, अभिचार आदि से रक्षा होती है। इसे रक्षणार्थ अब धारण करें।

अथ संजीवनी विद्या :—विषय प्रवेशपृष्ठ में यह उल्लेख है कि कोई भी प्राणी दिन-रात, बिना कर्म किये एक क्षण भी नहीं रहता, सुप्तावस्था में भी कर्म करता रहता है। यही गत कर्म (दैव) आगे चलकर बनता है। यह कर्म भला या बुरा जो भी हो, उसका फल भोगने को, अनिवार्यरूप से वाध्य भी होना पड़ता है। ये विना भोगे नष्ट नहीं होते। प्राणी का जन्म, सब योनियों के शीर्षण्य मनुष्य देह, जो देव दुर्लभ और कर्म करने में पूर्ण समर्थ, जन्म-जन्मान्तरीय कर्मविपाक को सत्कर्मों द्वारा नष्ट कर, पवित्र ब्रह्मवर्चस्व ज्ञान को प्राप्त कर, आवागमन और विविध योनियों, विविध निकृष्ठ लोकों के असह्य दारुण, जघन्य, संकटों, क्लेशों को निरस्त कर, नित्य निरन्तर अविनाशी, चेतन, सच्चिदा-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नन्दघनामृत के अपार सागर में आत्मविभोर हो, जीवों की महामृत्यु, महाप्रलय में भी चैतन्यस्वरूप अवस्था की प्राप्ति की अन्तिम सोपान है। यह निष्काम, दृढ़ विश्वास, निष्ठापूर्वक सतत् शुभ कर्मों और सद्गुरु कृपा से ही सम्भव होता है। जघन्य, जनविरोधी, आत्मविरोधी कर्म प्रगाढ़त्तम अन्धकाररूप मृत्यु और दुर्गतियों, नाना क्लेशों के जनक हैं। इनको मन, वाणी और इन्द्रियों द्वारा सर्वतोभावेन सर्वथा त्याग, सजीवन प्रद होता है। आत्मा, बुद्धि, मन, वाणी, इन्द्रिय और प्राणों की क्षीणता, दौर्बल्यता, रोग, व्याधि और आयुक्षीणता प्रदाता है। इनकी अनवरत, सतत सक्रियता और पुष्टि एवं प्रकाश, अमितायु, अमरत्व प्रदान होती है। अ. कां. ६ सू. १३ मे मृत्युओं के प्रकार इस प्रकार इस भांति से निर्दिष्ट हैं। (१) "देवबध" अग्नि, वायु, सूर्य, वरूणादि, वेद, ब्राह्मण और ब्रह्मस्वरूप सभी महान विभूतियों की अवहेलना मृत्युदायिनी होती है। (२) "राजवध" युद्ध या राजविरोधी कारणों से राजपुरुषों से होनेवाली मृत्यु। (३) "विश्यानां बध" सम्पत्तिशालियों और विषयासक्तों द्वारा होनेवाली मृत्यु। (४) 'परावाक' प्रतिकूल वचन, प्रतिकूल व्यवहार, (५) 'अधिवाक' अनुकूल वचन की बाधा से उत्पन्न क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ईर्ष्या द्वारा मृत्यु, (६) 'सुमति' उत्तम मति होने से केवल बौद्धिक कार्यों का ही ध्यान, अन्य उपर्युक्त शरीरादि की दुर्बलताओं से मृत्यु, (७) "दुर्मति" दुष्टमति तो मृत्यु मूल कुख्यात है। (८) 'यातुधान' राक्षस और क्रूर कर्मियों, वधिकों द्वारा मृत्यु, (९) 'भेषजम्' औषधियों की प्रतिरोध, वैषम्यता, दुरुपयोग, ये मृत्यु के मूल प्रतीक वर्णित हैं। अन्त में मन्त्र में निर्देश है 'नमस्ते मृत्योमूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो इदम् नमः।" हे मृत्यो! तेरे मूल कारणों और ब्राह्मणों, (ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मवेद और ब्रह्मज्ञान) को नमन किया जाता है। (कां. ४ सू. ३५) मृत्यु से संतरण के लिये "ब्रह्मौदन" का प्राविधान करता है। 'ब्रह्म' शब्द ईश्वर, आत्मा, ज्ञान का वाचक हैं। 'ओदन' अन्न वाचक है। बुद्धि का 'अन्न'ज्ञान ही है, जो आत्मा का स्वाभाविक गुण है। ज्ञान होने से, आत्मा का प्रकाश ही ज्ञानरूप है। आत्मा से, ज्ञान से, आत्म शक्ति से ही मृत्यु को पार किया जा सकता है। मंत्र में 'तेन औदनेनातितरामिमृत्युम्" यह छै बार दिया गया है। ज्ञानगुण सम्पन्न परमात्मा ने त्रैलोकी को धारण किया है। उसी से पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि, गतिशील होकर, दिनमान, वर्षादि काल का सृजन करते हैं। इनको परमात्मा ही जीवन प्रदान करता है। इसकी शक्ति प्राप्त करके ही, सब जीवन प्रदान में समर्थ होते हैं। पदार्थ मात्र में जो रस है, वे उनको एक साथ ही प्राप्त होते हैं। जगत की सभी दिशा उपदिशायें उसी के तेज से तेजस्वी होती हैं। उसी के ज्ञानामृत से सुपुष्ट होकर मैं मृत्यु को दूर करता हूं। इसी के मंत्र ६ में" यस्मात् "पक्वादमृतं सम्बभूव" विस्पष्ट है, जिस परिपक्व आत्मा सेअमृत उत्पन्न हुआ, उस अमृत को प्राप्त करके, मैं मृत्यु को दूर करता हूं। यही वेदमाता "गायत्री" वाग्देवी का अधिपति है। मंत्र ७ निर्देश कर रहा है कि (१) देव (वेद) की निंदाको दूर करना, (२) प्रतिस्पर्धियों को दूर करना, (३) सत्य मे निष्ठा रखना, (४) विश्व विजय के लिये ब्रह्मज्ञान परिपक्व कर, अन्यों के साथ सेवन करना। यह सब तप से, पूर्वोक्त 'प्राणविद्या' 'ब्रह्मकवच' ब्रह्मज्ञान से ही ध्यान में धारण करके, अपने आत्मा को पवित्र कर, मृत्यु को पार कर, जीवन सफल बनाया जा सकता है।

इस ब्रह्मौदन की परिपक्वता के लिये, "आत्मयज्ञ" सर्वोपरि अनिवार्य कर्तव्य कर्म है। इस यज्ञ की स्वधा और स्वाहा शक्तियां हैं। "स्वधा" आत्मशक्ति का नाम है। "स्वाहा" बड़ी विलक्षण, अद्वितीय, अमोघ, वह सार्वभौम प्रमुख प्रचण्ड शक्ति है, जिसके द्वारा निष्कामना मे इस शरीर की इस लोक और परलोकों की, समस्त जो कुछ अपना कहे या माने जानेवाली सर्वस्व विभूतियां हैं, उनका सर्वतोभावेन, स्वस्वत्व निवृत्तिपूर्वक, परस्वत्व स्थापन, चराचर में व्याप्त विश्वात्मा को विनम्रता से आत्म सर्वस्व का समर्पण किया जाता है। (प्राणाग्निहोत्र उपनिषद्) में शरीरयज्ञ का निर्देश है। **"शरीरयज्ञस्य केप्रयायाः केऽनुयाजाः।" महाभूतानिप्रयाजाः भूतान्यनुयाजाः॥"** शरीर में चलनेवाले यज्ञ के प्रयाज और अनुयाज कौन है? महाभूत प्रयाज, और भूत अनुयाज हैं। यह उपनिषदों और ब्राह्मणों में उल्लेख है। (अ.कां. १ सू. ३० मं. ४) में ४ प्रकार के देवों का उल्लेख है। (१) प्रयाजा (विशेष यजन करनेवाले, (२) अनुयाजा (अनुकूल यजन करनेवाले), (३) हुतभागा (यज्ञ भाग लेने वाले), (४) अहुताद् (यज्ञ का भाग खानेवाले)। शरीर में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हृदयादि अव-यव ऐसे हैं, जिन पर इच्छाशक्ति का प्रभाव नहीं होता, ये "प्रयाजा" हैं। हाथ पैर, नेत्रादि ये अव यव हैं, जो इच्छाशक्ति से लगाये जा सकते हैं, ये 'अनुयाज' हैं। (३) शरीर की वे इन्द्रियाँ जो भोगाकांक्षिणी, श्रम से शिथिल, और विश्राम से दृढ़ होती हैं, वे "हुतभाग" हैं। (४) शरीर के केवल एकादश प्राण, जो जन्म से मृत्युपरांत भी साथ नहीं छोड़ते। विना भोग, नित्य, निरन्तर जागरूकता से कार्य करनेवाले "अहुताद" हैं। इनमें हृदयादि अन्तर अवयव, और प्राण मुख्य और अन्य दो गौड़ है। इन मुख्य और गौड़ देवों को, "प्राणविद्या" की साधना और ज्ञानकवच धारण करके बलिष्ट बनाने से ही, यह शारीरिक शतसम्वत्सर "आत्मयज्ञ चलाया जा सकता है। इस यज्ञ में "ब्रह्मोदन" का होम करने से ही "ये अन्ये शतं मृतवः ते इमं मा हिंसिषुः, कां. २।२८ मंत्र (१) सैकड़ों अपमृत्युयें सौ वर्ष से पूर्व नाश न कर सकें। मंत्र ४— "शतं हिमाः जीवाः" १ सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करने का निर्देश करता है। प्राण अपान से सुरक्षित रखना परम आवश्यक है। नाभि के ऊपर प्राण का राज्य है। नीचे अपान का राज्य है। ये ही शरीर में "मित्र" और "वरुण" हैं। साधारण 'भस्त्रा' और 'उज्जाई' प्राणायाम इसके लिये पर्याप्त हैं। 'भस्त्रा' धोंकनी की गति से श्वांसोच्छ्वास करने से होता है। यह थोड़े से समय तक ही होता है। अधिक होने वाला सुगम, जो स्वरयुक्त और शान्त वेग से, नाक से श्वांसोछ्वास होता है, जिसमें श्वांस का भी शब्द हो और उछ्वास का भी, वह 'उज्जायी' प्राणायाम है। यह सुगम, सुसाध्व और प्राणों का बल बढ़ाकर अन्तर्हित तथा बाह्य इन्द्रियों (देवताओं) को पुष्ट कर दीर्घायुष्र प्रदायक है। प्राण का बल बढ़ने से अपान के कार्य भी उत्तम रीति से होनें लगते हैं। मँ. ३ "इमे प्राणः माहासीत् मा अपानः"। इसकी सौ वर्ष की आयु पर्यन्त प्राण और अपान न त्यागें और अन्त तक अपना कार्य ठीक रीति से करते रहें। यही निर्देश वेदमंत्र का **सजीवन प्रद** है। मंत्र ३ इसको मित्र या अमित्र बध न कर सकें। "इमं मित्राः मा वधिषुः मा अमित्राः" अभ्युदय और दीर्घायुष्य, संजीवन के लिये सत्संग, सदशिक्षा, सदाचार, सच्छास्त्र अध्ययन और अनुशासन की परमावश्यकता समझकर वैदिक वाङ्मय, ऋषिगण और प्राच्य मौलिक राजतन्त्र ने विविध भांति से अनेकों विधि विधान का निर्देश किया है। इसके बिना 'प्राणविद्या', ज्ञानकवच, संजीवनी विद्या, एवं ब्रह्मविद्या सर्वथा अपङ्ग है। मन्त्र २ 'वयुनानि विद्वान होता अग्निः। तद्विश्वादेवानां 'जनिमाविवक्ति' दाता उदारमना, सर्वस्वार्पणकर्ता, वर्चस्वी, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का यथार्थवेता धर्मकर्मका उपदेश करें और देवताओं.महापुरुषोके सच्चरित्र सुनावें। इनसे अच्छे संस्कार बन सकें। (मं. १) मित्रएनं मित्रियात् अहंसः पातु" मित्र इस जीव को दम्भी मित्र; जो पतन की ओर ले जावे उसके और स्वयं के भी पापों से रक्षा करें। सजीवनार्थ कृत और क्रियमान स्वयं या पिता-माता के पारस्परिक क्षेत्रीय पापों से रक्षा करें। यह "संजीवनी विद्या" के प्रकरण में "अहोलिङ्गादिगण" में पढ़ें, समझें और करें। (मं. ५) "इमं प्रियं रेतः आयुषेवर्चषेनयः" यह मनुष्य दीर्घायुष्य के लिये युक्त प्रमाण में भोगों को भोगते हुए, वीर्य की रक्षा और संपुष्टि के साथ पराक्रम और प्राण की रक्षा करे। (मंत्र २,४,५) मित्र, वरुण, सूर्य, पृथ्वी, अदिति, द्यौस्थानीय, मातृ भूमिस्थ, एवं विश्व के देवो इसे पूर्ण आयुवाला, अतिवृद्धावस्था में भी अजर, अमर बनाने की कृपा करो। वैदिक, धर्मशास्त्रीय वाग्देवी, वाग्यज्ञ 'संजीवन प्रद' है। जो अ. कां. १३,१७ आदि २ में आगे 'संजीवनप्रद' "अभ्युदय" के प्रकरण में है। कां. २ सू. २९ मं. ६" तेरा हृदय माँगलिक वृत्तियों से परितृप्त करता हूँ। पूर्ण निरोग, उत्तम तेजस्वी होता हुआ आनन्दित हो और अन्तःकरण को शान्त, मंगलमय बना। मंत्र ७ "स्वधा" अपनी धारणशक्ति, जिससे अपने शरीर के विविध अणु परमाणु एकत्रित रहते हैं वह 'स्वधा' है। अजर, बलवती इन्द्र द्वारा रचित शक्ति के सेवन के साथ तेजोमय शतायु वाला हो। स्वधा शक्ति ही शरीर में कार्य करती हैं, इसके रहते ही जीवित, प्रवृद्ध और बिजयी बना सकते हैं।

कां ३ सू. ११ मं. ८ "यस्त्वा मृत्युरभ्याधत्तजायमानं सुपाशया" जन्म लेने वाले प्राणी मात्र को मृत्यु, जन्मते ही दृढ़ पाशों में बांध कर रखता है। "जातस्यहि ध्रुवं मृत्यु" जन्म लेने वाले की मृत्यु भी निश्चित ही है। यह महामृत्यु होती है; परन्तु इनके अतिरिक्त १०१ मृत्यु हैं। दुर्गतिपाशों से होने वाली मृत्युयें टल जाती हैं। पूर्णायु १०० वर्ष की मानी जाती है। मन्त्र १ "अज्ञातयक्ष्मात् उत राजयक्ष्मात् त्वामुञ्चामि" समस्त वे रोग जो पहिचाने नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जा सकते। उन अज्ञात और ज्ञात या राज-यक्ष्मा और जकड़े रखने वाले रोगों से इन्द्राग्नि मुक्त कर देते हैं। मन्त्र ३। सत्र दुर्गति, पापों को दूर किया जा सकता है। यदि किसी की आयु समाप्त हो चुकी हो, या मरने के निकट पहुंच गया हो, या मृत्यु के पास पहुंच गया हो, उसको सत्य (यज्ञ), आत्म यज्ञ के बल से, विनाश के पास से, वापस लाता हूं, और सौ वर्ष की आयु वाला बनाता हूं। मन्त्र ५। प्राण और अपान, तुम दोनों ही इसके शरीर में प्रवेश कर निवास करो, इसके शरीर को, सभी अङ्गों, इन्द्रियों, प्राणों को पूर्ण वृद्धावस्था तक अच्छी प्रकार चलाओ। मन्त्र ७। तुझे सुख के साथ वृद्धावस्था को पहुंचाता हूं। अन्य सौ प्रकार की अपमृत्युओं को दूर करता हूं। यह "प्राण विद्या" संजीवनी विद्या का ही बल है।

कां ५ सू० ३० मं. ८। "मा विभेर्नमरिष्यसि जरर्ष्टिं कृणोमित्वा" तू भयमत कर, तू शीघ्र अल्पायु में नहीं मरेगा, तुझे वृद्धावस्था वाला बनाता हूं। मन्त्र ११। घोर काले अन्धकार रूपी मृत्यु से ऊपर उठ। मन्त्र ६। मनुष्य तू अपनी सारी शक्तियों के साथ यहीं रह, यमदूतों के साथ न जा। इसी शरीर पर स्थिर रह। मन्त्र १३। उपर्युक्त कां ३ सू. ११ मन्त्र २ की पम्पुष्टि करता हुआ निर्देश करता है। रे मनुष्य तेरे गये हुए याक्षीण बल वाले, प्राण, मन आदि सभी इन्द्रियाँ बल, सब पुनः वापिस आवें और अपनी स्वधा शक्ति से, अपने पैरों पर खड़ा रहकर सुबुद्धि के अनुसार चले। मन्त्र १६। अन्तरात्मा घोषणा करती है, तेरे अन्दर रमने वाले क्षय रोग और ज्वर की सैकड़ों व्यथाओं को दूर करता हूं। मन्त्र १७। जन्म काल से ही मृत्यु को प्राप्त होने वाले पुरुष ? हम तुझे बुलाते हैं, दृढ़ता से कहते हैं, बुढ़ापे से पूर्व मत मर। कां ७ सू. ५३ मन्त्र १। देव, गुरु और अग्नि परलोक में होने वाले यम की यातनाओं से मुक्त करते हैं। मन्त्र ५। हे प्राण और अपानो ? तुम दोनों वेग से शरीर में प्रविष्ट हो जाओ, यह दीर्घायु का कोष न्यून न होने पाये, बढ़ाये ही रक्खो। मन्त्र ६। प्राण से तेरा जीवन बढ़ाता हूं, और अपान से तेरा क्षय दूर करता हूं। मन्त्र ७। मृत्यु रूप घोर अन्धकार से ऊपर प्रकाशमय जीवन में स्थिर हों। मन्त्र ३। जो तेरी आयु क्षीण दोषों से न्यून हो गई है, प्राण और अपान, पुनः उस शरीर में आकर उस आयु को पूर्ण करें। अ०वे० कां ८ सू. २ मन्त्र ७, ८, १०, २५।

संजीवनी विद्या का उपदेश—"अधिब्रूहि" मनुष्यों को इस उपर्युक्त संजीवनी विद्या का उपदेश कर। "अस्मै अधिब्रूहि" हमें दीर्घायु प्राप्ति ज्ञान का उपदेश कर। "अस्मै ब्रह्म वर्मकृणमसि" हमें ब्रह्म कवच (ज्ञान कवच) के विषय में उपदेश कर। इनका उपदेश जहां किया जाता है जो धारण करते हैं। वहां उस राष्ट्र, नगर, ग्राम में, सभी गौ, अश्व, पशु, मानवादि दीर्घजीवी, सुखी होते हैं।

ज्ञान कवच—मन्त्र २, ६। मृत्यु के पाशों, और दुर्गति के बन्धनों को खोलते हैं। देवों के शस्त्र भी कवच धारी को नहीं काट सकते हैं। मन्त्र १०। "ब्रह्मास्मैवर्मकृणमसि" इसको ज्ञान कवच धारण करा दिया गया है। मृत्यु से ऊपर उठा दिया है। मन्त्र ५। हे मृत्यो अब तू इस पुरुष का बध न कर। देवों के शस्त्र इसका बध न करें। इस ज्ञान कवच से, इसको रज, तम, रूप मृत्यु से पार करता हूं। मन्त्र ६। प्रेत दाहक (कच्चा मांस खाने वाली अग्नि) से भी दूर करता हूं। मन्त्र १०। मृत्यो ? तेरे अजेय रजतम पूर्ण मार्ग से इसकी रक्षा करते हैं। मन्त्र ११। यमदूतों को भी हटाते हैं।

मन्त्र २४। जो हीन तमोगुण को नहीं अपनाते, वे निश्चय पूर्वक नहीं मरते। मृत्यु भय मे निर्भय हो जाते हैं। वे मारे भी नहीं जा सकते, अरिष्ट भी नहीं मार सकता, अतः तू मत डर। मन्त्र १। तेरी अविच्छिन्न अवस्था हो। मन्त्र २। तेरे लिये उत्कृष्ट रूप से दीर्घायु प्रदान करता हूं। मन्त्र ७। यह मनुष्य मरे नहीं, इसे सचेत करता हूं। यह मनुष्य जीवित रहे, डरे नहीं, इसे सचेत करता हूं। यह पूर्ण आयु वाला होकर भूलोक में, इस शरीर में रहे। मन्त्र १। तेरी आयु और प्राणों को तेरे अन्दर मैं पुनः भर दे रहा हूं। मन्त्र ३। वायु से प्रण, सूर्य से नेत्र तेरे लिये प्रदान कराता हूं। सब अंगों से परिपूर्ण, बलिष्ठ हो, तेरे अन्दर मन भी स्थापित करता हूं। तू समर्थ वाणी से भाषण कर।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र ७ । पाप को दूर करके दीर्घायु धारण कर । पाप दूर करने की समर्थ विधि अंहोलिङ्गगण, लघु शान्तिः वृहच्छान्ति गणों में आगे पढ़ें । यही दीर्घायु प्राप्ति कराने वाली "संजीवनी विद्या" है, जिसका उल्लेख इस "आयुष्यगण" राजयक्ष्म-निवारण गण एवं "प्राण विद्या" में उल्लेख है । मन्त्र ६ । इस रोगी को सुख का विस्तार करने के लिये जीवन प्रदायिनी कभी हानि न करने बाली सर्वत्र रक्षा करने वाली, सर्वत्र रक्षा करने वाली, रोग शोक दिवारिणी बलदायिनी "जीवन्ती" ओषधि, "पूतद्रु" पलास भेषज का प्राविधान करता हूँ । मन्त्र ७ "मृडतं शर्मयच्छ" सुखी करो, शान्ति प्रदान करो । मन्त्र २० । शतवर्षावधि के जीवन यज्ञ में वर्ष, दो अयन, छः ऋतुयें, तीन काल, (सर्दी, गर्मी, वर्षा) दो सन्धियां दिन तथा रात्रिकाल के लिये तुझे समर्पित करता हूं ।

कां ८ सू. १ मन्त्र ६ । "श्यामश्च शवलश्च यमस्य पथिरक्षीश्वानौ" यम के काले और श्वेत दो मार्ग रक्षक श्वाने है । जो जन्म से ही साथ लगे रहते हैं । (ऋग्वेद ६।६।१) "अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्ते रजसी वेद्याभि" । एक (भाग) अह काला और दूसरा (भाग) श्वेत होता है । ये ही दिन और रात्रि है । ये ही यम के मार्ग रक्षक, मार्ग द्रष्टा हैं । ये कृत शुभाशुभ को देखते रहते हैं; यह समझते हुए, पाप कर्त्ता इनसे कहीं छिप नहीं सकता, इसे निर्विवाद सत्य समझकर, पाप से बचें, यह अनिवार्य है । यम नियमों का पालन करें । काल के अवयव, नक्षत्र, योग, कर्णादि उल्का, धूम्र केतु आदि जो विषय प्रवेश मे वर्णित हैं । उनसे रक्षा और उनके प्रतिकृत ज्ञात-अज्ञात पापों से मुक्त होने के लिये आगे "पिप्पलादिगण" कर्म विधि दी जायगी । ये सभी अमरत्व, दीर्घायुष्य, वल, ब्रह्मवर्च एव ब्रह्म ज्ञान अभ्युदय के अमोघ साधन हैं । मान्त्रिकी विधि इस "संजीवनी विद्या" ज्ञानकवच, ब्रह्म कवच और "प्राण विद्या" की शौनकीय शास्त्रोक्त उल्लेख आगे पढ़े । गहनता से मनन कर, निष्काम जनकल्याण भावना से क्रियान्वित करें ।

अथ संजीवनी विद्या— कुशा, पार्थिव, या अन्य मूर्ति आदि को अभिमन्त्रित जल से अध्याय २ के पृष्ठ १७६ पर उल्लिखित मन्त्र से "पृथिव्यै श्रोत्राय" से छीटे दें । संलग्न मन्त्रों से न्यास कर प्राण प्रतिष्ठा करें । तदनन्तर—

पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥२
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद् विरिष्टम् ॥३

तदनन्तर तत्त्वाश्रय न्यास करें । ॐ आत्मतत्त्वाय नमः स्वाहा । ॐ आत्मतत्त्वादिपतये ब्रह्मणे नमः स्वाहा । ॐ विद्यातत्त्वाय नमः स्वाहा । ॐ विद्यातत्त्वाधिपतये विष्णवे नमः स्वाहा । ॐ शिवतत्त्वाय नमः स्वाहा । शिव तत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः स्वाहा । पुनः अङ्गन्यास करें । ॐ पृथिवीतत्त्वात्मने नमः (पादयोः) । ॐ अप् तत्त्वात्मने नमः (वस्तौ) ॐतेज तत्त्वात्मने नमः। (हृदये) ॐ वायु तत्त्वात्मने नमः । (घ्राणे) ॐ आकाश तत्त्वात्मने नमः। (शिरसि)ॐगन्ध तत्त्वात्मने नमः । (पादयोः) ॐ रसतत्त्वात्मने नमः । (वस्तौ) ॐरूप तत्त्वात्मने नमः ।(हृदये) ॐस्पर्शतंत्त्वात्मने नमः। (घ्राणे) शब्द तत्त्वात्मने नमः । (शिरसि) अघ्राण तत्त्वात्मने नमः । (घ्राणे) ॐ जिह्वा तत्त्वात्मने नमः । (जिह्वायाम्) ॐ चक्षु तत्त्वात्मने नमः । (चक्षुषो) ॐ त्वक् तत्त्वात्मने नमः । (त्वचि) ॐ वाक् तत्त्वात्मने नमः । (वाचि) ॐ मनस्तत्त्वात्मने नमः । (मनसि) ॐबुद्धि तत्त्वात्मने नमः । (बुद्धौ) ॐ अहङ्कार तत्त्वात्मने नमः । ॐ सत्त्वाय नमः । ॐरजसे नमः । ॐ तमसे नमः ।

ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् । शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन ।
प्रविशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् । अयं जरिम्णः शेवधिररिष्टइहवर्धताम् ।
सं क्रामतंमाजंही तं शरीरं प्राणापानौ तेसयुजाविहस्ताम् ।
कृणोमि ते प्राणापानौ जरांमृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ॥
असुंत आयुः पुनराभंरामिरजस्तमोमोपंगा मा प्रमेष्ठाः ।
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिहते मनः । उत्त्वानिर्ऋत्याः पाशेभ्योदैव्यांवाचाभंरामसि ।
मा तेमनस्तत्रंगान्मातिरोभून्मा जीवेभ्यः प्रमदोमानुगाः पितॄन् ।
अर्वाङेहि मा बिदीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ।
वातांते प्राणमंविदं सूर्याच्चिक्षुरहं तव । यत्ते मनस्त्वयितद्धारयामिसंवित्साङ्गैर्वदजिह्वयालपन् ।
पुनस्त्वादित्यारुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मावसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधांद्दीर्घायुत्वार्य शतशारदाय ।

इस "संजीवनी विद्या" के इन "सजीवन प्रदायक मन्त्रों" से कुश कांष्ठ पार्थिव पिंड में, या क्षीणाथु गतायु तन में दसों प्राण, मन, और ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियों को पुनः स्थापित कर सम्पुष्ट, प्राणवान, वीर्य, बल, ओज के साथ, "प्राणविद्या" के संसर्ग से दीर्घायु, अमितायु प्राप्त होती है। इसमें प्राण, मन, इन्द्रियों को अक्षय, अतुल सामर्थ्य प्राप्त होती है। तान्त्रिक सर्व सजीवनी मन्त्र "ॐ हुं द्रीं द्रं द्रौ द्रः हुँ हुँ" इसे सिद्ध कर प्रयोग करें।

—: ज्ञान कवक :—

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मामा प्रापद्धिषवोदैव्या या मामानुषीरवसृष्टा वधार्य ॥

इस ज्ञानरूपी कवच से भली प्रकार ढका हुआ, सर्वदर्शक देव के तेज और बल से युक्त हुए, मुझको दिव्य और मानवीवाणादि, जो मेरे बध के लिये भेजे गये हों, वे मुझे प्राप्त न हों, उनसे मेरा बध न हो।

ऋतेनगुप्तऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तोभव्येनचाहम् ।
मामा प्रापत्पाप्मामोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥

सत्य के द्वारा रक्षित, काल भूत, भविष्य-ऋतुओं द्वारा सुरक्षित, दिशा-विदिशाओं से पूर्ण सुरक्षित, मुझे पाप और मृत्युरूप घोर अन्धकार प्राप्त न हो। मैं अपनी वाणी और शब्द को पवित्र जीवन के अन्दर धारण करता हूँ और योग यज्ञ, प्राणविद्या, संजीवनी विद्या, ब्रह्मविद्या के वल और प्रकाश को पवित्रता से जीवन पवित्र करता हूँ।

बृहस्पतिर्नः परिपातुपश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुतमध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञान प्रदाता देवगुरु हमें पीछे से, उत्तर से, नीचे से, पाप और पापी से रक्षा करें। देवराज, मित्र, प्रभु, आगे और पीछे बीच में से रक्षा करें और मित्रों में हमें श्रेष्ठ बनावें।

गुरु, ब्रह्म और सूर्य को नमस्कार (प्रणिधान) करते हुये, इन उपर्युक्त विद्वानों का, क्रियायोग के साथ, अन्तर्मुखी वृत्ति से, समाहित मन से, मन और इन्द्रियों को इधर-उधर की दौड़ से, दृढ़ता और संयम, सदाचार,मिताहार से, अवरूद्धकर अवधारण करने से प्राणपति को सूक्ष्म बनाते हुए, अक्षय्य, अमित, तेज, बल, ओज, आयु और अक्षुण्ण ज्योति को प्राप्त करें। हरिः ॐशान्तिः यह संक्षिप्तरुप है, विस्तृत रूपमें अहोलिङ्गगण आयुष्यगण वर्चसगणा स्वस्त्ययनगण और सूर्योपस्थान में पढ़ें, समझें गहनता से क्रियान्वित करें।

का. ६ सू. १२८ ''शकधूमम्''—इन ४ ऋचाओं से स्वस्त्ययनार्थ (अर्थात सभी प्रकार की शान्ति) अध्याय में उक्त १३ पदार्थों से होम करें। इन्हीं से नित्य, नैमित्तिक, काम्य कर्मों के शीघ्र फल प्राप्ति हेतु, ब्राह्मण की सन्धि, (घर के) छिद्रादि पारिवारिक गुप्त, प्रगट दोषों के विज्ञानार्थ शुष्क गोमय, या अधर से ही लिये गये गोमय के पिण्ड रखकर, उनमें अग्नि की कल्पना करके, अभिमन्त्रित करें। गृह्य सूक्तोक्त विधि से, प्रश्नोत्तर करें। सूक्त—''शकधूमम्''(६१८); भवाशर्वो (११-२)।

कौ. ७।१ ''उपोत्तमेन सुहृदो, ब्राह्मणस्य, शकृत्पिण्डान् पवस्वाध्याय'' शकधूमंस् किम् ? अद्याहरिति पृच्छति। भद्रम् सुमङ्गलन् इति प्रतिपद्यते''। कौ. ७।१। तथा सोमग्रहण जनित, अरिष्ट, निवारणार्थ, इन्हीं से घृत होम करें। कौ. १३।८। तथा ग्रहयाग में सोमदेवता को इन्हीं से होम, उपस्थान, अर्चन करे। शान्तिकल्प १५

कां ६ सू. ६३ शन्तातिः। रुद्रः, १ यमो, मृत्युः, शर्वः २ भवः, शर्वः ३ विश्वे देवाः, मरुतः, अग्नीषोमौ, वरुणः, वातपर्जन्यौ। त्रिष्टुप्।

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत। भद्राहमस्मै प्रयच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१

भद्राहं नो मध्यंदिने भद्राहं सायमस्तु नः। भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्रौ भद्राहमस्तु नः ॥२

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्। भद्राहमस्मभ्यं राजन्छकधूम त्वं कृधि ॥३

यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा। तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४

कां. ६ सू. १२८ ''शकधूमम्'' बृद्धयाज्ञिक का नाम ''शकधूम'' है। (१) जिस भांति नक्षत्रगण ''शकधूम'' ने योग्य अनुभवी को, संघटित राष्ट्र निर्माणार्थ, राजा (राष्ट्रनायक) बनाया है। (२) इसके बनने से प्रातः, मध्याह्न, सायं और अहोरात्र तथा रात्रि मंगलमय हों। (३) हे 'शकधूम'! (काल) तू अहोरात्र द्वारा नक्षत्र, चन्द्र और सूर्य द्वारा हमारे दिवस कल्याणकारी कर। (४) हे नक्षत्राधिपति! (वकधूम) आपने जो हमारे सायं, प्रातः, मध्याह्न, रात्रि, (अहोरात्र) मंगलमय (कण्टकरहित) बनाये हैं। ऐसे आपकी हम बन्दना करते हैं। मङ्गलमय दिनचर्या के लिये इस भांति प्रार्थना करे। इसी प्रकार संघटित राष्ट्र की कामना वाले योग अनुभवी वेद वेत्ताओं को नायक बनायें। वे राष्ट्र संचालन में न्याय, नीति, दया, धर्म, सत्य, निष्ठावान, तपोधन होने से सर्व प्रकार कल्याण करने में दक्ष होते हैं।

''यमोमृत्यु'' (६।६३) इसकी आद्य तीन ऋचायें वास्तोष्पतिगणकर्म विधि में हैं। न० क० १८। यह बृहच्छान्तिगणकर्मों में भी है। सथा ही ''यमोमृत्युः'' (६।६३) ''विश्वजित'' (६।१०७) ''शकधूमम्'' (६।१२८) ''भवाशर्वो'' (११।२) भी हैं इनसे स्वत्ययन होम, जप, उपस्थान करें कौ० (७।१)।

कां ६ सू, १२८ अङ्गिराः। सोमः, शकधूमः। अनुष्टुप्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यमो मृत्युरंघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥१
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येऽभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु ॥२
त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥३

कां, ६ सू. ९३ "यमोमृत्यु' (१) नियामक, मारक, पापिष्ठहन्ता, उत्पीड़क, पोषक, हिंसक, अस्त्र फेंकनेवाला, नीलध्वज रुद्र तथा समस्त दिव्यजन, सेना के साथ आक्रमणकर्त्ता, उन्नतिकर्त्ता राजा के लिये, मन से, घी से, यज्ञों और शक्तियों से सम्पन्न, इन पूज्यों की आराधना करते हैं। पापी एवं विषैले प्राणी हमसे दूर रहें। (३) सर्व विश्व के दिव्य और विश्ववेत्ता, मरण पर्यन्त कर्मरत वीर, अग्नि, सोम, पवित्रवली बरुण, पापियों के द्वारा बध से हमारी रक्षा करें। हम सदा वायु और पर्जन्य की कृपा के पात्र रहकर उत्तम कार्य करते रहें।

कां ११।२ "भवाशर्वौ" यह वृहच्छान्तिगण कर्मों में विहित है। ये तीन अर्थसूक्त कहलाते हैं। उपर्युक्त ६।१२८ "शकघूमम्" तथा 'विश्वजित" (६।१०७) जो पीछे उल्लिखित हैं। इन तीनों से स्वस्त्ययनगणकर्म शान्ति होम का प्राविधान है। भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मग्रह, शकुनिग्रह घात, पात (कृत्या) मारण उच्चाटन, विद्वेषण सम्मोहन, स्तम्भन तथा वशीकरण अद्भुदर्शन जनितारिष्ट, वास्तुजनितारिष्ट शाप, क्रूर दृष्टिपात, आक्रोश, दुष्ट (निषिद्धपक्षि काक, उलूक, छपकली, सर्प, कपोत, वाज, स्यार आदि) लोकपाल, क्षेत्रपाल, मरुद्गण आदि के अभिघातजनित दोष निवारणार्थ समानरूप (एक से स्वरूप) की (गौ, बछड़ा) की गौ के दूध में, चावल पकाकर ३ भागों में बाँटें। समस्त अर्थसूक्त से रुद्र देवता को ११ बार आहुतियां दें। यदि भीषण कर्म हो, तो उसी अनुपात से अधिक बार आहुतियाँ दें।

यह सूक्त रौद्रगण तथा कृषि स्वस्त्ययनगण में होने से उन गणों में निर्दिष्ट सभी कर्मविधियाँ भी सम्पन्न करने का प्राविधान है। यदि साभने माँस, बिष्टा, रक्त आदि गिरने के अपशकुन हों या मुखादि अङ्गों पर गिरें या अनहोनी, अनसुनी, अनदेखी विचित्र अद्भुत घटनायें घटित हों या दिखाई पड़ें, तो उनसे उत्पन्न, अरिष्टों, अनिष्टों के निवारणार्थ इन्हीं से शान्ति होम करें। जो अद्भुद्दर्शन दोष निवारण में है।

"अग्निचयन" में "यस्ते सर्पः" (कां० १२ सू० १ म० ४६) तथा उपर्युक्त कां० ११।२ से रौद्री इष्टका में अग्निचयन करें। भौमग्रह, भौमचक्र के या अन्तरिक्ष के कैसे भी उत्पात हों, तो उनकी शान्ति हेतु इन्हीं से "अष्टमूर्ति महादेव की प्रार्थना, पूजा, अभिषेक तथा होम करें। अष्टमूर्ति ये हैं—

"शर्वं, पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवं अथेश्वरं, महादेवञ्चभीमञ्च"

(शत० पथब्राह्मण ६।१।३।७)। इसी से रुद्रज्वर (कालज्वर) शान्ति हेतु लौह शलाकादि गर्म कर, जल में बुझाकर, उसकी भाप (वाष्प) दें उसी को पिलायें। क्रोधशमन भी इसी प्रकार करें, मंगल या शनि या रवि के दिन, लाल रङ्ग की ईंट धोकर उस पर व्याधित का नाम लौह शलाका से लिखें, इससे ईंट को अभिमन्त्रित करें, रोगी को लिटाकर शिर से पैर की ओर २१ वार उतारें, हर बार रोगी की स्वांस भी लगा लें, परन्तु उतारते समय रोगी पर कर्त्ता की शरीर की छाया न पड़ने दें। उसे अभिमन्त्रित कर सन्ध्याकाल में इन्हीं तीनों या किसी एक दिन, दहकती कोयले आदि की ज्वाला में बीच में दबा दें, वह जितनी तप्त (लाल) होगी, उसी क्रम से ज्वर ढीला होता जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां ११ सू. २ अथर्वा । भव-शर्व रुद्राः । त्रिष्टुप्, १ परातिजागता विराड्जगती, २ अनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदा पथ्याजगती, ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक् ४-५ ७, १३, १५-१६, ११ । अनुष्टुप् ६ आर्षी गायत्री, ८ महाबृहती, ९ आर्षी, १९ पुरोकृति त्रिपदा विराट् ११ पञ्चपदा विराड्जगतीगर्भा शक्वरी, १२ भुरिक् १४, १७-१९, २३, २६-२७ विराड्गायत्री, २० भुरिग्गायत्री, २२ विषमपादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती, २४, २९ जगती, २५ पञ्चपदातिशक्वरी, ३० चतुष्पदा उष्णिक्, ३१त्र्यवसाना विपरीत पादलक्ष्मा षट्पदा (जगती ?) । च विनीयोगः ।

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मानोहिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः । नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥३
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत । अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥४
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव । त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥५
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वायां आस्याऽयते । दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना । रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्व१न्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यद् प्राणत् पृथिवीमनु ॥१०
उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः । स नो मृड पशुपते नमस्ते परः
क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११
धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥१२
यो३भियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति । पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय । ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥१४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥१५
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा । भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् । मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥१७
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् । पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥१८
मा नोऽभि स्रा मत्यंऽदेवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥१९
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः । मा त्वया समरामहि ॥२०
मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु । अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥२१
यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥२२
योऽ३न्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥२३
तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्व१न्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४
शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्त्समुद्रे ॥२५
मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मत् विद्युतं पातयैताम् ॥२६
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्व१न्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥२७
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥२८
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वंऽ रुद्र मा रीरिषो नः ॥२९
रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः । इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥३०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नम॑स्ते घोषिणी॑भ्यो नम॑स्ते के॒शिनी॑भ्यः ।
नमो॒ नम॑स्कृताभ्यो॒ नमः॑ संभुञ्ज॒तीभ्यः॑ । नम॑स्ते देव॒ सेना॑भ्यः स्व॒स्ति नो॒ अभ॑यं च नः ॥३१

कां० ११ सू० २ "भवाशर्वौ"—हे भव और शर्व ! हे उत्पत्तिकर्त्ता और संहारकर्ता आप दोनों ही, हमारा कल्याण कीजिये । हमलावर हम पर आक्रमण न करें । आप दोनों भूत तथा उत्पन्न हुओं, इन्द्रियगणों(पशुओं)के पोषक-कर्त्ता हैं। आप दोनो को प्रणाम है । धनुष पर रक्खे हुए और खीचें हुए वाणों को हम पर न छोड़िये, हमारे दो पैर वाले (मनुष्यों) और चौपायों की हिंसा न करें । (२) जो काले हिंसक कृमि हैं, कुत्ते और गीदड़ों तथा भयङ्कर शब्द करने वाले गृधों के लिये शरीरों का वध न करो न काटो। हे पशुपते ! तेरी मक्खियां और काकमण्डली उन कटे हुओं को न खायें अर्थात् निष्ठुरता से शरीर संहार न करो। (३) हे उत्पादक देव ! तेरे शब्दरूपी प्राण के लिये प्रणाम है । तेरे जो सशक्त प्रभाव हैं, हे अमर महादेव ! हे सहस्राक्षदेव ! तेरे लिये प्रणाम है । (४) तुम्हें आगे से, पीछे से, ऊपर से और नीचे से भी प्रणाम करते हैं । सभी ओर से तेरे द्युलोक और अन्तरिक्षलोकरूप के लिये नमन है। (५) हे पशुपते ! हे भव ! तेरे मुख के लिये नमन है । तेरे नेत्रों, तेरी त्वचा, दर्शन और पृष्ठ के लिये नमन है। (६) तेरे सर्वाङ्गों उदर, वाणी और मुख को नमन है । तेरे दांतों और गन्ध नासा के लिये नमन है। [७] नीलशिखा वाले बलिष्ठ अस्त्र से, सहस्रों नेत्रवाले, सर्वसंहर्ता रुद्र से हम कभी विमुख न हों। [८] वे भव ! सब ओर से हमारी सुरक्षा करें । जैसे जल, अग्नि तुमको घेरता है, वैसे ही भव हमें नियन्त्रण में रक्खें, हमें बिनष्ट न करें, इनको प्रणाम है। [९] हे पशुपते! उत्पादक देव को चार बार तथा आठ बार प्रणाम है । तुम्हें दस बार प्रणाम । ये पांच पशु [पञ्चेन्द्रियां] तेरे लिये विभक्त हैं गौ, घोड़े, पुरुष, बकरियां और भेड़ें । [१०] ये चारों तेरी दिशाये हैं तेरे द्यु और भूलोक हैं, तेरा ही विस्तृत, तेजोमय अन्तरिक्ष है । यह सब चैतन्य तेरा ही है, भूलोक के सब जीवधारी तेरे ही हैं । [११] जिसमें ये सब भुवन हैं [जो सब भुवनों में है] वह [अष्ट] वसुओं का निवास गृह, विश्वरूपी वृहत्कोष आप ही का है। हे पशुपते ! ऐसे आप हमारा कल्याण कीजिये । आपकी वन्दना करते हैं । स्यार, गीदड़, कुत्ते सब दूर हो जावें । करुणाक्रंदन करनेवाली, बाल खोल-कर प्रलाप करनेवाली स्त्रियाँ भी दूर हो अर्थात् ये शोक के प्रसङ्ग हमसे दूर ही रहें । हे कलङ्गी धारणकर्त्ता, तू हजारों का संहारक, सैकड़ों का वधकर्त्ता स्वर्णमय धनुषधारी है । रुद्र का बाण दैवास्त्र हो विचरता है । वह यहां से, जिस दिशा में हो, उसकी वन्दना करते हैं । [१३] जो आक्रमण काल में छिप जाता है, तुम्हारा अधःपतन करना चाहता है । घायल के पदचिह्नों के तुल्य उसके पीछे से, तू उससे बदला लेता है । [१४] उत्पादक और संहारकदेव सहयोग से रहने वाले ज्ञानी हैं । ये दोनों ही तेजोमय, पराक्रमार्थं भ्रमण करते हैं । वे यहां से जिस दिशा में हों उनकी स्तुति करते हैं । [१५] हे आवागमन परायण, ठहरने और बैठने वाले रुद्र ! आपकी वन्दना करते हैं । [१६] सायं, रात्रि और प्रभात में तेरी वन्दना करते हैं । भव और सब दोनों को प्रणाम है। [१७] हे सहस्र नेत्रवान् ! ज्ञानी, विविध, विभिन्न प्रकार से अस्त्र फैंकने वाले, रुद्र को सन्मुख दर्शन करता हूं । उन सबको गति प्रदाता हैं; उनकी हम वाणीसे निन्दा न करें। [१८] अश्व युक्त, आकर्षक बन्धनहीन, सुखदाता, किरणों वाले विस्तीर्ण रथ को पराजित कर्त्ता, पहिले प्राप्त करते हैं, उनको प्रणाम है। [१९] हे पशुपते ! जान-बूझकर फैंका गया देवास्त्र हम पर आकर न पड़े, हम पर क्रुद्ध न हो, आपके लिये प्रणाम है। हमसे दूर दिव्य शाखा को फैंकें । [२०] हमारी हिंसा न कर; हमें उपदेश कर, हमारी रक्षा कर, क्रोध भी न कर, हम आपका विरोध न करें । [२१] जिसके क्षय, ज्वर और खांसी अस्त्र हैं । वली चिङ्घारते घोड़े के तुल्य अप्रतिहत, जिनका अस्त्र एक ही पुरुष पर जाता है । जो पहिले ही निर्णय कर लेता है, इसकी वन्दना है । [२३] जो अन्तरिक्ष में स्थिर रहता है । यज्ञद्वेषी देवों का विनाशक है; उसे दश शक्तियों से प्रणाम है । [२४] वनों में उत्पन्न वनवासी मृगादि पशु तथा हंस, गरुड़, शकुनि एवं अन्य पक्षी, सरीसृप गण, ये सभी आपके ही स्वरूप हैं । हे पशुपते ! आपकी पूज्य आत्मा जलों में सन्निविष्ट है । तेरे अभिवृद्धि के लिये दिव्य जल गिरते हैं [वरसते हैं] । [२५] घडियाल;

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अजगर, कच्छप, मत्स्य, जल-जन्तु और मलिन प्राणी, जिन पर आप अपना अस्त्र फेंकते हैं; इनमें से कोई तुझसे दूर नहीं है और न तुझसे भिन्न ही है, स्थान में ही है। तू सबको एक ही बार देखता है। पूर्व से उत्तर तक समुद्र पर्यन्त व्याप्त भूमण्डल पर आघात करता है। [२६] हे रुद्र ! हमें ज्वर व्यथित न करें, विष बाधा न हो, दिव्य अग्नि से कष्ट न हो, हमसे भिन्न, अन्य स्थान पर इस विद्युत को गिरा।

"इसके जप से अभिमन्त्रित लौह शलाका तथा ईंट के उपर्युक्त प्रयोग से यक्ष्मादि ज्वर नष्ट होते हैं। इसी से नीम तथा अपामार्ग से ऊपर से नीचे को विषों को झाडकर उतारें।

विषैले उलटे फोड़ों को भी झाड़ा देकर शान्त करें। नजर लगने पर ७ बड़ी नमक की कंकड़ियाँ, ७ साबित लालमिर्च, राई अभिमन्त्रित कर रोगी पर उतार कर अग्नि में झौंका दें। चौरास्ता पर रक्खें तो नजरादि दूध का फटना सभी बन्द होते हैं।

अग्निदाह की सूचना पाने पर दूब और मट्ठा अभिमन्त्रित कर दक्षिण को पछाड़ते हुए छोड़ें, कहीं भी अग्निदाह हो रहा हो शान्त हो जायगा। ओलों की गड़गड़ाहट में राई और पानी, मट्ठा, आक, गूलर, अपामार्ग की जड़ें एक पात्र में भरकर, अभिमन्त्रित कर ग्राम, नगर की सीमाओं में, अश्वत्थ मूल, चौरास्ता में भूमि में गाड़ दें तो ओलों से विनाश बन्द होगा।

श्वानादि विषैले जन्तु के काट लेने पर, कुम्भकार के चक्र या उसके हाथ धोने वाले पात्र की मिट्टी या वामी]दीमक] की मिट्टी इसी से अभिमन्त्रित कर काटे हुए स्थान पर लेप करायें, जैसे रङ्ग के जन्तु ने काटा होगा उसके बाल उसमें आ जावेंगे, विष नहीं चढ़ेगा। लालमिर्च, नमक, तेल, खटाई, ७ दिन त्याग दें। तांबे की चीज काटे पर बाँधे रहें तो घोड़ा, गदहे की लीदों के कीटों से उत्पन्न टिटनैस नहीं होगी।"

[२७] भव–त्रिभुवनाधीश हैं, उनको प्रणाम है। [२८] स्रष्टा देवराज ! आप पशुपति हैं, यजमान को सुखी करो। जो श्रद्धावान्, देवनिष्ठ हैं, उसके द्विपाद और चौपायों को सुखी समृद्ध करो। [२९] हमारे वृद्ध, युवा, कुमार, बालों, बल दाताओं, माता पिताओं की हिंसा न कर, हम सबके शरीरों को दुःखी न कर। [३०] रुद्र के भयावह स्वरों के, अस्पष्ट वक्ता, बड़े मुख वाले, भौंकने वाले कुत्तों को नमस्कार है। [३१] तेरी बड़ी उच्चतर स्वर वाली, केशों वाली प्रार्थनाओं से परिपूर्ण, उत्तम भोगोंवाली तेरी सेनाओं के त्रिये नमस्कार है। हमारा कल्याण करो और हमें निर्भीक बनाओ। ❖ इस चिह्न पर विशेष प्रयोग विधियाँ आगे पृष्ठों में पढ़ें, करें।

अस्य कां० १ सू० २७ अथर्वा [स्वस्त्ययनकामः]। [चन्द्रमाः] इन्द्राणी [च]। अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्तिः। स्वस्त्ययनगण, वृहच्छान्तिगण, अपराजितगण कर्मणि विनियोगः।

अमूः पारे पृदाक्वस्त्रिषप्ता निर्जरायवः।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्याउवपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥१
विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती। विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥२
न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः। वेणोरद्गा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥३
प्रेतं पादौ प्रस्फुरतं वहतं पृणतो गृहान्। इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥४

कां० १ सू० २७ "अमूः पारे" इसमें इन्द्र राजा का प्रतीक है; और इन्द्राणी, इन्द्र की पत्नि, सेना की प्रेरक दैवी शक्ति है। "**इन्द्राणी वैसेनायैदेवता**" तै० सं० २।२।८।१ इन्द्र क्योंकि इसी की सहायता से वीर सैनिक पराक्रम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के साथ विजय प्राप्त करते हैं। सेना के तीनगुना सात २१ भाग हैं। रथयोधी, राजयोधी, अश्वयोधी, पदाति, दुर्गयोधी, जलयोधी तथा कूटयोधी ये ७ प्रकार के सैनिक होते हैं। इनमें प्रत्येक में अधिकारी, प्रत्यक्ष युद्धकारी और सहायक, इन तीनगुना सात सैनिक होते हैं।

मंत्र १—सर्प की कैंचुली से बाहर [पार] निकली हुई, तेजस्विनी, सर्पिणी के तुल्य चपल सेनायें तीनगुना सात विभागों में विभक्त होकर, युद्ध के लिये कटिवद्ध हैं। उनकी हलचलों से पापी, दुष्ट दूसरों को गुलाम बनाने वालों की आंखें बन्द कर देते हैं। २— धनुष धारिणी, शत्रुओं को काटने वाली; वीर सेना चारों ओर से आगे बढ़ें। जिससे पुनः एकत्रित हुई शत्रु सेना का मन इधर-उधर हो जावे और उससे पापी शत्रु दुःखी निर्धन हो जावे। ३—बहुत से शत्रु भी, उस वीर सेना के सामने नहीं ठहर सकते हैं। जो किशोर हैं, वे धैर्यरहित हो जाते हैं। बांस के अंकुरों के तुल्य सब ओर से पापी [शत्रु] धन, यश, हीन हो जावें। ४—हे दोनों पांवो ! आगे बढ़ो, फुर्ती करो सन्तोष प्रदायक घरों के पास वीर पहुंच जावें अजेय, बिना लूटी हुई, महारानी विजश्री, नेतृ बनकर आगे बढ़ें। यह अपराजितगण, सांग्रामिकगण, चातनगण कर्मों में भी है।

कां० ६ सू० १११ मं० १-४ अथर्वा। अग्निः। अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् मातृनामागण तथा स्वस्तयनगण, चातनगण, वृहच्छान्तिगण कर्मणि, आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक उन्मत्तता निवारण मुक्ति प्राप्तये, होमे उपस्थाने, मार्जने विनियोगः।

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥१
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम्। कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥२
देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि। कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः। पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥४

"इममे अग्ने" [६।१११] मातृनामागण कार्यों में है तथा गन्धर्व राक्षस, अप्सराभूत ग्रह आदि की पीड़ा निवारण में घृतयुक्त पूर्वोक्त औषधियों से चौरास्ता या देवसन्मुख ग्रहग्रहीत को शिर पर दाभ की इण्डली पर मिट्टी का बड़ा कपाल रख, पूर्वोक्त सरसो आदि की समिधाओं की अग्नि या आत्रे। जङ्गली शुष्क गोमय] की अग्नि में इससे होम करे। तदनन्वर छींटे दें, उस पात्र की अग्नि शान्त कर तीन पैर के दर्भ की रस्सी के बने छींके पर रख पक्षियों के बैठने के वृक्ष पर जङ्गल में लटका दें।

"माज्येष्ठ" [६।११२]; "त्रितेदेवाः" [६।११३] परिवेत्तिपरिवेत्ता से उत्पन्न अरिष्ट निवारण में पूर्व वर्णित है।

कां० १ सू० १११ "इमं मे अग्ने" यह सूक्त मातृनामागण, वृहच्छान्तिगण, स्वस्त्ययनगण कर्मों में तथा उन्मत्तता निवारक चातनगण कर्मविधियों में है।।

मं० १—हे अग्ने ! जो दैवी, आसुरी, मानवीय, जन्मजन्मान्तरीय कर्मपाशों या परदासता (गुलामी) के पाशों से बँधा हुआ है; और स्वयं पश्चात्ताप कर औरों को अनर्गल, निष्ठुर वचनों, शाप आदि दुर्वचन बोलता रहता है। मेरे इस पुरुष को उन विविध नैर्ऋति, दुर्गतियों के पाश बन्धनों से मुक्त कर। जो उन्मत्त नहीं होता, उसी का भाग्योदय होता है। [२] तेजस्वीदेव, तेरे अन्दर शान्ति उत्पन्न करें। यदि तेरा मन उखड़ गया हो तो उससे उन्माद-रहित हो सके, ऐसी दैवी [मान्त्रिकी] भैषज करता हूं। [३] यदि देव सम्बन्धी पापों के कारण तुझे उन्माद हुआ हो,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राक्षस, यातुधान, पिशाच, ब्रह्मग्रह, शाप, घातपात, अभिचार कर्मों से उन्माद हुआ हो तो उसका यथार्थ ज्ञान कर; यथावत उन्मादरहित होने की भैषज्य करता हूं। [४] अप्सराओं, इन्द्र, भग ने तुझे पुनः दिया है। विश्वदेवों ने पुनः तुझे उन्मादरहित बनाकर प्रदान किया है।

निद्रास्तम्भन—कटेहरी की जड़ को पीसकर, मधु मिला, निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, नस्य लें अथवा दोनों नेत्रों में अञ्जन की भांति लगाये, तो नींद नहीं आती है। दश हजार जपें—ॐ **नमो नृसिंहाय निद्रास्तम्भनं कुरुकुरु स्वाहा।**

भूतावेशज्ञान—जिस पर पिशाच, भूतादि का आवेश होगा, वह पशु, मानव, धीरे २ हिलने लगेगा। बार २ मूर्च्छा होगी, जम्भाई आयेंगी, शरीर टूटेगा, विचित्रगति होगी, नेत्रों में लाली, कण्ठ अवरुद्ध कभी कठोर होगा। अनर्गल बातें करने लगेगा।

भूतावेश निवारण भेषज और मन्त्र—खस, दोनों चन्दन, कांगनी, तगर और कूठ मिलाकर शिर पर लेपें। इस मन्त्र से १०१ बार कुशा, अपामार्ग, मयूर पंख से झाड़ा दें। दश हजार जप कर सिद्ध कर लें।

ॐ नमोभगवतेउड्डामेश्वराय कुहुनी, कुर्वली स्वाहा।

"अपमित्यमप्रतीत्तम्" (६।११७) इससे कुल के संचालक के ऋणी की अवस्था में मरजाने पर, उसकी आत्मा को ऋण मुक्त कराने के ध्येय से ऋण दाता के गोत्रीय पुत्रादि को उस ऋण का धन ऋणी अभिमन्त्रित करके दे। यदि गोत्रीय या पुत्रादि न हों तो धन अभिमन्त्रित कर श्मशान में या चौरास्ता पर रख धर्मार्थ दें। यदि क्षद्मादि (दुष्कर्म) से, वञ्चना से धरोहर के रूप में धनापहरणादि किया हो तो इन्हीं तीन ऋचाओं से पोटली में द्रव्य को रख, अग्नि तप्त कर उपरोक्त स्थान, या चतुष्पाद के निमित्त प्याऊ आदि में अभिमन्त्रित कर लगाये। कौ. ५।१०

यदि घर में (झोंपड़ी) छान-छपरी में अग्नि लग जावे तो उसके भावी अनिष्ट से सरक्षणार्थ गृह अग्नि में चावल, गेहूँ, जौ आदि सतधान मिश्रित अञ्जलि को अभिमन्त्रित, इन तीनों से करें और पूर्णाहुति दें। कौ, १३।४१ *"यद्धस्ताभ्यांचकृम" (६।११८) *"यददीव्यन्नृणमहम्" (६।११९) ये तीनों ही ऋचा (सूक्त) इसी कर्म में है। *"वैश्वानरायप्रति" (६।११९-२) में वर्णित "यघृणम्" इति केवल शब्द की व्याख्या तै. स. ६:३:१०:५ "यद ऋणं लौकिकम् देवतासु देवताविषये यः संगरः अवश्य कर्त्तव्य तथा प्रतिज्ञा "ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः" इति आगे स्वस्त्ययनगण में पढ़ें।

कां. ६।११७ (१-३) कौशिकः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

अ॒प॒मि॒त्यमप्र॑तीत्तं॒ यद॒स्मि य॒मस्य॒ येन॑ ब॒लिना॒ चरा॑मि।
इ॒दं तद॑ग्ने अनृ॒णो भ॑वामि॒ त्वं पाशा॑न् वि॒चृतं॑ वेत्थ॒ सर्वा॑न् ॥१
इ॒हैव सन्त॒ः प्रति॑ दद्म एनज्जी॒वा जी॒वेभ्यो॒ नि ह॑राम एनत्।
अ॒प॒मित्य॑ धा॒न्यं१॒ यज्ज॒घसा॒हमि॒दं तद॑ग्ने अनृ॒णो भ॑वामि ॥२
अ॒नृ॒णा अ॒स्मिन्न॑नृ॒णाः पर॑स्मिन् तृ॒तीये॑ लो॒के अ॑नृ॒णाः स्या॑म।
ये दे॑व॒याना॑ः पितृ॒याणा॑श्च लो॒काः सर्वा॑न् प॒थो अ॑नृ॒णा आ क्षि॑येम ॥३

कां. ६ सू ११७ "अपमित्यम्" में जिस अमानत को या ऋण को वापिस न करने के कारण ऋणी ही हूं। (जीवन त्याग कर) यम (नियन्ता) के पास आ पहुचा हूं। हे अग्ने! अब मैं (इस जन्म कालीन या पूर्व जन्मान्तरीय)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस ऋण को चुकाकर ऋणमुक्त हो जाऊँ, तू सब ऋणबन्धनों की मुक्ति का ज्ञाता है मुझे वह प्रकाश, शक्ति, साधन प्रदान कर। (२) इस लोक में ही जीवित रह कर अपने इस या पूर्वजन्मान्तरीय सभी ऋणों से मुक्त हो जाना चाहिये, अन्यथा सन्तति को अहित कर होता है। चाहे किसी का लेकर खाया हो, अथवा धनादि का ऋण, या अमानतें हों, उसे सर्वप्रथम चुकता कर ऋणमुक्त होना चाहिये। (३) इस लोक, परलोक और परात्परतर लोकों के सभी ऋणों से मुक्त होना चाहिये। ये ऋण देवयान, पितृयान के सभी सूक्ष्म लोकों की गति में बाधक होते हैं। इन्हीं ऋणों को लेने देने को बार बार जन्म लेने पड़ते हैं। यही प्रतिग्रह शय्यादान, ग्रहणदान, धार्मिक ट्रष्टों के धर्मादा या राजधन हड़पने वालों की दुर्गति का कारण बन जाता है।

❖ गत पृष्ठ ३६६ के चिह्न के सन्दर्भ में विवेचना—

दिशा निर्णय—सभी वैदिक 'तान्त्रिक, साबर-मन्त्रों के प्रयोग की विधि—वशीकरण में-पूर्वाभिमुख, मारण में उच्चाटन, सम्मोहन, विद्वेषण में दक्षिणाभिमुख, विद्या, धन, ऐश्वर्य, उद्योग, पुष्टि, दीर्घायु की रक्षा में उत्तराभिमुख मोक्ष, अभ्युदय में पूर्वाभिमुख बैठकर जप करें।

जप निर्णय—जप तीन प्रकार के होते हैं वाचिक, उपांशु और मानसिक। जप कालमें शब्द दूसरे को सुनाई दे (वाचिक) जो स्वयं को ही सुनाई पड़े [उपांशु];और जो बिना वाणी ओष्ठ हिले मनमें ध्यानपूर्वक जपा जावे [मानसिक] होते हैं। मारणादि में [वास्विक]; शान्ति पुष्टि कार्यों में उपाशु और मोक्ष कार्यो में मानसिक का प्राविधान सर्व शास्त्र सम्मत है। ये तीनों पाप नष्ट करने वाले होते हैं।

माला निर्णय—पुष्ठि और वशीकरण कार्यों में मूँगा, हीरा, मणी की माला लें। 'आकर्षण में'' मदान्ध हाथी के दांत की, (विद्वेषण तथा उच्चाटन में) सूत या मनुष्य के बालों के धागे में घोड़े के दांत की माला पुरोकर, ''मारण'' में ऐसे मनुष्य दाँतों की, जिसकी संग्राम में मृत्यु न हुई हो—अथवा ''गदहे'' के दांत की, ''समस्त कार्य सिद्धि में'' शंख, मणि, कमलगट्टा, रुद्राक्ष, स्फटिक, मणि, मोती अथवा पुत्र जीवक (जीयापोता) से जप करें। ''पुत्रजीवक'' की माला पर जप करें, उसके ही बीज को घिसकर, मधु, गोघृत मिलाकर सूर्य को अर्पित कर शनैः २ चाटें, तो वाणी के सभी प्रकार के दोष, वाणी के पाप, वाणी (जिव्हा के रोग) नष्ट होकर महाविद्याओं की प्राप्ति होती हैं।

पशु स्तम्भन—१. जहाँ पशु बँधते हों, वहाँ चारों ओर खोदकर ऊँट की हड्डी मन्त्र से अभिमन्त्रत कर गाड़ दें; तो पशु वहाँ से नहीं जा सकते, चोर भी पकड़ में आ जावें। २. पशुओं के ऊपर ऊँट के लोम डाल दें अचल हों।

मुख स्तम्भन—आक के पत्र पर हरताल के रस से जिसका नास लिखकर वाटिका के ईशान कोण में गाड़ दे उसका मुख बन्द हो जावेगा।

मत्कुण निवारण—१. आक (अर्क) की रुई की बत्ती को महावर में रङ्गकर, कड़वे तेल के दीप में जलावे तो खटमल तुरन्त भाग जावें। २. अर्जुन के फल, पुष्प, लाल और सफेद चन्दन, सफेद खरैटी की जड़ भिलावा, वायविडङ्ग और राल के समभाग की घर में धूप देने से खटमल, चूहे, सर्प घर त्याग कर चारों ओर भाग जाते हैं।

सर्पादि निवारण—१. गुड़, सफेद चन्दन, वायविडङ्ग, त्रिफला, लाख (लाक्षा) का रस और आक के फूल मिला धूप दें, तो सांप, बिच्छू, दूर भाग जावें। मोथा, सरसों, भिलावां, कहत [कपित्थ] का फल, गुड़, आक मिलाकर धूप दें, तो खटमल, मच्छर, सर्प, चूहे, विषैले कीड़े घर, क्षेत्र, छोड़कर दूर भाग जाते हैं।

मच्छर निवारण—भिलावा, वायविडङ्ग, सोंठ, पोहकर भूल और जामुन के सम भाग चूर्ण की धूप देने से ''मच्छर'' भाग जाते हैं।

कृषि उपद्रव निवारण—बालू, सफेद सरसों एकत्रित कर खेत में डाल देने से टिड्डी, सर्प, कीड़े, सूअर, हिरण, चूहे मच्छर, डांस, ऋतुआ, फफूदी, गेरुई, सुराही मन्त्र विद्या के प्रभाव से वहाँ नही ठहरते है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृषि समृद्धि—केवल पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में ही बहेड़े के बंदा लाकर, खेत में डाल देने से अन्न की समृद्धि होती है। यहाँ यह तान्त्रिक मन्त्र दिया जा रहा है। इसका निशा में पीपल के नीचे १० हजार जपकर सिद्ध कर लें। अथर्व मन्त्र ग्रन्थ में ऊपर हैं। **"ॐनमः सुरेभ्यः बलजः उपरिपरिमिलि स्वाहा"**।

"जल स्तम्भन"—१. कुलीर [कर्कटा] की टांग, दांत, [रक्त और कछुआ का हृदय और शिशु मार जलजीव की चर्बी, भिलावे का तेल मिलाकर पकालें। उसे शरीर पर लेपें, तो अथाह जल पर सुख पूर्वक ऊपर ही ठहरा रहे। २. भिलावे के तेल में सर्प, नक्र, नेवला की चर्बी, डुण्डुभ का शरीर पकाकर लोहे के पात्र में रख लें। कृष्ण पक्ष की अष्टमी को शिवार्चन कर निम्न तान्त्रिक मन्त्र १ हजार; बार जपें, होम कर, उपरोक्त तेल लेपलें तो जल भय नहीं होता। यह तामसी, आसुरीप्रकृतिवालों के लिए है, जो जल से जीविकोपार्जन करते हैं।

"ॐ नमो भगवते जलं स्तम्भय हुँ फुट् स्वाहा"।

मेघ स्तम्भन—चिता के कोयले से मेघ, दो ईंटों पर लिखें, निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करे, उसको सम्पुट कर भूमि में गाड़ें तो अतिवृष्टि बन्द हो जाय। दश हजार मन्त्र जपें।

ॐ नमो नारायणाय मेघ स्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा।

"अग्नि स्तम्भन"—मेंढ़क की चर्बी में कपूंर मिलाकर शरीद पर लेप करें, तब अग्नि में प्रवेश करें तो अग्नि स्तम्भित हो; जलाती नहीं। २. घी कुवार [ग्वालपाटा] के रस का लेप कर लेने से, कोई वस्तु अग्नि से नहीं जलती है। ३. पहिले शर्कर का शर्बत पीले ऊपर से सोंठ चबालें उसके बाद जलता हुआ लोहे का गर्म गोला मुँह में रख लेने पर भी मुँह नही जलता।

आसन स्तम्भनम्—मानव की खोपड़ी में उर्वरा मिट्टी भरें, उसी में घुंघुची के बीज बोदें। दूध से उसे निरन्तर सींचते रहें, जब उग आवें बड़ी हो जावे, तब उसके पुष्प, पत्रादि का रस लेकर "जिस किसी के भी" सम्मुख छिड़कें, वह वहाँ से फिर कही नहीं जा सकता। २. (उपरोक्त की ही) घु घुची की शाखा, लता अभिमन्त्रित कर, जिसका आसन स्तम्भन करना है। उसके सम्मुख उसको डाल दें। तान्त्रिक मन्त्र देखें, दस हजार जप कर सिद्ध करें। इसमें (अमुक) के स्थान पर उसका नाम उच्चारण करें।

ॐ नमो दिगम्बराय (अमुकस्यासऽऽन स्तम्भनं कुरु-कुरु स्वाहा।)

"शस्त्र स्तम्भन"— पुण्य नक्षत्र में, संक्रान्ति में "खरमञ्जरी" की मूल विधिवत् पूजा कर ले आवें उसे रगड़कर, शरीर पर लेप करें, तो शास्त्र की चोट नहीं लगती है। २. मुख में खजूर की, कमर में केतकी की; भुजा पर आक की, जड़ें अभिमन्त्रित कर बाँध लें, तो सभी प्रकार के शस्त्रों से चोट नहीं लगती है। ३. रविवार के दिन कोमल बेल के पत्ते को कमल नाल के साथ पीसकर अभिमन्त्रित कर शरीर पर मलें तो शस्त्रों की चोट नहीं लगती।

ॐ नमो अघोररूपाय शस्त्रस्तम्भनं कुरु२ स्वाहा। दश हजार वार जप कर सिद्ध कर लें।

ये राष्ट्र के रक्षक प्रहरियों की जानकारी और कल्याणार्थ दिये जा रहे हैं। वे स्वय नहीं कर पायें तो विद्वान परमार्थी जनसेवी जन मन्त्रों की साधना कर, इन उपर्युक्त वस्तुओं का संग्रह कर अभिमन्त्रित कर उचित मार्ग से उन सभी तक पहुंचायें, जो जल, नभ तथा थल, की सुदूर, सुदृढ़, भीषण सीमाओं पर, अपना कर्त्तव्य पालन मे, ग्रहादि का मोह त्याग कर, केवल राष्ट्रप्रेम से विह्वल आत्माये निरन्तर जुटे रयते हैं।

सेना स्तम्भन—रविवार के दिन सफेद घुंघुची के फल श्मशान में गाड़ दें। एक पत्थर से उसे दाब दें। तदनन्तर, १. वैष्णवी, २. वाराहो, ३. माहेश्वरी, ४. नरासिंही, ५. कुमारी, ६. लक्ष्मी, ७. ब्रह्माणी, ८. रौद्री, गणेश,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटुक, क्षेत्रपाल, दशों दिग्पालों को धूप दें, पुष्पादि से पूजा करें। गुड़, उड़द की दाल, [दही-सिंदूर-हल्दी मिलाकर] भोग लगायें, निम्न मन्त्र को दश हजार बार जपें।

ॐ नमो कालरात्रि त्रिशूल धारिणी मम शत्रु सैन्य स्तम्भनं कुरु-कुरु स्वाहा।

ये तान्त्रिक सफल प्रयोग वेद विहीनों के हितार्थ है वेदविद कां. ११ सू० २ से ही उपर्युक्त प्रयोग करें।

कां. ६।११८ कौशिकः । अग्निः । त्रिष्टुप्।

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गुत्नुमुपलिप्समानाः।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥१
उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत्।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥२
यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥३

कां. ६ सू. ११८ "यद्धस्ताभ्याम्" :—(१) जुए के स्थान में जो पाप किये जाते हैं, आज वह हमारा पापरूप ऋण, उग्रता से देखनेवाली और उग्रता से जीतनेवाली ये दोनों अप्सरायें, हमसे उस पापी ऋण को चुकता करायें। (२) हे उग्रता से देखनेवाली, और हे राष्ट्रपालिकाओं! जो जुए का पाप या अन्य पाप या ऋण, हत्या का पाप, यह सभी हमसे उपर्युक्त लोकों में निष्ठुरता से बदला लेंगे। ये ऋण दातागण या जिनके अहित हमने किये हैं, वे सभी बन्धन पाश लेकर यमलोक में हमारे पास आकर, बन्धनों में डालेंगे। (३) हे देवगणो! जिसको ऋण वापिस करना है, जिस किसी स्त्री के पास भिक्षार्थी, सहायतार्थ जाता हूं, वे मुझसे निष्ठुर बचन न कहें। हे देवपत्नि अप्सराओं! मेरी इस प्रार्थना का स्मरण रखो।

कां. ६।११९-३ "कौशिकः। वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप्।

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१
वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु।
स एतान्पाशान्विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥२
वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत्संगरमभिधावाम्याशाम्।
अनाजानन्मनसा याचमानो यत्तत्रैनो अप तत्सुवामि ॥३

कां. ६ सू. १२६ "यददीव्यनृणम्" :— मैं जुआ न खेलता हुआ, जो अन्य प्रकार से ऋण लेता हूं, जो केवल वायदे मात्र ही करता रहता हूं। प्रभु मुझे उन सभी पापों से बचाये, और ऊपर उठाये, पुण्य लोकों में पहुंचाये। (२) मैं विश्वेश्वर के समक्ष, जो मैंने ऋण लिये, जो मिथ्या वायदे किये वह सभी निवेदन कर प्रायश्चित् करूंगा। इसी भांति से प्रभु मेरी पापों से रक्षा करेंगे, क्योंकि वे ही पापबन्धनों से मुक्त कर हमारे कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। हम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिपक्व ज्ञानियों की शरण में रहें, जिससे हम पापों से बच सकें। (३) सबको पापों से पवित्रकर्त्ता प्रभु, मुझे भी पवित्र करें। मैं जिस आशाके पीछे पड़कर बार-बार मिथ्या प्रतिज्ञा करता हूं, और पाप को न जानता हुआ मैं जो बार-बार प्रार्थना (याचना) करता हूं। पाप करता हूं वह सब मैं दूर करता हूं। सारांश प्राणी किसी भी प्रकार से, कैसा भी ऋण न करें। न झूठे वायदे ही करे, सभी को ऋण जैसे ही सम्भव हो चुकता करें अन्यथा उसको और उसके दायभागीयों उत्तराधिकारियों को जघन्य दुर्गति पाश बन्धनों का मूल होता है।

"यद् देवा देवहेडनम्" (६।११४); 'यद् विद्वांसो" (६।११५); "अपमित्यम् अप्रती" (६।११७) इन तीनों से सब यज्ञ में "ब्राह्मौदनिकाग्नि" का आवाहन-मन्थन सम्मुखीकरणादि कर दाता पूर्णाहुति होम करें। कौ. ८।८ अग्निष्टोम याग में आदित्य ग्रह होम तृतीय सवन में ब्रह्मा अनुमन्त्रित करें। वै. २।१२। उसी में इनसे सर्व प्रायश्चित्त होम करें। वै. ३।१३ "आग्रयणेष्टि" में "यदाविद्वांस" (६।११५); "द्यावापृथिवी" उपश्रुत्या (२।१६-२) 'सोमो वीरुधाम्' (५।२४-७) इस वैश्यदेवचरु का ब्रह्मा अनुमन्त्रण करें। वै. (२।४)

"ऋतस्यर्तेन" (६।११४-२) में श्रुति "तत एतत्सत्यंस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषां एष सत्यम्" (बृ. आ. २।१।२३) व्यायमानं हि परं ब्रह्म सर्वस्यपापस्य निवर्तकम्। २ "उपपातकेषु सर्वेषु पातकेषु महत्सुच। प्राविश्य रजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत्॥ तथाच् "भूताय स्वाहा भविष्यते स्वाहेतिभूतांभव्यौ होमौ जुहोति। अयं वै लोको भूतम् असौ भविष्यत्॥" इति श्रुतिः (तै. ब्रा. ३।८।१८।५)

कां. ६ सू. ११५ [१-३] ब्रह्मा। विश्वेदेवाः। अनुष्टुप्।

यद्विद्वांसो यदविंद्वांस एनांसि चकृमा वयम्। यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः॥१

यदि जाग्रद्यदि स्वपन्नेनं एनस्योऽकरम्। भूतं मा तस्माद्भव्यं च द्रुपदादिंव मुञ्चताम्॥२

द्रुपदादिंव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलांदिव। पूतं पवित्रेंणेवाज्यं विश्वें शुम्भन्तु मैनंसः॥३

कां. ६ सू. ११४ [१-३] ब्रह्मा। विश्वेदेवाः। अनुष्टुप्।

यद्देवा देवहेडनं देवांसश्चकृमा वयम्। आदिंत्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेनं मुञ्चत॥१

ऋतस्यर्तेनांदित्या यजंत्रा मुञ्चतेह नः। यज्ञं यद्यंज्ञवाहसः शिक्षंन्तो नोपंशेकिम॥२

मेदंस्वता यजंमानाः स्रुचाज्यांनि जुह्वंतः। अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षंन्तो नोपं शेकिम॥३

"यद्यामं चक्रु" इन ३ ऋचाओं से घी तेल, मधु, सम भाग की वृद्धि-क्षय आदि के अद्भुतकर्म में तथा भूमि के जोतने, खोदने आदि के ज्ञात अनज्ञात समस्त पाप जनित भावी अनिष्टफल व पापो से मुक्त होने के लिये आज्य-होम करें। कौ० १३।४०। कां० ६।११५

(६।११६) मधुमदन्नम, १-३ जाटिकायनः। विवस्वान्। जगती, २ त्रिष्टुप्।

यद्यामं चक्रुर्निखनंन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्ययां।
वैवस्वते राजंनि तज्जुंहोम्यथ यज्ञियं मधुंमदस्तु नोऽन्नंम्॥१

वैवस्वतः कृणवद्भागधेयं मधुंभागो मधुंना सं सृंजाति।
मातुर्यदेनं इषितं न आगन्यद्वां पितापंराद्धो जिहीडे॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परिभ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान्पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥३

कां. ६ सू. ११६ "यद्याम्" युगारम्भ काल में, कृषकों ने भूमि को खोदते (जोतते) हुये कृषिविज्ञान से अन्न प्राप्त कर्ताओं के तुल्य, स्वानुभूत)कृषि नियम बनाये । उनको वैवस्वत राजा को समर्पित करता हूं । अब हमारा यजनीय अन्न मधुर हो । (२) वैवस्वत राजा ने सबको अन्नभाग निर्द्धारित किया । स्वादु (मधुर) भाग अधिक मिष्ठान्नयुक्त होने से अधिक रुचिकर मान सेवन करते हैं । अर्थात् अपना भाग ही सेवन करें, दूसरे का भाग सेवन करना पाप तथा विषाक्त है । माता-पिता का जो दायभाग आता है, उसका भी हम अपने भाग के तुल्य सेवन करें, क्योंकि अपने माता-पिता के नेह के रहने के कारण वह कल्याण कर ही होगा । (३) यदि माता-पिता, भाई और पुत्रादि से जो भाग हमारे पास आता है, यदि उसमें उनका किसी कारण क्रोध भी हुआ हो, तो वह हमारे लिये कल्याण कर होवे । इसी के लिये बलि-वैश्व देव यज्ञ, या भक्तों द्वारा विश्वम्भर का भोग उसके दोष निवारणार्थ लगाने की वैदिक परम्परायें बनाई गई हैं ।

"यदन्तरिक्षम्" (६।१२०); "विषाणापाशान्" (६।१२१); (६।१२२) से उपरोक्त समस्त निर्ऋति, यम-वरुणा-दिपाश "ठदुत्तमं वरुणपाशम् अस्मद् अवाधमं विमध्यमश्रधाय" इतिनिगम (ऋ० १।२४।१५)–लकड़ी–लोह–रस्सी–चर्मादि के वन्धनों से पहिले बन्धनयुक्त करके-भूमि में 'प्रति कृतिवना लें या पार्थिव मूर्ति बना वन्धनयुक्त करें तव' "विषाणपाशान् (६।१२१) से उन्हें अपने गुरुकुल-मातृकुल-पितृकुलों के समस्त जनों को अतीत-तथा आगत के साथ स्वयं का उद्धार करें ।

कां. ६ सू. १२० (१-३) कौशिकः । अन्तरिक्षं, पृथिवी, द्यौः, अग्निः । १ जगती, २ पङ्क्तिः, ३ त्रिष्टुप् ।

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वाजिहिंसिम ।
अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१
भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ॥२
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥३

कां. ६ सू. १२१ (१-४) कौशिकः । अग्निः, ३ तारके । १-२ त्रिष्टुप्, ३-४ अनुष्टुप् ।

विषाणा पाशान्वि ष्याध्यस्मद्य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥१
यद्दारुणि बध्यसे यच्च रज्जवां यद्भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥२
उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके । प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥३
वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम् ।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वा अनु क्षिय ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां ६ सू १२१ "विषाणापाषान्" म०१—हे प्रभो ! वरुण देव के उत्तम और निकृष्ट सभी प्रकार के पाशों को तोड़ते हुए हमसे दूर करो। बुरे विनाशकारी स्वप्नों; और पापों को भी दूर करो, जिससे हम सुकृत लोकों में जा सकें। म० २—जो काष्ठ स्तम्भ में रस्सी आदि से बाँधे जाते हैं और जो भूमि में वाणी के आक्रोश या अभिशाप से बाँधे जाते हैं, उन सभी प्रकार के बन्धनों से गार्हपत्य अग्नि; हमें सुकृत (पुण्य लोक प्राप्त कराये।) ३–भाग देने वाली, पापों से छुड़ाने वाली और पार करने वाली दो दैवी शक्तियाँ दो-दो मूल नक्षत्रों का जोड़ा उदित होकर; अमृत भाग प्रदान करें, जिससे यह जीव, इन बन्धन पाशों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त कर सके। ४–विशेष प्रगति कर पुण्यलोक प्राप्तकर, (कर्मपाश) बन्धन से मुक्त हो। जैसा पूर्ण हुआ बालक माता के गर्भ से छूटकर बाहर आता है और इस लोक में अनुकूल स्थिति पाकर बढ़ता है; वैसे ही बन्धन से बन्धपाश के कारण को, अलगकर, सभी ओर के मार्ग अनुकूल बना। "शूद्धाः पूताः" (६।१२२-५) से सब यज्ञ में ऋत्विज होताओं के हाथ धुलाने को जल अभिमन्त्रत कर दें। कौ. (८।४)

"एतंभागमपरिददामि" (६।१२२); "एतं सधस्थाः" "(६।१२३); उलूखलें (१०।९-२६) इन तीनों से तथा "येन सहस्त्रं" (६।५।१७) से वैश्वकर्मण होम करें (वै०५।२)। इन्हीं से संस्थित होम करें (कौ०८।४) तथा इन तीनों तथा "ते प्रततामहः" (१८।४-७५); से आवाहन कर, "अत्रपितरः" को जपकर "एतं भागम्" (६।१२२); "एतंसधस्थाः" (६।१२३) एवं "श्येनोनृचक्षाः" (७।४२-२) से अग्निष्टोम हविर्धान में अनुमन्त्रण करें। वै०३।१२। विशेषः—

"एतभागम्" "(६।१२२) की ऋचा २ "ततं तन्तुमन्वेके" में एके-से-जो देह परित्याग काल में ऋणि था,—उसके "तन्तुम्" पुत्रपौत्रादि ऋण को चुकाकर–उस मृतक का उद्धार करें। "येषां" के अनुसार पिता, पितामह आदि का ऋण से उद्धार होता है। परन्तु "अवन्धु" जिनके पुत्र-पौत्रादि सन्तति का अभाव है—या हो, तो उसके कुटुम्बियों में जो भी हो वह पितृ प्रभृति कृत ऋण या आत्मकृत ऋणादि का परिहार कर ऋणी दुःखी मृतात्मा को यमादिपाशों से मुक्त करा सुकृत लोक प्राप्ति-उन सभी की मृतात्मा को यमादिपाशों से मुक्त करा सुकृत लोक प्राप्ति—उन सभी की तथा अपनी भी कार्यवाही करें। तो स्वर्गादि का भोक्ता वह तथा पितृ प्रभृति होते हैं।

ऋचा ३ "अचन्वारभेथा" परलोक हितार्थ सत्कर्म का समारम्भ अनिवार्य समझ, आस्तिक्य–बुद्धि के साथ करें। प्रारम्भ कर उसका निरन्तर पालन करते रहें। यज्ञ–ब्राह्मणादि की पूजा, भोजन, वापी, कूप, तड़ाग, उद्यान (परिहितार्थ-भावना से), विद्यादिदान ये सभी तथा स्वाध्याय जप–होम–अनुष्ठानदि–सत्कर्म हैं। अनशन व्रत परिक्रमा आदि शारीरिक सत्कर्म हैं प्राणायाम आदि मानसिक तप हैं। वसु, रुद्र, आदित्य स्वरूप में देही के पिता-पितामह-प्रपितामह आदि पितृ देवता हैं। अतः सबके उत्पत्ति मूल देवता हैं "आत्मा वैजायते पुत्रः" श्रुतिः। इसी से पितृ प्रभृतिकृत समस्त पाप-पुण्य सम्पत्ति के भागी, पुत्र, पौत्रादि हैं और पुत्र पौत्रादि कृतकर्म के पितृ प्रभृति हैं। "देवा पितरः" [६।१२३-३] ऋचा के मन्त्र पाठ सामर्थ्य से मातापिता के व्यभिचारी होने पर भी यथावत समस्त अनुष्ठित कर्म फलप्रद हो जाता है।

कां. ६ सू. १२२ [१-५] भृगुः। विश्वकर्मा। त्रिष्टुप्, ४-५ जगती।

एतं भागं परिं ददामि विद्वान्विश्वंकर्मन्प्रथमजा ऋतस्यं।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥१
ततं तन्तुमन्वेकें तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायंनेन।
अवन्ध्वेके ददंतः प्रयच्छंन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥२
अन्वारंभेथामनुसंरंभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद्वां पक्वं परिंविष्टमग्नौ तस्य गुप्तंये दंपती सं श्रंयेथाम् ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्न जरसः परस्तात्तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥४
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ॥५

कां. ५ सू. २४ मं. ५—"मित्रावरुणे:"—पौरोहित्य कर्म की सफलता हेतु [कुशग्रहिणी] अमावस्या के दिन शूद्र से लाई हुई समिधाओं, कुशाओं से होम करें । कौ० २।८ इस "तांसवितप्रसवानाम्" से विवाह में आज्यहोम करें । [कौ. १०।४] चातुर्मासव्रत में वैश्वदेवपर्कपर "सावित्रयाग" इसी से करें । वै. सू. २।४. यह वृहच्छान्ति, स्वस्त्ययनमणों में भी है ।

अथस्वस्त्ययनगण [स्वस्तिवाचनानि] [कौ.कं. २५।३६] [१।२७]; (६।३;३;७;१३;२४-२५;३७,४०,६३] [७।३१,८५,८६] [६।६१,६२,११७,११७] [७।१५] [१६।२०-४] [८।५-१६] [१२।१-११,२,३१,३२], [७।८५, ८६,११७,११८], [१६।६८] स्वास्तिवाचनानि ।

कां. ५ सू. २४ मं. ५ अथर्वा, ब्रह्मकर्मात्मा ऋषि; मित्रावरुणौ देवतादौ; अतिशक्वरी छन्दः ।

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५

मन्याविनाशनम् [६।२५] पूर्वोक्तम् । शापनाशनम् [६।३७] । अभयम् [६।४०] । स्वस्त्ययनम् [६।६३] । यक्ष्मनाशनम् [६।६१] पूर्वोक्तम् ।

का. ६।६२"वातरंह"—घोड़ों के उपद्रव शान्त्यर्थ, इनसे होम करें । प्रणीता जल से सूक्तोक्त विधि से अश्व का मार्जन, स्नान, पान करायें, साथ में पलाश के पञ्चाङ्ग का चूर्ण भी दें । को. ५।५

कां. ६ सू. ६२ अथर्वा । इन्द्रः, वाजी । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥१
जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः॥२
तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवीऽव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥३

कां. ६ सू. ६२ "वातरहां"—हे अश्व! तू जोतने पर वायु वेग तुल्य हो। चलने समय मन वेग के तुल्य तत्परता से दौड़ । समस्त विद्याकुशल वीर मृत्युकाल में भी उठ खड़े होने वाले वीर तुझें जोतें । त्वष्टा देव तेरे पैरों में वेग स्थापित करें । म. २—हे गतिशील ! जो वेग वायु, गरुण एवं अन्य वेगवान पदार्थों में है, तू उस वेग से वेगवान् होकर संग्राम में पार करने वाला, युद्ध में विजय प्राप्त करा । म.३—हे अश्व ! तेरा शरीर हमारे शरीर को [लादकर] लेकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चलता है। हम सब को अत्यल्पकाल में, हमारे लक्षस्थान पर पहुँचा, और तुम सुखी होवो। हे विशुद्ध देव ! सब की धारणा के लिए, द्युलोक में, जैसे सूर्य तेजोमय है, उसी के तुल्य सबको महान तेज प्रदान कर।

पातं नः ।। (६।३) तथा "य एनं षरिषीदन्ति" (६।७६) सूक्तों से विजयार्थ, स्वस्त्ययनकार्यों में होम करें और शस्त्रादि अभिमन्त्रित कर योद्धाओं को दें, तथा स्वस्त्यननकामी रात्रि के शयनकाल में इन सूक्तों को जपते हुए प्रादेश से (अंगुष्ठ व तर्जनी के चौड़ाने से बना बीच का भाग) मुखमण्डल का अभिमर्शन कर सोयें, और सोते से प्रातः उठते ही तीन बार पुनः मुखमण्डल पर हाथ फिरायें और तीन पग उस पैर से जिधर का स्वर उस समय हो प्रथम चलें। (कौ० । ७ । १) स्वस्त्ययन समस्त कार्यों में ।। पातं नः (६ । ३) "अनुडद्भयः" (६ । ५९) 'भवाशर्वो' (११ । २) से होम-जप-उपस्थान करें। कौ० ७।१

का० ६।३ अथर्वा। इन्द्रापूषणौ, अदिति, मरुतः, अपानपात्, सिन्धवः, विष्णु।, द्यौः २ द्यावा पृथिवी, ग्रावा, सोमः, सरस्वती, अग्निः, ३ अश्विनौ, उषासनक्ता, अपांनपात्, त्वष्टा। जगती, १ पथ्या वृहती।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः।
अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन नो विष्णुरुत द्यौः ।।१
पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ।।२
पातां नौ देवाश्विना शुभस्पती उषासनक्तोत न उरुष्यताम्।
अपां नपादभिहुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ।।३

का० ६ सू० ३ "पातं न इन्द्र" मं० १—इन्द्र, पूषा, अदिति, मरुद्गण, पर्जन्यदेव, सातों समुद्र, विष्णु और द्युलोक हमारी रक्षा करें। मं० २—द्यु और पृथिवी लोक, अभीष्ट प्राप्ति के लिए हमारी रक्षा करें। पाषाण सोम और औषधियाँ हमारी पाप (रोग) से रक्षा करें। श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाली सरस्वती हमारी रक्षा करें। मं० ३—उत्तम गलन कर्त्ता, अश्विनीदेव, उषा, रात्रि, हमारी रक्षा करें। जल न गिराने वाले त्वष्टादेव, घर की दुर अवस्था दूर करके, सब तरह की अभिवृद्धि करें।

।। त्वष्टा मे ।। (६।४) ये तीन ऋचायें दायादि विभाग कार्यों में पुष्टचर्थ, गोदुग्ध में पके व्यञ्जन भोग लगा, अभिमन्त्रित कर खायें, और धनुष की डोरी को अभिमन्त्रित कर धारण करें। कौ० ३।६।

पुष्टचर्थ चित्राकर्स में वृक्षों की शाखायें, शांति औषधियों से युक्त जल के घट को अभिमन्त्रित रात्रि में करें। प्रातः धार दें, छींटे दें, पिला दें। कौ० ३।६ इन्ही से एक ही साथ लड़का-लड़की दोनों के (युगल जन्म) जनित दोष निवारणार्थ घी उनके शिर पर होकर उतार कर होम करें, और इस प्रकार प्रथम प्रार्थना करें। 'कुमारस्य कुमार्या वा द्वावावर्तौ मूर्धन्यौमवतः ।। कौ० १३।३२।

का० ६।४ अथर्वा। १ त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः, २ अंश, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदिति, मरुतः, अश्विनौ, द्यौष्पिता। पथ्या वृहती २ संस्तार पंक्तिः। त्रिपदा विराड्गायत्री।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ।।१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्यद्वेषो गमेदभिहुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥२
धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या णं उरुज्मन्नप्रयुच्छन् । द्यौ३ष्पितर्यावयं दुच्छुना या ॥३

कां० ६ सू० ४ ॥ त्वष्टा मे ॥ सबका रचयिता, पर्जन्य, जलप्रदाता, ज्ञानदाता, पुत्रों, भ्राताओं के साथ अदिति देवी, मेरी दिव्य वाणी को सुनें, और हमारे अजेय, रक्षक बल की सुरक्षा करें। (२) अंश प्रकाशक, भाग्य विधाता, वरिष्ठदेव, सर्व हितैषी श्रेष्ठ पुरुषों का निर्णायक, अदिति और मरुद्गण ये सब देवगण मेरी रक्षा करें। उस शत्रु का भी कुटिलतापूर्ण द्वेष दूर हो, ये सब पास के शत्रु को भगा दें।

मं० (३) हे अश्विदेवो ! बुद्धि के लिए हमारी उत्तम रक्षा करो। विशिष्ट गतिवान् भूल न करके, आप हमारी सबकी रक्षा करो। हे द्युलोक पालक ! जो भी दुर्गति हो, उसको दूर करो।

।।योऽस्मान्।। (६।६) ॥ उदेनं उत्तरं नयः ॥ (६।५) तथा "इन्द्रः सुत्रामा" (७।९६) ग्राम प्राप्ति के लिए— इन्द्र का जप उपस्थान तथा गूलर, कर्कन्धु, ढाक की समिधा कुशादि से होम एवं व्यञ्जन भोग लगा अभिमन्त्रित कर दें, प्रसाद पायें। कौ० (७।१०)।

इन्द्रेमं प्रतर कृधि ॥ (६।५-२) से इन्द्रयाग तथा अद्भुत दर्शन जनित अरिष्ट निवारणार्थ—अद्भुत महाशांति होम करें (न० क० १४)।

(६।६) १-३ अथर्वा । १ ब्रह्मणस्पतिः, २-३ सोमः । अनुष्टुप् ।

योऽ३स्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१
यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति । वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥२
यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः । अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥३

कां ६ सू० ६ "योऽस्मान्ब्रह्मणस्पते" :-शत्रु पाँच प्रकार के कहे गये हैं : (१) 'अदेव' ईश्वरी सत्ता का न मानने वाला, भक्तिविरोधी, नास्तिक और असत्यमार्गावलम्बी। (२) अभिमन्यते (अहङ्कारी) (३) 'दुश्शंस' :—निन्द्य जघन्य, सर्व अहितकर्त्ता। (४) "आदिदेशति" (जैसे भी सम्भव हो दूसरों पर अधिकार के अभिलाषी, दूसरों को आदेश देने को आतुर, अभिलाषी। (५) "अभिदासति" (दूसरों को दास बनाने को अभिलाषी) दूसरों का विनाशकर्त्ता, दूसरों को लुटनेवाला। मं. (१) हे ज्ञानाधीश्वर ! जो ईश्वर विरोधी, हमारा पतन करना चाहे, हे सोमरस होता ! मेरे हितार्थ उनको नष्ट कर। (२) हे सोम ! जो अनाचारी हम सदाचारियों को आदेश देना आधीन करना चाहता है। उसके मुख पर वज्राघात करो, जिससे चूर-चूर होकर दूर हो। (३) हे सोम ! जो स्वजातीय और निकृष्ट श्रेणी का हमें दास बनाना चाहता है, हमारा विनाश करता है, उसके वल को अपने बध साधनों से ऐसा दूर कर दें जैसे द्युलोक अपने प्रकाश से अन्धकार को दूर करता है।

"इन्द्रोइति" (७।३६) इस ऋचा से शत्रुसंहारार्थ ओलों से गिरी समिधाओं से होम करें।

"तासवितः" (७।१६) इस एक ऋचा से प्रथमवार ही व्याई गौ के बन्धन की रस्सी अभिमन्त्रित कर मणि की भाँति पुष्टयर्थ धारण करे। कौ. ३।७

"त्यमूषु" (७।९०) "त्रातारम्" (७।९१); "आमन्द्रैः" (७।११२) से पृथक् पृथक् या एक साथ स्वस्त्ययनार्थ इन्द्र जप-उपस्थान, होम करें। (७।१०) ये स्वस्त्ययनगण कार्यों में हैं। उपाकर्म मे आज्य होम में विहित हैं। अन्त्येष्टि आदि सभी शान्ति कर्मों में भी इन सभी से स्वस्त्ययन होम करें। कौ. १४।३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ७।१५ भृगुः । सविता । त्रिष्टुप्

तां स॑वितः स॒त्यस॑वां सुचि॒त्राम॒हं वृ॑णे सुम॒तिं वि॒श्ववा॑राम् ।
याम॑स्य॒ कण्वो॒ अदु॑ह॒न् प्रपी॑नां स॒हस्र॑धारां महि॒षो भगा॑य ॥१

शत्रु-नाशनम् (७।३१) भृग्वङ्गिराः । इन्द्रः । भुरिक् । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रो॒तिभि॑र्ब॒हुलाभि॑र्नो अ॒द्य या॑वच्छ्रे॒ष्ठाभि॑र्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो॒ द्वेष्ट्यध॑रः॒ सस्प॑दी॒ष्ट यमु॑ द्वि॒ष्मस्तमु॑ प्रा॒णो ज॑हातु ॥१

अरिष्टनेमिः । (७।[८५(९०)] अथर्वा । (स्वस्त्यवनकामः) । तार्क्ष्यः । त्रिष्टुप् ।

त्यमू॒ षु वा॒जिनं॑ दे॒वजू॑तं स॒होवा॑नं तरु॒तारं॒ रथा॑नाम् ।
अरि॑ष्टनेमिं पृत॒ना॒जिमा॒शुं स्व॒स्तये॒ तार्क्ष्य॑मि॒हा हु॑वेम ॥१

त्राताइन्द्रः । [८६ (९१)] । अथर्वा । (स्वस्त्ययनकामः) इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

त्रा॒तार॒मिन्द्र॑मवि॒तार॒मिन्द्रं॒ हवे॑हवे सु॒हवं॒ शूर॒मिन्द्र॑म् ।
हु॒वे नु श॒क्रं पु॑रुहू॒तमिन्द्रं॑ स्व॒स्ति न॒ इन्द्रो॑ म॒घवा॑न् कृणोतु ॥१

सुरक्षा (१९।२०-४) अथर्वा । बहुदंतनम् । अनुष्टुबार्भी ।

वर्म॑ मे॒ द्यावा॑पृथि॒वी वर्माह॒र्वर्म॒ सूर्यः॑ । वर्म॑ मे॒ विश्वे॑ दे॒वाः क्र॒न् मा मा प्राप॑त् प्रतीचि॒का ॥४

कां. ७ सू. ८५ "त्यमूषु" उस बलिष्ठ, दिव्यपुरुषों से सेवित सर्वशक्तिमान्, रथों को शीघ्र गति से चलानेवाले, सुदृढ़ आयुधवाले, शत्रु सेना संहारक शीघ्रकर्त्ता महारथी को हम यहाँ, कल्याणार्थ आह्वान करते हैं।

कां. ७ सू. ८६ "त्रातारमिन्द्र" मैं रक्षक प्रभु, संरक्षक इन्द्र को, प्रत्येक कार्य में आदर के साथ बहुतों द्वारा आवाहन करने योग्य, शूर प्रभु को आमन्त्रित करता हूं। वे ऐश्वर्यवान् प्रभु हमारा कल्याण करें।

कां. ६ सू. ९३ "यमोमृत्युः" :— मं. (१) नियामक यम, पापियों को मारनेवाला, पीड़क, पोषक, हिंसक, शस्त्र फेंकनेवाला, नीलध्वज वाला रुद्र, तथा सभी दिव्यजन, सेना के साथ युद्ध करनेवाले, हमारे वीरों की रक्षा करें। मं. (२) अस्त्र फेंकनेवाले हिंसक के लिए, और उन्नति करनेवाले राजा (नेता) के लिए, मन से, घी से, होमों से और अन्य शक्तियों से इन पूजनीय को नमन करता हूँ। पापरूपी विषाक्त लोग हमसे दूर हों। मं. (३) सभी दिव्य एवं सर्वज्ञ, मृत्युपर्यन्त कर्मरत वीर तथा अग्नि, सोम, पवित्र बलशाली वरुण, पापियों, वधिकों को बन्धन से हमारी रक्षा करें। हम सदा वायु और पर्जन्य की सुमति में रहें।

अस्य कां ६।९० अथर्वा । रुद्रः । अनुष्टुप्, ३ आर्षी भुरिगुष्णिक् ।

इ॒मं यव॑मष्टायो॒गैः ष॑ड्यो॒गेभि॑रचर्कृषुः । तेना॑ ते त॒न्वो॒३ रपो॑ऽपा॒चीन॒मप॑ व्यये ॥१
न्य१ग् वातो॑ वाति॒ न्य॑क् तपति॒ सूर्यः॑ । नी॒चीन॑म॒घ्न्या दु॑हे॒ न्य॑ग् भवतु॒ ते रपः॑ ॥२
आप॒ इद् वा उ॑ भेष॒जीरापो॑ अमीव॒चात॑नीः । आपो॒ विश्व॑स्य भेष॒जीस्तास्ते॑ कृण्वन्तु भेष॒जम् ॥३

कां. ६ सू. ९० "इमंयवमष्टायोगै" अध्याय २ स्वस्ति वाचन में पढ़ें। भावार्थ :—मं. (१) इस जौ को, आठ बैलों, छै बैलों की जोड़ी वाले, कृषि में उत्पन्न करते हैं। उससे तेरे शरीर के रोग बीजों को नीचे की गति से दूर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करते हैं। मं. (२) अपान नीचे को चलता है, सूर्य निम्न भाग में तपता है, गौ भी नीचे के भाग से दूध देती है, उसी भांति तेरा पाप, (व्याधि, रोग) नीचे के द्वार से दूर हो। मं. (३) जल निर्विवाद औषधि है, जल रोग विनाशक है। जल ही सभी रोगों की औषधि है, वह जल तेरे लिये "औषधि" बन जावे।

अथ मूलादि पाप नक्षत्रोत्पन्नदोषशान्तिः विधि :—

"प्रत्नोहि" (कां० ६ सू० ११०) की ३ ऋचाओं से ज्येष्ठा, मूल, रेवती, अश्विनी, आश्लेषा, मघा इन पाप नक्षत्रों में उत्पन्न होनेवालों के अनिष्ट फल की शान्ति के लिए, शान्तिघट में १० शान्ति वृक्षों की टहनियां व अन्य शांति सूक्तों में निर्दिष्ट औषधियां तथा अर्जुन की छाल, जौ की भूसी या भूसा तथा तिलों के फूलों की मञ्जरी एकत्रित करे, मणि की भाँति अभिमन्त्रित कर बाँधें। इनको भी घट में डाले। वामी तथा क्षेत्र, तीर्थों की मृत्तिकायें, तीर्थजल भी डालें। इनको डालकर उपरोक्त (६।११) सूक्त तथा कां० २।८ 'उद्गाता भगवती' से अभिमन्त्रित करे। उषाकाल में घर के बाहर छींटे दे।

(६।१०) की उपरोक्त ऋचा और पूजा व अभिमन्त्रित कर दूध भात खिला दे। दाभ-दूर्वा आदि की मुष्ठि से छींटे व स्नान कराये, शिशु (बाल) को मूंज की रस्सी से गांठों को लपेट ले। विशेष ज्ञातव्य :

कां० २ सू० ८ में 'विचृतौनाम् तारके' मूल नक्षत्र द्विवचन है। इस विषय में तै० आ० (२।६-१) 'अमीये सुभगे दिवि विचृतौ नामतारके।' प्रहामृतस्य यच्छतामएतद्वद्धकमोचनम्। इति। यहाँ विचृत शब्द मूल नक्षत्र का पर्यायवाची है। यहां श्रुतिः भी है....

"विचृतौ नक्षत्रम्पितरो देवताषाढा नक्षत्रम् आपो देवता" (तै० स० ४।४।१०।२)।

इस प्रकार के नक्षत्र में उत्पन्न हुए बालक के अरिष्ट शमन का निर्देश है। कां० ६।११० में 'प्रत्नः' शब्द चिरन्तन सर्वदेवमय अग्नि का नाम है।

'अग्निः सर्वा देवताः' इति श्रुतिः (तै० सं० २।२।६।१) तथा 'अग्निर्देवो होतादेवान् यक्षत्' इति निगमः (आपस्त० २।१६।५) ऐसे अग्निदेव को आज्यादि हव्यदान से सुख-समृद्धि सौभाग्य, स्वास्थ्य, दीर्घजीव, विपुल धन-धान्य प्राप्त होता है।

ऋचा २ 'ज्येष्ठघ्न्यां' ज्येष्ठा नक्षत्र के विषय में (तै० ब्रा० १।५।२।८) 'ज्येष्ठम् एषाम् अवधिष्मेतितज्जेष्ठघ्नी' इति ज्येष्ठा का जन्म बाल-पिता-भ्राता आदि का विनाशक होता है, वैसे ही, विचृतौ—मूल नक्षत्र का जन्मा भी सम्पूर्ण कुल का हन्ता होता है। (तै० ब्रा० १।५।२।८) "मूलम् एषाम् अवृक्षामेति तन्मूल वर्हणी' इति।

ऋचा ३ 'व्याघ्रे'—से बाल को आशीर्वाद, स्वास्तिवाचन करे—'सुवीर' शोभायमान-वीर्यवान् हो, 'माता-पिता' व ज्येष्ट-सहोदर आदि का अनिष्ट भङ्ग करने वाला हो, उत्तरोत्तर अभिवृद्धि वाला हो। दीर्घजीवी, अपरिमित आयु वाला मेधावी हो।

"त्वं नो मेधे" कां० ६ सू० १०८ ऋचा ५ की पाँचों ऋचाओं से मेधाजनन संस्कार करे। पुरोडाश (दही, मधु, घृत, या क्षीर-भात को अभिमन्त्रित कर चटाये। सूर्य का उपस्थान करे। ऋचा (६।५३) 'द्यौश्च मे से चटाये। 'विश्वजित त्रायमाणायै' (६।१०७) 'शकधूमम्' (६।१२८) भवाशर्वौ (११।२) स्वस्त्ययनार्थ होम तथा छींटे दे, तथा 'यस्तेस्तनः' (स्तनपान वाक्सिद्धि संस्कार) का ७ सू० ११ से जम्भादि राक्षसी, आसुरी बालग्रहों, क्रूर दृष्टि, आक्रोश से रक्षार्थ तथा शब्द-वर्ण-पद-वाग् अथा प्रत्युत्पन्न सूक्ष्म विषय ग्राहिणी, सदा स्मरण रहने वाली, सरस्वती की प्राप्तिहेतु—माता के स्तन को अभिमन्त्रित कर पिलायें। जिससे विश्व को वरण करने वाली, धनदात्री, ऐश्वर्यवाली बुद्धि प्राप्त हो, और बाल पुष्ट दीर्घायु हो।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेधाकामी प्रातः स्मरण कर सोते से उठ हाथ से मुँह धोये। वर्चस्कामी ब्राह्मण अभिमन्त्रित कर दही-मधु खाये। क्षत्रिय दही मधु (भात या कोई मिष्टान्न) खाये। वैश्य केवल भात ही खाये। (कौ० २।१ व २।३ का० ६।३८) सिंह, व्याघ्र, हस्ती, रीछ, बारहसिंह, चीता, अश्व आदि ७ या अन्य वल-वीर्य तेजयुक्त प्राणियों के नाभि के रोम लाख व स्वर्ण से लपेट कर, प्रतिष्ठा, पूजा व अभिमन्त्रित कर धारण करे। क्षत्रिय आदि उसे जल में डालें, अभिमन्त्रित कर छींटे दें। अभिषेक करें, स्नान करें, तब धारण करें।

यदि ब्राह्मण अकुशल या असमर्थ हो तो (लोहित) पञ्चगव्य पान करे। ऐसा गार्ग्य का मत है। परन्तु लोममणि-होम-अभिषेचन स्नान सभी को अनिवार्य है। (कौ० २।४) "ममाग्ने वर्चः" इति जुहुयात (प० १६) "कौवेरी धन कामस्य-धनक्षये च।" ममाग्नेवर्च इति कौवेर्याम्" (न० क० १८)। अर्थात् हाथी, अश्व की दीक्षा में तथा धन नाश हो जाने पर धन लाभार्थ इन्हीं से होमादि का प्राविधान है।

औदुम्बर, गूलर की समिधा गूलर के मन्थ व गूलर के ही स्रुवा से होम करे। उपस्थान करे। वर्चस्कामिनी कुमारी के दक्षिण उरू का अभिमन्त्रण करे (कौ० २।३)। (परिशिष्ट ५।३) पापादि मोचन, मेधाजनन पुष्टि वर्चः जय, जय, अभ्युदय, निश्रेयस, पुत्रेष्टि अभिषेकादि में—सप्तरात्रं घृताशीवाततो होमं प्रजोजयेत्। गव्येन पयसा कुर्यात् सौवर्णेनस्रुवेणुतु। वेदानाम् आदिमैर्मन्त्रैर्महाव्याहृतिपूर्वकैः। इति ऐहिक, आमुष्मिक सकलसुख साक्षात्कारार्थ उपर्युक्त पवित्रगण तथा "यद्गिरिषु" (६।१-१६) इन ४ ऋचाओं से "पवित्रसव" में होम दाभो की मुष्ठि से छींटे क्षीर अभिमन्त्रित कर खाये आचार्य यजमानादि को यजमान पत्नी, पुत्रों के प्रति यह कर्म करें (कौ० ८।७) (वै० ३।१) तथा (वै० ५।३)। उपरोक्त मणियों में ढाक आदि याज्ञेयशान्ति वृक्षों की बनी मणि का उपरोक्त लाक्षा स्वर्णादि से लपेट अभिमन्त्रण कर धारण करने का भी विधान है। (कौ० २।४)

यह गण मेधाजनन् में भी है। मेधाजनन विधि, तथा "मणिबन्धन" प्रकरण आगे पढ़ें।

कां. ६ सू. ११२ "माज्येष्ठम्" तथा कां. ६ सू. ११३ "त्रितेदेवा" इन तीनों ही से परिवेत्ति, परिवेत्ता के दोष निवारणार्थ, घड़े के अभिमन्त्रित जल से, जातक के पर्व (गांठो) में, मूंज की रस्सी (पवित्री) की भांति बांधकर इनसे छींटे दें और गांठो को खोलते जावें। तदनन्तर इन्हीं मन्त्रों से जातक और प्रसूतिका दोनों ही (अथवा जुगल सन्तान जुड़वा यदि हो तो उसे भी) स्नान करायें। "**नदीनां फेनाम्**" इस आधी ऋचा से उतारे हुये (खोले हुए पाशों) को नदी के प्रवाह में बहादें कर्त्ता स्वयं भी नदी के जल में खड़ा होकर बहावे। इसी के साथ विचृतौ नाम तार के तथा काण्ड १९ सूक्त ६, १०, ११ एवं १२ भी है। ये पिप्पलादि शान्ति, अद्भुद्दर्शन दोष निवारण प्रकरण में आगे पढ़ें और विधिवत शान्ति करें। इन्हीं मन्त्रों से होम करें।

(६।११२) पाशमोचनम् १-३ अथर्वा। अग्निः। त्रिष्टुप्।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥१
उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन्।
स ग्राह्याः पाशान् चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥२
येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां· ६।११२ "माज्येष्ठ्य" नक्षत्रों में (ज्येष्ठा और मूल) (रेवती, अश्विनी) श्लेषा और मघा ये छै नक्षत्र मूल कहलाते हैं। इनके अनिष्टकारी भाग में उत्पन्न होने वाले जातक स्वयं को अपने से बड़े या अपनी पीठ के बालक को, अपनी मा और पिता, धन, धान्य सम्पत्ति आदि को घातक होते हैं। उनकी शान्ति कराना अत्यन्त अनिवार्य और हितकर मार्ग हैं। उन्हीं की शान्ति विधि है। (१) हे अग्ने ! यह जातक अपने बड़े भ्राता का घातक न हो, अपनी वंश मूलोच्छेदन न करे, इससे तू रक्षा कर। वे आप जान कर, इन दोष (पाप) से उत्पन्न होने वाले, पकड़नेवाले राजयक्ष्मादि भव-व्याधियों के पाशों से मुक्त कर दें, यही सभी देवगण तुम्हें सम्मति दें। (२) हे अग्ने ! तू पाशों को खोल दे, जिन (उपर्युक्त) तीनों अनिष्टकारी दोषों से इनके तीन (भ्राता, माता, पिता, स्वयं) पाशबन्धन में पड़े हैं, इसके आपविज्ञ है, पकड़नेवाले रोगादि के पाशों को खोल दे, अर्थात् पिता, पुत्र और माता इन सबको छोड़ दे। (३) जिन पाशों से बड़े भाई के पूर्व छोटा भाई बिवाह करा लेनेवाला (परिवेत्ति, परिवेत्ता दोष) लोभ के पाश से बांधा गया है। प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग में बांधा गया है, वे भी तेरे सब पाश खुल जावें, क्योंकि वे खुले हुये हैं। हे पालन कर्त्ता देव ! इससे उत्पन्न गर्भघातकी पाप, जो अन्दर विद्यमान है, उस पाप को भी दूर कर।

अथ मूलादि जनितदोषशमन, मेधाजनन, वाक्सिद्धि स्तनपान विधिः

कां० ६ सू० ११० ऋ० १–३ अथर्वा ऋषिः। अग्निः देवता। त्रिष्टुप्, १ पंक्ति छन्दासि मूलजात मूलादि जहित दोषोपशमनार्थे, माला व सेचने, स्नाने, जपे, होमे, रक्षोहणे विनियोगः।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वंऽपिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१
ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२
व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्रमिनीज्जनित्रीम् ॥३

कां २ सू० ८ ऋ० १–५ भृग्वङ्गिराः। ऋषिः। वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम्। देवते अनुष्टुप् पथ्यापंक्तिः, ४ विराट्, ५ निचृत्पथ्या पङ्क्ति छन्दासि।

ज्येष्ठादि युग्ममूलजातः दोषोपशमन पुरस्सर पितृ, मात्रादि क्षेत्रीय क्षयः कुष्ठ आदि दोषोपशमने स्वस्त्ययने, अवसेचने, स्नाने, अर्चने, स्तवने-होमे उपस्थाने विनियोगः।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके। विक्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥१
अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः। वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥२
बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या।
वीरुत्क्षेत्रियनाशन्य क्षेत्रियमुच्छतु ॥३
नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः। वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येऽभ्यः ।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥५

कां० ६ सू० ११० ऋ० ३ व्यघ्रे' से नवजात शिशु को आशीर्वाद ब्रह्मा दें। मेधाजनन तथा वाक्सिद्धि के लिए राज्याभिषेक प्रकरण में ऋचायें दी गई हैं। ७।११ 'यस्तेस्तन' भी उसी में निहित है। नवजात बाल की क्रूर दृष्टि, आक्रोश, अभिचार (टोना) कृत्या या आसुरी भय से रक्षार्थ इन्द्रियों का अनुमन्त्रण करें। मेधाजननार्थ पूर्वोक्त कर्म करें। सूर्योपस्थान करें। मुंडन तथा नालोच्छेदन में क्षुरा को इसी से अभिमन्त्रित कर नालोच्छेदनकर्त्ता, मुंडनकर्त्ता को दें। रोगादि में पुनः प्राणादि की स्वस्थता के लिए "पुनःप्राणः" से अभिमन्त्रित करें।

कां० ६।११० "प्रत्नोहि" (१) वे प्रभु ! तू सनातन, यज्ञों में श्रद्धा से वन्दनीय, सनातनकाल से दाता और नवीन जैसा सर्वत्र विद्यमान है। हे अग्ने ! तू अपने शरीर रूपी अखिल ब्रह्मांड को पूर्णतया हमें प्रदान कर और उत्तम ऐश्वर्य सम्पन्न कर।

(२) यह ज्येष्ठ के नाश करने वाली (बेला) में यह उत्पन्न हुआ है। विशिष्ठ संहारक यम के मूल छेदन से इसकी रक्षा कर। सब दुःखों से इसे पारकर; इसके सब कष्ट दूर हों और यह दीर्घायुवाला हो।

(३) क्रूर दिन में वीरपुत्र उत्पन्न हुआ है। योग्य नक्षत्र के समय में उत्पन्न हुआ भी, यह उत्तम वीर हो। वह बढ़ता हुआ; पिता को न मारे, उत्पन्न करने वाली माता को भी न मारे।

कां. २ सू. ८ "उदगातां"—जिस नक्षत्र के विष्णु स्वामी हैं और जिसके विश्वेदेवा स्वामी हैं, वे दोनों ही मूल नक्षत्रों में उत्पन्न वंश परम्परा के रोग (क्षेत्रिय रोग) के उत्तम और अधम मूल पाशों को खोल दें। (२) यह हिंसक रात्रि चली जावे, उसी के साथ हिंसा बध करने वाले भी दूर हों, तथा क्षेत्रिय व्याधि निवारण भेषज, आनुवशिक रोग से मुक्त करदे। (३) भूरे और श्वेत रंग के यव, अर्जुन की छाल, और तिल की तिलमञ्जरी से आनुवंशिक रोगको दूर करने वाली यह भेषज, यह क्षेत्रिय रोग से मुक्त करे। (४) तेरे हलों और उसकी जुआओं को नमस्कार है। आनुवंशिक व्याधि-निवारक यह भेषज क्षेत्रिय रोग से मुक्त करे। (५) जल प्रवाह चलानेवाले (जुए)को नमस्कार, संदेश देनेवाले का सत्कार और क्षेत्र के स्वामी का सत्कार हो, आनुवंशिक रोग को हटानेवाली भेषज, क्षेत्रिय व्याधि को हटा देवे।

(६।११३) पापनाशनम्, १-३ अथर्वा। पूषा। त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः।

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥१॥
मरीचीर्धूमान्प्र विशानु पाप्मन्नुदारान्गच्छोत वा नीहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान्वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन्दुरितानि मृक्ष्व ॥२
द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥३

कां. ६ सू. ११३ "त्रितेदेवा" देव ने इन्द्रियों में यह पाप त्रित में (मन में) रखा, उसने मनुष्यों में स्थापित किया, उससे यदि तुझे गठिया (राजयक्ष्मादि) व्याधि ने पकड़ रक्खा हो तो, देव तेरी उस पिड़ा को ज्ञान से दूर करें। (२) हे पापी ! सूर्य किरणों, अन्धेरे, कोहरा अथवा दूसरे स्थान में अन्यत्र कहीं नदी के उन फेनों में छिप जा। हे पूषा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गर्भघातकी में पापों को रख । (३) त्रित का धोया हुआ, पाप बारह प्रकार से रक्खा है । यह मनुष्य के पाप हैं । उससे यदि तुझे गठिया आदि रोग ने पकड़ा हो, तो देव तेरे उस रोग को ज्ञान के द्वारा नष्ट करे ।

—: शिशु रक्षा :—

समस्त नवजात शिशु तथा किशोर अवस्था के वालों को राक्षसादि पूर्वोक्त भय के निबारणार्थ, शमीपत्र, अपामार्ग निम्ब, कदम्ब, तमालपत्र, पीली सरसों जल में डाल इससे अभिमन्त्रित कर छीटे दें, तथा इन सभी को एकत्रित कर लाल रेशमी वस्त्र में बांध कर, गज-हस्ति आदि के वाल, मयूर रोमा शंखी (सिपी) युक्तकर दक्षिण हस्त में बांधें ।

कां. ६ सू. ५२ ऋ. १।३ भागल ऋषिः । सूर्यः देवता । अनुष्टुप् छन्द रक्षसादि उत्पाद्भीतिः गण्डमाला निवारणे-भैषज्ये विनियोगः ।

उत्सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् । आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥१

नि गावो गोष्ठे असदुन्नि मृगासो अविक्षत । न्यू१र्मयो नदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥२

आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् । आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान्नि शमयत् ॥३

नं. १ से पुरुषों, २ से पशुओ को राक्षसी भय से अभय प्रदान करे । न. ३ से शतायु प्रदान करने वाली (चित्तिः, प्रायाश्वत्ती, शान्ति, औषधियां) शमी को लाकर अभिमन्त्रित कर उपरोक्त प्रयोग में लावें ।

—: शिशु आयु-ज्ञान :—

मानव शरीर के कुछ परीक्ष्य विषयों का यहाँ दिग्दर्शन, भावी विघ्नों से रक्षणार्थ प्रस्तुत है, नामकरणान्त बालक की आयुप्रमाण जानने के लिये भगवान आत्रेय द्वारा निर्दिष्ट कुछ लक्षण इस प्रकार हैं । ये दीर्घजीवी के हैं ।

शिर के बाल—पृथक-पृथक नरम, चिकने, थोड़े, काले और दृढ़ वद्ध मूल अच्छे हों । **त्वचा**—स्थिर, पुष्ट और उत्तम होती हैं । **शिर**—स्वभाव से सुन्दर आकार का, प्रभाव से किञ्चित् बड़ा, सुन्दर लक्षणों वाला, अनुरूप तथा छत्र के सदृश उत्तम हो । **ललाट**—विशाल, दृढ़, सुडौल, सुन्दर, उत्तम कनपटियों की सन्धियुक्त, कुछ ऊँचा ढला हुआसा, उत्तम आकारवाला, उपचित वलियुक्त और अर्द्ध चन्द्र के समान आकारवाला, दोनों कान पुष्ट, कानों के **पीछे का भाग**—विपुल और सुडौल तथा दोनों कान ऊंचे, नीचे तथा समान और पीछे को नवे हुए से, दोनों कर्णपुट सुश्लिष्ट तथा कानों के छिद्र अर्थात् कोकरु बड़े होना श्रेष्ट कहा है । **दोनों नेत्र**—एक से देखनवाले, सुडौल, अलग-अलग सीधे, तेजयुक्त, पलक आदि सुन्दर, उपाङ्गयुक्त उत्तम होते हैं । **नाक**—सुडौल, लम्बी, श्वासयुक्त, लम्बे वांसवाली, कुछ-कुछ आगे को झुकी हुई उत्तम कही है । **मुख**—बड़ा, सुडौल, सुन्दर, जिसके दोनों ओर सुन्दरतायुक्त हो । और **दन्त-पक्ति**- सुन्दरता युक्त हो, वह मुख उत्तम होता है । **जिह्वा**—लम्बी, चिकनी, पतली, सुडौल, गुलाबी रंग की और अपने गुणों से सम्पन्न उत्तम होती है । **तालु**—मस्टण, पुष्ट, ऊंचा तथा लालवर्ण का उत्तम होता है । **स्वर**—बड़ा दीनता रहित, चिकना, प्रतिध्वनियुक्त, गम्भीर तथा धीर उत्तम होता है। **होठ**—न अधिक मोटे, पतले, विस्तारयुक्त मुह को ढके हुये, लालवर्ण के उत्तम होते हैं । **ठोड़ी**—गोल, अधिक लम्बी न होना उत्तम कही है । **गर्दन**—दृढ़ और कुछ लम्बी उत्तम कही है । **कन्धे**—व्यूढ़, दृढ़ तथा ऊँचे उत्तम कहे हैं । **हंसली**—दृढ़ और छाती में मिली हुई उत्तम होती है । **पीठ का बास**—मास में छिपा हुआ उत्तम होता है । **स्तनों के बीच का भाग**—फैला हुआ, चौड़ा उत्तम होता है । **दोनों पार्श्व**—दोनों कन्धों की ओर ढले हुए और दृढ़ उत्तम होते हैं । दोनों **वाहु, नितम्ब** और **अंगुलियाँ**—लम्बी, गोल, परिपूर्ण और दृढ़ हो । **हाथ** और **पाँव**—पुष्ट, दृढ़ और लम्बा उत्तम कहे हैं । **नख**—चिकने, ताम्रवर्ण, ऊँचे, कछुये की पीठ के सदृश सुडौल हो । **नाभि** और **उरुस्थल**—के बीच में चौथा भाग प्रमाण से सुडौल और पुष्ट कमर उत्तम होती हैं ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों नितम्ब—गोल, दृढ़, मांस से पुष्ट, न अति ऊँचे न नीचे ही उत्तम हैं। **दोनों उरुस्थल**—गोल पुष्ट और मोटे उत्तम होते हैं। दोनों **जानु**—गोल और पुष्ट उत्तम होती हैं। दोनों **जाँघ**—हिरणी के पैर के तुल्य पुष्ट, छिपी हुई हड्डियों वाली, जिनमें कोई नाड़ी दिखाई न दे, और उनकी सन्धियों में छिपी हुई हड्डियों वाली, जिनमें कोई नाड़ी दिखाई न दे और उनकी सन्धियों में छिपी हों। ऐसी उत्तम होती हैं। दोनों **गुल्फें**—न बहुत पुष्ट, न अधिक कृश, उत्तम होती है।

दुःस्वप्न समीक्षा—मनुष्य की परीक्षा स्वप्न से होती है। मनुष्य को कैसे स्वप्न आते हैं इस पर वह स्वस्थ है या रोगी है, सदाचारी है या दुराचारी, शुभ विचार वाला है या अशुभ विचार वाला, सत्सङ्गी या कुसङ्गी इसका निश्चय होता है। शुभ स्वप्न देखे या बिल्कुल ही स्वप्न न देखे स्वस्थावस्था समझे अशुभ भयावह स्वप्न देखे तो समझें स्वास्थ्य में विगाड़ या भय आने की आशङ्का है ऐसा मानकर उसके सुधार का; उसके रोगबीज को दुर करने का यत्न करे।

अथर्व कां· १६ सू० ५।१ ऋचा १ से ८ में दुष्ट स्वप्नों के कारण निम्न बताये हैं—

[१] ग्राह्याः ········[२] निर्ऋत्याः ········ [३] अभूत्याः ···· [४] निर्भूत्याः ···· [५] पराभूत्याः···· [६] देवजामीनां पुत्रः स्वप्नः ॥

१. ग्राही—भयानक रोग जो शरीर में आने पर सहसा शरीर को न छोडें, घोर दुःख देते हुए शरीर का अंत कर डालें, इनके कारण दुष्ट स्वप्न होते हैं। [२] नैऋतिः—दरिद्रता, दुर्गति, अवनति, अधःपात; क्षीणता और निर्बलता [३] अभूति—निराश्रयता, ऐश्वर्यहीनता। [४] निर्भूति—निर्धनता, पलायनपरता, महान संकट, विपत्ति पर विपत्ति। [५] पराभूत्या—पराभव, पलायन, परतन्त्रता, दासता, पराधीनता, परवशता। [६] देवजामी—इन्द्रिय दौर्बल्य, क्षीणता, विचार विहीनता, अविवेक तथा वे सभी कारण जो प्रथम अध्याय में इसी ग्रन्थ में मृत्युसूचक दिये जा चुके हैं। कां० ६ सू० २ में मुनि की घोषणा है कि—

यस्मात् दुष्वप्न्यात् अभैष्म तत् अप गच्छतु।

जिन स्वप्नों से हमें भय होता है वह दुष्वप्नों का कारण हमसे दूर हो जाय। यही नहीं इन स्वप्नों के कारण बीजों को उल्लिखित शौनकीय विधि से दूर कर हम अपने को निष्पाप समझें। निष्पाप होने से ही सब प्राप्तव्य प्राप्त हो सकता है। जैसा कि मं० ६।१ में अनुकरणीय अनुपम उल्लेख है।

अद्य अभैष्म, अद्य असनाम, वयं अनागसः अभूम।

आज हमने विजय प्राप्त की है, आज अपने प्राप्तव्य को प्राप्त कर लिया क्योंकि हम निष्पाप हो गये। यह वेदोक्त विधि निष्पाप धर्माचरण द्वारा उन्नति एवं काम-क्रोध लोभ-मोह पर विजय प्राप्ति का मूल है। यह उल्लिखित दुस्वप्न नाशनविधि बहुधा अनुभूत है। अभ्यास, स्वाध्याय इसके साधन हैं।

दुःस्वप्न तथा अपशकुन शान्ति विधान—

प्रायः मनुष्यों को मिथ्या आहार-विहार, अधिक चिन्ता-व्यग्रता में अथवा पूर्वजन्मकृत कर्मों या ग्रहादि से आविष्ट दशाओं में स्वप्न आते हैं। पूर्वनिशा के प्रायः अनिष्टकारी और ब्रह्ममुहूर्त्त के तत्काल फलदायक होते हैं। अध्यात्मवादियों को इसी स्वरूप में प्रेरणादायक श्रुतियों, स्मृतियों, महर्षियों, देवगणों का आभासित निर्देश होता है। महानिशा में आसुरी प्रवृत्तियों की प्रबलता होती है। प्रायः स्वप्न देखने के उपरान्त सो जाने पर उसका फल जैसा भी हो नष्ट हो जाता है। यदि स्वप्न के उपरान्त निद्रा से जागरूकता हो तो मुख आदि अङ्गों का स्पर्श करे, मुख को धो लें, जल, अन्न, देव, गुरुजन, अश्वत्थ तुलसी, गौ, अश्व, सन्तों के दर्शन करें, तो फल अनिष्टकारी नहीं होता।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथर्वाङ्गिरस महर्षियों ने अपने तपोबल से लोक हितार्थ निम्नविधि अथर्ववेद के निम्नगण में दी हैं, जिसको कौशिक सू० ५।१० ने भी प्रतिपादित किया है, जो अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई है।

कां० ५।१० **दुस्वप्न-नाशनगण**—"दौष्वप्न्यन्" (४।१७-५) "परोपेहि" (६-४५), "यो न जीवोऽसि" (६-४६) "पर्यावर्ते" (७।१०५-१०६) "यो न स्तायद" (७।११३) "यन्मे मनसो" (६।२-२-३) "स्वप्नं सुप्त्वा (१०।३-६) "बिद्मते स्वप्न" (१६।५)।

"दौर्ष्वप्नन्" (४।१७-५) से स्त्रीशूद-कापालिक आदि द्वारा प्रेरित कृत्या, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, दुर्णाम्नी, छेदिका, मेदिका आदि पिशाची के भयावह दुष्वप्नों से रक्षार्थ, सहदेवी दाभ अपामार्ग (औंगा), पृश्निपर्णी, शान्ति जल को कलश में डालें अभिमन्त्रित कर पिलायें, छींटे दें, स्नान करें। "परोपेहि" (६।४५) "यो न जीव" को जपता हुआ दुष्वप्न दर्शन निमित्त अनिष्टफल की शान्ति हेतु, सोते से उठकर मुंह धोये। अत्यन्त भयङ्कर स्वप्न हो तो जौ, इन्द्र जौ, गेहूँ आदि कई अन्न मिला, २ भाग करें, एक भाग से होम करें दूसरे को अभिमन्त्रित कर शत्रु के स्थान में या चौरास्ता या अश्वत्थ के पास रख दे। "पर्यावर्ते" (७।१०२) "यत स्वप्ने" [७।१०६] से स्वप्न में कुछ खाये तो उसके अनिष्टफल शान्ति हेतु जप करें, अन्न दर्शन करें। यह रक्षार्थ मन्त्रों के जप का कवच है जिसे धारण करने से अनिष्टकारी को शरीर में प्रवेश द्वार ही नहीं मिलता है।

"यो न स्त्यम्यद्" [७।११३] की ऋ० १-२ से बिजली से दग्ध वृक्षों की समिधाओं से होम करे। "यन्मे मनसो" ६।२-३] ऋचाओं से जो अर्थसूक्त की कामदेवता की इच्छारूपी दुर्वासनाओं से उत्पन्न वीर्य-रजोदोष की दूषित प्रवृत्ति विविध प्रमेह, तथा प्रदर दोष (मधुमेहादि) के निवारण हेतु है, पीपल की स्वयं गिरी हुई समिधाओं से होम करे।

"स्वप्नं सुप्त्वा" [१०।३-६] से जो अर्थसूक्त की ऋचा है दही, मधु, में ३ रात्रिवरण रागनादेवी पीठ काश्मीर में उत्पन्न होनेवाले (वरणवृक्ष) मणिपात्र में रखकर चौथे दिन धारण करे। दही-मधु को खाये।

कां. ४ सू. १७ शुक्रः। अपमार्गो वनस्पतिः। अनुष्टुप्

दौष्व॑प्न्यं दौर्जी॑वित्यं रक्षो॑ अ॒भ्वऽम॒राय्यः॑।
दु॒र्णाम्नीः॒ सर्वा॑ दु॒र्वाच॒स्ता अ॒स्मन्ना॑शयामसि ॥५

कां. ६ सू. ४५ अङ्गिराः प्रचेता, यमश्च। दुःस्वप्ननाशनम्। (१)पथ्यापङ्क्तिः,(२)भुरिक् त्रिष्टुप् अनुष्टुप्।

परोऽपे॑हि मनस्पाप॒ किमश॑स्तानि शंससि।
परे॑हि न त्वा॑ कामये वृ॒क्षां वना॑नि॒ सं च॑र गृ॒हेषु॒ गोषु॑ मे॒ मनः॑ ॥१
अ॒व॒शसा॑ निः॒शसा॒ यत् परा॒शसो॑पारि॒म जाग्र॑तो॒ यत् स्व॒पन्तः॑।
अ॒ग्निर्विश्वा॒न्यप॑ दुष्कृ॒तान्यजु॑ष्टान्या॒रे अ॒स्मद् द॑धातु ॥२
यदि॑न्द्र ब्रह्मणस्प॒तेऽपि॒ मृ॒षा च॒रा॑मसि। प्रचे॑ता न आङ्गि॒र॒सो दु॑रि॒तात् पा॒त्वंह॑सः ॥३

कां. ६।४६ अङ्गिरा प्रचेतायमश्च, दुःस्वप्ननाशनम्। विष्टार पङ्क्तिः, त्र्यवसानाशक्वरीगर्भा पञ्चपदा जगती, ३ अनुष्टुप्।

यो न जी॒वोऽसि॒ न मृ॒तो दे॒वाना॑ममृतग॒र्भोऽऽसि स्वप्न।
व॒रु॒णा॒नि ते॑ माता य॒मः पि॒तार॑रु॒र्नामा॑सि ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्याद् पाहि ॥२
यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥३

कां. ७ सू. १००(१०५) यमः, दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्याादभूत्याः । ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥१
यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते । सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि दृश्यते दिवा ॥१

कां. ७ सू. १०८(११३) भृगुः । अग्निः । १ वृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने ।
प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् ॥१
यो नः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः ॥२

का. ९ सू. २ अथर्वा । कामः । त्रिष्टुप् ।

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥२
दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥३

का. १० सू. ३ अथर्वा । वरणमणिः; वनस्पतिः, चन्द्रमाः । भुरिक् त्रिष्टुप्, दुष्वप्ननाशने वरणमणि धारणे विनियोग । * वरणेवृक्ष रागनादेवी पीठ कश्मीर में है, अध्याय १ में पढ़ें ।

स्वप्नं सुत्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परीक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥६

कां १६ सू ५ ऋक् १-३ । यमः । दुःस्वप्ननाशनम् । १ विराडगायत्री । ५ (प्रथमा) भूरिक्; ६ प्रथमा स्वराट्, १-६ (द्वितीया) प्राजापत्यागायत्री; १-६ (तृतीया) द्विपदा साम्नी वृहती ।

विद्म ते स्प्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽऽसि यमस्य करणः ॥१
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥२ तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ।३॥३
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽऽसि यमस्य करणः ॥१
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।२। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ।३॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽऽसि यमस्य करणः ॥१

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।२। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ।३॥५

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽऽसि यमस्य करणः ॥१

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।२। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ।३॥६

विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽऽसि यमस्यकरणः ॥१

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।२। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ।३॥७

विद्म तं स्वप्न जनित्रँ देवजामीनां पुत्रोऽऽसि यमस्य करणः ॥१।८

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२।९

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात पाहि ॥३।१०

इति दुःस्वप्न नाशनगण ।

अस्य कां. १९।५६ सूत्रस्य यमः ऋषिः, दुस्वप्ननाशनम् देवता त्रिष्टुप् ऋषिः । दुस्वप्नजनितारिष्ट,अकालमृत्यु अपमृत्यु भीतिनिवारणे होमे उपस्थानेच विनियोग ।

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान्प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१

बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥२

बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वऽरानशानाः ॥३

नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४

यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।
स्वऽर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५

विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद्विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६

अस्य कौ. १९।५७ सूक्तस्य-यमः ऋषिः । दुस्वप्ननाशनम्-देवता । १ अनुष्टुप २, ३ त्रिष्टुप् (व्यवसाना)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४ उष्णि वृहती गर्भाविराट् शक्वरी ५ त्र्यवसाना पञ्चपदापरशाक्वराति जगती छन्दांसि दुस्वप्नजनितारिष्ट अकालमृत्यु, अपमृत्यु ओघमृत्यु भीतिनिवारणे होमे सूर्योपस्थाने विनियोग: ।

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥१

सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः ।

समस्मासु यद्दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ॥२

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।

स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः । मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥३

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् ।

अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद्गोषु यच्च नो गृहे ॥४

अनास्माकस्तद्देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।

नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि । दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥५

हवन कर शरीर अभिमर्शन करें । अन्य कोई व्याधिग्रस्त को भी होमकर शक्ति सम्पात करने से तुरन्त लाभ होता है । हृदय की धड़कन, हृदयशूल आदि को इसी प्रकार शमन करें !

(१) यदि दुस्वप्न आते हों तो "परोपेहि" (६।४५) "योनजीव:" (६।४६-१) सूक्तों से स्वप्नान्त में मुखमार्जन करें । वे. श्री. ३।२(१२) सू. ६ ख । कौ. ४६।९ में वर्णित । (२) यदि कैसा भी विषदोष हो तो (अ०वे० ६।१२४-१), वै०ओ०सू० ७ कौ०सू० ४६।४१ में वर्णित 'पराचीन दिवोनुमाम्" विषविन्दुओं को झाडा दें । (३) लालास्रवण में अपने को अनुमन्त्रित करें –**यद अत्राऽपिमघोरऽहं निरष्टविषम् अस्मृतम् । अग्निश्चतत्सविता च पुनर्मेजठरेधत्ताम् ॥** (४) वीर्यपात में अपने ही को अभिमन्त्रित कर सोये । 'तदइहोवह्वयामहेतन्म आप्यायता पुन:" वै०औ०अ० ३ कं २(१२) सू० ९ गो० ब्रा० (१।२-७) । कां०श्रौ० २५।११-२२ । आप श्रौ०१०।१३-११ । (४) निन्ध की प्रशंसा अप्रशंसनीय की निन्दा करने के पाप से मुक्त होने में अपने को अभिमन्त्रित करें । 'परोऽपेहि" (अ० ५।७-७) । (५) चौरादि दुष्टजनों की यातनादि में हिंसकादि जन्तु के भय में भी अपने को अनुमन्त्रित करें । (अ० १२।२-२६) । (६) यदि बिना मेघ ही वर्षा हो तो अपने को (अ.कां. ४।२७-९) से अभिमन्त्रित करें । (७) यदि अकस्मात्क्रोधावेग होता हो तो (अ० ६।४२-७) अपने को अभिमन्त्रित करें ।

अस्य ६।१२४ सूक्तस्य समस्त अथर्वा ऋषि: । दिव्या आपो देवता । त्रिष्टुप् छन्द: समस्त विषविन्दु निराकरणे विनियोग ।

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यऽपप्तद् रसेन ।

समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥१

यदि वृक्षादभ्यपप्तत् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव ।

यत्रास्पृक्षत् तन्वो३ यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरंण्यं वर्चस्तदु पूत्रिमंमेव ।

सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥३

इससे आकाश जल (विषैले) से भीग जाने से उत्पन्न समस्त व्याधि परिहरणार्थ जल अभिमन्त्रित कर शरीर पर मलें। इन्हीं से इसी कर्म में तेल, स्वर्ण धारण करें, अभिमन्त्रित कर शरीर का उद्वर्तन करें। कौ० ५।१०

—: चोर-बधिक विज्ञान :—

जिन-जिन व्यक्तियों के ऊपर चोरी या बध करने का सन्देह सो उनके लिये प्रश्नकर्त्ता से किसी वस्तु, वृक्ष, फूल या देवतादि का नाम बुलवायें, बोले गये नाम के अक्षरों की संख्या को दुगुनी करके एक स्थान पर रक्खें, उसी नाम की मात्राओं की संख्या में चार से गुणा करके गुणनफल को दूसरे स्थान पर रखले। पहली अक्षरोंवाली संख्या से दूसरी मात्राओं की गुणित संख्या में भाग दे। यदि कुछ अङ्क सेष बचे वह व्यक्ति चोर है, ऐसा कहें। यदि भाजक से भाज्य पूरा कट गया अर्थात् कुछ नहीं बचा, तो यह समझें यह व्यक्ति जिस पर शंका है, चोर या वधिक नहीं है।

—: चोर या बधिक को नियन्त्रित करने की विधि :—

अथर्व कां. १९ सूक्त ४९ ऋचा ९;१० योऽद्यस्तेन "तथा १०" प्रपादौ न यथा "तथा सूक्त ५० ऋचा ५" 'अपस्तेनंवासो' से वधिक या चोरभय दूर करने तथा चोर, दस्यु, बधिकजनों के पूर्णतया पराभवार्थ उसकी या उनकी पैरों की मिट्टी, या पहिने बस्त्रादि कुछ भी, तथा अभाव में मार्ग की, चौरास्ता की, नदी या सरोवर के दोनों किनारों की मिट्टियां सन्ध्या काल में आवें, उससे शत्रु (उपर्युक्तों की) प्रतिमा बनायें। कां० ५ सू० ३० ऋ० १३ 'ऐतुप्राणः' से प्राणप्रतिष्ठा करें, तदनन्तर उन प्रतिमा या प्रतिमाओं के सम्मुख, दक्षिणाभिमुख होकर इन्हें जपें और कर्त्ता जिनकी चोरी, हत्या या डकैती हुई है वह या उनके पुरोहित यजमान सहित, अपने को जप आरम्भ से पूर्व कां० १२ सू० २ ऋ० २९ 'अश्मन्वती' जो दुस्वप्ननाशन में दी है, अपने को आद्यन्त में अभिमन्त्रित करें।

ऐसे जप करने पर वे अनेकों अचिन्त्य दैवी आपदायें-विपदाओं में घिर कर सबकुछ भूल जाते हैं, उससे छुटकारा नहीं हो पाता, व्याधिओं से पीड़ित हो प्रलाप करते हैं। प्रतिमा को पुरानी मूंज की या कांस की रस्सी से बांधें, स्वयं लाई वांस की ७ या ५ गांठों की छड़ी को अभिमन्त्रित करें, उससे बंधी हुई प्रतिमा को ताड़ित करें तो वे राजयातना में फंस जाते हैं। पैरों में बांधने से उसकी गति ही रुक जाती है। गर्दन में बांधने से वाणी (अभद्र बाणी) ही रुक हो जाती है और किये गये पाप को स्वयं ही प्रलाप करते हुए बकवास करते हैं। अनुभूत।

कां० १९ सू० ४९ ऋ० ९; १० गोपथः, भारद्वाजश्च ऋषयः। रात्रिर्देवताः अनुष्टुप्, १० त्र्यवसाना बहुपदा जगती छन्दासि, चौर, दस्यु, बधिकाततायिनां शत्रुणां जनद्रोहिणां निवारणे, निग्रहणे अभिचार कर्मणि जपे, होमे च विनियोग।

यो अद्य स्तेन आयंत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।

रात्री तस्यं प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥१९।४९।९

प्र पादौ न यथायंति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।

यो मंलिम्लुरुपायंति स संपिष्टो अपांयति ।

अपांयति स्वपायति शुष्कें स्थाणावपांयति ॥१९।४९।१०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० १९ सू० ५० ऋचा ५ अस्या गोपर्यः ऋषिः । रात्रीर्देवता । अनुष्टुप्छन्द उपर्युक्ते कर्मणि विनियोगः ।

अप॑ स्ते॒नं वासो॑ गोअ॒जमु॒त तस्क॑रम् । अथो॑ यो अर्व॑तः शिरो॑ऽभि॒धाय॒ निनी॑षति ॥१९।५०।५

इस जप से पूर्व कां० १२।२-२६ जो आगे दी है अपने को अनुमन्त्रित करें। सामूहिक कार्य में "सर्वरक्षातन्त्र" शीर्षक में वर्णित व्याघ्र, चौर आदि से रक्षा की विधि का उपयोग करें । अनुभूत

अस्य कां० १२ सू० २ ऋ० २६ भृगुऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्द चौर, व्याघ्र, हिंसक बधिकादि भय निवारणे, चौरादीनां निगृहणे-वलक्षये स्वानुमन्त्रणे विनियोग ।

अश्म॑न्वती रीयते॒ सं र॑भध्वं वी॒रय॑ध्व॒ं प्र त॑रता सखायः ।
अत्रा॑ जहीत॒ ये अस॑न् दु॒रेवा॑ अनमी॒वानुत्त॑रेमा॒भि वाजा॑न् ।।१२।२।२६

अस्य काण्ड ४ सूक्त २७ ऋक् ४ चतुर्थस्य-भृगार ऋषिः । मरुतः देवता । त्रिष्टुप् छन्द - मेघः हीन वृष्टि जनितारिष्ट निवारणे, स्वानुमन्त्रणे, बलवृद्धये–मरुद्‌गणाभिवादने जपे, उपस्थाने विनियोग ।

अ॒पः स॑मु॒द्राद्‌ दिव॒मुद्‌ व॑हन्ति दि॒वस्पृ॑थि॒वीम॒भि ये सृ॒जन्ति॑ ।
ये अ॒द्भिरीशा॑ना म॒रुत॒श्चर॑न्ति॒ ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥४।२७।४

अस्य कां० ६ सूक्त ४२ ऋच प्रथमस्य भृग्वङ्गिराऋषिः । मन्युः । देवता भुरिक छन्द । अकस्माद कारण क्रोधोत्पन्नविघ्नशमने स्वानुमन्त्रणे विनियोग ।

अव॒ ज्यामि॑व॒ धन्व॑नो म॒न्युं त॑नोमि ते हृ॒दः ।
यथा॒ संम॑नसौ भू॒त्वा सखा॑यावि॒व॒ सचा॑वहै ॥६।४२।१

भय निवारण विधि—मन, बुद्धि, नेत्रादि, इन्द्रियगण के समस्त अवयवों की व्याधि, ज्वराति, महाव्याधि, अपमृत्यु, अकालमृत्यु आदि से रहित स्वस्थ, प्रसन्न, तेज आदि से युक्त दीर्घायु (शत संवत्सर से अधिक) की प्राप्ति के लिए उपरोक्त आयुष्यगण के कर्मों की विधि के साथ ही साथ, शर्म, वर्मगण, स्वस्त्ययनगण, अभयगण, अपराजित गणों के कर्मोंक्रियाओं का प्राविधान होने से यहाँ अभयगण कार्मों का उल्लेख है ।

अभयगण—"उपप्रागात" (६।३७), "अभयंद्यावा" (६।४०) "यमोमृत्यु" (६।६३) "वायोः पूतः" (६।५१) "वृहपस्तिर्न" (७।५३) "त्यमूष" (७।८५) "त्रातारमिन्द्र" (७।८६) "इन्द्र सुत्रामाः" (७।९१-९६) "ससुत्रामा" (७।९२-९७) "आमन्द्रैरिन्द्र" (७।१२२), "मर्माणिते" (७।१२३) "अयंप्रतिसरो" (८।५।१८-१९) "सत्यं वृहद्वतमुगम्" (१२।१-११, १२, ३१, ३२) "उपप्रागात" (६।३७) से शाप देने वाले, कटुमार्मिक वचन बोलने वाले निर्दोष के प्रति अभद्रता से बोलने वाले, क्रूरदृष्टिपात कर्त्ता से उत्पन्न व्याधि निवारणार्थ, उपरोक्त दुष्टकार्य कर्त्ताओं के प्रति ही वापिसी के साथ तद्विहित पाप जनित क्लेष भोगने के हेतु, श्वेतमिट्‌टी, अभिमन्त्रित कर श्वान (कुत्ते) को दे । ढाकमणि अभिमन्त्रित कर बाँधे । इङ्गीण, ईगुर से होम व समिधा दान करें । ओले बिजली के गिरने से, दग्ध वृक्ष की समिधाओं से होम करे । (कौ. ६।२)

"अभयंद्यावा पृथिवी" (६।४०) तथा "श्येनोसि" (६।४८) से समस्त दिशाओं के अधिष्ठात्री देवों के ज्ञात-अज्ञात अपराधों से रुष्ट तज्जनित व्याधि शत्रुभय, ग्राम, घर राष्ट्र के दिशाओं के उत्पातों व उपरोक्त कर्मों की शान्ति के लिए, सप्त ऋषियों का प्रति दिशाओं में होम, जप आदि करे (कौ. ७।१० व २।७) इन्हीं से यज्ञोपवीतान्त कुमार को दण्ड धारण कराये । "उपप्रागात्" (६।३७) अभिचार जनित दोष निवारणार्थ अभिमन्त्रित श्वेतमूर्त्ति का श्वान के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समक्ष फैंक दे। अभिमन्त्रित ढाक की मणि धारण करें, इङ्गिड होम करें। कौ. ६।२ "यो नः शयात्" (६।३७-३) से विद्यु‌त से टूटी वृक्ष की ११ समिधादान करें।

शाप नाशनम् (६।३७) १-३ अथर्वा (स्वस्त्ययन कामः) चन्द्रमाः। अनुष्टुप्

उप॒ प्रागा॑त् स॒हस्रा॒क्षो यु॒क्त्वा श॒पथो॒ रथ॑म् ।
श॒प्तार॑मन्वि॒च्छन् मम॒ वृक॑ इ॒वावि॑मतो गृ॒हम् ॥१
परि॑ णो वृङ्धि शपथ ह्र॒दम॒ग्निरि॑वा॒ दह॑न् ।
श॒प्तार॒मत्र॑ नो जहि दि॒वो वृ॒क्षमि॑वा॒शनिः ॥२
यो न॒ः शपा॒दश॑पतः शप॑तो॒ यश्च॑ न॒ः शपा॑त् ।
शुने॒ पेष्ट्र॑मि॒वाव॑क्षाम॒ं तं प्रत्य॑स्यामि मृ॒त्यवे॑ ॥३

कां. ६ सू. ३७ "उपप्रागात्" सहस्रों नेत्रों वालाशाप, अपना रथ जोतकर मुझे शाप देने वाले को ढूंढ़ता हुआ उसके समीप आता है, जैसे भेड़ वाले के घर में भेड़िया आता है। हेदुर्वचनी जैसे दहकता अग्नि, जल स्थान को त्याग देता है, उसी भाँति तू हमैं त्याग दे। जैसे आकाशी बिजलो वृक्ष को जला देती है, उसी प्रकार हमको शाप देने वाला नष्ट हो जावे। ३. जो हम शाप न देने वाले को शाप देता है, और जो शाप देने वाले हमको शाप देता है, उस जघन्य को मैं मृत्यु देव के सामने, कुत्ते के सामने टुकड़ा फेंकने की भांति फेंकता हूं।

अभयगण—[शेष] (७।५१-१) (७।८५-१) (७।८६-१) (७।९१-१) (७।९२-१) (१२।१-१८) [१२।१-३१] (७।११७-१) [७।११८-१] [८।५।१८] (८।५।१९) परिपाणम् [७।५१-५३]

"वृहस्पतिर्नं" [७।५३] तथा "यत ते देवा" [७।८४] से समस्त फलों की प्राप्ति हेतु वृहस्पति का जप, अनुष्ठान, होम करें। कौ. ७-१०

"त्यमषु" [७-९०] तथा "त्रातारम्" [७.९१] तथा "आमन्द्रै" [७-१२२] इन सब से या प्रत्येक से स्वस्त्ययनार्थ इन्द्र का जप, उपस्थान, होम करें। ७-१० कौ.

स्वस्त्ययनगण कर्मों तथा, उपाकर्मों में होम का विधान है। कौ. १४-३

अन्त्येष्टि आदि में भी स्वस्त्ययनार्थ जप करें। इन्ही का साथ 'इन्द्रः-सुत्रामा' [७-९६] इन्द्र महारव्य उत्सव में से आज्य होर करें। कौ. १४-४

"मर्माणि ते" [७-१२३] इस ऋचा से कवच अभिमन्त्रित कर परसेना को पीड़ित करने के लिए धारणार्थ कवच दें। कौ.२-७. महाव्रत में दुन्दुभि बजाने के उपरान्त तीर्थ देश में या अन्यत्र पूज्यपीठ में बैठायें। वै. ६-४ 'अयं प्रतिसरः' [८-५] ये दो अर्थ सूक्त हैं। अभीष्टा सिद्धिप्रद हैं, इन दोनों अथंसूक्तों से तथा 'आयमगत्' [३.५]; 'अयं मे वरणः' [१०-३], 'ऊरातीयो' [१०-६] से तिलक वृक्ष निर्मित प्रतिसर मणि या अन्य मणियों को भी दही, मधु में तीन रात्रि पर्यन्त रखकर चौथे दिन पूजा व अभिमन्त्रित कर धारण करें। कौ. ३-२। ये दोनों अर्थसूक्त तथा 'यां कल्पयामि' [१०-१] से कृत्याप्रति हरण में जल अभिमन्त्रित कर छींटे दें, स्नान करायें, जप, उपस्थान होम करें। कौ. ५-३ भीणप दुर्घटना या रोग से पीड़ित के कल्याणार्थ रौद्री शान्ति करें। न० क. १७

कां.७।५१।५३—१. अङ्गिराः। इन्द्रा वृहस्पती। त्रिष्टुप्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥७।५१।१

अरिष्टनेमि [७-८५-९०] १. अथर्वा [स्वस्त्ययन कामः] । तार्क्ष्यः । त्रिष्टुप् ।

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥७।८५।९०

त्राता इन्द्र [७।८६-९१] १ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोतु ॥७।८६।९१

[७।९१-९६] १. अथर्वा । चन्द्रमाः इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥७।९१।९६

[७।९२-९७] १. अथर्वा । चन्द्रमाः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥७।९२।९७

[७।११७-१२२] १. अथर्वाङ्गिराः । इन्द्रः । पथ्याबृहती ।

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिद् वि यमन् विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥७।११७।१२२

[७-११८-१२३] १. अथर्वाङ्गिराः । चन्द्रमाः, वरुणः, देवः । त्रिष्टुप् ।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१

कां. ७ सू० ९१ "इन्द्रः सुत्रामा;"—राष्ट्रनायक, उत्तम रक्षक, आत्मशक्ति में निष्ठावानः सभी धनों से युक्त प्रजा रक्षक, सुखदायी, शत्रुहन्ता, प्रजा को अभयदाता और प्रजा को सम्पन्न बनाने वाला हो।

कां. ७ सू. ९२ "ससुत्रामा"—उत्तम रक्षक, शक्तिशाली, आत्मशक्ति में निष्ठावान राजा निश्चय के साथ प्रजाजन से शत्रुओं को हटाये। प्रजाजन का भी कर्त्तव्य है कि उस वन्द्यनीय राजा के विषय में सुमति रक्खें; और उसके श्रेष्ठ संकल्पों को धारण करें।

कां. सू. १२२ 'आमन्द्रेरिन्द्र'—हे इन्द्र ! सुशोभित मयूर पंखों, शोभायमान पूंछ के घोड़ों के साथ, जैसे पक्षी को जाल में फँसाते हैं, उस प्रकार तुझे कोई नहीं पकड़ सकता है। जैसे रेतीले स्थान पर सुगमता से जाते हैं—वैसे उन शत्रुओं का अतिक्रमण कर।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ७ सू. ११८ 'मर्माणिते'—हे राजन् ! मैं तेरे मर्म स्थानों की रक्षार्थ 'रक्षाकवच' धारण कराता हूँ। राजा सोम तुझे अमृत से अच्छादित करे। वरुण देव तेरे लिए विस्तीर्ण कर्मक्षेत्र प्रदान करें, सभी देव तेरी विजय से हर्षित हों।

कां. ७ सू. ५३ 'बृहस्पतिर्नः' ७-८५ 'त्यमूषु' ७-८६ 'त्रातारमिन्द्र' 'यमोमृत्यु' ६-९२, ये सूक्तगत, पीछे अध्याय ३ में पढ़ें, कां. ८.५ 'अयप्रतिसर' मणिबन्धन प्रकरण में पढ़ें।

'अभयद्यावा' [६-४०] ग्राम आदि के अभय करने के लिए उसकी प्रत्येक दिशा में सप्त ऋषियों का होम, जप उपस्थान करें। साथ में 'श्येनोऽसि' [६-४८] भी है। सेना के भय निवारण में भी उसके भी सर्व दिशाओं में होम आदि करें। कौ. २-७। उपनयन में आज्यहोम करें। कौ. १४-३

अ. कां. ६ सू. ४० [१-३] अथर्वा। १ द्यावापृथिवी, सोमः सविता, अन्तरिक्षं, सप्त ऋषयः, २ सविता इन्द्रः, ३ इन्द्रः। १-२ जगती, ३अनुष्टुप्।

अभयं द्यावा पृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोऽस्तूर्वऽन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥१
अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु।
अशत्रिवन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥२
अनमित्रं नः अधरादनमित्रं न उत्तरात्। इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥३

कां. ६ सू. ४० 'अभयंद्यावा' हे द्यावापृथिवी ! हमारे लिए अभय हो, हे सोम और सवितादेवो ! हमारे लिए निर्भयता करो' यह विस्तृत अन्तरिक्ष हमारे लिए अभयप्रद हो। सप्त ऋषियों के लिए प्रदत्तहवि, हमारे लिए अभयदायी हो। २—सर्व उत्पादक प्रभु, हमारे इस नगर [ग्राम, घर, राष्ट्र] में चारों ओर से बल, वीर्य, ऐश्वर्य कल्याण उत्पन्न करे। ईश्वर हम सभी के लिए शत्रुरहित, निर्भयता करे। राजा का कोप औरों पर चला जावे। ३—हे प्रभो ! हमारे निम्न भाग, उर्ध्व भाग, पृष्ठ भाग और सामने से निर्वैरता करो।

'वायोः पूतः' [६-५१] बृहच्छाति गण कर्म विधान में है। इससे समस्त रोगों की भैषज्य में पलाश, पीपल आदि शान्ति वृक्षों की समिधाओं से होम करें। अर्थोत्थापन विघ्न शमन में 'पुनन्तु मा' [६-१९] में वर्णित क्षीरौदनहवन आदि करें। यह तीन ऋचाये ऊपर सूक्त में भी हैं, छींटे, स्नान आचमनादि भी करें। कौ. ८-९

अ. कां. ६ सू. ५१ [१-३] शान्तातिः। आपः २ वरुणः। १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती। अम्बादिगण बृहच्छान्तिगण कार्येषु, सर्वरोग निवारणार्थं होमेषु, सोम, वमन, पानादि निमित्त व्याधि निवारणे, सोमरसयुक्त पालाशादि समिधा दाने विनियोग।

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१
आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वऽः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति।
अचित्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ६ सू. ५१ 'वायोः पूतः' वायु शोधक साधनों से पवित्र हुआ, प्रत्यक्ष छाना गया सोम, इन्द्र शक्ति का उपयुक्त मित्र है। २—माता के तुल्य हितैषी जल हमें पवित्र करे, पावन जल हमें जल स्रोतों से पवित्र करे। दिव्य जल सब पाप बहादें! इनसे पावन और निष्पूत होकर मैं आगे बढ़ूँ। ३—हे वरुथदेव! सामान्य जन जो कुछ भी अपराध दिव्यजनों के प्रति करते या सोचते भी हैं, और जो अज्ञानी तेरी निर्दिष्ट धर्म मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं; हम सभी को उन अपराधों के कारण नष्ट न करो।

जल-चिकित्सा (६।५७) शान्तातिः। रुद्रः। १-२ अनुष्टुप्, उपथ्यावृहती * इस सूक्त से विना मुख के घाव या व्रण गोमूत्र से धोयें उसी को बाँधें, तथा अभिमन्त्रित कर दांतों का मल लगायें या छागफेन लगायें।

इदमिद्वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम्। येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥१

जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत। जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥२

शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत्।

क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥३

विश्वजित (६-१०७) शान्तातिः। विश्वजितः। अनुष्टुप्. स्वस्त्ययनगण, वृहच्छान्ति गण कार्यों में होम, उपस्थानादि करें।

विश्वजित्त्रायमाणायै मा परि देहि। त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ।१

त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि। विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ।२

विश्वजित्कल्याण्यै मा परि देहि। कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ।३

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि। सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ।४

दीर्घायु: [७।३२ (३३)] १ ब्रह्मा:। आयुः। अनुष्टुप्, दीर्घायु के लिए बाल ब्रह्मचारी, रुग्णादि के शिर का अभिमर्शन करें।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्। अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१

ब्रह्म। ७ [६६ (६८)] ब्रह्मा। ब्रह्म। त्रिष्टुप्, ये दोनों ही वृहच्छान्तिगण कार्यों में विहित हैं। इनसे प्रतिग्रह-दोष निवारणार्थ दान की वस्तु अभिमन्त्रित करें। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्म पाक यज्ञादि के न्यूनातिरिक्त दोष निवारणार्थ अपने को अनुमन्त्रित करें। (!!) इन्द्रियों का अभिमर्शन करें। दण्ड टूट जावे तो ब्रह्मचारी दूसरा दण्ड अभिमन्त्रित कर धारण करें।

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु।

यदश्रवन्पशव उद्यमानं तद्ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥१

का. ७ सू. ६७ मं [६९] ब्रह्मा। आत्मा पुरः। परोष्णिग्बृहती।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च। पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव॥१

इति बृहच्छान्तिगण (अहोलिङ्गगण)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. १९ सू० १५ अथर्वा ऋषिः । १-४ इन्द्रः । मन्त्रोक्ता देवते । त्रिष्टुप् । १ पथ्या बृहती २-५ जगती ३पथ्या पङ्क्ति छन्दानि . अप्रतिरथसंज्ञक सूक्तोक्तेषु, अभयगणोक्त कार्येषु विनियोगः । सू. १९।१९ से लेकर सूक्त २०तक की अप्रतिरथसज्ञा है, इनसे अभयगण कार्यों के साथ राजा के साथ राजा के निवासगृह में ले जाकर परिक्रमा क्रम से अंगुष्ठ से गृह में चारों ओर शर्करा व सरसों फेंककर रक्षा कर्म के उपरान्त स्वयं और राजा का भी प्रवेश करें । धूम्रकेतु दर्शन आदि उत्पातों की शान्ति में होम करें । इनसे दी गई आहुति तीक्ष्णतर प्रहार करती है ।

यतं इन्द्र भयांमहे ततों नो अभंयं कृधि ।
मघंवञ्छग्धि तव त्वं नं ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधों जहि ॥१
इन्द्रं वयमंनूराधं हंवामहेऽनुं राध्यास्म द्विपदा चतुंष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुपं गुर्विषूंचीरिन्द्र द्रुहो वि नांशय ॥२
इन्द्रंस्त्रातोत वृंत्रहा पंरस्फानो वरेण्यः ।
स रंक्षिता चंरमतः स मंध्यतः स पश्चात्स पुरस्तांनो अस्तु ॥३
उरुं नों लोकमनुं नेषि विद्वान्स्व१र्यज्ज्योतिरभंयं स्वस्ति ।
उग्रा तं इन्द्र स्थविंरस्य बाहू उपं क्षयेम शरणा बृहन्तां ॥४
अभंयं नः करत्यन्तरिंक्षमभंयं द्यावांपृथिवी उभे इमे ।
अभंयं पश्चादभंयं परस्तांदुत्तरादंधरादभंयं नो अस्तु ॥५
अभंयं मित्रादभंयममित्रादभंयं ज्ञातादभंयं पुरो यः ।
अभंयं नक्तमभंयं दिवां नः सर्वा आशा मम मित्रं भंवन्तु ॥६

कां. १९ सू. १४ अथर्वा:, ऋषिः । द्यावापृथिवी देवता । त्रिष्टुप् छन्द उपरोक्त विनियोगः ।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावांपृथिवी अंभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशों मे भवन्तु न वै त्वां द्विष्मो अभंयं नो अस्तु ॥१

"अपिवृश्च" कां. ७।९०(९५) इन तीनों ऋचाओं से जार पुरुष (परकी या प्रेमी) के उच्चाटनार्थ जार को देखकर जपे। इसी से जार के संगम स्थान में पत्थर (डेले) अभिमन्त्रित कर थेंक दें । कौ. ४।१२

कां० ७ सू० ९०।९५ शत्रुबलनाशनम् । १-३ अङ्गिराः । मन्त्रोक्ताः । १ गायत्री, २ विराट् पुरस्ताद् बृहती, ३ त्र्यवसाना षट्पदा भुरिग्जगती ।

अपिं वृश्च पुराणवद्व्रततेरिव गुष्पितम् । ओजों दासस्यं दम्भय ॥१
वयं तदंस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भंजामहै । म्लापयांमि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेनं ते ॥२
यथा शेपों अपायांतै स्त्रीषु चासदनांवयाः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवस्थस्य क्नदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः यदातंतमव तत् तनु यदुत्तं नि तत् तनु ॥३

कां. ७ सू. ९० "अपिवृश्च"—हे प्रभो ! दुष्ट अनाचारी, वधिक, हिंसक, क्रूरकर्मी, जन द्रोहियों के बल को लताओं की सूखी टहनियों की भांति काट दो। (२) इन पृष्टों की अनाचारोपार्जित सम्पत्ति को धार्मिक कार्यों में लगा दो। तथा वरुण भगवान् को क्रोध के तुल्य तेरे (दुष्ट के) तेज के घमंड को मिटा देते हैं। (३) निन्द्य गाली देने वाले कंटक जैसे व्यवहार कृत से स्त्रियों को परेशान करने वाले पापिष्ठों के फैले हुए दुष्कृत्य नष्ट हो जावें। जो अनाचार से ऊपर उठा हो, वह नीचे गिर जावे (पतन कर दो); जिससे इनके दुष्कृत्य स्त्रियों के साथ न हो सके, ये दुष्ट उनके पास भी पहुँचने योग्य न रह जावे।

कां. ७ सू. ९६।१०१ "असदनगावः" इस ऋचा से ईर्ष्यालु की ईर्ष्या तथा ईर्ष्याजनित दुष्परिणाम के निवारणार्थ विना उसे जनाये (अभिचार कर्म में) लाल साठी चावलों के दूध भात को अभिमन्त्रित कर, ईर्ष्यालू पुरुष या स्त्रीं जो भी हो, को खिलाये।

असंदन् गावः सदनेऽपप्त वसतिं वयः। आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥१

कां. ७ सू. ९६ "असदनगव"—जैसे गौयें गौशाला में बैठती हैं सायं पक्षी अपने घोंसले में जाते हैं, पर्वत अपने स्थान पर स्थिर हैं, उसी प्रकार मैं (शरीर विष दूर करने वाले) दोनों मूत्राशयों को सुदृढ़ स्थान पर स्थिर करता हूं, इन्द्रिय संयम से ही ये दोनों स्वस्थ रह सकते हैं।

'सिंह व्याघ्र" (६।३८); "यशोहविः" (६।३९) यशसमेन्द्र (६।५८) से ब्रह्मतेज प्राप्ति हेतु सिंह, व्याघ्र, हस्ती, चीता, रिक्ष, कालामृग, अश्व के बाल, तीर्थों के श्रोतों, सरोवरों, नदियों, समुद्रों, आकाशगङ्गा के पावन जल, गौ, तपस्वी, स्व कर्मनिष्ठ ब्राह्मण, सती-साध्वी देवी, कन्या, मणिधारी सर्प, विजार, राजकुमार, दुन्दुभि ये तेजयुक्त हैं। उपरोक्त हस्ति आदि के लोम दन्तमणि, जल-तपस्वियों की चरणरजें अभिमन्त्रित कर धारण करें। पलाश आदि किन्हीं यज्ञिय दश वृक्षों की मालायें लाक्षा-स्वर्णादि में वेष्टित कर धारण करें। स्फटिक आदि मणियाँ धारण करें।

कां. ६ सू. ५८—१-३ अथर्वा (यशस्कामः)। वृहस्पतिः, १-२ इन्द्रः, द्यावापृथिवी, सविता; ३ अग्निः, इन्द्रः, सोमः। १ जगती, प्रस्तारपङ्क्तिः, ३ अनुष्टुप्।

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इहस्यामह १॥
यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥२
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत। यशा विश्वस्यभूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३

कां० ६ सू० ३८ सिंह-व्याघ्र की पूर्व वर्चस्गण कर्म विधि में निर्दिष्ट सिंह आदि की नाभी के बाल, नख, लाक्षा तथा हिरण्य में लपेटकर होम कर तथा अभिमन्त्रित कर वर्चस्व कामी धारण करें। इन्हीं से शान्ति वृक्ष, पलाश, तलाश, अर्जुन, देवदारु, रुद्राक्ष, विल्व, तुलसी, अपामार्ग, शमी जीयापोता की बनी मणि धारण करें। इसे दधि, मधु में ३ रात्रि डाले रक्खें, अन्त में होम कर अभिमन्त्रण कर धारण करें, इसको पियें। इसी से धान्य विनाश निवारण-धान्य वृद्धि धान्य रक्षार्थ "धान्यमसिधिनुहि देवान्" आदि मन्त्र सहित होम करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६।३८ १-४ अथर्वा (वर्चस्काम:) त्विषि:, वृहस्पति: । त्रिष्टुप् ।

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरुग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥१
या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥२
रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥३
राजन्येऽदुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥४

कां० ६ सू० ३८ "सिंहे व्याघ्र" जो तेज (ओज, ब्रह्मबल) सिंह, व्याघ्र और सर्प में है, जो तेज अग्नि, ब्राह्मण और सूर्य में है, जो सौभाग्ययुक्त दैवी तेज इन्द्र (राजा-राष्ट्रनायक) में है । अन्न और बल से युक्त, वह तेज हमें प्राप्त हो । (२) जो तेज हाथी और व्याघ्र में है, जो तेज सोना, जल, गौओं और श्रेष्ठ मानवों में है, जिस भाग्ययुक्त तेज से राजा (राष्ट्रनायक) सम्पन्न होता है, वह तेज हमें प्राप्त हो । (३) जो तेज रथ, अक्ष और बैल के बल में है, और जो वायुपर्जन्य और वरुण के सामर्थ्य में है, और जिससे राजा (राष्ट्रनायक) अभिषिक्त होता है, वह तेज हमें प्राप्त हो । (४) जो तेज क्षत्रिय में, और खिंची हुई दुन्दुभी में होता है, जो घोड़े के बल और मनुष्य के पित्त में जो बल (तेज-ओज) होता है, जिससे राजा (राष्ट्रनायक) समृद्ध होता है, वह तेज मुझे प्राप्त हो ।

कां० ६ सू० ३९ अथर्वा (वर्चस्काम:) । त्विषि:, वृहस्पति: । जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम् ।
प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतातये ॥१
अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम ।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम ॥२
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत । यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३

कां० ६ सू० ३९ "यशोहवि" परब्रह्म से प्राप्त, सहस्रों वीर्यों से युक्त, उत्पन्न. भरपूर बल से उपलब्ध, यज्ञरूप, मेरा यश बढ़े । विस्तृत श्रेष्ठता की अभिवृद्धि वाली दिव्य (सूक्ष्म) दृष्टि प्राप्ति हेतु, प्रगतिशील उपभोग्य पदार्थों से युक्त मुझे अनुकूल तथा सम्पन्न बना । (२) विविध यशों से परिपूर्ण यशस्वी प्रभु को प्रणाम करते हुये,निज विकासार्थ, अनुनय-पूर्वक, हम आपकी अर्चना करते हैं । वे आप परब्रह्म से प्राप्त राष्ट्र (तेज, ओज, ब्रह्मवर्च) हमें प्रदान कर, हम तेरे उस दान में यशस्वी हों । (३) प्रभु यशस्वी हैं, अग्निदेव यशस्वी हैं और सोम भी यशस्वी हैं, समस्त भूत (जातमात्र) के यश से मैं यशस्वी होऊँ ।

"हस्ति वर्चसम्" (३।२२) से तेज प्राप्ति के लिये हाथी के दांत को स्पर्श कर जप-उपस्थान करें । हस्तिदन्त निर्मित मणि अभिमन्त्रित कर धारण करें । साथ में ही "ममाग्ने वर्च:" (५।३) का भी विधान ब्रह्मवर्च प्राप्ति में है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कौ० २।४ पुरोहित प्रातः काल राजा को अभिमन्त्रित कर हाथी को दे। प० ४।१

कां० ३ सू० २२ (१-६) वसिष्ठ। वर्चः, बृहस्पतिः, विश्वेदेवाः। अनुष्टुप्, विराट् त्रिष्टुप् ३ पञ्चपदा, परानुष्टुप् विराड्तिजगती, ४ व्यवसाना षट्पदा जगति।

ह॒स्ति॒व॒र्च॒सं प्र॑थतां बृ॒हद् यशो॒ अदि॑त्या॒ यत् त॒न्व॑ः सं॒ब॒भूव॑।
तत् सर्वे॒ सम॑दु॒र्मह्य॑मे॒तद् विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः स॒जोषा॑ः ॥१
मि॒त्रश्च॒ वरु॑ण॒श्चेन्द्रो॑ रु॒द्रश्च॑ चेततु। दे॒वासो॑ वि॒श्वधा॑यस॒स्ते माञ्ज॑न्तु वर्च॑सा ॥२
येन॑ ह॒स्ती वर्च॑सा संब॒भूव॒ येन॒ राजा॑ मनु॒ष्ये॒ष्व॒प्स्व॑१॒न्तः।
येन॑ दे॒वा दे॒वता॑मग्र आय॒न् तेन॒ माम॒द्य वर्च॒साग्ने॑ वर्च॒स्विन॑ं कृणु ॥३
यत् ते॒ वर्चो॑ जातवेदो बृ॒हद् भ॑व॒त्याहु॑तेः।
याव॒त् सूर्य॑स्य॒ वर्च॑ आसु॒रस्य॑ च ह॒स्तिन॑ः। ताव॒न्मे अ॒श्विना॒ वर्च॒ आ ध॑त्तां॒ पुष्क॑रस्रजा ॥४
याव॒च्चत॑स्रः प्र॒दिश॒श्चक्षु॒र्याव॑त् सम॒श्नु॒ते। ताव॑त् स॒मैत्वि॒न्द्रियं मयि॒ तद्ध॑स्तिवर्च॒सम् ॥५
ह॒स्ती मृ॒गाणां॑ सु॒षदा॑मति॒ष्ठावा॑न् ब॒भूव॒ हि। तस्य॒ भगे॑न॒ वर्च॑सा॒भि षि॑ञ्चामि॒ माम॒हम् ॥६

कां० ३ सू० २२ "हस्तिवर्चसम्" जो यश मूल प्रकृति के अन्दर ओतप्रोत, परिपूर्ण है, वह हाथी आदि पशुओं के बल के रूप में आता है, वैसा ही यश (ब्रह्मचर्य) सभी एक मन वाले देवगण और अदिति देवमाता, मूल प्रकृति मुझे प्रदान करें। (२) मित्र, वरुण, इन्द्र, रुद्रादि विश्व के धारणकर्त्ता देव मुझे उत्साह दें, और ब्रह्मतेज से युक्त करें। (३) जिस तेज से समस्त पशुओं में हाथी बलिष्ट हुआ, जिससे मनुष्यों जलों में राजा बलवान हुआ; जिससे तेज से पुरा काल में, देवों ने देवत्व प्राप्त किया, हे आने ! आज, उस तेज से मुझे तेजस्वी बनाइये। (४) हे जात वेद ! आहुतियों में जो तेरा महान तेज होता है और जितना सूर्य का, और आसुरी हाथी का बल और तेज होता है। हे पुष्पमाला धारी अश्वि देवो ! उतना तेज मेरे अन्दर स्थापित करो। (५) ये चारों दिशायें, जितनी दूरी पर हैं; जितनी दूर दृष्टि जाती है, हाथी के तुल्य इन्द्रिय बल, मुझे एकत्रित होकर मिले। (६) सुखपूर्वक बैठने वाले पशुओं में, जैसे हाथी प्रतिष्ठावान् होता है, उसके ऐश्वर्य और तेज के साथ मैं अपने आप को ऐश्वर्य युक्त बनाता हूं।

"आयुर्दाः" (२।१३) यह गोदान नामक [चूड़ाकर्म] में शान्ती जल,होम तथा ब्रह्मचारी को नवीन वस्त्र धारण कराने में [ऋचा २-३] "परिधत्त" हैं। "एह्यश्मानम्" ऋ० ४ दक्षिण पैर से पाषाण पर रक्खे। "यस्य ते वासः" ऋ० ५ से पूर्व के परिहित वस्त्र को कर्त्ता ले। कौ० ७।५ 'परिधत्तः" ऋचा २-३ से अभिमन्त्रित वस्त्र प्रातःकाल के पुरोहित राजा को दें। अ०प० ४।१ तथा आरात्रिक विधान में ४ बार शर्करा प्रत्येक दिशा में फेंक कर पाँचवी "एह्यश्मानम्" [४] से राजा को स्थापित कराये यह चलकी स्थिरता कराने की विधि है। अ०प० ४।४

दीर्घायुः प्राप्तिः। [अ०वे०का० २ सू० १३-१] १-५ अथर्वा। अग्निः, २-३ बृहस्पतिः, ४-५ विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ५ विराड्जगती।

आ॒यु॒र्दा अ॑ग्ने ज॒रसं॑ वृणा॒नो घृ॒तप्र॑तीको घृ॒तपृ॑ष्ठो अग्ने।
घृ॒तं पी॒त्वा मधु॒ चारु॒ गव्यं॑ पि॒तेव॑ पु॒त्रान॒भि र॑क्षतादि॒मम् ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिं धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उं ॥२
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उं ।
शतं च जीवं शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥३
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः । कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥४
यस्यं ते वासः प्रथमवास्यं१ हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जातन्तां बहवः सुजातम् ॥५

कां. ६ सू. ६२ 'वैश्वानरोरश्मिभिः' ये बृहग्दगण के साथ उसी कार्य में विहित है । इस सू० से अ० कां० ६ सू० ५९ 'अनुडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम्' विधि बृहच्छान्ति गणकर्म के साथ अर्थोत्थापन विघ्न शमनार्थ; अ. का. ६ सू. ५१ 'वायोः पूतः' सूक्तोक्त [अपांगण कर्मविधि] अर्थात् शान्ति जलाभिमन्त्रण, इन्ही तीनों ही सूक्तों से सर्वरोग निवारणर्थ, मार्जन, स्नान, उपस्थान, होम करें । ये अम्बादि गण, अपांगण तथा अर्थोत्थापनगण कर्मों में विहित होने से, अप्लावन आदि सभी कार्यों में विनियोग करें । कौ. ८।६

कां. ६।६२ 'पवित्रगण' में होने से, सब यज्ञ में इसी से सम्प्रोक्षण स्नान-होमादि भी करें । कौ. १४।३

कां. ६ सू. ६२ [१–३] अथर्वा । रुद्रः वैश्वानरः वातः द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥१
वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वोऽ वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२
वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥३

कां० ३ सू० ६२ "वैश्वानरो" :—अग्नि वाणी के, वायु प्राण के, जल विविध रसों के रूप में द्युलोक, भूलोक, निज शक्तियों से हमारे शरीरों में निवास करती हैं, यहाँ उन्होंने ये रूप लिये हैं । इनसे हम पावन हों । [२] सत्यभाषी और ईश उपासक सब प्राणी हों, इस महान आनन्द काल में, पृष्ठ भाग से रहित अर्थात् अन्तर्वाह्य सभी को उन दिव्य स्तोत्रों, वाणियों, प्रार्थनाओं से पवित्र होकर औरों को पवित्र बनायें । सत्य-प्रिय, अहिंसात्मक, सत्य भाषण करते हुए समृद्ध हों । बल, वीर्य, दीर्घायुष्यवान् हों ।

कां० १।११ अथर्वा । पूषा, अर्यमा, वेधाः, दिशः, देयाः । पङ्क्ति, २ अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा ष्णिग्गर्भा, ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४-६ पथ्या पङ्क्ति । इसके वर्चसगण कार्यों के अतिरिक्त गर्भवती के सुख से प्रसव कराने हेतु होम में "स्वाहा" के बजाय "वषट्" का प्रयोग करें और प्रणीताजल से शिर को छींटे दें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उं ॥१
चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥२
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि । श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ॥३
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥४
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥५
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ॥६

हे सबके पोषण करनेवाले जगदीश ! तेरे लिये हम स्वयं को अर्पित करते हैं । इस प्रसूति के सब जगत् का निर्माता तू ही हमारा सहायक बन । यह स्त्री भी दक्षता से रहे और इस समय अपने अंगों को ढीला करे ।

आकाश और भूमि की चारों दिशाओं में रहनेवाले सूर्यादि सम्पूर्ण देवों ने इस गर्भ को बनाया है और वे ही इस समय अपनी सहायता से इसको सुखपूर्वक गर्भस्थान से बाहर लावें ।

स्त्री अब अपने अंग खुले करें, सहाय करने वाली धाई योनियों को खोले । हे स्त्री ! तू भी मन से अन्दर से प्रेरणा कर और सुख से बालक को उत्पन्न कर ।

यह गर्भ मांस, चर्बी या मज्जा में चिपका नहीं होता । वह पानी में पत्थरों पर होने वाले नरम सेवार के समान अति कोमल थैली में लिपटा हुआ होता है, वह सब थैली की थैली एकदम बाहर आवे और वह नाल के साथ जेली कुत्तों को खाने के लिये दी जावे ।

योनि, गर्भस्थान और पिछली नाड़ियों को ढीला किया जावे, प्रसूति होते ही माता से बच्चा अलग किया जावे और बच्चे से जेली नाल समेत अलग की जावे । नाल समेत सब जेली पूर्णता से बाहर निकल आवे ।

जिस प्रकार मन वेग से विषयों में गिरता है, जैसे वायु और पक्षी वेग से आकाश में चलते हैं उसी प्रकार दसवें महिने में गर्भ जेली के साथ गर्भस्थान से बाहर आवे और जेली आदि सब नीचे अर्थात् माता के गर्भस्थान में उसका थोड़ा भी भाग अवशिष्ट न रहे ।

(का० १ सू० ९-१) १-४ अथर्वा । १ वसवः, इन्द्रः, पूषा, वरुणः, अग्नि, आदित्याः, विश्वेदेवाः, २ देवाः, सूर्यः, अग्निः, हिरण्य, ३-४ अग्निः (ज्ञातवेदाः) त्रिष्टुप् ।

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥२
येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥३
ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४

"अस्मिन वसु" (१।६) इस सूक्त से समस्त सम्पत्त कर्मों में दुग्ध पदार्थ में "युम्म कृष्णलमणि" -(१) काली तुलसा व श्वेत तुलसा या वनतुलसा) की बनी मणि को अधिवासित करें—उसी से पुरुषाकृति लिखें, अभिमन्त्रित तथा पूजा, धूप आदि के उपरान्त मणि धारण करें । दुग्ध पदार्थ की खाये । कां० २।२ सारांश—त्रयोदशी के ३ रात्रि पर्यन्त दही, मधु, घृत" से परिपूर्ण पात्र में मणि को डालें, चौथे दिन मणि को धारण कर, मधु, दधि को खायें ।

इसी से शत्रु के भय से राष्ट्र से भागे राजा को पुनः आगमन प्रवेश में कटी हुई शाखा की पुनः फूटकर बढ़ी काम्पील काष्ट में से निकाली बालियों से उत्पन्न व्रीहि (धान्यों) के भोज्यपदार्थ को इससे अभिमन्त्रित कर खिलायें । कौ० २।७ । आयुष्कामी इसी मणि को मिष्ठान्न आदि में अधिवासित कर धारण करें उसे मिष्ठान्न को खायें । उपनयन में वटुक की नाभि का स्पर्श कर अभिमर्शन करें ।

"आस्मिन् वसु" (१।६): "विश्वेदेवा" (१।३०) "आयातु मित्रः" (३।८) "अमुत्रभूयात्" (७।५५); "अन्तकाय मृत्यवे" (८।१) "आरभस्व" (८।२) "प्राणाय नमः" (११।४) "विषासहिम्" (१७।१) से अनुमन्त्रित करें । कौ० ७।६ ये आयुष्यगण कर्म में हैं । आयुष्य स्वस्त्ययन के लिये होम करें । गजक्षय में 'ऐरावती' शान्ति इन्हीं से करें । न० क० १८ । राज्यश्री ब्रह्मवर्चं प्राप्ति हेतु वा हस्पति नामक शान्ति कर मणि धारण करें । न० क० १६ । पुष्याभिषेक में भी ये सभी गण हैं । प० ५।३ । शर्मवर्म गण; अपराजित गण; आयुष्य गण, अभय गण, स्वस्त्ययन गण इन्हीं से होम, छींटे, आचमन, उपस्थान, स्नान, आशीर्वचन द्विजगण करायें ।

कां० १६।२६ । १-४ अथर्वा । अग्निः । हिरण्यञ्च । त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप्, ४ पथ्यापङ्क्तिः । व्याधि निवारणार्थ स्वर्ण तापी जल, दूध लें, स्वर्णभस्म लें, स्वर्ण धारण करें ।

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥१
यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥२
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च । यथा हिरण्य तेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥३
यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत्ते वर्चस्यं भुवत् ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. २ सू. १९ (११५) अथर्वा । अग्निः । (एकावसानम्) १-४ निचृद्विष्यमागायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१

अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२

अग्ने यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३

अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४

अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५

कर्म विधि—सर्वोत्कृष्ट तेज, ग्राम आदि अभीष्ट फल, निखिल सम्पद मूल धनं वाह्य आन्तरिक रिपु दमन, ऐहिक, आमुष्मिक, सर्व कामनासिद्धि, अभिमतफलसिद्धि, आत्मीयजनों मे श्रेष्ठता, बान्धवों के मध्य उत्कृष्टता, वाहनादि अनुचरादि सुख, पुत्र, कलत्र का आज्ञाकारीपन, स्वर्गादि साधनभूत यज्ञभिरुचि, राज्यादि निमित्त शत्रु सम्बन्धी तेज व धन की पुष्टि, शत्रु की यज्ञ धन, कीर्ति को निरुद्ध करने की बुद्धि; आदि की प्राप्ति तथा जन्म-जन्मान्तरीय पाप, शाप आदि से उत्पन्न अरिष्ट तथा उनको नष्ट करके दिव्य ओज, दिव्य शक्तियों से युक्त पवित्रता की प्राप्ति हेतु वर्चसगण तथा पावनगण विधि का निरूपण किया है ।

वर्चसगणः—''अस्मिस वसु वसवो धारयन्तु'' '(१।९) वषट् ते पूषन्' 'नमस्ते अस्तु' (१।१३)·'मानोविदन्' (१।१९); 'आयुर्दा' (२।१२); 'अग्ने यत ते तपः' (२।१९) 'उदेहिवाजिन' (३-१) 'प्रातरग्निम्' (३-१६) 'गिरावरगरा. टेषु' (६-६९) 'दिवस्पृथिव्या' (६।१) 'हस्तिवर्चस' (३।२२) 'सिंहे व्याघ्रे' (६-३८) 'यशोहवि' (६।३९) 'यस्तेगन्धः' (१२-१-२३) 'ये त्रिषप्ता' [१-१] 'वे नस्तत्' [२-१] 'यच्चवर्चो' [१४।१३५-३६] तथा पवित्रगण पुनन्तु मा [६।१९] 'वैश्वानरोरश्मिभिः' [६-६२] 'वायोः पूतः' [६.५१] कौ. ८(२).

'मानो विदन्' [१।१९]; 'उदारसृत' [१-२०]; 'स्वस्तिदा': [१२१] ये अपराजितगण के सांग्रामिकादि कार्यों में 'विद्याशरस्य' [१।२] की भांति हैं ।

यह तपस्वी, मनीषी, ब्राह्मण के आयुध धारण, देवप्रतिमा के हँसने, रोने या स्वेद आने या चलने आदि की अद्भुत बातों से उत्पन्न भावी भय निवारणार्थ होम के लिए भी हैं । साथ में 'नमो देववधेभ्यः' [६।१३] भी है । कौ. १३।१३. यदि बैल गौ के थनों को पिये तो इसके भावी अरिष्ट की शान्ति के लिए होम करें । कौ. १३।२१

कां. १ सू. २० (१–४) अथर्वा । १ सोमः, मरुतः; २ मित्रावरुणौ, ३ वरुणः, ४ इन्द्रः । अनुष्टुप्, १त्रिष्टुप् ।

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः ।

मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१

यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते । युवं तं मित्रावरुणावस्मद्यावयतं परि ॥२

इतश्च यदमुतश्च यद् वधं वरुण यावय । वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥३

शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः । न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥४

कां. १ सू. २१ (१–४) अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥२
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज । वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् । वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥४

कां. १ सू. २ (१–४) अथर्वा । पर्जन्यः (पृथ्वी, इन्द्रः, चन्द्रमाश्च) । अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराणनामगायत्री ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् । विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥१
ज्याऽके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि । वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्याऽकृधि ॥२
वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् । शरुमस्मद्यावय दिद्युमिन्द्र ॥३
यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् । एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४

अ. वे. कां- १ सू. १९ वर्चसगण १-४ ब्रह्मा । ईश्वरः, [१ इन्द्रः, २ दैवीः मनुष्येषवः, ३ रुद्रः, ४ देवाः]
अनुष्टुप्, २ पुरस्ताद्बृहती, पथ्यापङ्क्तिः ।

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय ॥१
विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥२
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ॥३
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४

कां. १ सू. १९ 'मानोविदन्':—यह सूक्त वस्तुतः 'आन्तरिक कवच' का ही द्योतक है । जैसे देश की सीमा-सुरक्षा कवच 'पर्वत, समुद्रादि' हैं । नगरों के कवच किले, 'शरीर के कवच' 'लोहे तारादि के बने' होते हैं, उनकी भांति ही, शरीर के अन्दर 'आत्मा' और 'अन्तःकरण' है । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सब मिलकर अन्तःकरण होते हैं । इनका सहयोग आत्मा के लिए सापेक्ष होता है । अस्तु 'अन्तःकरण' के लिए 'अन्तःकवच' वांछनीय ही है । इसी से 'ब्रह्म जर्मममान्तरम्' मं. ४ मे कहा गया है । यह परमात्मा की परा-अपरा भक्तियों से पूर्णतया ओतप्रोत, सत्य सनातन ज्ञान का दृढ़ आत्म विश्वास ही मेरा कवच है । यह मं. २ में निर्दिष्ट है । प्रथम मन्त्र जन साधातण की पाशविक शक्ति का परिचायक है ।

म. १—हमारे वीरों का ऐसा पराक्रम हो कि हमारे विनाशकर्त्ता सभी भांति के अहित करता शत्रुगण पास ही न आवें । उनके शास्त्र भी हमसे दूर ही रहें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मं. २—फेंके हुए, फेके जाने वाले चहुँ ओर व्याप्त वाण आदि अस्त्र हमसे दूर जाकर गिरें और हमारे शत्रुओं का वेध करें।

मं. ३—जो हमारा स्वकीय अथवा परकीय हो, हमारी जाति किम्बा भिन्न जाति का, कुलीन य हीन कोई कैसा भी क्यों न हो; और हम पर आक्रमण कर दास बनाने की चेष्टा करे, तो इन मेरे शत्रुओं को रुलाने वाले वीर वाणों से वेध करें।

मं. ४—जो प्रगट या गुप्त शत्रु हमारा नाश करता है, द्वेष से हमें शाप देता है; उसका सब देश नाश करें, मेरा आन्तरिक रक्षा कवच 'ब्रह्मज्ञान' ही है।

'नमस्ते अस्तु विद्युते' इस सूक्त से ओले-विद्युत विघ्न निवारणार्थ विद्युत प्रार्थना उपस्थान करें तथा सोम-दाभ-कुष्ठ, मिट्टी का ढेला, मञ्जिष्ठ अपामार्ग, सरसों शर्कर मिला घर क्षेत्र ग्राम की सीमादि में गाड़ दें। 'नमस्ते अस्तु' (१।१३) 'यस्ते पृथुस्तनयित्नुः' (७।११) ये दोनों पूर्वोक्त कर्मों में हैं। कौ. (५।२) उपाकर्म में आज्य होम करें। साथ में 'आरे असौ' (१।२६) भी हैं। कौ. १४।३.

१।१३ भृग्वङ्गिराः। विद्युत। अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद्विराड्जगती, ४ त्रिष्टुप्परा बृहतीगर्भापंक्तिः।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥१
नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तपः समूहसि। मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२
प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३
यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम्।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४

कां. १ सू. १३ "नमस्ते अस्तु" १—हे देवि ! ईश्वरी शक्ति ! तुम बिजली, पाषाण, काष्ठ, जल, लौह आदि में अपना दिव्य तेज प्रकट करती हो, मेघों में गर्जनाकार अपनी शक्ति से ओले रूप में बरसती हो। सभी बातों में हमारे क्लेशों को भी दूर करती हो, अतः तुम्हारी बन्दना करते हैं। यह विद्युत के रूप में जगज्जननी आदि दैवी शक्ति के रूप में, परमात्मा का ही वर्णन है। मं. २—परमात्मा की आदि दैवी शक्ति ही, मानव-दानव-देव सभी की उत्कृष्ट स्थान में रखने वाली और उनके पतन करने वाली है। वह उच्चता से पतन न करे; तू हम में तपोमय जीवनीय तत्त्व संचित कर प्रवृद्ध करती है। उस तप से हमें और हमारी सन्ततियों को सुखी बना; तेरी बन्दना करते हैं। ३—उच्चता से न गिरने वाले, तेरे वज्र और तेज की बन्दना करते हैं। तू हृदय गुहा में मानसरोवर है, विचार सागर की नाभि का आधार-भूत आत्मा है, जिसकी प्रेरणा से विचारसागर की लहरें उठती हैं, उस आत्मा का परमपवित्र निवास हृदय में ही है। उसी की भक्ति से शान्ति स्थापित होती है। उसकी बन्दना करते हैं। ४—वेदों में वर्णित आत्मा का देवों द्वारा प्राकट्य है। ये देव नेत्रादि इन्द्रियां ही हैं इस शरीर में विश्व के देव सूर्यादि के अंश हैं। सभी संकट में सहायतार्थ उसकी प्रार्थना करते हैं। जीवन संग्राम में, विरोधी शक्तियों [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकारादि] के सामना करने में विजयार्थ, दैवी शक्ति की शरण लेते हैं। नेत्रादि सभी इन्द्रियां बिना हृदय स्थानीय आत्मा की शक्ति के नहीं कर सकती हैं। वैसे सूर्यादि भी प्रकाश नहीं कर सकते हैं। यह विश्वेश्वर की परम दैवी शक्ति की कृपा से ही सम्भव हो सकता है। परमेश्वर का परम धाम प्रत्येक के, और विशेषकर भक्त के हृदय में ही है। हृदय सागर का केन्द्र भी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमात्मा ही है, वहीं, वह अपने वैभव से प्रकाश कर रहा है। प्रभु की सार्वभौमसत्ता, उसे सर्वत्र उपस्थित समझना, उसी को सर्वोपरि समझना, प्रत्येक की प्रगति के लिए अनिवार्य है, मैं इन सभी कारणों से एकमात्र तुम्हें ही नमन करता हूँ।

"सत्यं व्रहद्" कां १२।१ तथा "इहैव ध्रुवां" ३।१२ ये दोनों ही सूक्त वास्तोष्पतिगण कार्यों में विनियोग होते हैं। १२।१ की ऋचा ३३ "यावत्तेऽभि" पृथक् से पुष्टि, कामी उन्नत स्थान, पर्वत शिखर आदि पर चढ़कर समस्त पुष्टि कार्यों (शाला निर्माण, कृषि कर्म, अनावृष्टि, अतिवृष्टि सर्प निवारण, अपशकुन शान्ति आदि) में उपस्थान करें। कां ३ सू. १७ "सीरायुञ्जन्ति" में वर्णित कृषि उत्पादन, वृद्धि कर्म में खेत में पहुँच कर जुए के दोनों गातों "शिरों के समीप का भाग" को ठीक करें बाँधें। इसी से दायें बैल को अभिमन्त्रित कर जुए में लगाये, तदनन्तर कर्त्ता पुराने जोतों आदि को जोतते हुए "सीरायुञ्जन्ति" सूक्त के साथ इस ऋचा को भी बोले पाठ करे। जब पाठ पूरा हो ले तब हल वाहक को स्वामी हल सौंपे। यह कृषि कर्म प्रारम्भ में करे। वह तीन कूड़ी खींचे (हल चलाये) तीसरे के अन्त में अग्नि स्थापन करे। इसी सूक्त व ऋचा से इन्द्र देव के निमित्त होम करे। बैलों की पूजा करे अन्तिम कुड़ी (तीसरी) पर गन्ध, अक्षतादि चढ़ाकर हल को ले आये। यह सब नक्षत्र और चन्द्रमा शुद्धि कर करें। रवि, भौमवार को हों तो न करें। इन्हीं से पशुओं की पुष्टता हेतु पूर्वोक्त भांति से तैय्यार, लवण, गुग्गुल, शक्कर, दाना, चारा, पानी आदि में मिला अभिमन्त्रित कर खिला यें। ३।१७-८ "सीतावन्दा महे" से उपरोक्त ३ कुड़ियों को हल वाहक अनुमन्त्रित कर खिलाये। (कौ ३।३)

यह बोने योग्य भूमि में बीज बोने से पूर्व अनिवार्य रूप से करे। "अद्भुल शान्ति कर्म में" जब खेत में जोतते समय जुआ, हल, पनिहारी आदि फट जावे तब इन्हीं २ से शान्ति हेतु जल से छींटे दें। भूमि पूजन करे, बैलों की पूजा करे। स्वयं स्नान, पान (अभिमन्त्रित जल का) करे। (कौ १३।१४) यज्ञ वास्तु पूजन आदि में "इन्द्र, सीतां निगृह्णातु" (३।१७-४) से नवीन अग्नि स्थापन काल में (अग्नि यन्त्र) बनाये। "देवस्य त्वा सवितुः" (१९।५२) से समिधा दान करे। समिधा, नाव या विमान के काष्ठ की श्रेष्ठ होंगी (इसी कर्म में) उल्लेखन दक्षिण से उत्तर को करें रेखायें खीचें। ये ३-३ क्रमशः मध्य तथा वाह्य में खीचें। (कौ १४।१)

अग्नि चयन कर्म में प्रारम्भिक खेत जोतते, बोते समय अग्नि "सीरा युञ्जन्ति" से व्रह्मा (कर्त्ता) अनुमन्त्रित करे। "लाङ्गलं पवीरत्" (३।१७-३) से हल जोतने बोने से पूर्व हरसा व जुआ, कुशादि भी अनुमन्त्रित करे। "कृते योनौ" (३।१७-२) से जुते हुए बोने योग्य खेत में बीज बोते समय बोने वाले को अनुमन्त्रित करे। (वैता. ५।१) "अन्नं वैविराट" तै० ब्रा० ३।८।१०।४ "यदा अन्नं पच्यतेथ तत् सृण्योपचरन्ति" श. ब्रा. ७।२।२।५ ये सभी कर्म "यावत्तेऽभ" (१२।३३) "यस्यासदोहविर्धानम्" (३८ से ४०) तीन ऋचाओं से पुत्र धनादि प्राप्ति वेतु जप, होम, उपस्थान करे। "यस्यान्नम्" ऋ० ४१ से अन्न की अधिक उत्पत्ति हेतु पृथ्वी का उपस्थान करे।

निधिं बिभ्रती" (ऋचा ४४-४५) से मणि हिरण्थ आदि की बहुलता से प्राप्ति हेतु पृथ्वी की प्रार्थना, जप, उपस्थाव, होम करे। गृह ग्राम, नगर, क्षेत्र, राष्ट्र तथा भूमि की स्थिरता की रक्षा के लिये ४ पाषाण अभिमन्त्रित कर चारो सीमाओं में इस पूरे अनुवाक से अभिमन्त्रित कद गाढ़ें। पूजा कर दिग्पालों का बलिदान भी करें। इसी अनुवाक से यदि भूमि हिले, धसके, फटें, या शब्द करे आदि से उत्पन्न अरिष्ट की शांति के लिये उपस्थान, होम शुभ रहता है और भूमि अचल भी हो जाती है। जहाँ ज्वालामुखियों का भय है—वहाँ अनिवार्य रूप से इसे करें। भूमि प्राप्ति राज्यादि प्राप्ति हेतु भी इसी अनुवाक का जप, उपस्थान होम करें। कौशिक सूत्र।

ज्वाला मुखी क्या है? और कैसे? प्रमाण' ऋग्वेद में लगभग १०० ऋचा "वृत्रासुर दैत्य से इन्द्र के युद्ध की हैं। वायु पुराण प्रथम अध्याय में निर्दिष्ट" "इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत" २० वेद के सूक्ष्म अर्थ को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतिहास और पुराण स्फुटतर विस्तृत करते हैं। श्रीमद्भागवत ६ स्कन्ध के नवे अध्याय में वृत्र का विवरण श्लोक १८, १२, १३, १४, १५, १६, १७ आदि हैं।

ज्वालामुखी

ज्वालामुखीं के मुंह से अनेको प्रकार के वायु निकलते हैं। उनका मूल उद्रजन (ऑक्सीजन) वायु (हाइड्रोजन) माने जाते हैं। इन दोनों के उचित सपीडन (प्रेसर) से उत्पन्न उष्णता बढ़ती है तब वाष्प रूप बनता है। गन्धक और प्राङ्गार (कार्बन) महत्वपूर्ण बट जाते हैं—कभी कभी सल्फ्यूरेटेड, हॉईड्रोजन, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, कार्बन-डाइ-आक्साइड अमोनियम क्लोराइड आदि आदि वायु निकलते हैं। किसी किसी वायु में वाष्प और जल सोखने की अपार शक्ति होती है। (जी० डब्ल्यू० टिरेल—ग्रंथाकार के० व्होल्केनोज तथा माँढएटना)।

अनेक प्रकार की धूल निकलती है, भयकर घर्घर, गड़-गड़, कर्णकर्कश, शीष्कार, घनघोर गर्जना सुनी जाती है। पर्वत चलायमान होते हैं। उनसे नदी के पूर्व मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। पर्वत गिरकर मार्गो को रोकते हैं, सरोवरें बन जाती हैं। नदी प्रवाह वेग बढ़ जाते हैं। अवर्षण, अन्धकार, पर्वत कम्पन भूभाग उठ जाता है। आदि आदि उत्पात होते हैं।

ऋग्वेद में इन्द्र और वृत्रासुर की सैकड़ों ऋचाओं का यही भावार्थ है दानों के वृत्रनाम के पुत्र के सैकड़ों भ्राता थे जिनको वहां अहिः नाम से सम्बोधित किया है। उनमें ज्येष्ठ वृत्र हीथा। वृत्रासुर का पुर पाषाणमय था सैकड़ों श्रङ्गों के पुर थे। उसने अपने पुर में (गोः नाम किरणों) का निरोध किया। इन्द्र का प्रमुख अस्त्र वज्र है। जिसके निर्माता त्वष्टा हैं। त्वष्टा देवों के शिल्पी है। उनके विश्व रूप तथा वृत्र ये दो पुत्र हैं। त्वष्टा यज्ञ कुण्डाग्नि के अग्नि-जन्य, भूविवरस उत्पन्न हुआ। प्रतिदिन बढ़ता गया और दग्ध हर्वताकार हो गया वर्ण लाल, पीत, नारङ्ग आदि था। मध्याह्न सूर्य जैसा प्रखर तेज था जो नृत्य में अट्टाहास कर मही को चलायमान बना देता था। विशाल मुख की जिह्वा से आकाश को पी खले, ऐसा प्रतीत होता था, ज्वाला से नक्षत्र को ढांक देता था। दंष्ट्रा से त्रैलोकी को ग्रस सकता था आदि आदि ये ही स्वरूप ज्वालामुखी के भी हैं। "गौ निरोधन" गो धेनु किरण जल ये तीन अर्थ हैं। ये सभी ज्वालामुखी जैसे **वृत्रासुर** के भी हैं। कालान्तर से नाम भेद मात्र है।

वेद-पुराण-भागवत में वर्णित वृत्रासुर कथा को आधुनिक उपरोक्त ग्रन्थकारों के निर्दिष्ट लक्षणों से तुलनात्मक एक ही रूप हैं। ये सभी उत्पात उपर्युक्त भूमिसूक्त से शान्त करने का सूत्रकारों का निर्देश है।

१-६३ अथर्वा। भूमिः। त्रिष्टुप्; २ भुरिक्; ४-६,१०,३८ त्र्यवसानाषट्पदा जगती; ७ प्रस्तारपङ्क्तिः, ८-११ त्र्यवः षट्० विराडष्टिः, ६ परानुष्टुप्, १२-१३,१५ पञ्चपदाशक्वरी (१२-१३ त्र्यव०); १४ महावृहतीः, १६,२१ एकाव० साम्नीत्रिष्टुप्, १८ त्र्यव० षट्० त्रिष्टुबनुष्टुबार्भातिशक्वरी. १६-२० पुरोबृहती (२० विराट्) २० त्र्यव० षट्० विराडतिजगती; २३ पञ्चपदा विराडतिजगती; २४ पञ्च० अनुष्टुबार्षा जगती; २५ त्र्सव० सप्त० उष्णिगनुष्टुब्गर्भाशक्वरी; २६-२८, ३३ ३५, ३६-४१, ५०, ५३-५४, ५६, ५६, ६३ अनुष्टुप् (५३ पुरोबार्हता); ३० विराड्गायत्री, ३२ पुरस्ताज्ज्योतिः, ३४ त्र्मव०षट्० त्रिष्टु०वृहतीगर्भातिजगती, ३६ विपरीत पादलक्ष्मा पङ्क्ति, ३७ त्र्यव० पञ्च० शक्वरी; ४१ षट्० ककुम्मतीशक्वरी; ४२ स्वराडनुष्टुप्, ४३ विराडास्तारपङ्क्तिः, ४४-४५, ४६ जगती, ४६ षट० प० अनुष्टुब्गर्भा परा शक्वरी; ४७ षट्प० उष्णिगनुष्टुब्गर्भापरातिशक्वरी; ४८ पुरोडनुष्टुप्; ५१ त्र्यव० षट्० अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मतीशक्वरी; ५२ पञ्च० अनुष्टुब्गर्भापरातिजगती; ५७ पुरातिजागता जगती; ५८ पुरस्ताद्वृहती, ६१ पुरोबार्हता, ६२ पराविराट्। उपर्युक्त कर्मसु तथा बृहच्छान्ति, स्वस्त्ययनगण अभयगण कर्मणि जपे०, उपस्थाने, अर्चने, होमे च विनियोगः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१
असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२
यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३
यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजद् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४
यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५
विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६
यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७
यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योऽमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८
यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९
यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ॥१०
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः
गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥११

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यत् ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वऽः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२
यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ॥१३
यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१४
त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५
ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६
विश्वस्वंऽमातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७
महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे । महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८
अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु । अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥१९
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् । अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२०
अग्निवासाः पृथिव्यऽसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२१
भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् । भूम्यां मनुष्याऽजीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२
यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२३
यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५
शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता । तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६
यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा । पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥२७
उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥२८
विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९
शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥३०
यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१
मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२
यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना । तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३
यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् । उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४
यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु । मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५
ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६
याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् । शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥३७
यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचः । सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे । भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैऽलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः । भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥४६

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥४८

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५०

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥५२
द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥५३
अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् । अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४
अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५
ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् । ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६
अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७
यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥५८
शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती । भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९
यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६०
त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१
उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥६२
भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् । संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥६३

मातृभूमि वन्दना

कां. १२ सू. १ "सत्यंवृहत्" यह अथर्ववेदीय सूक्त "मातृभूमि" के गौरव का चित्रण कर रहा है । 'माताभूपिः पुत्रोऽह पृथिव्याः ' [कां. १२।१-१२] भूमि मेरी माता है और मैं मातृभूमि का पुत्र हूँ । मातृभूमि के भक्तों के गौरव का चित्रण (ऋ० वे० ५।५९।६) में इस प्रकार है । "ते अज्येष्ठा अकनिष्ठा सउद्भिदोऽमध्यमासो महसाविवा वृधुः । सुजाता सो जनुषा पृश्निमातरो; दिवोमर्त्या आनोअच्छाजिगातन ॥" अज्येष्ठासो अकनिष्ठासएते, सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ॥ [ऋ० वे० ५।६०।५]

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मातृभूमि को माता मानने वाले सब मनुष्य सच्चे कुलीन हैं। उनमें कोई भी ज्येष्ठ, कनिष्ठ, मध्यम नहीं है, वे सभी समान हैं। वे अपनी मातृभूमि पर आई आपत्तियों का भेदन कर, ऊपर उठाने वाले, राष्ट्रगौरव; धन, सम्पदा बढ़ाने के लिए संधीय, सत्प्रयास करते हैं। वैदिक मनीषियों के प्रगल्भ उद्घोष है कि **"मातृभूमि, मातृसंस्कृति और मातृभाषा"**, ये तीन सुख प्रदाता देवता हैं। "इडा सरस्वती, महीतिस्र दिवीर्मयोभुवः बर्हिसीदन्व-स्त्रिधः"। (ऋ० वे० १।१३।९) यहां अथर्व वेद में भी मातृभूमि के महत्व और श्रेष्ठत्व का सार्वभौम वर्णन है। यह मातृभूमि का वैदिक राष्ट्रगीत है। इस पर मनीषि वर्ग अपने राष्ट्र और राष्ट्रीयता पर गौरवान्वित हो जावे, तो कोई बड़ा आश्चर्य नहीं, होगा, यह हमारे पूर्वजों की अप्रतिमा, अद्वितीय, अमोघ, पारम्परिक थाती हैं। जो अज्ञानी विमूढ़ इसका अनादर, दुरुपयोग करते हैं, वे राष्ट्र द्रोही, जघन्य हैं। राष्ट्र पर अपनी सत्ता अनवरत बनाये रखने के लिए निम्न गुणों का होना अनिवार्य सापेक्ष है। सत्यप्रियता, उद्योग पराणयता, महत्त्वाकांक्षा और उसके साथ कार्यारम्भ और उसकी सफलता का उत्साह, वस्तुस्थिति का श्रेष्ठज्ञान, धैर्य, उत्साह तेज, धर्मनिष्ठा, इन्द्रिय निग्रह, श्रेष्ठ सद्ग्रन्थावलोकन, शान्ति, अचाञ्चल्यता, परोपकार, ईश-प्रेम, संकल्पित कार्य में दक्षता नियम, अनुशासन, परस्पर प्रेम, सहयोग, संग्रह, दीन-दुखियों से नेह, स्वार्थ, त्याग, निष्प्रहता।

मन्त्र १:—मातृभूमि के प्रति अटल निष्ठा, यथार्थज्ञान, क्षात्रतेज, धर्मानुष्ठान, प्रत्येककार्य करने की कुशलता ब्रह्मज्ञान, यज्ञ, भूमि (राष्ट्र) का पालन पोषण और रक्षण करते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी पदार्थों की पालन करने वाली ऐसी "हमारी मातृभूमि, हमारे लिए बृहत्तर बिस्तृत स्थान प्रदान करे।

मन्त्र २:—जिस हमारी मातृभूमि के मनस्वियों के मध्य में वरीयता, कनीनता रहने पर भी पारस्परिक समता, ऐक्य, मैत्री भाव हैं। जो हमारी मातृभूमि नाना व्याधियों के निराकरण और अनेक गुणों से सम्पन्न वनस्पतियां धारण की हुए हैं, वह मातृभूमि हमारी कीर्ति को विस्तृत करे।

मन्त्र ३:—हमारी जिस मातृभूमि की गोदी में महासागर, नद, नदी, झरने, झील, तलैया व पंक्तियों के समूह है, जहाँ विविध अन्न, फल, शाक औषधि, वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं। जिसमें प्राणवान जीव चलते फिरते हैं। कृषक-कुशल कारीगर, शिल्पकार, उद्योगशील वैज्ञानिकों का निवास है। वह हमारी मातृभूमि हमें समस्त उपभोग्य पदार्थ एवं ऐश्वर्य प्रदान करे।

मन्त्र ४:—हमारी जिस मातृभूमि में उद्योग परायण, विना शिल्पकर्मी सश्रम साध्य कृषकजन हुए हैं, जिसमें चार दिशायें, उपदिशायें, गेहूं, चावलादि उगती हैं जो सभी प्रकार के जीवधारियों, चलने फिरने वालों का भरण पोषण करती हैं, वह मातृभूमि, उन्हें हमारी गौओं को अन्नादि प्रदायिनी है।

मन्त्र ५—हमारी जिस मातृभूमि में बल-वीर्य-बुद्धि-ऐश्वर्य सम्पन्न पूर्वकालीन पूर्वज विक्रम, पराक्रमयुक्त कर्त्तव्य विधिवत करते चले आये हैं। जिसमें देवगण, असुरों को पराजित करते आये हैं, जो गौ, अश्वादि पशु-पक्षियों के विशेष सुख का स्थान हैं, वह हमारी मातृभूमि हमको तेज, वीर्य, शौर्य, विज्ञान प्रदान करे।

६—भरण पोषणशील, स्वर्ण-रजत-हीरा-पन्नादि अनेक रत्नों की जननी, सभी वस्तु मात्र की आधारभूता, हिरण्यादि की खानें जिसके वक्षस्थल में हैं, ऐसी सभी स्थावर, जंगम-जीव पदार्थों को बसाने वाली, विविध भांति गुण-स्वभाव के जनसमूह से पूर्ण राष्ट्र को धारण करने वाली मातृभूमि, ज्ञानियों, वैज्ञानिकों, बलिष्ठ रणबांकुरों तथा हमारे लिए विविध धन धारण करने वाली हो।

७—निद्रा, तन्द्रा, आलस्यरहित, मनीषि, वीर, कुशलजन, विविध भांति के पदार्थों को देने वाली और हमारे लिए मधुरप्रिय, कल्याणप्रद पदार्थों के दोहन करने वाली बड़ी विस्तृत जिस मातृभूमि की, बिना प्रमाद रक्षा करते हैं, वह राष्ट्रमाता; हमको शूरता, वीरता, सान एवं ऐश्वर्य से परिपूर्ण करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८—जो भूमि पुराकाल में समुद्र में, जल के भीतर थी जिस भूमि का अन्तःभाग, अमर स्थान के सदृश, सत्य संकल्प के बल से व्याप्त है, जो भूमि महत् आकाश में अधर है, जिसकी सेवा तपोधन मनीषिगण विशिष्ट अवसरों पर; गुप्त प्रयत्नों से, तथा दक्षता से करते हैं। वह हमारी मातृभूमि, हमारे उत्तमराष्ट्र में तेजस्विता, विद्वता शूरता, स्थैर्यता, शक्ति सत्तादि स्थापित करे।

९—जिस मातृभूमि में समदृष्टि वाले, विचरणशील परिव्राजक, सन्यासी जल की भांति दिन-रात सावधान रहकर, परिभ्रमण करते हैं। और जो विविध भांति के भोग्य, पेय दूध-घृतादि सतत प्रदान करती है, वह हमारी मातृ-भूमि, हमारे तेज, प्रताप, बल, वीर्य आदि बढ़ाये।

१०—जिस भूमि की [इसी अध्याय में पीछे उल्लिखित]अश्विगण, महाभती और शूरहन्ता वीरों ने नापा; जिसमें विष्णु ने विविध भांति के पराक्रम दिखाये; शत्रुहन्ता इन्द्र, शक्तिस्वामी ने अपने लिए शत्रुरहित किया, वह मातृ-वात्सल्य रसापूर्ण, मातृभूमि, जैसे मातापुत्र को दूध पिलाती है, उसी भांति हम सब पुत्रों को भोग्य पदार्थों को प्रदान करे।

११—हे मातृभूमि ! तेरे वर्फ से ढके पर्वत और वन, अटवी सुखदायी हों, उनमें शत्रु कदापि न रहे। तू शत्रुरहित हो· सदैव सभी के पोषक उर्वरा, उत्तम वृक्षादि से परिपूर्ण, स्थिर, वीरों से रक्षित हो। इस मातृभूमि का अजेय, क्षतविक्षत, आघातादि रहित का मैं अधिष्ठाता (नायक) बनूँ।

१२—हे मातृभूमि ! तेरे भीतर और बाहर ऊपर जो भी पदार्थ हैं, उन सबकी और तेरी शत्रुओं के हाथ से रक्षा करने हेतु, जो सुविचारवान् संधीभूत हुए हैं, उनके समाज में हमको स्थापित करें और हमारी रक्षा करे। हम तेरे पुत्र हैं। तू हमारी माता है, हम मातृभूमि के पुत्र हैं। नरक से या दुःख से, जो त्राण या रक्षा करे वह पुत्र है। अमृत-जल वर्षा ने वाले मेघ हमारे पिता, निश्चय रूप से हमारा पालन करे।

१३—जो मातृभूमि में सभी ओर यज्ञिय वेदियाँ रची गई हैं, जिसमें विश्वकर्मा जी यज्ञों का सृजन करते रहते हैं, जिसमें भद्र पुरुषों के सन्मान, सत्सङ्ग, परोपकारी बलदायी उन्नत कर्म होते रहते हैं, जिस भूमि में पुराकाल में बड़े विस्तीर्ण, वीर्यप्रद, आहुतियों के साथ यज्ञीय यूप खड़े किये जाते रहे हैं, जहाँ कल्याणप्रद, पथ-प्रदर्शक तोरण धारण किये जाते रहे हैं, वह मातृभूमि हमारे द्वारा उन्नति शिखर पर पहुँचे। ये जाने वाली मति हम लोगों की प्रवृद्धि करे।

हे हमारी मातृभूमि ! जो हमसे शब्दों द्वारा द्वेष करते हैं, जो सेना से हम पर चढ़ाई कर हमें जीतना चाहते हैं, जो हमारा नाश करने के लिये उद्यत हैं, जो हमें परतन्त्र और गुलाम बनाना चाहते हैं, जो मनसे हमारा अनिष्ट सोचते रहते हैं, हमारे उन सब शत्रुओं का पूर्णरूप से सत्यानाश कर।

हे हमारी मातृभूमि ! हम लोग तुझसे उत्पन्न होकर तेरे ही आधार से अपने सम्पूर्ण व्यवहार करते हैं; सम्पूर्ण पशु. पक्षी, मनुष्य और अन्य सम्पूर्ण प्राणिमात्र को तू आधार देकर पालती पोषती है; जिस हमको जीवन के लिये यह देदीप्यमान् सूर्य अपनी अमृतमय किरणो को चारों ओर फैलाता हैं ; वे हम पांच प्रकार के मनुष्य विद्वान्, शूरवीर, व्यापारी, कारीगर और सेवावृत्ति वाले मनुष्य तेरी सेवा करने की इच्छा करते हैं।

हे हमारी मातृभूमि ! हम सब लोग जो आपस में बातचीत करें; वह सत्य, हितकारी, मधुर और परस्पर प्रेमयुक्त हो; झूठ, अहितकारी तथा कटु न हो; हम सबलोगों को एकत्र होकर आपस में प्रेम से मीठे बचन बोलने की शक्ति दें। १६

जिसमें सब तरह की उत्तम औषधियां और वनस्पत्तियां उपजती हैं, जो बड़ी लम्बी चौड़ी और स्थिर है, विद्या, शूरता, सत्य, स्नेह आदि सदाचार और सद्गुणयुक्त पुरुष जिसकी रक्षा करते हैं; जो कल्याणमयी और सब प्रकार के सुखसाधन हमें देती हैं; उस मातृभूमि की हम सदा सेवा करें। १७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे हमारी मातृभूमि ! तू हम सब को एकत्र रहने का स्थान देती है; हम सब लोगों के रहने के लिये तेरा विस्तार पर्याप्त है; तू आकाश में हिलते डुलते हुए गति से जाती है वह गति बहुत ही तेज है; ज्ञानी, शूर, वीर, उत्साही और ऐश्वर्यशाली, शत्रु का नाश करनेवाले वीर पुरुष ही चौकसी के साथ तेरी रक्षा कर सकते हैं; अनाड़ी और भीरु नहीं कर सकते; तू स्वयं सोने के समान तेजस्वी है; उसी प्रकार हमें भी तेजस्वी कर और ऐसा कर कि हममें से कोई भी परस्पर द्वेष न करे, सब एक मत से व्यवहार करें । १८

सब पदार्थ अग्निमय हैं । उस अग्नि के कारण भूमि, औषधि, वनस्पति, जल (मेघादिक) पत्थर, मनुष्य, गाय, घोड़े इत्यादि प्राणियों के शरीर जैसे तेजस्वी दीखते हैं, उसी प्रकार हम मनुष्य जो उन सब पदार्थो के भोक्ता हैं, अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर और वीर्यरूपी अग्नि को शरीर में प्रज्वलित कर सबसे अधिक तेजस्वी हों । १९

आकाश में चारों ओर अपना प्रकाश फैलानेवाली सूर्य नाम की एक बड़ी भारी अग्नि है । उत्पन्न हुए द्रव्य को हवन द्वारा चारों ओर फैलाने के लिये सदा सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिये मनुष्य जिस अग्नि में घृत आदि से होम करते हैं । उसी अग्नि में हम भी दिन रात हवन करते हैं । २०

जिस हमारी मातृभूमि के चारों ओर अग्नि व्याप्त है और जिस भूमि का वर्ण काला है, वह भूमि हमारे ज्ञान कीर्ति और यश को बढ़ाने वाली हो । २१

जिस हमारी भूमिमें मनुष्य यज्ञ करते हैं और उसमें उत्तम-उत्तम पदार्थों का हवन करके देवर्षियों को तृप्तकर वायु और जल आदि को शुद्ध करते हैं, जिस भूमि के यज्ञों के कारण उत्तम वृष्टि होकर विपुल अन्न उपजता है, जिसको खाकर मनुष्य आनन्द से निवास करते हैं वह मातृभूमि हमको उत्तम प्राण और पूर्ण आयुष्य देनेवाली हो । २२

हे मातृभूमि ! जो तुझमें उत्तम सुगन्धि है, वह जो औषधि और वनस्पतियों में प्रगट होती है, उसी सुगन्धि को सूर्य अपनी किरणों से तेज करते हैं। तू हमें उस उत्तम सुगन्धि से विभूषितकर और हमारे बीच कोई आपस में किसी से भी वैर न करें, सब लोग परस्पर मैत्रीभाव से रहें । २३

हे मातृभूमि ! जो सुगन्धि तुम्हारे कमलों में है, सूर्योदय के समय जिसे वायु ले जाती है, उस सुगन्धि से हमें सुगन्धित करो । हममें से कोई किसी से द्वेष न करे । हममें सबका एक दूसरे के साथ स्नेह बढ़े और सब समाज के लिए हितकारी हों । २४

हे मातृभूमि ! वीर पुरुषों तथा साधारण स्त्री, पुरुषों में, हाथी, घोड़े, चौपाये आदि में, ब्रह्मचारियों, ब्रह्मचारिणी कन्याओं में जो तेज है, वह हममें भी बचपन से ही हो । हममें कोई भी किसी से द्रोह न करे । २५

जिस हमारी मातृभूमि के ऊपर शिला, पत्थर और धूल है, और जिसके भीतर सुवर्णरत्नादिक बहुतसे अमूल्य पदार्थ हैं, उस मातृभूमि को हम नमस्कार करते हैं । जब तक ज्ञान, शौर्य आदि गुण हममें बने रहते हैं तभी तक हमारी मातृभूमि की रक्षा होती रहे । २६

जिस हमारी मातृभूमि में वृक्ष और वनस्पति बहुतायत से हैं और सब स्थिर होकर रहते हैं, जो अपने अनेक ऊपर कहे हुये गुणों से भरी पूरी है और सबका आधार है, हमसे अच्छी तरह सुरक्षित रखी गई उस पृथ्वी को हम प्रेम सहित स्तुति गाते हैं । २७

हम किसी का दुःख का कारण न बनें । २८

जिसके ऊपर की सतह की तलाश करने से अनेक लाभ हो सकते हैं, जिसे अनन्त शक्तिमान् परमेश्वर ने अपनी शक्ति से धारण किया है, बल बढ़ाने वाले घृत और पुष्टिकारक अनेक भोजन के पदार्थ अन्न आदि को जो उत्पन्न

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करती है; लम्बी चौड़ी और प्राणिमात्र के रहने के योग्य है, उस भूमि से हम प्रार्थना करते हैं कि हे मातृभूमि ! तुम हमें सहारा दो। २६

हे हमारी मातृभूमि ! तुम चारों ओर से हमारी शुद्धि के लिये निर्मल जल बहाती हो। जो कोई हमारा अप्रिय करने की इच्छा करे अथवा अनिष्ट करे, उसके साथ हम भी वैसा ही वर्ताव करें और उत्कृष्ट उद्योग करके हम अपनी हर प्रकार से उन्नति करें। ३०

हे हमारी मातृभूमि ! तुम्हारी जो-जो दिशाएँ और उपदिशाएँ हैं, उनमें सब मनुष्य तुम्हारे हित करनेवाले होवें, इस प्रकार तेरे हित के लिए यत्न करते हुए हम भी उन सबका कल्याण करें, हम जहां कहीं रहें अपनी योग्यता बढ़ाते रहें, सुख से रहें और हमारा अधःपात कभी न हो। ३१

हे हमारी मातृभूमि ! हमें किसी प्रकार से हानि न पहुँचे, सब तरह से हमारी उन्नति ही हो। हमारी चालों को हमारे शत्रु न समझ सकें और हमारे नेता लोग सदा हमारे शत्रुओं का नाश करने का प्रयत्न करते रहें। ३२

हे मातृभूमि ! जबतक हम प्रकाश और ज्ञान की सहायता से तेरी बाहरी भीतरी स्थिति सूक्ष्म दृष्टि से देखते रहें, तबतक हमारी बाहरी इन्द्रियः और भीतरी बुद्धि अपना अपना काम करने में समर्थ रहें। ३३

हे हमारी मातृभूमि ! जिस समय हम तेरे भक्त बिश्राम करने के लिये दाएं, बाएं अथवा धीवे तेरे ऊपर सोवें उस समय तुम हमें आश्रय दो, जिससे कि हम बेखटके सोवें और हमारा कोई घात न कर सके। ३४

हे हमारी मातृभूमि ! जहाँ तुम ऊंची नीची हो उसे हम सम करके जो हम बोयें वह जल्द उगे और बढ़े। तुम्हारे ऊंचा नीचा रहने से हमारे अधःपात और गिर जाने की संभावना हैं, सो तुम्हारे लिए यत्न करते हुए मर्मस्थान में चोट या क्षति न पहुंचे और तुम्हारी उपलब्धि के लिये जो अपना तन, मन अर्पित किये हुए हैं वे कभी दुखित न हों, हम सदा प्रसन्नचित्त रहें। ३५

हे मातृभूमि ! छः ऋतु होने के उत्तम गुण तुम्हारे में ही है और किसी देश की भूमि में छः ऋतु नहीं होती, सौ वर्ष की ये छः ऋतुयें अपने अपने समय में उपजे फल-फूल आदि से हमें सुख देती रहें, उन उन ऋतुओं के रात और दिन सब भांति हमें सुहावने हों। ३६

जो हमारी भूमि ऐसी है कि इसे जितना ही खोजते रहो इसमें लाभदायक सार वस्तु मिलती ही रहें, हिलते, डोलते, चलते मेघों में बिजली के आकार में अग्नि जिसमें है वह हमारी मातृभूमि सज्जनों को सुख देने वाले दुष्टों का ज्ञानी वीरों के हित के लिये नाश करती है, वह हमारी मातृभूमि शत्रुनाशक बीरों को ही अपने में धारण करती है। ३७

जहां वेद के जाननेवाले ब्राह्मणों ने बार-बार यज्ञ किया है, इससे सिद्ध हुआ कि यह हमारी मातृभूमि पवित्र यज्ञभूमि है। ३८

हमारी मातृभूमि ऐसी है जिसमें अतीन्द्रियार्थदर्शी, सज्जनों की रक्षा के लिये बड़े-बड़े काम करनेवाले, धर्मा-नुष्ठान और ज्ञानमार्ग से सुशोभित सत्पुरुष हुए है, उस मातृभूमि की हम स्तुति करते हैं। ३९

जितने सुख की हम इच्छा करें उतना हमें मातृभूमि दे। ऐश्वर्य और धनसम्पन्न लोग अपने ऐश्वर्य और धन से वीरों की सहायता करें और बीर पुरुष धुरीण होकर धैर्य के साथ शत्रुओं का नाश करने के लिए आगे बढ़ें। ४०

जिस भूमि में आनन्द के बाजे बज रहे हैं, जहां लोग प्रसन्नता से नाचते हैं, गाते हैं और बीर लोग वीरता के उत्साह में भरे अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए युद्ध करते हैं, घोड़े जहां हिनहिनाते हैं, नगाड़े जहां बजते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमारे शत्रुओं का नाश करके हमें शत्रु रहित करे। ४१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जहाँ चावल, गेहूं, जौ आदि तथा और और खाने के पदार्थ बहुत होते हैं, जहाँ विद्वान, शूर, व्यापारी, कारीगर तथा सेवकलोग यह पांच प्रकार के मनुष्य आनन्द से वसते हैं, जिस भूमि में नियमित समय में वृष्टि होकर सम्पूर्ण धान्यादिक उत्पन्न होने से लोगों का योग्य पालन होता है, उस मातृभूमि को नमस्कार है। ४२

जिस मातृभूमि में देवों द्वारा बसाये अनेक नगर हैं,जिसके प्रत्येक प्रान्त में मनुष्य अनेक प्रकार के अच्छे-अच्छे उद्योगों में सदैव लगे रहते हैं, अर्थात् जो धनी वसी है, कोई भाग जिसका सूना और उजाड़ नहीं है, जहाँ सब तरह के पदार्थ पैदा होते हैं, उस भूमि को प्रजा का पालक पूर्ण करे, अर्थात् वहाँ विद्या का अधिक प्रचार करे और वह भूमि प्राकृतिक पदार्थों तथा सौन्दर्य से सुसम्पन्न रहे। ४३

जिसमें रत्न और सुवर्ण आदि की बहुत सी खानें है और जो हमें उत्तम धन,रत्न आदि देती है, वह मातृभूमि सदा हमें धन की देने वाली हो। ४४

अनेक प्रकार की उन्नति के धर्मों को पालने वाले, विविध भाषा बोलने वाले लोगों को आश्रय देने वाली हमारी अविनाशी मातृभूमि गाय के समान हजारों पदार्थों को देने वाली हो तथा धन को देने वाली हो। ४५

हे मातृभूमि ! सांप, बिच्छू या ऐसे जीव जिनके काटने से दाह पैदा होता है, या जो शौष उत्पन्न करते हैं, वे भयंकर विषैले जीव कभी हमें स्पर्श भी न करें, जो पदार्थ हमारे लिये हितकारी और कल्याण करने वाले हों, वे सदा हमारे पास आकर हमें सुख देवें - ४६

हे हमारी मातृभूमि ! जिस पर मनुष्य चलते फिरते है जो हाथ और छकड़ों के चलने योग्य है, जिसपर भले और बुरे दोनों तरह के लोग चलते हैं, अन्न आदि पदार्थ जिस पर ढोये जाते हैं, वे मार्ग शत्रु और चोर रहित अर्थात् निर्भय और सुरक्षित कर, हम विजयी हों। जो हमारे लिये भला हो उससे हमें सुखी कर। ४७

गुरु पदार्थों को अपनी ओर खींचने तथा धारण करने की शक्ति जिसमें है, भले और बुरे दोनों को जो धारण किये हैं, दोनों के भरण को जो सह लेती है। अच्छा जल बरसाने वाले मेघ से युक्त सूर्य जिसकी अपवित्रता को अपनी किरणों से हटा देता है, ऐसी हमारी मातृभूमि विशेष प्रकार से सूर्य के चारों ओर घूमती है। ४८

हे हमारी मातृभूमि ! जो तेरे हिंस्र जीव, शिकारी जानवर, चौपाये, भेड़िये, पागल कुत्ते, भालू इत्यादि हैं; उन सबको हमसे दूर रख। ४९

हे हमारी मातृभूमि ! जो हिंसक, आलसी, निर्धन, पर धन हरनेवाले, मांसाहारी, अनात्मवादी नास्तिक और आततायी हैं, उनको दूर कर। ५०

जिस भूमि में सर्वदा आकाश में हंस आदि पखेरू सदा आनन्द से उड़ते हैं, जहां धूलि को उड़ाते हुए, पेड़ों को उखाड़ते हुए वायु बेरोकटोक सपाटे से बहता है और जंगल की अग्नि जहाँ जोरों से भभकती है, वह हमारी प्राणप्रिय मातृभूमि है। ५१

जिस भूमि में ठीक प्रमाण से रात और दिन होते हैं और उनकी सदा एक सी व्यवस्था रहती है, वह हमारी विस्तृत मातृभूमि हमें हितकर स्थानों में सुख से रखे। ५२

स्थावर व जगम, चेतन व अचेतन सब पदार्थों की सहायता से हमारी बुद्धि बढ़े और कीर्तिरूप से चारों ओर व्यापक हो। ५३

मैं अपनी मातृभूमि के लिये तथा उसके दुख निवारण करने के लिये हर तरह से सहन करने को तयार हूं। और प्रयत्न से सब शत्रुओं को परास्त करूंगा। एक भी शत्रु को रहने नहीं दूंगा। ५४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे मातृभूमि ! पहले के लोग जब तुम्हारी स्तुति करते थे, उस समय तुम्हारी कीर्ति चारों दिशाओं में फैल जाती थी, वही तुम्हारा यश अब भी वैसा ही फैले। ५५

हे हमारी मातृभूमि ! तुम्हारे में जहां जहां नगर, बन, सभा, परिषद्, सग्राम क्रियाओं में मनुष्य एकत्र हों, वहां वहां हम तुम्हारी प्रशंसा करें। अर्थात् कभी तुम्हारे अहित की बात न कहें। ५६

युद्ध में विजयी होकर जहां पर सेना के घोड़ों के चलने से धूलि उडकर मनुष्यों के चित्तों को प्रसन्न करती हैं, अथवा जब किसी विशेष कारण के लिये मनुष्य अपना संघ कर एकत्रित होते हैं, तब उस संघ से जो फलस्वरूप में एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है, वह शक्ति सब प्रकार सबको आनन्द देने वाली, सब देश का संरक्षण करनेवाली और औषध आदि भक्ष्य पदार्थ देनेवाली होती हैं। इसलिये उसे मातृभूमि के सम्पूर्ण भक्त सदैव ध्यान में रक्खें। ५७

हम जो कुछ भी भाषण करें वह सब हमारी मातृभूमि के लिये हितकारी हो, जो कुछ हम आँखों से देखें वह भी मातृभूमि के लिये ही सहायक हो, इसी प्रकार हमारे सब काम मातृभूमि ही के अर्पण हों, हम तेजस्वी और बुद्धिमान हों, जो हमारे शत्रु हमारी मातृभूमि का दोहन करें उनका हम नाश करें। ५८

शान्ति, सुख, अन्न, पानी आदि की देनेवाली हमारी मातृभूमि हमें सब भोगों के पदार्थ और ऐश्वर्य देनेवाली हो, इस तरह हमारी रक्षा करती रहे। ५९

जहाँ सब तरह के उद्योग करने वाले कुशल पुरुष मातृभूमि की सेवा करने के लिये कटिबद्ध होते हैं, वहाँ मातृभूमि के गुप्तस्थान में रक्खा हुआ तथा परसा हुआ थाल (जो केवल भक्तों ही के लिए है) आकर उसके सामने प्रकट होता है। अर्थात् उनके उपभोग के सारे पदार्थ उन्हें सहज ही मिल सकते हैं। ६०

हे हमारी मातृभूमि ! तू हम सबको सुख देने वाली है, इच्छित पदार्थों को देनेवाली है, इसलिये जो तेरे में कमी हो उसे परमेश्वर पूरा करे। ६१

हे हमारी प्राणेश्वरी मातृभूमि ! जो हम लोग तुझमें उत्पन्न हुए हैं वे निरोग, दृढाङ्ग, दीर्घायु, बुद्धिमान्, जागृति संपन्न रहें और मातृभूमि के हित के लिये अपने निजके स्वार्थ की बलि देने में उद्यत रहें, सब भांति तेरा हित करने में प्राणप्रण से तत्पर रहें। ६२

हे मातृभूमि ! मुझे बुद्धिमान् कर और तेरे विषय में प्रतिदिन चिन्ता करनेवाले सूक्ष्म विचारी और दूरदर्शी मनुष्यों को तथा मुझे अपनी भूमिगत सम्पत्ति प्राप्त करने वाली हो। ६३

॥ इति श्री वृहच्छान्तिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

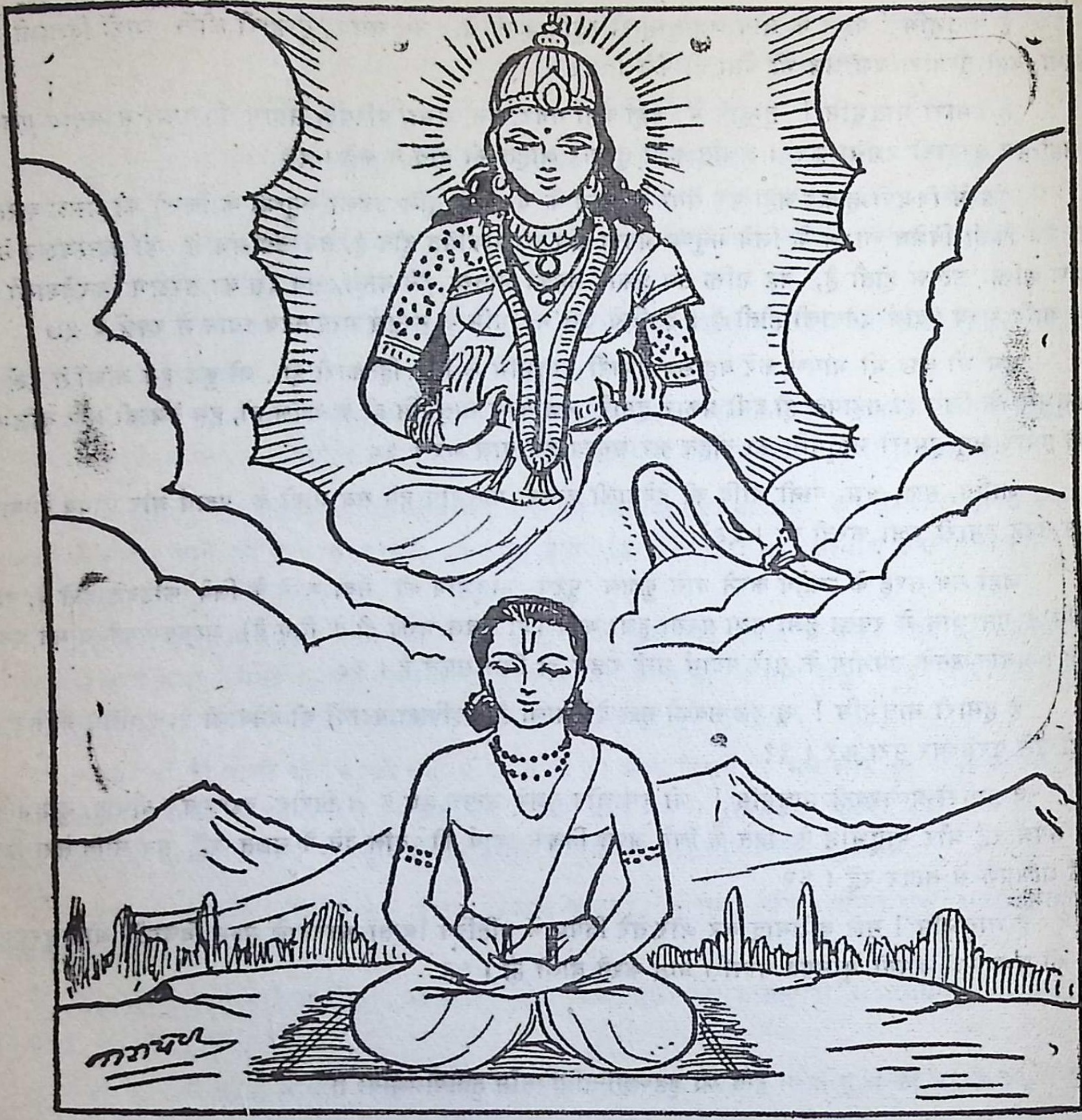

ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ।

ॐ चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ।

ॐ महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥

स्थिर सद्बुद्धि से किये जाने वाले यज्ञों से; मां सरस्वती शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक पवित्रता विद्या, अन्न, बल के साथ प्रजा-प्रदान करती हैं। सत्य कर्मों की प्रेरक, मेधादात्री, सरस्वती ही यज्ञों को धारण करती हैं वे ही सरस्वतीदेवी, अनन्तसंसारसागरतारक; केतु "ध्वज रूप" पुत्र के प्रकाश के हेतु; सभी प्रकार अपनी; सद्बुद्धि की कृपा करती हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ प्राजापत्येष्टि (पुत्रेष्टि) विधान

चतुर्थो अध्याय

अथ बन्ध्या दोष निवारण विधि पूर्व में सर्व साधारण-पूजन, पुण्याह बाचन, नान्दीश्राद्ध तथा होम विधि का उल्लेख किया। अब क्रमशः कर्मज-भव-व्याधि-निराकरण विधि का उल्लेख किया जाता है। वैसे विधान में किस २ सूक्त व ऋचा से क्या२ कर्म किस प्रकार किया जायेगा. क्या फल प्राप्त होगा विशेष रूपसे दिया गया है, भली भांति पढ़ें, मनन कर धैर्य व प्रभु, गुरु चरणों का ध्यान धर निसङ्कोच कर्मक्षेत्र में आयें। तथापि यहाँ वन्ध्या-दोष निवारण विधि विशेष उल्लेखनीय है। प्रायः सभी मन्त्र व सूक्त आगे दिये है, यहाँ उनसे, किससे क्या करें दिया है। सर्वप्रथम वन्ध्या होने का कारण, दी गई विधि से निश्चय करें। कर्म की ११ दिन की व्रत-दीक्षा लें, अपामार्ग (ओंगा) की दांतुन करें। सर्प की बामी की या शूकर क्षेत्र अथवा मृगादि की क्रीडा-भूमि जंगल की क्षेत्रमृत्तिका या जगली सूकर की खोदी मिट्टी का नाभि से नीचे वाम हस्त से अधोभाग में लेप करे। और अभिमन्त्रित घट के जल से शिर से स्नान करें। स्नान में साबुन न लगायें, देह न मलें, तौलिया से न पोंछें। नित्य पूजा, सूर्य अर्घ्य आदि देने के उपरान्त सौभाग्य लक्षणों से चिह्नित यज्ञ मण्डल में आ, आचार्य, ऋत्विज आदि विप्र, गुरु पितृ-माता-सास-स्वसुर पति को नमस्कार कर सस्वामी पूजनादि सम्पन्न करें पूजन प्रधान देवता के उपरान्त ५ अर्जुन या ढाक के पत्तों को अ.कां. २ सू.४ से तथा सीश (सेमल) की लकड़ी को कां. २।५ से अभिमन्त्रित करें। ढाक के पत्तों में शान्ति औषधियों का चूर्ण रख पोटली बना उनके शिर पर रखवायें। एक अर्जुन या ढाक के पत्ते का आसन बनायें। उस पर अभिमन्त्रित सेमल की लकड़ी को पटली की भांति रखकर उसी पर दोषी स्त्री या पुरुष जो भी हों; को बिठाये और उनको कुशमुष्टि से; अभिमन्त्रित घट के जल से; शिर को अवसेचन (छींटे) दें।

सर्व प्रथम महा व्याहृति गायत्री शन्नो देवी मन्त्रों से तत्पश्चात क्रमशः चातनगण, अम्बादिगण, अभयगण, दुष्वप्ननाशनगण, कृत्यागणों, पिप्पलादि गणों से छींटे दें। तदुपरान्त शाप मोचनार्थ कां० २ सू० ७ 'अघद्विष्टा' क्षेत्रिय रोग निवारणार्थ कां० २ सू. ८ व ९ व १० से; गर्भस्रावादि निवारणार्थ तथा मृनाऽपत्या दोष निवारणार्थ कां. २ सू.१४ व कां. १ सू. २६ तथा आयुष्यगण स्वस्त्यनगण, अंहोलिङ्गगण, वर्चसगण, पावनगण से छींटे दें। कां. ४ सू. ३३ से स्नान करायें। बृहच्छान्तिगण से सूर्य उपस्थान प्रथम दिन करा दें। यह दो दिन में क्रमशः कराकर अग्नि स्थापन के उपरान्त रात्रि में तीन मण्डप इस प्रकार बनायें कि दोषी वन्ध्या प्रथम मण्डप में पश्चिम द्वार से प्रवेश करे, उस द्वार पर तथा उस मण्डप के बीच आम्रादि शान्ती वृक्षों के वन्दनवार बनाकर शान्ती १० वृक्षों की टहनीमय पत्तों के; कुशाः, दूव शाल्मलि की और अपामार्ग के मुट्ठे बना; तोरण की भांति बीच में लटकादें, उसके नीचे पूर्व अभिमन्त्रित ढाक के पत्ते के आसन पर अभिमन्त्रित (शीश) शाल्मलि या शमि की पटली रख उस पर दोषी को बिठा दें, शान्ति औषधियों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की पोटली शिर पर रखवा दें, उसके ऊपर काला वस्त्र उढ़ा दें। दोषी केवल एक वस्त्र ही काले के अतिरिक्त रखें, अर्थात् आधी धोती काछें; आधी से शरीर ढकें। यहां यदि पत्नी दौषी हो तो पति, पति दोषी हो; तो पत्नी उसे छींटे शिर पर कुशमुष्टि से दें। अथर्व तथा ऋग एवं यजुर्वेद के पाप व शाप तथा संकटमोचन सभी सूक्तों से अवसेचन करें, दोषी को तबतक भोजन न करने दें।

यदि स्त्री का गर्भस्राव होता हो; तो इसी मण्डप में अथर्व कां. ८ सू. ६ 'यौतेमातोन्ममार्ज', कां. २० सू. ९६ "तीव्रस्यभिवयसो" कां० २ सू० ३ "अदोयदवधावत्य" तथा ऋग्वेद मं० १० अ० १२ सू० १६२ "ब्रह्मणाग्निः संविदा" ऋ० म० ५ अ० ६ सू० ७८ "अश्विनावेह गच्छत" से अवसेचन करे। इन्हीं से सीमन्तोन्नयन जो गर्भधारण से ६५ दिन की ही अवधि में करना अनिवार्य है में श्वेत. पीत सरसों अभिमन्त्रित कर गर्भिणी के बांधे। इस सबसे निवृत होकर दोषी स्त्री व पुरुष को इसी प्रथम मण्डप के पूर्व द्वार से प्रविष्ट कराये। वहां भी दर्वाजे पर वन्दनवार व तोरण लटके रहें। बीच में भी पूर्ववत् तोरण लटका रहे, उसी के नीचे पूर्ववत् अर्जुन या ढाक के पत्ते के आसन पर शाल्मली या शमी की अभिमन्त्रित दूसरी नई पोटली रखकर शिर पर दूसरी पोटली रखवाकर पूर्व अभिमन्त्रित घटके जलसे स्नान करायें। यहाँ "अप नः शोशुचदघमग्ने' कां० ४ सू० ३३ व "अग्निब्रूमो" कां० ११ सू० ६ मन्त्रों से स्नान करायें। और काले वस्त्रादि सबका त्याग करा दें, स्त्री-पुरुष विशेष स्नान कर श्वेत नये या धुले वस्त्र तथा पूर्ण शृङ्गार कर सूर्य का उपस्थान करें। (पृष्ठ अ० ४-पृ० २४२ से २४५ की विधि के अनुसार चलें। कौशिक सूत्रानुसार उपरोक्त सूक्तों ४।३३ व कां० ११ सू० ६ से उपस्थान करें। वैतान श्रौत सूत्रानुसार "अथर्व कां० ४।१-१" 'ब्रह्म यज्ञानम्' "कां० ४ सू० १ ऋचा २" इयं पित्र्या से प्रारम्भ करते हुए इन श्रूतियों से उपस्थान करें। ये श्रुतियाँ ग्रन्थ के अध्याय २ पृ. १९२ से २३० पर देखें। ऋग्वेद १०।३७।१२ तथा अथर्व ६।११४-११५।

"यद्देवादेव हेडनं तथा ११५ "यद्विद्वांसो" ये होमा विधि में हैं तथा 'उभाकवीयुवांना' भी वहीं है। उपस्थान कर पूर्व द्वार से ही तृतीय मण्डप में पत्र-फल, पुष्प, वस्त्र, दक्षिणा के, ब्रह्मा व अग्नि की परिक्रमा कर, अपने २ निश्चित् आसनों पर बैठें।

इस (प्राजा प्रत्येष्टी) पुत्रेष्ठि यज्ञ व गर्भाधान के पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन कर्म में गूलर की समिधा, स्रुवा स्रुची अनिवार्यरूप से कही गई है। इस उपस्थान वाल मन्त्रों से प्रथम आहुतियाँ दें पुनः अ २ पृ.१९२; २३० के मन्त्रों से आहुति दें। ये शत्रु-विजय, कृत्या, अभिचारजनित दोषों के शमन में शस्त्र की भांति प्रयुक्त होते हैं।

पुत्रेष्टि तथा ऋतु स्नानान्त गर्भाधान काल में गूलर की मथानी में गौ (युवा, बछड़े की, गौ बछड़े दोनों का समान रङ्ग हो) का दूध, धी, मधु, शर्करा, जौ का सत्तू व धान को कूट कर स्वच्छ साठी चाववों की लाजा, पुरुषवाची फल व मेवे डालकर गूलर की विलोनीरई से ऐसा विलोयें कि एक रस हो जावे। इसी में सर्वोषधि, शखपुष्पी, ढाक का गोंद, वाराहीकन्द कूटकर, शितावर, शिवलिङ्गी के बीज, श्वेत दूर्वा, कारस, जीवक पुत्रक के वीज भी विलोने से पूर्व मिलाये। इसी मन्थ से गूलर के स्रुवा से निम्न सूक्तों से विशेष आहुतियाँ दोषी स्त्री-पुरुष से दिलायें। यह तीसरे मण्डप में होगा।

कां. २ सू. १४ "निःस्सालाम्" कां. ३ सू. २३ "येनत्नेहद" कां. ५ सू. २५ "पर्वताात् दिवो" कां. ६ सू. ११ व १७ (१७) "यथेयं पृथिवी" [११] "शमीमश्वस्थ"; कां. ७ सू. ७ व ८ व १७ व १८—१७ "वृहस्पते" १८ "धातादधातु" २० "प्रजापति" २१ "अन्वध" २२ "समेत", क. २० व २१ व २२ "अदितिद्यौ" "दिते पुत्राणाम्"; कां. ५ सू. १-१ "ऋधन्मन्त्रोयोनि" ५।२०-१२ "अच्युतच्युत्समदो"; कां. ५ सू. २०-१२; कां. ६ सू. ८१ "ॐ यन्तासि", कां० २ सू० १० "क्षेत्रियात्वा"; कां. ८ सू. ६ "यौतेमातोन्ममार्ज"; कां. २० सू ९६ "तीव्रस्यभिवयंसो"; कां. २ सू. ३ "अ.ो यदवाधावत्य"; ऋग्वेद मं० १० अ० १२ सू० १६२ "ब्रह्मणाग्निः संविदा, ५।६।७८ "अश्विनावेह गच्छत।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इनसे उपर्युक्त मन्त्र से बन्ध्या, गर्भस्राविणी, मृतवत्सा, कन्या ही होती हों, उनसे [बन्ध्याओं से] आहुतियाँ दिलायें। कां. ७ सू. ५० 'राकामहम्" तथा ७।८५ "पूर्णा पश्चात्" दर्शपूर्ण मास में "देवानां पत्नि" इन २ तथा कां. ७ सू. ५१ की "सुगार्हपत्ये;" (१२।२-४५) से याग करे। वे० सू० १।४।

ॐराका हवा एतां पुरुषस्य सेवनीं सीव्यति यैंषा "शिम्नेधि" "पुंमासो अस्य पुत्रा जायन्ते" इति ऐतरेयश्रुतेः (ऐ० ब्रा० ३।३७) तथा च कृत्वा वीरम् (पुत्रं) विक्रांत पुत्रं शतदा यम् वहुधनम् बहु पुत्रं व उक्थ्यम् कर्मभिः स्तोतार्हां ददातु प्रयच्छतु। "२।१४" निःस्सालाम्। से पूर्वोक्त मण्डपों में जिसके बच्चे मर जाते हैं, या गर्भ गिर जाते हैं, जिस घर में गौ. घोड़ी भी बन्ध्या हों, विठाकर छीटे दें— व इन्हीं से उपरोक्त चरु से उपरोक्त समिधाओं में होम करें।

पूर्ण वन्ध्या या काक बन्ध्या जिसके एक बच्चा होकर फिर बस्चा (पुत्र) ही न हुआ हो। काँ० ४।३३ से स्नान व होम करायें। "येन वेहद्" (३।३३) 'पर्वतादिवो" (५।२५) कां० ६ सू० ४ (यथे यं पृथ्वीदाधार) "शमीमश्वत्थः" (६।११) इनसे पुत्रेष्टि यज्ञ में तथा ऋतुस्नानान्त गर्भाधान में तिल, चावल की खिचड़ी के २ चरु "जिनमें शमी (शाल्मली या छीकर) में अतवा बट में उत्पन्न अश्वत्थ पीपल के पूर्वोत्तर के ऊपर के शुंग (कोयलें व दाडी) मिला" वनाकर अर्पण करें। ब्रह्मा (पति द्वारा) उन्हें अभिमन्त्रित कर दूसरे चरु को स्त्री को दे, उसे ओझल हो अकेली स्त्री खाये और ढाक के रस या गोंद को स्त्री पुरुष अपनी प्रजनेन्द्रि, शिश्नेन्द्रि के अग्रभाग में चुपड कर गर्भाधान करायें।

प्रमाणभूत वचन :—**पुरुषो हवा अयम् आदितो गर्भो भवति, एतद् पुत्र जननापायत्वेन लोके प्रजानां स्रष्टा प्रकाशितवान्।** ऐ० आ० २।५-२ अन्य। हुत शेष पुरोडाश को अभिमन्त्रित कर प्रथम आचार्य्य होतागण बराबर साथ ही प्राणों रजवीर्यों का अनुमन्त्रण करें, और चरु भक्षण करें। तत्पश्चात् यजमान तदनन्तर अप्रत्यक्ष (ओझल में) यजमान-पत्नी भक्षण करे। (वै०श्रौ०सू०)(अ०२ कां०४)(सू०१५-१६)। प्राणों का आवाहन पति निम्न प्रकार करें।

ॐ यन्मे रेतः प्रसिच्यते यद्वा मे अप गच्छति। यद्वा जायते पुनस्तेन मा शिव मा विश ॥
तेन मा वाजिनं कृणु, ते न सुप्रजसं कृणु। तस्य ते वाजपीतस्योपहूत स्योपहूतोः भक्षयामि ॥

तथा — "ऋतुमतीं जायां सारूपवत्सां श्रपर्यित्वाऽभिधार्योद्वास्यो उद्धृत्याभिहिङ्कृत्य गर्भ वेदनं, पुंसवनैः सम्पातवन्तं पराम् एव प्राशयेत्" (वैं० श्रौ० सू० अ० ३ कं० २ (१२) सूत्र १४।

तथा च — दीक्षितस्य सारूप वत्साया गोः पयसि स्थालीपाकं गृह्यागनौ श्रपयित्वाऽभिधार्योदगुद्वास्य पात्रान्तरे उद्धृत्य आभिमुख्येनौदनस्योपरि, हिं कारं कृत्वा "येन वेहद्" (३।२३) "पर्वतादिवो" (५।२५) "शमीमश्वत्थ", (६।११) इत्येतैर्गर्भ वेदन, पुंसवनैः सम्पातवन्तं कृत्वा जायाम् ऋतुमतीं परां स्नातां प्राशयेत्। एव शब्दान्नाऽस्नाताम्। एव दीक्षिता जाया पुत्रम् लभतेति ब्राह्मणम्। (तु० गो० ब्रा० १।३।२३) ॥ १४ कौ० सू० ३५।१ तथा कौ० सू० ३५।८

पुंसवन काल में ३।२३ से वाण को अभिमन्त्रित कर स्त्री के शिर पर रक्खे। इसी सूक्त से आज्य होम करे, शरमणि अभिमन्त्रित कर बांधे। इसी से ढाक का रस या गोंद तथा विदारीकन्द को पीस कर दायें हाथ के अंगूठे से स्त्री के दायें नथने में नस्य (हुलास) दे, गर्भाधान, पुत्रेष्टि, पुंसवन में पुरुष नक्षत्र का ही होना अनिवार्य है।

७।७ "अदितिर्द्यौः" से अथर्व विधान में वर्णित आधान में पवमान इष्टि में अदिति का, पुत्र प्राप्ति के लिये होम करें (७।६,७,८) कौ० सू० ७।१० वै० श्रौ० सू० २।२ ॥ इन (७।६, ७, ८) के साथ "वृहस्पते मवितुः" (७।१०) "धाता दधातु" (७।१८) इन ४ सूक्तों से पुत्र प्रजननार्थ पुत्रेष्टि, गर्भाधान, पुंसवन व प्रजनन कालों में स्त्री के उदर को अभिमन्त्रित करें। तथा 'प्रजापतिर्जनयतु' इस ऋचा से (७।१९-३) से बन्ध्या को पुत्र लाभार्थ कर्म में उसकी पुवाची फलादि से गोद भरा, घी से होम करें। और इसी ऋचा से **लाल बकरी के दूध में उड़द की खार** बना अभिमन्त्रित कर खिला दें। इसी कर्म में इसी ऋचा से मिट्टी के पात्र में पवित्र जल, शान्ति औषधियों से युक्त, अभिमन्त्रित ले अग्नि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की परिक्रमा कर पुत्रकामिनी धार दें । कन्या अपत्य वाली वह कर्म करें । इसी से दूध, भात, पेय रस अभिमन्त्रित कर दें । और प्रजापति का होम करें । (७।२०, २१, २२ व १९) वैं० श्रौ० ११।

"ऋधङ्गत्रोयोनिं" ५।१ तथा "तदिदआस" (५।२) से मिश्रित कई धान्य भून कर पिट्ठी बना, लाल बकरी के दूध में मिला, अभिमन्त्रित कर गूलर के चमस (कटोरे) में फलों का रस डाल, गूलर की रई से मन्थन करें और अभिमन्त्रित कर सायं, मध्याह्न एक-एक चमस[प्याला], स्त्री बीच की ऊँगली व अंगुष्ठ के पासवाली तर्जनीं (इन्हीं दो) से ऋतुस्नानान्त पुत्रकामना वाली स्त्री खाये ।

'यन्ताऽसि' (६।८१) की तीनों ऋचाओं से गर्भाधान में स्त्री के हाथ में ऊन; सरसों; अपामार्ग रखकर कंकड़ अभिमन्त्रित कर बाँधें । "क्षेत्रियात्वा" (२।१०)से क्षेत्रिय रोग, कुष्ठ, श्वांस, क्षय, वरुण आदि शाप माता, पिता, नाना, नानी के अन्य दोषों की निवृत्ति करने के लिये, चौरास्ता पर दोषी (रोगी) को बैठाकर, दश शान्तिवृक्षों की छाल आदि गांठों से लपेट, अभिमन्त्रित जल से कूर्च से छींटे दें। "यौ ते मातोन्ममार्ज" ये ३ "दिव्यो गन्धर्व"(२।२) "इमं मे अग्ने" सीमन्तोन्नयन में श्वेत पीत सरसों अभिमन्त्रित कर ऊन में रखकर गर्भिणी के बांधें । "अदो यद वाधावत्य" (२।३) "तीव्र स्याभिवयसो" (६।११) से (२०।९६) तथा ऋग्वेद मं० १० अ० १२ सू० १६२ "ब्रह्मणाग्निसंविदा" एवं ऋग्वेद मं० ५ अ० ६ सू० ७८ "अश्विना वेह गच्छत्"से स्त्री के रक्तस्राव, मासिकधर्म की आगे या पीछे या गर्भाशय शोथ को, गर्भस्रावादि अन्य गर्भ दोषों को, उपरोक्त भांति छींटे स्नान होम कर शान्त करें । इसी में युवा स्त्री को सहसा ऋतु बन्द हो जाना आदि सभी दोष जो स्त्री पर कृत्या द्वारा मासिक धर्मादि के रक्तसने कपड़े डालने, चुराने बाल या कपड़ा या नवजात शिशु का वस्त्र चुराने आदि या कुछ अभिमन्त्रित कर खिलाने से या नैऋति दोषों से प्रायः हो जाते हैं, जो अनुभव सिद्ध हैं। ये सभी दूर करे । इनको विधिवत इसी प्रकरण में आगे पढ़ें ।

"प्रजापत्येष्टि" पुत्रेष्टि में ये समस्त दोष पाप, शाप, संकट, कृत्या, अभिचार जनित, ग्रह, देव, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरादि से उत्पन्न बाधायें निश्चय शान्त हो जाती हैं ।

इसके लिए वेदोक्त यत्र-तत्र श्रुतिशास्त्र सम्मत अन्य उपचार भी जो अनेकों बार परीक्षण में सफल सिद्ध हैं, दिये जा चुके हैं, उनको निःस्वार्थी, समाज सेवी, वृद्ध, कुशल वैद्यों से सामयिक विचार के उपरान्त उपयोग करें ।

मनीषि, आचार्य, ब्रह्मा, अध्वर्यु एवं याज्ञिक यजमान कल्यानार्थे गर्भदोष निवारण तथा पाप-शाप निवारण बृहच्छान्तिगण मंत्र पीछे इसी अध्याय में पढ़ें । अध्याय १ में दोषों का विस्तृत विवरण पढ़ें, समझकर सम्बधित इन सभी मंत्रों से निराकरण करें । मन्त्र सूक्ष्म मूल कारणों तथा औषधि स्थूल व्याधि मूल निवारण में अनिवार्य हैं ।

—: गर्भाधान के लिए अथर्ववेदीय प्रयोग :—

(१) पति-पत्नी को सामान्य आसन में बैठा कर प्रयोक्ता इयंपित्र्या० इस ऋचा से अथर्वाङ्गिरस ऋषि की प्रार्थना करे । इसके बाद 'धर्मस्त' पृ. १९२, २३० ऋचाओं से प्रजापति और धर्म की प्रार्थना करे ।

(२) तदनन्तर ढाक के दो पत्तों को .... मंत्र से अभिमंत्रित कर उन पत्तों के आसन पर सेमर या शमी या सिरस की लकड़ी या पीढ़ा को ... ... अभिमन्त्रित कर दोषी को बैठाये और निर्दोषी को केवल ढाक के पत्ते के आसन पर बैठायें ।

इसके बाद उपरोक्त कुश आपामार्ग के कूर्चीसे दोषी के शिर पर दूर्वादल, कुश,शमी के चूर्ण की पोटली रखकर काले कपड़े से ढककर अभिषेचन करें, अभिषेचन कर्म में यह ध्यान रखा जाए कि यदि पिशाचादि के उन्मद का दोष हो तो चातनगण मन्त्रों से सेचन करे । यदि कृत्या दोष हो तो रक्षोहणकरण और कृत्या परिहरणगणों से छींटे देकर दोष को उभारे ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ४ सू० १ वेन ऋषिः। बृहस्पतिः, आदित्यः। देवते त्रिष्टुप्। पुरोष्णिगुच्छन्दांसि। अहंसोन्मूलने, यज्ञानुमन्त्रणे, उपस्थाने होमे च विनियोगः। इस सूक्त की दूसरी ऋचा से "प्राजापत्येष्टि" यज्ञानुमन्त्रण प्रारम्भ करें।

ब्रह्म॑ ज॒ज्ञा॒नं प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द् वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒न आ॑वः।
स बु॒ध्न्या᳚ उप॒मा अ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ वि वः ॥१
इ॒यं पित्र्या॒ राष्ट्र्ये॒त्वग्रे॑ प्रथ॒माय॑ ज॒नुषे॑ भुवने॒ष्ठाः।
तस्मा॑ ए॒तं सु॒रुचं॑ ह्वा॒रम॑ह्यं घ॒र्मं श्री॑णन्तु प्रथ॒माय॑ धा॒स्यवे॑ ॥२
प्र यो ज॒ज्ञे वि॒द्वान॑स्य॒ बन्धु॒र्विश्वा॑ दे॒वानां॒ जनि॑मा विवक्ति।
ब्रह्म॒ ब्रह्म॑ण॒ उज्ज॑भार॒ मध्या॑न्नी॒चैरु॒च्चैः स्व॒धा अ॒भि प्र त॑स्थौ ॥३
स हि दि॒वः स पृ॑थि॒व्या ऋ॑त॒स्था म॒ही क्षेमं॒ रोद॑सी अस्कभायत्।
म॒हान् म॒ही अस्क॑भाय॒द् वि जा॒तो द्यां सद्म॒ पार्थि॑वं च॒ रजः॑ ॥४
स बु॒ध्न्यादा॑ष्ट्र ज॒नुषो॑ऽभ्यग्रं॒ बृह॒स्पति॑र्दे॒वता॒ तस्य॑ स॒म्राट्।
अह॒र्यच्छु॒क्रं ज्योति॑षो॒ जनि॒ष्टाथ॑ द्यु॒मन्तो॒ वि व॑सन्तु॒ विप्राः॑ ॥५
नू॒नं तद॑स्य का॒व्यो हि॑नोति म॒हो दे॒वस्य॑ पू॒र्व्यस्य॒ धाम॑।
ए॒ष ज॑ज्ञे ब॒हुभिः॑ सा॒कमि॒त्था पूर्वे॒ अर्धे॒ विषि॑ते स॒सन् नु ॥६
यो᳚ऽथर्वा॑णं पि॒तरं॑ दे॒वब॑न्धुं॒ बृह॒स्पतिं॒ नम॒साव॑ च॒ गच्छा॑त्।
त्वं विश्वे॑षां जनि॒ता यथासः॑ क॒विर्दे॒वो न दभा॑यत् स्व॒धावा॑न् ॥७

श्रुति मंत्र अध्याय २ में देखें। * यज्ञ प्रजापति इष्टि" प्रारम्भ इससे करें।

"ऋतस्यर्तेन" (६।११४-२) में श्रुतिः "तत एतत्सत्यं य सत्यं प्राणा वैसत्यं तेषां एष सत्यम्" (बृ०आ०२।१-२३) ध्यायमान हि परं ब्रह्म सर्वस्यपापस्यनिवर्तकम्" —उपपातकेषु सर्वेसु पातकेषु महत्सुच। प्रविश्य रजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत्" तथा च "भूताय स्वाहा भविष्यते स्वाहेति भूतां भव्यो होमो जुहोति। अय वै लोको भूतम् असौ भविष्यत्" इति श्रुतिः (तै०ब्रा० ३।८।१८।५)

कां. ६ सू. ११५ (१-३) ब्रह्मा। विश्वेदेवाः। अनुष्टुप्।

यद् वि॒द्वांसो॒ यदवि॑द्वांस॒ एनां॑सि चकृ॒मा व॒यम्। यू॒यं न॒स्तस्मा॑न्मुञ्चत॒ विश्वे॑ देवाः सजोषसः ॥१
यदि॒ जाग्र॒द् यदि॒ स्वप॒न्नेनं॒ एन॒स्योऽक॑रम्। भू॒तं मा॒ तस्मा॒द् भव्यं॑ च द्रुप॒दादि॑व मुञ्चताम् ॥२
द्रु॒प॒दादि॑व मुमुचा॒नः स्वि॒न्नः स्ना॒त्वा मला॑दिव। पू॒तं प॒वित्रे॑णे॒वाज्यं॒ विश्वे॑ शुम्भन्तु॒ मैन॑सः ॥३

कां० ६ सू० ११५ "यद्विद्वांसो"—(१) हम जानते हुए या न जानते हुए भी जो भी, जैसे भी पाप करें, हे देवगणों! आप सब एक मत से उन पापों से हमें मुक्त करो। (२) मैं पापी जागते हुए या सोते हुए भी जो पाप करूं,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन भूत अथवा भविष्यत काल के जो भी पाप हों उनसे "खूंटे से बंधे पशु को जैसे मुक्त करते हैं, वैसे ही मुझे छुड़ाओ। (३) जैसे पशु बन्धन स्तम्भ (खुंटे) से मुक्त होता है, जैसे स्नानान्त मल शरीर से दूर होता है, अथवा छाननी से घृत जैसे पवित्र होता है, उसी प्रकार सब (देवगण) मुझे पाप से पवित्र करें।

"यद् देवा देवहेडनम्" (६।११४); "यद् विद्वांसो" (६।११५), "अपामित्यम् अप्रती" (६।११७) वृहच्छान्तिगणोक्त इन तीनों से सब यज्ञ में "ब्रह्मौदनिकाग्नि" का आवाहनःमन्थन सम्मुखी करणादि कर दाता पूर्णाहुति होम करें। कौ० ८।८ अग्निष्टोम याग में आदित्य ग्रह होम तृतीय सवन में ब्रह्मा अनुमन्त्रित करें। वै० ३।१२। उसी में इनसे सर्व प्रायश्चित होम करें। वै० ३।१३ "आग्रयणेष्टि" में 'यद्विद्वांस" (६।११५); "द्यावा पृथिवी" उपश्रुत्या (२।१६-२) "सोमो वीरुधाम्" (५।२४-७) इनसे वैश्वदेव चरु का ब्रह्मा अनुमन्त्रण करें। (वै० २।४)

१-३ अथर्वा। पूषा। त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः।

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येऽषु ममृजे।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥१

मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान्।
नदीनां फेनां अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥२

द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥३

कां. ६ सू. ११४ (१-३) ब्रह्मा। विश्वेदेवाः। अनुष्टुप्।

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्। आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥१

ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः। यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥२

मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः। अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥३

कां० ६ सू० ११३ "त्रितेदेवा" (१) इन्द्रियों द्वारा कृत पाप, सर्वप्रथम मन में एकत्रित होता है। मन का एकत्रित पाप (स्थूलकाय) मनुष्य में व्यक्त होता है। इससे उत्पन्न विविध व्याधि गठिया आदि ने पकड़ रक्खा हो, तो तेरी उस व्याधि को, देवगण ज्ञान के द्वारा दूर करें। (२) हे पापिष्ठ! सूर्य किरणों, धुआँ, कुहरा अथवा अन्यत्र कहीं भी, नदी के फेन आदि में जाकर छिप जा, पर पाप दूर नहीं होता। उसका जो भी, जितना भी पाप होता है, उतना सब गर्भघातकी में रहता है। (३) मन का पाप बारह प्रकार का समझा जाता है, वह मनुष्यों में रहता है। उसी से विविध व्याधियां होती हैं, जो ज्ञान यज्ञादि से ही नष्ट होते हैं, अन्यथा नहीं।

कां० ७ सू० २० "अण्वद्य" इसी सूक्त के साथ "प्रजापतिर्जनयतु", (कां० ७ सू० १९) तथा "धाता-दधातु" (कां० ७।१७।१८) वन्ध्या के पुत्र प्राप्ति हेतु (प्रजापत्येष्टि) पुत्रेष्टि कर्म में उसकी पुरुषवाची फल, पुष्पादि से गोद भराकर, घी से होम करें। इसी कर्म में इन्हीं उपर्युक्त सूक्तों से लाल बकरी के दूध में काले उड़द तिलो की खीर बनाकर होमान्त अभिमन्त्रित कर पुत्रार्थिनी को खिलवायें, साथ ही मिट्टी के पात्र में अभिमन्त्रित शान्ति घट के जल को लें, अग्नि की परिक्रमा करे। पुत्रार्थिनी धार दे। इसी से उसे दूध, भात, पेय, अन्य पुत्रजीवक, शिवलिङ्गी, वाराही कन्द

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिश्रित या इनमें से कोई भी पदार्थ अभिमन्त्रित कर दें (कौ, ४।११)। इन्हीं उपर्युक्त सूक्तों से "पूर्णमास याग" में भी होम करें। (वै०श्रौ०सू० १।१) ये ६ ऋचायें हैं।

कां० ७ सू० २०, १-६ अथर्वा। अनुमतिः। १-२ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ जगती, ६ अति शाक्वर-गर्भा जगती। यह उपर्युक्त कार्यों प्राजापत्येष्टि होम, उपस्थान आदि में विहित है।

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्। अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥१

अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥२

अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम्।

तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥३

यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु।

तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥४

एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम्।

भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥५

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति।

तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ॥६

मणिबन्धनोक्त प्रति सरोमणि (७।५-१६) भूमिसूक्तम् (१२।१-११, १२, ३१, ३२) पूर्वोक्तम्।

शत्रुनिवारणम् (७।११७), गर्भधारणम् (७।११८), अव्यसश्च (१६।६८) पूर्वोक्ताः।

नोट :—ये स्वस्त्ययनगण व आयुष्यगण के साथ भी प्रयोजनीय हैं।

कां. ७ सू. २० "हे देवि अनुमते! आज ही हमारी बुद्धि, देवता प्रीत्यर्थ सत्कर्म की प्रेरणा करे, अनुकूल हों। अग्नि आदि की अनुकूलता (हव्यवाहन) और दाता को अनुकूल फलप्रद हो। (२) अनुकूल मति ही समस्त कल्याणकारी कार्यों का मूल सहायक हो हमारे समर्पित पदार्थ (भाव) को स्वीकार हो, हमें उत्तम सन्तान दें। (३) अक्षय धन, श्रेष्ठ कुल प्रवकंक सन्तति प्रदायक कर्मों की मति दें। हम क्रोधावेश में क्षीण न हों, इसकी सुख और सुमति में हम निरन्तर रहें। (४) उत्तम नीति, श्रेष्ठ मति का यश बड़ा है, और उसमें दान, त्यागादि श्रेष्ट गुण हैं। उनसे युक्त हमारे सत्कर्म हों, हमें श्रेष्ठ पुत्रों के साथ अक्षय्य धन प्राप्त हो। (५) इस सुविख्यात सत्कर्म के प्रति, अनुमति, उत्तमक्षेत्र, श्रेष्ट वीर-जननार्थ पधारी हैं। इनकी कल्याणदात्री श्रेष्ठबुद्धि, सब देवों द्वारा सुरक्षित, सुमति सभी प्रकार से सत्कर्म की रक्षा करें। (६) जो स्थिर चर पदार्थ है और उनकी संचालक शक्ति, अनुमति ही है। हे देवि! हम तेरी उस सुमति में ही रहैं, हमें सतत अनुमति प्रदान करती रह। हमारी बुद्धि आज ही देवता के हेतु, सत्कर्म (यज्ञ) करने की अनुमति देवे। हव्य को ले जाने बाले अग्नि देव, हम हव्य दाताओं के लिये अनुकूल हों। (२) हे अनुमते! तुम इस पुनीत कार्य के करने के लिये अनुकूल बुद्धि प्रदान करो, और हमारा कल्याण कर, हव्य पदार्थों को स्वीकार करो। हे देवि! हमें श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करो। (३) समर्थ करनेवाला अक्षय धन और उत्तम सन्तति सुख प्रदायिनी सुमति हमारे पास हो। हम क्रोधावेश में आ, कदापि सुमति के विरुद्ध कोई कार्य न करें। (४) उत्तम प्रकार से आगे ले जाने वाली अनुमति! सर्व स्वीकार्ष, तेरा उतम दान, त्याग, यश और श्रेष्ठ गुण हैं। हमारे सत्कर्म इन गुणों से युक्त ही हों। हे सौभाग्यशालिनि! हमें

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तम वीर (पुत्र) युक्त धन प्रदान करो। (५) सुविख्यात्, श्रेष्ठ कर्म (यज्ञ) के प्रति हमारी मति अनुकूल ही होवे। हे अनुमते ! हमें उससे श्रेष्ठ श्लाघ्य वीरत्व और श्रेष्ठ कार्यक्षेत्र प्राप्त हो। ऐसी समृद्धि ही कल्याण दायिनी होती है। देव रक्षित यह बुद्धि हमारे अनुष्ठानों की रक्षा करें। (६) जो स्थिर चर पदार्थ और उनकी चालक शक्ति है, वह अनुमति ही है। यह हमारे विपरीत न हो, सदा ही हमें सत्कर्म करने की प्रेरणा करती रहे।

कां० ७ सू० १७।१८ "धातादधातु" इन चार ऋचाओं सर्वार्थ सिद्धि के लिए 'धाता' का होम या जप करे। इसके साथ "अदितिर्द्यौः" (कां० ७ सू० ६), 'दितेपुत्राणाम्" (कां० ७।८) "वृहस्पते सवित" (कां० ७।१७) भी इन्ही सर्व्वार्थसिद्धि कार्यो के जप होम मैं हैं। वन्ध्या को "वीर पुत्र जननार्थ, गर्भाधान संस्कार में तथा पुंसवन संस्कार में, गर्भिणी के उदर को अभिमन्त्रित करें। "यामिच्छेत् वीर जनयेत्"। इति कौ० ४।११

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः। स नः पूर्णेन यच्छतु ॥१

धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम्। वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥२

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥३

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥४

कां० ७ सू० १७(१८) 'धाता दधातु" —(१) हे विश्वाधार जगपालक प्रभो ! हमें पूर्ण रीति से विपुल धन प्रदान करो। (२) हे प्रभो हमें दीर्घ सजीवनी शक्ति प्रदान करें। हम उनकी सुमति (कृपादृष्टि) की प्रार्थना करते हैं। (३) वे धारक प्रभु पुत्रादि दाता को उसके गृहस्थ के घर में, सभी प्रकार के रहने योग्य पदार्थ प्रदान करें। सभी देवगण दाता को अमरत्व "संजीवनी शक्ति" प्रदान करें। (४) अखिल जगध्दाता, धनद, विश्वस्रष्टा, ससाररूपी कोष रक्षक, जग पालक, एकमात्र प्रकाशस्वरूप देव हैं। वे हमें सर्वानन्द प्रदान करें। समस्त अणु में अणीयार् पदार्थो का रचियता, सर्वव्यापक प्रभु, उपासक को सभी प्रकार के उपभोग्य द्रविणादि प्रदान करें।

कां० ७ सू० ७ [८] "दितेपुत्राणाम्" दूसरे उपर्युक्त सूक्तों के साथ कामफल प्राप्त्यर्थ, देवताओं का अप याग करें। (कौ० ७।१०)।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमवं देवानां बृहतामनर्मणाम्।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन ॥१

कां. ७ सू. ७[-] "दितेः पुत्राणाम्" दिति (खण्डित, पराधीनता मर्यादित, दु;खी, अपवित्र, अपूर्णत्व, राक्षसमाता) (अदिति) स्वातन्त्र्य, मर्यादा न रहना, अमर्याद, अखण्डित, सुखी, पवित्र, पूर्णत्व, वाणी, पृथ्वी, गौ, देवमाता, दिति के पुत्र दैत्यगण, पराधीनता के निर्माता हैं, वे समुद्रतल के गम्भीर स्थान में रहते हैं। वहाँ से उनको स्वाधीनता परायण, मातृभूमि के अहिंसक दैवीगुण सम्पन्न सपूतों (देवों) के लिये हटा कर, योग्य स्थान बनाता हूँ। इनकी सज्जनता से अधिक योग्य कोई भी नहीं हैं। इसी कारण ईश्वरीय सहायता के वे योग्य पात्र हैं।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥२

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥३

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्व१न्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ॥४

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।
संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१

कॉं० ७ सू० १९ "प्रजापति" प्रजापालक ही इन सब प्रजाओं का उत्पन्न कर्त्ता है, वही मनवाला, धारकदेव, इनका धारणकर्त्ता है, इसी से प्रजाये ज्ञान प्राप्त कर, एक मत से कार्य करने वाली, एक विचार वाली, एक लक्ष्य से संबद्ध हैं। इन प्रजाओं में रहने वाले पुष्टिदाता प्रभु मुझे पुष्टि प्रदान करें।

स्वस्त्ययन सभी कर्मों में प्रजापति का जप, होम, उपस्थान करें। विशेष बन्ध्या के पुत्र प्राप्ति हेतु उसकी गोद भरा कर घी से होम करा, लाल बकरी के दूध में उड़द की खीर बनाकर अभिमन्त्रित कर खिलायें।

* इसीसे मिट्टीके पात्र में जल, शान्ति औषधियाँ डालकर नाभि पर रखा गर्भाशय अनुमंत्रित कर शेष जलसे अग्नि को धार दें, अर्घ्व दें, इसी से उसे दूध-भात अभिमन्त्रित कर दें।

(७।१९) १-ब्रह्मा । प्रजापतिः । जगति ।

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥१

कॉं० ७ सू० १९ "प्रजापतिर्जनयति" उच्छिष्ट ब्रह्म, जिसने स्वयं अपने को नर और नारीरूप में विभाजित कर सृष्टि सृजन का सत्य सकल्प किया, वे प्रजापति परम ब्रह्म ही इन अखिल ब्रह्माण्ड के प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं। वे ही विशुद्ध मनवाले धारण कर्त्ता, इन प्रजाओं को धारण करते हैं। सब प्रजाजन उत्तम ज्ञानयुक्त, एकमत हो, एक उद्देश्य का ध्यान कर, सभी को, उसी में संघटित करें। इन प्रजाजनों में व्याप्त, पुष्टि प्रदाता प्रभु, मुझे पुष्टि प्रदान करें।

(अ० वे० कॉं० ३ सू० २३ मं० ८ प्र० ६ अनु० ५) चिरंजीवी पुत्र प्राप्ति हेतु मंत्र ३।२३।३; बहु पुत्र, पौत्र प्राप्ति हेतु ३।२३।२५ बन्ध्यापन निराकरणार्थ ३।२३।६ गर्भस्राव निराकरणार्थ तथा मृताऽपत्य दोषानिवाणार्थ (३।२३।१) यही उत्तम सन्तानोत्पत्ति के हेतु सफल सिद्ध है। अश्वत्थ वट, प्लक्ष, विल्वपत्र के तत्वावधान में विधिवत जप १ लक्ष करें। यज्ञ के पुरोडाश में जिससे विशेष आहुति दी जावे उस चरु (पुरोडाश में उपरोक्त वृक्षों के उत्तर तथा पूर्व की दिशाओं के लगे तनों में लगी उत्तर-पूर्व की टहनियों के कोपल, तथा दाड़ी (छोटे अंकुरों को पुण्य नक्षत्रमें विधि बतलावें औषक्षि सूक्तं अथर्व या ऋक जो पृथक दिये हैं,से पूजन करके लायें तो विशेष लाभदायक सिद्ध होंगे। पीपल भी गोशाला का हो और वट या शमी (छौंकर)के वृक्षों में; दैवतत् उत्पन्न हों; तो हर मूल्य पर या श्रम पर प्राप्त कर, चरु में मिलाये

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यज्ञावशेश चरु (पुरोडाश) विद्वान आचार्य दम्पत्ति को दें, वे स्त्री-पुरुष उसे सिरोधार्य कर लें, प्रथम पुरुष पान करे, उसी को स्त्री ही खावे, यदि पात्र में लगा रह जावे तो धोकर पी ले, अर्थात् उच्छिष्ट न छोड़े। यह पूर्ण अनुभूत हैं।

(कां० ३ सू० २३) १-६ ब्रह्मा। चन्द्रमाः, योनिः द्यावापृथिवी, अनुष्टुप्, ५ उपरिष्टात् भुरिग्बृहती, ६ स्कंधोग्रीवी बृहती। समस्त छन्दांसि वन्ध्यायाः। नवोढायाश्चगर्भाधान संस्कार-सम्पादने, वीरपुत्रार्थे, जपे होमे पुरोडाश अनुमन्त्रणे विनियोगः।

येनं वेहद् बभूविंथ नाशयांमसि तत् त्वत्। इदं तदन्यत्र त्वदपं दूरे नि दंध्मसि ॥१

आ ते योनिं गर्भं एतु पुमान् बाणं इवेषुधिम्। आ वीरोऽत्रं जायतां पुत्रस्ते दशंमास्यः ॥२

पुमांसं पुत्रं जंनय तं पुमाननुं जायताम्। भवांसि पुत्राणां माता जातानां जनयांश्च यान् ॥३

यानिं भद्राणि बीजांन्यृषभा जनयंन्ति च। तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुंका भव ॥४

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भं एतु ते।
विन्दस्व त्वं पुत्रं नांरि यस्तुभ्यं शमसच्छम तस्मैं त्वं भवं ॥५

यासां द्यौः पिता पृथिवी माता संमुद्रो मूलं वीरुधां बभूवं।
तास्त्वां पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषंधयः ॥६

(अ०वे० कां० ३ सू० २३ मण्डल ८ प्रपा० ६ अनु० ५)

कां० ३।२३ "येनवेहद्" जिस स्त्री के मासिक धर्म ही न होता हो, युवा होते ही सहसा बन्द हो जाय, ऋतुधर्म आगे-पीछे हो, अति रक्तस्राव या गर्भस्राव हो, गर्भपात हो, सन्तति होकर मर जावें, कन्या ही कन्या हों, पुत्र हो ही नहीं, यदि पुत्र हो तो मूक, बधिर, अपङ्ग, अन्धा, क्लेशों का ही घर जैसा हों, वे सब बन्ध्या दोषाभिभूत होती हैं। उन दुखियों को रूपवान, नीरोग, दीर्घायुष्यवान, धीवान, लोकत्राण परायण, मेधावी पुत्र की "जननी" बनाने को सुख, सोभाग्य प्राप्त करना इन सूक्तों का लक्ष्य है। इसके लिये वेदों में "प्राजापत्येष्टि" अर्थात् "पुत्रेष्टि" यज्ञ का प्राविधान है। उसकी विधि दी जा चुकी है। इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में उल्लिखित बन्ध्या दोष, गर्भ दोष निवारण विधियां तथा पाप-शापादि दोष निवारण मन्त्र सविधि "अह्लोलिङ्गगण-ब्रहच्छान्तिगणे" में अध्याय ३ में उल्लिखित हैं। इसके साथ ही स्वस्त्ययनगण, अभयगण, वर्चसगण, दुःस्वप्न नाशनगण मंत्रों से वन्ध्यात्व दोष, तथा पुरुष का नपुंसकत्व दैवी-दोष निवारण कर, शारीरिकदोष निवारणकर गर्भधारक गर्भ शक्तियों से पूर्ण होने का ६१ दिन का पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुये, बल-वीर्य वर्द्धक भेषज जो दी जा चुकी हैं सेवन करें। तदनन्तर ही, ऋतुस्नातास्त्री, ऋतु प्रारम्भ दिन से, ८ या १०,१२, १४ या सोलहवें दिनों में; जब दोनों को चन्द्रादि शुभ हों, पुरुष नक्षत्र, ग्राह्य तिथि,वार हों 'गर्भाधान संस्कार' करें, इन मन्त्रों से होम करें। यज्ञविधि से बनाई खीर (चरु पुरोडाश) अभिमन्त्रित कर दें। यह पूर्णतया अनुभूत सफल विधि है। यह मंत्र १ से ३, ४

"ऋषिघोष" मंत्र १ —हे स्त्री! जिन कारणों से तू बन्ध्या हुई है, अर्थात् गर्भ धारण नहीं होता, उस दोष के मूल कारणों को तुमसे हम दूर करते हैं। वह वन्ध्यापन तुझसे पूर्णरूपेण दूर हटाता हूँ। (२) तूणीर में जैसे बाण सीधा आ जाता है, वैसे ही पुरुष गर्भ तेरे गर्भाशय में आ जावे, वह भलीभांति १० मास गर्भ में पुष्ट रहता हुआ, वीर पुत्र उत्पन्न हो। (३) तू पुरुष सन्तान उत्पन्न कर, उसके पीछे भी पुत्र ही हो, तू इस प्रकार अनेक पुत्रों की जननी हो, (४)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो जीबक, ऋषभक, कल्याणकारी बीज हैं, पुत्र प्राप्ति की धारक शक्ति के लिये सेवन कर और गौ के तुल्य उत्तम वीर जननी हो। हे स्त्री ! मैं तेरा उत्तम वीर सन्ततिप्रद, "प्राजापात्य संस्कार" तुझ पर करता हूँ। गर्भ तेरी योनि में आवे, तू पुत्र संतति को जन्म दे, वह पुत्र तेरे लिए कल्याणकारी हो। वे और तू दृढ़ निश्चयकर उसके लिये कल्याण कारी हो। (६) जिन दिव्य औषधियों का पिता द्यौ, माता पृथिवी ! मूल समुद्र है, वे पुत्र प्रदायक तेरा कल्याण करेंगी, उनका सेवन कर। इस प्रकार के ऋषि के आशीर्वादात्मक "शिव संकल्प चिकित्सात्मक" अन्य सूक्त आगे पढ़ें।

(अ० का० ५ सू० २५ मं० १५ प्रपा० १२ अनु० ५) १-१३ ब्रह्मा। योनिगर्भः पृथिव्यादयो देवताः। अनुष्टुप्, १३ विराट् पुरस्ताद् वृहती। पूर्वोक्त गर्भाधानादि कर्मषु विनियोगः।

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम्। शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥१

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे। एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥२

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥३

गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥४

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥५

यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती। यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥६

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥७

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम्। वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥८

वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम्। अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥९

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१०

त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥११

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१२

प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१३

(अ० वे० काँ० ५ सू० २५ मं० २५ प्र० १२ अनु० ५)

काँ० ५ सू० २५ "पर्वताद्दिवो" गर्भ की सुरक्षिता के लिये, परमेश्वर तथा अन्य देवों से प्रार्थना :— मं० (१) पर्वत से लेकर द्युलोक पर्यन्त स्थित पदार्थों के अंग-प्रत्यङ्ग से संग्रहीत योनिस्थान में, वीर्य की स्थापना करनेवाला पुरुषेन्द्रिय जलप्रवाह में पत्ते की स्थापना की भाँति, गर्भ का आधान करता है। (२) जिस भाँति यह महती वृथिवी, समस्त प्राणियों के गर्भ को धारण करती है, उसी भाँति मैं भी तेरा गर्भ धारण करती हूँ,और उसकी रक्षा के हेतु तुझसे प्रार्थना करती हूँ। (३) ब्रह्माण्ड का अंश पिण्ड है; जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है. उसी भाँति पिता के अङ्ग-प्रत्यङ्गों का रस वीर्यरूप वीज, ब्रह्माण्ड के देवों की प्रचण्ड शक्तियों से सम्पन्न होता है, उसकी प्रगति सुरक्षा विशेष यत्नों से अनिवार्य है। मंत्र ३ —हे अल्प चन्द्रवाली अमावस्या, सिनी वाली देवी ! गर्भ को धारण करा। हे ज्ञानदात्री सरस्वती ! गर्भ धारण करा। कमल माला धारणकर्त्ता अश्विनौ देवते ! तेरे गर्भ को धारण करायें। (४) मित्र और वरुण तेरे गर्भ को पुष्ट करें, देवगुरु वृहस्पति, गर्भ को धारण करायें, इन्द्र और अग्नि तेरे गर्भ को धारण करायें, धाता तेरे गर्भ को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धारण करायें। (५) विष्णु योनि को समर्थ बनायें, त्वष्टा देव उत्तम रूप वाला गर्भ बनायें, प्रजापति उसे सींचें और धाता तेरा गर्भ धारण करावें। (६) राजा वरुण, देवी सरस्वती, वृत्रघ्न इन्द्र ही जानते हैं, वह गर्भ स्थिर कर्त्ता यह रस पान कर। (७) तू औषधियों, वनस्पतियों, सभी भूत मात्र का गर्भ है। हे अग्ने! वह तू यहाँ गर्भ को धारण करा। ८ -- उठ कर खड़ा हो, वीर्यता कर, योनियों में गर्भ की स्थापना कर। हे वीर्यवान पुरुष! तू बलवान है। तुझे केवल सन्तान ही के लिये ले जाते हैं। ८– हे बृहत्सामगायिका स्त्री! तू विशेष प्रकार से तैय्यार रह, जिससे तेरी योनि में गर्भ स्थिर हो। सोम पानकर्त्ता देवों ने, तुम दोनों के रक्षकपुत्र को प्रदान किया है। (१० से १३) हे धाता! हे रूपदाता त्वष्टा! हे उत्पादक सविता! हे प्रजा पालक! इस स्त्री के दोनों गर्भधारक नाड़ियों के बीच में; उत्तम श्रेष्ठरूप के साथ पुरुष सन्तान की स्थापना कर, और १० वें मास में होने के योग्य बना।

कां० ६-१७ "यथेयं पृथिवी मही"। इन ३ ऋचाओं से गर्भ स्थिर करने, गर्भ की वृद्धि, गर्भ रक्षा के साथ समय पर सुखपूर्वक गर्भ योनि से बाहर प्रेरित करने के आशिर्बाद के साथ धनुष की प्रत्यञ्चा को त्रिवट कर, अभिमन्त्रित कर स्त्री के कंकण बांधे। इसीसे क्षेत्रमृत्तिका या वामी (दीमक की मिट्टी) को अभिमन्त्रित कर, प्रत्येक ऋचासे गर्भिणी को चटायें। कृष्णबालुका, अभिमन्त्रित कर, गर्भिणी के शयनकक्ष में चारपाई के चारों ओर छिड़के, तथा जम्भ गृहीत की भी इन्हीं से यही चिकित्सा करे। उसमें देशी शक्कर, श्वेत-पीत सर्षव, राई मिला, चौरास्ता पर २१ बार परिक्रमा क्रम से छिड़कें जो बचे उसे चौरास्ता पर दोने में रख चुप मौन होकर रख आये। इसी कां० ६।१७ के साथ कां० ५।१ "ऋधङ्मन्त्र" से "अच्युता इति गर्भ दृंहनानि, जम्भगृहीताय प्रथमा वर्जं" ज्यां विरुद्धय बध्नाति। कौ० ४।१

(कां० ६।१७) १-४ अथर्वा। गर्भं दृंहणम्, पृथिवी। अनुष्टुप्।

यथेयं पृ॑थि॒वी म॒ही भू॒ताना॒ं गर्भ॑माद॒धे। ए॒वा ते॑ ध्रियता॒ं गर्भो॒ अनु॒ सूतु॒ं सवि॑तवे ॥१
यथेयं पृ॑थि॒वी म॒ही दा॒धारे॒मान् व॒नस्पती॑न्। ए॒वा ते॑ ध्रियता॒ं गर्भो॒ अनु॒ सूतु॒ं सवि॑तवे ॥२
यथेयं पृ॑थि॒वी म॒ही दा॒धार॒ पर्व॑तान् गि॒रीन्। ए॒वा ते॑ ध्रियता॒ं गर्भो॒ अनु॒ सूतु॒ं सवि॑तवे ॥३
यथेयं पृ॑थि॒वी म॒ही दा॒धार॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त्। ए॒वा ते॑ ध्रियता॒ं गर्भो॒ अनु॒ सूतु॒ं सवि॑तवे ॥४

कां० ६ सू० १७ "यथेयं पृथिवी"। मत्र १ जिस प्रकार महान पृथिवी, भूतों (प्राणियों) का गर्भ धारण करती है, उसी तरह तेरा गर्भ भी, सन्तान को अनुकूलता से उत्पन्न करने हेतु स्थिर हो। (२) जैसे यह महान पृथिवी वनस्पतियों को धारण करती है, उसी भाँति वीरपुत्र जननार्थ तेरे अन्दर गर्भ स्थापित हो। (३) जिस रीति से यह महान पृथिवी पर्वतो, पहाड़ों को धारण करती है, उसी प्रकार तेरे अन्दर यह गर्भ सुख से प्रसव के लिये स्थिर रहे। (४) जिस प्रकार यह बड़ी पृथिवी, विविध भाँति से रहने वाले जगत को धारण करती है, उसी भाँति सुख प्रसवार्थ यह गर्भ स्थिर रहे। स्त्री अपने गर्भाशय में गर्भ स्थिर रखने को इच्छुक होती है, उसको सफल बनाने को यह ऋषि आशीर्वाद हैं।

"शमीमश्वत्थ" [६।११] में वर्णित शमी [छौंकर] पर उगा हुआ अश्वत्थ [पीपल] "अग्निदाह शमन हेतुर्वृक्षः शमी" प्रजापतिरग्निम् असृजत्। सोविभेत् प्रमाधक्ष्यतीति। तं शम्याशमयत्। तच्छम्यै शमित्वम्।। इति तै.ब्रा १।१।३।११ स च अग्निः अश्वो भूत्वा यस्मिन् वृक्षे पुरा संवत्सरम् अवात्मीत् स वृक्षः अश्वत्थः।। श्रुतिः।। अग्निर्देवेभ्योनिलायत। अश्वो रूपं कृत्वा। सो अश्वत्थो संवत्सरम् अतिष्ठत्। तद् अश्वत्थस्याश्वत्थम्।। इति तै० वै० १।१।३।९

अभिप्राय यह है 'शमीस्त्री, अश्वत्थ पुमान्। स च अग्नि लवणं पुत्रं उत्पादयितुम् ताम् अधिरूढः। तस्या उपरि उत्पन्न इत्यर्थः। ईदृशाद् अश्वत्थाद् अग्निमन्थनार्थम् अरण्योराहरणम्। श्रुतिः "शमी गर्भाद् अग्नि मन्थति। एषा वा अग्नेर्यज्ञिया तनूः। तामे वास्मै जनयति। तै० ब्रा० १।१।९।१। तत्र तादृशे अश्वत्थे पुंसवनम् कृतम् अनुष्ठेयम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसे शमी में उत्पन्न पीपल की जटायें और लाल कोपलें पीसकर मधु, दुग्ध, गोघृतादि मिला अभिमन्त्रित कर पिलायें। उसको जटाओं को काली ऊन में ढक (मढ़) कर अभिमन्त्रित कर स्त्री के हाथ में बांधें। इस प्रकार पुंसवन कर्म करें।

[अ० कां० ६ सू० ११ मं० २ प्रपा० १३ अनु० १] १-३ प्रजापतिः। रेतः, ३ प्रजापतिः, अनुमतिः,सिनीवाली। अनुष्टुप्। गर्भाधाने, पुंसवनें, वन्ध्यात्वदोष निवारणे, होमे, पुरोडाश भैषज्य अनुमन्त्रणे विनियोग।

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम्। तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥१
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते। तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥२
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यऽचीक्लृपत्। स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥३

कां० ६ सू० ११ "शमीमश्वत्थ"। अश्वत्थ वृक्ष, शमी वृक्ष पर उगा और बढ़ा होता है। उसकी दाढ़ी, लाक्षा, कोपलें, उसके सेवन से स्त्री पुत्र ही उत्पन्न करती हैं,पुत्री नहीं। यह निर्विवाद है। इसका पञ्चाङ्ग चूर्ण को मधु,गोदुग्ध तथा घृत मिला ऊपर से पिलायें। यह केवल लड़कियों वाली स्त्री को तो विशेष कर करना चाहिये ही। पुत्र होने का "पुंसवन" और लड़की होने का नाम "स्त्रैषूय" है। अश्वत्थ [पूर्ण वीर्यवाला पुरुष] धर्मानुकूल गृहस्थधर्म पालन करने वाली स्त्री "शमी" यह वीर्य की अपेक्षा रज की न्यूनता का प्राविधान होने से निश्चयात्मक पुत्र प्रदायक विधि है। रज की प्रावल्यता से कन्या और रज वीर्य की बराबरी होने से नपुंसक संतति होती है।

ऋषिघोष मंत्र १, जहां शमी वृक्ष पर अश्वत्थ चढ़ा होता है, उससे वहाँ पुंसवन संस्कार किया जाना है, जिससे निर्विवाद पुत्र ही प्राप्त हो. वह इस प्रक्रिया से औषधि से हम भरे देते हैं। [२] पुरुष में निश्चय से वीर्य होता है, वह स्त्रियों में सींचा जाता है। वही पुत्र प्राप्ति का आधार है। यह प्रजापति उत्तम प्रकार से सँतति पालक, पोषक, पुरुष का कर्त्तव्य और कथन है। [३] प्रजापालक पिता, पारस्परिक सौहार्द्रपूर्ण स्त्री, अनुमति; स्नेह से प्रजापति व्रत पालन करे। चन्द्रकलाओं की वृद्धि की भाँति गर्भ की वृद्धि तथा स्थिर करने में दक्ष सिनीवाली स्त्री समर्थ हों, ऐसा होने पर निश्चय से पुत्र ही होता है, अन्य परिस्थिति में कन्या या नपुंसक गर्भ होता है।

नोट :—गर्भवती विशेष ध्यान दें! गर्भ रहजाने के उपरान्त यदि, कोई स्त्री विशेष कामासक्ति से कामवासना शेष रह जावे और उसे तीव्र भोगाकांक्षा हो और सम्भोग करे, तो गर्भ क्षीण हो जाता है।

"यन्तासि" [६।८१] से गर्भाधान में गर्भ स्थिर कराने तथा गर्भ के बाधक समस्त विघ्नों के शमनार्थ कंकणादि की धूपादि से पूजा, प्रतिष्ठा, अभिमन्त्रित कर स्त्री के गर्भाशय पर फिरा हाथ से बांधें। कौ० ४।१।

[अ०० कां० ६ सू० ८] १-३ अथर्वा। आदित्यः। ३ त्वष्टा। अनुष्टुप्। उपर्युक्त कर्माणि विनियोगः।

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि। प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥१
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे। मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥२
यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या। त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ॥३

कौ० ६ सू० ८१ "यन्तासि" कङ्कणधारण - स्त्रियों के गर्भाशय दोष निवारणार्थ उत्तम पुत्र सन्तति प्राप्ति हेतु तथा सुख से प्रसव होने के लिये किये जाने का वेदों में प्रावधान है। [१] तू नियमों के बन्धनों में रखने वाला है, दोनों ही हाथों का तू नियमन करता है, और उनसे बिघ्न के कारणों का निवारण करता है। यह कङ्कण उत्तम पुत्र सन्तति प्रजा और धन का ग्रहणकर्त्ता है। [२] हे कङ्कण! तू गर्भधारण हेतु, योनि को धारण कर। हे मर्यादे! पुत्र को धारण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर, उसको तू आगमन के समय, बाहर जाने के लिये प्रेरणा कर। [३] पुत्र कामिनी अदिति ने, जिस कङ्कण को धारण किया था, उसी कङ्कण को पुत्र की ही उत्पत्ति होने के निमित्त त्वष्टा देवता ने इस स्त्री को धारण कराया है। [इस कङ्कण में ऊर्ण, मयूरपंख, श्वेत, पीत सर्षय, अर्जुन के बीज, लाजा, इन्द्र जौ, अश्वत्थ की दाढ़ी, शमीपत्र, दूर्वा, अपामार्ग रेशमी वस्त्र में रख कर, इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, धूप देकर सन के और रेशमी काले धागे पुरो कर वीर जननार्थ धारण करायें।

पुत्र होगा या पुत्री (लक्षण परीक्षा) :—पेट का आकार गोलाकार हो, अधिक वजन दाईं ओर हो, दायें ओर प्रथम फटक हो, (पहल करे, स्त्री का दांया पैर पहिले उठे। दांई आँख में अधिक तेज हो, चित्त प्रसन्न हो, ग्लानि न हो, स्वप्न में फल, देव, ऋषि, पुण्य स्थलों के या पक्के महल दिखाई पड़ें। तो पुत्र हो अन्यथा पुत्री।

गर्भ है या नहीं (लक्षण-परीक्षा) : - उलटी या उबकाइयों का आना, भोजन में अरूचि या दुर्गन्धि, हाथ-पैर ढ़ीले हों, काम में मन न लगे, शरीर में गिरावट हो। ३ मास तक के लक्षण हैं, तो गर्भ है। तीन मास के उपरान्त नाड़ी की आवाज-गति दुगुनी हो, भारी हो, मन विचित्र चीजों को चले। उतावलापन हो, प्राप्त होने में चीज को खाये भी नहीं। शुष्क या मूढ़ गर्भ तथा सभी गर्भों की वृद्धि : — (१) गर्भ चिन्तामणि रस, प्रातः सायं १॥ रत्ती से १ रत्तीं तक आंवले के मुरब्बे पर चांदी का वर्क लगा कर साथ में लें। (२) बीच-बीच १० बजे व ४ बजे में—प्रवाल भस्म १ रत्ती, मुक्त शुक्ति २ रत्ती, (१ मात्रा है) मुनक्का के रस में लें। (३) फल-घृत या सितावर-घृत में से कोई सा ले। स्वर्ण तप्तजल, सूर्यतापी गंगाजल मिलाकर लेने से शुष्क या मूढ़ गर्भ चैतन्यता प्राप्त कर बढ़ते हैं। ऐक्सरा सर्वथा वर्जित है।

ऋ. म. ७। अ. ५ सू. ८८ मंत्र ७ त्रिष्टुप् ।संकटमोचने, शापनिवारणे, मार्जन, उपस्थाने, होमे विनियोगः।

यो मृडयांसि चक्रुषे चिदागो वयंस्याम् वरुणे अनागा।
अनु व्रतान्यदिते ऋर्धन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७।६

ऋ० मं० ८ अ० ६ सू० ४२ मं० ७।१७। विरूपाङ्गिरस ऋषिः। अग्निर्देवता निचृतगायत्री छन्दः। पुंसवने गर्भदहणे विनियोगः।

अप्स्वग्ने सधिष्टवः सौषधीरनुरुध्यसे। गर्भे सञ्जायते पुनः ॥६
उदग्ने तव तदघृता दुर्ची रोचत अहुतम्। निसानंजुह्वोइमुखे ॥१०।३०
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठायवेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥११
उतत्वा नमसा वयंहोतर्वरेण्यक्रतो। अग्ने समिद्भिरीमहे ॥१२
उतत्वा भृगश्चुये मनुष्यदग्न आहुत। अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥१३
त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता सखासख्या समिध्यसे ॥१४
स त्वं विप्रायदाशुषेरयिदेहिसहस्त्रिणम्। अग्ने वीरवतीमियम् ॥१५
अग्नभ्रातः सहस्कृतंरोहिदश्वशुचिव्रत। इमंस्तोमं जुषस्वमे ॥१६
उत त्वाग्नेममस्तुतोवश्राय प्रतिहर्यते। गोष्ठं गावइवाशत ॥१७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युद्ध योग्य परीक्षा कर्म में—"नितद्दधिषे" (कां. ५ सू. २ म. ६) से जल अभिमन्त्रित करें। उनमें से २।२ योद्धाओं को नेता [सेनाध्यक्ष] देखे। उस जल में जो न दिखाई पड़े; उसे युद्ध में कदापि न भेजें। इसी कां. ५ सू. २ म. ६ से, नये वाहन को मय सारथी के अभिमन्त्रित करके राजा, सेनाध्यक्ष जो भी उचित उस वाहन का अधिपति हो, उसे बैठाये। सूत्रकार का मत है कि कां. ५ सू. २ म० ४ तथा "नमोदिववषेभ्यो:" (कां. ६।१।३) से ये कर्म करे। कौ० २।६ इन्ही २ सूक्तों से, पुष्टिकर्म में मिश्रित धान्य [कई अन्न] भून कर पिट्ठी बनावें और लाल बकरी के दूध में मिलाये अभिमन्त्रित करवाये। अथवा इसी कर्म में, इन्ही सूक्तों से [उदुम्बर] गूलर, पिलखन [प्लक्ष] के कटोरों में मिश्रित धान्यों को डाले, उनमें रस [गौ दुग्ध, मधु,ज्येष्ठी, गोघृत] मिला अभिमन्त्रित कर, सूक्त में कहे मन्त्रों से, प्रातः-सायं-मध्याह्न एक-एक चमस [कटोरी] खायें। इसी कर्म में ऋतुमती स्त्री को उपर्युक्त लाल बकरी के दूध में रस मिलाकर अभिमन्त्रित कर मध्यमा [बीच की अंगुली] तथा अंगुष्ठ के पास वाली तर्जनी—इन दो से ही खायें। कौ. ३।५ तथा क्षेत्रभृत्तिका गेहूं के जुते खेत या दीमक [बामी, की मिट्टी अभिमन्त्रित कर गंगाजल में मिला गर्भाशय पर लेप करें। यदि स्राव का भय हो। तथा च क्षेत्र [भूमि] की कामना वाले, सम्बन्धित भूमिमें चावल के भातमें दही, मधु मिलाकर इन्हीं से अभिमन्त्रित कर खाये। तथा सप्त ग्राम लाभार्थ, एक वर्ष से लगातार ब्रह्मचर्य से रहे। तत्पश्चात् [मक्खन] की शुक्ति में करके चावल मिला अभिमन्त्रित कर खायें। [कौ. ३।५] समृद्धि कर्म में इसी कां. ५ सू. १ का विनियोग करें। शरद ऋतु में व्रीहि-चावलों रत्ती को शहद में मिला, चर्मपात्र में रक्खे, जब तक जौन पकें गड्ढे में गाड़ दें। ऐसे ही जव यव पकजावें, उस ऋतु से व्रीहि [धान] के पकने के समय पर्यन्त गाड़ दें। तदनन्तर दोनों को निकालकर मिलालें। तिगुना गोमय के आग्ने कण्डों में पका अभिमन्त्रित करवायें। यह कां.५ सू.१७ 'ऋधङ' तथा कां. ६ सू.१७ 'यथेयंद्यापृथिवी' के साथ गर्भ स्थिर, वृद्धि संरक्षनार्थ विनियोग करें।

कां. ५ सू. १ 'ऋधङ् मन्त्र':—'**तविवभास**' इन २ सूक्तों से हस्ति आदि वाहन की पीठ पर पुरुष को शिर पर रक्खी पीपल की पात्री को गोमय से उत्पन्न अग्नि को प्रज्वलित कर होम करके शत्रुओं पर विजयाभिलाषी आक्रमण करें। शूकर के बैठने की मिट्टी की विजयकामी वेदी बनायें। उस पर तैल [आज्य] और सत्तू होम करें। शस्त्र व कवचों को इससे अभिमन्त्रित कर योद्धा को दें। इसी विजय कर्म में मृतक पुरुष की चिता से अवशिष्ट समिधा लेकर उसके ऊपर चक्र [चाक] रखें, लम्बे दण्ड के स्त्रुवा से इन्हीं २ सूक्तों से चाक के छेदों में होकर आज्याहुति दें। और "उत्तिष्ठ' संनह्य ! प्रहर युद्धस्व" आदि कां. ११सू.१०मन्त्र से वीरों को प्रोत्साहित करते हुए युद्ध को प्रेरित करे। कां.५ सू. २ मं. ४ 'यदिचिन्नुत्वा' इसे शत्रुपक्षीय सैनिकों के प्रतितारस्वर से कहें। परन्तु इन कर्मों में विकल्प यह है कि इनके करने से विजय अवश्यम्भावी होगी। यदि राजा हो तो इस ऋचासे करे। यदि जय कामी सेनापति हो तो उपरोक्त कर्म 'त्वयावयम्' कां. ५ सू. २ मं. ५ से करें।

कां० ५ सू० १ मं० १-६ वृहद्दिवोऽथर्वा। वरुणः। त्रिष्टुप्, ५ परावृहती त्रिष्टुप्, ७ विराट्, ६ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टि

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥१

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥६
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥७
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥८
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥९

कां ५ सू. १ ',ऋधङ्मन्त्रो'' इस सूक्त से आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। यह जीवात्मा ''अज'' और 'अमर' है। अजन्मा होकर भी 'अजायमानो बहुधा विजायते' [य ३१।१९] बहु प्रकार जण्म लेता है। 'अमृतानेः सुजन्मा अमर जीवन शक्ति से युक्त होता हुआ भी जन्म लेने वाला है। 'योनि आवभूव' अपने भूल उत्पत्ति स्थान; अर्थात् परिधि के पास न जाकर मध्य केन्द्र जहां गति का अभाव और शान्ति हैं, वहाँ पहुंचता है। परिधि से जन्मों के चक्कर न लगाने पड़ें उसे त्यागता है। मुमुक्ष जीव का यही उपयुक्त स्थान है। इस प्रकार [त्रित] रक्षक और [धर्ता] धारक होकर [त्रिणिदाधार] अपनी स्थूल-सूक्ष्म और कारण अवस्थाओं को अपने अधीन कर लेता है।

भावार्थः मं० १—जो जीवात्मा वास्तविक रूप से अमर शक्ति सम्पन्न है, तथापि जन्म लेकर आत्मोन्नति करता है। सत्य-मार्ग का अनुसरण करता हुआ अपने मूल स्थान (केन्द्र) मे ही पहुँचता है। इस प्रकार अपनी अदम्यशक्ति युक्त होकर दिन के तुल्य देदीप्यमान हो रक्षणशक्ति, और धारणशक्तियुक्त होकर अपनी तीनों अवस्थाओं को स्वाधीन बनाता है।

मं० २—जो अन्य मानवों से श्रेष्ठतर हो, विशेष धर्म नियम पालन करता हुआ आश्चर्यजनक शक्तियों का प्रकाश करता है। आत्मा के विशिष्ट प्रभाव से सम्पन्न परा-पश्यन्ति, मध्यमा, ओअनूदित वाणियां हैं; उनके सन्देशों को जानकर अपनाता है; इससे सम्पन्नता प्राप्तकर प्रथम स्थान (धारक) अपनी [स्थूल-सूक्ष्म-प्राण] अवस्थाओं के धारक [महा-प्राण] स्थान में प्रविष्ट होता है। ३—जिस परमात्मा ने प्राणी के अन्तःप्रकाश के प्रसार के लिए उसे [जीवात्मा] को अनुकूल शरीर दिये हैं. जिनसे अपने स्वर्णिम दिव्य प्रकाश को चारों ओर फैलाता है उसी शरीर रूपी कर्मक्षेत्र में जो अनेक अमृत हैं, उन सभी अमरपन का स्वामी होने पर भी मरण से डरता है। अतः सारी प्रजायें स्वयं [अज्ञानरूप] पर्दा हटाकर उसको आच्छादक वस्त्र अर्पणकर उसके सम्मुख उपस्थित हों। ४—जो मानव अजर अमर सनातन पुरुष को नमन कर; प्रत्येक कार्य समारम्भ करते हैं, वे अनीन्द्रियार्थदर्शी, बलप्रेमीवन अपने वहनोई की भांति आदरणीय व्यवहार करते हैं। ५—हे सर्व संचालक प्रभो ! उपर्युक्त कारण से ही मैं कवि दृष्टि से अपनी काव्यमयी वाणी से, तेरे गुण गान करता हुआ विनम्रता से तेरी शरण में हूँ। विरुद्ध गतिशील दो चक्र, परस्पर सहायक बनाकर स्थूल के अन्दर सूक्ष्म शक्ति को देखकर अपने काव्य से उस चालक अन्तःशक्ति के सन्मुख भक्तियुक्त अन्तःकरण से विनम्र होता हूँ। ६—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनीषियों ने मानव-समाज के लिए ७ मर्यादाएं [१. चोरी न करना, २. व्यभिचार न करना, ३. ब्रह्महत्या न करना, ४. गर्भपात न करना, ५. सुरापान न करना, ६. बार२ दुराचार न करना और ७ पाप करके असत्य बोलकर न छिपाना] स्थापित की है। उनमें से एक का उल्लंघन करने पर ही पाप लगता है। जो निष्पाप रहने की कामना करते हैं, वे अपने जीवन का शक्तिशाली आधार जहाँ सभी मार्ग पहुंचते है उस परमात्मा में स्थिर करते हैं। ७—उत्तमव्रतों का अनुष्ठान करना और परमपुरुषार्थ करना जिसका स्वभाव है। वह अदम्य अमर जीवन शक्ति सम्पन्न हो, आत्मिक प्राण सम्बन्धी और शारीरिक शक्तियों से बलिष्ठ एवं पूर्णसमर्थ हो, परोपकारार्थ आत्मशक्तियों को समर्पित कर कृतकृत्य हो जाते हैं। ८—पुत्र जैसे अपने रक्षक पिता की शरण जाता है, उसी भांति मर्यादाओं के उपदेशक श्रेष्ठ गुरुजनों को भी मानव पुकारते हैं। इन दोनों श्रेष्ठ कारणों से सर्वाधार प्रभु की प्रार्थना करते हैं। वही अपने श्रेष्ठ को बताता और बार २ शरीर देकर रक्षा करता है। ९—सर्वज्ञ ! साधारण प्रभो ! तू पोषक तत्त्व से हमारे आधे भाग को पूर्ण करता हैं, और उस आधे भाग का बल भी तू ही बढ़ाता है। तू रक्षक. सामर्थ्यवान, मित्र, श्रेष्ठ, अदीनता को बढ़ाने वाला है, हम तेरी वन्दना करते हैं। सत्यवक्ता, इसी के सराहनीय गुणों का गान करते हैं।

"सं सत्रवन्तु" १९।१। इस सूक्त से पुष्टि; तथा लक्ष्मी प्राप्ति कर्मों में। जौ, गेहूँ, धान, तिल, कांगनी, सवां आदि से युक्त खिचड़ी में दही, मधु मिला, अभिमन्त्रित कर होम करें। शेष चरु (भोग) को खायें। कौ० ३।२। शान्ति कर्मों के लिये नदी या सरोवर, झरना, समुद्र आदि के लाये पावन जल को अभिमन्त्रित करें। इसी से 'अमृता नामक' विश्व भेषजी शान्ति करें "आपश्च विश्वभेषजी" ऋ० वे० १।२३।२० "अप्सु मे सोमो अब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा" ऋ० १०।९।६ "शत आपो" १९।२। यह आगे अर्योत्यापन विधि भी प्रयुक्त है। मन्त्र वहीं देखें।

अथ पुत्रार्थ पुरुष सूक्त विधानम्

ॐ परब्रह्म परमात्मने नमः, ॐ उत्पत्ति स्थिति प्रलय कराय
ब्रह्म हरि हराय, त्रिगुणात्मने, सर्व कौतुकान्त दर्शनाय
दत्तात्रेयाय नमः, तन्त्राणि सिद्धि कुरु-कुरु स्वाहा ।।

महर्षि पाराशर ने वृहत्पाराशर स्मृति में उपरोक्त शीर्षक से श्लोक २९७ से ३१३ में बन्ध्या, काक वन्ध्या, मृत वत्सा तथा जिनके केवल कन्यायें होती हों, उनको पुत्र प्राप्ति के लिये त्रैमासिक यज्ञ जोकि शुक्ल पक्ष में शुभ वार तिथि नक्षत्र एवं गोचर ग्रहों की शुद्धि और अनुकूल होने की शुभ वेला में स्त्री पुरुषों को उपवास कर प्रारम्भ करना चाहिए, विधि वर्णन करते हैं।

पुत्र कामिनी स्त्री, प्रथम शुभ मुहूर्त्त में उठे और पति के चरण पूज कर यज्ञ को सम्पन्न कराने की प्रार्थना करे। अपामार्ग की दातुन करें जंगल से जंगली सूकरों की खोदी हुई, पूर्व संग्रहीत मिट्टी, तुलसी, पीपल की जड़ों की मिट्टी शरीर भर मलकर स्नान और श्वेत पवित्र वस्त्र धारण करे। लाल चावल, लाल पुष्प लाल चन्दन और कुशा ताम्र पात्र में डालकर अरुण सूर्य को अर्घ्य दें और उपस्थान करें।

कोरे स्वस्तिकों से चिह्नित पात्रो में चावल, पुष्प, फल आदि से सुसज्जित कर मय पवित्र जल, पूर्व रचित यज्ञ मण्डप में गीत मंगल, जो पुत्रवती सौभाग्यवती, अरोगिणी पूर्णांगी (न्यूनाधिक न हो) स्त्रियों सखियों के साथ ग्रंथि बन्धन कर प्रवेश करें। यह शुक्ला द्वादशी में एकादशी व्रत के साथ विधि है।

याज्ञिक सदाचारी, शान्त, निर्लोभी प्रियवादी, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ कर्मज्ञ पूर्णांग विशेषकर पुत्रेष्टि विधि वेत्ताओं को पवित्र आसनों पर बिठा पैर धोकर विधिवत पूजन कर वस्त्र, आभूषण, माला, गन्ध, पान, दक्षिणा आदि भेंट कर विधिवत आचार्य, ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु आदि को नान्दी श्राद्ध, पुण्याह वाचन, पञ्चगव्य प्राशन, रक्षोघ्न (मण्डप), पूजन यज्ञ, कर्म सम्पादनार्थ वरण करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सभी ब्रह्मचर्य व्रत, भूशयन, मद्य-धूम्रपानादि रहित, कन्द-मूल, फलाहार दही, दूध सेवन करें। यजमान, सर्व प्रथम उत्तर दिशा में समतल भूमि में जहां वेदी बनी हो यथाशक्ति उपचार से पूजन करें।

मय गोत्रादि, वेदी या कुण्ड में अग्नि देव की स्थापना, पूजा वन्दना करें। समिधा पीपल व गूलर की ही हों। गणपति, ग्रह, नक्षत्र तथा प्रधान वेदियों के हवन से पूर्व प्रणीता, प्रोक्षणी, श्रुवा, अज्यस्थाली, चरुस्थाली, उपयमन, कुशा पवित्री और कुण्ड पूजा तथा कुष्काण्डिका के साथ वैष्णव चरु से पुरुष सूक्त तथा श्री सूक्त से जगद्बीज का होम करें। कुष्कण्डिका के उपरान्त महा व्याहृति होम करें। आचार्य याज्ञिक व यजमान दम्पत्ति को सभी न्यास ऋषि, देवन्यास, करन्यासादि तथा यज्ञिय महामुद्रायें करा लें। श्रीसूक्त आगे अर्थोत्थापन विधि में देखें।

यज्ञ पूर्ण होने पर, सभी ग्रह आदि देवताओं का बलिदान तर्पण, मार्जन, छायादान, भूयसी दक्षिणा गोदानादि के उपरान्त पूर्णाहुति की विधि व पूजा करें।

"सहस्रबाहु" १६।६ सूक्त से पुरुषमेध, अश्वमेध, प्राजापत्येष्टि [पुत्रेष्टि] या तथा शनिग्रह शान्ति आदि नारायण की पूजा, जप, अभिषेक उपस्थान होम करें।

१-१६ नारायणः। पुरुषः। अनुष्टुप्।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः। तथा व्यक्रामद् विष्वङशनानशने अनु ॥२

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥४

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्। मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥७

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकां अकल्पयन् ॥८

विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥९

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१०

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः। तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥११

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥१३
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्याऽनारण्या ग्राम्याश्च ये ॥१४
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः । राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६

"चित्राणि साकम्" १९।७ तथा "नक्षत्राणि साकम" १९।८ इन दोनों सूक्तों से नक्षत्र कल्पोक्त "पुष्य" के लिये वस्त्र, अनुलेप; "कृतिका" को घी, "रोहिणी" को विविध बीज "अश्विनी" को क्षीर युक्त वृक्षों की समिधा दें। "भरणी" को काले तिल, घी, मधु से होम उपस्थान करें।

कां० १९ सू० ७ १-५ गार्ग्यः । नक्षत्राणि । त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् ।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥१
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥२
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥३
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५

अ० वे० कां १९ सू ६ "सहस्रबाहु" हजारों भुजाओं का, हजारों नेत्रों का, हजारों पैरों का एक पुरुप है। वह भूमि के चारों ओर (ओत-प्रोत) से घेरकर, दश अंगुल विश्व को व्याप्त कर रहा है। २. तीन अंशों से द्युलोक पर (महामेरु) पर) चढ़ा है, और उसका एक अंश यहां (भूलोक में) पुनः पुनः होता है। चारों ओर भोक्ता, अभोक्ता चेतन जड़ रूप से व्याप रहा है। ३. इसकी इतनी गरिमा है पुरुप (त्रिपाद) तो उससे बड़ा है। इसी का एक अंश यह सब भूत मात्र हैं, और इसी के तीन अंश द्यौलोक में अमर हैं। ४. जो बना हैं और जो बनेगा, वह सब पुरुप ही है. वह अमरपन का स्वामी है, जो दूसरे जड़ के साथ होता है। ५. जो विद्वान इस पुरुप का वर्णन करते हैं, उन्होंने इसकी कितने प्रकार से कल्पना की है। इसका मूल कौन है ? इसके बाहू कौन हैं ? जांघें कौन हैं? और पैर कौन कहलाते हैं ?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लें। बेलपत्र चूर्ण आटे में मिला रोटी बना खायें। नमक मीठे का परित्याग कर दें। अथवा देशी बबूल की पत्तियां २ तोले की मात्रा में प्रातः साय उपर्युक्त विधि से लें।

कां. ६ सू. १०१ ऋ. १-३ अथर्वांगिराः। ब्रह्मणस्पतिः। अनुष्टुप् छन्दः नपुंसकत्व निराकरणे-पुंसत्व प्राप्तये उपचारे विनियोगः।

आ वृ॑षायस्व श्वसि॒हि वर्ध॑स्व प्र॒थय॑स्व च। य॒था॒ङ्गं व॑र्धतां॒ शेप॒स्तेन॑ यो॒षित॒मिज्ज॑हि ॥१

येन॑ कृ॒शं वा॒जय॑न्ति॒ येन॑ हि॒न्वन्त्यातु॑रम्। तेना॒स्य ब्र॑ह्मणस्पत॒ धनु॑रि॒वा ता॑नया॒ पस॑: ॥२

आहं त॑नोमि ते॒ पसो॒ अधि॒ ज्यामि॑व॒ धन्व॑नि। क्रम॒स्वर्श॑ इव रो॒हित॒मन॑वग्लायता॒ सदा॑ ॥३

इस सूक्त से 'श्वेत अर्क' जो एक ही टहनी का हो पूजा कर लायें और उपरोक्त विधि से शिश्नेन्द्रिय से लपेटे, उसी की छाल में बांधे। उसी पर काले मृग की नाभि का चम लपेटे और उसी के बालों से बांधे।

तृतीय उपचार कपित्थक मूल (कहत वृक्ष) की जड़ को कां ४.४ से खोदे।

गो दुग्ध गोघृत या मक्खन, वासन्तिक छोटी मक्खी का मधु तथा यथा रुचि मिश्री या कन्द मिला अभिमन्त्रित कर मूसल पर बैठ कर खाये या धनुष की प्रत्यन्चा को खींचकर गोद में रक्खे तब खाये।

कां० ६ सू० १०१ "आ वृषायस्व" हे युवा पुरुष! तू उत्तम प्राण (वीर्य) धारण कर, प्रजनेन्द्रिय को मोटा दृढ़, लम्बा कर फैला। जिससे प्रजननाङ्ग फैले, पुष्ट हो और तू इससे स्त्री को सन्तुष्ट कर। २. हे ब्रह्मण स्पते! जिससे कृश निर्बल मनुष्य को पुष्ट करते हैं। जिससे व्याधि ग्रहीत को समर्थ बनाते हैं, उसी उपाय से इसकी प्रजननेन्द्रिय को पुष्ट कर विस्तीर्ण कर। ३. जैसे धनुष पर डोरी को तानते हैं उसी भांति मैं (ऋषि) तेरी प्रजननेन्द्रिय को विस्तृत करता हूं, जैसे रीछ हिरण पर धावा बोलता है, वैसे ही तू सम्भोग काल में स्त्री पर सम्भोगार्थ धावा कर। साथ की अन्य औषधियों को इन दोनों सूक्तों से अभिमन्त्रित करना अनिवार्य और हितप्रद है।

कां ४ सू. ४ ऋ. १-८ अथर्वा ऋषिः। वनस्पतिः, १-२ सूर्यः, प्रजापतिः, ४ इन्द्रः ५ आपः, सोमः, ६ अग्निः सरस्वती, ब्रह्मणस्पतिः। देवते। अनुष्टुप, ४ पुर उष्णिक्, ६-७ भुरिक् छन्दांसि, औषधि खनने, वाजीकरणे, पुंस्त्वापन्ने विनियोगः।

यां त्वा॑ ग॒न्धर्वो॒ अख॑नद्॒ वरु॑णाय मृ॒तभ्र॑जे। तां त्वा॑ व॒यं ख॑नाम॒स्योष॑धिं॒ शेप॒हर्ष॑णीम् ॥१

उदु॒षा उदु॒ सूर्य॒ उदि॒दं माम॒कं वच॑:। उदे॑जतु प्र॒जाप॑ति॒र्वृषा॒ शुष्मे॑ण वा॒जिना॑ ॥२

यथा॑ स्म ते वि॒रोह॑तो॒ऽभित॑प्तमि॒वान॑ति। तत॑स्ते॒ शुष्म॑वत्तरमि॒यं कृ॑णोत्वोष॑धिः ॥३

उच्छुष्मौष॑धीनां॒ सार॑ ऋष॒भाणा॑म्। सं पुं॒सामि॑न्द्र॒ वृष्ण्य॑म॒स्मिन् धे॑हि तनूवशिन् ॥४

अ॒पां रस॑: प्रथम॒जोऽथो॒ वन॒स्पती॑नाम्। उ॒त सोम॑स्य॒ भ्राता॑स्यु॒तार्शम॑सि॒ वृष्ण्य॑म् ॥५

अ॒द्याग्ने॑ अ॒द्य स॑वितर॒द्य दे॑वि सरस्वति। अ॒द्यास्य ब्र॑ह्मणस्पते॒ धनु॑रि॒वा ता॑नया॒ पस॑: ॥६

आहं त॑नोमि ते॒ पसो॒ अधि॒ ज्यामि॑व॒ धन्व॑नि। क्रम॒स्वर्श॑ इव रो॒हित॒मन॑वग्लायता॒ सदा॑ ॥७

अश्व॑स्याश्वत॒रस्या॒जस्य॒ पेत्व॑स्य च। अथ॑ ऋष॒भस्य॒ ये वाजा॒स्ताना॒स्मिन् धे॑हि तनूवशिन् ॥८

कां ४ सू. ४ "यां त्वागन्धर्वा" हे युवा पुरुष जन शक्ति दायिनी! जिसे तुझको विश्वाबसुगन्धर्व ने वरुण श्राप जनित,, प्रजनन शक्ति हीन, क्षीण (शिखण्डी) के बल, वीर्य वर्द्धन हेतु खोदी है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रजननशक्ति - सम्बर्द्धिनी औषधि को हम सभी खोदते हैं। २. वल और वीर्य के प्रभाव से, उषा (प्रजननेन्द्रिय) ऊपर उठे (मोटी लम्बी हो) सूर्य ऊपर उठे, यह मेरा (ऋषि का) वचन भी उत्कृष्ट हो, इसी भांति प्रजापति भी वल, वीर्य युक्त ऊँचा उठे। ३. जिस प्रकार तेरी वृद्धि के समय, तप्त होने के समान श्वास लम्बा होता है। उसी भांति वह औषधि तुझे बलवान करे। ४. ऋषभ नामक औषधियों का बलवर्द्धक तत्वरस वल बढ़ावे। हे शरीर को वश में रखने वाले इन्द्र ! पुरुषों का वल इसमें सम्यक् रीति से धारण करा। ५. वनस्पति के जलांश का प्रथम उत्पन्न होने वाला रस, सोम का रस, भाई के तुल्य पोषण करता है, और उठाने तथा बल बढ़ाने वाला है। ६. हे अग्ने ! हे सविता ! हे सरस्वती देवी ! हे ब्रह्मणस्पते ! आज इसकी इन्द्रिय को धनुष की भाँति तान कर फैला। ७. जैसे धनुष पर डोरी को तानते हैं, इसी भाँति मैं तेरी इन्द्रिय को फैलाता हूँ। जैसे हिंसक पशु हिरण पर धावा बोलता है, उसी प्रकार तू न थकता हुआ (सम्भोगार्थ स्त्री पर) आक्रमण कर। अर्थात् अपने को वल हीन न समझ। ८. घोड़े, खच्चर, मैंढ़े और वैल के जो बल हैं, हे संयमी पुरुष ! तू उन बलों को इस अपनी प्रजननेन्द्रिय में धारण कर।

कां २ सू० १८ "इदं खनामि" यह "पति वशीकरण" भैषज्य विषयक सूक्त है। इस सूक्त कां १।३४ "इयं वीरुध" सूक्त आगे है। वह भी सौभाग्यवती पढ़े काम मे लें। इस सूक्त से "वाणापर्णि" वर्तमान नाम "सरपोंखा" तथा शंखपुष्पी एवं "हुलहुल" औषधियों को पुनर्वसु नक्षत्र में विधिवत पूजा कर दूसरे दिन "पुण्य" नक्षत्र में अपने मनोरथ सिद्धि की प्रार्थना के साथ अभिमन्त्रित कर आये। दूसरे दिन "पुण्य" नक्षत्र में खोदकर ले आयें। निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करें। यदि यह निश्चय हो कि स्त्री का पति "अन्य स्वैरिणी परकीया" से अनुचित सम्भोग करता है, और उसके व्यामोह में उसका परित्याग कर रक्खा है तो **वाणापर्णी** (शरपोंखा) के पत्तों को लाल बकरी के दही के जल में मिलाकर, अभिमन्त्रित करे और परकीया (सौत) मकान, शयन-स्थान, चारपाई तथा विस्तर पर छिड़क दें। तथा मन्त्र ६* "अभि ते धाम" इस पाद से ही उस शरपोंखा के पत्तों को सोती हुई परकीया के ऊपर डाले। कौ० ४।१२।

यदि यह अज्ञात स्त्री या अन्य किसी अज्ञात कारण स्वधर्मपत्नी का पतित्याग करता हो तो शंख पुष्पी को अपनी सौभाग्य चोटी में लाल रेशमी वस्त्र में गूंथकर चोटी में गूंथ ले। इसी प्रकार (आसुरी) हुलहुल को लाल रेशमी वस्त्र में गूंथ पूरे सूक्त से अभिमन्त्रित करके अपनी दायीं भुजा मे बांधे रहे। जब तक उसके मनोकूल पति का व्यवहार न हो तब तक नित्य इन दोनों को धूप दे दिया करे। ग्रन्थ के प्रथम अध्याय तथा इसी अध्याय में "पतिवशीकरण" में दी गई सभी औषधियों का इस सूक्त से अभिमन्त्रित कर प्रयोग करने से निर्विवाद सफलता मिलती है।

* चिह्न की ऋचा पढ़ें।

कां. ३ सू. १८ (१-६) अथर्वा। वनस्पतिः। अनुष्टुप्; ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा उष्णिक्, ६ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः।

इ॒मां ख॑ना॒म्योष॑धिं वी॒रुधां॒ बल॑वत्तमाम्। यया॑ स॒पत्नीं॒ बाध॑ते॒ यया॑ सं॒वि॒न्दते॒ पति॑म् ॥१

उत्ता॑नपर्णे॒ सुभ॑गे॒ देव॑जूते॒ सह॑स्वति। स॒पत्नीं॑ मे॒ परा॑ णुद॒ पतिं॑ मे॒ केव॑लं कृधि ॥२

न॒हि ते॒ नाम॑ ज॒ग्राह॒ नो अ॒स्मिन् र॑मसे॒ पतौ॑। परा॑मेव प॑रा॒वतं॑ स॒पत्नीं॑ गमयामसि ॥३

उत्त॑रा॒हमु॑त्तर॒ उत्त॒रेदुत्त॑राभ्यः। अ॒धः स॒पत्नी या ममाध॑रा॒ साध॑राभ्यः ॥४

अ॒हम॑स्मि॒ सह॑मा॒नाथो॒ त्वम॑सि सासु॒हिः। उ॒भे सह॑स्वती भू॒त्वा स॒पत्नीं॑ मे सहावहै ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभि तेऽधां सहमानाुपं तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥

कां० ३ सू० १८ "इदं खनामि" जिससे स्वैरिणी परकीया (सौत) को दूर हटाया जाता है, और जिससे स्वपति को अपने प्रगाढ़ प्रेमार्थ प्राप्त किया जाता है। ऐसी इस शक्ति सम्पन्न औषधि (वनस्पति) को मैं विनय पूर्वक खोदता हूं। (२) बिस्तीर्ण पत्तों वाली, सौभाग्यदायिनी, देवों द्वारा सेवित, बलशाली औषधि ! मेरी सौत को दूर कर, और पति को एक मात्र मेरा (प्रेमी) ही बना। (३) हे परकीया स्त्री ! मैंने तेरा नाम भी नही लिया है। अब तू मेरे पति से रमण नहीं कर सकेगी। अब मैं अन्य परकीया को दूर हटाती हूं। (४) हे श्रेष्ठ गुण सम्पन्न औषधि ! मैं भी अधिक श्रेष्ठ हूं और श्रेष्ठों में श्रेष्ठतर हूं। मेरी जो पतिता सौत (परकीया) है, वह अधमाधम है। (५) मैं विजयी हूं, और हे औषधि ! तू भी विजयी है। हम दोनों ही जयशाली बनकर, मेरी (सौत) परकीया को जीते। (६) मैंने तेरे चारों ओर इस विजयशीला वनस्पति को रक्खा है। तेरे नीचे भी इस जयशालिनी बनस्पति को रक्खा है। जैसे गौ बछड़े की ओर दौड़ती है, अथवा जल अपने मार्ग से दौड़ता है। उसी प्रकार अब तेरा मन भी मेरे पीछे दौड़े। यह बहु-भार्या वाले पति के वशीकरणार्थ भी है।

कां० १ सू० २४ ऋ ५-अथर्वा ऋषिः। मधु वनस्पतिः। अनुष्टुप्, छन्द, सभाजय कर्मणि "मधुकारव्य" मधुकः—मुलहटी अथवा महुआ के पुष्प (भै र० "आयमणादिक्वाथ" श्लो० ७६) औषधि भक्षणे विनियोगः।

इयं वीरुन्मधुंजाता मधुना त्वा खनामसि । मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥१
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलंकम् । ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२
मधुंमन्मे निक्रमणं मधुंमन्मे परायणम् । वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥३
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः । मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतोमिव ॥४
परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे । यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापंगा असः ॥५

सभा में प्रवेश करने से पूर्व "मधुक" मुलहटी नाम की जड़ को अभिमन्त्रित कर सेवन करें। कौ० ५।२।

विवाह काल में इसी "मधुक" मुलहठी को लाक्षा से रँगे लाल सूत्र में लपेटकर अनामिका उँगली में वर-वधू बाँधे। कौ० १०।२।

विवाह तथा चतुर्थी कर्म–द्विरागमन-कर्म में इसी मधुक लता को पीसे। गौघृत व गौ-दुग्ध में शहद मिलाये उसी में मिला अभिमन्त्रित कर वर वधू शयन काल में पिये तब सम्भोग करे। कौ० १०।५ अभिमन्त्रण में कां० १४ सू० २ की ऋचा ७१-७२ निम्न भी हैं। इसे रस युक्त ही खोदकर काम में ले। कटु स्वभाव को दूर कर मधुर बनाती हैं कायिक, वाचिक, मानसिक मधुरता प्रदान करती है। बल, वीर्य वर्द्धिनी होने से पुरुषत्व प्रदायिनी भी है।

कां० १ सू० ३४ "इयं वीरु मधु" (१) यह मधुक (मुलहठी) नामकी वनस्पति, मधुरता के साथ उत्पन्न हुई है। मैं तुझे प्रार्थना पूर्वक खोदता हूँ, तू मधुरता के साथ उत्पन्न हुई है। अतः हमको मधुभाषी बना। (२) मेरी जिह्वा के अग्रभाग में मधुरता, (प्रियवादिता) रहे, मेरी जिह्वा के मूल (अन्तःकरण) में मधुरता (सहृदयता) रहे मेरे सभी कर्मों में मधुरता रहे, अन्य को अप्रिय लगने वाले सभी भावों का अभाव रहे) मेरे चित्त में निश्चयता पूर्वक सर्वप्रियत्व भाव रहे। (३) मेरा व्यवहार मधुर हो, मेरा आवागमन मधुरतामय हो। मैं वाणी से प्रिय भाषण करता हूँ; जिससे सर्वप्रिय बनूं। (४) मैं शहद से भी अधिक प्रियवादी हूँ। मधुर पदार्थों से भी अधिक मधुर होऊँ। मुझ पर ही तू वैसा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही स्नेह कर, जैसे मधुर रस वाली शाखा से स्नेह करते हैं। (५) वैर (द्वेष) दूर करने के लियें, फैले हुए ईख के साथ तुझे घेरता हूँ। (व्यापक मधुर विचारों की बाड़ चारों ओर बनाता हूँ) जिससे तू मुझसे स्नेह के लिये व्याकुल हो उठे, और मुझसे विद्वेष करने वाली न हो।

स्त्री वशीकरणार्थ—वृक्षों की छालें, शरकण्ड की जड़, श्वेत दूर्वा, कुष्ठ जड़ी, पीसकर घी में मिला अभिमन्त्रित कर स्त्री के लेप करे। अथवा शरीर (नलद) मधूक (महुआ) वृक्ष की छाल पीसकर स्त्री के शरीर में मले। इसी के साथ कां० ६ सू० ९। "यथा वृक्षमं–वाञ्छमे" भी है। इन दोनों से भेषज अभिमन्त्रिन कर लेप करें।

कां० ६ सू० १०२ जमदग्निः। अश्विनौ। अनुष्टुप् स्त्री वशीकरणार्थे विनियोगः।

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते। एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥१

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्टयामिव। रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२

आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च। तरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥३

इसी प्रकरण में, कथा "प्राण विद्या" पृष्ठ ३३७ की विधियों को पढ़ें। औषधि इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर प्रयोग करें।

कां० ६ सू० १०२ 'यथायंवाहो' १—हे अश्वनी देवो! जिस भांति रथ के दो घोड़े परस्पर प्रेम से साथ २ कदम व कदम चलते और रहते हैं। उसी भाँति इस गार्हस्थ्य रथ के हम दोनों प्राणी (युगल दम्पत्ति) प्रगाढ़ दाम्पत्य प्रेम बन्धन में रहें; परस्पर विरोध न करें। २—जिस प्रकार पीठ पर बंधी गाड़ी को घोड़ा खीचता है। उसी भांति मैं तेरे मन को खींचता हूं। जैसे वायु से छिन्न-भिन्न हुई घास; एक दूसरे से लिपटती है; वैसे ही तेरा मन मेरे साथ लिपटा रहे। ३—तत्परता से प्राप्त होने वाले; भाग्ययुक्त; अञ्जन के समान हर्षित करने वाले कूठ और नलद (नील-कमल नाल) के समान, हाथों द्वारा अनुकूलता को प्राप्त करता हुं।

'आवयोः अनावयोः' (६।१६-१) सूक्त मे आंखों के रोगों की चिकित्सार्थ सरसों के पत्तों को सरसों के अभिमन्त्रित तैल से चुपड़कर सेक दें और बाँधें। इन चारों ऋचाओं से आज्य होम करके, सरसों के तेल में सरसों के पत्ते भून कर साक खायें। तथा चार शाक वृक्षों के मिश्रित फल पत्ते आदि अभिमन्त्रित कर रोगी को खिलायें। अथवा जिन वृक्ष-औषधि वनस्पतियों की जड़ों में दूध निकलता हो, उनमें से किसी का दूध निकाले, अभिमन्त्रित कर नेत्रों में अंजन की भांति लगायें। तथा मूल में जिनके क्षीर (दूध) निकले-ऐसे वृक्षों की मूल फल पत्रादि ही को भी अभिमन्त्रित कर खायें (मूल-जड़) १—तौविलिक नाम की पिशाची-नेत्र और कर्ण-दोनों ही के (ऐलव) तथा (वभ्रु) एवं (निराल) नाम रोगों के साथ मंत्रबल तथा ऋषियों के तपोबल एवं ब्रह्मबल से परास्त हों।

कां० १-१६ शौनकः। चन्द्रमाः, मन्त्रोक्तदेवताः। अनुष्टुप्, १ निवृत्तिपदागायत्री, ३बृहतिगर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४ त्रिपदा प्रतिष्ठा। छन्दांसि समस्त नेत्रव्याधि भैषज्ये विनियोगः।

आवयो अनावयो रसस्त उग्र आवयो। आ ते करम्भमद्मसि ॥१

विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता। स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥२

तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत्। बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥३

अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा। नीलागलसाला ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ६ सू० १६ "आवयो अनावयो": - हे फैलने और न फैलने वाली औषधियो तेरा उग्ररस है। हम तेरे रस का घोल बनाते हैं। २-तेरा पिता "बिहल्ल" है, तेरी "मदावती" पाता है जिनसे तू बनती है। और अपनी आत्मा की रक्षा करती है। ३-हमें प्रकाश में ला, यह भूमि के सम्बन्ध में कार्य करने वाली की प्रेरणा है। समर्थ, भूरा, भूरे कान वाले अर्थात् जाला फूला, मोतियाबिन्द, रोहों (कुकरे) रचौंध, आदि २ नेत्र व्याधियाँ हमसे दूर रहें। ४-इन तू प्रमादियों को रोकने वाली (अलसाला) है। दूसरी (सिलाजाला) तू अणुतरों (अवयवों) तक पहुँचने वाली है। तथा [नीलागलसाला] नीला, काला पानी, मोतियाबिन्द के पारवारिक व्याधि दोषों के लिए उपयोगी है। ग्रन्थ के प्रथम अध्याय तथा यत्र-तत्र प्रसङ्गों में जो नेत्र व्याधि निवारण औषधियो के उल्लेख हैं, वे सभी इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर प्रयोग करने से लाभप्रद होगी।

नेत्रोपदेश—अथातश्चाक्षुषीं पठतिसिद्धां चक्षुरोगहरां व्याख्यास्यामः। यथा चक्षुरोगाः सर्वतो नश्यन्ति, चक्षुषोदीप्तिर्भवतितस्याहः चाक्षुषी विद्यायाः अहिर्बुध्न्य ऋषिर्गायत्रीछंदः श्रीसूर्योदेवता चक्षुरोग निवृत्तये जपे[पाठे]विनियोगः। ॐ चक्षुश्चक्षुःचक्षुस्तेजः स्थिरोभव मां पाहि पाहि त्वरितं मे चक्षुरोगान् शमय नाशयनाशय; मम जात रूपं तेजो दर्शय दर्शय यथा हमन्धो न स्याम इतिकल्पय कल्पय; कल्याणं कुरु कुरु। येन मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रतिरोधक दुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय, ॐ नमः श्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्यभास्कराय। ॐ नमः करुणा करायामृताय, ॐ नम; श्रीसूर्याय; ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः, ॐ खेचेराय नमः ॐ महते नमः, ॐ तपसे नमो, रजसे असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्मा अमृतंगमय उष्णोभगवान् शुचिरूपः हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः, यद्रूपांचाक्षुष्मतीं विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षि रोगोभवति न तस्य कुलेअन्धो भवति अष्टौब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॐविश्व रूपं घृणितं जातवेदसं स हिरण्मयं पुरुषं ज्योतिरूपंतसहस्ररश्मिः शतधा वर्तमान प्राणः प्रजानामुदयत्येषः सूर्यः ॐ नमो भगवते आदि त्याय अहोवाहिन्यहो वाहिनी स्वाहा। इति श्री अथर्वण वेदोक्त नेत्रोपनिषद् सम्पूर्णम्।

—: गर्भांग निरूपण :—

प्राणी के गर्भों में (देह में) ४ तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु जो मातृज पितृज, आहारज तथा आत्मकर्मज रहते हैं, ये सब क्रमशः चारों के ४-४ होने से १६ हो जाते हैं। इन्हीं से गर्भ शरीर बनता है। इनमें से मातृज विशेष बलवान होने पर मां के तुल्य, पितृज बलवान होने पर पिता के तुल्य, यदि भिन्न हों तो कर्मज के तुल्य समझें। प्रायः आहारज से आहार तुल्य वर्ण होता है, परन्तु रूप में सादृश्य अनिवार्य नहीं।

इसी प्रकार मन भी माता-पिता व (पूर्व कर्मों के तुल्य होता है। बीज ग्रहण के समय गर्भारम्भ में माता-पिता में जिसकी धातु प्रबलता होगी मन उसी के तुल्य होगा। यदि भिन्न है तो पूर्व कर्मानुरूप समझें। अथवा पूर्व देह जाति के सदृश। यदि पूर्व जन्म में देव था तो देव तुल्य, पशु था तो पशु तुल्य मन, स्वभाव होगा। पूर्व जन्म के अभ्यास के संस्कारों से गर्भ में मन का प्रवेश होता है। हम जैसा रूप, स्वर, चरित आदि देखें वैसा ही मन समझें। यदि पवित्रता, आस्तिकता आदि हो, तो ब्राह्मसत्व, ऐश्वर्य भीषणता, शूरता आदि हो तो आसुरसत्व निर्बुद्धि, मूर्ख से पशु सत्व, आदि ये ८ प्रकार के सुश्रुत शरीर स्थान अध्याय ४ में विशेष रूप से वर्णित हैं। शुष्क शोणित बीज ही आत्मकर्म (पूर्व कर्म) गर्भाशय काल इनके दोषों से तथा माता के आहार-विहार के दोषों से दुष्ट हो; आकृति, वर्ण तथा इन्द्रियों की विविध विकृतियों से उत्पन्न करते हैं।

अत्यन्त सूक्ष्म चारों भूतों (गन्ध, स्पर्शरूप, रस, तन्मात्राओं) के साथ मन से प्रेरित आत्मा स्वकर्मवश एक देह से, दूसरे देहों में, प्रविष्ट होता है। सूक्ष्म भूतों का साथ रहना लिङ्ग, शरीर का उपलक्षण हैं। यही महाप्रलय या मुक्ति पर्यन्त प्रत्येक प्राणी के साथ रहता है। मुक्त होने पर लिङ्गशरीर नहीं रहता, आत्मा आत्मरूप हो जाता है। सांख्य कारिका में कहा भी है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वोत्पन्नमशक्तं, नियतंमहदादि सूक्ष्मपर्यन्तम् ।
संसरति निरूपभोगं भावैरभिवासितं लिङ्गम् ॥१॥
स सर्वगः सर्व शरीर भूच्च, सविश्वकर्मा स च विश्वरूपः ।
स चेतनावातुरतीन्द्रियश्च, सनित्यभुक्, सानुशयः स एवः ॥२॥

उपर्युक्त १६ भूतों में ४ आत्मा में आश्रित होने से आत्मा उसमें आश्रित है। सारांश मातृज व पितृज भूत ही शुक्र शोणित है, मातृज रज पितृज शुक्र को रसज पुष्ट करते हैं। जो कर्मज (आत्म कर्मज, पूर्व जन्म कृत) भूत हैं वे आत्मा से नित्य युक्त हो गर्भ में प्रविष्ट होते है, इसी से आत्मा लिङ्गशरीर के साथ स्थूल देह धारण करता रहता है। कर्मज भूतों के रूप से रूप, मन से मन है। रज, तम तथा कर्म से आकृति व बुद्धि में विभिन्नता आती है। लिङ्ग शरीर स्थूल का जनक है, अहङ्कारिक इन्द्रियाँ, इन्द्रियों की स्रष्टा हैं। एक रूप से विभिन्न रूपता में प्राक्तन कर्म कारण है, इसी से कहा है "अन्तमता, सो गता,अर्थात् पूर्व जन्मान्त मन के तुल्य मन समझे"। मन की विभिन्नता में रज, तम कारण है। आत्मा, इन्द्रिय गोचर भूत, कर्भ, मन, बुद्धि, अहङ्कार रूप दोषों से अनुबद्ध है। मन के रज,तमसे आवृत तथा देवकर्म के वल से आवागमन है, सत्व के उद्रेक से रज, तम के अभिभूत होने पर तत्त्वज्ञान, तत्वज्ञान से मोक्ष, लिङ्ग, शरीर, मन, बुद्धि, अहङ्कार के सूक्ष्म भूतों की परमात्मा में विलीनता होती है। यही अन्तरात्मा कहाता है, यही जीव है। इसी को गीता में कहा है—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

श्रुति में भी वर्णन है—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जोव शरदः शतम् ॥

मनुष्य बीज प्रत्येक अङ्ग उत्पादक भाग से युक्त, और स्वानुरूप जीव को उत्पन्न करते हैं। इन्द्रियां आत्मज भोग की साधन, प्राक्तन के अधीन होती हैं। यदि पिता कुण्ठि हो, बीज शुद्ध हो तो पिता के अनुरूप होते हुये भी कुण्टी सन्तति नहीं होगी। अन्धेपन आाद में दुर्दैव कारण होता है। वाह्यविषय ज्ञान के ज्ञान की साधन इन्द्रियाँ हैं। आत्म ज्ञान का वल महान है, आत्मा ज्ञानवान है। उत्पत्तिधर्मा पदार्थ की उत्पत्ति में कर्त्ता और कारण का होना अनिवार्य है। नित्य-पदार्थ के कर्त्ता कौर कारण नहीं होते। आत्मज्ञान नित्य है। वाह्यविषयक ज्ञान कर्त्ता और कारण से ही होता है। ज्ञान के कर्त्ता और कारण आत्मा और करण इन्द्रियादि हैं। अतः आत्मा ज्ञानबान, प्रकृति-निर्विकार, दृष्टा और कारण हैं। सारांश यह है मातृज आदिभाव पाञ्चभौतिक है।

लोकपुरुष :—यह पुरुष लोकतुल्य है, इस लोक में मूर्तिमान जो भाव हैं, वे ही पुरुष में हैं। जो पुरुष में है, वे ही जगत में। अतः "यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे" श्रुति हैं। १ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ अव्यक्त ब्रह्म लोक का पुरुष है। पुरुष की मूर्ति, पृथ्वी, गीलापन, जल, शारीरिक उष्णता, तेज या अग्नि, प्राण, वायु, छिद्रसमूह, आकाश अन्तरात्म-ब्रह्म।

जैसे लोक में ब्रह्मा की विभूति (नाना प्रकार की सृष्टि-सृजन-शक्ति) वैसे ही पुरुष में अन्तरात्मा की है। जैसे लोक में ब्रह्म की विभूति प्रजापति हैं, उसी भांति पुरुष में अन्तरात्मा की विभूति मन है। जो लोक में इन्द्र है वह पुरुष में अहङ्कार, लोक में सूर्य, पुरुष में आदान, लोक में रुद्र, पुरुष में रोष, लोक में सोम, पुरुष में प्रसन्नता, लोक में वसु, पुरुष में सुख, लोक में अश्विनीकुमार पुरुष में कान्ति। लोक में मरुद्गण, पुरुष में उत्साह। लोक में विश्वेदेव, पुरुष में इन्द्रिय विषय। लोक में अन्धकार, पुरुष में मोह। लोक में ज्योति, पुरुष में ज्ञान, लोक की सृष्टि का प्रारम्भ, पुरुष में गर्भाधान, जैसे सतयुग वैसे बालापन,जैसे त्रेता वैसे यौवन, जैसे द्वापर वैसे वृद्धावस्था, जैसे कलि वैसे रोगी होना। जैसे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युग का अन्त वैसे ही मृत्यु। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक को अपने अन्दर देखने वाले पुरुष का आत्मा सुख-दुख, (निवृत्ति-प्रवृत्ति) का कर्त्ता होता है। दोनों (लोक, पुरुष) की उत्पत्ति कर्माधीन हैं, इसी प्रकार वृद्धिक्षय भी।

सर्वात्मगत व्यापार की शान्ति प्रलय की भांति कर्म फल भोगानन्तर अदृष्ट का व्यापार रुकना मृत्यु है। इस लोक का हेतु उत्पत्ति, वृद्धि, उप्लव और वियोग हैं। हेतु उत्पत्ति करण उत्पत्ति जन्म, वृद्धि-बढ़ना उपप्लव दुःख आना वियोग छः धातुओं के विभाग को कहते हैं, उसी को जीव का निकल जाना, वह ही प्राण निरोध (मृत्यु) अङ्ग या लोक स्वभाव हैं। सब दुखों की निवृत्ति शान्ति, प्रवृत्ति लोक का कारण है, शान्ति-पुनर्जन्म न होना, प्रवृत्ति-जन्म होना (शंसार) दुख है। यही ज्ञान सत्य ज्ञान है; लोक में समता का ज्ञान सत्य शान-कारण हैं। लोकपुरुष समता सत्यज्ञान की उत्पत्ति का प्रयोजन है। प्रवृत्ति का कारण मोह इच्छा (राग) द्वेष से किया कर्म है। इसी से पुरुष संसार में जन्म-मरण के बन्धन में पड़ता है। इस प्रकार अहंकार आदि के दोषों से घुमाया जाता प्रवृत्ति में लीन ससार में वार-वार आकर ठुकराया जाता है।

—: आधानकालीन सहवास-विधि :—

गर्भाधान काल में स्त्री औंधी (मुँह छाती नीचे करके) लेटकर अथवा वाम दाहिने करवट लेटकर सहवास न करे। क्योंकि औंधी लेटने से बलवान वायु योनि को पीड़ित करता है, दाहिने कफ गर्भाशय को घेर लेता है, बायें से कुपित हुआ पित्त रज और शुक्र को दूषित करता है, सीधी चित्त रहने से सब दोष शान्त रहते हैं। गर्भाधारण के १ प्रहर बाद शीतल जल से अपने नेत्रों, मुख तथा योनि को धोये। गर्भाधान से पूर्व अधिक भोजन न करे। भूखी प्यासी, भयभीत शोकातुर, जिसका चित्त सहवास में न हो या अन्य प्रकार से चित्त दूषित हो, क्रोध हो, परम पुरुष की कामना हो, जो मैथुन से तृप्त न होती हो, ऐसी स्त्रियों को गर्भ नहीं रहता; रहेगा भी तो कुरूप, निर्गुण, क्षीण इन्द्रिय, क्षीण आयु, या गर्भ पात हो जाता है।

—: गर्भिणी के त्याज्यधर्मं :—

गर्भाधानान्त अग्नि के पास न वैठे, हड्डी, खोपड़ी, चूल्हा, सूप पर न बैठे, ओखली, पत्थर, औजार, भूसादि, बुहारी, कण्ठे पर न बैठे, न सोये, न टट्टी-पेशाब ही करे, खुले वालों से जूठे मुँह से सन्ध्या के समय न सोंये, कठोर भयानक, अहितकारी वाक्य न कहे, निर्जन घर में या वृक्ष के नीचे न सोये. ऐसा 'कारिका' में वर्णित हैं। हाथी, घोड़ा, पर्वत, गाड़ी, सीढ़ी आदि पर न चढ़े, जल्दी-जल्दी न चले, व्यायाम न करे; मयूर, कुक्कुट या शीर्षासन या सर्वाङ्गासन या पद्मासन न करे, शोक न करे, खून न निकाले (सींगी न लगाये) हानिप्रद परिश्रम न करे, दिन में न सोये, रात्रि में अकारण न जागे, मांस, मदिरा, आसवारिष्ट यत्न से परित्याग करे। टेढ़ीमेढ़ी न बैठे, ऊँचे-नीचे विषम स्थान में न फिरे, कठोर आसन पर या उकड़, (जंघा जानुनी मिला कर नितम्ब अधर कर) न बैठे, जँभाई, पेशाब, शौच को न रोके, जुलाब न लें, भयंकर कुएँ, गड्ढ़ें या पहाड़ों के किनारों, शिखरों, मीनारों को न देखें, ये गर्भाधान में बाधक होते हैं, सन्तति-निरोधक हैं।

—: सहवास की विषमता के विपरीत कुछ परिणाम :—

यदि गर्भवती नंगी होकर सोये, अथवा इधर-उधर अधिक घूमे तो उसकी पगली सन्तति होगी। यदि लड़ाई करेगी, तो मृगीरोग की सन्तति होगी, गर्भ धारणान्त अधिक मैथुन करते रहने से विकल, निर्लज्ज, स्त्री के से लक्षणों की सन्तति होगी। निरन्तर शोक करने से भयातुर, दुर्बल, क्षीण आयुवाली सन्तति होगी। यदि गर्भिणी परधनाकांक्षा करे तो सन्तति ईर्षालु, पर उन्नति न देख सकनेवाली स्त्री जैसी सन्तति होगी। अथवा चोर, बधिक, दस्यु, आलसी, अतिद्रोही कुकर्मी सन्तति होगी, गर्भाधानान्त अधिक क्रोध करने से सन्तति अति क्रूर, दम्भी चुगल हो. दिन में या सन्ध्या काल में सोने से सन्तति निद्रालु, आलसी, प्रमादी, मूर्ख, मन्दाग्नि वाली हो। शराबादि पीने से, प्यास अधिक लगे, विकल चित्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को हो । गो मांस खाये तो पत्थरी, मधुमेह, मूत्र कृच्छ वाली हो । सूअर का मांस खाये तो लाल नेत्र-बधिक, कठोर हृदय, कठोर रोमावली वाला पुत्र उत्पन्न हो । मछली खाने से सन्तति देर-देर में या बहुत शीघ्रपलक मारने वाली, तिरछे नेत्रों वाली सन्तति होगी ।

अधिक मीठा खाने से प्रमेह रोगवाली, गूंगी, स्थूलशरीर सन्तति हो। अधिक खट्टा खाने से रक्तपित रोगवाली त्वचा रोगवाली तथा नेत्र रोगवाली सन्तति हो, अत्यन्त खारी वस्तु सेवन से असमय में बाल श्वेत हों । सिकुड़न वाली, गञ्जी सन्तति हो, अत्यन्त चरपरा, तिक्त खाने से मूकपन, वाणीदोष, अल्प वीर्यवाली सन्तान उत्पादन में असमर्थ प्रायः क्लीब सन्तति होती है । अत्यन्त कटु खाने से सूखा रोग वाली, शोथ रोग वाली, निर्बल सन्तति हो । अति कषाय खाने से काले रंग की, अफरा रोगवाली तथा गैस रोगवाली सन्तान उत्पन्न हो । ये आहारजन्य सामान्य स्त्री पुरुषों के ज्ञानार्थ निर्दिष्ट है, जो स्त्री को निर्देश हैं वे पुरुष पर भी घटित होते हैं ।

—: गर्भाधानकर्त्ता पुरुष के कर्म :—

वीजवपन, मैथुन, तीर्थसेवन, श्राद्ध (सातवें मास के ऊपर) नाखून कटाना, पर्वतारोहण, नाव की यात्रा, मुर्दों को ढोना, समुद्र यात्रा, युद्धयात्रा, क्षौरकर्म, लम्बीयात्रा का, पति भी परित्याग करे ।

उत्तम पुत्र उत्पन्न करने की विधि :–(शतपथ ब्राह्मण) यदि वह स्त्री चाहे कि मेरा पुत्र अच्छे बड़े शरीर वाला गौर वर्ण, सिंह सदृश पराक्रमी, ओजस्वी, यशस्वी, पावन, उत्तम स्वभाव का हो तो अविकृत रज तथा गर्भाशय युक्त स्त्री व अविकृत शुक्रयुक्त पुरुष योग्य वैद्य से स्नेहन, स्वेदन के उपरान्त वमन, विरेचनान्त पेयादि क्रम से भोजन योग्य (पथ्याहार) करके आस्थापन एवं अनुवासन कराये, साथ ही पुरुष को मधुर (वृष्य एवं वृहणघृत और दूध का, स्त्री को तैल के उड़दों का निरन्तर सेवन कर रज वीर्य की पूर्णता करलें, रजोधर्म के स्नानान्त पूर्वोक्त विधि से दोनों स्नान, गन्ध, माला श्वेत वस्त्र, चन्दनादिधारण करें । उसी दिन से स्त्री जौ के सत्तू जल मिलाकर वसन्त का छोटी मक्खी का शहद, गौ घृत समान वर्ण के बछड़े की श्वेत गौ के दूध के साथ मिश्रित करे, चाँदी या कांसे के पात्र में लगातार ७ दिन पिये । और प्रातःकाल वह स्त्री साठी चावल (शाली) या जौ भोज्य पदार्थ दही, शहद, और घी से अथवा दूध के साथ मिलाकर खाये, प्रातः सायं दोनों ही समय सेवन करें ।

श्वेतवर्ण के घर में रहे बिछौना, सवारी, वस्त्र, माला भूषण सभी श्वेतवर्ण के हों । सोना, चाँदी को अग्नि लाल में कर जल में बुझा कर अथवा दोनों को जल में उबालकर पीने को ठण्डा करके दे । प्रातः सायं पुष्टगात्र श्वेत बैल, घोड़ा, श्वेतचन्दन या चाँदनी श्वेतवर्ण के गहनों को देखें, सहेली सौम्य हों उसके मनोनुकूल बातें व्यवहार करें । जिन पुरुषों की आकृति चित्र-बचन व्यवहार और चेष्टायें सौम्य हों उन्ही को देखें पति भी प्रिय एवं हितकर व्यवहार करें, किन्तु मैथुन न करें । तदनन्तर, शुभ दिन, तिथि स्वर मुहुर्त्तादि के युक्त युग्म (८, १०, १२, १४, १६) वें दिनों में से ही श्रेष्ठ दिन में पूर्ववत स्नान-वस्त्र धारण कर (प्रजापत्येष्टि) पुत्रेष्ठि विधि से यज्ञ कर गर्भाधान करे ।

गर्भाधान काल में पुरुषवाचक भगवत विभूति महातुरुषों, तेजस्वी, वीर पुरुषों के चित्रों का दर्शन, उनके अनुकरणीय चरित्रों व पराक्रमों का वर्णन, वेद शास्त्रों के पाठ, चिन्तन-श्रवण करायें । यहां उदाहरणार्थ ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, दधीचि, शिव, रन्तिदेव पवनपुत्र, बिदुर, तथा अभिमन्यु एवं वालखिल्य, महर्षि शुकदेव । वर्तमान काल में लाल बहादुर शास्त्री के गर्भकालीन संस्कारों का प्रभाव प्रत्यक्ष, साक्षी है । इस प्रकार इच्छानुकूल पुत्र प्राप्त होता है ।

(यदि योग्य अनुभवी, निर्लोभी वैद्य सुलभ न हो तो स्नेहन, स्वेदन वमन, विरेचन न करे, हल्के स्वल्प पथ्यकर भोजन के साथ पुष्यनक्षत्र में अपामार्ग लाये और ६।६ माशे उसके पञ्चाङ्ग, चूर्ण को सायं प्रातः दूध के साथ ले और रज-वीर्य की शुद्धि करें) ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि स्त्री श्याम वर्ण लाल नेत्र, विस्तृत एवं उन्नत छाती, महाबाहु पुत्र को, अथवा कृष्ण वर्ण काले, मृदु, लम्बे बालों वाला श्वेत नेत्र, श्वेत दन्त, तेजस्वी, आत्मवान को चाहे तो अभिलषित पुत्र के अनुरूप, परिवहं (आसन, बिछौना, फूल भोजन, बस्त्र, गृह आदि की सुव्यवस्था करे अर्थात् श्याम के लिए श्याम, कृष्ण के लिए कृष्ण, सामग्री की व्यवस्था करे और जो अन्य भांति के पुत्र की कामनायें करें वे उसी-उसी प्रदेश के पुरुषों के रङ्ग, रूप, स्वभाव, गुण, वस्त्र, भोजनादि का मन में चिन्तवन तथा व्यवहार-व्यवस्था करें। पुत्र की उत्पत्ति में मन का विशेष प्रभाव पड़ता है। इन विभिन्न वर्ण आदि के पृथक-२ विधि के साथ यज्ञ विधि सब की समान समझें, हां ऋत्विजों विप्रों के यज्ञान्त आशीर्वचन, उसी कामना के पुत्रों के अनुरूप आशीर्वाद श्रवण करना अनिवार्य हैं। स्वयं भी वैसे, वैसे मन में दृढ़ता से चिंतवन करें। इस प्रकार मनोनुकूल पुत्र निश्चय ही प्राप्त होता है।

शूद्रा स्त्री अन्य सब व्यवहार तो करें, यज्ञ न करें केवल मात्र, देवता, अग्नि, सूर्य जल, अश्वत्थ, वट उदुम्बर प्लक्ष, शमी, अश्व, दैल (सांड़) ब्राह्मण, गुरु, तपस्वी एवं सिद्धजनों के दर्शन तथा नमस्कार से वही फल निश्चय से प्राप्त कर लेते हैं।

यदि मनीषि पाठकगण धृष्टता के प्रति क्षमा करें तो पूर्व इसके कि गर्भाधान-संस्कार की विधी का उल्लेख किया जाय; यह लिखना उचित, अनिवार्य आवश्यक होगा कि गर्भाधान काल, गर्भाधान के पात्र, गर्भाधान की विधि, गर्भाधान के नियम, गर्भाधान में बाधक तत्व और उनका निराकरण, गर्भाधान की आवश्यकता, गर्भाधान में असमर्थता, गर्भाधान न कराने में दोष, आदि पर अनुभूत, वेद, शास्त्र विहित विधि ही यही प्राजापत्येष्टि में वर्णित है, सर्वश्रेष्ठ है।

गर्भाधान काल निरूपण (आधान-ज्ञान)

प्रतिमास मंगल व चन्द्रमा के हेतु से स्त्री को ऋतुधर्म होता हैं। जब स्त्री की राशि से चन्द्र ३, ६, १०, ११ (उपचय) को छोड़ अन्यत्र अनुपचय में जाये, और गुरु की दृष्टि हो तथा पुरुष की राशि से ३, ६, १०, ११ वें दृष्ट हो तो उस स्त्री को पुरुष संयोग से निश्चय सत्पुत्र होता है। आधानलग्न से ७ वें पापग्रह (भौ० श० के०) की दृष्टि हो तो रोषपूर्वक सौम्यग्रह (बु० गु० शु०) से दृष्ट हो तो सहर्ष संयोग हो। आधान काल में शुक्र, रवि, चन्द्र, और अपने अपने नवांशों में हों, गुरु लग्न से १, ४, ७, १०, ५, ९ वें हों तो निश्चय पुत्र सन्तान हो। रवि से ७ वें भौम या शनि हों तो स्त्री के लिए रोगप्रद हों। रवि से १२, २ शनि, मंगल हों या दृष्टि हो तो पुरुष, चन्द्र से १२, २ शनि, मंगल हों या दृष्टि हो तो स्त्री को घातक हों। अथवा श० मं० में से एक युत, अन्य से दृष्ट, रवि पुरुष को चन्द्र स्त्री को घातक हो। दिन में गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह, व रवि पितृग्रह, रात्रि में हो तो चन्द्र मातृग्रह, व शनि पितृग्रह होते हैं। पितृग्रह विषम, मातृग्रह सम हों तो क्रमशः पिता-माता को शुभ,यदि पाप १२वे भावमें हो, और पाप दृष्ट हों,शुभ ग्रहों से अदृष्ट हों, अथवा लग्न में शनि हो, क्षीण चन्द्र व भौम की दृष्टि हो तो आधान होने पर स्त्री-मरण हो लग्न व चन्द्र दोनों या एक-एक भी दो पापग्रहों के मध्य हो तो स्त्री गर्भाधानान्त, दोनों (स्त्री व गर्भ) एक साथ या आगे पीछे मृत्यु को प्राप्त हों। लग्न व चन्द्र से ४ चौथे पाप हों, भौम ८ वे, अथवा लग्न (१) में ४।१२ वे शनि हों चन्द्र क्षीण हो तो गर्भवती का मरण होता है। यदि लग्न (१) में भौम और ७ वें में रवि हों तो गर्भवती का शस्त्र से मरण होता है। गर्भाधान काल में जिस मास का स्वामी, अस्त हो उस मास में गर्भस्राव हो।

आधानकालिक लग्न

आधानकालीन लग्न, या चन्द्र के साथ, अथवा इन दोनों से ५, ९, ७, ४, १० वें शुभ (बुध,गुरु,शुक्र,चन्द्र) हों और ३, ६, ११ वें पाप ग्रह (भौम, शनि, केतु) हों, तथा लग्न, व चन्द्र पर २ की दृष्टि हो, तो गर्भ सुखी हो। रवि, गुरु, चन्द्र, व लग्न ये विषम राशिमें या नवें हों अथवा रवि, गुरु, विषम के हों तो पुत्र जन्म उक्त सब सम राशि में या नवम स्थान में हों अथवा भौम, चन्द्र व शुक्र शुभ राशि में व नवमें स्थान में हों तो कन्या, द्विस्वभाव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के साथ हों, बुध, दृष्ट हों तो यमल (जुड़वां) जन्म हो। यदि दोनों प्रकार के ग्रह हों तो एक पुत्र एक कन्या हो, लग्न से ३।५ शनि भौम, केतु हों तो भी पुत्र जन्म हो।

क्रमशः विषम एवं सम राशि में रवि, चन्द्र या बुध शनि एक दूसरे को देखते हों, या सम राशि में रवि की विषम राशि का भौम देखें। अथवा विषम तथा सम राशि में गये हुए लग्न व चन्द्र पर भौम की दृष्टि हो तो सब योगों में नपुंसक ही हो। शुक्र चन्द्र सम राशि के हों,बुध, मंगल लग्न व गुरु विषम राशि के हों,पुरुष ग्रह से दृष्ट हों, या लग्न चन्द्र सम हों, या पूर्वोक्त बुध, मगल, लग्न गुरु सम राशि के हों, तो यमल जन्म होता है। यदि बुध ३।६ की राशि के नवम में हों, द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह (लग्न को)देखे तो ३ सन्तान एक साथ होती हैं। उनमें से २ बुध के तुल्य १लग्नेश के तुल्य होती हैं। यदि बुध व लग्न तुल्य राशि के हों और नवांश में गये हों तो तीनों एक से समझे। यदि धनराशि का अन्तिमांश लग्न हो, उसी अंश में बली ग्रह हो, और बली बुध व शनि से दृष्ट हो तो उसके अधिक सन्तान होवें।

गर्भमासों के अधिपति—(विशेष)

प्रथम मास-शुक्र, द्वितीय-मंगल, तृतीय-गुरु, चतुर्थं-रवि, पांचवे के इन्द्र, छटवे शनि, सातवे-बुध, आठवे-आधान लग्नेश, (भगवान विष्णु) रवि और चन्द्र ये आधान से प्रसव पर्यन्त के स्वामी कहे हैं, (ना० पूर्वार्द्ध द्वितीय स्कन्ध ज्योतिष) में वर्णित। आधानकाल में जो बली या निर्बल हों वैसा ही उस मास का फल समझे। जैसे बुध ५।९ वे हों, अन्य ग्रह निर्बल हो, तो शिशु के २ मुख, ४ पैर, ४ हाथ हों। चन्द्र द्वितीय स्थान में हो, अन्य सब पापग्रह की सन्धि में हों तो शिशु गूंगा हो।

यदि उपर्युक्त ग्रहों पर शुभ ग्रह बु० गु० शु० और चन्द्र की दृष्टि हो तो शिशु देर से बोले मं० श० बु० की राशि या नवांश में हो तो गर्भ ही में दांत निकल आयें, चतुर्थ का स्वामी (कर्क) चन्द्र या लग्न में हो तो कुवड़ा हो। मीन का लग्न हो, श० म० वच से दृष्ट हो तो पंगु हो। पापग्रह व चन्द्र राशि ४ में सन्धि में हो, शुभ (चं० बु० गु० शु०) से अदृष्ट हो तो मूर्ख हो। मकर का अन्तिम अंश लग्न में हो, श० चं० र० से दृष्ट हो तो बौना हो। ५।९ लग्न के द्रेष्काण में पाप ग्रह हों तो क्रमशः पैर, शिर या हाथ से रहित हो यदि गर्भाधान के समय सिंह के रवि, चन्द्र पर श०, मं०, की दृष्टि हो तो नेत्रहीन हो।

यदि शुभ (चं० बु० गु० शु०) दोनों की दृष्टि हो तो फूली हो। लग्न से १२ वे चन्द्र हो तो बाँया, रवि हो तो दांया नेत्र नष्ट हो। ऊपर के अशुभ योगों पर शुभ ग्रह (च० बु० गु० शु०) की दृष्टि हो, तो फल पूर्ण नहीं होता है। यही कर्मज फलों का प्रभाव है, ऐसी दशा में देवाराधनान्त चिकित्सा से अशुभ का शुभ फल हो जाता है।

यदि आधान लग्न में शनि का नबांश हो, शनि ७ वे हों तो ३ वर्ष के उपरान्त प्रसव हो, यदि लग्न में चन्द्रमा का नवांश हो, और चन्द्र ७ वे हों तो १२ वे वर्ष पर जन्म हो, आधानकाल में जिस द्वादशांश में चन्द्र हो, उससे उतनी ही संख्या आगे की राशि में चन्द्रमा के जाने पर प्रसव हो। द्वादशांश भुक्त अंश आदि को २ से गुणा कर ५ से भाग दे, लब्धि राशि अंश कला, विकला मान की सूचक समझें। यह महर्षि नारद को उनके वरिष्ठ पिता ब्रह्मा जी के पुत्र ने कही थी, जिनकी विशेष चर्चा त्रिस्कन्ध ज्योतिष नारद पुराण में है।

गर्भाधान काल: (पारस्कर:)

भगवान आत्रेय जी ने चरक सहिता (शरीर स्थान) द्वितीय अध्याय श्लोक में अतुल्य गोत्र भिन्नगोत्रीय स्त्री जो रजोधर्म से शुद्ध ब्रह्मविधि से विवाहित हो, को गर्भाधान की आज्ञा दी है। अन्यथा वश विच्छेद कुष्ठ, अक्षि रोग, दमा, यक्ष्मादि से पीड़ित होते है यह द्विजाति मात्र को ही है, महर्षि याज्ञवल्क्य एवं व्यास जी ने (पारस्कर) हेमाद्रि में शंख ऋषि एवं व्यास जी ने कहा है। उसका सार अध्याय १ में है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रजापत्येष्टि (पुत्रेष्टि) प्रकरण के सन्दर्भ में स्त्रियाँ ८ प्रकार की बन्ध्याओं और भी निम्न रोगों से आक्रान्त स्त्रियों की अनुभूत वैदिक साहित्य से सम्बन्धित औषधिओं का उल्लेख किया जाता है।

रक्तस्राव :—(१) शैलूत्वच (लिहशौड़े की छाल) और साठी चावल की पोटली बाँध कर स्त्री भग में आध घन्टे, २।३ दिन रक्खे। (२) आंवला, हल्दी और निसोत का चूर्ण, जल के साथ पीने से अत्यन्त वेग के साथ आनेवाला स्त्रियों का रक्त बन्द हो जाता हैं। (३) साठी चावल के जल में सरफोंका की जड़ पीस कर १० माशे पिलाने से ३ दिन में स्त्रियों का रक्त का अति वाह बन्द हो जाता है।

सभी प्रदर :—घी और शहद के साथ देवदारू, रसाञ्जन, चिरायता, भिलावा, अडूसा और नागरमोथा का काढा पीने से वड़े से वड़ा प्रशूल, पीत, श्वेत, रक्त और कृष्ण आदि सभी प्रकार के प्रदर शान्त होते हैं। २१ दिन प्रातः सायं लें।

बन्ध्यात्व दोष नाशन :—केवल रविवार के दिन पत्तोंसहित सर्पाक्षी (सुगन्धरा) की जड़ लाकर एक वर्ण की ही गौ के दूध में क्वारी, बिना रजवाली कन्या के हाथ से पिसवाकर ऋतुकाल में पीने और पथ्य में दूध, साठी चावल का भात, मूग की दाल, शीघ्र पचनेवाले आहार करने से, बन्ध्या गर्भवती हो जाती है। औषध सेवन काल में उद्वेग, भय, शोक, दिन में शयन, अधिक परिश्रम, शीत, उष्ण और अधिक सेवा न करनी चाहिये। नियमित औषधि सेवन करने के उपरान्त ३ बार पति से सम्भोग करे। स्वरादि का ध्यान रक्खे, तो निश्चय गर्भ धारण कर लेती है।

उपरोक्त पथ्य के साथ ही नागरमोंथा, कागनी वेर, लाख और शहद के समान भाग, चावल के जल के साथ प्रतिदिन १० माशे, प्रातः सायं ७ दिन पिये तो बन्ध्या पुत्रवती होती है। (३) पीपल, केशर, अदरख और काली मिर्च को घी में मिला कर पीने से बन्ध्या स्त्री को भी पुत्र हो जाता है। (४) सफेद कटेहरी की जड़ और जटामासी के पत्ते को दूध में पीस कर, ३ दिन पिये, दूधादि स्वल्प आहार करे तो निश्चय ही बन्ध्या पुत्रवति हो जाती है। (५) असगन्ध को जल में पकाकर घी में भूने, ऋतु स्नानान्त दूध, घृत, मधु के साथ पिये। नियम सभी पर लागू हैं। (६) ऋतु स्नानान्त काल विष्णुक्रान्ता की जड़ को गो दुग्ध में पीसकर, ३ दिन पिये। (७) धारोष्टा गोदुग्ध में नागर केशर का चुर्ण मिला कर, ७ दिन पिये, दूध घी का भोजन करे। (८) युवा भैंस के १ सेर मूत्र में काले तिल, रस, गुड़ मिलाकर, गौ के गोबर के कण्डे में पकावे। ऋतुकाल के दिन ७ वार पिये तो वन्ध्या पुष्पिता होती है। अवश्य पुत्र प्रसव करती है। (९) कदम्ब के पत्र, सफेद चन्दन और श्वेत कटेरी की जड़ का सामान भाग बकरी के दूध में पीस कर, ऋतुकाल में ३ या ५ रात्रि तक पिने से बन्ध्या गर्भवती हो जाती है। (१०) युवा भैंस के दूध मे विष्णुक्रान्ता को पीस कर मवखन के साथ (**काकबन्ध्या**) ऋतुकाल में ७ दिन तक भक्षण करें। (११) पूर्वोक्त पथ्य करे तो निश्चय बन्ध्या गर्भ धारण कर लेती है।

मृतवत्सा स्त्री भैषज्य : रविवार में, कृतिका नक्षत्र में, पूर्वाभिमुख हो (कर्कोटकी) सहदेवी, पीतपुष्पा को उखाड़ लावे उसे तामें के पात्र में रक्खे रात्रि के वासे पानी मे पीसकर, ऋतुकाल में ७ दिन १०।१० मासे पीने से दीर्घ आयु का पुत्र निश्चय से होता है। (१२) ऋतुकाल में पुराने विजोड़े की जड़ को दूध में सिद्धकर उसमें घी, मधुर, दूध मिला पान करें। २ घन्टे बाद गर्भ धारण करे, तो दीर्घायु का पुत्र ही होता है।

गर्भ स्तम्भन : -गर्भिणी को प्रथम गर्भमास में सहसा वेदना हो तो पद्माख, खस, लालचन्दन सम भाग ले चूर्ण करे। १।१ पल ३ दिन गोदुग्ध के साथ दें। अथवा देवदारू, मुलहठी, छोटे सिरस के बीज, क्षीरन्त कोली, समभाग चूर्ण। १।१ पल गोदुग्ध के साथ पिलायें तो गर्भ क्षीण नही होता, रुक जाता है। (२) दूसरे मास की गर्भ-वेदना में नीलकमल की जड़, मुलहटी, काकड़ासींगी, समभाग चूर्ण १।१पल ३ दिन गोदुग्ध के साथ पिलायें। (३)पीपल की छाल जटा, काला तिल, शितावर, मजीठ समभाग चूर्ण १।१ तोला ३ दिन चौगुने दूध में मिला कर पिलावे तो गर्भ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुक जाता है । (४) तीन मास की गर्भवती को गर्भ वेदना हो तो चन्दन, तगर, कूठ, कमल की जड़, पद्मकेशर अथवा क्षीरकाकोली, सुगन्धवाला पीसकर ठण्डे जल में पिलायें । वेदना शान्त होकर गर्भ रुक जाता है । (५) चौथे मास की गर्भवती की वेदना में नीलकमल, कमल की जड़, गोखरू और कसेरू का चूर्ण को गोदुग्ध के साथ पिला दें ।(६) पांचवें मास की गर्भवेदना में पुनर्नवा, काकोली, तगर, नीलकमल ओर गोखरू का समभाग चूर्ण १।१ तोला गोदुग्ध में साथ पिलायें । (७) छठवें मास की वेदना में, तामे का पात्र का रात्रि का रक्खा पानी, कैथ (कपित्थ) का गूदा, और मिश्री मिलाकर गोदुग्ध के साथ पिलायें । (८) सातवें मास की वेदना में कसेरू, पुहकरमूल की जढ़, सिंघाड़ा और नीलकमल समभाग पीसकर पिलायें । (९) आठवें मास की वेदना में मुलहठी, पद्माख, मोथा, केशर, गजपीपल, नीलकमल सम भाग १।१ तोला गोदुग्ध में मिलाकर दें । (१०) नवें मास की वेदना में इन्द्रायण का वीज शीतलचीनी मधु के साथ पिलायें । (११) दसवें मास की गर्भ वेदना हो तो मिश्री, मुनक्का, छुहाड़ा, नीलकमल दूध में शहद मिलाकर पिलायें । अथवा सौंठ के साथ सिद्ध गोदुग्ध या दूध के साथ मुलहटी, देवदारू और सोंठ पिलायें । इनसे गर्भ स्तम्भन हो, वेदना दूर हो जाती है । (१२) यदि स्त्री एक सप्ताह तक नियमित आँवला से विराञ्जन, लोध या मुलहटी को गोदुग्ध के साथ लगातार पिये तो गर्भ स्थिर हो जाता है । फिर इधर उधर नहीं हिलता है । (१३) कुम्हार के हाथ की लगी हुई चाक पर की मिट्टी बकरी के दूध में मिला कर पिये तो गर्भ कदापि नहीं गिरता है । (१४) कसेरू, सिंघाड़ा, जीरा, नागर-रेड़ी, शतावर से सिद्ध गोदुग्ध में मधु मिलाकर पीने से गर्भ नहीं गिरता है । (१५) दूध में (कौमुदक) 'कोंई' की जड़ गोदुग्ध में औंटाकर ठण्डा करके मधु, घृत मिलाकर विधिवत नियमित ७ दिन पीने से गर्भस्राव, अरूचि, वातरोग, सूजन, त्रिदोष, चमकन। और अन्य पीड़ायें सभी नष्ट हो जाते हैं । (१६) कमलकन्द गोदुग्ध में, तिल, मिश्री, मधु मिलाकर पीने से सभी गर्भकालीन दोष शान्त होते हैं । गर्भ नहीं गिरता है । (१७) ह्वीबेर, अतीस मोथा और मिर्च (काली) का जल (काढ़ा) लेने से गर्भरोग नष्ट हो जाते हैं ।

शुष्कगर्भ निवारण विधि :— गोदुग्ध में शक्कर मिलाकर पिलाने से गर्भ का सूखना रूक जाता है ।

सुख से प्रसव :— श्वेतपुनर्नवा की जड़ का चूर्ण योनि में रख देवें तो तुरन्त विना क्लेश प्रसव हो जाता हैं। (२) दशमूलक्वाथ में घी, सेंधा लवण मिलाकर पीने से सुख से प्रसव होता है ।

नष्टपुष्पा का दोष निवारण :— कलिहारी कन्द का चूर्ण और चिचिरा अपामार्ग अथवा इन्द्रायण की जड़ की पोटली बना योनि में रख लेने से युवा स्त्री का वन्द हुआ रजोधर्म पुनः होने लगता है । (२) तिल की जड़ के काढे में ब्रह्मदण्डी की जड़, मुलहठी, सौंठ, कालीमिर्च और पीपल का चूर्ण पकाकर पीने से युवा स्त्री का रुका हुआ रजोधर्म, रक्तगुल्म, ये दोनों अच्छे हो जाते हैं । (३) माल कांगनी के कोमल पत्ते अग्नि पर भुरभुरा कर, दुपहरिया, मोरछली के पुष्प के साथ पीस कर पीने से युवा का भी नष्ट रजो धर्म पुनः होने लगजाता है ।

पति वशीकरण :— घी, मधु, शुद्ध गोरोचन, मछली का पित्त, मोर का शिखा (कंचोरी) और भिलावा को भग के अन्दर लेप कर गर्भधारण करे तो पति यौवना, रूपवती अन्य स्त्री को कभी भी पसन्द नहीं करता । (२) कुलथी बेल पत्र, गोरोचन, मनःशिल सम भाग तांबे के पात्र के वासी पानी में रखकर ७ दिन तक तेल में पकावे, उसे भग में रखकर संभोग करे तो पति वशी हो, (३) घोड़े के मूत्र में कांगनी, सौंफ, केसर, वंशलोचन मिला भग मे लेप कर नीम की लकड़ी की धूप देकर सम्भोग करे ।

स्तनदोष निवारण :— काली गौ के दूध में सफैद मोथा पीसकर स्तनों पर लेप करने से वृद्धा स्त्री या कन्या के भी गिरे स्तन उठ जाते हैं । (२) वच, असगन्ध की जड़ और पत्र तथा गजपाल को पीसकर स्तनों पर लेप करे तो स्तन उठ आते है । (३) गम्भीरी के पत्तों का रस, उतना ही तेल, दोनों के वरावर जल को पकायें, जब केवल तेल शेष रहे, छानकर एक दिन लेप करे, स्तन लोहे जैसे कठोर हो जाते हैं ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योनि दुर्गन्धि निवारण :— स्त्रीयोनि को नीम के जल से धोकर, नीम की छाल का लेप करे, तो दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है।

स्त्रीयोनि सङ्कोच :—दारुहल्दी, खाने की हल्दी, कमल की केशर, देवदारू की लकड़ी, समभाग पीसकर, भग में नीचे-ऊपर लेप करें तो भग संकुचित हो जाता है। (२) धाय के फूल, त्रिफला, जामुन की छाल, गूदा और रसाधी, मुलहटी समभाग लेकर मिलाले, भग पर लेपें तो वृद्धा का भी भग संकुचित हो जाता है। (३) नीलकमल, कटेहरी, बच, कालीमिर्च, कन्नेर. असगन्ध और हल्दी समभाग पीस कर भग पर लेपने से तुरन्त भग सकुचित हो जाता है।

स्त्री द्रावण :—भग में सिन्दूर, इमली का फल, मधु, समभाग लेपने के उपरान्त संसर्ग करे तो शीघ्र स्खलन हो जाता है, ऐसा लेख है। या त्रिफले का चूर्ण, मधु लेपें; या पीपल, चन्दन, कटेहली, पकी इमली पीसकर लेपकर संसर्ग करने से स्त्री शीघ्रस्खलन होता है।

स्त्रीवशीकरण :—कागंनी, तगर, कूठ, चन्दन, नागकेसर, और धतूरे के पञ्चाग(जड़, फल, फूल, पत्र, शाखा) का समान भाग एकत्रित कर गोली बना, छाया में सुखालें। "ॐ **नमोभगवते उड्डामेश्वराय मोहय मोहय मिलि मिलि ठः ठः।** से सात बार अभिमन्त्रित कर, जिस स्त्री-पुरुष को खिलाये, वह आजन्म खिलानेवाले के वशीभूत हो जाता है। इसका ३० हजार जप पीपल के नीचे रात्रि में करे तो सभी को वशीभूत कर लेता है।

मुख-स्तम्भन :—भरणी या पुष्य नक्षत्र में पूजाकर विधिवत चम्पा का वन्दाक लावें, हाथ में बाँधे उसके सभी वश में होते हैं। यही सुदर्शन की जड का फल भी है। निम्न मन्त्र एक हजार जपें. वाद में ७ बार अभिमन्त्रित करें। मन्त्र—"ॐ **ह्रीं सः अमुकं ये वशमानय स्वाहा।** उपर्युक्त जड़ियों का तिलक भी करें।

स्त्रीवशीकरण :—१) चिता की भस्म, बच, कूठ, कुंकुम, गोरोचन समभाग चूर्ण स्त्री के शिर पर छिड़कें। (२) काला कमल, भौंरे के दोनों पंख, अगर की जड़, सफेद काकजंघा का चूर्ण, स्त्री के शिर पर छिड़कें।

लोमनाशन :—पलाश और हरताल की भस्म को केला के जल में मिला कर, योनि आदि पर लेप करें तो लोम गिरें। (२) केले के जल में एक भाग हरताल की भस्म, पांच भाग कमल की भस्म, और पांच भाग पिलखन की भस्म मिलाकर योनि में लेपें। (३) हरताल और गन्धक का चूर्ण, मजीठ की भस्म और पलाश के फूल के समान भाग कर लेप करने से लोम गिर जाते हैं। (४) हरताल, शंख के चूर्ण को खारे जल (चूने के पानी) में मिलाकर लेपें, घाम में खड़े हो जावें, वाल तुरन्त गिर जावें। (५) सुपाड़ी के पत्ते के रस में आमलासारगन्धक पीसकर लेपें, घाम में बैठ जावें, तो तुरन्त बाल गिर जावें।

नपुंसकता निवारण :—जिस पुरुष की गर्भधारक शक्ति क्षीण हो गई है, उसके वीर्य में गर्भधारण करनेवाले जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, वीर्य पतला होकर शीघ्र पतन, बार-बार मूत्र दोष, शिश्नेन्द्रि छोटी. पतली, शिथिल हो जाती है। इसके लिये ग्रन्थ में प्रथम अध्याय और "प्राजापत्येष्ठि" में उल्लेख हो चुके हैं। तथापि कुछ प्राचीन महापुरुषों से उपलब्ध उनके अनुभूत प्रयोग दिये जाते हैं :—[१] कूठ, छोटी पीपल, छोटी-बड़ी खरैंटियां बच, असगन्ध, गजपीपल, कन्नेर की जड़ को भैंस के मक्खन में मिलाकर ४१ दिन शिश्नेन्द्रि पर लेपें तो इन्द्रिय (मृत प्रायः भी) उठकर मुसल के तुल्य हो जाती है। (२) तेल में लोध, केसर, असगन्ध, पीपल, शालपर्णी को पका कर लेपें। (३) युवा भैंस के मक्खन में बच, खरैंटी तथा पारा मिला कर लेपें तो लोहे के तुल्य इन्द्रिय हो जाती हैं। (४) मिलाये का गूदा, सेवार बड़ीकटेरी, कमल का पत्र, जलाकर पानी में पीसें, लेपकरें तो अश्व की योनि के तुल्य कठोर, वड़ी हो जाती है। (५) असगन्ध, शितावर, कूठ, जटामांसी. और कटेहरी के फल उससे चौगुने दूध अथवा तेल में पकाकर लेप करे तो स्तन, लिंग, कान, हाथों की वृद्धि होती रहती है। (६) युवा भैंस के घी में मूसली के चूर्ण को मिलाकर लेप करें। तथा पीपल, सेंधालवण,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूध और मिश्री का लेप करें। (७) जटामासी, बहेड़ा कूट, असगन्ध और शतावर को तेल में पकाकर लेप करें। (८) पारा, असगन्ध, हल्दी, गजपीपल तथा मिश्री को जल में पीसकर १ मास तक लगातार लेप करें, तो लिङ्ग, योनि, कान, स्तनादि को अद्‌भुतरूप से बढ़ा देता है। उपर्युक्त औषधियाँ प्रायः समभाग ही लें।

दाड़ का दर्द :—वन अरहर [मध्य प्रदेश के ज्वार के खेतों में होती है, इसके पत्ते देशी अरहर से कुछ छोटे होते हैं, क्षुप भी छोटा होता है, तुषारपात (कुहरा) के जैसे छोटे दाने अरहर से होते हैं। फूल पीला, इसके पत्तों का **रस** दाड़ दर्द के दूसरी ओर के कान में डाले, तो कीड़ा कान के रास्ते निकल जायेगा।

पीनस रोग :—मध्य प्रदेश के रायसेन जिला सियौर आदि स्थानों मे इसका पेड़ होता है, पत्ते गांठों में होते हैं, गाठ में से आगे फुटाव होता है, फूल पीला होता है, जो गांठ में ही होता है, उसी में दाने रहते हैं। उसके दानों का रस नाक में निचोड़ें तो पीनस का कीड़ा अलग निकल जाता हैं। घाव, अवाज, पीनसादि तुरंन्त ठीक होजाते हैं।

धातु-पुष्टि : तालमखाना के बीजों को १ तोला की मात्रा १ बार में प्रातः सायं दूध मे औटाकर लें, कोष्ठ-वद्धता धातु पुष्टि करता है। परिश्रम कर इसे पचावें। यह छोटासा पेड़ तराई में होता है। धातु पुष्टि में न्यूरी रसभेद मूसली से आधी पतली सी इन्द्रजौ के तुल्य होती है। इसे १॥ चावल के बराबर पान में रखकर प्रातः-सायं सेवन सूर्यास्त में ही ले, दूध-घी पर्याप्त लें। मध्यप्रदेश में बिन्ध्याचल में होती है। रिक्ष का यह प्रिय भोजन है, वाजीकरण है।

मधुमेह (सुगर) :—जंगली उर्दी [कुदरती] ही होती है। उसकी जड़ को सुपाड़ी की तरह मुंह में चूसते रहें। ४१ दिन में ही शुगर ठीक हो जाता है।

कन्या के चार पति

कुमारी कन्या के ३ दिव्य दैवी पति होते हैं, मानव चतुर्थ पति होता है। (अ. वे. कां १४ सू. २ मंत्र ३व४)

सोम॑स्य जा॒या प्र॑थ॒मं ग॑न्ध॒र्वस्तेऽप॑रः॒ पति॑ः। तृ॒तीयो॑ अ॒ग्निष्टे॒ पति॑स्तु॒रीय॑स्ते मनु॒ष्य॒जाः ॥३

सोमो॑ ददद् गन्ध॒र्वाय॑ गन्ध॒र्वो द॑दद॒ग्नये॑। र॒यिं च॑ पु॒त्रांश्चा॑दाद॒ग्निर्म॒ह्य॒मथो॑ इ॒माम् ॥४

अर्थ—यह सर्वप्रथम सोम की स्त्री है, द्वितीय पति गन्धर्व है, तेरा तृतीय पति अग्नि है, और चतुर्थ पति मानव है। ४—जिसको सोम गन्धर्व को देता है, गन्धर्व, अग्नि को सोंपता है, तदनन्तर इसी कन्या को तथा अग्नि ऐश्वर्य एवं पुत्रोतपादन शक्ति के साथ, मनुष्य के स्वाधीन करता है।

(इसकी पुष्टि ऋग्वेद 'कां. १०।८५।४०' से होने से यह निर्विवाद सत्य है। **सोमः प्रथमो विविदे, गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पति स्तुरीयस्ते मनुष्यजाः।** इस कन्या को प्रथम सोम ने प्राप्त किया, द्वितीय वार गन्धर्व ने, इस कन्या को पत्नीरूप में स्वीकार किया, तीसरा पति अग्नि हुआ और चतुर्थ मानव हुआ। इस निर्विवाद ध्रुव सत्य ब्रह्म उद्घोष को मातापिता (अभिभावुक जन) कन्या के वैधव्य, दौर्भाग्यप्रद, वन्ध्यापानादि समस्त दोषों के परिहारार्थ इन्हीं निम्न मन्त्रों द्वारा होमकर, विधिवत वरुणकलशमें वरुण एवं इन्ही सभी देवों का आवाहनादि कर अर्चन करें, अथवा अश्वत्थ की पूजाकर इन दोनों ही या किसी एक ही के साथ, विवाह नक्षत्रों में मानवपति के साथ पाणिग्रहण संस्कार से पूर्व ४ फेरे डलवा दें; तो कन्या के उपर्युक्त दोषों का निवारण हो जात है, ऐसा प्राविधान वेदों का ही है। विवाहों में ४ फेरे भी इसी कारण से डाले जाते हैं। इनके पूर्व निम्न मन्त्रों से देवगुरु की दीक्षा कन्या को दिलायें। अ० कां० १४ सू० २

उ॒श॒तीः क॒न्यला॑ इ॒माः पि॑तृ॒लो॒कात् पतिं॑ य॒तीः। अव॑ दी॒क्षाम॑सृक्षत॒ स्वाहा॑ ॥५२

बृहस्पति॒नाव॑सृष्टां विश्वे॑ दे॒वा अ॑धारयन्। वर्चो॒ गोषु॒ प्रवि॑ष्टं यत् तेने॒मां सं सृ॑जामसि ॥५३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमाँ सं सृजामसि ॥५४
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमाँ सं सृजामसि ॥५५
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमाँ सं सृजामसि ॥५६
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमाँ सं सृजामसि ॥५७
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमाँ सं सृजामसि ॥५८

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥५९
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६०
यज्जामयो यद् युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६१
यत् ते प्रजायां पशुषु यद् वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६२
इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका । दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥६३
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती । प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यऽश्नुताम् ॥६४

अर्थ ५२—पति कामिनी ये कन्यायें, पितृग्रह से पतिग्रह जाने वाली, देवगुरु के प्रदत्त* व्रत को धारण करें, (गृहस्थ धर्म की दीक्षा) का यह उत्तम उपदेश है । ५३–देवगुरु द्वारा निर्धारित गृहस्थ धर्म दीक्षा को, सब देवों ने धारण किया. जो बल, तेज, सौभाग्य, यश, दूध, रस गौओं में प्रविष्ट हुआ है, उससे इसको संयुक्त करते है । ५८ पर्यन्त यही भाव है । मन्त्र ५९ से ६२ पर्यन्त........ ..., यदि ये लम्बे बालों वाले लोग, तेरे घर में नाचते रहें, और रोने से पाप करते रहें. और यदि यह पुत्री; बालों को खोलकर, तेरे घर में रोती रही, रो-रोकर पाप करती रही* । जो बहिनें और स्त्रियाँ, तेरे घर में रोती रहीं औंर रोकर पाप करती रहीं* । जो तेरी सन्तति में पशुओं में, तेरे घर में, पापियों ने पाप किये, अग्नि और सविता उस पाप से तुझे बचायें । ५९।६२ १४।२,

यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् । विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥६५
यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् । तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥६६
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६७
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः । अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यंऽलिखात् ॥६८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अङ्गा॑दुङ्गाद् व॒यम॒स्या अप॒ यक्ष्म॒ं नि द॑ध्मसि ।

तन्मा प्राप॑त् पृथि॒वीं मोत दे॒वान् दिव॒ं मा प्राप॑दु॒र्वं१॒न्तरि॑क्षम् ।

अ॒पो मा प्राप॒न्मल॑मे॒तद॑ग्ने य॒मं मा प्राप॑त् पि॒तॄंश्च सर्वा॑न् ॥६९

सं त्वा॑ नह्यामि॒ पय॑सा पृथि॒व्याः सं त्वा॑ नह्यामि॒ पय॒सौष॑धीनाम् ।

सं त्वा॑ नह्यामि प्र॒जया॒ धने॑न॒ सा संन॑द्धा सनुहि॒ वाज॒मेमम् ॥७०

जो पाप बैठक, सिराहना, बिस्तरा, वस्त्र, उपवस्त्र पर किया था, तथा विवाह में जो अभिचार या कृत्या के हिंसक प्रयोग तुझपर किये गये थे,उनको इस अभिमन्त्रित जल स्नान से धो डालते हैं।६५। जो विवाह में,जो बरात में,जो रथ में, दुष्ट कृत्य, मलिन कृत्य किये गये, उन्हें सम्मल के कम्बल में धो डालते हैं। ६६। सम्मल में मल डालकर पाप को कम्वल में (कङ्कण में) रखकर हम यज्ञ करने योग्य पवित्र हों। वह हमें दीर्घजीवन प्रदान कर। ६७-६८। हम इसके प्रत्येक अङ्ग, प्रत्यङ्ग,गुह्याङ्ग सम्बन्धी विषयों से पाप,रोग,दूर हटाते हैं। यह पाप,रोग, पृथ्वी पर न जाये,न देवों में ही जावे, द्यु लोक या अन्तरिक्ष लोकों को भी प्राप्त न हो। हे अग्ने ! यह मल जल को भी प्राप्त न हो यम और दिव्य अथवा लौकिक पितरों को भी प्राप्त न हो। ६९। मैं तुझे पृथ्वी के पोषक तत्वों से युक्त करता हूँ। औषधियों के पौष्टिक तत्व से युक्त करता हूँ। तुझे वीर सन्तति वाली, धन ऐश्वर्य सम्पन्न करता हूं, ऐसे गुणों से युक्त तू दिव्य तेज को धारण कर ॥ ७० ॥

पति प्राप्ति विज्ञान—"आनो अग्ने" (२।३६) इस सूक्त से पति प्राप्ति कामना वाली कुमारी या जिसे स्वीकार करने के उपरान्त-अनिच्छा प्रगट करने वाला योग्यवर या कन्या (योग्यपत्नी) का इच्छुकवर-पूर्ण गुण युक्त प्राप्त हो सके। इसके निमित्त क्षीर बना अभिमन्त्रित कर हवन के उपरान्त खिलायें। इसी कार्य में मधु-घृत, युक्त दुग्ध, अभिमन्त्रित कर पिलायें। अभिमन्त्रित गुग्गुल-योनि को धूप देने के उपरान्त गोघृत मिला लेप करायें। इसी से योनि को धूप दें। रात्रि में ऊषाकाल में काक बोलने से पूर्व ही धानों से होम करा अग्नि की परिक्रमा करायें। इसी सूक्त से अभिमन्त्रित नाव पर कन्या को बिठायें—पांचवी ऋचा "**भगस्य नावम्**" को जपते हुए तारें। **पतिप्राप्ति विज्ञान कर्म साधन में** सात तांतों की पूजा कर, अभिमन्त्रित कर सात बछड़ों को बाँधे कुमारी से खुलवायें यदि वह स्वतः ही बिना समझाये प्रदक्षिण क्रम से खोले तो पति लाभ शीघ्र हो, समझें। इसी विज्ञान में एक वस्त्र ढके हुए वृषभ को छुड़वायें। कौ० १०।१। यह कन्या का चतुर्थ पति है **सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरी यस्ते मनुष्यजाः ॥ (ऋ०वे० १०।८१।४०)**

कुमारी को अपामार्ग की दन्तधावन करायें, अपामार्ग युक्त जल से पाप-दुर्दैव, दुर्भाग्य शमनार्थ स्नान करायें, और पुनः धौत वस्त्रों को अपामार्ग से मार्जन करें, शरीर के अङ्गों का भी अवमार्जन करें, गुग्गल धूप दें, लेप-चन्दन रोली आदि का करायें तदनन्तर (२।३६) की विधि से कार्य करें। तो सुख-समृद्धि सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, ब्रह्मवर्च युक्त सौम्य-सदाचारी योग्य पति शीघ्र प्राप्त हो।

इस सूक्त की ऋचा ७ के निर्देश से हिरण्य गुग्गुल (स्वर्णगुग्गुल) को दूध (गौ बछड़े की समान लालरंग की)में घी ज्येष्ठी शहद मिला अभिमन्त्रित करें खिलायें। और इन्द्रियों से लेप करें। धूप दें प्रजजन इन्द्रिय को दें। इस प्रकार इन्द्रिय दोष दूर होते हैं वन्ध्यात्व नपुंसकत्व नहीं रहता, शुक्र-शोणित दोष दूर होते हैं यह कौ. एवं-वर्तिकाकार दारिल (केशव) का अभिप्राय है। ऋचा ५ कुमारी को अनुकूल वर प्राप्ति के प्रतीक हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कौ० सू० कं० ३४ सूत्र १२ "पतिवेदनानि" अ०कां० २ सू० १२ से पतिलाभार्थ अभिमन्त्रित करे। सूत्र १३ 'आनो अग्रे इत्यागमक्कशरमाशयती'॥ १३॥ अ० कां० २ सूक्त ३६ पतिवेदनम्। से तिल-तण्डुल की खिचड़ी बनायें अभिमन्त्रित करें। अ०कां० २ सू० १४ से वेदी को अभिमन्त्रित करले। हवन कर यज्ञावशेष को कन्या को दे कां २ सू० १३ से कन्या उसे स्वयं सम्पूर्ण को सेवन करे यह पति प्राप्ति हेतु आचार्य द्वारा दिया जाना चाहिये।

कौ० सू० १४ "भृगाखराद्वेद्यां मन्त्रोक्तानि संपातवन्ति द्वारे प्रयच्छति॥१४॥ अ० कां० २ सू० ३६ ऋचा ७ के अनुसार हिरण्य गुग्गुल, एकरङ्ग की बछड़े की गौ के धारोष्ण दुग्ध में गोघृत, ज्येष्ठी [वसन्त] का सहद डालकर स्त्री को पिलाये। उसी को स्त्री पुरुष प्रजनन इन्द्रियों में लेप करें, धूनी दें। कां० २ सू० ३६ ऋचा ५ से कन्या भ्राता कुमारी को दक्षिणाभि मुखी करके घट की परीक्रमा कराये।

[कां० २ सू० ३६] १-८ पतिवेदनः। १ अग्निः, २ सोमः, अर्यमः; धाता, ३ अग्निसोमौ, ४ इन्द्रः ५ सूर्य, ६ धनपतिः, ७ भगः, ८ औषधिः। त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, २-५-७ अनुष्टुप्, ८ निचृत्पुर उष्णिक्। उपर्युक्त कर्मसु विनियोगः

आ नो॑ अग्ने सुम॒तिं सं॑भ॒लो ग॑मेदि॒मां कु॑मा॒रीं स॒ह नो॒ भगे॑न।
जु॒ष्टा व॒रेषु॒ सम॑नेषु व॒ल्गुरो॒षं पत्या॒ सौभ॑गमस्त्व॒स्यै ॥१
सोम॑जुष्टं॒ ब्रह्म॑जुष्टमर्य॒म्णा संभृ॑तं॒ भग॑म्। धा॒तुर्दे॒वस्य॑ स॒त्येन॑ कृणोमि॒ पति॒वेद॑नम् ॥२
इ॒यम॑ग्ने॒ नारी॒ पतिं॑ विदेष्ट॒ सोमो॒ हि राजा॑ सु॒भगां॑ कृणोति॑।
सुवा॑ना पु॒त्रान्महि॑षी भवाति ग॒त्वा पतिं॑ सु॒भगा॒ वि रा॑जतु ॥३
यथा॑खरो म॑घवं॒श्चारु॑रे॒ष प्रि॒यो मृगाणां॑ सु॒षदा॑ ब॒भूव॑।
ए॒वा भग॑स्य जु॒ष्टेयम॑स्तु॒ नारी॒ संप्रि॑या॒ पत्यावि॑राधयन्ती ॥४
भग॑स्य॒ नाव॒मा रो॑ह पू॒र्णामनु॑पदस्वतीम्। तयो॑प॒प्रता॑रय॒ यो व॒रः प्र॑तिका॒म्यः ॥५
आ क्र॑न्दय धनपते व॒रमाम॑नसं कृणु। सर्वं॑ प्रदक्षि॒णं कृ॑णु॒ यो व॒रः प्र॑तिका॒म्यः ॥६
इ॒दं हिर॑ण्यं॒ गुल्गु॑ल्व॒यमौ॒क्षो अथो॒ भगः॑। ए॒ते पति॑भ्य॒स्त्वाम॑दुः प्रतिका॒माय॒ वेत्त॑वे ॥७
आ ते॑ नयतु सवि॒ता न॑यतु॒ पति॒र्यः प्र॑तिका॒म्यः। त्वम॑स्यै धेह्योषधे ॥८

कां. २ सू. ३६ "आनोभर" हे जातवेदाग्नी प्रभो! इस हमारी विदुषी, सुशीला, सुशोभना कुमारियों को श्रेष्ठों को प्रिय, उत्तम मनस्विनी भी है, उसको धनाढ्य [सम्पन्न, धीरवान, धैर्यवान् पति प्राप्त हो, जिसके साथ इस कन्या को उत्तम दाम्पत्य सुख प्राप्त हो। [२] सौम्यता, श्रेष्ठ मन, ब्राह्मणों द्वारा प्रसशित, सत्यमार्गोपार्जित इस कन्या रत्न को विधाता के सत्य नियम से, एक मात्र पति के योग्य बनाता हूँ अर्पित करता हूँ]। [३] हे जातवेदाग्ने! यह स्त्री पति को प्राप्त करे, क्योंकि राजा सोम इसे सौभाग्यवती करता है। यह योग्य पुत्रों की जननी, घर की रानी हो, यह सौभाग्यवती, पति को प्राप्त कर सुशोभित हो। [४] हे देवराज! जिस प्रकार यह गुहा [कन्दरा] मृगों के लिये प्रिय बैठने योग्य है, वैसे ही यह स्त्री पतिपरायण ऐश्वर्य के साथ, पति की स्नेहभाजन हो। [५] हे स्त्री! पूर्ण न ठहरने वाली [इस ऐश्वर्य की गार्हपत्य नौका] पर आरूढ़ हो, उसी से उसके पति के पास तैर कर जा [अर्थात् अपार ससार सागर पार कर]। हे धनपते! वर को आमन्त्रित कर, अपने मनोनुकूल वार्तालाप कर। जो तेरे मनोनुकूल वर है, उसके साथ सन्मान से आत्म-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समर्पण कर । [७] यह ओज, बल, वीर्य धारक शक्ति प्रदायक स्वर्ण गुग्गुल, सौभाग्य प्रदायक है, यह तुझे तेरे पति को प्रगाढ़ दाम्पत्य सुख के लिये [सेवनार्थ] प्रदान करते हैं। [८] सविता देव तुझे उत्तम पथ-प्रदर्शनार्थ प्रेरणा दें। जो अभिलाषा प्रदाता पति है, वह तुझे उत्तम मार्ग से ले चले। औषधि तुझे पुष्टि प्रदान करें।

—: कन्या को पतिलाभ :—

कन्या जिसको योग्य अनुकूल वर मिलने में विवषता हो उसके पिता-अभिभावुक प्रात; उषाकाल में कौओं के बोलने से पूर्व ६।६० अयमायाति से होम करे। कौ० ४।१० के निर्देश हैं। होमान्त दशदिशाओं में वलिदान करें।

कां. ६ सू. ६० अस्य सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। अर्यमादेवता। अनुप्टुप् छन्द पतिलाभार्थे अश्वत्थमूले जपे होमे उपस्थाने च विनियोगः।

अयमायात्यर्यमा पुरस्ताद्विषितस्तुपः। अस्या इच्छन्नग्रवे पतिमुत जायामजानये ॥१
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती। अङ्गो न्वऽर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति ॥२
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम्। धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यऽम् ॥३

यदि कन्या मंगली हो या गुरुदोष हो यथा "नष्टात्मजाः" या ऐसे ही अन्य दुष्ट, त्रिकस्थान में पाप ग्रहों का दोष हो तो उसके निवारणार्थ निम्न २०।१३३ **"विततौ किरणौ"** का जप होम करायें।

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥१
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥३
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वावगूहसि। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥६

कन्या के मगली, वैधव्य, वन्ध्यात्व, रजोदोष निवारणार्थ यदि कन्या को ज्योतिष शास्त्रोक्त **"मंगली"** दोष अथवा वाल, युवा, एवं वार्द्धक्य वैधव्यदोष हों, अथवा विष कन्यादि, दौर्भाग्यप्रद दोष हों, अथवा कन्या के रजोधर्म में वर्णित दोष हों, तो उनके निवारणार्थ अथर्व कां० १४ सू० २ मं० ४४ से ४६ तक से तथा मं० ६० से ७० पर्यन्त से सूर्य उपस्थान तथा होम करें।

भावार्थ :—मं० ४४ नवीन सुन्दर वेशभूषाधारी सुगन्धित द्रव्य धारण कर्ता, मानव देहधारी, जीवन की तेजस्वी उषा वेला में उदित होता है। (पदार्पण करता है) अण्ड से निकलनेवाले नवजात शिशुपक्षी की भाँति मैं अपने [सदाचार से हूँ] मुझसे सब प्रकार के पाप दूर जावें। [४५] द्यौ पृथिवी, ये उभयलोक, सर्वसुखदाता, दृढ़ नियम व्रताचारी हैं, इनके मध्य से सदा जलप्रबाह बह रहे हैं, ये हमको पापों से बचाये। [४६] सूर्य, उषा, अग्नि, वरुण, तथा ज्ञानदाता प्रभु के लिये हमारा प्रणाम है। उनकी आराधना करते हैं। [४८] स्त्री के रजोदोष नीलरक्त,पीत काला,कबरा, मटिया, सिलेहटीरंग के रंगों का छिछड़ो जैसा दर्दप्रदायक चुभनेबाले सभी दोष हमसे दूर हो। उन दोषों की दाहकारक सभी पीड़ा और दुर्वस्थाओं को हम दूर करते हैं। [४९] जो हिंसक रजोधर्म के उनके वस्त्र हैं, जिनमें राजा वरुण के पाश छिपे हुए हैं। जो दारिद्रय, दौर्भाग्यदायक हैं, उन सभी अवस्थाओं को दूर करते हैं। [इन मन्त्रों के होम, उपस्थान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से कुमारी कन्याओं के रजोदोष जनितारिष्ट मूल, बन्ध्यापनादि दूर किये जाते हैं। कन्यापिता [स्वगृह में] अथवा पति [स्वगृह] में इन दोषों की उपेक्षा न कर, शान्त करें। अन्यथा आगे के मन्त्रों के दोष गार्हपथ्य में बाधक होते हैं। इन्हें ध्यान से प्राथमिकता देने में ही कन्या का हित निहित है।

—: पत्नी की प्राप्ति :—

योग्य पत्नी की प्राप्ति की कामना वाले वर; इन्द्रदेव का जपहोम करें। कौ० ७।१०

अस्य ६।८२ सूक्तस्य भग: ऋषि:। इन्द्र: देवता। अनुष्टुप् छन्द, पत्नि प्राप्तये इन्द्रदेव उपस्थाने जपे होमे विनियोग:।

आगच्छ॑त आग॑तस्य नाम॑ गृह्णाम्याय॒तः। इन्द्र॑स्य वृत्र॒घ्नो व॑न्वे वास॒वस्य॑ श॒तक्र॑तोः ॥१

येन॑ सूर्यां॑ सा॑वि॒त्रीम॒श्विनो॒हतुः॑ प॒था। तेन॒ माम॑ब्रवी॒द्भगो॑ जा॒याभा व॑हता॒दिति॑ ॥२

यस्ते॑ऽङ्कु॒शो व॑सुदानो॑ बृहन्नि॑न्द्र हि॒र॒ण्ययः॑। तेना॑ जनीय॒ते जा॒यां मह्यं॑ धेहि शचीपते ॥३

इनको सूर्योन्मुख अश्वत्थ के निकट वर, कन्याये अपने योग्य पत्नि व पति की प्राप्ति हेतु माला नित्य जपे।

—: कन्या को शीघ्र वर प्राप्ति :—

"हे देवी ! शंकरार्द्धाङ्गी ! यथा त्व शङ्करप्रिया। तथा मां कुरु कल्याणी ! कान्तकान्तं सुदुर्लभम्।"

अथवा "करजोरि विनती करत निशदिन, नाथ ! पीतम पाइहौं। अहवात ! दो गिरिजापती, मैं यश तुम्हारा गाइहौं।" नित्य किसी या दोनों की अश्व के नीचे बैठ कर कम से कम १ माला रात्रि में जपे। पूजा करले तब एक निश्चत समय में ही जपे।

कां० ७ सू० ३९ "इदं खनामि" इन ५ ऋचाओं से "स्वधर्मपत्नि" का परित्याग या उसके प्रति द्रोहकर्त्ता वर प्रिया प्रेमी, पति के "वशीकरणार्थ" अर्थात् दोनों ही में चिर प्रगाढ़ दाम्पत्य प्रीति सम्पादनार्थ पुष्य नक्षत्र में "सौवर्चल" (हुलहुल) की जड़ तथा शंखपुष्पी ले आयें। इन दोनों ही को इन पांचो से अभिमन्त्रित करें। हुलहुल दायें भुजा में, शंखपुष्पी शिर में दोनों रेशमी लाल वस्त्र में गूथ कर बाँधें। हुलहुल [सौवर्चल] पति का वशीकरण करती है। अन्य परकीया के संसर्ग से हठा देती है। उचित मार्ग पर अर्थात् स्वधर्मपत्नि से संसर्ग करा देती है। शंखपुष्पी पीने और बांधने से पति के मन को पुनः इधर उधर नहीं जाने देती है। इसी के साथ कां० ७ सू० ४० 'ईर्ष्यायाः ध्राजि" से भी पति पत्नि दोनों ही की अर्थात् पत्नि पर पुरुषरत होकर पतिद्रोहिणी हो तो "पत्निवशीकरणार्थ" उसका नाम लें और पति परकीया से प्रीति हो जाने से धर्मपत्नि को त्याग दें, ईर्ष्या करता हो तो भी इन दोनों ही से ओषधि अभिमन्त्रित करें।

[कां० ७ सू० ३८] १-५ अथर्वा। बनस्पतिः। अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा उष्णिक्।

इ॒दं ख॑नामि भेष॒जं मां॑पश्यम॑भिरोरु॒दम्। प॒राय॒तो नि॒वर्त॑नमाय॒तः प्र॑ति॒नन्द॑नम् ॥१

येना॑ नि॒चक्र आ॑सुरीन्द्रं॑ दे॒वेभ्य॒स्परि। तेना॒ नि कु॑र्वे॒ त्वाम॒हं यथा॒ तेऽसा॑नि॒ सुप्रिया ॥२

प्र॒तीची॒ सोम॑मसि प्र॒तीच्युत सूर्य॑म्। प्र॒तीची॒ विश्वा॑न्दे॒वान्तां त्वा॒च्छाव॑दामसि ॥३

अ॒हं व॑दामि॒ नेत्त्वं स॒भाया॒मह॒ त्वं वद॑। ममेद॒स॒स्त्वं केव॑लो॒ नान्यासां॑ की॒र्तयां॑श्च॒न ॥४

यदि॒ वासि॑ तिरोज॒नं यदि॑ वा न॒द्य॑ऽस्ति॒रः। इ॒यं ह मह्यं॒ त्वामोष॑धिर्ब॒द्ध्वेव॒ न्यान॑यत् ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ७ सू० ३८ [१] "इदं खनामि" में इस शंखपुष्पी ओषधि को खोदती हूँ; वह पति की (परकीया में रत) दृष्टि को, मेरी ओर फिराने वाली अर्थात् मुझ से ही गार्हस्थ्य प्रीति करने वाली और सभी प्रकार के पति के जार कर्मों को रोकने वाली, निन्द्य मार्ग से बलपूर्वक वापस सन्मार्ग पर लाने वाली, संयमी की आनन्दवर्द्धिनी है। [२] आसुरी नाम्नी सौवर्चल (हुलहुल) ओषधि ने इन्द्र को देवों में सर्वाधिक प्रभावशाली बनाया, उसके उसी गुण से मैं तुझे (स्वपति को) बनाती हूँ; जिससे एकमात्र मैं ही तेरी धर्मपत्नि बनकर रहूँ। [३] हे तू (शंखपुष्पी) चन्द्र के सन्मुख रहती है और तू आसुरी (हुलहुल) सूर्य के सन्मुख रहती है। तथा सभी देवों के सन्मुख रहती हो। मैं इस प्रकार तुम्हारा उत्तम यश गान करती हूँ। [४] हे पति घर में, मैं ही बोलूंगी तू उसका समर्थन कर, घर में तू न बोल। तू सभा में खूब वक्तव्य कर, परन्तु घर में आकर तू केवल मात्र मेरा ही प्रिय पति बनकर रह। ऐसा करने से तुझे किसी अन्य स्त्री के प्रति प्रीति की आवश्यकता ही न रहेगी। [५] चाहे तू ग्राम में रह या जंगल में यति बनकर रह, चाहे नदी के उस पार या इस पार रह। यह ओषधि ऐसी है, कि उनके प्रभाव से तू मेरे पास ही, बँधा चला आयेगा और किसी परकीया के पास ही न जायेगा।

कां० ६ सू० १८ "ईर्ष्यायाध्राजि" यह सूक्त परस्पर ईर्ष्या, द्वेष निवारणार्थ है। इसी के साथ "जनाद्विश्व" जनीनात्॥ कां० ७ सू० ४५ तथा। त्वाष्ट्रेणाहम्॥ कां० ७ सू० ७४ मन्त्र ३ में वर्णित विधि वर्णित हैं। ईर्ष्या निवारणार्थ गर्भधारदार हथियार को ठण्डे जल में शान्त करें। उस क्वथित जल को "अग्नेरिवास्यदहन्" इस ऋचा से अभिमन्त्रित कर, ईर्ष्या करने वाले प्राणी को पिलायें। कौ० ४।२ तथा "त्वाष्ट्रेणाहम्" कां० ७ सू० ७८ मन्त्र ३ इसे ईर्ष्यालु को देखकर जपें, शुष्क सक्तु आदि को अभिमन्त्रित कर पेय पदार्थ दें, पिलावें और उसका स्पर्श करते हुए इसे जपें। यह स्त्री के प्रति ईर्ष्यालु पति आदि के प्रति करें। कौ० ४।१२

[कां० ६ सू० १८] १-३ अथर्वा। ईर्ष्याविनाशनम्। अनुष्टुप्।

ई॒र्ष्याया॒ ध्राजिं॑ प्रथ॒मां प्र॑थ॒मस्या॑ उ॒तापरा॑म्। अ॒ग्निं हृ॑द॒य्यं१॒ शोकं॒ तं ते॒ निर्वा॑पयामसि॥१

यथा॑ भूमि॑र्मृ॒तम॑ना मृ॒तान्मृ॒तम॑नस्तरा। य॒थोत म॒म्रुषो॒ मन॑ ए॒वेर्ष्योर्मृ॒तं मनः॑॥२

अ॒दो यत् ते॑ हृ॒दि श्रि॒तं म॑न॒स्कं प॑तयिष्णु॒कम्। तत॑स्त ई॒र्ष्यां मु॑ञ्चामि॒ निरू॒ष्माणं॒ दृते॑रिव॥३

[कां० ७ सू० ४५] १ प्रस्कण्वः। इन्द्र, विष्णुः। भुरिक् त्रिष्टुप्।

जना॑द् विश्वज॒नीना॑त् सिन्धु॒तस्पर्याभृ॑तम्। दू॒रात् त्वा॑ मन्य॒ उद्भृ॑तमी॒र्ष्याया॒ नाम॑ भेष॒जम्॥१

अ॒ग्नेरि॑वास्य॒ दह॑तो दा॒वस्य॒ दह॑तः पृथ॑क्। ए॒ताम॒तस्ये॒र्ष्यामु॒द्नाग्निमि॑व शमय॥२

[कां० ७ सू० ७४] १ अथर्वा; । अग्निः । अनुष्टुप्।

त्वष्ट्रे॑णाहं वच॑सा॒ वि त॑ ई॒र्ष्याम॑मीमदम्। अथो॒ यो म॒न्युष्टे॑ पते॒ तमु॑ ते शमयामसि॥३

१—बुद्धि वर्धन, ब्रह्मवर्चस्व, स्मृति बढ़ाने, वाक्शक्ति बढ़ाने के लिए विधि—यजमान सूर्योपस्थान की मुद्रा में बैठे, आचार्य मन्त्रों भी पढ़ता जाए। मधु, गो दधि, गो दुग्ध का पान कराए।

विश्वकर्मणगण—सर्वप्रथम मेधा जननसूक्त (निम्न) से प्रारम्भ कर "प्रातरग्निम्" (३।१६) "गिरावर गराटेषु" (६।६९); 'दिवस्पृथिव्या" (६।१) की गणना है। इनसे निम्न कर्मसिद्धि होती है।

सद्-असद् विवेचिनी बुद्धि को मेधा या पण्डा शास्त्रों ने माना है ऐसी बुद्धि की प्राप्ति तथा उत्तरोत्तर अक्षय सनातन वृद्धि के हेतु प्रातःकाल मुंह हाथ से धोये। (कौ० २।१) ये मेधागण कर्मों में भी हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस गण से ब्रह्मवर्च वृद्धि के अभिलाषी ब्राह्मण को दही मधु मिला अभिमन्त्रित कर खिलाये। वैश्य को केवल भात तथा क्षत्रिय को दही मधु (कीलाल) युक्त अन्न या भात खिलायें।

"ममाग्नेवर्चः" (५।३) का जप करें. यह सभी के लिये विहित है। तेज वृद्धि की कामना वाले स्नातक सिंह व्याघ्र, हाथी, अश्व, मृग, रिक्ष, अनड्वान (विजार) तथा अन्य तेजस्वियों की नाभि के बालों की मणि लाख एवं स्वर्ण में मढ़कर उपरोक्त सूक्तों से पूजा प्रतिष्ठा एवं पुनः अभिमन्त्रित कर बाँधे।

क्षत्रिय आदि उपरोक्त ७ के चर्मको छेदकर स्थालीपाक बिधिसे जलमें धो,जलको भातमें आदिको अभिमन्त्रित कर भक्षण करें? जल से छींटे स्नान आदि करें। इसे दरिद्र, समृद्ध राजा स्नातक बाल या बालिका दोग्घ्री गौ, पुत्र, पौत्र, सेवक, साधक, सिद्ध प्रज्ञावान, याज्ञिक कवि, कल्याण एव सतत अभ्युदयार्थी धारण करें। सभी के हितार्थ विनियोग विहित है, ब्रह्मवर्च, पुष्टि कर्म धन लाभ, अभिचार हस्ति, अश्वदीक्षा में भी प्राविधान है। विशेष अथर्व कां० १ सू० १ के समस्त कार्यों में विधान है। दर्श, पूर्णमास, व्रतग्रहण में भी विनियोग विहित है। दीक्षा आदि में होम का विधान है। अध्याय २ में मन्त्र पढ़ें।

चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुवदः सामवेदो ब्रह्मवेदः। (गो० ब्रा० २।१६)

इन चारों के सारभूत होने से ये सिद्ध मन्त्र श्रुति शास्त्र सम्मत हैं।

न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः। अथर्व मन्त्र सम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति ।। (परिशिष्ट २।५)

तिथि, नक्षत्र, ग्रह, चन्द्रमा आदि की विपरीतता में भी अथर्व मन्त्रो की साधना से सर्व प्रकार की सिद्धि सम्भव होती है। स्कन्द, कनलालय खण्ड अथर्म मन्त्रों के जपमात्र से अभीष्ट फल प्राप्ति निर्विवाद होती है।

यस्तत्राथर्वणान् मन्त्रान् जपेच्छ्रद्धा समन्वितः। तेषां अर्थोद्भवं कृत्स्न फलं प्राप्नोति स ध्रुवम् ।।

(गो० ब्रा० १।१०)—अथर्वपरिशिष्ट (४।६)

इस अथर्व वेद के सर्पवेद, पिशाच वेद, असुर वेद, इतिहास वेद, पुराण वेद, ये ५ उपवेद हैं।

यस्यराज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगाः। निवसत्यपि तद राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम्।।
तस्माद्राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम्। दान सम्मानसत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत् ।।

उपाकर्म में औदुम्बर समिधा, पलाश कर्कन्धु समिधा, दण्ड जौ, तिल, चावल से होम, दूध-भात का प्राशन, उपाध्याय को भिक्षादान, सोते हुए उपाध्याय की वन्दना. गुरुगृह में जप, उपरोक्त सामिग्री मिश्रित घी से होम से शेष का भक्षण, दण्ड, मेखला, मृगचर्म, धान, उपाध्याय को दान देना सभी का प्राविधान है।

तीनों के नाम पर्यायी मनीषि खोजें। १. शुक, २. सारिका, ३. भारद्वाज का जिह्वा से बन्धन. उन्हींका प्राशन ये सब "मेधाजनन" संस्कार कार्य कां० १।१ "येत्रिषप्ताः" के विनियोग में विहित हैं। (कर्कन्धु-वृहद्वदरी) रसा (दधि-मधु-घृत, उदक) का अभिप्रायः है।

अभिमन्त्रणम्—मन्त्रमुच्चार यन्नेवमन्त्रार्थत्वेनसंस्मरेत्।

शेषिणं तन्मनाभूत्वास्यादेतदनुमन्त्रणम्। एतदेवाभिमन्त्रस्यफलं चेक्षणाधिकम् ।।

उपनयन संस्कार में आयुष्यगण से होम करें।

ये चरक संहिता चिकित्सा स्थान मध्य रसायन प्रकरणम् १. मण्डूकपर्णी का स्वरस २. मुलहटी का चूर्ण गोदुग्ध के साथ, ३. गिलोय का रस, ४. मूल व पुष्प युक्त शंखपुष्पी का कल्क। सुश्रुत मेधापुष्कामीय प्रकरण में मन्डूकपर्णी आदि का स्वरस गोदुग्ध अथवा तिलों के साथ खाकर अनुपान गोदुग्ध ३ मास सेवन करें। जीर्णता में घी दूध

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मात के साथ आहार करे। तीन दिन व्रत कर (निराहार) रह ३ दिन उपरान्त ब्रह्मचर्य से रहकर सेवन करे तो श्रुतिवक्ता, शतायु, पुष्ट बल, वीर्य होता है। ऐन्द्रीरसायन (दिव्यौषधि)—१. शखपुष्पी २. मछेछी (मत्स्याक्षी) ३. ब्राह्मी ४. वचा ५. पिप्पली ६. मण्डूकपर्णी ७. सेंधा नमक ८. सुवर्ण ९. वत्सनाभ (विष) तथा १०वाँ घी। इनमें सुवर्ण, विष, घी को छोड़ अन्य सभी ३-३ जौ, सुवर्ण भस्म २ जौ, वत्सनाभ १ तिल, घी १ पल परिणाम में लें, इनको एकत्रित कर प्रयोग करें। औषध जीर्ण होने पर यथा शक्ति व मधु युक्त भोजन करें। यह जरा तथा सभी रोग शान्त कर स्मृति, मेधा, आयु, वीर्य, बल, स्वर, वर्ण को बढ़ाती है, कृत्यादि पाप अभिचार कर्म, दरिद्रता, विष, रोग परास्त होते हैं। श्वेत कुष्ठ उदर रोग, गुल्म, तिल्लो, पुराना विषमज्वर, ज्ञान, स्मृति को हरने वाले अपस्मार, मूर्छा, हिष्ट्रिया आदि तथा अत्यन्त बलिष्ठ वात रोग दूर भागते हैं। इन्दु के मत से मण्डूकपर्णी भी है।

ये विश्वकर्मणगण में निहित ऋचा, मेधाजनन, ब्रह्मवर्चसगण स्वस्त्ययनगणादि में सर्वत्र उपयुक्त हैं।

कां० ३ सू० १६ ऋ० १-७ अथर्वा ऋषिः। १ अग्निः, इन्द्रः, मित्रावरुणौ अश्विनौ, भगः, पूषाः, ब्रह्मणस्पतिः, सोमः, रुद्रः, २-३-५ भगः, आदित्यः, ४ इन्द्रः, ६ दधिक्रवा, अश्वाः, ७ उषाः, देवते। त्रिष्टुप्, १ आर्चोजगती, ४ भुरिक् पङ्क्तिः। छन्दासि, मेधाजनने, ब्रह्मवर्चसे, स्वस्त्ययने, दीर्घायुष्ये, रयिसम्वर्द्धने, पुत्र, पौत्र, मित्र, भृत्यादि सम्बर्द्धने, स्तवने, उपस्थाने, होमे विनियोगः।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥१
प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥२
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४
भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ॥५
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७

कां० ३ सू० १६। (१) हम प्रातःकाल, अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनीदेव, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्र नामक प्रभु की वन्दना करते हैं। (२) प्रातःकाल में हम, अदिति के तपोपूत यशस्वी विजयी शौर्यवान् पुत्र "भग"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(षडैश्वर्यवान्) की प्रार्थना करते है। अशक्त, दीन, बली, निर्बल, राजा, रङ्क सभी जिनको नमन करते हैं। वे मुझे दिव्य धन, ऐश्वर्य प्रदान करें, यह विनय करता हूँ।

(३) हे प्रभु ! हे वृहन्नायक ! सत्यसिद्धि प्रदाता प्रभो ! ऐसी सुबुद्धि प्रदान करते हुए, हमारी रक्षा कर। हे प्रभो ! गौ, अश्वबाहुल्यता के साथ उत्तम यशस्बी सन्तति प्रदान कर। हे महामते ! हम सद्धर्मपरायणों के साथ रहें उनके सद्‌गुणों के अनुयायी हों। (४) हे हमारे वरिष्ठतर नायक ! हे सत्यसिद्धि दाताप्रभो ! हमारी ऐसी शुद्ध बुद्धि की वृद्धि कर, हम प्रातः मध्याह्न और सायंकाल में, ऐसे शुभ कर्म करें, जिनसे भाग्यशाली हों। हम सूर्योदय की भांति, देवों की उत्तम प्रेरणा, वाणी और कृपा से युक्त हों। (५) भगवान, भगदेव मेरे साथ हों; उनकी कृपा से भाग्यवान् हों, उन आपकी मैं सभी भाँति से प्रार्थना करता हूं, वे आप हमारे (अग्रणी) पथ प्रदर्शक हों। (६) उषाकाल में हिंसारहित पावन स्थान पर पैर रखने वाले अश्व की भांति यज्ञों के लिये विनम्रता से झुक जावें। अश्व, ऐश्वर्यदाता प्रभु के समीप हमें ले जावें। (७) जिस उषा काल में, घोड़े, गौये, महान वीर पुरुष, उत्साह के साथ कार्यों में जुटे रहते हैं, ऐसी उषादेवी हमारे मन मन्दिरों [गृहों] में प्रकाश करें। ये ही उषायें घृत प्राप्त करती हुई, सभी प्रकार हृष्टपुष्ट हो, विविध कल्याण कर मार्गों [साधनों] से, हम सवकी रक्षा करें।

कां० ६।६९ १-३ अथर्वा ऋषिः। वृहस्पतिः, अश्विनौ। देवते अनुष्टुप् छन्दः। उपयुक्त विनियोगः।

गि॒रावर॒गरा॑टेषु॒ हिर॑ण्ये॒ गोषु॒ यद् यशः॑। सुरा॑यां सिच्यमा॑नायां की॒लाले॒ मधु॒ तन्मयि॑ ॥१

अश्वि॑ना सार॒घेण॑ मा॒ मधु॑नाङ्क्तं शुभस्पती। यथा॒ भर्ग॑स्वतीं॒ वाच॑मा॒वदा॑नि॒ जना॑ँ अनु॑ ॥२

मयि॒ वर्चो॒ अथो॒ यशोऽथो॑ य॒ज्ञस्य॒ यत् पयः॑। तन्मयि॑ प्र॒जाप॑तिर्दि॒वि द्यामि॑व दृंहतु ॥३

कां० ६ सू० ६९ "गिरावरगराटेषु" पर्वतों पर, चक्रयन्त्रों में, सुवर्ण और गौवों में जो यश है, जो बहने वाली मेघ मालाओं और भोग्य पदार्थों में, जो मधुरता है, वह मेरे में हो। (२) कल्याणदाता दोनों अश्विदेव, सारभूत मधुरता से मुझे सम्पन्न बनायें। जिससे सौभाग्यप्रदा वाणी का मैं अन्य मनुष्य के साथ प्रयोग करूँ। (३) मेरे में, तेज, यश, यज्ञीयसार, जैसे द्यु लोक में दृढ़ प्रकाश है उसी प्रकार प्रजापति दृढ़ता से संस्थापित करें।

अथ वालकों के रोगों की शान्ति विधियां

(वीरसिंहवलोकने) वच्चों के सभी रोगों की शान्ति हेतु व्याहृति होम, अन्नदान करें। अथवा ताडने, डराने, (जोरों से) हँसने के भय से, और अपनी माता के प्राकृतस्वभाव के कारण [स्कन्दमुखा] भैरवादयगण, प्रथम बलिकामना से बच्चों को शीघ्र ही अमंगल कामना से अभिभूत होते हैं।

स्तब्धविलोचनशोणितगन्धः कुटिलमुखाल्परवो लुलिताक्षः।
स्तन्य पराङ्‌मुखगाढविमुष्टिश्चकितमनाः शिशुराकुलितस्तैः ॥१

वच्चों को प्रायः वालघातक रोग स्कन्दमातृकादि देवदोष से होते हैं बलिदान आदि से शान्ति करें। विशेषः बच्चों के अशुभ ग्रह दोष शान्ति हेतु सन्ध्याकाल में नीव, सरसों, गाजर फलों को, करञ्ज तथा वच, अन्न की बलि दें। तथा रक्षा करें।

वासुदेवो जगन्नाथः पूतनातर्जनो हरिः। रक्षतु त्वरितोवालं मुंचमुंचकुमारकम् ॥१
कृष्णरक्षशिशुं शंखमधुकैटभमर्दन। प्रातः संगवमध्याह्नसायाह्नेषु च संध्ययोः ॥२
महानिशि सदारक्षकंसारिष्ट निषूदन। यद्‌गोरजः पिशाचाँश्चग्रहान्मातृग्रहानपि ॥३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बालग्रहानविशेषेण छिंधि महाभयान् । त्राहि-त्राहि हरे नित्यंत्वद्रक्षाभूषितं-शिशुम् ।।४।।

इससे गौओं के कण्डों की या यज्ञ की भस्म को अभिमन्त्रित कर शरीर पर मलें । [हरिवंश]

नदौंक मेनमारोप्य भूरेणुं परिगृह्य च । शिरः प्रदक्षिणं कुर्वन्मंत्रमेनं जजापह ।।१।।
विष्णुस्ते पूर्वतः पातु, रुदोरक्षतुदक्षिणे । ब्रह्मा च पश्चिमेपायाच्चन्द्रो रक्षतु अथोत्तरम् ।।२।।
उपरिष्टात्तथा सूर्यः पायाच्चाधश्च वासुकिः । पायादूर्द्ध मधो वत्सं शिष्टाः काष्ठाः समीरणः ।।३।।
स्वस्ति करोतु भगवान् पिनाकी वृषभध्वजः । गावोरक्षन्तु सवत्र भुमौ पातु सदाशिवः ।।४।।
एवमुच्चार्यं नन्दन्तु कृष्णं स्पर्श सर्वतः एषमंत्रोहि बालानां रक्षायै परिकीर्तितः ।।५।।

तालाब, वापीया नदी के दोनों किनारों की रज को इस मंत्र से अभिमन्त्रित करके शिर से प्रारम्भ कर पैरों तक इस मंत्र को जपते हुए ग्रह गुहीत बाल आदि के शरीर पर मलने से विघ्न दूर होता है ।

अर्थोत्थापन विधान

कौशिक सूत्र कण्डिका ४१ सूत्र ८, ९; १४, १५ तथा कण्डिका ४२ में अथर्वा आङ्गिरस महर्षियों की तपश्चर्या के फलस्वरूप अथर्ववेद की ऋचाओं, सूक्तों के सूक्ष्म तत्वों के अनुभूत द्रव्य उपार्जन मार्ग में आने वाली वे बाधायें जो घोर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, व्यक्तिगत या सामूहिक प्रयास करने पर भी, लाभ की अपेक्षा हानि ही रहे, जिसे भाषा में सोया हुआ भाग्य कहा जाता है, उसके उठाने की विधि का नाम अर्थोत्थापन है ।

१. अर्थ की कामना वाले जब कोई उद्यम—द्रव्य, हाथी, घोड़ा, पशु, रत्न-धन-धान्यादि का व्यापार करे तब शुभ दिन, तिथि नक्षत्र, लग्न-गृह आदि शुभ वेला में अथर्व वेद के 'अपांसूक्त" १।४;५;६,३३; 'क्रमश' "अम्वयो यन्ति"; 'शंभुभयोभूः' हिरण्यवर्णाः, [३।१३] 'यदद', [६।१९] पुनन्तुमा [६।२३] संस्रुषि से मन्त्रों व वर्णों में निर्दिष्ट मरुदगण का क्षीर-आज्य आदि से होम करें, कांशादि, नेचा-वकायन,वेतस आदि को जलपात्र में डालकर अभिमन्त्रित करें, जल के बीच मुंह नीचे को करके ढाले, उन उपर्युक्त घास, दाभ आदि की टहनियों की पूजा कर अभिमन्त्रित कर जल में बहा दें । अपने शिर पर रक्खी शान्ति-औषधियों की पोटली तथा कल्पित घट के ऊपर [गोलादि] को भी अभिमन्त्रित कर जल में डाल दें । मनुष्य के केश पुरानी चर्म को बांस के ऊपर बांध दें, घास आदि से युक्त कच्चे घड़े को अभिमन्त्रित कर जल से छींटे देकर तीन पाद के [रस्सियो के] छींके या तिपाई पर रखकर जल में डाल दें । इन सब अभिवर्षण कर्म में प्राण प्रतिष्ठा, पूजा, अभिमन्त्रित घट के जल से स्नान छींटे आदि करें । इसमें 'अर्थ को उठाने के निमित्त संकल्प का विनियोग करें । यही सामुद्रिक कर्म भी है ।

कौ. ५।५ [न० क० १७] **"आदित्यां श्री तेजो धनायुष्कामस्य"** इति आदित्यनाम्नी शान्ति—उपर्युक्त फल प्राप्ति हेतु करें । इसी सूक्त से वास्तु कर्म में 'वास्तुभूमि' [सवा घन हाथ, लं., चौड़ा, गहरा] खोदकर पूजा कर जल से पूर्ण करें । यहां छन्दोग्यउपनिषत्त्वात् सुख साधन भूतवित्तधान्नाद्युप भोग्य पदार्थ जनकत्वेन च सुख हेतुत्वम् । तथा 'स्वात्मनो' निरति शयानन्द ब्रह्मत्व साक्षात्कारायेत्यर्थ ।"

२. दुकान के रूप में क्रय-विक्रय आदि के लाभान्वित होने के लिये 'इन्द्र महं वणिजम् [३।१५] इस सूक्त से बिक्री या क्रय करने की यात्रा से पूर्व हथियार [वज्र] वस्त्र, तुला, बांट, गज आदि की सुपाड़ी, पुष्प, दूब, घोड़े, गौ, हाथी, रत्न आदि की पूजा प्रतिष्ठा अभिमन्त्रित कर उठायें और इसके लिए इन्द्र की प्रार्थना ब उपस्थान होम करें ।

३. अतुल-अभीष्ट धन-धान्य कीर्ति-प्रतिष्ठा पद प्राप्ति के निमित्त 'अयं ते योनिः' [३।२०] 'आनोभर' [५।७] 'धीती वा' [७।१] सूक्तों से अर्थ को उठाते हुए, अर्थोत्थापन के मार्ग में आने वाली प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष बाधाओं को दूर करने के लिए जप करें । तथा होम आदि करें । कौ. ५।५ उपर्युंक्त वर्णित अर्थोत्थापन विघ्नशमनार्थ, सभी कर्म तथा हीम, जप के कर्म पुनन्तुमा के साथ' 'हिमवतः' 'प्रस्रवन्ति'[६।२४]'वायोः पूतः पवित्रेण' [६।५१] का विनियोग करें ।यहाँ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"शिवो मे सप्त ऋषीन् उपतिष्ठस्वमामेवाङ् नाभिम् अतिगा" इति तै० सं० [३,२,५,३] सप्त ऋषियों की आराधना कर, स्नान आचमन प्रोक्षण होम आदि से पापों का प्रतारण कर पवित्र हो, भाग्योदय का अधिकार प्राप्त करें।

४. द्रव्य आदि के नष्ट होने में, चोरी जाने में, द्यूत आदि. में हारे जाने में आदि-आदि प्रकार से द्रव्य हानि होने में, उस आये हुए अज्ञात विघ्न शान्ति 'द्यौश्चमे' [६।५३] पुन-र्मैत्विन्द्रिवम् । [७।६६]

नं० १ से नं० ४ तक के समस्त अर्थोत्थापन विघ्न शमन कार्यों में उपर्युक्त सभी कर्मों के माध्यम में 'शं च नो मयश्चनः' [६।५७।३] 'अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम्' (६।५९) 'मह्यम् आपा [६।६१]; वेश्वानरो रश्मिभिः' [६।६२] का भी विनियोग करें।

५. प्रवास-परदेश से द्रव्य प्राप्ति के लिए 'भद्रादधि' [७।७।९] से होम करें, इसी का निरन्तर जप उपस्थान करें। बिक्री के लिए ले जाने वाले वस्त्रादि को इसी ऋचा [७।९] से पूजे अभिमन्त्रित कर उत्थापन करें और अभीष्ट दशा को ले जावे। इसी से लाभ की कामना वाले वस्त्र आदि को अभिमन्त्रित कर लें।

ग्रहयाग में—इसी 'भद्रादधि' [७।९] सवुध्न्यात्' [४।१-५] 'वृहस्पतिर्नः' [७।५३] वृहस्पति की पूजा-प्रार्थना होम करें। खोये हुए या पुरातन छिपे हुए, या गड़े हुए स्थान से अन्यत्र हो जाने वाले, चुराये गये धन-पशु आदि की पुनः प्राप्ति के लिए पुनरागमनार्थ 'प्रपथेपथाम्' [७।१०] की चार ऋचाओं से दक्षिण [सीधे] हाथ पैर को धोकर पूजाकर उठाये। इन्ही उपर्युक्त चार ऋचाओं से इक्कीस ढेरियों में शर्करा अभिमन्त्रित कर चौरास्ते पर रक्खें और फैलायें, चहुँ ओर फेंकें। कौ० ७।३।

अध्यापन कार्य करने वालों के अर्थार्जन विघ्न शमनार्थ 'ऋचं साम' (७।५७) से होम करें। कौ० ५।६। तथा प्रस्थान काल में दक्षिण पैर को प्रथम विषम संख्या में आगे बढ़ायें और सांस को ऊपर की ओर खींचकर 'ये ते पन्थान' (७।५७-२) का जप करे। असख्य विनागिनी-शर्करा व घास इसी ऋचा से अभिमंत्रित कर इन्द्र का ध्यान कर घर क्षेत्र आदि की ओर स्वस्त्ययनार्थ छिड़कें।

७. किसी भी ज्ञात-अज्ञात, मृत या जीवित प्राणी की अप्राप्य नष्टसम्पत्ति. जिसे वह प्राप्त करने में विवश हो, या जिस पर प्रेत सर्पबनकरबैठगया हो,या वह कृपण जो धन अनेकों अनर्थकारी निंद्यकर्मों से उत्पन्न करता हो परन्तु देवकार्यों, धार्मिक निविदाओं सामाजिक कल्याण कार्यो में या स्वयं के उपभोग में न लाकर केवल मात्र संग्रहकर्त्ता ही हो उसकी सम्पत्ति के प्राप्ति हेतु—उपर्युक्त अप्राप्य लक्ष्मी, तथा लक्ष्मी प्राप्ति में आने वाली बाधाओं के शमनार्थ 'शेरभक-शेरभ्' (२।२४) उपरोक्त समुद्र कर्म में जल सूक्तों से अभिमन्त्रित पूर्व कर्म के साथ पटले पर अग्नि स्थापित करें और उपर्युक्त कृपण के ही घर से (छल से) दूध-घी चावल ला; उस पर खीर बनाकर होम करे और प्रसाद को अभिमन्त्रित कर सेवन करे। उसके यहाँ से जौ लेकर कूटे और सत्तू बनाये-लाल बकरी के दही व जल में घी मिलाकर होम करे, प्रसाद को अभिमंत्रित कर खाये।

इसी कर्म में इसी सूक्त से तिनकों में गांठ लगायें, और जल के पात्र में क्रमशः प्रत्येक ऋचा से उन्हें खोलें— उस जल से शिर को छींटे दें, मुंह धोये, आचमन स्नान करे। यदि उपर्युक्त वस्तु न मिलें तो गौ का गोमय ले उसका रस निकालें छूंछे को सुखाकर उसकी अग्नि में ही खीर बनावें। उक्तक्रम २,३ के कर्म करे, तथा रस में दूध-घी मिला अभिमन्त्रित्त कर पियें।

८. भाग्य के सो जाने पर मृतावस्था युक्त अर्थात् सब कुछ यत्न करने पर भी लाभ की अपेक्षा हानि होने में या अवरणनीय आर्थिक दुर्दशा आ जाने में अथवा गड़े हुए धन की प्रेतत्व अवस्था ही जाने में उस पर सर्प रूप प्रेत के बैठ जाने में-घट के जल में पूर्वोक्त सुगन्धित चन्दन, रोलो, पुष्प और सर्वौषधियाँ डालें और उसी में आगे की उत्थापिनी ऋचा अर्थात् उत्थापन गण से जो अथर्ववेद कौशिकसूत्र की कण्डिका ४१।८ (कं० ८३।२०—२३; ८४।१३, ८२, ८४)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कण्डिकाओं से सम्मत है—के अनुसार अ० वे० का० (३।२०) "अयं ते योने" (५।७) "आनोभर" (७।१) "धीती वाये" के साथ वर्णित विधि में ही (१८।३–८; ६) "प्रततिष्ठप्रँहि" गे २; (१८।२–४८) "उदन्वतीद्यौ" से घट में सुगन्धित व शान्ति औषधियां डालें; तत्पश्चात् इन सभी उपर्युक्त ऋचाओं से तथा (१८।१–५;११;१८) ऋचाओं से अभिमन्त्रित करें। ऋचा (१८ १–६१) "इत् एत उदारुहन्" (१८।४-४४) "इदं पूर्वमपरं" (१८।३-५५) "अग्निष्टद्विश्वान्" से उत्थापन, आवाहन करें। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त (३।२०) "अयं ते योने" के अर्थात् नं० १ व २ व ३ की सभी क्रिया करें।

इन घटों में कामना भेद से धर्मार्थि यज्ञिय भस्मैं; धनार्थ मुक्तामणि श्रीकामी कमल पुष्प, कमलगट्ठे, कामार्थी गोरोचरन, यज्ञोपवीत श्रीफल, केशर, जावित्री भी डाली जानी विहित हैं। इस घट को पीले वस्त्र, रेशमी लाल वस्त्र से अभिमन्त्रित करने में ढक दें। रोली, रक्त चन्दन से पूजा करें। पुष्प माला धारण करायें।

उत्थापन के उपरान्त, श्रीसूक्त "ॐ हिरण्य वर्णा" से न्यास करे और अन्य १५ ऋचाओं का भी जप तथा उनसे होम करे। इनका अश्वत्थमूल, विल्वमूल तुलसी के समीप नित्य २१ पाठ तथा तीनों सन्ध्याओं में उपस्थान का भी विधान है। ये उपर्युक्त द्रव्योपार्जन, द्रव्यसंग्रह अतुल सम्पदा प्राप्ति के वेदोक्त मार्ग हैं।

अथ उत्थापनगणः। ये (३।२०-१) (५।७-१) (७।१-१) हैं रयिसम्बर्द्धनम्। (३।२०-१)। १-१० वसिष्ठः। १-२ अग्निः, ३ अर्यमा, भगः, वृहस्पतिः, देवीः, ४ सोमः, अग्निः, आदित्यः, विष्णुः ब्रह्मा, वृहस्पतिः, ५ अग्निः, ६ इन्द्र-वायु, ७ अर्यमा, वृहस्पतिः, इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती। सविता, वाजी; ८ विश्वाभुवनानि, ९ पञ्चप्रदिशः, १० वायुस्त्वष्टा। अनुष्टुप्, पथ्यापंक्तिः ६। ८ विराड् जगती। रयिसम्बर्द्धने विनियोगः

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ॥१
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२
प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः। प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥३
सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे। आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥४
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय। त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥५
इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ॥६
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय। वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७
वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८
दुहां मे पञ्च प्रदिशो दुहामुर्वीर्यथाबलम्। प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोसनिं वाचंमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि । आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०

कां० ३ सू० २० "अयं ते योनि" हे अग्ने ! यह तेरा ऋत्विजों से सम्बन्धित उत्पत्ति स्थान है। जिससे प्रगट होते ही तू प्रकाशित होता है। अपने उत्पत्ति स्थान को जानता हुआ उन्नत होता हुआ, हमारे धन की वृद्धि कर। (२) हे अग्ने ! यहाँ स्पष्ट वाणी से बोल, हमारे अनुकूल होकर हमारे लिये उदार मना बन। हे वैश्य प्रजाओं के स्वामी ! तू हमारा धनदाता है, अतः हमें दान दे। (३) अर्यमा, भग, वृहस्पति, देव पत्नियाँ सभी सरल, सहृदया हमें धन दें। (४) राजा सोम, अग्नि, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा की हम प्रार्थना करते हैं कि वे समुचित रूप से हमारी रक्षा करें। (५) हे अग्ने ! तू अग्नियों के साथ हमारा ज्ञान और यज्ञ बढ़ा। हे देव ! दानदाताओं के दान देने को पर्याप्त धन दे। (६) हम इन्द्र, वायु, इन दोनों की प्रार्थना करते हैं, वे हमारे लोगों को सगठन शक्ति दें जिससे उदार मन वाले बनें और दान परायण हो। (७) अर्यमा, वृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, सरस्वती और बलिष्ठ सविता देव ये सभी हमें दान देने हेतु उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें। (८) बल उत्पन्न करने के लिये हम संघ बनाते हैं। जैसे बन्दर से ये सारे भुवन संघठित हुये हैं। इसका ज्ञाताकृपण को भी दान करने की प्रेरणा करे और हमें सम्पूर्ण वीर भाव से युक्त धन देवे। (९) ये बड़ी विस्तीर्णं पांच दिशाये हमें यथेच्छ पोषक रस प्रदान करे। जिससे हम मन से, हृदय से, बलिष्ठ बन कर अपने समस्त संकल्पों को पूर्ण कर सकें। (१०) मैं सर्वप्रिय, मितमधुर भाषी बनूं। ब्रह्म तेज के साथ मेरा अभ्युदय हो। मुझे चहुँ ओर से प्राण उत्साहित करें और त्वष्टा मुझे पुष्ट बनायें।

अरातिनाशनम्। (५।७-१) १-१० अथर्वा। बहुदैवत्यम्, १-३, ६-१० अरातयः, ४-५ सरस्वती। अनुष्टुप्, १ विराड्गर्भा प्रस्तार पंक्तिः, ४ पथ्यावृहती, ६ प्रस्तारपंक्तिः।

आ नौ भर मा परिं ष्ठा अराते मा नौ रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
नमौ वीर्त्साया असंमृद्धये नमौ अस्त्वरातये ॥१
यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणंम् । नमस्ते तस्मैं कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥२
प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् । अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥३
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे । वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥४
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा । श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥५
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ॥६
परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि । वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥७
उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् । अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥८
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे । तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥९
हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही । तस्य हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ॥१०

कां० ५ सू० ७ "आनोभर" हे अदानी ! हमें भरपूर दे, हमसे पृथक् न हो। हमारे द्वारा लाई गई, दक्षिणा को अपने पास न रख। ऐसी ईर्ष्यापूर्ण, दरिद्रता के लिये नमस्कार है और कृपण के लिये दूर से नमस्कार है। (२)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे दरिद्रे ! तू जिस असद्व्यक्ता पुरुष को आगे रखती है; हम तेरे इस पुरुष को नमस्कार करते हैं। तू मेरी मानसिक कामना को पीड़ित न कर। (३) हमारी देवों द्वारा निर्मित कामना, अहर्निश समर्थ होवे। हम कृपणता को प्राप्त न हों, अदान शक्ति को नमस्कार है। (४) हम उथल-पुथलकर्त्ता जन विद्या सुमति और ऐश्वर्य की कामना करते हैं। हम सदप्रियभाषी ही हों। (५) मैं उत्तम, विशुद्ध मन और ज्ञानमयी वाणी की कामना करता हूँ। भरणकर्त्ता सोम द्वारा प्रदत्त श्रद्धा हम सबको उपलब्ध हो। (६) हमारी भक्ति और वाणी का ह्रास न कर। दोनों इन्द्र और अग्नि हमें धन प्रदान करें। दान परायण सभी कृपणता को दूर से नमस्कार करते हैं। (७) हे दरिद्रे ! तू दूर चली जा, हम तेरे शास्त्र को हम अलग करते हैं। हे कृपणता देवी ! मैं तुझे निर्बलता और मानसिक क्लेशदायिनी मानता हूँ। (८) हे दरिद्रे ! तू नग्न होकर मनुष्य को प्रमादी, आलसी बनाती है और मनुष्य के चित्त और संकल्प को क्षीण करती है। (९) वह बड़ी विस्तीर्ण, सर्वत्र फैली हुई, सुवर्ण तुल्य विपत्ति के लिये दूर से नमस्कार है। (१०) सुवर्ण वर्णा, ऐश्वर्य वाली—बड़ी सुवर्ण वस्त्रों से अलंकृत, कृपणता के लिये हम दूर से ही नमन करते हैं। सूर्य के उदय और अस्तकाल में सोने वाले कृपण, ज्वारी, लुब्धक, यज्ञ विदूषकों को स्वर्णिम आपदायें दरिद्रता मलिनता अपना दास बना कर अधपतन करती है।

आत्मा। (कां० ७।१) १-२ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामा)। आत्मा त्रिष्टुप्, २ विराड्जगती।

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥१
स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः स इदं विश्वमभवत् स आभवत् ॥२

कां० ७ सू० १ "धीतीवाये"—जो अपने अवस्थित मन से; वाणी के उद्गम स्थान और जहां वाणी का जाकर विराम स्थल हैं, उस स्थान (आत्मा) को अन्तर्मुख होकर देखता है; अर्थात जब आत्मा की बोलने की प्रवृत्ति होती है। उस मूल स्थान को पता मानसिक अन्तर्मुख होकर पता लगाता है, और वहीं आत्मा का दर्शन होता है। जो सत्यव्रत परायण, ज्ञान सम्पन्न, कामधेनु स्वरूप, परमात्मा के नाम जप, उपस्थान, होम ध्यान, धारणा, समाधि आदि में लीन रहते हैं। (२) वे ही अपने को उत्पन्न हुए का गौरव अनुभव करते हैं। वे ही अपने माता पिता को जानते हैं। वे ही निरन्तर दान परायण होते हैं, वे द्युलोक, अन्तरिक्ष लोकों को, और आत्मप्रकाश को अपने अधीन कर लेने में समर्थ होते हैं। वह यह सब विश्व बनता है, और वह सर्वत्र फैलता है। अर्थात् विश्वरूप बना हुआ आत्मा विश्व भर में फैलता है।

अर्थोत्थापनगणः - पावमानम्। (६।६२) (पवित्रगण के साथ) मेधाजनम्। (१।१) मधंगण के साथ। (१३।१) वर्चस्गण के साथः।

अ० वे० कां० १ सू० ४ "अम्बयो:" यह ग्रन्थ में द्वितीय अध्याय में है, अर्थ इस प्रकार समझें और प्रयोग में लायें। (१) याज्ञिकों की बहिन और माताओं के तुल्य, जल की नदियाँ, अपने-अपने मार्गों से जाती है। जो अर्थात् उनके तुल्य हितकारी है। उनके प्रवाहों में ही मानो दूध, मधु मिश्रित हैं। (२) जो नदियां सूर्य के सन्मुख होती हैं; अथवा जिनकी पवित्रता सूर्य करता है, वे हम सबके यज्ञ पूर्ण करें। (३) जिन नदियों में हमारी गौयें जल पीती हैं, और जिनके लिये हव्य बनाया जाता है, उनके गुणगान करते हैं।

कां० १ सू० १ "येत्रिपप्ता" यह भी अध्याय २ में पढें, भाव निम्न प्रकार हैं। (१) सब रूपों को धारण करके जो तीन गुना सात पदार्थ सर्वत्र व्यापते हैं। अर्थात जो २१ पदार्थ, जगत की वस्तुओं के, आकार धारण करते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुए सर्वत्र फैले हुए हैं, उनकी शक्तियों को अपने अन्दर स्थिर करने की विद्या गुरु हमें पढ़ायें। (२) गुरु शिष्य को उत्तम विद्या समझाने में प्रवीण, श्रेष्ठवक्ता, जो कहे, उसे प्रयोग द्वारा साक्षात प्रत्यक्ष करा देने में समर्थ हों वेही होने योग्य है। हे गुरोः! आप मन में शुभ संकल्प धारण करके, हमारे सन्मुख पधारकर, हमें रमाते (हुए पढ़ा) प्राप्त किया हुआ ज्ञान हममें स्थिर रहे। (३) डोरी से दोनों, धनुष्कोटियों के तनाव के समान यहाँ आप (विद्या से हम दौनों को) तान, बाँध दें। अर्थात् गुरु नियम से चलें, और हमें अनुशासन में चलावें ज्ञान हममें स्थिर रहे। (४) हम गुरु से प्रश्न पूछते हैं, वे हमें उत्तर देने की कृपा करें। हम सब ज्ञानी बनें, कोई भी ज्ञानविरोधी न हो।

कां० ६।६२ "वैश्वानरो" वृहच्छान्तिगण में पढ़ें समझें और करें। कां० १३ सू० १ "आगे अभ्युदय" प्रकरण में पढ़ें। कां० ७ सू० ७।८ "दितेपुत्राणाम्" प्राजापत्येष्टि में पृष्ठ ४२६ पर पढ़ें। कां० ७ सू० ५४ 'ऋचंसाम" ये मन्त्र अध्याय २ में पढ़ें। भाव इस प्रकार हैं। (१) ऋग् और साम मन्त्रों से, मानव कल्याण कर्म करते हैं, इस कारण ही हम इन वेदों का अध्ययन करते हैं। ये ही वेद इस जगत में, यज्ञस्थल में प्रकाश देने वाले, पथ प्रदर्शक हैं। क्योंकि ये ही देवों के सत्कर्मों की स्थापना करते हैं। मैं गुरु से ऋक्, साम यजु के अर्थात यज्ञविधि, शारीरिक बल ओज बढ़ाने का उपाय और मानसिक बल सम्बर्द्धन का मार्ग पूछता हूँ। यह सारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान, मेरे अभ्युदय में सहायक हो किसी भी प्रकार बोधक न हो।

आपः। (३।१३) १-७ भृगुः। वरुणः, सिन्धुः, आपः। २-३ इन्द्रः। अनुष्टुप्, १ निचृत, ५ रिराड् जगती; ६ निचृदनुष्टुप्। अर्थोत्थापने, अनावृष्टि निवारणे, जलाभिमन्त्रणे, सर्वार्थसिद्धये जपे होमे च विनियोगः।

यद॒दः सं॑प्रय॒तीरहा॒वनं॑दता ह॒ते । तस्मा॒दा न॒द्यो॑३ नाम॑ स्थ॒ ता वो॒ नामा॑नि सिन्धवः ॥१

यत् प्रेषि॑ता॒ वरु॑णे॒नाच्छीभं॑ स॒मवं॑ल्गत । तदा॑प्नो॒दिन्द्रो॑ वो य॒तीस्तस्मा॒दा॒पो॒ अनु॑ ष्ठन ॥२

अ॒पका॒मं स्यन्द॑माना॒ अवी॑वरत वो॒ हि कम् ।
इन्द्रो॑ व॒ः शक्तिभि॑र्दे॒वीस्तस्मा॒द् वार्नाम॑ वो हि॒तम् ॥३

एको॑ वो दे॒वोऽप्यं॑तिष्ठ॒त् स्यन्द॑माना यथाव॒शम् । उदा॑निषुर्म॒हीरिति॒ तस्मा॑दुद॒कमु॑च्यते ॥४

आपो॑ भ॒द्रा घृ॒तमिदाप॑ आसन्न॒ग्नीषोमौ॑ बिभ्र॒त्याप॒ इत् ताः ।
ती॒व्रो रसो॑ मधुपृचा॑मरंग॒म आ मा॑ प्रा॒णेन॑ स॒ह वर्च॑सा गमेत् ॥५

आदित् प॑श्याम्युत वा॑ शृणो॒म्या मा॒ घोषो॑ गच्छति॒ वाङ् मा॑साम् ।
मन्ये॑ भेजा॒नो अ॒मृत॑स्य॒ तर्हि॒ हिर॑ण्यवर्णा॒ अतृ॑पं य॒दा वः ॥६

इ॒दं वं आपो॒ हृद॑यम॒यं व॒त्स ऋ॑तावरीः । इ॒हेत्थमेतं शक्व॒रीर्यत्रे॒दं वे॒शया॑मि वः ॥७

पितृमेधः (१८।३) अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्ताः देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। (१८-३-८।९)

उत् ति॑ष्ठ॒ प्रेहि॒ प्र द्र॑वौकः॑ कृणुष्व सलि॒ले स॒धस्थे॑ ।
तत्र॒ त्वं पि॒तृभिः॑ संविदा॒नः सं सोमे॑न॒ मद॑स्व॒ सं स्व॒धाभिः॑ ॥८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र च्यंवस्व तन्वं१ सं भंरस्व मा ते गात्रा वि हांयि मो शरीरम् ।
मनो निविंष्टमनुसंविंशस्व यत्र भूमेंजुषसे तत्रं गच्छ ॥९

पितृमेधः । १८।२-४७, ५३-११.१८) अथर्वा । यमः मन्त्रोक्ताः देवता । अनुष्टुप् ।

उदुन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा । तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसंते ॥४८
अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यंन्तं पूषणं यो वहांत्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥५३

कां० १८।२-११;१८ ऋषिः अथर्वा । यमः मन्त्रोक्ताः देवता । अनुष्टुप् छन्द अर्थोत्थापने प्रेतत्वापन्नोत्थापने, च विनियोगः ।

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अधा पितृन्त्सुविदत्रां अपीहि यमेन ये संधमादं मदन्ति ॥११
सहस्रंणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् । ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥१८

इन ८, ९, ४७ ऋचाओं से सुरभिः शान्ति औषधियों को घट में डालकर उत्थापन कलश को अभिमन्त्रित करे । तथा ६१. ४४, ५३ ऋचाओं से कलशोत्थापन करे एवं १८ तथा ११ वीं ऋचाओं से अवसेचन करे ।

कां० १८।१।६१ अथर्वा ऋषिः - यम मन्त्रोक्ताः । देवता । त्रिष्टुप् छन्दः पुनरुत्थापने विनियोगः ।

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् । प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥६१

कां० १८ सू० ४ अथर्वा । यमः मन्त्रोक्ताः, त्रिष्टुप् ।

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥४४

कां० १८।३।५५

यत् ते कृष्णाः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणां आविवेश ॥५५

पुनरुत्थापन करे । कौशिक सूत्र कण्डिका ४१।८, ८३।२०, २३, ८४।१३, ८२, ८३, ८४ के अनुसार ४१।८ प्रथम ८ उत्थापन्यः ऋचायें पूर्व में कही गई हैं । अनुभूत है ।

अर्थोत्थापन "कर्मज-व्याधि निरोध" अथर्ववेदीय ग्रन्थ के ५वें अध्याय में उल्लिखित हैं ।

कां० ७ सू० ५७ "यदाप्रासा बदतो" (१) भाषण, शास्त्रार्थ, जनसेवा, किंवा सेवार्थ प्रार्थना करने के समय की गई हलचल में, जो आत्मा या मन को हृदय में क्लेश हुआ हो, उसे सरस्वती दूर करें । (२) जिस प्रकार पिता के लिये पुत्र सत्य कर्मों को करते हैं, उसी भांति नवजात शिशु के लिये भी सात प्राण, सप्त इन्द्रियाँ, जीवन रस प्रदान करती हैं । इसके पास दो शक्तियाँ हैं, और इसकी वो दोनों ही शक्तियाँ प्रकाशित होती हैं । दोनों ही प्रयत्न करती हैं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और दोनों ही पोषण करती हैं। ये सात शक्तियाँ बुद्धि, मन और ५ इन्द्रिया ही हैं। प्राण और अपान ये विशेष प्रकार के बल हैं।

अस्य कां० ३ सू० १५ स्य अथर्वा ऋषिः, (पण्यकामः) विश्वेदेवाः इन्द्राग्निर्देवते। त्रिष्टुप्, १ भूरिक्, ४ त्र्यवसाना षट्पदा वृहतीगर्भा विराड्त्यष्टिः, ५ विराड्जगती, ७ अनुष्टुप्, ८ निचृत्।

इन्द्रम॒हं व॒णिजं॑ चोदयामि॒ स न॒ ऐतु॑ पुरए॒ता नो॑ अस्तु।
नु॒दन्नरा॑तिं परिप॒न्थिनं॑ मृ॒गं स ईशा॑नो धन॒दा अ॑स्तु॒ मह्य॑म् ॥१

ये पन्था॑नो ब॒हवो॑ देव॒याना॑ अन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी सं॒चर॑न्ति।
ते मा॑ जुषन्तां॒ पय॑सा घृ॒तेन॒ यथा॑ क्री॒त्वा धन॑मा॒हरा॑णि ॥२

इ॒ध्मेना॑ग्न इ॒च्छमा॑नो घृ॒तेन॑ जुहोमि ह॒व्यं तर॑से॒ बला॑य।
याव॒दीशे॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान इ॒मां धियं॑ शत॒सेया॑य दे॒वीम् ॥३

इ॒माम॑ग्ने श॒रणिं॑ मीमृषो नो॒ यमध्वा॑न॒मगा॑म दू॒रम्।
शु॒नं नो॑ अस्तु प्रप॒णो॒ विक्र॑यश्च प्रतिप॒णः फ॒लिनं॑ मा कृणोतु।
इ॒दं ह॒व्यं सं॑विदा॒नौ जु॑षेथां शु॒नं नो॑ अस्तु चरि॒तमुत्थि॑तं च ॥४

येन॒ धने॑न प्रप॒णं चरा॑मि॒ धने॑न देवा॒ धन॑मि॒च्छमा॑नः।
तन्मे॒ भूयो॑ भवतु॒ मा कनी॒योऽग्ने॑ सात॒घ्नो दे॒वान् ह॒विषा॒ नि षे॑ध ॥५

येन॒ धने॑न प्रप॒णं चरा॑मि॒ धने॑न दे॒वा धन॑मि॒च्छमा॑नः।
तस्मि॑न् म॒ इन्द्रो॑ रु॒चिमा द॑धातु प्र॒जाप॑तिः सवि॒ता सोमो॑ अ॒ग्निः ॥६

उप॑ त्वा॒ नम॑सा व॒यं होत॑र्वैश्वानर स्तु॒मः। स नः॑ प्र॒जास्वा॒त्मसु॒ गोषु॑ प्रा॒णेषु॑ जागृहि ॥७

वि॒श्वाहा॑ ते॒ सद॒मिद् भ॑रे॒माश्वा॑येव॒ तिष्ठ॑ते जातवेदः।
रा॒यस्पोषे॑ण॒ समि॒षा मद॑न्तो॒ मा ते॑ अग्ने॒ प्रति॑वेशा रिषाम ॥८

कां० ३ सु० १५ "एन्द्रमहंवणिजम्" वाणिज्य, उद्योगादि व्यवसायों से धनोपार्जन सिद्धि हेतु, मैं वाणिज्यादि व्यवसायी इन्द्र की प्रार्थना करता हूं; वह हमारे अन्तःकरण में पधारें, और हमारे पथप्रदर्शक बनें। (२) द्युलोक और भूलोक के मध्य आनेजाने के जो दिव्य मार्ग हैं, वे हमारे लिये दूध, घी आदि से परिपूर्ण हों। जिन मार्गों से जाकर हम व्यापार मार्ग से विपुल धनोपार्जन कर सकें। (३) हे आग्ने! मैं लाभ का इच्छुक सब संकटों से रक्षार्थ और बल प्राप्ति के लिये घी और ईन्धन से होम करता हूँ, जिससे इस बुद्धि का, विज्ञान द्वारा सन्मान करता हुआ सहस्रों सिद्धियों को प्राप्त करने में योग्य हो सकूं। (४) हे अग्ने! हम अपने घर से बहुत दूर विदेश में आये हैं, हमसे यहाँ कोई त्रुटि हो गई हो तो क्षमा कर। हम यहाँ जो व्यवसाय कर रहे हैं, हमें उसमें बहुत लाभ प्राप्त हो। हमें क्रय में भी लाभ हो, और विक्रय से भी विपुल धन प्राप्त हो। प्रत्येक व्यवसाय में हमें धन लाभ होता रहे। हमारा आना-जाना और हमारा अभ्यु-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्थान, अर्थात् स्पर्धा की चढ़ाई करना भी हमें लाभप्रद ही होवे। इस हेतु हम होम करते हैं, इस हवि को जानकर सेवन करो। (५) मैं मूलधन से व्यापार कर अमित लाभ करना चाहता हूं, इस कारण मैं जितने धन से व्यापार कर रहा हूं, वही धन मेरे लिये पर्याप्त होवे, कम न हो, मैं जो यह होम कर रहा हूं, इससे प्रसन्न होकर, हे प्रभो ! तू मेरे व्यवहार में लाभ के विनाश के सभी कारणों को दूर कर। (६) मैं अपने मूल धन से व्यवसाय करके, मैं विपुल धनोपाजंन करना चाहता हूं, प्रभु कृपा से उसमें मेरी अभिरुचि, लाभ की प्राप्ति पर्यन्त स्थिर होवे। (७) हे याज्ञिक वैश्वानर ! हम विनम पूर्वक आपकी स्तुति करते हैं। आप प्रसन्न होकर हमारी आत्मा,प्राण, प्रजा और गौओं के रक्षणार्थ जागृत रहें। (८) हे जात वेदाग्नि ! जिस भाँति एक स्थान पर वंधे घोड़े का प्रतिदिन खिलाने का प्रवन्ध करते हैं, उसी प्रकार प्रतिदिन. आपके लक्ष्य से होम करते रहें। तेरी कृपा से हम बहुत विविध धन, रत्न, पुष्टि और उपभोग्य पदार्थों से परिपूर्ण आनन्दित हों और कभी दुःख से त्रस्त न हों। व्यापार के विरोधी, ज्वारी, बटमार चोर, लुटेरे, पशुभाव के प्राणी,कृपण, अदानी, व्यवसायार्थ अपर्याप्त मूलधनादि व्यापार विरोधी संकटों से सदा, सतत हम बचे रहें। दूर से ही हम उनको नमस्कार करते हैं।

काँ० १६ सू० १ "सं सं स्रवन्तु" प्राजापत्येष्टि में पढ़ें, तत्तत्कार्यों में उस विधियों के उपयोग के साथ लक्ष्मी प्राप्ति करें। लक्ष्मी सूक्त ऋग्वेद की विधि भी अध्याय २ में दी जा चुकी है। उसके शेष मन्त्र निम्न हैं, पढ़ें कार्य करें।

ऋ० वे० अ० ४।४।३४(११) के लक्ष्मी सूक्त मन्त्र १७ से २६ पर्यन्त। शेष १ से १६ तक दूसरे अध्याय में पढ़ें।

पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सं नि धत्स्व ॥१७
पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसंभवे। तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्॥१८
अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने। धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥१९
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वाश्वतरी रथम्। प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥२०
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः। धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणो धनमश्विना ॥२१
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा। सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः॥२२
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्त्या श्रीसूक्तजापिनाम् ॥२३
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगंधमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्र सीद मह्यम् ॥२४
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥२५
महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्र चोदयात् ॥२६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आनंदः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः । ऋषयः श्रियः पुत्राश्च श्रीर्देवीर्देवता मताः ॥२७
ऋणरोगादिदारिद्र्यपापक्षुदपमृत्यवः । भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥२८
श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते ।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥२९

कां० १२ सू० १ "सत्यम् बृहत्" भी लक्ष्मी, मणि, माणक अनेकों खनिज, बाहन, गौ, अश्वादि का प्रचुर मात्रा की उपलब्धि प्रदाता है। पीछे आ चुका है, पढ़ें, समझें, करें।

कां० १९ सू० ५ "इन्द्रोराजा" अतुल धनधान्यादि कामी इन्द्र देव का जप, उपस्थान, होम करें।

कां० १९ सू० ५ जगतो राजा । १ अथर्वाङ्गिराः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१

अर्थ :—स्थावर, जंगम सभी चराचर का एकमात्र प्रभु भगवान उपेन्द्र ही हैं। अखिल ब्रह्माण्ड में, जो कुछ भी वस्तु मात्र है, उस सब पर एकमात्र उन्हीं का पूर्ण अधिकार है। वह केवल दानदाता [याजक] को स्थाई धन देता है। स्तुति कर्त्ता के पास धन स्वतः ही भेजता है। अदानी, कृपण, अयाजक को दिये गये धन का अपहरण करा लेता है। उसकी महिमा को जानने वाले महान गौरवान्वित होते हैं।

इन सूक्तों के अतिरिक्त सभी अम्बादि गण अपागण मन्त्रों में वर्णित विधियां, सोये हुए भाग्य को जगाने, प्रेतावस्था को प्राप्त पूर्वजों के धन, या चोरी के धन, या अनिष्ट धनों को दोष रहित बनाने और उपलब्ध कराने में पूर्ण समर्थ है। यज्ञ और दानपरायण उसमें सहायक होती हैं।

इति श्रीअर्थोत्थापन विधिः ।

वाक्सिद्धि, सभा, शास्त्रार्थ विजय

पूर्व, मूल नक्षत्र दोष परिहार के साथ वर्णित मेधा लनन तथा शब्द-वर्ण-पद-कारुरूपा सरस्वती के निरन्तर कण्ठ प्रदेश में विराजे रहने के हेतु **स्तन पान** संस्कार के उपरान्त नाम करणादि के साथ ही नवजात शिशु की वाणी सिद्ध हो, जन्म-जन्मान्तरीय का अक्षर ज्ञान हो उठे, सद्-असद् का ज्ञान हो, लोक-परलोक से पार करने वाली पराविद्या प्राप्त हो। यज्ञ, सभा, शास्त्रार्थो के बाद कविता में तात्कालिक बुद्धि का स्फुरण हो, बाणी कभी कुण्ठित न हो, इन सब के लिये निरन्तर ध्यान, जप, उपस्थान होम करे।

"सरस्वति व्रतेषु" कां० ७ सू० ६८।७० इन २ ऋचाओं से होम करे, कौ० २।४ तथा चातुर्मास में वैश्व देव पर्व में "सारस्वत याग" "सरस्वती व्रतेषु" (७।७०) "सविता प्रसवानाम" (५।२४) "प्रपथे पथाम्" (७।१०) तथा **अन्वारम्भणीयेष्टि** में सारस्वत चरु याग इन्हीं से करें, (वै० २।४) "सरस्वत्यै चरुं सरस्वते द्वादशकपालं सरस्वति व्रतेषु" (यस्य व्रत) (७।४१) इनसे याग का विधान हैं। "शिवा नः" (७।७१) से उपस्थान करें।

सरस्वति व्रतेषु (७।७०) में "धाम सु" से स्थान, नाम, जन्न समझें, "धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानि" इति हियास्क (नि० ९।२८), "शिवा नः" [७।४१] में "शंतमा" से रोग-भय निवारक समझें। "शंयोरित्यत्र भास्केन शमनं च रोगाणां यावनं च भयानाम् [नि० ४।२१] इन मेधाप्रद तथा, सरस्वती प्रद मंत्रो का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रातः, सायं, मध्याह्न में सूर्य की किरणों के साथ अपनी वाणी में ओज, वर्च, प्रगल्भता लाने हेतु जप, ध्यान, होम उपस्थान का विधान है। शंखपुष्पी, अन्धपुष्पी, शितावर, गोदुग्ध, गोघृत तथा मधु के साथ सेवन करे, अपामार्ग से दन्त धावन करे। सूर्योदय, सूर्यास्त में न सोये। ऊषा काल में उठ कर ताम्रपात्र में रात्रि के भरे जल का सेवन करे। प्राणायाम, आसन करे, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे।

[१ [२] "उद्यन् सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे" (अ०कां० ७ सू० १४ ऋ० २।२ सूर्य के ऊदय अस्त में सोनेवाले के वर्च को सूर्य अपहरण करता है। इस दोष के निवारणार्थ "आपस्तम्ब" में प्रायश्चित् रूप कर्म का निर्देश भी किया है। यथा —"स्वपन्नभिनिर्मुक्तोनाश्वान्" वाग्यतोरात्रिम् आसीत्। स्वोभूत उदकम् उपस्पृश्य वाचं विसृजेत्। "स्वपन्नभ्युदितोनाश्वान्वाग्यतोहस्तिष्ठेत्। आंतमितोः प्राणम् आयच्छेदियैके" इति (आप० ध० २।५।१२। १२-१५) यदि सोते में सूर्यास्त हो जाय—कर्म लोप हो जाय तो "ॐवाग् वाग्, ॐ प्राणः प्राणः "इनसे वाक् और प्राण स्पर्श कर बोले। उदय काल में सोने से कर्म लोप होने पर, जल-स्पर्श कर बोले, तब दैनिक कर्म करे।

कां० ६ सू० १ अर्थसूक्त है। इनकी प्रथम १० ऋचाओं का गौ के रूप में, ११ से २० का वर्चस्काम से आश्विनी कुमारों के द्वारा अन्य देवों से, २१ से २४ पुनः पूर्वोक्त वर्णन है। ऋचा० ११ से २४ पर्यन्त उत्सर्ज कर्म में होम में विनियोग हैं। कां० १४।३ वैतानश्रौत सूत्र कां० ३ सू० ६ "सोमयोगे, सोमसेवने, राजानं संश्रयति"।

कां० ६ सू० १ ऋ० १-२-४ अथर्वा ऋषिः। मधु, अश्विनौ। देवते त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप्गर्भा पङ्क्तिः, ३ पराऽनुष्टुप्, ६ अतिशक्करीगर्भा महावृहती, ७ अति जागतगर्भा महावृहती, ८ वृहतीगर्भा संस्तारपङ्क्तिः, ९ परावृहती प्रस्तारपङ्क्तिः, १० परोष्णिक्पङ्क्तिः, ११, १३, १५, १६, १८, १९ अनुष्टुप्, १४ पुरोनष्णिक् १७ उपरिष्टाद्विराड् वृहती, २० भुरिग्विष्टारपङ्क्ति, २१ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्, २२ त्रिपदा ब्राह्मीपुरोष्णिक्, २३ द्विपदा आर्चीपक्तिः, २४ त्र्यवसाना षट् पदाष्टिः। उपर्युक्त सोमयागे, सोमसेवने च विनियोगः।

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥१
महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥२
पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥३
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् गर्भश्चरति मर्त्येषु ॥४
मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥५
कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स तौ प्र वेंद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते अनंपस्फुरन्तौ ॥७
हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मानभि वांवशाना मिमांति मायुं पयंते पयोभिः ॥८
यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥९
स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥१०
यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः । एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥११
यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१२
यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः । एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१३
मधु जनिषीय मधु वंशिषीय । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१४
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥१५
यथा मधु मधकृतः संभरन्ति मधावधि । एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१६
यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि । एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥१७
यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु । सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥१८
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती । यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनां अनु ॥१९
स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥२०
पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥२१
यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥२२
मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यऽभवति । मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥२३
यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्मा॑त् प्राचीनोपवी॒तस्ति॑ष्ठे प्रजा॑पते॒ऽनु॑ मा बुध्यस्वे॒ति॑ ।
अन्वे॑नं प्र॒जा अनु॑ प्रजाप॑तिर्बुध्यते॒ य ए॒वं वेद॑ ॥२४

कां० ९ सू० १ "दिवस्पृथिव्या" द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, समुद्र के जल, अग्नि और वायु से मधुकशा उत्पन्न होती हैं। इस अमृतरूपी दूध देने वाली मधुकशा "गौमाता" की पूजा करके, सब प्रजाजन, हृदय से आनन्दित होती हैं। २—इस गोमाता का दूध मानो अखिल जगत् की सार्वभौमशक्ति है। अथवा सम्पूर्ण जल तत्व का सार हैं। जहाँ से यह शब्द उच्चारण करती जाती हैं, वह सब का प्राण हैं, और दूध प्रत्यक्ष अमृत हैं। ३—विचारवान मनीषी, इस पृथ्वी पर इसके चरित्र का अवलोकन करते हैं। यह मधुकशा, अग्नि, और वायु से उत्पन्न हुई है। मरुद्गण की प्रभावशालिनीनातिन हैं। ४—यह द्वादशा दित्यों की जननी, अष्टवसुओं की पुत्री, प्राजाओं का प्राण और अमृत का केन्द्र हैं। सुवर्णवर्णा, घृतदात्री, मनुष्यों में महान तेज प्रवाहित करने वाली हैं। ५—इस मधु की कशा को देवों ने बनाया हैं। उसी का यह बिश्वरूप गर्भ हुआ हैं। उस जन्मे हुए तरुण को वही माता पालती है। वह होते ही सब भुवनों का निरीक्षण करता हैं। ६—इस मधुकशा के अन्तस्तल में सोमरस से परिपूर्ण कलश अक्षय रूप से निहित है। उस कलश को कौन जानता हैं, और कौन उसका विचार करता हैं। इसी के दुग्ध रूपी रस से, अपनी मेधाबुद्धि बढ़ाने वाला प्रफुल्लित होता हैं। ७—जो इस मधुकशा के दो स्तन हजारों धाराओं से सदा भोग्य रस देते हैं। उसकी गुण गरिमा को कौन जानता है, और कौन उनकी महत्ता का वर्णन करता हैं। ८—जो हिंकार करने वाली, अन्नदात्री उच्च स्तर से बोलने वाली, यज्ञ भूमि में विचरण करती हैं, 'तीनों यज्ञों का पालन करती हुई' यज्ञ के द्वारा काल का मापन करती हैं, और यज्ञ के लिए अपना दूध देती हैं। ९- जो पौष्टिक वर्षा करने वाले, तेजस्वी, शक्ति सम्पन्न जलों जैसे बैलो की भाँति गौओं के पास पहुँचते हैं; तत्व द्रष्टा को यथेच्छ बलदायी अन्न की ये वृष्टि करते हैं, वे वृष्टि कराते हैं। १०—हे प्रजा पालक ! तेरी वाणी गर्जना करने वाले मेघ जैसी हैं। तू बलिष्ठ हो, भूमि पर बल फेंकता हैं। अग्नि और वायु के सत्वांश से मधुकशा उत्पन्न हुई हैं। वह मरुद्गणों के तेजोमयी नातिन हैं। ११—जैसे प्रातः कालीन यज्ञों में, अश्विनी देवों को सोमरस प्रिय होता हैं। हे अश्वि देवो ! उसी भाँति मेरी अन्तरात्मा में तेज धारण कराओ। १२—जैसे द्वितीय मध्यन्दिनसवन में यज्ञ में इन्द्र और अग्नि को सोमरस प्रिय होता हैं; हे इन्द्र और अग्नि ! उसी भाँति मेरी अन्तरात्मा में तेज धारण कराओ। १३—तृतीयसवन, सायं सवन यज्ञ में जैसे सोम, ऋभुओं को प्रिय होता है, हे ऋभु देवो ! इसी प्रकार मेरी आत्मा में तेज धारण कराओ। १४—मधुरता उत्पन्न करूँ। मधुरता प्राप्त करूँ। हे अग्ने ! मैं दुग्ध लेकर उपस्थित हुआ हूं; उस मुझे तेज से सम्पन्न करो। १५—हे अग्ने ! मुझे तेज; प्रजा: आयु से सम्पन्न करो देव मेरी इस अभिलाषा को समझें, और ऋषिगण भी समझ लें। १६—जैसे मधु मक्खियां; अपने मधु में, मधु संचरण करती हैं। हे अग्नि देव ! इसी प्रकार मेरा ज्ञान, तेज, बल और वीर्य; सञ्चित होकर, बढ़ता जावे। १७—जैसे मधु मक्षिकायें इस मधु को, अपने पूर्व सञ्चित मधु में संग्रहीत करती हैं, इसी प्रकार हे अग्नि देवो ! मेरा ज्ञान तेज, बल और वीर्य सञ्चित हो, बढ़े। १८—जैसे पर्वतों पहाड़ों पर गौओं, अश्वों और वृष्टि जलों में, जो मधुरता है; वह मधुरता मेरे में हो जावे। १९—हे कल्याणमय अश्वि देवो ! मधु मक्खियों के मधु से मुझे संयुक्त करो। लोगों के प्रति मैं ओजस्वी भाषण करूँ। २०—हे प्रजा पालक तू ! बलिष्ट है, तेरी वाणी मेघ गर्जन है। तू पृथ्वी और द्यौलोकमें, बल की वर्षा करता है। उस पर सब पशुओं जीवों की जीविका होती है; इसीसे वह बलवर्धक रस की पूर्णता करता है। २१—पृथिवी दण्ड है; अन्तरिक्ष मध्य भाग है, द्युलोक बड़े तन्तु हैं, बिजली उसके सूक्ष्मवाल धागे है, और स्वर्णिम बिन्दु भूषण तुल्य हैं। यह विश्वरूपा गौ है। २२—जो इस गौ के सात मीठे रूप जानता हैं। सातरूप, अन्नरस दान, २ यज्ञ कराना, ३ व्रत धारण कराना, ४ पुष्टि प्रदान कराना ५ बैल देना ६ सोमरस तुल्य प्रियपय, ७ मानव तेज सम्बर्द्धन हैं) वही मधुरता वाला होता है (इसके ब्राह्मण, राजा गाय, बैल, चावल, जौ का सप्तम मधु है।) २३—जो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह जानता है, वह मधुर होता है, उसका मधु वाला होता हैं और प्रिय (मधुर) लोकों को प्राप्त करता है। २४—जो आकाश में गर्जना होती है, मानो वह समस्त जीवों के कल्याणार्थ प्रभु प्रगट होकर दीक्षा उपदेश करता है। इस कारण दायें भाग में, यज्ञोपवीत धारण कर, प्रार्थना करता हुँ। हे प्रजा पालक प्रभो ! मेंरा स्मरण रक्खो। जो मुझे नहीं भुला देना जो इस प्रकार विनय करता है, उसके अनुकूल प्रजायें होती हैं, तथा प्रजापति भी उनका कल्याण करते हैं।

—: अथ मेधाजनन :—

यज्ञ, दान, ध्यान, मन्त्र, वाणी आदि जनित उच्चारणादि दोषों से नष्ट हुई पवित्रता की पुनः प्राप्ति, अतीन्द्रियार्थ दर्शी सर्वज्ञातव्य वेदज्ञान—अभय प्राप्ति तथा क्रोधी (द्वेषी) के क्रोध शमन, आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक ज्ञान, परतत्वज्ञानप्राप्ति, ब्रह्मवर्च हेतु जप उपस्थान, होम करें।

कां० ७ सू० १११ अथर्वा ऋषिः, जातवेदा, वरुणश्च देवते, वृहतीगर्भा त्रिष्टुप् छन्द उपरोक्त कर्मेषु विनियोगः।

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥१

कां० ७ सू० ६९ ब्रह्मा ऋषिः आत्मा देवता, पुरपरोष्णिग्वृहती छन्दाः, उपर्युक्त कार्येषु विनियोगः।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च। पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥१

का० १९ सू० ३ ऋचा ४ अथर्वाङ्गिरा। ऋषिः, अग्निः धेवता। त्रिष्टुप् छन्दः उपर्युक्त कार्येषु विनियोगः।

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यासि रातिम्।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥४

कां० ६ सू० १०८ शौनक ऋषिः। मेधा। ४ अग्निः। देवते। २ उरु वृहती, ३ पथ्या पंक्तिः; १-४ अनुष्टुप् छन्दांसि, मेधा। जननादि उपर्युक्त अभीष्ट सिद्धयर्थे विनियोगः।

मेधां मह्यमङ्गिरसो मेधां सप्त ऋषयो ददुः। मेधामिन्द्रश्चाग्निश्च मेधां धाता ददातु ते ॥१
मेधां ते वरुणो राजा मेधां देवी सरस्वती। मेधां ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥२
या मेधा अप्सरस्सु गन्धर्वेषु च यन्मनः। दैवी या मानुषी मेधा सा मामा विशतादिमाम् ॥३
यन्मे नोक्तं तद्रमतां शकेयं यदनुब्रुवे।
निशामतं नि शामहै मयि व्रतं सह व्रतेषु भूयासं ब्रह्मणा सं गमेमहि ॥४
शरीरं मे विचक्षणं वाङ् मे मधुमद् दुहाम्।
अवृद्धमहमसौ सूर्यो ब्रह्मणानी स्थः श्रुतं मे मा प्र हासीः ॥५
मेधां देवीं मनसा रेजमानां गन्धर्वजुष्टां प्रति नो जुषस्व।
मह्यं मेधां वद मह्यं श्रियं वद मेधावी भूयासमजराजरिष्णु ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ।।७
यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु ।।८
मेधाव्य१हं सुमनाः सुप्रतीकः श्रद्धामनाः सत्यमतिः सुशेवः ।
महायशा धारयिष्णुः प्रवक्ता भूयासमस्मै शरया प्रयोगे ।।६
नाशायित्री पलाशस्यारुषंसौ पथिकामसु । अथो ततस्य यक्ष्माणमपापा रोगनाशिनी ।।१०
ब्रह्मवृक्ष पलाश त्वं श्रद्धां मेधां च देहि मे । वृक्षाधिप नमस्तेऽस्तु अत्र त्वं संनिधौ भव ।।११
त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि । त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ।।१
मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् । प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ।।२
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः । ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ।।३
यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ।।४
मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यंदिनं परि । मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ।।५

कां० ६ सू० १०८ "त्व नों मेधे" धारणावती बुद्धि को "मेधा" कहते हैं। यह ज्ञानियों में रहती है। मंत्र [१] हे धारणावती बुद्धि ! तू सबसे पूज्य हैं। वह सब धनों के साथ हमें प्राप्त हो। इसकी ऋषि प्रशंसा करते हैं, ब्रह्मचारी इसका सेवन करते हैं। इसीसे इसकी हम स्तुति करते हैं। जिस बुद्धि के लिये कारीगर, ऋषि, असुर विख्यात हैं, वह हमें प्राप्त हो। जिस मेधावुद्धि के लिये ऋषिगण प्रसिद्ध थे, वह हमें प्राप्त हो। प्रातः, दोपहर शामको तथा अन्य समय हमारा व्यवहार ऐसा ही हो कि हमें सद्बुद्धि प्राप्त हो। [३] कारीगर जिस बुद्धि को जानते हैं, "प्राणविद्या" उपाशकों को जिसका ज्ञान है, अथवा असुरों में जो बुद्धि है, जिस कल्याण कारिणी बुद्धि को ऋषि, मुनि जानते हैं, वह मेरे अन्दर प्रविष्ट हो। [४] दिव्य पदार्थों को प्रगट करनेवाले धीवान ऋषिगण जिसे जानते हैं, हे अग्ने ! उस मेधाबुद्धि से आज मुझे बुद्धिमान् कर। [५] बुद्धि को सायंकाल, प्रातः काल, मध्य दिन में और सूर्य किरणों से, एवं श्रेष्ठ उपदेशों द्वारा अपने अन्दर प्रविष्ट कराते हैं।

क.० ७ सू० ६१ अथर्वा ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः—मेधाजनने, वेदीमार्जने उपरोक्त कार्ये विनियोगः।

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः । प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ।।१
अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः । श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ।।२

कां० ७ सू० ६१ "यदग्ने" हे अग्नि ! कृच्छ्तपश्चर्या से, जो तप किया जाता है, हम उसको तपते हैं। उसके प्रभाव से हम ज्ञानप्रिये, दीर्घायुः एवं उत्तम बुद्धि से सम्पन्न हों। [२] हे अग्नि ! हम विशेष रीति से तप करते हैं, ज्ञानोपदेश को सुनते हैं, उससे हम दीर्घजीवी, मेधावान हों।

कां० ७ सू० ७०-७१ शान्तातिः। ऋषिः। सरस्वती। देवता। १ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ३ गायत्री, छन्दांसि उपर्युक्त कार्येषु जप, उपस्थान, सारस्वत चरु होमे च विनियोगः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरस्वती व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥१
इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं १ यत् ।
इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥२
शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वती । मा ते युयोम संदृशः ॥३

कां० ७ सू० ६८[७०।७१] "सरस्वती व्रते व्रते" हे सरस्वति देवि ! तेरे दिव्य धामों के व्रतों में समर्पित हव्याहुतियों की स्वीकार कर और सत्प्रजा प्रदान कर । [२] हे सरस्वति ! घृत युक्त है हवि, जो पितृश्वरों का भी खाने योग्य है । ये जो तेरे प्रकाशित कल्याण परक सामर्थ्य हैं, उनके द्वारा हम मधुभाषी बने । [३] हे सरस्वती ! तू हमारी वन्द्यनीय, कल्याण कारिणी सुख प्रदायिनी हो । हम तेरी कृपा दृष्टि से कदापि पृथक् न हों ।

कां० १८ सू० ४ ऋचा ४५, ४६- ४७ अथर्वा ऋषिः । यमः, मन्त्रोक्ताश्च देवते, त्रिष्टुप् छन्दः उपरोक्त विधौ विनियोगः ।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४५
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४६
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४७

अस्य कां० ७ [२७(२८)] सूक्तस्म मेधा तिथिः । इडादेवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥१

अस्य कां० ७ [२२(२३)] सूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः । ब्रध्नो देवता । द्विपदाराकावसाना २ त्रिपदा अनुष्टुप् छन्दांसि उदीयमान सूर्य दर्शने. उपस्थाने मेधा जनने विनियोगः ।

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥१
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् । अरेपसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥२

कां० ७ सू० २२(७३) "अर्थ सहस्रमा" :—विविध गुणधर्मी पदार्थ मात्र में व्याप्त, एकमात्र प्रभु ही है । वह ज्ञानियों (सत्सङ्गियों) के विविध रूप सहस्रों दर्शनों के लिये, दयापरक बुद्धि वाला और ज्योतिस्वरूप होता है । [२] परमेश्वर एक ज्ञान, तेजोमय सूर्य ही है । उसकी ज्ञान देनेवाली किरणें, अत्यन्त निर्म्मल, तेजस्वी, उत्साहप्रद, प्रकाशवान हमारे इन्द्रिय संचरण मार्गदर्शक हैं । उनसे शक्ति प्राप्त करके हमारी इन्द्रियाँ कार्य करती हैं ।

कां० ७।१०-१ । शौनकः । सरस्वती । अनुष्टुप् छन्दः, मेधा जनने जम्भगृहीत वाल स्वस्त्ययने उपस्थाने विनियोगः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥१

कां० ७ सू० १० "यस्तेस्तनः" :—हे सरस्वती देवी ! आप संसार को सारवान् तत्वरस देती हैं, वह जो आपका पौष्टिक दुग्धदाता स्तन है, वह सुख-शान्ति, सुमनस्थवा: समृद्धि प्रभृति का दाता है । उससे सभी का पोषण होता है । हे देवी अपना वह पोषक गुण, हमें प्रदान कर, जिससे उत्तम सार रस पान कर हम हृष्ट-पुष्ट हों और इस लोक और परलोक में उत्तम गति प्राप्त कर सकें ।

—: वाक्सिद्धि, सभा-शास्त्रार्थ विजय-मेधाजनन :—

कां० ७ सू० १० ऋ० १-४ उपरिबभ्रवः । ऋषिः । पूष्पा देवता । त्रिष्टुप् ३ त्रिपदा आर्ची गायत्री, ४ अनुष्टुप् छन्दांसि—बालदोष समने, नष्ट द्रव्य लाभार्थ, वाग्सिद्ध्ये, सभाजये, मेधाजनने, जपे, उपस्थाने होमे, लोक-लोकान्तरे, कृत दूषण परिशमन पुरस्सर-सर्वत्र सर्वलोकावाप्तये, स्वस्त्ययने च विनियोगः ।

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥१
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥२
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥३
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥४

कां० ७ सू० ९(१०) "प्रपथे यथामजनिष्ट" पोषणकर्त्ता प्रभु, द्युलोक, अन्तरिक्ष में और उनके विविध मार्गों में, पृथ्वी के ऊपर के मार्ग मे प्रकट होता है । वह सब सुखप्रद स्थानों और सुखप्रद अवस्थाओं को जानता है और हम सब के सन्निकट और दूर भी है । [२] पोषण कर्त्ता ईश, इन सभी अवस्थाओं को विधिवत जानता है, और हम सब को निर्भयता के साथ योग्य मार्ग से ले जाता है । वह कल्याणकर्त्ता तेजोमय, सब प्रकार के वीर, सबको भली-भाँति जानता हुआ कभी भी प्रमाद न करनेवाला हमारा अग्रणी हो । [३] हे पोषक देव ! हम तेरे संरक्षण में रहने से कभी भी नष्ट न होंगे । तेरी प्रार्थना [आराधना] करते हुये यहाँ रहेंगे । [४] पोषक कर्त्ता प्रभु अपने दायां वरदहस्त इस पर रक्खें, हमको वे हमारा विनष्ट हुआ पदार्थ पुनः हमें प्राप्त हो, हम अपने विनष्ट पदार्थ के साथ और भी अधिक पुनः प्राप्त करेंगे ।

कां० १९ सू० ४० ऋ० १-४ ब्रह्मा ऋषिः । बृहस्पतिः विश्वेदेवाश्च देवते । १ परा अनुष्टुप् त्रिष्टुप् । २ पुरः ककुम्भत्युपरिष्टा दहती ३ बृहतीगर्भा ४ त्रिपदार्ची गायत्री छन्दांसि, मेधाजनन, वाग्सिद्धौ, सभाजये स्वस्त्ययने, जपे, होमे विनियोगः ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ।
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन । शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मा नो॑ मे॒धां मा नो॑ दी॒क्षां मा नो॑ हिंसिष्टं॒ यत् तपः॑ ।
शि॒वा नः॒ शं. सन्त्वायु॑षे शि॒वा भ॑वन्तु मा॒तरः॑ ॥३
या नः॒ पीप॑रद॒श्विना॒ ज्योति॑ष्मती॒ तम॑स्ति॒रः । ताम॒स्मे रा॑सता॒मिषं॑म् ॥४

कां० १८ सू० ३-२५ अथर्वा ऋषिः । यमोमन्त्रोक्ताः, देवता । जगती छन्दः ।

इन्द्रो॑ मा म॒रुत्वा॑न् प्राच्या॑ दि॒शः पा॑तु बाहु॒च्युता॑ पृथि॒वी द्यामि॑व॒ोपरि॑ ।
लो॒क॒कृत॑ः पथि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ ॥२५

कां० सू० (१८।२-२-४-१८) अथर्वा ऋषिः । यमः मन्त्रोक्ताः । ४ अग्निः । त्रिष्टुप्, १८ अनुष्टुप्, ४ जगती ।

य॒माय॒ मधु॑मत्तमं जु॒होता॒ प्र च॑ तिष्ठत । इ॒दं नम॒ ऋषि॑भ्य॒ः पू॒र्व॒जेभ्य॒ः पूर्वे॑भ्य॒ः पथि॒कृद्भ्यः॑ ॥२
मैन॑मग्ने॒ वि द॑हो॒ माभि शू॑शुचो॒ मास्य॒ त्वचं॑ चिक्षिपो॒ मा शरी॑रम् ।
शृ॒तं य॒दा कर॑सि जात॒वेदो॒ऽथे॑मेनं॒ प्रहि॑णुताता॒त् पितृँ॒रुप॑ ॥४
स॒हस्र॑णीथाः क॒वयो॒ ये गो॑पा॒यन्ति॒ सूर्य॑म् । ऋषी॒न् तप॑स्वतो यम तपो॒जाँ अपि॑ गच्छतात् ॥१८

(कां० १८ सू० ४-१८) अथर्वा ऋषिः । यमः मन्त्रोक्ताः देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । २६ विराट्, ३२ अनुष्टुप् ।

अ॒पू॒पवा॑न् द्र॒प्सवां॑श्च॒रुरेह सी॑दतु । लो॒क॒कृत॑ः पथि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒हस्थ॥१८
यास्ते॑ धा॒ना अ॑नुकि॒रामि॑ ति॒लमि॑श्राः स्व॒धाव॑तीः ।
तास्ते॑ सन्तूद्भ्वीस्तास्ते॑ य॒मो राजानु॑ मन्यताम् ॥२६
धा॒ना धे॒नुर॑भवद् व॒त्सो अ॑स्यास्ति॒लोऽभवत् । तां वै य॒मस्य॒ राज्ये॒ अक्षि॑ता॒मुप॑ जीवति ॥३२
ए॒तास्ते॑ असौ धे॒नव॑ः काम॒दुघा॑ भवन्तु ।
एनी॒ः श्येनी॒ः सरू॑पा॒ विरू॑पास्ति॒लव॑त्सा॒ उप॑ तिष्ठन्तु॒ त्वात्र॑ ॥३३
यास्ते॑ धा॒ना अ॑नुकि॒रामि॑ ति॒लमि॑श्राः स्व॒धाव॑तीः ।
तास्ते॑ सन्तूद्भ्वीः प्र॒भ्वीस्तास्ते॑ य॒मो राजानु॑ मन्यताम् ॥४३

—: अनुष्ठान्यः ऋचः :—

(कां० १८ सू० ३-१०, ६१, ६७, ६९) अथर्वा ऋषिः । यमः मन्त्रोक्ताः देवता । त्रिष्टुप्, ६ पथ्या बृहती, ६९ उपरिष्टाद् बृहती ।

वर्च॑सा माँ पि॒तर॑ः सो॒म्यासो॒ अञ्ज॑न्तु दे॒वा मधु॑ना घृ॒तेन॑ ।
चक्षु॑षे मा प्रत॒रं ता॒रय॑न्तो ज॒रसे॑ मा ज॒रद॑ष्टिं वर्ध॑न्तु ॥१०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥६१

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वेऽषामसवो यमं गुः ॥६२

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥६९

कां. ५।१२–६, ७, ८, ९, १०, ११। अङ्गिराः। जातवेदाः। त्रिष्टुप सरस्वती स्तवने, विनियोगः।

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥८

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०

सद्यो जातो व्यऽमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११

कां० ५ सू० १२ "समिद्धो अद्य" (भावार्थ) हे ज्ञान प्रकाशक देव ! आज मनुष्य के घर में प्रदीप्त हुआ, ज्ञात वेदाग्नि, देवों के लिये यज्ञ करता है, और मित्र के तुल्य वन्दनीय देव ! तू ज्ञानी, कवी उत्तम चित्त वाला, देवों का दूत है, उन देवों को यहाँ ले आ। (२) शरीर का पतन करने वाला, प्रियभाषी, सत्य पर चलने योग्य मार्गों को मधुरता से पूर्ण करता हुआ, उत्ताम, मननशील विचारों से यज्ञ को पूर्ण करके देवों के बीच हमारा यज्ञ पहुँचता है। (३) हे अग्ने ! हवनकर्त्ता स्तुत्य और वन्दनीय, तू प्रेमपूर्वक वसुओं के साथ पधार। हे आराध्य ! आप देवों का आह्वान करने काला है, ऐसे इष्टदेव और याजक आप इनका यजन कर अर्थात् उन देवों को यहाँ ले आ। (४)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रातःकाल इस पृथ्वी को आच्छादित करने के लिये ये पूर्व दिशा की ओर से तृणादि (कुशादि का आसन) फैलाते हैं। यह विस्तीर्ण और श्रेष्ठ आसन, सभी देवों के विराजमान होने के लिये, सुखद है और यह स्वतन्त्रता के लिये भी अत्युत्तम है। (५) सुन्दर, शोभायमान देवियाँ जिस भाँति स्वपतियों का आदर करती हैं, उसी भाँति विस्तृत और दिव्य ये हमारे यज्ञियद्वार, जो सबके सुखपूर्वक आने-जाने योग्य हैं, देवों को सुविधापूर्वक अन्दर आने-जाने योग्य होवें। (६) उत्तम गमनशील, एक दूसरे से सम्बन्धित, दिव्य और सुन्दर प्रातःकाल और रात्रि काल, आनन्दोल्लासपूर्वक हमारे घरों में व्यतीत हों। (७) ये सुन्दर, मधुर मन्त्रगान करने वाले, दिव्य होता गण, मनुष्यों का यह यज्ञ पूर्ण करने के लिये, निर्माण करने वाले. यज्ञों में प्रेरणा करने वाले कर्म कर्त्तागण, पूर्व दिशा की ज्योति का सन्देश देते हुए सबको प्रेरणा करने के लिये यहाँ पधारें। (८) सबका भरण, पोषण करने वाली, मातृभूमि हमारे यज्ञ में सशक्ति पधारें। इडा (मातृभाषा) मनुष्यों से युक्त यज्ञ की चेतना देती हुई यहाँ पधारें। सरस्वती (मातृसभ्यता सस्कृति) श्रेष्ठ कर्मकर्त्ताओं के पास विराजमान हों और ये भारती इडा और सरस्वती तीनों ही उपर्युक्त देवियाँ इन श्रेष्ठ सुखद आसनों पर विराजें। (९) इन उत्पन्न करने वाली द्यु और पृथिबी को और सब भुवनों को बिविध रूपों से रूपवान जिसने बनाया है। हे याजक यज्ञ करने वाला इष्ट, वन्दनीय देव तू, आज यहाँ उस त्वष्टा देव के लिये यजन कर। (१०) स्वय प्रकट होता हुआ तू देवों के लिये अन्न और हव्य ऋतुओं के अनुसार प्रदान कर। वनस्पति, शान्तिदाता, अग्निदेव मधुर युक्त घृत के साथ हव्य का स्वाद लेवें। (११) शीघ्र प्रगट हुए अग्निदेव, यज्ञ का निर्माण करते हैं। वे देवों के अग्रणी हैं, इस सत्य प्रवर्तक होता (हवनकर्त्ता) की प्रकृष्ट शासन वाली वाणी में, स्वाहाकार द्वारा अर्पित हवि को देवगण ग्रहण कर, तृप्त हों और कल्याण करें।

अथ सभाजय कर्म

सभा—विद्वानों का वह समाज जहाँ सद असद धर्म विवेचन हो। समिति—यज्ञ का नाम यास्क ने माना है। (या० स्मृ० १, ९) के अनुसार—"चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षद् त्रैविद्यमेव वा। सा ब्रूते यं स धर्मः स्यात्। इति॥ यद् आर्याः प्रशंसन्ति स धर्मः" अर्थात् विद्वानों का वह समुदाय जो सर्व शास्त्र निर्णीत धर्म का प्रतिपादन करे वह सभा कहलाती है। उसमें विजय प्राप्ति हेतु वाणी पर अनुशासन करने के लक्ष्य से इन्द्रदेव की प्रार्थना करे। तैत्तिरीयक वचन—"ते देवा इन्द्रम् अब्रुवन्निमां नोवाच व्याकुरु" इस प्रकार प्रणाम करे "ताम्इन्द्रोमध्यतोवक्रम्य व्याकरोत् तस्माद् इयं व्याकृता वाग् उद्यते।" (तै० सं० ६।४ ७, ३) इस उपरोक्त सभा के संग्राम में विजयार्थ दही, भात (या) दही, मधु, घृत का प्रसाद (पुरोडाश) अभिमन्त्रित कर सेवन करे। इन्हीं 'सभा च मा" (७।१३) की ५ ऋचाओं से ही सभा के स्तम्भ को धारण करे, ग्रहण करे। इन्हीं ५ ऋचाओं के जप के साथ सभा में पदार्पण करें और बैठें। कौ० (५।२)

कां० ७ सू० १३ ऋ० १-४ शौनक ऋषिः। १-सभा, २-पितरः, ३-इन्द्रः, ४-मनः, देवते अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप छन्दासि उपाकर्मणि आज्य होमे, सभाजये क्षीरौदनादि अभिमन्त्रणे, प्राशने, स ास्तम्भग्रहणे, सभायां मुपवेष्ठने विनियोगः।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥१
विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि। ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥२
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे। अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु॥३
यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा। तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे । एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे ॥५*
यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ । उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे ॥६*

सूर्य के उदय अस्तकाल में सोने वाले पुरुषों का ब्रह्मवर्च नष्ट हो जाता है, सूर्यदेव अपहरण कर लेते हैं, उससे रक्षार्थ आप स्तम्भ ध० २, ५, १२, १२, १५ "स्वपन्नभिनिमुक्तोनाश्वा(" वाग्यतोरात्रिम् आसीत् । श्वोभूत उदकम् उपस्पृश्य वाच विसृजेत् । "स्वपन्नभ्युदितोनाश्चाम् वाग्यतोहस्तिष्ठेद् आतमितोः प्राणम् आयच्छेत्" इत्येके ।

उपरोक्त शयन दोष से नष्ट ब्रह्मवर्च की पुनः प्राप्ति हेतु, उठते ही जल स्पर्श कर, आचमन कर, सूर्यदेव को प्रणाम कर बोले तब पुनः वर्च प्राप्त हो । * इन ५ व ६ वीं ऋचाओं को शत्रु को देखकर जपें, जपकर शत्रु को देखें तो उसको परास्त ही पायेंगे । नौऋंति की प्रतिकृति का विसर्जन कर इन्हें जपकर गृह में आयें ।

कां० ७ सू० १२ 'सभा च मा" (१) राष्टसभा और ग्राम समितियाँ (राज्य शासन में लोक सम्मति, शासन चलाने के लिये अनिवार्य रूप से होनी चाहिये) ये दोनों प्रजापालक राजा के द्वारा अथवा (प्रजातन्त्र में निर्वाचित सदस्यों द्वारा) पुत्रीवत् पालने योग्य हैं और वे दोनों ही परस्पर एकमत करती हुई मुझ राजा की (नेता की) रक्षा करे अर्थात् राष्ट्रीय भावना से राष्ट्र का कार्य करें और प्रजापालक राजा (नेता) का पालन करें । जिससे मैं मिलूं (राज्य शासन विषयक परामर्श लूं) वह मुझे योग्य सम्मति दे । हे पतरो ! (हे राष्ट्र महासभा के सभी मान्य सदस्यो !) सभाओं में मैं योग्य, नियमित भाषण करूगा । (२) हे सभे ! हमें तेरा नाम ज्ञात है । "नरिष्टा" 'अनतिलवध्याङ्क्यत्वात्' देवों की "सुषर्भा सभा" भी है । अर्थात् अहिंसक, यह तेरा नाम व यश है । (नरिष्टा—नरः इष्टा, नेता मनुष्यों को जो इष्ट हो अथवा नेता जिसको चाहते हों अथवा (न–रिष्टा) अहिंसक, जो किसी का नाश करे और कोई जिसका नाश न करे, अभिप्राय यह है कि जनता स्वयं राष्ट्र सभा का नाश नहीं करना चाहती और राजा या नेता का अधिकार ही नहीं है कि जो इस राष्ट्र सभा का नाश कर सके, इससे सभी भाँति यह राष्ट्र सभा "अविनाशक" ही है । जो कोई तेरे (राष्ट्र सभा के) सभासद हैं, वे मुझ राजा (नेता) से अपनी सम्मति, निष्पक्ष-पात रूप से स्पष्ट शब्दों में कहें । (३) लोक सभाओं के सदस्यों से राज्य शासन विषयक विशेष ज्ञान राजा (नेता) प्राप्त करता और तेजस्वी बनता है, अतः राजा (नेता) को ऐसी सभाओं से राज्य शासन विषयक विज्ञान का अंश अवश्य ग्रहण कर, भाग्यवान, बनना चाहिये । (इसके लिये इन्द्रस्तवन अनिवार्य हितकर कही गई है) । (४) हे सभासदो ! लोकसभा कार्यकाल में, किसी का मन अनर्गला इधर-उधर के कार्यों में रमने लगा हो तो उसको उचित है कि मन को पुनः राष्ट्र कल्याण कार्य से सन्निहित करें । वह सभासद और राजा अपने राष्ट्रीय कार्यों में हो, अपना मन सन्निहित रक्खें ।

कां० ७ सू० १३ "यथासूर्यो" [१] जैसे उदीयमान सूर्य, तारागण के प्रकाश को हर लेता है । उसी प्रकार द्वेष करता स्त्रियों, पुरुषों का तेज मैं हर लेता हूँ । ५ [२] शत्रुओ [प्रतिस्पर्धियों] में से जितने मुझे आते हुए देखते हैं, उन सब शत्रुओं का तेज मैं उसी प्रकार खींचे लेता हूँ; जैसे (सूर्य के उदयास्त में) सोने वाले मनुष्यों का तेज सूर्य खींच लेता है । अतः कल्याणेच्छु सूर्योदय अस्तकाल में [बालयारुग्णवे अतिरिक्त अन्यजन] कदापि न सोयें ।

कां० १४ सू० २ ऋ० ७२–७२

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥७१
जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥७२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० २ सू० २७ ऋ० ७ कपिञ्जलः । ऋषिः । वनस्पतिः ६५, ६ रुद्रः; ७ इन्द्रः । देवते–अनुष्टुप्छन्दः विवाद जय कर्माणि–पाठामूल–अभिमन्त्रणे–सभास्थान प्रवेशने च विनियोगः

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥१
सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥२
इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥३
पाटामिन्द्रो व्याऽश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥४
तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकां इव । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥५
रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥६
तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति । अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि॥७

विवाद में जय प्राप्ति हेतु–पाठा की जड़ अभिमन्त्रित कर खायें अपराजित स्थान से सभास्थान में प्रवेश करें । २–इसी अभिमन्त्रित पाठे को खाकर प्रतिपक्षी से वार्तालाप प्रारम्भ करें । इसी अभिमन्त्रित को बाँमें । इसी के ७ पत्रों की माला बना–अभिमन्त्रित कर शिर में धारण करें । कां० ५।२। न० क० १७ १६ । यह शत्रु पराजय करने वाली है । ज्वरदाहशमन करती है । दोषों का नाश करती है । अमोघ वीर्य वाली होने से वेनतेय (गरुण–विषनाशनार्थ ढूंढ कर लाये थे आदिवाराह भी लोक कल्याण हेतु भूमि से खोदकर लाये ।

इन्द्र ने असुर संहारणार्थं दक्षिण भुजा में धारण किया–और खाया । ऋ० चा० ६ में "रुद्र" का स्वरूप वर्णित है–रौद्र का रुद्रत्व दिखाया है, जो अग्रिम पृष्ठ पर है । पाठा–(पाढ़) भै० र० "तिक्तादिक्वाथ" श्लो० ७७ तथा टिप्पणी चक्रकृत––(पाठः)

विवाद जय-भेषज

कां० २ सू० २७ ऋ० ६–रुद्रा–रोतिशब्दायते तारकं ब्रह्म उपदिशति–इति–रुद्रः । "जाबालश्रुतिः" "अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रम मानेषु रुद्रस्तारक ब्रह्म व्याचष्टे" (जा० उ० १) 'शब्द ब्रह्मात्मना रोरूयमाणो द्रवति सर्वप्राणि हृदये वर्तत इति वा अस्त्रेण छिन्नशिरसं शोचन्त प्रजापतिम् अनु स्वमपिशोकवशाद् अरोदीद्" इति वा उत्पत्तिकाले स्वयम् अरुदत्" इति वा रोदयति सर्वं अन्तकाल इति वा रुद्रः ।

यद् अरुदत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम् इति काठकम् यद् अरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्" इति हरिद्रवकम् । नि. १०।५

यथा महोपनिषदिः—"तस्य ध्यानान्तःस्थस्य ललाटात् व्यक्षः शूलपाणिः पुरुषो नायत विभ्रच्छ्रियं सत्यम्" इति (महोप० १) अथर्वशिरसिः—"सयुगस्यान्तकाले संहृत्य विश्वाभुवनानि गोप्ता तस्माद् उच्यत एको रुद्रः" इति (अ० शि० उ० ४) अथवा रुत् रोदन करं सांसारिकं दुःखं तद्धेतुभूताम् अविद्यां व द्रावयति विनाशयेतीति रुद्रः । वायवीय संहिता रुद् दुःखं दुःखहेतुर्वा तद् द्रावयतिनः प्रभुः । रुद्र इत्युच्यते तस्मात् शिवः परम कारणम् । इति उक्तमहिमोपेत् रुद्रः ।

कर्मकृतः—स्वोपासकानां दुष्कर्माणि कृतन्ति–अथवा साध्वसाधु रूपाणि कर्माणि कारयतीति–कर्मकृत "एषह्येवसाधुकर्मकारयति" (कौ० ब्रा० ३।८) इत्यादि श्रुतेः । यद्वा "सृष्ट्यादीनि पञ्चकृत्यानि करोतीति कर्मकृत् । उक्तं हि पञ्चविधंतत्कृत्यं सृष्टिः स्थिति संहृतौ तिरोभावः । तद्वद् अनुग्रहकरणं प्रोक्तं सततोदितस्यास्य । ये दोनों विनाशक भी हैं ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन उपर्युक्त दोनों ही "मधुक" तथा "पाठा" भेषजों को निरन्तर सेवन से मेधावृद्धि तथा वाक्पटुता, विवाद में विजयप्रद वाग्चातुर्य के साथ बल-वीर्य, पुरुषत्व की अभिवृद्धि का वर्णन है इसमें विष शमन की शक्ति होने से ही गरुण ने धारण किया, यह राक्षसों को शमन करनेवाली होने से इन्द्र ने अपने उपयोग में लिया।

पाठागुणः—तिक्तागुरुरूपणा वात, पित्त, ज्वरघ्नी, भग्नसंधानकारी पित्त दाहातीसारशूलघ्नी च (रा० ज० नि० व० ६) श्रेयसी मुखबाचिका। "कफकण्ठरूजावहा" (माव० प०) तिक्त, गुरु, उष्ण है। वात, पित्त, ज्वर नाशक, टूटे हुए को जोड़ने वाली, पित्त, दाह, अतिसार नाशक, कल्याणकारिणी, वाणी के दोष निवारण करनेवाली, कण्ठ दोष कण्ठ पीड़ानाशिनी है। इसी को (चक्रपाठा) आकनामी, निमुखा कहते हैं। वादविवाद में मुँह में रक्खें, कण्ठ में बाँधें। कण्ठ में कफ होने, शब्द अस्फुट होने आदि में लाभकारी है।

कां० २ सू० २७ "नेच्छत्रुः" प्रतिपक्षी, मेरे प्रश्न से निश्चित रूप से पराजित हो; क्योंकि मेरी यह अमोघ-शक्ति जयशालिनी और विशिष्ठ प्रभाववाली है इसी कारण से, विपक्षी का प्रत्येक प्रश्न पर पराभव हो। हे औषधे! तू भी विपक्षियों को नीरस (निरुत्साही) बना। २—इस वनस्पति को गरुड़ पक्षी प्राप्त करता है, और सूअर खोदता है। ३—देवासुर संग्राम में, इन्द्र ने असुरों के पराभव के लिए इसे अपनी भुजामें धारण किया था। ४—असुरों के पराभव के लिए, इन्द्र ने इस (पाठा) वनस्पति का सेवन भी किया था। ५—मैं उसी के धारण, और सेवन से प्रति पक्षियों को, ऐसे ही भगाये देता हूँ जैसे इन्द्र भेड़ादि को भगा देता है। ६—हे जल मात्र से ही चिकित्सा करने वाले, नीलध्वज पराक्रमी रुद्रदेव! प्रत्येक प्रश्न के प्रति; विपक्षी को परास्त कर, और हे औषधे! तू प्रतिवादी को शुष्क (निरुत्साही) बनादे। ७—हे इन्द्र! जो हमें पराधीन (दान) बनाने की कुचेष्टा करता है उसे प्रत्येक प्रश्न में जीत, मेरी प्रत्येक प्रश्न में विजय करने के विषय में कहें; प्रश्न प्रति प्रश्न (वाद विवाद) में मुझे प्रत्युत्पन्न मतिमान न कर।

कां० ४ सू० ३० [१-८] अथर्वा ऋषिः : सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्। देवता। त्रिष्टुप्; ६ जगती छन्दांसि, मेधाजननादि सर्वेष्ट फलावाप्तये, जपे विनियोगः।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥२.

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उं।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अहं सोम॑माह॒नसं॑ बिभर्म्य॒हं त्वष्टा॑रमु॒त पू॒षणं॒ भग॑म् ।
अ॒हं द॑धामि॒ द्रवि॑णा ह॒विष्म॑ते सुप्रा॒व्या॒३॒ यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥६

अ॒हं सु॑वे पि॒तर॑मस्य मू॒र्धन्मम॒ योनि॑र॒प्स्व१॒॑न्तः स॑मु॒द्रे ।
ततो॒ वि ति॑ष्ठे॒ भुव॒नानि॒ विश्वो॒तामूं द्यां व॒र्ष्मणोप॑ स्पृशामि ॥७
अ॒हमे॒व वात॑ इव॒ प्र वा॑म्या॒रभ॑माणा॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
प॒रो दि॒वा प॒र ए॒ना पृ॑थि॒व्यैताव॑ती महि॒म्ना सं ब॑भूव ॥८

राष्ट्रीदेवी—परब्रह्म की परमोत्कृष्ट, तेजस्वी शक्ति है। जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने स्वयं मुखारविन्द से [illegible] का प्रतिपादन किया, उसी भांति यह शक्ति ही स्वयं अपनी महिमा का वर्णन कर रही है। शक्ति का स्वयं का ही [illegible] उद्घोष है, यह आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दृष्टि से अत्यन्त महत्व का है।

आधिदैविक भाव—अग्नि, इन्द्र, अश्विनी देव आदि ब्रह्माण्डान्तर्गत, महाशक्तियों में प्रस्फुटित हो रहा है।

आध्यात्मिक भाव—मैं जीवात्मा की शक्ति हूँ, और मैं ही प्राणों के साथ, शारीरिक धातुरसों के साथ आदित्य मित्र, वरुण-अग्नि के साथ जीवनीय विद्युत और शारीरिक उष्णता को सन्नियमित रखती हूँ। मैं ही प्राण और अपानों को संचालित करती हूं। मैं शरीर की प्रकाशक, तेजस्वित स्थापित करने वाली हूं। मैं ही रस, रक्त, धातु, मज्जादि की उत्पादक, ज्ञानदात्री और आध्यात्मिक रूप से पूजा मे सर्वाग्रणी हूं। समस्त अवयवों में रहकर शरीर रक्षा और समस्त इन्द्रियों की धारक शक्ति हूँ। सभी देव मानव मेरे महत्व का वर्णन करते हैं। मानव जो कुछ भी करता है, वह मेरी सहायता से ही करता है। मैं ज्ञानद्वेषी विचारों के निराकरणार्थ, शरीर में प्राणों को प्रेरित करती हूँ। मैं सभी भोग्य, भेदक, पोषक शक्तियों को शरीर में धारण करती हूँ। मैं शरीर रक्षक हृदयाशय के जीवन रस में रहती हूँ। शिर पर्यन्त फैलाती हूँ। फैलकर प्रत्येक अवयव का कार्य सचालन करती हूँ।

आधिभौतिक स्वरूप—मैं राष्ट्रीय उत्कृष्ट ब्राह्मी शक्ति वीरों, धनिकों, ज्ञानियों श्रमिकों, वक्ताओं, शुरों, चिकित्सकों, कलाकारों, कारीगरों, पोषकों, सेवकों आदि में अन्तर्हित ओत-प्रोत रहकर सभी को आगे बढ़ाती हूँ।

राष्ट्री—जिसके आश्रय से राष्ट्र स्थिर रहता है, विजय, वैभव सम्पन्न होता है, पारस्परिक सद्भावना, संयम, नियम, आगम, अनुशासन परस्पर सभी राष्ट्रीय प्राणिमात्र, वस्तुमात्र की क्षति अपनी उन्नति, अपने ही सुख-दुःख का अनुभव करता हुआ उसके संरक्षण, सवर्द्धन कर्त्तव्य और अधिकारों को मन, वाणी, इन्द्रिय और आत्मिक दृढ़ आस्था से वहन करता है, वह राष्ट्रीय शक्ति ही है। राष्ट्र इसी कारण परम देवता परमधन, परमसेव्य है। हम रहें न रहें, हमारा राष्ट्र रहे, सतत नित्य निरन्तर फलता, फूलता, हृष्टपुष्ट, स्थिर शान्ति सम्पन्न रहे, यही भनिष्ठा राष्ट्रीय शक्ति है। वही शक्ति इन सबकी प्रेरणा के मूल में अन्तर्हित प्राणवान चैतन्यस्वरूपा है।

ऋग्वेद—इडा सरस्वती महीतिस्नो देवीर्मयोभुवः। वर्हिः सीदन्त्वस्निधः। (१।१३।९) उसी राष्ट्रीय देवी के मातृभूमि-मातृभाषा और मातृसभ्यता ये तीनों अभिन्न अन्योन्याश्रित स्वरूप हैं। ये ही तीनों परम कल्याण स्वरूप हैं, ये मेरे (प्रत्येक राष्ट्रीयजन के) अन्तःकरण विना विस्मरण हुए नित्य निरन्तर विराजती रहे। यह ब्राह्मी राष्ट्रीय शक्तियाँ बड़े ही सम्मुन्नत वेग से अधोलोक अर्ध्व सभी लोकों, पृथ्वी से परे भी परे, सबमें परिपूर्णतया व्याप्त हैं। जो इसको निष्ठा दृढ़ संकल्प और विश्वास ले धारण करते हैं। ये परम योगी ही परब्रह्म स्वरूप है यही वास्तविक सेवा का स्वरूप है। 'सेवाधर्म परमगहनो योगिनामप्यगम्य'' जो परम गहन योगियों को भी दुर्लभतर, तीक्ष्ण तलवार की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धार के तुल्य है जो इस 'राष्ट्री देवी' की इस निष्ठा धारण से सेवारत हैं, वे धन्य नित्यवन्द्य अनुकरणीय परब्रह्ममय ही हैं उनके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं। यह इस सूक्त में उद्घोषित, स्वयं ''राष्ट्री देवी' का परम पुनीत ब्राह्मी वाणी है। इसका स्वरूप अथर्व कां० १२ सू० १ 'सत्यं बृहत्' है जो मातृभूमि की महत्ता का वैदिक सर्वोच्च अनादि वन्दनीय गाथा है।

अथ महाविद्या अथर्वशीर्षम्:—अथर्व वेद कां० १६ सू० ३ ऋचा १४ ''निर्दुरर्मण्य'' में निर्दिष्ट मरण-व्यसन, वन्धन, प्रणिपात, उन्मत्तता, दैवोपहति. पुत्रादि धन नाशादिदोष, आधिदैविक आधिभौतिक, आध्यात्मिक दोष जनित क्लेश-कृत्याशमन, अभिचार तथा नैऋति जनित, शापजनित, क्लेशादि को शान्ति, इन समस्त शत्रुओं तथा वाह्य शत्रुओं के निवारणार्थ-जन्मान्तरीय पाप निवारणार्थ नाक-कान-आंख वाणी, दृष्टि, रसना दांत आदि की विकलता निवारण में कां० १६ सू० ५६ 'घृतस्यजूतिः' में जूतिस्मति., मनीषा, स्मृति, संकल्प, क्रतु-असु,काम,वश प्रज्ञानकर्म में; मानसिक यज्ञ में। कां० १६ सू० ४० 'मानोमेधा' में वर्णित-यज्ञ, दान, ध्यान, मन्त्र, वाणी जन्य उच्चारणदि समस्त दोष निवारण में आध्यात्मिक, श्रौत, स्मार्त, परा-अपराभक्ति एव पर तत्वज्ञान की प्राप्ती हेतु जप-उपस्थान, होम अवभृथ स्नान करें।

ॐ सर्वेवै देवादेवी मुपतस्थुः, क्वासि त्वं महादेवीति ॥१॥ साऽब्रवीत्। अहं ब्रह्म स्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिः पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाऽशून्यञ्चा ॥२॥ अहमानन्दाऽऽनन्दौ। अहं विज्ञानाऽऽविज्ञाने। अहं ब्रह्मा ब्राह्मिणी वेदितव्ये। अह पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहं मखिलं जगत् ॥३॥ वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याऽहमविद्याऽहम। अजाऽहम् नजाऽहम्। अधश्चोर्ध्वञ्च तिर्यक्चाहम् ॥४॥ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रा वरुणा वुभौविभर्मि। अहमिन्द्राग्निी अहमश्विनावुभौ ॥५॥ अहं सोमं त्वष्टारंपूषण भगंदधामि। अहं विष्णुरुरुक्रमं ब्रह्माणमुतप्रजापतिं दधामि ॥६॥ अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्रीसङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानांम्। अह सुवे पितरमस्यमूर्धन्मम योनिरपवन्तः समुद्रे। य एव वेद सदैवी सम्पदामाप्नोति ॥७॥ ते देवाः अब्रुवन्। नमोदेव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ॥८॥ तामग्नि वर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचिनीं कर्मफलषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणंप्रपद्योमहेसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥९॥ देवीं वाचम जनयन्त देवास्तां विश्वरूपां पशवो नथन्ति। सा नोमन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुष सुष्टुतैतु ॥१०॥ कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्। सरस्वतीमदितिदक्ष दुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥११॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि। तन्नोदेवी प्रचोदयात् ॥१२॥ अदितिर्ह्यजनिष्टः दक्षया दुहितातव। तां देवा अन्वजायन्त भद्राः अमृतबन्धवः ॥१३॥ कामो योनिः कमला वज्रपाणि गुहाह्मसा मातारिश्वाऽऽभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकलाः मायया च पुरुच्यैषाविश्व मातादि विद्योऽम् ॥१४॥ एषाऽऽत्मशक्तिः एषाविश्वमोहिनी पाशांकुश धनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्याः। य एवं वेद सशोकं तरति ॥१५॥ नमस्तेऽस्तु भगवति। मातरस्मान् पाहि सर्वतः ॥१६॥ सैषाऽष्टौ वसवः सैयैकादशरुद्राः। सैषा द्वादशाऽऽदित्याः। सैषा विश्वे देवाः सोमयाः असोमपाश्च सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचाः यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्म विष्णु रुद्र रूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्र मनवः। सैषाग्रहनक्षत्र ज्योतींषि। कलाकाष्ठादि कालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम् ॥१७॥ पापाऽपहारिणींदेवीं भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनीम्। अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्। वियदीकार सयुक्तं वीतिहोत्रसमान्वितम्। अर्द्धेन्दुर्लसितं देव्या वीजं सर्वार्थ साधकम् ॥१८॥ एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्ध चेतसः। ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥१९॥ वाङ्मया ब्रह्मसूक्तस्मात् षष्ठं ववत्र समान्वितम्। सूर्योऽवाम् श्रोत्रविन्दु संयुक्ताऽष्टा तृतीयकः। नारायणेनसमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः। विच्चे नवार्णकोऽर्णः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्यान्महदाऽऽनन्ददायकः॥२०॥ हृत्पुण्डरीक मध्यस्थां, प्रातः सूर्यः समप्रभाम् । पाशांकुशधरां सौम्यां वरदाभय हस्तकाम्। त्रिनेत्रांरक्त वासनां भक्त कामदुघां भजे॥२१॥ नमामि त्वां महादेवीं महाभय विनाशिनीम। महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्य रूपिणीम् ॥२२॥ यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया यस्याऽऽन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता । यस्याः लक्षं नोपलक्षते तस्मादुच्यते अलक्ष्या । यस्ला जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा । एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका । एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका । अतएवोच्यते अज्ञेयाऽऽनन्ताऽऽलक्ष्याऽऽजैकानेकेति ॥२३॥ मन्त्राणां मातृका देवीं शब्दानां ज्ञानरूपिणीं । सानानांचिन्मयास्तीतां शून्यानां शून्य साक्षिणीम् ॥ यस्याः परतरं नास्ति सषादुर्गा प्रकीर्तिता ॥२४॥ तां दुर्गां दुर्गमांदेवीं दुराचार विधातिनीम् । नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णव तारिणीम् ॥२५॥ इदमधर्वशीर्षं योऽधीते सपञ्चाथर्वशीर्ष जयफलमाप्नोति । इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चांस्थापयति । शतलक्षं प्रजप्त्वाऽपिसोऽर्चासिद्धिं नाविन्दिति । शतमष्टोत्तरञ्चात्यपुरश्चर्या विधिः स्मृतः । दशवार पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते । महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ॥२६॥

सायमधीयानो दिवस्कृतंपापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रि कृतं पापं नाशयति सायं प्रातः प्रयुञ्जान्नोऽपापोभवति । निशीथेतुरीय सन्ध्यायां जप्त्वावाक्सिद्धिभवति । नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवता सान्निध्यं भवति । प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति । भौम।श्विन्यां महादेवी सान्निधौ जप्त्वा महामृत्यु तरति स महामृत्यु तरति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

'यामाहुतिः' (१९।४) इन तीन ऋचाओं से मानसिक-वाचिक-कायिक समस्त अभीष्ट फलप्राप्ति हेतु जप उपस्थान- होम करें।

'शान्ता द्यौः' (१९।९) 'शं न इन्द्राग्निः' (१९।१०) 'शं नः सत्यस्य (१९।११), उषा-अप' (१९।१२) तथा 'त्र्यायुषम्' (५।२८-७), 'असपत्नम्' (१९।१६) इनसे निवास गृह, भूमि अधिकार प्राप्ति हेतु जप, उपस्थान, होम करें। अंगुष्ठ से प्रदक्षिण क्रम से शर्करा चारों ओर फेंक गृह में स्वयं या राजा (स्वामी) को प्रविष्ट करायें, धूम्रकेतु, उल्कापात तथा अनियमित काल पर्यन्त गर्भ के न बढ़ने या बच्चा न होने आदि अद्भुत दोष जनित अनिष्ट निवारणार्थ होम करें इन्ही से (तुला पुरुष दान) में जप, होमकर दान दे । "इन्द्रस्यबाहु" १९।१३ अप्रतिरथ सञ्ज्ञक सूत्रों में है।

"नक्षत्राणि" कां० १९ सू० ८ गार्ग्यः । नक्षत्राणि, ९ ब्रह्मणस्पतिः । त्रिष्टुप्, १ विराड् जगती ।

यानि नक्षत्राणि दिव्यं१न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥२
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यं१मर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥३
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान् सवितः सुव ॥४
अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् । शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते । सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥६

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥७

शान्तिः पिप्पलादिगण

अ० कां० १९ सू० (९) शान्तिः [पिप्पलादि गण] बृ० शा० ग० १-१४ वसिष्ठः [शान्तातिः १] शान्तिः, बहुदैवत्यम् । अनुष्टुप् १ विराडुरोबृहती, ५ पञ्च पदापथ्यापङ्क्ति । ९ पञ्चपदा ककुम्मती । १२ त्र्यवसाना सप्तपदाऽष्टि १४ चतुष्पदा संस्कृतिः । सर्वाद्भुतदर्शनेषु, पिप्पलादि सर्वशान्ति पौष्टिक कर्मषु, जपे, मार्जने, उपस्थाने होमे च विनियोगः ।

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१न्तरिक्षम् ।

शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥१

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।

शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता । ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥३

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् । येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥४

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।

यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥६

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाँछमन्तकः ।

उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥७

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् । शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥८

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।

शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा । शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥१०

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः । शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ।११

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।

तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।

विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः ।
ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं
तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥१४

अ० क० १६। (१०) शान्तिः। [पिप्पलादिगण] वृ० शा० ग० १-१० वसिष्ठः। बहुदैवत्यम्। त्रिष्टुप्।

उपर्युक्त समस्त कर्मसु विनियोगः।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं नः ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शं नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणः शं नो॑ भवन्तू॒षसो॑ विभा॒तीः ।
शं नः॑ प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्यः॒ शं न॒ः क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु शं॒भुः ॥१०

(१९।११) शान्तिः । १-६ वसिष्ठः । वहुदैवत्यम् । त्रिष्टुप् ।

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं न॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥१
शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु ।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शं नो॒ अप्याः॑ ॥२
शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमहि॑र्बु॒ध्न्य१ः॒ शं स॑मु॒द्रः ।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त् पे॒रुर॑स्तु॒ शं न॒ः पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पा ॥३
आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्तामि॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः ।
शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञिया॑सः ॥४
ये दे॒वाना॑मृ॒त्विजो॑ य॒ज्ञिया॑सो॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः ।
ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥५
तद॑स्तु मित्रावरुणा॒ तद॑ग्ने॒ शं योर॒स्मभ्य॑मि॒दम॑स्तु॒ श॒स्तम् ।
अ॒शी॒महि॑ गा॒धमु॒त प्र॑ति॒ष्ठां नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते साद॑नाय ॥६

(१९।१२) १ वसिष्ठः । उषा । त्रिष्टुप् ।

उ॒षा अप॒ स्वसु॒स्तमः॒ सं व॑र्तयति व॒र्तनिं॑ सु॒जा॒तता॑ ।
अ॒या वाजं॑ दे॒वहि॑तं सनेम॒ मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑ ॥१

अथ अद्भुत शान्ति विधि निरूपण

ॐ ये त्रि॒ष॒प्ताः प॑रि॒यन्ति॒ विश्वा॑ रू॒पाणि॒ बिभ्र॑तः । वा॒चस्पति॒र्बला॒ तेषां॑ त॒न्वो॑ऽ अ॒द्य द॑धातु मे ॥१

अद्भुत कर्म की परिभाषा—जो लोक विरुद्ध, शास्त्रविरुद्ध दृष्टिगोचर हो वह अद्भुत होता है। उस अद्भुत कर्म की जहाँ हो, शान्ति करना अनिवार्य कर्त्तव्य है। शान्ति न करने से दोष होता है। जहाँ अद्भुत कर्म होता है वहाँ वह पराभव, विनष्ट होता है। और विनाशार्थ ही देवगण अद्भुत कर्म करते हैं। अद्भुत की कोई गणना या कल्पना नहीं, तथापि कुछ स्मृति आदि धर्मशास्त्रों में उदाहरण मात्र दी गई हैं, वे सभी वैद्यक, ज्योतिष आदि में वर्णित, अवर्णित, श्रुत-अश्रुत दृष्ट-अदृष्ट, कौशिक सूत्र अ० १३ कं० ९३—१२० में अथर्व वेद कां० १३ में निर्दिष्ट अद्भुत कर्मों में कुछ की शान्ति विधि निम्न प्रकार है, जहाँ-जहाँ कुछ विशेषता है, वह यहाँ उतनी 'विशेष' निर्दिष्ट है शेष सभी समान विधि हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मांसादि वर्णनानिष्ट शान्ति (१)

जहाँ घी, मांस, मधु, हिरण्यं आदि की घोर वर्षा हो वह गृह. ग्राम कुल, देश, नष्ट (पराभव) को प्राप्त हो जाता है। गृह, ग्राम, राज के स्वामियों का निर्विवाद अविलम्ब भृगु अङ्गिरा के वंशज अथर्व (ब्रह्मवेद) के विद्वान द्वारा शान्ति करना परम कर्त्तव्य समझें। ये ही इस अद्भुत कर्म की शान्ति करने में समर्थ हैं।

कौ० कां० सू० ९३।९४-२।३, ४। १ के अनुसार के कांस्य पात्र* बिना धोबी के धुले, साझे वस्त्र, शुद्ध आज्य तथा नवीन घंटों में शान्ति औषधियाँ डाले, अभिमन्त्रित करें। यह शान्ति पूर्णिमा अमावस्या या पुण्य नक्षत्र में करें। यदि विशेष आर्त हो तो शुभ लग्न, दिन चन्द्र बल में भी कर सकते हैं। सर्वप्रथम स्नान करें; एक वस्त्र (पूजा कालीन) सुगन्धित गन्ध, चन्दन, अगर आदि धूप पुष्प व्रत व ब्रह्मचर्य के साथ १ या ३ य ६ या १२ रात्रि पर्यन्त शांति कर्म करें। बारहवे दिन जहाँ अद्भुत कर्म हुआ है, वहाँ नित्य नैमित्तिक कर्मों के उपरान्त होम विधि अध्याय२ में वर्णित से होमादि करें।

विशेष कर्म :—घृतस्य धारा इह या वर्षन्ति पक्वं मांसं मधु चयद्धिरण्यम् ।
द्विषन्तमेता अनुयन्तु वृष्टयोऽवृष्टयो बहुलाः सन्तु मह्यम् ॥
लोहित वर्षं बहुपांसु वर्षं यद्वा वर्षं घोरमनिष्टमन्यत् ।
द्विषन्त मेते अनु यन्तु सर्वे पराञ्चो यन्तु निवर्तमानाः ॥

अग्नये स्वाहा के उपरान्त मातृ नाम गण से होम करे। वरण सामिग्री गौ, वृषभ आदि कर्त्ता को दान दें।

मर्कटादि दर्शनानिष्ट शान्ति (२)

जहाँ यक्ष, रीछ, मर्कट, चौपाया, काक या पुरुष आदि आकृतियाँ दृष्टिगोचर हों, वहाँ निम्नांकित मन्त्रों से शान्ति होम करें। विशेष ५ आहुतियां।

पुरुष रक्ष समिषिरं यत्पताति। द्विषन्त मेले यन्तु सर्वे पराञ्चो यन्तु निवर्तमानाः ॥

अग्नेय स्वाहा। यह ५ समिधादान कर मातृनामागण से होम करें। शेष पूर्ववत ही होगा।

गोमायु-मण्डूकोच्चारणानिष्ट शान्ति (३)

जहाँ गोमायु नाम मण्डूक बोलता प्रतीत हो "मेरे प्रति बोलता है, मेरे प्रति बोलता है" इस आशङ्का में निम्नांकित मन्त्रों से शान्ति होम करें।

ॐ "यद्गोमायू बदतो जातवेदोऽन्यया वाचाभि जञ्जभातः ।
रथन्तरं वृहच्च सामैत द्विषन्तमेतावभि नानदैवताम् ॥
रथन्तरेण त्वा वृहच्छमयाभि वृहता त्वा रथन्तरं शमयामि ।
इन्द्राग्नी त्वा ब्राह्मणाबावृधानावायुष्मन्ताबुत्तमं त्वा कराथः ॥

---

*१ तदुप कल्पयन्ते कंसमहते वसने शुद्धमाज्यंशान्ता औषधिर्नवमुदकुम्भम्। कौ० ९४।६

इस सम्बन्ध में 'स्यार-राजाःराधाकान्त देव बहादुर विरचित शब्द कल्पद्रुम' उल्लिखित १ [कांस्यं] ताम्र-रङ्गमिश्रित धातुः। कांसा इति भाषातात्पर्य्यायः २ कंसम्, ३ कसास्थि ४ ताम्रार्द्धम् इतित्रिकाण्ड शेषः। ५ सौराष्ट्रकम् ६ कांसीयम् ७ वह्निलोहकम् ८ दीप्तिलोहम् ९ घोरघुस्यम् १० दीप्तिकांस्यम् ११ कांस्यम्।

अस्य गुणाः तिक्तत्वम्। उष्णत्वम्। चक्षुर्हितकारित्वम्। वात, कफ विकारनाशित्वम्। रूक्षत्वम्। कषायत्वम्। रुचिकारित्वम्। दीपनत्वम्। पाचनत्वम्। पथ्यत्वञ्च (इति राजवल्लभ २—बिना फटे; बिना धोबी के धुले वस्त्र।)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा । यह पञ्चसमिधादान कर "दिव्यो गन्धर्वो" आदि मृतनामागण पूर्वोक्त होम से करें ।

अकारण कलह शान्ति (४)

जहाँ अकारण परस्पर, या, अन्य से भी निरन्तर कलह ही कलह हो वह जगह, गृह, ग्राम, देश, * निर्ऋति (दुर्भाग्यप्रद आपदाएँ) दोष से युक्त है, वहाँ निम्नांकित मन्त्रों से हवन करें ।

ॐ "अयाश्चाग्ने ऽस्यनभिशस्तिश्च सत्यमित्त्वमया असि ।
अयासा मनसा कृतोऽयास्यं हव्य मूहिषे ॥

"अयानाधेहिभेषजम्" स्वाहा । अग्नि को ५ समिधा दानकर होम करें ।

ॐ आरादग्नि क्रव्यादेनिरूहज्जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥८।२।६
इन्द्राग्नी त्वा ब्रह्मणा वावृधाना वायुष्मन्तावुत्तमं त्वाकरामः ॥८।२।१२ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा ।

तदनन्तर—

ॐ अपेत एतु निर्ऋतिर्नेहास्या अपि किञ्च न । अपास्याः सत्वनः पाशान्मृत्यूनेकशतं नुदे ।
ये ते पाशा एकशतं मृत्यो मर्त्याय हन्तवे । तांस्ते यज्ञस्य मायया सर्वा अप यजामसि ॥ ८।२।१३
ॐ निरितो यन्तु नैर्ऋत्या मृत्यव एक शतं परः । सेधा मेषां यत्तनः प्राणं ज्योतिश्च दध्महे ॥

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ।
तेभ्यो अस्मान्वरुणः सोम इन्द्रो विश्वेमुञ्चन्तुमरुतः स्वर्काः ॥
ॐ ब्रह्म भ्राजदुदगान्तरिक्षं दिवं च ब्रह्मावाधृष्टामृतेनमृत्युम् ।
ब्रह्मोपद्रष्टा सुकृतस्य साक्षाद्‌ब्रह्मास्मदपहन्तु शमलं तमश्च ॥

होमान्तवरण द्रव्य, गौ आदि कर्त्ता को पूर्ववत् दान दें ।

भूचालादि निवारण विधि (५)

जहाँ धूमि हिले, भूचाल आये, वहाँ निम्नांकित मन्त्रों से "विशेष हवन करें ।

ॐ अच्युता द्यौरच्युतमन्तरिक्षमच्युता भूमिर्दिशो अच्युता इमाः ।
अच्युतो ऽयं रोधाबरोधादध्रुवो राष्ट्रे प्रति तिष्ठाति जिष्णुः ॥
ॐ यथा सूर्यो दिवि रोचते यथान्तरिक्षं मातरिश्वाभिवस्ते ।
यथाग्निः पृथिवी मा विवेशैवायं ध्रुवो अच्युतो अस्तु जिष्णुः ॥
ॐ यथा देवो दिवि स्तनयन्वि राजति यथा वर्षं वर्षं कामाय वर्षति ।
यथा पः पृथिवी मा विविभुरेवायं ध्रुवो अच्युतो अस्तु जिष्णुः ॥
ॐ यथा पुरषं नद्यः समुद्रमहोरात्रे अप्रमावं क्षरन्ति ।
एवां बिशः संमनसो हवं मे ऽप्रमादमिहो षा यन्तु सर्वाः ॥
ॐ दृंहतां देवी सह देवताभि ध्रुवा दृढाच्युता मे अस्तु भूमिः ।
सर्वं पाप्मानमपनुद्यास्मदमित्रान्मे द्विषतोऽनु विध्यतु ॥ पृथिव्यै स्वाहा ।

यह होम करें, अन्त में ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्य काण्ड ६ सूक्त ८७ । अथर्वा ऋषि । ध्रुवः । देवता । अनुष्टुप छन्द स्थैर्यकार्ये; भूमि कम्पलक्षणोत्पात उपशमनार्थे, अथवा स्वयंमुदग्भाण्डखण्डेन, नवभाण्ड स्थैर्ये, इन्द्रयागे, होमे विनियोगः ।

आ त्वा॑हार्षम॒न्तर॑भूर्ध्रु॒वस्ति॒ष्ठावि॑चाचलत् ।
विश॑स्त्वा॒ सर्वा॑ वाञ्छन्तु॒ मा त्वद् रा॒ष्ट्रमधि॑ भ्रशत् ॥१
इ॒हैवैधि॒ माप॑ च्योष्ठाः॒ पर्व॑त इ॒वावि॑चाचलत् । इन्द्र॑ इ॒वेह ध्रु॒वस्ति॑ष्ठे॒ह रा॒ष्ट्रमु॑ धारय ॥२
इन्द्र॑ ए॒तम॑दीधरद् ध्रु॒वं ध्रु॒वेण॑ ह॒विषा॑ । तस्मै॒ सोमो॒ अधि॑ ब्रवद॒यं च॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥३

अस्य कां० ६ सू० ८८ अथर्वा ऋषिः ध्रुवो देवता । अनुष्टुप, ३ त्रिष्टुप छन्दासि उपर्युक्ते कर्मणि इन्द्रयागे होमे उपस्थाने च विनियोगः ।

ध्रु॒वा द्यौर्ध्रु॒वा पृ॑थि॒वी ध्रु॒वं विश्व॑मि॒दं जग॑त् । ध्रु॒वास॒ः पर्व॑ता इ॒मे ध्रु॒वो राजा॑ वि॒शाम॒यम् ॥१
ध्रु॒वं ते॒ राजा॒ वरु॑णो ध्रु॒वं दे॒वो बृह॒स्पतिः॑ । ध्रु॒वं त॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ रा॒ष्ट्रं धा॑रयतां ध्रु॒वम् ॥२
ध्रु॒वोऽच्यु॑तः॒ प्र मृ॑णीहि॒ शत्रू॑ञ्छत्रूय॒तोऽध॑रान् पादयस्व ।
सर्वा॒ दिशः॒ संम॑नसः स॒ध्रीची॑र्ध्रु॒वाय॑ ते॒ समि॑तिः कल्पताम॒िह ॥३

तदनन्तर "पृथिवी सूक्त" द्वादश काण्ड (अथर्व) से पूर्वोक्त होम करें। शेष पूर्ववत् । इसी ग्रन्थ के भूमि सूक्त में वर्णित विधि को भी ज्वालामुखी आदि से उत्पन्न भूचालादि निवारण विधि को पढ़ें, काम में लें ।

सूर्यान्धकारानिष्ट निवारण (६)

जहाँ सूर्य को प्रगाढ़ अन्धकार आकर दिन में आच्छादित करे और दिन में रात्रि ही जैसी हो—वहाँ निम्नांकित मन्त्रों से हवन करें ।

ॐ दिव्यं चित्र मृतू या कल्पयन्त मृतू नामुग्रभ्रमयन्नुदेति ।
तदा दित्यः प्रतरन्नेतु सर्वत आप इमां लोकाननुसंचरन्ति ॥
ओषधीभिः संविदानाविन्द्राग्नी त्वाभि रक्षताम् ।
ऋतेन सत्यवाकेन तेन सर्वे तमो जहि ॥

तदनन्तर अथर्व काण्ड १७ सूक्त १ "विषासहिम" पूरा यह आगे देखें तथा निम्न कां० १३ सू० १ व २ पूरे ही से उपस्थान; होमादि करें । तदनन्तर—

अस्य काण्ड १९ सू० २३ ऋ च २३ अथर्वा ऋषिः । मन्त्रोक्तः देवता दैवी त्रिष्टुप् छन्द, आदित्यान्धकारोन्मूलने होमे विनियोगः ।

रो॒हि॒तेभ्य॒ः स्वाहा॑ ।२३

अस्य त्रयोदश काण्डस्य प्रथम सूक्तस्य चपुर्थ ऋचः व्रह्मा ऋषिः । रोहिता दित्यदेवते । त्रिष्टुप् छन्द उनदित्य विघ्न विनाशने होमे विनियोगः ।

रुहो॑ रुरोह॒ रोहि॑त॒ आ रु॑रोह॒ गर्भो॒ जनी॑नां ज॒नुषा॑मु॒पस्थ॑म् ।
ताभि॒ः संर॑ब्ध॒मन्व॑विन्द॒न् षडु॒र्वीर्गा॒तुं प्र॒पश्य॑न्निह रा॒ष्ट्रमाहाः॑ ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य पूर्ववत्कर्म करें ।

चन्द्रग्रहणानिष्ट शान्ति (७)

जहाँ चन्द्रग्रहण तथा उसके तुल्य चन्द्रमा को राहु आदि पाप ग्रह आच्छादित करें । वहाँ निम्नांकित मन्त्र से शान्त होम करें "विशेष" कौ० ८ सू० १ ।

राहू राजानंत्सरति स्वरन्तमनमिह हन्ति पूर्वः । सहस्रमस्य तन्व इह नाश्याः शतं तन्वो विनश्यन्तु ॥

चन्द्राय स्वाहा तदनन्तर विनियोग करें ।

अस्य कां ६ अष्टाविंशत्युत्तरशत संख्याकस्य सूक्तस्य, अथर्वाऽङ्गिराः ऋषिः । सोमः, शकधूमः देवते, अनुष्टुम् छन्द चन्द्रमसोविघ्नोप शमने होमे विनियोगः ।

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत । भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१

भद्राहं नो मध्यंदिने भद्राहं सायमस्तु नः । भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥२

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् । भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ॥३

यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा । तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४

अन्य सब पूर्ववत् विधि ही है ।

उषा विघ्न शान्ति (८)

जहाँ उषा काल में सूर्योदय वेला को विघ्न आच्छादित करें वहाँ शान्ति की विशेष विधि ।

ॐ उदेतु श्रीरुषसः कल्पयन्तिपूल्यान्कृत्वा पलित एतु चारः ।
ऋतून्बिभ्रती बहुधा विरूपान्मह्यं भव्यं विदुषो कल्पयाति ॥ औषस्यै स्वाहा ।

इसके अनन्तर "दिव्योगन्धर्वो" मातृनामागण से होम करें । अन्य सब पूर्ववत् ।

भयङ्कर दुकाल निवारण (९)

जहाँ दारुण "सभ" प्रतीत हो, होम करें ।

ॐ या समा रुशत्येति प्राजापत्यान्वि धूनुते । तृप्ति यां देवता विदुस्तां त्वा सं कल्पयामसि ॥
व्याधकस्य मातरं हिरण्य कुक्षीं हरिणीम् । तां त्वा सं कल्पयामसि ॥
यत्ते घोरं यत्ते विषं तद्विषत्सु निदध्मस्यसुष्मिन्निति ब्रूयात् ॥
शिवेनास्माकं समे शान्त्या सहायुषा समायै स्वाहा ॥

इस प्रकार होम करके उपस्थान करें । तदनन्तर विनियोगः अस्य काण्ड २ सूक्त षष्ठस्य शौनकः ऋषिः । अग्निः देवता त्रिष्टुम्, ४ चतुष्पदार्षी पंक्तिः ५ विराट् प्रस्तार पंक्तिः समा (शलभः) दारुणत्वोपशमने, महाभयोपशमने, चौरभयापहरणे, भयङ्कर संवत्सर दोषनिवारण सांपत्य कर्मणि च अग्नि रुपस्थने, होमे च विनियोगः ।

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सं चे॒ध्यस्वा॑ग्ने॒ प्र च॑ वर्धये॒ममु॒च्च॑ तिष्ठ मह॒ते सौभ॑गाय ।
मा ते॑ रिषन्नुपस॒त्तारो॑ अग्ने ब्र॒ह्माण॑स्ते य॒शस॑: सन्तु॒ मान्ये ॥२
त्वाम॑ग्ने वृणते ब्राह्म॒णा इ॒मे शि॒वो अ॑ग्ने सं॒वर॑णे भवा नः ।
स॒प॒त्न॒हाग्ने॑ अभिमाति॒जिद्भ॑व॒ स्वे गये॑ जागृ॒ह्यप्र॑युच्छन् ॥३
क्ष॒त्रेणा॑ग्ने॒ स्वेन॒ सं र॑भस्व मि॒त्रेणा॑ग्ने मित्र॒धा य॑तस्व ।
स॒जा॒ताना॑ं मध्यमे॒ष्ठा राज्ञा॑मग्ने वि॒हव्यो॑ दीदिही॒ह ॥४
अति॒ निहो॒ अति॒ स्रुधोऽत्यचि॑त्ती॒रति॒ द्विष॑: ।
विश्वा॒ ह्य॑ग्ने दुरि॒ता त॑र॒ त्वमथा॒स्मभ्य॑ं स॒हवी॑रं र॒यिं दा॑: ॥५

अन्य पूर्ववत् सभी कर्म करें ।

पुच्छलतारादि दर्शन शान्ति (१०)

जहाँ उपतारकाः (पुच्छलतारा, धूम्रकेतु, आदि २) दृष्टिगोचर हों तो उसकी शान्ति के लिये होम करें ।

ॐ रेवतीः शुभ्राद्वषिरा मदन्तीस्त्वचो धूमसनुताः संविशन्तु ।
परेणापः पृथिवी संविशन्त्वाप इमां लोकाननु संचरन्तु ॥

इस होम के उपरान्त ''काण्ड ७।१८।१'' ''प्रनभस्व'' तथा ४।१५–१ ''समुत्पतन्तु'' से होम करें। शेष पूर्ववत ।

अनावृष्टि निवारण (११)

अस्य कां.७ सू.१८ अथर्वा ऋषिः पृथिवी, पर्जन्यः देवते चतुष्पाद भुरि गुष्णिक्, २ त्रिष्टुम् छन्दासि—उल्कादि उपतारिका दोषनिवारण, दारुण संवत्सरोपशमने, जलवर्षणार्थे मन्त्रोक्त देवतार्थं च होमे विनियोगः ।

प्र न॑भस्व पृथिवि भि॒न्द्धी३॒॑दं दि॒व्यं नभ॑: । उ॒द्नो दि॒व्यस्य॑ नो धात॒रीशा॑नो॒ वि ष्या॑ दृ॒तिम् ॥१
न घ्रं॑स्तताप॒ न हि॒मो ज॑घान॒ प्र न॑भतां पृथि॒वी जी॒रदा॑नुः ।
आप॑श्चिदस्मै घृ॒तमित्क्ष॑रन्ति॒ यत्र॒ सोम॑: सद॒मित्तत्र॑ भ॒द्रम् ॥२

अस्य ४।१५ सुक्तस्य अथर्वा ऋषिः । १ दिशः, २–३ वीपधः, ४ मरुत्पर्जन्यौ ६–१० मरुतः, आपः, ११ प्रजापतिः, स्तनयित्नु, १२ वरुणः, १३–१५ मण्डूकाः पिरश्चः १६ व्रातः, देवते । त्रिष्टुम्, १–२–५ विराट् जगती ४ विराट् पुरस्ता द्बृहती, ७–१३ अनुष्टुप्, ९ पथ्यापंक्ति, १० भरिक् १२ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा भुरिक्, १५ शकुमत्यनुष्टुम् छन्दांसि उल्कादि उपतारकादुष्टदर्शनोत्पन्नमीति, अवर्षणादि दारुण संवत्सर भय निवारणे, वृष्ट्यर्थे च मरुद्गणी मन्त्रोक्त-देवतार्थ होमे उपस्थाने च विनियोगः (विधि टिप्पणी में देखें ।

स॒मु॒त्पत॑न्तु प्र॒दिशो॒ नभ॑स्वती॒: सम॒भ्राणि॒ वात॑जूतानि यन्तु ।
म॒ह॒ऋ॒ष॒भस्य॒ नद॑तो॒ नभ॑स्वतो वा॒श्रा आप॑: पृथि॒वीं त॑र्पयन्तु ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥२(।)
समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥३
गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य बर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४
उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥५×(च)
अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥६
सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत । मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥७
आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥८
आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९
अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१०क(।।)
प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥११
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥१२
संवत्सरंशशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः । वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१३
उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि । मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥१४
खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि । वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥१५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥१६ [ज] (।।।)

* **"वृष्टि कर्मविधि" :**—वृष्टिकर्म तथा दारुण संवत्सर के विघ्न विविध "उद्योगादि" अर्थोत्थापन विघ्न शान्ति हेतु–मन्त्रोक्त देवताओं, या वरुण या मरुद्गणों के निमित्त चरु होम किया जाता है। इन्हीं का १२ दिन उपवासादि से युक्त विधिवत् उत्थापन. पूजा बलि आदि की जाती है। इन्हीं से शिर (यजमानादि) का प्रोक्षण किया जाता है।कौ० १३।११ तथा ५।५ वैतान २।४

विशेष चरुः—काली (कृष्णा) गौ का घृत, दूध, काले चावल साठी चावल का भात "समिधा विशेष" पटेर, काश, विधु, (एनर्सल) की लें। पटेर का स्रुवा भी लें। उपरोक्त पटेर आदि को, दाभ, कुशा, शान्ति औषधियाँ जो अम्बादिगण में बतलाई जा चुकी हैं, ये सब एकत्र कर लें, एक नवघट में डालें, जल (तीर्थादि से युक्त) पूर्ण भर लें। उपरोक्त सूक्तों से तथा अपागण अम्बादिगण सूक्तों से अभिमन्त्रित करे। इस वर्षा कर्म में वर्षाकामी इन सूक्तों को जपें सुनें, अवसेचन (छींटे) शिरों पर दें, आप्लावन (स्नान)विना शरीर मले अभिमन्त्रित जल से करें। यह व्रत १२ दिन करें, असमर्थ ६ या ३ दिन सायं प्रातः पाठ करें, व्रतादि करें, अत्यन्त असमर्थ एक दिन निरजल व्रत के साथ भी अन्य सभी कर्म करें। *

* इस टिप्पणी में निर्दिष्ट विधि उल्का आदि उपरतारिकाओं के दुष्ट दोष, अवर्षण (अनावृष्टि) से हा हाकार, दुर्दिन, तथा अर्थकामी जब उद्यम करे अर्थात् द्रव्य, हस्ति, अश्व, वाहन, रत्न, हिरण्य धन धान्यादि की प्राप्ति के हेतु व्यवसाय करे और उनमें मानसिक, शारीरिक, पारवारिक, राजनैतिक, आर्थिक विविध प्रकार से नये नये विघ्न ही विघ्न आते हों, और हानि ही हानि होती हो तो उसकी शान्ति भी इसी उपरोक्त विधि से हो होगी। क्रिया, सामिग्री सभी समान ही होंगे–मात्र कुछ ऋचाओं का विशेष अन्तर निम्न प्रकार है। अर्थोत्थापनगण में देखें परन्तु विधि यही हैं। "अयं ते योनि" (३।२९–१), "आनोभर" (५।७–१), "धीतिवाये" (७।१–१) तथा "अम्बयोयान्ति" (१।४–१) की ऋचाओं से कार्य जप उपस्थान, उत्थापिनी ऋचाओं से उत्थापन कर उपर्युक्त अन्य सभी करें। अर्थकामी "वैश्वानरो-रश्मिभिः" (२।१५), तथा "उदेहिवाजिन्" (१३।१) की आदि बीस ऋचाओं से स्नानान्तः सूर्योपस्थान करे। निश्चय बहु विधि से समस्त ओर से अर्थागम होता हैं।

इस शांति से स्वशक्ति की क्षमता के अनुसार, पूजा उपस्थान श्रवण, जप आदि एक, तीन, ६ या १२ रात्रि करें—तदनन्तर १३ वें दिन, कुश कण्डिका के साथ, वरुण, मरुद्गण, या मन्त्रोक्त देवताओं के निमित्त उपरोक्त सामग्री से होम करें। प्रारम्भ यहाँ से करें।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रंभे ।.२

प्रत्येक मन्त्र के अन्त में यह उच्चारण भी करें—"ॐ मरुद्भ्यो जुष्टं निर्वपामि" ।(×)

जहाँ आहुति न हो अर्थात् प्रोक्षण करे वहाँ 'ॐ मरुद्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि' तब उपरोक्त दूध भात की आहुतियाँ दें। काण्ड ४ सूक्त १५ की प्रथम "समुत्पतन्तु" से प्रारम्भ ऋचा से (च) (×) इस चिह्न की पाँचवीं ऋचा पर्यन्त पढ़कर (×) इस चिह्न के मन्त्र को बोलकर १ आहुति दें। इसी प्रकार (क) इस चिह्न से चिह्नित ५ ऋचाओं को बोलकर (×) उपरोक्त चिह्नित मन्त्र को पढ़ते हुए दूसरी आहुति दें। इसी प्रकार (ज) चिह्न से चिह्नित ६ ऋचाओं को बोलकर अन्त में (×) चिह्नित मन्त्र को जोड़कर अर्थात् अन्त में बोलकर तृतीय आहुति दें। तदनन्तर पार्वणादि उत्तर तन्त्र करके पुनः काण्ड ७।१७ "प्र न भस्व" से उपरोक्त (+) चिह्नित मन्त्रोच्चारणान्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक आहुति । "न घ्रं स्ततापेति" के अन्त में (×) चिह्नित मन्त्रोच्चारण कर द्वितीय । पुन इन दोनों हीं ऋचाओं को बोलकर अन्त में (+) चिह्नित मन्त्रोंच्चारण कर तृतीय आहुति दें ।

पार्वणादि उत्तर तन्त्र में सर्वत्र कुशाओं के होम में **"मरुतोगचच्छतु हवि स्वाहा"** मन्त्रान्त में जोड़ना अनिवार्य है तदनन्तर नाभिमात्र जल में प्रवेश कर उपरोक्त शान्ति औषधियुक्त जल पूर्ण घट की रस्सी को नीचे करके (मुँह नीचे) कर जल को उपरोक्त मन्त्र को पढ़ता हुआ उडेल दे–प्रवाहित करे । कुत्ते के शिर के बाल अभिमन्त्रित (उपरोक्त मन्त्रों से) कर–जल में प्रवाहित करें । मैंढे के शिर के बाल अभिमन्त्रित कर जल प्रवाहित करें । मानव के शिर के बाल पुराने जूते का चर्म वांस के अग्रभाव में बांध उपरोक्त मन्त्रों (कां० ४ सू० १५) को जपते हुए आकाश से युक्त करते हुए रिक्त उपरोक्त मिट्टी के पात्र को पाषाण पर पटक दे । अन्य औशधि आदि को अभिमन्त्रित कर शान्ति घट के जल से छींटे देकर जल में प्रवाहित करें ।

ब्राह्मणायुध धारण शान्ति (१२)

जहां ब्राह्मण शस्त्र धारण करने लगें; तो उस अपशकुन से होने वाले विनाशकारी भय से रक्षार्थ शांति करें । "विशेष"

ॐ य आसुरा मनुष्या आत्तधन्वः पुरुष नुखाश्चरानिह ।
देवा वयं मनुष्यास्ते देवाः प्र विशामसि ॥
इन्द्रो नो अस्तु पुरोगवः स नो रक्षतु सर्वत ॥ इन्द्राय स्वाहा ।

इसके होम के उपरान्त "मानो विदन्" (१।१९); तथा "नमो देववधेभ्यो" (६।१३) ये पूर्वोल्लिखित अभयगण में हैं, से इन्द्रयाग करें ।

देवनृत्यादि अनिष्ट शान्ति (१३)

जहां देवता नृत्य करें, उछलें, हंसें, गायें अथवा अन्य अज्ञात अश्रुत, अदृष्ट कोई भी कैसा भी करते दृष्टिगोचर हों वहाँ अभयगण से होम करें । अभयगण पूर्व अध्याय में है ।

लाङ्गल सृजनानिष्ट निवारण (कृषिविघ्न शान्ति) (१४)

जहाँ "लाङ्गल सृजन हो"

ग्राम से दूर जङ्गल के समीपस्थ (मध्य) अर्थात् एकान्त में पुरोडाश को अभिमन्त्रित कर पूर्व में (सीता) मिट्टी का ढेला (क्षेत्र के कूड में) को स्थापित करें, मध्य में वेदी बना कुशकण्डिका की विधि से पूर्वाभिमुख समिधादान कर होम करें । विशेष—

ॐ वित्तिरसि पुष्टिरसि श्रीरसि प्राजापत्यानां तां त्वाहं मयि पुष्टिकामो जुहोमि स्वाहा ।
कुमुद्वती पुष्करिणी सीता सर्वाङ्ग शोभनी । कृषिः सहस्रप्रकाराः प्रत्यण्टा श्रीरियं मयि ॥
उर्वी त्वाहुर्मनुष्याः श्रियं त्वा मनसो विदुः । आशये ऽन्नस्य नो धेह्यनमीवस्य शुष्मिणः ॥
पर्जन्य पत्नि हरिण्यभिजितास्यभि नो वद ।
कालनेत्रे हविषो नो जुषस्व तृप्ति नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
याभिर्देवा असुरानकल्प यन्यातून्मनून्गन्धर्वान्राक्षसांश्च ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपा गहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा ॥
हिरण्य स्रक्पुष्करिणी श्यामा सर्वाङ्ग शोभनी ।
कृषिर्हिरण्य प्रकारा प्रत्यण्डा श्रीरियं मयि ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अश्विभ्यां देवि सह संविदाना इन्द्रेण राधेन सहपुष्ट्यान आगहि।
विशस्त्वारासन्तां प्रदिशो ऽनुसर्वा अहोरात्रार्धमासमासाआर्तवा ऋतुभिः सह ॥
भर्त्रीदेवानासुतमर्त्यानां भर्त्री प्रजानामुत मानुषाणाम् हस्तिभिरितरासैः क्षेत्रसारभिः सह।
हिरण्यैरश्वैरा गोभिः प्रत्यष्टा श्रीरियं मयि (महि) ॥
अश्विना फालं कल्पयतामुपावतु वृहस्पतिः। (फाल कुश को कहते हैं)
यथा सद्बहुधान्यमयक्ष्मं बहुपूरुषमिति ॥

इस प्रकार कृषिजन्य विघ्नोपशमनार्थ इन्द्र देव का होम, उपस्थान, जप करें। यह क्षेत्र के कुंड में जुआ हरस हल के फटने पूछ गिरने आदि उत्पातों की शान्ति विधि हैं।

घटस्थ, अन्नोत्पन्नानिष्ठ निवारण (१५)

णहाँ शुष्क घड़ों में शुष्क अन्न सहसा अंकुरित हो, या सहसा नष्ट हों। उसकी शान्ति अनिवार्य है। यह विशेष विधि है शेष पुर्वोलिखित ही है।

ॐ मनायै तन्तुं प्रथमं पश्येदन्या अतन्वत। तन्नारीः प्र ब्रवीमि वः साध्वीर्वः सन्तूर्वरीः ॥
साधुर्वस्तन्तुर्भदतु साधुरेतु रथो वृतः। अथो होर्वरीर्यूयं प्रातर्वोढवे धावत ॥
खर्गला इव पत्वरीरगमुग्र सिवायनम्। पतन्तु पत्वरीरिवोर्वरीः साधुना पथा ॥
अवाच्यौ ते लोतुद्ये ते तो देनाश्वतरा विव। प्रस्तोमसुर्वरीणां शशयानामस्ता विषम् ॥
नारी पञ्चमयूखं सूत्र वत्कृणुते वसु। अरिष्टो अस्य वस्ता प्रेन्द्र वास उतोदिर ॥

घट, वस्त्रादि पूर्ववत् कर्त्ता को सदक्षिणा भेंट करें।

बिना अग्नि के अग्नि दर्शन निष्ट शान्ति (१६)

जहाँ बिना अग्नि के ही अग्नि प्रज्वलित हो उठे या सहसा द्वेष भड़क उठे आदि। वहाँ निम्न सूक्त से शान्ति करें।

ॐ भवतं नः समनसौ समोकसा वरे पसौ।
मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा यज्ञं जात वेदसौ शिवौभवतमद्यनः ॥
अग्निनाग्निः संसृज्यते कविर्वृहस्पतिर्युवा। हव्यवाड्जुह्वास्यः ॥
त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्सता। सखा सख्याममिध्य मे ॥
पाहि नो अग्न एकया पाहि न उत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्ति सृभिरूर्जांपते पाहि चतसृभिर्वसो ॥
समीची माहनी पाता मायुष्मत्या ऋचो मा सतिस।
तनू पात्साम्नो वसुविदं लोकमनु संचराणि ॥

कर्त्ता को स्वर्ण दान दें।

एकाधिक विपर्यय जन्मानिष्ट निवारण (१७)

जहाँ एक ही साथ, या एक ही ग्रह में गौ, घोड़ी, भेंस क्रमशः (भादों, श्रावण, माघ) में प्रसूता हों। या एक साथ युगल जन्म हो या विपरीत सन्तति (गौ के घोड़ा, घोड़ी के गौ, आदि के अनर्थ के निवारणार्थ, शांन्ति औषधियों से युक्त अभिमन्त्रित शान्त जल से छींटे देकर दुहें। उसी के दुग्ध में या गौ दुग्ध में स्थली पाक (क्षीर, खोआदि) बनायें। उत्तर या पूर्व की समिधायें लायें वेदी तथा कुशकण्डिका के उपरान्त निम्न सूक्त से होम करें। प्रणीता के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जल से 'मय बच्चे के गौ आदि जो भी हों' शिरों को छींटे दें, अवशेष चरु को अभिमन्त्रित कर पशु के स्वामी व पशु को खिलायें बच्चे को प्रणीता के जल का आचमन करायें। और छींटे दें।

अस्य काण्ड ३ सूक्त २८, अष्टाविशांति संख्याकस्य ब्रह्माऋषिः यामिनी देवता। अनुष्टुप्, १ अतिशाक्वरी गर्भा चतुष्पदाति जगति ४ यवमध्या विराट् ककुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ विराड्गर्भा प्रस्तारपंक्ति, छन्दासि प्रतिकूल प्रसवनादि जनित दोषोमशमनार्थे अवसेचने होमे च विनियोगः।

एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून्क्षिणाति रिफती रुशती ॥१
एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद्भूत्वा व्यद्वरी। उतैनां ब्रह्मणे दद्यात्तथा स्योना शिवा स्यात् ॥२
शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा। शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥३
इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव। पशून्यमिनि पोषय ॥४
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत्पुरुषान्पशूंश्च ॥५
यत्रा सुहार्दा सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत्पुरुषान्पशूंश्च ॥६

विपर्ययजातानिष्ट निवारण (१८)

जहाँ घोड़ी, गर्दभी आदि के ऐसे जन्म हों; वहाँ भी यही उपरोक्त मंत्र से होम आदि सारी विधि करे।

अमानवीयजातानिष्ट निवारण (१९)

जहाँ मानुषी ऐसा जन्म दे, वहाँ भी इसी सूक्त से यही सब करें। माता बच्चे को गोद में क्रिया के समय ले लें। छींटें क्रमशः माता व पुत्रादि को दें यह विशेष है।

गो दोहन विघ्न शान्ति (२०)

यदि गौ आदि के दुहते समय लाल दूध या रक्त आये, किसी की क्रूर दृष्टि लग जावे तो यह क्रव्या दोष है।

अस्य अष्टम काण्डस्य तृतीय सूक्तस्य आपञ्चादशः षोडशः सप्त दशाष्टा दश ऋचाणां चातन ऋषि। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् १७ भुरिक छन्दासि कव्यादि ग्रहग्रहीत दोषोपशमने अभ्युक्षणे, होमे, उपस्थानादौ च विनियोगः।

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५
विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः।
परैणान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवत्सरीणं पयं उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥१७
सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८

यज्ञान्त वरण द्रव्य, धेनु कर्त्ता को दक्षिणा के साथ दें ।

बैल द्वारा गोदोहनानिष्ट निवारण (२१)

जहाँ बैल गौ के दूध को पिये (दुहे) वहाँ शांति करें ।

ॐ अनड्वान्धेनुमधयदिन्द्रो गो रूप मा विशत् । स मे भूतिं च पुष्टिं च दीर्घमायुश्च धेहि नः ॥

इन्द्राय स्वाहा । तदनन्तर —

अस्य कां० १।१९ ब्रह्मा ऋषिः । ईश्वर (१ ईन्द्रः मनुष्येषवः, ३ रुद्रः ४ देवाः) अनुष्टुप् । २ पुरस्ताद्बृहती, ३ पथ्यापंक्ति । छन्दांसि समस्तात्भुद्दोषोपशमने अभ्यक्षणे, होमे च विनियोगः ।

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय ॥१
विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥२
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ॥३
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः । देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४

तथा ६।१३ "नमो देद वधेभ्यः" अभयगण में लल्लिखित से होम करें ।

कां० १ सू० १९ "मानोविदन्" विशेष वेध करने वाले शत्रु, हम तक न पहुँचें । चारों ओर मारकाट करने वाले, हम तक कभी न पहुँचें । हे प्रभो ! चारों ओर फैलने वाले वाण समूहों को हमसे दूर ही गिरा । २—जो फेंके हुए और जो फेंके जावेंगे, वे सब चारों ओर फैले हुए, वाणादि अस्त्र, हमसे दूर जाकर गिरे । हे देवी मानुषीवाणी ! मेरे शत्रुओं को वेध डालो । ३—जो हमारा स्वकीय, या परकीय हो, अथवा समान, उच्च जाति का कुलीन हो, हम पर आक्रमण कर, हमें दास बनाने की कुचेष्टा करें, इन मेरे शत्रुओं को, रुलाने वाले वीर वाणों से बेध करें । ४—जो विरोधी और जो प्रत्यक्ष विरोधी नही हैं, और जो द्वेष करता हुआ, हमको शाप देता है । उसका सब देवगण नाश करें । मेरा आन्तरिक रक्षा कवच ब्रह्मज्ञान ही हैं ।

गौ द्वारा गौदोहनानिष्ट निवारण (२२)

जब गौ को गौ ही दुहे (पिये) तो वहाँ शांति की उपरोक्त विधि के साथ करें । (विशेष विधि)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ योगक्षेमं धेनुं वाजपत्नीमिन्द्राग्निभ्यां प्रेषिते जञ्जभाने । (जञ्जभाते)
तस्मान्मामग्ने परि पाहि घोरात्प्रनो जायन्तां मिथुनानि रूपशः ।।

इन्द्राग्निभ्याँ स्वाहा । यह होम करके "दिव्योगन्धर्वं" (२।२।१) आदि मातृनामागण से होम करें ।

अश्वादि द्वारा छाग भक्षणानिष्ट निवारण (२३)

जहां गौ अश्व, नीलगौ, (गदही) या पुरुष आकाशफेन (झाग) का भक्षण करें—वहाँ शान्ति विशेष ।

ॐ पयो देवेषु पय औषधीषु पय आशासु पयो ऽन्तरिक्षे ।
तन्मे धाता च सविता च धत्तां विश्वे तद्देवा अभिसंगृणन्तु ।।
यन्मृगेषु पय आविष्टमस्ति यदेजति पतति यत्पतत्तृषु ।
तन्मे धाता च सविता च धत्तां विश्वे तद्देवा अभिसंगृणन्तु ।।
यानि पयांसि दिव्यार्पितानि यान्यन्तरिक्षे बहुधा बहूनि ।
तेषामीशानो वसिनी नो अद्य प्रदमत्ता द्यावापृथिवी अहृणीयमाना ।।

इस सूक्त से होम करें ।

पिपीलिकानाचारानिष्ट निवारण (२४)

जहाँ पिपीलिका (चेंटी) अनाचार रूप में दृष्टिगोचर हों वहां विशेष होम विधि—

ॐ भुवाय स्वाहा, भुवनाय स्वाहाः, भवनपतये स्वाहा, भुवांपतये स्वाहा, वोषाय स्वाहा, विनताय स्वाहा, शतारुणाय स्वाहा ।

यः प्राच्यां दिशि श्वेत पिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा ।
यो दक्षिणायां दिशि कृष्ण पिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा ।
यः प्रतीच्यां दिशि रजत पिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा ।
यः उदीच्यां दिशि रोहित पिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा ।
यो ध्रुवायां दिशि बभ्रु पिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा ।
यो व्यध्वायां दिशि हरित पिपीलिकानां राजा तस्मै स्व हा ।
य ऊर्ध्वायां दिश्यरुण पिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा ।
ताश्चे देतावता न शाम्येयुः "एतत उत्तरमग्निमुपसमाधाय" ।।

उत्तराग्नि स्थापित कर शरकण्डा, कास, दर्भयुक्त वर्हि दोनों ओर सन्मुख परिस्तरण कर विषवत ध्वस्त करने को इङ्गिण (प्रियंगु) आज्य, शाक, पलाश, एरण्ड के पवित्र स्रुवा से होम करें ।

ॐ उत्तिष्ठत निर्द्रवत न व इहास्त्वित्यश्रतम् ।
इन्द्रो वः सर्वासां साकं गर्भानाण्ड निभेत्स्यति । फडढताः पिपीलिकाः ।
इन्द्रो वो यमो वो वरुणो वो ऽग्निर्वो वायुवः सूर्योवश्चन्द्रो वः प्रजापतिः व ईशानो वः ।

नीलमक्षानाचारानिष्ट निवारण (२५)

जहां नील मक्षा अनाचार रूप में प्रवृत्त दृष्टिगोचर हों वहां होम करें । विशेष विधि

ॐ या मर्त्यः सरथं यान्ति घोरा मृत्योर्दूत्यः क्रविशः सं बभूवुः ।
शिवं चक्षुरुत घोषः शिवानांशं नो अस्तु द्विपदेशं चतुष्पदे ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शान्तं चक्षुरुत वायसीनां या चासां घोरामनसो विसृष्टिः ।
मनसस्पते तन्वा मा पाहि घोरान्मा विरिक्षि तन्वा मा प्रजया मा पशुभिर्वायवे स्वाहा ।।

इससे होम करके, निम्न सूक्त से होम करें ।

ॐ वात आवातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे । प्रण आयूंषि तार्षत् ।।
उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ।।
यददो वात ते गृहे निहितं भेषजं गुहा । तस्य नो धेहि जीवसे ।।

मधुमक्षिकानाचारानिष्ट निवारण (२६)

जहाँ मधुमक्षिका अनाचार रूप में दृष्टिगोचर हों वहाँ—

ॐ मधुव्वाता ऽऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।।

इससे होम करें ।

अद्भुद्दर्शनानिष्ट निवारण (२७)

जहाँ अनज्ञात, अश्रुत, अननुभूत, अदृष्ट, अद्भुत दृष्टिगोचर हों । वहाँ होम करें । विशेष विधिः ।

ॐ यदज्ञातमनाम्नातमर्थस्य कर्मणोः मिथः ।
अग्ने त्वं नस्तस्मात्पाहि स हि वेत्थ यथा यथम् ।। अग्नेय स्वाहा ।।
वायो सूर्य चन्द्रेति च । पुरुष संमितोऽर्थः कर्मार्थः पुरुष संमितः ।
वायुर्मा तस्मात्पातु स हि वेत्थ यथा यथम् । वायवे स्वाहा ।
अग्निर्मा सूर्यो मा चन्द्रो मेति च ।

सर्वाद्भुद्दर्शनानिष्ट निवारण (२८)

समस्त अद्भुत कर्मों की शांतिविधि—यथा, जहाँ ग्राम की सीमा आदि में, अग्नि के समीप या धनुषादि के समीप चार धेनु एकत्रित (उपक्लृप्ता) हों श्वेत, कृष्ण, रोहिणी, सुरूपा उनको इस प्रकार १२ रात्रि दूध, मक्खन धरें । १२ रात्रि के पश्चात प्रातः दृष्टिगोचर हों तो उत्तराग्नि को अनुमन्त्रित करे, कुशकण्डिका के साथ श्वेत गौ के घी को लेकर निम्न तीन ऋचाओं से अभिमन्त्रित करें ।

अस्य अ० कां० १२ प्रथम सूक्तस्य १९-२०; २१ ऋचायाः-अथर्वा ऋषिः भूमि देवता, १९ उरोवृहती; २० विराट्, २१ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप् छन्दासि, अद्भुद्दोष शमनार्थे अभिमन्त्रणार्थे, जपे, होमे च विनियोगः ।

अ॒ग्निर्भूम्या॒मोष॑धीष्व॒ग्निमापो॑ बिभ्रत्य॒ग्निरश्म॑सु । अ॒ग्निर॒न्तः पुरु॑षेषु॒ गोष्वश्वे॑ष्व॒ग्नयः॑ ।।१९
अ॒ग्निर्दि॒व आ त॑पत्य॒ग्नेर्दे॒वस्यो॒र्व॑१॒न्तरि॑क्षम् । अ॒ग्निं मर्ता॑स इन्धते हव्य॒वाहं॑ घृ॒तप्रि॑यम् ।।२०
अ॒ग्निर्वा॑साः पृथि॒व्य॑ऽसित॒ज्ञूस्त्विषी॑मन्तं॒ संशि॑तं मा कृणोतु ।।२१

इन तीन से अभिमन्त्रित कर, आलम्भन कर इन्हीं से होम करें । क्रमशः दक्षिणार्ध, पश्चिमार्ध, उत्तरार्ध में वास्तुगण (वास्तोष्पतिगण) स्थापित कर, वास्तोष्पतिगण से होम बलिदानादि करें । जग अवदीर्ण (प्राकट्य) हुआ हो वहाँ होम कर अपांसूक्त' अम्वादिगण मन्त्रों से अभिमन्त्रित तथा प्रणीता जल मिलाकर संप्रोक्षण करें । (छींटे दें) वरण द्रव्य गौ, दक्षिणा ब्राह्मण को दे । वैश्य हो तो भूमि, अश्वदान दे । क्षेत्रादिपति (ग्रामाधिपति) राजा हो तो ग्राम दान दें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जले मरुस्थले दर्शनानिष्ट निवारण (२९)

यदि मरुस्थल में जल, जल में मरुस्थल की भ्रान्ति हो तो अम्वादिगण (अपां सूक्तों) से होम करें।

बालु में तैल दर्शनानिष्ट निवारण (३०)

जहाँ तिलों के तुल्य तैल दृष्टिगोचर हो, तो शांति होम करें।

ॐ अन्नाय (अनुयाय) स्वाहा। अक्षिताय स्वाहा। अपरिमिताय स्वाहा। परिपूर्णाय स्वाहा।
तदनन्तर दक्षिणाभिमुख हो—ॐस यं द्विष्यात्तस्याशायां लोहित तेप्र सिञ्चामि। इससे छींटे दें।

काकादि से हवि उच्छिष्ठानिष्ठ निवारण (३१)

जहाँ वपा, हवि, काक, द्विपद, चतुष्पाद छूकर चले जावें। वहाँ विघ्न की शान्ति करें। ये अग्नियो (३।२१) नमो देववधेभ्यो (६।१३) 'अभयगण में उल्लिखित' से होम करें।

एक मानव के बहुमुखजातानिष्ट निवारण (३२)

जहाँ एक ही कन्या या कुमार के दो मुख दृष्टिगोचर हों। वहाँ अनर्थ की शान्ति के हेतु होम करे। बिशेष विधि

ॐ त्वष्टा रूपाणि बहुधा विकुर्वञ्जनयन्प्रजा बहुधा विश्वरूपाः।
समे करो त्वविपरीतमस्माननुपूर्वं कल्पयतामिहैव। त्वष्ट्रे स्वाहा।
अन्तर्गर्भेषु बहुधा सं तनोति जनयन्प्रजा बहुधा विश्वरूपाः।
समे करो त्व विपरीतमस्माननुपूर्वं कल्पयतामिहैव ।। त्वष्ट्रे स्वाहा।
यद्युन्मृष्टं यदि वाभिमृष्टं तिरश्चीनर्थ उतमर्मृजन्ते।
शिवं तद्देवः सविता कृणोतु प्रजापतिः प्रजाभिः संविदानः।
सव्यावृत्तान्युत या विश्वरूपा प्रत्यग्वृत्तान्युत या ते परुषु।
तान्यस्य देव बहुधा बहूनिस्योनानिशग्मानि शिवानि सन्तु। त्वष्ट्रे स्वाहा।

इस प्रकार होम कर अथर्व ६।४ 'त्वष्टा मे' से होम करें।

अस्य ६।४ सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः १ त्वष्टा, पर्जन्य ब्रह्मणस्पतिः अदितिः; अंशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदिति, मरुतः, ३ अश्विनौ, द्यौष्पिता, देवते, पथ्याबृहती, २ प्रस्तारपक्तिः, ३ त्रिपदा विराड्गायत्री छन्दांसि युगल जन्म जनितारिष्ट निवारणे होमे अभ्युक्षणे च विनियोगः।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥१
अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिहुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥२
धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या णं उरुज्मन्नप्रयुच्छन्। द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥३

इसी से दोनों (युगलजन्मी) के शिरों को शांति तथा प्रणीता जल से छींटे दें। अन्य सब पूर्ववत् करें।

शुष्ककाष्ठ हरितत्वानिष्ट निवारण (३३)

जहाँ शुष्क स्तम्भ हरा हो जाय, उसकी शान्ती करें। विशेषः—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ यूपो विरोहञ्छत शाखो अध्वरः समावृतो मोहयिष्य न्यजमानस्य लोकान् ।
वेदाभिगुप्तो ब्रह्मणा परिवृतोऽथर्वभिः शान्तः सुकृतामेतु लोकम् ।।
यूपोह्यरुक्षाद्द्विषतां बधाय नमेयज्ञो यजमानश्चारिष्यात् ।
सप्तर्षीणां सुकृतां यत्र लोक स्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च धेहि ।। वनस्पतये स्वाहा ।।

इस प्रकार होम कर (१२।३।१५) 'वनस्पति सहदेवैः' से होम करें ।

अस्य (१२।३-१५) ऋचायाः यमः ऋषिः । स्वर्गः, ओदनः; अग्नि देवते, त्रिष्टुप् छन्द अद्भुत ज्जनितारिष्ट निवारणे होमे विनियोगः ।

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्रक्षः पिशाचां अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकां अभि सर्वान् जयेम ।।१५

दुर्दिन, उल्कापातादि-अनिष्ठ निवारण (३४)

जहाँ उल्का, उपतारका, अतिवृष्टि, अनावृष्टि दुर्दिन आदि-आदि अद्भुत घटनायें घटें, वहाँ अनिष्ट भय निवारणार्थ होम करें । राजा, ग्रामाधिपति, क्षेत्रपति आदि प्रमुख जन अथर्व शान्ति वेत्ता या अभाव में अन्य जो वरण करें । वह ग्राम से दूर अटवी में एकान्त में पूर्व नौ रात्रि पर्यन्त कन्दमूल फलाहार करे—पश्चात्—३ दिन केवल ज्ञाता हों, को आमन्त्रित कर जलाहार ही करें ।

उसके दूसरे दिन सात धेनु "१ श्वेता २ कृष्णा ३ रोहिणी ४ नीली ५ पाटला ६ सुरूपा ७ बहुरूपा नाम की स्थित करे (उपक्लृप्ता-प्रगटाः) । उनके इन १२ दिन को दुग्ध तथा मक्खन जो हो भोग रक्खे । बारहवे दिन प्रातः वह जहाँ गिरे--उसके उत्तर में उत्तराग्नि संस्थापित करें । कुशकण्डिका के उपरान्त स्वर्ण पात्र में उसे (मक्खन को) विलोयें । विलोडन स्वर्ण के स्रुवा से करें । रक्षोघ्न अध्याय ३ सूक्त (अनुवाक) तथा काण्ड ५।१७-४ से होम करें ।

अस्य ५।१७-४ ऋचायाः मयोभूः-ऋषिः, ब्रह्मजाया देवता । अनुष्टुप् छन्द अद्भुतज्जनितारिष्ट निवारणे, होमे, प्रोक्षणे च विनियोगः ।

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ।।४

यहाँ से प्रारम्भ सूक्त से जो (ब्रह्मगवी) अभिचार में वर्णित है, से होम करें । जहाँ अद्भुत हो वहां होमान्त शान्ति जल से छींटे दें । अन्य पूर्ववत् ।

धूम्रकेत्वादि दर्शन शान्ति (३५)

जहां धूम्रकेतु (पुच्छल तारा) सप्त ऋषि मण्डल नक्षत्रों को दमन करे उदित हो । इससे उत्पन्न महाविनाश के रक्षणार्थ शान्ती करें ।

ॐ पञ्च पशव स्तायन्ते वारुणः कृष्णो गौर्वाजो वाविर्वा हरिर्वा-
य व्यो बहुरूपो दिश्यो मारुती मेष्याग्नेयः प्राजा पत्यश्च क्षीरौदनो ऽयां नप्तृ उद्रः ।।

तदनन्तर ४।१६-३ "उतेयं भूमि" से उपस्थान करें । अस्य (४।१६-३) ऋचाणां ब्रह्मा ऋषिः । वरुणः सत्यानृता न्वीक्षणम्-देवता, ३-४ त्रिष्टुप् ५ भुरिक-छन्दासि उपतारकादि-धूम्रकेतु प्रभृति उत्पाद्दर्शन जनितारिष्ट-विनाशादि उपशमने योग क्षेमार्थे होमे, अभ्युक्षणे उपस्थाने पञ्च पशुयागे-प्राजापत्यपुरोडासोपस्थाने-क्षीरौदन अनुमन्त्रणे च विनियोगः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञं उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३
उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४
सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५

इनसे ३ वार वरुण की स्तुति कर ७।८३-१-४ "अप्सु तेराजन्" से वारुण चरु उपरोक्त से होम करें ।

कां. ७सू.८३ शुन; शेपः, ऋषिः । वरुणदेवता अनुष्टुप २पथ्यापंक्ति ३त्रिष्टुप् ४वृहती गर्भा त्रिष्टुप् छन्दान्सि । धूर्मकेतु प्रभृति, अद्भुत दर्शन जनित महाभय निवारणे-वारुणेन (क्षीरौदनेनपुरोडाशेन) वारुण होमे, महाशान्ति योग क्षेमार्थे विनियोगः । वह वारुणास्त्र मन्त्र भी है ।

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः । ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१
धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः ।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥२
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥३
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४

वायवा रुन्द्धि नो मृगानस्मभ्यं मृगयद्भ्यः ।
स नो नेदिष्ठमा कृधि वातो हि रशना कृत । इति वायव्य ॥

तदनन्तर (१।३१) य आशानाम आशा पाल अहोलिङ्ग गण में उल्लिखित से दश दिशाओं में दशों दिक्पालों को आहुति दें तथा बलिदान करें । तदनन्तर—

ॐ प्रति त्वं चारूमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे । मरुद्भि रग्न आ गहीति । मारुतस्य ॥

अपामग्नि स्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥४।१५-१०

टिप्पड़ी-*१:—अपां सूक्त के अभिमन्त्रित जल से सूक्त पाठ के साथ 'अवभथ' स्नान करें, प्रदक्षिणा कर-प्रणीतादि जल स्पर्श करें, पीछे को बिना देखे ही–यज्ञस्थली (अटवी) से ग्राम में प्रवेश करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति।
प्र प्यायताँ वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहिं ॥४।१५-११

इति प्राजापत्यस्य। अपांसूक्त (अम्वादिगण) अध्याय २ में उल्लिखित से + १ स्वर्ण अभिमन्त्रित कर राहोद्रमप्सु प्रवेश (राहो को दान दें) प्रहैव वर्षति। सर्बस्व दान करें। उसकी निष्क्रयीभूत दक्षिणा में यथाशक्ति यथा सम्पत्ति दान दे। *२—स्वर्ण खण्ड (स्वर्ण के सिक्के)।

दिने तारादर्शनानिष्ट निवारण (३६)

जहाँ दिन में ही तारागण दिखाई दें, तारागण टूटते दृष्टिगोचर हों उससे उत्पन्न महाभय की शांति करें। विशेष।

ॐ यन्नक्षत्रं पतति जातवेदः सोमेन राज्ञेषिरं पुरस्तात्।
तस्मान्सा मग्ने परिपाहि घोरात्प्रणो जायन्तां मिथुनानि रूपशः। इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा।
ॐ सोमोराजा सविता च राजा भुवोराजा भुवनं च राजा।
शर्वो राजा शर्म च राजा लउ नः शर्म यच्छन्तु देवाः॥
आदित्यैर्नो वृहस्पतिर्भगः सोमेन नः सह।
विश्वेदेवा उर्वन्तरिक्षं त उ नः शर्म यच्छण्तु देवाः॥
उता विद्वाखिष्कृदयाथोस्त्रघ्नी यथायथम्। मानो विश्वेदेवा मरुतो हेति मिछत॥

अन्य सब पूर्ववत् विधि करें। इच्छादान कर्त्ता को दें।

सन्मुखमांसदिपतनानिष्ट निवारण (३७)

यदि सन्मुख मांस आकर गिरे, तो इससे उत्पन्न महाविनाश से रक्षार्थ शांति करें। विशेष विधि।

घोरो वज्रो देवसृष्टो न आगन्यद्वा गृहान्घोरमुताजगाम।
तन्निर्जगाम हविषा घृतेन शंनो अस्तु द्विपदेशं चतुष्पदे॥ रुद्राय स्वाहा।

इससे होम कर 'भवाशर्वौ मृडतं' ११।२ से आहुति दे। यह अध्याय ३ में उल्लखित है। इससे मांस, विष्टा, दुष्ट पक्षी, काक, उलूक, वाज, कपोत, कप्पिजल, टटा टेहरी श्रङ्गाली आदि लोकपाल, क्षेत्रपाल के अभिघात, समस्त अद्भुत दर्शन दोष निवारणार्थ गो दुग्ध में पक्व चावल आदि के तीन भाग करे। समस्त अर्थ सूक्त उपरोक्त तथा 'विश्वजित' (६।१०७)। 'शकधूम (६।१२८) इन तीनों ही से १।१ अर्थात् ३ बार रौद्रदेव को आहुतियाँ दें। इसी से भौम ग्रह शांति करे। यही रौद्री इष्टि है। ये तक्मनाशन गण के साथ रौद्रगण में भी हैं।

विना अग्नि; अग्निदर्शन शान्ति (३८)

जहाँ बिना अग्नि के ही अग्नि का आभास हो, इससे उत्पन्न अरिष्ट निवारणार्थं होम करे। विशेष विधि—

ॐ या ते दीप्ति स्वरूपा जातवेदोऽपेतो रक्षसां भाग एषः।
रक्षांसि तया दह जातवेदो या नः प्रजां मनुष्यां संसृजन्ते॥ अग्नये स्वाहा।

इससे आहुति देकर "अग्नी रक्षांसि सेधति" ८।३।२६ से पूर्ण आहुति दे।

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः। शुचिः पावक ईड्यः ॥२६

अन्य पूर्ववत्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वतः अग्नि प्रज्वलने शान्ति (३९)

जहाँ अग्नि स्वतः ही प्रज्वलित हो उससे उत्पन्न महाभय की शान्ति ।

ॐ श्वेता कृष्णा रोहिणी जातवेदो यास्ते तनूस्तिरश्चीनानिदंहन्तिः श्वसन्तीः ।
रक्षांसि ताभिर्दह जातवेदो यानः प्रजां मनुष्यां संसृजन्ते ।। अग्नेय स्वाहा ।

इससे आहुति देने के उपरान्त उपरोक्त 'अग्नीरक्षांसि' ८।३-२६ से आहुति दें । शेष सब पूर्ववत ही करें ।

घृत में तैलादि दर्शन शान्ति (४०)

जहां घी में तैल या मधु समभाग में वृद्धिक्षय प्रतीत हो, उसकी विशेष शान्ति अस्य ६।११६ सूक्तस्य जाटिकायन ऋषिः विवस्वान् देवता । जगती २ त्रिष्टुप छन्दासि, घृत, मध्वादि क्षयवृद्धौ, अद्भुद्दोषोपशमने होम विनियोग; ।

यद्यामं चक्रुर्निखनंन्तो अग्ने कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ।।१
वैवस्वतः कृणवद्भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजांति ।
मातुर्यदेनं इषितं न आगन्यद्वा पितापराद्धो जिहीडे ।।२
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान्पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ।।३

अन्य सब पूर्ववत विधि है ।

अग्निदहने शान्ति (४१)

यदि ग्रामीण अग्नि शाला (मकान) या कुटीं को भस्म करे तो उसकी । काण्ड ६।११७;११६;६१ से होम करें, मिश्रित धान्य से पूर्णाञ्जलि होम करें ।

ॐ ममोभा मित्रावरुणा ममोभेन्द्रा बृहस्पती । मम त्वष्टा च पूषा च ममैव सविता वशे ।।
ॐ मम विष्णुश्च सोमश्च ममैव मरुतो भवन् । सरस्वांश्च भगश्च विश्वेदेवा वशे मम ।।
ॐ ममोभा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं स्वर्मम । ममेभाः सर्वा औषधीरापः सर्वा वशे मम ।।
ममगावो ममाश्वा ममाजाश्चा वयश्च ममैव पुरुषाभवन् ।
ममेदं सर्वमात्म न्वदेजत्प्राण द्वशे ममेति ।।

सबसे पूर्व अरणी तपाकर स्थण्डिल को धोये तब अग्नि स्थापन करें ।

ॐ इत एव प्रथमं जज्ञे अग्निराभ्यो योनिभ्यो अधिजातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतुप्रजानन् ।।

इससे अग्नि प्रजनन करें । तदनन्तर "भवतं नः समनसो" पूर्वोल्लिखित अध्याय ३ में मन्त्रों से होम करें । शेष पूर्वोक्त हैं ।

१ X उपरोक्त ६।६१ "मह्यमापो मधुमदेरयन्तां" वृहद्गण में है । अस्य सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः । रुद्रः देवता त्रिष्टुप, २।३ भुरिक छन्दांसि उपर्युक्त होमे विनियोग ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥१
अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यह दैवीं परि वाचं विशश्च ॥२
अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥३

यदि आगन्तुक जलाये या जल जाये तो भी उपर्युक्त ही शान्ति विधि है ।

वंश विस्फोटन शान्ति (४२)

यदि अकस्मात वंश विस्फोट हो; कपाल में अग्नि दृष्टिगोचर हो, अन्य पाराशर स्मृति आदि में वर्णित अद्भुत घटना घटित हों तो उससे होने वाले महाविनाश के निवारणार्थ तथा योग, क्षेमार्थ शान्ति करें सर्व प्रथमशाला के पीछे जावें, चलते हुए, फटते, वंश या कपाल या अङ्गार आदि को जो जलने से शेष हों, एकत्रित कर रक्खे । वृक्ष की पूर्वोत्तर ही की समिधायें लें, कुशकण्डिका विधि के उपरान्त परिक्रमा क्रम से आज्य को लेकर संस्कार करें। नित्य नैमित्तिक होम आदि करें । तदनन्तर शान्ति होम करें ।

विशेष

असौ वै नाम ते मातासौ वै नाम ते पिता । असौ वै नाम ते दूतः स्ववंशमधि तिष्ठति ॥
उत्तमा रात्री (उत्तमस्त्री) णाम् मृत्यो ते माता तस्य ते अन्तकः पिता ॥
समंदधानस्ते दूतः स्ववंशमधि तिष्ठति ॥
बहवो ऽस्य पाशावितताः पृथिव्याम संख्येया अथर्यन्ता अनन्ताः ।
याभिर्वंशानभि निदधाति प्राणिनां यान्कांश्चेमान्प्राणभृतां जिघांसन् ॥
स इमं दूतं नुदतुवंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशं मृत्यवे स्वाहा ॥
वृहस्पतिराङ्गिरसो ब्रह्मणः पुत्रो विश्वेदेवाः प्रददुर्विश्वमेजत् ।
स इमं दूतं नदतुवंशपृष्ठात्समे गच्छतु द्विषतो निवेशं वृहस्पतय आङ्गिरसाय स्वाहा ॥
यस्य ते ऽन्नं नक्षीयते भूय एवोपजायते । यस्मै भूतं च भव्यं च सर्व मेतत्प्रतिष्ठितम् ।
स इमं दूतं नुदतुवंशपृष्ठात्समे गच्छतुद्विषतो निवेशमिन्द्राय स्वाहा ॥
मुखं देवानामिह यो बभूव यो जानाति वयुनानां समीपे ।
यस्मै हुतं देवता भक्षयन्ति वायुनेत्रः सुप्रणीतिः सुनीतिः ॥
स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशनमग्नये स्वाहा ॥
यः पृथिव्यां च्यावयन्नेति वृक्षान्प्रभञ्जनेन रथेन सह संविदामः ।
रसान्गन्धान्भावयन्नेति देवो मातरिश्वा भूतभव्यस्य कर्त्ता ।
स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मेगच्छतु द्विषतो निवेशं वायवे स्वाहा ॥
ब्रह्मचारी चरति ब्रह्मचर्यमृचं (ब्रह्मचर्यममृतम्) गाथां ब्रह्मपरं जिगांसन् । (जिघांसन्)
तं बिघना अनुपरियन्ति (पर्यन्ति) सर्वेये अन्तरिक्षेयेच दिवि श्रितासः । (श्रुतासः)

---

१ वंशस्पृष्ठात्सः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तं (तां) विशो अनुपर्यन्ति सर्वाः कर्माणि लोके परिमोहयन्ति ।
स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशमादित्याय स्वाहा ।।
यो नक्षत्रैः सरथं याति देवः सं सिद्धेन रथेन सह संविदानः ।
रूपं रूपं कृण्वानश्चित्रभानुः सुभानुः ।
स इमं दूतं नुदतु वंश पृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशं चन्द्राय स्वाहा ।।
ओषधयः सोमराज्ञीर्यशस्विनीः । ता इमं दूतं नुदन्तु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु ।
द्विषतो निवेशमोषधीभ्यः सोमराज्ञीभ्यः स्वाहा ।।
ओषधयो वरुणराज्ञीर्यशस्विनीः । ता इमं दूतं नुदन्तु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु ।
द्विषतो निवेशमोषधीभ्यो वरुणराज्ञीभ्यः स्वाहा ।।
अष्ट स्थूणे दशपक्षो (पक्ष्योः) यद्दछजो वनस्पते । पुत्रांश्चैव पशुंश्चाभि रक्ष वनस्पतेः ।
यो वनस्पती नामु पतापो बभूव यद्वागृहान्घोरमुताजगाम ।
तन्निर्जगाम हविषा घृतेन शन्नो अस्तु द्विपदेशं चतुस्पदे ।।
यो वनस्पतीनामुपतापो न आगच्छद्वा यज्ञंनोऽद्भुतमा जगाम् ।
सर्वं तदग्ने हुतमस्तु भागशः शिवान्वयमुत्तरेमाभिवाजान् । त्वष्ट्रे स्वाहा - इति हुत्वा—

कां० ६।४ 'त्वष्टा मे दैव्यवच'' से जलपात्र अस्य ६।४ सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः १ त्वष्टा; पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः २ अंशः, भगः, वरुणः- मित्रः, अर्यमाः, मरुतः, ३ अश्विनौ, द्यौष्पिता देवते । पथ्या वृहती, २ प्रस्तारपंक्ति, ३ त्रिपदा विराड्गायत्री, छन्दांसि अद्भुतदोषोपशमने, अभ्युक्षणे, स्नाने, उपस्थाने, होमे च विनियोग । यह युगल जन्म दोष निवारण विधि में देखें ।

प्रणीता तथा प्रोक्षणी, शान्तिघट के जलों से छींटे दें, जल को अर्घ्य दें उसी यज्ञ वेदी पर जल को उलट दें । अग्नि को कपाल में रख चतुष्पाथ या अरण्य में रख दें । अन्य सब विधि पूर्ववत् ।

निषि धनुष दर्शनशस्त्र प्रज्वलने च शान्ति (४३)

जहां जब भी रात्रि मे धनुष, या शस्त्र जलते दिखाई दें, अकारण अकस्मात् वस्त्र, हाथी, घोड़ा, शफ आदि जलते दिखाई पड़ें, मृदङ्ग आदि वाद्य यन्त्र स्वयं ही बजने लघें । बिना मेघ बिजली गिरे, मृग, कौआ, सर्प आदि विपरीत दिशा में जावें या ग्राम्य जीव अरण्य को, अरण्य के जीव ग्राम में आकर वास करें । शुष्कठूंठ हरे हो जावें । घड़ों में रक्खे धान अंकुरित हो उठें गेहूँ में जौ, जौ में गेहूँ आदि आदि विपरीत उगे दृष्टिगोचर होना घोर भयावह उत्पात सूचक हैं । इनकी अनिवार्य रूप से शान्ति करे ।

विशेष विधि :—

ॐ भूमिर्भूमिमवांगान्माता मातरमप्यगात । ऋध्यास्म पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि सभिद्यतामिति ।।
सदसि सन्मे भूयादिति — सक्तुओं को बोये ।
अथ चेदोदनस्यान्नमस्यन्नं से देह्यन्नं मामा हिंसीः ।

इससे तीन वार अन्न का भक्षण करे । यह अन्न कवल भक्षण अपनी तत्तत्कामनानुसार भक्षण करे । यदि जल युक्त सत्तु हों तो का० १०।५-२३ व २४ वीं ऋचा "समुद्रंवः प्रहिणोमि" इन दो से जो वृहच्छान्तिगण में दिये हैं । से अभिमन्त्रित कर भक्षण करें । यदि अन्य हो तो '३।१२-१ व १ "इहैवध्रुर्वा" जो वास्तुगण में निर्दिष्ट हैं से अभिमन्त्रित तथा ध्रुवीकरण स्थैर्यता करे और १।३३-१ "हिरण्यवर्णा" अपासूक्त में निर्दिष्ट से जलावसेचन करें । इनसे सर्वत्र ही अद्भुत कर्मों में यथा भार्गव्याणि, गार्ग्याणि, बार्हस्पत्याद्भुतानि, महाद्भुतानि, औशनसाद्भुतानि, जो ग्रन्थों में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दी भी नही जा सकी हैं, जो अनज्ञात, अश्रुत, अननुभूत, अदृष्ट हैं जो इतिहास, पुराण, ज्योतिशास्त्र, अश्ववैद्यकादि में वर्णित समस्त अद्भुत कर्मों में, अथवा पिप्पलादिशान्ति, महाशान्ति, अमृत, घृत कम्बल कोटि होम, सर्वाद्भुतों में कौशिक निर्दिष्ट शान्ति विधि से शान्तिजल अभिमन्त्रित कर चातन गण, मातृनामागण, पिप्पलादि गण कर्मों से कर्म करें। कर्त्ता को वरण, सामिग्री, गौ विविध, भूषण, वस्त्र, दक्षिणा तथा ब्राह्मण भोजन कर्त्ताओं को भूयसी दक्षिणा दें, ब्राह्मणों के आशीर्वाद लें। जो अथर्ववेद की शौनकीय शाखा में सर्वोपरि शान्ति विधियां वर्णित की है, वे ही उसी क्रम से संकलित हैं। हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः सुशान्तिः सर्वारिष्ट शान्तिर्भवतु हरिं ॐ तत्सत्। ॐ भूर्भुव स्वर्जनदोऽम स्वस्ति।

दुर्दिन विनाश कर्म विधि (४४)

कां.१ सू.१२ भृग्वङ्गिराः ऋषिः। यक्ष्मनाशनम् देवता। जगती (त्रिष्टुप्) ४ अनुष्टुप् छन्दांसि। त्रिदोष जन्य विकार, यक्ष्मादि निवारणे, सूर्योपस्थाने, जल प्रक्षेपणे विनियोगः।

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या।
स नो मृडाति तन्वऽ ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥१
अङ्गे-अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता ॥२
मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥३ *
शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे। शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ॥४

लगातार मेघों की भयंकर मालायें, घोर वर्षा कर जब दुर्दिन बना दें तो मेघों के विनाशार्थ अभिचारु कर्म का संकल्प लें। मेघों के सन्मुख उपरोक्त सूक्त की प्रत्येक ऋचा को पढ़ते हुए नग्न गात्र, ललाट को मर्दित करता हुआ प्रहार करता हुआ उठकर आगे बढ़ें। प्रत्येक ऋचा से जल फेंके। पुनः खड्ग लेकर प्रहार मुद्रा में इन्ही से उपस्थान करें। उल्मुक लेकर सूर्य के सन्मुख इन्ही से उपस्थान करें। लकुट लेकर इन्हीं से प्रहारोन्मुख सूर्योपस्थान करें। गृहद्वार बन्द कर (अपनीय) गृह के बाहर बैठे और अङ्गारों से पूरित कपाल में पटरे समिध, अर्क समिध रखकर, शर्करा, बेर, अर्कादिपत्रों को उपरोक्त सूक्त की ऋचाओं से आहुति दें। गड्डा खोदकर तीन परिक्रमा उपरोक्त चारों ऋचाओं को पढ़कर करें। तीन परिक्रमा कर अर्क (आक) को उखाड़ें अभिमन्त्रित कर उनका जाल बनाकर कुचलकर पिंडाकार बनाकर गड्ढे में डालें ऊपर से मिट्टी दे दें। सभी के समक्ष भात व शाकादि अभिमन्त्रित कर खायें। अभिमन्त्रित इस ऋचा से करें।

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विऽष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ॥२।३५-१

इस प्रकार दुर्दिनकारी मेघों का विनाश हो जाता है।

+(क) इस तीसरी ऋचा से वात, पित्त, कफ जन्य रोग में रोगी के शिर को छीटे दें। उपरोक्त सूक्त से अभिमन्त्रित मेद, मधु घी, तेलादि दें। यक्ष्मनाशन गण के साथ विशेष विधि है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अशनि (ओला वृष्टि) निवारण विधि (४५)

अति वृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः । स्वचक्रम् परचक्रम् वा सप्तैता ईतयः स्मृताः ॥

यदि अतिवृष्टि या अनावृष्टि या पतङ्ग (टिड्टी, चैंपा, रतुआ, गेरुई आदि) भूषे, तोता आदि पक्षी, देश में स्वकृत परराज।दिकृत हमलादि से जन-धन, कृषि उत्पादन आदि सभी प्रकार के महाविनाश, ओला विद्युत आदि से रक्षार्थ शान्ति करें । इसमें ज्योतिर्विदो के अनुभव जन्य प्रामान्य लेखों से भौम तथा केतु ग्रहों के दोष या दिक्पालों के दोष से ये उत्पात होते हैं ।

ईति-भीति-विद्युत्पतनादि शान्ति (४६)

• अस्य सूक्तस्य १।११ भृग्वङ्गिरा ऋषयः । विद्युत् देवता अनुष्टुप् ३ चतुष्पाद्विराड्, जगतीः ४ त्रिष्टुप्परा बृहतीगर्भा पङ्क्तिः छन्दांसि अशनि, विद्युत् भौमादि ईति, भीति सप्तभीति निवारणार्थे, होमे उपस्थाने अभिमन्त्रणे, योगक्षेमार्थे विनियोगः ।

नम॑स्ते अस्तु वि॒द्यु॒ते॒ नम॑स्ते स्तनयि॒त्नवे॑ । नम॑स्ते अ॒स्त्वश्म॑ने॒ येना॑ दू॒डाशे॒ अस्य॑सि ॥१

नम॑स्ते प्रवतो नपा॒द्यत॒स्तपः॑ स॒मूह॑सि । मृ॒डया॑ नस्त॒नूभ्यो॒ मय॑स्तो॒केभ्य॑स्कृधि ॥२

प्रव॑तो नपा॒न्नम॑ ए॒वास्तु॒ तुभ्यं॒ नम॑स्ते हे॒तये॒ तपु॑षे च कृण्मः ।

वि॒द्म ते॒ धाम॑ पर॒मं गुहा॒ यत् स॑मु॒द्रे अ॒न्तर्निहि॑तासि॒ नाभिः॑ ॥३

यां त्वा॑ दे॒वा असृ॑जन्त॒ विश्व॒ इषुं॑ कृ॒ण्वा॒ना अस॑नाय धृ॒ष्णुम् ।

सा नो॑ मृड वि॒दथे॑ गृणा॒ना तस्यै॑ ते॒ नमो॑ अस्तु देवि ॥४

जम्भगृहीत बालारिष्ट शान्ति (४७)

अस्य ७।११ सूक्तस्य शौनकः । ऋषिः, सरस्वती देबत । त्रिष्टुप छन्द, सूर्य ग्रहण रोष, विद्युदशनि प्रभृति सप्त ईति भीति । जम्भगृहीत बाल स्वस्तयने स्थिरीकरणे दिव्य ज्ञान प्राप्तये, केतुग्रहोपशमने उपा कर्मणि च जपे उपस्थाने अभिमन्त्रणे, निखनने होमे च विनियोगः ।

यस्ते॑ पृ॒थु स्त॑नयि॒त्नुर्य ऋ॒ष्वो दैवः॑ के॒तुर्विश्व॑मा॒भूष॑ती॒दम् ।

मा नो॑ वधीर्वि॒द्युता॑ देव स॒स्यं मोत व॑धी र॒श्मिभि॒ः सूर्य॑स्य ॥१

इसी के साथ अंहोलिङ्गगण में उल्लिखित (१।३१) "यः आशानाम आशा" तथा स्वस्त्ययन गण में उल्लिखित । (१२।१) "सत्यं बृहद्" से भूचाल, भूस्खल, आदि स्थरीकरणार्थ विधि करें ।

* (१।३१) "आशानाम" की तीसरी ऋचा को भौम जप में छोड़कर शेष ३ का जप कहा है । कौ० ३८।११

कृषि, ग्रामवासादि विघ्न निवारण (४८)

ग्राम में प्रलयङ्कारी उत्पात हो, ग्राम बसायें या ग्राम में बसें, अग्नि भय की आशङ्का, सभा जय, विवाद जय, गृह निर्माण, दीवार या प्रासाद या पुण्य मन्दिर आदि निर्माण या वात रक्षा में भी रक्षा कर्म विधि यही है । कौशिक ३८।१३; १६ में दारिल मत है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१. उपर्युक्त सूक्तों को जपता हुआ तीन परिक्रमा कर गड्ढा खोदे पुनः इन्हीं सूक्तों से अभिमन्त्रित करें। उसमें वर्फ के टुकड़े, शर्करा और जल एक पात्र में भरकर, उपरोक्त सूक्तों से अभिमन्त्रित कर गड्ढे में गाढ़ दें। शिखा, केश खुले रक्खें तब करें।

२. सोमरस, दर्भ, केश, कुष्ठ (कुठ, या कूठ) लाक्षा, मजीठ, बेर दोनों (हल्दी, दारु हल्दी) भोज पत्र में में लपेट कर नीचे शिर कर, छेद करके अभिमन्त्रित करे क्षेत्र के बीच (फसल) में गाढ़ दें।

३. जब तक नवीन अन्न क्षेत्र या खलियान से घर में न आये तब तक दही तथा नवीन अन्न को गृह स्वामी स्वयं न खायें।

४. ज्योति आयतन का भौम ग्रह से सम्बन्ध है इन उपरोक्त विघ्नों में भौम कारण होने से—भौम दोष निवारणार्थ उपर्युक्त सूक्तों का जप, सूर्योपस्थान करे।

भौमग्रह शान्ति (४८)

५. भौम दोष निवारणार्थ कां १२ सूक्त १ में वर्णित सभी विघ्नों में भौम का जप उपस्थान करें। पुरोडाश बना ४ भाग कर इन्हीं सूक्तों से अभिमन्त्रित करें, ४ पाषाण भी अभिमन्त्रित कर गृह के चारों कोणों में दृढ़ता से स्थापित कर दिक्पालों का आवाहन प्रतिष्ठा, पूजा, माला, बलिदान, धूप, दीप, लाल ध्वजा आदि से पूजा उपस्थान होम कर पाषाणों को गाढ़ दें।

६. सोने से पूर्व भौम के निमित्त इन सूक्तों को जपें।

७. समाज के सम्मेलन में इन सूक्तों से अभिमन्त्रित मधु या मधुप के अभिमन्त्रित कर सभी को दें स्वयं भक्षण करे।

८. गाढ़े हुए पाषाण के ऊपर अधोमुख शयन कर १२।१ "सत्यं ब्रहद्" का जप करे। मधु को कां १।३४ "इयं वीरुद" जो सभा जय में लिखित हैं उससे अभिमन्त्रित कर खाये।

आकाशी विद्युत विघ्न निवारण (५०)

९. "नमस्ते अस्तु" १।११ से आकाशी विद्युत्पात शान्त इसी प्रकार करे। यहाँ भी "यस्ते पृथु" ७।११ से केतु ग्रह का दोष शमन करने को उपस्थान जप होम करें।

११. ये दोनों ही सूक्त, वायुयान, जलयानों से होने वाले अचिन्त्य, घटना अग्नि विस्फोट, आदि को भी शान्ति करेगी, तथा आधुनिक विनाशकारी अणु आयुध आदिके विविधजन विपरीत काण्डों से रक्षा में समर्थ सिद्ध होगी।

उपरोक्त विधि सप्त ईतियों तथा ओले विद्युत के विघ्न महावात (झञ्झावात) भूचाल आदि के शमन में पूर्ण समर्थ हैं। विज्ञ जन अभी आधुनिक तत्सम्बन्धी ऐसे ही कृत्रिम विघ्नो पर भी परीक्षण करने के प्रयास करे। इस प्रकार उपरोक्त सभी दोषों की शान्ति में उपर्युक्त विधि वर्णित हैं।

इति अद्भुदर्शनजनितारिष्टशान्ति विधौ

अथर्ववेदीय कृषि-पशु चिकित्सा विज्ञान एवं उपचार

भारत कृषि-प्रधान देश सदैव से रहा है। हिरण्यादि रत्नोंसे अधिक मूल्य और महत्व इस देशमें कृषि उपयोगी पशुओं का रहा है। गो शब्द का अर्थ हमारी संस्कृति में बहुत व्यापक है। गोधन की महिमा अनन्त है। वैदिक सभ्यता से लेकर आजतक यह परंपरा अक्षुण्ण है कि मनुष्यों की भांति पशुओं को भी आधि, व्याधि रोग से मुक्त रख कर उन्हें हृष्ट-पुष्ट और दीर्घजीवी बनाने के प्रयास किये जायें। जैसे मनुष्यों की चिकित्सा होती है, वैसे ही पशुओं की भी चिकित्सा की जानी चाहिए। (अथर्व० ८।७।११ एवं ८।७।१५) जिस प्रकार मनुष्यों के लिये चिकित्सा व्यवस्था अस्पताल, औषधालय हैं, उसी प्रकार पशु चिकित्सालय भी होने चाहिए (अथर्व० ८।२।२५)।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आथर्वणिक ऋषि महाबलवती, महौषधि अरुन्धती (सहदेवी औषधि) से प्रार्थना करता है, कि हे यथावत प्रभावकारी महाबलवती अरुन्धती औषधि तू बैलों के लिए (अनुड्दभ्यः),दूध देनेवाली गौओं के लिए (धेनुभ्यः)बिना व्याई हुई गर्भवती गौओं के लिये, (अधेनवे) बच्चों के लिए (वयसे), भेंस, भेड, बकरी, घोड़े, गधे, ऊँट आदि चार पैर वाले पशुओं के लिए (चतुष्पदे) उत्तम सुख, स्वास्थ्य [प्रथमं शर्म] प्रदान कर [यच्छत्र] । [अथर्व ६।५९।१]

अथर्व वेद के काण्ड ६ सूक्त ५९ में पशुओं की चिकित्सा के लिए सहदेवी, काला अगर, सुभगा [शालपर्णी] सेंह पिप्पली [जीवला] औषधियां बताई गई हैं। ये औषधियां कोष्ठशोधक, कृमिनाशक और त्रिदोष नाशक हैं। इस लिए पशुओं के पेट में अफरा, कृमिभक्षण और वाह्य कृमियों के आक्रमण आदि रोगों से पशुओं की रक्षा करता है, रोगों को दूर करता है। पशु रुद्र प्रकृात के होते हैं [रौद्रा वै पशवः—शतपथ० ३।३।२।७] इसलिए उनके रोग को अथर्ववेद में रौद्ररोग या रुद्रकोप कहा गया है [रुद्रम्यास्तांहेति दूरं नमतु गोभ्यः :] ।

अथर्ववेद में गाय आदि पशुओं को स्वस्थ्य रखनेवाली 'आज्जन मणि' तथा पुष्टि एवं सन्तति शक्ति—प्रजनन शक्ति बढ़ानेवाली, दुधारू बनानेवाली, 'औदुम्बर मणि' का भी विधान पशुओं के लिए बताया गया है। उपर्युक्त ये औषधियाँ और मणियाँ [गुटकाएँ] अथर्ववेदीय रसायन चिकित्सा प्रकरण या सन्दर्भ में है। और यह भी कहा गया है कि रोग प्रकरण में जितनी औषधियाँ बताई गई हैं वे सब उन्हीं रोगों में मात्रा भेद से पशुओं के लिए भी लाभकारी हैं।

—: गौ महिमा :—

गौ को "कामधेनु" क्यों कहा ? और पशुओं में से किसी को "कामधेनु" की संज्ञा क्यों नहीं दी गई। इस पर अथर्व वेद की प्रामाण्य घोषणा निम्न प्रकार है। इसकी पुष्टि भगवान श्रीधनवन्तरि जी ने आग्नेय पुराण २९२ में की है, समस्त आधि-व्याधियों की शान्ति गौ सेवा से होती है। गौ सर्वथा सर्वदा पवित्र, मगलप्रद लोकत्राण परायण है। गौ का गोमय और गोमूत्र भी दौर्भाग्य नाशक सिद्ध हुए हैं। गोशृङ्गोदक पापनाशक है। गोरोचन के गुण तो अनन्त हैं। पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत में गोदुग्ध गोदधि, गोघृत गोमय का जल; गोमूत्र को ही विद्वानोंने ग्राह्य माना है। ये समस्त यज्ञों के प्रारम्भ में लेने का प्राविधान है। ये पाप, शाप; कर्मज व्याधि; तथा त्रिदोष जन्य व्याधि और दुष्वप्न नाशक है। गोरोचन समस्त बिषनाशक है। गौ की श्वास मात्र से भूमि का वातावरण शुद्ध हो जाता है। गौ का स्पर्श पापनाशक, पुत्र प्रद है। पञ्चगव्य में कुशोदक मिलाकर प्रयोग करने से दंहिक, दैविक, भौतिक सभी अशुभ अपशकुनादि की शान्ति होती है। ३ दिन सेवन से ही अनेक विघ्न शान्त होते हैं। गोमूत्र के नित्य प्रातः नेत्रों में छींटे देने से नेत्ररोग दूर होकर दिव्य दृष्टि होती है। प्रातः गोमूत्र पान से काश, श्लेष्मा, स्वांस, रक्तचाप, रक्तदोष, कुष्ट आदि दूर होते हैं। गोमूत्र विषाहन है। शुष्क गोमय से छाजन या दद्रु को खुजलाकर लोहलुहान कर लें तब शुष्क गोमय के तेल को लगायें तो छाजन, दद्रु, कुष्ठ, समस्त गण्डमालायें शान्त हो जाते हैं। प्रथम ३ दिन गर्म मूत्र ही पीकर रहें, उसके अनन्तर ३ दिन गोघृत पीकर रहें, उसके अनन्तर ३ दिन गर्म गोदुग्ध पियें, तदन्तर ३ दिन मात्र वायु सेवन करते रहें, अंहोलिङ्ग गण का पाठ या गुरुमन्त्र का जाप करें। इस तप्त कृच्छ व्रत से समस्त पापों की शान्ति, ब्रह्मलोक-सायुज्य, मोक्षप्राप्ति का निर्देश है। दिव्यदृष्टि, निर्मल बुद्धि होती है, स्नान से पूर्व गोमय का लेप शरीर पर करें, तदनन्तर गोमूत्र तथा अपामार्ग से स्नान करें। इस प्रकार १ मास गोचारण; गोसेवा, पादसेवा, गोमर्दनादि करें, गो-मति विद्या का जप [ब्रह्मगवी] सूक्तों का पाठ करे। समस्त वाह्याभ्यन्तर शत्रुमार्ग से दूर होकर, काम-क्रोध-लोभ-मोह को शान्ति करके स्वर्ग-गोलोक धाम प्राप्त होता है। गौ की अस्थि, गोमय गोमूत्र की खाद से भूमि का बन्ध्यापन [ऊसरपन] दूर होकर उर्वरा, शस्य श्यामला वास्तविक वसुन्धरा हो जाती है। गौ पितृलोक, देवलोकों की तृप्ति कर—यम पाशों से मुक्त कराती है। गौ का धारोष्ण दूध, गोघृत तथा मधु सेवन का वेदों ने वृष्य अर्थात् वल, वीर्य, ओज, वर्च, बुद्धिवर्द्धक, नपुंसकता का निवारक माना है। गौशृङ्ग की अनेकों कंघी आदि बनती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चगव्य पान तथा उपरोक्त दुग्धपान से क्षेत्रिय व्याधियां, माता तथा पितृ परम्परा से आनेवाली कुष्ठ आदि व्याधियाँ शान्त होती हैं। शुष्क गोमय की भष्म को शरीर पर मलने से, या लेप करने से, उसे ताम्रपात्र में डालकर २४ गुणा गंगाजल भरें — नितर जावे तव १ तोला प्रातः-सायं सेबन से श्वेत व रक्त प्रदर, योनि रोग; गर्भाशय का शोथ, ऋतु बिपर्यता, रक्तस्राव, रजस्राव, प्रमेह तथा मधुमेहों में शान्ति हुई है। अतः व्याधियों के सूक्तों से अभिमन्त्रित करके प्रयोग करें।

निर्धन पुरुष धनिक के गृह से गोदुग्ध व घृत, व चाबल तथा गोमय या उपले लेकर, उपलों की अग्नि में गोमय से भूमि लीपकर खीर बनाये, अर्थोत्थापन गण की विधि से होम में आहुतियाँ दें, शेष (चरु) को "शेरभक, शेरभ" आदि अर्थोत्थापन की ऋचाओं से अभिमन्त्रित कर खाये तो दरिद्रता का नाश हो, लक्ष्मी प्राप्ति हों। गौ, अणिमादि सिद्धि, प्रदाता स्वर्ग तथा सायुज्य की सोपान है। इसकी कल्याणकारी तथा विनाशकारी शक्ति का विश्लेषण "ब्रह्मगवी" प्रकरण में इसी ग्रन्थ में हैं।

गौ के पुत्र सुलभ, सस्ते, कम व्यय में अर्थात् ट्रैक्टरों के व्यय की अपेक्षाकृत सर्वदा, सर्वथा सस्ते वहुत लम्वे समय तक एकही जोट— कृषि उत्पादन वृद्धि में सहायक अनादि से ही रहे हैं। गौ के मांस-चर्म-मज्ञातक अनेकों कार्यों में समय-समय पर काम आते हैं, गौ का दुग्ध व घृत, सभी दुग्धों व घृतों की तुलना में विशेष स्वादु, पोष्ठिक, वल-वीर्य वर्द्धक, बुद्धि मेधा वर्द्धक, मानसिक विकारों को शमन करने वाला, चित्त को एकाग्र करनेबाला, अतीत का ज्ञान व मार्ग दर्शक होने से ही यज्ञोमें लिया गया है, इसी कारण कृष्णने वृज में क्रान्ति की थी। इन सब कारणों से कामधेनु और गौ माता है। वशिष्टजी की कामधेनु की पुत्री नन्दिनी के "दिलीप" की वंशवृद्धि तथा विश्वामित्रजी के "पाशविक बल को ध्वस्त करने के अद्वितीय ऐतिहासिक उदाहरण हैं, वलवान—एक ही शूरवीर को एक बार में मार सकता है। बाण से एक बार में एकही व्यक्ति मर सकता है। सर्प एक बार में एकही को मार सकने में समर्थ है। परन्तु इस देवपूज्य गौ को जो किसी प्रकार व्यथित करते हैं, उस व्यक्ति के २१ गत् २१ आनेवाली पीढ़ियों के समस्त वर्च-तेज पुण्य, भोग, क्षय होकर घोर यातनाओं के भागी होते हैं। उसकी श्वांस प्रश्वाँस मात्र से महान बिनाश होता है। जिस गौ की ऐसी महिमा गौरव तथा पराक्रम है, वह इसी से "गौ" माता हैं।

जहाँ इन प्रत्यक्ष गुण-गौरव तथा पराक्रमवाली गौ का तिरस्कार हो, गौ चोरी हो, गौ बध हो—उसको संतप्त करनेवाला व्यक्ति, परिवार तथा राष्ट्र दुःख, दारिद्र, दुर्भिक्ष, दौर्बल्यता तथा महान भयंकर अचिन्त्य, अकल्प्य वाधाओं, आपदाओं में ग्रसित होता है। अथर्ववेद, ऋग्वेद प्रमाण हैं। पीछे "गो अभिचार" में दिया गया अथर्ववेद का आदेश देखें, बिचार करें —जो व्यक्ति, सभा या संसद द्वारा निर्वाचित राजा इनकी अवहेलना करते हैं, उनको विविध कर्मज, पापज, शाप जन्य व्याधियाँ जन्म-जन्मान्तरों में उत्पीड़ित करती हैं। वहाँ के प्रजाजन नाना भाँति के क्लेशों से नित्य, निरन्तर त्राहि-त्राहि करते रहते हैं।

ऐसे दुष्कर्मी व्यक्ति राजा तथा सभा-ससद के प्रति ही "गो अभिचार" कर्म का वेदों में वर्णन है। इसे हर गोभक्त, राष्ट्रीयता का प्रेमी विधि-विधान से समझकर कार्यान्वित करने में समर्थ हैं। इस गौ तथा मूक उपयोगी पशुधन, गोवंश की रक्षा स्वस्थता, पुष्टि तथा समृद्धि करना प्रजाजन, उसकी निर्वाचित सभाओं, राजा तथ नेता का अनुपेक्ष्य, अप्रमाद; नित्य, निरन्तर अनिवार्य वाञ्छनीय कर्त्तव्य है।

इसकी महत्ता को दृष्टि में रख पारमार्थिक; निष्काम सहज दयापरक महर्षियो ने इसकी कल्याणकारी विधियों का अथर्ववेद में वर्णन किया है, जो शौनकीय शाखा से सम्बद्ध हैं। उपयोगी भैषज्य विधि का विवरण आगे है।

इन पशुओं के व्याधि निराकरणार्थ उपयुक्त अनुभूत उपचार सामग्री एवं औषधियों का उल्लेख ग्रन्थ में प्रथम अध्याय में पढ़ें। वैदिक आथर्वणिक विधियां इस प्रकरण में पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ४ सू. २१ 'आगावो' इस सूक्त से गौओं के रोग निवारणार्थ तथा पुष्टि कर्म में, केवल नमक अथवा जल-युक्त नमक अभिमन्त्रित कर गौ (गौओं, पशुओं) को पिलायें। 'ब्रह्मज्ञानम्' कां. ४ सू. १ पुत्रेष्टि में है तथा यह उपरोक्त; एकाच में (५।१५) से यह निम्नांकित एवं उपरोक्त विधि करें। (कौ० ३।२) इसी से पुष्टि हेतु, गोष्ठ में आती हुई गौओं के पीछे जपें और इन्हीं से इन्द्रदेव की प्रीत्यर्थ होम करें। कां० ४ सू० २१ की ऋचा 'प्रजावती' से जङ्गल को जाती हुई गौ, पशुओं को अनुमन्त्रित करे तथा इसी की ऋचा ७ व ८ से नवीन बच्चे की लार (झाग या लाला) दूध में मिला कर अभिमन्त्रित करे खिलायें और स्वामी स्वयं भी खाये। एक पात्र में जल अभिमन्त्रित कर गोष्ठ में धार चारों ओर दें। सूर्य को अर्घ्य दें। इन्ही से दाने, चारे आदि में गुग्गुल और लवण कूटकर, पिण्ड बनाकर अग्नि में अन्दर रखकर, ३ रात्रि भूभर में गाड़ दें, चौथे दिन, निकालकर, इन दोनों ही सूक्तों से अभिमन्त्रित कर खिलायें। 'प्रजावति' (कां० ४ सू० २१ म० ७-८) 'प्रजावती' कां० ६ सू० ७। (कौ० ३।२)। इन्ही से सोमयाग में, माध्यन्दिन सेवन में, दक्षिणा के लिए आई गौ को मयस्वर्ण, वस्त्रादि के यजमान उपस्थान करें। (वै० श्रौ० ३।११) एहयन्तुपशव (कां० सू० २६) इनका उपरोक्त गोष्ठ कर्म में प्रयोग करें। (कौ० ३।२) इसीसे बछड़े के भिन्न २ अङ्गों में देवताओं की प्रतिष्ठा करें, अभिमन्त्रितकर सांड़ [वृषभ] हेतु छोड़ें। इसी गोष्ठ कर्म में 'सवो गोष्ठेम' कां० ३ सू० १४ भी है।

कां० ४ सू० २१ (१-७) ब्रह्मा। गावः। त्रिष्टुप्, २-४ जगती छन्द, गौसम्बद्धने, संरक्षणे गौ व्याधिभैषज्ये, उपर्युक्तकर्मषु विनियोगः।

आ गावो॑ अग्मन्नुत भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे ।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥१
इन्द्रो॒ यज्व॑ने गृण॒ते च॒ शिक्ष॑त॒ उपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति ।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम् ॥२
न ता न॑शन्ति॒ न द॑भाति॒ तस्क॑रो॒ नासा॑माम॒त्रो व्य॑थि॒रा द॑धर्षति ।
दे॒वांश्च॒ याभि॒र्यज॑ते॒ ददा॑ति च॒ ज्योगित्ताभि॑ः सचते॒ गोप॑तिः स॒ह ॥३
न ता अर्वा॑ रे॒णुक॑काटोऽश्नुते॒ न सं॑स्कृत॒त्रमुप॑ यन्ति॒ ता अ॒भि ।
उ॒रु॒गा॒यमभ॑यं॒ तस्य॒ ता अनु॒ गावो॒ मर्त॑स्य॒ वि च॑रन्ति॒ यज्व॑नः ॥४
गावो॒ भगो॒ गाव॒ इन्द्रो॑ म इच्छा॒द्गावः॒ सोम॑स्य प्रथ॒मस्य॑ भ॒क्षः ।
इ॒मा या गावः॒ स ज॑नास॒ इन्द्र॑ इ॒च्छामि॑ हृ॒दा मन॑सा चि॒दिन्द्र॑म् ॥५
यू॒यं गा॑वो मेदयथा कृ॒शं चि॑दश्री॒रं चि॑त्कृणुथा सु॒प्रती॑कम् ।
भ॒द्रं गृ॒हं कृ॑णुथ भद्रवाचो बृ॒हद्वो॒ वय॑ उच्यते स॒भासु॑ ॥६
प्र॒जाव॑तीः सू॒यव॑से रु॒शन्ती॑ः शु॒द्धा अ॒पः सु॑प्रपा॒णे पिब॑न्तीः ।
मा व॑ स्ते॒न ई॑शत॒ माघशं॑सः॒ परि॑ वो रु॒द्रस्य॑ हे॒तिर्वृ॑णक्तु ॥७

कां० ४ सू० २१ "आगावो" १—गौयें हमारे घर में आगई हैं, और उन्होंने हमारा कल्याण किया है। वे गौयें इस गौशाला में बैठें; और हमारा आनन्द बढ़ायें। वे गौयें अनेक बच्चों वाली, अनेक भांति की प्रभु प्रीत्यर्थ यज्ञों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के लिये, उषाकाल से पूर्व दूध देने वाली हों। (२) ईश्वर सद्धर्म परायण, सदुपदेशकों को, उत्तम ज्ञान देता है। और धन ऐश्वर्यादि भी देता है, तथा उन्हीं के सम्मुख अपने उपासकों के धन,बल ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं। देवत्वाभिलाषियों को अपने ही अन्दर के अन्तरङ्ग, अभिन्न, स्थिर, स्थान में धारण करता है। (३) ये यज्ञीय गौऐं नष्ट नहीं होतीं, चौर वधिक भी चुरा या मार नहीं सकते, इनके दूध से दैवी यज्ञ सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार गोपालक, गौओं के साथ, चिरकाल पर्यन्त आनन्द से रहता है। (४) फुर्तीले घोड़े को भी गाय की योग्यता प्राप्त नहीं होती ये गौयें, अन्न पकाने वाले की पाकशाला में नहीं जाती। ये गौयें यजमान की निर्भय रक्षा में विचरती हैं। (५) गौयें ही मनुष्य के उत्तम धन, बल, अन्न, ऐश्वर्य हैं। इन सभी प्रयोजनों के लिये ही मैं अन्तरात्मा और विशुद्ध मन से, सदा गौओं की स्वस्थता, वृद्धि और उन्नति की कामना करता हूं। (६) गौयें अत्यन्त क्षीण बल पुरुष को अपने दूध से पुष्ट बनाती हैं। निस्तेज को तेजस्वी करती हैं। मधुर शब्द वाली गौयें घर को समस्त आधिव्याधियों से रहित, आह्लादित करती है। ये घर को स्वर्गोपम बनाती हैं। इसी से सभाओं में गौओं के दिव्य अनन्तगुणों का वर्णन किया जाता है। (७) गौयें उत्तमवंश गुणों के बछड़ों से युक्त उत्तम घासादि से बन करें। शुद्ध स्थानों के जल पियें, कोई पापी, बधिक चोर उनका स्वामी न बने, वे सर्वदा, सुरक्षित, रुद्र के अस्त्र से चारों ओर से सुरक्षित हों।

कां० ४ सू० १ 'ब्रह्मजज्ञानम्' सर्वप्रथम, प्रगट ब्रह्म को, उसके प्रकाश की मर्यादाओं द्वारा ज्ञानी जानता है। वही ज्ञानी उपमा देने योग्य, आकाशचारी सूर्यादि ग्रहो और नक्षत्रों को देखकर सत और असत् के मूल प्रवर्त्तक स्थान के विषय में, सत्य, उपदेश करता है। २—यह मनुष्यों के अन्तःकरणों में व्याप्त, परब्रह्म से प्राप्त, तेजस्वी बुद्धि श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के लिए आगे बढ़े। तथा वह बुद्धि सर्वाग्रणी; धारणकर्त्ता प्रभु के लिये समर्पण करने के हेतु से, तेजस्वी दुष्टों को दूर करने वाले उच्च और श्रेष्ठ यज्ञ को सिद्ध करें। ३—जो मनीषी उस प्रभु का बन्धु बनता है, वही देव के देवत्व का वास्तविक ज्ञान कहता है। परब्रह्म से ही ज्ञानोत्पत्ति हुई हैं और उसके सर्वाङ्गों से धारक शक्तियां चारों ओर प्रसारित हुई है। ४—यही एवदेव द्युलोक, और पृथ्वी लोक आदि को सत्य नियम धर्मों से यथास्थान, अवस्थित करने वाला है। उसीने इस द्युलोक और पृथ्वी लोक को घर जैसा बनाया है। उसी प्रकट हुए आदि नारायण ने द्युलोक, अन्तरिक्ष और इस हमारे घर के तुल्य भूलोक को विस्तृत और महान बनाकर स्वस्थ स्थानों में सुदृढ़ किया है। ५—इस अखिल विश्व के एकमात्र सम्राट वृहस्पति देव हैं, वे आदिकाल से चहुँ ओर पूर्ण रूप से फैले हुए हैं। उसी ज्योति से पवित्र दिन का प्रकाश होता है, उससे प्रकाशित होनें वाले ज्ञानी: योगी, सिद्ध, वीतराग, परमहंसादि विशेष प्रकार से जीवन यापन करते हैं। ६—उपर्युक्त ज्ञानीजन निश्चयात्मक रूप से, इस सनातन महाप्रभु का वह विश्वविख्यात महान धाम प्राप्त करता है। वस्तुतः सखी का जन्म, अनन्त मानवों के जन्मों के साथ ही होता है, परन्तु विशिष्ट प्रयत्नों से, ज्ञानी के लिए, जिस समय वह पूर्व महाद्वार थोड़ा सा ही खुल जाता है, उस समय जाग्रत रहने के कारण ही, उसमें ज्ञानी प्रविष्ट होता है (तपश्चर्या में लीन होता है) परन्तु और लोग (प्रमादवश) बाहर ही सोये पड़े रहते हैं। ७—जो निश्चल पिता [अथर्वा जी] देवों के बन्धु. वृहस्पति देव को उपर्युक्त विभूतियों से सम्पन्न आराधना के साथ ज्ञानार्चित करता है कि हे देव, ! तू सबका जन्मदाता, तू ही ज्ञानी और स्वकीय सामर्थ्य से परिपूर्ण है और तू ही अदम्य, सर्वद्रष्टा, संरक्षक है।

कां० ५ सू० १५ (१-११) विश्वामित्रः ! मधुला वनस्पतिः। अहष्टुप् ४ पुरस्तादी ५, ७, ८,९ भुरिक्। छन्द उपर्युक्तसमस्तकर्मषु विनियोगः।

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१

द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥३
चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥४
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥६
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥७
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥८
नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥९
दश च मे शतं च मेऽपवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१०
शतं च मे सहस्रं चापवक्तारं ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥११

कां० ५।१५ 'एकाचमे' :—सत्यपालक, सत्य से उत्पन्न ओषधि ! तू मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर मेरे लिये सर्वत्र मधुरता उत्पन्न कर। मेरे एक या दस, दो, बीस, तीन, तीस, चार, चौबीस, पांच, पचास, छः, साठ, सात, सत्तर, आठ, अस्सी, नौः नब्बे, दस, सौ, सौ, हजार, निन्दक क्यों न खड़े हों, और मुझे रोकने का दुस्साहस भी क्यों न करें, मैं अपने एकमात्र सत्यमार्ग से ही उन सबका प्रतीकार करूँगा। इस कारण मुझे सर्वत्र, अनुकूलता, मधुरता प्राप्त हो।

कां० ९ सू० ७ (१-२६) (एकः पर्यायः) ब्रह्मा। गौः। १ आर्चीबृहती, २ आर्च्युष्णिक्, ३-५ आर्च्युनुष्टुप् ४, १४, १५-१६ साम्नी बृहती, ६,८ आसुरी गायत्री, ७ त्रिपदा पिपीलकमध्या निचृद्गायत्री, ९, १३ साम्नी गायत्री, १० पुरोष्णिक्, ११-१२, १७, २५ साम्न्युष्णिक्, १८,२२ एकपदासुरीजगती, १९ एकपदासुरी पंक्तिः, २० यादुषी जगती २१ आसुर्यनुष्टुप्, २३ एक पदासुरी बृहती, २४ साम्नी भुरिग्बृहती, २६ साम्नी त्रिष्टुप्, ७, १८, १९, २२-२३ द्विपदा। छन्दासि उपर्युक्त समस्त कर्मषु विनियोगः।

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥१
सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥२
विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥३
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥४
श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं१ बृहस्पतिः ककुद्बृहतीः कीकसाः ॥५
देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥६
मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥७
इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥८॥ ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥९
धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥१०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥११॥ क्षुत्कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१२

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥१३

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥१४

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥१५

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥१७॥ अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥१८

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥१९॥ इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन्दक्षिणा तिष्ठन्यमः ॥२०

प्रत्यङ् तिष्ठन्धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥२१॥ तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥२२

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥२३

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥२४

एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥२५

उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥२६

कां० ९ सू० ७ 'प्रजापतिश्च' प्रजापति और परमेष्ठी, ये गौ के दो सींग हैं। इन्द्र शिर है। अग्नि ललाट है, यम गल घोंट हैं। मस्तिक राजा सोम है, द्युलोक ऊपर का जबड़ा पृथ्वी नीचे का जबड़ा है। २—बिजली जीभ है, मरुद्गण दांत हैं रेवती गर्दन, कृत्तिका स्कन्ध हैं, तेज प्रदाता सूर्य, वहने का ककुद के पास का भाग है, वायु सब अवयव और स्वर्गलोक कृष्णद्र है, और धारणाशक्ति पृष्ठवेश है। ५-६-श्येन उसकी गोद है, अन्तरिक्ष पेट है, वृहस्पति ककुद है, वृहस्पति कोहनी का भाग हैं। देव पत्नियां पीठ के भाग है उपसद इष्टियां पसलियां हैं। ७-८ मित्र और वरुण कन्धे हैं, त्वष्टा और अर्यमा बाहुभाग हैं, और महादेव बाहु हैं, इन्द्र पत्नी गुह्य भाग हैं, वायु पुच्छ और पवमान वायु बाल हैं। ९-११-ब्राह्मण और क्षत्रिय चूतड़ हैं बल जाँघें हैं, धाता और सविता ये टकने हैं, गन्धर्व जाँघें हैं, अप्सरायें खुर भाग हैं, अदिति खुर हैं। चेतना उसका हृदय है, मेधा बुद्धि यकृत हैं, व्रत उसकी आंखें हैं। १२-१३ क्षुधा कोख हैं, अन्न बड़ी आंतें है। पहाड़ छोटी आंतें हैं, क्रोध उसके गुर्दे हैं, उत्साह योनि भाग (बिजार के अण्डकोश) हैं। प्रजा जननेन्द्रिय हैं। १४-१५ नदी सूत्र नाड़ी है, वर्षापति मेघ उसके स्तन हैं, गर्जनशीलमेघ दूध से पूर्ण स्तन हैं। सर्वत्र व्याप्त आकाशचर्म हैं औषधियां लोम हैं और नक्षत्र रूप हैं। १६-१९ देवजन गुदा हैं, मनुष्य आंतें है, भक्षक प्राणी उदर है। राक्षस रक्त है, इतरजन अपरचित अन्न हैं। मेधा मेदा है, निधन मज्जा है, अग्नि आसन है, और अश्वि देवउपत्थान हैं। २०-२१ :—इन्द्र प्राचीदिशा में अवस्थान, धाता, पश्चिदिशा में ठहरना, सविता उत्तर दिशा में ठहरना है। २२-२४-जवतृण को प्राप्त होता है, तव वह राजा सोम होता है अवलोकन कर्त्ता सूर्य पराङ्मुख होने पर वही आनन्द है,, जब बैल जोता जाता है, तव वह सब देवों के सम्बन्ध का होता है, जोतने पर प्रजापती और छोड़ने पर सर्वेश्वर बनता है। २५-२६ यह निर्विवाद गौ का रूप, गुण, धर्म ही है, वही गौ का विश्वरूप और सर्वरूप है—जो इस बात के मर्मज्ञ है उसके पास विश्वरूपी और सर्वरूपी सब पशु निरन्तर प्रचुरता से प्रसन्न, स्वस्थ अभिवृद्धि युक्त होकर रहते है। इन्हीं कारणों गौ कामधेनु और माता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. २ सू. २६ [१-५] सविता । पशवः । त्रिष्टुप्, ३ उपरिष्टाद्विराड् बृहती, ४ भुरिगनुष्टुप्, ५ अनुष्टुप् ।

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥१
इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥२
सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः ।
सं धान्यऽस्य या स्फातिः संस्राव्येऽण हविषा जुहोमि ॥३
सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥४
आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं१ रसम् । आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥५

कां० २।२६ "एहयन्तु" जो पशु शुद्ध जलवायु में चरने के लिये गये हैं, वे मिलकर पुनः गौशाला में आ जावें। जिनके चिह्नों को, त्वष्टा जानता है। सविता इस गौशाला में, उनको बांध कर रक्खें। २—पशु इस गौशाला में मिलकर आ जांय। ज्ञानी पहिचान कर उनको गौशाला में ले जायें। सिनी वाली (अन्नपूर्णा) इनके अग्रभाग को ले चले, अर्थात् उनके आने से पूर्व अन्नमिश्रित चारा तय्यार करें। अनुमति, पशुओं के अनुकूल कार्य करने वाली देवी उनके पीछे २ चले, शेष आने वालों को नियम से रक्खें। ३—घोड़े आदि सभी पशु और मनुष्य भी मिलजुलकर चलते रहें। धान्य भी मिलकर बढ़े। इस सबको मिलाने वाले हवि से मैं यज्ञ करता हूं। ४—मैं गौ का दूध दुहता हूँ। पौष्टिक रस को घी के साथ मिलाता हूँ। हमारे वीर और बालकों को यही पेय दिया जाता है। इस कार्य के लिये हमारे घर में गौयें बहुलता से स्थिर रहें। ५—मैं गौओं का दूध लाता हूँ। धान्य और रस भी लाता हूँ। अपने वीरों और बालकों को इकट्ठा करता हूँ। घर में पत्नियाँ भी लाई जाती हैं और सब मिलकर उक्त पौष्टिक रस का सेवन करते हैं।

कां० ३ सू० १४ [१-६] ब्रह्मा। गोष्ठः, अहः, २ अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः, १-६ गावः, ५ गोष्ठश्च। अनुष्टुप्, ६ आर्षी त्रिष्टुप्।

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या । अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥१
सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः । समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद् वसु ॥२
संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः । बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥३
इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥४
शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥५
मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

—: पशु—गौ, बछड़े, अश्व की वृद्धिकर्म, रोग निवारण विधि :—

"वायुरेना:" (६।१४१) इन ऋचाओं से गौ आदि पशुओं की पुष्टि-वृद्धि रोग शमनार्थ–चित्रा कर्म में शान्तिघट में शान्ति वृक्षों की टहनियाँ, शान्ति औषधियाँ डालकर सायंकाल में अभिमन्त्रित करें। प्रातः उषाकाल में उपरोक्त प्रथम ऋचा से शाखा के साथ जल की धारा से गौ आदि पशुओं की परिक्रमा करें, छीटे दे। शाखा मूलर की शाखा की कील से प्रथम जन्मे बच्चे(गौ आदि)के कान पर स्त्री पुरुष चिह्न बनाये। तदुपरान्त तस तामे के अस्त्र[कील]से बछड़े के कानों में स्त्री-पुरुषात्मक चिह्न करे। ऐसे ही घोड़े के भी करें। कौ०सू० ३।६ वायुदेवता ही इनके रक्षक हैं। ऐसा ही तौत्तिरीयक प्रमाण है "वायव स्थेत्या" ह। वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः। अन्तरिक्ष्यदेवत्याः खलुवै पशवः। "वायव एवैनान् परिददाति। इति [तै० ब्रा० ३,२,१,३] उनकी आराधना के साथ त्वष्टा देवता की भी आराधना, यजनादि करे "त्वष्ठा वै पशुनां मिथुनाना रूपकृत्। इति श्रुति। तै०स० १।७ ४.५रात्रिमें दोनों का पूजन-यजन करे।"लोहितेन स्वधितिना"[६।१४१-२] ऋचा २ से बछड़े के कान छेदें।

"यथा चक्रु" [६।१४१-३] तीसरी ऋचा से कर्णच्छेदनान्त दही-मधु-घी जल के साथ अभिमन्त्रित कर बछड़े को पिलाये। इस कम से गौ आदि पशुओ की वंशवृद्धि स्वास्थ्य, बलवृद्धि दीर्घायु, तथा रोगो का निराकरण होता है।

दारिलमत से पशुओं के स्वस्त्ययन कर्म में इन्द्रदेवता की रात्रि में पूजा करे। "ब्रह्मज ज्ञानम्" [४।१६] "नाशाये [५।१-२ सहस्रधारम् [५।१-३] "भवाशर्वौमृडतम्" [११।२] से होम करे। हवि का शेष प्रसाद यजमान ले। कौ.कं. ५१ सू. ९ म. १०, ११, १२, १३। कां० २८ सू० १३ के अनुसार पशुओं का व्रण, राजयक्ष्मा, कुष्ठ, शिरोरोग, अफरा आदि सर्व गात्र पीड़ा निवारणार्थ अ०वे० [५।४] "योगिरिष्वजायत्" की ऋचा ३, ४ "अश्वत्थोदेवसदन तथा [५।२५] पर्वतादिव" कां. ३ ऋचा ७, ८, ९ "गर्भोअसीत" इन से लौनी घी में कुष्ठ औषधि का चूर्ण मिला इन्द्रदेव को होम करें। कां० ५।२७ से "ऊर्ध्वा अस्यसमिधो" गूलर के उत्तर-पूर्व की शाखाओ के कोपलें, फल, फूल त्वचा तथा आम्रपत्र तामे के पात्र में डाले, तामे का तकुआ भी डालें, इनको मथे उसमें आज्य मिला होम करें। समिधा गूलर की लें। चित्रा नक्षत्र में रात्रि मे [६।१४१] "वायुरेना" के अनुसार करे। प्रातः पशुओं के मुंह पर, शरीर पर छीटे दे। जल पिलायें; सरसों, नमक, शक्कर अभिमन्त्रित कर खिलाये। भैंसागूगल, अपामार्ग, लोहवान, राल, शमीपत्र में शक्कर मिलाकर धूप दे। विना गिनती किये पूड़ी गोपालो को दें, पशुओं को खिलायें। [५।४] "योगिरिष्वजायत्" से कुष्ठ में लौनी घी मिला अभिमन्त्रितकर—पशु के दुखते स्थान पर लगाये। कौ० ४।४। इससे व्रण, यक्ष्मा, श्वांस, मुंह के रोग, कीड़ों से उत्पन्न समस्त विकार नष्ट होते हैं।

नगर, ग्राम, गोष्ठ, क्षेत्र, घर के विघ्नो की शान्ति भी इन्हीं उपरोक्त सूक्तों में वर्णित विधि से करें।

विशेष कर्म—६ पत्थर या वाभी की मिट्टी के डेले "अश्व वर्म मे" [५।१०] सूक्त से अभिमन्त्रित करें। मन्त्र अध्याय ३ पढ़ें।

अथ गृह, ग्राम, नगर, क्षेत्र की आकाशी विद्यूत ओलों से रक्षा-विधि :—

निम्नांकित विधि से रक्षातन्त्र करने पर, उस स्थान में बिजली ओलों से अनिष्ट नहीं होता, न वहाँ उत्पात् ही होता है! यह अनुभूत सिद्ध प्रयोग है। यह अतिवृष्टि-अनावृष्टि दोष शमन विधि भी है।

प्रथम कर्त्ता दूब [हरी व श्वेत] दाभ, वांमी की मिट्टी, पाषाण; कुष्ठ, औंगा, (अपामार्ग, धतूरा, मज्जिष्ठ, अर्क [आक्], वट की जड़े, शमी, आम, गूलर के पत्तें, घी, दूध, मट्ठा, गोमूत्र, चावल, चना, मूग, गेहूँ, पीली सरसों, तिल; मिट्टी के घड़ों में डाले, मिट्टी के पात्र से मुंह ढक दें, ४, ९, १४ तिथियों में से जब कोई शनिवार को पड़े, निम्न ऋचाओ से होम [केतुकी पूजा आदिके उपरान्त] करके, इन्हीं से अभिमन्त्रित कर, ग्राम, घर,नगर-क्षेत्र की चारों दिशाओं के मध्य तथा पीपल की जड़मे गहरा गढ़ा खोद कर, पृथ्वी का पूजन कर, धूप आदि देकर गाढ़ें। कौ.५।२। शान्ति कल्प

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१५-दत्तात्रेय तन्त्रेष इसी से घोर विपत्ती, अद्भुत दैवी घटना, उल्का पात, पुच्छलादि तारों के दर्शन जनित,समस्त दैवी, आसुरी बाधाये, पशुरोग, कृमिरोग, महामारी आदि दोषों का शमन भी होता है। ये १३ दिन के पक्ष अष्टग्रही आदि के अरिष्ट शमन में भी हैं।

विजली तथा ओलों से ग्राम, घर, क्षेत्र पशु आदि की रक्षार्थ

"यस्तेपृथुस्तनयित्नुर्यं" (७।१२) से केतु की पूजा, उपस्थान होम करे (कौ० ५।२) तथा ग्रहयाग में भोग, बलिदान, होम, जप, उपस्थानादि केतु के लिये करे 'यस्तेष्टपुस्तनयित्नुः" (७।१२) देवोदेवा१ (११।१-३०) *"केतु कृण्वन्नकेतवे" ऋ० वे० १।६।३ (शा०क० १५) यह अतिवृष्टि अनावृष्टि दोषनिवारण विधि भी है। "नमस्ते अस्तुविद्युते (१।१३) से दूव, दाभकुष्ठ, मिट्टी या पत्थर मञ्जिष्ठादि घर, खेत, ग्राम में रक्षार्थ गाढ़ दे।

कां० ७ सू० १२ शौनकः ऋषिः। सरस्वती देवता। त्रिष्टुप् छन्द। उपरोक्त समस्त दुरित शमनार्थे, जपे, उपस्थाने, होमे, वलिदाने, रक्षातन्त्रे विनियोगः।

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम्।

मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥१

कां० ७ सू० ११ "यस्तेपृथु" हे (सरः) रसवाली अर्थात् जलदात्री मेघों में व्याप्त सरस्वती! जो तेरा विस्तीर्ण और गर्जनेवाला, प्रवाहित होवेवाला विजली की चमकवाला "केतुग्रह", "ओलावृष्टि", विश्वभूषण करता स्वरूप है, उसके विपरीत "विनाशक स्वरूप ओलावृष्टि" "विद्युतपात" से हमारा संहार न कर, और हे देव! वह स्वरूप सूर्य किरणों से भी हमारी सस्यश्यामला हरीभरी खेती को नष्ट न करे।

कां० ११।१-३० अथर्वा ऋषिः। यमः मन्त्रोक्ताः देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। उपरोक्त विद्युत.आकाशी ओलावृष्टि, अशनि, केतु दर्शन आदि समस्त दुरित शमनार्थे चमु केतु अर्चन, स्तवने, उपस्थाने, होमे-वलिदाने, रक्षादिषु विनियोगः।

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान्।

धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥३०

कां० १ सू० १३—१ से "भृग्वङ्गिराऋषयः। विद्युत्। देवता। ३ चतुष्पाद्विराट जगती, ४ त्रिष्टुप्परावृहती गर्भापङ्क्तिः, अनुष्टुप्। छन्दासि आकाशी विद्युत शमने, ओलावृष्टि, अशनिनिवर्तने, उपरोक्त दुरित शमनार्थे, केतु, उपस्थाने, जपे, होमे, बलिदाने, रक्षातन्त्रे, शान्ति औषधि निरवपने विनियोगः। मन्त्र पीछे मय विधि अद्भुद्दर्शनारिष्ट प्रकरण में पढ़े।

इसी "ओते में" (५।२३) सूक्त से शान्ति वृक्षों की सममिधाओं से हवन करे। तत्पश्चात इसी से अग्नि के पास (बाल को माँ की गोद में बिठाकर) चौपाये के बच्चों को उनकी मां के पास करके (जैसी स्थिति में प्रयोग हो देश काल पात्र भेद से) रई जिस पर नवनीत लगा हो, को तपा कर ३ वार तालु को सेक दे। इसी सूक्त से शिग्रुवीज (सरस के बीज) पीसकर नवनीत मिला व्याधियुक्त स्थान से मल दे। इसी सूक्त से २१ उशीर (खसों) की जड़ों को अभिमन्त्रित करे पत्थर से कूटे। सूक्त के जप के साथ उन खसों को अग्नि से जलाये। इसी से अभिमन्त्रित २१ उशीर (खस) रोगी को दे। इन्ही ११ उशीरों (खसों) को घड़े के जल में डाले अभिमन्त्रित करे, रोगी को स्नान कराये। कौ० सू० ४, ५ तथा १३ "हतं तर्दम्" (६।५०) से खेती को खाकर या अन्य प्रकार नष्ट करने वाले मूषक-पतङ्गः,

---

* १—अध्याय, २—पूजन में मन्त्र पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शलभ-टिड्डिभि कीट-हरिण, घूस, गोह आदि की निवृत्ति हेतु लोहयुक्त शीषा को घिसे अभिमन्त्रित कर उपरोक्त व्याधि-गृहित क्षेत्र को कील दे। इसी ऋचा से शर्करा अभिमन्त्रित कर मूषक आदि के स्थानों में छिड़क दे। इसी को जपते हुए मूषक आदि के मुंह को बालों से बाँधे पुनः जपकर क्षेत्र के मध्य गाढ दे। इन्हीं ३ ऋचाओं से बछड़े की गौ के घी दूध, दही, मधु शर्करा को अभिमन्त्रित कर अश्विनी कुमार देवताओं का होम करे। कौ० ७।२। इस सूक्त की ऋचा २ में "ब्रह्म वा संस्थित" से 'महद्भयं वज्रम् उद्यतम्" (क० ब० ६।२) उपनिषद प्रसिद्ध जगत्कारण ब्रह्म का ध्यान करें। "अनडुद्भ्यस्त्वं" (६।५९) से समस्त शान्ति, पुष्टि, स्वस्त्ययन कर्म में सहदेवी को अभिमन्त्रित कर जल, धूप, हो, रक्षातन्त्रादि में ले।

कां० ५ सू० २३ ऋचा १ से १३— कण्वः। ऋषिः। इन्द्रो देवता, अनुष्टुप १३ विराट्-छन्दांसि, टिड्डिभि शलभ मशक-दंश आदि समस्त क्रिमि जनित, अरिष्ट उपशमने-क्रिमिघ्ने। जपे-उपस्थाने-होमे-रक्षोहणे विनियोगः।

ओते॑ मे॒ द्यावा॑पृथि॒वी ओता॑ दे॒वी सर॑स्वती। ओतौ॑ म॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॒ क्रिमिं॑ जम्भयता॒मिति॑ ॥१

अ॒स्येन्द्र॑ कु॒मा॒रस्य॒ क्रिमी॑न् धनपते जहि। ह॒ता विश्वा॒ अरा॑तय उ॒ग्रेण॒ वच॑सा॒ मम॑ ॥२

यो अ॒क्ष्यौऽ परि॒सर्प॑ति॒ यो नासे॒ परि॒सर्प॑ति।

द॒तां यो मध्यं॒ गच्छ॑ति॒ तं क्रिमिं॑ जम्भयामसि ॥३

सरू॑पौ द्वौ विरू॑पौ॒ द्वौ कृ॒ष्णौ द्वौ रोहि॑तौ॒ द्वौ। ब॒भ्रुश्च॑ ब॒भ्रुक॑र्णश्च॒ गृध्रः॒ कोक॑श्च॒ ते ह॒ताः ॥४

ये क्रिम॑यः शिति॒कक्षा॒ ये कृ॒ष्णाः शिति॒बाह॑वः।

ये के च॑ वि॒श्वरू॑पा॒स्तान् क्रिमी॑न् जम्भयामसि ॥५

उत् पु॒रस्ता॒त् सूर्य॑ एति वि॒श्वदृ॑ष्टो अदृष्ट॒हा। दृ॒ष्टांश्च॒ घ्नन्न॒दृष्टां॑श्च॒ सर्वां॑श्च प्रमृ॒णन् क्रिमी॑न् ॥६

येवा॑षास॒ः कष्क॑षास ए॒ज॒त्काः शि॑पवित्नु॒काः। दृ॒ष्टश्च॑ हन्य॒तां क्रिमि॑रु॒ताद॒ृष्टश्च॑ हन्यताम् ॥७

ह॒तो येवा॑षः॒ क्रिमी॑णां ह॒तो न॑दनि॒मोत। सर्वा॒न् नि म॑ष्म॒षाक॑रं दृ॒षदा॒ खल्वाँ॑ इव ॥८

त्रि॒शी॒र्षाणं॑ त्रिक॒कुदं॒ क्रिमिं॑ सा॒रङ्ग॒मर्जु॑नम्। शृ॒णाम्य॑स्य पृ॒ष्टीरपि॑ वृश्चा॒मि॒ यच्छिरः॑ ॥९

अ॒त्रि॒वद् वः॑ क्रिमयो हन्मि कण्व॒वज्ज॑मद॒ग्नि॒वत्।

अ॒गस्त्य॑स्य॒ ब्रह्म॑णा॒ सं पि॑नष्म्य॒हं क्रिमी॑न् ॥१०

ह॒तो राजा॒ क्रिमी॑णामु॒तैषां॑ स्थ॒पति॒र्ह॒तः। ह॒तो ह॒तमा॑ता॒ क्रिमि॒र्ह॒तभ्रा॑ता ह॒तस्व॑सा ॥११

ह॒तासो॑ अस्य वे॒शसो॑ ह॒तासः॒ परि॑वेशसः। अथो॒ ये क्षु॑ल्ल॒का इ॑व॒ सर्वे॒ ते क्रिम॑यो ह॒ताः ॥१२

सर्वे॑षां च॒ क्रिमी॑णा॒ं सर्वा॑सां च क्रिमी॒णाम्। भि॒नद्म्य॒श्मना॒ शिरो॑ दहा॒म्य॒ग्निना॒ मुख॑म् ॥१३

कां० ५ सू० २३ "ओतेद्यावा" द्यौ पृथिवी, देवी सरस्वती, इन्द्र और अग्नि, ये सभी देवगण परस्पर सहयोग से, मेरे हितार्थ क्रमियों का नाश करें। (२) हे धनदाता इन्द्र! इस कुमार के क्रमियों को हटा दो। मेरी तीक्ष्ण वाणी के प्रभाव से सब दुःखदाता क्रिमि नष्ट हो गये हैं। (३) जो नेत्रों में भ्रमण करता है, जो नाक में घुसे होते हैं, जो दांतों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के बीच में हो जाते हैं, उन सभी कीटाणुओं का हम विनाश करते हैं। (४) दो समान स्वरूप के, और दो विरुद्ध स्वरूप के, दो काले, दो लाल, श्वेत और श्वेत कान वाले, गृद्ध और भेड़िये वे सभी मर गये। (५) जो श्वेत कोखवाले कीटाणु हैं, जो काले और काली भुजावाले और जो त्रिविध रूप, रंग, जाति वाले कीटाणु हैं, हम उन सभी कीटाणुओं का नाश करते हैं। (६) सन्मुख उदित सूर्य दिखाई देनेवाले या अप्रत्यक्ष वाले सभी कीटाणुओं का नाशकर्त्ता है। वह दृष्ट और अदृष्ट सभी का नाश कर कुचल देने वाला है। (७) येवाष, कष्कष, एजत्क और शिपवित्तुकादि जो क्रिमि है, उन दृष्ट और अदृष्ट सभी का नाश करता हूं। (८) क्रिमियों में से "येवाष" नाम का क्रिमि मारा गया, और उद्घोष हुंकार, फुंकारादि कर्त्ता भी मारा गया। सबको मसल-मसल कर चकनाचूर कर दिया, जैसे पत्थर से चनों को पीसा जाता है। (९) तीन सिरोंवाले, तीन ककुदों (ठाठों) वाले, रङ्ग-विरङ्ग, श्वेतादि रंगों के क्रिमियों को मैं नष्ट करता हुँ। इनकी पसलियों को भी तोड़ता हूँ, शिर को भी कुचलता हूँ। (१०) हे जन्तुओं ! अत्रि, कण्व और जमदग्नि ऋषियों के समान, तुमको नष्ट करता हूँ। (११) रोगक्रिमियों राजा मारा गया; इसकी मां और भाई भी मारे गये, और इसकी बहिन भी मारी गई है। (१२) इसके सम्वन्धी मारे गये, इसकी परिवारी भी मारे गये, और जो क्षुल्लक क्रिमि थे, वे भी सब क्रिमि मारे गये। (१३) सब स्त्री-पुरुषवाची कीटाणुओं का सिर पत्थर से तोड़ता हू और अग्नि से मुख जलाता हूँ। सभी प्रकार के इन क्रिमियो को, नीम की टहनी से शुक्र, शनि को प्रातः सूर्योदय से पूर्व और सायं सन्ध्या काल में झाड़ा दें। नीम का मद, तैल चुपड़ें, नीम की धूनी दे।

कृषि की समृद्धि, अधिक उत्पादन तथा कण्डुआ, रतुआ, चैंपा आदि कृषि व्याधियों के निवारणार्थ

"अलसालासि" (६।१६-४) से (अलसाला प्रथम शञ्जाला अन्तिम नीलागल साल मध्यमा) तीनों मञ्जरियों के नाम रखकर क्षेत्र में विद्यमान अन्न की ३ शाखायें लें, इसी ऋचा से अभिमन्त्रित करें, पुनः इसी ऋचा के जप के साथ इन तीनों ही शाखाओं को एकत्रित कर क्षेत्र के बीच में गाढ़ दें। हर धान्य की रक्षा के लिये उन्हीं उन्हीं धान्यों की ३-३ शाखायें लें। (कौ० सू० ७।२) के अनुसार अन्न वृद्धि, अन्न रक्षा की उपरोक्त स्वस्त्ययन विधि है। इसी में (कां० १८।४-५३, ५४, ५२, ३७, ५७, १६, ३६ तथा १८।३-७२) से ढाक की समिधाओं से होम करें। इनका उल्लेख रौद्रण सूक्त में, वृहच्छान्तिगण में भी है।

अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा। नीलागलसाला ॥४

सर्वरक्षातन्त्र—अथ व्याघ्र, चौर-वृक्, जरक, सिंह अदि से पशु गृह-ग्राम नगर तथा क्षेत्र की रक्षा विधि।

कां० ४।३ ऋचा १-७ अथर्वा ऋषिः। रुद्रः, व्याघ्रः, देवते। अनुष्टुप् १ पथ्या, पंक्ति, २ गायत्री, ७ ककुम्मतीगर्भोपरिष्टाद्ब्रहती। छन्दांसि। ग्राम, गृह, नगर, क्षेत्र, पशु, आदीनां, सर्प, व्याघ्र, चौर जरक वृक आदितः संरक्षणार्थे, जपे, उपस्थाने होमे, वलिदाने, सप्तपर्वताधिष्ठात्रिदेवानां परितुष्टये विनियोगः।

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ्नमन्तु शत्रवः ॥१
परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः। परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥२
अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि। आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥३
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि। आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥४
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति। पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्णा मृगस्य दन्ता अपिंशीर्णा उ पृष्टयः । निम्रुक्तें गोधा भंवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६
यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः ।
इन्द्रजाः सौमजा आंथर्वणमसि व्याघ्र जम्भनम् ॥७

कां० ४ सू० ३ "उदितस्त्रयो"—बाघ, भेड़िया "चोर, वधिक, अतताई" ये तीनों यहाँ से भाग जावें। नदियाँ निम्न गति से बहती हैं, दिव्य बनस्पति भी रोगों को नीचे की गति से भगा देती है, इसी प्रकार सभी शत्रु नीचे होकर झुके रहें। २. भेड़िया, चोर, सिंह आदि अन्य हिंसक, आततताई दूर से भाग जावें। ३. बाघ की आँखें, मुख, दांत और उसकी बीस नाखूनों को हम नष्ट कर देते हैं। ४. तीक्ष्ण दांतों वालों, बाघादि, सर्पादि, भेड़िया, जरक, स्यार, चौर, लुटेरों, वधिकों, आततताइयों का हम नाश करते हैं। ५. आज जो चोर, हमलावर हम पर आक्रमण करे, उसका पूर्णतया नाश हो जाय, यदि वह बच भी जावे तो, घबराकर अपने मार्ग भूल जावें, उन्हें शूरवीर अपने शस्त्रों विनष्ट करदें। ६. हिंसक पशुओं के दाँत तोड़ दिये गये, उसकी पसलियाँ तोड़ दीं जावें, तेरी भौंह नीचे नष्ट हो जावे और हिंसक पशु लेटता हुआ नीचे ही मरजावे। ७. जिसको भली भांति नियन्त्रित किया जा चुका है, उसको विशेष दवाब में न रक्खे, परन्तु विशेष नियन्त्रण में न रक्खा गया हो, उसको सुव्यवस्थित ढङ्ग से नियन्त्रण में रक्खो। इन्द्र और सोम और देवर्षि अथर्वा की यह अमोघ, दुष्ट दमन विधि है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये छः शत्रु हैं, वेद में ये भी पशु वर्णित हैं। (अ० वे० कां० ४।४-२२ तथा ऋग्वेद ७।१०४-२२) इन उपर्युक्त सभी पशुवृत्ति वालों को नष्ट करने, नियन्त्रित करने की विधि भी इस कां० ४ सू० ३ मन्त्र ७ में वर्णित है। ये रजोगुणी, तमोगुणी अन्नपान, मद्य-मांसादि से प्रकृष्टता से बढ़ते हैं। सतोगुणी पदार्थों, वृत्ति, व्यवहार और अन्नपान, भेषजादि से नष्ट होते हैं।

इस सूक्त से खदिर कत्था की कीलों की प्राणप्रतिष्ठाः करे और अभिमन्त्रित करें। १—गोचर भूमि, गौशाला गोविहरण वीथि में उससे लिखें, कीलें गाढ़ दें। तब गौओं को जाने दें। २ इसी से पानी के घट को अभिमन्त्रित कर गौओं के मार्ग में डालें, छींटे भी दें, रज को अभिमन्त्रित कर आधी सीधे (दक्षिण हस्त) से छिड़कें। ३—इसी से इन्द्र को दूध भात ३ वार आहुतियाँ दें। कौ० ७।२ ऋचा ७ से अथर्वा महर्षि की तपश्चर्या तथा मन्त्र्य सामर्थ्य देवकृपा विस्पष्ट है अथर्वा का क्रियाकलाप कदापि लेश मात्र भी व्यर्थ नहीं होने का जैसा है वैसा निश्चय नियन्त्रण होगा। इस सूक्त द्वारा किया गया। उपरोक्त समस्त क्रियाकलाप अथर्वा महर्षि द्वारा दिव्य दृष्टि से दृष्ट और उन्हीं की प्रेरणा, सामर्थ्य से व्याघ्रादि का नियम न है, यह अन्यथा नहीं समझा जावे। इन्द्र, सोम इनके सरक्षक हैं।

कौ० कण्डिका ५१ सू० १—सू० ७ के अनुरूप पर्वत देवता के निमित्त एकान्त, अरण्य में पाक् यज्ञ करे, निम्न अग्रपृष्ठोक्तसूक्तों से होम करे सूक्त के अन्त में इस अर्थसूक्त जपे और होमाहुति दे।

ॐ हिमवते त्वा जुष्टं निर्वपामि, हिमवते त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, हिमवन्तं गच्छतु हविः स्वाहा ।

(यह पर्वतादि के निकट जप होम करें) यह ५।६ से ३ से "ब्रह्मजज्ञानम्" आहुतियाँ दें। पुनः "भवाशर्वो-मृडतं" (११।२) से चरुहोम करें, सूक्तान्त में—

ॐ भवाय जुष्टं निर्वयामि, भवाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, भवाशर्वादिभ्यो देवताभ्यो गच्छतु हविः स्वाहा ।

व्याघ्र, चौर, वृश्चिक, हस्ति, आरण्यक (रिक्ष-चरक) के भय, सर्प भय, यातुधानभयनिवृत्यर्थ, उपरोक्त सप्तपार्वता देवताओं के लिये प्रति दिशा में "येऽस्याम्" ३।२६-२७ से बलिदान करे, मध्य में ऊर्ध्व तथा अध, लोका-धिष्ठातृ देवताओं को ५-५ बलि दें।

ग्राम, घर, नगर की सर्प आदि विषैले जीवों से रक्षाविधि। पूर्वोक्त रक्षोघ्न, अनुवाक, रक्षोहण सूक्तों में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समस्त विधि के सन्दर्भ में ही प्राणियों को विषैले जन्तु सर्प, गोहरा, वृश्चिक यदि उस घर, ग्राम, नगर की सीमाओं में यदि काट भी लें तो उसके काटे से मृत्यु न हो सके या वे उस सीमा में काट ही न सकें। इस निमित्त "मानोदेवाः" (६।५६) "युक्तयोः" (३।२६-२७) "यस्तेसर्प" १२।१।४६) की विधि कौ० सू० (७।१) की क्रिया करें।

(१) सिकता, बालू अभिमन्त्रित कर उस घर, ग्राम, नगर जो भी हो उसके १० दिशाओं में छिड़के। (२) तृणमाला अभिमन्त्रित कर द्वार, ग्राम, गृह आदि के बाँध दें। (३) गौ का गोमय अभिमन्त्रित कर घर आदि के चारों ओर नीचे ऊपर छिड़के द्वारों में गाढ़ दे, उसी (जंगली शुष्क गोमय) पर होम करे। (तै० सं० ५।५-१०-१) में तथा इसके विष भैज्य प्रकरण में सर्पाहुति के मन्त्र देखें। (४) अपामार्ग की मञ्जरी तथा गुडवच को अभिमन्तित कर पूर्ववत् छिड़क दें। इस। प्रकार रक्षातन्त्र के उपरान्त विषैले सर्प, वृश्चिक, गोहरा आदि की दुर्भावनायें शान्त होती हैं, उनके मुंह वन्द हो जाते हैं। उनके विषैले दन्त वहीं चिपक जाते हैं, अपने विषैले कर्म नहीं करते।

व्याघ्र, चौर, वृक् जरक, सिंह, ओले, बिजली आदि के भय की शान्ति पशु आदि के चोर—व्याघ्र, भेड़िया, चीता, जरख, सिंह सर्प, गोदा (गोह), ओले, विजली आदि उत्पातों की शान्ति और घातक उपरोक्त तथा अन्य ज्ञात-अज्ञात समस्त विघ्नों को दूर करने के लिये; अथर्वा ऋषि की दैवी शक्ति, मन्त्रवल, तपस्याबल, पूर्ण समर्थ–तुरन्त फलप्रद स्वतःसिद्ध है। इस विधि का उल्लंघन करनेवालों पर बड़ा ही दयनीय–भयानक प्रभाव पड़ता है,कहीं किसी प्रकार शरण उन्हें नहीं मिलती है। मंत्र-ऋषि देवता तथा छन्द में पूर्व श्रद्धा एवं निष्ठा से करें।

"उदितस्त्रयो अक्रमन" [४।३] 'ब्रह्मजज्ञान प्रथम" [५।६] "भवाशवो"[४।२८] "भवाशर्वौमृडत"' [११।२] तथा "येऽअस्यांस्थ" [३।२६-२७] "दोषोगाय [६।१] पात नः" [६।३-४] की ५ ऋचा "अनुदन्द्रायः [६।५६] "यमो-मृत्यु"* [६।९३]* "विश्वजित" [६।१०७] से होम करें। प्रत्येक दिशा में बलिदान करें।

"हिमवते त्वा जुष्टं निर्वपामि, हिमवते त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, हिमवन्तं गच्छत् हवि, स्वाहा।"
इसको पर्वतों के निकट अर्थात् जंगल शिखर में होमाहुतियों के अन्त में बोलते हुए आहुतियाँ दें। "येऽस्यांस्थ" [३।२६-२७] से प्रतिदिशा में उपस्थान करें, बलिदान करें। "भवासर्वादिभ्यो देवताभ्यो निर्बाधंकृत्वा वृहद्भाण्डके श्रपणंम् । एते सप्तपर्वत देवताः। यहाँ पर्वत देवता को होमाहुति दें। सर्प, वृश्चिक आदि सरकने वाले जीवों के नियंत्रण के लिये घर खेत आदि में वालू अभिमन्त्रित कर छिड़कें। [३।२६-२७] से ही आम्र, अपामार्ग, शमी आदि की माला, घरों, ग्रामों के द्वारों में बांधें। इन्हीं २ ऋचाओं से जगल के सूखे गोमय को अभिमन्त्रित कर घर में छिड़कें, द्वार में गाड़ दें। अपामार्ग की मञ्जरी, गुड, बच को भी अभिमन्त्रित कर छिड़कें, गाड़े। *यह कर्म '३।२६-२७ तथा "मानोदेवाः (६।५६) "उदितस्त्रयो" [४।३] से व्याघ्र-चोर आदि के शमनार्थ कत्था, गूलर, लोहे की कीलें [८।८] वालिश्तः अभिमन्त्रित कर पशुओं को निकलने-भ्रमण के स्थान में गाड़ दें। इसीसे जल के घट को अभिमन्त्रित कर—गोचर भूमि व मार्ग में डालें। [धार दे—जर्घ्य दे] मार्ग की रज को अभिमन्त्रित कर आधी को दक्षिण हाथ से उसी स्थान में छिड़कें। उपरोक्त विधि से इन्द्र को आहुति दे। रौद्रगण से पुरोडाश गौओं को यजमान दे और स्वयं खाये भी। वलि ५ दें। इससे इन्द्रवज्र, यम का दण्ड, रुद्रदेवता का त्रिशूल रक्षा करते हैं। और उपरोक्त क्रियाकलाप-कीलादि से रक्षाकर्म अथर्व महर्षि की उपरोक्त सामर्थ्य के बल से कभी भी झूठा नहीं होता और तत्काल सभी दुष्ट प्रकृति वाले अनिष्ट चिन्तन करने वालों का शमन कर्त्ता है। (कां० ७ सू० ११) खेती, पशु, मनुष्यों को हानि करनेवाले कीटाणुओं, टिड्डी. पतङ्ग, चैंपा, रतुआ, मशक, दश, कातर, कानसराई आदि आदि से रक्षा के लिये "ओते मे द्यावा पृथिवी" (५।२३) से करीर वृक्ष की जड़ को अभिमन्त्रित कर बांधे या गाढ़े। इसी सूत्र से गौ के बालों से करीर की लकड़ी को लपेटे-सूक्त को जपे तब पत्थर से तोड़े और इसी सूक्त से अग्नि से तपाये। और सूक्त को जपते हुये ही अग्नि में छोड़ दें। इसी सूक्त से ग्राम के चौरास्ताओ की मिट्टी ले अभिमन्त्रित करे और दक्षिण (सीधे) हाथ से दक्षिण को मुंह करके धूल को छिड़के। इसीसे मिट्टी को अभिमन्त्रित कर-हाथों से मलकर कृमियों के ऊपर छिड़कें। ग्रन्थ के अध्याय ३ रौद्रगण के साथ की विधि देखें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[कां० ६ सू० ५६] 'हपैभ्यो रक्षणम्' शान्तातिः । १ विश्वेदेवाः, २-३ रुद्रः । १ उष्णिग्गर्भापथ्यापङ्क्तिः, २ अनुष्टुप्, ३ निचृत् ।

मा नो॑ दे॒वा अहि॑र्वधी॒त्सतो॑कान्त्स॒हपू॑रुषान् ।

संय॑तं॒ न वि ष्प॑रद्व्यात्तं॒ न सं य॑मन्न॒मो॑ देवज॒नेभ्यः॑ ॥१

नमो॑ऽस्त्वसि॒ताय॒ नम॒स्तिर॑श्चिराजये । स्व॒जाय॑ ब॒भ्रवे॒ नम॒ो नमो॑ देवज॒नेभ्यः॑ ॥२

सं ते॑ हन्मि द॒ता द॒तः सम्ब॑ ते॒ हन्वा॒ सन॑ । सं ते॑ जि॒ह्वया॑ जि॒ह्वां सम्वा॒स्नाहँ॑ आ॒स्य॑ऽम्॥३

कां० ६ सू० ५६ 'मानोदेवा' :—हे देवो ! सर्प, सन्तानों और पुरुषों सहित हमें न डसें। समस्त देवों से प्रार्थना है, बन्ध हुआ (कीला गया) नहीं खुल सकता है, खुला हुआ बन्द नहीं हो सकता है। (२) काले सर्प को नमस्कार, तिरछी रेखाओ के, लिपटने वाले, श्वेत वर्ण के सर्पों तथा दिव्य देवजनो को प्रणाम है। (३) हे सर्प ! मैं तेरे दांत को दांत से तोड़ता हूं, तेरी ठोढ़ी को ठोढ़ी से सटा देता हूं, तेरी जिह्वा को जिह्वा से तोड़ता हूं और तेरे मुख को मुख से फाड़ता हूं। इस प्रकार कील दें और झाड़ा दें।

कां० ६ सू० १०७ शान्तातिः । विश्वजित् । अनुष्टुप् ।

कां० ३ सू० १३-७ भृगुः । वरुणः, सिन्धुः, आपः । अनुष्टुप् । ये दोनों मन्त्र वृच्छान्तिगण में पढ़ें।

"ब्रह्मजज्ञानं" (५।६) रोगी मरेगा या जियेगा। इसके ज्ञानार्थ रोगी के सिर से पैर तक रस्सी नाप लें, अभिमन्त्रित कर अग्नि में अङ्गारों पर रख दें--अङ्गारों पर रक्खी तीनों ऊपर को उठ जावें तो जीवित समझें—अन्यथा मरण (कौ० २।६)। स्त्री के प्रसव से उत्पन्न या सूति का रोग शमनार्थ भात अभिमन्त्रित कर दें। सक्तु मन्थ पिलायें सुर्योपस्थान करें। (कौ० ४।४) संग्राम में जय-विजय के ज्ञानानार्थ—३ रस्सियों को अभिमन्त्रित करें, १ आत्मसेना, २ मृत्यु, ३ का नाम परसेना रक्खें, उन्हें तप्त अङ्गारों पर रख दें, बीच में मृत्यु वाली को रक्खें, जिस पर मृत्यु वाली ऊपर आ जावे-पराजय, जो मृत्यु वाली के ऊपर पड़ जाय उसकी जय, जो सन्मुख चली जावे उसकी भी जय समझें। यह सलिलगण कार्य होम आदि में भी है। कौ० ३।१

कां० ५ सू० १४ अथर्वा । सोमारुद्रौ । १ ब्रह्म २ कर्माणि, ३-४ रुद्रगण, ५।८ सोमारुद्रौ, ९ हेतिः, १०-१४ सर्वात्मारुद्रः । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती, ४ अनुष्टुबुष्णिक्त्रिष्टुब्गर्भापञ्च पदा जगती, ५-७ त्रिपदाविराण्नाम गायत्री, ८ एकावसाना दिपदार्च्यनुष्टुप्, १० प्रस्तार पङ्क्तिः, ११-१३ पङ्क्ति, १४ स्वराट् पङ्क्तिः ।

ब्रह्म॑ जज्ञा॒नं प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द्वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒न आ॑वः ।

स बु॒ध्न्या॑ऽ उप॒मा अ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ वि वः॑ ॥१

अना॑प्ता॒ ये वः॑ प्रथ॒मा यानि॒ कर्मा॑णि चक्रि॒रे । वी॒रान्नो॒ अत्र॒ मा द॑भ॒न्तद्वः॑ ए॒तत्पु॒रो द॑धे ॥२

स॒हस्र॑धार ए॒व ते सम॑स्वरन्दि॒वो नाके॒ मधु॑जिह्वा अस॒श्चतः॑ ।

तस्य॒ स्पशो॒ न नि मि॑षन्ति॒ भूर्ण॑यः प॒देप॑दे पा॒शिनः॑ सन्ति॒ सेत॑वे ॥३

पर्यू॒ षु प्र ध॑न्वा॒ वाज॑सातये॒ परि॑ वृ॒त्राणि॑ स॒क्षणिः॑ ।

द्वि॒षस्तद॒ध्य॑र्ण॒वेने॑यसे सनि॒स्र॒सो नामा॑सि त्रयोद॒शो मास॒ इन्द्र॑स्य गृ॒हः ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न्वै३तेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५
अवै३तेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥६
अपै३तेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥७
मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥८
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु ये३स्माँ अभ्यघायन्ति ॥९
यो३स्माँश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥१०
इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥११
इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१२
इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१३
इन्द्रस्य वरूथमसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१४

कां०५ सू०६ "ब्रह्मजज्ञानम्":—सर्व प्रथम प्रकट हुए ब्रह्म को, उसके प्रकाशवान ज्ञान से ज्ञानी (योगी) ही जानता है। वही ब्रह्मज्ञाता, उपमा देने योग्य, आकाश में विचरण शील सूर्यादि ग्रहों को देखकर असत् और सत् के मूल उत्पत्ति स्थान के विषय में विशद वर्णन करता है। २–पुराकाल में ज्ञानियों ने जो श्लाध्य कर्म किये थे, उनका स्मरण, और अनुकरण कर, वैसे ही कर्म तुम करो और जिससे तुम्हारी सन्ततियों और वीरों को कष्ट न हो, उनकी रक्षा हो, यह तुम्हारे लिये निर्देश है। ३–द्यु लोक के सहस्त्रों ज्ञानामृत धाराओं से परिपूर्ण "स्वर्गधाम" में रहने वाले, शान्त, मृदु-स्वभाव वाले योगी (ज्ञानी) लोग एक स्वर से प्रेरणा करते हैं कि "उस प्रभु के दूत कदापि नेत्र वन्द नहीं करते, सदा निरन्तर अपने नेत्र खोल कर हाथ में बन्धनपाश लेकर, पापिष्ठों को बांधने के लिए पग पग पर तत्पर रहते है। ४–जो अन्न दानादि क्षेत्रों के परोपकार कार्यों में विघ्न करते हैं, उनको शत्रु पर आक्रमण के समान (युद्ध स्तरीय विधि से) भूमि पर आक्रमण किया जाता है, उसी प्रकार समुद्र की ओर से तू भी आक्रमण कर। तेरहवां (पुरुषोत्तम) मास नारायण स्वरूप ही है। ५–इस मार्ग से ही प्रत्येक को सिद्धि सुलभ सम्भव है। परोपकारार्थ, आत्म सर्वस्वार्पण ही सिद्धि का मूल है। "यह ज्ञानियों का मार्ग है" परन्तु क्षात्र बल सम्पन्न, उत्तम शस्त्रास्त्रधारी, मातृभूमि के प्रेमी उद्भट वीर अपने निष्कामरक्षाभाव कर्म से सबको सुखी करे। ६–इसी विधि से प्रत्येक सिद्धि प्राप्त कर सकता है सवतो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावेन त्याग ही सिद्धि का मूल मन्त्र है। कुशल राष्ट्र प्रेमी शस्त्रास्त्रधारी वीर यहाँ सबको सुखी करें। इसी रीति से सिद्धि प्राप्त होती है, स्वस्वत्वनिष्टति पूर्वक सर्वतो भावेन परस्वत्वस्थापन, आत्मसमर्पण समस्त सिद्धिओं का मौलिक मार्ग है। निस्पृह राष्ट्र प्रेमी शस्त्रास्त्रधारी वीर सबको सुखी करें। ८—हम सबको समस्त जघन्य पापों से छुड़ाओ। प्रशस्त श्रेयस्कर्म यज्ञ करो और अजर अमरत्व प्राप्त कराओ। ९—नेत्र, मन, ज्ञान और तप से सार्वभौम, अप्रतिहत शस्त्रास्त्र है। जो अपने पशु बल से, औरों को सताते, कष्ट देते हैं, उन दुष्टों को अपने उक्त आयुधों से शस्त्र हीन कर। १०—जो कोई भी पापिष्ठ, आतनाई चक्षु, मन, चित्त, अथवा संकल्प से, दूसरों को परतन्त्र बनाने की कुचेष्टायें करें, उन सभी को तू अपने उक्त (दिव्य) शस्त्रों से शस्त्र हीनकर। इस मार्ग में, आत्म सर्वस्व, समर्पण ही बन्धन मुक्त होने का सर्वोच्च मार्ग है। ११—मैं सर्व प्रकार की गति से संयुक्त, सब पुरुषार्थ शक्तिपुक्त, मर्व आत्म बलयुक्त, समस्त शारीरिक शक्तियों से युक्त, जो इस लोक और परलोक लोकातन्रों में अपना कहाये जाने वाला है, उस सबके साथ, उस तुझ प्रभु की शरण में आकर, तुझ विश्वात्मा में प्रविष्ट होता हूँ। १२—तू ही महाप्रभु का आधार स्थान है। मैं सर्वगति, पुरुषार्थ शक्ति, सभी आत्मिक बल और शारीरिक बलों से युक्त तथा और भी जो कुछ मेरा अपना है उस सबके साथ, तुझे प्राप्त होकर, तुझ प्रभु में आश्रय लेता हूँ। १३—तू इन्द्र (महाप्रभु) का रक्षा कवच, ब्रह्म कवच, ज्ञानकवच है मैं सर्वगति, पौरुष, आत्मिक शारीरिक बल तथा आत्म सर्वस्व के साथ तेरी शरण में आकर तेरे ही एकमात्र तेरे ही आश्रय से रहता हूँ। १४—पू परमात्मा की रक्षक ढाल है, मैं समस्त गतिशीलता, सम्पन्नता, पौरुषेय, आत्मीय, आध्यात्मिक, शारीरिक बलों और आत्म सर्वस्व के साथ, अनन्य भाव से, अन्तरात्मा के दृढ़ संकल्प के साथ, सर्वतो भावेन आपकी शरण में आकर तेरे ही निकटतम सानिध्य में, मैं निरन्तर रहता हूँ। वही सबका सत्त्वाधार और निरन्तर सुरक्षित सुखद स्थान शरणापन्न स्थान है। यह ज्ञानकवच, ब्रह्मकवच, रक्षाकवच और ब्रह्मविद्या में अनिवार्यतः हितप्रद, विचारणीय, अनुकरणीय है।

"भवाशर्वौ" (११।२) इससे—भौमग्रह—आकाशी समस्त उत्पात, मुँह पर या सन्मुख, मांस आदि गिरने आदि आदि की विविध, विचित्र, अघटित, घटना घटने सम्बन्धित उत्पात, रुद्र, भूत, प्रेत, राक्षस, लोकपाल, क्षेत्रपाल कृत्या, अभिचार जनित उपद्रव, तथा रुद्रज्वरादि भयङ्कर पीड़ा, महामारी, उल्का दर्शनादिबिघ्न, तथा पशु, कृषि मानवों को क्लेश पहुँचाने वाली अन्य समस्त बाधाओं की शान्ति के हेतु (स्वस्त्ययन) गौ के दुग्ध में बना चरु, ३ भागों मेंबांट, ११ से पृथक २ तीन वार होम करें। सभी प्रकार की शान्ति, समस्त कामनाओं की सिद्धि हेतु, इस अर्थ सूक्त के साथ "ये अग्नय" (३।२१) "नमोदेवबधेभ्यः" (६।१३) "प्राणाय नमः" (११।६) से लक्ष्य होम करें। इसीसे अभिमन्त्रित लौह शलाका गर्म कर जल में बुझा, पुनः अभिमन्त्रित करें, पिलायें. वाष्प भी दें तो सभी ज्वर शान्त हो जाते हैं। (शतपथ ब्राह्मण—६।१।१।१३) की श्रुतिः के अनुसार ये अष्ट मूर्तिदेव हैं।

॥ शर्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवं अथेश्वरम्। महादेवञ्चभीमञ्च ॥

इनकी प्रार्थना उपस्थान-होम से समस्त विघ्नशमन होते।

कां० ६।१ "दोषोगाय" अथर्वा ऋषिः। सविता देवता। उष्णिक्, १ त्रिपदापिप्पीलिका मध्या साम्नी जगती, २, ३पिप्पीलिकामध्या पुर उष्णिक्। छन्दासि आथर्वणस्तवने. नवशाला, नगर, ग्रामादि स्वस्त्ययने, सर्वलोकाधि पत्याये बाप्तये, स्तवने, उपस्थाने, होमे विनियोगः। मन्त्र वृहच्छान्ति गण प्रकरण में पढ़ें।

"पार्श्वं न इन्द्रा" कां० ६।३;४ ऋचा १ से ५ क्रमशः अथर्वा ऋषिः। इन्द्रिापूषणौ, अदिति मरुतः अपानपात, सिन्धवः, विष्णुः द्यौ २—द्यावा, पृथिवी, ग्रावा, सोमः, सरस्वती, अग्निः, ३—अश्विनौ, उषासानक्ता, अपानपात, त्वष्टा। ४—त्वष्टा, पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति, अदितिः, ५—अशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमाअदिति-मरुतः; ६—अश्विनौ, द्यौपिता देवते। जगती। १ पथ्यावृहती। ५—विस्तार पंक्तिः, ६—त्रिपदा विराड्गायत्री—छन्दासि, आत्मगोपने स्वस्त्ययने, स्तवने, उपस्थाने होमे—बिनियोगः। मन्त्र स्वास्त्ययनगण में पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ६ सू. ४ [१-३] अथर्वा । १ त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः; २ अंशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदितिः, मरुतः, ३ अश्विनौ, द्यौष्पिता । पथ्याबृहती, २ प्रस्तारपङ्क्तिः, ३ त्रिपदा विराड्गायत्री ।

त्वष्टा॑ मे॒ दैव्यं॒ वचः॑ प॒र्जन्यो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ।
पु॒त्रैर्भ्रातृ॑भि॒रदि॑ति॒र्नु पा॑तु नो दु॒ष्टरं॒ त्राय॑माणं॒ सहः॑ ॥१
अं॒शो भग॒ो वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मादि॑ति॒ः पान्तु॑ म॒रुतः॑ ।
अप॒ तस्य॒ द्वेषो॑ गमेदभि॒ह्रुतो॑ याव॒यच्छत्रु॒मन्ति॑तम् ॥२
धि॒ये सम॑श्विना॒ प्राव॑तं न उरु॒ष्या ण॑ उरु॒ज्मन्नप्र॑युच्छन् । द्यौ३ष्पित॑र्या॒वयं॑ दु॒च्छुना॒ या ॥३

कां० ६।५९ ऋ० १-३—अथर्वा ऋषिः । रुद्रः, अरुन्धती. औषधीः । देवते । अनुष्टुप् छन्दः । अथर्वोत्थापने विघ्न शमने, स्वस्त्ययने—वृहच्छान्तिक—जपे, उपस्थाने अभिवर्षणावसेचने, होमे, विनियोगः ।

*"वयः" एक हायनप्रभृत्या पञ्चहायनेभ्यो वयांसि । इति आपस्तम्भः ।

अ॒न॒डुद्भ्य॒स्त्वं प्र॑थ॒मं धे॒नुभ्य॒स्त्वम॑रुन्धति । अधे॑नवे॒ वय॑से॒ शर्म॑ यच्छ॒ चतु॑ष्पदे ॥१
शर्म॑ यच्छ॒त्वोष॑धिः स॒ह दे॒वीर॑रुन्ध॒ती । कर॒त् पय॑स्वन्तं गो॒ष्ठम॑य॒क्ष्माँ उ॒त पूरु॑षान् ।२
वि॒श्वरू॑पां सु॒भगा॑म॒च्छाव॑दामि जीव॒लाम् । सा नो॑ रु॒द्रस्या॒स्तां हे॒तिं दू॒रं न॑यतु॒ गोभ्यः॑ ॥३

गौ, बैल, अश्व आदि चतुष्पाद, उनके १ से ५ वर्ष के बच्चों, पुरुष, उनके पुत्रादि के समस्त यक्ष्म आदि रोगों के निराकरणार्थ, शान्ति, पुष्टि—दुग्ध की बहुलता तथा सन्तति हेतु— सहदेवी—औषधि की इससे पूजा प्रार्थना कर जड़ युक्त लावें । जल में मिला अभिमन्त्रित कर छींटे दें, स्नान पान करायें । समस्त पशु रोग रहित पुष्ट होते हैं ।

कां० ६ सू० ५९ "अनड्द्भ्यस्त्वं" हे अरुन्धती ! (सहदेवी) औषधि ! तू बैलो, बछड़ों, गौओं तथा समस्त चौपायों, गौ से भिन्न पशुओ, तथा पक्षियों को प्राथमिकता से सुखी कर । २—हे अरुन्धती ! (सहदेवी) नामक औषधि, तू सब अन्य औषधियों के साथ कल्याण प्रद हो गौशाला को बहु दुग्ध, पशु बहुलता युक्त, नीरोग और मनुष्यों को भी सभी प्राणियों को स्वस्थ, नीरोग बनाती है । ३—नाना रंगरूप वाली. गुण, नामों वाली, सौभाग्य प्रदायिनी (संजीवन प्रदायिनी प्रशंसनीय है, उन सभी की वन्दना करते हैं । रुद्र के फैलाये रोगादि शस्त्र को, हमारे पशुओं से गोष्ठों, क्षेत्रों, घरों, ग्रामों, से दूर ले जावें, उनको पूर्ण स्वस्थ, नीरोग बनायें ।

"आयने" (६।१०६) इससे अग्नि न लगे इस भय से रक्षार्थ, घर के बीच गड्ढा कर पानी भर दें अभिमन्त्रित करें । और कांस घास अभिमन्त्रित कर घर के ऊपर बिखेरें । शापादि कोशादि देने वाले दुष्ट को गर्म उड़द के पदार्थ तैल अभिमन्त्रित कर दें । तथा अग्नि से जले हुए को इन तीनों ऋचाओं से अभिमन्त्रित जल से छिड़कें । (कौ० ७।३) अग्निदग्ध का उपचार आगे पढ़ें ।

कां० ६ सू० १०६—प्रमोचनः । दूर्वाशाला । अनुष्टुप ।

आय॑ने ते प॒राय॑णे॒ दूर्वा॑ रोहतु पु॒ष्पिणीः॑ । उत्सो॑ वा॒ तत्र॒ जाय॑तां ह्र॒दो वा॑ पु॒ण्डरी॑कवान् ॥१
अ॒पामि॒दं न्यय॑नं समु॒द्रस्य॑ नि॒वेश॑नम् । मध्ये॑ ह्र॒दस्य॑ नो गृहाः॒ प॑रा॒चीना॒ मुखा॑ कृधि ॥२
हि॒मस्य॑ त्वा ज॒रायु॑णा॒ शाले॒ परि॑ व्ययामसि । शी॒तह्र॑दा हि नो॒ भुवो॒ऽग्निष्कृ॑णोतु भेष॒जम् ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ६ सू० "आयनेते" :—तेरे घर के आगे और पीछे, फूलों से युक्तदूर्वा, घास, उगे; और वहाँ एक हौद हो, अथवा कमलों का जलाशय बनायें। यह जलों का प्रवाह स्थान होवे; समुद्र के (जल) के समीप स्थान हो, तालाब के निकट हमारे घर हों, घर के द्वार, परस्पर विरुद्ध दिशा में कर। ३—हे शाले ! तुझे शीत के आवरण से घेरते हैं। हमारे लिये शीतल जल वाले तालाबों की बहुतायत हो और हमारे लिये अग्नि भी निवारणार्थं हो।

कृषि एवं समस्त धान्यों की मूषक-पतङ्ग, शलभ-कीट, टिट्टभी, हरिण-घूस, सेह, गोह आदि से रक्षार्थ—स्वस्त्ययनार्थ संलग्न "हतं तदम्" (६।५०) से लोह युक्त शीषा से संचष्ट विथि का विनियोग करें।

कां० ६ सू० ५० अथर्वा। (अभयकामः) अश्विनौ। १ विराड्जगती; २-३ पथ्यापङ्क्तिः।

हृतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणतं धान्याऽय ॥१
तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित ॥२
तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यऽद्वरा ये के च स्थ व्यऽद्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि ॥३

कां० ६ सू० ५० "हतंनर्द" :—हे अश्विदेवो ! धान्यनाशक समस्त रतुआ, गेरुई, कण्डवा, चेंपा टिड्डी, शुक, चूहे, खरगोश आदि पंखों वाले, चूहे आदि को मारो। उनके शिर काटो, उनकी पीठ तोड़ दो। वे चूहे आदि जौ, गेंहू आदि कृषि को कभी न खायें, उनका मुंह ही वन्द हो जाये, और धान्य को निर्भयता प्रदान करो। २—हे हिंसक ! हे शलभ ! हे वध्य और हे जघन्य ! जैसे ब्रह्मा अपवित्र हवि को त्याग देता है, उसी प्रकार इन जौ आदि को न खाते हुए, और न नष्ट करते हुए, तुम दूर हट जाओ, अर्थात् धान्य को छोड़ दो। ३—हे महाहिंसको ! हे शलभो ! हे तीक्ष्ण-दाड़ों वालो ! मेरा उद्घोस सुनो ! जो जङ्गली और वुरी भांति से बहुत खाने वाले, नष्ट करने वाले हैं।

कौशिक सूत्र, वैतान सूत्र विधियों से, इन सबको प्रतिबन्धित करें।

"योगिरिष्वजायत" (५।४) राजयक्ष्मा कुष्ठ आदि रोगों के शमनार्थं (कुष्ठ) औषधि युक्त 'नवनीत' अभिमन्त्रित कर रोगी पशु के शरीर उलटा (प्रतिलोम) में मालिश करें। कौ० ४।४। राजयक्ष्मादि निवारण में पढ़ें।

कां. ५।४[१-१] भृग्वङ्गिराः। कुष्ठो, यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप्, ५ मुरिक, ६ गायत्री, १० उष्णिग्गर्भा निवृत्त।

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः। कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥१
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि। धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥२
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥३
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि। तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥४
हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्ययां।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ।।६
देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ।।७
उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् । तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ।।८
उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता । यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ।।९
शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वोई रपः । कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ।।१०

कां० ५ सू० ४ "योगिरिष्वजायथा:"—कुष्ठ (कूठ) नामक औषधिः शिर के रोग, नेत्ररोग, शरीर के अन्य रोग ज्वर, क्षय, श्वेत कुष्ठ अन्य सभी कुष्ठ परिवार, का शमन करती है, अध्याय १ में पढ़ें। (भा० प्र० पू० १) में देखें, 'कुष्ठमुष्ण कटु स्वादु, शुक्लंतिक्तं लघु । हन्ति वातास्रवीं सर्प कास कुष्ठ मरुत्कफान् ।। विष कण्डु खर्जू दद्रुहृत कान्ति करश्च । (रा० नि० व० १०) इसका क्वाथ भी पिया जाता हैं जो अन्तः शुद्धिकारक है । इसके घृत, तैलादि से कुष्ठ जैसे असाध्य बाह्य रोग शमन होते हैं । हे रोग निवारण कुष्ठ औषधे ! तू जो पहाड़ों पर उत्पन्न होती है, जो सब औषधियों में बल संचार करती है, वह तू रोग शमनार्थ हमारी प्रार्थना के साथ आ । (२) गरुड़ के उत्पत्ति स्थान पहाड़ों में उत्पन्न होने वाली इस औषधि को बड़े द्रव्य व्ययकर प्राप्तकर पाते हैं । (३) यहाँ से तीसरे उच्च द्यौलोक में, जहाँ देवों का आश्रय 'अश्वत्थ' है, वहाँ अमृत के दर्शन होने के तुल्य, देवगण कुष्ठ को प्राप्त करते हैं । (४) स्वर्णिम, तेजस्वी जहाँ आकाश नौका चलती हैं, वहाँ अमृत पुष्प तुल्य "कुष्ठ" औषधि देव प्राप्त करते हैं । (५) आकाश नौका के मार्ग, पतवार भी स्वर्ण की थी, जिनके द्वारा लादकर कुष्ट औषधि यहाँ लाई गई थी । (६) हे कुष्ठ औषधे ! मेरे इस पुरुष को उठा, उसे सब प्रकार से स्वस्थ कर दे, और मेरे इस पुरुष को निरोग कर । हे कुष्ठ ! तू देवों से उत्पन्न, सोम के तुल्य हितकारक प्राण, अपान, व्यान, चक्षु आदि के लिए हितकारी है । मेरे इस पुरुष को सुखी कर । (८) वह तू हिमालय पर उत्पन्न होकर मानव की प्रगति को उच्च शिखर पर ले जाता हैं । इसा कारण तेरी विविध प्रकार सराहना होती हैं । (९) हे कुष्ठ तू, तेरा नाम; तेरा उत्पादक और रक्षक उत्तम हैं । सभी क्षय रोगों को नष्ट कर; ओर ज्वर को निरस्त कर । (१०) शिर के समस्त रोग, नेत्रों की दृष्टि दौर्बल्यता, शारीरिक विविध दोष, इन सबको दिव्य बल प्रदान कर आरोग्य बनाता हैं । यह कुष्ठ का शरीर हिमाञ्चल, द्रोणगिरि पर उपलब्ध होता है । यह प्राणीमात्र को स्वास्थ्यप्रद हैं । क्षय, कुष्ठादि सभी असाध्य व्याधि निवारक हैं ।

"वायुरेना:" (६।१४१) —वायु देव पशुओं के रक्षक हैं (तै० ब्रा० ३।२।१।३) "वायवस्थेत्याह" वायुर्हि तेषां रक्षिता । तथा च "वायुर्वा अन्तरिक्ष स्याध्यक्षाः । अन्तरिक्ष देवत्याः खलु वै पशवः । वायव ए वैनान् परिददाति" और 'त्वष्टा' देवता पशुओं की अभिवृद्धि करने वाले हैं । श्रुतिः (तै० सं० १।७।४।५) त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूप-कृत्" 'रुद्र' पशुओं के मुख-पैर आदि के रोगों की चिकित्सा के अधिकारी हैं । अतः चित्रा कर्म में इस ऋचा (१) से दशयज्ञिय वृक्ष की टहनियां पाँनी के घट में डालें, अभिमन्त्रित रात्रि में करें, उपरोक्त वायु, त्वष्टा, रुद्र देवता का होम करें । प्रातः टहनियों से पशुओं को छींटे दें, तथा पशुओं की धार दें ।

ऋचा २ "लोहितेन स्वाधितिना" से गूलर की शलाका गर्म करें । स्त्री पुरुष संज्ञक भेद से उनके कानों या नथनों से छेद करें । इससे पुष्ट तथा उनका वन्ध्यात्व दोष, नपुंसकत्व दोष दूर करें । तो उनके वंशों की पुष्टि व वृद्धि हो । उनके छेद करने से निकले रक्तादि को ईख या कांस के पत्तों से ही साफ करें । उन्हें दही, मधु, घी, पानी में मिला, अभिमन्त्रित कर पिलायें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ६ सू० १४१ विश्वामित्रः । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् । इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥१
लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥२
यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत । एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥३

कां० ६ सू६ १४१ "वायुरेनाः"—वायु इन गौ आदि पशुओं को इकट्ठा करें, त्वष्टा, स्वस्थ एवं पुष्ट करे, इन्द्र इनको आह्वान के लिए चिह्नित करें और इनकी वृद्धि के लिये चिकित्सा करे । २—लोह शलाका से दोनों कानों के ऊपर चिह्नित करें । अश्वि देव चिह्न करें, उससे वंश वृद्धि, पुष्टि और सुरक्षा हो । ३ – इस प्रकार देवों और असुरों ने भी चिह्न किये थे, और श्रेष्ठ मानव भी करते हैं । हे अश्विनो ! इसी प्रकार सहस्रों प्रकार की अन्य पुष्टि, रक्षा, स्वस्थता, नीरोगता के लिये चिह्नित करें । ये चिह्न कानों पर ही कल्याण प्रद होते हैं । यह वैदिक परम्परा सर्वत्र आज भी प्रचलित हैं । मनुष्यों में भी कर्णच्छेदन संस्कार इसी कारण होता है ।

कृषि स्वस्त्ययन—अभिवर्द्धन, अधिक उत्पादन, रतुआ, चैंपा, कण्डुआ, (गेरुई) आदि के निवारणार्थ—क्षेत्र में उत्पन्न—यव—आदि की प्रत्येक वंश की भिन्न भिन्न तीन २ शाखाएें लें उनके क्रमशः (१) अलसाला (२) नीलागलसाला (३) शालाञ्जाला—नाम रक्खें । निम्न ऋचा से अभिमन्त्रित करें, पूजा कर इसीको जपते हुये उपरोक्त तीनों ही को एकत्रित कर उन्हीं, उन्हीं क्षेत्रों के बीच गाड़ दें । कौ० ७१२ कां० ६ सू० १६ ऋ० ४ शौनकः ऋषिः । चन्द्रमाः; मन्त्रोक्ताः देवते । त्रिपदा प्रतिष्ठा-छन्द, । कृषि-विकारोपशमने रक्षोहणे- तन्त्रे विनियोगः ।

अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा । नीलागलसाला ॥४

अन्न वृद्धि—अन्न रक्षा के हेतु संलग्न अ० कां० १८।४।५३; ५४; ५२; १८।४-३७; ५७; १६; ३६ वी ऋचा तथा कां० १८।३-७२ वीं ऋचा तथा अनुष्ठान्यृचाओ से; ढाक आदि शान्ति वृक्षों की समिधाओं; से इन्द्र देव का होम करें ।

१।८९ अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः । ३६ भुरिक्, १६ त्रिपदा भुरिङ्महाबृहती, ४३ उपरिष्टाद्बृहती, ५३ पुरोविराट्सतःपंक्तिः, ७२ आसुरीपक्तिः, त्रिष्टुप् । छन्दापि उपर्युक्त प्रयोजने विनियोगः ।

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इहस्थ ॥१६
सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥३६
इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥३७
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥४३
एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं१ सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥५२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥५३
ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥५४
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैऽतु मधुधारा व्युन्दती ॥५७
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥७१॥ सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७२

कां. १८ सू. ३ मं. ७२ अथर्वा । यमः अनुष्टुप् ।

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये । तेभ्यो घृतस्य कुल्यैऽतु शतधारा व्युन्दती ॥७२

कां० ३ सू० २४ भृगु । वनस्पतिः, प्रजापतिः । अनुष्टुप्, २–निवृत्पथ्यापङ्क्तिः । छन्दांसि धान्यसंरक्षणे, सम्बर्द्धने, जपे, होमे, उपस्थाने च विनियोगः ।

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः । अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ॥१
वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यंऽ बहु ।
संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे योयो अयज्वनो गृहे ॥२
इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः । वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥३
उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् । एवास्माकेदं धान्यंऽ सहस्रधारमक्षितम् ॥४
शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर । कृतस्य कार्यऽस्य चेह स्फातिं समावह ॥५
तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ॥६
उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते । ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥७

कां० ३ सू० २४ "पयस्वतीरोषधयः" धान्यादि सभी औषधियाँ रस वाली हैं; मेरा वक्तव्य भी सारवान है। अतः रसवान औषधियों का हजारों प्रकार से, मैं भरण पोषण करता हूँ। २—जिस प्रकार उत्तम (श्रेष्ठ प्रचुर) धान्यों को सरस उत्पन्न किया है। उसकी रीति भी मैं जानता हूँ। ३—जो यज्ञ द्रोहियों के घरों में है, उसको संग्रह करके लाने वाला जो देव है। हम उसी का यजन, स्तवन, उपस्थान करते हैं। ४—पांचो दिशाओं में रहने वाली ये जो पाँच मनुष्यों की जातियाँ हैं, वे उत्तम समृद्धि उसी भांति से करें, जिस भाँति उत्तम वृष्टि होने पर, नदियाँ सब कुछ भर लातीं हैं। ५—सैकड़ों और हजारों धाराओं वाले अक्षय झरने (जलस्रोत) या तडागादि, जैसे वृष्टि से भर जाते हैं, इसी प्रकार हमारा यह धान्य, हजारों स्रोतो (मार्गों) से अक्षय हो जावे। ६—हे सौ हाथों वाले मानवो ! सबको संग्रह कर ले आओ। हे हजारों हाथों वाले ! उसको फैला दो (विस्तृतकर) दानकर और किये हुए कार्य (उपकार) की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ वृद्धि कर। ७—पृथ्वी के धारण कर्त्ताओं की तीन मात्रायें और गृह पत्नियों की चार होती हैं। उनमें जो अत्यन्त समृद्धिशाली होते हैं, हम तुझे उससे संयुक्त कर, अधिक से अधिक समृद्ध करते हैं। ८—हे प्रजा पालक ! उठाकर लाने वाला, और एकत्रित करने वाला, ये दोनों प्रजा पालक के सहयोगी है, ये दोनों ही यहाँ इस स्थान पर समृद्ध हों और अत्यन्त अक्षय समृद्धशाली हों।

अथ व्याघ्र, चौर, वृश्चिकः, हस्ति, चरक, आरण्यक, रिक्षादि से पशु–गृह–ग्राम–नगर तथा क्षेत्रादि की रक्षा विधि। यह युद्ध काल में स्वसेना के उत्साह वर्द्धन–स्वस्त्ययनार्थ उपस्थान होम–जप की भी विधि है।

कां० ३ सूक्त २६–ऋचा १-६–अथर्वा ऋषिः। रुद्रः, दिशाः, १ साग्नयो हेतकः २ सकामा अविष्यवः ३ वैराजः, ४ सवाताः अविष्यन्तः, ५ सौषधिकानिलिम्पाः, ६ बृहस्पतियुत अवस्वन्तः, देवते। त्रिष्टुप्। २.५:६ जगती ३.४ भुरिक् १.३ पञ्चपदा विपरीत पादलक्ष्मा। छन्दांसि। स्वसैन्योत्साह वर्द्धने, स्वस्त्ययने, व्याघ्रादि, नखिनां, सर्पादि सर्पणशीलानां–यातुधानादिनां भयादवरक्षणे उपस्थाने वलिदाने, रक्षोहणे विनियोगः।

ये३ऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥१
ये३ऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यऽविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥२
ये३ऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥३
ये३ऽस्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥४
ये३ऽस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥५
ये३ऽस्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥६

कां० ३ सू० २६ "येऽस्यांस्थ" :—**(आग्नेयाव, अनुमन्त्रण)** इस पूर्व दिशा में जो आप पञ्चनाम वाले देव हो ! तुम्हारा "अग्निवाण" है। वे आप हमें सुखी करो, उपदेश करो, आपको वन्दना करते हैं; आपको हम आत्म समर्पण करते हैं। २–आप इस दक्षिण दिशा में, रक्षा करने की इच्छा वाले देव हो, उन आपका "काम" बाण है। वे आप हमें सुखी करो उपदेश करो, आपकी स्तुति कर आत्मसमर्पण करते हैं। ३—जो आप पश्चिम दिशा में विराज नाम के देव हो, आपका वारुणास्त्र हैं। वे आप हमें सुखी करो, आपकी प्रार्थना कर, आत्म समर्पण करते हैं। ४–जो आप उत्तर दिशाके 'बेधकर्त्ता' नामकदेव हो, उन आपका वायुवाण वायव्यास्त्र है। वे आप हमें सुखी करो, आपकी वन्दना है, आपको आत्म समर्पित है। ५—जो आप इस ध्रुव (पृथिवी) दिशा में "निलिम्प" नाम के देव हो, आपका "औषधि" वाण है। वे आप रक्षा करें आपकी स्तुति कर आत्म समर्पण है। ६—जो आप इस ऊर्ध्व (आकाश) दिशा के रक्षक नामदेव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो, उन आपका "ज्ञान" बाण है। वे आप हमें सुखी करो, उपदेश करो, उन आपकी वन्दना है, आत्म समर्पण करते हैं।

कां० ३ सू० २७ ऋ० १–६—अथर्वा ऋषिः। दिशाः, रुद्रः १ अग्निः असितः, आदित्याः, २ इन्द्रः, तिरश्चिराजी, पितरः, ३ वरुणः, पृदाकुः, अन्नं, ४ सोमः, स्वजः, अशनिः, ५ विष्णुः, कल्माषग्रीवो वीरुधः, ६ बृहस्पतिः श्वित्रं, वर्षम्—देवते। १-६ पञ्चपदा ककुम्मातीगर्भाऽष्टिः, (२ अत्यष्टिः, ५ भुरिक्) छन्दांसि उपर्युक्त विधौ विनियोगः। ये समस्त रक्षा कर्मों में विहित हैं।

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१
दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२
प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३
उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४
ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५
ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६

कां० ३. सू० २७ "प्राची दिगग्नि" उदय की दिशा का तेजस्वी स्वामी, स्वतन्त्र रक्षक, प्रकाश रूप शस्त्र वाला है। उन तेजस्वी स्वामियों को मेरा प्रणाम है। उन स्वतन्त्र रक्षको के लिये हमारा सम्मान पूर्वक व्यवहार है। उन प्रकाश के शस्त्रों के सामने हम नमन करते हैं। जो अकेला, हम आस्तिकों से, द्वेष करता है, और जिस अकेले दुष्ट से, हम सब धर्म परायण पुरुष द्वेष करते हैं। उस दुष्ट को हम सब, आप सब मनीषियों के न्याय के जबड़े में धर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। २—दक्षिण दिशा का इन्द्र अधिष्ठाता है वह मर्यादा पालक रक्षक है, प्रजनन की शक्तियां उसके शस्त्र हैं, हम सब उन शत्रुहन्ता, शूर अधिपतियों का स्वागत करते हैं, जो हमारा द्रोही है, हम सब आस्तिक उसका तिरस्कार करते हैं, उसको हम सब, स्वामी, और संरक्षकों के न्याय के जबड़े में धर देते हैं। ३—पश्चिम दिशा का वरुण अधिपति है। वह स्पर्धा में उत्साही संरक्षक हैं। उसके वाण अन्न हैं। उन श्रेष्ठ अधिपति और संरक्षकों के लिए तथा अभीष्ट अन्न का हम आदर करते हैं। जो अकारण सबके साथ कलह करता है; उस भद्रपुरुषों के द्रोही को, उक्त अधिपतियों और सरक्षकों के न्याय के जबड़ों में धर देते हैं। ४—उत्तर दिशा का शांत अधिपति है, वह स्वयं सिद्ध और रक्षक है, विद्युत्तेज (ओले) उसके इषु हैं। उन शान्त अधिपतियों, स्वयं सिद्ध संरक्षकों, और तेजस्वियों इषुओं की वन्दना करते हैं। जो सबका द्वेषी है, और जिससे सभी द्रोह करते हैं, उसको उक्त अधिपतियों और संरक्षकों के न्याय के जबड़े में हम धर देते हैं। ५—स्थिर दिशा (पृथ्वी) का अधिपति है वह कर्मठ संरक्षक है। वनस्पतियां उसकी इषु हैं। उन सब अधिपतियों और संरक्षकों के लिये ही हमारा आदर है। ६—ऊर्ध्व दिशा आकाश के वृहस्पति अधिपति हैं। वे पवित्र और संरक्षक हैं। अमृत जल उसके संरक्षक हैं। उन वृहस्पति और पवित्र संरक्षकों का ही सबको सम्मान करना योग्य हैं। पावन अमृत जल का ही सबको आदर करना चाहिये। जो हम सबसे द्वेष करता हैं, और जिसके सभी भद्र पुरुष द्रोही है, उसको उक्त अधिपतियों और संरक्षकों के न्याय के जबड़े में धर देतें हैं।

ये दोनों सूक्त रौद्रगण कर्मों में, वृहच्छान्तिगण कर्मों में, रक्षोहणगण तथा वास्तोष्पतिगण कर्मों में भी उन-उन विधियों के साथ उनसे सम्वन्धित कर्मों के लिए विहित हैं। मणिवन्धन प्रकरण में गूलर का प्रभाव पढ़ें।

"ऊर्ध्वा अस्यसमिधो" (५।२७) पशुओं के पुष्टि कार्यों में गूलर के फल आदि को मंथाकार कर घी मिला होम करें। तथा विना गिने पूरी आदि बना अभिमन्त्रित कर अग्नि में ७ पूरियों के मन्थ से आहुतियों दें। कौ. ३।६

कां० ५ सू० २७ ब्रह्मा। अग्निः। वृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २ द्विपदासाम्नीभुरिगनुष्टुप्, ३ द्विपदार्ची वृहती, ४ द्विपदासाम्नी भुरिग्वृहती, ५ द्विपदासाम्नी त्रिष्टुप्, ६ द्विपदाविराण्णाम गायत्री, ७ द्विपदासाम्नी वृहती, ८ संस्तारपङ्क्तिः, ९ षट्पदानुष्टुब्गर्भापराति जगती १०-१२ पुरउष्णिक्, (२-७ एकावसाना) उपर्युक्त रक्षाविधौ विनियोगः।

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥१
देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥२
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः सविता विश्ववारः ॥३
अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥४
अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्ष स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥५
तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥६
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥७
उरुव्यचसाऽग्नेर्धाम्ना पत्यमाने।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वया भिगृणत गृणता नः स्विष्टये।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥९

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु। देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ॥१०

वनस्पतेऽव सृजा रराणः। त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥११

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः। इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१२

कां० ५ सू० २७ "ऊर्ध्वाअस्य" इस अग्नि की समिधायें ऊँची होती हैं, तथा इसकी शुद्ध ज्वालायें भी ऊँची ही होती हैं यह अत्यन्त तेजोमय, प्रकाशवान, सुन्दर स्वरूप, पुत्रों सहित रहने वाली, शरीर के सभी प्रकार के पतन का निरोध करने वाली, संजीवनप्रद और अनन्त ज्वालाओं से युक्त है। (१) सब देवों में प्रधान देव, मधु-घृत से अर्चित दिव्य मार्ग प्रगट करता है। (३) मनुष्यों द्वारा विशेष आराध्य, श्रेष्ठ कर्मपरायण, प्रेरक, सबको स्वीकार्य, दिव्य अग्नि सरसता से यज्ञ को प्रेरित करती हुई अग्रणी होती हैं। (४) अर्चिताग्नि, बल, घृत (वीर्य संरक्षण) और नमनादियुक्त उत्तम रूप से चलती है। (५) यज्ञों में चमसों की इच्छुक अग्नि की यजमान उसके गौरव के साथ आराधना करें। (६) तारण करने वाली अग्नि, हर्ष के साथ पूजन करने योग्य है। समस्त ऐश्वर्यों की धारणकर्त्री, अग्नि और वसु आदि सब में शिरोमणि है। (७) यज्ञस्थली के दिव्यद्वार और उनके अधिष्ठाता देव सभी अन्य देवगण इसके व्रत की सर्वदा, अनुकूलता से रक्षा करें। (८) अग्नि के अत्यन्त विस्तृत धाम से, स्वामित्व परायण, उत्तम मार्गगामी, सन्निध्यता, और पारस्परिक सहयोग से (सामूहिक संगठित रूप से) प्रातः और सायं, हमारे अहिंसक इस यज्ञ (जीवन यज्ञ) की रक्षा करें। (९) दिव्य होतागण, हमारे ऊर्ध्व गतिशील यज्ञ की अग्नि की जिह्वा के साथ स्तुति करें, और हमारी उत्तम इष्टि के लिए वन्दना करें। इडा, सरस्वती, भारती (मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमि) ये तीनों ही देवियां, इस यज्ञ में विराजमान हों। (१०) हे त्वष्टा देव! हमारे लिए, कल्याणप्रद धन, ऐश्वर्य और पुष्टि प्रदान कर, इसकी मध्य ग्रन्थियों (सभी लौकिक पारलौकिक बन्धनों) को खोल दें। (११) शान्ति प्रदाता अग्निदेव आत्मशक्ति से, देवों के लिये हवनीय सामिग्री का रसास्वादन करें। (१२) हे ज्ञाता प्रकाशदेव! तू स्वाहा रूप, (आत्मसमर्पण) इन्द्रदेव को समर्पित कर, सभी देवगण इस हवि को सेवन करें।

अथ व्याघ्रचौर वृक चरकसिंहारण्यकादीनांभये स्वस्त्ययनानि

कौ० सू० कं० ५१ सू० १ उदितइति (अ० वे० का० ४।३-१) खादिर शंकुसंपातवन्तमुद्गृह्णननिखनन्वा अनुव्रजति। १। (वा० का०) गां पृष्ठतो गच्छति कीलकं निखनन्नुद्घाटयन् गृहादरण्यं गच्छति व्याघ्रादिस्वस्त्ययन कामः। २—निनयनं ममुह्यचारे सारूपवत्सस्येन्द्राय त्रिर्जुहोति।।२।। निखनगाः—चोर—(४।१-१) (५।६-१) (४।२८-१) (११।२-१,६-९) रौद्रगण अश्नाति। उदकवटमभिमंत्र्यगोमचारे निनयति। ३—दिश्यान्वलीन्हरति।३। ततः पोसुकूटं तन्त्रं कृत्वा अर्धं दक्षिणेनहस्तेन निक्षिपति। इन्द्राय पाकयज्ञ विधानेन। ४—प्रतिदिशमुपतिष्ठते।४। येऽस्यामितिसूक्तेन (अ० कां० ३।२६) प्रत्यृचमुपतिष्ठते। ५—मध्येपञ्चममनिर्दिष्टम्।५। मध्येपञ्च वलिहरणं।५।

६—शेषं निनयति।७। ब्रह्मजज्ञानम् भवाशर्वौवित्यासन्नरण्येपर्वतं यजते।८। पर्वतदेवतायै अरण्येपाकयज्ञविधानि-नाज्यभागान्तं कृत्वा ब्रह्म जज्ञानाप्तायेसहस्रधारेति सूक्तेन (५।६-३) जुहोति। हिमवतेत्वा जुष्टं निर्वपामि हिमवतेत्वा जुष्टं प्रोक्षामि हिमवन्तं गच्छतु हविः स्वाहेति निकटं पर्वते यजते। भवाशर्वौमृडतामित्यर्थसूक्तेनचरुं जुहोति। भवायजुष्टं निर्वपामीत्यादिपूर्ववत्। भवाशर्वादिभ्योदेवताभ्यो निर्वापं कृत्वा वृहद्भाण्डके श्रपणं। एते सप्तपर्वतदेवताः। व्याघ्रचौर वृश्चिकहस्त्यारण्यकगवित्यादिभये स्वस्त्ययनम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ व्याघ्र, चोर-वृश्चिक-हस्ति-रिक्ष-चरक-आरण्यक-सर्प-यातु आदि से पशु, गृह, ग्राम, नगर तथा क्षेत्रादि की रक्षा विधिः

कां० ३-२७-६

इन २६ व २७ दोनों ही सूक्तों से उपरोक्त स्वसेना के मनोबल की अभिवृद्धि आसुरी, यातुधानी समस्त माया-प्रशमनार्थ, स्वस्त्ययनार्थ, इन दो के साथ 'दोषोगाय'' (६।१) ''पात नः इति पञ्च (६,३ से ७) ''अनडुद्भयः'' (६।५६) ''यमोमृत्युः'' (६।९३) ''विश्वजित'' (६।१०७) ''शकधूमम्'' (६।१२८) ''भवाशर्वौ'' (११।२) से उपस्थान तथा घी-ढाक की समिधाओं से या शान्तवृक्षीय समिधाओं से पुरोडाश आदि, पूरी आदि १३ वस्तुओं से होम करें। कौ० ७।१ इन्हीं १६ से २७ कौ० ७,२ के अनुसार होमावशेष से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊर्ध्व के लिये पूर्व तथा ईशान के बीच की दिशा, अध के लिये नैर्ऋति एवं पश्चिम के मध्य की दिशा ''ऊर्ध्व'' में ५।५ बलि रक्खें। इन्हीं २६-२७ से प्रति-दिशा में उपस्थान करें।

सर्प—वृश्चिक आदि सरकने (रेंगने) वाले समस्त विषैले जीवों से रक्षा के हेतु; कि वे काटें नहीं, काटें तो विष का असर न हो आदि २ के शमनार्थ इन्हीं उपरोक्त २६।२७ से तथा ''मानोदेवाः'' (६।५६) ''यस्ते सर्प'' (१२।१-४६) से ''शयनशालोर्वराः परिलिखति'' (कौ० ७-१) के अनुसार गृह-क्षेत्र-नगर-ग्राम, शयनस्थान में बालू अभिमन्त्रित कर चारों ओर छिड़क दे। अप मार्ग, आञ्जन (बूटी) राश्ना, ऊंटकटेरा, शमी आम, निम्ब, कदम्ब, तमाल की तृण-माला बना अभिमन्त्रित कर गृह-नगर आदि के द्वारों से बाँधें, सीमाओं में गाड़ें, इन्हीं से गुड़वच-गोमय अभिमन्त्रित कर उस घर में छिड़कें, द्वारों में गाड़ें, होम भी करें। इन्हीं से तीस महाशान्तियों में से तन्त्रात्मक शाँतिमें 'येऽस्याम्' (३।२६-२७) दो से प्रतिदिशा में होम करे। ३।२७ 'प्राचीदिक्'' इससे पृथक् २ प्रतिदिशा में उपस्थान करें। नक्षत्र-कल्प—२२ ''यमो मृत्यु'' (६।९३), अभयगण में है। (६।१०७) वृहच्छान्तिगण में है। ४।२८ ''अंहोलिग गण में है।

कां० १२।१-४६—अथर्वाऋषिः। भूमिः। देवता। षट्पदा अनुष्टुप्गर्भापरा शक्करी छन्द। सर्पादिभयप्रश-मने-जपे. उपस्थाने होमे-बलिदाने-रक्षा तन्त्रे विनियोगः। अर्थ वृहच्छान्तिगण कां० १२ सू० १ भूमिसूक्त में पढ़ें।

यस्ते॑ स॒र्पो वृश्चि॑कस्तृ॒ष्टद॑श्मा हेम॒न्तज॑ब्धो भृम॒लो गुहा॒ शये॑।
क्रिमि॒र्जिन्व॑त् पृथिवि॒ यद्य॒देज॑ति प्रा॒वृषि॒ तन्नः॒ सर्प॒न्मोप॑ सृप॒द् यच्छि॒वं तेन॑ नो मृड ॥४६

'रक्षघ्नेष्टिका' रक्षोहण पूरा अनुवाक् ग्राम, गृह, नगर, गोष्ठ, क्षेत्र की रक्षाविधि में साथ इसी के प्रत्युज्यमान हैं।

अग्निदाह से रक्षाविधि

अग्नि न लगे, इस कारण—घर में गड्ढा खोदकर—एक मिट्टी के नये घड़े में शान्ति औषधियाँ डाल—मौली, (कलावा) स्वस्तिक आदि करके अम्बादिगण से अभिमन्त्रित कर पुनः ''आयने'' (६।१०६) की ऋचाओं से अभिमन्त्रित कर इन्हीं को जपता हुआ जल को उस गर्त में उडेल दे। और गाड़ दे।

इन्हीं ३ ऋचाओं से रक्षार्थ छपरी (अवका) को अभिमन्त्रित कर घर के ऊपर रख दे।

इन्हीं ३ ऋचाचों से उड़द के बड़ों को सिन्दूर आदि लगाकर—तथा तैल, तिल, अभिमन्त्रित कर—कोसा देने वाले, द्वेष करने वाले, अभद्र वाणी के वक्ता, को लक्षित कर, दान दे। इन्हीं ३ ''आयने'' (६।१०६) की ३ ऋचाओं से अग्नि मे जले हुए किसी भी प्राणी को—अभिमन्त्रित जल से धोये। (घर की जली हुई सामिग्री को धोये, उसका भावी अनिष्टफय नष्ट हो जायगा।) (अथर्व कां० ३।१३—७) ''इदं वः आपः'' ''हिमस्य त्वा'' (६।१०६—३) ''उप द्याम उप वेतसम्'' (१८।३—५) ''अपाम् इदम्'' (६।१०६—२) से पानी की शेवाल से मण्डूक को ढांक दे, मण्डूक जल, और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शेवाल को उपरोक्त सूक्तों–ऋचाओं–से अभिमन्त्रित कर–जली हुई सामिग्री को छींटे दें और मण्डूक जल व शेवाल को गर्त में गाड़ दे। (३।१३–७)

"इदं व आपः" में "अपां" "रेतोरूपत्वात् हिरण्यस्यहृदयरूपता" है। प्रमाण—आपो वरुणस्य पत्नय आसन्। ता अग्निरभ्यध्यायत्। ताः समभवत्। तस्य रेतः परापतत्। तद्धिरण्य अभवत्

इति तै० ब्रा० १।१।३–८) (३।१३–७) से गढ़े में स्वर्ण भी डाले। इस गढ़े में इस प्रकार से मण्डूक के ऊपर डाली-दूब-रुढ़मूल की हो जाती है, इसी प्रकार गड्ढे में गाड़ा हुआ जल–अग्नि आदि के भय–जल (नदीवेग आदि) से उत्पन्न भय को शान्त करता है। नवजल प्रवाह-प्रज्वलन-को शमन करता है। यह, अथर्वा–आङ्गिरस महर्षियों की तपस्या केवल, मन्त्र देवता का अप्रतिहृत बलमात्र है।

अथ अग्नि–दाह से रक्षातन्त्र

अग्नि लगने से पूर्व रक्षातन्त्र करने से अग्निभय नहीं होता, अग्नि लगने से अनेकों निरीह प्राणी, धन, सम्पदा नष्ट हो जाती है, उनकी चिरशान्ति तथा अग्नि लगाने को दैवी त्रास, उसके निन्द्य दुष्कर्म के प्रति विधान। कां० ६ सू० १०६ ऋचा १–३ प्रमोदन ऋषिः। दूर्वाशाला। देवता। अनुष्टुप् छन्दः अग्निभय–निवृत्तये, जपे, उपस्थाने, तन्त्रे, होमे विनियोगः।

यथा मनो मनस्केतैः परापतंत्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पंत मनसोऽनु प्रवाय्यऽम् ॥१

यथा बाणः सुसंशितः परापतंत्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पंत पृथिव्या अनु संवतम् ॥२

यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पंत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३

इस सलग्न विधि से इन ऋचाओं से निर्दिष्ट विधि, इन्हीं से अभिमन्त्रितकर करे, अग्नि का निरन्तर वहां अत्यन्ताभाव हो। दाहकता शान्ति होती है। कां० ३।१३–७ भृगुऋषिः। वरुणः, सिन्धु; आपः। देवते। अनुष्टुप् छन्दः। ग्राम–नगर–क्षेत्रादिकस्य नवोदक प्रवाहाद, उद्वा अग्निभये संजाते, स्वाभिमतप्रदेशे नदीप्रवाहकरणे, अग्नेरात्यन्तिकशान्तत्वापन्ने खाते, हिरण्य, निदधने, जपे, होमे, उपस्थाने, तन्त्रे विनियोगः। (३।१३–७)

इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः। इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥७

नोट:—स्वर्णमण्डूक प्रतिमा बना, प्राण-प्रतिष्ठा कर, अभिमन्त्रित कर गड्ढे में रक्खें।

कां० १८।३–५ अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्ताः अग्निश्च देवता। त्रिपदा निचृद्गायत्रीछन्दः उपरोक्त समस्त विघ्न निवारण विधौ विनियोगः।

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम्। अग्ने पित्तमपामसि ॥५

॥ इति श्री कृषि पशु आदि रक्षा विधिर्नाम चतुर्थोऽध्याय ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋ. अ. ८।७।१६ मं. १०।१२४।

ॐ कृष्णवर्णे महद्रूपे बृहत्कर्णे महद्भये । देविदेवि महादेवि मम शत्रून् विनाशय ॥१॥

खट् फट् जहि महाकृत्ये विधूमाग्निसमप्रभे । जहि शत्रून् त्रिशूलेन क्रुध्यस्वपिब शोणितम् ॥२॥

ये द्रुह्युर्ऋजवे महामग्ने कदाधियो दुर्मदा अश्मनासः ।

आबध्यैतान् शोचिषाविध्य तन्तून् वैवस्वतस्य सदनं नयस्व ॥३

यावदादित्यस्तपति यावद्भ्राजति चन्द्रमाः । यावद्वायुः प्लवायति तावज्जीव जया जय ॥

(ऋ. अ. ८।७।३०) [ऋ. मं. १०।१४२ [३०।११]

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ अथ रक्षघ्नेष्टि, कृत्याप्रतिहरण विधिः ॥

पञ्चमो अध्याय

अथ भूतोन्माद निवारण रक्षघ्नेष्टि—वैद्यक ग्रन्थों में वर्णित विविध प्रकार के मृगी, हिस्ट्रिया भूतोन्माद-देवोन्मादऋष्यादि उन्माद-पितरोन्माद-गन्धर्वोन्माद-अप्सरसोन्माद-यक्षोन्माद-राक्षसोन्माद-पिशाचोन्माद-शापोन्माद आदि के लक्षणों से तथा उनके प्रवेश (आवेश) को तिथियों व उनमें वर्णित गतिविधियों से अ.१ की विधि से निश्चय करके-योग्य-वैद्यो से चिकित्सा करायें। इन सब पर ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला जा चुका है, उपचार भी वहाँ दिये गये हैं। कुछ अनुभूत आयुर्वेदिक-पेय नस्य-अञ्जन, वर्ति तथा लेप विधियों को जो पूर्व वर्णित हैं। सेवन करें। यदि इनसे पूर्ण लाभ न हो तो अथर्ववेद में वर्णित कर्मजभवव्याधि-दैवीचिकित्सा, चातनगण, अम्बादिगण, वास्तुगण-अभय-गणों में वर्णित विधि से अवमार्जन स्नान, उपस्थान, होम एवं रक्षातन्त्र करे। यह लौकिक-वैदिक शापों में, स्त्री पुरुषों के आक्रोश (कोसने में) क्रूर दृष्टि ब्राह्मण-शाप, पिशाच, राक्षसादि ग्रह एवं पापगृहीत, स्त्रीगर्भस्राव मृतापत्यदोष, 'क्रव्या' कच्चा मांस खाने वाली प्रेताग्नि, गृहीतदोष तथा समस्त मारण उच्चाटन, सम्मोहन, वशीकर विद्वेषणादि अभिचारजनित दोष घातपात कृत्याजनित दूषणों की शान्ति विधि है। सर्वप्रथम-शान्तिघट में पूर्व वर्णित शान्ति औषधियाँ व १० शान्ति वृक्षों की टहनियाँ, तीर्थों की पावन रज, तीर्थों के जल डाले और अम्बादिगण जो अध्याय२ स्वस्तिवाचनं में है, के शान्ति सूक्तों से जल अभिमन्त्रित करे।

॥ अथ चातन व रक्षोहणगण ॥

कॉं० (१।७) "स्तुवानम्" (१।८) इद हविः (२।१४) निः स्सालाम् (२।१४) "अरायक्षणम्" (२।१८-३,५) शंनोदेवीपृश्निपर्णी (२।२५) "आ पश्यति" (४।२०) "तान् सत्यौजाः" (४।३६) त्वयापूर्वम् (४।३७) पुरस्ता द्युक्तः (५।२९) "रक्षोहणम्" इत्युनुवाकः (८।३-४) चातनानि इन सूक्तों से अपनोदन अर्थात् छींटे दें, स्नान, उपस्थान करें। कौ० ४, १ परन्तु शान्तिकल्प १६ में [चातन तथा मातृनामागणों से होम करें। इन सूक्तों से भूत, पिशाचादि आविष्ट प्राणी से उनके उच्चाटनार्थ फली करण-तुषावतक्षणानां होम" करे।

कॉं० १ सू० २६ "ओरेऽसौ" मारने को उद्यत शत्रु को देखता हुआ जपे। 'मातृनामागण—[२।२] दिव्यो-गन्धर्वः' [६।१११] 'इमं मे अग्ने' [८।६] 'यौतेमाता' तथा वास्तोस्पति [वास्तुगण]—[३।१२] 'इहैवध्रुवां' [६।७३] 'एह्यातु' [६।९३] 'यमोमृत्यु' [१२।१] 'सत्यं बृहत' तथा कृत्यादूषणगण—[२।११] 'दूष्यादूषिरसि' [४।४०] येपुरस्तात्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[४।१७] 'ईशानांत्वा' [४।१८] 'समं ज्योतिः' [४।१९] उतो अस्यबन्धुकृत [५।१४] 'सुपर्णस्त्वा' [५।३१] 'याँ ते चक्रु' [८।५] 'अयंप्रतिसर (१०।१) याँ कल्पयन्ति ।

रक्षोहण अनुवाक् :—(१।७;८) चातनगण में निर्दिष्ट (१।१६) ''ये अमावास्याऽयां'' (१।२८) ''उपप्रागात्'' (१।२९) ''आरे असौ'' (१।२७) ''अमूः पारे'' (६।३) पातं नः (६।७६) यएनंपरिषीदन्ति । (२।१४) ये निस्सालाम् (२।१८) ओजो असि (२।२५) शंनोदेवीपृश्निपर्ण्यशं (३।१) अग्निर्नः (३।२) अग्निर्नोदूत (४।२०) आपश्यति (४।३६) (४।३७) चातनगण में हैं । (५।२९) । (६।३२) अन्तर्दावे (६।३४) प्राग्नये (८।३) ''तदग्ने चक्षुः'' रक्षोहर्णवाजिन ये सभी सूक्त पूर्वोक्त सभी प्रकार के या जो लिखने से शेष हैं, जैसे दैवी, आसुरी, मानवी-राजसी, कापालिकी आदि कृत्यायें, दैवोपहत-बाल, कुमारों की मृत्यु, पशु-स्त्री, धन हानि मिथ्यादूषण-राजनिग्रहादि । इनके निराकरणार्थ घी युक्त सर्वौषधियों से होम करे (चौरास्तापरग्रहग्रहीत रोगी को बिठाये, दर्भसेवनी इण्डली शिर पर रख, उसके ऊपर मिट्टी के कपाल में अग्नि रखकर मातृनामागण से होम करे । हवन से शेष को चौरास्ता पर लेप करे उस कपाल को पक्षी जिस पर बैठते या सोते हों, ऐसे वृक्ष से ३ पाद के छीके पर लटका दें । यह पीपल के, जङ्गल के, वृक्षपर लटकाये । जहाँ घी, मांस, मधु-स्वर्ण, रेत आदि की अद्‌भुत वर्षा हो, बन्दर श्वापद-चौपाये यक्ष आदि का अद्‌भुत स्वरूप दिखाई दे श्रृगाल-मेंढक आदि प्रतीत हों, इन सभी अद्‌भुत बातों की शान्ति के लिए ''दिव्योगन्धर्व'' आदि से घी से होम करे । यह अद्‌भुच्छान्ति में छप चुका है मन्त्र तथा विधि वही पढ़ें ।

चातनोमातृनामा च वास्तोष्पत्योथपाप्महा (न० क० २३ इति)

स्त्रीशूद्र, राज, ब्राह्मण, कापालिक, अन्त्यज; शाकिनी, डाकिनी आदि द्वारा किये गये घातक प्रयोगों से अपनी रक्षा के लिये तथा कृत्या दोष निवारणार्थ (तिलक वृक्ष) की बनी मणि की प्राण प्रतिष्ठा, होमादि कर अभिमन्त्रित कर बांधें । शान्ति जल से छींटे दे, स्नान कराये, होम-बलिदान करे ।

''कृत्यादूषणएव च । चातनो मातृनामा च ।'' (न० क० २३)
''अथशान्तैः कृत्यादूषणैश्चातनैः'' (शा० क० १६)

कृत्या प्रतिहरणार्थ 'दूष्यादूषिरसि'' इन आद्यऋचाओं से सूक्त में वर्णित—''तिलकमणि दोष को निवारण करने से (दूष्या)-दूसरे से प्रेरित हेति (आयुध) तथा मेन्या (वज्र) या मन्त्रात्मक वाग्वज्र) पर उच्चारित वाग्वज्र की (मेनि) निवारक, अर्थात् शत्रु कृत अभिचार आदि से उत्पन्न समस्त अरिष्ट निवारक [तिलक वृक्ष से बनी या प्रतिसर मणि रक्षासूत्र में ''आपश्यति ४।२०]'' ''४।३६, ४।२५ पृश्निपर्णी'' आदि सूक्तों से ब्रह्मग्रहादि जनित भय के निवारणार्थ—''सदंपुष्पा'' मोरछली नाम की मणि दक्षिण हाथ में अभिमन्त्रित कर धारण करे । यह त्रिसन्ध्यामणि मन्त्र सामर्थ्य से ब्रह्मराक्षसादि ग्रह, पिशाच, राक्षस, गन्धर्व-कृत्या आदि दूषणों के शान्त करने वाली है । यह चातनगणादि समीक्षा विधि है ।

पूर्वोक्त चातनगण विधि में—सर्वप्रथम कां० १ सू० १६ ''येऽमावाग्यायांरत्रिम्'' द्वेषी, यातुधान, राक्षस यक्ष, गन्धर्व, ब्रह्मग्रह-अभिचारकर्त्ता, कृत्याकारकादि, शाप, आक्रोश, क्रूरदृष्टि निपातकी आदि जो भी कोई हो, उसके संहार और उसके किये उत्पातों, व्याधि आदि से मुक्ति प्राप्ति एवं पूर्ण स्वस्थता के लिये ३ नदीफेन [झाग] लौहभस्म, टुकड़े, युक्त अनेक मिश्रित धान्यों को इसी से अभिमन्त्रित कर, सत्तु बनाकर नमक, राल, गुग्गुल, अपामार्ग, कूंठ, धत्तूरादि पीपल, पृश्निपर्णी चित्रपर्णी, सहदेवी, मोरछली, राल लोहवान, सत्यानाशी, ऊंटकटेरा, सरसो राई, मयूरपंखी, अश्वत्थ, वट, पिलखन की दाढ़ियां या पत्तियां गूलर अर्जुन ताड़ वृक्षों के फल, फूल समिधाओं से उस द्वेषी के उच्चाटनार्थ होम करें । उसी की पैरों की मिट्टी की मूर्ति आभरण या वस्त्र की प्राण प्रतिष्ठा कर, पूजा कर उसे अभिमन्त्रित कर स्पर्श करते हुए, इस सूक्त का जप करें और स्वयं तोड़ी हुई बांस की छड़ी को अभिमन्त्रित कर उससे पूर्वोक्त प्रति-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृति वस्त्र, अलङ्कारों को प्रताड़ित करें। यह कृष्णपक्ष, रात्रि अमावस्या में करें तो आश्चर्यजनक फलप्रद होता है। वैसे व्याधिगृहीत की अत्यन्त आतुर अवस्था में देशकाल, मुहूर्त्त इस आथर्वणीय आङ्गिरषी विधियों में सापेक्ष्य नहीं है। आपस्तम्भ ९।३१ "आग्नयेरक्षोघ्ने" निशाचर, अन्धकार में निशा में स्वच्छन्दता से विचरते हैं, उस समय की शान्ति-विधि उन पर प्रभावशाली परिणाम दिखलाने में समर्थ कही गई है।

कां० १ सू० १६ "येऽमावास्यांरात्रिम्" :—इस सूक्त से द्वेष या अनिष्ट कर्त्ता यातुधान; राक्षसादि के विनाशार्थ, कृत्यादिप्रतिहरणार्थ, नदीफेन, लोहचूर्ण, तथा (कृकलाशशिर) पानी के गोले की जटा मिश्रित आङ्गिरषी हवन सामिग्री से होम करें। सहदेवी, पृष्टिपर्णो, तुलसी, शमीपत्र, वेरीपत्र, शमीफल आदि का चूर्ण अभिमन्त्रित कर मालिस करायें, खिलाये। व्याधित के शरीर के अङ्गों के वस्त्राभरणों को स्वयं पूजाकर, काट कर लाई, वांस की छड़ी से ताड़न करें। यह उग्र कार्य एकान्त, अरण्य में, रात्रि में, तारकादियुक्त निशाही में संचरण शील, यातुधान, राक्षसादि को निमित्त कर "राक्षघ्नेष्टि" कर्म करे। यह सांग्रामिक अग्नि में, आग्नेयास्त्र, सम्मोहनास्त्र, तमसास्त्र, वारुणास्त्र आदि के मन्त्रों से करें। "अग्निखलु वैरक्षोहा" सोऽग्नियातु, यातूना, रक्षसां हन्ताएवं।

कां० १।१६ चातन ऋषि १-४।१ अग्निः, २ इन्द्रः, वरुणः (२-४ दधत्यंसीमम्) अनुष्टुप् ४ ककुम्मती अनुष्टुप्। ज्ञात, अज्ञातशत्रु, यातुधान राक्षस, ब्रह्मग्रहादि विनाशेर्भषज्यकर्माणि मार्जने, उपस्थाने, होमे च विनियोगः।

येऽमावास्यांऽ३ रात्रिं मुदस्थुं ब्राजमत्त्रिणः। अग्निस्तुरीयो यातुहासो अस्मभ्यमधिब्रवत् ॥१
सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति। सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् ॥२
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः। अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥३
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्। तं त्वा सीसेन विध्यामो यथानोऽसोअवीरहा ॥४

"निद्रास्तम्भन" :—कटेहरी की जड़ को पीस कर, मधु मिला, निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, नस्य दें। अथवा-दोनों नेत्रों मे अञ्जन की भाँति लगायें, तो नींद नहीं आती है। निम्न या उपर्युक्त मन्त्र दश हजार जपें।

"ॐ नमो नृसिंहाय निद्रास्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा"

"भूतावेशज्ञान":—जिस पर पिशाच, भूतादि का आवेश होगा, वह पशु, मानव, धीरे धीरे हिलने लगेगा। वार वार मूर्छा होगी, जम्भाई आयेंगी, शरीर टूटेगा, विचित्र गति होगी, नेत्रों में लाली, कण्ठ अवरुद्ध कभी कठोर होगा। अनर्गल बातें करने लगेगा।

"भूतावेश निवारण भेषज, और मन्त्र":—खस, दोनों चन्दन, कांगनी, तगर और कूठ मिलाकर शिर पर लेपें। उपर्युक्त या इस मन्त्र से १०८बार, कुशा, अपामार्ग, मयूर पंख से झाड़ा दें। दश हजार जपकर सिद्ध कर लें।

"ॐ नमो भगवते उड्डामेश्वराय कुहुनी, कुर्वली स्वाहा"

कां० १ सू० १६ "येऽमावास्याम्" जो डाकू, चोर, वधिक, दस्यु, यातु, राक्षस, पिशाचादि अमावास्या की रात्रि में हमारे परिकर पर, हमला करते हैं, उस विषय में चोरों के विनाशकर्त्ता वह चतुर्थ (साग्रामिक अग्नि) हमें सूचना दे। (२) वरुण ने शीशे (की गोली) के विषय में वर्णन किया है। अग्नि शीशे को रक्षक कहता है, इन्द्र ने तो मुझे शीशा, गीला दिया है। हे प्रिय वह उन डाकु आदि को ही हटाने वाला है। (३) यह शीशा, रुकावट करने वालों को हटाता है। वह दस्यु बधिकों को उत्पीड़ित करता है। इससे पिशाचों की जो विविध जातियां है, मैं उन सभी को हटाता हूँ। यदि तू हमारी गौओं का वध करता है, या घोड़ों, या पशुओं, या मनुष्यों को मारता है, तो उस तुझको, हम सीसे से वेधते हैं। जिससे तू हमारे वीरों का वध न कर सके। यह सीमा नदीफेन है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० १ सू० २८ "उपप्रागाद" से श्वेतार्क की रुई के धागे में, उसी श्वेतार्क की जड़ की मणि बनाकर, धारण करायें, इसी अर्क (आक, मदार) की रुई को दो अर्क की टहनियों में लपेटकर उल्मुक बनाकर, अभिमन्त्रित कर प्राण प्रतिष्ठाकर व्याधित को लिटाकर, उसके शिर से पैर की ओर २१ वार उतार कर, कां० ६ सू०३४ "प्राग्नेय" में वर्णित, द्वेषी को सम्बोधित कर, अग्नि प्रज्वलित कर, उसी उल्मुक ही की" कां० ६ सू० ३२ "अन्तर्यावे" की तीन ऋचाओं से परिक्रमा कर, उन्हीं उपर्युक्त दोनों उल्मुकों को ही, दो व्यक्ति हाथों में लेकर एक दूसरी से रगड़ें। इससे दृष्ट, अदृष्ट, राक्षसादि, भयङ्कर उत्पात करने वाले, निकल भागते हैं। इसीसे शाप निवारण, क्रूर दृष्टिपात जनितारिष्ट, दुर्वचन आक्रोशजनित विघ्न नष्ट होते हैं। अन्य विधि चातनगण की सभी करें।

कां० १।२८ ऋचाया १-४ चातन: ऋषि.। १-२ अग्नि: ३-४ यातुधानी:। अनुष्टुप्, ३ विराट्पथ्या बृहती ४ पथ्यापङ्क्तिः। उपर्युक्त कर्मषु, चातनगण कर्मयु, आग्नेयास्त्र संयोगे, शाषनिवारणे, कर्मजव्याधि भैषज्ये, उपस्थाने, मार्जने, अभिमर्शने, होमे च विनियोग:।

उप प्रागा॑द् दे॒वो अ॒ग्नी र॑क्षो॒हामी॑व॒चात॑नः। दह॒न्नप॑ द्व॒यावि॑नो यातु॒धाना॑न् किमी॒दिनः॑ ॥१

प्रति॑ दह यातु॒धाना॒न् प्रति॑देव किमी॒दिनः॑। प्र॒तीचीः॑ कृष्णवर्त॒ने सं द॑ह यातु॒धान्यः॑ ॥२

या शशाप॒ शप॑नेन॒ याघं मूर॑माद॒धे। या रस॑स्य॒ हर॑णाय जा॒तमा॑रे॒भे तो॒कम॑त्तु॒सा ॥३

पु॒त्रम॑त्तु यातु॒धानीः॒ स्वसा॑रमु॒त न॒प्त्य॑म्।

अधा॑ मि॒थो वि॑के॒श्यो॒३ वि घ्न॑तां यातु॒धान्यो॒३ वि तृ॑ह्यन्तामरा॒य्यः॑ ॥४

कां० १ सूक्त २८ "उप प्रागात्":—दुष्टों को त्रास देने वाला, और राक्षसों का नाश करने वाला अग्निदेव, सदा के भूखों को, यातुधानों को, कपटियों को, जलाता हुआ पास आ पहुँचा है। २–हे अग्निदेव! यातुधानों को भस्म कर दो, सदा के हीन कर्मियों को भी जला दो। हे कृष्ण मार्गवाले अग्निदेव! सन्मुख आने वाले यातुधानों की स्त्रियों को भी अच्छी तरह जलादे। ३–ये दुष्ट लुटेरी स्त्रियाँ (राक्षसिनी) शाप पर शाप देती है, जो जन्म से ही पाप ही करती है। जो रसों के अपहरणार्थ. जन्मे हुए बालकों को खाना आरम्भ करती है, और वे पुत्रों को खा जाती है। ४–पापिनी, पिशाचिनी, पुत्रों को खाती है, बहिनों और नातियों को भी खाती है। केश पकड़ पकड़ कर, आपस में झगड़ती हैं। राक्षसिनी, यातुधानी स्त्रियाँ, आपस में मारपीट करती हैं।

कां० ६ सू० ३७ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) चन्द्रमाः। अनुष्टुप्। शापजनिता रिष्टा निवारण भैषज्ये मार्जने, अभिमर्शने, उपस्थाने, होमे स्वस्त्ययनगण कर्मषु च विनियोगः।

उप॒ प्रागा॑त् सहस्रा॒क्षो यु॒क्त्वा श॒पथो॒ रथ॑म्। श॒प्तार॑मन्वि॒च्छन् मम॒ वृक॑ इ॒वावि॑मतो गृ॒हम् ॥१

परि॑ णो वृङ्ग्धि शपथ ह्र॒दम॒ग्निरि॑वा दह॑न्। श॒प्तार॒मत्र॑ नो जहि दि॒वो वृ॒क्षमि॑वा॒शनिः॑ ॥२

यो नः॒ शपा॒दश॑पतः॒ शप॑तो॒ यश्च॑ नः॒ शपा॑त्। शु॒ने पेष्ट्र॑मि॒वाव॑क्षामं॒ तं प्रत्य॑स्यामि मृ॒त्यवे॑ ॥३

कां० ६ सू० ३७ "उपप्रागात्" सहस्र नेत्रों वाला शाप अपना रथ जोड़कर, मुझ शाप देने वाले को ढूँढ़ता हुआ उस मेरे समीप आता है। जिस प्रकार भेड़िया, भेड़ वाले के घर के प्रति आता है। २. हे दुर्वचन (शाप) जैसे देदीप्यमान प्रज्वलित अग्नि, जलस्थान को त्याग देता है, उसी भाँति तू भी हमें छोड़ दे। आकाशी बिजली जिस भाँति वृक्ष को जला देती है उसी भाँति यहाँ भी हमको शाप देने वाले को भस्म कर। ३. हम शाप न देने वाले को भी जो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाप दे और जो शाप देने वाले हमको शाप दे, ऐसे उस निन्द्यनीय को मैं मृत्यु के सामने ऐसा फैंकता हूँ, जैसे टुकड़ा कुत्ते के सामने फैंका जाता है।

कां. २ सू. ७ अथर्वा। भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः। अनुष्टुप्, १ भुरिक्, ४ विराडुपरिष्टाद्वृहती।

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी। आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥१

यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः। ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥२

दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्। तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥३

परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद्धनम्।

अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ॥४

शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह। चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥५

कां० २ सू० ७ "अघद्विष्टा" कलुषित आत्मा, पाप से द्वेष करने वाली देवों से उत्पन्न शाप तथा शाप मूल समस्त अरिष्ठ निवारण करने वाली, औषधि समस्त शाप, कोशा, क्रूरदृष्टि और उनसे उत्पन्न अरिष्टों को मुझसे वैसे ही धोकर दूर कर डालती है, जैसे जल-मल को धो डालता है। २—जो सौतों का शाप, कोशा, डाह और जो स्वकीया किम्बा अन्य स्त्री का शाप, कोशा तथा जो ब्रह्मज्ञ (सन्त, सती, ब्राह्मण, योगी, गौ) का अनादर से क्षुब्ध हो क्रोध से शाप देवें, वे सभी हमसे दूर हो जायें। ३—द्यौलोक से मूल नीचे की ओर आया है और पृथ्वी से ऊपर की ओर फैला है। उस सहस्रकाण्ड (दूवा जैसे) से हमारी सभी ओर से रक्षा कर। ४—मेरी सन्तति (परिकर और उनसे सम्बन्धित सभी की) हमारे धन-धान्य सम्पदा सभी की रक्षा कर, मलिन बुद्धि शत्रु मुझसे कदापि आगे न बढ़ें और हम दुष्टों, दुर्जनों, द्वेषियों से कभी भी पीछे न रहें। ५—शाप, कोशा देने वाले, बकवासी के पास ही वापस चला जावे। जो सद्विचारवान हैं, सहृदयजन हैं, उनके साथ ही हमारी मित्रता होकर दृष्टि से संकेत, चितवन, हाहाकार (ईर्ष्या भाव) से निर्देश करने वाले दुष्टजनों की हम पसलियों को ही तोड़े देते हैं।

प्रेतो यन्तु व्याऽध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः। अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ॥१

"अन्तर्दावे" (६।३२) "प्राग्नये" (६।३४) "तथाप्रेतः" ७।११४ (११६)—२ ये चातनगण कर्म विधि में हैं। इनसे पूर्वोक्त (१।२६) ये अमावास्या को आङ्गिरस अग्निः की तीन परिक्रमा कर, पिशाच राक्षसादि से उत्पन्न भय-व्यथा के निवारणार्थं पूर्वोक्त वस्तुओं के पुरोडाश से होम करे। कौ० ४।७

नोटः—दिन के अहोरात्र रूप तीस मुहूर्त्त नामक धाम हैं, उनमें सूर्य विविध प्रकार से प्रतिक्षण देदीप्यमान होते हैं। अतः श्रुति है "ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिविदेव ईयते। यजुर्वेद तिष्ठति मध्येअह्नः। सामवेदेनास्तमये महीयते" तै० ब्रा० (३।१२।९।१)

कां. ६ सू. ३२ १, २ चातनः; ३ अथर्वा। १ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ। त्रिष्टुप्, २ प्रस्तारपङ्क्ति।

अन्तर्दावे जुहुता स्वे३तद् यातुधानक्षयणं घृतेन।

आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥१

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः।

वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभ॑यं मित्रावरुणावि॒हास्तु॒ नो॒ऽर्चिषा॒त्त्रिणो॑ नुदतं प्र॒तीच॑ः ।
मा ज्ञा॒तारं॒ मा प्र॑ति॒ष्ठां विंदन्त मि॒थो वि॑घ्ना॒ना उप॑ यन्तु मृ॒त्युम् ॥३

कां० ६ सू० ३२ "अन्तर्दवि" इन उत्पीडन करने वाले यातुधान, राक्षस, पिशाचादि के विनाशकहवि का अग्नि में (जातवेदाग्नि, यज्ञ, जप, अनुष्ठानादि) प्रदीप्त अवस्था में उत्तम रीति से हवन करो। हे अग्ने ! तू इन जनद्रोही, राक्षस, यातुधानों, पिशाचों को समीप से और दूर से ही जला दे और हमारे घरों को सन्ताप न दे। २—हे पिशाचो ! रुद्र ने तुम्हारी गर्दनों को काट डाला है, यातुधानो ! वह रुद्र तुम्हारी पसलियों को भी तोड़ डाले। अनन्त वीर्य वाली औषधि तुम्हें यन्दंष्ट्रा से संयुक्त करे। ३—हे मित्र और वरुणो ! यहाँ इस लोक में हमारे लिये अभय हो, अपने प्रकृष्ट तेज से मांसाहारी शत्रुओं को दूर हटा दो। वे कहीं भी स्थिर न हो पावें और परस्पर एक दूसरे को मारते हुए वे स्वयं ही नष्ट हो जावें।

कां० ६ सू० ३४ "प्राग्नये" तथा (कां० ७ सू० ११४।११६-२) "प्रेत" इन पाँच ऋचाओं से शमी-वेलपत्र आदि कांटेदार यज्ञिय वृक्षों को समिधाओं में घी आदि आङ्गिरषी, रौद्रकर्मों में वर्णित सामिग्री से तार स्वर से यह सम्बोधित करके कि:—"त्र्यन्त प्रसिद्ध नियमन शक्तियुक्त परंब्रह्मप्राप्य संतप्ता भवन्तु" "महद्भूयं बज्रं उद्यतम्" एनान् रक्षा कर्मणा प्रतीचीन हन्मि" इति कर्त्ता आग्नेयास्त्रादि प्रयोग के प्रारम्भ में शाप, अभिचार, कृत्यादूषण परिहरण सग्राम तथा राक्षघ्नेष्टि प्रयोगों में आद्यन्त में तारस्वर से ही सम्बोधित करके होम मार्जनादि कर्म करें।

कां. ६ सू. ३४ (१-५) चातनः। अग्निः। गायत्री, उपर्युक्त चातकगण कर्मषु विनियोग।

प्राग्नये॒ वाच॑मीरय वृ॒ष॒भाय॑ क्षिती॒नाम् । सनः॑ पर्ष॒ दति॒द्विषः॑ ॥१
यो रक्षां॑सि नि॒र्जूव॑त्य॒ग्निस्ति॒ग्मेन॑ शो॒चिषा॑ । सनः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥२
यः पर॑स्याः पर॒ावत॑ स्ति॒रोधन्वा॑ति॒ रोच॑ते । सनः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥३
यो विश्वा॒भि वि॒पश्य॑ति॒भुव॑ना॒सं च॒पश्य॑ति । सनः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥४
यो अ॒स्यपा॒रे रज॑सः शु॒क्रो अ॒ग्निरजा॑यत् । सनः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ।.५

कां० ६ सू० ३४ "प्राग्नये",—प्रेरणा और कर्तव्य कर्म:—कल्याण कामीजनों ! पृथ्वी आदि समस्त लोक लोकान्तरों के महाबलिष्ठ, तेज पुञ्ज, एकमात्र ईश्वर के प्रति ही स्तुति रूपों में ही अपनी-अपनी वाणियों के सदुपयोग करो। वह तेजोमय ब्राह्मी अग्नि (प्रभु) अपने तीक्ष्ण तेजोमय प्रकाश से समस्त राक्षसों का संहार करता है। जो दूर से भी दूरतर स्थानों का अतिक्रमण कर चमकता है। जो समस्त भुवनों का पृथक् पृथक् निरीक्षण करता है और संयुक्त रूप में निहारता है। जो तेज पुञ्ज प्रकाश स्वरूप देव इस लोक लोकान्तर के परे प्रगट रहता है, वही हमें समस्त ज्ञात, अज्ञात, अहितकर्त्ता, शत्रुओं से मुक्त करके परिपूर्ण शक्तिसम्पन्न बनायें।

"भ्रातव्यक्षयणम्" (२।१८) ये चातनगण विधि में हैं। इस सूक्त से अभिचार कर्म में (सरपते) मुञ्चशर आदि की समिधायें, इन्द्र जौ, जौ, काले धान, काले तिल, कांगनी, कौदों सवां, सत्तू मकरादि चूर्ण से होम करें।

कां० २ सू० १८ चातनः। अग्निः। द्विपदम्। साम्नी वृहती। उपर्युक्त विधिना, पूर्वोक्त कर्मज व्याधि निवारणे चातनगण कर्मषु च, भेषज्यानुमन्त्रणे, मार्जने, अभिमर्शने होमे च विनियोगः।

भ्रा॒तृ॒व्य॒क्षय॑णमसि भ्रातृ॒व्य॒चात॑नंमे दाः स्वाहा॑ ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनंमेदाः स्वाहा ।।२
अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ।।३
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनंमे दाः स्वाहा ।।४
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनंमे दाः स्वाहा ।।५

कां० २ सू० १८ "भ्रातव्यक्षयण" हे परमेष्ठिन् ! आप शत्रुसंहारक शक्तिसम्पन्न हैं, मुझे भी वही बल दो। १-आप विद्वेषियों, जनद्रोहियों की विनाशक शक्ति सम्पन्न हैं। मुझे भी वही बल दो। ३-आप निर्बलता निर्धनता विनाशक बल से युक्त बली हो मुझे भी वह बल प्रदान करो। ४-आप रक्त शोषक मांस भक्षकों राक्षसों के विनाशन की शक्ति से सम्पन्न हैं। अतः मुझे भी वह बल दो। ५-हे प्रभो ! आप आसुरी वृत्तियों को दूर भगाने की शक्ति से सम्पन्न हैं, मुझे भी वह बल प्रदान करो। मैं भी आत्मसमर्पण करता हूं।

"शंनोदेवीपृश्निपर्णी" (२।२५) चातनगण कार्यों में है। तथापि कुष्ठ, सभी उन्माद, दाद, बिसर्पक, शिरोरोग-मृगी, हिस्ट्रिया, ग्रहिणी (आतों) के दोष, गर्भक्षय-गर्भ स्राव आदि, एवं पिशाच आदि से उत्पन्न समस्त दोषों में पृश्निपर्णी [पिठवन] (चित्रपर्णी) औषधि को पीसकर गो-घृत के साथ लेपें। दुग्ध-घृत, मधु के साथ सेवन करें। इसके साथ पिप्पली-वरण [विल्व] भी मिलावें तो विशेष उपयुक्त होता है "अघद्विष्टा" (२।७) "वरणः" (६।८५) पिप्पली (६।१०९) इन सूक्तों के साथ अभिमन्त्रित कर छींटे दें, धोयें, स्नान के जल में डाल गर्म कर स्नान करें, लेपें। [कौ० ४।२]

कां० २ सू० २५ चातनः। पृश्निपर्णी वनस्पतिः। अनुष्टुप् ४ भुरिक्। उपर्युक्त विधिना कर्मज व्याधि भैषज्ये विनियोगः। वरण काश्मीर में रागनादेवी पीठ पर होता है।

शंनोदेवीपृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः। उग्राहिकण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ।।१
सहमानेयंप्रथमापृश्निपर्ण्यऽजायत। तयाहं दुर्णाम्नां शिरोवृश्चामि शकुनेरिव ।।२
अरायमसृक्पावानं यश्चस्फातिं जिहीर्षति। गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ।।३
गिरिमेनाँ आवेशय कण्वान् जीवितयोपनान्। तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ।।४
पराच एनान् प्रणुद कण्वान् जीवितयोपनान्।
तमांसियत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ।।५

कां० २ सू० २५ "शन्नोदेवीपृश्निपर्णी"—(शालिग्रामनि घन्टुभूषण पृ० २७४, २७५) पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, तन्वी, क्रोष्ठुकपुच्छिका, त्रिपर्णी, पूर्णपर्णी, कलसी, सिंहलांगुली, चित्रपर्णी, आंध्रिवल्लिका, क्रोष्टुविन्ना, सिंहपुच्छी, कलशी, धावनी, गुहा, पिष्टपर्णी, लाङ्गली, क्रोष्टपुच्छिका, क्रोष्टुकमेखला, दीर्घा, शृगालवृन्ता, सिंहपुच्छिका, दीर्घपत्रा, अतिगुहा, घष्टिला, चित्रपर्णिका, कलसि, क्रोष्टुपुच्छी, कदला, कंकशत्रु, चक्रकुल्या, चक्रपर्णी, शीर्णमाला, महागुहा, शृगालविन्ना, धमनी मेखला, लांगुलिका, ब्रह्मपर्णी, दीर्घपर्णी सिंहपुष्पी, पृष्टिपर्णी, अंघ्रिपर्णी, धावनी, विष्णुपर्णी – नामों वाली कही गई है। हिन्दी में इसे पिठवन, पिठौनी, डावडा, दौला, पृश्निपर्णी भी कहते हैं। इसके गुण—त्रिदोषनाशक, वीर्यजनक, गरम, मधुर, सारक तथा दाह, ज्वर, श्वास, रक्तातिसार, रक्तचाप, तृषा और वमन कारक होती है। यह ग्राही, कफ, पित्तनाशक है। पिटवन-पश्चिम और बङ्गदेश में अधिकता से मिलती है। प्रायः दक्षिण में अभाव है। इसके पत्ते गोल, वेलदार, फूल गोल, सफेद कुछ नीले जटायुक्त होते हैं। इसकी मात्रा ३ आने भर की है। व्यवहार जड़ का होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परन्तु अभाव में इसकी बेल का ही किया जा रहा है। यह कटु, उष्ण, तिक्त तथा अतिसार, खाँसी, वात, रक्त, ज्वर, समस्त उन्मादों, मृगी, हिस्टिया और दाहनाशक औषधि वर्णित है।

इसको संलग्न मन्त्र से अभिमन्त्रित कर लेनेपर यह अमोघ वाह्मी शक्ति सम्पन्न दिव्य बूटी, समस्त रोग निवारिणी हो जाती है। भाव, पू. १भाग गुडूच्यादि वर्ग) गुण त्रिदोषघ्नी, वृष्योष्णा मधुरासरा, हन्तिदाहज्वरश्वासरक्तातिसार तृड्वमीः ।। यह पाण्डुरोग, क्षय रोग, रक्तपित्तादि रोग निवारक भी है। यह अथर्व वेद की चरणव्यूह (चारण वैद्या) शाखा अर्थात आयुर्वेदिक विधि है। शौनकीय शाखा विधि में औषधियों को विधिवत पुनर्वसु नक्षत्र में पूजा कर निमन्त्रित करने के उपरान्त पुष्य नक्षत्रों में ही खोदकर ले आना, अभिमन्त्रित करना और विविध रोग निवारणार्थ एकाकी औषधि के सेवन मात्र का ही प्राविधान है, अर्थात् एक समय में एक ही औषधि उपयुक्त, पूर्ण लाभप्रद होती है। यह शौनकीय शाखा विधि में वर्णित समस्त औषधियों के लिये समझें, इस ग्रन्थ में यहाँ अध्याय १ तथा अन्यत्र जो औषधियों के उल्लेख है, शौनकीय शाखोक्त औषधियाँ हैं। चारण वैद्या शाखा, आयुर्वेदिक उद्भट मनीषिगण इसे अपनी शास्त्रीय विधियों के ऊहापोह के उपरान्त प्रयोग में लें तो यह स्वर्ण में सुगन्धि जैसी अमोघ औषधि सेवन विधि सिद्ध होगी।

अर्थः—१. देवी पृश्निपर्णी औषधी हमें सुखदायिनी और समस्त कर्मज भव-व्याधियों को सन्तापित करती है, क्योंकि वह अति प्रचण्ड व्याधि मूलोच्छेक है। मैं प्रार्थना, अभिमन्त्रणादि के साथ उस बलवन्ती औषधि का सेवन करता हूं। यह समस्त रोगों को दूर ही से भगाती है। २. समस्त कर्मज भवव्याधि निवारण में सर्वाग्रणी यही औषधि है। इस औषधि से समस्त भयावह दुष्ट रोगों का शिर ही कुचलता हूं। जैसे छोटे पक्षी का शिर कुचलते हैं। ३. हे पृश्निपर्णी ! शोभा विनाशक, रक्तपानकर्त्ता, पुष्टि सर्वनाशक, कच्चा मांस या गर्भ को खाने वाले (उदर में आँतों में काटने वाले) रोग मूलवीजों का सर्वनाश कर और उन पर विजय प्राप्त कर। ४. हे देवी पृश्निपर्णी औषधि ! इन जीवनीय तत्वों के विनाशक रोग बीजों को, जिनको ये सताते हैं उन्हें उच्च शृङ्गों पर निवास और पृश्निपर्णी के सेवन से रोग बीज जलाकर उनका मूलोच्छेदन कर। ५. प्राण (वीर्य एकादश प्राण और शरीर) को विनष्ट करने वाले रोगोत्पादक मूल बीजों को नीचे के मार्गों से दूर करो, जहाँ अज्ञान रूप अन्धकार (प्रकाश तथा सूर्य किरणों का सर्वथा अभाव) रहता है, वहीं पर रक्तशोषक, मांस भक्षक ये रोग बीज उत्पन्न होते हैं। अतः ज्ञानज्योति, सूर्यज्योति को नित्य निरन्तर जगाते रहना, जीवों के उभय लोक-लोकान्तरों के कल्याण का एक मात्र मार्ग है।

'तान्त्सत्यौजा' [४।३६] तथा 'त्वयापूर्वम्' [४।३७] चातनगण कर्मविधि में है [४।१] 'ये अमावास्यायाम्' [१।१६] में वर्णित अमावास्या की अर्द्ध रात्रि में मांसाहारी पिशाचादि से रक्षा के विषय में श्रुतिः 'निशितायां हि रक्षांसि प्रेरते सम्प्रेर्णान्येवैनान्नि हन्ति' तै०सं०२।२।२।३। भूतग्रहादि भैषज्यार्थ (शमी) जाटी या छौंकरा "वृजभाषा" वृक्ष के पत्ते व फली मिला-गृहग्रहीत रोगी को खिलायें, बाँधें, सोने के स्थान; चारपाई के चारों ओर; छिड़कें। इसकी विशेष सामिग्री 'त्वयापूर्व' [४।३७] के साथ वर्णित है, बट-पीपल-पिलखुन-जामुन-गूलर-ढाक-अशोक-छौंकर [शमी) सैमर-बन्ना, अर्जुन-कत्था, रक्तचन्दन-श्वेतचन्दन देवदारु-चीड़वृक्ष-अश्वगन्ध-चित्रपर्णी-मांसपर्णी-मछेछी-अपमामार्ग-ऊँटकटेरा-कटेहरी-नदीफेन-समुद्रफेन-लोहफेन-लोहभस्म-भैंसागूगल-धतूरा-पिप्पली-अजश्रृङ्गी-वच-सहदेवी आदि उन्माद नाशक द्रव्य। से होम करें, इन्ही से युक्त जल से इनका लेप, स्नान, छींटे, मर्दन आदि करें।

१-१० चातनः। सत्यौजा अग्निः। अनुष्टुप्, ९ भुरिक्। उपर्युक्त विधिका, कर्मजव्याधिभैषज्ये आग्नेयास्त्र प्रयोजने च विनियोगः।

तान्त्स॒त्यौजाः॒ प्र द॑हत्व॒ग्निर्वै॑श्वान॒रो वृषा॑।

यो नो॑ दु॒रस्या॒द् दिप्सा॒च्चाथो॒ यो नो॑ अराति॒यात् ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यो नो दिप्सदुद्दिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति । वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपिं दधामि तम् ।।२
य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वास्तान्त्सहसा सहे ।।३
सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे । सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ।।४
ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् । नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ।।५
तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ।।६
न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ।।७
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ।।८
ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव । तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ।।९
अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ।।१०

काण्ड ४ सूक्त ३६ "तान्तत्यौजा:":—जो हमें दुर्गतिपूर्ण अवस्था में ढक लें नाश करे, जो पशु सम व्यवहार करे, हे सत्यबल पूर्ण वैश्वानर देव ! उन्हें आप भस्म कर डालिए। २–जो हम निरपराधियों का भी नाश करने की चेष्टा करें, जो नाश करने वालों का उत्पीडन करता है, मैं उसे विश्वसंचालक तेजोमय देव की व्याल करालदंष्ट्रा में रखता हूँ। ३–जो घरों में अनर्गल कोशा, प्रत्याक्रोशों में, प्रकाशहीन अमा की निशा (अज्ञान पूर्ण आवृत्त अन्धकार पूर्ण अवस्था) में दूसरों के घातक, रक्तपान कर्त्ता एवं मांस भक्षकों को सभी को, अपने बल से पराभूत करता हूं। ४–**ऋषि उद्घोषः**—मैं ब्रह्म बल से पिशाचों का पराभाव करता हूं। इनका धन छीन लेता हूं। समस्त दुष्ट कर्मी नृशंसों का ही नाश करता हूँ। हे आकूती देवी ! मेरा यह दृढ़ संकल्प सफल हो। ५–जो दिव्य सन्त मनीषि वर्ग का अपहास करते हैं। सूर्य गति को अपनी गति व्यवहारों से मापते हैं, तुलना करते हैं, उनसे नदी, पर्वतों की गुहाओं, शिखरों पर, उन पशु वृत्ति से स्वछन्द विचरने वालों से मिलते हैं। ६–जैसे गोपालकों (ग्वालाओं) को व्याघ्रादि से भय होता है, वैसे ही मैं पिशाचों को सन्तप्त करता हूं। जैसे सिंह को देखकर कुत्ते घबराते हैं, उसी भाँति मेरे प्रभाव से, वे दुष्ट, नृशंसजन अपनी रक्षा का स्थान प्राप्त नहीं कर सकते। ७–मैं जिस ग्राम में घुसता हूं, उसमें पिशाचगण नहीं ठहर सकते, न चोर, न जङ्गलों में छिपने वाले वधिक डकैतों से ही सम्पर्क कर पाते हैं, इन कारणों से, वहाँ से ये सभी पिशाचादि नष्ट प्रायः हो जाते हैं ८–मेरा यह दुस्साध्य, कठोर तपोबल, जिस ग्राम में प्रविष्ट होता हैं, वहीं से पिशाचों का सर्वनाश हो जाता है। तदनन्तर वहाँ पाप का नाम लेने वाला भी नहीं मिलता है। ९–जैसे मच्छर हाथी को क्रुद्ध करते हैं। उसी प्रकार ये बकवासी मुझे क्रुद्ध करते हैं, उन्हें कीट, भिनगुओं के तुल्य ही, जनता में दुःख बढ़ाने वाला मैं समझता हूं। १०–वे दुर्गतियों में पड़े, रस्सों से जैसे घोड़े बाँधे जाते हैं, और उनसे खुल नहीं पाते हैं, उसी भाँति जो मलिन आत्मायें, मुझे अकारण क्रुद्ध करते है, वे भी पाशों से नहीं छूट पाते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ४ सू० ३७ वादरायणिः। (मेंढासींगी) अजश्रृङ्गी १ अप्सरसः १-२, ६;१० औषधीश्रृङ्गी ३-५ अप्सरसः ७-१२ गन्धर्वाप्सरसः। अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसानाषट्पदा त्रिष्टुप्, ५ प्रस्तार पङ्क्तिः, ७ परोष्णिक, ११ षट्पदा जगती, १२ निचृत्। समस्त विनाशक रोग कृमि निवारणे कर्मज व्याधिभैषज्ये भेषज, अनुमन्त्रणे, मार्जने, उपस्थाने होमे च पूर्वोक्त विधिना, उपर्युक्त चातन, रक्षोहणगण कर्मषु विनियोगः।

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे। त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥१

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे। अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥२

नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम्। गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगन्धिः प्रमन्दनी।

तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः। तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति।

तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५

एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्याऽवती। अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥६

आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः। भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥७

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः। ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥८

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः। ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥९

अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान्। पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१०

श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः।

प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्याऽवता ॥११

जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम्। अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥१२

अम्बादिगण में उल्लिखित मन्त्र "दिव्योगन्धर्वो" काण्ड २ सूक्त २ मातृनामगण में होने से मातृनामागण के विहित समस्त कर्मों में, तथा गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा, भूतग्रह, पिशाच, ब्रह्मराक्षस; यक्षादि समस्त के निवारण में; तथा जहाँ घी, मांस, मधु, हिरण्य, धूल, पाषाण विष्टा आदि या घोर वर्षा या अनावृष्टि हो या बन्दर, श्वान सर्प आदि के रूप में दृष्टिगोचर हों या मूर्ति रोये, हँसे; यक्ष के अद्‌भुद्दर्शनादि दोष हों; मेढ़क आदि के समान श्रृगाल आदि के वदन दिखाई पड़े। वा आकाश में धुंवा सा छाया रहे, ऐसी शाम्बरी माया हो दिशायें स्तब्ध हों उलूक दिन में बोलें। सभी प्रकार के भयावह अनिष्टकारी अमाङ्गलिक अपशकुन हों इन सभी की शान्ति के लिए घ। युक्त शान्ति औषधियो से (जो पूर्व वर्णित हैं) होम करें। उपर्युक्त ग्रहगृहीत के शिर पर दाभों की इण्डली रखकर उस पर नवीन मिट्टी का कपाल रक्खें; उसी कपाल में दक्षिणाग्नि में अभिचार कर्म में ग्राह्यसमिघाओं पर चौरास्ता पर या प्रधान देवता के समक्ष बिठाकर रात्रि (निशा) में हवन करें। उस कपाल को मूंज के छीकें पर रखकर जङ्गल के अश्वत्थ वृक्ष पर जहाँ गृद्ध, चील, बाज आदि पक्षी बैठते हों लटका दें। (कौ० सू० ४।२) मन्त्र इस ग्रन्थ के अध्याय २ में पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रहयाग में प्रधान होम के उपरान्त इसी सूक्त से होम करें। शान्ति कल्प १६:—यथाशान्ति-कृत्या दूषणीः (२।११); (४।१६); (४।१८); (१६); (५।१४;३१); (२।५); (१०।१), चातनैः (१।७;८), (२।१४;१८;२५); (३।५) (१।२०;३६;३७), (५।२६); (८।३;४); मातृनामा (२।२); (६।१;११); (८।६); वास्तोष्पत्यैः (३।१२); (६।३;६६), (१२।१) से होम करें। यह पूर्वोक्त ३० शान्तियो के तन्त्रभूत महाशान्ति में हैं इस सूक्त तथा इस गण, इन गणों से होम के उपरान्त पूर्व अभिमन्त्रित शान्ति घट; प्रणीता जल से कुशा; अपामाग से छीटे दें यथा—चातनो मातृनामा च वास्तोष्पत्योऽथ पाप्महा'' न० क० २३ तथा च अश्वमेध याग में; ब्रह्मा; सवत्सरान्त में प्रयुज्यमान अश्व को; अनुमन्त्रित करें। वै० ७।१ तथा वृहदारण्यक (१।१।१) ''उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य—आदि'' अम्बादिगण में उल्लिखित यह मन्त्र ''दिव्योगन्धर्वो'' अ० (२।२) के सन्दर्भ में अनिवार्य विनियोग है। अभिभूत रुग्ण को मूज की रसियों के पाशों से ग्रन्थियों को बाँध लें और उपरोक्त गण की कार्यवाही के साथ ''इमं मे अग्ने''* (६।१११) को पाठ कर खोलते जावें। यह समस्त उन्मादों में सृगी (हिस्ट्रिया) आदि कर्मज व्याधियों में सफलप्रद है। ''यौति माता'' (८।६) भी इसी प्रकार हैं, ये तीनों (अर्थसूक्त) कहे गये हैं। कौ० ४।११ सीमन्तोन्नयन पुंसवन में श्वेतपीत सरसों अभिमन्त्रित कर गर्भिणी के बाँधें। कां० २ सू० २ * आँजनघास भाषा में

अथ कां० २ सू० २ ऋचः १—५ मातृनामा ऋषिः। गन्धर्वाप्सरस देवता। त्रिष्टुप्, १ विराड्जगती, ४ त्रिपाद्वि राण्नाम् गायत्री, ५ भुरिगनुष्टुप्। उपर्युक्त विधिना, विहित कर्मषु विनियोगः।

[६।१११—१ मातृगण] १—४ अथर्वा। अग्निः। अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्। उन्मत्ततादिव्याधिषु कर्मजश्चव्याधि बन्धन, आवागमनादि विमोचने जीवस्यस्वस्थतापुरस्सर मुक्ति प्राप्तये विनियोगः। मं०अ०२ व ३में पढ़े देखें

कां० ६ सू० १११ 'इमं मे अग्ने' तथा 'गर्भदोष निवारणम्' [८।६—१ मातृगणः] अध्याय ३ ये वृहच्छान्तिगण में पढ़ें। पिशाचक्षयणम् [४।२०—१] मातृनामा [पूर्वोल्लिखित] इतिमातृगणः।

कां० १ सू० ७। १-७ चातनः। अग्निः (जातवेदाः) ३ अग्नीन्द्रौ। अनुष्टुप्, ५. त्रिष्टुप्। यातुधानादि विनाशने-आग्नेयास्त्रप्रयोजने चातनगणकर्मषु, कर्मजव्याधिभैषज्ये, मार्जने उपस्थाने होमे च विनियोगः।

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम्। त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन्। अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२
वि लपन्तु यातधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः। अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३
अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान्। ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥४
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५
आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे। दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह। अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७

कां० १ सू० ७ ''स्तुवानमग्न''—हे अग्ने! स्तुति करने वाले घातक यातुधानों को भी यहां पकड़ला क्योंकि हे देव! वन्दना करने पर आप हनन करने वाले भी हो जाते हैं। २—हे परमश्रेष्ठ स्थानास्थित जातवेदाग्ने! आप सयमशील हैं। समर्पित हवी का भोजन कर और यातुधानों को रुला। ३—जो यातुधान इधर-उधर भटकते रहते हैं,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और घात-पात करते रहते हैं वे विलाप करें। और अब हे अग्ने ! यह हवि आप और इन्द्र स्वीकार करो। ४—प्रथम अग्नि प्रारम्भ करे, तदनन्तर बाहुबल सम्पन्न इन्द्र विशेष रूप से प्रेरणा करें। जिसे समस्त यातुधान आकर बोलें, कि यह मैं हूं। ५—हे जातवेदाग्ने ! हम तेरा यह पराक्रम देखें। हे मनुष्यों के पथ प्रदर्शको यातुधानों को, हमारा दृढ़-निश्चय विशेषरूप से कहिये। तुझ से पूर्व तपे हुए, वे सभी यह कहते हुए हमारे पास आयें। ६—हे जातवेदाग्ने ! प्रारम्भ कर, हमारे कल्याणार्थ ही आप प्रकट हुए है। हे अग्ने ! आप हमारे सन्देशवाहक के रूप में करुणाक्रन्दन कराओ। ७—हे अग्ने ! तू यातुधानों को बांधकर यहाँ ले आ और इन्द्र अपने वज्र से इनके मस्तिष्क काट डालें।

कां० १ सू० ८ [१-४] चातनः : -२ बृहस्पतिः अग्निषोमौच; ३-४ अग्निः [जातवेदाः]। १-३ अनुष्टुप्० ४ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप। पूर्वोक्त चातनगण कर्मषु, कर्मज व्याधि भैषज्ये, मार्जने, उपस्थाने, होमे च विनियोगः।

इ॒दं ह॒विर्या॑तु॒धाना॑न् न॒दी फेन॑मि॒वा व॑हत्। य इ॒दं स्त्री पु॒मान॑क॒रि॒ह स स्तु॑व॒तां जनः॑ ॥१

अ॒यं स्तु॑वा॒न आग॑मदि॒मं स्म॒ प्रति॑ हर्यत। बृह॑स्पते॒ वशे॑ ल॒ब्ध्वाग्नी॑षोमा॒ वि वि॑ध्यतम् ॥२

या॒तु॒धान॑स्य सोमप ज॒हि प्र॒जां नय॑स्व च। नि स्तु॑वा॒नस्य॑ पातय प॒रम॒क्ष्युताव॑रम् ॥३

यत्रै॑षामग्ने॒ जनि॑मानि॒ वेत्थ॒ गुहा॑ स॒ताम॒त्रिणां॑ जातवेदः।
तांस्त्वं ब्रह्म॑णा वावृधा॒नो ज॒ह्येऽषां शततर्हमग्ने ॥४

कां० १ सू० ८ 'इदं हविर्यातु' नदियाँ जैसे फेन को ले आती हैं, यह हवि, यातुधानों को यहाँ ले आवे। जो पुरुष या स्त्री ऐसे पाप करते रहे हैं, वे मनुष्य तेरी प्रशंसा करें। २—प्रशंसक यह दस्यु आया है, इसका स्वागत अवश्य करो। हे बृहस्पति देव ! इसको वश में रखकर अग्नि और सोम इसका विशेष निरीक्षण तथा नियन्त्रण करे। ३—हे सोमपान करने वाले ! दुष्टों की सन्तानों को मार अथवा सन्मार्गी बना तथा प्रशंसा करने वालों का श्रेष्ठ और निकृष्ट नेत्र नीचे कर। ४—हे जातवेदाग्ने ! जहाँ कहीं गुफा में इन भटकने वाले सज्जनों के कुलों और सन्ततियों को आप जानते हैं, उनको ब्रह्मबल से बढ़ाता हुआ इनके अनन्त कष्टों का नाश कर।

ब्रह्मराक्षसादि शान्ति—"आपश्यति" (४।२०) इससे ब्रह्मग्रह आदि से उत्पन्न भय निवारणार्थ चातनगण में वर्णित कार्य करें तथा 'सदपुष्पा" नाम की त्रिसन्ध्या मणि-अभिमन्त्रित कर धारण करायें। कौ० ४।४ तथा ४।१ इनके साथ ही 'शनो देवी पृश्निपर्णी" (२।२५); 'तान्त्सत्यौजा' [४।३६]; भी हैं। त्रिसन्ध्या मणि धारण से भूलोक, मध्यलोक अन्तरिक्ष तीनों लोकस्थित प्राणिजात साक्षात् दिखाई देने लगने से जागरूकता सर्वज्ञता आ जाने से ब्रह्मग्रह आदि स्पर्श नहीं करते हैं। इसके शोभायमान पत्ते जैसे गरुण पङ्ख] की भाँति कनिष्ठिका अँगुलि जैसी कृष्णमण्डल वाली 'सदपुष्पा' नामक औषधि हैं। मोर्छली [भाषा] तथा ममीरी ये दोनों हैं। फूल, त्वक् जड़ों को बांधें, पियें।

[अ४ कां० ४ सू० २०] १—६ मातृनामा। मातृनामा। अनुष्टुप् १ स्वराट्, ६ भुरिक्। मोरछली, ममीरी 'सदंपुष्पा' भैषज अनुमन्त्रणे, बन्धने, पाने, उपस्थाने दिव्यदृष्टि प्राप्तये, पिशाचादि क्षयणे मार्जने होमे च विनियोगः।

आ प॑श्यति॒ प्रति॑ पश्यति॒ परा॑ पश्यति॒ पश्य॑ति।
दिव॑म॒न्तरि॑क्ष॒माद् भूमि॒ं सर्वं॒ तद् दे॑वि पश्यति ॥१

ति॒स्रो दिव॑स्ति॒स्रः पृ॑थि॒वीः षट् चे॒माः प्र॒दिशः॒ पृथ॑क्।
त्वया॒हं सर्वा॑ भू॒तानि॒ पश्या॑नि देव्योषधे ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दि॒व्यस्य॑ सुप॒र्णस्य॒ तस्य॑ हासि क॒नीनि॑का । सा भूमि॒मा रु॑रोहिथ व॒ह्यं श्रान्ता व॒धूरि॑व ॥३
तां मे॑ सह॒स्राक्षो दे॒वो दक्षि॑णे॒ हस्त॒ आ द॑धत् । तया॒हं सर्वं॑ पश्यामि॒ यश्च॑ शू॒द्र उ॒तार्यः॑ ॥४
आ॒विष्कृ॑णुष्व रू॒पाणि॒ मात्मान॒मप॑ गूहथाः । अथो॑ सहस्रचक्षो॒ त्वं प्रति॑ पश्याः किमी॒दिनः॑ ॥५
द॒र्शय॑ मा यात॒धाना॑न् द॒र्शय॑ यातुधा॒न्यः । पि॒शा॒चान्त्सर्वा॑न् दर्शयेति॒ त्वा र॑भ ओषधे ॥६
क॒श्यप॑स्य॒ चक्षु॑रसि शु॒न्याश्च॑ चतुर॒क्ष्याः । वीध्रे॒ सूर्य॑मिव॒ सर्प॑न्तं॒ मा पिशा॒चं ति॒रस्क॑रः ॥७
उद॑ग्रभं परि॒पाणा॑द् यात॒धानं॑ किमी॒दिन॑म् । तेना॒हं सर्वं॑ पश्याम्यु॒त शू॒द्रमु॒तार्य॑म् ॥८
यो अ॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑ति॒ दिवं॒ यश्चा॑ति॒सर्प॑ति । भूमि॒ यो मन्य॑ते ना॒थं तं पि॑शा॒चं प्र द॑र्शय ॥९

कां० ४ सू० २० 'आपश्यति:' हे दिव्यदृष्टि प्रदायिनी देवी ! [मौलश्री] तू वह सब प्रत्यक्ष देखती है। प्रत्येक पदार्थ को दूर ही से [अपरोक्ष से] निर्णायक रूप से पूर्ण रूप से देखती है। तू द्यौ लोक अर्थात् सभी को देखती है। २--हे देवि औषधे ! तीनों द्यौ लोक और ये पृथक् पृथक् छै दिशायें एवं इन समस्त प्राणी मात्र को मैं तेरी अमोघ सामर्थ्य से देखता हुं। ३—इस दिव्य सूर्य की लघु प्रतिमा ही तू है, वही तू भूमि पर पधारी है। जैसे कि नववधूटी रथ पर आरूढ़ होती है। ४—सहस्र नेत्री सूर्यदेव ने उस दिव्य दृष्टि को मेरे दक्षिण हस्त में प्रदान किया है, उसी की सामर्थ्य से मैं सब कुछ देखता हूं; जो शूद्र या आर्य हैं। ५—यातुधान अपने रूप को प्रकट कर अपने को न छिपा। हे सहस्रनेत्री देव ! आप इन यातुधान, राक्षस, पिशाचों के प्रति दृष्टिपात की कृपा करें। ६—मुझे यातुधानों को दिखाओ पिशाचिनियों को भी दिखा। हे औषधे ! तू समस्त पिशाचों को प्रकट कर इस हेतु तेरी शरण ली है। ७—तू महर्षि कश्यप का दिव्यनेत्र है, चार नेत्र वाली शुनी अर्थात् कुत्ती की भी तू ही आँख है। आकाश चारी सूर्य के तुल्य दिव्य सर्वान्तिर्यामिनी दृष्टि के ओझल में पिशाचों को न छिपने दें। ८—निन्द्य यातुधानों को मैंने बड़ी सतर्कता से आत्म-सरक्षण के साथ पकड़ पाया है। उससे मैं सभी को देख सकने में समर्थ हुआ हूं कि कौन अधम और कौनवन्दनीय श्रेष्ठजन है। ९—जो अन्तरिक्ष से चलकर द्यु लोक को पार करता है, उस पिशाच को दिखा। यह सब मोरछली के नीचे उसी के दानों की माला पर जप करने से सूक्त पाठ सूर्य उपस्थानादि करने से उसके पुष्पादि पञ्चाङ्ग की मणि को अभिमन्त्रित कर धारण करने से सुलभता से साध्य होता है।

"देवा इमम्" ६।३० से पौनसिरसवे पवालेने में मधु घृत, यव, हिरण्य, अभिमन्त्रित कर दें और इसी से अभिमर्शन जप करें। को. ८।७ प्रथम हल प्रारम्भ में करें।

[६।३०] १-३ उपरिबभ्रवः। शमी। जगती। २ त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पाच्छंकुमत्यनुष्टुप्। उपर्युक्त कर्मणि पापजनितारिष्ट निवारण, भैषज्ये, मार्जने, उपस्थाने, अभिमर्शने, होमे च विनियोगः।

दे॒वा इ॒मं मधु॑ना॒ संयु॑तं॒ यवं॒ सर॑स्वत्या॒मधि॑ म॒णाव॑चर्कृषुः ।
इन्द्र॑ आसीत् सीर॑पतिः श॒तक्र॑तुः कीना॒शा आ॑सन् म॒रुतः॑ सु॒दान॑वः ॥१
यस्ते॒ मदो॑ऽवके॒शो विके॒शो येना॑भि॒हस्यं॒ पुरु॑षं कृ॒णोषि॑ ।
आ॒रात् त्वद॒न्या वना॑नि वृक्षि॒ त्वं श॑मि श॒तव॑ल्शा॒ वि रो॑ह ॥२
बृह॑त्पलाशे॒ सुभ॑गे॒ वर्ष॑वृद्ध॒ ऋता॑वरि । मा॒तेव॑ पु॒त्रेभ्यो॑ मृड॒ केशे॑भ्यः शमि ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अ० कां० ६ सू० ३० 'यस्येदमारजः।' [६।३३] इन तीनों ऋचाओं से कृषि कर्मारम्भ में जायें दोनों जोतों को जुए में बांधें और दक्षिण वैल को प्रथम जुए में लगायें इसे जपते जावे पुनः दूसरे को लगायें। कर्त्ता प्रथम इसे जपता हुआ जोते और हारी [हलवाहक] को हल दे। उन तीन बार जोती कुड़ी [सीता] के अन्तों की [छोर की] ओर अग्नि स्थापन करे, भोग [पुरोडाश] से इन्द्रदेव का तथा स्थालीपाक से अश्विनी कुमारों का होम करे, बैलों की पूजा कर कच्चा गोला फोड़ें गोले का प्रसाद सबको दें स्वयं भी लें। और उसी में कुड़ी [सीता] में दबा दें। कौ० ३।६। सर्व कर्मफल लाभार्थ [६।३३] व 'अथर्वाणम्' [७।२] अदिति द्यौरदिति [७।६] से इन्द्रदेव का जप-उपस्थान होम करें। कौ० ७।१०। हल भटने या जुआ फटने के अशकुन शान्ति में इसी से शान्ति जल से छींटे दें। कौ० १३।१४।

इन्द्रस्तवः। [६।३३] १-३ जाटिकायनः। इन्द्रः। गायत्री, २ अनुष्टुप्। [चातनगण]

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः। इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥१
नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः। पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥२
स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसंदृशम्। इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥३

मृगी का उपचार—(१) बच, खुरशानी २ तोला शहद के साथ लें, पथ्य दूध भात खावें। (२) ब्राह्मी, बच, कूठ, शंखपुष्पी समभाग लें चूर्ण कर ८ आना भर गौ के घी में सेवन करें। पथ्य उपरोक्त हैं।

परमारोग का उपचार—१. शंखपुष्पी इलायची शुद्ध शिलाजीत समभाग मिला प्रातः सेवन करें। २. गिलोय का रस शहद में मिला सेवन करें।

बवासीर अथवा भगन्दर—बड़ी दुद्धी में लौंग मिला सेवन करे, या घी के साथ पिये तो खूनी बवासीर ठीक हो जाता है।

कसौजी—बूटी के पत्तों से विष, जड़ से सर्प; फल से व्याघ्र, और फूलों से रतौंधी दूर होते हैं।

गुंजा—(चोटनी :—पुष्य नक्षत्र रविवार, या रोहिणी नक्षत्र शुक्रवार, अथवा कृष्णाष्टमी में हस्त हों, तब रात्रिमें १२वजे पूजाकर धूप दीपकर उसे उखाड़ लायें दूध में धोकर रख लें। उसे कां १ सू० ३४ "इयं वीरुन्मधुजाता" (मेधा जनन प्रकरण में है) से अभिमन्त्रित कर पूजा में रख लें। प्रयोग से लाभ—लाल रेशमी धागे में रेशमी वस्त्र से मढ़कर बाँधे तो भूत, यातुधान, राक्षस, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और उनके उन्माद दूर होते हैं। २ घिसकर चाटने सें काले नाग का विष दूर होता है। ३. इसी को मुंह में रख कर सभा, परीक्षा, वाद विवाद, कम्पिटीशनों में जाएँ और वार्तालाप प्रारम्भ होने पर अथवा परीक्षा पत्र प्रारम्भ करने पर पुनः मुंह में डाल लें, तो सब सभासद उसकी हाँ में हाँ मिलायें; अर्थात् सेवन कर्ता का पक्ष पुष्ट करते हैं। ४. तामे में मढ़कर कमर में बांधने से वन्ध्या के गर्भ विकार, गर्भस्रावादि स्थगित हो सुन्दर बालक होता है। ५. घिसकर काजल की भाँति नेत्र में आंजने से सभी को सम्मोहित कर लेता है। ६. घिसकर अंजन करने से, भूत प्रेत यक्षादि वश में होकर आज्ञा पालन करते हैं। ७. घिसकर रुई में लपेटें वाती बना तेल में भिगोवें ग्रन्थ के अध्याय २ की विधि से ज्योति स्थापित करे तो मृत्युलोक, यम की सभा, देव सभा दर्शन करे और सब का प्रीति भाजन होता है। ८. ग्वालपाठा और घी में मिला कर घिस कर शरीर पर लेप करे तो हठधर्मी को भी नतमस्तक कर देता है। ९. बकरे के मूत्र में घिसकर दोनों हाथों में लेप कर सुखा लें उन्हें शिर पर सहस्रारचक्र ओर आज्ञाचक्रों पर ३ वार परिक्रमा क्रम से फिरा अभिमन्त्रित करे तो भूत की, दूर की बातें ऐसा बताता है मानो साथ ही वह हो। १०. गोरोचन और लोंग के साथ घिसकर शत्रु या विद्वेषी का नाम पत्र पर लिखे तो तुरन्त मित्रता कर आधीन हो जाता है। बेल या बेलपत्र के रस में घिसकर अञ्जन बना नेत्रों में अञ्जन करें तो यातुधान, राक्षस सभी को पहिचाने और वे उसकी दृष्टि पड़ते ही स्थान व्यक्ति का परित्याग कर भाग जावे। ११. खांड के साथ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घिसकर धोकर तलवों में लाकर सुखा ले, नेत्र बन्द होते की सैकड़ों कोस उड़ जावे। १२. पान की पीक में घिसकर नेत्रों में आँजें और जिस ओर जिस किसी पर क्रूर दृष्टिपात करे तो वह रोगी हो जाता है। डाक्टर वैद्य भी छोड़ कर भाग जाते हैं ठीक नहीं हो पाता। १३. गुलाब जल में घिसकर नाभि में लेप करे तो ४ प्रहर में उसका शरीर चैतन्य हो जाता है। १४. तदनन्तर तेल में घिस कर रात्रि में नेत्रों में आंजे तो दैवी दृष्टि हो जाती है, पाताल का प्रेतद्रव्य सूक्ष्म शरीरियों को देखने में समर्थ होता है। १५. व्याघ्रिन के घी में घिस कर शरीर पर चुपड़कर युद्ध में जाये, तो अस्त्रशस्त्रों की घोर वर्षा में भी शरीर पर आच नहीं आती है। १६. तिल के तेल में घिस कर शरीर पर मलें तो रण में विजय प्राप्त कर सारे संसार का दर्शन करने में समर्थ होता है। १७. अलसी के तेल में घिस कर शहद मिला कर लेप करे तो कटा, पाषाणादि की चोट से फटा शरीर कन्चन कान्ति वाला हो। १८. मुर्गी की वीठ में घिसकर ७ दिन भी नेत्रों में आंजन करे तो दृष्टि हीन पुनः दृष्टि चौगुनी प्राप्त कर लेता है। १९. कस्तूरी के साथ घिस कर प्रातः काल नेत्रों में अन्जन करे तो संसार का नृत्य, काल रूप दृष्टि गोचर हो जाता है। २०. गन्धक के साथ मिला कर घिस कर वीसों नाखूनों में लगायें तो कुमार्गगामी नर या नारी जो भी हों उन पर दृष्टि पड़ते ही वश में हो जाते हैं। २१. निज मूत्र में घिस कर नेत्रों में आंजन करे तो दिव्य राग रागिनी का बोध प्राप्त करे। २२. गो मूत्र में घिस कर पिये तो रुधिर विकार कुष्ठ दाद छाजन आदि रक्त विकार जनित दाग दूर हो जाते हैं। २३. गंगा जल में घिसकर दोनों नेत्रों में आँजने से देवत्व प्राप्त करे उस पर पुष्प वर्षा हो अचिन्त्य आश्चर्यजनक दिव्य लाभ हो।

७	२	९
८	६	४
३	८	५

यह शौनकीय शाखा विधि वर्णित है।

यन्त्र को भोज पत्र पर हुल हुल के रस से उसी की लेखनी से लिख कर (प्राण प्रतिष्ठा अध्याय २ में देखें) नीले रेशमी धागे में या सन के धागे में जाले में बांधे तो तिहय्या, चौथय्या बार बार लौट कर आने वाले जूड़ी के ज्वर से मुक्ति होती है। इसे चन्दन से भी लिखा जाने का उल्लेख है।

गठिया रोग उपचार—आधा सेर तम्बाकू को डेढ़ सेर पानी में सायं भिगो दे प्रातः मथ कर छान कर उसी में १ सेर तिली का तेल मिला कर मन्द अग्नि से पानी जला दें तय शेष को छान कर बोतल में भर लें गठिया, जोड़ों व कमर का दर्द जड़ से चला जाता है।

श्वेतवाल चिकित्सा:—अति क्रोध, शोक परिश्रम से पाचक पित्त शिर में चढ़कर काले वालों को असमय में ही सफेद कर देता है। यही "पलितरोग" उपचार—लोह चूर्ण १ तो०; हरड़ १, वहेड़ा १, आमला २, आम की गुठली ५, चूर्ण कर लोह पात्र में ३ दिन भिगो दें। उसे बालों पर लेपें। **खालित्व (गञ्ज):**—कुटकी १ छ० को कड़ुये परबल के पत्तों के रस में पीस कर लेपें अथवा तिल के फूल. गोखरू. बराबर लें, पीसकर घी और शहद में मिला लेपे तो बाल फिर से जम जाते हैं। हाथी दांत की राख रसौत रस. बकरी के दूध में पीसकर लेपें, ये अनुभूत है। **"मुंहासा रोग"** महुआ की छाल. कूठ. उड़द काले. सेंधा नमक समभाग पीसे शहद के साथ लेपें। **कानों की फुड़ियां:**—१. रुई से फोआको कान में लगाये। २. **अग्निरोहिणी**(प्लेग,ताऊन)उपचारां लंघन,ज्योंक लगाकर रक्त निकलवायें, जुलाब दें, दाग दें. अथवा नागफनी का गूदा गर्म कर पीसकर लेपें। **नेत्र रोगों का उपचार:**—१ रसौत को स्त्री के दूध में घिसकर लगायें। २ गौघृत की दो २ बूंदें डालें, ३ पीली सरसों के तेल की २।२ बूंदें डालें, । ४ शहद आंज़ें। ५ तलवों में तेल मलें और कानों में भी डालें। ६ सफ़ेद सांठ की जड़ गो दुग्ध में घिसकर अञ्जन करें। ७ सांठ की जड़ को तेल में घिसकर लगायें तो तिमिर दूर हो। ८ बबूल के पत्तों का काढ़ा बना शहद मिला कर आंजे तो ढलका दूर हो। ९ छोटी पीपरि, सेंधा नमक, गोल (श्वेत) मिर्च, रसौंत, सुरमा, समुद्र फेन, कुब्जा की मिस्त्री. लाल सांठ (पुनर्नवा) हल्दी, लाल चन्दन, शहद, नीलाथोथा, हर्र, मनशिल नीम के फूल. पत्ते, लोध, लाल फिटकरी, शंख का पेंदा, भीमसैनी कपूर ये सभी समभाग लें, पीसें कपड़छन करें। तामें के वर्तन में तामे के ही सोटे या पात्र से, उसी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में दूध और शहद डालकर ३-घंटे खरल करें सूख जाने पर नीबू के रस में घोटें, पुनः अदरक के रस में घोटें, शुष्क होने पर शीशी में भर लें जस्ता की सलाई से आंखों में अञ्जन करें। नेत्रों के सभी रोगों में सफल "अमृताञ्जन" है। १० सौंठ, मिर्च (सफेद) पीपरि पीसकर, शहद के साथ अंजन करें तो तिमिर दूर होता है।

महा असाध्य कुच्छदाद, खाज, छाजनादि का उपचार:—श्वेत दूर्वा, सेंधा नमक, पमार के बीज वन-तुलसी, समभाग लें, कांजी या खट्टे तक्र (मठ्ठा) में पीसकर लेप करें। **श्वेत कुष्ठ उपचार:**—बावची १ तोला हरताल ४ तोला, इनको गोमूत्र में पीसकर लेपें, तथा आमला और कत्था समभाग ले २ तोले का क़ाढ़ा बना, शहद या बावची का चूर्ण १ तोला मिलाकर पियें, निश्चय श्वेत कुष्ठ दूर होता है। २—श्वेत फूल की अरणी की जड़ रविपुष्प या गुरु पुष्प में लाकर १ तोला को दूध में डाल प्रतिदिन पियें। ३—बावची का चूर्ण १ तोला गर्म जल से पीकर ३ घन्टे धूप में सेक लें तो सभी कुष्ठ १२ दिन में नष्ट होवें। केवल दुग्धाहार अनिवार्य हैं। ये सभी श्री पं० गंगाराम आत्मज श्री पं० बालकृष्ण, स्थान पोस्ट सेई (वच्छवन) जिला मथुरा तथा श्री पं० रामदत्त शर्मा वैद्य आत्मज श्री संकट हरण स्थान राया, जिला मथुरा, एवं श्री पं० मंगलदेव आत्मज श्रीभगवानदत्त स्थान पोस्ट कसीसों जिला अलीगढ़ के अनुभूत जन-कल्याणार्थ प्राप्त है। **लिंग की विविध व्याधि उपचार:**—गौ या गदही के दुग्ध में, या शहद में लिंग को प्रातः सायं ३.३ घण्टे डुबोये रक्खें बाद में रसौंत का लेप करें। **उपदंश** (आतिशक) इसे फिरंग गर्मी भी कहते हैं। ये सारे शरीर में विस्फोट रूप से फैलने वाली है। परन्तु "उपदंश" केवल मूत्र नली में ही रहता है। लापरवाही से शिश्न के शिर में धान के अकुंर सरीखा या "मुर्गा की शिखा" जैसी "लिंगार्श" अर्थात् लिंग की **"बबासीर या लिंगवर्ती"** भी कहते हैं। यह त्रिदोषजन्य व्याधि प्राणान्तक होती है। **उपचार:**—अनार की छाल के चुर्ण की उस स्थान पर मालिश करें। २—चिकनी सुपाड़ी या कन्नेर सफेद की छाल पानी में घिसकर लेपें। ३—त्रिफला कढ़ाई में डाल भस्म करें, उसमें शहद मिलाकर लेपें। ४—सज्जी खार लेपें तो लिंगार्श दूर हो जाता है। ५—पारा १ तोला, अफीम १ तोला, लोहे के ही पात्र में डालें, श्यामा तुलसी का रस ३ प्रहर [९ घण्टे] नीम के सोटे से घोटें। उसीमें १ तोला सुहागा मिला, तुलसी का रस डाल, ३ घण्टे घोटें। तदनन्तर जावित्री, जायफल, खुरासानी, अजवाइन, और अकरकरा, सब २॥-२॥ तोले डालें, उसमें फिर तुलसी का स्वरस डालकर घोटें। उसमें २४ तोले वंशलोचन, २४ तोले खैरसार डालें और तुलसी का स्वरस मिलाकर घोटें। उसकी १ चना के बराबर की गोली बना. छाया में सुखाकर, २, २ गोली नित्य शाम को जल से निगल जावें। पथ्य—गुड़, तेल, खटाई, मैथुन, मांस, मदिरा, श्रम, बैंगन, उर्द, गरिष्ठ, तेल पदार्थ वर्जित हैं। इनसे उपदंश. आतिशक. गलितकुष्ठ. गर्दभिका. घाव. फिरङ्ग. गर्मी. विसर्प. विस्फोटक रोग. निश्चय से समूल नष्ट हो जाते हैं।

भगन्दर लक्षण, उपचार:—गुदा के चारों ओर २, २ अंगुल दूर. फुंसी. व गांठ हों. दर्द हो. पकें फूटें, और वहती रहती है। यही ववासीर कहलाता है। यह १ वात. २ पित्त, ३ कफ. ४ सन्निपात. तथा ५ चोट से होता है। उपचार—सांठ [पुनर्नवा] नीमगिलोय. सौंठि. मुलहठी. और बेर के पत्ते. सभी समभाग लें पीसकर. गर्मकर बांधें। १—त्रिफला के पानी से नित्य धोयें यह अनिवार्य सभी में समझें। २—विलाव की हड्डी. त्रिफला के रस में घिसकर लेपें ३—गदहे के रक्त में, अर्जुन की छाल पकाकर सेपें। ४—अडूसे के पत्तों की टिकिया पर नमक, बुरककर बांधे, तो भगन्दर जड़ से ठीक हो जाता है। १ वर्ष पथ्य करें।

शस्त्रों के घाव का उपचार:—गुलशकरी या बरियारी का रस उसमें भर दें, तो घाव शीघ्र ठीक हो जाता है। **अग्नि से जले का उपचार:**—परवल के कांढ में सरसों का तेल डालें, सिद्ध हो जावे तब मालिश करें २—जौ की भस्म, अलसी तेल में मिलाकर लेपें, तो अग्नि से जला घाव ठीक हो जाता है। ३—बेरी की पत्ती, या छाली को घी में घिसकर लेपें। ४—मोम. महुआ. लोघ राल. मंजीठ. चन्दन. मूर्षा [ककड़ी] सब समभाग. पानी में घोटें. घी में डालकर घी सिद्ध करें. उसकी मालिश करें। ५—घी १ छटांक. मोम आधी छटांक सफेद कत्था ६ माशा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आमला सारगन्धक ६ माशा. गन्दा विरोजा १ तोला. फिटकरी १ तोला. रसकपूर ३ माशा. गेरू ६ माशा शीतल चीनी ६ माशा, सिन्दूर ६ माशा, चूर्ण कर लें। घी में मोम डाल गर्म करें, इनके चूर्ण को उसी में डाले इस मरहम को, सब प्रकार के फोड़ों, फुंसी, घावों, चकत्तों, मण्डल, उपदंशक, विस्फोटक, मसूरिका, विसर्प, भगन्दर, सुजाक आदि पर लगायें तो तुरन्त ठीक हो जाते हैं।

विद्रधि लक्षण उपचारः—त्रिदोष दूषित हो, रक्त, मांस, मेद, बिगड़कर शरीर में, गोल, ऊंची, कठोर पीड़ायुक्त सूजन, १ गुदा, २ पेडू, ३ नाभि, ४ कोखि, ५ पेडू, (जांघों की सन्धियाँ)६ बैठने की जगह, ७ प्लीहा, ८ यकृत ९ हृदय तथा १० पीने की नलियों के पास, पोल स्थानों में ये "अन्तरविद्रधि" कैंसर (गण्डमालायें) होती हैं। नाभि के ऊपर के भागों की असाध्य महा असाध्य, नाभि के नीचे की कष्ठ साध्य होती है। उपचारः—(१)जोंक लगवायें,(२)सींगी लगवायें, (३)हल्का जुलाब लें, लंघन करें। तदनन्तर(४)त्रिफला क्वाथ में १ तोला निसोत का चूर्ण प्रातः साय पीने से विद्रधि ठीक होती है। **अन्तरविद्रधिः**-(१)गर्म ईंट या बालू या लोहे से सेंक दें,(२)सफेद फूल का सांठ(पुनर्नवा)की जड़ बरना की जड़ सममाग, १ तोला का काढ़ा बनाकर पियें, (३) सहजने की जड़ १ तोला पानी में पीसें, छान करें, शहद मिलाकर पियें। या सहजने के क्वाथ में सेंधा नमक, हींग डाल कर पियें।

बदः—गेहूं का आटा, कुन्दरू का सममाग चूर्ण, भेड़ के दूध में पीस, गुनगुना कर लेपें। २—पुष्य नक्षत्र में उरवाड़ी भारङ्गी की जड़, कांजी घिसकर पियें। फोड़ना हो तो कलमी शोरा पीसकर वद पर लेपें। **गलगंडः**—गले में अण्डे से, सूजन के साथ लटकें, वे गलगंड होते हैं। **उपचारः**—कड़ुवी तूम्बी में ७ दिन का भरा बासा पानी पियें। २—जोंक लगावें, सींगी लगवायें, दाग दें। ३—पुराने ककोड़ा का १ तोला स्वरस में ३ माशा काला नमक, ३ माशे सैंधा नमक, नस्य लें तो भयङ्कर गलगण्ड, कण्ठमालायें दूर हो जाती है। या कांयफल के चूर्ण को मलें।

गण्डमालाः—इस पर पर्याप्त अध्याय १ में लिखा जा चुका है। यह गले में, बगल में, पेढ़ू में; जांघों में चना से अण्डे जैसी, मेद व कफ की अनेक गांठें होती हैं, दर्द व ज्वर भी रहता है। ये गण्डमालायें कहलाती हैं। इन्हीं को **कैंसर**—आधुनिक मनीषिगण कहते हैं। **उपचारः**—१ कचनार की छाल २ तोला, १ पाव जल में काढ़ा करें। १।४ जल रह जावे, तब उसमें सोंठ का चूर्ण डालकर पियें २—वरना की छाल का उपरोक्त रीति से काढ़ा कर १ तो० शहद मिलाकर पियें। ३—पमार की जड़ भांगरा के स्वरस में घोटें, उससे चौगुने सरसों के तेल में डाल, तेल सिद्ध कर, उसमें १।४ भाग सिंदूर मिलाकर मलें। ४—सफेद घंघुची की जड़ या फल जल में पीस, उपरोक्त सरसों का तेल सिद्धकर, मालिश करें। ५—कटुतुम्बीया लज्जावन्ती का समरस २ तोले पियें. तो सभी गण्डमालायें गलगण्ड, कमल-वात, अण्डवृद्धि गांठ नष्ट हो जाती है। ६—भारङ्गी की जड़ १ तोला को मुलहटी के स्वरस में वट कर लेपें तो दारुण गण्डमालायें ठीक होती हैं। ७—कचनार की छाल २० तोला, सौंठ ४ तोला, पीपरि ४ तोला, गोल काली मिर्च ४ तो० वक्कल बहेड़ा २ तोला, वक्कल हरण २ तोला, वक्कल आमला २ तोला, वरना की छाल १ तोला, इलायची ४ माशा, तेजपात ४ माशा, सब महीन पीसकर, उन सबके बराबर शुद्ध गुग्गुल मिलायें, ज्वार के बराबर गोली बनाकर छाया में सुखायें। प्रातः सायं १, १ गोली गोरखमुण्डी या खैरसार या हरड़ के गर्म काढ़े के साथ सेवन करें, तो गण्डमाला गाँठ घाव; गुल्म, कोढ़ भगन्दर ठीक होते हैं। पथ्य अनिवार्य है; गुड़. तेल. खटाई. मिर्च. वादी ठण्डी चीजें त्याग दें।

अपचीः—उपरोक्त पुरानी गण्डमालायें. पकें. फूटें. बहें. सूखें. नई होने लगें. वे अपची कहलाती हैं। **उपचारः**—(१) सहजने की छाल. देवदारु. समभाग १ तोला कांजी में पीसकर गर्म कर लेपें तो **"घोर अपची"** का नाश हो जाता है। साथ ही पुण्य नक्षत्र में कमल और अपामार्ग (चिरचिड़े की जड़) विधिवत निमन्त्रण दें. पूजा कर लावें. लाल रेशमी धागे में प्रोकर उपरोक्त सूक्त से अभिमन्त्रित कर बाँधे तो ये सभी कायज. कर्मज कायज भव व्याधियाँ निश्चय नष्ट हो जाती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समस्त व्याधि निवारण तन्त्र—आक, ऐरण्ड के फूल लें, उन पर सिन्दूर लगायें 'शीर्षक्ति शीर्षामय' सूक्त वृहच्छातिगण के पढ़कर, हर मन्त्र के अन्त में 'ॐ श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा' लगावें रोगी के शिर से पैर तक हर मन्त्र से उतारें, स्थान के वाम कोण में गाढ़ दें। तो समस्त रोग शान्त हों।

घाव के झाड़ने का मन्त्र—राम मारै पेढुकी, लछिमन ओढ़े घाव। फूलै और न पाकै, दरै सूखि जाव॥

जहरवात, थन, घिनहीं, वेरबा, इलगोहिया का उपचार—लङ्का के दानव, पलङ्का के पूत, अञ्जनी; के पूत, नरक हवा झारें, अञ्जनी के पूत बेखा झारें, अञ्जनी पूत घिनही झारें, अञ्जनी के पूत जहर बात झारें, अञ्जनी पूत थनइल झारें, अञ्जनी के पूत गोहिया झारें, नाचत आवै, नाचत जाय, खेलत, खात, पखण्डे जाय। पिण्ड की सामननी, हकडकनी आलीम, सालीम, दुख स्वाहा हो जाय, राम लछमन तीनों भाय, धृक चं नरक हवा झारै धृक चं जहरवात झारै, धृक चं थनइल झारै, धृक चं गोहिया झारै, हमारे झारे लेइ झुरि जाय। नीम तथा अपामार्ग के लहरों से या मोरपङ्ख से झारें।

कान का मन्त्र—आसमीनन गोट वन्हीं, कर्महीन न जायते, दोहाई महावीर की, जोर है कान पीर की अञ्जनी पुत्र, कुमारी बायें पुत्र महाबल को मारि, ब्रह्मचारी हनुमताई नमो नमो दोहाई की, जो रहै पीर मुण्ड की॥

विविध व्याधि विनाशनसनाय सेवन विधियां—१. नौमासा, मधु के साथ २१ दिन लें तो बल बढ़ाये, २. शक्कर के साथ सेवन करे तो दर्द, मुस्ती दूर हो। ३. गुलकन्द से ले तो सर्दी दूर हो, भूख बढ़ावे। ४. मिश्री के साथ लेने से बल वीर्य वृद्धि हो। ५. गोघृत के साथ ले तो सर्व प्रकार के दर्द दूर हों। ६. दही के साथ सेवन से सर्व विष नष्ट हों। ७. चोवचीनी के साथ ४१ दिन सेवन करे तो नेत्र ज्योति बढ़ावे। ८. आधा तोला पानी से ले तो स्वास्थ्य लाभ हो। ९. गोदुग्ध के साथ सेवन करे तो दूषित खून नष्ट हो, शुद्ध स्वस्थ रक्त बढ़े। १०. बकरी के दूध में ३० दिन ले तो अत्यन्त सुख-शान्ति हो। ११. हिरनी के दूध के साथ सेवन से नपुंसकता मिटे और बल, वीर्य, पुष्ट हों। १२. उटनी के दूध से ले तो सभी तन के दुख दूर हों। १३. छुआरे के साथ ले तो मुँह, दाँत की दुर्गन्धि, विषैला मसूड़ों का रक्त दूर हों। १४. अनार के शरवत के साथ ले तो उदर रोग, छाती के रोग नष्ट हों। १५. भङ्गरा के रस से खाये तो वल-वीर्य बढ़े, वाल श्वेत पुनः काले हों। १६. इमली के रस में ले तो अजीर्ण छाती का कफ दूर हो। १७. अदरख के रस से ले तो जीर्णज्बर, सन्निपात ज्वर नष्ट हों। १८. गर्म जल से ले तो कान, शिर, नाक, आँख के दर्द दूर हों। १९. ककरी के बीज के काथ ले तो इन्द्रि की पथरी नष्ट हो। सनाय के अनन्त गुड़ और सेवन विधियाँ हैं। अभिमन्त्रित कर लेना अनिवार्य है।

रक्षोघ्नेष्टिः आग्नेयास्त्र—घर आदि के ऊपर ग्रह पिशाच आदि के खोटी-खरी भावना के जानने के लिये उपरोक्त अनुवाक से सरसों की लकड़ी तथा दाभमर्य (शरपते की वालें) अभिमन्त्रित कर स्थापित करे। यदि प्रातःकाल में लकड़ी और दाभों में कोई विकार दिखाई दे तो ग्रह हैं; ऐसा समझें। वैश्रवणदेव को नमस्कार कर इसी अनुवाक से जल अभिमन्त्रित करके ग्रह गृहीत रोगी को पिलाये, छींटे दे, स्नान कराये, रात्रि में २ उल्मुक अभिमन्त्रित कर परस्पर उन्हें रगड़ा दे। पहिले उल्मुक, कील, कपाल, कृत्या आदि में (कां० २ सू० ३४ ऋचा ५) 'प्रजानन्तः' से प्राण आस्थापित करे। ब्राह्मण पूर्वाभिमुख, व्याधिगृहीत की व्याधिनिवारण में बैठें।

ब्राह्मणाः स्वस्ति वाच्याथ प्राङ्मुखः संविशेत् ततः। रक्षोहणम् अनुवाकं जपेत् कर्त्ताथ ऋत्विजः।

त्रिर्यातुधानः—(८।३) सूक्त रक्षोहण अनुवाक में है, उसी विधि से उन्हीं सभी कर्मों का विनियोग करे। इसकी ऋचा १५ से १८ तक 'यः पौरुषेयेण' से ४ ऋचाओं से गौ-भैंस आदि के दूध का रक्त हो जावे, रक्तदुहन करे, दुर्गन्धियुक्त दूध हो जाय, दूध दुहने में मारपीट करे, दूध न दुहने दे, सूख जावे आदि-आदि दोष निवारथार्थ तिल, तैल या घी से होम करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदग्ने चक्षुः—(८।३-२१) रक्षोहण अनुवाक से अग्नि रहित स्थान में अग्नि का दर्शन हो अथवा अग्नि शब्द करे, इत्यादि अद्भुत बात के अरिष्ट निवारणार्थ हवन करे।

"रक्षोहणं वाजिनम्" (८।३) यह सारा ही अनुवाचक चातनगण कर्म विधि में है। तथापि आग्नेयास्त्र-प्रयोगारम्भ में इससे शत्रु सहार एव पिशाचादि ग्रह ग्रस्त से कहे—**एतदनुवाक विनियोजक सूत्रोक्त फल कामोऽहं रक्षसाम-पहन्तारं बल, तत्साधनम् अन्नं व तद्वन्तम् अग्निम् घृतं सर्वतः क्षारयामि जुहोमि ।।**

इसमें पूर्वोक्त "तान्त्सत्यौंजा" (त्वयापूर्वम्) (४।३७) की समिधा-खदिर सरसों आदि की समिधा चील, गृद्धों के नीडों की समिधायें लें। कत्था लौह, ताम्रादि के विषम संख्या की कीलें, अभिमन्त्रित कर गाड़ें। तप्त शर्करा अभिमन्त्रित कर शयन कक्षादि में छिड़कें। जौ के सक्तुओं से होम करें। तथा असाध्यग्रहवशीकरणार्थ–आक की वींदी(वीरण) की या सेंसर की रूई इङ्गिड़ (ईगुर) (सिन्दूर) व घी पलाश के पत्तों के पृष्ठ पर लगाकर होम करें।। गृहादि में पिशाचादि है या नहीं ? की शङ्का के समाधानार्थ इसी अनुवाक से सरसों की लकड़ी पत्तों युक्त मुंज का सरकण्डा अभिमन्त्रित कर गृह के ऊपर रात्रि में ही रख दें प्रातः देखें। यदि सरसों की समिधा और शरमय डरकण्डे में विकार हो तो उसकी उपस्थिति समझें और उसी के निराकरणार्थ "वैश्रवणदेव" को "नमोदेवबधेम्य" सूक्त से नमस्कार कर, इस अनुवाक से अभिमन्त्रित कर ग्रहगृहीत को जल पिलायें। आचमन करायें, छींटे दें रात्रि में पूर्वोक्त दो उल्मुकों को अभिमन्त्रितकर परस्पर घिसें। कौ० ४।१ शान्ति जल अभिमन्त्रण में चातनगण मातृनामागण रक्षोहणगण से होम (शा० क० १६) मे वर्णित हैं। घृत कम्बल-नामकीय महाभिषेक में अभिषेकानन्तर इस अनुवाक को जपे। जपकाल में 'स्वस्ति वाचन कर्त्ता ब्राह्मणगण उससे पूर्वाभिमुख बैठें और ऋत्विजः कर्त्ता-रक्षोहण अनुवाक का जप करें।

"रक्षोहणं वाजिनमा" (कां० ८ सू० ३ व ४) इससे फली करण-सरसों की समिधा, काँटेदार वृक्षों की समिधा-खदिर आदि की छाल से होम करे, उपरोक्त सामिग्री में मिलाले, इन्हीं से धूप दे। इसी अनुवाक से पिशाच आदि से पीड़ित प्राणी को उपर्युक्त भांति से सम्वोधित कर पढ़े।

इसी अनुवाक से कत्था की या तांबे की विषम संख्या की कीलें अभिमन्त्रित कर गाड़ दे। शक्कर गर्मकर शयन स्थान के चारों ओर, शय्या के चारों ओर छिड़क दे, जौ-इन्द्र जौ के चूर्ण से होम करे। पीली सरसों, शकरा अभिमन्त्रित कर आठों दिशाओं में पूर्व से प्रारम्भ कर २१ बार चौरस्ता या श्मशान या पीपल तले छिड़कें, जो शेष रहे चौरास्ता पर रख आये। असाध्यग्रह हो तो उसको वशीभूत करने के लिए—**वीरणतूल-इङ्गिडाज्य** (उपरोक्त) और ढाक के उलटे पत्तों से होम करे।

कां० ८ सू० ३ (१-२६) चातनः। अग्निः। त्रिष्टुप्, ७;१२;१४-१५,१७,२१ भुरिक्; २५ पञ्चपदा बृहती गर्भा जगती २२-२३ अनुष्टुप् २६ गायत्री। वृहच्चातनगण उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः।

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ।।१
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ।।२
उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ।।३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥४
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥५
यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥६
उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥९
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०
त्रिर्यातधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि ॥११
यदग्ने अद्य मिथना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातधानान् ॥१२
परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
पराचिषा मूरदेवान्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥१३
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातधानः ॥१४
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषं गवां यातधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥१७
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानानु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥१६
पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्तां अमर्त्यस्त्वं नः ॥२०
तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योऽष ॥२१
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥२२
विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि । अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥२३
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥२४
ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥२५
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥२६

"आग्नेयास्त्र"

कां० ८ सू० ३ "रक्षोहणम्":—महर्षि उद्घोष—राक्षसों के विनाशक, सुविख्यात, महापराक्रमी मित्र का मैं सादर आवाहन करता हुँ। और उनके सहयोग से, सुख, शान्ति समृद्धि उपलब्ध करता हूँ। वह यज्ञों से देदीप्यमान, तीक्ष्ण ब्राह्मवलाग्नि, हमारी दिनरात, निरन्तर शत्रुओं से रक्षा करे। २—हे जातवेदाग्ने ! सुदीप्त हो लोहे की दाड़ों से युक्त, अपने तेज से यातुधानों को जलाओ। तथा मूढ़ राक्षसादिकों को अपनी काल कराल, लाल ज्वालारूप जिह्वा से संतप्त करना प्रारम्भ कर। उत्कृष्ट बल से, इन कच्चे मांसाहारियों हिंसक राक्षसों को अपने मुँह में रखकर दबा। ३—हे उभयजन देव और राक्षस ज्ञाता अग्ने ! शत्रु संहारक हो, क्रुद्धता के साथ, जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही भांति के राक्षस यातु धानों को अपनी दाढ़ों में रख। अन्तरिक्ष में लेजाकर, वहाँ क्लेशप्रद, यातुधानों को अपने जबड़ों से कुचल दे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५—हे जात वेदाग्ने ! अब जहाँ कहीं भी, अन्तरिक्ष में गमनशील, यातुधानों को बैठे-चलते देखो, वहीं अपना तीक्ष्णतर "आग्नेयास्त्र" फेंककर उनको वेध डाल। ६—हे जातवेदाग्ने ! यज्ञादि से परिवर्द्धित, अपने बाणों से भी सुसज्जित, वाणी से भर्त्सना करता हुआ, अस्त्रों को पाषाणों से तेज धार पूर्ण करके। उनके सन्मुख उपस्थित होकर यातुधानों के हृदयों को विदीर्ण कर, उनकी भुजाओं का भी उच्छेदन करो। ७—हे जातवेदाग्ने ! यज्ञ अनुष्ठानारम्भ कर्त्ताओं, और किये हुओं, सभी की ही रक्षा करता हुआ; सर्व प्रथम प्रकट हो, यातुधानों का संहार कर मांस भक्षक चील गृद्ध, श्वान, स्यारादि इन्हें खा जावें। ८—जो यातुधान, ऐसे घृणित निष्ठुर कर्म करते हैं, वे कौन हैं ? ऐसी यहाँ निर्णायक घोषणा कर। उन्हें दण्ड देना प्रारम्भ कर उनको लकड़ियों से जला डाल। मानव कल्याण भावना से, इन दुष्टों का संहार कर। ९—हे अग्ने ! अब अपनी कठोर दृष्टि से यज्ञों, याज्ञिकों की रक्षा करिये। हे चैतन्य शक्ति सम्पन्न ! वसुओं के लिए उनको यहाँ घसीटकर लेआ। हे सर्वद्रष्टा ! हत्यारे राक्षसों को भस्म कर दे। जिससे ये यातुधान हमें परास्त न कर सके। १०—हे जातवेदाग्ने ! तू अपने जनों, मानवों पर कृपा दृष्टि करता हुआ सभी दिशाओं में राक्षसों पर क्रूरदृष्टि पातकर, उनके तीनों अग्रिम भागों (नेताओं, सेनाध्यक्षों, वरिष्ठाधिकारियों सहित) का संहारकर। यातुधानों की तीनों ही अङ्गों सहित मूलोच्छिदन कर डाल। ११—हे अग्ने ! जो मिथ्यालाप कर सत्य पर पर्दा डालने की कुचेष्टा करते हैं, वे यातुधान, तीनों ही प्रकारों से, तेरे बन्धन में आ पड़ें। हे जातवेदाग्ने ! उनको अपने प्रभाव से निस्तेज करते हुए, देवाराधन परायण अग्ने जनों के कल्याणार्थ कठोर कारागार बन्धनों में जकड़े रक्खें। १२—हे अग्ने ! जो प्रतिपक्षी दुष्टजन, आज परस्पर एक दूसरे को ही शाप निष्ठुर भाषणोदि देते रहते हैं, जो क्रुद्ध करने वाली, दुर्वाचाओं की कटुता फैलाते रहते हैं, जो क्रोधी मन से शस्त्र उठाते रहते हैं, ऐसों यातुधानों के हृदयों को विदीर्ण कर दो। १३—यातुधानों को निजी तपोबल से नष्टकर, निज पराक्रम से दूर भगा, उनका संहार कर। उन मूढ़ात्माओं को निज पराक्रम से नष्ट भ्रष्टकर, दूसरों के प्राण लेकर ही तृप्त होने वाले, शोक उत्पन्न कर्त्ता नृशसों को भी हटा और नाश करदे। १४—हे देवगणो ! पापाचारियों पापिष्ठों को हटाकर, उनके शापों को उनके ही पास पुनः वापिस कर दो। इन वाणी के चोर (मिथ्यावादियों को) उनके मर्म को शस्त्र काटें, यातुधान दुर्गतिपाशों से बँध जावें। १५—जो मनुष्यों के मांस भक्षणकर अपनों को पुष्ट करते हैं, अथवा जो पशु-पक्षियों के मांसों से अपने को पुष्ट करते हैं। अथवा हे अग्ने ! गौ, गोरस चुरा कर ले जाते हैं, चुपके दूधों को पी जाते हैं, उन सभी के शिरों को अपने पराक्रम से चूर-चूर कर डाल। १६—जो पापात्मा, गौ आदि को विष देते हैं, गौओं का वध करते हैं, सविता देव उनको ध्वस्त करें, इनको औषधियों (अन्नादिका) रस भी अप्राप्य हो जाय। १७—हे सर्वद्रष्टा ! वर्षों तक इन यातुधानो को गोदुग्ध अप्राप्य दुर्लभ ही रहे। उनमें से जो भी दुष्ट दुग्धामृत पान करे; उनके हृदयों को सबके देखते-देखते वेध डाल। १८—हे अग्ने ! तू सदा यातुधानों का संहार करता है, तुझे युद्ध में राक्षस भी परास्त नहीं कर सकते हैं। अतः इन सभी मूढ़ात्मा, यातुधानो, राक्षसों, पिशाचों को जलादे। ये सब तेरे दिव्य "आग्नेयास्त्र" से छूट न जावें। १९—हे अग्ने ! आप हमारी ऊर्ध्व, अध, सन्मुख और परोक्ष में सर्वत्र, सर्व प्रकार रक्षा कीजिए। वे सभी तपोधन, अजर, अमर हो तप परायण हो पापों को दग्ध कर दें। २०—हे अग्ने ! आप कवि हैं, अतः अपने काव्य (मन्त्र बल से] उर्ध्व, अध, सन्मुख तथा परोक्ष में सर्वत्र ही रक्षा करें। आप हमारे सखा हैं, अतः सख्य भाव से मुझ जैसों की, अजर होने से जराग्रस्त की, अमर होने से मरणधर्मी की रक्षा करें। २१—हे अग्ने ! तू जिन पैरों की ठोकरों से यातुधानों को देखता है. उसी कठोर दृष्टि को तू मिथ्यावादियों पर भी रख। अहिंसक, दिव्यतेजसे, सत्य, द्रोही, अज्ञानी धूर्तों को जला दे। २२—हे अग्ने ! हम सभी एक साथ ही; पूर्णब्रह्म को जो संघर्षकों और विनाशकारियों के नाश करने वाले हैं, आपका प्रतिदिन ध्यान करते है। २३—हे अग्ने ! उग्रतेज के साथ, प्रखर तेजस्वी रश्मियों से, विषदाता राक्षसों का नाशकर। २४—अग्नि प्रचण्ड तेज से देदीप्त हो, अपने प्रभाव से, सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता हुआ मायावी निशाचरों के कपट पूर्ण षडयन्त्रों, बन्धनों का उच्छेदन करता है। अपने दोनों शिखरों को, उनके विनाशार्थ, तीक्ष्ण करता है। २५—हे जातवेदाग्ने !

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये जो तेरे तीक्ष्ण हथियार के तुल्य, शिरोमणि "ब्रह्मशिरा और ब्रह्मदण्ड" हैं; अपने उन दोनों दिव्यास्त्रों और अपने परम तेजोमय "अग्नेयास्त्र" से, दुष्ट प्रवृत्ति वाले, भूख, प्यास से उत्पीड़ित दूसरों के नाश करने वाले, यातुधानों राक्षसों का संहार कर। २६—परम पवित्र, वर्चस्वी, स्तुत्य, पूर्ण प्रकाशवान, सनातन, अग्निदेव ही इन राक्षसों का संहारकर्त्ता है।

"परः सो अस्तु" (८।४) यह रक्षोहण अनुवाक है उसी भाँति विनियोग है। इसमें (तिस्रः पृथिवी) विश्व में व्यास ३ पृथिवी (द्यु लोक-मध्यलोक-अधलोक (स्वर्ग-पृथिवी-नरक) की ऋ० वे० २।२७-८ में "तिस्रोभूमी-धरियन त्रींरुत् द्यून" तथा (ऋ० वे० ७।८७-५) 'तिस्रोद्यावो निहिताअन्तरस्मिन् तिस्रो भूमिरुपराः षड्विधानाः' सम्पुष्टि की है। अर्थात् जो द्वेषकर्त्ता दिन या रात्रि में मेरे मारने या अनिष्ट की इच्छा करे या रात्रि में मारने की चेष्टा करे उस पापी के यश, अन्न और कीर्ति नष्ट हो जावे और नरक का बासी हों।

"इन्द्रसोमाः" (८।४) का रक्षोहण अनुवाक के साथ विनियोग करे। अत्रऋक-संहिताया वृहद्देवतानुक्रमणी। संवत्सरं तुमण्डूकान् ऐन्द्रासोमंपरं तुयत्। ऋषिर्ददर्शराक्षोघ्नंपुत्र शोक परिप्लुतः। हतेपुत्रशतेक्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा। इति

"सुविज्ञानं" (८।४-२२) इन तीन सूक्तों का "इन्द्रसोमाः (८।४-१) की वृहद्देवतानुक्रमणि की समानता होने से उदाहरण दिया है।

हत्वा पुत्रशतंपूर्वं वसिष्ठस्य महात्मनः। वसिष्ठं राक्षसोसि त्वंवासिष्ठं रूपम् आस्थितः।
अहं वसिष्ठइत्येवं जिघांसू राक्षसोऽब्रवीत्। अत्रोत्तरा ऋचोदृष्ट वसिष्ठेनेतिनः श्रुतम्॥

"हम पर असत्त भूत आरोप कर्त्ता राक्षस को है, सोम तुम नष्ट करो।"

"इन्द्रो यातूनाम्" (८।४-२१) यह भी रक्षोहण अनुवाक है, उसी भाँति विनियोग है।

"उलूकयातु" (८।४-२२) में ऋक्वसंहिता वृहद्देवतानु कमणिका—

उलूकयातुं जह्येतान् नानारूपान् निशाचरान्। स्त्री पुरूषांश्च जह्येतान् जिघांसून् इन्द्रमेजहि।

कां० ८ सू० ४ मं० १-२५ चातनः ऋषिः। इन्द्रा सोमौ देवते। ४ शत्रुदमनम्। जगती; ८-१४-१६-१७ १९-२२-२४ त्रिष्टुप्; २०-२३ भुरिक्; २५ अनुष्टुप्।

इन्द्रा॑सोमा॒ तप॑तं॒ रक्ष॑ उ॒ब्जतं॒ न्य॑र्पयतं॒ वृषणा तमो॒वृधः॑।
परा॑ शृणीतम॒चितो॒ न्यो॑षतं ह॒तं नु॒देथां॒ नि शि॑शीतम॒त्रिणः॑॥१
इन्द्रा॑सोमा॒ सम॒घशं॑सम॒भ्य१॒घं तपु॑र्ययस्तु च॒रुर॒ग्निमाँ॑ इव।
ब्र॒ह्म॒द्विषे॑ क्र॒व्यादे॑ घो॒रच॑क्षसे॒ द्वेषो॑ धत्तमनवा॒यं कि॑मी॒दिने॑॥२
इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृतो॑ व॒व्रे अ॒न्तर॑नारम्भ॒णे तम॑सि॒ प्र वि॑ध्यतम्।
यतो॒ नैषां॒ पुन॒रेक॑श्च॒नोदय॒त् तद् वा॑मस्तु॒ सह॑से म॒न्युमच्छवः॑॥३
इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वो व॒धं सं पृ॑थि॒व्या अ॒घशं॑साय॒ तर्ह॑णम्।
उत् त॑क्षतं स्व॒र्यं१॒ पर्व॑तेभ्यो॒ येन॒ रक्षो॑ वावृधा॒नं नि॒जूर्व॑थः॥४
इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वस्पर्य॑ग्नित॒प्तेभि॑र्यु॒वमश्म॑हन्मभिः।
तपु॑र्वधेभि॒रजरे॑भिर॒त्रिणो॒ नि पर्शा॑ने॒ विध्य॑तं॒ यन्तु॑ निस्व॒रम्॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥६
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहः ॥७
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८
ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥१०
परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३
यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवां अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४
अद्या मुरीय यदि यातधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५
यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं१ गूहमाना ।
वव्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वीऽ३च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८
प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोऽ३ जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१६
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०
इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्याऽ३विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥२१
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२
मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् । रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५

कां ८ सू० ४ 'इन्द्रा सोमा" हे परम वलिष्ठी इन्द्र और सोम ? राक्षसों को सन्तापित करो, उनका विनाश करे अज्ञान, भ्रम फैलाने वालों का अधःपतन कर दो । निठुर, हृदयहीन दुष्टों का सहार करो, उनका सर्वनाश करो, उनका वध करो, उन्हें निकाल भगाओ, दूसरों के भक्षण कर्त्ताओं का वल क्षय कर दो । २. हे इन्द्र और सोम ? अग्नि पर स्थापित चरू की भांति, पाप परायण पापात्माओं के सन्मुख सन्ताप और ताड़ना देते रहो । ब्रह्मद्रोहों, मांसाहारी, क्रूर दृष्टि के दुष्टों से निरन्तर द्वेष ही करो । ३. हे इन्द्र और सोम ? अगाध, आवरक, अन्धकार के बीच में; इन क्रूर कर्मियों को वेध डालो । जिससे इनमें से एक भी पुन; उठ न सके । ऐसा अभय का दुस्सह पराक्रम, दुष्टों के दलन के लिये ही हो । ४. हे इन्द्र और सोम ! आप पापाचारी दुष्टों के लिये, द्यौ और भूलों के बीच में, विनाशकारी, सहारक शस्त्र प्रयुक्त करो । पर्वतारोही शत्रुओं के लिये, अति तीक्ष्ण शस्त्र धारण करो, जिसके द्वारा बढ़े हुए राक्षसों का सहार कर सको । हे इन्द्र और सोम ! आप दोनों, तीक्ष्ण अग्नि में संतप्त, फौलादी, अति तीक्ष्ण सन्तापप्रद, विनाशकारी शस्त्रों से द्युलोक में से, भोगी लोगों को भगा दो, और उनके कठोर स्थानों में उनका विध्वंस करो, जिससे वे बिना बोले ही भाग जावें । ६. हे इन्द्र और सोम ! वली घोड़ों से सम्वन्धित चर्म पेटी की भाँति हमारी बुद्धि, आपको सव प्रकार सहयोगी हो । इस आवाहनशील विनती को, अपनी बुद्धि के साथ आपके सहयोग के प्रति प्रेरित करता हूँ । अतः आप दोनों, नरेशों की भाँति इन वैदिक स्तोत्रों को स्वीकार करो । ७. हे इन्द्र और सोम ! सत्वर गतिशील यानों से, दुष्टों की गति का पीछा करो । विनाशक, द्रोही राक्षसो का नाश करो । जो द्रोही, कदाचित तुझे कष्ट न दें, उस दुष्कर्मी को भी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वच्छन्दता से न घूमने दो, उनको भी नियन्त्रित करो। ८. हे इन्द्र ! मुझ विशुद्ध आधार वान को जो मिथ्याचार से, झिड़कता है, वह चुल्लुभर जल के तुल्य, वह असत्यवादी, निर्जीव सा हो जावे। ९. जो विशेष पवित्र मन से व्यवहार करने वालों को विडम्बन रूप से त्रासित करते हैं, जो भद्र पुरुषों को अन्न से दूषित करते हैं। हे सोम ! उन दुष्टों को, सर्प की भेंट कर दो, अथवा दुर्गति की भेंट कर दो। १०. हे अग्ने ! जो घोड़ों, गौओं और अन्य शरीरियों को विनष्ट करते हैं, जो हमारे अन्न रसादि को बिगाड़ते हैं, वे चौर धर्मी शत्रु रूप चोर वध के योग्य है शरीर और पुत्रादि से हीन हो जावें। ११. हे देवो ! जो मुझे दिन रात पीड़ित करते हैं, वह अपने बाल बच्चों सहित विनष्ट हो जावें। वे विश्व के ही तीनों लोकों से निम्न भागों में पड़े रहें उनका यश नष्ट हो जावे। १२. ज्ञानार्थियों के लिये यह उत्तम सत्य ज्ञान का उपदेश है, कि इस जगत में सत्य और असत्य भाषणों में स्पर्धा होती है। उनमें जो सत्य, प्रिय, और सरल है उसी की सोम रक्षा करता है, असत्य वक्ता का विनाश करता है। १३. सोम पाप की कदापि सहायता नहीं करता। असत्य-वादी क्षत्रिय की भी सहायता नहीं करता, वह राक्षसों का संहार करता है, असत्यवादी को मार देता हैं, ये दोनों इन्द्र के दारुण बन्धनों में रहते हैं। १४. यदि में असत्यवादी होऊँ अथवा देवों की प्रमाद से उपासना करूँ तो हे जात वेदाग्ने ! क्या हम पर क्रुद्ध होगे ? यदि हाँ तो विद्रोही भाषण कर्त्ताओं का विनाश हो। १५. यदि मैंने किसी को पीड़ा दी हो, अथवा किसी को स्वास्थ्य को हानि पहुँचाई हो तो मेरी मृत्यु हो जावे। परन्तु मेरे ऐसा कभी भी न करते पर भी जो मुझे यातुधान बतावे, वह दसों प्राणों से रहित हो जावें। १६. जो मुझ पवित्राचरणवान को यातुधान बताता है और जो स्वय राक्षस होते हुए भी अपने को पवित्रात्मा कहता है। उसका इन्द्र कठोरता से वध करे और वह अधोगति को प्राप्त होये। १७. जो रात्रि में उलूक के तुल्य, अपने को छुपाकर, दुष्ट भाव से विचारें, वे गहरे गड्ढे में गिर जावें और राक्षसों को दहाड़ते हुए पाषाण मारें। १८. हे मरुद्गणों ! प्रजाजनों में सतर्कता से पहरा दो, दुष्ट यातुधान, राक्षसों को ढूंढ़ निकालने में अभिरुचि लो। जो रात्रि में पशु पक्षियों की भांति घूमते हैं अथवा जो यज्ञ और देवों के प्रति विनाश का-भाव रखते हैं, उन राक्षसों को पकड़ो और पीस डालो। १९. हें मेघराज इन्द्र ! द्युलोक से पाषाणास्त्रों की वर्षा कर सोम द्वारा तीक्ष्ण किये शस्त्रों को नियम पूर्वक चला, पर्वतास्त्र से, सामने से, पीछे से, नीचे से, ऊपर से राक्षसों का संहार कर डाल। २०. ये वे कुत्तों के से आचरण वाले यातुधान हमला करते हैं। हमारे शत्रु अदम्य इन्द्र को उत्पीड़ित करते हैं। इन्द्र इन मलिन दुष्टों को, मृत्यु दण्ड देता है। यातुधानों पर विद्युत्पात करता है। २१. इन्द्र ! यज्ञ विदूषक समीपस्थ यातुधानों को दूर भगाता हुआ नष्ट करता हैं जैसे वनों को कुल्हाड़ी काटती है, जैसे मिट्टी के वर्तनों को तोड़ डालते हैं उसी भांति इन्द्र भी उपस्थित राक्षसों का विनाश करता हुआ आगे वढ़ता है। २२. हे इन्द्र ! पक्षियों के तुल्य कामुक, भेड़ियों जैसे क्रोधी, गृद्ध के तुल्य लोभी, उल्लु के तुल्य मोहित, गरुड़ के तुल्य अहंकारी और कुत्तों के तुल्य मत्सरी, दुष्टों को मार डाल, जैसे पत्थरों से पक्षियों को मारते हैं वैसे ही राक्षसों को नष्ट कर डाल। २३. यातुधान, राक्षस हम तक न आ पावें। जो भुखमरे हत्यारे हैं, वे दूर भाग जावें। भू सम्बन्धी भूतल के पापों से पृथ्वी हमारी रक्षा करे। द्युलोक और अन्तरिक्षलोकों के पापों से हम बच जावें। २४. हे इन्द्र ! यातुधान पुरुष और छद्मवेशिनी, कपट पूर्ण स्त्री का नाश कर मूर्खों के उपासकों (मूढ़ों के नेताओं) की गर्दनें काट दी जावें। वे उदोंयमान सूर्य को न देख पायें। २५. हे सोम ! इन्द्र निरीक्षण करें विशेषतया दृष्टिपात करें। आप दोनों ही सतर्कता से जागृत रहिए, और इन राक्षसों और यातुधानों पर "मृत्युदण्ड" और "वज्रदण्ड" फेंको।

यदि उस घर की गौ आदि भी वन्ध्या ही हो जाती हैं या बाग में फल न आते हों या घोड़ी, महिषी भी गर्भ धारण न करती हों या एक बार फल आकर या बच्चे एक ही के उपरान्त प्रजनन बन्द हो गया हो या स्वकीय कूप सूख गया हो तो उसे दैवहत समझें इसी से वशाशमनयाग करें। 'यः आत्मदा' सूक्त भी इसी में है। कौ० ५।८ यह चातनगण कर्मविधि में भी है। शौ० क० १५। कां० २ सू० १४ चातनः। शालाग्नि दैवत्यम् अनुष्टुप्, भुरिक्, ४ उपरिष्ठा द्विराड् वृहती, वन्ध्यात्वाद्युपर्युक्त व्याधि भैषज्ये विनियोगः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् । सर्वाश्चण्डस्य नप्त्योऽनाशयामः सदान्वाः ॥१
निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् । निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२
असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः । तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥३
भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः । गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४
यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः । यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५
परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् । अजैषं सर्वानाजीन्वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥६

'त्वयामन्दो' कां० ४ सू० ३१ 'यस्तेमन्यो' ४।३२ ये दोनों ही स्वपक्ष के महाभट, रणवांकुरों के मनोबल सवर्द्धनार्थ तथा अरिदल सम्मोहनार्थ उनके पलायनार्थ, शुद्ध भूमि के मध्य बैठकर, विपक्ष को देखते हुए तारस्वर से जपें। भङ्गपाश, मंजुपाश, धत्तूरादि, कच्चे मृत्तिका पत्र अभिमन्त्रित कर फेंकें। इन्हीं से होम करें।

कां० ४ सू० ३१ ब्रह्मा स्कन्दः । ऋषिः मन्युर्देवता । त्रिष्टुप्; २, ४ भुरिक्; ५-७ जगती । छन्द उपर्युक्त कर्मसु विनियोगः ।

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥१
अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥३
एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥४
विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५
आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येऽधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६
संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७

'युद्धविज्ञान' इन दोनों से कांस के तिनके, सेना के बीच अभिमन्त्रित कर गाड़ दें। चाण्डाल अग्नि से जलायें, जिस सेना की ओर धुवां जावे, छा जावे उसी की पराजय समझें। कौ० २।५।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ४ सू० ३१ 'त्वयामन्यो'—ओ मरणासन्न अवस्था से जागरूक करने वाले उत्साह ! तेरे बल से सत्य शत्रु को नष्ट करने वाले आनन्दोल्लास के साथ, अपने आयुधों को प्रखर कर। आग्नेयास्त्रों से संक्रुद्ध मना; सेना नायकगणो चढ़ाई कर दो। ओ उत्साही! तू अग्नि के तुल्य संक्रुद्ध हो शत्रु संहारकर। ए उत्साही वीर! साग्रामिकाग्नि में अपने को झोंकनेवाला तू सेनानायक बन। शत्रु को पराजित कर, धनादि उपभोग्य सामिग्री को छीनकर अपना पराक्रम दिखाता हुआ, शत्रुओं को भगा दे। ३—ओ उत्साही वीरो, अनेक कायरों में तू अकेला ही वन्दनीय है, तू जन-जन को युद्ध कौशल दिखा। हे परम प्रतापी ! हम तेरी विजय के लिये सहयोग के साथ जयघोष के गुञ्जायमान करते हैं। ५—हे उत्साही वीर ! इन्द्र के तुल्य विजेता ओजस्वी वाणी (वचनों) वाला समराङ्गण में हमारा पथ-प्रदर्शक बन। हे शूरवीर ! हम तेरी सराहना करते हुए, तेरी उत्पत्ति स्त्रोत को भी जानते हैं। ६-हे वज्रधारी, बाणधारी ऐश्वर्य सखा, श्रेष्ठ पराक्रम धारण कर, कीर्ति के साथ, सर्वहितैषी बन, जीवन संग्राम में हमारा सहयोगी बन। ७—उत्साह और वरिष्ठता से उपार्जित यश और पराक्रम हमें प्रदान कर उससे भयभीत मन वाले शत्रुगण पराजित होकर दूर भाग जायें।

कां० ४ सू० ३२ ब्रह्मास्कन्दः। मन्युः। त्रिष्टुप्, १ जगती छन्दांसि, उपर्युक्त समस्तगण कर्मसु विनियोगः।

यस्ते॑ म॒न्योऽवि॑धद् वज्र साय॒क॒ सह॒ ओज॑ः पुष्यति॒ विश्व॑मानु॒षक् ।
सा॒ह्याम॒ दास॒मार्यं॒ त्वया॑ यु॒जा व॒यं सह॑स्कृतेन॒ सह॑सा॒ सह॑स्वता ॥१
म॒न्युरिन्द्रो॑ म॒न्युरे॒वास॑ दे॒वो म॒न्युर्होता॑ वरु॑णो जा॒तवे॑दाः ।
म॒न्युर्विश॑ ईडते॒ मानु॑षी॒र्याः पा॒हि नो॑ मन्यो॒ तप॑सा स॒जोषा॑ः ॥२
अ॒भीऽहि मन्यो त॒वस॒स्तवी॑या॒न् तप॑सा यु॒जा वि ज॑हि॒ शत्रू॑न् ।
अ॒मि॒त्र॒हा वृ॑त्र॒हा द॑स्यु॒हा च॒ विश्वा॒ वसू॒न्या भ॑रा॒ त्वं नः ॥३
त्वं हि म॑न्यो अ॒भिभू॑त्योजाः स्वयं॒भूर्भामो॑ अभिमातिषा॒हः ।
वि॒श्वच॑र्षणिः॒ सहु॑रिः॒ सही॑यान॒स्मास्वोज॒ः पृत॑नासु धेहि ॥४
अ॒भा॒गः सन्नप॒ परे॑तो अ॒स्मि॒ तव॒ क्रत्वा॑ तवि॒षस्य॑ प्रचेतः ।
तं त्वा॑ मन्यो अक्र॒तुर्जि॑हीडा॒हं स्वा त॒नूर्ब॑ल॒दावा॑ न॒ एहि॑ ॥५
अ॒यं ते॑ अ॒स्म्युप॑ न॒ एह्य॒र्वाङ् प्र॑तीची॒नः स॑हुरे विश्वदावन् ।
मन्यो॑ वज्रिन्न॒भि न॒ आ व॑वृत्स्व॒ हना॑व॒ दस्यू॑ँरु॒त बो॑ध्या॒पेः ॥६
अ॒भि प्रेहि॑ दक्षिण॒तो भ॑वा॒ नोऽधा॑ वृ॒त्राणि॑ जङ्घनाव॒ भूरि॑ ।
जु॒होमि॑ ते ध॒रुणं॒ मध्वो॒ अग्र॑मु॒भावु॑पां॒शु प्र॑थ॒मा पि॑बाव ॥७

कां० ४ सू० ३२ "यस्ते मन्योः"—हे वज्र और वाणों युक्त उत्साह ! जो तेरे अनुयायी हैं, वे समस्त बलों और पराक्रमों को निरन्तर पुष्ट करता है। बलवर्द्धक, जय प्रदाता, ते ही सहयोग से समस्त अधम और उत्कृष्टों को अपने अधीन करें। २—इन्द्र, विष्णु, वरुण अग्नि आदि सभी देव उत्साह के सहयोग से ही यशस्वी हुए हैं। मनुष्य भी इसीका गुणगान करते हैं। हे उत्साह प्रेम ! पराक्रम और त्याग के साथ हमारी रक्षा करें। ३—हे उत्साह !

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महान से महान पराक्रमी तू यहां पधार। अपनी तपश्चर्या से शत्रु दलन, कपटियों का संहारक और चोर-वञ्चकों का हनन करने वाला तू हमारे लिए सब धनों से परिपूर्ण करदे। ४–हे उत्साह! तू ही विजयी विक्रम के साथ, स्वशक्ति सम्बर्द्धित पराक्रमी शत्रुघ्न सबका निरीक्षक, सामर्थ्यवान और बलिष्ठ होकर सग्रामों में हमारे अन्तःकरणों में शक्ति स्थापित कर। ५–हे सजग उत्साह! मैं निरुत्साही (आलसी) होने का कारण ही कर्महीनसा (दुख-दारिद्री) बन तेरी शरण आया हूँ; अतः तू अपनी सामर्थ्य का अशमात्र लेकर हमारे अन्तःकरण में विराजमान हो। ६–हे समर्थ! हे विश्वदाता! यह मैं तेरा ही अंश हूँ। तू हमारे अन्तःकरणों में प्रविष्ट होकर प्रगट हो। हे उत्साह! हे कठोर वज्र-धारी! तू हमारे अन्दर निवासकर; मित्र को पहचान और शत्रुओं का हनन करा। हे उत्साही! आगे बढ; हमारे दाहिनी ओर हो (सहायक हो) हम दोनों [स्वयं और पराक्रम] अपने समस्त बन्धनकारियों को मिटा देवें। तेरे मधुरसा श्वादन में अग्रणी धारणकर्त्ता को मैं अङ्गीकार करता हूं। हम दोनों एकान्त में सर्वप्रथम [उत्साहरूप] उस रस को आश्वादन करें। [ये दोनों ही सूक्त आलसी, निरुत्साही मनोबल, क्षीण, दरिद्री पुरुषों को उत्साह व बर्द्धन की प्रबल इच्छा से उत्साही कर्मवीरों का सत्सङ्ग, उत्साहवर्द्धक साहित्य का पठन, मनन करने पर प्रोत्साहित कर यश गौरव सम्पन्न बनाने को दिव्यास्त्र हैं। निम्न इन सूक्तों से शत्रुदल त्रास, उनमें परस्पर विद्वेष, विघटन पैदा करने हेतु, अपने पक्ष में भैरी, घड़ियाल आदि जो भी वादन यन्त्र हों, उन्हें धोकर अगर तगरादि लेपकर इन्हीं से अभिमन्त्रित करें और इनको उच्चस्वर के पाठ के साथ ३बार यजमान(कर्त्ता) बजाये। तदनन्तर सेना के वीरों को बजाने को दें। सेना के विजयी भट [मातृभूमि के रक्षाव्रत में भूमि तथा वाजों कवचों शास्त्रों को पौष्टिक द्रव्यों को जलमें डालकर छींटे दें, धूप, गन्धादि से पूजा करें। तव कवचः शस्त्र को धारणकर बाणों को [वीररस गान ध्वनि से बजाते हुए कदम-कदम बढ़ें। वेद वक्ता कां. ५ सू. २०; २१ तथा "उपश्वासय"[५।१२६] को उच्चस्वर से उच्चारण करें। इस आग्नेयास्त्र के प्रयोग से अरिदल में आपस में फूट पड़ जाती है। बुद्धि में क्या करें, किधर छिपें आदि भ्रम होते ही साहस क्षीण हो, आत्म समर्पण को स्वय आतुर हो जाते है।

कां० ५ सू० २० ब्रह्मा ऋषिः। वनस्पतिः, दुन्दुभिः देवता। त्रिष्टुप्, १ जगती। छन्दांसि शत्रुपक्षविद्वेषणे भेरी आदि वाद्य वस्तुजाताभिमन्त्रणे, अरिदत्रासार्थे, उच्च स्वरेण उपस्थाने, होमे, च विनियोगः।

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥१
सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥२
वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित्।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥३
संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥४
दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वो दुन्दुभे प्र वंदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वंद रोचंमानः ।
अमित्रसेनामंभिजञ्जंभानो द्युमद् वंद दुन्दुभे सूनृतांवत् ॥६
अन्तरेमे नभंसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभंम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥७
धीभिः कृतः प्र वंदाति वाचमुद्धर्षय सत्वंनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वंनो नि ह्वंयस्व मित्रैरमित्राँ अवं जङ्घनीहि ॥८
संक्रन्दंनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हंर द्विराजे ॥९
श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्त्संग्राम॒जित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावांधिषवंणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदंः ॥१०
शत्रूषाण् नीषाडंभिमातिषाहो गवेषणः सहंमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भंरस्व वाचं सांग्रांमजित्यायेषमुद् वंदेह ॥११
अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतंनो द्विषतां याहि शीभंम् ॥१२

"सम्मोहनास्त्र" कां० ५ सू० २० "उच्चैर्घोषो":—ऊँचे शब्द वाली, बल वर्द्धिनी बनस्पतियों से अलंकृत दुन्दुभियां, गोचर्मवेष्टित उद्घोष करती हुई, शत्रुओं को दबाती हुई, सिंह के तुल्य विजयश्री कामिनी गर्जती रहें। २—वृक्षत्वगों से निर्मित, विशेष रूप से जड़ित तू; सिंह के समान दहाड़ती है। गौ के लिए जैसे सांड दहाड़ता हैं, उसी भांति तू भी दहाड़ती है। तू बलिष्ठ हैं, तेरे शत्रु निर्बल हो गये हैं, तेरा विक्रम शत्रु नाशक है। ३—गो समुदाय में गौकामी सांड की भांति, पराक्रम से विजयश्री उपलब्ध करने वाली तू विजय घोषकर। शत्रुओं के हृदय कम्पायमान कर; लुढ़कते पुढ़कते भाग खड़े हों। ४—हे दुन्दुभे! तारस्वर से शत्रुसेना को भयभीत करती हुई ग्रहण करने योग्यों को ग्रहण करती हुई; तू बार-वार दृष्टिपात कर। आकाशभेदी, दिव्य, उद्घोषकर, भाग्यविधाता की भांति शत्रुओं के धनापहरण कर कोषों को भर डाल। ५—दुन्दुभि से निसृत स्पष्ट ध्वनि श्रवणशालिनी दहाड़ से चौकन्ना, कम्पायमान, खिन्न मना शत्रु की स्त्रियों, समराङ्गण में वीरगति प्राप्त भटों के पुत्रों के हाथ पकड़कर भाग निकलें। ६—हे दुन्दुभे! सर्व प्रथम तू ही गम्भीर नाद करती है, समरभूमि के पृष्ठ पर प्रकाशती हुई तू दहाड़। शत्रु सेना का संहार करती हुई तू चमकती हुई सत्य बोल। ७—तेरा उद्घोष द्यौ और पृथ्वी के अन्तराल में व्याप्त हो, तेरे विजयघोष, तत्परता से सभी दिशाओं को आच्छादित कर डाले। प्रगति परायण, यशस्विकी, मित्र, हितैषिणी, विजयघोष के साथ गर्जना कर। ८—बुद्धिमता से विरचित दुन्दुभि, उद्घोष करती हुई, अपने योद्धाओं के शस्त्रों को उन्नत कर वीरों को हर्षाने वाली, वीरों को आह्वान कर सहयोगी मित्रों के द्वारा शत्रुओं का संहार कर। ९—मधुर गुञ्जार के साथ दहाड़ती हुई, वीराङ्गिनी चमू, स्फूर्ति देती हुई, बारम्बार ग्राम में उद्घोष करती हुई, घोषणा कर्म कुशल तू दुदुंभि; दो राजाओं में होने वाले

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संग्राम में बहु भांति से यश प्राप्त करा। १०—हे दुदुंभे ! तू कल्याण कारिणी, धनापहारिणी पराक्रमी युद्धों को जीतने वाली; ब्रह्म बल से विरचित हैं। सोमरस निष्कासन कालीन पाशाण जैसे सोमरस पर नाचते है, उसी भाँति तू भूमि विजयेच्छु शत्रु के धन पर ताण्डव नृत्य कर। ११—शत्रु संहारिणी, नित्य विजयी, शत्रुवशकरिणी अन्वेषण परायणा, बलिष्ठ, उखाड़ फैंकने वाली तू दुदुंभि, जैसे श्रेष्ठ वक्ताओं को जो श्रोताओं के हृदयों में उपदेशों को भर देता है, उसी भांति सर्वत्र उद्घोष से परिपूर्ण करदे। और यहाँ वीरभोग्याः वसुन्धरा संग्राम भूमिमें विजय के लिए, वीर भोगों के विषय में घोषणा कर। १२—उद्दण्ड शत्रुओं को नत मस्तक करने वाली, आनन्दवाहिनी, संग्राम जेत्री, प्रगति परायणा रण में पाषाणहृदय शत्रुओं को कम्पित कर देने वाली, इन्द्र से सुरक्षित, रणनीति कुशल शत्रु मनोबल ध्वंसिनी, तू दुन्दुभि तत्परता से शत्रु पर आक्रमण कर।

कां० ५ सू० २१ ब्रह्मा: ऋषिः। वनस्पतिः दुन्दुभिः, १०-१२ आदित्यादयः देवते। अनुष्टुप् १, ४-५ पथ्यापंक्तिः, ६ जगती; ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; १२ त्रिपदा यवमध्या गायत्री। छन्दः उपर्युक्त समस्त अपराजितगण, रौद्रगण कर्मसु आग्नेयास्त्रादि अनुमन्त्रणे, प्रक्षेपणे, अरिदल मध्ये तयोः परस्पर विद्वेषणे, शस्त्र, कवचादि धारणे भेरी आदि सांग्रामिक वाद्य यन्त्रादि अनुमन्त्रणे, ताडने, प्रस्थाने, मार्जने, उपस्थाने, होमे च विनियोगः।

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥१
उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च । धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ॥२
वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः । प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥३
यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥४
यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५
यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥६
परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च । सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥७
यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह । तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥८
ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः । सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥९
आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत । पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥१०
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥११

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः । अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥१२

"सम्मोहनास्त्र" कां० ५ सू० २१ "विहृदयम्" हे दुन्दुभे ! अरिदल के हृदय कम्पन, और मानसिक उद्विग्नता का भण्डाफोड़ करदे । उनमें पारस्परिक, द्वेष, कशमकशता; विद्रोह और भय भरदे ! हे दुन्दुभे ! उनका संहार कर। २-संग्राम छिड़ते ही अरिदल घबराहट से मलिन मन, हृदय में भयभीत हो, नेत्र बन्दकर भाग खड़े हों। ३—काष्ठ निर्मित, चर्म रज्जुओं से, अवगुण्ठित, सर्व प्रकार रण भूमि में रक्षापरायण, आज्य घृत, से परिपूर्ण हों अरिदल को भयभीत कर । ४—जैसे वन के मृग, मनुष्यों से डरकर भाग निकलते हैं, उसी भांति शत्रु दल में दहाड़ती हुई; उन्हें कम्पायमान कर डाल, और उनके चित्तों को मोहित करदे । ५—जैसे भेड़ें और बकरियाँ, भेड़ियों से भयभीत हो, भाग जाते हैं, उसी भांति हे दुन्दुभि ! तू शत्रुदल में तर्जन कर उन्हें डरा और उनके चित्तों को मोहित कर । ६-जैसे पक्षी बाज से भयभीत हो उड़ जाते हैं, और सिंह गर्जना से पशु प्रतिदिन कम्पित रहते हैं, उसी प्रकार दुन्दुभि तू उसी शत्रुदल में दहाड, उन्हें डरा और उनके चित्तों को भ्रम में डाल । ७-वरुणदेव युद्ध के स्वामी हैं । सब देव, मृगचर्म से अवगुन्ठित दुन्दुभी से ही, रिपु दल के दिल दहला देते हैं । ८-इन्द्र जिन पाद घोषों से, छाया रूप सेना के साथ युद्ध क्रीड़ा करते हैं, वे हमारे शत्रु त्रसित हो जो सैन्य पक्तिवद्ध आक्रमण कारी है । ९-धनुष की प्रत्यञ्चा की टङ्कार से, सब दिशायें गूज उठे, जिससे अरि अनी पलायित हो उठे । १०-हे सूर्यदेव ! शत्रु की दृष्टि हरलो, तीक्ष्ण किरणें हमारे अनुकुल दौड़ें, बाहुवल क्षीण होते ही, शत्रुओं को वन्धन में डालदें । ११-हे मातृभूमि के प्रेमियों ! वीरभूमि पर बलिदान को आतुर शूरवीरो ! पराक्रमी सेनापति के सहयोग से शत्रु का संहार कर डालो । सोम, वरुण, महादेव मृत्यु और इन्द्र ये सभी हमारे रण वांकुरों की सहायता करें । १२-अपने सूर्य चिह्नांकित राष्ट्रध्वज के साथ आगे बढ़ने वाली दिव्य सेनायें तन्मयता के साथ, हमारे शत्रुओं के पराजय के लिए आत्मोत्सर्ग करे ।

कां. ६ सू. १२६ अथर्वा । दुन्दुभिः । भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ पुरोबृहतीगर्भा त्रिष्टुप् । उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः ।

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥१
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥२
प्रामूं जयाभीऽमे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३

"सम्मोहनास्त्र" कां० ६ सू० १२६ "उपस्वासय": —हे दुन्दुभि ! तू पृथ्वी से द्यु लोक पर्यन्त, अपने उद्घोष से संजीवन भरती है, इसी कारण संग्रामरत महाभटों के मनोबल स्फूर्ति, सम्वर्द्धनार्थ भेरी उपयोगी होती है । इसमें इन्द्रादिदेवों के दिव्य पराक्रम समाविष्ट हैं, इसी कारण शत्रुओं को दूर से ही भगा देने में समर्थ है। २-हे दुन्दुभि ! अरिदल में करुणाक्रन्दन कर, स्वदल में, आत्म-विश्वास मनोबल, उत्साह, कर्त्तव्य परायणता की आतुरता भर दे । स्वदल के हीन, क्षीण, प्रमादादि अवगुणों को दूरकर, गर्जनाकर । दुखदायिनी परसेना में भगदड़ पैदाकर । तू इन्द्र (सेनापति) का वल है, दृढ़ता से डटी रह । ३—हे इन्द्र ! सेनापते ! इस शत्रुसेना को पराजित कर, हमारे ये रणबांकुरे विजयी हों । अपने सूर्य चिह्न के राष्ट्रध्वज के साथ दुन्दुभि, विजयनाद करे । हमारे मातृभूमि की रक्षा के दीवाने वीरवर, व घुड़सवार आक्रमण करें और हमारे महारथी विजयश्री की प्राप्ति से सम्मानित हों ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रक्षोघ्नेष्टिः समीक्षा—अङ्गिरा महर्षि द्वारा प्रयुक्त कृत्या (आङ्गिरसकल्पाख्य सूत्र निर्माण) आसुरी कृत्या स्वयं कृता "यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोपराघात्" (शि० १०) में ख्यात। या अन्य ईर्ष्यालु द्वारा प्रयुक्त कृत्या-के निवारणार्थ। (८।५) "अय प्रतिसरः" (मणिबन्धन में आगे पढ़ें) (१०।१) "यां कल्पयन्ति" से अभिमन्त्रित शान्ति जल से छींटे, स्नान होम करे। (कौ० ५३) "यां कल्पयन्ति कृत्या दुपर्णश्चातनैर्मातृनामभिः" इति (शा० क० १६) "कृत्या दूषण एव च। चातनोमातृनामा च। (न० क० २३) तथा "रौद्रीं रोर्गार्तस्य" (न० क० १७) के अनुसार उपरोक्त गणों में वर्णित शान्ति करके तिलक (वृक्ष निर्मित मणि) बन्धन याद करे। "अयं प्रतिसरः" इति मन्त्रोक्तम्।

रोद्रयाम। (न० क० १९)। **'अयं प्रतिसरः इति प्रतिसरमावध्य' इति द० ६।१)** तिलक वृक्ष निर्मित मणि को ही प्रतिसर या स्रात्क्यमणि कहा है। यह रोगों के, शत्रुओ के भय को दूर करने वाली राक्षसादि के भय से, संग्राम में विजय देने वाली तेज वर्च से युक्त होती है। कृत्या आदि को दूर करने में समर्थ है।

अयं प्रतिसरः (८।५); 'आयमगन्' (३।५); 'अयं मे वरणः' (१०।३) 'अरातीयोः' (१०।६) सूक्तों के मन्त्रों में वर्णित दही, मधु में बैठी (अन्दर रक्खी) तिलक मणि को ३ दिन रखकर, प्राण प्रतिष्ठा व पूजाकर, अभिमन्त्रित कर बाँधे। यह समस्त अभिलषित कार्यों को पूर्ण करती हुई समस्त विघ्नों को जो उपरोक्त कहे हैं या जो कहने में भी नहीं आ सके (ज्ञात-अज्ञात) सभी को दूरकर ब्रह्मवर्च, मेधा, शक्ति एवं पराक्रम बढ़ाने में समर्थ हैं। 'अय प्रतिसरः' (८।५) के दोनों सूक्त अर्थ सूक्त माने जाते हैं। जो अभीष्टप्रद हैं। मणि बन्धन में आगे पढ़ें।

'उत्तमो असि' (८।५-११) इस सूक्त का पूर्व सूक्त की भाँति विनियोग है। इस अपरिमित वीर्य सामर्थ्य वाली (स्त्रात्क्य) मणि को कवच की भाँति रक्षा के लिये देवताओं ने पूर्वकाल में धारण किया था।

"य आत्मानमतिमात्र" (८।६-१३) से गर्भवती स्त्री के कटिप्रदेश को पीड़ित करने वाले पिशाचादि के नाश करने हेतु-उपरोक्त कर्म करें। जो मातृनामा-चातनगण के कहे हैं। सरसों से कील दें। तथा "लकवा आदि रोग में आक (मदार) की लकड़ी के बक्कल को ऊपर से हटाकर चिक्कड़ पदार्थ जो लकड़ी पर प्राकृतिक है; उसे रोगी की रीढ़ की हड्डी से सटाकर बाँधे तो हड्डी ठीक निरोग हो जाती है; हृदयगतिरोध में नागफनी के फूल को गोदुग्ध, मधु के साथ दें हृदय की दौर्बल्यता दूर हो जाती हैं।" उपरोक्त सूक्तों (८।५; ६) से अभिमन्त्रित कर दें।

'पयस्ताक्षा' (८।६-१६) से अकेली (पति रहित) सोई स्त्री से सम्भोग की कामना वाले राक्षसों को दूर करे। **'यस्तेगर्भम्'** (८।६-१८) से गर्भ को नष्ट करने वाले उत्पन्न बाल को मारने वाले राक्षसों के विनाशार्थ 'श्वेत-पीत सर्षपौ सम्पात्य अभिमन्त्र्य, वस्त्राञ्चलेन वध्नीयात्'। विनियोग किया जाता है। श्वेत-पीली सरसों अभिमन्त्रित कर गर्भिणी के वस्त्र के ठोक में बाँध दें। कोई राक्षस विशेष पुरुष गर्भ को स्त्री भी बना देते हैं। वे भी इसीसे नष्ट होते हैं। जो स्त्री के रज का पान करके, रजोदर्शन में बाधा या तज्जन्य दोष गर्भाशय में उत्पन्न कर पीड़ित करते हैं; जो सर्प या स्त्री के रूप में निशा में अन्धेरे में, एकान्त या अरण्य में भयभीत करते हैं उन सभी का शमन करे।

पूर्वोक्त समस्तः देवी, आसुरी, मानवी, स्वकृत, कृत्या, अभिचार कर्म राक्षसादि उन्मादों से उत्पन्न भयं, पीड़ा विघ्नों के निवारणार्थ तथा शत्रु पराजय राज वशीकरणार्थ, सभी अभीष्ट सिद्धयर्थ, ब्रह्मतेज, जल, ऐश्वर्य, सम्पदा तथा प्राप्ति के हेतु पूर्व वर्णित 'आयमगन्' (३।५) 'अयं प्रतिसरः' (८।५) 'अयं मे वरणः' (१०।३) 'अरातीयो' (१०।६) इनमें वर्णित त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या (पूर्णिमा) तिथियों में ३ दिन दही और मधु में कत्था की लकड़ी की वल्कल दबाये टेढ़ी करके, तीनवट करे (तीनों को शानले) स्वर्ण से मढ़कर धारण करे। इस कां. १० सू.६ की ऋचा ३५ 'एतमिध्यम्' से (खदिरकाष्ठ) ले। 'तमिमं देवता' ऋचा २९ से दही, मधु में ३ दिन डुवोये रक्खे। उसी को चन्दन लेपकर 'अरातीयोः' इन अर्थ सूक्तों से प्राणप्रतिष्ठा पूजा होमकर अभिमन्त्रित करे 'ब्रह्मणा तेजसा' (१०।६-३०) इस ऋचा से शिर बांधें। कौ० (३।२) ऐसा ही बारिल का मत है। तथा बै० सू० (२।६) 'अरातीयो रिति यूपं वृश्च्यमानम् अनुमन्त्रयते'

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इति। तथा 'पार्थिवीं भूमिकामस्य' (न० क० १७) भूमि प्राप्ति की कामना वाले इसीसे पार्थिवेष्टि में भी मणि बन्धन का विधान किया है। "अरातीयोरितिफलं पार्थिव्याम्" इति (न० क० १६)

इस प्रकार उपर्युक्त विघ्नों के शमन तथा अभीष्ट सिद्धि का विधान है। इन्हीं उपर्युक्त उन्माद, कृत्या शाप, क्रूरदृष्टि, अभिचार, जनित विविध व्याधियों के ज्वरों के निराकरणार्थ पूर्वोक्त कृत्या प्रति हरणगण की वर्णित औषधियों दाभ अपामार्ग सहदेवी, पृश्नपर्णी, ऊँटकटेरा (भाषा) भृङ्गराज, हरिद्रा इन्द्रवारुणी नीलिका शान्ति जल के घट में डालकर निम्न सूक्तों से अभिमन्त्रित करे (४।१७) ईशानांत्वां" (४।१८) "समं ज्योतिः" (४।१६) उतो अस्य वन्धुकृत्" से कृत्या प्रति हरणगण के साथ महाशान्ति करे यह मूर्च्छा; आन्त्रिक; प्लूरसि; हृदय रोग, हिस्ट्रिया, अपस्मार-मृगी (कुष्ठादिक्षेत्रिय व्याधि, सूखारोग, अत्यन्त भूख या प्यास, दुष्वप्न, छेदन-भेदन, मारण-उच्चाटन कच्चे मिट्टी के पात्र में की गई अग्नि में नीले स्वरूप उत्पन्न कर देने वाली अन्न या भक्ष्य, पेय, चोस्यपदार्थों में, पान आदि में प्रयुक्त, अस्थि, मज्जा, रक्त, चर्म रस, त्वचा, रूप, गन्ध में प्रयुक्त, मन्त्रोषधि रूप से अनिष्ट करने वाली बाल को माता से पृथक कर देने वाली, स्तन पान करने देने वाली, रुलाने वाली तन्द्रावाली, अनर्गल अलाप स्वरूपिणी, कुक्कुट, बाज, कबूतर, श्वान को अभिमन्त्रित कर समास्थल, द्यूतस्थल, युद्ध भूमि में प्रयुक्त, दौर्भाग्यकरिणी-समस्त कृत्या अभिचारादि व्याधियाँ निश्चय ही शमन होती हैं। "जामिम् अजामिं प्रमृणीहिशत्रून (ऋ० क० ४।४५)।

गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा-भूतग्रह, पिशाच, कृत्या, शाप, आक्रोश, क्रूरदृष्टि अभिचार आदि की पीड़ा के निवारणार्थ निम्न ऋचाओं से पूर्व विधि से घृतयुक्त सर्वोषधि जो पूर्वोक्त हैं, से ग्रह गृहीत के शिर पर मिट्टी का कपाल रख कर चौरास्ता पर बिठाकर या देव-घट आदि की सन्निध में बिठाकर होम करे होमान्त, सहदेवी, पृश्निपर्णी, चित्रपर्णी, शमीपत्र, अपामार्ग आदि को कटु तैल या गोघृत में मिला नित्य लेप करें, पिप्पली को पूर्व विधि से चटायें अन्नवन्द करा गाजर-गृञ्जन का सेवन करें, कूष्माण्ड का सेवन करें; कूष्माण्ड या दूध का खोआ शिर से बँधवा दें। कौ० १३।२। अभिमन्त्रित जल से छींटे दें, आचमन स्नान करायें। पितृमेध की पूर्वोक्त ऋचाओं से आवेशक आत्मा का मिट्टी के पात्र में अभिमन्त्रित जल कुशा, दूव, पुष्प, डाल, कुशाओं में आवाहन कर लें। यज्ञान्त उसे मूंज के छींके पर रख या तिपाई पर रख रात्रि में पक्षियों के बैठने के वृक्ष पर लटका दे या उसे जलधारा में नाभि से ऊपर जलमें जाकर प्रवाहित कर दे। कौ० (४।२)।

ऋचा "इमं मे अग्ने" (६।१११) ये ४ ऋचायें मातृनामागण में निर्दिष्ट समस्त कर्मों में उपयोग का विधान है। तथा च तै० स० ३।४, ४) "गन्धर्वाप्सरसो वाएतम् उन्मादयति य उन्माद्यति" इतिहि तैत्तिरीयकम्। यह गन्धर्वादि का उपलक्षण है।

"कृत्यापरिहरणगण"

"ये पुरस्तात्" (४।४०) तथा ईशानात्वा" (४।१७) तथा दूष्या दूषिरसि" (२।११) आदि कृत्याप्रतिहरणगण के कार्यों में "तथा स्त्री, शूद्र, राज, ब्राह्मण कापालिक, अन्त्यज, शाकिनी, डाकिनी आदि द्वारा किये गये समस्त प्रकार के अभिचार कर्मों से स्वयं की रक्षा, तथा अभिचार करने-कराने वाले के स्वयं के ही विनाश कार्यों में समन्त्रक-अमन्त्रक, अस्त्र-शस्त्रादि भेदों के अभिचारों वाल-काटने, व वस्त्रादि चुराकर विनाशकारी अभिचार करने भोगादि के रूप में खिलाने, रक्त, मांस, आदि के रूप में गाड़ने, विविध अन्न, सिदूर आदि युक्त पदार्थों से अलंकृत प्रतिकृति के चतुष्पाथपर रखने आदि सभी से रक्षार्थ राज्यश्री, ब्रह्मवर्च, सकाम किये गये, किये जाने वाले शास्त्र सम्मत कार्यों के साफल्यार्थ "वार्हस्पति" नाम की नक्षत्र कल्प ६ में वर्णित महाशान्ति में, होम करें शान्ति जल से दर्भ मुष्ठि से गुल्फों (ग्रन्थियों) पर छींटे दें। "तिलक" नामक वृक्ष विशेष की मणि अभिमन्त्रित कर बांधें। कौ० ५।३ न० क० २३। यज्ञ की (सूक्तों) के अन्त में यह प्रयोग करें (क० व० ६२)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भीषास्माद्वातात्पवते" (तै० वा० ८।८।१) इत्यादि "त्र्यन्त प्रसिद्ध नियमन शक्ति युक्त परं-ब्रह्मप्राप्य संतप्ता भवन्तु "भद्रन्दूयं वज्रं उद्यतम्" एनान् रक्षा कर्मणा प्रतीचीनं हन्मि" कर्त्ता—कृत्यापरि-हरणगण के प्रारम्भ में तथा अन्त में इस भाँति तारस्वर से सम्बोधित करे। शान्ति जल के कलश में पूर्वोक्त समस्त सामग्री तथा दर्भ, अपामार्ग, सहदेवी पृश्निपर्णी शमीपत्र-शमीफल शान्ति घट में डालें। (अ० वे० कां० १ सू० २८ मं० ३ प्र० २ अनु० ५)

कां० ५ सू० २९ (१-१५) चातनः। जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः। त्रिष्टुप्, ३ त्रिपदाविराण्नामगायत्री ५ पुरोऽति-जगती, विराड्जगती, १२-१५ अनुष्टुप् (१२ भुरिक् १-४ चतुष्पदापरावृहती ककुम्मती।) छन्दांसि कृत्या, अभिचार प्रति हरणे मार्जने होमे च विनियोगः।

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम्।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥१
तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥२
यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः। विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥३
अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥४
यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥५
आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥६
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥७
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥८
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥९
क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥१०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानन्तु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥११
समाहर जातवेदो यद्धृतं यत्पराभृतम् । गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२
सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् । अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृण जीवतु ॥१३
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः । तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४
तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा । जहातु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति ॥१५

का० ५ सू० २९ "पुरस्ताद्युक्तोवह":— हे जातवेदाग्ने ! आप वैद्य शिरोमणि भैषज्यकर्त्ता, भैषजकर्म से पूर्व उचित, अनुचित के पर्यवेक्षक, कार्यवाहक है । इसी उपर्युक्त विधि से परम असाध्य कर्मज कायज, भवव्याधि के मूल का भली भाँति निदान (ज्ञान) कर; इन व्याधियों से बुरी भाँति ग्रसित गौ, घोड़े, कृषि, पशु, मानवादि सभी को, आपकी भैषज्यात्मक सहायता से; पूर्ण निरोग स्वस्थ बना सकेंगे । २—हे जातवेदाग्ने ! सब देवों से सम्पर्क के साथ ऐसी कृपा करो कि जो घात, पात, मारण, उच्चारण. विद्वेषण, सम्मोहन, आकर्षण. वशीकरण, शाप, आक्रोश, क्रूर, (दृष्टि, अद्भुत वास्तुदोषजनित) (मन, मस्तिष्क, बुद्धि. हृदय, काया कार्य, उद्योग, धनधान्य, सम्पदादि) को मानव सम्बन्धी दुर्गति, व्यथित करने वाले, खा जाने वाले, दीर्घकालीन से रहनेवाले, विनाशकारी, मृत्युदायक जघन्य व्याधियों की मूल मर्यादाओं का सर्वनाश हो जावे । ३—हे जातवेदाग्ने ! आप समस्त देवों के साथ, ऐसी कृपा करें, जिससे उपरोक्त सर्व संहारक व्याधि मूलों की जननी सीमाओं का नाम ही मिट जावे । ४—हे अग्ने ! इस व्याधि के नेत्रों का उच्छेदन कर डालिये, हृदयविदीर्ण कर दीजिए, जिह्वा को काट डालिये, दाँतों को तोड़ दीजिये उग्र वलिष्ठ पिशाच, यातुधानादि का संहार कीजिये । ५—हे विद्वान अग्ने ! पिशाचादि के, इस व्याधि ग्रहीत के, रक्त मांस, रस, बल धन, मन, मस्तिष्कादि का जो भाग छिन्न, भिन्न कर अपहरण किया गया है जो खा लिया गया है, उसे पुनः पूर्ण रूप से भरते हुए, शरीर मे मांस, प्राणादि को स्थापित कर दो । ६—जो पिशाचादि भक्ष्य, भोज्य, पक्व, अपक्व रस, रक्त, आम मज्जा, वीर्य वलादि में प्रविष्ट हो गये हैं, वे स्वय और अपने अनुयायी पैशाचिक सन्ततियों सहित नष्ट करके, इसे नीरोगता प्रदान करें । ७—जो दूध, मट्ठा, दही, रस, अपक्वधान्यादि में, भक्ष्य पदार्थों में मिलाकर, मेरा विनाशक है, वह पिशाच, अपनी सन्तति, दल, बल सहित नष्ट कर; उस रोगीको पूर्ण नीरोगता प्राप्त हो। ८—जो कच्चा मांस खानेवाले, यातुधान, प्रेताग्नि आदि पेय पदार्थों, पत्रों, स्थानों में, यातुधानों के शयनागार, शयन, वस्त्रादि के सोने में मुझे आ दबोचता है; वह मांसाहारी पिशाच, स्वयंमय सन्तति नष्ट हो जावे और रोगी तुरन्त नीरोग हो । ९—जो पिशाच, राक्षसादि, प्रेतात्मायें, दिन में, या निशा में, यातुधानों से आविष्ट, शयनागार या विस्तरादि में सोते हुए, मुझे आकर जकड़ लेता है, वह स्वयं और उसकी अनुयायिनी सन्तति नष्ट हो जावे और रोगी पूर्णतया नीरोग हो जावे । १०—हे जातयेदाग्ने ! मांस भक्षक, रक्त पीने वाले मन मलिन करने वाले, पिशाचादि का संहार करो । पराक्रमी इन्द्र, वज्रमात कर उसका विनाश करें निर्भीक सोम, उनके शिरों का उच्छेदन कर डाले । ११—हे अग्ने ! आप निरन्तर यातुधानों का संहार करते हैं; यातुधान आपको संग्राम में पराजित नहीं कर सकते हैं । मांसाहारियों राक्षसों को जला दो, तेरे दिव्य आग्नेयास्त्र से बचने न पाये । १२—इसके नष्ट भ्रष्ट अगों को पुनः परिपूर्ण कर, परिपुष्ट कर दो, यह चन्द्र कलाओं की भाँति बढ़ता चले । १३—हे जातवेदाग्ने ! यह चन्द्र कलाओं की भाँति उन्नत हो, वह निरीह, चैतन्यता, व्याधि रहित, नीरोगता के साथ जीवित हो । १४—हे अग्ने ! तेरी जो यातुधानों के दहन करने वाली समर्पित समिधायें हैं, तू उनको स्वीकार कर । १५—तड़फराहट निवारक इन मसर्पित समिधाओं की अपनी ज्वाला प्रदीप्त करने को स्वीकार कर जो इसके मांस को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षीण, विकृत करता है, उसके प्रेतस्वरूप को त्याग दे। अर्थात् अपने जाठराग्निजनक, स्वास्थ्यवर्द्धन स्वरूप को देदीप्यमान कर जिससे, रक्त, रसामांसक्षयकारी व्याधियों से मुक्त, स्वस्थ, नीरोग, उन्नत जीवन यापन में समर्थ हो।

यदि किसी अज्ञानी मलिन आत्माने, द्वेष के कारण, किसी निरीह, पुण्यात्मा के विरुद्ध मारण उच्चाटन, विद्वेषण, सम्मोहनादि अभिचार या धातपात, उस पर उसके प्रियजनों, सहयोगियों पर, उसके क्षेत्र, उद्योग, कृषि, पशु आदि के प्रति किया हो; अथवा कोई क्रूर प्रेतात्मा, ब्रह्मग्रह, यक्ष, राक्षस, यातुधान ने अपनी माया (साम्बरी माया आदि से किसी को अधिग्रहण कर, प्राणान्त संकट में डाल दिया हो तो उसके निवारणार्थ निम्न कोई सी विधि का जब अन्य कोई भी उपचार अक्षम हो गये हों, तब इसका प्रयोग करें।) १—शत्रु के पैर की मिट्टी, चौरास्ता की मिट्टी, चिता की भस्म, और स्वतः की मध्यमा अगुली का रक्त, तथा पैर के अंगूठे का जल मिट्टी में मिला, सबकी एक प्रतिकृति बना लें, उसे कृष्ण या नील वस्त्र से ढांक कर, काले डोरे से बांध दें। उन कुशाओं पर दक्षिण को उसका मुँह करके लिटादें, उसकी प्राण प्रतिष्ठा कर लें, सरसों के तेल का, पड़ी बत्ती का दीपक वहाँ रक्खें। उस पर कां. १६ सू १ व ६ से काले उर्द अभिमन्त्रित कर, उन्हीं मन्त्रों से, उर्दों से १।१ कर, उसके मुँह में डाल दें। अर्ध निशा में, एकान्त में प्रयोग करें। प्रातः होते ही उस प्रतिकृति को श्मशानया चौरास्ता पर गाड़ दें। यह १०१ मृत्युओं, महामारी, कालज्वर, माता, मोतीझला, सन्निपातादि महाव्याधियों को समूल नष्ट करने को भी उपयुक्त विधि है।

२—यदि किसी उन्मत्त राष्ट्रनायक ने, भूमि, धन के लोभ से, राष्ट्र को परतन्त्र बनाने के लिये आक्रमण किया हो तो, नीम की लकडी लेकर, शत्रुपक्ष, के नायक, सेनापति आदि आक्रामक के शिर का बाल, उस पर लपेटे, उसीसे उनके नाम लिखे, उसे प्रेताग्नि, अर्थात् सांग्रामिक अग्नि पर राल, लोहवान, माहिष्य गूगल रख, धूप दें, ऐसा करने से अरिदल संकट में पड़कर, किंकर्त्तव्य विमूढ हो जाता है। इन पर अध्याय ५ के पृष्ठ ५४२ के तीनों मन्त्रों का प्रयोग करें। ३— आश्लेषा नक्षत्र में, १ अंगुलमात्र की, सर्प की हड्डी शत्रु क्षेत्र पर या सेना के पड़ावस्थल में गाड़ दें, इनका प्रयोग करें। ४—आश्विनी नक्षत्र में घोड़े की हड्डी की ४ अंगुल मात्र कील, इन्हीं मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर गाड़ दें। ५—परदल के शयनागार या निवास गृह में, आर्द्रा नक्षत्र में, नीम के वन्दारू के वन्दारू को अभिमन्त्रित इन्हीं मन्त्रों से करके, गाड़ दें। ६—शिरीष का वन्दारू भी इसी में कारगर फलप्रद होता है। ७ मनुष्य की हड्डी, इन मन्त्रों और कां. १६ सू. ६ व ८ से अभिमन्त्रित कर परदलाध्यक्ष, सेना या राष्ट्र नायकों के नाम का प्रयोग (अमुक) के स्थान पर करें, उसे चिता में गाड़ दें तो उनको विचित्र व्याधियाँ घेर कर जर्जरित कर डालती है। ७—मगलवार के दिन उपरोक्त स्थानों की मिट्टियाँ लें, गोमूत्र में सानकर, प्रतिमा बनायें, उसी मिट्टी की एकान्त नदी तीर आदि में वेदी बनायें, उस पर मूर्ति को रखकर, उसे अभिमन्त्रित कर व्याधि ग्रहीत के शिर से पैरों की ओर २१ बार उतारें। फिर उसी वेदी पर रखकर, उसकी छाती में तीक्ष्ण शस्त्र गाड़ दें, या आग्नेयास्त्र, या कां० १६ सू० १,६,७ व ८ से कुशा से प्रहार कर छींटे दें, या काले उर्द अभिमन्त्रित कर प्रहार करें तो व्याधि शूल, प्रेत, ब्रह्म, राक्षस, पिशाच, यातुधान राक्षस, कालज्वर, दुर्गति, कर्मज शत्रु व्याधि, से मुक्ति मिलती है।

अथ रक्षोहण अनुवाक—(१।७-१; ८-१, १६-१, २८-१, २६-१) २।१४-१, १८-१, २-१, २ (३।१,२) (४।२०-२१ ३६, ३७) (५।२९) (६।३२, ३४) (८।३) ये सूक्त इस गण में हैं।

'अग्निर्न': (३।१) **'अग्निनौ दूतः'** (३।२) इनसे शत्रु सेना या विपक्ष के सम्मोहन के लिए व्याकुल चित्त, आवश्यक विषय में कार्याकार्य ज्ञानभ्रम कराने हेतु; हाथ के समस्त कार्य आयुध जादि फेंकने के कार्यों से रहित, कुण्ठित करने हेतु नेत्रज्ञान, कर्म रहित बनाने हेतु, पलायन पर बनाने हेतु दक्षिणाग्नि, सेना अग्नि, पूर्वोक्त स्थापित कर-पूर्व वर्णित विधि से अप्वा देवी को आहुतियाँ दें, **सम्मोहनास्त्र** का प्रयोग करें। २१ बार शर्करा शूप में रख अभिमन्त्रित कर बिपक्षी शत्रु दल की और फैंकें फटक दें। कौ. २५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पीली सफेद सरसों मिलाकर उसमें देशी गुड़ की शक्कर मिलाकर कां.३सू.१ से अभिमन्त्रित कर २१बार दशों दिशाओं में फैंकें और चौरास्ते पर रख दें (रात में) न्यायालय या युद्ध क्षेत्र में भी फैंक दें। दायां अगूँठा दवाये रखें।

कां० ३।१ ऋचाया, १-६ अथर्वा। सेना सम्मोहनम्। १ अग्निः, २ मरुतः, ३ इन्द्रः। त्रिष्टुप् २ विराट गर्भाभुरिक, ३-६ अनुष्टुप्, ५ विराट्पुर उष्णिक। शत्रु सेना सम्मोहने मन, वुद्धि उच्चाटने, वशीकरणेः, शत्रु बल क्षये आत्मबल संवर्द्धने अग्नेयास्त्र प्रक्षेपणे अनुमन्त्रणे, रक्षाकर्मणि मार्जने होमे च विनियोगः।

अ॒ग्निर्नः॒ शत्रू॒न् प्रत्ये॑तु वि॒द्वान् प्र॑ति॒दह॑न्न॒भिश॑स्ति॒मरा॑तिम्।
स सेनां॑ मोहयतु॒ परे॑षां॒ निर्ह॑स्तांश्च कृणवज्जा॒तवे॑दाः ॥१
यू॒यमु॒ग्रा म॑रुत ई॒दृशे॑ स्था॒भि प्रेत॑ मृ॒णत॒ सह॑ध्वम्।
अमी॑मृण॒न् वस॑वो नाथि॒ता इ॒मे अ॒ग्निर्ह्ये॑ऽषां दू॒तः प्र॒त्येतु॑ वि॒द्वान् ॥२
अ॒मि॒त्र॒से॒नां॑ मघवन्न॒स्मान् छ॑त्रूय॒तीम॒भि। यु॒वं तानि॑न्द्र वृत्रहन्न॒ग्निश्च॑ दहतं॒ प्रति॑ ॥३
प्रसू॑त इन्द्र प्र॒वता॒ हरि॑भ्यां॒ प्र ते॒ वज्रः॑ प्रमृ॒णन्ने॑तु॒ शत्रू॑न्।
ज॒हि प्र॒तीचो॑ अ॒नूचः॒ परा॑चो॒ विष्व॑क् स॒त्यं कृ॑णु॒हि चि॒त्तमे॑षाम् ॥४
इन्द्र॒ सेनां॑ मोहया॒मित्रा॑णाम्। अ॒ग्नेर्वात॑स्य॒ ध्राज्या॒ तान् विषू॑चो॒ वि ना॑शय ॥५
इन्द्रः॒ सेनां॑ मोहयतु म॒रुतो॑ घ्नन्त्वोज॑सा। चक्षूं॑ष्य॒ग्निरा द॑त्तां॒ पुन॑रेतु॒ परा॑जिता ॥६

आग्नेयास्त्र, सम्मोहनास्त्र प्रयोग करने की विधि :—कां० ३ सू० १ "अग्निर्न" हे विद्वान सांग्रामिक अग्नि सदृश सक्रुद्ध वीरास्त्र बिनाशकारी शत्रुओं को भस्म करता हुआ, हमारे शत्रुओं पर आक्रमण करदे। वह जातवेदाग्नेयास्त्र, प्रतिपक्षी शत्रु सेना को मोहित कर डाले। और उन्हें भुज-बल हीन कर डाल। २—हे रण बलवेदी परशीर्षार्पण को अतुर रण बांकुरो। इस युद्धकाल में तुम अग्नि बबूले होकर आगे बढ़े चलो, मारते ही चलो और विजयश्री का मुख चुम्बन करो। ये उद्भट योद्धा महारथी संहार करते जा रहे हैं, इनके सेनानायक, क्रोधावेश से अग्नि के तुल्य संतप्त होकर, वैज्ञानिक रीति से आक्रमण करें। ३ हे घनाध्यक्ष शत्रुहन्ता महाभट इन्द्र! के सम्मोहनास्त्र! आप और अग्नि के, आग्नेयास्त्र, तुम दोनों ही हमसे शत्रुता करने वाली रिपुसेना को सम्मोहित कर, जला डालिये। ४—हे सेनानायक इन्द्र! आपका प्राण संहारक वेगवान सञ्चालित वज्र शत्रुओं का उच्छेदन करता हुआ आगे बढ़ता चले। सम्मुख पीछे इधर-उधर परे भागते हुए शत्रुओं को मार गिराये, और इन शत्रुओं के मनमें किंकर्त्तव्य का उद्वेगकर, चारों ओर भटका दें। ५— हे सेनानायक! आग्नेयास्त्र के दाह से, शत्रुसेना को मोहान्धकार से चारों ओर भटकाकर संहार कर डालिये। ६—हे वीर शिरोमणि! आप **सम्मोहनास्त्र** से शत्रु दल को मोहित कर, **तमशास्त्र** से अन्धाकार घबराहट में डालते हुए, **वायव्यास्त्र** के वेग से, अग्नेयास्त्र से जला पराजित कर पीछे को भगा दीजिये।

कां० ३।२ (११६) अथर्वा। सेनासम्मोहनम्, १-२ अग्निः, ३-४ इन्द्रः, ५ द्यौः, ६ मरुतः। त्रिष्टुप् २-४ अनुष्टुप्। ज्ञात अज्ञात शत्रु सेना सम्मोहने मन मस्तिष्क बुद्धि उच्चाटने वशीकरणेवलक्षये पराभवे, स्वबल सम्बर्द्धने स्वविजये, कर्मज व्याधिभैषज्ये मार्जने, होमे च विनियोगः।

अ॒ग्निर्नो॑ दू॒तः प्र॒त्येतु॑ वि॒द्वान् प्र॑ति॒दह॑न्न॒भिश॑स्ति॒मरा॑तिम्।
स चि॒त्तानि॑ मोहयतु॒ परे॑षां॒ निर्ह॑स्तांश्च कृणवज्जा॒तवे॑दाः ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अ॒यम॒ग्निर॑मूमुह॒द् यानि॑ चि॒त्तानि॑ वो हृ॒दि । वि वो॑ धम॒त्वोक॑स॒ः प्र वो॑ धमतु स॒र्वतः॑ ॥२

इन्द्र॑ चि॒त्तानि॑ मो॒हय॑न्न॒र्वाङाकू॑त्या चर । अ॒ग्नेर्वात॑स्य॒ ध्राज्या॒ तान् विषू॑चो॒ वि ना॑शय ॥३

व्याऽकूतय एषामि॒ताथो॑ चि॒त्तानि॑ मुह्यत । अथो॒ यद॒द्यैषां॑ हृ॒दि तदे॑षां॒ परि॒ निर्ज॑हि ॥४

अ॒मीषां॑ चि॒त्तानि॑ प्रतिमो॒हय॑न्ती गृहा॒णाङ्गा॑न्यप्वे॒ परे॑हि ।

अ॒भि प्रेहि॒ निर्द॑ह हृ॒त्सु शोकै॒र्ग्राह्या॒मित्रां॒स्तम॑सा विध्य॒ शत्रू॑न् ॥५

अ॒सौ या सेना॑ मरुत॒ः परे॑षामस्माने॒त्य॒भ्योज॑सा॒ स्पर्ध॑माना ।

तां वि॑ध्यत॒ तम॒साप॑व्रतेन॒ यथै॑षाम॒न्यो अ॒न्यं न जा॒नात् ॥६

पृ. ५४८ की "प्राग्नये" (६।३४) इन पाँच ऋचाओं से राक्षसादि ग्रह पीड़ा निवारणार्थ होम करें साथ में "प्रेतः" (७।११६-२) का भी विनियोग करें । कौ. ४।७ ।

कां. ३ सू. २ अग्निर्नोदूतः—हे हमारे अम्त्र-शस्त्र, रणविद्या प्रवीणभटो! क्रोधावेश में आक्रामक कारियों को अग्नेयास्त्र से तू दग्ध करते हुए आक्रमण कर । वह अन्नेयास्त्र परदल के हृदयों को "सम्मोहित कर (विवेकहीन कर) उन्हें भुजवल पराक्रम क्षीण बनादे । २—यह आग्नेयास्त्र का दाह, अरि सेना के हृदयों में घबराहट उत्पन्न कर, अपने क्षेत्रों से निकाल भगाये, और तुम शत्रुओं को सब देशों से हटा दो । ३—हे रण बांकुरे ! सम्मोहनास्त्र से, शत्रु के चित्तों को सम्मोहित (विवेकहीन) बनाकर प्रफुल्ल मन से हमारे पास आ । आग्नेयास्त्र और वायव्यास्त्रों के वेग से उनको नष्ट भ्रष्ट कर दो । ४—हे सम्मोहनास्त्र ! इन शत्रुओं के संकल्पों को परस्पर विरुद्ध कर, इस ओर आकर्षित होने को चिन्ता को सम्मोहित कर दो । कि वे आज के इनके अपने मानसिक संकल्पों का वे परित्याग कर दें । ५—हे व्याधि ! इन शत्रुओं के चित्तों को, विपरीत (हमारे अनुकूल) सम्मोहित करती हुई सेना इसके विभिन्न विभागों को जकड़ती हुई आगे, को वढीजा, सभी प्रकार से आगे वढ़ी चली जा । इनके हृदयों को व्याकुलकर सन्तापित कर, तमसास्त्र से मूर्छित कर दुष्ट प्रकृतिक शत्रुओं को ध्वस्त कर डाल । ६—हे वायव्यास्त्र ! विपक्षियों की यह सेना, हमसे स्पर्धा करती हुई, आतुरता के साथ हम पर आक्रमण करती चली आ रही है, उसे "तमसास्त्र" से ऐसे सम्मोहित कर, बल विवेकहीन कर डाल, जिससे ये एक दूसरों को पहिचान ही न पावें ।

(कां ५ सू० १४) १-१३ शुक्रः । वनस्पतिः, कृत्यापरिहरणम् । अनुष्टुप् ३, ५, १२, भुरिक्, ८ त्रिपदाविराट् १० निचृद् वृहती, ११ त्रिपदासाम्नी त्रिष्टुप्, १३ स्वराट् । छन्दांसि कृत्यदूषण परिहरणे विनियोगः ।

सु॒प॒र्णस्त्वान्व॑विन्दत् सूक॒रस्त्वा॑खनन्न॒सा । दिप्सौ॑षधे॒ त्वं दिप्स॑न्तमव॑ कृत्या॒कृतं॑ जहि ॥१

अव॑ जहि यातु॒धाना॒नव॑ कृत्या॒कृतं॑ जहि । अथो॒ यो अ॒स्मान् दिप्स॑ति॒ तमु॒ त्वं ज॑ह्योषधे ॥२

रिश्य॑स्येव परीशा॒सं प॑रि॒कृत्य॒ परि॒ त्वचः॑ । कृ॒त्यां कृ॑त्या॒कृते॑ देवा नि॒ष्कमि॑व॒ प्रति॑ मुञ्चत ॥३

पुन॑ः कृ॒त्यां कृ॑त्या॒कृते॑ हस्त॒गृह्य॒ परा॑णय । स॒म॒क्षम॑स्मा॒ आ धे॑हि॒ यथा॑ कृत्या॒कृतं॒ हन॑त् ॥४

कृ॒त्याः स॑न्तु कृत्या॒कृते॑ श॒पथः॑ शपथीय॒ते । सु॒खो रथ॑ इव वर्ततां कृ॒त्या कृ॑त्या॒कृतं॒ पुन॑ः ॥५

यदि॒ स्त्री यदि॑ वा॒ पुमा॑न् कृ॒त्यां च॒कार॑ पा॒प्मने॑ । तामु॒ तस्मै॑ नयाम॒स्यश्व॑मिवाश्वाभि॒धान्या॑ ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता । तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७
अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व । पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८
कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि । न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥९
पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश । बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥१०
उदेणीव वारण्यऽभिस्कन्दं मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥११
इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति । सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१२
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् । सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१३

कां ५ सू. १४"सुपर्णस्त्वा" गरुड़ ने तुझे प्राप्त किया, और शूकर ने तुझे अपनी नासिका से खोदा है। हे ओषधे ! तू नाशक का नाश कर और कृत्याकर्त्ता को ही मार डाल । २. यातना देने वालों को मार डाल । जो हमें मार डालना चाहता है, हे ओषधे तू उसको मार डाल । ३. हे देवो, कृत्याकर्त्ता को चारों ओर से कुभने वालों के तुल्य और स्वर्णाभूषण तुल्य त्वचा के ऊपर घाव कर के कृत्यकर्ता के प्रति उसी के काटने वाले प्रयोग को वापिस कर । ४. शिर काटने वाले साधन को हाथ में पकड़ कर प्राण घातक प्रयोग कर्ता के ही पास उसे वापिस कर । ७. यदि तू देवों द्वारा प्रयुक्त है, अथरा मनुष्यों द्वारा बनाई गई हैं, उस तुझको हम, सहयोगी इन्द्र के द्वारा पुनः हटा देते हैं । ८. हे संग्रामजेता तेजस्वी पुरुष ? शत्रु सेनाओं का पराभव कर । फिर कृत्या कर्त्ता के प्रति, प्रतिहरण करने के उपाय से घातक प्रयोग को हठा देते हैं । ९. हे घातक को वध करने वाले ! तू उसका वेध कर । जितने कृत्या की, उसी का नाश कर । हिंसा न करने वाले तुझ को हम वध करने के लिए उत्तेजना नहीं करते । १०. पुत्र के समान पिता के पास जा । लिपटने वाले सर्प की भांति घातकी को काट । वन्धन की ओर जाने के समान जा । हे कृत्ये ! घातकी के प्रति पुनः जा । ११. हथिनी जैसे मृगी पर आक्रमण करती है, उसी प्रकार आक्रामक घातकी के प्रति घात चली जावे । १२. द्यावा पृथिवी ! यह कृत्या उसी कर्ता पर वाण के समान सीधा गिरे और मृग की भांति उसी कृत्या कर्त्ता को पुनः पकड़ ले । १३. अग्नि के तुल्य प्रतिकूलता के साथ, और जल के तुल्य अनुकूलता के साथ वह चले, सुखद रथ की भांति, घात कर्त्ता के पास ही फिर से वापिस चला जावे ।

कां ५ सू० ३१ । १-१२ शुक्र । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप् ११ वृहती गर्भा । अनुष्टुप् १२ पथ्या वृहती । कृत्या-परिहरणे उपर्युक्त कर्मणि विनियोगः ।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये । आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥१
यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि । अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥२
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति । गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥३
यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् । क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥४
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः । शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने । अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे । दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥७
यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥८
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् । म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ॥९
अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि । अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥१०
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् । चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् । इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥१२

महर्षि अङ्गिराजी का ब्रह्मघोष

कां० ५ सू० ३१ "यां ते चक्र रामे" जिस प्राण घातक प्रयोग को, वे कच्चे वर्तन में करते हैं, जिसे मिश्रित वहु धान्यों में करते हैं, और जिस (कृत्या) को कच्चे मास में रखते हैं, उसे मैं हटाये देता हूँ। २. जिस कृत्या का प्रयोग पक्षी विशेष में करते हैं, अथवा सींगों वाले मैंढ़ों या बकरों में करते हैं, जिस घातक प्रयोग को वे भेड़ों में करते हैं, उसे मैं दूर करता हूँ। ३. जिस कृत्या को एक खुर वाले पशुओं में प्रयुक्त करते हैं, दोनों ओर के दातों वाले पशुओं में जिनका प्रयोग करते हैं, जिस कृत्यों को गदहों में करते हैं, उन सब को मैं हटाता हूँ। ४. जिस कृत्या को वे बिना मूल की ओषधि में प्रयोग करते हैं। **नराची** औषधि में (बल क्षीणता, नपुंसकता लाने वाला) प्रयोग करते हैं जिसे खेत में प्रयुक्त करते हैं उसको मैं हठाता हूँ। ५. जिस कृत्या को गार्हपत्याग्नि में, और बुरी भांति प्रज्वलित पूर्वाग्नि (ज्येष्ठ सन्तति) के प्रति करते हैं, जिसका प्रयोगशाला में करते हैं, उन सभी को मैं हठाता हूँ। ६. जिस कृत्या को सभा, बाद-विवाद, खेल में, जूए के पाशों में करते हैं, उनको मैं हठाता हूँ। ७. जिस कृत्या को सेना में, वाण में, धनुष्य में दुन्दुभि पर करते हैं उसको मैं हटाता हूँ। ८. जिस प्राणघातक कृत्या को कुए में करते हैं, याश्मशान में गाड़ देते हैं, अथवा घर में ही करते हैं, उनको मैं हठाता हूँ। ९. जिस कृत्या को मनुष्य की हड्डी में प्रज्वलित अग्नि में, चोरी से प्रज्वलित किये गये, मांस भक्षक प्रेताग्नि के प्रति किये गये, घातक प्रयोग हटाता हूँ। १०. इस कृत्या को कुमार्ग से प्रयुक्त किया गया है, उसे सन्मार्ग से वापिस करते हैं। मूढ़ जन, मर्यादा पालक महामतिगों से, बिना सोचे अपाय का उपाय कर सकता है। ११. जिसने कृत्या का प्रयत्न किया और वह असफल रह, इसके विपरीत, उसके अपने ही पांव और अगुलियों को तोड़ दिया है। उस अभागे ने ओ, हम शौभाग्यशालियों के लिये कल्याण ही किया है। १२. इन्द्र ! इस निकृष्ट, जड़ में दुःखदायी, अनर्गलालापी, कटु, असद्वक्ता को बड़े शस्त्र से मारे, और अग्नि, आग्नेयास्त्र से वेध डाले।

कां. १० सू. १ [१-३२] प्रत्यङ्गिरसः। कृत्यादूषणम्। अनुष्टुप्; १ महावृहती; २ विराण्नामगायत्री; ९ पथ्यापङ्क्ति १२ पङ्क्तिः, १३ उरोवृहती; १५ चतुष्पदाविराड्जगती; १७,२०, २४ प्रस्तार पङ्क्ति (२० विराट), १६, १८ त्रिष्टुप्; १९ चतुष्पदा जगती; २२ एकावसाना द्विपदार्ची उष्णिक्; २३ त्रिपदाभुरिक् विषमा गायत्री; २८ त्रिपदा-गायत्री, २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती, ३२ द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदाति जगती। छन्दांसि उपर्युक्त कृत्यादूषण परिहरणादि कर्मणि विनियोगः।

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः । सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥१
शीर्षण्वतीं नस्वतीं कर्णिनीं कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा । सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता । जाया पत्या नुत्तेवं कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥३
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् । यां क्षेत्रे चक्रुर्या गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥४

महर्षि अङ्गिरा जी का उद्घोष

कां० १० सू० १ "यां कल्पयन्तिः—चिकित्सा वैज्ञानिक मनीषगण ! जिस घातक प्रयोग (कृत्या) को स्वयं के हाथों से, बरात कालीन नववधू के अलङ्कृत करने के तुल्य, विविध विचित्र स्वरूपों की वनाते हैं, वह घातक (कृत्या) प्रयोग; दूर चला जाये । हम इस घातक प्रयोग को दूर कर देते हैं । २—अनेकों ही रूपों, शिरों, नाकों, कानोंवाली निर्मित कृत्या, वह दूर चली जावे । हम इसको हटाये देते हैं । ३ – पति द्वारा परित्यक्ता स्त्री की भाँति; पिता के पास अथवा वन्धु के पास सीधी हो जाती हैं; उसी प्रकार शूद्र, स्त्री, राजा अथवा ब्राह्मणो द्वारा प्रयुक्त कृत्या (घातक प्रयोग) उसके कर्त्ता के पास ही वापिस चली जावे ।

४—जो घातक (कृत्या) प्रयोग, खेत पर गौओं और पशुशाला में और तेरे परिवारीं जनो पर किया जाता है (किया गया है) उन सभी घातक प्रयोगों को इन (अपामार्ग, अर्जुन) औषधियों से असफल बनाते है । ५—पापिष्ठ पापकर्त्ता को ही यह पाप लग जाय, शाप देने वाले, क्रूरदृष्टि पापकर्त्ता, मलिन आत्मा को ही यह शाप दृष्टि आदि लग जावें । हम सभी विनाशक दुर्गुण युक्त पापकर्मो को वापस ही भेजे देते हैं, जिससे घातक प्रयोगकर्त्ता का ही विनाश हो । ६—घातक प्रयोग को कर्त्ता के ही पास वापिस भेजने में समर्थ आङ्गिरषी विद्या (वंतान श्रौत सूत्रोक्त) में प्रवीण पुरोहित ही हमारे संरक्षक हैं । वे ही एक मात्र घातक मन्त्रि की (देवी बलयुक्त) प्रयोगों को लौटा देते हैं, वे इस साधन से, घातपात कर्त्ताओं का ही विनाश करें ।

७—ओ घातक प्रयोग (कृत्ये) ? जिस घातक प्रयोग कर्त्ता ने तुझे "आगे बढ़" यह आज्ञा दी है उसी विनाशक मति शत्रु के पास चलाजा; और निर्दोष हम जैसों पर आक्रमण न कर । ८—हे कृत्ये ! जैसे शिल्प कर्मी स्वबुद्धि से, रथ के अवयवों का निर्माण करता है; वैसे ही जो तेरे घातक प्रयोगों का स्रष्टा है, उसी स्रष्टा के पास पुनः वापिस चला जा । तुझे वहीं वापिस पहुँचना है, यह मनुष्य तुझसे अज्ञात ही रहे, इन पर तेरा आक्रमण न होकर घातकी प्रयोग कर्त्ता पर ही वापिस चला जावे । ९—हे कृत्ये ! जो निन्द्य, जघन्य घातक प्रयोग कर्त्तागण, तेरा निर्माण करते हैं, उन घातकी प्रयोगकर्ताओं को प्रतीकारकारी यह शान्ति पूर्ण साधन है । यही पुनः घातक प्रयोगों को लोटाने वाला है ।अतः तुझे इसीसे मार्जन स्नान कराते हैं, जिससे सारे ही दोष दूर हो जावें ।

१०—जो दुर्भाग्य पूर्ण, ऋतु स्नाता, मृतवत्सा (मरे पुत्रों वाली) के पास जाते है, ये सारे ही पाप मुझसे दूर हो जावें; और कल्याण द्रव्य मेरे पास आ जावें । ११—हे मनुष्य ! जो पितृस्वरों को देने के अवसर पर, तथा यज्ञों सभाओं, वादों में तेरा नाम लेवें, तो ये कल्याण प्रदायिनी औषधियाँ उन आगे होने वाले समस्त पापों से तुझे मुक्त करें । १२—हे मनुष्य ! औषधियां, तुझे, देवों से सम्बन्धित पापों से, पितरों सम्वन्धी पापों से; निद्य उच्चारण के पापों से, कटु, अभद्र, दुर्वचनों के पापों से अपमान के पापों से, ब्रह्मवल, मन्त्र की शक्ति और ऋषियों के वचनामृतों (चरणामृतों) से तुझे मुक्त करें । १३—जैसे वायु, पृथ्वी से धूलि, आकाश से मेघों को उड़ा देता हैं । उसी भांति सारे ही अनर्थ कारण, ब्राह्मी शक्ति द्वारा निवृत्त होकर दूर हो जावे ।

१४—हे कृत्ये रस्से से बँधी हुई गर्दभी की भाँति छूटकर शब्द करती हुई तू दूर चलीजा । सार्वभौम ब्रह्मबल से, वापिस फैंकी हुई तू; यहाँ से कर्ताओं के पास ही चलीजा । १५—हे कृत्ये ! यह मार्ग है, जिससे तुझे दूर हटाते हैं । हमारे ऊपर छोड़ी गई तुझे हम वापिस फेंक देते हैं । उससे टूटती हुई, तोड़ती हुई; तू इस प्रकार चलीजा, जैसे रथ युक्त अनेकों रूपरङ्गावयनों वाली, भयंकर उद्घोष करती हुई सेना चली जाती हैं ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अ॒घमं॑स्त्वघ॒कृतें॑ श॒पथः॑ शपथीय॒ते । प्र॒त्यक् प्र॑ति॒प्रहि॑ण्म॒ो यथा॑ कृत्या॒कृतं॑ ह॒नत् ॥५
प्र॒ती॒चीन॑ आङ्गिर॒सोऽध्य॑क्षो नः पु॒रोहि॑तः । प्र॒तीचीः॑ कृ॒त्या आ॒कृत्या॒मून् कृ॑त्या॒कृतो॑ जहि ॥६
यस्त्वो॒वाच॒ परे॒हीति॑ प्रति॒कूल॑मुदा॒य्य॑ऽम् । तं कृ॑त्येऽभि॒निव॑र्तस्व॒ मास्मानि॑च्छो अ॒नाग॑सः ॥७
यस्ते॒ परू॑ँषि संद॒धौ रथ॑स्येव॒र्भुर्धि॒या । तं ग॑च्छ॒ तत्र॒ तेऽय॑न॒मज्ञा॑तस्ते॒ऽयं जनः॑ ॥८
ये त्वा॑ कृ॒त्वाले॑भि॒रे वि॑द्व॒ला अ॑भिचा॒रिणः॑ ।
शं॒भ्वी॒३॒॑दं कृ॑त्या॒दूष॑णं प्रतिव॒र्त्म पु॑नःस॒रं तेन॑ त्वा स्नपयामसि ॥९
यद् दु॒र्भ॒गां प्रस्न॑पितां मृ॒तव॑त्सामु॒पेयि॒म । अपै॑तु॒ सर्वं॒ मत् पा॒पं द्रवि॑णं॒ मोप॑ तिष्ठतु ॥१०
यत् ते॑ पि॒तृभ्यो॒ दद॑तो य॒ज्ञे वा नाम॑ जगृ॒हुः ।
सं॒दे॒श्या॒३॒त् सर्व॑स्मात् पा॒पादि॒मा मु॑ञ्चन्तु॒ त्वौष॑धीः ॥११
दे॒वै॒न॒सात् पित्र्या॑न्नामग्रा॒हात् सं॑दे॒श्या॒दभि॒निष्कृ॑तात् ।
मु॒ञ्चन्तु॑ त्वा वी॒रुधो॑ वी॒र्ये॑ऽण॒ ब्रह्म॑ण ऋ॒ग्भिः पय॑स॒ ऋषी॑णाम् ॥१२
यथा॒ वात॑श्च्याव॒यति॒ भूम्या॑ रे॒णुम॒न्तरि॑क्षाच्चा॒भ्रम् ।
ए॒वा मत् सर्वं॑ दु॒र्भू॑तं ब्रह्म॑नु॒त्तमपा॑यति ॥१३
अप॑ क्राम॒ नान॑दती॒ विन॑द्धा ग॒र्द॒भीव॑ । क॒र्तॄन् न॑क्षस्वे॒तो नु॒त्ता ब्रह्म॑णा वी॒र्या॑वता ॥१४
अ॒यं पन्था॑ः कृ॒त्येति॑ त्वा नयामो॒ऽभि॒प्रहि॑तां॒ प्रति॑ त्वा॒ प्र हि॑ण्मः ।
तेना॒भि या॑हि भञ्ज॒त्यन॑स्वतीव वा॒हिनी॑ वि॒श्वरू॑पा कुरू॒टिनी॑ ॥१५
परा॑क् ते॒ ज्योति॒रप॑थं ते अ॒र्वाग॒न्यत्रा॒स्मदय॑ना कृणुष्व ।
परे॑णेहि नव॒तिं ना॒व्या॒३॒ अति॑ दु॒र्गाः स्रो॒त्या मा क्ष॑णिष्ठाः॒ परे॑हि ॥१६
वात॑ इव वृ॒क्षान् नि मृ॑णीहि पा॒दय॒ मा गामश्वं॒ पुरु॑षमु॒च्छिष॒ एषाम् ।
क॒र्तॄन् नि॒वृत्ये॒तः कृ॑त्येऽप्र॒जास्त्वाय॑ बोधय ॥१७
यां ते॑ ब॒र्हिषि॒ यां श्म॑शा॒ने क्षेत्रे॑ कृ॒त्यां व॑ल॒गं वा॑ निच॒ख्नुः ।
अ॒ग्नौ वा॑ त्वा॒ गार्ह॑पत्येऽभि॒चेरु॒ः पाकं॒ सन्तं॒ धीर॑तरा अ॒नाग॑सम् ॥१८
उ॒पाहृ॑त॒मनु॑बुद्धं॒ निखा॑तं॒ वैरं॑ त्सार्य॒न्वविदा॑म॒ कर्त्र॑म् ।
तदे॑तु॒ यत॒ आभृ॑तं॒ तत्राश्व॑ इ॒व वि व॑र्तता॒ ह॒न्तु॑ कृत्या॒कृतः॑ प्र॒जाम् ॥१९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥२०
ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥२१
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते । दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥२४
अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५
परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय । मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥२६
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा । उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७
एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ । यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥२९
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव । सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३०
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥३१
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥३२

१६—हे कृत्ये ! तेरी वापिसी के लिए तुझे ही आगे प्रकाश दिखाई दे; तेरे इधर आने के लिए तुझे कोई मार्ग न दिखाई दे। हमको छोड़कर, दूसरी ओर बढ़जा नौका से दुर्गम ऐसी नब्बे नदियों के दूर भाग जा। मत मारे; दूर चलीजा। १७—हे कृत्ये ! जैसे वृक्षों को वायु उखाड़ता, तोड़ता है, वैसे ही तू भी हिंसकों का नाशकर, और उखाड़ फेंक। उनके पशु, घोड़े, वाहनों और पुत्रों को अवशिष्ट न छोड़, यहाँ से निवृत्त होकर, संततिनाश की चेतावनी कृत्य-निर्माता को दे। १८—हे मनुष्य ! जो घातक प्रयोग, तेरी फस्लों, धान्यों, श्मशान, चतुष्पाथ, निर्जन स्थान और खेतादि में गाड़ दिया गया हो, जो तेरी गार्हपत्याग्नि में, अभिचार कर्म किया गया हो; तेरे पवित्र और निष्पाप होते हुए भी; जघन्य प्रकृतिक जनों ने, जो मारण उच्चाटन, विद्वेषण, सम्मोहन, वशीकरणादि प्रयोग किया हो, उसे शक्तिहीन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करते हैं। १९—लाया हुआ और जाना गया, गाड़ा हुआ, बैर रूपी विनाशकारी कर्म का हमें ज्ञान हो गया है। वहां जहाँ से आया हो; वहीं वह तुरन्त वापिस पहुंच जावे। वहाँ घोड़े के तुल्य चक्कर लगाये, और अभिचार प्रयोक्ता की सन्तानों का विनाश करे। हमारे घरों में उत्तर फौलादी अस्त्र हैं। हे कृत्ये! हम तेरे जोड़ों को जानते हैं, कि वे कहाँ कितने? किस प्रकार के हैं। उठ, यहाँ से दूर भाग जा। हे अज्ञात कृत्ये! तू यहाँ क्या चाहता है?

२१—हे कृत्ये मैं तेरी गर्दन और पैर तोड़ दूंगा, अन्यथा यहाँ से दूर भाग जा। इन्द्र और अग्नि हमारी वैसी रक्षा करें, जैसी मां सन्तानों की रक्षा करती है। २२—राजा सोम हमें सुख दें, तथा भगवान शकर हमारी रक्षा करें। २३—भव और शर्व ये देव, देवों के विद्युत रूपी शस्त्र को पापि* घातकी के ऊपर ही फेंकें। २४—यदि मारण प्रयोग, तैय्यार होकर, विविध रूप धारण करके दो या चार पैरों वाला बनकर हमारे पास आये, तो हे दुखद कृत्ये, वह तू यहाँ से ८ पैरों वाली, अति द्रुतगामिनी होकर, फिर वापिस चलीजा। २५—हे कृत्ये! खूब तेल लगाई और अति अलंकृत की हुई, समस्त दुर्दशाओं की देने वाली तू दूर चलीजा। जैसे अपने पिता को पुत्री जानती है, वैसे ही तू भी अपने कर्त्ता को जान। २६—हे कृत्ये! तू दूर होजा यहाँ मत ठहर; घायल हुए प्राणी के पैरों को देखकर, जैसे वधिक उसके स्थान तक पहुँच जाता है, वैसे ही तू भी अपने स्थान को जा। यह मृग है, तू शिकारी हैं, इसलिए तुझे वह काठ नहीं सकती, अतः तू वापिस ही जा। २७—पहिले से बैठे हुए को, दूसरा भी पकड़कर वाण से मारता है। और पहिले के मारने पर, दूसरा भी पीटता है, इस तरह, परस्पर आघात करते हैं।

२८—हे कृत्ये! मेरा कथन सुन। और जहाँ से आई थी, वहीं चली जा, जिसने तुझे बनाया है उसके पास ही, घातक प्रयोग वापिस चला जावे? २९—हे कृत्ये! तू निरपराधी का ही वध करने वाली, भयङ्कर है, हमारे गौ, घोड़े, पशु, मनुष्यों का वध न कर, तू जहाँ, जहाँ भी रक्खी गई है तुझे वहीं से उखाड़े देता हूँ। तू पत्ते से भी छोटी होजा। ३०—यदि तू, जाल से घिरे हुए के समान, अन्धेरे से ढकी है। तुझसे सब घातक प्रयोग यहाँ से लुप्त करके, उनको मैं फिर कर्त्ता के ही प्रति यहाँ से भेजता हूं। हे कृत्ये! घातक प्रयोग कर्त्ता बलिष्ठ, दुष्ट और प्रजा का विनाश करने वालों का ही तू नाश कर। उन घातकों में से, एक भी न बच पाये उन सबको मार। ३२—जैसे सूर्य अन्धकार से मुक्त होता है, रात्रि तथा ऊषा के ध्वजों का परित्याग कर देता हैं, इसी तरह मैं घातक के द्वारा किया हुआ, जघन्य कृत्य उसी प्रकार त्याग देता हूं; जैसे हाथी धूल को फेंकता है उतने सहज भाव से मैं, शत्रु के दुष्ट घातक प्रयोग को भी दूर फेंकता हूँ।

कां ४ सू. ४० शुक्रः। ब्रह्म, १ अग्निः, २ यमः, ३ वरुणः, ४ सोमः, ५ भूमिः, ६ वायुः, ७ सूर्यः, ८ दिशः। २ जगती, ८ पुरोऽतिशक्वरी पादयु जगती। त्रिष्टुप् छन्दांसि कृत्यादूषण परिहरणे शत्रु विनाशने आग्नेयास्त्र प्रयोजने, कर्मज व्याधि भैषज्ये मार्जने, पुरोडाश अभिमन्त्रणे वाग्वज्र प्रहरणे विनियोगः।

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥२

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

य उत्त॑र॒तो जु॒ह्व॑ति जातवेद॒ उदी॑च्या दि॒शो॑ऽभि॒दास॑न्त्य॒स्मान् ।
सोम॑मृ॒त्वा ते परा॑ञ्चो व्यथन्तां प्र॒त्यगे॑नान् प्रतिस॒रेण॑ हन्मि ॥४
ये॒३॑धस्ता॒ज्जुह्व॑ति जातवेदो ध्रुवाया॑ दि॒शो॑ऽभि॒दास॑न्त्य॒स्मान् ।
भूमि॑मृ॒त्वा ते परा॑ञ्चो व्यथन्तां प्र॒त्यगे॑नान् प्रतिस॒रेण॑ हन्मि ॥५
ये॒३॑न्तरि॑क्षा॒ज्जुह्व॑ति जातवेदो व्य॒ध्वाया॑ दि॒शो॑ऽभि॒दास॑न्त्य॒स्मान् ।
वा॒युमृ॒त्वा ते परा॑ञ्चो व्यथन्तां प्र॒त्यगे॑नान् प्रतिस॒रेण॑ हन्मि ॥६
य उ॒परि॑ष्टा॒ज्जुह्व॑ति जातवेद ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शो॑ऽभि॒दास॑न्त्य॒स्मान् ।
सूर्य॑मृ॒त्वा ते परा॑ञ्चो व्यथन्तां प्र॒त्यगे॑नान् प्रतिस॒रेण॑ हन्मि ॥७
ये दि॒शाम॑न्तर्दे॒शेभ्यो॒ जुह्व॑ति जातवेदः सर्वा॑भ्यो दि॒ग्भ्यो॑ऽभि॒दास॑न्त्य॒स्मान् ।
ब्रह्म॒र्त्वा ते परा॑ञ्चो व्यथन्तां प्र॒त्यगे॑नान् प्रतिस॒रेण॑ हन्मि ॥८

कां ४।१७ शुक्रः। आपामार्गो वनस्पतीः। अनष्टुप् छन्द उपर्युक्त कर्मणि अपामार्ग अभिमन्त्रणे च विनियोगः।

ईशा॑नां त्वा भेष॒जाना॒मुज्जे॑ष॒ आ र॑भामहे । च॒क्रे स॒हस्र॑वीर्यं॒ सर्व॑स्मा ओषधे त्वा ॥१
स॒त्य॒जितं॑ शपथ॒याव॑नीं॒ सह॑मानां पुनःसराम् । सर्वाः॑ सम॒ह्व्योष॑धीरि॒तो नः॑ पारया॒दिति॑ ॥२
या श॒शाप॒ शप॑नेन॒ याघं॑ मूर॑माद॒धे । या रस॑स्य॒ हर॑णाय जा॒तमा॑रे॒भे तो॒कम॑त्तु सा ॥३
यां ते॑ च॒क्रुरा॒मे पात्रे॒ यां च॒क्रुर्नी॑ललोहि॒ते । आ॒मे मां॒से कृ॒त्यां यां च॒क्रुस्तया॑ कृ॒त्याकृ॒तो॑ जहि॥४
दौष्व॑प्न्यं॒ दौर्जी॑वित्यं॒ रक्षो॑ अ॒भ्व॑ऽमरा॒य्यः॑ । दु॒र्णाम्नी॒ः सर्वा॑ दु॒र्वाच॒स्ता अ॒स्मन्ना॑शयामसि ॥५
क्षु॒धा॒मा॒रं तृ॒ष्णामा॒रम॒गोता॑मनप॒त्यता॑म् । अपा॑मार्ग॒ त्वया॑ व॒यं सर्वं॒ तदप॑ मृज्महे ॥६
तृ॒ष्णामा॒रं क्षु॑धामा॒रमथो॑ अक्षपरा॒जयम् । अपा॑मार्ग॒ त्वया॑ व॒यं सर्वं॒ तदप॑ मृज्महे ॥७
अ॒पामा॒र्ग ओष॑धीनां॒ सर्वा॑सा॒मेक॒ इद्व॒शी । तेन॑ ते मृज्म॒ आस्थि॑त॒मथ॒ त्वम॑ग॒दश्च॑र ॥८

महर्षि अङ्गिरसजी का उद्घोष

कां ४ सूक्त १७ "ईशानां" (१) हे अपामार्ग औषधे ! औषधियों में, विशेष सामर्थ्यंशालिनी (दिव्य) तुझ ओषधि को और अधिक बलशालिनी बनाने के लिये; इस प्रयोग को प्रारम्भ करता हूँ। समस्त रोगों के निवारणार्थ तुझे हजारों ही बलों से संयुक्त करता हूँ। (२) निर्विवाद विजयशालिनी, आक्रोशनाशिनी, क्रूर दृष्टि निवारणी, रोगों को परास्त करने वाली विशेष रेचन गुण वाली, इसी प्रकार की समस्त औषधियों को प्राप्त करता हूँ। ये औषधियां इन रोगों से हमें पार करायें। (३) जो आक्रोश से अभद्र शब्द बोलती है, जो मूढ़ता लाने वाली पाप धारण करती हैं, जो सार रूप रस का हरण करने के लिये नये जन्मे बालक को भी सहसा पकड़ती हैं, वह बीमारी सन्तान को खा जाती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) जिस घातक प्रयोग को तेरे लिये कच्चे मिट्टी के पात्र में करते हैं; जिसको नीले और लाल पकाये वर्तन में करते हैं, तथा कच्चे माँस में, जिस घातक प्रयोग को करते हैं, उससे उन घात करने वालों का ही नाश कर। बुरे भयावह स्वप्न, दुःखदायी जीवन, रोग कृमियों, राक्षसों यातुधानों को निर्बल करता, निस्तेजता को बढ़ाने वाला रोग, तथा दुष्ट नाम वाला, बवासीर और उसके सम्बन्धगत समस्त भयङ्कर रोग, अपने पास से नष्ट करते हैं। (६) हे दिव्य अपामार्ग ओषधे ! क्षुधा से, तृष्णा से मरना, इन्द्रिय अथवा वाणी का दोष, सन्तान का ही न होना, अर्थात् (नपुंसकता) आदि आदि सब दोषों को हम तेरी सहायता से दूर करते हैं। (७) हे अपामार्ग ओषधे ! तू अकेली ही समस्त औषधियों को वश में रखने वाली हैं। हे रोगी ! हम तेरे शरीर के स्थिर रोगों को उससे दूर हटाते हैं। (८) हे अपामार्ग ओषधे ! समस्त शरीर की दुर्बलता को हम तेरी सहायता से दूर करते हैं। अ० १ में पढ़ें।

कां ४।१८ शुक्रः। अपामार्गो वनस्पतीः अनुष्टुप्, ६ वृहती गर्भा। छन्दांसि उपर्युक्ते कर्मणि विनियोगः।

स॒मं ज्योति॒ः सूर्ये॒णाह्ना॒ रात्री॑ स॒माव॑ती । कृ॒णोमि॑ स॒त्यमू॒तये॑ऽर॒साः स॑न्तु॒ कृत्व॑रीः ॥१

यो दे॑वाः कृ॒त्यां कृ॒त्वा हरा॒दवि॑दुषो गृ॒हम् । व॒त्सो धा॒रुरि॑व मा॒तरं॒ तं प्र॒त्यगुप॑ पद्यताम् ॥२

अ॒मा कृ॒त्वा पा॒प्मानं॒ यस्तेना॒न्यं जिघां॑सति । अश्मा॑न॒स्तस्यां॑ द॒ग्धायां॑ बहु॒लाः फट् क॑रिक्रति ॥३

सह॑स्रधाम॒न् विशि॑खा॒न् विग्री॑वां छायया॒ त्वम् । प्रति॑ स्म च॒क्रुषे॑ कृ॒त्यां प्रि॒यां प्रि॒याव॑ते हर ॥४

अ॒नया॒हमोष॑ध्या॒ सर्वाः॑ कृ॒त्या अ॑दूदुषम् । यां क्षेत्रे॑ च॒क्रुर्यां गोषु॒ यां वा॑ ते॒ पुरु॑षेषु ॥५

यश्च॒कार॒ न श॒शाक॒ कर्तुं॑ श॒श्रे पाद॑म॒ङ्गुरि॑म् । च॒कार॑ भ॒द्रम॒स्मभ्य॑म॒ात्मने॒ तप॑नं॒ तु सः ॥६

अ॒पा॒मा॒र्गोऽप॑ मार्ष्टु क्षेत्रि॒यं श॒पथ॑श्च॒ यः । अपाह॑ यातु॒धा॒नीरप॒ सर्वा॑ अरा॒य्यः॑ ॥७

अ॒प॒मृज्य॑ यातु॒धाना॒नप॒ सर्वा॑ अरा॒य्यः॑ । अपा॑मार्ग॒ त्वया॑ व॒यं सर्वं॒ तदप॑ मृज्महे ॥८

कां. ४ सू. १८ 'समं ज्योतिः' (१) सूर्य के तुल्य ज्योति वाली, दिन का सा प्रकाश फैलाने वाली, और विनाश कारी बातों को निष्प्रभाव बनाने के लिये और आत्म-रक्षा के लिये मैं, सत्य की शरण जाता हूँ, सत्य को स्वीकार करता हूँ। (२) हे देवी ! जो घातक प्रयोग करके, अग्नि के घर का हरण करे, वह घातक प्रयोग विधि, उसके प्रति, उसी प्रकार लौटकर जावे, जैसे दूध पीने वाला शिशु अपनी माँ के पास ही जाता है। (३) जो पाप करके, उससे दूसरों को मारना चाहता है, उसके जल जाने पर, वहुत पत्थर 'फट्' शब्द करें अर्थात् नाश करते हैं। (४) हे सहस्र धाम वाले! तू शिखा रहित और ग्रीवा रहित करने वालों को ही सुला दे। प्रिय कृत्य करने वाले को, प्रिय के पास पहुँचा। (५) जो करना तो चाहा, परन्तु पूर्ण रूप से करने में समर्थ न हो सका, केवल पैर, अंगुल्यादि ही तोड़ पाया उनसे हमारे लिये तो कल्याण किया, परन्तु अपने लिये पीड़ा प्राप्त कर ली। (७) अपामार्ग ओषधि, क्षेत्रिय रोग की और दुर्वचन (कटु, असत्य, अपशब्द, अनर्गल प्रलाप, वाणी की जड़ता, स्तब्धता, असत्य भाषण परायणता आदि) को दूर करे और समस्त भयावह, कष्ट प्रद, निस्तेजता को दूर करे। (८) यातुधानों का विनाश कर, समस्त राक्षसों, बधिकों हत्यारों को दूर करके, हे अपामार्ग ओषधे ! हम तेरे सहयोग से ये सभी कष्ट दूर करते हैं।

कां ४ सूक्त १९ ''उतो अस्यवन्धु कृदुतो'' (१) तू शत्रु वर्द्धन हो या मित्र वर्द्धन (जो भी कुछ हो), परन्तु घातक प्रयोग कर्त्ताओं और उनकी सन्ततियों को, वर्षा में उत्पन्न विविध घासों के समान दूर कर। (२) मनीषियों की अग्नि परिषद् में बैठने वाले विद्वानों ने तेरी महिमा की श्लाघा की है। हे ओषधि ! तू तेजस्विनी सेना के तुल्य रोग रूप शत्रु पर हमला करती है। तू जहाँ प्राप्त होती है, वहाँ किसी प्रकार का भय नहीं रहता। (३) तेज से उद्दीप्त, तू

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

औषधियों में सर्वाग्रणी है, और परिपक्व का रक्षक तथा रोग बीज विनाशिनी तू है। (४) वह जो पहले तेरे साथ रहने से देवों ने असुरों को हटाया था। हे औषधि उससे १ **अपामार्ग** नामक औषधि रूप में प्रकट हुई है। (५) तू सैकड़ों शाख। वाली होकर, रोगों का भेदन करती है विभेदन कर्त्ता तेरा पिता है, जो हमारा नाश करता है, तू उसे हर प्रकार से नष्ट कर। (६) असत्य रूप दुष्टता भूमि से उत्पन्न हुई, तो भी वह सब बड़ी विस्तृत होकर आकाश तक फैलती है। वहाँ से वह निश्चय पूर्वक, कर्त्ता को ही, सतप्त करता हुआ उसी के पास वापस पहुंचता है। (७) तू ही प्रत्यक्ष उल्टे फल उत्पन्न करने वाला उत्पन्न हुआ है, इसलिये मुझ से, सब बुरे वचनों को, और ऊपर उठने वाले शस्त्र को दूर कर। (८) सौ उपायों से मेरी रक्षा कर और हजारों यन्त्रो से मेरा सरक्षण कर। हे ओषधियों के स्वामी ! उग्र, वीर्य इन्द्र तेरे अन्दर पराक्रम की शक्ति स्थापित करे।

"प्रतीचीन फलः" (७।६७) कृत्यागण के समस्त कार्यों में तथा "इदं बत्कृष्णः" (७।६६) में वर्णित दोष निवारण में तथा विवाह में क्वारीं कन्या के स्नानान्त अङ्ग तथा वस्त्रों से अपामार्ग मञ्जरी के लेप में कुण्ठित बुद्धि को कुशाग्र बनाने, दन्त विकार, मुख विकार, कैंसरादि शमन कार्यों में, समस्त विषों को शरीर से निकालने में, दन्त धावन, फक्की, समिधा दान लेपादि में लें। निरन्तर बहने वाले या विषैले, विना मुख के उल्टे फोड़ों में लेपें। कालाबेंकर "अदृष्ट" आदि फोड़ों पर अभिमन्त्रित कर लेपें। कौ० १०।२। अपा मार्ग की विशेष व्याख्या औषधि वर्ग के प्रकरण में है।

कां ७ सूक्त ६५ "प्रतीचीन फलोहि" (१) हे अमामार्ग ओषधि ! तू ऊपर की ओर फल से युक्त होकर उगती है, इस कारण मुझसे सब शापों, ताप, पापों को यहाँ से दूर कर। (२) जो दोष [कलंक] मैंने किया या लगा हो या पापियों के सहवास से किया हो. वह सब हे सर्वतोमुख ! अपामार्ग ! हम तेरी सहायता से दूर करते हैं। (३) काले दाँत वाले भद्दे नाखूननों वाले कुरूपों के साथ यदि हम बैठे हों, तो हे अपामार्ग ! वह सभी दोष हम तेरी सहायता से दूर करते हैं। मन्त्र आगे पढ़ें।

अपामार्ग भेषज के गुण पूर्वोल्लिखित हैं। कुछ आगे भी अनुभूत प्रयोग मिलेंगे।

"अभयं द्यावा" (६।४०) इन तीनों ऋचाओं से ग्रामादि के निर्भय कराने हेतु उस ग्रामकी प्रत्येक दिशाओं, सीमाओं में सप्त ऋषियों का जपःउपस्थान होम करें। इसी के साथ **"श्येनोऽसि"** (६।४८) है कौ० ७।१०। इसी से सेना तथा स्वपक्षीय दल के अभयार्थ मनोर्बल वृद्धि हेतु; प्रतिदिशाओं में सप्त ऋषियों का जप होम उपस्थान करें। कौ० २।७। इसी से "अभिजित" श्रावणी कर्म-उपाकर्म में आज्य होम करें कौ० १४।३। सप्त ऋषि—ये हैं।

विश्वामित्रो जामदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः अत्रिर्वसिष्ठः कश्यपः (आश्व० प० १)

अभिचारकर्म दीक्षा

"द्यावापृथिवी" (२।१२) से अभिचारकर्म दीक्षा के निमित्त वेणु (वांस) का दण्ड पूर्व प्रार्थना कर दूसरे दिन पूजा के उपरान्त काटकर लायें और द्वेष कर्त्ता प्रतिपक्षि के स्तम्भनादि विनियोगकर्म साफल्यार्थ-दक्षिणाभिमुख भागते हुए शत्रु के पैरों में बांस के लाये पत्तों को फेंकें. उपरोक्त दण्ड निर्मितपरशु (फरसा) की नोक से पत्तों को छेदें। उन पत्तों व शत्रु को पांशुरज दोनों को (वधकपात्र) ऐरण्ड या पलाश, वट या पिपल के निर्मित ढोनों में डाले और ले आये, उन्हें भारपर भूने। कौ० ६।१ कर्त्ता उपवासादि समस्त अनुष्ठानीय नियमों का पूर्णतया पालन करें। इससे सन्मार्ग गामी के अभीष्ट चिन्तनादि कार्यों में बाधक वाह्याभ्यन्तर शत्रु नष्ट हो जाते हैं इसकी ऋ० ३ "अशीतिभि" के तृचाशीतभि के विषय में ऐ० आ० १।४।३ "गायत्री तृचाशीतिः औष्णिही तृचाशीतिः बार्हती तृचाशीतिः। तथा इष्टा-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्तम् श्रुति विहितं यागादि । पूर्तं-स्मृत्युक्तं कूपाराम तटाकादि । इस या सभी अभिचारकर्मों में अपने अनिष्ट कर्त्ता प्रतिपक्षी का नाम इस प्रकार जोड़ें—

"अमुम् अपकर्त्तारम् अमुकनाम्ने शत्रु देवसम्बन्धिना-
मत्कृपाभिचार जनितकृत्यारूप देवताकत्वेन निगृह्णामि"

अथ ताप त्रय निवारण संकट मोचन अभ्युदय विधि

अपमृत्युः आकस्मिक दुर्घटना; वाल या युवाओं की मृत्युयें; विविध दुर्व्यसन कारावास अथवा परतन्त्रता; अधःपतन; देवालियापन; सभी प्रकार की विक्षप्ततायें दुर्दैवापतित अचिन्त्य, अकल्प्य विविध भयङ्कर व्यथायें, पुत्रादि-धननाश प्रभृति बहुभांति कष्टप्रद व्याधियाँ स्वयं के पुरातन पाप या आनुवंशिक पाप, शाप, अभिचार अथवा घातक तन्त्र, मन्त्र, यन्त्रादि के प्रयोगों या स्वयं के याज्ञिक कर्मों में की गई ज्ञातःअज्ञात प्रमाद आदि से उत्पन्नाधि-व्याधियाँ हैं। जिनका वैद्य डाक्टरों से लेशमात्र सम्बन्ध नहीं होता ।उपर्युक्त कां० १६ सू० १।३—४।। निर्दाहः तनूदूषिः मना—हा आत्म-दूषिः इदं तं अतिसृजामि ।

मन, शरीर की जलन, शारीरिक मानसिक तथा आत्मा के पतन के सभी (प्रकार) के भाव। ये वैयक्तिक क्लेशों की जड़ हैं। श्रीमद्भगवद्गीता अ० २ श्लोक ६२; ७३ में वर्णित विषयों के चिन्तन से आसक्ति; आसक्ति से कामना, कामना से क्रोध, क्रोध से मूढ़ता, मूढ़ता से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से सर्वनाश होता है।

इनका निराकरण :—अ० वे० "**शमः; तनूशुद्धिः; मनः शुद्धिः तथा आत्मशुद्धिः ।** ये चार दोषों के निराकरण के चार साधन हैं, ये ही आध्यात्मिकोन्नति के भी हैं। (भ० गी० २।६४, ६५ देखें। इन आध्यात्मिक : आधिभौतिक तथा आधिदैविक संकटों के निवारण के लिये भी उपरोक्त (भ० गी० २।६४, ६५ के साधन ही हैं। इन्हीं दुःखों संकटों को दूर कर वाह्य तथा आन्तरिक शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा सभी प्रकार का पतन दासता, सकटों पर विजय प्राप्ति के लिये निम्न विधि जो शौनकीय शाखा से सम्बद्ध है वर्णित है।

अथर्बवेदीय किसी भी शान्ति में, किन्हीं भी शान्ति सूक्तों के साथ—सर्व प्रथम अ० वे० कां० १६ सूक्त १ की ऋचा "अतिस्टष्टो' १ से १३ वीं पर्यन्त "शिबानग्नीनप्सुषदो" से एक कांस्य पात्र में जल भरें, उसका जल शान्ति कार्यों में उत्तर तथा अभिचार कर्मों में दक्षिण का ही ले जैसा पूर्व वर्णित है। उस जल को इन १३ मन्त्रों से छींटे, कुशा, अपामार्ग की कुची से दें। पुनः इन्हीं १३ ऋचाओं से सब ओर इसी जल को छिड़कें। जो भी जल इस कांस्य पात्र में कम हुआ है, उसे भरकर पूरा कर लें। उस जल को उपर्युक्त जल से छींटे देकर जल के मल को दूर करें। इस इस अभिमन्त्रित निर्मल जल से स्वयं कर्त्ता-यजमानादि आचमन करें, दोषी को छींटे (झाड़ा) दें, शिर में बालों को छींटें दें शिर धो, स्नानादि कर शारीरिक मानसिक वौद्धिक मल दूर करें। तदनन्तर उपर्युक्त वाह्य आभ्यन्तर शत्रु "मरणं व्यसनं" आदि सभी शत्रुओं को दमन कर, विजय के लिये "अभिचार नामक" कर्म विशेष करें।

अभिचार कर्म—कौशिक सूत्र ६।३-४ के अनुसार शान्ति औषधि तथा शान्तिय वृक्षों की टहनियों से युक्त अभिमन्त्रित तथा उपर्युक्त १३ ऋचाओं से निर्मल जल से उपर्युक्त कुशा तथा अपामार्ग की कूची (मुष्ठि) से अ० वे० कां० १६ (२) ऋचा (१—६) "निर्दुर्रमण्य" से आत्मा को अभिमन्त्रित करे। कर्म के अन्त में अवभृथस्नान भी करे।

उपनयन कर्म में रोली, चन्दन, सुगन्धित, पावन अनुलेप को इन्हीं से अभिमन्त्रित कर अनुलोम में शरीर का अनुलेप करें। तदनन्तर इन्हीं ६ ऋचाओं से आत्मा को अवसेचन कर अभिमन्त्रित करें। इन्हीं ६ से चक्षु आदि ५ कर्मेन्द्रिय तथा ५ ज्ञानेन्द्रिय मनः अन्तःकरण, बुद्धि, वाणी, दाँत, आदि सभी की विकलता के शमनार्थ सर्वोषधियाँ अभि-मन्त्रित शरीर में अनुलोम में लेप करें तो विकलताशमन होकर इन्द्रियाँ दृढ़ तथा पुष्ट होती हैं। दीर्घायु तथा नीरोगता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रचुर धन-धान्य अभ्युदय के लिये अ० वे० कां० १३ सू ३-४ "मूर्धाऽहं रयीणाम्" ये ६ ऋचा तथा कां० १७ सू० १ "विषासहि" से सूर्योपस्थान करे। यहाँ तथा कां० १६ सू० ९ (३-४) "अगन्मस्व" तथा "वस्योभूयाय" इन दो तथा "विषासहिम्" १७।१ उपर्युक्त विधि से समस्त तन्त्रों में सूर्योपस्थान करे। कौ० ६।३ कामत है।

अभिचार विधान—सर्व प्रथम इस अभिचार में इसी कां १६ सू ५ "अजैष्मा" से प्रारम्भ कां १६ सू० ९ की २।३ "अगन्मस्व" व (४) "वस्योभूयाय" को छोड़कर शेष चारों ही पर्याय सूक्तों से मञ्ज पाश कांसपाश, मुञ्जपाश, दर्भपाशो तथा स्वयं टूटकरगिरी हुई या ओलों से टूटकर गिरी हुई पीपल, करीर, खैर (कत्था) ऐरण्ड की लकड़ियों के बनेशर तथा मुञ्जशर, कांसशरों को अभिमन्त्रित करें। इन्हीं ४ पर्यायसूक्तों को पढ़ते हुए स्वयं कर्त्ता या यजमानादि यदि कोई अन्य हो या दोषी (रोगी) हो तो उसके पैर आदि अंगो को उपर्युक्त अभिमन्त्रित पाशों से पृथक २ बांधें और पृथक् २ ही इन ४ उपर्युक्त अवसानों को पढ़ें, जपे पुनः इन्हीं ४ अवसानों को पढ़कर (जपकर) उसी बन्धनक्रम से खोलते जावें। इन खुले हुए पाशों को पुनः अभिमंत्रित कर गाड़ दें। इन्हीं ४ अवसानों को जपते हुए उपर्युक्त अभिमन्त्रितशरों को गर्म कर इन्हीं से ताड़ित करें, पाशों में गर्म ही से छेद करें तब गाड़ें। इन्हीं उपर्युक्त ४ अवसानों से साठी चावल रंगकर या लाल चावल का भात बना दूध कच्चा मिलाकर सिन्दूर (प्रियङ्गु रुई-ईंगुर) डालकर अभिमन्त्रित कर शत्रु के प्रति चौरास्ता पर बलि (अभिचारार्थ मिट्टी के पात्र में रखें तब भेजें। इन्हीं ४ अवसानों से चौरास्त (चतुष्पाथ) से लीगई मिट्टी से वृषभ की प्रतिकृति बना प्राण प्रतिष्ठा पूजा करें इन्हीं "अजैष्माद्यासना" आदि ४ से अभिमन्त्रित करें और इन्हीं ४ अवसानों को जपते हुए इस वृषम प्रतिकृति को शत्रु के घरों की ओर छोड़ें यह (कल्पना करें)। इन्हीं उपर्युक्त ४ अवसानों "अजैष्मा" १६।५ से ९ पर्यन्त को जपते हुए अनार की लेखनी से तेल (कटु) सिन्दूर की स्याही से (१६।९—३।२) में वर्णित इन्द्रियों के नामों को (पात्रों पाशों को गड्ढों में जहाँ गाड़ें) लिखें—(१) (स्वः अगन्म) (२) (स्वः अगन्म) (३) (सूर्यस्य ज्योतिषा सं अगन्मः) (४) (वस्यः भूयाय) (५) (वसुमान भूयासं) (६) (वसुमान्‌यज्ञः) (७) (वसु वंशिषीय) (८) (मयिवसुधेहि) ये नाम लिखें। इन्हीं पर इन्द्रियों के नाम लिखें, नाक़, कान, नेत्रादि सभी के नाम लिख खूटों से बाँधे इन अवसानों के जप (पाठ) के साथ उन खूटो आदि पर १२ रात्रि पर्यन्त उपर्युक्त कांस्यपात्र का (कां १६।१) "अतिसृष्टों" की १३ ऋचाओं का निर्मल उद्वज्र का जल उपर्युक्त-कुशमुष्ठि से छोड़ें। तदनन्तर अवभृथ स्नान करें। स्नानान्त (१६।९) के २ व ३ दो अवसान तथा कां० १७।१ विषासहिम् पूरे सूक्त से सूर्योपस्थान समस्त तन्त्रों में करें। परन्तु उपस्थान को छोड़कर अन्य सभी कर्मों (तन्त्रों) में कां १६।९ की २ ऋचाओं अर्थात् २ व ३ 'अगन्मस्वः" से प्रारम्भ २ को छोड़कर अन्य चार अवसानों की ऋचाओं से अन्य कर्म करें। इस प्रकार उपर्युक्त सूक्ष्मादि शरीरों के आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक अनुतापो, दुःखों, सङ्कटों का निवारण होता है तथा उपर्युक्त वाह्य, आभ्यन्तर शत्रुओं पर विजय होकर स्वस्थ शरीर, इन्द्रिय मन, अन्तःकरण से पूत आत्मा उपर्युक्त योग, यज्ञ कर्मों से अपने २ अभीष्ठ लक्ष्यों की प्राप्ति में समर्थ होता है।

अस्य १६ षोड़शः काण्डस्य १ सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः प्रजापतिः देवता। १-३ द्विपदासाम्नीवृहती २, १० याजुषी त्रिष्टुप् ४ आसुरी गायत्री ५, ८ साम्नीपंक्ति (५ द्विपदा) ६ साम्नी अनुष्टुप ७ निचृत् विराट् गायत्री ९ आसुरी पक्तिः ११ साम्नी उष्णिक् १२:१३ आर्षी अनुष्टुप् छन्दासि आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक दुख निवारणे, समस्तसंकट निवारणे वाह्याभ्यन्तरशत्रु दमने, शत्रु वलक्षये, अस्म दीय बल सम्वर्द्धने, विजयें, भतत अभ्युदये, अभिचार कर्मणि, मार्जने, जल अनुमन्त्रणे जलमलापाकरणे अवसेचने, अवमार्जने, स्नाने, पाशादि अनुमन्त्रणे पाशादि (बन्धने मोचने च) शरादि असिमन्त्रणे उपतापने, ताड़ने, वृषभादि अनुमन्त्रणे, अवसृजने अवभृथस्नाने, सूर्योपस्थनेप्रभृति के जपे उपस्थने पाठे, यज्ञे च विनियोग। अन्य ८ सूक्तों के ऋषि, देवता छन्दों के उपरान्त यही विनियोग समझें और करें। (कौ० ६।१)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१॥ रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥२॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३॥ इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६॥
योऽप्स्वन्तरग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥७॥
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥८॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥९॥ अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥१०॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥११॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥१३॥

इनसे कांस्यपात्र में जल भरकर उपर्युक्त शान्ति कार्य करें।

कां १६ सू० १ ''अतिसृष्टो'' यह सूक्त ताप त्रय निवारक, सकट मोचन, अभ्युदय प्रदायक हैं। (१) दिव्य वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र पूर्ण बल से छोड़े जाते हैं। (२) तोड़ते, मरोड़ते मारते संहार करते हुए। (३) घात पात करने वाले, गड्ढा खोदने वाले, दाह करने वाले, मन को व्यथित कर देने वाले, आत्मा को क्षीण कर देने वाले तन को दूषित करने वाले। (४) इस प्रत्यक्ष और उस अप्रत्यक्ष शत्रु को दूर भगाता हूँ; कह कदापि मुझे पुनः प्राप्त न हों। हमसे द्रोह करने वाले, जिनसे हम द्वेष करते हैं उनको हम उपरोक्त दिव्यास्त्रों से दूर फैंकते हैं। (६) हे वरुणास्त्र तू जलों का शीर्षण्य है आपको समुद्र के प्रति छोड़ता हूँ। (७) जल विद्युत के प्रहार से, घातकी, पतनकारी, शरीर सहारकों को दूर हटाता हूँ। (८) जो अग्नि जलों में व्याप्त है वही यह है। जो आपके लिए संहारक है, वह यह है। (९) इन्द्र के क्षात्र-बल से आप अभिषिक्त किये जाते हैं। (१०) पावन जल, हमारे मलों को दूर करें। (११) हमसे पापों को दूर करे, दौर्भाग्य प्रद, दुश्वप्नों को भी दूर करे। (१२) हे जलो ! मुझे दया दृष्टि से देखो अपने पावन शरीर से मेरी त्वचा का स्पर्श करो। (१३) हम जल में अन्तर्हित अग्नि (विद्युत) का अपने में आवाहन करते हैं, हे दिव्य जलो ! मुझ में क्षात्र-बल और ब्रह्म तेज धारण करे।

कां १६ सू० २ अथर्वा ऋषि (वाक् देवता) १ आसुरी अनुष्टुप् २ आसुरी उष्णिक् ३ साम्नी उष्णिक् ४ त्रिपदा साम्नी बृहती ५ आर्ची अनुष्टुप् ६ निचृत्विराड गायत्री।

इनसे आत्मा का अनुमन्त्रण तथा अवभृथ स्नानादि (उपयु क्त) कर्म करें।

निर्दुरर्मण्यऽऊर्जा मधुमती वाक् ॥१॥ मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥२॥
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥३॥ सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥४॥
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५॥
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन ६ से इन्द्रियों की विकलता निवारणार्थ अनुलेप करें उससे वे हृष्ट पुष्ट होती हैं उपनयन में भी अनुलोम, अनुलेप करें।

कां १६।२ (१) दुर्गति दूर हो, प्रगल्भवाणी हो, सरस प्रिय वादिनी, वाणी का उच्चारण करूँ।(३) मैं; मेरा ग्वाला, इन्द्रिय पालक (मन) बुलाया गया है। वाणी का रक्षक, गोरक्षक अथवा इन्द्रिय रक्षक बुलाया गया है। (४) मेरे दोनों श्रवण उत्तम वाणी [स्तुति] सुनने वाले हों। आशीर्वादात्मक प्रियवाणियों के श्रोता मेरे कर्ण हो। (५) उत्तम दिव्य श्रवण शक्ति, दूर से सुनने की शक्ति मुझे कदापि न छोड़े, गरुड़ के तुल्य तेजस्वी दिव्य दृष्टि निरन्तर मेरे साथ रहे। (६) तू ऋषियों का अचल [पाषाण] है, देव स्वरूप पाषाण को नमस्कार है।

कां १६ सू० ३ ब्रह्माऋषि। आदित्यः देवता। १ आसुरी गायत्री २.३ आर्ची अनुष्टुप् ४ प्राजापत्य त्रिष्टुप् ५ साम्नी उष्णिक् ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्। दीर्घायुष्ये, नैरुज्यार्थे, प्रचुरधनधान्य सतत अभ्युदयार्थे सुर्योपस्थाने विनियोगः।

मूर्धाहं र॒यी॒णां मू॒र्धा स॑मा॒नानां॑ भूयासम् ॥१॥
रु॒जश्च॑ मा वे॒नश्च॒ मा हा॑सिष्टां मू॒र्धा च॑ मा॒ विध॑र्मा च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥२॥
उ॒र्वश्च॒ मा च॑म॒सश्च॒ मा हा॑सिष्टां ध॒र्ता च॑ मा ध॒रुण॑श्च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥३॥
वि॒मो॒कश्च॑ मा॒र्द्रप॑विश्च॒ मा हा॑सिष्टामा॒र्द्रदा॑नुश्च मा मात॒रिश्वा॑ च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥४॥
बृह॒स्पति॑र्म आ॒त्मा नृ॒मणा॒ नाम॒ हृद्यः॑ ॥५॥
अ॒सं॒ता॒पं मे॒ हृद॑यमु॒र्वी गव्यू॑तिः समु॒द्रो अ॑स्मि॒ विध॑र्मणा ॥६॥

उपर्युक्त विनियोग के साथ कां १७।१ पूरासूक्त तथा कां० १६।६ की ऋचा २।३ "अगन्मस्व" वस्योभूयाय की उपस्थान में विहीत हैं। ये सभी तन्त्रों समस्त शान्ति विधियों के लिए निर्दिष्ट हैं।

कां १६।३ (१) मैं धनिक शिरोमणि बनूँ, समान धर्मियों में प्रमुख होऊँ। (२) यज्ञ और दान की पाकपात्र और समर्पणस्त्रुव अर्थात् भक्ष भोग्य प्रदाता सदा बना रहूँ। धारण कर्ता और आधार प्रदायक मुझे न छोडें। (४) मुक्ति प्रदाता, रस प्रदाता मेरा परित्याग न करे। जलदाता और वायु [प्राण] मुझे न त्यागे। (५) मेरी आत्मा ज्ञान से पूर्ण हो, मनुष्यों में मनन करने वाली शक्ति, अन्तःकरण में वास करे। (६) मेरा हृदय सन्ताप रहित हो मेरी वृहद्गौशाला हो, मैं अगाध समुद्र की भांति धर्म मर्यादाओं से परिपूर्ण होऊँ।

कां० १६।४ ब्रह्माऋषिः आदित्यः देवता। १-३ साम्नी अनुष्टुप् २ साम्नी उष्णिक् ४ त्रिपदा अनुष्टुप् ५ आसुरी गायत्री ६ आर्ची उष्णिक् ७ त्रिपदा विराड् गर्भानुष्टुप्। छन्दासि आधिदैविक; आधिभौतिक; आध्यामिक क्लेश, विविध संकट एव कामक्रोध, लोभ-मोह, मद, मत्सर, ईर्षा, राग, द्वेषादि आन्तरिक एव वाह्यविघ्न शत्रु निवारणे उपस्थाने अभ्युदये सूर्योपस्थाने च विनियोगः।

नाभि॑र॒हं र॒यी॒णां नाभिः॑ समा॒नानां॑ भूयासम् ॥१॥ स्वा॒सद॑सि सू॒षा अ॒मृतो॒ मर्त्ये॒ष्वा ॥२॥
मा मां प्रा॒णो हा॑सी॒न्मो अ॑पा॒नोऽवहा॒य परा॑ गात् ॥३॥
सूर्यो॒ माह्नः॑ पात्व॒ग्निः पृ॑थि॒व्या वा॒युर॒न्तरि॑क्षाद् यमो म॑नु॒ष्ये॒भ्यः॒ सर॑स्वती॒ पार्थि॑वेभ्यः ॥४॥
प्राणा॑पानौ॒ मा मां॑ हासिष्टं॒ मा जन॒ प्र मे॑षि ॥५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वस्त्यं१द्योषसो दोषसश्च सर्वं आपः सर्वगणो अशीय ॥६॥

शक्वरी स्थ पशवो मोपं स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

इनसे उपर्युक्त १६।३ तथा १६।१-२ के लिये उपस्थान करें।

कां १६।४ में समृद्धों का तथा समान धर्मियों का केन्द्रभूत होऊं २. मरण धर्मिगों में अमर, उच्च सत्संगियों में बैठने वाला उत्तम तेजस्वी तू आत्मा (जीवात्मा) है। ३. मुझे प्राण न त्यागे, अपान भी छोड़कर न चला जावे। ४. मेरी सूर्य दिन में रक्षा करे, अग्नि पृथ्वी से, वायु अन्तरिक्ष से, यम मनुष्यों से, सरस्वती भौतिक पदार्थों से मेरी रक्षा करे। ५. प्राण और अपान मुझे न त्यागे, मनुष्यों में घातकी न हो। ६. हे जलो! आज कल्याण प्रद होइये, अहोरात्रि में सब सर्वगुणोपेत हो, सुखी रहे। ७. आप समर्थ हैं, मेरे पास पशु हो, मित्र और वरुण मुझे प्राण और आपान तथा अग्नि मुझ में बल धारण करायें। कां. १६ सू. ५ से कां. १६ सू. ९ तक पृष्ठ स. ६०० पढ़ने की पाठक कृपा करें।

कां ४।१९ शुक्रः। अपामार्गो वनस्पतिः। अनुष्टुप् २ पथ्यापङ्क्तिः। कृत्यादि दूषण परिहरणे विनीयोगः।

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत्।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा छिन्धि वार्षिकम् ॥१
ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥२
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्। उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥३
यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत। ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४
विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥५
असद् भूम्याः समभवत् तद् यामेति महद् व्यचः।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥६
प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम्। सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥७
शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा। इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥८

कां ७ सूक्त ६५ शुक्रः। अपामार्ग वीरुत्। अनुष्टुप्। अपामार्ग उपस्थामे, अर्चने, उत्पाटने, उपर्युक्त समस्त दूषण निवारण भेषज्ये विनियोगः।

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ। सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥१
यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया। त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥२
श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत् सहासिम। अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ६ सूक्त ४० । ऋषिः, द्यावापृथिवी सोम, सविता, इन्द्रः अन्तरिक्ष, सप्तऋषयः सविजा देवते । जगती त्रिष्टुप् छन्द अभयार्थे विनियोगः । विधि पीछे पढ़ें ।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।

अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥१

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु ।

अशत्रुरिन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥२

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् । इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥३

चोर, वधिक तथा दुराचारी, दुराग्रही, पथभ्रष्ट—संसदीय समस्त जनों, प्रतिकूलगामी ससद को सुमार्ग में लाने अथवा उसे भङ्ग करने के हेतु निम्न सूक्त से जप, उपस्थान तथा अपराजिकगणों में वर्णित होम करें ।

कां० २० सू० २९ ऋचा १-५—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ ऋषयः । इन्द्रः । देवताः । गायत्री छन्द दस्यु विनाशने, सुपथाऽनयने, ससदभङ्गकरणे, जपे, उपस्थाने, होमे च विनियोगः । पाठकर जल छोड़ें ।

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥१

इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥२

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥३

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥४

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥५

कां० २ सू० १२ १–८ भरद्वाजः । १ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, २ देवाः; ३ इन्द्रः, ४ आदित्या वसवो आङ्गिरसः, पितरः, ५ सोम्यासः, पितरः, ६ मरुतः, ७ यमसादनम्, ब्रह्म, ८ अग्निः त्रिष्टुप् २ जगती, ७–८ अनुष्टुप् । मनवशीकरणे, स्थिरीकरणे, मनोविकार निराकरणे, शत्रु विनाशे पतिलाभार्थ हृदयदोषं कम्पन दौर्बल्य हृदयशूलादि भैषज्ये उपर्युक्तेकर्मणि-च उपस्थाने होमे विनियोगः । विधि पीछे पढ़ें ।

द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।

उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१

इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।

पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।

वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अशीतिभिंस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४
द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५
अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ॥६
सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा । अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ॥७
आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि । अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥८

॥ इति श्री रक्षोघ्नेष्टि ॥

अथ वास्तु विज्ञान

वास्तुगण;—"आशानामाशापाल" [१।३१]; "दिव्योगन्धर्वो" [२।२] "इहैवध्रुवा" [३।१२] "दिवेस्वाहा" [५।६] "अश्मवर्म" [५।१०] "तेऽवदन" [५।१७["पातं नः" [६।३] "एहयातु" [६।७३] "यमोमृत्यु" [६।३६] "आवृपायस्व" [६।१०१] "अति धन्वान्य" [७।४२] ऊर्जं विभ्र द्वसुनिः" [७।६२] "यौते मातो" [८।६] "सत्यं वृहत्" [१२।१] "यंजू षियज्ञे" [५।२६] "इहैवत्स" [६।७३।३] "इन्द्रावरुणा" [७।६०] उपरोक्त वास्तुगण या वास्तोष्पतिगण तथा संम्प्रोक्षणगण के प्रतीक हैं। ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में निर्दिष्टं वास्तु पिज्ञान की कार्य-प्रणाली निम्न प्रकार है।

शिलेष्टकादि त्रिन्यासं मन्त्रैः प्राच्यै सुराश्वरेत् ।
नन्दे ? नन्दय वासिष्ठे ? वसुभिः प्रजयासह ॥१६
जये ? भार्गवदायादे ? कुरुभद्रांमतिभम । सर्ववीज समायुक्ते ? सर्वौषधैर्वृते ॥१७
भद्रे ? काश्यपदायादे ? प्रजानां जयमावह । पूर्णेऽङ्गिरसंदायादे ? पूर्णकामं कुरुष्वमाम् ॥१८
रुचिरे ? नन्दने ? नन्दे वासिष्ठे ? रम्यतामिह ।
प्रजापतिसुते ? देवि ? चतुरस्त्रे ? महीमये ॥१६
सुभगे ? सुव्रते ? भद्रे ? गृहे काश्यपि ? रम्यताम् ।
पूजिते ? परमाचार्य्यैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृते ? ॥२०
भवभूतिकरे ? देवि ? गृहेभार्गवि ? रम्यताम् ।
अव्यङ्ग्ये ? चाक्षते ? पूर्णे ? मुनेरङ्गि रसासुते ॥२१
इटके ? त्वंप्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् । देशस्वामि पुरस्वामि गृहस्वामि परिग्रहे ॥२२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्यधन हस्त्यश्व पशुवृद्धिकरीभव ! । गृहप्रवेशेऽपितथा शिलान्यासं समाचरेत् ॥२६

इनसे गृह निर्माण, गृहभूमि शोधन, शिलान्यास, गृहप्रवेश, गृहसमृद्धि, पशुसमृद्धि, वंशवृद्धि-धन-धान्य समृद्धि चिरस्वास्थ्य, नैर्ऋ ज्युता [नीरोगता] सभी प्रकार के उत्पातों का शमन, धीवान-धैर्यवानों का वास आदि की कामना से नूतन गृह के या प्राचीन गृह के प्रवेश अथवा विदेश यात्रा से स्वगृह प्रवेश कार्यों को निम्नप्रकार करे। ग्राम बसाने या यज्ञकुण्ड मंडप, देवालय, गृहनिर्माण से पूर्व ग्राम को देखे, दिशा, भूमि, मास, नक्षत्र, शुद्धि, लाभ-व्यय लग्न, अंश, ग्रहवल, द्वारशुद्धि, ग्रामानुकूलता, गृह जातक, वर्ग स्वामी, काकिणी, आयादि, क्षेत्रफल आयादि का नाम-गृहराशी, गृह-नाम, अंशग्रहण, वास्तुचक्र, मांसफल, वृषभ चक्र, शिलान्यास, शेष का मुखादि योग, कूर्मचक्र, अग्नि चक्र, गृहाहुतिक्रम, गृहप्रवेश, कलश चक्र, वामार्कलक्षण, लग्नशुद्धि गृह आयुष्य, शल्यशोधन [अर्थात् भूमिनिर्माण या ग्राम बसाने आदि के स्थान में हड्डी, भूसा, राख, कपाल, लोह आदि तो नीचे नहीं दवे हैं। यदि हों ती निकाले या शान्ति करे। भूमिरज आदि का योग्य विद्वान ज्योतिषी से विचार करना आवश्यक हैं। घूम्रकेतु आदि अद्भुतदर्शन आदि में दिग्देवता का वहु-भांति से, चरु से, प्रति ऋचा से सप्त ऋषियों का होम-जप उपस्थान करें। कौ० १३।३५। इसी भाँति—

१. अग्नि पुराण वास्तु अध्याय २४७ कुशा, शरकण्डा, दूर्वा पुष्पादि से युक्त प्राची दिशा में खात (गड्ढा) शिलान्यासादि से प्रारम्भ कर वास्तु पूजा करें। २. गृह (शाला) के पूर्व भाग में वट उत्तर में प्लक्ष (पिलखन) दक्षिण में गूलर, पश्चिम में अश्वस्थ के वृक्ष शुभ हैं—एवं शाला के वाम भाग में वाटिका होना शुभप्रद है। शिलान्यास और गृह प्रवेश की समान विधि है।

विशेष अनुभूत—निवास हेतु शाला निर्माण में पच कोणादि का होना नेष्ट होता है आगे की चौड़ाई नेष्ट है पीछे की चौड़ाई श्रेष्ठ होती है, प्रथम सामने का द्वार प्रारम्भ करना भी अशुभ है। कड़ी मकान में डालने से पूर्व राज, इन्द्र, यम तीनों को लक्ष्य कर प्रारम्भ करे, तीन संख्या की कड़ी से गणना प्रारम्भ करे, प्रथम ३ कड़ी वाला अंक राज की, ४ इन्द्र की ५वीं यम की समझे। इसी क्रम से ६वीं राज ७वीं इन्द्र ८वीं यम की, ऐसे ही गणना करे इनमें प्रथम दो श्रेष्ठ हैं, यम की नेष्ट समझकर त्याग दे, बढ़ाये या घटाये।

वास्तु शान्ति प्रकरण (नवशाला निर्माण)—पूर्वोक्त (अ.१) के वास्तु प्रकरण में वर्णित विघ्नों के निरा-करणार्थ तथा नूतन पुरातन गृह के सुखदवास से पूर्व वास्तु शान्ति अनिवार्य व श्रेयस्कर है जो इसकी प्राविधि 'वास्तुगण' (संप्रोक्षण गण कर्म विधि में दी गई है। सर्वप्रथम गुरु इष्टदेव की मानसिक उपासना करे, आचमन, प्राणायाम कर स्वस्तिवाचन, दीप स्थापन कर संकल्प करें।

निम्न ''आशानामाशापाल'' [१।३१] से ग्राम-नगर' देश, धर की दीवार, सीमादि के निर्माण में 'अश्रामस्त्वा' इस तीसरी ऋचा को छोड़ अन्य ऋचाओं से शिला के पाषाण आदि अभिमन्त्रित कर गाड़े पुरोडाश भोगादि] लगाये। इन्द्रादि ४ देवों के ४ स्थूल गाड़े। १।×१।×१। धन हाथ का गड़ा खोदे, उसे 'विमृग्वरीं' (१२।१।२६) से पूजन कर ले। नवीन कलशों में शान्ति औषधियाँ, शान्तिवृक्ष की टहनियाँ डालें, सौभाग्यवती स्त्रियों से उत्तर की ओर से जल मगवाकर पूर्ण भर दे, ४ शराब [मिट्टी के सकोरों] में दूध, जल, पुष्प, अक्षत, सुपाड़ी डाल चारों कोनों पर रख दे। यह प्रथम दिन मुहूर्त्त के सायं करे, मुहूर्त्त के दिन प्रातः उषाकाल में जब तारागण भी कुछ हों, इन्हें देखें कि जल है या सूख गया, गड्ढे में दरारें हों तो अशुभ है शान्ति करें। उपरोक्त वास्तुगण की ऋचाओं से नूतन निर्माण भूमि में वास्तुभूमि] के संस्कार के लिये हल से जोते या खोदे। चारों ओर दिशाओं के उपरोक्त ४ जलपूर्ण पात्रों के पास वाले गड्ढों में ऊचे, पुष्ट, लेख, स्वस्तिक आदि नामवर्षादि से युक्त ४ स्थूण [शिला] अभिमन्त्रित करे। 'इहैध्रुवा' [३।१२] की २ प्रथम ऋचाओं से भूमि को दृढ़ करे। 'ऋतेन स्थूणाम' [३।१२।६]ऋचा से घृतयुक्त ऊँचे बांस या शिला को गाड़े। गृह प्रवेशकाल में 'पूर्णनारी' [३।१२।८] ऋचासे अभिमन्त्रित जल पूर्ण पात्र के साथ प्रवेश करे। कौ. [५।७]

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इससे निर्मितशाला, पुत्र, पौत्र, गुण, वल, वीर्य, स्वास्थ्य, गौ-वाहन-धन-धान्य विद्वानों, दया, धर्म, सत्य, अहिंसा परक प्रणियों के अक्षय-चिरनिवास की आश्रयदाता हो। जिसमें बहु-घृत, दुग्ध देने वाली गौओं का वास होता है। नित्य होम, पूजा-जप, उपस्थान आदि माङ्गलिक कार्य होते रहते हैं। जिसमें अपमृत्यु-अकाल मृत्यु, निरन्तर दीर्घकालीन राजरोग व्याधियों का प्रवेश नहीं हो सकता, जिसमें चौर, कृत्या, अभिचारिक कर्म–यातुधानादि परास्त हो जाते हैं। रत्नादि बहुभोगों, सुगन्धित, पुष्ट, वीर्य-बल वर्धक पदार्थों से पूर्ण रहती है। जहां निरन्तर दानादि कर्म होते रहते हैं। रत्न-स्वर्ण-धान्यादि अतुल अक्षयरूप से रहते हैं। जिसमें सविता, प्रजापति, वायु, इन्द्र, बृहस्पति का निरन्तर वास रहता है। इसमें राग, द्वेष, दम्भ, छद्म आदि का प्रवेश नहीं हो सकता ऐसी वास्तु देव की पत्नी स्वरूपशाला उपरोक्त होती है। वंश (स्थूण या पाषाण) मध्य में गाढ़े। जो समस्त विघ्नों का शमन करने वाला होता है। रक्षोघ्न अनुवाक से रक्षा कार्य (कील ८ गाड़ें, सर्षप, शर्करा, अपामार्ग मञ्जरी, पुष्प, तुलसी पत्र, सुपाड़ी, रत्न, दक्षिणा, दूब, दाम रख चारों गड्ढों में नीचे स्तम्भों के गाड़ दें।)

'प्रवेशकाल'—गृह प्रवेश के समय कुमार, सुन्दर वस्त्र माला चन्दन से युक्त प्रवेश करें, जलकुम्भ, घी, गौ, शहद, दही, दुग्ध से पूर्णपात्रों सहित प्रवेश करें। सौभाग्यवती स्त्री जल से चारों ओर शाला के धार देती, मंगलगान करती हुई आयें तब प्रवेश करें तदनन्तर होमादि करें।

'अश्ववर्म'—[५।१०] से ६ पत्थर अभिमन्त्रित कर, प्राणप्रतिष्ठा, पूजाकर घर-ग्राम, नगर के ४ कोणों में १।१ गाड़ें, एक मध्य में गाड़ें, १ शाला के ऊपर दवायें। इस कार्य में 'यो मा दिशाम्' इस ७ वी ऋचा से छओं को गाड़ें। [कौ० ७।२]। 'तेऽवदन' [५।१७] से गौ आदि के चोरों अभिचार [हत्यादि कर्म कर्त्ता आतताइयों] के निरोध के लिये नियन्त्रित कर जपे, होम करे, 'यजूंषि यज्ञे' [५।२६] से प्रथम 'दोषो गाय' [६।१] से द्वितीय, पुनः दोनों से ही तृतीया वृत्ति घी-मधु से आहुति दें। [कौ० ३।६] मन्त्र पृ. ३१३ पर पढ़ें।

"अश्मवर्म" ५।१० से ग्राम, गृह, शहर राज्यादि के स्वस्त्ययनार्थ ६ पाषाण अभिमन्त्रित प्राण प्रतिष्ठा पूजा कर चारों कोणों में एक-एक, एक मध्य में तथा एक शाला या गाम के ऊपर के भाग में गाड़ें, ऊपर वाले एक को ऊपर रख दें। "योमा दिशाम्" ५।१०-७ से एक से दूसरे को पूजा, प्रतिष्ठा वलिदान करें। कीलें भी गाढ़ें।

शाला निर्माण से पूर्व ग्राम, नगर, देश, परिखा, परिधि के पत्थर गाढ़कर पुनः निम्न से धूम्रकेतु, अद्भ्रज्जनिता-निष्ट धलदायक घटनाओं के घटित होने आदि, अनिष्ट से रक्षार्थ, पाषाणों को गाढ़े और पूजा कर सभी पर पृथक पृथक बलिदान करें। मन्त्र प्राण विद्या में पढ़ें।

कां १२ सूक्त १-२९ मन्त्र वृहच्छान्तिगण में देखें। इसीं से भूमि को छींटे दें पूजा करें।

भूमि में हलादि चला। समतल करें नीम आदि खोद "इहैवध्रुवां" आगे देखें।

कभी भी किसी प्रकार के भूमि खनन में या हल आदि चलाने से उत्पन्न राष्ट्रीय देवी भूमि के आघात जन्य अपराध तथा अगणित जीव हिंसा से उत्पन्न पापों से रक्षार्थ तथा निष्पाप होने के लिए, तथा घृत, तेल, मधु, अन्न आदि के सहसा वृद्धि या सहसा क्षय अर्थात् भण्डारों से अदृश्य हो जाने या भण्डारों में अभाव होते हुए अक्षय (अपार) मण्डार द्रौपदी चीर की भाँति की अद्‌भुत घटनायें घटित होने से उत्पन्न भावी भयंकर परिणाम से रक्षार्थ अथर्व काण्ड ६ सूक्त ११४ तीनों ही ऋचाओं से समभाग, घी, तेल, मधु तथा आज्य से होम करे। इसी विनियोग का कौशिक सूत्र १३।४० निर्देश करता है। सब यज्ञ में इन्हीं तीनों से पूर्णाहुति दें। कौ० ८।८ एव अग्निष्टोम के तृतीय सवन में आदित्य होम करें। वै० ३।१२ अग्निष्टोम में प्रायश्चित होम का भी इन्हीं से प्राविधान है। वै० ३।१३

वास्तु कर्म में खननादि दोष परिहारार्थ

उपरोक्त समतल भूमि को दृढ़ करें "इहैवध्रुवां" ३।१२ की ऋचा १ व २। बाँस पर घी चुपड़े, अनुमन्त्रित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करें और "इहैध्रुवा ३।१२ की ऋचा ६ "ऋतेन स्थूणाम्" से गाड़ दें इसी से गड्ढा खोदें। इससे नव-निर्मित शाला, चिरस्थाई, अग्निदाह विषैली, दुर्घटना अन्य उत्पात रोगादि व्याधियों से रहित, कल्याणकारी, सुन्दर, स्वस्थ; प्रिय भाषी सौभाग्यशाली, दीर्घायु, पुत्र पौत्रादि, धन-धान्य, पशु, भोग्य पदार्थों से परिपूर्ण सज्जनों का वास, अल्पायु, अपमृत्यु, वैधव्य, वन्ध्यात्वादि दुर्गुणों से रहित होती है। उपरोक्त की ऋचा ५ "मानस्यपत्नि" शालावास्तु पति की पत्नि के रूप में देवों द्वारा उत्पादित हुई है।

ऋचा ६ से वांस या धातु स्तम्भ गाढ़े, लम्बे स्थाई बाँस का स्तम्भ समस्त वाह्याभ्यान्तर जीवों को पीड़ित करने वाले समस्त विघ्नों को दूर करने में ऋषि बल, मन्त्र बल, देव बल से पूर्ण समर्थ है। इसे प्राण प्रतिष्ठा पूजा कर गाड़े। इस शाला में इष्टा पूर्त श्रौत स्मार्त समस्त कर्म निरन्तर हों और उनमें विघ्न करने वाले समस्त घातक तथा चोर, वधिक, अग्नि आदि सभी परास्त हों इस कारण शान्ति आवश्यक कही है।

उपरोक्त वास्तु प्रकरण के शल्य शोधन आदि के समस्त दोष शमनार्थ नवनिर्माण से पूर्व ही "अतिधन्वन" ४।४२ से श्येन देवता के लिये आज्याहुति दें, बलिदान कर शान्ति करें। इससे निऋ॑ति (दौर्भाग्य) पिशाचिनी (दरिद्रता) द्वारा घर में या गृह में निवास करने वालों के विविध विचित्र रोगादि शांत होंगे, चोरों या पूर्वजों का गढ़ा हुआ धन प्राप्त होगा।

"आशानाम्" १।३१ से इन्द्र, धनद आदि दिक्पालों को दूध भात, पत्र पुष्प, धूप चन्दनादि से पूजा करे। मन्त्र वृहच्छान्तिगण में अंहोगिगण में अध्याय २ में पढ़ें।

इनसे ४ स्थूल (पाषाण) गाड़ें, उपरोक्त कर्म करें। चारों कोणो में ४ शराब (सकोरों में) चावल, जौ, इन्द्रजौ रोली पुष्प, डाल जल भर कर रख दें और इसी से शान्ति हेतु छींटे दें। "पृथिव्यै श्रोत्राय" (६।१०) अध्याय २ देखें। इसीसे अभिमन्त्रित गृह स्वामी सदम्पति तथा सकुटुम्ब, मन्त्रोक्त इन्द्रियों का स्पर्श करें। प्रथम गृहस्वामिनी सौभाग्यवतियों, कुमारों को साथ ले पूर्वोक्त शान्ति जल से पूर्ण कलश को शिर पर रख मङ्गल गीतों के साथ प्रवेश करे। शाला की परिक्रमा करे और "एहयातु" (६।७३) की ऋचा से जल की धार प्रारम्भ कर "इहैवास्तमाप" (६।७३-३) पर जलधार पूर्ण करे। तथा उत्तरतन्त्र की वेदी की कुशकण्डिका अग्नि स्थापनादि तथा नवग्रहादि होम करके इसी सूक्त से तथा ★"यजू षियज्ञे" (५।२६)"दोषोगाय"(६।१); "ऊर्जंविभ्रत" (७।६२);❖"यौते माता"(६।८) ●"सत्य वृहत्"(१२।१) से वास्तुगण देवताओं का होम करें। यह भूखलन-भूचालादि भौमग्रह जनित उत्पातों की शान्ति में भी है। "विवरण सत्यं वृहत्" (१२।१) में देखें। यदि पुरातन गृह-ग्राम-नगर, पत्तन हो तो "इन्द्रा वरुणा" (७।६०) "वृहस्पतिर्नः" (७।५३); तथा "ऊर्जंविभ्रत्" (७।६२) से ही होम करें।

कां० १६।५ यमः ऋषिः दुःष्वप्ननाशननम देवता। प्र० १-६ विराड् गायत्री प्र० भुरिक् ६ प्र० स्वराड् १ द्वि० ६ प्राजापत्यगायत्री १ तृतीय द्विपदा साम्नी वृहती। छन्दासि मृत्यु सूचक, भय प्राणान्त क्लेशजनक दुःष्वप्न, निवारणे उपस्थाने विनियोगः।

उपर्युक्त जल से शरीर, समस्त इन्द्रियों को अवमार्जित (छींटे देकर) कर उपस्थान करें।

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑ ग्राह्याः॑ पुत्रो॑ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ॥१॥१

अन्त॑कोऽसि मृ॒त्युर॑सि ॥२॥२। तं त्वा॑ स्वप्न॒ तथा॒ सं वि॑द्म॒ स नः॑ स्वप्न दु॒ष्वप्न्या॑त् पाहि ॥३॥३

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑ निर्ऋ॑त्याः पुत्रो॑ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ॥१॥

अन्त॑कोऽसि मृ॒त्युर॑सि ॥२॥ तं त्वा॑ स्वप्न॒ तथा॒ सं वि॑द्म॒ स नः॑ स्वप्न दु॒ष्वप्न्या॑त् पाहि ॥३॥४

★ मन्त्र अ. २ में। ❖ अ. ३ वृ. शा. प्र.। ● अ. ३ में पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्म ते॑ स्वप्नं जनित्रमभू॑त्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥
अन्तकोऽसि मृत्युर॑सि ॥२॥ तं त्वा॑ स्वप्न तथा सं वि॑द्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥५
विद्म ते॑ स्वप्न जनित्रं निर्भू॑त्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥
अन्तकोऽसि मृत्युर॑सि ॥२॥ तं त्वा॑ स्वप्न तथा सं वि॑द्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥६
विद्म ते॑ स्वप्न जनित्रं परा॑भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥
अन्तकोऽसि मृत्युर॑सि ॥२॥ तं त्वा॑ स्वप्न तथा सं वि॑द्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥७
विद्म ते॑ स्वप्न जनित्रं॑ देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥८
अन्तकोऽसि मृत्युर॑सि ॥२॥९
तं त्वा॑ स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥१०

कां १६ सूक्त ५ १. हे स्वप्न तेरी उत्पत्ति के कारण को हम जानते हैं। तू व्याधि का पुत्र , यम का साधन है। तू अन्त करने वाला मृत्यु है। २. हे स्वप्न ! उस तुझे वैसा हम जानते हैं, वह तू हमे दुष्ट स्वप्नों से बचा। ४. हे स्वप्न हमें तेरी उत्पत्ति के हेतु का ज्ञान है तू दुर्गति का पुत्र यम का साधन है। ५. स्वप्न के हेतु को हम जानते हैं अभूति का पुत्र है। ६. तू दरिद्रता का पुत्र है, तू पराभव का पुत्र है। ७ तू इन्द्रिय विकृतियों का पुत्र है। तू अन्तक मृत्यु है। ९. हे स्वप्न ! उस तुझे बैसा हम जानते हैं, वह तू हमें दुष्ट स्वप्नों से बचा।

कां० १६।६ यमः ऋषिः दुःष्वप्ननाशनं, उषा देवते। १-४ प्राजापत्य अनुष्टुप् ५ साम्नीपंक्ति, ६ निचृतदार्षी वृहती, ७ द्विपदा साम्नी वृहती, ८ आसुरी जगती, ९ आसुरी वृहती, १० आर्ची उष्णिक् ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री वा आर्ची अनुष्टुप् छन्दासि-मृत्यु, आनुसङ्गिक दुर्घटना, प्राणान्तभय, दुःख-संकट निवारणे आधिदैविक; आधिभौतिक; आध्यात्मिक, अदभुद्दर्शनोत्पन्न, अपशकुन जनित दुःख-क्लेश निवारणे दीर्घायुष्ये नैरुज्ये; अभ्युदये विजयार्थे-उपस्थाने, अभिचारकर्मणि च विनियोगः।

इन ४ अवसानों से पूर्वोल्लिखित विधि से कर्म करें।

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥१॥ उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥२
द्विषते तत् परा॑ वह शपते तत् परा॑ वह ॥३
यं द्विष्मो यश्च॑ नो द्वेष्टि तस्मा॑ एनद् गमयामः ॥४
उषा देवी वाचा सँविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥५
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥६
तेऽमुष्मै परा॑ वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥७॥ कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ॥८
जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥९
अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु बध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥११

कां १६ सूक्त ६ १. आज हमने विजय प्राप्त की है, हमने प्राप्तव्य को प्राप्त किया है, हम निष्पाप हो गये हैं। २. उषा काल हमें जिस दुष्ट स्वप्न से भय हो, उसे हमसे दूर करे। ३. वह द्वेषी के लिये दूर ले जावे। ४. जिससे हम सब द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, हम उसके पास उसे ले जाते हैं। ५. उषा देवी वाणी से मिले, वाणी उषा देवी से मिले अर्थात् उषा काल में बन्दना करे। ६. उषा का स्वामी वाणी के स्वामी (ब्रह्म) से मिले और वाणी के स्वामी से योग करे। ८. घटके समान वढ़ने वाले उरर रोग [जलोदर] शरीर में दोष उत्पन्न करने वाले रोगों और प्राणघाती रोगों को। ९. जागृति के समय आने वाला दुष्ट स्वप्न और स्वप्न के साथ आने वाला दुष्टस्वप्न। १०. अप्राप्य श्रेष्ठ पदार्थ, दरिद्री के संकल्प, अकाट्य द्रोहियों के बन्धनों को। ११. हे अग्ने ! उन सारी विपत्तियों को शत्रु के पास, सभी देव ले जावें जिनसे वह शत्रु निर्बल याधि व्ग्रहीत, दुर्जरित हो जावे।

कां० १६।७ यम ऋषिः। दुःष्वप्ननाशनं उषा देवते। १ पंक्तिः, २ साम्नी अनुष्टुप्, ३ आसुरी उष्णिक्, ४ प्राजापत्या गायत्री, ५ आर्ची उष्णिक्, ६,६,११ साम्नी बृहती, ७ याजुषी गायत्री, ८ प्राजापत्य बृहती, १० साम्नी गायत्री, १२ भुरिक् प्राजापत्य अनुष्टुप्, १३ आसुरी त्रिष्टुप् छन्दासि उपर्युक्त कर्मणि उपस्थाने (अभिचारिके) विनियोगः।

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥१
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥२॥ वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥३
एवानेवाव सा गरत् ॥४॥ यो३स्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६॥ सुयामंश्चाक्षुष ॥७
इदमहमामुष्यायणे३मुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥८
यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वा रात्रिम् ॥९
यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥१०॥ यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥११
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२॥ स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥१३

कां १६ सूक्त ७ १. उससे उसका वेध करता हूँ दुर्गति, दरिद्रता और रोगों से इसको बींधता हूँ, पराभव से इसे पीड़ित करता हूँ अज्ञान मोह से इसे बींधता हूँ। २. दैवी घोर, क्रूर, दोषों से दु-खी करता हूँ। ३. इसे वैश्वानर की विकराल काल दंष्ट्राओं में रक्खे देता हूँ। ४. यह आपत्ति इस भांति वा अन्य भांति से, इस शत्रु को निगल जावे। ५. जो हमसे द्वेष करता है उससे परमात्मा द्वेष करता है, जिससे हम द्वेष करते हैं, वह अपने आत्मा से द्वेष करे। ६ द्वेष कर्त्ताओंका द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वीके ऊपरसे सामना करते हैं। ७. हे श्रेष्ठ नियन्ता ? यह मैं। ८. इस गोत्रके इसके पुत्र में, ये दुष्ट स्वप्न भेजता हूँ। ९. जो यह दोष मैं उसमें प्राप्त करता हूँ, जो निशा या पूर्व निशा में। १०. जो जागते हुए, जो सोते हुए, जो दिन रात्रि में। ११. जो प्रति दिन मैं देखता हूँ, उस दोष के कारण मैं उसे मारता हूं। १२. उसको मार दे, उसके साथ चल, उसकी पसलियां तोड़ दे। १३. वह न जीये, उसे प्राण छोड़ दे।

कां० १६।८, १-२७ यमः ऋषिः। दुःष्वप्ननाशनम् देवता। प्र० १-२७ एक प० यजुर्ब्राह्मी अनुष्टुप्। द्वि० १।२७ त्रिपदा० निचृद्गायत्रीः; तृ० १-२७ प्राजा० गायत्री; च० १-१७ त्रिप० प्राजा० त्रिष्टुप्; तृ० २-४,६,१७,१६,२४,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आसुरी जगती; तृ० ४-७-८,१०,११,१३;१८ आसुरी त्रिष्टुप्, तृ० १२-१४-१६-२०-२३-२७ आर्चेरी पंक्ति, तृ० २५-२६ बृहती छन्दांसि उपर्युक्त दुःख निवारणे संकट मोचनं, विजयार्थे उपस्थाने, अवमार्जने, अवभृथस्नाने अभिचारिके च विनियोगः।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वऽरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥३
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४।१
जितम्०।०। स निर्ऋत्याः पाशान्मामोचि ।०॥५।२
जितम्०।०। सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि ।०॥६।३
जितम्०।०। स निर्भूत्याः पाशान्मामोचि ।०॥७।४
जितम्०।०। स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ।०॥८।५
जितम्०।०। स देवजामीनां पाशान्मा मोचि ।०॥९।६
जितम्०।०। स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि ।०॥१०।७
जितम्०।०। स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ।*॥११।८
जितम्०।०। स ऋषीणां पाशान्मा मोचि ।–॥१२।९
जितम्०।०। स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि ॥–।१३।१०
जितम्–।–। सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि ।–॥१४।११
जितम्–।–। स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि ।–॥१५।१२
जितम्–।–। सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि ।–॥१६।१३
जितम्–।–। स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि ।–॥१७।१४
जितम्–।–। स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि ।–॥१८।१५
जितम्–।–। स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि ।–॥१९।१६
जितम्–।–। स ऋतूनां पाशान्मा मोचि ।–॥२०।१७
जितम्–।–। स आर्तवानां पाशान्मा मोचि ।–॥२१।१८
जितम्–।–। स मासानां पाशान्मा मोचि ।–॥२२।१९
जितम्–।–। सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ।–॥२३।२–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जि॒तम्–।–। सो॒ऽहोरा॒त्रयोः॒ पाशा॒न्मा मोचि ।–॥२४।२१

जि॒तम्–।–। सो॒ऽऽह्नोः सं॒य॒तोः॒ पाशा॒न्मा मोचि ।*॥२५।२२

जि॒तम्*।*। स द्यावा॑पृथि॒व्योः॒ पाशा॒न्मा मोचि ।*॥२६।२३

जि॒तम्*।*। स इन्द्रा॒ग्न्योः॒ पाशा॒न्मा मोचि ।*॥२७।२४

जि॒तम्*।*। स मि॒त्रावरु॑णयोः॒ पाशा॒न्मा मोचि ।*॥२८।२५

जि॒तम्*।*। स राज्ञो॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॒न्मा मोचि ।*॥२९।२६

जि॒तम॒स्माकमुद्भिन्न म॒स्माकं॑मृ॒तम॒स्माकं॒ तेजो॒ऽस्माकं॒ ब्रह्मा॒स्माकं॒ स्व॒ऽरस्माकँ॒ य॒ज्ञो३स्माकँ॒ प॒शवो॒ऽस्माकँ॒ प्र॒जा अ॒स्माकँ॒ वी॒रा अ॒स्माक॑म् ।

तस्मा॑द॒मुं निर्भ॑जामो॒ऽमुमा॑मुष्याय॒णम॒मुष्याः॑ पु॒त्रम॒सौ यः । स मृत्योः पड्वी॑ शा॒न्मा मोचि ।

तस्ये॒दं वर्च॒स्तेजः॑ प्रा॒णमायु॒र्निवे॑ष्ट यामी॒दमे॑नमध॒राञ्चँ॒ पादयामि ॥३०।३३।२७

मंत्र ५-२ से २९-२६ पर्यन्त में सभी में १-२ तथा ४ पूर्ववत् ही उच्चारण करें। केवल तीसरे में ही उपर्युक्त वर्णित ऋचा का प्रयोग किया जायगा। क्रिया पूर्ववत होगी।

कां १६ सूक्त ८ १. हमारी विजय हो, हमारा अभ्युदय हो, हमारा सत्य बढे, हमारा तेज बढ़े, हमारा ज्ञान बढ़े, हमारा आतम प्रकाश बढ़े, हमारा यज्ञ सफल हो, हमारे पास पशु हों, हमारी प्रजा सन्तति बढ़े, उन्नति शील हो, हमासे अन्दर वीरत्व हो। २. इस अपराध से हम उस शत्रु पर आक्रमण करते हैं जो इस गोत्र का, इसका पुत्र हमारा शत्रु हैं। ३. वह रोग के पाशों से न छूटे, ४. उसका यह तेज, वल प्राण और आयु को मैं वींधता हूं। ५. और यह मैं इसका अधः पतन करता हूं। ६. वह दुर्गति के पाशों में छूटने न पाये। ८. वह इन्द्रिय दोषोंके पाशों से न छूटे। १० से ३२. वह गृहस्पति, प्रजापति, ऋषि, ऋषियों से उत्पन्न, अङ्गिरस, अङ्गिरा से उत्पन्न अथर्व, अथर्वा से उत्पन्न, वनस्पति वनस्पतियों से उत्पन्न, ऋतु ऋतुओं से उत्पन्न, महीने पक्ष, अहोरात्र, दिन द्यौ, पृथ्वी, इन्द्र, मित्र, वरुण, राजा वरुण और मृत्यु के पाशों से न बचे। उसका यह तेज, कांति, प्राण, आयु आदि को मैं वींधे देता हूं और उसका अधपतन करता हूं।

कां० १६।९ यमः ऋषिः प्रजापतिः, मन्त्रोक्ता० ३,४ सूर्यः देवसे। १ आर्ची अनुष्टुप्, २ आर्ची उष्णिक्, ३ साम्नी पंक्तिः, ४ परोष्णिक छन्दांसि प्रथमा तथा द्वितीयायाः ऋचायाः पूर्वोक्त अभिचारिके कर्मणि तथा च तृतीय चतुर्थ—इत्येतयो सूर्योपस्थाने अवभृथस्नाने च विनियोगः।

जि॒तम॒स्माक॒मुद्भि॑न्नम॒स्माक॑म॒भ्य॑ऽष्ठां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना॒ अरा॑तीः ॥१

तद॒ग्निरा॑ह॒ तदु॒ सोम॑ आह पू॒षा मा॑ धात्सुकृ॒तस्य॑ लो॒के ॥२

अग॑न्म॒ स्वः॒ स्व॒ऽरगन्म॒ सं सूर्य॑स्य॒ ज्योति॑षागन्म ॥३

व॒स्यो॒भूया॑य॒ वसु॑मान्य॒ज्ञो वसु॑ वंशिषीय॒ वसु॑मान्भूयासं॒ वसु॒ मयि॑ धेहि ॥४

कां १६ सूक्त ९ १. हमारी विजय हो, हमारा उदय हो, समस्त शत्रु सेना का निरोध किया है २. अग्नि ने यह कहा है, सोम ने यह कहा है, पूषा तुझे पुण्य लोक में धारण करे। ३. आत्मा की ज्योति को प्राप्त होते हैं, हम अपने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेज को प्राप्त होते हैं, हम सूर्य की ज्योति से संयुक्त होते हैं। ४. ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये धन सम्पन्न होऊं, ऐश्वर्य यज्ञ ही है, ऐश्वर्य प्राप्त करूं, मुझ में धनों की धारणा कर।

तदनन्तर "विषासहिं" (१७।१) तथा उदस्यकेतवः (१३।२) एवं "मूर्धाऽहं" (१६।३-४) इन सभी तन्त्रों से सभी शान्ति कर्मों में उपस्थान करने से समस्त दुःख, क्लेश, संकट निवृत्ति होकर प्रत्येक परिस्थिति में पूर्ण शान्ति, समृद्धि, अभ्युदय की प्राप्ति होती है। ये राजयक्षमादिव्याधि निवारण के आगे पढ़ें।

मोतियाविन्द का उपचार—नजले से पानी उतर आने से नेत्र की पुतली का रङ्ग बदल जाता है। इसके प्रारम्भ में ही कनपटी पर गुल (नस्तर) या जोंक लगायें। इससे पूर्व नजला के निवारणार्थ हींग, वच, सोंठ, सोंफ, सम-भाग लें, शहद में मिलाकर. ४ माशे नित्य सेवन करें। मोतियाविन्द हो जाने पर भीमसेनी कपूर [पुत्रवाली] स्त्री के दूध में पीसकर लगायें। २—नौसादर को सुरमे की भांति लगायें। ३—कौए का पित्त, शहद में मिलाकर लगायें।

नेत्रदर्द और सूजन का उपचार—लाल फिटकरी २ तोले, हल्दी २ माशे, अफीम १ माशे लें। फिटकरी कढ़ाई में भूने, ७ तोला नीबू का रस डाल, मन्द अग्नि से गाढ़ा सा कर लें। और चीजें उसी में डाल लें। गोली बना आंख के ऊपर पानी में घिसकर लगाये। अन्दर भी लगायें।

नेत्र और पलकों की खुजली का उपचार—१ माजू छोटी हर्र पीसकरु लेप करें। २—शिर के बाल जलाकर लगाये। ३ अण्डे का छिलका जलाकर, पीसकर लगाये।

नेत्रों की कमजोरी का उपचार—१. सोंफ का अर्क या इत्र २।२ बूंद डालें, सोते समय ६ माशा सोंफ और देशी खाँड़ सेवन करे। २. शीशा गलाकर, पानी मे बुझायें, पुनः गलाकर बर्षाती उल में बुझायें, पुनः गलाकर, गोघृत में बुझायें; पुन; गलायें, शहद में बुझाकर सलाइ वनालें उसे नेत्रों में फेरें। ३. कपड़ा सिरस के अर्क में भिगोकर सुखा लें, ३ बार सुखायें और भिगोयें। फिर सांठ के रस में भिगोकर सुखायें, पुनः अदरख में पुनः नीम के रस में पुनः नीबू के रस में पुनः गोमूत्र में भिगाकर सुखायें। तदनन्तर सफेद प्याज के रस में भिगाकर सुखाकर, बत्ती बनालें चमेली के तेल में भिगोकर काजल पालें नेत्रों में अंजन करें। ५. श्वेत गील मिर्च १६, पीपल छोटी ६०; चमेली की कली ५०, तिल, व सिरस व नीम के पुष्प १००।१००, मिश्री कुञ्जा की १ छटांक पीसकर, सांठ के रस में घोटें। पुनः नीबू के रस में घोटें, पुनः अदरख के रस में घोटें। भीमसेनी कर्पूर १ तोला मिलालें। सुरमा को नीम या जस्ता की सलाई से आंजें।

नेत्रों की फुली का उपचार—तूतिया ५ माशा साबुन १०माशा राल ४ माशा लें। लोहपात्र में अग्नि पर साबुन गलाये, उसके उपरान्त राल गलालें, इसी में तूतिया पीसकर मिलादें। इसे ख़स-खस के बराबर इन्हें पानी में घिसकर नेत्रों में लगायें। तीन दिन उपरान्त बारहसिंहा के सींग दूध में घिसकर नेत्र में लगावें।

तदनन्तर मिश्री दूध में घिसकर लगायें। कबूतर की वीठ और प्याज में घिसकर लगावें। कदु तोरई, मीठे तेल में घिसकर लगायें। इनमें कोई एक का ही प्रयोग करें।

नेत्रों के ढलके का उपचार—२ माशा बही हर्र भूनकर, १ माशा माजू और लाहौरी नमक मिलायें पीस, कपड़ छन कर नेत्रों में सलाई से लगाये। २. रुई की बनी ३ वत्तियों को १० तोले धतूरे के रस में डुबाकर सुखालें, फिर आक के रस में डुबाकर सुखालें, फिर आक के रस में डुबाकर सुखायें, उन्हें अरण्डी के रस में भिगोकर काजल पारलें। उस काजल में घी और तूतिया और लाल फिटकरी भूनकर, पीसकर मिलायें, तब नेत्रों में लगायें।

श्वास खांसी का उपचार—काकड़ा सींगी, कूट, छानकर, कालीमिर्च के तुल्य गोली बनालें और चूसें। २. हल्दी आधी छटांक सज्जी सफेद १ तोला पीसकर, वेर के तुल्य गोली बनाकर चूसें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिशुओं के लिये—नौसादर आधा भुना, आधा कच्चा उसी के बराबर कालीमिर्च, ग्वाल पाठा के रस में पीसें, चने के तुल्य गोली बनालें, उसकी माता के दूध में घिसकर चटायें।

कर्णरोग उपचार—सोते समय कान में रुई लगालें। २. नीम पत्तों का रस गर्म कर डालें। ३. तिल के तेल का तिगुना मूली का रस मिला सिद्ध करें, जव तेल रह जाले, छानकर कान में डालें। ३. लहसुन का अर्क, या सुदर्शन का अर्क गुनगुना कर डालें।

ऊँचा सुनने का उपचार—ऊंट का पेशाव गरम कर डालें। २. इन्द्रायण फल तेल में भूनकर तेल गर्म कर डालें। लाभ होता है।

कान के कीड़ों का उपचार—एलुआ पानी में पीसकर कान में डालें।

नाक की वीमारी का उपचार—१. सरेस व मुलतानीमिट्टी पानी में पींसकर लेपें। २. ईशवगोल सिरके में भिगोकर माथे पर लेपें। ३. गौभय जलाकर कान में फूंकें। ४. रसोत जलाकर कान में फूंकें। ५. बेरी के पत्ते पीसकर माथे पर लेपें।

मन्दाग्नि उपचार—धनियां २।। छटांक, कालीमिर्च १ छ०, नमक आधी छ०, पाँचों खार आधी छ० भूनी हींग आधी तोला, कूट छानकर ४ माशे की मात्रा में जल के साथ सेवन करें।

संग्रहणी उपचार—सोंठ, बेल, चीता, धना चोव, वांटिकस्चूर। पानी तक्र संग लेत ही संग्रहणी हो दूर। २. चरण, चीता, मिर्च का, शहद तक्र संग लेइ। ३. गुल्म, प्लीहा उदर दुःख संग्रहणी हर लेइ। बेल, इन्द्र, यव, मोचरस मोथा समभाग लें। १ तोला भर घी में मिला सेवन करे। तो सभी अतिसार संग्रहणीं, रुधिर, आंव नष्ट होते हैं।

उदररोग उपचार—जवाखार, कूठ, वच, चित्रक, जीरा, अजमोद, हींग चोव, चीनी, तीनों सज्जी, पाढ़, सौंठ समभाग ले पीस लें, आधी तोला गरम जल से लें। ५. जवा खार, सैंधा नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, विजौरे के रस में घोटकर, आधे तोले सेवन करे। तो प्लीहा (तिल्ली), जिगर नष्ट होते हैं।

मूत्र कृच्छ उपचार—१. वासां, ऐरण्ड, रस से समभागों में इलायची चूर्ण मिला दही के साथ पियें। २. दोनों गोखरू वीज, जावखार समभाग लें चूर्ण करें। जल के साथ १ तोला भर प्रातः सायं ले अति मूत्रकृच्छ नष्ट हो जाता हैं।

प्रमेह उपचार—आंवले के रस में मधु और हल्दी मिलाकर लेवन करें। २. गुड़ची का रस शहद में मिला ७ दिन सेवन करें। ३. त्रिफला, चूर्ण, मधु के साथ लें। ४. सेमर की छाल का रस हर्र के चूर्ण के साथ ले। ५. वन्द अनार की कली कत्था चूर्ण, खांड़ के साथ २१ दिन सेवन करें। तो २० प्रकार के प्रमेह नष्ट हों।

प्लीहा उपचार—हुलहुल, सरफौका की जड़ें समभाग लें, ११ कालीमिर्च के साथ पीसकर पांनी के साथ लें।

नेहरुआ का उपचार—वबूल के कच्चे बीज गोमूत्र में पीसकर लगायें।

मृगी उपचार—ब्राह्मी, सोंठी, चिरायता, पुष्करमूल, कचूर। दारुहल्द, सुरदारु, वच, मोथा पीपलमूल।।१ 'अभया रोहिण सिरस फल, कूट क्वाथ समजानि' अमस्मार, उन्माद, भ्रम, विसूची, हिस्ट्रया हानि।।२ पुनः सैंहुण में मिर्चें घरें, दिन इक्कीस विचारि। नास दीजिये नीर सौं, मृगी रोग को टारि। ३। वच, रस, ब्राह्मी, कूट, सम, शंखपुष्पि के संग। गोघृत मिलि सेवहि, सृगी रोग हो भग। ४।

उन्माद उपचार—कूठ, लोंग, असगन्ध दोनों जीरे, त्रिफला, अजमोद, शंखपुष्पी, पाठा समभाग उस सबके तुल्य वच, ब्राह्मी को नोनिया के रस में ३ भावना दें, तदनन्तर शहद की भावना दें, तदनन्तर गोघृत की भावना दें—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चूर्ण कर रख लें. ६० दिन आधा तोला मात्र जल सेलें। मेधावृद्धि, हृदय में धैर्य बड़ा उन्माद,। बुद्धि विपरीतता, अपस्मार नष्ट होते हैं।

सुन्न वायु उपचार—पैसा भर सैमर के बीज जल में पीसकर पियें।

श्वेत कुष्ठ उपचार—अर्क (आक) की जड़, गन्धक, हरताल, कुटकी, रजनी;को गोमूत्र में पीसकर ७ दिन लेप करें, श्वेत कुष्ठ नाश हो। २. खैर, आमले दोनों सम लें क्वाथ करें, उसी में दोनों बावची मिलावें, १ मास लेपें।

कण्ठ रोग उपचार—शहतूत या तूत की जटा, पत्रों के रस के गलारे ११ दिन करें।

राजयक्ष्मादि उपचार:—६अगर, लौंग, कर्पूर, कमलगट्ठा, चन्दन, जीरा,खस, इलायची, मोथा, जटामांसी, तगर, वंशलोचन, अरूवारो, [अडूसा] पीपल, कंकोल, जायफल, तज, नागकेशर, मिस्री सब १।२।१।२ छ०, उस सब की आधी मिस्री, कूठलें, चूर्ण करले, रोगी के बलाबल को देखकर १।३ तोले से १ तोला मात्रा, स्वर्ण तप्त जल के साथ लें। इससे क्षय, तृषा, अरुचि, आलस्य, कण्ठ रोग, हृदय रोग, काश हिचकी, पीनस रोग, अतीसार, संग्रहणी, प्रमेह, गुल्म रोगादि जड़ से नष्ट होते हैं। पथ्य खट्टा, तीखा, तेल, लाल मिर्च, गुड़ गरिष्ठ भोजन का परित्याग करना अनिवार्य है।

कफ ज्वर लक्षण :—वदन लाल, पुनिलाल दृग, आलस होवै। श्वास। वमन करै, लघु नींद, पुनिबेदिल नयन उदास ॥१॥ जरै शीशु खाँसी बहुरि, जीभ कंरेरी जान। करि हां पीर, पिराय अति, गलगेही जड़ मानि ॥२॥ अति अभूख, मीठो वदन, मीठर गरौ खुजाय। हिम मारी, अरु पीठ पुनि, नासा ज्वर मुंद जाय ॥३॥ भूख प्यास थोरी लगे मन्दी अग्नि शरीर। देह बदन, फीकौ लगै, यों कफ जानो चीर ॥४॥ केकी हंस कपोत की, चलै नाडिका बाल। तौ कफ को यौं जानिये परखौ वैद्य विशाल ॥ ॥

उपचार :—चौव चीनी, तालीस एक भाग, दूना पीपला मूल, पहिली का ही तिगुना सौंठ, चौगुनी पीपल, इलायची १।५ भाग० १।६ तज, १।७ पटोलशत्र, सबको चूर्ण करें, कुल के बराबर मिश्री मिला, १ मात्रा १।२ तोला भर जल के साथ सेवन करे।

वातज्वर लक्षण :—चित्तभ्रम, अरुताप तनु, पीड़ित होइ अधीर। देही शीतल होय पुनि, नीद न आवै बीर ॥१॥ टूटै तन, आलस बहुरि, तालू जरै अचेत। बचन कठोर, रोवैं हस, वात करे, बिनु हेत ॥२॥ लेत जम्हाई, तन कँपे, चलै ताप उर शूल। पेट पीर फूलै बहुरि, नींद नहीं, गतिशूल ॥३॥ चौकि उठै जिह्वा कठिन, लकड़ी सी ऐंडायु। लगे थर हुए देह में, ताहि जानि ज्वर वायु ॥४॥

उपचार :—पिठवन, सौंठि, खस, सरबन, गोखरू, कुटकी, गिलोय, किरात, मोथा, कास्मरी, पीपरामल सब २।२ तोला लै कूट लें, उसमें से २ तोला मात्रा छः छटांक जल में डालकर काढ़ा करें, जब १।२ रह जाये छानकर पियें।

पित्तज्वर लक्षण:—मुखकटु, तनताप बहु, व्याकुल देही होय। तृषा, टीस, प्रलाप अति, नींद न आवै कोई ॥१॥ सयन जरै अरु लाल पुनि, सूखै अधर कठोर। रक्त, नील, पीरो वदन, पलभा तीक्ष्ण छोर ॥२॥ कान भनक लागै बहुत, चहै खटाई खान। मूत्रपीत अरु गरम पुनि, कफ, मुख, कडुवी जान ॥३॥ कर, पद, तप्त, हियौ जरै, ये लक्षण लखि लेई। पित्तहि को यौं जानिये, पाछैं औषध देई ॥४॥

उपचार:—चिरायिता, पीपर, बाँसा, प्रियंगु. कूठ, जवांसा, मिश्री सभी १।२ १।२ छटाँक ले चूर्ण करें। उसमें से २ तोला को छः छटाँक पानी में काढ़ा करें, २ छ० रह जावे, तब पियें।

अण्डकोष वृद्धि उपचार:—जिस व्यक्ति का "अण्डकोष" बाँई ओर का फूला हो, उसके ठीक विपरीत दाहिनी ओर की गुट्टी के ४ अंगुल नीचे किसी धागे से बाँध दें। २१ दिन बधा रक्खें। २१ दिन उपरान्त पैर की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुट्टी के नीचे १ नस निकलेगी। उसे अग्निमुखी या सूर्यमुखी के गर्भ तेल से दाग दें। जब नस सूज जावे तब घी से चुपड़ दें। उस नस में से स्वतः ही विषैला पानी निकलेगा, जब निचुड़ जावे, तब गोला (नारियल) जलाकर उसपद लगा दें। २ टेसू के फूल, आँवा हल्दी, खुरासानी अजवायन, समभाग ले चूर्ण करें, गर्म कर लेप करे। ३-असगन्ध, जसवन्ती (जसौदी) की पत्ती ऐरण्ड की मिंगी पीसकर गर्म कर लेपें। इससे तीस वर्ष के असाध्य रोगी ठीक हुए हैं।

सर्प विष उपचारः— कच्चा नीला थोथा, आक की जड़, समभाग चूर्ण कर, छैः छैः मासा नाक में भरकर फूंकनी से फूकैं, तत्काल कै होगी, रोगी ठीक होगा। २-चना के बराबर जमालगोटा खिलायें ३-कसौंजी की जड़ पीसकर पिलावें। ४-कसौंजी के बीज घिसकर नेत्र में आजें। ५-एक चूहा या मैंढ़क का माँस काट कर रख दें तो विष को खींच लेते हैं।

बिच्छू विष उपचारः—नौसादर, कलई का चूना, सुहागा मिलाकर सुघावें। २. इन्द्रायन की जड़, जायफल, हरताल तीनों पीसकर लेपें।

पागल कुत्ते का उपचारः—१ दोनों जीरे, काली मिर्च पीसकर पिलायें।

गुर्दा याभसानों की पथरी का उपचारः—आठों प्रकार के नमक १००।१०० ग्राम लें उनके बराबर ८०० ग्राम नौसादर लें पीसकर, कपड़छन करें। उस सबको बड़े नीबू (विजौड़ा या मलमल) के रस में ऐसा डुबोयें २।२ अंगुल रस उसपर रहे। उसे हवा में छाया सुखा लें। ऐसे ही ३ बार करें। परन्तु हर बार उसमें बीज निकाल कर २।४ नीबू और गला दें। उस नमक मिश्रित नौसादर के सूखने पर उसमें डाले गये नीबूओं समेत एक मिट्टी के पात्र में भरकर डमरू यन्त्र में भरकर, इम्ली या देशी बबूल की प्रचण्ड अग्नि में १ घंटे तक फूकें। उसका सत्व वाष्प बनकर ऊपर डमरू यन्त्र में आ लगेगा। क्षार नीचे पात्र में रह जावेगा। ऊपर के सत्व को शीशी में भर लें उसमें से २ रत्ती मात्रा में लें। उतना सी २ रत्ती भर दालचीनी का चूर्ण मिला लें। इस मात्रा ले प्रातः सायं दो बार प्रतिदिन जल के साथ २१ दिन सेवन करें। तले गरिष्ठ पदार्थ माँस-मदिरा वर्जित है। इससे गुर्दों की अथवा मसानों की अथवा शरीर में अन्य सभी पथरी हो स्वतः कटकर अधोमार्ग से शौच-मूत्र में चली जाती है। २-नीचे के क्षार की ४ रत्ती मात्रा में नीबू के रस से या अदरख के रस में प्रातः सायं लें वे मन्दाग्नि आम अतिसार, संग्रहणी नष्ट हो जाते हैं रक्त शुद्ध होता है।

गण्डमाला (कैन्सर) निवारण—काली गौ का दूध गर्म करें, उसी में श्यामा तुलसी पत्र ४१, तथा स्वर्णाभरण उबलते समय डालें। ठण्डा होने पर मधु मिलाले। ४१ दिन मात्र दूध ही सेवन करें अ० वे०कां० १३ सू० १,२,४, तथा कां १७ सू०१ से सूर्योपस्थान तीनों सन्ध्याओं में करें। इन्हीं सूक्तों से अभिमन्त्रित कर दुग्ध सेवन करें। यह उपचार तभी करें जब अन्य किसी भी वाह्य शारीरिक चिकित्सा पद्धतियों के उपचार सहयोग न देते हैं।

अथ शत्रुस्तम्भन-संकटमोचन, संग्रामजय-विधिः

जीव के आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि, समस्त आन्तरिक शत्रुगण, प्रशासनिक राजनयिक, लौकिक, न्यायिक, औद्योगिक, व्यवसायात्मिक विघ्नभूत शत्रुगण, परराष्ट्रीय पुत्रगण तथा यमत्रास, विविध नाखा संकट परवन्धन, जीवनमरणादि दुःखों से मुक्त, नष्टभूमि, नष्टज्ञान, नष्टवर्च, ओज, वल नष्ट सम्पदा लाभार्थ क्रमशः (१) वज्र (२) उद्वज्र (३) त्रिसन्धि वज्र (त्रिशूल) को व्यावहारिक (क्रियात्मक अनुभूत) विधिः इस प्रकार समझें। इसी प्रयोग के अन्त में (४) पाशवपदास्त्र की विधि भी दी गई है।

अथ वज्रप्रयोगविधिः—(१) कर्त्ता ओलों से स्वयं टूटी हुई प्रार्थनापूर्वक हो, वांस की काटकर लाई शाखा अथवा स्वयं टूटकर गिरी हुई पीपल की २ टहनी लें। भँगवा लाल रेशमी वस्त्र को उसपर लपेटैं। लाल रेशमी धागे से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही उसे बाँधें। यज्ञोपवीत ब्रह्मग्रन्थि कां (स्वयं काते, स्वयं ही बनाये हुए) को उसे धारण कतये बाँधे। स्वयं कते सूत की बनी मेखला को चन्दन कत्था के लाल रङ्ग से रङ्ग लें। एक पात्र में पेयपदार्थ दूसरे में शुष्क फल खाने का, तीसरे में शुष्क केवल निगल जाने योग्य गुड़, मिश्री आदि लें। पावन नदी, जलश्रोत, श्मशान, तथा चतुरास्ता की मिट्टियों में से जो भी या सभी, सम्भव हो सकें लें। उसकी एक प्रतिमा (अपने शत्रु जो भी जैसा भी हो) की प्रतिकृति (प्रतिमा) बनायें। श्मशान के कोयले को अपने बाँयें पैर के अंगूठे के जल से घिसें चन्दन की भांति प्रतिमा को तिलक करें। प्रतिमा का शिर उत्तर, पैर दक्षिण को करें सुलादें। तीन कुशाओं को उसपर रक्खें। कर्त्ता स्वयं अपसव्य होकर, दक्षिणाभिमुख वीरासन से प्रयोग के समय बैठें। क्रिया घर में न करें। एकान्त, शान्त, पावन स्थान में करें मेखला वज्र, प्रतिमा तीनों ही की इस मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा करें। यह ब्रह्मास्त्र वज्र, उद्वज्र, त्रिसन्धि वज्र युद्ध की कृत्या सभी में समान ही हैं। अस्य कां ५ सू ३० ऋचः १३,१४,१५ उन्मोचन ऋषिः। आयुष्यकामो देवता १३,१५ अनुष्टुभ् १४ विराट प्रस्तार पंक्तिच्छंदासि, मेखलायाः ब्रह्मास्त्र वज्र, उद्वज्र, त्रिसन्धि परशु (फरसा) वज्र, वृषभ, प्रतिकृतौ, त्रिशूल, पाश्वपदास्त्र १ प्रभृतिकेषु शरीरादिषुपुनः प्राण, मन, इन्द्रियगण, बल, वीर्य, ओज, जीवादि आमन्त्रणे विनियोगः। मन्त्र अ०२ तथा प्राणविद्या अ० ३ में देखें तथा कां ६।५२-२, ३ पुनः प्राण पुनरात्मा देखें।

इस प्रकार सभी की प्राणप्रतिष्ठा करके, उन सभी के तथा अपने इधर उधर भटके (शैलानी) मन को यथावस्थित करने को अनुमन्त्रित करें जल छिड़कें कां ७ सू० १३ म ४ यद्वो मनः परागतं, कर्त्ता पूर्ण ब्रह्मचर्य, स्वयंपाक् प्रतिग्रह, परान्नविर्वजित, उपवासादि समस्त अनुष्ठानीय दीक्षा कर्मो नियमोपनियमों का दृढ़ता से पालन करें शय्या का त्याग भूशयन करें। इससे सन्मार्गगामी के अभीष्ट चिंतनादि, गायत्री आदि जप पुरश्चरण, श्रुतिविहित (इष्ट) यागादि पूर्त-स्मृत्युक्त कूप, देवालय, तडाक, उद्यानादि इस या सभी कर्मों में, विघ्नभूतबाधक, वाह्याभ्यन्तर शत्रुओं, के स्तम्भन, बलक्षय, पराजय तथा आत्मबल सम्बर्द्धन, विजय, नष्ट सम्पदादि लाभार्थ, लोक लोकान्तरीय यात्रा साफल्यार्थ पूर्ण-स्वस्त्ययन, चिरायु, पूर्णस्वास्थ्य, अभिवृद्धि के हेतु, अभिचार कर्म में अपने अनिष्टकर्त्ता प्रतिपक्षी यदि कोई लौकिक हो तो उसका नाम भी जोड़कर इस प्रकार सर्व प्रथम उद्घोषित करें। (कां २ सू० ?२) अन्त में देखें।

"अमुम् 'शत्रुनाम" अपकर्त्तारम् अमुकनाम्नेशत्रु, देवसम्बन्धिना-मत्कृपाभिचार जनितकृत्यारूप ब्रह्मास्त्र वज्र, उद्वज्र, त्रिसन्धिवज्र, परशु, पाश्वपदास्त्ररूप देवताकृत्वेन निगृह्णामि ।।" यह सम्बोधित करें। तदनन्तर अ० कां ६ सू० १३३ की विधि से दी गई मेखला धारण करें और जो दीक्षा का दृढ़ संकल्प का प्रतीक है। यह विश्वामित्रादि सप्तर्षियों का आयुध है जो कां ६ सू० १३३ ऋचा २ में स्पष्ट है। ऋचा ३ में उत्तरार्द्ध **(तपसा)** से मन्त्रबल **(श्रमेण)** से एकाहार, निराहार, मिताहार, पयोव्रत चान्द्रायण कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतपूर्वक कृततपः, **(मेखलयासिनाम्नि)** से शत्रु की गति अवरोध समझें। ऋचा ४ (१) **(श्रद्धा)** श्रुतिस्मृति कर्म में आस्तिक्य बुद्धिः ४ (२) उत्तरार्द्ध **"मति"** से आगामिगोचर बुद्धि, तथा **(मेधा)** से श्रुतिधारण समर्थबुद्धि का अभिप्रायः है। ऋचा ५ (दीर्घायुत्वाय) अभिचारदोष परिहरणसे चिरकाल जीवनार्थ ऋचा १को बोलते हुए मेखला बनायें। प्राणप्रतिष्ठा कर पुनः इसी की ऋचा १ से ५ पर्यन्त से अभिमन्त्रित करें ऋचा २ "आहूतस्या" से, मेखला ग्रन्थि पर चन्दन चढ़ायें। तब मेखला धारण कर तदनन्तर वज्ररूप (दण्ड) धारण करें। एक अपने राजा, राष्ट्रपति रक्षामन्त्री सेनाध्यक्ष जो भी प्रतीकमात्र यदि हो तो उसके भवन में (समष्टि) यदि (व्यष्टि) व्यक्ति हो तो अपनी कुटी जैसी भी प्रयोगशालादि हो के दक्षिण दिशा में या ग्राम, नगर, पत्तन, राष्ट्र की सीमा में गाड़ दें। प्राण प्रतिष्ठित मिट्टी की प्रतिकृति को प्रतिपक्षी शत्रु की भाँति लक्ष्य कर उसके हृदय पर हाथ रखकर उसे क्षीण शक्तिवत् समझते हुए वज्र की दी हुई विधि का प्रयोग करे।

शक्ति (अस्त्र) निर्माण—जलों (मेघों) में सूर्य द्वारा संस्थापित प्रचण्ड शक्ति को प्राप्त कर ने के लिये एकान्त स्थान में एक गहनगर्त खुदवायें। उसमें गोमय (मात्र ही) संग्रह कर भर दें। उसीपर कांस्यपात्र रख दें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके ऊपर पर्याप्त ऊँचाई में गोमय भर ले। वर्षाकाल (या) जब भी मेघों की परस्पर उन्मत्तता और परस्पर विरोधी महावात के वेगों के झोंकों से प्रेरित होकर टक्कर होती है, उससे उत्पन्न संहारकारिणी दैवी, मेघों में संस्थापित सूर्य की तेजोमयी विद्युत सीधी, विद्युताकर्षणगुण सम्पन्न ताम्र मिश्रित कांस्य पात्र में पड़ेगी। वह भूमि को गहराई तक चीरती हुई सीधी जायगी। उस दैवी प्रचण्ड अग्नि को, गोमय में निहित दूसरी महान अग्नि, अपने प्रभाव से गोमय को लाँघकर नीचे पाताल की ओर भूमि में जाने से रोक लेती है। मेघों की विद्युत में यह विशेषता है कि वह किसी भी पदार्थ पर पड़कर उसका भेदन कर वापिस आकाश में चली जाती है। इस उपर्युक्त कांस्यपात्र के ऊपर की गोमय की शक्ति उसे वापिस नहीं होने देती। अपितु उसे ठण्डा कर देती है। उसकी एक लम्बीं फौलादी लौह जैसी तीक्ष्ण शलाका उस गोमय पिण्ड में बन जाती है। उसीकी शक्ति या अग्नितीक्ष्णबाण, या तलवार बना, इन आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र मन्त्रों से तथा इस ब्रह्मास्त्र, वज्रों के मन्त्रों से प्राणप्रतिष्ठा कर,अभिमन्त्रित करें। उसी लौहशलाका का कवच या मणि बनाकर अभिमन्त्रित कर धारण करें। इसपर किसी भी विनाशकारी तत्व (यातुधान राक्षसों की शाम्बरी माया जनित, घात-पात का कवच के ऊपर कुप्रभाव नहीं पड़ता। इसकी मणि (त्रिलौह) मणि जो अ० १ में रविपुष्य, गुरुपुष्यों में, बनाकर धारण का उल्लेख किया जा चुका है, बना अभिमन्त्रित कर धारण करें। इसीकी प्रक्षेपणास्त्र शक्ति को उपस्थान अभिमन्त्रिण के साथ संग्राम में उपयोग करें, तो वह अपनी अद्भच्छाक्ति को प्रयोगकाल में चकाचौंध में डाल देगी। आधुनिक, मन्त्रालय के वैज्ञानिक इसपर अपनी विधियों से अनुसन्धान कर लोक कल्याणार्थ, राष्ट्ररक्षार्थ सार्थक बनायें।

ब्रह्मास्त्र, बज्र, ब्रह्मकुलिश, ब्रह्मशिरा ब्रह्मदण्डानुमन्त्रणे उपस्थाने प्रक्षेपण विधि

अकारण, निरीह, जन जीवन को त्रास, यातनादि, क्रूर, निन्द्य, घृणित रूप से क्षति पहुँचाने वाले शत्रु (राष्ट्र) के प्रति दिव्यशस्त्र अस्त्र को ब्राह्यवल सवर्द्धन कर प्रयोग करें। जन साधारण पर प्रयोग न करें। प्रथम शत्रु। दुष्ट, द्रोही' दुष्कर्मी, (राष्ट्र) को दमन कर्म प्रारम्भ दीक्षा के लिये 'मेखल' कृष्ण या रक्त सूत्र की वना प्राणप्रतिष्ठा पूजा करें पुनः इन ५ निम्न ऋचाओं से अभिमन्त्रित कर धारण करें। 'य इमां देवो मेखलाम' (अ० का० ६ सू० १३३)।

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उं नो युयोज।
यस्यं देवस्यं प्रशिषा चरांमः स पारमिच्छात् स स उं नो वि मुंञ्चात् ॥१
आहुंतास्यभिहुंत ऋषीणामस्यायुधम्। पूर्वा व्रतस्यं प्राश्नती वीरघ्नी भंव मेखले ॥२
मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचंन् भूतात् पुरुषं यमाय।
तमहं ब्रह्मणा तपंसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥३
श्रद्धायां दुहिता तपसोऽधि जाता स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तपं इन्द्रियं चं ॥४

श्रद्धा–श्रुति स्मृतिकर्म में आस्तिक्य बुद्धि। मति—आगामिगोचर बुद्धि। मेधा–श्रुतधारण समर्था बुद्धि।

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषंयः परिबेधिरे। सा त्वं परिं ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥५

ऋचा १ से मेखला निर्माण कर, प्राणप्रतिष्ठा पूजा करे, पांचों १ से ५ से पुनः अभिमन्त्रित कर बाँधे। ऋचा २ 'आहुतस्याभिहुत' से मेखला की ग्रन्थि पर चन्दनादि का लेपन करे। ऋचा ३ 'मृत्योरहं से वाध की अर्थात् ओलों से टूटी वृक्षों की समिधा, गृद्ध, चील के नीडों की समिधाशमी आदि कंटकी वृक्षों की समिधाओं को ले–हवन हवनीय विधि दक्षिणाभिमुख (दक्षिणाग्नि) चाण्डाल या श्मशान से लाई अग्नि से श्मशान आदि अरण्यप्रदेश में करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपनयन कर्म में केवल ४, ५ ऋचाओं से ही मेखला बन्धन करे । मेखला बन्धन दीक्षा के उपरान्त उपरोक्त वाधक, वृक्ष की समिधा—(दण्डी) में उर्ध्वभाग में रक्त कृष्णाय सूत्र की मेखला को पूर्ववत् बाँधें, ऋचा २ से लेपादि करें । उपरोक्त शमुदमन समर्थ अभिचार कर्म की सफलता के निमत्त **'अयं वज'** इन ३ ऋचाओं से दण्ड में शचीपति व उनके अमोघ वज्र की प्राणप्रतिष्ठा पूजा करें, इन्ही ३ से अभिमन्त्रित कर ब्रह्मदण्ड को धारण करें । एक दक्षिण दिशा में अपने राजभवन या राष्ट्र की सीमा में खड़ा गाड़ दें । इन्हीं ३ ऋचाओं से कर्त्ता अन्न को अभिमन्त्रितकर खाये ।

कां० ६ सू० १३३ 'य इमां देवो' हमारे राष्ट्र की वैदिक परम्परा यह रही है कि तपोधन, ऋषिगण, अपने शिष्यों को देशहित, सदाचार त्याग, परोपकार ब्रह्मचर्य, मितव्ययता के साथ, आत्म सर्वस्व उत्सर्ग कर देने की सर्वप्रथम दीक्षा देते चले आये हैं । उसमें हीं यह दृढ़ सकल्प का प्रतीक 'मेखला' है । यह ऋषिऋण से उऋ॑ण होने का शिष्य का संकल्प भी होता है और मेखलाके साथ गुरु ऋषि वेद एवं देव की अन्तःकरण की आशीर्वादात्मक, ब्राह्मीशक्ति शिष्य को संकटों के पार करने तथा मति, धैर्य विवेक, त्राण, तपश्चर्याः, नीरोगता, दीर्घायुष्य प्रदान करने का सिम्वल है । जो लोक, लोकान्तर में भवभय उदधि से पार करता है ।

जिस तपोपुञ्ज गुरु (आचार्य) ने, मुझे इस मेखला के धारण की दीक्षा प्रदान की हैं । वह हमें परमार्थ में आत्म बलिदान के उत्साह और दृढ़ संकल्प में कटिवद्धता से झूझने को पग-पग में; क्षण-क्षण में सन्निहित करता है । उन्हीं वन्दनीय गुरुदेव के आशीर्वाद से हम कर्त्तव्यपथ में अग्रसर होते हैं ।

वह अपार अनंत सागर से पार होने की उत्कट इच्छा शक्ति प्रदान करते हुए हमें भीषण जीवन संकट से मुक्त करायें । २—हे मेखले ! तू सभी प्रकार से स्तुत्य है, तू ही ऋषियों का परमायुध (ब्रह्मास्त्र) है । तू कोई भी महत्व पूर्ण कार्यारम्भ से पूर्वधारण की जाती है । तू शत्रु के वीरों का संहार करने वाली है । ३—जिस कारण मैं आत्म-बलिदान (मृत्यु को) बलिदान करने वाला नैष्टिक, ब्रह्मचारी हूं; उसी कारण से, मैं मृत्यु को आलिङ्गन करने वाले, कर्मवीर की कामना करता हूं । और उस पुरुष को मैं, ज्ञान, तप और परिश्रम करने की शक्ति के साथ, इस मेखला से आवद्ध करता हूँ । ४—यह मेखला श्रद्धा की पुत्री, तप से उत्पन्न हुई; प्राणी मात्र को मार्ग दर्शन करने बोली बीत-राग ऋषिगणों की भगिनी है । हे मेखले ! वह तू हमें उत्तमबुद्धि, एवं धारणा शक्ति प्रदान कर । तथा तितिक्षा शक्ति एवं स्वस्व, प्रबुद्धइन्द्रियां हमैं प्रदानकर । ५—हे मेखले ! जिस तुझको पुरा कालकें प्राणियों के चरित्र निर्माता ऋषि गणों ने धारण किया, वह तू मेरी दीर्घायु के लिये मुझको आलिङ्गन कर ।

काँ २० सूक्त ७२ परुच्छेपः, ऋषिः, इन्द्रः, देवता, अत्यष्टिः, छन्द ब्रह्मास्त्र, पाश्वपदास्त्र, वज्र प्राण प्रतिष्ठा अनुमन्त्रणे, स्तवने उपस्थाने प्रक्षेपणे च विनियोगः ।

वि त्वा॑ ततस्रे मिथु॒ना अ॑व॒स्यवो॑ व्र॒जस्य॑ सा॒ता गव्य॑स्य निः॒सृजः॑ सक्ष॑न्त इन्द्र निः॒सृजः॑ ।

यद् ग॒व्यन्ता॒ द्वा जना॒ स्व॑१र्यन्ता॑ स॒मूहसि ।

आ॒विष्करि॑क्र॒द् वृष॑णं सचा॒भुवं॒ वज्र॑मिन्द्र सचा॒भुव॑म् ॥२

उ॒तो नो॑ अ॒स्या उ॒षसो॑ जुषेत॒ ह्य१र्कस्य॑ बोधि ह॒विषो॒ हवी॑मभिः॒ स्व॑र्षाता॒ हवी॑मभिः ।

यदि॑न्द्र॒ हन्त॑वे॒ मृधो॒ वृषा॑ वज्रि॒ चिके॑तसि ।

आ मे॑ अ॒स्य वे॒धसो॒ नवी॑यसो॒ मन्म॑ श्रुधि॒ नवी॑यसः ॥३

काँ २० सूक्त ७३ ऋ६ १-३ वसिष्ठः ४-६ वसुकः, इन्द्रः । देवते, १ विराट्, ४-५ जगती, अभिसारिणी छन्दः उपर्युक्त अभीष्ठ सिद्धाचर्थे विनियोगः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥१
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र । न वीर्यऽमिन्द्र ते न राधः ॥२
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् । विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥३
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद् धूनोति वातो यथा वनम् ॥५
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६

काँ २० सूक्त १८-२ मेधातिथिः प्रियमेधश्च, ४-६ वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री च विनियोगः ।

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥२

काँ २० सूक्त ३० (३-४) वरुः सर्वहरिर्वा । हरिः (इन्द्रः) । जगती छन्दः उपर्युक्त कर्मषु च विनियोगः ।

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४

काँ २० सूक्त ३१ वरुः सर्वहरिर्वा । हरिः (इन्द्रः) । जगती च विनियोगः ।

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥१

काँ २० सूक्त ३६-९ भरद्वाजः । इन्द्रः त्रिष्टुप् च विनियोगः ।

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९

काँ ६ सक्त १३४ शुक्रः । वज्रः । १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप, ३ अनुष्टुप, ३ भुरिक त्रिपदा गायत्री ।

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अध॑रोऽध॑र॒ उत्त॑रेभ्यो गूढः पृ॑थि॒व्या मोत् सृ॑पत् । वज्रे॒णाव॑हतः शयाम् ॥२

यो जि॒नाति॒ तमन्विच्छ॒ यो जि॒नाति॒ तमिज्ज॑हि ।

जि॒नतो व॑ज्र॒ त्वं सीम॑न्तम॒न्वञ्च॒मनु॑ पातय ॥३

काँ ६ सूक्त-१३४ "अयं वज्र" यह सत्य का शस्त्र "ब्रह्मास्त्र" तृप्ति करे, यह इसके शत्रुभूत राष्ट्र संहारक, राष्ट्र द्रोही का नाश करे और शत्रु के जीवन का भी नाश करे । इन्द्र जैसे शत्रु का विनाश करता है, वैसे ही यह शत्रु गर्दनों को काट दे और धमनियों को काट दे । (२) उद्धत अध-पतन को प्राप्त हों, पृथिवी से नीचे पाताल कोल में पडे रहें, कभी भी ऊपर न आवें तथा ब्रह्मास्त्र (वज्र) से मरे पड़े रहें । (३) हे ब्रह्मास्त्र हे वज्र देव ! जो क्षति पहुंचाते हैं उनकों ढूंढ़ निकालिये, जो कष्ट पहुंचाते हैं, उनको मार डालो, आप क्लेश पहुंचाने वालों के सिरों को नीचा गिरा दो ।

"यद् अश्नामि" ६।१३५ [१ तथा ३] यद् गिरामि से अन्न को अभिमन्त्रित कर खाये । कौ. ६।१ ऋचा ३ "यतपिवामि से जल को अभिमन्त्रित कर पियें । यह व्रत आरम्भ से समाप्ति पर्यन्त करें । [कौ. ६।१]

काँ ६ सूक्त १३५ शुक्र ऋषिः । मन्त्रोक्त, वज्र देवते ।

यदु॒श्नामि॒ बलं॑ कुर्व॑ इ॒त्थं वज्र॒मा द॑दे । स्क॒न्धान॒मुष्य॑ शा॒तय॑न् वृ॒त्रस्ये॑व॒ शची॒पतिः ॥१

यत् पिबा॑मि॒ सं पिबामि समु॒द्र इ॑व संपि॒बः । प्रा॒णान॒मुष्य॑ सं॒पाय॒ सं पिबामो अ॒मुं व॒यम् ॥२

यद् गिरा॑मि॒ सं गिरामि समु॒द्र इ॑व संगि॒रः । प्रा॒णान॒मुष्य॑ सं॒गीर्य॒ सं गिरामो अ॒मुं व॒यम् ॥३

शत्रु सेना या शत्रु दूत अथवा शत्रु की घृणित क्रियाओं का लक्ष्य कर राज्य, भूमि, स्वत्व अधिकार प्राप्त हेतु जप उपस्थान करें ।

काँ ६ सूक्त १३५ १. जो मैं खाऊँ, उससे अपना बल सम्वर्द्धन करूं । इस प्रकार मैं ब्रह्मास्त्र, वज्र हाथ में ग्रहण करता हूं, और उस शत्रु के कन्धों को काटता हूँ । २. जो मैं पीता हूं, वह ठीक ही पीता हूं जैसे समुद्र पीता है । उस शत्रु के प्राणों को पीकर हम उसको पी जाते हैं । ३. जो मैं निगलता हूं उसे ठीक गले के नीचे उतारता हूं जैसे समुद्र निगल जाता है । उसके प्राणों को निगलकर हम उसके प्राणों को गले के नीचे उतार देते हैं ।

अथ श्री पाशुपदास्त्र मन्त्र (मेरु तन्त्रे)

अथातः संम्प्रवक्ष्यामिमन्त्रं पाशुपतास्त्रकम । तारः श्री पशुशब्दान्ते हुंफड् मन्त्रः षडक्षरः ।२८४। वामदेवो मुनिः पंक्तिच्छन्दः पशुपतिः सुरः । मन्त्रार्णैः षड्भिरङ्गानि हुं फडन्तैः सबिन्दुकैः ।२८५। जातियुक्तानिचाङ्गेषु तथाङ्गुष्ठादिषु क्रमात् । ध्यायेत्पशुपतिसम्यङ् मन्त्री चैकाग्रमानसः ।२८६। पञ्चवक्त्रं दशभुजं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम् । अग्नि ज्वालानि-भश्मश्रु मूर्द्धजं भीमदष्ट्रकम् ।२८७। खड्गंवाणानक्षसूत्रं शक्ति परशुमेव च । दधानं दक्षिणैर्हस्तैरूर्ध्वादिक्रमतः परं ।२८८। खेटचापौकुण्डिकां च त्रिशूलं ब्रह्मदण्डकं । नानाभरण सन्दीप्तं बालचन्द्रैलंकृतम ।२८९। मध्याह्नर्कसमंध्यात्वाशिव पीठे तथाचर्चयेत् । पद्ममष्ट दलं कृत्वा कर्णिका केशरान्वितम् ।२९०। चतुर्द्वार समायुक्तं चतुररस्त्रत्रयावृतम् । एवं पात्रे समालिख्य स्वर्ण रौप्यादिके शुभे ।२९१। पटे व फलझेवापिश्री कण्ठादि समुद्भवे । सर्वोपचारैराराध्ययजेदङ्गानि पूर्ववत् ।२९२। दलेषु मातृकाः पूज्या लोके शास्त्राणि तद्वहिः । पूजये द्विधिनानेनसर्वान्कामानवाप्नुयात् ।२९३। लक्षषड्कं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रिय । दशांशैर्जुहुयाद्द्रव्यैर्घृताक्तैः संस्कृतेऽनले तर्पणादि ततः कृत्वा प्रयोगार्होभवेन्मनुः ।२९४। अनेनमन्त्रितं तोय ग्रहभूतास्पदेक्षिपेत् । सद्यस्तन्मुञ्चति क्रन्दत्यहोममन्त्र प्रभावतः।२९५। अनेनमन्त्रितान्वाणान्विस्रजतेद्यु धि भूपतिः । जयेत्क्षणे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न सकलानरीन्नास्त्यत्रसंशयः । एवं मन्त्रास्तु संसिद्धो भुक्ति मुक्ति प्रदोभवेत् ।२९६। अथास्यभेदं वक्ष्यामि पश्वन्ते पति शब्द युक् । भवेदष्टाक्षरो मन्त्रो मुन्याद्यं पूर्ववन्मतम् ।२९७। (मन्त्रराजः—ॐ श्रींपशपतिः हुंफट् ॥ न्यासः—ॐॐ हृदयाय नमः ॐ पं शिरसे स्वाहा । ॐ शुं शिखायै वषट् । ॐ प कवचाय हुंम् । ॐ तिः नेत्रत्रयाय ब्रौषट् । ॐ हुं फट् अस्त्राय फट्)

हुं शक्तिः श्रीं च बीजं स्यात्तद्भिन्नैश्चषडक्षरैः । प्राणवाद्यैः षडङ्गानि प्रग्वद्ध्यात्वा च पूजवेत् ।२९८। सयोजातादिभिः पञ्च ब्रह्मभिः प्रेथमा वृत्तिः षडङ्काश्च द्वितीय, स्यात्तदस्त्राद्यैस्तृतीयिका ।२९९। उमादिभिश्चतुर्थीस्यात्स्वायुधैश्चापिपञ्चमी ॥ षष्ठीचेन्द्रादिभिः प्रोक्ता सप्तमी च तदायुधैः ।३००। अष्टलक्षपुरश्चर्यैः पायसेन हनेत्ततः । अन्यत्सर्व प्रयोगादि पूर्ववत्परि कीर्तितम् ।३०१। इति पाश्वपदास्त्र विधिः ।

कां० ६ सू० ६ अथर्वा ऋषिः, ब्रह्मणस्पतिः सोमः देवते, जप, तप ध्यानादि यज्ञ विघ्न शमनार्थ बछड़े की गौ के दूध में खीर बना अभिमन्त्रित कर होमकर शेष को खायें । इसी चरु से अयाज्याज्यजन दोष निवारणार्थ होम करें ।

यो३ऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१

यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति । वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥२

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः । अप तस्य बलं तिर मही व द्यौर्वधत्मना ॥३

तदनन्तर कां० १० सूक्त ५ के उद्वज्र का प्रयोग करें ।

मेखला धारण के उपरान्त—कां० १९ सूक्त ४१ तथा २०-७२ से देवराज इन्द्र तथा वज्र का आवाहन उपस्थान करने के पश्चात् कां० ६ सूक्त ६।१३५ से अन्नादि खायें, पियें और निगलें । तदुपरान्त ६।६ से पुनः देवराज इन्द्र तथा वज्र क, स्तवन करें । तदनन्तर कां० २ सुक्त १२ की विधि से इसे सम्पन्न (पूर्ण) करें । यह लघु प्रयोग है ।

इसी मेंआगे की विधि बढ़ाने से वृहद्वज्र प्रयोग होता है ।

कां० ६ सू० ६ "योऽस्मान्" हे दिव्यज्ञानाधीश्वरी ! जो एक अनन्य. ईश्वर को नहीं मानता, प्रभु-भक्ति भक्त द्रोही नास्तिक, असत्य वक्ता, अधर्मी है, जो अहंकार निमग्न है, ओ अकेला ही प्राणि वर्ग का अहित कर्त्ता है, जो दूसरों पर जैसे कैसे भी सम्भव हो, अधिकार जमाना चाहता है, जो दूसरों को परतन्त्र कर, शोषण एवं विनष्ट करना चाहता है, उस सर्वानिष्ट कर्त्ता शत्रु को सोमरस से यजनकर्त्ता मेरे लिये नष्ट कर दे । २. हे सोम ! जो दुराचारी, सद्धर्मपरायण सम सबको, आधीन करना चाहता है, इसके मुख पर (ब्रह्मास्त्र, वज्र, पाशुपदास्त्र) से प्रहार कर, जिससे वह चूर-चूर होकर ध्वंस हो जावे । ३. हे सोम ! जो स्वजाती०, और निकृष्टतम, हमें हठात् दास बनाना चाहता हैं; अथवा हमारा घात करता है, उसके बल को, अपने उपर्युक्त संहारकारी साधनों से, उसी प्रकार भगादे, जैसे महान् द्यौलोक, अपने प्रकाश से भूमण्डल को अन्धकार को दूर कर प्रकाशित करता है ।

कां० १९ सू० ६६ ब्रह्मा ऋषिः । जातवेदा सूर्यो वज्रश्च देवते अति जगति छन्दः असुरक्षयणे, आत्मरक्षणे स्वत्ययने, अभिवृद्धये, स्तवने, उपस्थाने होमे च विनियोगः ।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।

तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥१

कां० १९ सू० ६२ ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिः । देवता । विराट् पथ्यापक्तिः छन्दः । सर्व प्रियत्वे, स्तवने, उपस्थाने विनियोगः ।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० १९ सू२ ४१ ब्रह्मा ऋषिः । तपः । देवता । त्रिष्टुप् छन्द राष्ट्र बल, ओजाभिवृद्धये विनियोगः ।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदुस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१

इति राक्षघ्नोष्टि, कृत्यापरिहरण वज्र ब्रह्मास्त्रादि विधिः ।

मणिबन्धन—कर्मज व्याधियों-तथा समस्त आधियों-ईतिभीति, अद्भुद्दोष जनतारिष्टों से संरक्षणों में समर्थ भैषज्यकर्म, "जो पूर्वोल्लिखित हैं" के संदर्भ में प्रथक्-प्रथक् तत्तद्गणकर्मों के अन्तर्गत कर्मों में मणि बन्धन के उल्लेख आ चुके हैं तथापि मणिधारण के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है । अथर्ववेद शौनकीय शाखा सम्मत समस्त मणियाँ वनस्पति के मूल, पुष्प, त्वचा, पत्र से निर्मित, तथा बनस्पति के रसों के पुट से सम्पुटित-भेषज का महत्वपूर्ण सशास्त्र विशय है, अन्धविश्वास नहीं ।

अथर्ववेदोक्त मणियाँ—१ जङ्गिड़, २ शंखमणि, ३ प्रतिसरमणि, ४ अंजनमणि, ५ मणिबन्धय, ६ हरिण-मणि, ७दर्भमणि, ८औदुम्बरमणि, ९शनवरोमणि, १०अस्तृतमणि, ११त्रिसन्ध्यामणि, (दुपहरिया मोछंली) पिशाच नाशन में, १२ वरणमणि-बिल्व, १३ स्राक्त-तिलकमणि, १४ अभीवर्तमणि, १५ यवमणि, १६ अर्कमणि, १७ खादिरमणि, १८ फालमणि, १९ लोममणि, २० पाठामूल, २१ आयमगन, (पलाश), २२ तलाश-(पलाश) ।

तलाश (पलाश) मणि—अ० कां० ६।१५-३ "उत्तमो अस्योषधीनाम्" कौ० अ० ३।१९ सू० २६ दारिल-मत "तलाशा बल्ली" (पलाश) अम्बुके (आम्बु) केचित् जन्य-तलाशा सोमस्यानयो विकल्प । (ताड़वृक्ष) । अथर्व-संहिता के भाष्यकार—सायणाचार्य के मत से वृहत पलाश है पुष्टिकामी वृहत पलाशमणि को पूर्वोक्त विधि से उपर्युक्त सूक्त से अभिमन्त्रित कर बाँधें । वृक्षों से उत्पन्न द्रव्य-गोंद (लाक्षा लाख) को मणितुल्य धारण करें । इसी का सेवन करें । गर्भधारणकाल में पुंसवत में पलाश रसग्राह्य है वन्ध्या आदि दोष निवारण में (वृहत्पलाश) जो नैपाल में मिलता हैं इसके पत्ते का प्रयोग कहा है । ब्रह्मचारी को पलाश दण्ड धारण का उल्लेख्य होने से- पलाश का सर्वस्व कल्याण प्रद है । कां. १-३ उद्दालकः । वनस्पतिः । अनुष्टुप् । तलाशमणि धारणे विनियोगः । शेष आगे मणिबन्धन में है ।

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः । उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१
सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति । तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥२
यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः । तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥३

गत शेष वास्तु विधि—कां. ६।११६जाटिकायनः । विवस्वान् । जगतीछन्द, भेषज उत्पाटन गृह निर्माणादिपु भू खननादि अद्भुद्दर्शनादि जनित दूषण परिहरणे विनियोग; ।

यद् यामंचक्रुर्निखनन्तो अग्ने कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वतेराजनि तज्जुहोम्यथयज्ञियं मधुमदस्तु नोन्नम् ॥१

(३।१२) १-९ ब्रह्मा । शाला, वास्तोष्पतिः । त्रिष्टुप् २ विराड् जगती । ३ वृहती, ६ शाक्वरी गर्भा जगती, ७ आर्षी अनुष्टुप्, ८ भुरिक्, ९ अनुष्टुप् । पूर्वक्तकर्मषु विनियोगः ।

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वां शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२
धरुण्यऽसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥३
इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्रा मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥४
मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५
ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥६
एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह । एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥७
पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥८
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९

कां० ३ सू० १२ "इहैवध्रुवाम्"—मैं इस श्रेष्ठ भूमि पर दृढ़शाला निर्माण करता हूँ । यह हमारे कल्याणार्थ घृतादि उपभोग्य पदार्थों से परिपूर्ण सुस्थिर रहे । हे गृह ! हम किसी भी भांति नष्ट, भ्रष्ट न हों, सब बीर, तेरे चारों ओर उत्तम पराक्रमी होकर घूमते फिरते रहें । २–हे शाले ! तू घोड़ोंवाली, गौओं वाली, प्रियवादिनी हो, यहीं स्थिर रह । तथा अन्न घी, दूधवाली होकर उच्चस्तरीय सौभाग्ययुक्त हो, गौरवान्वित बनकर खड़ी रह । ३–हे शाले ! बड़ी छतवाली, पवित्र धान्यों वाली सभी का भाण्डार धारण करने वाली तू है । तेरे अन्दर बछड़े और बालकों का आगमन रहे, सायंकाल में उछलती हुई गौयें आती रहें । ४–इस शाला का सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति जानता हुआ निर्माण करे । मरुद्गण जल और घी से परिपूर्ण रक्खें, षडैश्वर्यवान राजा हमारा कृषि क्षेत्र समृद्ध सम्पन्न करे । हे सम्मान-रक्षक ! तू अन्दर आश्रय देने योग्य, सुखदायिनी, दिव्यप्रकाशमान् देवों द्वारा तू पूर्व निर्मित है । घास से छायी हुई शुद्ध मन वाली हमें वीरों से युक्त धन दे । ६–हे वांस ! तू स्वाभाविक, अपने सीधेपन से, अपने आधार पर चढ़ । उग्र बनकर प्रकाशित होकर, शत्रुओं को हटा दे । तेरे घरों के आश्रय से; रहने वाले हिंसक न हों । हे शाले ! हम सब वीरों से युक्त होकर, सौ वर्ष जीवित रहें । ७–इस शाला में कुमार आयें, युवा आयें, चलने वालों के साथ बछड़ा भी आयें । इसके पास रस से परिपूर्ण घट, दही के कलशों के साथ आवे । ८–इस परिपूर्ण घट, अमृत से पूर्ण, घी की धारा, विधिवत भरकर प्रवेश कर । पीने वालों को अमृत से, अच्छी प्रकार भर दे; क्योंकि यज्ञ और इनका दान ही इसका रक्षक है । ९–स्वय रोगरहित; रोगनाशक जल मैं भरकर लाता हूँ । अमृत तुल्य आनन्ददायिनी, अग्नि के साथ, घरों में बैठता हूँ ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ७ सू० ४१ । १-२ प्रस्कन्धः । सरस्वान् । १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप् ।

यस्य॑ व्र॒तं प॒शवो॒ यन्ति॒ सर्वे॒ यस्य॑ व्र॒त उ॑प॒तिष्ठ॑न्त॒ आप॑: ।
यस्य॑ व्र॒ते पु॑ष्टप॒ति॒र्निवि॑ष्ट॒स्तं सर॑स्वन्त॒मव॑से हवामहे ॥१
आ प्र॒त्यञ्चं॑ दा॒शुषे॑ दा॒श्वंसं॒ सर॑स्वन्तं पु॒ष्टप॑तिं रयि॒ष्ठाम् ।
रा॒यस्पोषं॑ श्रव॒स्युं वसा॑ना इ॒ह हु॑वेम॒ सद॑नं रयी॒णाम् ॥२

कां० ७।४०।४१ "यस्यव्रतम्"—जिसके अनुशासन में, सभी पशु-पक्षि रहते हैं जिसके नियम से जल प्रवाहित होते हैं, जिसके नियम से ही सभी के भरण-पोषण होते हैं। हम अपनी रक्षार्थ उस अमृतदाता प्रभु की वन्दना करते हैं। (२) जो प्रत्येक दाता को विपुल धन देता है, जिसके आश्रय से सब धन रहते हैं, जो सबका पोषण कर्त्ता है, जो सबको सुशोभित करता है, जो सबके ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, जिसके पास विपुल अन्न भण्डार है, हम उन प्रभु की वन्दना करते हैं। हम सब इस (इन) स्थानों के निवासकर्त्तागण सुरक्षित हों।

"अतिधन्धन" [७।४२ आदि-आदि ऋचाओं से नवगृह निर्माण से पूर्व भूमि के नीचे उपरोक्त 'शल्यशोधन' कर्म में हड्डी, भस्म, कपाल लोहा, भूसा, आदि से उत्पन्न अचिन्त्य भावी अनिष्ट के निवारणार्थ गृह निर्माण स्थान में सूर्य श्येनदेवता' के निमित्त होम करे। कौ० (५।७) इससे चोर आदि का चुराकर लाया गड़ा धन, अथवा वसु आदि पितरों का हाथ से लाया गड़ा धन (लुप्त) या सुप्त प्रत धन, भी प्राप्त होता है। तथा उस धन के चोरी आदि का प्राप्त; कर्त्ता को सारांश चोरीकर गाड़ा किसी ने, मिलजाय किसी अन्य को जिसकी चोरी हुई थी उसका शापादिजनित अनिष्टकारी फल न हो उसकी भी शान्ति होती है।

कां० ७ सू० ४२ । १-२ प्रस्कण्वः । श्येनः । १ जगती, २ त्रिष्टुप् उपर्युक्तकर्मसु विनियोगः ।

अति॒ धन्वा॒न्यत्य॒पस्त॑तर्द श्ये॒नो नृ॒चक्षा॑ अवसान॒दर्शः ।
तर॒न् विश्वा॒न्यव॑रा॒ रजां॒सीन्द्रे॑ण॒ सख्या॑ शि॒व आ ज॑गम्यात् ॥१
श्ये॒नो नृ॒चक्षा॑ दि॒व्यः सु॑प॒र्णः स॒हस्र॑पाच्छ॒तयो॑नि॒र्वयो॒धाः ।
स नो॒ नि य॑च्छा॒द् वसु॒ यत् परा॑भृतम॒स्माक॑मस्तु पि॒तृषु॑ स्व॒धाव॑त् ॥२

कां ७ सूक्त ४२ अति "धन्वनः" मनुष्यों का निरीक्षक देव, अन्तिम अवस्था को समझने वाला सभी प्राणियों को यथावत जानने वाला, सूर्यवत प्रकाश स्वरूप प्रभु, रेतीले मरु प्रदेशों के ऊपर भी अत्यन्त जल वृष्टि करता है, तथा सब अधोलोकों के प्रति अपने सखा इन्द्र के साथ कल्याण रूप होकर, सभी को पार करता हुआ प्राप्त होता हैं। २. वे मनुष्यों के निरीक्षक देव, द्यु लोक में रहने वाले, उत्तम किरणों वासे, महस्रों पैरों से सर्वत्र संचार करने वाले सैकड़ों प्रकार की उत्पादक शक्तियों से सम्पन्न, अन्नदाता सूर्य सदृश देदीप्यमान, जो ओरों से प्राप्त होने वाला धन है, उस धन धन को वे प्रभु हमें प्रदान करें। ३. यहाँ (इन्द्र) जीवात्मा है, उनके मित्र परमात्मा हैं, वे उपासकों का समस्त कल्याणकारी धन, पितरों को उपभोग्य पदार्थ स्वतः ही प्रदान करते हैं।

अथर्व परिशिष्ट में निर्दिष्ट (३४।५) द्वितीय वास्तुगण अ० वे० (१।३१-१) (३।१२-१) (५।६-१ से ५), (५।१०-१७) (६-१०-१) (७।४१-१) (७।६०-) (१२-१-१) (२।२-) (६।३-१) हैं। परन्तु कौ० सू० कां० ८।२३ में (३।१२-१) (६।७३-१) (६।६३-१) (१२।१-१) हैं। इन निम्म सूक्तों के अतिरिक्त अन्य पूर्व लिखे जा चुके हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ६ सू० १० "पृथिव्यै श्रोत्राय" शान्तातिः । १ पृथिवी, श्रोत्रं, वनस्पतिः, अग्निः । २ प्राणः, अन्तरिक्षं, वयः, वायुः ३ द्यौः, चक्षुः; नक्षत्राणि, सूर्यः, द्वैपदम्, १ साम्नी त्रिष्टुप्, २ प्राजापत्या वृहती ३ साम्नी वृहती। मन्त्र अध्याय २ में पढ़ें ।

'एहयातु'—[६।७३] आदि वास्तुगण से गणदेवताओं का सामनस्यार्थ होम करे ।

गणदेवता—[अग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रौ मरुद्भिर्वरुणः आदित्यै र्वृहस्पति र्विश्वेदेवैः । इति तै० सं० ६।२।२।१ से अष्टवसु-गणदेवताओं का निर्देश है । 'इहैवास्त' [६।७३।३] ऋचा से जलधार [६।७३] से प्रारम्भ करें और इस तीसरी [६।७३-३] ऋचा पर पूर्ण करे। यह प्रवेशकाल में शाला की परिक्रमा के समय जलधार से प्रयोजन है।

कां ६ सूक्त ७३ सांमनस्यम्, वरुण सोमाग्नि वृसस्पति वसवः, ३ वास्तोष्पतिः । १, ३ भुरिक् २ त्रिष्टुप् ।

एहयातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥१
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२
इहैव स्त मापं याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥३

कां.६ सू.७३ "सहयातु" १. वरुण, सोम, अग्नि, वृहस्पति, सभी देव एक स्थान पर एकत्रित हों पधारें। पशुओं के साथ सुशोभित हों। उत्तम कुलोत्पन्न पुरुषों ! सब एक मन वाले होकर, इस शूर वीर और प्रेरणा के स्रोत की शोभा बढ़ाओ। २. जो बल तुम्हारे हृदयों में है, जो संकल्प तुम्हारे मनों में हुआ हैं, उनको अन्न और घृत से मैं जोड़ देता हूं। उत्तम वंशोद्भव मनीषियों, मुझ नायक पर आपकी कृपा रहे। ३. सभी लोग यहीं पर एकत्रित रहो इधर-उधर न भटको, पूषा देव भगोड़ों का मार्ग अवरुद्ध कर दें। वास्तु देव उनको अनुकूलता से एकत्रित सभी कार्यों में रक्खें। हे श्रेष्ठ कुलोत्पन्न धीवानों ! आपकी कृपा निरन्तर मुझ पर रहे।

ये दोनों वास्तुगण ही वास्तु शान्तिगण कहे गये हैं पूर्व वास्तु गण कौशिक सूत्रोक्त हैं, द्वितीय वास्तुगण, अथर्व परिशिष्ट निर्दिष्ट है।

वास्तुशान्तिगण—नवनिर्माण मे "यजूंषियज्ञे" (५।२६) ऋचा १२ ब्रह्मा । ऋषिः । वास्तोऽपतिः १ अग्निः २ सविता, ३, ११, इन्द्र, ४ निषिद्, ५ मरुतः, ६ अदितिः, ७ विष्णुः, ८ त्वष्टा, ९ भगः, १० सोमः १२ अश्विनौ, वृहस्पतिः । देवते, द्विपदार्षी १, ५, उष्णिक् २, ४, ६, ७, ८, १०, ११, द्विपदा प्राजापात्या वृहती । ३ त्रिपदा विराड् गायत्रीः ९ त्रिपदापिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् । (१-११ एकावसाना) १२ परातिशाक्वरी चतुष्पदा गायत्री । छन्दांसि नवशालायां धृत होमे प्रोक्षणे च विनियोगः । मन्त्र अध्याय २ आज्यतन्त्र में पढ़ें ।

"दोषोगाय" ६।१ अथर्वा । सविता । उष्णिक्, १ त्रिपदा पिपीलिकमध्यासाम्नी जगती । २,३ पिपीलिक-मध्यापुर उष्णिक् । छन्दासि शालायां होमे विनियोगः । मन्त्र वृहच्छान्तिगण अध्याय ३ में देखें ।

दूर देशान्तर के चिरवास से ग्राम या घर पुरातन के प्रवेशकाल में, अथवा जीर्ण गृह प्रवेशकाल में भी "ऊर्जा बिभ्रद्" (७।६२) सूक्त प्रथम ६ ऋचाओं को जपता हुआ समिधायें ले, घर में आ; वाम हाथ में उन्हें धारण करे और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीधे (दक्षिण) हाथ से छपरी का तृणों का स्पर्श करता हुआ ६ ऋचाओं को जपता हुआ घर में प्रवेश कर पुन; ६ ऋचाओं से आहिताग्नि (गृहाग्नि) में चढ़ायें। (कौ० ३।६) होम करे, इसमें अग्नि स्थापन विधि आवश्यक नहीं है। वर्तमान सभी को पारस्परिक प्रीति, पुष्टि, स्वास्थ्य, सौभाग्य आदि के निमित्त भी इन्हो उपरोक्त ६ ऋचाओं से होम करे, ६ समिधा दान करे। (कौ० ५।६)।

"ऊर्जंबिभ्रत्" ७।६० ऋचा १-७ ब्रह्मा, गृहाः। वास्तोष्पति। अनुष्टुप् १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्। छन्दासि शाला होमे विनियोग।

ऊर्जं॒ बिभ्र॑द् वसु॒वनिः सु॒मे॒धा अघो॑रेण॒ चक्षु॑षा मि॒त्रिये॑ण।

गृहानै॑मि सु॒मना॒ वन्द॑माना॒ो रम॑ध्वं॒ मा बि॑भीत॒ मत् ॥१

इ॒मे गृ॒हा म॑यो॒भुव॒ ऊर्ज॑स्वन्तः पय॑स्वन्तः। पू॒र्णा वा॒मेन॒ तिष्ठ॑न्त॒स्ते नो॑ जान॒न्त्वायतः ॥२

येषा॑म॒ध्येति॑ प्र॒वस॒न् येषु॑ सौमन॒सो ब॒हुः। गृ॒हानुप॑ ह्वयामहे॒ ते नो॑ जानन्त्वाय॒तः ॥३

उप॑हूता॒ भूरि॑धना॒ः सखा॑यः स्वा॒दुस॑ंमुदः। अ॒क्षु॒ध्या अ॑तृ॒ष्या स्त॒ गृह॒ा मास्मद् बि॑भीतन ॥४

उप॑हूता इ॒ह गाव॒ उप॑हूता अ॒जाव॑यः। अथो॒ अन्न॑स्य कीलाल॒ उप॑हूतो गृ॒हेषु॑ नः ॥५

सू॒नृता॑वन्तः सु॒भगा॒ इरा॑वन्तो हसामु॒दाः। अ॒तृ॒ष्या अ॑क्षु॒ध्या स्त॒ गृह॒ा मास्मद् बि॑भीतन ॥६

इ॒हैव स्त॒ मानु॑ गात॒ विश्वा॑ रू॒पाणि पुष्यत। ऐष्या॑मि भ॒द्रेणा॑ स॒ह भूया॑सो भवता॒ मया॑ ॥७

कां ७ सू० ६० "ऊर्जा विभ्रत्" १. मैं स्वयं श्रेष्ठ उपभोग्य पदार्थो, अन्न, विपुल धन श्रेष्ठ बुद्धि और मित्र की कृपा दृष्टि धारण कर, सद्विचारों के साथ, सभी बन्दनीयों की अभ्यर्थना कर, गृह में प्रवेश करता हूं। सभी प्राणी इसमें सकुशल वास करें और यहाँ मेरे से किसी भी भांति भयभीत न हो। २. ये हमारे घर, सुखद, वलप्रद, धन धान्य से परिपूर्ण, और दूध से युक्त हैं। ये सुख साधनों से सम्पन्न हैं। वे हम आगन्तुक हम सबको जानें। ३. इन घरों में रहता हुआ जो इनका सुख अनुभव करता है, ऐसे सुखद गृहों में हम इष्ट मित्रों, अतिथियों को आमन्त्रित करते हैं। वे हम आगन्तुकों को समझें। ४. अत्यन्त धनी, आनन्द वृत्ति वाले, सरल, मधुर स्वभाव वाले, बहुत प्रिय जन आमन्त्रित किये हैं। हे घरों! उन्हें यथेच्छ उपभोग्य सुख प्राप्त हो कोई भूखा प्यासा न रहे, सब भोगों की विपुलता रहे, हमसे भयभीत न हो। ५. हमारे घरों में विपुल गौयें, बकरियां, भेड़ें रहें, सभी प्रकार का सत्कर्मोपार्जित अन्न भक्ष रहें किसी भी प्रकार न्यूनता न रहे। ६. घर घर में सत्य निश्चता, सौभाग्यता, उपभोग्य पदार्थ, कुशल क्षेम, खाद्य, लेह्य, चोस्य पेयों की प्रचुरता रहे। ७. घर सुदृढ़, सुस्थिर, विविध रूप के प्राणियों के पोषण कर्त्ता, सब को कल्याण और सुखदायी, हमारी अभिवृद्धि में गहन अभिरुचिवान हो. इस सदाशय से प्रवेश करता हूं, तुम मेरे साथ अनन्त हो जाओ।

"यौते मातो" (८।५) तथा **"सत्यं वृहत्"** (१२।१) से वास्तुगण में वर्णित वस्तु कर्म नव निर्माण, गृह प्रवेश, ग्राम, पुर, नगर निर्माण आदि में शान्ति होम करे। (कौ० ५।७) अध्याय ३ में देखें।

"यौतेमता" ८।६ वृहच्छान्तिगण अध्याय ३ में देखें।

"वास्तुशान्तिगण"—पुरातन गृह, नगर, ग्राम, पत्तन, पर्णशाला में पुनः प्रवेश अथवा दीर्घकालीन विदेश यात्रा से आगमन कालीन प्रवेश में होम करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"वृहस्पतिर्नः" ७।५३ अङ्गिरा। इन्द्रा वृहस्पति। देवता, त्रिष्टुप् छन्द उपर्युक्त वास्तुहोमे विनियोगः।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥१

"संज्ञानं" ७।५४ अथर्वा। सांमनस्यं, अश्विनौ देवते। ककुम्मत्यनुष्टुप्, २ जगती छन्दांसि, सामनस्ये, वास्तु होमे विनियोग। मन्त्र वृहच्छान्तिदण अध्याय ३ में पढ़ें।

कां ७ सूक्त ५२ "संज्ञानं नः" १. हे अग्निदेवो ! हमें स्वजनों के साथ उत्तम ज्ञान प्राप्त हो, तथा निम्न श्रेणी के लोगों के साथ भी हमें उत्तम ज्ञान प्राप्त हो। इस संसार में, तुम दोनों हम सब में उत्तम ज्ञान स्थापित करो। २. हम मन से उत्तम ज्ञान प्राप्त करें। ज्ञान प्राप्त कर उत्तम रीति से एक मत से रहें। परस्पर विरोध न करें। हम दिव्य मन वाले हों। बहुतों का बध होने के पश्चात् दुःख के शब्द न उत्पन्न हों। आगे आने वाले समय में इन्द्र का वाण हम पर न गिरे।

"इन्द्रा वरुणा" (७।६०) "वृहस्पतिर्नः" (६।५३) "उभा जिग्यथुः" (७।४५) से अपने पुरातन ग्राम या घर के प्रवेश कर्म में होमादि के साथ भोग्य पदार्थों से आहुति दे प्रसाद सभी गोष्ठी के रूप में लें। (वै० ४।१) (कौ० ५।६)।

"इन्द्रावरुणाः" ७।६० कौरुपथिः। ऋषिः। इन्द्रावरुणौ देवते। जगती २ त्रिष्टुप् छन्दांसि जीर्ण गृह प्रवेशे वास्तु होमे च विनियोगः।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥१
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥२

कां ७ सूक्त ५८ "इन्द्रावरुणा सुतया" उत्तम तपोधन, नियम, अनुशासनशील इन्द्र और वरुणो ! इस निचोड़े हुए (सारभूत) कल्याणप्रद, सोमरस का पान करो। तुम दोनों का अहिंसक रथ, देव प्राप्ति और रक्षा का उद्घोषण करता हुआ आवे। २. वलिष्ठ इन्द्र और वरुण, अत्यन्त स्वादु, बल-प्रद, सोमरस की वृष्टि करो। यह तुम दोनों का अन्न भली प्रकार सिद्ध किया गया है, इस आसन पर बैठकर इस अन्न का रसाश्वादन करो। इस प्रकार देवों का वर्णन अपने जीवन में ढालने से वेदज्ञान अपने जीवन में उतरता है, और जो श्रेष्ठ अवस्था मनुष्य को प्राप्त करनी होती है, वह प्राप्त हो सकती है।

"बाजसनेयश्रुति" (श० ब्रा० २।४, २।२०) **वाम्युवयोरर्थाय इदम् अन्धः अन्नं सोम लक्षणं परिषिक्तम्।**

इनसे होम करे और यथा स्थान, अन्न, घृत, दुग्ध, दधि, मधु, मिष्ठान, वस्त्र आभूषण, लक्ष्मी, गौ, अश्व, आदि एवं पूज्य इष्ट की प्रवेश काल में स्थापना करें।

मनसेचेनसे धिये—(६।४१) इन तीन ऋचाओं से गोदान (मुण्डन) कर्म में इन्द्र जौ से युक्त मिष्ठान्न-शान्ति जल प्रोक्षणान्त अभिमन्त्रित कर ब्रह्मचारी कुमार की दीर्घायुः के लिए खिलायें। साथ में "यथा द्यौः" (२।१५) भी है। कौ० ७।५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ६ सू. ४१ १-३ ब्रह्मा । १ चन्द्रमाः, २ सरस्वती, ३ दैव्या ऋषयः । १ भुरिक्, २ अनुष्टुप् ३ त्रिष्टुप् ।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये । मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥१

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे । सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥२

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वऽस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥३

कां० ६ सू० ४१ "मनसेचेतसे"—मन, चित्त, बुद्धि संकल्प, शक्ति, स्मृति, मति, श्रवण, और दर्शनमूलशक्ति की प्राप्ति व वृद्धि के लिये हम आत्मिक [हवि]से यज्ञ करते हैं। २ अपान, व्यान, विविध भांति से धारण किये जाने वाले प्राण और अत्यन्त ओजस्विनी विद्यादेवी की वृद्धि के लिये हम [आत्मिक] हवि से यज्ञ करते हैं । ३. जो शरीर के रक्षक हैं, तथा जो हमारे ही शरीर में उत्पन्न हुये हैं, वे दिव्य ऋषिगण हमारा परित्याग न करें । ये अमर देवों के अंशभूत, मरणधर्मी अपने को मान बैठने वाले जीवात्मा से; मिलकर प्रेम से रहें, और अत्युत्कृष्ट आयु, दीर्घ जीवन [संजीवनार्थं] धारण करायें । इस प्रकार उठने के साथ शय्या पर प्रातः और साय सोते समय अपने वहते स्वर के हाथ से ३ वार शरीर का अभिमर्शन कर अनुमन्त्रित करें ।

"अबज्या" [६।४२] की तीन ऋचाओं से स्त्री-पुरुष के पारस्परिक क्रोध शान्ति के लिये रुष्ट पुरुष या स्त्री जो भी हो—को देखकर पत्थर [ढेला] अभिमन्त्रित कर हाथ में लें । "सखाया विव" ऋचा २ को जपे पत्थर या ढेले को पृथ्वी पर फेंक दे । "अभितिष्ठामि" तीसरी ऋचा को जपकर उस पत्थर या ढेले पर थूक दे । और कुपित पुरुष या स्त्री की छाया में इन्हीं तीन ऋचाओं को जपकर धनुष को अभिमन्त्रित कर ताने सीधा करे । कौ० ४।१२ ।

कां० ६ सू० ४२ [१-३] भृग्वाङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः) । मन्युः । १-२ भुरिक्, ३ अनुष्टुप् ।

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः । यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥१

सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते । अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥२

अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च । यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३

यज्ञादि दीक्षा में यजमानः के क्रोध की शान्ति में भी इसे जपें [वै० ३।२], "अय दर्भऽ" [६।४३] से सभी प्रकार के क्रोध के शमनार्थ दाभ की जड़ को पूर्व दिन निमन्त्रित कर औषधियों की भांति दूसरे दिन जपकर खोदें । अभिमन्त्रित कर बांधें । कौ० ४।१२ ।

कां० सू० ४२ "अवज्यामिव" यह क्रोध मनों को फाड़कर, परस्पर विरोध उत्पन्नकर विद्वेष बढ़ाता है । इसके लिये दृढ़ता से मन को समझाना अनिवार्य है । १—धनुष से डोरी को उतारने के समान, तेरे हृदय से क्रोध को हटाता हू । जिससे एक से मन वाले होकर, हम परस्पर मिलकर मित्र के तूल्य रहें । २—हम द्रोनों मित्र बनकर रहें, इस कारण मैं तेरे क्रोध को हटाता हूँ । जो बड़ा भयंकर क्रोध है, तेरे उस क्रोध को पत्थर के नीचे दबा देते हैं । ३—तेरे क्रोध को एड़ी से कुचलकर, पैर की ठोकर से दवाता हूँ । जिससे तू मेरे चित्त के अनुकूल होकर रहे, और परतन्त्रता की बात न कह सके ।

१-३ भृग्वङ्गिराः [परस्परचित्तैकीकरणकामः] । क्रोध शान्ति देवता मन्युशमनम् अनुष्टुप् । देवत छन्द, क्रोध निवारणे विनियोगः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च। मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥१
अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति। दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥२
वि ते हनव्यांऽशरणिं वि ते मुख्यां नयामसि। यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३

कां० ६ सू० ४३ "अयं दर्भ" इस सूक्त में दर्भ द्वारा क्रोधोपशमन का प्राविधान है। परन्तु वैद्यक ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं उपलब्ध होता है। अर्थ १—यह विधिवत पूजा कर लाया गया दर्भ, अपने लिये और अन्य सभी के लिये भी क्रोध को हटाने वाला है। यह अकारण ही क्रोध करने वाले के क्रोध को दूर करता हैं, और क्रोधी को शान्त स्वभाव बनाने वाला है। २—यह अनेकों मूलों वाला, भूमि में उगा हुआ दर्भ, समुद्र [जल] के तीरों पर होता है। वह निर्विद क्रोध शमन करता है। ३—हे क्रोधित जीव ! तेरी हनु, [ठोड़ी] के आश्रय से रहने वाले क्रोध का चिह्न हम दूर करते हैं। ते' मुख में जो क्रोध है, उसे भी दूर करते हैं जिससे तू मेरे चित्त के अनुकूल रहे, और परवश होकर भी क्रोधी भाषण न करे।

अथ राजयक्ष्मादि असाध्य, महाव्याधि भैषज्य

कं० ३२ सू० ११-यः कोकसा इति पिशीलवीणातुन्त्री वध्नाति ॥११॥ तन्त्र्या क्षितिकां ॥१२॥ वीरिणवध्रींस्वियम्लाने त्रिः समस्य ॥१३॥

कां० (७।७६-३) क्षितिकांतयैव तंन्त्र्या बध्नातिक्षिति कारभस्योपरि तृण खंड रोह्यादनार्थः ब्रधः वध्नाति। दारिल—तृचेन वीणातन्त्रीखण्डं संम्पात्यभिमन्त्र्य बध्नाति ॥११॥

दारिल १२ :—वध्रीं (वंध्रीः) (वधं) (ब्रधः) वध्नाति। वाद्य वीणा तस्यां गस्वरं विध्णोवाद्य वीणा कंठशिचंडं वीणातन्त्रीं वद्धासम्पात्याभिमन्त्र्य बधनाति।

कुष्ठ शमन

कां० २६ सू० २२-२४ के अनुसार श्वेत कुष्ठ को शुष्क गोमय से घिसे खून झलक आये तब (अ०वे०कां १। २३।१) से भृङ्गराज दोनों हल्दी व दारु हल्दी, इन्द्रावारुणी, नीलिका पुष्पा ये पाँचों पीसकर अभिमन्त्रित कर लेप करे। (१।२४-१) अ०वे० कां० (४।१५-१) (७।१८-१) इनसे दोनों से अभिमन्त्रित कर लेप करे। श्वेत, पलित कुष्ठ दुर्भिन्न-कुष्ठ नष्ट होता है। उपर्युक्त राजयक्ष्मा आदि के निवारणार्थ कौ० सू० कं० २६ सू० ४० के अनुसार अ०वे० कां० (८।७) से दशशान्त वृक्षों के शाकल (टुकड़े) काँ० (२।९) तक्मनाशनगण (१।१२,२५) (२।८,६,१०) (३।७) (४।२८) (५।४,६,२२) (६।२०,२६,४२,२५;९१,१२७) (७।११६) (५।४;१०) दशशान्त वृक्ष (पलाश, उदुम्बर, जामुन, काम्पील, श्रक वध, शिरीष तिलक, विल्व, अर्जुन, कुटक, वेष, गलावल, वेतस, शाल्मलि धायटी, मदन, धत्तूरा, अरणि, मंतक (अपटा) तिनिश, देवदारु, इन शान्तवृक्षों की जड़ वक्कल, पत्र. पुष्प, आदि को इनकी बकरे की नाभि के रोमों सहित लाक्षा से वेष्टित कर बाँधे। इनको (शान्तिजल) में डालकर व्याधित व्यक्ति के शरीर को छींटे दें। इनसे तप्त जल पान कराये स्नान करे इन्हीं से हवन कराये। गोमूत्र पान कराये, बकरी के व अश्व के मूत्र की मालिश करे इन्हें अभिमन्त्रित करना अनिवार्य है। क्रमि. कण्डू. त्वचारोग. काश कुष्ठादि श्वास. मलबन्ध. दोषोदर. अर्श. तथा विषदोष सभी प्रकार के १८ प्रकार के कुष्ठादि, राजयक्ष्मादिपूग ज़्वर आदि सर्व रोगों की लाभप्रद भेषज है। दमा में पिप्पली व कालीमिर्च, मधु के साथ अभिमन्त्रित कर सेवन करें। उपरोक्त सूक्तों से सभी कर्म का विधान है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजयक्ष्मादि की वैदिक शान्ति विधि

"जरायुज" कां १ सू० १२ तथा कौशिक सूत्र (४।२) वात. पित्त. श्लेष्म जनित यक्ष्मादि रोगों के उपशमनार्थ रोगी की क्षमतानुसार-मेद-मधु घी और तैल-अभिमन्त्रित कर मर्दन करायें पिलायें। "मुञ्चशीर्षत्तयाः" इस कां १ सू १२ की ऋजा ३ से शान्ति औषधियाँ घट में डाले अभिमन्त्रिक कर रोगी को छींटे दे (कौ०सू० ४.३) (सूर्य का तेज तीन प्रकार से वायु. अग्नि. चन्द्रमा में विभक्त है, ये ही वात. पित्त. श्लेष्म लक्षण वाले दोषों के जनक हैं। अतः सूर्य प्रार्थना–त्रिदोषजन्य रोगों की मूल की निवृत्ति का साधन है मनुस्मृति ३.७६

"अग्नौप्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिः ॥

कां. १ सू. १२ जरायुज १-४ भृग्वाङ्गराः । यक्ष्मनाशनम् । जगती (त्रिष्टुप्) ४ अनुष्टुप् छन्द सूक्त पृ. ५१२ पर पढ़ें।

कां ३ सू ३१ ब्रह्मा, पाप्महा; १ अग्निः; २ शक्रः. ३ पशवः; ४ द्यावापृथिवी. ६ त्वष्टा ६ अग्निः; इन्द्रः । ७ देवाः, सूर्यः; ८-१० आयुः, ११ पर्जन्यः । अनुष्टुप्, ४ भुरिक् ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः । राजयक्ष्मादि व्याधि मूल-पाप निवारणे मार्जने स्नाने होमों भैषज्ये विनियोगः ।

वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१
व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥२
वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्या॑ऽपस्तृष्णयासरन् । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥३
वी३मे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥४
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥५
अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥६
प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥७
आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥८
प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥९
उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१०
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥११

"नडमारोह" कां० १२ सू० २ "मानव, पशु, गौ के क्षय रोग, मृत्यु रोग १०१; पापजनित, क्रोध, द्वेष, व्याधियों को गार्हपत्य अग्नि, ब्रह्मास्त्र बज्र से शमन करें। काली भेंड का सहवास, गन्ध, दुग्ध, शीषा, नड, ये ऋचा १२।२–१९ "सीसे मृड्ढ्व" "सीसेमत्तं" १२।२–२० रोग निवारण में सहायक है। पर्वतों का वास, जल-वायु, 'नारङ्गी' के रङ्ग का फल, पूर्ण स्वास्थ्य, पूर्ण आयुप्रद है। कां० १८।२।३३ "अपग्रहश्नभृताय" भी इसी में है। विश्वदेव की पूजा, यजन, सूर्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपस्थान, नग्न शरीर से सूर्योदय के समय किरणों से स्नान उपर्युक्त हैं। आसन लाभकारी है। ☸ 'जीवानामायुः' ऋचा ४५ से मरे हुए वे पितृगण जो सुकृत लोकों से वञ्चित हैं, इसके द्वारा सुकृत लोक गमन करें। अध्याय २ नान्दीश्राद्ध में पढ़ें।

"प्रत्यञ्चमर्कम्" ऋचा ५५ से अस्तगत सूर्य की अर्चना करें। प्रेत व्याधि तथा अन्य उपरोक्त ऐसी व्याधियों में तिल के फूल-फली तिल, तिल की समिधा, मूँज के सरकण्डों की समिधा, काली भेड़ के दूध में बनी उड़द की खीर या उड़द के व्यञ्जन, भेड़ के घी की आहुतियाँ सहवासादि अति लाभप्रद हैं।

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते।

उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥३३

कां० १२ सू० २ ऋ० ५५ भृगुः। ऋषिः। अग्निः। मन्त्रोक्ताः, २१-३३ मृत्युः देवते त्रिष्टुप्, २, ५, १२, २०, ३४, ३६, ३८, ४१, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुप् (१६ ककुम्मतीपरा बृहती, १८ निचृत्, ४० पुरस्तात्ककुम्मती)। ३ आस्तारपंक्ति, ६ भुरिक आर्षीपंक्तिः, ७, ४५ जगती, ८, ४८; ४९ भुरिग् ९अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पंक्तिः, ३७ पुरस्ताद्बृहती, ४२ विपरीत एकावसानाभुरिगार्ची गायत्री ४४ एका० द्विप० आर्चीबृहती, ४६ एका० द्विप० साम्नी त्रिष्टुप्, ४७ पञ्चपदाबार्हत वैराजगर्भा जगती, ५० उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ५२ पुरस्ताद्विराड् बृहती ५५ बृहती गर्भा छन्दांसि, गो० पुरुषराजयक्ष्मादि १०१ अपमृत्यु, दुःख, दौर्भाग्य, दुर्गति, दारिद्र्यादि नाशने भैषज्ये, स्तवनं, होमे च विनियोगः।

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि।

यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥१

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च। यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥२

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि।

यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥३

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः।

तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥४

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते। सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद् दीपयामसि ॥५

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने।

पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥६

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।

तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥८
क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥९
क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं१ हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥१०
समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥११
देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् । मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥१२
अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१३
संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः । ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥१४
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु । क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥१५
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा । निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥१६
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्याऽउत । तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥१७
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः । अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे । १८
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् । अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥१९
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे । अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥२०
परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥२१
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२२
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri .

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥२५
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६
उत् तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२७
वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥२८
उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥२९
मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥३०
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥३१
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥३२
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥३३
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा । प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥३४
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या । अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥३५
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते । सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥३६
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे । छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ॥३७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य । क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनुविद्वान्वितावति ॥३८
ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्यादं निरादधत् ॥३९
यद्रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् । आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥४०
ता अधरादुदीचीराववृत्रन्प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥४१
अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥४२
इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् । व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥४३

प्रेतात्माओं का सुकृत लोक प्राप्ति तथा उपस्थान :—

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥४४
जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥४५
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥४६
इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥४७
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥४८
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत्क्षेम्यस्तिष्ठन्प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥४९ (क्रमशः)

कां. १२ सू. २ "नडमारोह" राजयक्ष्मादि समस्त दुस्साध्य, कष्ट साध्य, असाध्य महाव्याधियों को मूल निर्विवाद 'पाप' है। इसी के निवारण की देवर्षि अथर्वा जी तथा अङ्गिराजी ने 'पाप्मगण' जनकल्याण का अमोघ दहनास्त्र प्रदान किया हैं। जो महाव्याधि विविध श्रेष्ठतर शारीरिक चिकित्सा पद्धतियों के उपरान्त भी शमन न हो, वह इस अमोघास्त्र से दूर भाग खड़ी होती है। महर्षि का ब्राह्मीशक्ति सम्पन्न उद्घोष है :— (१) हे पापमलक महा व्याधि ! तू वांस पर लटक, तेरे लिये यहां स्थान नहीं है। यह शीशा धातु ही तेरे विनाश के लिये तेरा भाग है। जो गोआदि में क्षय रोग हैं, वह तू भी इधर आ। और जो मनुष्यों में क्षय रोग है; उसी के साथ, अधोगति की ओर चलाजा।

२—पापिष्ठ और दुष्टों के संसर्गों, कुकृत्यों एवं अनुकरणों से उत्पन्न, समस्त रोगों और समस्त अपमृत्यु समुदायों के साथ यहाँ से दूर हटाये जाते हैं। ३—यहाँसे मृत्यु को, दुर्गति दाता रोगों और पापमूल, काम, क्रोध, लोभ,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मोह, मद, ईर्ष्या द्वेष निन्दा आदि समस्त ज्ञात-अज्ञात, दृष्ट-अदृष्ट शत्रुओं को दूर भगाये देते हैं। हे जातवेदाग्ने! जो हमसे द्वेष करते हैं, और जिनसे हम द्वेष करते हैं उनको खा; अर्थात् उनका संहार कर, उनको यज्ञ द्वारा तेरे लिये समर्पित करते है। ४—यदि मांस भक्षक प्रेताग्नि, या अरन्य में एकांकी रहने वाला हिंसक अग्नि घरों, गौशाला में प्रविष्ट हुआ हो अर्थात् कोई समय में अपमृत्यु को प्राप्त हुआ हो अथवा पशुओं में महामारी फैली हो, तो उसकी माष, [उर्द, आज्य) षोड़स सस्कार वैदिक विधि से सम्पन्न हो जाने के उपरान्त दूर भगा देता हूँ। वह जलों में निहित अग्नि में चला जावे। ५—मनुष्य के मरने पर भी (वासना देही प्रेत) जो क्रुद्ध होकर, क्रोध से, अथवा मृतक दाहाग्नि प्रज्वलित करते हैं, ऐसा अनर्थ भय; हे जातवेदाग्ने! वह अब आपके रहते भय न हो, तुझे प्रदीप्त करने पर वह शान्त हो जावे। ६—हे जातवेदाग्ने! द्वादशादित्य, एकादशरुद्र, अष्टवसु धनद, ब्रह्मा और परब्रह्मयज्ञ देव की स्थापना से ये जीव को सौ वर्ष की दीर्घायु के लिये पुनः संस्थापित करते हैं। ७—जो प्रेताग्नि, द्वितीय आपजातवेदाग्नि को देखकर (ईर्ष्या से) हमारे घर में प्रविष्ट हुआ है, वह प्रेत-दाहक अग्नि पितृ यज्ञ करें। और उस यज्ञ को पितरों के दूसरे लोक में ले जाता हूँ। वह अग्नि परमधाम में उष्णता बढ़ावे।

८—मांसाहारी प्रेताग्नि दूर ले जाता हूँ. दोष दूर करने बाला वह यमराज के पास जला जावे। (अर्थात् मनुष्यों से प्रेतदाह दूर चला जावे, मृत्युयें न होने पावें) परन्तु जो यह दूसरी जातवेदाग्नि यज्ञों के लिये संस्थापित की जाती है, वह यज्ञाहुतियों द्वारा देवों की तृप्ति के लिये घरों में विराजमान रहे। ९—प्राणियों को वज्रपात कर मृत्यु के प्रति ले जाने वाला प्रेताग्नि को; दृढ़ संकल्प शक्ति से हटाये ले जाता हूँ। उसके स्थान पर सुविज्ञगार्हपत्यानिवंशविच्छेद के बजाय वंशवृद्धि को संस्थापित करता हूं। उस प्रेताग्नि का भाग पितृ लोक में ही स्थापित रहे। १०—प्रशंसनीय, गतिशील प्रेताग्नि को पितृयान मार्ग से दूर भगाता हूं। देवयान मार्ग में पुनः न आवें, तू यहीं पितृलोक में ही जागता रह। ११—शुचि, पवित्र और तपोपूत हो, कल्याणार्थ, प्राणीवर्ग जातवेदाग्नि को प्रदीप्त करते हैं। उससे समस्त दौर्भाग्यप्रद पाप का प्रतारण कर, प्रदीप्त हुआ अग्नि यज्ञों द्वारा सभी को पावन करता है। १२—इस जातवेदाग्नि के प्रदीप्त होने पर यज्ञियाग्नि ज्वालायें द्यु लोक में जाती हैं, और हम सबको पापों से मुक्त करती हैं। और निवेद्यमार्गों से बचातीं है।

१३—इस पाप दाहक यज्ञाग्नि से हम अपने दोषों, पापों से निरन्तर शुद्ध और पवित्र होते हैं। उससे हमारी दीर्घायु होवे। १४—संघातक और विघातक विनाशक और शब्द रहित गुणों से सम्पन्न अग्नि (यज्ञ) द्वारा ज्ञानी जन रोगों, पापों. संकटों का निवारण करें। १५—जो हमारे घोड़ों, गौओं, गोष्ठों, भेड़-बकरी आदि पशुओं और लोगों को अधोगति प्रदायक प्रेताग्नि है, उसे इस यज्ञाग्नि के बल से हम दूर हठाते है। १६—इस यज्ञ कर्म द्वारा ही जीवान्तक प्रेताग्नि को (प्रेतों से इतर स्वस्थ) मनुष्यों, गौओं, घोड़ों आदि से निश्शेष रीति से दूर करते है। १७—हे जातवेदाग्ने! जिस यज्ञ से देवगण पवित्र हुए, जिससे मानव शुद्धपावन हुए हैं उसी मे आज्याहुति देकर पावनता प्राप्त कर तू भी स्वर्ग पर चढ़। १८—हे आहुति दिये हुए अग्ने! तू प्रदीप्त होकर हम पर आक्रमण न कर। यहाँ द्यु लोक में प्रकाशित हो, हम निरन्तर सूर्य के दर्शन करते रहें। अर्थात् मृत्यु रूप अन्धकार नाशक-जीवन ज्योति को जागृत करते रहें। १९—जो मल शीशे से लगा हुआ;जो बांस में अटका हुआ, जो प्रेताग्नि में तपकर चिपका हुआ है; जो काले रग की भेडों में,तथा जो शिर होने में लगा हुआ है, उस पापरूप प्रेताग्नि को हटा, पवित्र होइये। २०—शीशे में जल शुद्ध कर सिर होने पर शिर रखकर, कालीभेड़ में पवित्रता संस्थापित कर पवित्र याज्ञिक हो जाओ। २१—हे मृत्यो! देवयान से भिन्न जो तेरा पितृयाण मार्ग हैं, उनसे तू यहाँ (हम) से दूर चला जा। हे दिव्य दृष्टि, दिव्य श्रोतवान मैं तुझे निर्देश करता हूँ कि ये हमारे वाल गोपाल बहुत हृष्ट-पुष्ट, स्वास्थ्य, दीर्घजीवी हों।

२२—यहाँ जो जीवित प्राणी हैं, वे चारों ओर से प्रेतात्माओं से घिरे हुए हैं। हमारी देव स्तुतियां आज कल्याण प्रदायिनी हो गई हैं। आमोद-प्रमोद से प्रफुल्लता के मंगल नृत्यों में जीवन को लगायें, प्रबुद्ध सैनिक वन, जीवन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संग्राम में शौर्य प्रगट करें। २३–देवर्षि का उद्घोष, जीवात्माओं के लिये दीर्घायुष्य की नियत अवधि से पूर्व कोई भी अल्पायु में अपने से; वृद्धों से पूर्व प्राण त्याग न करें। अति दीर्घ, सौ वर्षों पर्यन्त जीवन रूप अचल पर्वत की भांति दृढ़ता के साथ मृत्यु को पार करो। २४–वृद्धावस्था के साथ दीर्घायु प्राप्त करो (अल्पायु में न मरो)। वृद्ध के पीछे तरुण चले, वृद्ध से पूर्व तरुण न मरे। उत्तम जीवनवाला उत्साहवान होने का सभी दृढ़ सकल्प एव यत्न करें; प्रभु आपसब यत्नशीलों को दीर्घ जीवन प्रदान करें।

२५–जैसे दिन के पीछे दिन, ऋतु के पीछे ऋतु तथा जैसे पहिले के पीछे दूसरा आता है, वैसे ही वृद्ध के उपरान्त ही तरुण चले जावें, अर्थात् वृद्धावस्था से पूर्व कोई भी न मरे। हे प्रभो ऐसी इनकी आयु की योजना की कृपा करो। २६–यह जीवन सरिता अपार दुःखों, कष्टों रूप पाषाणों वाली, महान वेग वाली (अर्थात् पैर न जमने देनेवाली उखाड़ फेंकने वाली) है। इसलिये सावधानी और बलवीर्य बुद्धि पराक्रम के साथ हिलमिलकर पार कर जाओ। जो (कल्याण मार्ग में, नदी पार करने मे) वाधक (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, छल, कपट, अन्याय दुराचारादि हैं) उनको यहीं फेंक जाओ। यदि पार कर जाओगे तो निरामय, अजर, अमर अमृत रस प्राप्त करोगे। २७–हे मित्रो! उठ जाइये, तैरिये, यह दुरूह पाषाणों वाली नदी (जीवन सरिता) वेग प्रचण्ड से प्रवाहित हो रही है। जो अकल्याणकर है। उनका यहीं परित्याग कर दो। यदि हम तैर जावेंगे तो, समस्त शुभ, सुखद (विश्वजित, ब्रह्मौदन) प्राप्त कर लोगे। २८. शुद्ध, पवित्र, और मल रहित हो, अभ्युदय के लिये विश्वदेव की आराधना करो, पाप मूल स्थानों को दूर करो (पग भी न धरो) सभी बन्धु-बान्धव प्रीति और सहयोग से शतायु पर्यन्त आनन्द से रहें। २९. प्राणविद्या वाले योगी योगमार्ग से; हेय (स्थूलकाय) को निष्पाप बनाकर अपने अधीन बनाने वाले ऋषीश्वर, तीन बार; सात, इक्कीस बार, तपश्चर्या कर सन्मार्ग से मृत्यु को पार करते हैं।

३०—(प्राणविद्या, संजीवनी विद्या, योगयज्ञादि) से अपने ऊपर से मृत्यु के पञ्जों को दूर कर; इस आयु को दीर्घ और श्रेष्ठ बनाकर धारण करते हुए आगे बढ़ो। आसनादि द्वारा मृत्यु को दूर करते हुए, जीवित रहकर अपने अपने घरों में उत्तम स्थानों में विराजकर अपना जीवन यज्ञ मंगलमय बनायें। ३१. ये स्त्रियां सुशीला धर्मपत्नियां बनें, कभी भी विधवा न हों, तथा सौभाग्य सूचक नेत्राञ्जन, परिमल द्रव्यों के लिये घृत से अलकृत हों। निरोग शोकाश्रु पतिरहित नहों श्रेष्ठ वस्त्राभूषणों से सुशोभित, अपने घरों में सुपूजित आदर का स्थान ग्रहण करें। **"यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते, वसन्ति तत्रदेवताः"**। ३०. मैं इन मृतात्मा और जीवात्माओं दोनों को यज्ञ से प्रवद्ध करता हूं। ब्रह्म ज्ञान से प्रकृष्ट शक्ति सम्पन्न करता हूं। यज्ञ से पितरों को स्वत्वधारक बल बढ़ाता हूं और दीर्घायुष्यवान् बनाता हूं।

३३—हे पितरो! हमारी जो अमर जीवनीय ज्योति है, वह मरणधर्मी मानव हृदयों में प्रविष्ठ हो, उस पर सेष्ठी वैश्वानर ज्योति को धारणकर; वह हमसे रुष्ट न हो, हम उससे पृथक न हों। ३४. गार्हपत्याग्नि का परित्याग कर, प्रेतमांस भक्षक अग्नि की ओर ही, पितरों की यशवृद्धि हो, इसके लिये गृहस्थ धर्म से अन्त्येष्टि तक ब्रह्मयज्ञ करते रहो। ३५. प्रेतदाहक अग्नि जो वैदिक विधि से शान्त न की गई हो, वह बुरी भांति क्षुब्ध हो, वह सर्वस्व नष्ट कर देती है, जो कृषि से उत्पन्न उपभोग्य पदार्थ हों, और जो पितृधन के दो भाग प्राप्त होने पर भी ज्येष्ठ पुत्र को दुःखी दरिद्री बनाता है, उसे भी नष्ट करता है जो कला कौशल श्रम से उपार्जित करता है। अतः उसकी अन्त्येष्टि वैदिक विधि से पूर्ण करना अनिवार्य समझें। ३६. अन्त्येष्टि की प्रेताग्नि अपवित्र और निस्तेज बनाती है; श्राद्धान्न भक्षण करने योग्य नहीं है [हेय होता हैं] अन्यथा उसकी कृषि, गौओं और धन का नाश कर देता है। इस कारण प्रेताग्नि को विधिपूर्वक शान्त करना अनिवार्य है।

३७—जिनके घरों में अथवा जिन मनुष्यों, कुलों में, यह क्षुब्ध प्रेताग्नि जानकर पीछे पड़ती है, अर्थात् बार-बार प्रज्वलित होती रहती है, उसको महान कष्ट होते ही रहते है, वे निरन्तर रोते, बिलखते, मृतकों के लाभ के लिये

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तड़पते, बार-बार चीखते, पुकारते और करुणा क्रन्दन करते रहते हैं। ३८. जब जिस स्त्री का पति मर जाता है, तब घर सकटों से घिर जाता है। उस समय अनुभवी ब्रह्मवेत्ता, वेदविद को बुलाना योग्य है; जो प्रेताग्नि को हटाने में विज्ञ है। ३९. जो पाप, अनाचार, दुष्कर्म उस प्रेताग्नि के कारण मुझसे हुए हैं उनसे जल मुझे शुद्ध करें अर्थात् पतित पावनी के जल में स्नान करना पितरों को हितावह है। ४०. वे अधोगति से ऊर्ध्वगति की ओर ले जाने वाली, योग, यज्ञ, ज्ञान, युक्त देवयान मार्ग से बार २ प्रवाहित होती हुई, बल वीर्य की वर्षा करने वाले उच्च शिखर के पर्वत पर सनातन जीवन धारायें नव प्रवाहित होती है [वैसे ही मरणान्त प्राणी नव जीवन धारणकर, नवीन-सा बनकर विचरता हैं।]

४१--हे अग्ने ! तू मांस भक्षक न बनकर, मांस भक्षक को दूर कर, देवयजन, इष्टियां निरन्तर करते हुए दीर्घजीवी हों। ४२. एक अग्नि प्रेतदाहक, और दूसरा देवयाजक है, दोनों भक्षक भावी हैं, परन्तु एक मङ्गलमयी दूसरी अमङ्गल की मूल है। उसे दूर हटाता हूं। ४३. देवों को अपने अन्दर रखने वाला मनुष्य का संरक्षण कर्त्ता, गार्हपत्य अग्नि दोनों जन्म और मृत्यु के बीच रहता है। ४४. हे जातवेदाग्ने ! तू जीवों को निर्विघ्नतापूर्वक आयु को पारकरा, और मृतकों को वे पितृलोकों में चले जावें वह कर्म करा। हे परमश्रेष्ठ गार्हपत्याग्नि शत्रुओं को सन्ताप दे। प्रतिदिन निरन्तर ऊषा-काल इसके लिए कल्याण धारण करे। ४५. हे अग्ने ! तू उपर्युक्त समस्त शत्रुओं को परास्त करता हुआ, तू इन सबका धन और बल हमारे अन्दर स्थापित कर।

४५. इस ऐश्वर्यमयी पालन करने वाली अग्नि [यज्ञेष्टि] को विधिवत उद्दीप्त करो, वह हम निन्द्य, पापकर्मों से बचाये। उसी के द्वारा घात पात कर्ता का नाश करो, उसी की सहायता से रुद्र के संहारक अस्त्र सब ओर से अपनी रक्षा करों। ४८. बलवीर्य जीवन इस नौका से तैयार करो, वह तुम्हें निन्द्य, जघन्य पापों से पार करे। इस ज्योतिर्मयी नौका पर आरुढ़ हो, ऐसी षट कर्मरूपी नौकाओं से, दुष्ट बुद्धि वाले शत्रुओं के भय से वच सकें। ४८. दिनरात कल्याण कर्त्ता, दुःखों से पार करने वाला श्रेष्ठ पुत्रों से युक्त ऐश्वर्यं वाला स्वयं स्थिर रहकर अनुकूल रहता है। हे पलंग ! हे विछौने ! तुम प्रसन्न निरोग मानवों को धारण करता हैं, ऐसा तू सदैव सन्मानवों की यश सौरभता से सम्पन्न होकर हमारे पास रह। अर्थात् यज्ञरूपी विश्रामदाता सुखद शय्या सभी घरों में निरन्तर रहीं आवे।

४९. जो देवों से अपने आपको दूर रखते है वे ही सदा सकटमय जीवन यापन करते हैं। जिनका प्रेताग्नि पास से उसी प्रकार सहार करता है, जैसे घोड़ा घास का। ५०. जो कृपण, धन लोलुप हैं, वे सदा और के पकाये भय पर क्रूर दृष्टि लगाये रहते हैं, वे ही दुर्गति में पड़कर, मांस भक्षक अग्नि के भक्ष्य अर्थात् अल्पायु वाले क्षीण आयु वाले होते हैं। ५१. जो क्षीण मन है और पुनः क्षीण होना चाहते हैं। अर्थात् प्रेताग्नि परायणों के पास ही सदा बार बार मृत्युओं का तांता लगा रहता है, जो बार-बार विविध कष्टों, संकटों दुर्गतियों, मलिनताओं से घिरे रहते है।

५२. हे प्रेताग्ने ! पशुओं में तेरा भाग काली भेड़ की ऊन है, शीशा और लोहा भी तेरे ही भाग हैं, पिसे उड़द का हव्य बनाकर, प्रेताग्नि में, अरण्य में हवन किया जावे, अर्थात् प्रेताग्नि निर्जन वन में प्रदीप्त की जावे। ५३. हे इन्द्र ! इस प्रेतदाहक अग्नि में, अति पुरानी मूंज की इण्डिली [छींका] तिलों का तर्पण, कव्य समिधा और बांस के चमस से आहुति देकर शरकण्डों को ईंधन बनाकर (अर्थी बनाकर) यम की अग्नि का आधान करे। ५४—अस्तगत सूर्य को सत्कार आत्मसमर्पण कर (अर्थात् सन्मार्ग ज्ञाता जीवन की अन्तिम अवस्था में, देवार्चन, योग, यज्ञ, तपश्चर्या से अपने आपको धर्म मार्ग के योग्य बना सकता हैं, वह मृतकों के प्राणों को हवन, योग, यज्ञ द्वारा परम गति को प्रेरित करते हुए, जीवित मानवों को उसी यज्ञ द्वारा दीर्घ आयु से संयुक्त करता है।

इन राजयक्ष्मादि महा व्याधियों का उत्पत्ति मूल पाप है, पाप ही के मूल का दहन कर संजीवनप्रद, योग, यज्ञ, तप, धर्म सत्याचरण है। इसका विस्तृत विवरण, वृहच्छान्तिगण, अहोलिङ्गगण, जायुष्यगण, अभयगण, स्वस्त्ययनगण, पावनगणों में अध्याय ३ में तथा अध्याय १ में अश्वुका है उन्ही के संदर्भ में यह (पाप्मगण कर्मविधि भी है)। मनीषि-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गहनता से विचार कर मनन कर, कर्मज भवव्याधि मूल तथा कायज दुःखमूल निवारक निर्दिष्ट औषधियों, भैषज्यों मन्त्रों का उपयोग कर श्रेय के भागी बनें।

राजयक्ष्मा भैषज्यों के सन्दर्भ

छाजन :—[१] गोघृत में नीम की कोपल जलाकर लगायें। [२] ऐरण्ड के दो पत्ते, २ पत्ते आक के उसे गोघृत में जलाकर निकाल लें। उसमें २॥ तोला मोम, २५ दक्षिणी मिरच, नीला थोथा २॥ तोला, फिटकिरी २॥ तोला, सिन्दूर २॥ तोला डाले। उसे घोटकर मलहम बनाले उससे छाजन दाद नष्ट होते हैं।

ज्वरवादी का, वायु दर्द, कफ, तापतिल्ली, छाती के दर्द में :—हरड, बड़ी कटेहरी के फल, पत्ते, आमला, काला नमक, बहेड़ा, अनारदाना, छोटी पीपल, चिरायता सभी समभाग लें चूर्ण करें, उसी के बराबर मिश्री मिला, मात्रा १॥ तोला गर्मजल के साथ प्रातः सायं लें।

हाथों में खुजली (खाज) :—राल ५ मासे गौ की लौनी ७ मासे, दोनों को कांसे की थाली में मलकर एक रस कर लें। उसी को नित्य लगायें। प्रात गोमूत्र से उसे धो डाला करें।

नजला आदि शिरोरोग :—काली मिर्च, ममीरा समभाग मिला १२ घंटे खरल करें, पानी मिला, चना के तुल्य गोली बना लें। १।१ गोली चूसें।

नजले आदि का तेल :—काले घोड़े का नख, मीठे तेल में जलाये, उसी को सुंघायें मध्यानान्त कनपटी पर उसी को मलें।

बहरापन, कान के दर्द बहने का :—घोड़ा की लीद का रस कान में डालें। आक के पत्ते, तिल के पत्ते, अग्नि पर हल्के से गरम करें, उनका रस निकाल कान को भर दें।

दाड़ का दर्द :—फिटकरी, वाइविडङ्ग १।१ तोला, काली मिर्च ॥ तोला, सोंठ ॥ तोंला, सैंधा नमक ॥ तो. का चूर्ण कर शनैः २ दो-चार बार मले। अथवा नारियल की दाड़ी जला, उसमें काली मिर्च मिला, चूर्ण कर लें, सन्ध्या समय दांत दाड़ पर मलें। अथवा कूठ काली मिर्च २।२ तोला पीस लें, उसे मलें।

८. विच्छू काटने पर :—नीले कपड़े के टुकड़े में, मोम बाँध कर जलायें, उसी का धूआँ काटे पर दें।

९. नासूर :—नीला थोथा १ तोला, साबुन १ तोला, सैंधा नमक १ तोला, सबको चूर्ण कर गौ की लौनी में मिलावें, उसे घाव पर लेपें।

१०. नकसीर :—ऊंट के बाल जलाकर सुंघायें।

११. जूंआ (कीट) :—ऊँट का मूत्र शिर में डालें।

१२. शस्त्र के घाव तथा उसके रक्त के बन्द करने में :—घोड़े की लीद को घोड़े के मूत्र में मिला कर लगायें।

१३. उदर दर्द :—घोड़ी के १ छटाक दूध में जायफल मिला पिलावें।

१४. पागल कुत्ते के काटने पर :—उसकी जीभ कतर कर बाँधे। उसी के बार उखाड़ कर ऊपर बाँधे।

१५. चोट का मरहम :—मोम, साबुन, मुरदासन, राल, मिश्री समभाग को १ छटाक मीठा तेल लेकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अलग-अलग सबका चूर्ण करें। तेल गर्म करें, उसी में साबुन डालें; उसके बाद राल डालें, तदनन्तर मिश्री डालें, सबको पकालें। उसी में रुई का फाआ भरकर घाव पर लगावें।

१६. तलवार या शस्त्र के घाव :—मोम, राल, साबुन, मिश्री, सीपी समभाग २।।–२।। तोला, गोघृत १ छटाक उपर्युक्त रीति से मरहम बना लगायें।

प्रजापत्येष्टि का शेष प्रकरण :— बन्ध्या दोष निवारण विधियाँ— (१) जलमुरगानी का कालेज बिनौले की मिगी, समभाग ले, पीसे, बत्ती बनाकर मूत्रेन्द्रिय में रक्खें। (२) **स्त्री के गर्भक्षीण में ७ कारण** –क्रमशः [१] धरनि का मुंह उलटा हो जावे, तो पुरुष संसर्ग होते ही, स्त्री को मूत्र पीड़ा होती है। उपचार– मुरगी का पित्त, सरसों के तेल में मिला लें, ऋतु काल में ३ दिन उसे इन्द्रिय में अन्दर लेपें। तदनन्तर गर्भ धारण करें। [२] धरणि का मुख वाई ओर पीड़ा हो, और पुरुष संसर्ग में स्त्री का अंग कम्पन करे। उपचार—हींग तिल के तेल में पका फोआ ३ दिन अन्दर चढ़ावे, तब गर्भ धारण करे। [३] बच्चादानी के कमल के ऊपर मांस बढ़ने से, पुरुष ससर्ग में स्त्री के कमर में पीड़ा होती है। उपचार—सफेद जीरा, हाथी का नाखून इनको चूर्ण कर, पीली सरसों के तेल में पका कर, गर्भदानी के कमल पर लगावे। तदनन्तर गर्भाधान करें। [४] उपर्युक्त गर्भ कमल के बीच में कीड़ा हो जाता है; वह वीर्य को ही खा जाता है, ऐसी स्त्री को पुरुष संसर्ग से घोर वेदना होती है। उपचार– बड़ी हरड़, वहेड़ा के बक्कलों के चूर्ण को गोली बना गर्भाशय के अन्दर चढ़ावे तदनन्तर गर्भ धारण करे। [५] गर्भाशय के कमल में अग्नि होती है, उससे जलन भी होती है, संसर्गान्त वीर्य पड़ते ही रक्त हो उठता है ससर्ग के अनन्तर स्त्री के पेट में पीड़ा होती है। उपचार—मुरगाई का पित्त, बड़ी पीपली कूटकर गोली बना ले, उसे गर्भादानी के अन्दर १।१ नित ३ दिन रक्खें। तदनन्तर गभधारण करें। (६) देही (इन्द्रिय में) पित्तप्रकोप से जलन होती है, काला छेछड़ो का रक्त जाता है, ऋतु पहिले (समय से) अथवा कई दिन पीछे होता है, स्त्री जल्दी स्खलित हो जाती है। उपचार––बहेड़ा का चूर्ण गुड़हल के फूलों के रस में मिला गोली बनालें; गर्भाशय में अन्दर १-१ गोली ३ दिन रक्खें, तब गर्भधारण करें। [७] संसर्ग के पीछे कुछ दूखे नहीं, परन्तु गर्भ भी न रहे वह गर्भदोषों में वर्णित व्याधि ही है। उपचार शुद्ध केशर १ माशे, कपूर १ माशे, कस्तूरी १ रत्ती, इनकी पोटली बांध के स्त्री कमर में बांधें, तब गर्भ दोषजनित व्यथा दूर होती है। यदि स्त्री के प्रसव काल में बच्चा योनि से बाहर न आता हो, आपरेशन की स्थिति हो तो आम की जड़ पीस कर भग के ऊपर गाढ़े गाढ़े थोड़ी देर वाद ३ लेप चढ़ायें तुरन्त बालक बाहर सकुशल आ जावे। [८] **स्त्री के गर्भ में मरे बच्चे का उपचार**–यदि स्त्री के गर्भ में ही बच्चा मर जावे, और निकले ही नहीं, तब गौ के गोमय का रस २ छ० निकाल कर स्त्री को पिला दें, तुरन्त मृत बालक गर्भाशय से बाहर आ जाता है।

समुद्रफेन से विविध रोग निवारण :––(१) कांस पात्र में समुद्र फेन घिस कर कान में डाले और ऊपर मलें तो कर्ण रोग ठीक हों। बहरापन जावे। (२) इसी उपर्युक्त को सुंघाने से मृगी, हिस्टिरिया, की मूर्छा शान्त होती है। (३) इसी कास्यपात्र में कटु तेल में उसे घिस कर शरीर पर मलने से दुर्गन्ध, मज्जा रोग चर्मरोग ठीक होते हैं। (४) इसी पात्र में जल में इसे घिस कर नेत्रों में जस्त की सलाई से लगाने से नेत्रों का मैल, जलन, गुहेंरी कट जाती है। (५) समुद्र फेन ३ माशे, गौ की मट्ठा में मिला कर पिये, तो गुल्मरोग, वायगोला, गैस नष्ट हो जाती है। (६) समुद्र फेन ३ माशे, हीग १ माशे को ग्वालपाठा के रस में पीसकर पोये तो समस्त पेट रोग के कीटाणु नष्ट हो। (७) समुद्र फेन ३ माशे, अकरकरा ३ माशे, कटेहरी ३ माशे, सिंगरफ ३ माशे, कर्पूर १ माशा, अफीम १ माशा, शहद १० माशे, दवा पीस कर कपड़छन करें। ४ घंटे खरल करें, उसे शहद में मिला, चना के बराबर गोली बना। मिश्री दूध में डाल कर १।१ गोली प्रातः सायं नित्य सेवन से, बल, वीर्य, ओज बढ़े।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. १२ सू. २ के शेष मन्त्र पृष्ठ ६२७ से आगे के पढ़ें।

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा। क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥५०

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते। ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥५१

प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः। क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥५२

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः।

माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥५३

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्। तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥५४

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याऽविवेश।

परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥५५

यथा मनोमनस्केतैः - कां. ६ सू. १०५ ऋ. ३ उन्मोचन ऋषिः। कासा। देवता। अनुष्टुप् छन्दः। कास श्लेष्मादि प्रशमनार्थे(ककंटयाः) कटेहरी एवं पियावांसा, वासा) सक्तु-क्वाथ अभिमन्त्रणे, पायने, सूर्यरश्मि स्नाने, सूर्योपस्थाने च विनियोगः। मत्र पृष्ठ ५४१ पर पढ़ें।

"अस्थिस्रंसम्" कां. ६ सू. १४ ऋ. १ :—कास, श्वांस, स्लेष्मा युक्त रोग निवारणार्थ कटेहरी, सत्यानाशी, पियावांस कटीला आदि के पञ्चाङ्ग ले टुकड़े करे। जल में डाल गर्म कर अभिमान्त्रत करे, उससे रोगी को छींट दे, आचमन कराये। 'उर्वारुकमिव वन्धनामृत्योर्मुक्षीय" ऋ. (७।५९-१२) उर्वावोः (वन ककंटी) फल पके हुए का भुर्त्ता बांधे।

यक्ष्म रोग-नाशन विधि (३)

कां. ६ सू. १४ ऋ. ३ बभ्रुपिंगलः। ऋषिः। वलासः। देवता। अनुष्टुप् छन्दः। कास-श्वासात्मक श्लेष्मादि रोग शमनार्थम्—कर्कन्ध्वाः (कटेहरी) फल, वृक्ष शकल-संपातित, अभिमन्त्रित जलेनावसेचने, मार्जने, आचमने भैषज्ये विनियोगः। कौ. ४।५। **कटेहरी का क्वाथ बनायें** उसी से शान्त करें।

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम्। बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥१

निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा। छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ॥२

निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा। अथो इट इव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ॥३

क्षेत्रिय रोगनाशनम् (कां. २ सू. ८) भृग्वङ्गिराः। वनस्पतिः। यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप्, ३ पथ्या पंक्ति। ४ विराट, ५ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः।क्षेत्रिय व्याधिं मूल जातारिष्ट निवारण भैषज्ये विनियोगः।

दीर्घायुः प्राप्तिः— (कां. २ सू. ९) १-५ भृग्वङ्गिराः। वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तार पंक्तिः।

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु।

अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आगादुदंगादुयं जीवानां व्रातमप्यंगात् । अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥२

अभीतीरुध्यंगादुयमधि जीवपुरा अंगन् । शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥३

देवास्तें चीतिमंविदन् ब्रह्माणं उत वीरुधः । चीतिं ते विश्वें देवा अविदुन् भूम्यामधि ॥४

यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः । स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवंद् भिषजा शुचिः ॥५

"पिप्पली" (६-१०९) "विद्रधस्य" (६-१२७) "यावभ्रव:" (८-७) इन सूक्त ऋचाओं से धनुर्वात-कृत्स्नवात आदि आदि के रोगी के लिये "पिप्पली" अभिमन्त्रित करे, पुनः तीनों को जप कर खिलाये । दूध में डाले उबाले दूध को दे । यह एक ही समस्त रोगों के विनाश को समर्थ है । यह आक्षेपक नाम के वातरोग दोष विशेष की भी विदारण करने वाली है । अग्निः सर्वा देवताः" इति श्रुतिः (तै.सं. २-२-६-१) "अग्निर्देवो होता देवान् यक्षत्" इति निगम (आप०स्त० २।१६-५) । "विद्रधस्य वलास्य" (६-१२७) "या वभ्रवः" (८-७) तथा उपरोक्त ३ ऋचाओं से जलोदर-विसर्प आदि (वर्तमान कैन्सर) समस्त रोगों के निवाणार्थ रोगी के शिर पर अभिमन्त्रित कर ढारे, लगाये । इसी रोग निवारणार्थ इन्हीं ३ से ४ अंगुल के 'वृहत्पलाश' ढाक का टुकड़ा पीस कर अभिमन्त्रित कर लेप करे ।

"यावभ्रवः" (८-७) इस अर्थ सूक्त से यक्ष्मादि समस्त रोग निवारणार्थ (ढाक, गूलर, जामुन, काम्पील, कवीला, स्रक, वङ्ग, शिरीष, स्रक्त्य; तिलक, वरणः, विल्वः, जङ्गिड़(अर्जुन), कुटक, गृह्यः,गलावलः, वेतस-वेंत, शिम्वलः सेमर, सिपुन, स्पन्दनः, अरणिका-अरणी, अश्मय, तुन्यू-तुन्न, पूतदारु, देवदारु, इन शान्ति वृक्षों में से किन्हीं १० दश से बनी शाकल मणि को लाख में मिला लपेट कर अभिमन्त्रित कर पुनः ३ उपरोक्त ऋचाओं का जप कर बांधे । कौ. ४।२ सौत्रामणियाग में इसी सूक्त से "ओषधीभि संधीयमानासुरां अनुमन्त्रयेत् (वैताने) "रसप्राशन्या" (५-२-३) या वभ्रवः इत्योषधिभिः सुरां संधीयमानाम्" इति वै. (५।२) अर्थात् इनकी सुरा बनाकर लाख (गौंद) मिलाकर प्रयोग करें ।

अथ पिप्पली भेषज :—

धनुर्वात, क्षिप्तवात, कृत्स्नवात व्याधियों में, उन्माद रोगों में, बवासीर में, मन्दाग्नि, मन्दबुद्धि रोगों में, ज्वर, कफ, श्वांस रोगों में वेद तथा आयुर्वेद से भी प्रमाणित, प्राचीन वह औषधि है, जिसे सर्व प्रथम राक्षसो ने खोदकर निकाला और तत्पश्चात् गुणगण विशिष्ट समझ देवताओं ने बढ़ाया । [रा. नि. प. ६] 'ज्वरघ्नी, वृष्या, तिक्तोष्णा कटुतिक्ता, दीपनी, मारुत श्वास, कास, श्लेष्मक्षयघ्नी च । ज्वरों के नाश करने वाली, वीर्य बल वर्द्धिनी, तीखी, गर्म, कटु, कषैली अग्निदीपक, समस्त वायुरोगों को शमन करने वाली, श्वांस, खांसी,श्लेष्मा और क्षय रोगों को क्षय करनेवाली माना है । [चरक चि. १] पिप्पली रसायन बुद्धिवर्द्धक माना है ।

"तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्त्वाग्रे भोजनस्य च । पिप्पल्यःकिंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः । प्रयोज्या मधुसर्पिभ्यां रसायनगुणैषिणा ॥ अर्थात् गौ के (१) घी में भुनी ढाक के क्षारसे युक्त पिप्पलियां शहद और गोघृत में मिलाकर भोजनान्त ३:३ प्रातः ही सेवन करने से उत्तम, प्रकृष्ट मेधा वृद्धि होती है । अन्य वर्धमान पिप्पली रसायन (२) गौ के दूध में उबली हुई क्रमशः प्रथम दिन १० दूसरे दिन २० ऐसे ही दसवें दिन १०० पुनः ११ वें दिन ९० और बीसवें दिन १० पूर्व दिन के बराबर सेवन करें । ऊपर साठी चावल दूध से भोजन करें । अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार, घी, दूध ऊपर से सेवन करें । यह बड़ी से बड़ी मात्रा है, कम बलवाले ३ या ६ का क्रम १० के स्थान पर करें और योग्य वैद्यों से परामर्श भी करलें । उपरोक्त लाभ निश्चित होते हैं । यदि पूर्ण लाभ न हो तो अथर्ववेद 'पिप्पलीक्षिप्त भेषजी' (६।१०९) 'विद्रधस्य' (६।१२७) 'यावभ्रवः' (८।७) इन सूक्तों से पूर्व शोधित पिप्पलियों को अभिमन्त्रित करे । पुनः इन्हीं ३ सूक्तों की ऋचाओं को जप कर, उपरोक्त विधि से सेवन करें । निश्चित लाभ गोचर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होते हैं। यह अकेली ही जीवनदान में समर्थ है। पिप्पली से छोटी पिप्पल, बड़ी पिप्पल, जवा पिप्पल, गज पिप्पल इन सभी को समझे और विशेष वैद्यों से परामर्श करें।

कां. ६ सू. १०९ ऋ. १-३ अथर्वा ऋषिः। पिप्पली भैषज्यं, आयुः। देवते। अनुष्टुप्। सर्वरोग भैषज्ये विनियोगः।

पिप्पली क्षिप्तभेषुज्यू३तातिविद्धभेषजी। तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥१

पिप्पल्यः१ः समवदन्तायतीर्जननादधि। यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥२

असुरास्त्वा न्यऽखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः। वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥३

कां. ६ सू. १०९ "पिप्पलीक्षिप्तभेषजी" पिप्पली औषध उन्माद रोग निबारण की परमोत्तम औषध है। यह बवासीर की भी औषधि है। देवों ने इसे समर्थ बनाया है, क्योंकि यह औषध एकमात्र ही जीवन के लिये पर्याप्त है। (२) इस औषधि का प्रण है कि जो इसे जन्म ही से सेवन करेगा, वह पुरुष मरता नहीं। (३) इस वात रोग, एवं उन्माद रोग की औषधि का ज्ञान पहले असुरों को हुआ। तदनन्तर देवों ने इसे विशेष रूप से बढ़ाया।

इस प्रकरण में अथर्वा कां. ६ सू. १२७ "विद्रधस्य" का भाष्यकार सायण जी ने निर्देश किया है। 'विद्रधस्य-बलासस्य' इन ३ ऋचाओं से ४ अंगुल का ढाक की छाल को पीसकर अभिमन्त्रित कर रोगी के व्याधित स्थान में लेप करे। वरुणदेव के अभिशाप से उत्पन्न जलोदर, विसर्पक रोग, कांस-श्वास, खूनी बलगम, रक्तवमन, नाडी दोष से नाडी के मुख के साथ बहनेवाले मांस, मज्जा, त्वचा में व्याप्त, कांख कुक्षि, हाथ, पैर, नाक, कान, हृदयरोग, प्लीहा में व्याप्त, नीचे मुख के, उलटे मुल वाले, समी बाहरी, भीतरी कीड़ों के विकार को शमन करने के लिये अभिमन्त्रित कर रोगी के शिर पर जल से छींटे दें और रुग्णस्थान पर अभिमन्त्रित कर लेप करें।

चरक सं. 'पिप्पली रसायन' श्लो० ३३ : ३४

पिप्पलियों को सर्वप्रथम ढाक के क्षारोदक में ७ भावना दे। भावना देने के लिये पुराने घी के पात्र में पिप्पलियां डालें उसमें क्षारोदक डालें जिसमें ये डूब जायें उतना ही क्षारोदक डालें। उसे छाया में रख दें। जब पिप्पलियां इसे पीजावे तब उन्हें निकाल लें। ऐसे ही सात बार करें। दूसरी भावना आमले की रस की दें। इन्हें गो घृत में हल्का सा भून लें। प्रतिदिन नियमित भोजन से १ घंटा पूर्व ३ तथा भोजन के उपरान्त (१ घण्टा) ३ मधु व घृत के साथ लें—यही बलाबल से न्यूनाधिक भी की जा सकती है। इसके सेवन से कांस, क्षय, शोथ, हिक्का, गले के समस्त रोग, अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, विषम ज्वर, स्वरभेद, पीनस, प्रतिश्याय, शोथ, गुल्म, वातबलासक ज्वर, वात, कफज रोग नष्ट होते हैं। १ वर्ष प्रयोग से शतायु, स्वस्थ्य, बलवीर्य, तेज प्राप्त होता है। अष्टाङ्ग संग्रह (जज्जट) तथा गङ्गाधर भोज, चन्द्रट एवं सुश्रुत में भी इस रसायन को श्रेष्टत्तम कहा है।

कां ६ सू० १२७, १-३ भृग्वङ्गिराः। ऋषिः। यक्ष्मनाशनम्, वनस्पतिः। देवता अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्-पदा जगती-छन्दांसि:। गण्डमाला, जलोदर, विसर्पादि सर्वरोगभैषज्ये विनियोगः।

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते। विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥१

यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ। वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥२

यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः। वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम्।

परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋ० २ में "चीपदु" वृक्ष विशेष भी इन सभी रोगों की उत्तमभेषाज हैं। ऋ० १ में "ढाक 'वृहत्पलाश' छोटा ४ अगुल मात्र का एक तना" विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है। (सायणाचार्य)

कां ४।१० "वाताज्ञातो" सूक्तदीर्घायु के लिये 'पापों' से वचने के लिये क्रूरदृष्टि. कृत्या. अभिचार: शाप. ग्रहदोष शमनार्थ उदर. आमाशय. प्लीहा. वर्च-रक्तचाप. रक्त के नवनने में, रक्त के दोषों के शमनार्व पवित्रता के लिये राक्षासादि को दूर करने या विनाश करने. सर्वप्रकार के विघ्नो को हटाने. हर्ष. उल्लास. शान्ति बढ़ाने के लिये उपयोग करे। **वैद्यक :—**

शंखकूर्मादय:स्वादुरसपाकामरुन्नुद: ।

शीता:स्निग्धाहिता:पित्तेवर्चस्या:श्लेष्मवर्धना ।। सुश्रुत सू ४६

शंख-स्वादुरस, वायुनाशकशीत, स्निग्ध, पित्तविकारनाशक, तेजवर्द्धक, श्लेष्मावर्द्धक माना है। (रा०नि० व० १६) का कथन है कि कटु: शीत:पुष्टि वीर्यवलद: गुल्ममूल कफश्वास विषघ्नश्च। अर्थात् कटुशीत. पुष्टिकारक वीर्यवर्घक. बलवर्धक. गुल्मरोग नाशक. विषनाशक है यह शंखद्रव. शंखभस्म. शंखचूर्ण. शंखवटी के साथ पानी में घोल कर बच्चों के पिलाने तथा सुवर्ण में मढ़कर वच्चों के गले में बाँधने से जम्भ. राक्षस-कृत्या. कुदृष्टि. शाप. आक्रोश. दुर्घटना से रक्षा करने में सहायक सिद्ध हुआ है। यह समुद्र में उत्पन्न होने से शीतवीर्य, स्वर्ण से उत्पन्न होने से बल वर्द्धक, विद्युत आदि से उत्पन्न होने से तेजवर्द्धक, सोम से उत्पन्न होने से रोग निवारक ऋचा १,२,४,५,६, में कहा है। मं० २ राक्षसादि से रक्षक मं० २ में वर्णित-अत्रिम् से रक्तशोषक, माँस आदि सघधातुओं के क्षीण करने वाले, भस्मकरोग, आदि को निवारण करने वाला भी माना है। मं० ३-शंखेन सदान्वा (विषहामहे) दर्द से पीड़ित, सदा चिल्लाते रहने वाले समी अवयवों के दर्दों का नाशक कहा है। इन दोनों ही औषधियों से अनूठे, अचिन्त्य, सराहनीय लाभ होते अनुभव में आये हैं।

कां ४ सू० १० ऋ १-७ अथर्वा ऋषि:। शङ्खमणि: कृशान:। देवते। अनुष्टुप् ५ पथ्यापंक्ति:, ७ पञ्चपदापरानुष्टुप्शकरी। छन्दासि अभिचारादि जनित समस्त दुरितोपशमने-स्वस्त्ययने-भैषज्येविनियोग:।

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि । स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥१

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे । शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ॥२

शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः । शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥३

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः । स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥४

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः । सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।

रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः ।

तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥७

कां ४ सू १० "वाताज्जातो" शख, वायु, अन्तरिक्ष; विद्युत, और सूर्यादिकों के तेज, तथा सुवर्ण के गुणों को लेकर मोतीरूपी तेजस्वीं सरूप में उत्पन्न होता है। वह हमें पापों से बचाये। २-जो समस्त प्रकाश मानों में अग्रणी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेजस्वी समुद्र से उत्पन्न होता है। उस शंख से, राक्षसों का नाशकर, रक्तपान करने वाले, क्रिमि पिशाचादि सभी को संहार करते हैं। ३-शंख से आमद्वारा उत्पन्न रोग, बुद्धि की शिथिलता, तथा शरीर को उत्पीड़ित करने वाले समस्त रोगों को दूर करते है। यह शंख सभी रोगों की ओषधि है। इस कारण मोती के सदृश तेजपुंजशंख पाप से, पापजनित व्याधियों से रक्षा करें। ४-द्युलोक से उत्पन्न हुआ, समुद्र में जन्मा, अथवा नदियों से लाया गया स्वर्णिम शंख है, मणि है जो हमें आयु विनाशन क्लेशों से पार करती है। ५-समुद्र से यह शंख रत्न उसी भांति उत्पन्न हुआ है जैसे मेघों में सूर्य प्रगट होता है। वह अपने शस्त्र से देवों और असुरों से हमारी सब की रक्षा करे। ६-हे शंख! तू स्वर्णभिदेदीप्यमानों में अग्रणी है। तेरी सोम से उत्पत्ति हुई है, (चन्द्र तुल्य श्वेत है) तू (महारथियों के) रथ पर, और वाणों की तूणी पर अर्थात् समराङ्गण में उद्घोष करता है। वह, तू हमारी आयु की वृद्धि कर। ७-देवों का अस्थि रूप श्वेत तेज ही सुवर्ण या मोती के समान बना है। वह आत्मा की सत्ता से संयुक्त होता हुआ, जलों में विहार करता है। वह तेरे ऊपर तेज-बल, आयुष्य, दीर्घायु, सौ वर्षायु वाला दीर्घायुष्य प्राप्त होने के लिये बांधता हूं, यह शंख मणि तेरा पूर्ण संरक्षण करें।

"एहि जीव त्रायमाणम्" कां० ४ सू० ६ में वर्णित अञ्जन मणि का उत्पत्ति स्थान तीन पुठारों-शृङ्गों वाला पर्वत तथा यमुना का क्षेत्र है। वैद्यशास्त्रानुसार तथा वेद में त्रैकाकुद तथा यामुन कहा है। मंत्र १ (पर्वत से उत्पन्न) मंत्र ३ (हिम पर्वत पर हुआ) मंत्र १० [त्रैकाकुदं] (आञ्जनं) यामुन। वैद्यक ग्रन्थों के गुण (भै० नित्यशीतलं तीक्ष्णं स्वादु लेखनं कटु चक्षुष्यंतिक्तं ग्राहकं मधुरं स्निग्ध हिक्का क्षय पित्त विष कफघ्नं नेत्रदोषहरं रक्तपित्तघ्नं च। (रा० नि० व० १३) शीतलं कटुतिक्तं कषायं चक्षुष्यं रसायनं कफ वात विषघ्नं च। वेद—१ अक्ष्यं (नेत्रहित कर्त्ता) घोरात चक्षुषः पाहि ६ (नेत्रों की भयानक रोगों से रक्षा करने वाला) तक्मा मंत्र (क्षय ज्वर नाशक) वलास (कफ श्वास हर्ता) अहि (सर्प विनाशक) मनुष्य, गौ, घोड़ों का जीवनदाता, मानसिक व्यथाओं को दूर करने वाला, पाण्डुरोगहर्ता, शाप खो दूर करने वाला दुष्ट विचारों व दुश्वप्नों को दूर करने वाला, पेट के रोग, बर्थ मोटापा को दूर करने वाला है। (कौ० ७।८) दीर्घायु के लिये अञ्जनमणि को अभिमन्त्रित कर धारण करे। (न० क० १७) हाथी, घोड़े, गौ आदि चौपायों के विनाश से रक्षार्थ ऐरावती शान्ति करे और (न० क० १९) उपरोक्त सूक्त से अभिमन्त्रित अञ्जनमणि बन्धन कराये। यह अञ्जन के गुण हैं।

कां ४ सू० ६ ऋ० १-१० भृगुः। ऋषिः। त्रैकाकुदाञ्जनम्। देवता। अनुष्टुप् २ ककुम्मती, ३ पथ्यापङ्क्ति अभिचारादि जनित उत्पाद्विनाशने, स्वस्त्ययने भैषज्य कर्मणि मणिधारणे च विनियोगः।

एहिं जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम्। विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥१

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि। अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥२

उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥३

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः। ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्। नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५

असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत। दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥६

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्। सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः । वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥८

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि । यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥९

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे । उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०

कां० ४ सू० ९ "एहिजीवम्" १-अञ्जन घास जीवों की अपमृत्युओं से रक्षक, पार्वतीय प्रदेशों में होते वाला नेत्र हितकारी, समस्त देवों द्वारा प्रदत्त, सुख स्वरूप, जीवन की सीमा रूप यहाँ पधार । २-हे आञ्जन घास ! तू पुरुष रक्षक, गौरक्षक, वेग से दौड़ने वाले घोड़ों की रक्षा में तत्पर रहने वाला है । ३-हे अञ्जन ! तू निस्सन्देह संरक्षक है, और दोषों का निवारण कर्त्ता है । तू अमृत का ज्ञाता, मृत्यु विनाशक, जीवों को पुष्टि दाता तथा पाण्डु कामला, प्लीहा की भेषज है । ४-हे अञ्जन ! तू अङ्ग-अङ्ग, गांठ-गांठ और सन्धि शरीर के मध्य में रहने वाले प्राणों के तुल्य प्रभावशाली है । ५-हे अञ्जन जो तुझे धारण करता है उस पर शाप, क्रूर दृष्टि, कोशा, घातपात, शोक, दुःख, सन्ताप उत्पीड़न के मूल कारणों का प्रभाव नहीं पड़ता है । ६-हे रञ्जन ! तू दुष्ट सङ्ग जनित दुष्ट विचार, दुष्वप्न, दुष्कर्म, अशुद्धता, मलिनता, दुष्ट हृदयता तथा भयङ्कर नेत्र विकारों से हमारी रक्षा कर । ७-हे अञ्जन ! इन सबका मभंञ्ज मैं सत्य वक्ता असत्य भाषण नहीं करता । हे मानव ! मैं इस (अञ्जन धास से) मनुष्यों, घोड़ों गौओं आदिकों को आरोग्य प्रदान करता हूं । समस्त ज्वर, कफ जन्य रोग, उदरावर्त रोग, अथवा सर्पादि विष एवं विष जन्य समस्त व्याधियाँ, इस अञ्जन के प्रयोग से दूर होते हैं । यह ऊँचे पर्वतों पर के पदार्थों से बनता है (त्रिक्कुद) कुकूचीना (द्रोणगिरी) पर्वत शिखरों में उत्पन्न होता है । ९-जो त्रिककुद (कुकूचीना, द्रोणगिरि) पर्वतीय हिम प्रदेशों में उत्मन्न होता है, वह सब पीड़ाओं को दूर भगाता हुआ, समस्त दुष्टों, दुष्ट जनित कर्म, दुष्ट विचारों का निवारण करता है । १०-यदि तू त्रिककुद पर्वत पर उत्पन्न हुआ हो, तुझे याभुन अर्थात् यमुना प्रदेश जन्य भी कहा जाता है । ये दोनों ही कल्याणकारी हैं । हे अञ्जन ! तू उन नामों वाला हमारी रक्षा कर ।

कां. १९ सू. ४५ [१-१०] भृगुः । आज्जनम्, मन्त्रोक्त देवताः । १-२ अनुष्टुप्ः ३, ५ त्रिष्टुप्ः ६-१० एकावसाना महावृहती (६ बिराट्, ७-१० निचृत्) उपर्युक्त सर्वव्याधि भैषज्ये, मणिधारणे च विनियोगः ।

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् । चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥१

यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे । अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२

अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४

आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥५

अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६

इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सोमो॑ मा सौम्यैनावतु प्राणायांपानायायुंषे वर्चंस ओजंसे तेजंसे स्वस्तयें सुभूतये स्वाहा ॥८
भगो॑ मा भगैनावतु प्राणायांपानायायुंषे वर्चंस ओजंसे तेजंसे स्वस्तयें सुभूतये स्वाहा ॥९
मरुतो॑ मा गणैरंवन्तु प्राणायांपानायायुंषे वर्चंस ओजंसे तेजंसे स्वस्तयें सुभूतये स्वाहा ॥१०

कां. १९ सू. ४४ [१-१०] भृगुः। आञ्जनम्, ८-९ वरुणः। अनुष्टुप्; ४ चतुष्पदा शंकुमती उष्णिक्; ५ निचृद्विषमा त्रिपदा गायत्री। उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः।

आयुषोऽसि प्रतरंणं विप्रं भेषजमुंच्यसे। तदांञ्जन त्वं शंतात शमापो अभंयं कृतम् ॥१
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः। सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥२
आञ्जंनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम्। कृणोत्वप्रमायुकं रथंजूतिमनांगसम् ॥३
प्राणं प्राणं त्रांयस्वासो असवे मृड। निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्। वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५ (क्रमशः)

इसकी उपरोक्त रोग निराकरण सामर्थ्य के साथ पाण्डुरोग, सन्धिवात, यक्ष्म; अन्य के द्वारा दिया शाप, अन्य कृत कृत्या, अभिचार, अभिशोक, गति प्रतिबन्धक, विघ्न, अशोभन-अभिचारार्थ प्रयुक्त मन्त्र जनित दोष, जन्मान्तरीण पाप जनित दोष, क्रूर नेत्र दृष्टि जनित दोष, जीर्ण ज्वर, सान्निपातिक ज्वर, सर्प विष जन्य दोष, यातुधान, राक्षस जनित पीड़ा, गौ अश्व, पुरुषों की, बालग्रह जम्भादि गृहीत दोष शमन सामर्थ्य भी है। यही शख के भी गुण हैं। कौ० ७।६ न० क० १७ व १६।

अथर्ववेदीय शौनकीय शाखोक्त "कर्मज भव व्याधि दैवी-चिकित्सा"

कुष्ठ रोग—वेदोक्त नाम—१. आसुरी २. कृष्णा ३. श्यामा ४. रामा ५. आसिक्नी ६. कुष्ठ।

कौशिक सूत्रोक्त—१. रमाभृङ्गारक [भृङ्गारिका] २. कृष्णानीली ३. असिक्निनी ४. तिमिरक [रजनी मोतिका] मेथिका ५. कुष्ठ ६. नवनीत।

दारिल—१. भृङ्गराज २. हरिद्राभ्याम् [हल्दी, दारुहल्दी] ३. इन्द्रावारुणी ४. नीलिका ५. पुष्या ६. कुष्ठ ७. नवनीत।

हिन्दी नाम—श्वेत पुष्प का काला भाँगरा २. हल्दी दारुहल्दी दोनों ३. ऐन्द्रायण ४. काली नीलिका [गहरी पत्ती नील फूल की बूटी] ५. मोथा ६. कुष्ठ कूठ-कुठ ७. गौ का मक्खन।

कां० १ सू० २२ "श्वेत कुष्ठ शमनार्थ" (नक्तं जातस्योषधेरामे कृष्णे असिक्नि च इदंरजनीरजय किलासं पलित चयत्) ॥१॥ (कलासं चपलितं च निरितो नाशयामृषत्—अस्थिजस्य किलासंस्य तनूजस्य च। यत्त्वचिः दूष्या कृतस्य---॥३॥ कुष्ठ नाशन—आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासं भेषजमिदं किलासनाशनम् ॥(१।२४)। कां ६ सू० ९५ ऋ९ १ उत्तरार्द्ध—तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमतन्वतः। १ कौ० सू २४-२१ क्रोड लोमानि प्रतुना संदिह्य जातरूपेणादिवाप्य। २१ नक्तं जाता सुपर्णोजात इति मंत्रोक्तं शकृतालोहितं प्रघृष्यालिम्पति।२२। पलितान्याच्छिद्यः।२३। (दारिल) श्रुतंस्विचं मंत्रोक्तं (श्वित्र) ततोगोमयेन प्रकृष्य यावल्योहितंश्वित्रं स्थानं आगतं मन्त्रोक्तैर्द्रव्यैरङ्गंलिम्पति। कानितानि रमा, भृगारक (भृगरिका—कृष्णा) नीली, असिक्नी, तिमिरक—रजनी मोतिक (मेथिका) प्रती० विकल्प मोथा। केशव-अथ श्वेत कुष्ठ भैषज्यान्युच्यते। श्वेतकुष्ठं गोमयेन प्रमृष्याबल्लोहितं दृष्ट्वा भृङ्गराजं हरिद्राभ्यां इन्द्रवारुणी,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नीलिका, पुष्पा, एतापञ्चं पिष्ट्वा कुष्ठ प्रलिम्पति। दारिल—आच्छाद्यः अच्छिद्यः । मंत्रोक्तैः आलिम्पति आच्छेदनमालेपनम् । केशव—पलितानि छित्वाघृष्ठ्वा अवलिम्पति । कौ० कं० ४१।१-७ ।

प्रतीक—अथर्ववेद (१।२३ व २४), (४-१५),(७-१८) समासानि कुष्ठ भेषज्यानि श्वेतपलितनाशनं दुर्भिन्नं नाशनञ्च । "शुक्लवासवो" (शुक्ल।अशवो) यस्य शुक्ल प्रसूत ।

रोग लक्षण—१-किलास (गलने वाला, वहने वाला) २-पलित (श्वेत) ३-पृषत (धब्बे आदि अन्य) ४-दूष्या कृतस्य (दोषपूर्ण कृत्य) दोषी आचरण. आचार हीन कुल दोष तथा व्यक्तिगत आचार दोष ५-अस्थिजस्य (अस्थिगत दोषों से)६-तनूजस्य (शारीरिक, माँस, मज्जा तथा रक्त दोष) ७-त्वचि (त्वचा के आन्तरिक दोष) । अथर्ववेद कां ७ सू. ११२ ऋचा १ सूर्य रश्मिचि० राजयक्ष्मा में ही पढ़ें ।

उपरोक्त कुष्ठ (सभी प्रकार के) मरुद्गणों के दैवी दोष के कारण होते हैं । कौ० [२६।२४], [४१।१] तथा [३०।१२] में जलोदर रोग भी मरुद्गण दोष से कहे गये हैं । कौ० ४०।७ में मरुद्गण की सामिग्री में विशेष साठी चावल [कृष्ण व्रीहि] कृष्ण गौ पय तथा घृत, पटेर की समिधा [पञ्च समिधा] हैं । इनके निवारणार्थ मरुद्गणों का होम सर्वोपरि भैषज्य हैं तदनन्तर उपरोक्त पाँचो वस्तुओं को उपरोक्त सूक्त "नक्तं जातः" १।२३ तथा "सुपर्णो जातः" १।२४ से अभिमन्त्रित कर लेप करें । यहाँ पाँचों सभी कुष्ठों के लिये निर्दिष्ट हैं ।

गण्डमाला- कौ० ३१।१६-१७ दारिल—१-शंख को घिसकर अभिमंत्रित कर लेपें । २-श्वान या कुक्कुट या दोनों ही की लार (लाला) अभिमन्त्रित कर लेपें । ३-जोक तथा गृहगोधिका को अभिमन्त्रित कर गण्डमाला से चिपटायें तथा दूषित रुधिर निकाल दें । ४-सैंधा नमक पीसें, अभिमंत्रित कर बुरकें, ऊपर मुखकी लार लगायें। "अपचितं"६।८३ "आसुस्रसः" ७।७६ से अभिमंत्रित करें ।

१-"अपचितां" कौ० ३२।८ [७।४१-१-२] तथा उपरोक्त दोनों अर्थात् तीनों ही से बाँस के धनुष को काली ऊन के धागों तथा बाँस और दाम की जड़ की जटाओं के भूसे से गर्म कर शर से गण्डमाला को प्रत्येक ऋचा से वेधन करें। शर ३ हों। ४ शर से चौथी ऋचा से गले की गण्डमाला का वेध करें ।

२-काली ऊन तथा ज्या [तांत] से तप्त हुए जल को अभिमन्त्रित कर उषा काल में रोगी को छींटे दें।

३-गण्डमाला से उत्पन्न राजयक्ष्मा में "यः कीकसाः" ७।७६-३ इन ३ ऋचाओं से वीणा की तांत के टुकड़ों को अभिमंत्रित कर बाँधे ।

४-स्वयं गिरे हुए वीरिण [वन्ना] के ३ टुकड़ों को एकत्रित कर अभिमन्त्रित कर बाँधे ।

प्रायः कुष्ठ रोग के दो भेद हैं । १. किलास—गलने वाला, वहने वाला । २. पलित—श्वेत धब्बों का श्वेत कुष्ठ ।

वेद विहित निदान—**१. दूष्याकृतस्य**—दोषयुक्त कृत्य, दोषपूर्ण आचरण आचारहीन कुल दोष या व्यक्तिगत दोष से होता है ।

२. अस्थिजस्य—अस्थिगत दोषों से **३. तनूजस्य**—शारीरिक माँस, रक्त दोषों से । **४. त्वचि**—चमड़ी के आन्तरिक दोषों से ।

उपचार—"नक्तं जाता" कां० १ सू० २३ "सुपर्णोजातः" कां० १ सू० २४ में वर्णित [कौ० ४।२] के अनुसार "भृङ्गराज हरिद्रा इन्द्रावारुणी, नीलिका" को पीसें, श्वेत धब्बों को जंगली गौ के ही सूखे गोमय से घिसकर ऐसा कर दे कि खून झलकने लगे उपरोक्त पिष्टी को इन दो सूक्तों से अभिमन्त्रित करें पुनः इन दोनों ही सूक्तों का जप करके लेप कर दे ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पलित (किलास)—को स्थान की गली हुई हड्डी या चर्म जो भी हो उसे सावधानी से [शरीर से] अलग हटाकर पूर्व भाँति से अभिमन्त्रित तथा जप के साथ लेप करे।

इन्हीं उपरोक्त २ सूक्तों से मरुद्‌गण के निमित्त आज्यहोम–वृष्टि कर्म में वर्णित मारुत कर्म करें। "योगिरिश्व-जायथा" पृष्ठ५३०-५३१पर मन्त्र हैं। कां०५ सू० ४ इससे राजयक्ष्मा, कुष्ठ रोग व कैंसर [वर्तमान] दोषी फोड़े [काला बैंकर आदि] के निवारणार्थ "कुष्ठ" नाम की औषधि" को गौ के नवनीत [मक्खन] में मिला अभिमन्त्रित कर पुनः जपकर पूर्व भांति खुरचकर व कुरेदकर लेप करें। कां० ४-४ तथा इस सूक्त से इन्द्रदेव के निमित्त घृत होम करें।

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः। न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६

वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः। अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥७

बह्विदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः। तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥८

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम। तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥९

मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन। तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥१०

कां० १ सू० २३ ऋ ४ अथर्वा ऋषिः। वनस्पतिः [असिक्नी] देवता। अनुष्टुप् छन्दः। श्वेत. कुष्ठ शमने भैषज्ये होमे च विनियोगः।

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च। इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥१

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥२

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव। असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥३

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि। दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥४

कां० १ सू० २४ ऋ ४ ब्रह्मा ऋषिः। आसुरी वनस्पति देवते। अनुष्टुप् २ निचृत्पथ्यापंक्ति छन्दांसि कुष्ठ रोग शमने, भैषज्ये होमे च विनियोगः।

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ। तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥१

आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम्।
अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् ॥२

सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता। सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥३

श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता। इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥४

अथ बीजारोपण तथा केश संवर्द्धन विधि

कां० ६ सू० ३० ऋ० ३ उपरिबभ्रवः। ऋषीः। शमी देवता। अगती। २ त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टिः। छन्दांसि। यवादि धान्यारोपणः, केश संरक्षणे सम्बर्द्धने च विनियोगः। मन्त्र पृष्ठ ५५५ पर पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋचा १से जौ आदि धान्य बोने, प्रथम हल चलाने से पूर्व धान्य जो भी बोना है उसमें शहद [गुड़] मिलायें, शमीपत्र, स्वर्ण आदि रखकर, पूजाकर, अभिमन्त्रित कर प्रथम देवराज इन्द्र जो हल अधिष्ठाता, मरुद्गण जो हल खींचने वाले हैं, उनकी पूजा प्रार्थना के साथ उनके निमित्त पृथ्वी में नीचे दबायें और दान दें। इससे धान्य के विघ्न शमन होंगे, अधिक अन्न की उत्पत्ति होगी, जो सर्वप्रकार से कल्याण प्रद होगी।

ऋचा २ व ३ से शमीपत्र, शितावर को असमय में ही बाल क्षीण हो जाने वालों की; वृद्धि बन्द हो जाने वालों की; वृद्धि बन्द हो जाने आदि के रोग की जो दुर्भाग्य का लक्षण है; दूर करने के निमित्त" लें। नमक मिलाकर इन ऋचा २ व ३ से अभिमन्त्रित कर बालों की जड़ों में मलें। इससे सिर की गञ्ज दूर होगी, केश उग आयेंगे, बढ़ेंगे, नरम सुन्दर होंगे।

कां० ६ सू० ९५ ऋ० ३ भृग्वाङ्गिराः। ऋषिः। वनस्पतिः। देवता। अनुष्टुप् छन्द। राजयक्ष्म, कुष्ठादि रोग शान्त्यर्थं। कुष्ठारव्यौषधि मिश्रित नवनीतं "योगिरिष्वजायत" (कां० ५।४-३-४) इत्येतद्युक्तं, अभिमन्त्रणे भैषज्ये विनियोगः।

अ॒श्व॒त्थो दे॑व॒सद॑नस्तृ॒तीय॑स्यामि॒तो दि॒वि। तत्रा॒मृत॑स्य॒ चक्ष॑णं दे॒वाः कुष्ठ॑मवन्वत ॥१

हि॒र॒ण्ययी॒ नौर॑चर॒द्धिर॑ण्यबन्धना दि॒वि। तत्रा॒मृत॑स्य॒ पुष्पं॑ दे॒वाः कुष्ठ॑मवन्वत ॥२

गर्भो॑ अ॒स्योष॑धीनां॒ गर्भो॑ हि॒मव॑तामु॒त। गर्भो॒ विश्व॑स्य भू॒तस्ये॒मं मे॑ अग॒दं कृ॑धि ॥३

कुष्ठ नाम की औषधि में मक्खन मिला, अभिमन्त्रित "कुष्ठलिङ्गागण" के सूक्तों से करें। रोम-रोम में उल्टा रोगी के मलें। कौ० ४।४

कां० ६ सू० ९५ "अश्वत्थो देवस" १-यहाँ भूलोक से तीसरे द्यौलोक में देवों का आश्रय भूत अश्वत्थ वृक्ष है वहाँ अमृत के दर्शन होने के समान, कुष्ठ औषधि को देवों ने प्राप्त किया है। २-सोने की बनी और सुवर्ण बन्धनों से बँधी नौका, द्यौलोक में चलती हैं। जहाँ अमृत के पुष्प के तुल्य "कुष्ठ" औषधि को देवों ने प्राप्त किया है। ३. तू औषधियों का मूल है। हिम (बर्फ) वालो का गर्भ भी तू है, सब जीव मात्र का गर्भ है, तू मेरे इस रोगी को नीरोग कर। कुष्ठ का उल्लेख कृषि पशु सम्बर्द्धन प्रकरण में पीछे छप चुका है। इसी की अनुभूत औषधि का अ० १ तथा ४ में उल्लेख किया जा चुका है, पढ़ें, समझें करें।

अथ राजयक्ष्मोत्पत्ति उपचार

अथर्ववेदीय शौनकीय शाखोक्त "कर्मज भव व्याधि" राजयक्ष्मादि तथा गण्डमाला (वर्तमान) "कैन्सराख्य-व्याधि" की अथर्ववेदोक्त भैषज्य—१-शख २-गृहगोधिका ३-लवणम् ४-गोमूत्र ५-दन्तमल ६-स्तुक ७-वाणापर्णी (सरफोंका) ८-वीणातन्त्री खण्ड ९-वाद्यखण्ड १०-शंख खण्ड ११-पृश्निपर्णी १२-काली ऊन १३-सूर्य किरण स्नान व किरण तप्त जलपान १४-स्वर्ण जल।

मूल पाठ—अथर्व संहिता कां० ६ सू० ८३ "अपचित" अ० वे० कां ७ सू ८० "आसुस्रसः" ऋग्वेद ३।८-१ "अञ्जन्ति त्वामध्वरे" तै० सं० ६।२।३-१ "इषुसमःकुर्वंत अग्निम् अनीकं सोमं शल्यम्" अ० स० ७।८१ "विद्यवंते" तथा अ० स० ७।९८ "अरचित्तोलोहिनीनाम्" तै० स० २।३-५-२ "यज्जायाम्योविन्दन" तै० ब्रा० २।३-५-२ कौ० सूत्र क० ४ सूत्र ८ 'विद्यवंते" कां० ७।८१-१ (कृणमोहविर्हे) यस्व (यजमान के) घर में रोग के विनाश करने में पूर्ण समर्थ इन्द्रादि देवों को देवता के उद्देश्य से किया गया (हवि) आज्यादि होम ही एकमात्र भेषज है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसे (कैन्सर) गण्डमाला के ५ भेद कहे हैं। १-काली २-श्वेत ३-चितकबरी ४-साधारण लाल तथा ५-अधिक लाल। अ० वे० कां० ६ सू० ८३ ऋ २

इसकी जड़ धमनियों में होती है। इनमें फोड़ों वाली, गलने वाली और सड़ने वाली ये तीन भेद हैं। यह प्राणी के गण्ड स्थान, वास्ति स्थानों में भी होती है। इनमें कुछ लाल मिश्रित श्वेत, दूसरी अत्यन्त श्वेत, तीसरी कृष्ण वर्ण की कही हैं। इनमें प्रथम २ लोहरी होती हैं। ये वात, पित्त, श्लेष्म दोषों से अनेक वर्ण की है। इनमें १. असूतिका [पूयस्राव], चिरपाका अवस्था की। २. रामायणी [जिसमें से प्राण वायु का संचार होता है—वह नाड़ी, उसका प्रधान मार्ग, बहने का मार्ग, व्रण रूप अर्थात् एक स्थान से इस मार्ग से अन्र स्थानों में भी फैलने वाली] ३. ग्लो [मूत्र स्थान से मूत्र सेक से गिरने वाली] ४. गलुन्त [हाथ, पैर आदि को सन्धियों में उत्पन्न] ५. गड़ू विनाशिनी, समस्त व्रण रूप हो जाने वाली होती है।

इनमें अ० कां० ६ सू० ८३ में वर्णित (अपचित) कां० ७ सू० ८० में वर्णित (आसुस्रसः) है। इनमें प्रथम "अपचित" साधारण। द्वितीय [द्रोहजन्य] तृतीय [असाध्य] पाप, शाप, कृत्या, दैवी, आसुरी दोषों से उत्पन्न कही गई है।

(१) आसुस्रसः [७।८७-१] लगातार पूय आदि से बहने वाली (२) व्यभिचारिणी स्त्री के दोष से उत्पन्न (३) गोप्य सन्धियों (४) गोप्य स्थानों में पीव की भांति बहने वाली। इनमें प्रथम रसहीन होती है, पश्चात् बढ़कर पककर लाव की भाँति विविध स्थानों से विविध प्रकार से फूट-फूट कर बहने वाली तथा गले के किसी भी भाग में होने वाली, मुख आदि पर होने वाली, विशेषकर गुप्त स्थानों में फैली रहती है अथवा उरू आदि की सन्धियों, कमर, आंत, पेडू वाली सभी क्षार वस्तुओं के विना प्रयोग के ही बहती हैं।

अ० वे० कां० ७।८० १. "कीकसा" अस्थियों में फैलने वाली २ (तलीद्यम) अस्थियों के समीप मांस को पकड़कर बैठने वाली ३. (ककुदि) दुःस्साध्य राजयक्ष्मा, ग्रीवा आदि की शरीरगत सर्वधातु शोषक ४. (जायान्य) निरन्तर स्त्री सम्भोग जनित। तैतरेय संहिता २।३।५-२। शमन करने में समर्थ है। जायान्य शब्द रोग विशेष का नाम है, **प्रजापतेस्त्रयस्त्रिंशद् दुहितर आसन्। ताः सोमायराज्ञेददात्। तासाँ रोहिणीम् उपैत। इति प्रक्रम्य समाम्नायते। तासां रोहिणीम् एवोपैत्। तं एते यक्ष्म आछंत्। तद् राजयक्ष्मस्य जन्म। यत् पापीयान्। अभवत् तत् पाप यक्ष्मस्य। यज्जायाभ्योविन्दत् तज्जायेन्यस्य य एवं। एतेषां जन्मवेद नंनम् एते यक्ष्मा विन्दन्ति।** यह अहिंसक के शरीर को सुखाती है, शरीरगत समस्त धातु शोषण करती है। तैत्तिरीयश्रुतिः २।३।५-२ "यज्जायाभ्यो विन्दत् तज्जायेनस्य"। इसके अतिरिक्त प्रायः पूर्व पापजन्य, सर्प गौ, सती, विप्रादि शाप जन्य तथा विष जन्य होती है। अ० वे० कां० ७।७६-२ हड्डी गले कन्धों और गुप्त स्थानों में होने वाली। अ० कां० ७।७६-४ हड्डी, तलवेः पीठ, और दोष जन्य। कौशिक ४।७

उपचार—(१) शंख पीसकर श्वान की लार में मिलाकर लेपें (२) जोंक या छिपकली चिपटायें (३) सेंधें नमक को बुरके (४) गौ मूत्र से धोयें सेकें (५) दांतों के मल को लेपें (६) स्तुक-दुस्साध्य को वाण की आकृति वृक्ष (वाणापर्णी) अथवा दाभ की नोंक से छेदें, काली ऊन तप्त जल में डालकर सेकें उसे ही (७) तांत या शंख पीसकर बांधें (८) मन्त्र गृह्य सूत्रोक्त भैषज्म करें। अन्य कायज रोग निवारणार्थ अ० १ व इसी में औषधियां, मंत्र दिये हैं मनन करें।

कां० ७ सूक्त ८०-८१- अथर्वा ऋषिः। १-२ अपचिद्भैषज्यं, ३-६ जायान्यः, इन्द्रः। अनुष्टुप्, १ विराट्, २ परोष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ भुरिक् गनुष्टुप् छन्दासि गण्डमाला भैषज्ये विनियोग।

आ सुस्रसः सुस्रसो असंतीभ्यो असत्तराः। सेहोररुसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या ग्रैव्या॑ अप॒चितोऽथो॒ या उ॑पप॒क्ष्या॒ऽः । वि॒जाम्नि॒ या अ॑प॒चितः॑ स्वयं॒स्रसः॑ ॥२

यः कीक॑साः प्रशृ॒णाति॑ तली॒द्य॒ऽमव॒तिष्ठ॑ति । निर्हा॒स्तं सर्वं॑ जा॒याऽन्यं॒ यः कश्च॑ क॒कुदि॑ श्रि॒तः ॥३

प॒क्षी जा॒यान्यः॑ पतति॒ स आ वि॑शति॒ पूरु॑षम् । तदक्षि॑तस्य भेष॒जमु॒भयो॒ः सुक्ष॑तस्य च ॥४

वि॒द्म वै ते॑ जायन्य॒ जानं॒ यतो॑ जायान्य॒ जाय॑से । क॒थं ह॒ तत्र॒ त्वं हनो॒ यस्य॑ कृ॒ण्मो ह॒विर्गृ॒हे ॥५

धृ॒षत् पि॑ब क॒लशे॒ सोम॑मिन्द्र वृत्र॒हा शू॑र सम॒रे वसू॑नाम् ।

माध्यं॑न्दिने॒ सव॑न॒ आ वृ॑षस्व रयि॒ष्ठानो॑ र॒यिम॒स्मासु॑ धेहि ॥६

कां० ७।७८ ऋ० २ अथर्वाङ्गिरा ऋषिः । मन्त्रोक्ताः देवता, अनुष्टुप् छन्दः । गण्डमाला भैषज्ये विनियोगः ।

अ॒प॒चि॒तां लोहि॑नीनां कृ॒ष्णा मा॒तेति॑ शुश्रुम । मुने॑र्दे॒वस्य॒ मूले॑न॒ सर्वा॑ विध्यामि॒ ता अ॒हम् ॥१

विध्या॒म्या॑सां प्र॒थ॒मां विध्या॒म्युत मध्य॒माम् । इ॒दं ज॑घ॒न्या॒ऽमासा॒मा च्छि॑नद्मि॒ स्तुका॑मिव ॥२

क्षेत्रिय (खानदानी) रोग भेषज

माता, दादी, पिता के कुलों से, स्त्री संसर्ग से, पाप, शाप, कृत्या, अभिचार आदि के द्वारा उत्पन्न या उत्पत्स्यमान, क्षेत्रीय दोष, कुष्ठ, क्षय, श्वास, अपस्मार (मृगी-हिस्टीरिया) ग्रहणी दोष, पूति दोष, कण्ठमाला (कैंसर) के निवारणार्थ—*"उदगातां" अ० वे० कां० २ सू० ८ ऋ० १ में (तारके) अमीये सुभगे दिविविचृतौ नाम तारके। प्रेहामृतस्य यच्छताम् एतत्वद्धक मोचनम् ॥ यह मूल नक्षत्र का पर्यायवाची है। आम्नातम्—"बिचृतौ नक्षत्रम् पितरो देवताषाढा नक्षत्रम् आपोदेवता" ॥ (तै० सं० ४. ४. १०. २)—इन नक्षत्रों के उदयकाल में अर्थात् उषाकाल में—सभी प्रकार के, क्षेत्रे, परक्षेत्रे, पुत्र पौत्र शरीर में आये हुए, आने वाले की चिकित्सा करें।

चिकित्सा—१. शान्ति ओषधियों से युक्त शान्ति, तीर्थ आदि के जलों से पूर्ण घट को अभिमन्त्रित कम घर से बाहर रोगी को छींटे दे। और ऋचा २ "अपेयम्" से उषाकाल में, उपरोक्त जल को गर्म कर सेक दे। "ऋचा ३ वभ्रोः" से अर्जुन वृक्ष की छाल, जो का भूसा, तिलों सहित तिल की मञ्जरी एकत्रित पीसकर गर्मकर अभिमन्त्रित कर बांधे। इसी ऋचा से खेत की मिट्टी या कामी की मिट्टी, कच्चे पशु चर्म में लपेट कर अभिमन्त्रित कर बांधें। "नमस्ते लाङ्गलेभ्यः" इस ४ थी ऋचा से, उपरोक्त अभिमन्त्रित जल से बैल जुड़े हल के नीचे रोगी को विठाकर छींटे दें। "नमः सनिस्र साक्षेभ्य" इस पांचवी ऋचा से—शून्य घर (जिसमें कोई भी नहीं रहता हो। उसके पुराने खण्ड या खोंतर, या कौनें में, घर की छान का पूस डाले, उस पर रोगी को बिठायें, उस उपरोक्त घट के जल से छींटे दें पिलायें। ये क्रियायें सभी अलग-अलग करें, एक ही साथ न करें। * मन्त्र पृष्ठ ३८१ पर पढ़ें।

ऋचा ४ "नमस्ते लाङ्गलेभ्यः" के विषय में भगवान बादरायण ने कहा है "अभिमानि व्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्" (वा० २, १, ५) "हरिणस्य" कां० ३ सू० ७ सूक्त से उपरोक्त क्षेत्रीय रोग शान्त किये जाते हैं। हरिण के सींग की मणि—एवं कस्तूरी (बारहसिंहा, कालाहरिण) की सींग अभिमन्त्रित कर बांधे। उस श्रृङ्ग या भस्म को जल में डालकर पिलाये, उसी काले हरिण का चर्म को कील से जलाकर गर्म कील को जल में डालें, अभिमन्त्रित करें; उषाकाल में रोगी की छींटे दें; जौ तिल मञ्ज से होम करें; अभिमन्त्रित कर भात खिलायें। (कौ० ४।३) "कौमारीं व्याधितस्य बालस्य" (नक्षत्र कल्प १७) में वर्णित कौमारी नाम की महा शान्ति में भी हरिण के सींग के अग्र भाग की मणि बांधने आदि का प्राविधान है। 'हरिणस्येति विषाणाग्र कौमार्याम्' (न० क० १६) "आप इद वा" कां० ३ सू० ७ ऋ० ५—में जल ही एक मात्र समस्त रोगों की भेषज है, "अप्सु मे सोमो अब्रवीद अन्तर्बिस्वानि भेषजः" [ऋ० वे०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१,२२,२०] अ.२ में पढ़ें। जल ही को स्नान, पान, आचमन, छींटे के रूप में परम औषधि समस्त रोगों के निराकरण में समर्थ माना है। इस उषाकाल के स्नानादिसे, उषा जलपान से वंश परम्परागत उपरोक्त रोग, तथा मिथ्याऽऽहार-व्यवहार जनित सामयिक रोगों का निराकरण होता है। ये सभी राजयक्ष्मा, कुष्ठ, गण्डमाल, श्वास, अपस्मारादि के उपचार हैं।

शस्त्रादि घात-जनित अस्थिभङ्गादि भैषज्य

वेदोक्त भैषजनाम—लाक्षा—रोहिणी, अरुन्धती अथर्ववेद काण्ड ४ सू० १२; कां० ५ सू० ५;

त्वाक्षा के नाम – स्परणी, सिलाची तथा कनीना कहा है।

लाक्षा की उत्पत्ति—भद्र, प्लक्ष, पीपल, खैर, धव, वट-पलाश, बदूल हैं। आदि

गुण—जीवनप्रद, रक्षापरायण, भरणपोषण समर्थ, आरोग्यप्रद, विजयप्रद, रक्तप्रवाह रोकने में समर्थ धातु, बल, वृद्धि करके पूर्ववत् पुरुषार्थ, बल, वीर्य, सम्पन्न करने वाली कही गई है।

वाण, मुद्गर, अंकुश, त्रिशूल आदि कारणों से अस्थिभङ्ग या रक्तप्रवाह या नाड़ी भग्न अथवा गहरे व्रण या घाव को यथावत यथास्थान जोड़ें, ऊपर से मानव के बाल तेल में भिगोकर रक्खें। वांस की खबच्चों से उसे ज्यों की त्यों जोड़कर बाँधें। रुग्ण को गोदुग्ध, गोघृत, शहद मिला उसी में लालवर्ण की लाक्षा क्वथितकर मिलाकर पिलायें। इसी के क्वथित जलसे उषाकाल में धोयें या उस पर पानीढालें, उसी क्वथित लाक्षा को बाँधें। यह बहते खून को रोककर नया रक्त बनायेगी, वेदना, मूर्छा दूर होगी, अङ्ग, मांस, मज्जा, हड्डी नया चर्म शीघ्रता से उत्पन्न करेगी, सभी शारीरिक धातुओं को पुष्ट करेगी, हड्डी जोड़ेगी, रोम तथा बालों को तत्परता उत्पन्न करेगी।

२—इसी प्रकार "रोहिणी" १ तोला १ छटांक घी में पिलाने से शीघ्र लाभ होते अनुभव में आये है।

३—कां६ सू० १२७ ऋ. २ में वर्णित चीपद्र (चीड़) बृहत्पलाश राजयक्ष्मादि अनेक असाध्य व्याधियों की भेद, श्रुति गृह्यसूत्रोक्त भेषज है। यह अस्थिभङ्ग, कैन्सर, गण्डमालादि, शीर्षण्य रोगों की भी अनूठी भेषज कही गई हैं।

किसी प्रकार की चोट से प्रवाहित रुधिर या हड्डी के टूटने पर हड्डियों को जैसी की तैसी तत्काल जोड़ें, उस पर तेल में भिगोकर बाल रक्खें, बांस की फंसटें ठीक २ लगाकर रुई आदि ऊपर लगाकर बांधें। तदनन्तर वृक्षों की लाक्षा को जल में क्वथित करें, अभिमन्त्रित निम्न सूक्त से करें, घाव के उषः काल में धोयें, या क्वथित जल से धीमीधारसे धो यें। उसी को घाव, चोट पर बाँधें, घी और दूध में दोनों ही को अभिमंत्रितकर रोगी को पिलायें, कां०४।१४

यह लाल वर्ण की लाक्षा वहते खून को रोक देती हैं। और नया रक्त उत्पन्न कर अङ्ग को बढ़ाती भी है। छटवीं धातु मज्जा को बढ़ाती है, मांस की वृद्धि करती है, नये चर्म को उत्पन्न करती है। रोम और बाल उत्पन्न करती करती हैं, हड्डी को पूर्ववत् शीघ्रता से ठीक करती हैं। मन्त्र तथा औषधि के बल से शस्त्र के प्रहार से स्वस्थ हुए योद्धा पुनः पूर्ववत् अपना शौर्य रणभूमि में दिखाने में समर्थ होते थे।

कां० ५ सू० ५ ऋ० ९ अथर्वा। ऋषिः। लाक्षा। देवता। अनुष्टुप्, छन्द, पूर्वोक्त पूर्वोक्त शास्त्रभिघातादि शमन–भेषज्ये विनियोगः।

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः। सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥१

यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम्। भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥२

वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला। जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥३

यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम्। तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भुद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात् । भुद्रान्न्युग्रोधात् पुर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५
हिरंण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुंष्टमे । रुतं गंच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम् वा असि ॥६
हिरंण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे । अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बंभूव ते ॥७
सिलाची नामं कानीनोऽजंबभ्रु पिता तवं । अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्यं हास्नास्युक्षिता ॥८
अश्वंस्यास्नः संपतिता सा वृक्षाँ अभि सिंष्यदे । सुरा पंतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥९

लाक्षा के नाम स्परणी सिलांची निष्कृति कनीना हैं। भद्र, पिलखुन, पीपल, खैर, धव, वड़, ढाक, बबूल से उत्पन्न होती है। गुण—जीवनप्रद, रक्षा करने में समर्थ, भरण पोषण करने वाली, आरोग्यप्रद, विजयप्रद, वाण, मुग्दर, पाषाण आदि के व्रण को अविलम्ब ठीक करने वाली टूटे को जोड़ने वाली है। रक्त प्रवाह को रोकने वाली, धातुओं की वृद्धि करने वाली होती है।

कां० ५ सू० ५ "रात्री मातानामः" हे सिलाची वनस्पति ! तेरी माता रात्री, पिता आकाश और पितामह अर्यमा है। तेरा नाम सिलाची है, वह तू देवों की बहिन है। २—जो तेरा पान करता है, वह जीता है। तू मनुष्य की रक्षा करती है। सब जनों का भरण-पोषण करने वाली और आरोग्य देने वाली तू है। २—पुरुष को चाहने वाली कन्या के समान, प्रत्येक वृक्ष पर बढ़ती हैं। तू विजय करने वाली, और प्रतिष्ठित होने वाली है, तेरा नाम स्परणी भी है। ४—जो डण्डे से, और जो वाण से, अथवा जो रगड़ से घाव हो गया है। उससे तू बचाव करने वाली है, वह तू इस पुरुष को अच्छा कर। ५—भद्र पाकड़ पीपल, खैर, धव, वट, पलाशादि वृक्षों से निकलती है। हे घावों को भरनेवाली औषधि वह तू हमारे पास आ। ६—सुवर्ण रङ्ग की सौभाग्य प्रदायिनी, सूर्य वर्ण की, शरीर के लिये हितकारी हैं रोग दूर करने वाली तेरा नाम निष्कृति है, अतः तू व्रण या रोग के पास पहुंचती है। ७—हे सुवर्ण रङ्गवाली सौभाग्यशालिनी ! हे बलों वाली !हे लाक्षा नामक औषधि ! तू जलों की बहिन है, तेरी आतमावायु है। ८-सिलाची नामक औषधि कन्या के तुल्य है तेरा पालक वकरियों को पुष्ट करने वाला वृक्ष है। यम का जो गतिशील अश्व है, उसके मुंह से सींची गई है। ९—घोड़े के मुख से नीचे गिरी हुई, वह वृक्षों को सींचती है हे अरुन्धती ! चूने वाली और बहने वाली, वह तू हमारे पास आ।

—: शस्त्राघात चिकित्सा :—

कां. ४ सू. १२ ऋ. ७ ऋभुः। ऋषिः। रोहिणी—वनस्पतिः। देवते। अनुष्टुप् १ त्रिपदा गायत्री, ६ त्रिपदा यवमध्याभुरिग्गायत्री; ७ बृहती-छन्दासि। शस्त्राद्यभिघातजनित रुधिरप्रवाह निवृत्तये, अस्थि, प्रभृतिभङ्ग निवृत्तये भैषज्ये विनियोगः।

रोहंण्यसि रोहंण्युस्थश्छिन्नस्य रोहंणी । रोहयेदमंरुन्धति ॥१
यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि । धाता तद् भुद्रया पुनः सं दंधत् परुंषा परुः ॥२
सं ते मुज्जा मुज्ज्ञा भंवतु समु ते परुंषा परुः । सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥३
मुज्जा मुज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु । असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४
लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु छिन्नं सं धेह्योषधे ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स उत् तिंष्ठ प्रेहि प्र द्रंव रथः सुचक्रः सुंपविः सुनाभिः । प्रतिं तिष्ठोर्ध्वः ॥६
यदिं कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघानं ।
ऋभू रथस्येवाङ्गांनि सं दंधत् परुंषा परुंः ॥७

कां. ४ सू. १२ "रोहण्यसि" हे रोहिणी औषधि ! तू टूटी हुई हड्डी को पूर्णतया जोड़नेवाली है । इसको 'अरुन्धती भी कहते हैं । हे प्रतिबन्ध न करनेवाली औषधि ! तू इसको भर दे । (२) जो तेरा अङ्ग चोट खाये हुवे हैं, जो अंगजला हुआ है, और जो अङ्ग तेरे (अपने ही) अन्दर पिस गया है । पोषणकर्त्ता उस कल्याण करनेवाली औषधि से उस जोड़ को दूसरे जोड़ से पुनः जोड़ दे । (३) तेरी मज्जा मज्जा से बढ़े, और तेरे जोड़ से जोड़ बढ़ जावें । तेरे मास का छिन्न-भिन्न हुआ भाग बढ़ जावे, और हड्डी भी जुड़कर ठीक हो जावे । (४) मज्जा, मज्जा से मिल जावे चर्म से चर्म बढ़ जावे । तेरा रुधिर और हड्डी भी बढ़ जावे और मांस, मांस से बढ़ जावे । (५) हे औषधे ! रोम को रोम के साथ जमा दे । त्वचा को त्वचा के साथ मिला दे । तेरा रुधिर और हड्डी बढ़े, टूटा हुआ अङ्ग जोड़ दे । (६) वह तू उठ, आगे चल, अब तू उत्तम चक्रवाले उत्तम लोहे की पट्टी वाले, उत्तम नाभिवाले, रथ के तुल्य दौड़ तथा ऊँचा ही खड़ा रह । (७) यदि आरे के गिरने से घाव हुआ है, अथवा फेंके गये पत्थर से घाव हुआ है, तो जिस प्रकार बढ़ई, रथ के अवयवों को जोड़ता है, उसी प्रकार जोड़ से जोड़ जुड़ जावे ।

"अग्नेरिबास्य दहत" कां. ६ सू. २० ऋचा १ से ३ तक की ऋचाओं से पित्ताज्वर के उपशमनार्थं दावाग्नि में ताँवे के श्रुवे से घी का होम कर रोगी के शिर को धूनी दे (तपाये) अभिसर्शन करे ।

"व्रतोपवासैर्यै विष्णुर्नान्यजन्मनितोषितः । ते नराः मुनिशार्दूलग्रहरोगादिभागिनः ॥"

जिस प्राणी ने व्रत, उपवास, यज्ञ, उपासनादि से इस जन्म या जन्मान्तरों में विष्णु भगवान की आराधना (की आराधना) नहीं की, वे ही प्राणी ग्रह, रोग आदि से अभिभूत होते हैं यह ध्रुव सत्य है ।

कां. ६ सू. २० भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम् । १ अतिजगती, २ ककुम्मती प्रस्तारपङ्क्तिः । ३ सतः पङ्क्तिः ।

अग्नेरिंवास्य दहंत एति शुष्मिणं उतेवं मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिंच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमों अस्तु तक्मनें ॥१

नमों रुद्राय नमों अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुंणाय त्विषींमते ।
नमों दिवे नमंः पृथिव्यै नम ओषंधीभ्यः ॥२

अयं यो अंभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिंता कृणोषिं ।
तस्मै तेऽरुणायं बभ्रवे नमंः कृणोमि वन्याय तक्मनें ॥३

कां. १ सू. २५ भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनो ऽग्निः । त्रिष्टुप्, २-३ विराड्गर्भा, ४ पुरोऽनुष्टुप् ।

यदग्निरापो अदंहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि ।
तत्रं त आहुः परमं जनित्रं स नंः संविद्वान् परिं वृङ्ग्धि तक्मन् ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।
हूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥२
यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः ।
हूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥३
नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥४

कां. १ सू. २५ 'यदग्निरापो' यह शीतज्वर, सन्निपातज्वर, नारायणज्वर, रौद्रज्वर निवारण विधि है। यह ज्वर राजा वरुण का पुत्र है। जो अति आर्द्रजल प्रदेशों में प्रायः अपना कुप्रभाव बुरी तरह फैलाता है। इसे आजकल मलेरिया कहते हैं। इसी का वैदिक नाम 'हूडु, हूदु, हूद्रु, हुडु, रुडु, रुद्रु हूद्रु' हैं। अथर्ववेद की पिप्पलादशाखा की संहिता में 'हूडु' पाठ भी है। यह मराठी भाषा 'हुडहुडा' के शदृश ही हैं। इसे मराठी में 'हुडहुडा ताप' कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है, गति उत्पन्न करनेवाला, शरीर में कम्प उत्पन्न करनेवाला। मलेरिया या सन्निपातज्वर में कम्पन होना स्वाभाविक है। यह शीत को लेकर नित्य, दूसरे या दो दिन छोड़कर आनेवाला, तीसरे दिन या तीन दिन छोड़कर आनेवाला, जीवन दुखमय बनानेवाला, अग्निज्वाला समान; तीव्र तापवाला, पीड़ाकारक, अंग तोड़नेवाला, सारे शरीर में दर्द करनेवाला मंत्र २, ३, ४ में कहा है। मंत्र (१) धर्मपरायण जप योगादि साधनों से समाधि अवस्था में हृदय कमल में प्रविष्ट होते हैं, वही जीवनरस अमृत है। उसी रस को यह ज्वर प्रविष्ट होकर जलाता है। इसी कारण पीलक रोग, कामला रोग, पाण्डु रोग उत्पन्न करता है। आप् तत्व प्राणशक्ति का धारक है। इसीलिये इसे (आपोमय) आप तत्वमय प्राण कहा है। इसी तत्व को अर्थात् जीवन रस को यह शीतज्वर जलाता है। ऐकाहिक ज्वर, सततज्वर वेलाज्वर तथा उपर्युक्त समस्त ज्वरों. कामला, पाण्डु, पीत रोगादि निवारण में इसे जपें। लोह का कुठार अभिमन्त्रित कर, प्राण प्रतिष्ठा कर अग्नि में अग्नि तुल्य ही तप्त करें, उसे शीत जल में बुझायें। रोगी को बिना विस्तर की छिद्रवाली कुर्सी या चारपाई पर लिटायें या बैठायें। उसे चारों ओर से ऐसा ढकलें कि भाप सीधी रोगी को लगे। उसके उपरान्त जो शरीर से स्वेद निकले, उसे तौलिया से अन्दर ही अन्दर पोंछ कर खुश्क करें या कौड़ियों की भस्म शरीर पर बुरक दें। ऐसा चार दिन करें, तो उपर्युक्त ज्वरादि से निकल खड़े होते हैं।

कां. ७ सूक्त ११६ अथर्वाङ्गिराः। चन्द्रमाः। १ पुरोष्णिक्; २ एकावसाना द्विपदा आर्च्यनुष्टुप्।

नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे। नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने ॥१
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रतः ॥२

कां. ७ सू. ११६ 'नमो रूराय:' (रूर:) यह पित्तज्वर है, (च्यवनः) अति शीत से यह शरीर को कपाता है। (नोदनः) मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डालकर पागल सरीखा बना देता है। (धृष्णु) बेचैनी भयप्रद है। (शीत) शीत से आता है। (पूर्वकृत्वर्) इससे शरीर के सभी अवयव बिगड़ जाते हैं। (अन्येद्यु) एक दिन छोड़कर (उभयद्यु) २ दिन छोड़कर (अव्रत) जिसके आने का कोई नियम ही न हो, ऐसा ९ प्रकार का होता है। (वेदे वृत्रमिषेण ज्वर चिकित्सा) वेद में वृत्र के वर्णन से ज्वर चिकित्सा का उल्लेख है। मंत्र २ [इम मण्डूकं अभ्येतु] इस मेंढक के पास चला जावे का निर्देश भी है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन सभी प्रकार के ज्वरों के निवारणार्थं मेंढ़क को पकड़ कर शीतज्वर में पीत, पित्तज्वर में रक्त और वातज्वर में नील वस्त्र, कालज्वर में कृष्ण वस्त्र में बांधकर इन सूक्तों से अभिमन्त्रित कर, धूप देकर, ज्वर गृहीत की शय्या के नीचे बिटाकर या ऐसा बाँधकर कि मर न जावे, ऊपर रोगी को शय्या पर बिठा दें या लिटा कर इन सूक्तों सेनीम की टहनी से अ० २ के वारुण मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से छीटें दें।

कां. ५ सू. २२ भृग्वङ्गिराः। तक्मनाशनः। अनुष्टुप्, १ भुरिक्त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ५ विराट्पथ्याबृहती।

अ॒ग्निस्त॒क्मान॒मप॑ बाधताम॒ितः सोमो॒ ग्रावा॒ वरु॑णः पू॒तद॑क्षाः।
वेदि॑र्ब॒र्हिः स॒मिधः॒ शोशु॑चाना॒ अप॒ द्वेषां॒स्यमु॒या भ॑वन्तु ॥१
अ॒यं यो विश्वा॑न् हरि॑तान् कृ॒णोष्यु॑च्छो॒चय॑न्न॒ग्निरि॑वाभिदु॒न्वन्।
अधा॒ हि त॑क्मन्नर॒सो हि भू॒या अधा॒ न्य॑ङ्ङध॒राङ् वा॒ परे॑हि ॥२
यः प॑रु॒षः पा॑रुषे॒योऽवध्वं॒स इ॑वारु॒णः। त॒क्मानं॑ विश्वधावीर्याध॒राञ्चं॒ परा॑ सुव ॥३
अ॒ध॒राञ्चं॒ प्र हि॑णोमि॒ नमः॑ कृ॒त्वा त॒क्मने॑। श॒कम्भ॒रस्य॑ मुष्टि॒हा पुन॑रेतु महावृ॒षान् ॥४
ओको॑ अस्य॒ मूज॑वन्त॒ ओको॑ अस्य महावृ॒षाः।
याव॑ज्जा॒तस्त॑क्मं॒स्तावा॑नसि॒ बल्हि॑केषु न्योच॒रः ॥५
तक्म॒न् व्या॑ल॒ वि गद॒ व्य॑ङ्ग भूरि॑ यावय। दा॒सीं नि॒ष्टक्व॑रीमिच्छ॒ तां वज्रे॑ण॒ सम॑र्पय ॥६
तक्म॒न् मूज॑वतो गच्छ॒ बल्हि॑कान् वा परस्त॒राम्।
शू॒द्रामि॑च्छ प्रफ॒र्व्यं॑१ तां त॑क्म॒न् वीऽव धूनुहि ॥७
म॒हावृ॒षान् मूज॑वतो॒ बन्ध्व॑द्धि प॒रेत्य॑। प्रैतानि॑ त॒क्मने॑ ब्रूमो अ॒न्यक्षे॒त्राणि॒ वा इ॒मा ॥८
अ॒न्यक्षे॒त्रे न र॑मसे व॒शी सन्मृ॑डयासि नः। अभू॑दु॒ प्रार्थ॑स्त॒क्मा स ग॑मिष्यति॒ बल्हि॑कान् ॥९
यत् त्वं शी॒तोऽथो॑ रू॒रः स॒ह का॒सावे॑पयः।
भी॒मास्ते॑ तक्मन् हे॒तय॒स्ताभिः॑ स्म॒ परि॑ वृङ्ग्धि नः ॥१०
मा स्मै॒तान्त्सखी॑न् कुरुथा ब॒लासं॑ का॒सम॑द्यु॒गम्।
मा स्मातो॒ऽर्वाङैः पुन॒स्तत् त्वा॑ तक्म॒न्नुप॑ ब्रवे ॥११
तक्म॒न् भ्रात्रा॑ ब॒लासे॑न॒ स्वस्रा॒ कासि॑कया स॒ह।
पा॒प्मा भ्रातृ॑व्येण स॒ह गच्छा॒मुमर॑णं॒ जन॑म् ॥१२
तृ॒तीय॒कं वि॑तृ॒तीयं॑ सद॒न्दिमु॒त शा॑र॒दम्। त॒क्मानं॑ शी॒तं रू॒रं ग्रैष्मं॑ नाशय॒ वार्षि॑कम् ॥१३
ग॒न्धारि॑भ्यो॒ मूज॑वद्भ्यो॒ऽङ्गेभ्यो॑ मग॒धेभ्यः॑। प्रै॒ष्यन् जन॑मिव शे॒वधिं॑ त॒क्मानं॒ परि॑ दद्मसि ॥१४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ५ सू. २२ 'अग्निस्तक्मानम्' इस सूक्त से काले धानों के चावलों का मांड या चिरवा अभिमन्त्रित कर ज्वर गृहीत को दें। दावाग्नि का आवाहन कर उपस्थान करें। एक तांबें का स्त्रुवा या कोई भी वस्तु तथा ईंट लें, उस पर रोगी का नाम लिखें, प्राण प्रतिष्ठा कर, उन्हें अभिमन्त्रित करें। ईंट पर 'जीवं रक्ष जीवं रक्ष' भी कील से लिखें। शनि, रवि और मंगलवार में ईंट का प्रयोग करें। आगे पीछे एकाकी ही तामें की वस्तु का उपयोग करें। इसे इन्हें तेज अग्नि में बीच में रख दे। जितनी लाल ईंट होगी, ज्वर उसी क्रम से छुट भागेगा। साथ ही तामें के स्त्रुवा या वस्तु को ठंडे जल में बुझायें। उसकी वाष्प रोगी को चारों ओर से भलीभांति वस्त्र से ढककर दें। तामें के स्त्रुवा का निर्देश होम की अनिवार्यता का प्रवल प्रतीक है। मंत्र १ से अग्नि सोम, ग्रावा, वरुण एवं पावन बलवीर्य तेजस्वी देवों वेदी, कुशा, पदीप्त समिधाये यहाँ से ज्वर को भगायें, इनसे सभी अहित कर्त्ता पाप, शाप, अभिचार, कृत्या, अपमृत्यु सूचक द्वेष कर्त्तागण दूर होते हैं। यह स्पष्ट निर्देश है। यह शीतज्वर, पित्तज्वर, कफ, बलगम, खांसी, दर्द, टूटनवाले, रस, रक्त, बल शोषक, क्षयकारक ज्वर, सर्प के तुल्य विषैला [वातज्वर] अङ्गों में विरूपता उत्पन्न कर देनेवाले, लकवा, जलोदर, पाण्डु, कामलादि उत्पन्न कर देने वाले सभी ज्वर, क्षीण भावना, मलिन मन, अन्तःकरण, चर्बीवाले दुराचारी, ईर्षालु, पापात्माओं को घेरते हैं। मन्त्र ४ 'शाकंभरस्य मुष्टिहा' शाकाहारी की मुष्ठी से मर जाती है। मांस भोजी को ग्रसता है।

कां. ६ सू. ८५ 'वरणो वार याता' तथा 'शंनोदेवी' [२।२५] 'पिप्पली' [६।१०९] से अभिमन्त्रित कर 'वरणमणि' अर्थात् वरुणमणि को पुनः इन तीनों को जप कर धारण कराने से राजयक्ष्मा समूल नष्ट होती है [कां.४ सू.२] वरण को भाषा में 'विलि' बृजभाषा [बन्ना] कहते हैं,। कटुः उष्णः रक्त दोषघ्नः शिरोवातहाः स्निग्धः आग्नेयः विद्रधि वातघ्नश्च [राजनिघण्टु व. ९]।

"वरुणः पित्तलो भेदो श्लेष्म कृच्छ्राश्ममारुतान्। निहन्ति गुल्मवातास्त्र क्रिमींश्चोष्णाग्नि दीपनम्॥"

कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रुक्षको लघुः [भावप्रकाशः] इसका उपयोग बृद्ध, योग्य, अनुभवी वैद्यों के परामर्श के आधार पर करें।

कां. ६ सू. ८५ अथर्वा। बनस्पतिः। अनुष्टुप्।

व॒र॒णो वा॑रयाता अ॒यं दे॒वो व॒न॒स्पतिः॑। यक्ष्मो॒ यो अ॒स्मिन्नावि॑ष्ट॒स्तमु॑ दे॒वा अ॑वीवरन् ॥१

इन्द्र॑स्य॒ वच॑सा व॒यं मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य च। दे॒वाना॒ं सर्वे॑षां वा॒चा यक्ष्मं॑ ते वारयामहे ॥२

यथा॑ वृ॒त्र इ॒मा आप॑स्त॒स्तम्भ॑ वि॒श्वधा॑ य॒तीः। ए॒वा ते॑ अ॒ग्निना॒ यक्ष्म॑ वैश्वान॒रेण॑ वारये ॥३

कां. ६ सू. ८५ 'वरणोवारयाता' यह दिव्य वरण ओषधि बृक्ष [रागनादेवी पीठ काश्मीर] में बहुतायत से होता है। यह यक्ष्म रोग निवारक है। इसमें व्याप्त रोग देवों ने निवारण किया था। मंत्र २ इन्द्र, मित्र, वरुण तथा विश्व देवों की दिव्य [वाणी, तप, आशीर्वाद] यज्ञ, स्तुति पाठादि से तेरा यक्ष्म रोग दूर करता है। मंत्र ३—जैसे वृत्र राक्षस या ज्वालामुखी ने फट कर सारे जल प्रवाहों को बन्द कर दिया था, या कर देता है, वैसे ही वैश्वानर अग्नि द्वारा रोग निवारण करते हैं। यह यज्ञ या प्राणायाम प्रधान भेषज है।

"विद्रधस्य" ६।१२७ से काश, श्वास, रक्त पित्त-विसर्यक, नाड़ीव्रण से मांस, मज्जा, हड्डी तक पहुँचने वाले गण्डमाला(कैंन्सर)आदि रोगोंकी औषधि "चीपद्रु" चीड़का वृक्ष या वृहत्पलाश नामका द्रुम विशेष है। इसमें चार अङ्गुल के ढाक के चुकड़े पीसकर अभिमन्त्रित कर व्याधित (रोगी) के शरीर से लेप करें। तथा इस सूक्त के साथ ही "या वभ्रवः" ८।७ इन दोनों से रोगी के शिर को (जलोदर-विसर्पादि उपरोक्त से पीड़ित वरुण दोष से गृहीत) को अभिमन्त्रित कर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छींटे दें, मार्जन करायें, उपरोक्त वस्तुओं का लेप करें। संलग्न सूक्तों से होम २१ दिन करें, इस होम की विशेष सामिग्री भी इसी क्षय के उपचार प्रकरण में निर्दिष्ट है। ये अनुभूत हैं।

(का० ७ सूक्त ७६ (८०, ८१) अथर्ववेद में उरः क्षत को राजयक्ष्मा का एक भेद बताया गया है। छाती और फेफड़ों में घाव का होना उरःक्षत है। अत्यन्त भोग-विलास, स्त्री प्रसंग से यह रोग होता हैं। राजयक्ष्मा में आत्म-बल सम्पन्न होना, सोमरस का पान करना महौषधि रूप में बताया गया है।

"कां०६ सूक्त ९१ इमं यव मष्टायोगे" अध्याय २ स्वस्तिवाचन में है पृष्ठ ३७८ पर पढ़ें।

कां० ६ सू० १२७ १–२ भृग्वङ्गिराः। यक्ष्मनाशनम्, वनस्पतिः। अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसानाट्पदा जगती।

त्रिद्रुधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते। विसल्पकस्योपधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥१

यौ तें बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ। वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥२

यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः। वि वृहामो विसल्पकं विद्रुधं हृदयामयम्।

परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥३

कां० ६ सू० १२७ "विद्रधस्य" हे चीपद्रुनामकभेशज, कफक्षय, फोड़े, फुन्सी खांसी, त्वचा पर बढ़ने वाला शिसर्प रोग, खांसी द्वरा गिरने वाला रक्त, मांस में दूषित हो जाना, बिल्कुल मांस का रह जाना। कफरोग से बनी विचित्र प्रकार की, विविध गिल्टियां जो कांख में या रक्तवाहिनी नाड़ियों के निकट पोले। गले, राग, उदर आदि में हों, मैं उसकी औषध जानता हूँ। उसका उपाय चीपद्रु औषधि है। ३ जो अङ्गों में, कर्ण में, कांखों के, हृदय के, रक्त के, मांस के, विसर्प रोग हों, फोड़े, हृदय रोग हों, उन अज्ञात यक्ष्मादि सभी को नष्ट कर नीचे की ओर गति से दूर करते हैं।

कां० ३ सू ७ भृग्वङ्गिराः। १–३ हरिणः, ४ तारके, ५ आपः, ६–७ यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप् भुरिक्। राजयक्षम्, तक्मनाशनेभेषज्ये, होमे, जपे, तन्त्रे, च विनियोगः।

हरिणस्य रघष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्। स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१

अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत्। विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२

अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः। तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके। वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे। वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत। अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७

कां०३ सू० ७ "हरिणष्य" १—अति वेगवान हरिण के शिर में, क्षेत्रिय रोग व्याधि निवारक औषधि है। २—बलवान हरिण के सींग से, हृदयादि में निहित गुप्त, बंशानुगत रोग दूर हो जाता है। "मृगशृङ्ग भस्म हृद्रोगेत्रिक-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शूलादीशस्तम्'' यह मृग सींग भस्म रोग, हृदयरोग, त्रिक शूलादिरोग निवारण में प्रशस्त है। यह घिस कर लगाया जाता है चटाया जाता है, घोलकर पिलाया जाता है। शिर में चढ़ी गर्मी, ताप, पागलपन, बिगड़े कुल परम्पराओं, उच्छिष्ट कुधान्य, कृपणधान्य, पापीया प्रेतधान्य तथा ६ मूल + नक्षत्र जात क्षेत्रिय व्याधि नाशक है। जौ का भूसा, तिलों की फली, अर्जुनफल या छाल डालकर, तिल की लकड़ियों भूसा से तप्त जल को इस सूक्त तथा कां० २ सू ८ (उदगातां भगवती) जो बृहच्छान्तिगण में है) से अभिमन्त्रित कर तारागणों से युक्त निशाकाल में, गाड़ी या हलके जुओं पर विठाकर जल ले स्नान करायें और छींटे भी पहिन्ने दें।

कां० २ सू० ३२ :"उद्यन्नादित्य" से गौ आदि के कीड़ों के निवारणार्थ तीनों सन्ध्याओं में कुशा से कीड़ों से युक्त घाव, को झाड़ा दें। "इन्द्रस्य या मही" कां०२ सू० ३१ तथा ३२ दोनों से शरीरगत विविध स्थानों में विविध प्रकार के बाधक क्रीमियों के शमनार्थ १—काले चने व घी से होम करें। २—गौ के वालों को शरकण्डे पर लपेटें। ३—वाम (सव्य) हाथ से मार्ग की रज या शुष्क तालाब या नदी की रज लें. दक्षिण (सीधे) हाथ से उपरोक्त सूक्त २।३१; ३२ को जप के साथ मर्दन (विलोयें) दक्षिण को मुँह करके रोगी के ऊपर रज को डालें। ४—और इन्हीं सूक्तों को जपते हुए इसी अभिमन्त्रित रज को रोगी के शरीर से मलें। ५—इन्हीं २ सूक्तों से पलाश गूलर, अश्वत्थ की स्वयं टूटी समिधाओं से होम करें। हवनकी रज दोनों हाथों से रोगीके शरीर पर मलदें। कां० (४।३) यज्ञिय भस्म के अभाव में वामी की रज ली जा सकती है।

"उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तः" कां० २ सू० ३२ ऋ० ६ काण्वः। ऋषिः। आदित्यः। देवता। अनुष्टुप्, त्रिपाद्भुरिग्गायत्री, ६ चतुष्पान्नि चृदुष्णिक्–छन्दासि, गो (पशु) क्रिमिनाशने भैषज्ये, हौमे, जपे च विनियोगः।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥१

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्। शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥२

अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्। अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥३

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः। हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥४

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः। अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५

प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि। भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥६

ऋचा ३ में अगस्त्यादि ऋषियों के मन्त्रों से क्रिमि–विनाश करने में श्रुति प्रमाण "आत्रिणात्वा क्रिमेहन्मि कण्वेन जमदाग्निना विश्वावसोर्ब्रह्मणा हतः" इति। निम्न सूक्त कृषि प्रकरण में पढ़ें।

इन्द्रस्य या महीषः कां० २ सू० ३१ ऋ० ५, काण्व ऋषिः। महीः, चन्द्रमाः। देवते अनुष्टुप् २, ४ उपरिष्टा द्विराट् बृहती; ३,५ आर्षी त्रिष्टुप्, छन्दासि; विविध रोगोत्पादक क्रिमि शमनार्थं भैषज्ये, तन्त्रे होमे च विनियोगः।

अथ राजयक्ष्मादि महाव्याधि और उपचार

काण्ड १३ सू० १ में रोहित देवता का उल्लेख है। यह कां १३ सू० ३ भी उन्हीं रोहित देवतापरक है। यह सूर्य रूप द्यौलोक में, अग्नि भूलोक में, अनन्त कोटिसूर्य, से भी अधिक अत्यन्त प्रकाशवान, "ब्रह्म" ज्योति सत्यलोक में है। जो ब्रह्मद्रोही, देवद्रोही वेदद्रोही, सती, साध्वी, साधुजन निरीहका अकारण अहित करते हैं। वे भले ही मौन रहें, कुछ भी अहित न विचारें तथापि प्रतिक्षण प्रत्येक स्थान में सर्वद्रष्ट देव के दूत निरन्तर शुभाशुभ देखते रहते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनको देवदूत विविध प्रकार की आपदाओं, की घोर वृष्टि से, कम्पायमान कर देते हैं। इसी सन्दर्भ में कां १३।३ में निर्दिष्ट अशुभ के निवारणार्थ ही ब्रह्मास्त्र अभिचारकर्म की विधि है।

वज्र प्रयोग में बर्णित विधि से द्वेषी की प्रतिमा, वनाप्राणप्रतिष्ठा कर के, "यइमेद्यावा" इस अनुवाक् से द्वेषी के पदों को बाँधें। द्वेषकर्म में, इस अनुवाक से अभिमन्त्रित (साठी) लालचावलों के भात में दूध और सिन्दूर मिलाकर दें, कच्चे मिट्टी के पात्र में जल में सिन्दूर छोड़कर दें। चौरास्तादि की पांशुरज, को वामपाद जल से गीला कर "वृषभ" की आकृतिवना, प्राणप्रतिष्ठ करें। अग्नि के पीछे खम्भे से बांधें, और जल को उसके शिर के ऊपर, होकर उतारा करें "यस्मिन्त्षडुर्वीः" ऋचा ६ से, उद्वज्र जल से कुशा से द्वेषी पर प्रहार करें। "यो अन्नादो अन्नपति" ऋचाओं से द्वेष के कारण का ध्यान, संकल्प कर, द्वेषी को उसी उतारे हुए जल से आचमन करायें।

"समिद्धोऽग्निः" कां १३ सू० १ ऋचा २८;३२; "यइमेद्यावा पृथिवी कां० १३ सू० ३, तथा "अजैष्यः" कां १६ सू० ६ ले पाशवना, अभिमन्त्रित करें (मञ्जपाश, मुंजपाश, दर्भ, काँस, पटेरपाश) पाशों से द्वेषी के "वृषभ" के पैरों को बाँधें। स्वयं पतित या ओलों से टूटी, पीपल, ढाक, ऐरण्ड करीर, धनुषकाष्ठ वृक्ष (वाँसी) की शलाकाओं, मुंञ्ज, दर्भ के शकुओं से द्वेषी की प्रतिमा को छेदें, इन्हीं से प्रतिमा को प्रताड़ित करें। इन्हीं को जलाकर प्रतिमा को तपायें। यह प्रयोग एकान्तशान्त स्थान में भूशयन, ब्रह्मचर्य, स्वयंपाकी मन, वाणी, पाणि, इन्द्रियों को नियन्त्रित रखकर १२ दिन करें। प्रथम से ६ वें दिन तक वज्र, उद्वज्रों का प्रयोग करें ७ वें दिन आचमन करें। इससे ब्रह्मास्त्र का उपस्थान करें।

कां० १३ सू० ३ ऋचा० [१-२६] ब्रह्म ऋषिः। अध्यात्मम्, रोहितादिव्यदैवतम्। देबतोत्रिष्टुप् १ चतुरवसानाष्टपदाऽऽकृतिः २-४ त्र्यवः, षट्पदार (२।३ अष्टिर २भुरिक् ४-अतिशक्वगगर्भाधृतिः) ५-७ चतुर, सप्तपदा (५-६ शक्वरातिशाक्वरगर्भा प्रकृतिः; ७ अनुष्टबार्भातिधृतिः) ८ त्र्यव० षटप० अत्यष्टि, ६-१६ चतुरव० (६-१२ १५,१७ सप्तपद-भुरिगतिवृतिः, १५ निचृत् १७ कृतिः, १३-४१, १६, १८-१६ अष्टपदा (१३-१४ विकृतिः, १६, १८-१६ आकृतिः; १६ भुरिक्), २०, २२ व्यय षट्प० अत्यष्टिः, २१, २३-२५ चतुरव० अष्टपदा (२४ सप्तपदा कृतिः, २३,२५ विकृतिः)। छन्दान्सिः उपर्युक्तकर्मषु ब्रह्मास्त्रानुष्ठाने, उपस्थाने होमे, च विनियोगः।

य इमे द्यावांपृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पंतङ्गो अनुं विचाकशीति तस्यं देवस्यं।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेंपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१
यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति तस्यं देवस्यं।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेंपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रतिं मुञ्च पाशान् ॥२
यो मारयंति प्राणयंति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा तस्यं देवस्यं।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेंपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रतिं मुञ्च पाशान् ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥४
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः ।
यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥५
यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६ (क्रमशः)

कां० १३ सू० ३ समस्त दैहिक, दैविक, भौतिक अद्भुत, अभिचार तथा वास्तुजनित साधारण या महाजघन्य स्वयं या पितादि; अथवा वृद्ध प्रमाता महादि, स्त्री, पुत्र, पौत्रादि के कृतकर्म ही दुःख-संकट, महाव्याधि, महाविनाश के मूल हैं। जो ग्रन्थ में अ० १ से अन्त पर्यन्त उल्लिखित है, अथवा ग्रंथ विस्तार भय से उल्लिखित भी नहीं किये जा पा रहे हैं। यह शब्द ब्रह्म का स्वयं की प्रगल्भ घोषणा है।

१–जो इन दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक, अखिल ब्रह्माण्डों का स्रष्टा है और चतुर्दश भुवनों को चोला बनाकर उसी में रहता है, जिसमें छै महादिशायें निवास करती हैं; जिनको गतिमान सूर्य प्रकाशित करता है जो ऐसे ज्ञानी ब्राह्मण, ब्रह्म-परायण, योगी, सन्त, सती, गौ, पृथ्वी, निरीहात्माओं का नाश करता है या विविध प्रकार से यातनायें, कष्ट देता है, उसका पाप, उन निरीहों के मौन रहने पर भी; विश्वाधिपति परमात्मा के प्रति होता है। वे ही क्रुद्ध हो, उन निरीहों का कष्ट, तिरस्कार, सहन नहीं कर सकते हैं। उनकी न्यायकारिणी महाशक्ति उस पापी को कम्पायमान करती है, क्षीण बल, नाश कर डालती है। हे सूर्य ब्रह्मद्रोहियों के ऊपर सभी देव पाशों को गिरा दे, ऐसा आदेश कर, उसे विपदाओं के पाशों में बांध डालते हैं।

२–जिससे वायु ऋतुओं के अनुकूल बहते हैं; जिससे समुद्र, जलप्रवाह, विविध भांति से प्रवाहित होते हैं। जो मारता और जीवित रखता है, जिस पर समस्त भुवनों का जीवन आश्रित है।०

३–जो प्राण से द्युलोक और भूलोक को तृप्त करता है; जो अपान से समुद्र का प्राण परिपूर्ण करता है।०

४–जिसमें विराट् परमेष्ठी प्रजापति अग्नि वैश्वानर, पंक्तिबद्ध आश्रय लिये हुए हैं।०

५–जिसमें सब दिशा और उपदिशायें, सब जल प्रवाह और यज्ञ के समस्त विधि ज्ञान आश्रय लेते हैं; जो अन्तःकरण मे क्रुद्ध होकर, अपने नेत्रों से द्युलोक और भूलोक को देखता है।०

६–जो एकमात्र सबका भक्षक, जलाधिपति; ज्ञानाधीश्वर था, है और रहेगा।०

७–जो दिन-रात्रि, तीस दिनों का एक मास बना तैसे ही तेरह मासों का निर्माता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८–जल धारणकर्त्ता, श्रेष्ठ सूर्यकिरण, कृष्णवर्ण या नीलवर्ण वाले, सर्वाश्रय द्युलोक के प्रति जाते हैं। वे किरण जलों के स्थानों से पुनः लौटते हैं।०

९–हे कश्यप ! सर्वद्रष्टा प्रभो ! जो तेरा आनन्ददाता, प्रकाशमान,तेजोमयपुञ्ज है,इसी के साथ सूर्य रहते हैं।०

१०–बृहद्गान इसके सामने होता है, और रथान्तरगान पीछे से इसका ग्रहण करता है। बिना आलस्य के ये दोनों ज्योति को धारण कर यज्ञशाला में पदार्पण करते हैं। ११–बृहद्गान का एक पक्ष है, और रथान्तर गान का दूसरा पक्ष है। ये दोनों पराक्रमी, तथा साथ रहने वाले पक्ष हैं; वहां देवों ने रोहित सूर्य का निर्माण किया।०

१२–वह वरुण है; परन्तु सन्ध्याकाल में अग्नि होता है, वह प्रभात वेला में उदय होने के कारण मित्र कहलाता है; वही सविता बनकर, अन्तरिक्ष में संचार करता है, वह इन्द्र होकर द्युलोक के मध्य में तपता है।०

१३–हरणशील हंस के तुल्य गतिशील, हजार दिन के मार्ग पर अवस्थित, द्युलोक पर चलने वाले, इस सूर्य के दोनों ओर किरण फैले हैं। वह सब देवों को अपने हृदय में धारण करता हुआ, सब भुवनों को देखता हुआ चलता है। इस हंस के स्वर्ग को जाते हुए, इसके दोनों पक्ष, सहस्र दिनों तक फैले रहते हैं, वह सब देवों को अपनी वक्षस्थल पर लेकर, सब भुवनों को देखता हुआ जाता है।०। १४–जिसने यह अखिल जगत उत्पन्न किया, वह देव यही है, जिसके हजारों मूल और शाखायें हैं, और जो सभी का भक्षक है, वह जलों में निहित है। अथर्व १०।८।१८;१३।२।३८

१५–प्रचण्ड तेज से देदीप्यमान् देव को गतिशील किरणें द्युलोक में चलाते हैं। जिसके ऊपरी भाग सूर्य को तपाते हैं और इस ओर उत्तम रङ्ग वाले विविध रङ्गों से वह प्रकाशित होता है।०

१६–एक चक्र वाले रथ में, आठ अश्व किरण जुते हुए हैं। एक (कश्यप किरण जो महामेरु पर सबका निरीक्षण और सबको गति प्रदान करता है) सप्त किरणों को चलाने वाला है। इसका तीन केन्द्रों (बाल, युवा, वृद्ध) वाला जरारहित, नाशरहित यह (सुदर्शन) चक्र है। जिसके आश्रय से ये १४ भुवन विचित्र रूप से (अर्थात् जल पर पृथ्वी, पोल में द्यौ आदि) से अवस्थित है। (कां० ९ सू० ९ मं० २) एक चक्र वाले सूर्य के रथ में, सात घोड़े जोते जाते हैं, इन सात नाम वाला, एक घोड़ा (कश्यप) उसको खींचता है। इसका तीन केन्द्रों वाला, जरारहित और अशिथिल प्रमाद रहित, यह एक चक्र, जिसमें ये सब भुवन ठहरे हुए हैं। इसके विषय में (ऋग्वेद १-१६४-२) वर्णित करता है–आदित्य मण्डलरूपी गतिशील रथ का सूर्यरूपी एक ही चक्र है, जो सात रङ्गों में अलग-अलग भासता है। सूर्य का कालरूपी यह रथ, तीन नाभियों (शरद, वर्षा और ग्रीष्म) से निरन्तर चलता रहता है। इसकी गति कभी बन्द या मन्द नहीं होती है। इसी काल के अन्तर्गत सारे लोक रहते हैं। इस विकराल काल के प्रभाव से मुक्त अखिल ब्रह्माण्डों में कोई भी नहीं है।०। १७-१८–देवों का पालक और बुद्धियों का उत्पादक, उक्त अग्नि, आठ प्रकार से युक्त होकर चलता है। यज्ञ के धागे को, मन से मापता हुआ; अन्तरिक्ष में निवास करने वाला सब दिशाओं में गति करता है।०। १९–इस सीधे यज्ञ के धागे को; सब दिशाओं के अनुसार, गायत्री के अन्दर अमृत के गर्भ में देखते हैं।०।

२०–अस्त, उदय, उषा, द्यु, अन्तरिक्ष ये सब, ३ अस्त; ३ उषाकाल हैं। हे प्रिय ! तीन आन्तरिक्ष, और ३ द्युलोक हैं। हे अग्ने ! तेरा तीन प्रकार का जन्म हम जानते हैं।०। २१–जो जन्मते ही सूर्य को आच्छादित कर लेता है। अन्तरिक्ष में समुद्र को धारण करता है।०। २२–हे अग्ने ! तू यज्ञों से, और सूर्य किरणों से युक्त है (अर्थात् प्रदीप्त अग्नि यज्ञ में और चमकने वाला सूर्य द्यौलोक में प्रकाशता है) भूमि को माता मानने वाले (मरुत्) तब उसकी अर्चना करने लगे कि जिस समय देवों ने सूर्य को प्रगट किया। अर्थात् जब देवों के द्वारा सूर्य का प्रादुर्भाव हुआ, तब वायु भी बह रहे थे।०। २३–जो आत्मिक बल प्रदाता, शक्तिदाता है, जिसकी उपासना सब देव करते हैं, जो इस द्विपाद और चतुष्पाद, चराचर का स्वामी है।०। २४–एक पैर वाला होते हुए भी अनेक पैरों वालों से अधिक दौड़ता है। दो पैर वाला, तीन पैर वालों के पीछे से चलता है (अ० वे० कां० १३।२।२७; ऋ० १०।११७,८) चार पैर वाला,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दो पैर वालों के एक स्वर में रहने वालों की पंक्ति को देखता हुआ, और उनसे सेवा लेता हुआ, इस देव के प्रति वह (उपरोक्त निरीहों —ब्रह्मवेत्ताओं के साथ किये जाने वाले, जघन्य कर्मों, उनके तिरस्कारों जनित कुकृत्यों का) पाप होता है, कि उस घृणित पापिष्ठ, दुष्कर्मी जन-मन सन्तापकर्त्ता ढीठ को कम्पायमान करता हुआ, अधःपतन कर विविध दारुणदुर्गति पाशों के बन्धनों में डालकर, मन्थित कर डालता है।०। २५–(ऋग्वेद १०।११७।८) भी इसका ही प्रतिपादन कर रहा है। काले वर्णवाली (घोर अन्धकारमयी मृत्यु, दुर्गति–अज्ञान, मोह निशा का पुत्र) के चले जाने पर ही बच्चा ज्ञान, तेज स्वरूप, जीवनदाता सूर्य का प्रकाश हुआ है, वह अरुण होते ही, सब बढ़ाने वाले (अभ्युदय वाले देवो) से ऊपर चढ़ने लगा और अन्त में द्यौलोक में विराजमान होकर प्रकाशने लगा है। चराचर में व्याप्त, दीन, दुःखी, सन्त, सती, गो, द्विजादि में व्याप्त परब्रह्म स्वरूप को, अपने नश्वर, क्षणिक सुख की उपलब्धि के लिये सन्तापित करते, रस में विष देते हैं, वध-दाह, अपहरण, अनाचार करते हैं; वे ही महाव्याधियों की चक्की में पिसते हैं। उनके पापबीज रूप ही महाव्याधियों के रूप में अंकुरित होती हैं। उनका विश्लेषण इस प्रकरण मे पढ़ें और निराकरण विधि से निष्ठा, विश्वास के साथ लाभ उठायें इस दारुण संकट के निवारणार्थ निम्नविधि है।

त्वाष्ट्री (विष्णुयाग) शान्ति

समस्त अद्भुद्दर्शन जनितारिष्ट निवारण, अन्नादिक्षय, अभाव, अदृश्यता (त्वाष्ट्री वस्त्रक्षये न० क० १७) वस्त्रक्षय, वस्त्राभावादि में "त्वाष्ट्राख्य नामक" महाशान्ति; विष्णुयाग करें। इनका जप, उपस्थान अश्वत्थ के समीप पावन गगादि स्त्रोत में करने से वैष्णवत्व की प्राप्ति आध्यात्मिक अभ्युदय होता है। क्रमशः आगे पढ़ें।

अथ औषधि प्रकरणम्

अथर्व वेद (शौनकीय शाखा) के मतानुसार प्राणी अपने स्वय के तथा माता-पिता के कृताशुभाऽशुभ कर्मों के भोगने के लिये जब भूलोक में आता है तभी गर्भाधान में प्राजरूरेत (वीर्य) वीज तथा भोगरूप "प्रकृति, पृथ्वीरूप" माता के रज, दोनों ही में अणुतर रूप से समस्त देव और महाप्राण, प्राण एवं सूक्ष्म शरीर तीनों ही आते हैं। वे ही रज वीर्य मिलकर स्थूल शरीर का निर्माण करते हैं। या यों मानिये कि वे दोनों ही स्थूल शरीर में सहायक होते हैं। इन उपर्युक्त तीनों शरीरों के भोगायतन का प्रमाण जीव को भू लोक की भूमि के स्पर्श करने से पूर्व ही माता स्तनों में दूध है। जीव जो अभी कुछ भी शुभाशुभ करने में असमर्थ झिल्ली में गर्भ है, गर्भ में भी उसे रोग हो जाता है, अङ्ग-भङ्ग भी होता है, भूमि पर आते ही विचित्र विविध रोगों और उत्पातों से घिर जाता है। यह घिरने वाले प्राण तथा सूक्ष्म शरीर ही होते हैं। उनकी व्याधि का स्थूल शरीर पर प्रभाव होता है, उसीसे अनुभव तथा चिकित्सा की जाती है।

जब स्थूल कुछ कर्म करने, खाने, पीने में समर्थ होता है और प्राकृतिक स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की अवहेलना कर मिथ्या आहार-विहार आदि असंयम वरतने लगता है तो प्रकृति कुपित हो, दोषों वात, पित्त, कफ आदि को दूषित करती हैं। वही रोग का रूप वन जाता है उस रोग की भी शीघ्र चिकित्सा न करने पर वह भयावह हो जाता है।

स्थूल शरीर जन्य रोगों की चिकित्सा के लिये हमारे अथर्व वेद की नवीं शाखा "आयुर्वेद" में अनूठे, अपरिहार्य औषधि प्रयोग तथा उनकी औषधि निर्माण, सेवन विधियां हमारे परम करुणा के धाम तपोपूत महर्षियों द्वारा वर्णित हैं। उन औषधियों को मन्त्र बल से प्रयोग किया जावे तो वे ही अकाट्यय भेषज का रूप धारण कर लेती हैं। उनमें ऋषिबल, देवबल, मन्त्रबल आ जाने से दिव्यता आ जाती है। इस प्रकरण में कुछ विशिष्ट सन्तों, मनीषियों की बहुधा अनुभूत औषधियों का उल्लेख किया गया है। इनको अभिमन्त्रित कर लाया जावे और मन्त्र पाठ के साथ सिद्ध कर, मन्त्रबल के जप के साथ सेवन किया जावे तब इनकी वास्तविक शक्ति, गुण, ओज, बल, वीर्य, पूर्ण स्वास्थ्य एवं पूर्णायु, दीर्घायुप्रद होता है। यह निर्विवाद है।

मनीषिगण देश काल और पात्र के अनूरूप इनकी मात्रा, समय अनूपान यथासमय, यथासम्मिति, अनुभवी धन्वन्तरियों द्वारा निर्णय प्राप्त कर उपयोग में लें। अभिमन्त्रित काल में औषधियों पर दृष्टि, स्पर्शादि होना आवश्यक है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः । भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिस्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥७

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य तस्य देवस्य । क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥९

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकं तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१०

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथंतरं प्रति गृह्णाति पश्चात् । ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादं तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥११

बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथंतरमन्यतः सबले सध्रीची ।
यद् रोहितमजनयन्त देवास्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१२

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवं तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१४

अयं स देवो अप्स्वऽन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः ।
य इदं विश्वं भुवनं जजान तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१५

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्वऽस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१६

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१७

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुस्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१८

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे तस्यं देवस्यं ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२०

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म तस्यं देवस्यं ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२१

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे तस्यं देवस्यं ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२२ (क्रमशः)

वायु जन्य रोगः—वीरासन से बैठें, एड़ी गुदा के नीचे लगाले, कघी के शिर के वालों को सीधे १ मि० से लेकर ३० मिनट, पुनः ३० से १ मिनट. २ मास काटें (झाड़ें) १० एरण्ड के पके वीजों की मीगी दूध में डालकर खीर बनाकर लें।

नेत्र रोगः—नेत्रोपनिषद के पाट, सूर्यदेव को सुनायें, मुँह में जल मरकर साथ ही नेत्रों में जल से छींटे १ से १०१ व १०१ से १ वार दें। रात्रिशयन के समय (अंधेरे में) १ तोला छोटी मक्खी का मधु व १ तोला सफेद प्याज का रस मिला नीव की सींक से लगायें। प्रातः उठते समय गोमूत्र के छीटे नित्य लगायें। समस्त नेत्र रोग, मोतियाविन्द, क्षीण नेत्र ज्योति की शान्ति व लाभ हो।

नजलाः—(१) शौच के उपरान्त, पैर न धोये और शिर पर पर्याप्त ठण्डा जल डाले शिर को सुखा लें। आधा घण्टा बीतने पर पैर धोयें। (२) नमक गर्म पानी में डाल नाक से पानी दायें नथने से पीकर वायें से निकालें वांयें से दायें, पुनः दोनों से पीकर मुँह से निकालें। (३) घनिया की मीगी १ भाग, आधा भाग गोले की गिरी, उसके १।५ भाग बड़ी इलायची के वीज मिला कर सेवन करें।

कां० १९ सू ७ "चित्राणिसाकं" पृष्ठ ४३८ में वर्णित **नक्षत्रों के वृक्षों का फल** अश्विनी (कुचिला) भरणी (आमला) कृत्तिका (गूलर) रोहिणी (जामुन) मृगशिर (खैर) आर्द्रा (अगर) पुनर्वसु (वांस) पुष्य (पींपल) आश्लेषा (चमेली) मघा (वड़) पूर्वाफाल्गुनी (ढाक) उत्तराफाल्गुनी (पिलखुन) हस्त (जाई)(जई) चित्रा (वेलपत्र) स्वाती (अर्जुन) विशाखा (बबूल) अनुराधा (नागकेशर) ज्येष्ठ (संभल) या सेंमर मूल (राल) पूर्वाषाढ़ा (वेत) उत्तराषाढ़ा (पनस) श्रवण (आक) घनिष्ठा (शमी छौंकर-जांठी) शतभिषा (कदम्ब) पूर्वाभाद्रपदा (आम) उत्तराभाद्रपद (नीम) रेवती (महुआ) हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जन्म नक्षत्रों का ठीक २ ज्ञान करके, अपने नक्षत्रों के वृक्षों की सेवा, उनके समीप साधना उनकी ही मणि धारण करने से बल, आयु, नीरोगता मिलती है। काटने से आपदायें भोगनी पड़ती है। "अपने नक्षत्रों के वृक्षों को भूल कर भी न काटें" आयु वंश विनाशक हो जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बूटी के शर्बतों या रसों का विवरण

१—अफीम शर्बत १ मासा अफीम, ६ मा० अदरख, हींग १।२ मा० जल तीन तोला लें तो संग्रहणी नष्ट हो। **२ केशर** १ मा० शहद १ तो० गो दुग्ध १।२ किलों में पीसकर सेवन करें बलवीर्य शरीर पुष्ट हो ३ **सनाय-**पत्ती ५तो० धनिया १ तो० गुड़ ३ तो० रात्रि में १।२ किलो जल में भिगोदें, प्रातः छानकर लें तो उदर विकार नष्ट हों भूख बढ़ावें। ४ **चन्दन**—सफेद ३ मा० धनिया १ मा० मिश्री १ तो० ३ छठाक जल में पियें तो गर्भिणी का ज्वर तृष्णा उल्टी शान्त हों। ५ **ईसबगोल**—१ तो० नीबू का रस १ तो० मिश्री २ तो० १ पाव पानी में लें, सब प्रमेह नष्ट हों। ६ **कपित्थ**—(कहत) कहत का गूदा ६ मा० पांचों नमक ५ मा० पांचों खार ३ मा० १ पाव पानी में लें वायुगोला उदर विकार नष्ट हों। ७ **मूली जड़**— २॥ तो० पांचों नमक १ तो० कालीमिर्च २ मा० २ छटाक जल में पियें तो अजीर्ण शान्त हो। ८ **धतूरा**—पत्ते ६ मा० नागरपान ६ मा० गुड़ १ तो० पानी १ पाव में पिये तो चौथय्या ज्वर, तिहय्या ज्वर नष्ट हों। ६ **चिरायता** १ तो० धनियां १ तो० पीपल ३ मा० पानी १ पाव में साय भिगो दें, प्रातः पियें तो सर्व ज्वर नष्ट हों। इसी पर दूध पियें तो बल बढ़ावे भूख लगायें। १० **छोटी नोनिका** १ तो० कालीमिर्च १ मा० मिश्री १ तो० २ छ० पानी में पियें, तो पथरी, मूत्र कृच्छ्र सुजाक और प्रमेह नष्ट होते हैं। ११ **(कैंवाच कौंच)** बीज १६ मा० साय भिगो दें प्रातः डेढ़ पाव गो दुग्ध में पीसकर मिश्री मिलाकर पियें तो शरीर बलवीर्य पुष्ट करे; प्रमेहों को नष्ट करे।

१२ **कटेहरी जड़** १ तो० पीपल १ माशा, इलायची १माशा २ छ० पानी में पियें तो काश दमा, तीनों ज्वर नष्ट हों १३ **अरहर पत्ते** ६ मा० निम्बू का रस १तो० कालीमिर्च १मा० २छटांक पानी में पियें तो उलटी जुलाव शान्त हो १४ **असगन्ध** ६ माशा मुसली ३ माशा कालीमिर्च १ माशा मिश्री १ तो० १ पाव पानी में पियें तो शरीर बल, वीर्य वृद्धि हो। (१५) **कासनीः**—वीज ६ माशा ककड़ी के वीज, ६ माशा मिश्री १ तोला, पानी १ पाव उसमें १ माशा मिर्च भी मिलायें। हृदय दाह, पीड़ा, घबराहट दूर हो। (१६) **भांगः**—२ माशे, भगरा २ माशा गोरखमुंडी ६ माशा मिर्च १माशा, खांड ३तोला, पानी ६ छटाक लें तो शरीर, बल, वीर्य, पुष्ट करे, सर्व रोग शान्त करे। (१७) **अफीमः**—आधा माशा, नीबू रस १ तोला, मिश्री ३ तोला, पानी १ पाव पियें, तो कै, दस्त, मूत्र जलन, हैजा, हृदयविदाह घबराहट, जलन शान्त हो। [१८] **बेलपत्रः**—६ माशा, काला नमक, २ माशा, मिर्च १ माशा पानी १ पाव में पियें, तो सग्रहणी दूर हो, हाथ पैर का दाह, उलटी, वायु रोग शान्त हो। [१६] **गूलर** गूलरफल, जड़ १।१ तोला, मिर्च १ माशा, पानी १ पाव में पिये तो सुजाक, प्रमेह, जलन, तृष्णा दूर हो, भूख बढ़ावे। [२०] **फिटकरीः**—६ मशा, नीला थोथा शुद्ध २ माशा, पानी २ छटांक, में पियें तो खाया हुए विष की कै हों, रोगी बचे। [२१] आम की गुठली १ तोला मिर्च १ माशा, २ छटांक पानी, में लें तो संग्रहणी, कलेजे की जलन, दूर हो और विष नष्ट हो। [२२] **पीपल वृक्ष** की छाल १ तोला, मिर्च १ माशा, १ पाव पानी में पियें तो संग्रहणी, से कलेजे हाथ-पैरों का दाह पेट पीड़ा दूर हो, भूख लगे।

हैजे का उपचार—काली मिर्च १ माशा, अरहर के पत्ते १ तोले पीसकर, १ पाव जल में मिलाकर पिलायें। २ अर्क (आक-मदार) की जड़ एक तोला को अदरख के रस में खरल कर, काली मिर्च बराबर गोली बना, १-१ गोली जल के साथ दें। परन्तु पीने के जल में भी नीम की छाल, पीतल की छाल के गोयले बुझाकर, छानकर बोतल में भर लें। ३ विजौरा (नीबू) के बीज २० को २॥तोले पानी में पीसकर, मिश्री मिलाकर पिलायें। **हुचकी उपचार**—कलौंजी चूर्ण ३ माशे मक्खन के साथ लें। काले उर्द चिलम में रख धुआँ को पियें। **नपुंसकता उपचार**—१ किलो पीपल, २ किलो दूध में डालकर जलायें, पीपल रह जावें, उन्हें सुखा लें, १।४ माशे चूर्ण, छः तोला मिश्री मिला १-१ तोला मात्रा दूध के साथ पियें तो नपुंसकता दूर हो। **श्वास (दमा) काश उपचार**—काली मिर्च, पीपल, सौंठ, इलायची समभाग, उन सबका दूना गुड़ में कूटकर मिला लें। १ तोला प्रातः सेवन करें। २ शख भस्म ६ माशे, पान में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रखकर खायें तो खाँसी नष्ट हो, २ आक (अर्क-मदार) के पत्ते, धतूरे के पत्ते १००-१००, काला नमक एक पाव, मिट्टी के पात्र में रखकर फूंक लें। २-२ रत्ती भस्म, अदरख के रस में प्रातः सायं सेवन करें। खांसी, दमा, श्वांस, खोकला आदि सभी ठीक हो जाते हैं। **प्लीहोदर उपचार**—१ पीपली में शहद, तक्र मिलाकर पिलायें, २ हुरहुर का पंचाङ्ग ८ तोला, मिलाकर कूट, छान लें, ६-६ माशे प्रातः-सायं सेवन करें तो प्लीहा, यकृत दोनों ही ठीक हों। **जलोदर उपचार**—पीपल, काली मिर्च, सौंठ, पाँचों नमक, सोहागा, सज्जी, समभाग लें, उन सबके बराबर जमालगोटा लें, कूट-छानकर, अरणी के रस में ३ बार घोटें सुखायें। भस्म करें। १ रत्ती रस सेवन करें तो प्लीहा, यकृत, गोला, जलोदर आदि उदर विकार दूर हों, अहौलिङ्गगण, वृहच्छान्तिगणों से होम अनिवार्य है।

सहदेवी—सहदेवी पञ्चाङ्ग १ तोला, मिर्च २ मासा पानी २ छटांक में पीसकर पियें, सर्व ज्वर नाश, बल-वीर्य, तेज की पुष्टि, हृदय की धड़कन, जलन, दर्द दूर हो, चित्त प्रसन्न करे, भूख बढ़ाये। **दुद्धी**—६ माशा गोरखमुण्डी ६ माशा मिर्च १ मासा, पानी १ पाव पियें। पित्त-ज्वर, कफ-ज्वर, शिर, पैर, हाथों का दाह शान्त हो, कामला रोग दूर हो। **भृङ्गराज**—६ माशा मिर्च १ माशा पानी २ छटांक, सर्व ज्वर नाश, रक्त शुद्ध करे, भूख लगाये। **बड़**—की दाड़ी मिर्च १-१माशा बताशा १ तोला पानी १ पाव में पियें, सुजाक, उन्माद, प्रमाद, शरीर ताप शान्त हो। **तुलसी**—पत्ते १ तोला, मिर्च १ माशा, पानी १ पाव पियें, सर्व ज्वर नाश, शारीरिक व्याधि नष्ट, बातनाश, चित्त प्रसन्न, भूख बढ़ाये। **रत्नज्योति** –५ तोला, सौंठ १ माशा, मिर्च १ माशा, पानी २ छटांक पिये, सन्निपात बात, शिरोरोग शान्त हो। **ब्रह्मदण्डी**—५ टका, मिर्च २ माशा, पानी २ छटांक में पियें, रक्त-मूत्र, हाथ-पैर जलन, भड़क, बुद्धि बढ़ाये, सर्व रोग नाश, बल-बीर्य बढ़े। **कुश (दाभ)**—की जड़ ३ टका, मिर्च १ माशा, पानी १ पाव में पियें, स्त्री के कलेजे का दाह, फेंफड़ा, ज्वर निवारण, गुणप्रद है। **इमली**—३ तोला, मिर्च १ माशा, मिश्री १ तोला, १ पाव पानी में पियें। पित्त-ज्वर, मल-ज्वर, कै शान्त करे। **फालसा**—५ टका, मिर्च १ माशा, मिश्री १ तोला, पानी १ पाव में पियें, स्त्री के पसूतजनित रोग दूर हों, स्त्री के कलेजे का दाह दूर हो। **उन्नाव**—जड़, पत्ता दोनों १.१ तोला, मिर्च १ माशा, पानी २ छटांक में पियें। कफ, खाँसी, हूक, मस्तिष्क दाह, मलविकार ठीक हों, चित्त प्रसन्नहो भूख बढ़े। **नीम**—छाल १० टका, खुरासानी वच १ माशा,मिर्च २ माशा, वासी पानी २ छटांक में पिये, दूषित रक्त, दाद-छाजन, खुजली, फोड़े, फुंसी, कुष्ठ निवारण हो, स्त्री के बच्चे के बच्चों का स्वास्थ्य ठीक करे, नमक, खट्टा, गुड़, तेल, लाल मिर्च को त्यागे। **ककही**—पत्ते ३ तोला, मिर्च १ माशा, मिश्री १ तोला, पानी आधा सेर में पियें, प्रमेह, पेशाव की जलन शान्त हो। इसी में एक नीबू का रस डालकर लें तो सुजाक, इन्द्रिय दाह नष्ट हो। **यसवन्ती**—के पत्ते ४ तोला, मिर्च २ माशा, मिश्री १ तोला पानी १ पाव में पियें। सुजाक, प्रमेह, इन्द्रिय दाह, शरीर दाह, बिगड़े पेशाव सब ठीक हों।

छोटी दुद्धी—मय जड़ १ तोला, मिर्च २ माशा, गोदुग्ध १ पाव, पानी १ पाव में पियें। ११ दिन में कामलारोग, प्रमेह, सुजाक, इन्द्रिय जलन, सर्वज्वर नाश हो। **महुआ**—छाल ६ माशा, मिर्च १ माशा, पानी २ छटांक में पियें, असाध्य, प्रमेह नष्ट हो। **वकायन**—छाल ५ टका, मूली के बीज २ माशा, पानी दो छटांक में पियें, मिश्री मिला लें। खूनी बबासीर, संग्रहणी, हाथ-पैर जलन, शिर दर्द, गुल्म रोग, प्लीहा, यकृत ठीक हों, पथ्य अनिवार्य है। **हुलहुल**—पत्ते ५ टका, मिर्च १ माशा, पानी २ छटांक में पियें। बबासीर, तिल्ली, यकृत, बरवट, वायगोला नष्ट हो। **ककरौंदा**—१० टका, पानी २ छटक में गोघृत मिला पियें। शरीर पुष्ट, कमर का दर्द नष्ट, नेत्रज्योति बढ़े, सुस्ती दूर हो, भूख बढ़े। **शीशम**—पत्ते ५ टका, मिर्च २ माशा, पानी २ छटांक में पियें। सुजाक, प्रमेह, शरीर की गर्मी शान्त हो। **बबूल देशी** – पत्ते, पञ्चाङ्ग ५ टका, मिर्च ३ माशा, पानी २ छटांक में पियें। सुजाक, पथरी, चिनग, पेशाब की रुकावट बन्द हो। **वायसुरई**—१ तोला, मिर्च १ माशा, पानी १ पाव में पियें। विषम ज्वर, अन्तरा ज्वर,पेशाब के रोग, पेट शूल दूर हों। **नीबू**—का रस २ छटांक, मिश्री १ तोला, मिर्च २ माशा, पानी १ पाव में पियें। हाथ-पैर दाह पित्त ज्वर, शिर दर्द, अरुचि दूर हों, भूख बढ़ाये। **सुरासारनी अजवायन**—६ माशा, बच ६ माशा, मिश्री ५ माशा,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पीसकर पियें। उन्माद, भ्रमवात, हौलदिली, पेट व छाती के दर्द शान्त हों। **अनार**—दाना १ तोला, मिर्च २ तोला, पानी १ पाव में पियें। छाती का दाह, धड़कन, दर्द, उलटी बन्द हों। भूख बढ़ाये। **सतावरी**—५ टका, चिरायता १ माशा, पीपरि १ माशा, सौंठ १ माशा, पानी १ पाव में रात्रि में भिगोयें, प्रातः पियें। सुन्नवात, चमकवात, शिरशूल, कमरशूल, प्रसूत शान्त हों। **बच**— खुरासानीबच १ टका, अजवायन १ टका, कायफल १ टका मिर्च १ माशा पानी १ पाव में ७ दिन पियें। शूल, अफरा, अङ्गवात, दोनों अङ्गवात, रींधन (रेंगबात), चिनङ्गवाय, भड़कन नष्ट हों। **सरुआलु**—पत्ते ५ टका, मिर्च १ माशा, पीपरि १ माशा, सौंठ १ माशा, पानी १ पाव में पियें। कमलवात, शरीरवात शूल नष्ट हो।

(४९) **ऐरण्ड :** बीज की मिगी १ मा०, मिर्च २ मा०, पानी १ पाव में पिये। हाथ-पैर सिकुड़न, टूटन, भड़कन, सूजन और गठिया वात नष्ट हो।

(५०) **कद्दू :** बीज ६ मा०, खीरा के बीज १ तो०, कोहड़ा के बीज १ तोला, मिर्च १ मा०, पीपल १ मा० पानी १ पाव में पियें। संग्रहणी, सर्व ज्वर, नाभि शूल, नासा शूल शान्त हो।

(५१) **कमलगट्टा :** ४ तो० मीग, मिर्च २ माशा पानी १ पाव में पिलायें। कोड़ फोड़ा नष्ट हो।

(५२) **दही :** गौ का दही १ सेर, जीरा २ तोला, पानी १ सेर में मथे। प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या से पूर्व ३ बार पिये। पित्त, शरीरदाह दूर हो।

(५३) **गुडुची :** १ तो०, चिरायता २ ट्का, पीपल २ मा०, मिर्च १ मा० पानी १ पाव में पियें। शीतज्वर, पित्त ज्वर नष्ट हो। यदि इसी के साथ आजवायन,कायफल चूर्ण शरीर पर मलें तो सभी प्रकार की देहपीड़ा, बातज्वर, शान्त हो, शरीर में स्फूर्ति आये।

(५४) **जीरा :** १ तोला, मिर्च १ माशा, मिश्री ५ माशा, पानी १ पाव में पिये तो हृदयदाह, धड़कन, दर्द, देह-हाथ-पैर का दाह, उलटी, भ्रम दूर हो।

(५५) **वावूना :** १ तोला, बच १ माशा, मिर्च १ माशा, पानी २ छटाक में पिये। वातज्वर शान्त हो। साथ इसी के शरीर पर सोंठ, आजवायन के चूर्ण की मालिश करें तो शीताँग, वात पीड़ादि शान्त हों।

(५६) **सौंठ :** ५ टका, पानी १२ छ०में सायं भिगो दें, प्रातः छानें, मिश्री मिला पिये। कफज्वर, संग्रहणी नष्ट हो। (५७) **हरड़ :** वक्कल ५ टका, पानी ।।। सेर में सायं भिगो छानकर; रूई का खार १ माशा, सैंमर का गोंद १ मा० डालकर पियें। कफज्वर, पित्तज्वर, बुद्धिविकार दूर हो, भूख बढ़े।

(५८) **वहेड़ा :** छिलका १ छटाक, पानी ऽ।।। सेर में सायं भिगो दें, प्रातः छान कर १ मा० कूठ, श्वेत चन्दन १ मा०, मिर्च १ माशा पीस कर मिला लें, पियें। कफज्वर, पित्तज्वर, वातज्वर, छाती का दर्द, शूल, कमर दर्द, सिर दर्द, खाँसी नष्ट हो।

(५९) **आवला :** १० टका,पानी ऽ।।। सेर साय भिगो दें; प्रातः छानें, उसीमें वायविडङ्ग २ माशा, दालचीनी १ मा० का चूर्ण मिलाकर पियें; जलन, वात नष्ट हो, प्याह दाह तथा हड़फूटन शान्त हों।

(६०) **खीरा:**—वीज ५ तोला, इलायची ५ माशा, मिर्च २ माशा, पीपल १ माशा, १ पाव पानी में पियें, शरीर फूटन जलन प्रमेह प्रदर, मूत्र दोष नष्ट हों, बल, वीर्य, वढ़ावे। (६१ **ककड़ी:**—वीज मिगी १ तोला, तरबूज के बीज मिगी १ तोला, पीपल १ तोला, पानी १।२ सेर में पियें। मूर्छा, हड़फूटन, दाह, शिर दर्द नष्ट हो, बल, वीर्य, बढ़ावे। (६२) **नागरपानः**—बंगला नागरपान, १ तोला मिर्च १ माशा, पानी २ छ० में पिये। जलन वात, उन्माद नष्ट हों।(६३) **दुलहटीः**—१ तोला मिर्च १ माशा, पानी १ पाव, मिश्री ४ तोला, को पियें। कमलवात, पित्तज्वर,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छाती दर्द, हुचकी छर्दि नष्ट हों। (६४) **जावित्री** (जापठी):—१ तोला, मिर्च २ नग, पानी २ छटांक, पियें, लू का ज्वर, दाह, देह की जलन +फूटन, चिनग, दूर हो, भूख वढ़ावे। (६५) **कुलफा:**—बीज १ तोला, को १०० वार धोयें, जवाखार १ माशा, १ पाव पानी में पियें। कफज्वर, कब्ज, कमर दर्द, शिर दर्द दूर करे, अन्न पचे भूख वढ़े।

(६६) **खुवकला:** —१ तोला, मिर्च १ माशा पानी १ पाव में पियें, पित्तज्वर, खांसी, पेट का दाह, दर्द नष्ट हो। (६७) **काहू:**—४ पत्ते, पानी १ पाव, में पीसें, १ माशा, जवाखार, डालकर पियें। भूख बढ़ाये, अन्न पचावे, अरुचि नष्ट करे। (६८) **सोंफ:**—१ तोला, मिर्च १ माशा, पानी १ पाव में पीसें, सैंमर का गोंद २ तोला, डालकर पियें। कब्ज, पेट दर्द, शूल, हिचकी नष्ट हो। (६९) **धनियां:**—१ तोला मिर्च १ माशा, पानी १ पाव, प्रातः पियें। गर्मी, अतिसार दूर हो, भूख वढ़ावे, अन्न पचावे। (७०) **मुलहटी:**—१ तोला, मिर्च १ माशा, पानी १ में पीस ४ तोला मिश्री, मिला प्रातः पियें। कमलवात, सन्निपात, छाती दर्द, हुचकी, वमन दूर हो। (७१) **पोदीना:**—२ तोला, मिर्च १ माशा, पीपल १ माशा, पानी १ पाव में पियें, तो शीताङ्ग सन्निपात नष्ट हो। सौंठ अजवायन का चूर्ण देह पर धूनी दें तो शरीर का दर्द नष्ट हो जाता है।

शीतला ज्वर:—नागर मोथा गिलोय, श्वेतचन्दन, दोनों वांसा, दाख का अर्क दें। और लौंग, इलायची चूर्ण, लौनी घी में मिलाकर लेपें लाभप्रद है। **नपुंसक और बन्ध्या की परीक्षा:**—जौ या गेंहूँ या वाकला के वीज मिट्टी में मिला, पृथक्-पृथक् पात्रों में रख लें। अपने २ ही पात्रों में प्रातः सायं मूत्र करें। उगें तो ठीक, जिसके न उगे हों उसीमें क्षीणता समझे। (२) मिट्टी के पात्र में पानी भरकर, पृथक्- २ स्त्री पुरुष अपनी धातु डालें, जिसकी बैठ जाये वह स्वस्थ तैरे वह रोगी समझें। (३) नद्दू और काहू के पेड़ों पर पृथक्-२ निपत कर पेशाव करें। जिसका सूख जावे वही रोगी समझें।

उपचार विधि: हाथी दाँत का चूर्ण १ तोले में मिश्री मिला ले। स्त्री रजोधर्म के चौथे दिन से ६ मा० नित्य ७ दिन ले, तदनन्तर समदिन शुभ दिनों में, पुरुष सूर्य स्वर स्त्री चन्द्रस्वर में सहवास करे अथवा २-३ कायफलचूर्ण में मिश्री मिला, ६ माशा उपरोक्त विधि से लें। ऊपर दूध, चावल ही खायें। (३) नागौड़ी असगन्ध ५ तो० चूर्ण में से, चौथे दिन से क्रमशः १ तो०, दूसरे दिन २ तोलालें। (४) हाथी मूत्र सहवास से पूर्व लें। (५) समुद्रफल, दही के साथ सहवास से पूर्व स्त्री निगल लें। (६) वाज की पीठ सहवास से पूर्व निगल ले, तो पुत्र हो।

गर्भ परीक्षा :— स्त्री का दाहिना भाग वोझिल हो, दाई छाती बड़ी हो, स्तनों पर सुरखी हो तो पुत्र हो। भूख कम हो, शिर भारी हो, मुंह पर जरदी हो, रुखापन हो, सुस्ती हो, नींद अधिक हो, चलने में प्रथम दायां पैर उठाये दाहिना हाथ टेक कर उठे तो पुत्र हो। (३) गर्भवती अपनी जूं हथेली पर रख, अपना दूध डाले जूं रेंगे तो पुत्र हो। (४) चुकन्दर के पत्तों का चूर्ण स्त्री के नाक में फूंके, छींक न आवे तो पुत्र, छींक आवे तो पुत्री हो।

गर्भस्तम्भन दृढ़ो करण विधि :-(१) बड़ी इलायची २ मा० कन्द में मिला नित्य सेवन करें।

(२) कुसूम में रंगे लाल कपड़े को १ धागे में, करञ्ज की जड़ के टुकड़ों को कमर में ९ मांस बांधे रहें। (३) इसी प्रकार कहरूआ कमर में बांधें। (४) काले धतूरे की जड़ कन्या के कच्चे धागे में शिर से पैर तक नाप कर २१ तार बनालें, पृथक् २ वांध कर, कमर में बांधे तो गर्भ न गिरे।

मन्त्र बव सीर—कुशों से चलाते हुए एक पात्र में जल को अभिमन्त्रित कर ७ दिन पियें।

ॐ भिभित्तिद्विः ॐ ठः निवासिनिगरलंविषंस्वजीर्ण संभवंनानार्षनाशयताशयठंठंफट्स्वाहा। अथवा "ॐ काली कालीं महाकाली मातरो बहुभिगंच्छयतिकश्चिद्विहितं तत् कुरुकुरु स्वाहा।

सावरमन्त्र-एक लोटे में पानी भरें, उस पर मन्त्र २१ वां पढ़ते हुए फूंक मारें, लोटा नीचे रक्खें, हाथ ही में रक्खें, उसी को शौच में ले जाओ पर हाथ में रक्खो शौचान्त उसी से आवदस्त लो। यह ११ दिन लगातार करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र ॐ काका करता करौरि करता आकर करता जो-जो करता सो-सो होय है रसना रस ही से परबस बिष दूर होय दुहाई लोना चम्मारी की।

कुष्ठ रोग निवारण विधिः—पीपल, सरसों तेल, आक और गौ के दूध, गो घृत १।१ पाव, सैंधा नमक, सुहागा हरताल, १।१ तो०, सब मिलाकर पानी में औंटावें तेल शेष रहे तब मथ लें। उसी की मालिश करें परन्तु नेत्रों पर हाथ या दवा न लग जावे। १८ कुष्ठ नष्ट होते हैं। २ श्वेताकि जड़, छाल, अदरख के रस में पीस गोल मिर्च जैसी गोली बनायें ५६ दिन सेवन करें। (३) मिर्च, सिन्दूर, भैंस का घी में मथकर लेप करें पामा (खाज) नष्ट हो। (४) नीलाथोथा, बाक्ची, गन्धक, हल्दी दोनों मिलावें, दूनी चोख सज्जी समभाग लें कटु तेल में डालें। पकालें तेल सिद्ध करके रख लें गौ के जङ्गल के सूखे कण्ठे से घिसकर लोहुलुहान कर लें, तब इसका लेप करें तो नानाभांति की कण्डू श्वित्र, पानी, दाग सभी नष्ट हो जाते हैं।

श्वेतकुष्ठ उपचार—टेशुबीज, गुंजाबीज, नौसादर, ४।४ माशा, अफीम ३६ माशा सब को पीस लें नीम के रस में घोटें, गोली बना लें। नीम के रस में घिसकर श्वेत चटा पर लेपें। २ आमलासार गन्धक आक की जड़, हरताल, कुटकी दोनों हल्दी, समभाग लें, गो मूत्र में पीस चटा पर लेपें। श्वेतकुष्ठ ठीक होता है।

लकवा का उपचारः—सन के बीज ४ तो० पीसें शहद मिला प्रातः ही खिलावें। १५ दिन में लकवा ठीक हो जाता है। २ काली मिर्च पीसकर तेल में मिला गर्म कर लेपें, तो पक्षाघात तुरन्त ठीक हो, ३ वच ५ तो० सौंठ, काला जीरा २।२ तो० चूर्ण करें शहद में मिला ४ आना भर नित्य सेवन करें। ४ वच २ तो० काली मिर्च, पोदीना, स्याहजीरा, कलोंजी सब १०।१० माशे चूर्ण कर १ पाव शहद में मिलावें १।२ तोला नित्य सेवन करें। पक्षाघात लकवा दूर हो। ५ सफेद कन्नेर की जड़ का छिलका, सफेद चिरमिटी की दाल, काले धत्तूरे के पत्ते सब २।२ तोला चूर्ण कर टिकिया बना लें १ पाव तेल में डालकर टिकिया उपरोक्त की घुटाई करें। मन्द अभिाज धीरे २ सिद्ध करें दवा जल जावे तो उतार लें ठण्डा कर शीशी में भर लें। पक्षाघात, अर्धाङ्ग, रैंगा वायु के शरीर पर शनै २ अच्छी तरह मालिश करें। धूप सैंकें पुनः कांयफल डालकर गर्म किये जल से २ घंटे बाद हल्का स्नान करयें। स्नान कर कपड़ा ढककर धूप लें तो लकवा अधाङ्ग वायु ठीक हो जाते हैं।

अथ शत्रु स्तम्भन, संकटमोचन, संग्राम जय विधि :—

अथर्ववेद [ब्रह्मवेद] की शौनकीय शाखा, जीवनीय जगत की समस्त आधि-व्याधि, शत्रुभय, मृत्यु भीति आदि के निवारण को शान्त तथा उग्र दो प्रकार के सिद्धान्तों [विधियों] का निर्देश करती है। आथर्वणी औषधि-क्रिया-कलाप सभी शान्त और आङ्गिरषी उग्र के लिये प्रयुक्त होते हैं। कौशिकोक्त शान्ति में, वैतानश्रौत सूत्रोक्त सभी उग्र में प्रयोग होते हैं। जो व्याधि वृहच्छान्ति, पिप्पलादि ३० प्रकार की शान्ति विधियों से शमन नहीं होती है, वहाँ रौद्रगण से रौद्री क्रिया से उग्र शान्ति की जाती है। बज्र, उद्वज्र, त्रिषन्धि, वज्र, परशु, पाश्वपदास्त्र, नारायण कवच, ब्रह्मास्त्र, ब्रह्म, शिर, ब्रह्मकूर्च, ब्रह्मदण्ड, आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, तमशास्त्र, सम्मोहनास्त्र आदि सभी दिव्य अमोघ अस्त्र-शस्त्रादि भी इसी रौद्री प्रक्रिया के ही अङ्ग हैं।

वज्र, उद्वज्र प्रयोग में वर्णित सभी सूक्त तथा शत्रुदमन संग्राम जयविधि के सभी मन्त्र और प्रक्रियायें पृथक् पृथक् तथा एकाकी भी रौद्री क्रिया में 'रौद्रगण' में आती है।

भेषजं [शान्तम्] का पाठ आथर्वणवेद से और 'घोरम्' का पाठ [आभिचारिक] का पाठ आङ्गिरस वेद से होता है। आङ्गिरषी [अभिचारिकी क्रिया] दक्षिणाभिमुख, अपसव्य होकर, एकान्त नदी, पर्वत, श्मशान, युद्धक्षेत्रादि में मध्याह्नोत्तर या रात्रि में अधिक फलदायक सफल होती है। सभी जल या सामग्री-पल्लवादि मध्याह्नोत्तर काल में दक्षिण, पश्चिम के जलाशय, वृक्षादिकी दिशाओं से लिये जाते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(पूर्व का शेष)

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
किमभ्यार्चन् मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवास्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२३
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२४
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येऽति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानस्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२५
कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत । स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥२६

अस्य कां० ७ सू० २७. ऋ० १-८ मेधातिथिः ऋषिः । विष्णुर्देवता । त्रिष्टुप् २ त्रिपदाविराट् गायत्री, ३ त्र्यवसानाषट्पदा विराट शक्वरी, ४-७ गायत्री, ८ त्रिष्टुप् छन्दांसि समस्त उपर्युक्त सम्पत् कमंसु जपे, उपस्थाने यागे, ऋचा ३ यज्ञीयपूर्णाहुतौ च विनियोगः ।

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१
प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात् परस्याः ॥२
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥३
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ॥४
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । इतो धर्माणि धारयन् ॥५
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीऽव चक्षुराततम् ॥७

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥८

समिधायें :--प्रायः कांटेदार यज्ञिक वृक्षों छोकर, शमी, रेंमजा, बिल्व, कटेहरी, ऊंटकटेरा आदि, गृद्ध-चील के बैठने के नीड [घोसलों] की चौटनी [गुञ्जा] धत्तूरा, ऐरण्ड [वधक], अर्क [आक], ओलों से या स्वयं टूटी पीपल की, करीज, पलाश, ढाक, तलाश [तिणि], खदिर [कत्था], शरपता [मूंज का शिर], कास, मूंज के पाश, भांग केपास, वाण की लकड़ी की समिधायें सभी या जो भी सम्भव उपलब्ध हों अधिक से अधिक रखें ईंगिड [इंगुदी वृक्ष] निर्मित, लाल, नील धागों से वेष्टित कर लें। मूंज की रस्सियां [पुरानी] से रखकर, अश्वत्थ पर करीर रख अग्नि मन्थन करे। उसी अग्नि में रोग और शत्रुदमन, निरोधार्थ सरसों के तेल से आहुतियाँ दें। अनेक धान्यों के सत्तूओं से होम करें। रोग में गिलोय, काली मिर्च, भुलहटी विशेष कर लें।

व्याधि-निदान, जय, मृत्यु विज्ञान :—

कां. ५ सू. ६ 'ब्रह्मजज्ञानम्' की विधि से भलीभांति समझकर मनन कर प्रयोग करें। यह पूर्णतया सफल विधि है। अध्याय ३ में पढ़ें।

जय-पराजय विज्ञान :—

मूंज या काष [कांस] के शर अग्रभाग] कल्पित या यथार्थ सैन्यस्थल के बीच अभिमन्त्रित कर गाड़ दें। अभिमन्त्रित कां. ४ सू. ३० 'त्वयामन्यो' जो वज्र प्रयोग विधि में है, उससे करें। उसमें दक्षिणाग्नि अर्थात् [सांग्रामिक चाण्डाल अग्नि] जिसकी विधि अभी पीछे काण्ड ८।८ 'इन्द्रोमन्थतु' के साथ दी गई है, से इन्हें जलायें। उनसे उठा हुआ 'धुवां' जिस पक्ष की ओर छा जावे, उसी की पराजय होती है ऐसा समझें'। इसी से सक्तु, समिधा, वाण, कवच, यान आदि को अभिमन्त्रित करें।

पुरा काल में राजतन्त्र में राजा ही सेना का स्वामी होता था। प्रजातन्त्र में 'सेनाध्यक्ष'या राष्ट्रपति, संसदीय नेता ही सेनाकर्म में सर्वोपरि होता है। राजविग्रह के अतिरिक्त व्यष्टि कर्मों में भी वादी-प्रतिवादी [पक्ष-प्रतिपक्ष] में भी इसका प्रयोग करें। अभिचार कर्म (रौद्र कर्म) में उपर्युक्त समिधाओं सत्तुओं के साथ ही पीली सरसों, गुड़ की शक्कर, सेंधा नमक, काली मिर्च, काले तिल, जौ, काले जो, काले धान सामग्री मिलाकर होम करें। युद्ध की अधिष्ठात्री 'अप्वा-देवी' हैं। उन्हीं के निमित्त विजयार्थ होम किया जाता है।

"युद्ध की वेदी" जय पराजय युद्ध (सेना) कर्म में शूकर के बैठने के स्थान की, श्मशानया कुरुक्षेत्र जैसे युद्ध स्थल की मिट्टी की वेदी बनायें।

सेना अग्नि—सेनाग्नि सिद्धयर्थं "पूतिरज्जु" कां ८ सूक्त ८ ऋचा २ की पूर्वार्द्ध आधी ऋचा से अग्नि के स्थान पर पुरानी मूंज या कांस या ताड़या केतकी की बनी रस्सी लेकर रक्खें। स्वयं टूटी अथवा ओलों से टूटी (लाल) पीपल की समिधा तथा करील के काष्ठ को "इन्द्रो मन्थतु" ८।८-१ ऋचा से करें। मन्थन कर्म से धुवां होते ही "अग्नि-परादश्य" कां ८ सू० ८-२ कीं उत्तरार्द्ध ऋचा से अग्नि की वन्दना करें। इसी अग्नि का वैतानोक्त "पुरीष्योसि" की ४ ऋचाओं से आवाहन करें। तदनन्तर पूजा करें होमाग्नि का शिर नीचे को, पैर ऊपर को ऊपर को होते हैं, ऐसी स्थिति में हव्यवाहन असम्भव, अशुभ फलप्रद होता है। अतः मिट्टी के पात्र में जल, अक्षत, पुष्प डालकर आचार्य अग्निदेव की स्वय परिक्रमा कर अर्घ्य निम्न से दें। जल से भयभीत अग्निदेव तत्काल ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं तभी हव्यवाहन में समर्थ शुभ फलप्रद होते हैं। अध्याय २ अग्निस्थापन में पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ बाजंत्वाऽग्नेजेध्यन्तत से अर्घ्यदान। ॐ पुरीष्योऽसिविश्वभराः "सेना अग्नि आवाहन" अनुमन्त्रण।

आचार्य इससे **यद अक्रन्दः प्रथमं**—सेना-अग्नि उपस्थान करें। (आचार्य द्वारा)

अभिमन्त्रण ऊर्ध्वस्वर से क्रुद्धरूप से करें। "इन्द्रो मन्थतु" इसी सूक्त से अभिमन्त्रित कर उपर्युक्त समिधाओं से (होम) करें (समिधादान करें) इसी से मूंज के पाशोंमांगपाशों, से बांधकर करीर के दण्ड पीपल के खूंटे, सिन्दूर, कज्जल से चित्रित कर सेना स्थल में गाड़ें। (अग्नि) पदरहित—

धूमं परादृश्यामित्रो हृत्स्वादंधतां भयम्।

आधी ही ऋचा से शत्रु पक्ष के भयभीत करने की प्रार्थना करें। तथा अग्नि उत्पन्न होते ही "धूम" पदरहित "अग्नि परादृश्या" आदि आधी ही ऋचा से प्रार्थना करें। इसी सेना अग्नि में व्याधि-जय, मृत्यु, विज्ञान कर्म करें।

इसी सेना कर्म में शत्रु पर विजयाभिलाषी "यदि सम्भव और सुलभ हो तो" युद्ध में वीरगति प्राप्त सैनिक (वीर) की दाह संस्कार में से शेष लकड़ी की समिधा रखकर उस पर चक्र (चाकपहिया) रक्खे और लम्बे दण्ड युक्त-स्त्रुवासे चक्र (चाक) के छेदों में होकर तैल की आहुति दें और इससे अपने योद्धाओं को सम्बोधित करें, "उत्तिष्ठत, सनह्यध्वं" कां ८ सू ८ ऋ २ से २६ पर्यन्त से आहुतियों के साथ पृथक् सम्बोधित करते हुए युद्ध में भेजें। यहीं पर परपक्ष (विपक्षी) यदि वैश्य हो तो कां ५ सू २ ऋचा ४ "यदिचिन्नुत्वा" से भर्त्सना करे। यदि अन्य सेनापति हो तो कां ५ सू २ ऋ ५" त्वयावयम्" से भर्त्सना करें।

कां ११ सू ६ में आगे क्रम देखें, उसी प्रकार आहुतियां, स्वबलसंवर्द्धन, पर बल विनाशार्थ दें। (३) यथा स्वामित्र बल वृद्ध्यर्थं करीर की प्रज्वलित समिधाओं सव्य (यज्ञोपवीतदायें करके) पूर्वाभिमुख हो आज्यहुति "इतोजय" से प्रारम्भ कर स्वाहेभ्यः आहुति दें। (२) परपक्ष बल विनाशार्थ यज्ञोपवीत बायें करके दक्षिणाभिमुख हो करीर की समिधा में इङ्गिण (सिन्दूर) लगा आज्य में डुबो "इतोजय से प्रारम्भ कर, (स्वाहेभ्यो) से रहित तथा "दुराहामीभ्यः" तक से आहुति दें। (३) यहीं कर्मभूमि (होमस्थान) में अग्नि के उत्तर दिशा में स्वयं टूटी पीपल की शाखा को लाल वस्त्र या रङ्ग से वेष्टित कर ऊपर करके पृथ्वी में गाढ़ें इसके पास से अग्नि की ओर नीले और लोहरे रङ्गों के धागों से आधी-आधी वेष्टित कर बलपूर्वक अग्नि की ओर "नील लोहितेनामूनम्यवतनोमि" इसे पढ़ते हुए फेंकें।

युद्ध में मृत्यु या जीवन-विज्ञान इसी सेना कर्म में प्रतिदिन के क्रम से आज (अमुक दिन) युद्ध भूमि में जाने वाले सेनाध्यक्ष या अन्य अधिकारी अथवा वीरों में से किस की मृत्यु होगी? इसी के विज्ञान कर्म से परीक्षा करें एक नवीन पात्र लें। उसमें दक्षिण की दिशा से लाये जल से पूर्ण करें। उसे निम्न ऋचा "कां ५ सू० २ ऋचा ६" (नितद् दधिषे) से अभिमन्त्रित करें। उसी जल में क्रमशः २ दो-दो योद्धाओं को बुलाकर उनकी छाया सेनाध्यक्ष या तात्कालिक जो भी अधिकारी हो देखे। उस जल में जो या जिसकी छाया न दिखाई दे, उसकी मृत्यु समझें और उस दिन उसे युद्ध भूमि में न भेजें, अन्य कार्य में उन्हें अन्यत्र (युद्ध से) सुरक्षित रक्खें। इसी ऋचा से नये वाहन तथा सारथी को अभिमन्त्रित करें उसमें जिन की छाया दिखलाई पड़ी हो उन्हें बिठाकर वीरभूमि में भेजे। निश्चित वे विजयी मातृभूमि के उन्नतमस्तक के गौरव को प्राप्त करते हैं। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं कां ५ सू २ ऋ ६।

यह अर्थ सूक्त है। इसे सेनाकर्म भी कहा है। इससे 'सेनाग्नि' सिद्धयर्थ 'पूतिरज्जु' ऋचा २ के अर्द्धभाग से अग्निपात स्थान में पुरानी रज्जु रखकर अश्वत्थ, करिमालक (करोर) ही के काष्ठों से 'इन्द्रोमन्थतु' ऋचा १ से अग्नि मन्थन करें। धुवां के उत्पन्न होते ही 'अग्निपद' रहितेन'इस आधी ऋचा से अग्नि का अनुमन्त्रण करें।'अग्नि परादृश्यः' (२) इस आधी ऋचा से ही'धूम पद रहित' अग्नि का अनुमन्त्रण करें। इस प्रकार की अग्नि में सेना कर्म जो का० ११ सू. ६ के सन्दर्भ में आगे उल्लिखित हैं करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ८ सू. ८ ऋ. २४ भृग्वङ्गिराः । ऋषिः । इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहनन, देवते । अनुष्टुप्, २, ८, १०, २३ उपरिष्टाद्वृहती, ३ विराड वृहती, ४ वृहती पुरस्तात्प्रस्तार पङ्क्तिः, ६ आस्तारपङ्क्ति, ७ विपरीत पादलक्ष्मा चतुष्पदाति जगती, ११ पथ्या वृहती, १२ भुरिक्, १९ पुरस्ताद्विराड् वृहती, २० पुरस्तान्निचृद् वृहती, २१ त्रिष्टुप्, २२ चतुष्पदा शक्वरी, २४ त्र्यवसानात्रिष्टुवुष्णिग्गर्भा परा शक्वरी पञ्चपदा जगती । छन्दांसि । शत्रुदमने शत्रुपरबलक्षयणे, स्वमित्र बल सम्वर्द्धने, शत्रु वशीकरणे ग्रामे, स्वाराज्यलाभे विजये होमे विनियोगः ।

इन्द्रो॑ मन्थतु मन्थि॒ता श॒क्रः शूरः॑ पुरंद॒रः । यथा॑ हना॑म॒ सेना॑ अ॒मित्रा॑णां सहस्र॒शः ॥१

पू॒ति॒र॒ज्जुरु॑प॒ध्मानी॒ पूतिं॒ सेनां॑ कृणोत्व॒मूम् । धू॒मम॒ग्निं प॑रा॒दृश्या॒मित्रा॑ हृ॒त्स्वा द॑धतां भ॒यम् ॥२

अ॒मूनश्व॑त्थ॒ निः शृ॑णीहि॒ खा॒दा॒मून् ख॑दिरा॒जि॒रम् ।
ता॒जद्भ॑ङ्ग इव भज्यन्तां॒ हन्त्वे॑ना॒न् वध॑को व॒धैः ॥३

प॒रु॒षान॒मून् प॑रुषा॒ह्वः कृ॑णोतु॒ हन्त्वे॑ना॒न् वध॑को व॒धैः ।
क्षि॒प्रं श॒र इ॑व भज्यन्तां बृहज्जा॒लेन॒ संदि॑ताः ॥४

अ॒न्तरि॑क्षं॒ जाल॑मासीज्जालद॒ण्डा दिशो॑ म॒हीः । तेना॑भि॒धाय॒ दस्यू॑नां श॒क्रः सेना॒मपा॑वपत् ॥५

बृ॒हद्धि जालं॑ बृ॒ह॒तः श॒क्रस्य॑ वा॒जिनी॑वतः ।
तेन॒ शत्रू॑न॒भि सर्वा॒न् न्यु॒ब्ज॒ यथा॒ न मुच्या॑तै कत॒मश्च॒नैषा॑म् ॥६

बृ॒हत् ते॒ जालं॑ बृ॒हत इ॑न्द्र शूर सहस्रा॒र्घस्य॑ श॒तवी॑र्यस्य ।
तेन॑ श॒तं स॒हस्र॑म॒युतं॒ न्य॑र्बु॒दं ज॒घान॑ श॒क्रो दस्यू॑नामभि॒धाय॒ सेन॑या ॥७

अ॒यं लो॒को जाल॑मासीच्छ॒क्रस्य॑ म॒ह॒तो म॒हान् । तेना॒हमि॑न्द्रजा॒लेना॒मूंस्तम॑सा॒भि द॑धामि॒ सर्वा॑न् ॥८

से॒दिरु॒ग्रा व्यृ॑द्धि॒रार्ति॑श्चानपवा॒च॒ना । श्रम॑स्त॒न्द्रीश्च॒ मोह॑श्च॒ तैर॒मून॒भि द॑धामि॒ सर्वा॑न् ॥९

मृ॒त्यवे॒ऽमून् प्र य॑च्छामि मृत्युपा॒शैर॒मी सि॒ताः ।
मृ॒त्योर्ये अ॑घ॒ला दू॒तास्तेभ्य॑ एना॒न् प्रति॑ नयामि ब॒द्ध्वा ॥१०

नय॑ता॒मून् मृ॑त्युदू॒ता यम॑दू॒ता अपो॑म्भत । प॒रः स॑हस्रा ह॑न्यन्तां तृणेढ्वे॑ना॒न् म॒त्यं॑ भ॒वस्य॑ ॥११

सा॒ध्या एकं॑ जालद॒ण्डमु॒द्यत्य॑ य॒न्त्योज॑सा । रु॒द्रा एकं॒ वस॑व॒ एक॑मादि॒त्यैरेक॒ उद्य॑तः ॥१२

विश्वे॑ दे॒वा उ॒परि॑ष्टादु॒ब्जन्तो॑ य॒न्त्वोज॑सा । मध्ये॑न॒ घ्नन्तो॑ यन्तु सेना॒मङ्गि॑रसो म॒हीम् ॥१३

वन॒स्पती॑न् वानस्प॒त्यानोष॑धीरु॒त वी॒रुधः॑ । द्वि॒पाच्चतु॑ष्पादिष्णामि॒ यथा॒ सेना॑म॒मूं हन॑न् ॥१४

ग॒न्ध॒र्वा॒प्स॒रसः॑ स॒र्पान् दे॒वान् पु॑ण्यज॒नान् पि॒तॄन् । दृ॒ष्टान॒दृष्टा॑निष्णामि॒ यथा॒ सेना॑म॒मूं हन॑न् ॥१५

इ॒म उ॒प्ता मृ॑त्युपा॒शा या॒ना॒क्रम्य॒ न मु॒च्यसे॑ । अ॒मुष्या॑ हन्तु॒ सेना॑या इ॒दं कू॒टं स॑हस्र॒शः ॥१६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धूमः समिंद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः । भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनामुमूं हतम् ॥१७
मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् । इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनामुमूं हतम् ॥१८
पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा । बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१६
अवं पद्यन्तामेषामायुधानि मा शंकन् प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥२०
सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥२१
दिशश्चतस्रोऽश्वतर्योऽदेवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमद्धिः ।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक् परिरथ्यम् ॥२२
संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम् ।
संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥२३
इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो 'दुराहामीभ्यः' । नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥२४

अथ शत्रुदमन, संग्राम जय विधि :—

कां. ८ सू. ८ 'इन्द्रोमन्थतु' शत्रु के नगरों को नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला वीर, सामर्थ्यवान् शत्रु सैन्य का बन्धनकर्त्ता इन्द्र, शत्रु सेना का मन्थन करे । जिसके पराक्रम से शत्रुओं के हजारों सैनिकों को हम मारें । (२) सुलगाई हुई पुरानी रस्सी; इस सेना में दुर्गन्धि फैला दे, धुवां और अग्नि को दूर से ही देखकर शत्रु के हृदयों में भयभीत हो उठें । (३) हे घुड़सवार महाभट ! इनको काट, हे शत्रु भक्षक वीर ! इनको तुरन्त खा । शीघ्र भञ्जकर्त्ता के तुल्य, भञ्जन किये जावें, और बधकर्त्ता शस्त्रों से इनको मारे । (४) निष्ठुरता से लताड़नेवाले वीर ! इनको निष्ठुर हृदय बनाये, संहारकर्त्ता इनका शस्त्र से बद्ध करें । बड़े (मायाजाल) से बंधे हुए, शत्रु सरकण्डों के तुल्य तुरन्त टूट जावें । (५) अन्तरिक्ष जाल है, और विस्तीर्ण दिशायें जाल के स्तम्भ हैं । उसी से शत्रुसेना का बन्धन कर, शूरवीर दौड़ लगाता है । (६) सेना के साथ रहनेवाला सेनानायक (इन्द्र) का बड़ा (इन्द्रजाल) है । उसी से तू सब शत्रुओं को सभी ओर से अधीन कर, जिससे इनमें से एक भी न छूट पाये (७) हे शूरबीर इन्द्र! सहस्रों मनुष्यों द्वारा अर्चित, अतुल सामर्थ्यशाली तुझ इन्द्र का (इन्द्रजाल) भी बहुत बड़ा है । उसी जाल से घेर कर, तथा अपनी सेना द्वारा, इन्द्र शत्रु के सहस्रों, लक्ष्यों, अनन्त शत्रुओं का संहार करना है । (८) महान इन्द्र का, यह महान लोक ही जाल है । उस इन्द्र के महान (इन्द्रजाल) से इन सब शत्रुओं को मैं घेरता हूँ । (९) बड़ी शिथिलता, दरिद्रता, अकथनीय संकट, कष्ट, घोर परिश्रम, प्रमाद और मोह रूपी जालों से मैं इन शत्रुओं को घेरता हूँ । (१०) इन शत्रुओं को मैं मृत्यु की बली देता हूँ । ये मृत्यु पाशों से बांधे गये हैं ।मृत्यु के जो पाप से जो यातना देनेबाले दूत हैं, उनके पास ही इनको बांध कर ले जाता हूँ । (११) हे मृत्यु दूतों !

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इनको ले चलो। यमदूतो ! इनका अन्त कर दो। हजारों से भी ऊपर मारे जावें। इनका ईश्वर के विधान से अन्त करो। (१२) साध्य देव एक बाल के एक स्तम्भ उठाकर बलपूर्वक ले जा रहे हैं। रुद्रदेव दूसरे को, वसुदेव अन्य को और आदित्य देव अन्य को उठाते हैं। (१३) विश्वदेव ऊपर ही ऊपर दुष्टों को दबोचते हैं। बलपूर्वक चलते हैं।

(१४) बनस्पति और उनसे निर्मित्त पदार्थ, औषधियाँ और लतायें, चौपाये और दुपाये, इन सबको मैं प्रेरित करता हूं; जिससे इस सेना का विनाश करते हैं। (१५) गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, देव, पुण्यजन और पितरजन इनको देखें, न देखे हुओं को मैं प्रेरित करता हूं; जिससे इस सेना का संहार करते हैं। (१६) ये मृत्युपाश रक्खे हुये हैं. इन पर आक्रमण कर तू नहीं छूटेगा। इस सेना के इस केन्द्र को हजारों भाँति से नष्ट करें। (१७) यह प्रदीप्त होम अग्नि द्वारा सहस्रों भाँति से प्रज्वलित हुआ है। भव और विचित्र भुजाओं वाला शर्व ये तुम दोनों इस सेना को नष्ट करो। (१८) मृत्यु से कष्ट' भूख, बन्धन, बध और भय को प्राप्त होओ। हे शर्व ! और इन्द्र ! दोनों ही इस सेना को मारो। (१९) हे शत्रुओं ! तुम पराजित होकर त्रस्त होओ, दैव से प्रेरित होकर भाग जाओ। देवगुरु से प्रेरित हुए इनमें से कोई भी न बचे। (२०) इनके शस्त्रास्त्र गिर जावें। प्रतिपक्ष से आये हुवे बाण को ये सह; न सकें। अब ये अत्यन्त भयभीत हो जावें। इनके मर्मों में बाण लगें। (२१) द्युलोक और पृथ्वी में इनकी अपकीर्ति हो, अन्तरिक्ष में देवताओं के साथ सभी इनकी निन्दा करें। ये ज्ञाता को भी प्राप्त न हों, इनकी अप्रतिष्ठा भी हों। ये परस्पर विद्वेष करते हुए मारे जावें। (२२) चारों दिशायें देवरथ की घोड़ियाँ हैं, पुरोडाश खुर हैं, अन्तरिक्ष ऊपर का भाग है, द्युलोक और भूलोक दोनों बाज हैं, ऋतुयें रस्सियाँ हैं। बीच के भाग अधरक्षक हैं और वाणी का अभ्य भाग है। (२३) सम्वत्सर और परिवत्सर रथ में बैठने का स्थान, विराट जोतने का दण्ड है। अग्नि रथ का मुख है। इन्द्र बाईं ओर बैठनेवाला और चन्द्रमा सारथी है। (२४) हे स्वपक्ष के बीर ! यहाँ से जय प्राप्त कर, यहाँ से विजय हो, अच्छी प्रकार जब प्राप्त कर। रे परपक्षवालों ! आत्मसमर्पण कर दो, ये हमारे वीर जय प्राप्त करें, ये शत्रु सैनिक, पराभव को प्राप्त हो। स्वपक्ष के लिये आशिर्वाद स्वस्तिवचन इन (परपक्षी) शत्रुओं के लिये निन्दा का पराभवात्मक दुर्वचन के साथ नील और लोहित रक्त से इन शत्रुओं को सब प्रकार से गिराता हूं।

अथ सर्पदंष्ट्र परिविज्ञान :—

दूत लक्षण :— सर्पादि के काटने की कोई दूत सूचना लेकर आये, तो उसके लक्षणों से शुभाशुभ का ज्ञान करलें।

शुभ दूत :— दूत के हाथ में पुष्प, फलादि हों, शुभ प्रिय वाणी बोले, विचारवान हो,और अपने (स्त्री-पुरुष) लिङ्ग, (ब्राह्मणादि) वरण के अनुरूप शुक्ल, स्वच्छ वस्त्र, तिलक, मालादि धारण किये सामने से आये।

अशुभदूत :— पीछे से आये, हाथ में शस्त्र हो, प्रमादी हो, नीचे को देखता हो, अटपटे शब्द कहे, सूखे काष्ठादि पर बैठे या छुए, खिन्न मन हो, हाथ में तिल, मांस, मदिरा, लाल वस्तु हो, भीगे वस्त्र हों या काले रंग की वस्तु हो, रक्त पुष्प, नगे शिर, छाती मलता, नख काटता, नितम्ब या पेशाब इन्द्रिय के भाग को छूता हो, पैर से लिखता हो, सवारी पर हो, या एक से अधिक हो, बालों को खुजलाता हो, तृण तोड़ता हो, बायें स्वर की ओर से आया हो, इस प्रकार का दूत या सन्देश अशुभ है।

स्वर विज्ञान से स्त्री, पुरुष, नपुंसक ज्ञान :— यदि दूत बायें (चन्द्रस्वर) की ओर से आये तो साँपिनि, सीधे अर्थात् दक्षिण (सूर्यस्वर) से आये तो सर्प और सुषुम्ना (कभी दायें कभी बायें) गति से चलते स्वर में आये तो नपुंसक (दोगला) का काटा समझें। दूत शरीर के जिस भाग को छूता हो उसी में काटा समझें। दूत का आकर पैर चलाते रहना अशुभ, एकदम उठना शुभ। जिधर का वैद्य का स्वर हो उसी ओर से, उसी अपने भी 'कदाचित' स्वर से आया दूत शुभ—विपरीत स्वर या विपरीत दिशा का अशुभ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आकारादि स्वर-व्यञ्जन से दंष्ट्र परीक्षा :— दूत आने पर क्रमशः (अ) से (अः) तक १६ स्वरों के आदि के अक्षरों से प्रारम्भ वाक्य बोले तो पुंवर्ग; सर्प का काटा समझें। और (क) वर्ग से च, ट, त वर्ग के शब्दों से प्रारम्भ वाक्य बोले तो स्त्री वर्ग सर्पिणी का काटा है, और (प) वर्ग से अन्त (श) तक के शब्दों के प्रारम्भ के अक्षरों के वाक्य से बोलना प्रारम्भ करे तो नपुंसक (दोगला) का काटा समझें।

चिकित्सक या दूत के प्रस्थान कालीन शुभाऽऽशुभ चिह्न :—प्रस्थाम समय में मंगलकारी ध्वनि वा वाक्य सुनाई पड़े; हाथी, गौ आदि हो, मेघ गर्जे; फल या वृक्ष की परिक्रमा हो, गीत मंगल; बायें ओर का रुदन हो तो शुभ है।

अशुभ लक्षण :—अमंगल वाणी, दायें ओर का रोदन, वेश्या, पीड़ित, दुःखी, अंगहीन, अधिक अङ्गी, अशुभ कन्या, राजा, गर्दभ या दातों वाला पशु, दूध, घी, दही, जल, शंख, क्षत्र, भेरी, फल, चावल, मधु, सोना, चांदी सामने आये शुभ सिद्धिप्रद है। इसके विपरीत गदहे की वाणी, लकड़ी, ईंधन, धुंए की अग्नि, मलिन वस्त्र, तेली, लोमड़ी (श्रृगाल), बायें हिरण; भैंसा पर सवार ग्वाल, गृद्ध, उलूक, कपरदिका कपाल, भस्म का आना अशुभ।

विषों का ज्ञान :—विष क्रमशः धातु या धातु के अन्तःप्रविष्ट ललाट, नेत्र, मुख और उसके पश्चात् वचनी नाड़ी– इन ७ प्रकार चलता है।

नक्षत्रादि से मृत्यु या जीवन विज्ञान :—

अशुभ नक्षत्र, दिन :–कृत्तिका, भरणी, स्वाती, मूल, तीनों पूर्वा, अश्विनी, विशाखा, आर्द्रा, मघा, श्लेषा, चित्रा, श्रवण, रोहिणी और हस्त। शनि, भौमवार; तिथि ५, ८, ६, १४, ६, ४ ये कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष की पंचमी और चौदस; प्रातः, मध्याह्न, सायं, अर्द्धनिशा की चारों सन्ध्यायें अशुभ हैं।।

ॐ नमस्ते रुद्रमन्यवउतोत इषवे नमः वाहुभ्यामुतते नमः। मन्त्र को कान के समीप जपे और जूते से शिर से नीचे की ओर झाड़ते जावें।

दंष्ट्रा विज्ञान :—दूत जिस गात्र के अङ्ग को अपने छुये, उसी में काटा हुआ समझें। दूत के पैरों का चलाना अशुभ, पैर उठाकर रखना, स्थिरी रहना शुभ। दूत आकर जीव के पास हो शुभ, अन्यत्र अशुभ है। प्राणी का जाना दूतागमन काल में अशुभ, निवेदन करते समय आना शुभ है। दूत की वाणी पूर्व दी जा चुकी है।

दंश के प्रकार भेद :—

दंश के प्रकार ४ हैं। (१) कई जगह काटा हो; (२) काटकर मांस निकाल लिया हो। (३) केवल चाटा या सूंघ या फूतकार किया हो। (४) ऐसा काटा हो कि उसका पता ही न चलता हो।

सविष दंश :—(१) ऐसे दंश जिसमें सर्प ने कई जगह काटा हो, काटने पर वेदना हो, रक्त-श्राव हो रहा, काट कर सांप झटक और उलट गया हो वह प्राणघाती है। (२) जिसमें सांप काटने पर कूर्म जैसी शकल (अर्थात् सूजन हो) यह भी प्राणघाती है। (३) दीहि–चींटी के काटे तुल्य, स्पर्श, कण्ठ की सूजन हो गई हो। सतोब–गांठ जैसी पड़ गई हो ये विषयुक्त दंश होते हुये भी उपचार साध्य हैं।

अथ स्थावर ॐ जङ्गम समीक्षा

अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त "ब्राह्मणोजज्ञे" अखिलब्रह्माण्डनायक ने स्थावर जङ्गमविषनिराकरणार्थ सर्व प्रथम मानव जाति की भांति सर्प जाति के चार वर्णों में आदिभूत ब्राह्मण-"तक्षक" को दशशिर-दश मुखों से युक्त उत्पन्न

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया जिसने द्यु लोकस्थ सोमपानकर कन्दमूलादि जनित विष का विनाश किया। उस विषय का निराकरण करने में समर्थ गरुण (पक्षी) भी है।

कां ५ सू १३ में १८ प्रकार की विष जातियाँ अग्रगण्य है। (१) कैरात झीलों के जंगल वाला। (२) पृश्नि धब्बों वाला। (३) उपतृण्यः-घास में रहने वाला। (४) बभ्रुः-श्वेतवर्णका। (५) असितः-काला। (६) अलीकः-अमगल। (७) तैमात-गीले प्रदेश में रहने वाला। (८) अपोदक-जल से दूर देशवासी। (९) सात्रासाहः-उसकी ओर आने वाले का नाशकर्त्ता। (१०) मन्यु-क्रोधी (११) आलिगी शरीर से लिपटने वाली सांपिन। (१२) विलिगी-शरीर से दूर रहने वाली सांपिन (१३) उरुगुला-निम्न प्रदेश बढ़ा हो। (१४) असिवनी कालीसांपिन। (१५) दन्दुषी-जिस सांपिन के काटने से दाद सा उठे उससे रक्तस्राव हो। (१६) कर्णा-कान वाली सांपिन। (१७) श्वावित्-जिस को कुत्ता ढूंढकर निकाले-काटे। (१८) खनित्रिमा-जो खोदी हुई भूमि में रहती हो। ये १८मुख्य हैं। इनमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र होते हैं। इन्हीं की सैकड़ों जातियाँ हुई हैं। इनमें शेष-वासुकि, तक्षक-कर्कट-अब्ज, महाम्बुज शंखपाल और कुकिल ये प्रधान हैं। राजलि-व्यन्तरा-गोनसा-रथाडुला ४ प्रकार के हैं। इनमें २ व्यन्तरा २६ प्रकार के गोनस-१६ प्रकार के, राजील १३ प्रकार के मिश्रचिन्हों के २१ भेद हैं। जो अनिश्चितकाल में उत्पन्न होते हैं व्यन्तरा। शेष आषाढ, श्रावण, भाद्रपद में गर्भ धारण करते है ये २४० अण्डों में से चौथे मास उत्पन्न होते हैं। इन्हें स्त्री, पुंस, नपुंसक भेद से पूर्व ही अण्डों को सर्प खा जाते हैं। जो बच जाते हैं १ सप्ताह में नेत्र खुलते हैं कृष्णपक्ष में अण्डे से बाहर आते हैं। १२ दिन में बोध होता है। सूर्य दर्शनान्त दाँत निकल आते हैं। बीस से ३२ दिन के मध्य ४ दाढ़ें उगती हैं। ये ४ होती हैं १ कराली २ मुकरी ३ कालरात्री ४ यमदूतिका। ये विषयुक्त दायें पाश्वों में होती हैं। ६ वें मास केंचुली परित्याग करते हैं। २६० वर्ष आयु होती है।

"शुभाशुभ काल ज्ञान"

सूर्यादिवारों के स्वामी ७ नाग होते है उनमें प्रतिदिन के स्वामी ६ नित्य और कुलिक समस्त सन्धियों में होता है। जिसका उदय शख या महाब्ज के साथ होता है। दो नाडि-मत्र, अमन्त्रक से कुलिका का उदय है। यह सर्वथा सर्वदा दुष्काल कहा है विशेष कर सर्पदंश में कृत्तिका-भरणी-स्वाती-मूल, तीनों पूर्वा (फाल्गुनी, भाद्रपद, असाढ़) अश्विनी विशाखा, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, चित्रा, श्रवण, रोहिणी, हस्त, नक्षत्र। शनि-मगलःवार ५।८ तिथि। षष्ठी व ४।६।१४ निन्द्य, ५।१४ तिथियां। इनका विवरण टिप्पणी में देखें।

"शुभ सन्देश वाहक के लक्षण" पुष्पादियुक्त, मधुरभाषी-धीवान-तिलकधारी, श्वेतवस्त्र, मलरहित पवित्र दूत हो।

"अशुभ संदेश वाहक दूत लक्षण" अपद्वार से आया शस्त्रधारी, प्रमादी, पृथ्वी की ओर देखकर बात करनें वाला फटे वस्त्र रस्सी आदि से युक्त गद्गद्वाणी बोलने वाला, सूखे काठ पर बैठने वाला, खिन्न, छींटों का वस्त्र हाथ में लेने वाला, गीले वस्त्र, काला, लाल पुष्पयुक्त नंगे शिर, छाती पीटने वाला कख काटकर बात करने वाला, गुद, लिङ्ग छूकर बात करने वाला, पैर से लिखना आते ही प्रारम्भ करे। बाल उखाड़ते हुए बात करने वाला, तिनका उठाकर तोड़ने वाले सब अशुभ होते हैं। यदि अपनी तथा दूत की बांई अथवा दांई बांई सुषुम्ना नाड़ी चलती हो तो अशुभ केवल दोनों हो की दांई शुभ है। इनकी पुष्टि से इनसे ही स्त्री, पुरुष, नपुंसक का ज्ञान करें। इनका विशेष विवरण निम्न है—अब बिष प्रकरण का उल्लेख किया जारा है।

चिकित्सा :—शिरस के बीज, फूलों का अर्क, क्षीर वीज, सौंठ, मिर्च (श्वेत), पीपली को शिरस के फूलों के अर्क में पीस कर पिलायें, लेप करें, सुंघायें। या श्वेत मिर्च शिरस के फूलों के रस में भावना देकर पिलायें, नेत्रों में लगायें, सुंघायें, लेपें। या कृष्ण पक्ष की पंचमी को शिरस की जड़ की छाल, पत्र, पुष्प, हरीमय वीज फली, उसी के फूलों के रस में पीसकर वैद्य रक्खें, उसे पिलायें, लेपें, सुंघायें —अञ्जन लगाने से विष नष्ट होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष की उत्पत्ति और चिकित्सा—देव-दानवों द्वारा समुद्र मन्थन काल में विष की उत्पत्ति हुई। विष-योनि; सृष्टि सृजन कर्त्ता ब्रह्माजी ने उस विष को स्थावर-जङ्गम योनि में नियुक्त किया। जल से उत्पन्न विष-स्थावर-हुआ। विष के ८ वेग होते हैं। गुण १० प्रकार के हैं। उनकी चिकित्सा २४ प्रकार की हैं।

जङ्गम विष—सांप, कीट, चूहा, मकड़ी, बिच्छू, छिपकली, जोंक, मछली, मैंढ़क, कणभ्; गिरगिट, कुत्ता, सिंह, व्याघ, गीदड़, लकड़भग्गा, दांतों वाले पशुओं की दाड़ों से उत्पन्न विष। इसके १६ अधिष्ठान 'सुश्रत संहिता' कल्प-स्थान अ० ३ में कहे हैं। उनमें सर्प और दष्ट्री है। इसी से 'प्रकृति संहिता' में दंष्ट्रोथं विषम' कहा है।

स्थावर विष—मुस्तक पौष्कर क्रौञ्चं वत्सनाभं वलाहकम्। कर्कटं कालकूटं च कर वीरकसञ्ज्ञकम् ॥१०॥ (च० स० चिकित्सा स्थान अ० २३) सुश्रुत 'कल्पस्थान' अ० २ में १० अधिष्ठान हैं।

जङ्गम विष के लक्षणः—निन्द्रा, तन्द्रा, क्लम, दाह, अपचन, लोमाञ्च, शोथ तथा अतिसार।

स्थावर विष के लक्षण—ज्वर, हिचकी, दन्तहर्ष, गलग्रह, (गले की पकड़न) झाग आना कै, अरुचि, श्वास मूर्च्छा। **विष की गति** – जङ्गम ऊपर की ओर चलता है–स्थावर–नीचे की ओर विरुद्ध गति होने से–जङ्गम को स्थावर और स्थावर को जङ्गम नष्ट करता है। विशेष विवरण "आत्रेय भद्रकाप्यीय अधिकार" में देखें।

विष के वेग —विष के वेग ८ होते हैं। चरक सहिता। सुश्रुत कल्पस्थान अ० ४ अष्टाङ्ग संग्रह उ० अ० ४०। में नग्नजित तथा आलम्बायन आदि का मत।

विष से मृत्यु होने के लक्षण--होठ नीले, दांत शिथिल, बाल झड़ें, अङ्ग टूटें नासा भङ्ग (टेढ़ी) हो। हाथ पैर इधर-उधर फेंके, शीतल द्रव्यों के स्पर्श से रोमांच न हो, दण्डाघात करने पर चिह्न न पड़े, काटने से रक्त न निकले। तो रोगी शीघ्र मर जायगा–ऐसा समझें। सुश्रुत. कल्प थान अ० ३ देखें। इससे विपरीत लक्षण वाले की चिकित्सा करें। चिकित्सा के भी २४ उपक्रम चरक मे हैं। १ मन्त्र. २ अरिष्ट बन्धन. ३ काटना. ४ दवाना ५ चूसना, ६ अग्नि से दग्ध करना, ७ परिसेचन, ८ अवगहन, ९ रक्तमोक्षण, १० कै कराना, ११ विरेचन, १२ मस्तक पर पछ्न्र औषध लगाना या विष प्रयोग, १३ हृदय रक्षक भेषज, १४ अञ्जन, १५ नस्फ, १६ धूम, १७ लेह. १६ (अगद), १९ प्रधमन, २० प्रतिसारण चूर्ण आदि से घर्षण, २१ विपरीत विष, २२होश में रखना २३ लेप, २४ मृतसंजीवन, ये २४ हैं।

इनमें से प्रथम मंत्र का प्रभाव औषधियों से भी अधिक होता है। सुश्रुत क० अ० ५।

देव ब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ता, मन्त्राः सत्य तपोमयैः। भवन्ति नान्यथाक्षिप्रं विषंहन्युः सुदुस्तरम्।
विषं तेजोमयैर्मंत्रः सत्य ब्रह्मतपोमयंः। यथा निवार्यते क्षिप्रं प्रयुक्तेन तथोषधैः।
मन्त्राणां ग्रहणं कार्य स्त्रीमांसमधु र्वजिना। मिताहारेण शुचिना कुशास्तरण शोभिना।
गन्ध माल्योपहारैश्च वलिभिश्चापि देवताः। पूजयेन्मन्त्रसिद्धयर्थ जप होमैश्च यत्नतः॥ आदि....

दूसरा अरिष्ट बन्धन—देह में काटे स्थान को दृढ़ रस्सी आदि से आगे पीछे से बांध दें। ३–उसी काटे स्थान को पीटे, कि विष बाहर निकल जावे।

अरिष्टा दो प्रकार की हैं—(१) रस्सी से बिना मंत्र बाँधना (२) मंत्र से बाँधना परन्तु बाँधने का स्थान "दष्टस्थान" से ४ अंगुल ऊपर हो (श्रुसुत क० अ०) "अरिष्टामपिमन्त्रैश्चवध्नीयान्मन्त्रकोविद, । सा तुरज्वा दिभि-र्वद्धाविषप्रतिकरीमता। अरिष्टा बन्धन के पश्चात् ताडन, (निष्पीटत) करना चाहिये। वृद्धवाग्भट्ट सन्धिस्थान के दष्ट को काटने से पृथक् मृत्यु हो जाता है। उसे न काटे वहाँ जङ्गम विष—में भी सर्पों के विषों के निराकरण की ही चर्चा है। सविष सर्प मुख्यतया ३ प्रकार के चरक ने माने हैं। (१) दर्वीकर (२) मण्डली (३) राजिमान दर्वीकर–वातकोपक, मण्डली–पित्तकोपक और राजिमान-कफ को प्रकुप करता है। (सुश्रुत क० अ० ४) के अनुसार उपरोक्त ३ के अतिरिक्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) निर्विष और (५) वैकरञ्ज भी हैं। इनमें से चौथे की चिकित्सा आवश्यक नहीं ५ वें सङ्कर (वर्णसङ्करों) की चिकित्सा मिश्रित है।

लक्षणः—नं० १ फनवाले। न० २) फनरहित-मण्डलीयुक्त) नं० ३ विन्दु या रेखाओं के (सुश्रुत क०अ० ४) इनके विष क्रमशः रूक्षकटु, अम्लउष्ण, तथा मधुरशीतल होते हैं। दर्वीकर सर्पों का दंश में दांतों के चिन्ह सूक्ष्म और कृष्ण होते हैं, वहाँ से रक्त नहीं निकलता। दंश कछुये की पीठ के तुल्य उभरा होता है।सु ० क० अ० ४ में विशेष विवरण है। नं० २ मण्डली का दश गहरा सूजन पीला सा होता है नं० ३ राजिमान-दश चिपचिपा, स्थिरशोथ, स्निग्ध तथा पाण्डु तथा रक्त गाढ़ा होता है, सर्प-सर्पिणी तथा नपुंसक की पहिचान।

स्त्री पुरुष ज्ञान

नर—का फन गोल, देह महान, फुंकारता हो, दृष्टि ऊपर को हो, शिर स्थूल, देहसम होती है।

स्त्री—इससे विपरीत होती है। नपुंसक, शिथिल, वेगमन्द होते हैं। स्त्री दंश;पुरुष-की दृष्टि नीचे को स्वरहीन कम्पन मन्द होगा। नर का इसके विपरीत मिश्रित लक्षण हों तो नपुंसक दंश समझें। जो दृष्टि या श्वांस से भस्म कर देते है वे दिव्य सर्प हैं। पृष्ठ १ में उल्लिखित ४ द्रष्टाओं में— वायेंपार्श्व में नीचे की ओर कृष्णा, ऊपर को पीली, दायें नीचे लाल, दाये ऊपर श्यामवर्ण की होती है। साप जिस दाड़ से काटता है दंश का वैसा ही वर्ण होता है।

उपचार मन्त्रों के अभाव में हृदय रक्षक औषधि पान करायें, मधु चटायें, घी पिलायें, ताजा गोमय का रस पिलादें, अच्छी पकी ईख का रस पिलायें, गोबर की भस्म, वामी की मिट्टी जल में घोलकर पिलायें, लगायें। कुचिला, संखिया दें, कैथ का रस, मधु-घी मिलाकर दें। इसमें गौ के गोवर का रस मिला दे वकायन और सिरस का अंजन वना नेत्रों में लगायें, नस्य दें। गोरोचन, हल्दी, मजीठ काली मिर्च तथा पिप्पली का चूर्ण दें। मात्रा ४ मासा पूर्वोक्त स्थावर विष में सर्प से कटवायें, जङ्गम विष में कुचिला सखिया दें। विष से मृत तुल्य रोगी को मोर का पित्त उससे दूना ढाक के बीज मिलाकर पिलायें। २॥ माशा कृष्णा तुलसी की मंजरी पीसकर सिरस के फूल को आतुरई के रस में गोली बनाकर दें। वकायन, तुलसी, इन्द्रायण, पुनर्नवा, काकमस्वी, सिरस के बीज पीसकर लेप पान, अञ्जन, नस्य में प्रयोग करायें। अष्टाङ्ग संग्रह उ० अ० ४० चरकोक्त चिकित्सा स्थान अध्याय २२ के मृत संजीवनी अगद-या महागन्धहस्ती अगद सर्वोत्तम है। मन्त्रों द्वारा धमनी बन्धन से पूर्व आत्मरक्षा अनिवार्य है। यदि सर्प ने डसा हो और विष ऊपर चढ़ रहा हो तो नीचे की ओर ही उतारें।

नस्य—यदि नाक, नेत्र, कान, कण्ठ रुद्ध हों तो नस्य की निम्न चीजें दें, वृहती के बीज-बिजौड़ा की जड़ व छाल तथा ज्योतिष्मती पीसकर नस्य दें, **अञ्जन**—देवदारु, सौंठ, कालीमिर्च पिप्पली, हल्दी कन्नेर, करंजफल, नीम तुलसी की मंजरी बीज छाग (बकरा) के मूत्र में पीसकर सुखाकर नेत्रों में लगायें। यदि विष वेग से सहसा मद हो तो शिर पर तीन रेखाकर व्रण करके बकरे हरिण, भेड़, मुर्गी, या जल के जीव का मांस रखदें तो विष उस मांस में चला जाता है। सुश्रुत क० अ० ५ में विशष देखें। तगर तथा कुष्ट दोनों का मिला चूर्ण २ पल, घी तथा मधु ४ पल मिला रोगी को पिला दें, तक्षक के काटने पर लाभप्रद होगा। आजकल यह सब ६ पल के वजाय २ पल लें। २४ घटे में ६ पल ले सकते हैं। **दर्वीकर सांप**-मञ्जिष्ठ, मुलहठी, जीवक, ऋषभक्,खाड, गम्भारी की छाल वट के अकुर, सम भाग लें जल में पीस, छानकर ६ माशा से १ तोला पिलायें। **रजिमान**—सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, अतीस, कुष्ठ, गृहधूम, हरेणुका (रेणुका बीज) तगर, कटुकी, समभाग चूर्ण कर मधु मिला ६ माशा दें।

समस्त विषों में योग—कीआतुरई के रस में युक्त चौलाई या मोर के पित्त में पिसा कुचिला, लाभप्रद है (चरक. चि० अ० २३ श्लो २१६) **विषों में पथ्य**—शालिचावल, साठीचावल, कोदों, प्रियङ्गु, (कांञ्जी), सैंधा नमक, चौलाई का शाक, वैंगन, करला, आवला, अनारदाना, मूंग, बड़ चना अरहर, मटर।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मणियां— हीरा, पन्ना, विषमणी, पद्मराग, (पिरोजा) नागमणि, लहसुनिया **गजमुक्ता**— धारण कराने से विष शमन होते हैं। अनुभूत

विशेष— **"दष्टमात्र दशेदाशुतं सर्पं लोष्ट्रमेव च। उपर्यरिष्टां वध्नीयाद्दंशछिन्द्याद्दहेत्तथा"** स्व० चि० अ० २३ श्लो० २४९। सर्प के काटते ही सर्प को या मिट्टी के ढेले को ही काट ले दंश के (४ अंगुल) ऊपर बांधें, दंश को काटकर अलग कर दें, उस दंश को जला दें।

रक्षाविधि— छाता, बाजा, लाठी साथ रक्खें

विशेष ज्ञातव्य :— कण्ठशोथ— हठयोग और तन्त्र के अनुसार कण्ठ-विशुद्धि चक्र माना गया है। वस्तुतः शरीर का यह केन्द्र सम्पूर्ण शरीरस्थ विष का नियमन करता है। भगवान शङ्कर के विषपान का प्रभाव उनके कण्ठ प्रदेश पर ही पड़ा। इस केन्द्र से सम्बन्धित अनेक हठयोगिक एवं तान्त्रिक क्रियाओं द्वारा विषापहरण अथवा विष शान्त किया जाता है। इस पर गहन शोध अनिवार्य वाञ्छनीय हैं।

अथ विष चिकित्सा

(१) सर्प के काटते ही उसके मध्यप्रदेश को स्वयं काटले या किसी मुलायम फल को काटले। इससे सर्प विष नष्ट हो जाता है। **"एतच्चसुकुमार द्रव्योपलक्षणम् तिनरम्भामृणालं काण्डाघपिबोध्यम्। तन्त्रसर्वत्राविष-संक्रमणं भवति"** इस मृदुल फल से केला के फल या केला का स्तम्भादि जो भी हो, काट लेने से विष संक्रमण हो जाता है। (वृन्दे-उत्तम) **"भर्तुं दंशविधौ न भोगिनमसौप्राप्नोति। दष्टोयदारम्भाखण्डमृणाल कोमलफलैर्दन्तै-र्दशत्याशुयत्तिच्छेत्तत्क्षणमेवतस्यगरलं तद्दष्टस्त्वनन्तरं दंशे नीरसतां जयेच्चबहुधा सम्बंध्य हस्तेन वै"** कोमल फल, केला का डण्ठल आदि को काटले, हाथ से या दंश स्थान पर बाँधे, तो विष उसमें चला जाता है। (२) आषाढ़ में शुभ नक्षत्रादि से प्रारम्भ १ मास तक, प्रत्यङ्गिरा, (कण्टकिशिरीष) की जड़ को पीसकर चावलों के जल के साथ पीने वालों को सर्पाविष असर नहीं करता उलटा, सर्प ही मर जाता है। (३) वैसाख में मसूर के दानों को नीम की कोपलों के साथ १ मास खाने वालों को सर्पविष, १ वर्ष तक नहीं चढ़ता। (३) पुष्य नक्षत्र में श्वेत सांठ (पुनर्नवा) की जड़ ला चावलों के जल के साथ पीने से १ वर्ष तक विषैले उपद्रवों से प्रभावित नहीं होता।

(४) सांपादि के कांटने पर गृहधूम (धूमसा) हल्दी, दारुहल्दी तथा मय जड़ चौलाई, एक साथ पीसकर दही और घृत के साथ पिलायें। (५) कुचिला की जड को चावलों के जल में पीसकर नस्य ले तो सर्पादि विष नष्ट हो प्राण रक्षा होती है। (६) बांयें हाथ की अनामिका अंगुली से मुँह में आये कफ या कान के मैल को काटे स्थान पर लिप्त करें या तत्क्षण काटे पर पेशाब करदें। (७) सहजन के बीज को शिरष के फूल के रस से भावना दे और ७ दिन तक सुंघायें आँख में लगाये पिलायें। (८) तगर और कुष्ट समभाग मिला आधा तोला चूर्ण को घी, मधु २ तोला में मिला पिलादें। (९) जंगली ककोड़े को बकरी के मूत्र में भावना देकर राई के रस में पीस विष से अचेतन प्राणी को सुघायें। (१०) यदि विष पिया हो तो कै करायें यदि विष चमड़ी में हो तो ठण्डा लेप करें और सेक करें। (११) गृहधूम, मञ्जिष्ठ, हल्दी सैंधानमक का चूहे के विष पर लेप दें काटी जगह की कील निकाल दें। (१२) बिच्छू के विष में कसौंदी की जड़ को अच्छी तरह चबाकर काटे व्यक्ति के कान में फूंकें (१३) जीरा पीसकर घी, सैंधानमक, मिला गर्म कर (हल्का) मधु मिला काटे पर लेपें। (१४) गो घृत में सैंधा नमक मिला गरम कर काटे पर लेपें। विच्छू विष नष्ट हो। (१५) नौसादर, हरिताल, जल या गो मूत्र में पीस लेपें तो विच्छू का तीव्र दर्द शान्त हो। (१६) कुत्ते के काटे पर सैंहुड के दूध में शिरष के बीज पीसकर काटे पर लगादें। (अ) (१७) चावल पीस उसमें मैंढ़ा का लोम मिला गोली बनाकर निगलवायें। १७–कुत्ते का विष दूर करने हेतु १।८ भाग कुचिला से प्रारम्भ कर १।। रत्ती तक १ मास क्रमशः बढ़ाते हुए खिलाये। १८–धत्तूरे की जड़ पीस कर दूध के साथ पिलाये या अङ्कोल्ल (हिंगोट) की जड़ को पिलाये तो कुत्ते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का विष दूर हो। १९–मकड़ी का विष हल्दी, दारुहल्दी, लालचन्दन, मजीठ, नागकेसर, खटाई शीतल जल में पीसकर लेपें। २०–समस्त विषैले कीट विषों में :—बच, हींग, वायविडङ्ग, सेंधा नमक, गज पिप्पली, पाठ-अतीस, त्रिकटु इन दसों को सम भाग मिला, ३ मासा चूर्ण जल के साथ पिलाने से विष नष्ट होता है।

२१–समस्त स्थावर-जङ्गम विष दूर करने को वायविडङ्ग, पाठा-त्रिफला, अजमोद, हींग, तगर, सौंठ, मिर्च-काली, पीपल [त्रिकटु], पांचों नमक, चीता इन १७ को समभाग मिला चूर्ण कर मधु मिलायें, उसे गौ के सींग में भर कर १५ दिन गाड़ दें। बाद १५ दिन के ६ माशा मात्रा से सेवन करायें।

२२–जयपाल वीज की मज्जा को नीबू के रस में २१ बार भावना देकर वर्ति बना इसे मनुष्य की लार [लाला] में घिस कर नेत्रों में लगाने से सर्पविष नष्ट होता है।

२३–तक्षक के विष से मरणासन्न प्राणी को कलिकमूल (कालियाकड़ा) की जड़, सतौने की छाल, कूठ, सवसम १ तोला संखिया १ मासा को मिला मदार (आक) की जड़ के साथ क्वाथ कर मर्दन करें, सरसों के बराबर गोली बनालें दूध के साथ सेवन करायें।

२४-सर्प दंष्ट्र-पीतविष-या विषप्रभाव से शिथिल इन्द्रिवाले-मरणासन्न-संज्ञारहित रोगी को पुनः जीवन लाभार्थ-शुद्ध मनसिल, शुद्ध हरिताल, कालीमिर्च; संखिया, हिंगुल-अपामार्ग की जड़, धतूरे की जड़, कन्नेर की जड, सिरस की जड़, समभाग ले चूर्ण करलें। रुद्राक्ष तथा अपराजिता (खरैटी) के रस से १०० बार भावना दें और भृङ्ग के बराबर गोली बना सेवन करायें।

२५–गोघृत १ सेर, बकरी का दूध ४ सेर, चौलाई की जड़ तथा गृहधूम मिला १ पाव कल्क करें—यह घृत १ मात्रा आधा तोला सेवन से समस्त विष नष्ट करता है। (भै० र० विषाधिकार)

चौपायों के दंष्ट के लक्षण :—बार २ शिर हिलाना शोथ, होठ और कानों की शिथिलता और लटक पड़ना, ज्वर, नेत्र और देह स्तब्ध, नीचे का जबड़ा कपना, अङ्ग मर्द, लोम गिर जाना, ग्लानि, किसी काम में जी न लगना, कंपकपी, चक्कर सर्प आदि के विष से चौपाओं को आते हैं।

चरक संहिता – चिकित्सा स्थान, अ. २३ श्लोक ७६ से ८८ में महागन्ध हस्ती अगद का उल्लेख है। श्लोक ८९ से ९३ तक अगद बनाने के मन्त्र हैं। यह अगद ६० द्रव्यों से बनता है। पुष्य नक्षत्र में परम उपयोगी होता है। इसके पान, अञ्जन, लेप सभी कर्मों में सिद्धपद है। इससे पिल्ल, कण्डू, रतौंध, नेत्ररोग नष्ट होते हैं। विषमज्वर, अजीर्ण दद्र, कण्डू, विसूचिका, पामा, कुष्ठ, किटिभ, श्वित्र, विचर्चिकादि नष्ट होते हैं। चूहा, लूठता, सर्पविष, नष्ट होते हैं। मूलज, कन्दज विषदोष दूर होते हैं, विष को पचा लेते हैं। मरणासन्न इसके सेवन से निरोग होते हैं। इसे हाथों पर चुपड़ कर सर्पादि को पकड़ सकते हैं।

इस महागन्धहस्ती अगद को योनिमें लेप करनेसे मूढ़ गर्भ भी ठीक होता है। गुदा में लेप से–आनाह दोष दूर होता है। मुर्च्छा में मस्तक पर लेप करें। सभी विष निवारणार्थ भेरी, ढोलक, मृदङ्ग पर लेपकर बजाने से विष दूर हो झण्डे-झण्डियों पर इसी अगद को लगा सर्पादि विष के रोगी के सामने फहराये, दिखावे तो विष दूर होता है। बालग्रह, राक्षसी, परद्रोही के कुचक्र मन्त्रों की वेतालादि कृत्या अभिचारों के दोष नहीं होते ग्रहों का खोटा असर इससे नहीं होता अग्नि, चोर, राजा, शत्रुभय इस अगद सेवन से नहीं होता, भूतादि के आवेश, विसूचिका, अजीर्ण, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार (कांच, पटल, नीलिका) नेत्ररोग शिर के रोग, क्षय, दुर्बलता, पाण्डुरोग, मोह (इन्द्रियों के तत्कर्म हीनता) नखी जीवों के नखों के विष, चाटने के विष, विच्छू आदि के डंक के विष पीये गये विष, बवासीर के मस्सों के दोष, अर्श इन रोगों के विषों का निवारण इससे होता है। इस अगद का समर्थन इन्द्र ने भी किया है। यह अष्टाङ्ग-संग्रह चि० अ० ४० में भी वर्णित है। इस अगद के निर्माणकाल में जपनीय सिद्ध मन्त्रः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"पिष्यमाण इमं चात्र सिद्धं मन्त्र मुदीरयेत्"। "मन्त्र—ममभाताजयानामविजयोनाम मे पिता ॥८९॥
सोऽहं जयोजयापुत्रो विजयोथजयामि च। नमः पुरुषसिंहायविष्णवे विश्व कर्मण ॥९०॥
सनातनाय कृष्णाय भवाय विभनवाय च। तेजोवृषाकपेः साक्षात्तेजो ब्रह्मेन्द्रयोर्थमे ॥९१॥
यथाहं नाभिजानामि वासुदेव पराजयम्। मातुश्च पाणिग्रहणं समुदास्य च शोषणम् ॥९२॥

इस श्रेष्ठ अगद में सब गुणों को रक्षित करें। इसका यह बीजमन्त्र है।

"ॐ हिलिहिलि भिलभिलि संसृष्टे रक्षसर्वभेषजोत्तमे स्वाहा" ॥९३॥

इस योग में ५ निर्यास हैं:—राल. गूगल, अफीम, शिलारस, लोहवान। निर्यास वल्कल को भी कहते है–पांच दूध वाले वृक्ष–पीपल, वट, गूलर, पिलखुन, सेंमर या आम या जामुन, कोई दूध वाले की छालें लेते हैं। इस अगद की ६० वस्तुयें ये हैं। १. तेजपत्र, २. अगर, ३ मोथा, ४. छोटी इलायची, ५. निर्यास (उपरोक्त), ६. लाल चन्दन, ७. स्पृक्वा (विशेष शाक), ८. दालचीनी, ९. जटामांसी (बालछड़), १० नीलोत्पल, ११. गन्धवाला, १२. रेणु का बीज, १३. खस, १४. नखी, १५. देवदारु, १६. नागकेसर, १७. केसर, १८. सुगन्धि तृण (ध्यामक), १९. कुष्ठ, २०. प्रियंगु, २१. तगर २२. सिरस के फूल, फली, पत्र, मूल, छाल, २३. सोंठ, २४. कालीमिर्च, २५. पिप्पली, २६. हड़ताल, २७. मनसिल, २८. श्वेत जीरा, २९. अपराजिता (विष्णुकान्ता), ३०. ज्योतिष्मती, ३१. करञ्ज फल, ३२. सरसों ३३. सम्मालु, ३४. हल्दी, ३५. तुलसी, ३६. रसोंत, ३७. गेरू, ३८. मजीठा. ३९ नीम के पत्ते. ४० निम्ब निर्यास. ४१ वास का छिलका. ४२ असगन्ध. ४३ हींग. ४४ कैथ. ४५. अम्लवेतस. ४६ कच्ची लाख. ४७ मधु. ४८ मुलहटी या महुआ. ४९. सोमराजी (काली जीरी). ५० वच. ५१ दूव, ५२ पीलातगर. ५३ इन सभी को पुष्य नक्षत्र में गोपित्त से पीसकर गोलियां बनालें। यह महादेव जी ने कुवेर को वताया था। यह महागन्व हस्ती अगद हैं। इन्दु के मतानुसार गोमूत्र और छागमूल से पर्याय क्रम से भावना देकर गोपित्त और छागपित्त से पर्यायक्रम में भावना दें। तव गोपित्त से पीस-कर गोलियां वनायें। इसके निरन्तर प्रयोग से मात्रा में न्यूनाधिकता की जा सकती है। योग्य वैद्यों से परामर्श करना हितकर होगा। अन्य गन्धहस्ती अगद की निम्न वस्तुयें हैं।

ज्योतिष्मती, श्वेत वच, असगन्थ, हींग, गिलोय, कुष्ठ, सेंधा नमक, लहसन, सरसों, कैथ का गूदा. श्योनाक की जड़ करञ्ज के बीज, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, सिरस के फल, हल्दी, दारु, हल्दी बांस के छिलका। सभी समभाग लें छागमूत्र और गोलोचन से पर्याय क्रम से ७।७ भावना दें, प्रथम छागमूत्र से दें, शुष्क होने पर गोलोचन से। ७।७ बार दें शुष्क हो तब प्रयोग करें ये दोनों अगद उपरोक्त दोषों के विषों को दूरकर जीवनप्रद करने में समर्थ कहे हैं।

ग्रहिणी ऋचः—(सर्पादि विष निवारण विधि) :—(कां० ५।१३ ऋचा १. २. ३. ४) : (कां० १०। ४-२६) : (कां० १० सू० ४-१) : (कां०४ सू०६-१) (कां० ७ सू० १); (कां० ७ [८८ (८३)]।

कां० ७ सू० ८८ ऋ० १ गुरुत्मानः। ऋषिः। तक्षकः। देवता। त्र्यवसाना वृहती छन्दः। सर्प विषस्यसंर्प-प्रतिगमने, तमेव विनाशने, सर्प दष्टस्थाने, सर्पोन्मुखे अभिमन्त्रित प्रज्वलित तृणानि प्रक्षेपणे भैषज्ये विनियोगः। कौ. ४।५

अपे॒ह्यरि॑रस्यरि॒र्वा अ॑सि। वि॒षे वि॒षम॑पृक्था वि॒षमिद् वा अ॑पृक्थाः। अहि॑मे॒वाभ्य॑पे॑हि॒ तं ज॑हि ॥१

सर्प को काटते ही सम्भव हो तो उसी को काट खाये, उसे ताड़ित करे, उस स्थान में पड़े डेले को ताड़े, सन्देश दाता सूत्र को ताड़े, काटे स्थान की ओर विष को सम्बोधित कर, अभिमन्त्रित कर तिनके जलाकर फैंकें। विषैली अन्य वस्तु खायें। जैसे कुचिला, संखिया "विषमेव विषंहन्ति"।

कां० ७ सू० ८८ अपेह्यरिरस्यरिर्वा हे विष! तू निश्चयपूर्वक शत्रु है, शत्रु हीहै इस कारण दूर चलाजा विष में विष मिला दिया है। निसन्देह विष मिला दिया है। अतः अब तू उसी ही सर्प के पास जा और उसको ही मार डाल।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कौ० कां० ३२ सू० २४ अ० वे० कां० १०।४—२६ से उपरोक्त, अभिमन्त्रित जले तृणों को, विष के घावों को उल्मुक से तपाकर, विष के घाव को देखकर जहां से काटा हो, उसे की ओर ऐसी तरह उसके सन्मुख फेंकदे कि सर्प को दिखाई न दे, । "इन्द्रस्य प्रथम" अ० कां० १०।४-१ ऋचा से उल्मुक को तक्षक के लिये फेंके । 'ब्राह्मणो यज्ञे' अ०कां० ४।६-१ सूक्त का अञ्जलि बाँधकर तक्षक का ही जप करें और इसी-से आचमन करे, छींटे भी इसी-से दें । जपान्त में—'तक्षकायनमः' कहे । जप के अन्त में 'वारिदं वारयातै' अ० कां० ४ सू० ७ से काटे हुए को छींटे दे । कौ० कां०२८ सू १ कौ० कां० २९ सू० १—'ददिहीति' अ० ५।१३ सूक्त से तक्षक का जप करे, जपान्त, आचमन, छींटे रोगी को दें । तो सर्प विष दूर हो और रोगी पूर्ववत स्वस्थ हो । यह क्रिया गंगारज, अपामार्ग, निम्ब, तुलसी आदि सभी से, या एक ही से भी की जा सकती है ।

कां० १० सू० ४ ऋचा १ व २६ गुरुत्मान् । तक्षकः । अनुष्टुप्; पथ्यापंक्तिः २ त्रिपदायवमध्या गायत्री ३-४ पथ्याबृहती; ८ उष्णिगगर्भाः पराग्त्रिष्टुप्; १२ भुरिग्गायत्री, १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री, २१ ककुम्मती; २३ त्रिष्टुप्, २६ त्र्यवसाना षट्पदा वृहतीगर्भा ककुम्मती भुरिक् त्रिष्टुप् च विषभैषज्ये विनियोगः ।

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथं स्थाणुमारदथार्षत् ॥१
दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः । रथस्य बन्धुरम् ॥२
अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च । उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥३
अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् । उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥४
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् । पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥५
पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि । अहीन् व्यऽस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥६
इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् । इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥७
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् । अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥८
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके । घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥९
अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च । इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥१०
पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः । इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥११
नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा । जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥१२
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः । दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥१३
कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् । हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥१४
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः । स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥१५
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योभा ॥१६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् । स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव । तेषांमु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषांमसद् रसः ॥१८
सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् । सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यऽनिजमहेर्विषम् ॥१९
अहीनां सर्वेषां विषं परां वहन्तु सिन्धवः । हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥२०
ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया । नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥२१
यदुग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् । कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ॥२२
ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युतं आबभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥२३
तौदी नामांसि कन्याऽघृताची नाम वा असि । अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥२४
अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय । अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥२५
आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि । अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वंगाद् विषमहिरमृत ॥२६

कां० १० सू० ४ 'इन्द्रस्यप्रथमो' इन्द्र का प्रथम रथ है, देवों का दूसरा रथ है। वरुण का तीसरा रथ हैं, और सर्पो का नीच गतिवाला हैं; जो स्तम्भ पर चलता है और नष्ट होता है। २–कुशा, अग्नि और तृण विशेष, अश्व वार और पुरुषवार ये सभी औषधियां तथा रथ वन्धुर या नाभि ये सब सर्प विष निवारक हैं। हे श्वेत औषधे ! पूर्व और उत्तर पद से विष का नाशकर, जिससे भयानक विष भी नीरस हो जावे और भरे हुए जल में लकड़ी के गिर जाने के तुल्य वह विष वह जावे। ३ – अलघुर औषधि (पूर्वोक्ता) निमज्जन और उन्मज्जन करके फिर कहने लगी कि उग्र भयानक विष भी सारहीन हो जायगा जैसे जल में लकड़ी हो जाती है।

४–पैद्व (पूर्वोक्त) ने कसर्णील, श्वित्र और असित सर्पों को मारा, पैद्व ने रथर्व्या और पृदाक सभी पूर्वोक्त जाति वालों का शिर तोड़ा। ५–हे पद्व ! तू ही प्रथम आगे जा, तेरे पीछे हम चलेंगे, और जिन मार्गों से हम जावेंग उन मार्गों से सर्पों को दूर कर। ६. यह पैद्व प्रगट हुआ है। यह इसका परम स्थान है। वलवान सर्पनाशक अर्वा के ये पदचिह्न हैं। ७–सर्प का वन्द मुख न खुले और खुला हुआ वन्द न हो इस क्षेत्र में दो सप हैं, एक स्त्री और दूसरा पुरुष है। वे दोनों सारहीन हो जावे। ८–यहां जो पास और जो दूरवाले सर्प हैं, वे सारहीन हो जावें। हथौड़े से बिच्छू को भी मारता हूँ और आये हुए सर्प को दण्डे से मारता हूं। ९. अबाश्व और स्वज इन दोनों का ही यही औषधि है। इन्द्र ने तेरे ऊपर आक्रमणकर्त्ता सर्प को तथा पैद्व ने सभी सर्पों को नष्ट किया। १०–स्थिर और अचलधाम वाले की महिमा का हम वर्णन करते हैं, जिसके पीछे ये पृदाकू नामक सर्प देखते ही दूर खड़े हो जाते हैं। ११–जिनके प्राण और विष नष्ट हो चुके हैं, जो वज्रधारी, इन्द्र के द्वारा मार दिये गये हैं जिनको इन्द्र ने मारा है, उन्हें हम भी मारते हैं।

१३–तिरछी लकीरों वाले सर्प मारे गये, पृदाकू सर्प पीसे गये, दर्वि करिक्रत और श्वेत जाति के सांप को दर्भों में मार। १४–कैरात भीलों की लकड़ी, लोहे के कुदालों से, पहाड़ों के शिखरों पर औषधि को खोदती है। १४–वह युवा, अपराजित सर्पहन्ता वैद्य आता है। वह निश्चय ही स्वज नामक सर्प और बिच्छू दोनों ही को नष्ट

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने वाला है। १५—इन्द्र, सूर्य वरुण मेरे पास आये, सर्पों को मारते हैं, तथा वायु और पर्जन्य ये सभी सर्पों को मारते हैं। १७—पृदाकू, पृदाक्च, स्वज तिरश्चिराजी, कसर्णील, दशोनसि इन सर्पों की जातियों को इन्द्र ने मारा।

१८—हे सर्प ! तेरे प्रथम उत्पादक को इन्द्र ने मारा, नाश को प्राप्त हुए, हुए उनमें क्या उनका कुछ रस रहता है। अर्थात ये सब पूर्णतया मर जाते है। १९—मैंने सर्पो के शिरों को पकड़ लिया है, जैसे कैवट नदी के गहरे मध्य भाग तक सहज ही वापिस आता है, उस प्रकार में भी सांप का विष, विशेष प्रकार से नष्ट करता हूं। २०—सब सर्पों के विष को नदियां दूर वहां ले जावें। इस तरह तिरञ्चिराजी और पृदाकू जाति के सब सर्प मारे गये। २१—मैं औषधियों को उपजाऊ भूमि पर धान्य उगने के तुल्य सहज ही से प्राप्त करूं और घोड़ी की तरह शीघ्रता से उनको ले जाऊं। अतः हे सर्प ! तेरा विष दूर हो जावे। २२—जो विष अग्नि, भूमि और औषधियों में हैं, तथा जो शब्दों में तथा वानस्पति बिशेषों में है, वह तेरा विष निःशेष चला जावे।

२३—जो अग्नि से उत्पन्न औषधियों से उत्पन्न, जो सीपों और जलों से उत्पन्न जो विजली से प्रगट होते हैं, जिनकी अनेक प्रकार की जातियां है, उन सांपों को हम नमन करते हैं। २४—तौंदी और घृताची इन नामों की कन्या नाम की एक औषधि है। नीचे वाले विषनाशक भाग के साथ तेरी जड़ मैं प्राप्त करता हूँ। २५—हे औषधि ! तू प्रत्येक अवयव से, विष को दूर कर हृदय को भी छुड़ादे, विष की जो चमक है, वह तेरे शरीर से नीचे की ओर दूर हो जावे। २६—विष पूर्णतया दूर हुआ, विष चला गया, विष में यिष मिलकर पहिले जैसे विषरहित हो चुका है। सर्प का विष अग्नि दूर करता है। सोम औषधि विषदूर करती हैं, दंश करने वाले सर्प के पास ही उलटा विष मन्त्र और देव के आदेश से पहुंचा और उससे वहीं सर्प मर भी गया। अध्याय १ और ६ में अनेकों विषनाशन उपयुक्त औषधियां सिद्धों की पारम्परिक अनुभूत दी जा चुकी हैं, उन्हें पढ़ें, मननकर लोक कल्याण करें।

कौशिक सूत्र कण्डिका २९।सू० २—अ० वे० कां० ५ सूक्त १३ ऋचा २ से विष ग्रस्त रोगी को बांयें ओर के क्रम से विष स्तम्भन के निमित्त गंगारज से ३।३ रेखायें चारों ओर शरीर पर खींच दें। शिर की चोटी को शिर में बांध दें, श्वेत वस्त्र से गांठ बांध दै। (वन्द लगायें) सन से गाँठ बाँधें। इससे विष जहाँ का तहाँ ठहर जायेगा, आगे पीछे दांयें-बांयें नहीं फैल पायेगा।

ऋचा ३ "वृषा मेख" को जपकर नीम या मयूर पंख, व अपामार्ग से झाड़ा दे—इसी ऋचा को जपता रहे तो जहाँ काटा है वहाँ पीड़ा न करेगा, विश अन्यत्र चला जायगा।

विष शासनार्थ भैषज— "अपेह्यरिरसी" अ० कां० ७ सू० ८८ ऋचा १ को जपे, अपामार्ग को जला कर (तुलसी की लकड़ी, कुशा) तीनों को, काटे हुए स्थान (शरीर) के बांये क्रम से ३ बार परिक्रमा देकर (फिराकर) जिस स्थान पर काटा हो वहाँ से जनते हुए उपरोक्त तृणों को दष्टस्थान पर सर्प का लक्षकर सर्प की ओर फेंक दे।

ऋचा ४ कां० ५ सूक्त १३ "तृणामि चक्षु" से इन्हें अभिमन्त्रित कर लै।

कां०।१३१-११ गुरुत्मान्। तक्षकः। जगती, २ आस्तारपङ्क्तिः, ४. ७. ८. अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्। ६ पथ्यापक्तिः, १०, ११ निचृग्दायत्री।

द॒दिर्हि मह्यं॒ वरु॑णो दि॒वः क॒विर्वचो॑भिरु॒ग्रैर्नि रि॑णामि ते वि॒षम् ।
खा॒तमखा॑तमु॒त स॒क्तम॑ग्रभ॒मिरे॑व॒ धन्व॒न् नि ज॑जाम ते वि॒षम् ॥१
यत् ते॒ अपो॑दकं वि॒षं तत् त॑ ए॒तास्व॑ग्रभम् ।
गृ॒ह्णामि॑ ते मध्य॒मम॑त्त॒नं रसं॑मु॒ताव॒मं भि॒यसा॑ नेश॒दादु॑ ते ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥३
चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येऽतु त्वा विषम् ॥४
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्रु आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥५
असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव ॥६
आलिगी च विलिगी च पिता च माता च । विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥७
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या । प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥८
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका । याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥९
ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् । ताबुवेनारसं विषम् ॥१०
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् । तस्तुवेनारसं विषम् ॥११

कां ५ सू १३ "ददिर्हि मह्य" द्युलोक के कवि वरुणदेव ने मुझे उपदेश (दीक्षा) दिया है कि, ओजस्वी (प्रगल्भ) वाणी (मन्त्रों) से, तेरा विष दूर करता हूं। घाव अधिक से अधिक गहरा हो, अथवा विष केवल ऊपर ही चिपका हो इस विष को मैं ग्रहण करता हूं। रेतीली भूमि में जैसे जलधारा लुप्त या नष्ट होती है, उसी प्रकार तेरा विष निश्शेष नष्ट करता हूँ। २-जो तेरा जल (रस) शोषक विष है, वह तेरा विष इनमें लेता हूँ। तेरा उत्तम, मध्यम और निम्नस्तर का रस पकड़कर लेता हूँ, जो तेरे भय से नष्ट हो जाता है। ३ मेरा शब्द उद्घोष, आकाश की गर्जना (आकाश-वाणी) के समान बलिष्ठ है। ओजस्वी वाणी से निश्चयपूर्वक तुझे ही बाधा पहुँचाता हूँ। मैंने मनुष्यों के साथ, इसके उस रस को ले लिया है। मृत्यु रूप घोर अन्धकार से जीवन ज्योति दाता सूर्य के समान वह उदय को प्राप्त होवे। ४ नेत्र से तेरी क्रूर दृष्टि का नाश करता हूँ विष से तेरा विष नष्ट करता हूँ। हे सर्प? तू मर जा, जीता ही मर जा, विष तेरे पास ही लौटाकर भेजता हूँ। ५ हे जंगलों में रहने वालो, धब्बे वालो ? समीप में रहने वालो ? श्वेत रङ्ग वालो ? (तक्षकवंशजो) कृष्ण सर्पो ? और निन्द्य कुटिल सर्पों ? मेरा यह उद्घोष सुनो ? मेरे प्रियजनों के घर के पास न ठहरो। अपनी फुंकार मात्र सुनाते हुए, सुदूर अपने विषों ही में रमते रहो। ६ कृष्ण, पीले स्थानों पर रहने वालो ? भूरे रङ्ग वालो ? जल से दूर रहने वालो ? और सबको पराजित कर देने वालो ? क्रोधी सर्पों की विष बाधाओं को में, उसी भांति से ढीली करता हूँ, जिस प्रकार धनुष की डोरी और रथों के बन्धनों को ढीला करते हैं। ७ चिपकने वाली और न चिपकने वाली तथा नर और मादा, (नपुंसक) तुम्हारे बन्धुओं को भी, हम सभी प्रकार जानते हैं। तुम नीरस हो जाने पर क्या कर सकोगे। ८ हे अत्यन्त हिंसक सर्पिणी की पुत्री ? तू कृष्ण सर्पिणी की दासी हो गई है, इन दाद पैदा कर देने वाली सब सर्पिणियों के तीव्र कष्ट, वेदनाप्रद विष नीरस हो जावे।

९ पहाड़ों के नीचे घूमने वाली, कानों वाली साही, वह बोली, जो कोई भी इस भूमि में खोदकर बिलों में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहते हैं उन सर्पों का भी विष नीरस हो जावे। १० तावुव हिंसक नहीं हैं, हे तावुव ? तू जो निश्चय से हिंसक नहीं है, उस तावुव से विष नीरस होता है। ११ तास्तुव भी हिंसक नहीं है, तू तस्तुव निश्चयपूर्वक अहिंसक है, उस तस्तुव द्वारा विष निरस्त, नीरस होता है। कां ३ सू० २६ ऋ० २७ कृषि स्वस्त्ययन में पूर्वोल्लिखिय है।

"देवाअदुः" कां ६ सू १०० की ३ ऋचाओं से स्थावर-जङ्गम विष दूर करने के लिये लेप करें। सर्प की वामी की मिट्टी को अभिमन्त्रित कर बाँधे, जल के साथ पिलायें, आचमन लेप करें।

कां ६ सू० १०० ऋ० ३ गरुत्मान्ऋषिः। वनस्पतिः। देवता। अनुष्टुप्-छन्दः। स्थावर, जङ्गमविषभैष-ज्यार्थे-वल्मीकमृदोऽभिमन्त्रणे, बन्धने, उदकेन सहपायने, आचमने, प्रलेपने च विनियोगः। कौ० ४१.७

दे॒वा अ॑दुः॒ सूर्यो॑ अदाद् द्यौर॑दात् पृथि॒व्य॑ऽदात्। ति॒स्रः सर॑स्वतीरदुः॒ सचि॑त्ता विष॒दूष॑णम् ॥१

यद् वो॑ दे॒वा उ॑पजीका॒ आसि॑ञ्च॒न् धन्व॑न्युद॒कम्। तेन॑ दे॒वप्र॑सूते॒नेदं॑ दूषयता वि॒षम् ॥२

असु॑राणां दुहि॒तासि॒ सा दे॒वाना॑मसि॒ स्वसा॑। दि॒वस्पृ॑थि॒व्याः संभू॑ता सा च॑कर्था॒रसं॑ वि॒षम् ॥३

१ देवों ने विषनाशन उपाय दिये हैं। पृथ्वी, सूर्य, वायु, जलाधिष्ठात्री सभी देवगणों और तीनों ही, समान चित्त वाली, सरस्वती देवियों ने विष निवारक उपाय दिये हैं। २ हे देवो ? उपजीक (दीमक) नामक औषधियाँ, जो जल, मरुप्रदेशों में ही विशेषकर आपके पास सींचती है, उस देव के द्वारा ही उत्पन्न जल से, इन विषों का निवारण करो। हे औषधे ? तू असुरों (या प्राण रक्षण कर्त्ताओं की सहायक) की पुत्री है वही तू देवों की (इन्द्रियगण की भगिनी तुल्य आरोग्य वर्द्धक है, द्युलोक, और भूलोक से उत्पन्न हुई, वह तू विषों को नीरस सामर्थ्यहीन बना।

कां. ७।८८ "अपेहि" का शेष—

"अपेहि" काँ ७ सू ८८-से सर्प विष विनाशनार्थ कुशा या कास, छान का पुराना पूला जलाकर अभिमंत्रित कर सर्प की ओर अथवा जिस स्थान पर काटा हो, उसकी ओर फैंक दे और काटने के स्थान पर गाड़ दे।

कां. १०।४ "इन्द्रस्यप्रथम" का शेष—

"इन्द्रस्यप्रथम" कां १० सू० ४ में उपरोक्त अनेक प्रकार के सर्पों व उनके विषों के परिहार के लिये मंत्र तथा औषधियों की विधि वर्णित है। इस कर्म में "इन्द्रस्यप्रथम" इस अर्थ सूक्त का प्रयोग "ब्राह्मणोजज्ञे" कां ४ सू० ६ की भांति है। इसी भैषज्य कर्म में—"केशव के मतानुसार" पैद्वं पिष्ट्वा अभिमन्त्र्यदक्षिणेनांगुष्ठेन दक्षिण नासापुटे नस्यं ददाति। "पैद्वं कीटकम्" तलिणि-इति लोके प्रसिद्धा। तापिष्ट्वा। तथा च—"**पैद्वः हिरण्यवर्णसदृशः कीटश्चित्रितोवा**" स पैद्वः उच्यते। तथा अहिभये पैद्वः अथर्व वेद कां १० सूक्त ४ ऋचा ५,६,७,१०,११ "इन्द्रस्यप्रथमो" सूक्त में वर्णित **पैद्व-वैदिक इण्डेक्स वौल्यूम** २ पन्ना २२ पर R V. ऋग्वेद ९.८८.४ "पैद्वःपुंस्त्री अश्वे निघण्ट" में वाचस्पत्यायबृहत संस्कृताभिधानम् (६ भाग) मौनियर, विलियम्स के 'संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी' के अनुसार "पैद्व" का अर्थ पेदु का सर्प-घाती अश्व" है। ऋग्वेद (१.१९७।९, १।११८।९, १.११९।१०, ७।७१।५, १०।३९।१०) में पद शब्द आश्विनी के रक्षक के रूप में प्रयुक्त हुआ है जिसने उन्हें एक अश्व दिया जो पैद्व कहलाया जो आंगल विद्वान कीथ के अनुसार सूर्य के अश्व का परिचायक है तथा च ऋग्वेद (१,११७,९; ११८.९; ११९.१०;७. ७१-५; एवं १०,३९,१०) से प्रमाणित है कि पैद्व सर्प विष विनाशक रङ्गाविरङ्गायासूर्य किरणों की भांति सुनहरा घोड़ा जैसी आकृतिका कीट (तित्तिणि) ही होता है। इसके ४ पैर २ आगे को शृङ्ग जैसे होते हैं, प्रायः वर्षा ऋतु या सरसों फलने के समय जङ्गलों में दृष्टिगोचर होता है। "**अनेनसूक्तेन श्वेतवस्त्रवेष्टितं पैद्वम् अभिमन्त्र्य यत्राहिभयं तत्रनिखनाति" इति केशव। तथा दारिलमतेन सर्पाद्भयेपैद्वस्त्रेवद्धा स्थापयति तस्मिनवेश्मनि। कौशिकमतेन-पैद्वं प्रकर्ष्य दक्षिणेनाङ्गुष्ठेन**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दक्षिणस्यां नस्तः। अहिभये सिच्यवगूहयति। "अङ्गा दङ्गात्" इत्याप्रपदात् दंशमोत्तमया निताप्याहिम् अभिनिरस्यातियतो "दष्ट" इति कौ० ४।८ शङ्काविषभैषज्येकर्मणि—"अङ्गादङ्गाप्रच्यावय" इति ऋचा (१०।४-२५) **सर्पदष्टं शिरप्रभृतिआप्रपदान्नं हस्तेनमार्ष्टि। तत्रैव कर्मणि आरे अभूत** इति ऋचा (१०।४-२६) **उल्मुकंप्रताप्य अभिमन्त्र्य ततो विषव्रणं दृष्टवा तत्सम्मुखंक्षिपति। सर्पादिशने यतो दष्टस्ततो निरस्यति उल्मुकम्।**

पैद्वः—अभिप्राय यह है कि सुनहरे या रङ्ग विरङ्गे कीट तित्तिणिका को पीसकर अभिमन्त्रित कर दायें अगुष्ठ से विषावृत के दायें नथने में हुलास-नत्य दें। इसी सू. १०।४ पैद्व को श्वेत वस्त्र में लपेटकर अभिमन्त्रित कर सर्पभय के स्थान में गाड़ दें। ऐसा "केशव" तथा "कौशिक" मत है। दारिल मत से पैद्व को वस्त्र में बांधकर अभिमन्त्रित कर उस घर या स्थान में रख दें।

शङ्काविष भैषज्यार्थः—उपरोक्त ऋचा २५ से सर्पविषावृत के शिर से पैर तक समस्त अङ्गों पर वायां हाथ फिरादें। और उसी कर्म में १०।४-२६ वीं ऋचा से उल्मुक को अभिमन्त्रित कर विष के घाव या स्थान को दिखा उसकी ओर फैंक दें। यदि सर्प न दीखा हो तो जिस स्थान पर से काटा हो उसकी ओर फैंक दें।

सर्प विष शमन विधिः

"तिरश्चराजेः" कां. ७ सू. ५६ की ८ ऋचाओं से विच्छू मच्छर, डांस, चैंटी सर्कोटक (अजगर सर्पविशेष) आदि के विष निवाणार्थ **"मधुक"** को अभिमन्त्रित कर विषावृत को पिलायें। उसी चिकित्सा में जुते खेत की मिट्टी या वामी की मिट्टी कच्चे पशु चर्म में लपेट अभिमन्त्रित कर बाँधे। अथवा केवल वामी की मिट्टी को रस में मिलाकर बांध दें। तथा इसी में हल्दी में घी मिला, अभिमन्त्रित कर पिलायें। तिरछी रेखाओं के सांप, काले सर्प के विष नाशनार्थ उपरोक्त प्रयोग विशेष रूप से हैं।

मधुक—३ (मुलहटी या महुआ) मधु से उत्पन्न, मधू रस वाली मधुमती-विशेष कुटिलता वाली मवुर विष वाली, विषनाशिनी श्वेत गुञ्जा की जड़ अभाव में रक्तगुञ्जा (चोंटनी) की जड़ (चिलमिटी) होती है।

तिरछी रेखा वाले सर्प, काले सर्प, कङ्कपर्वों के सर्प, चीखनेवाले, फुसकारनेवाले सर्प की चिकित्सा में 'मधुक' को अभिमन्त्रित कर रोगी को पिलायें। 'मधुक' मधु से उत्पन्न होती है - मधुरस स्राव करनेवाली मधुमती होती है—जो कुटिलता के विष शमन में समर्थ है। भाषा में धतूरा) कहते हैं परन्तु मुलहटी भी मधुक कहलाती है दोनों ही लीन हैं। ऋ. ३ से रोगी को सम्वोधित करें। हे रोगी? मुंह, पूँछ, पैरों की शक्ति सहित सर्प द्वारा काटे हुए विष को सामर्थ्य हीन मंत्र बल से करते हैं। हे रोगी तेरे विष से टेढ़े हुए अङ्ग पूर्ववत् ठीक किये जाते हैं। सर्कोटक नाम के भयंकर सर्प का विष शमन होता है, वह मृत्यु की गोद में भेजा जाता है।

ऋ. ६ से **वृश्चिक का विष शमन** करें। अन्य सभी इन्हीं ८ ऋचाओं से करें, शेष विधि सन्दर्भ में देखें।

कां. ७ सू. ५६ ऋ. ८ अथर्वा ऋषिः। वृश्चिकादय, २ बनस्पतिः, ३ ब्रह्मणस्पतिः। देवते। अनुष्टुप्, ४ विराट् प्रस्तार पङ्क्तिः। छन्दांसि। वृश्चिकः मशक, पिपीलिका, शर्कोटकः आदि विष भैषज्ये विनियोगः।

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम्। तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ॥१

इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः। सा विहृतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी ॥२

यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि। अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयं यो वक्रो विपरुर्व्यऽङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥४
अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः । विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥५
न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नात मध्यतः । अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥६
अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः । सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥७
य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येऽन च । आस्ये न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ॥८

इससे वामी की मिट्टी, जल में मिला, अभिमंत्रित कर पिलायें । या जल में हल्दी या घृत मिला, अभिमन्त्रित कर पिलायें । या गेहूं के खेत की या वामी की मिट्टी कच्चे पशु के चर्म से ढांक कर काटे हुए व्रण से बांधें ।

कां. ७ सू. ५६ "तिरश्चिराजे" तिरछी रेखाओं वाले, नाग जैसे फणवाले सर्प के संग्रहीत विष को यह वनस्पति (अ. १ तथा ६ एवं इसी प्रकरण में उल्लिखित मधु), वनस्पतियाँ नष्ट करती हैं । (१) यह वनस्पति मधुरता के साथ उत्पन्न हुई, मधुरता देने वाली, मधुरता को चुआनेवाली (श्वेत व रक्तगुञ्जा मूल नाम्नी) और जो स्वयं भी मधुर है। यह कुटिल साँप के विष की औषधि है, और वह मच्छरों के भी विनाश करनेवाली है। (३) जहां काटा गया है, जहाँ से रक्त पिया गया है । वहाँ से तिक्ष्णता से काटनेवाले, मच्छर, डाँस, के रसहीन विष को हम हटा देते हैं । (४) हे ब्रह्मणस्पते ! विष प्रभाव से, जो यह टेंडा और संधि स्थान में शिथिल और कुरूप अङ्गवाला हुआ है, और जो मुख को टेढ़े-मेढ़े और विरूप कर देता है, उनको तू मुज्ज के समान सीधा कर । (५) नीरस और नीचे से आनेवाले, इस बिच्छू या सर्प के विषको में खण्डित करता हूं और इसको मैं मार डालता हूं । (६) हे विच्छू ! तेरी बाहुओं में बल नहीं है, और नसिर में, और न मध्य भाग में ही है । तब फिर क्यों इस ढ़ीतापूर्ण पापवृत्ति से, पुच्छ में थोड़ासा विष धारण किये हुए है । (७) हे सर्प और बिच्छूओ ! चीटियाँ तुम्हें खाती हैं, मोरनियां तो तुम्हें काट ही डालती हैं । सब भली प्रकार कहते हैं कि बिच्छू का विष खुश्की करनेवाला है । (८) तुम पूंछ और मुख दोनों ही से, प्रहार करते हो, परन्तु तुम्हारे मुखों में विष नहीं है, फिर पूंछ में क्यों है ।

अगस्त्यादि ब्रह्मर्षियों, इन्द्रादि देवों की तप-तेज, ब्रह्मबल, मन्त्रबल, सामर्थ्य से तथा मधुकीट के पिलाने से "ब्राह्मणोजज्ञे" ४।६ सूक्त के साथ प्रार्थना से समस्त विष व विषविकार शमन करें ।

कां. ६ सू. १२ "परिद्यामिव" ऋ. ३ गरुत्मान् । ऋषिः । तक्षकः । देवता । अनुष्टुप्छन्दः । सर्पविष भैषज्ये मधुकीट अभिमन्त्रणे पाने स्तवने च विनियोगः ।

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् । रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥१
यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा । यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥२
मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु । मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥३

कां. ६ सू. १२ "परिद्यामिव" जैसे सूर्य द्युलोक को जानता है, वैसे ही मैं सर्पों के जन्मवृत्त को जानता हूं। रात्री जैसे सूर्य से भिन्न जगत को आवरण करती है, उसी भाँति मैं तेरे विष का निवारण करता हूं । (२) ब्राह्मणों, ऋषियों और देवों ने, जो पूर्व काल जान लिया था, वह ही भूत और भविष्य काल में रहनेवाला ज्ञान है । उससे तेरा विष दूर करता हूं । (३) मधु [बूटी श्वेतगुञ्जा या रक्त गुञ्जामूल मधु औषधि से सिंचन करता हूं । नदियाँ, पर्वत,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पहाड़ सभी मधुदाता हों [परुष्णी] और शीपाला [पूर्वोक्त] मधुरता प्रदान करे। तेरे मुख और हृदय को शान्ति प्राप्त हो।

कां. ६ सू. ५६ 'मानोदेवाः' की ऋचाओं से सर्प, बिच्छू आदि के भय निवारणार्थ वालू को अभिमन्त्रित कर घर, क्षेत्र आदि के चारों ओर छिडक दें तथा इसी से अपामार्ग, सहदेवी, पृश्निपर्णी, ऊँट कटेरा, वनतुलसी, बच आदि की माला घर, गोष्ठ, नगर के द्वारों में बांधे। उपरोक्त इन्ही मन्त्रों से गोमय अभिमन्त्रित कर चारों ओर बुरके, गाड़ दे, अग्नि में होम करे। इन्ही से अभिमन्त्रित अपामार्ग, गुड़ची को अभिमन्त्रित कर पूर्ववत बांधे, गाड़े, छिड़के, हवन करे। कृषि सम्बर्द्धन में विशेष विवरण पढ़ें।

कां० ६ सू० ५६ ऋ० ३ शान्तातिः। ऋषिः। विश्वदेवाः, २-३ रुद्रः। देवते। उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः, २ अनुष्टुप्, ३ निचृत—छन्दांसि—सर्प, वृश्चिकादि विष जन्तु भय निवृत्तये गृह, ग्राम, नगर, क्षेत्रादिकानां स्वस्त्ययने, रक्षोहणे, अभिमन्त्रणे, जपे, विनियोगः।

मा नो॑ दे॒वा अहि॑र्वधी॒त् सतो॑कान्त्स॒हपू॑रुषान् ।
संय॑तं॒ न वि ष्प॑रद्॒ व्यात्तं॒ न सं य॑म॒न्नमो॑ देवज॒नेभ्यः॑ ॥१
नमो॑ऽस्त्वसि॒ताय॒ नम॒स्तिर॑श्चिराजये । स्व॒जाय॑ ब॒भ्रवे॒ नमो॒ नमो॑ देवज॒नेभ्यः॑ ॥२
सं ते॑ हन्मि द॒ता द॒तः सम॑ु ते॒ हन्वा॒ हनू॑ । सं ते॑ जि॒ह्वया॑ जि॒ह्वां सम्वा॒स्नाह॑ आ॒स्यऽम् ॥३

वालू अभिमन्त्रित कर स्थान की सभी दिशाओं में छिड़कें। आम, दाभ, दूव अपामार्ग सहदेवी, शमी आदि की मय पत्तों की टहनियों द्वारों से अभिमन्त्रित कर बांधें, छिड़क दें। जङ्गल से शुष्क गोमय ले अभिमन्त्रित कर गृह, ग्रामादि की सभी दिशाओं में छिड़कें, सीमाओं में, द्वारों में नीचे गाड़ें, इसी से होम करें। इसी सूक्त के सन्दर्भ में 'युक्तयोः' (३।२६,२७) 'यस्तेसर्प': १२।१-४ कौ० ७।१ ने वर्णित किया है।

कां० १२ सू० १ ऋ० ४६ अथर्व ऋषिः। भूमिः। देवताः। अनुष्टुप् छन्द। सर्प, वृश्चिकादि भयनिवारणे-गृह-ग्रामादि संरक्षणे, तन्त्रे, स्तवने, होमे विनियोगः।

यस्ते॑ स॒र्पो वृश्चि॑कस्तृ॒ष्टदं॑श्मा हेम॒न्तज॑ब्धो भृम॒लो गुहा॒ शये॑ ।
क्रिमि॒र्जिन्व॑त् पृथिवि॒ यद्य॒देज॑ति प्रावृषि॒ तन्नः॒ सर्प॒न्मोप॑ सृ॒पद्॒ यच्छि॒वं तेन॑ नो मृड ॥४६

"ददिर्हिः"—कां० ५ सू० १३—सारा सूक्त तथा ऋचा प्रथम—समस्त विषों के निराकरणार्थ प्रयोग करें, कौशिक मत पूर्व आ चुका है। इसकी विधि कां० ४।६ 'ब्राह्मणेयज्ञे' की भांति ही है। दूसरी आदि सभी ऋचाओं से क्रमशः विष निराकरण करें। दूसरी—ग्रहणी—ऋचा से दांये परिक्रमा करे, शिखा 'सिचि स्तम्बान्,' बध्नाति, और चोटी की गांठ दें। तृतीयया प्रसर्जनी, चतुर्थ्या दक्षिणाम्। अपेहीति, दशम तृणैः प्रकर्ष्याहिम् अभिनिरस्यति यतो 'दष्टः'। पञ्चाभ्यावलीक पलल ज्वालेन। षष्ठ्यार्वीज्यापाशेन द्वाभ्यां मधूद्वापात् पाययति। नवभ्याश्वावित्पुरीषम् त्रिः शुल्कया मांसंप्राशयति, दशभ्या लाबुना चमयति। एकादश्या नाभि बध्नाति इति।

कौशिक (४।५) ग्रहणि कटकबन्ध मृदादितोऽप्रदक्षिणं रेखां करोति बन्धः। तद् विष स्तम्भन भैषज्यम्। शिखां दष्टस्य बध्नाति। 'तदपि विषस्तम्भनम्। श्वेत वस्त्रे शणस्तम्बै वा ग्रन्थि बध्नाति। विषं स्तम्भते शरीरे न सर्पति। तृतीयया दष्टं स्थानं पीडयति। तेन विषं अन्यत्र गच्छति। चतुर्थ्या आचार्यस्ततः प्रदक्षिणं परिक्रामयन्ति। "अपेहि (७।८८-९३) इत्यृचं जपित्वा तृणानि प्रज्वाल्य अहेरभिमुख प्रक्षपति दष्टस्थाने वा। वलीकेति गृह तृणाज ज्वालिताम्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदकच अभिमन्त्य दष्टं पाययति.प्रोक्षति च । षष्ठया आर्बीज्यापाशम् अभिमन्त्य बध्नाति । सप्त मष्टमीभ्यां मदुमक्षिकां मधु बृक्ष श्वेत, रक्तगुञ्जाफललतामूलया मृत्तिका चाभिमन्त्य पाययति । पुरीषम (मधु मक्खी के छत्ते को) अभिमन्त्य-पाययतीतिशेषः । त्रिःशुक्लया श्वाविच्छलाकया । माँस श्वावित्सम्बन्धि । अलाबुना अलाबुन्युदक कृत्वा अभिमन्त्य आचमयति विष व्याधितम् । अलाबुवृन्तं सम्मात्याभि मन्त्य बध्नाति । इति । तथा

आभिचारिके कर्मणि—अस्य सूक्तस्य विनियोगः "ददिर्हि-ति साग्नीनि । देश कपट्टु प्राक्षणाति"(कौ०६।२) देशकपट्टु—सर्पच्छत्रम् अहिच्छत्रम् । (सर्प की कांचली)

"ददिर्हि" कां० ५ सू० १३—विधि विशेष—ग्रहिणी—(कटकबन्ध) होता है । (गंगारज आदि से उलटी) अर्थात् वामहस्त की ओर घुमाते हुए ३ या ५ या ७ विषम रेखा जोड़ों पर काटे हुए स्थान पर खींच दे । विष आगे नहीं बढ़ेगा । ऋचा १ ऋचा २ से चोटी की गांठ लगादे—विष रुक जावेगा । श्वेत वस्त्र, धागे, या सन से जोड़ों में काटे स्थान में बन्ध लगाये तो विष नही बढ़ेगा रुक जावेगा । ऋचा ३ से तदनन्तर काटे स्थान को पीड़ित ताड़ित ऋचा ३ से करे । विष अन्य स्थान को चला जावेगा । कर्त्ता आचार्य—प्रदक्षिणा ऋचा ४ से करे और "अपेहि" ऋचा को जपे, (७।८८-९३) का जप करते हुए फूंस घर की छान को लेकर उसको जलाकर उससे गर्म किये हुए जल को अभिमन्त्रित कर विष के रोगी काटे हुए को पिलाये, छींटे दे । ऋचा ५ 'अपेहि' से पटेर कांसप तेल के तिनके जलाकर सर्प के सन्मुख या काटे हुए स्थान कीं ओर अभिमन्त्रित कर फेंक दे ।

ऋचा ६—धुनकी की तांत को अभिमन्त्रित कर बाँध दे । ऋचा ७ व ८ दोनों से मधु-मक्खी या मधु वृक्ष श्वेत गुञ्जा की मूल की मिट्टी अर्थात् (मोम) मधु-मक्खी की विष्टा छत्ता को अभिमन्त्रित करे और पिला दे । ऋचा ९. १०. १२—तीनों से शुक्ति (वन्द सीपी) को जल में डालकर गर्म करके तपा कर, अभिमन्त्रित कर आचमन कराये। और उसके सीपों के भुर्त्ते को अभिमन्त्रित कर विष के रोगी के विषयुक्त स्थान में बाँध दे ।

शेष प्रयोग—तक्षक के निमित्त प्रथम ऋचा का होगा और कां० ४ सू० ६ की भांति विनियोग विहित है। यह कां० ४ सू० १३ की प्रक्रिया हैं । इसे पीछे के संदर्भ में मनन कर काम में लें ।

सर्प विषापहरण—अथर्व वेद में काण्ड ५ सूक्त १३ की ऋचा १, २; ३, ४ (काण्ड ७ सू० ८८ ऋचा १, कां० १० सू० ४ ऋचा २६, कां० १० सू० ४ ऋचा १, कां० ४ सू० ६ ऋचा १, कां० ४ सू० ७ ऋचा १ ये ग्रहणी ऋचाय कहलाती हैं । पृष्ठ १ के प्रारम्भ में 'ब्राह्मणो जज्ञे' कां० ४ सू० ६ तथा 'वारिदम्' कां० ४ सू० ७ ये कन्द विषापहरणार्थ हैं । इनसे जल अभिमन्त्रित कर विष से व्यथित रोगी को पिलाये । और उसी से छींटे दे । तथा क्रमुक (कच्ची सुपाड़ी) वृक्ष के टुकड़ों को जल के साथ अभिमन्त्रित कर पिलाये छिड़के ।

इन्हीं दो सूक्तों से जल में पुराने मृग चर्म को डालकर जलाये हुए, या पतित मार्जनी (बुहारी) के टुकड़ों से जलाये हुए जल को अभिमन्त्रित कर विश के रोगी को छींटे दे, स्नान कराये। विषैले ऊर्ध्वजल से ऊर्ध्व फलों को मथकर अभिमन्त्रित कर पिलाये । मदन फल—प्रत्येक ऋचा से अभिमन्त्रित कर ऐसा पिलाये कि वम न होजावे । अथवा घी में हल्दी मिला इन दोनों से अभिमन्त्रित कर विश के रोगी को पिलायें। क्रमुक कों वारणा भी कहा है। भाषा में (वन्रा)कहा है । "परिद्यामिव" कां० ६ सूक्त १२ की ३ ऋचाओं से सर्प भेषज कर्म में "मधुक्रीड" अभिमन्त्रित कर विष के रोगी को पिलाये । तथा "ब्राह्मणोजज्ञे" कां० ४ सू० ६ की भांति सूक्त में वर्णित जप, आचमन आदि कर्म करे ।

अथ सर्पादि विष-शमन विधि :

कां ६ सू० १०० ऋ० १-तिस्त्रःसरस्वती । "से सरस्वती-त्रयीरूपाः अर्थात् "इडा. सरस्वती. भारती" ये तीनों अन्योन्य. अभेद्य सम्बन्ध से सरस्वती कही गई है । ऋ० २ "उपजीका" भाषा में दीमक जीव जो वामी को शुष्क

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मरुस्थल में बिना ही जल के बनाता है, उसे जो जल मिलता है वह दैवी कृपा ही है "तैत्तिरीयकम्" ता उपदीका अन्नवनवरवृणाम है । अथ व इमंरन्धयाम । यत्र क्वच, खनामतदपोभितृण व्रामेति । तस्माद् उपदीका यत्र क्वच खनन्ति, तदपोभितृन्दन्ति" तै० आ० ५।१।४ उस देवप्रदत्त, देवप्रसून, उस जल से स्थावर जङ्गमादि विष दूर होता है । यह वामी की मृत्तिका, समस्त दोषशमन में उपयुक्त मानी गई है।

कां ४ सू० ६ ऋ० ८ गरुत्मान् । ऋषिः । तक्षकः । १ ब्राह्मणः, २ द्यावापृथिवी सप्तसिन्धवः, ३ सुपर्णः, ४-८ विषम् । देवते । अनुष्टुच्छन्दः । कन्द-मूल कन्दाविषभैषज्ये, तक्षकस्तवने, होमे, जपे च विनियोगः ।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः । स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥१
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥२
सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् । नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥३
यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः । अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ॥४
शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः । अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ॥५
अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् । उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥६
ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् । सर्वे ते वध्रयः कृता वधिर्विषगिरिः कृतः ॥७
वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे । वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥८

कां ४ सू० ६ "ब्राह्मणो जज्ञे" सर्व प्रथम दशशिर और दश मुख वाला "सोमपानकर्त्ता" ब्राह्मण ही हुआ । उसने सोमरस पान कर विष को, रसहीन बना दिया । २ जहाँ तक दोनों द्यौलोक और भूलोक फैले हुए हैं, और जहाँतक सप्त महा नदियाँ फैली हुई हैं । जहाँ तक विष निवारिणी वेदवाणी को मैंने कह दिया है या कि घोषणा कर दी है वह सारे जगत में फैल जावे । ३ वेगवान गरुड़ ने प्रथम तुझे खाया उसे न तू उन्मत्त कर सका न मूर्च्छित ही कर पाया परन्तु विपरीत उसके तू उस का भक्ष बन गया ४ जिस पञ्च अँगुलियों से युक्त वीर ने टेड़े धनुष के बन्धन से निकाले गये वाण से विष को मैंने दूर किया है । ५ शल्य से नीचे के भाग से, और पख वाले स्थान से, मैंने विष हटाया है फाल से, सींग से, और वाण के अन्य भागों से, मैंने विष को दूर किया है । ६ हे वाण ? तेरे वाण के आगे का हिस्सा निस्सार है, और तेरा विष भी सारहीन है । हे रसहीन शुष्क ? साररहित वृक्ष का तेरा भाग निस्सत्व हो जावे । ७ जिन्होंने पीसा है, जिन्होंने जलाया हैं, जिन्होंने फैंका है, जिन्होंने लक्ष्य पर वाण छोड़ा है, वे सभी निर्बल कर दिये गये हैं, विष के पर्वत भी निर्बल कर दिये गये हैं । ८ हे विषबल्ली ? तेरे खोदने वाले, निसत्त्व हुए, तू भी निसत्व हो गई है, जहाँ से यह विष उत्पन्न हुआ है, वह पर्वत और पहाड़ भी निर्वीर्य हो गये हैं ।

कां ४ सू० ७ ऋ० ७ गरुत्मान् । ऋषिः । वनस्पतिः । देवता । अनुष्टुप् ४ स्वराट् छन्दः । कन्द-मूलादि समस्त विष भैषज्ये, तक्षक, स्तवने, होमें च विनियोगः ।

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि । तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥१
अरसं प्राच्यंऽ विषमरसं यदुदीच्यऽम् । अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करम्भं कृत्वा तिर्यऽ पीवस्पाकमुदारथिम् । क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥३

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि । प्र त्वां चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ॥४

परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि । तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ॥५

पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत । प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः ॥६

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।

वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥७

इसमें वरण तथा वचा-मापा में निर्विषी, निर्मली यत्र तत्र कहीं हैं इनके खोदने पर ७वीं ग्रन्थि के ऊपर से क्रमशः नीचे वाली सप्तमी के निकट सर्प रहते वतलाये। ये नेत्रादि सभी के रोगों में विविध प्रकार से काम आती भी हैं।

कां ४ सू० ७ 'वारिदं' वारणा (वरण) वचा (निर्विषी) नामक औषधि में रहने वाला यह रस, जल-विष को दूर करता है। वहाँ अमृत का स्रोत है, उससे मैं तेरा विष हटाता हूं। २ पूर्वदिशा, और उत्तर दिशा का विष रसहीन शान्त होवे। और जो निम्न भाग का रस है वह करम्भ (दही) से शान्त होवे। ३ विष दोष से विकृत गात्र वाले ? घी के श्लेष से पक्व उदर आमाशय को ठीक करने वाला, दही मिश्रित भक्ष्य (करम्भ पूर्वोक्त) क्षुधा के अनुकूल खाया जावे, तो वह तुझे वेहोश नहीं होने देगा। ४ हे मूर्च्छा लाने वाली ? तेरी वेहोशी को वाण के तुल्य दूर फेंक देते हैं। और चूने वाले वर्तन के समान, तुझको "बचा" औषधि से हम हटा देते हैं। ५ एकत्रित ग्रामीणों के समान तुझको हम "वचा" औषधि से स्थिर कर देते हैं। स्थान पर वृक्ष के समान स्थिर रह। हे कुदाल से खोदी हुई ? तू रुग्ण को वेहोश मत कर।

कां ६।२५ शुनः शेषः। मन्याविनाशनम्। अनुष्टुप् विषजन्य व्यथा निवारणे मार्जने विनियोगः।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१

सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२

नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३

अर्थ कां ६ सू० २५ जो पाँच और पचास पीड़ायें गले के भाग में होती है। जो सात और सत्तर पीड़ायें कण्ठ प्रदेश में होती हैं। जो नौ और नव्वे पीड़ायें कन्धे के ऊपर होती हैं। वे सब ही यहाँ से उसी प्रकार नष्ट हो जावें, जिस प्रकार आराध्य मनीषियो के सन्मुख साधारण लोगों (मूर्खों) के भाषण नहीं ठहरते हैं।

कां ७ सू० ७८,८३;१-२ अथर्वा। अग्निः। १परोष्णिक्, २ त्रिष्टुप्। राजबन्धन, पारान्त्रता मृत्युपाश बन्धनो व मोचने विनियोगः।

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम् । इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने ॥१

अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।

दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥२

कां ७ सू ७८ (८३) यदि किसी दुष्ट ने अपने मन्त्रादि कुटिल अभिचारादि कर्मों द्वारा वाणी आदि का बन्धन कर दिया हो और उसे मृत्युपाश बन्धनों से जकड़ दिया हो तो उसके निवारणार्थ काले उड़द, पीली सरसों को मन्त्रों से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभिमन्त्रित कर बार २ मन्त्रोच्चारण के साथ प्रहार कर काटे १-तेरे कृत दुष्ट बन्धनों को मन्त्र बल से काटता हूं। तेरे बन्धनों को खोलकर मैं मुक्त करता हूँ कसकर बाँधने वाले, तेरे बन्धन को भी मैं छोड़ता हूँ। यहाँ तू अहिंसित बनकर रह। २-हे जात वेदाग्ने ? इसके लिये यहाँ क्षात्रधर्म के धारण करने वाले तुझको दिव्य तपोबल के द्वारा दिव्य-शक्ति से संयुक्त करता हूँ। हमारे लिये यहाँ धन दे; कार्य में विजय प्रदान कर, इन्द्रियगाण के धारकदेवों को हवि अर्पण कर, इसी से तेरा यश बढ़ेगा। अर्थात् हे रुग्ण, सूधर्म, जप, तप, यज्ञरूप में जीवनदाता प्रभु को आत्मसर्मपण कर उसी का हो जा।

कां० ६ सू० ६३ "यत्तेदेवीनिर्ऋतिं" की ३ ऋचाओं से पारतन्त्र्यपाश—जन्मजन्मान्तरीय ऋण बन्धनपाश कारागार बन्धन, राजकीय मृत्यु बन्धन, (फाँसी) एवञ्चएकोत्तर शतसख्यांक तथा विविध देवपाश बन्धन, कृत्या, अभिचारादि कृत बन्धनपाश विमोचनार्थं अश्चत्थमूल में ४१ दिन उपस्थान करें। जौ, तिलों से होम करें। इसी से "नैर्ऋतेष्टकोपधानान्तरं रुक्मपाश सहितां प्रास्ताम् (आसन्दीम् अनुमन्त्र्येत्) इति वैं० ५।१

कां. ६ सू. ६३ [१-४] द्रुबणः। १ निर्ऋतिः, २ यमः, ३ मृत्युः, ४ अग्निः। जगती, २ अतिजगतीगर्भा, ४ अनुष्टुप् उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः।

यत्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत्।
तत्ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥१
नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान्वि चृता बन्धपाशान्।
यमो मह्यं पुनरित्त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥२
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम्।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥३
संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ। इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥४

हे देवी निर्ऋति ! मुझ जीव के जन्मणन्मान्तरीय तथा बशानुगत वन्धु, वान्धवीय, दाता प्रतिगृहीताओं के राजसी तामसी प्रतिग्रहदान एवञ्च कृतऋण, अपरिहार ऋण बन्धनपाश; पारतन्त्र्यपाश राजकीय दण्डजात, निबिड़ पाशबन्धन, फांसी आदि के मृत्युपाश तथा १०१ मृत्युओं के पाशबन्धनों को, जिनसे मुक्त होना सहज और सम्भव भी न हों मेरी गर्दन में बाँधे हैं। उन्हें (ऋषि अथर्वाजी का उद्घोष है) ए जीव ! तेरी दीर्घआयु, शक्ति और तेजस्विता की वृद्धि के लिए ये पाश खोलता हूँ। अब आगे जीवन में बढ़कर मङ्गलदायक भगवत्प्रसाद के साथ तू अपने सत्कर्मों का भोगकर।

२—हे निर्ऋति (दुर्गति देवी !) तेरे लिए नमस्कार है। हे उग्र तेज वाले ! ब्रह्मचारी, (जीव) तू प्रभु और गुरु, वेदवाणी के बलबूते से इन लौहमय जघन्य, दारुण पाश बन्धनों को तोड़ डाल। यम तुझको पुनः मेरे लिए अर्थात् नश्वर जीव जगत बन्धनों को छोड़कर मात्र, "परमेष्ठी प्रभु" के लिये शेष जीवन का समपर्ण, आराधना करने के लिये ही देता है। उन सर्व नियामक महाप्रभु की शरण में रह, उनकी वन्दना कर।

३—हे दुर्गति देवी ! जब तू लोहमय काष्ट स्तम्भ में किसी जीव, या राष्ट्र को बांधती है, अर्थात् परतन्त्रता ऋणभार, कुटुम्बियों के सद्सत् व्यवहार, कपटी स्वजनों, मित्रजनों का विश्वासघात पूर्ण व्यवहार कारागार की विविध भांति की असह्य दारुण यातनाये, मन, मस्तिष्क, आत्मा और शरीर को रह-रह कर दिन-रात उत्पीड़ित करती रहती है, परबन्धनों में पड़कर आयु और आत्मा का क्षीण होना, शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, पारमार्थिक बलों का नितान्त क्षीण हो जाना, शरीरानुकूल, मनोनुकूल सामयिक, रुचिकर जीवन यापन भोगों की नितान्त अप्राप्ति आदि के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घोर आत्मिक क्लेशों को दारुण ज्वालाओं से रह-रह कर सतप्त रहना आदि आदि। तथा फांसी लगने की अवधि के ज्यों-ज्यों वह पास आती जाती है. तब वह अन्य सभी दारुण मृत्यु बन्धनों से संतप्त होता रहता है। यही नहीं अपने मातृ-पितृलोकों के विगत प्राणियों द्वारा किसी का ऋण, या अमानत या छलपूर्वक, धनादि हड़पलेना, उसकी वापिसी या अदायगी न कर पाना. वे मृत सूक्ष्म शरीर में जव आकर उसे घैरते हैं, और दारुण यातनायें देते हैं; उनसे उत्पीड़ित सूक्ष्म प्रेत शरीरी उस स्थिति में कुछ उसकी निवृति का उपचार कर सकने में अपने को सर्वथा असमर्थ पा, अपने पार्थिव उत्तराधिकारियों को उनकी ब्रह्मबल क्षीणता की दुर्बलताओं में आकर घेरते हैं। और उनके परिवारियों को अनेक प्रकार के अचिन्त्य, अकल्प्य प्रकारों से आविर्भूत होकर उत्पीड़ित करते रहते हैं, इन सभी प्रकार के, मृत्युओ के दारुण बन्धनों से जब तेरे (दुर्गति) के द्वारा जीव बांधा जाता है, तब उसे हजारों ही प्रकार के दुःख, क्लेश, निरन्तर सताते रहते हैं। हे जीवों ! अपने पितृगणों के यमलोक के बन्धनों की निवृति के लिए; पितरों से मैत्री करते हुए, यमकी सन्तुष्टि के साथ-साथ ही अपने उपर्युक्त और उससे भी अधिक, अकथ, अथक, अज्ञात बन्धनों को काटने के लिये इस जीव या (राष्ट्र) को बन्धनमुक्त करते हुए, इसको सुखपूर्वक स्वर्गधाम में पहुंचा। हे परमेष्ठिन प्रभो ! हे अग्ने ! आप परम बलिष्ठ उग्र तेजोमय, सर्वाधार हैं। इसी कारण आप सबको निश्चयपूवक ही मिला देते हैं, आप सबकी संघटना करते हैं, और सब पदार्थ मात्र प्राणीमात्र के, वाणी के और भूमि के बीच में प्रकाशित होते हैं। (अर्थात् सर्वात्माओं में, सर्वत्र, सर्वदा व्याप्त रहते हैं) वही आप वाणी (वेद)के प्रेरक भी है. वह आप स्वयं ईश्वर हमें, सर्वैश्वर्य-धन-धाम, धैर्य-धर्म धारकशवितयुक्त धनादि उपभोग्य पदार्थों से अनुग्रहीत करते हुए स्वर्गधाम का अधिकारी बनायें। पुरोहित, आचार्य या गुरु से अनुष्ठान को को विधिवत् दीक्षा ले आगे कर्म करें। उपर्युक्त ज्ञानीजन दीक्षा काल में, बन्धन गृहीत के कण्ठ में दर्भमणि अनुमन्त्रित कर बाँधें और दर्भ का जल कर्मकाल में उससे सेवन करायें। प्रसाद अभिमन्त्रित कर उसे दें। (कौ० ५।१०)

अथ विषह्यारी मन्त्र

(गत शेष)

ये निम्न मन्त्र भी गत वेदमन्त्रों जैसे प्रभावी हैं। इन्हें विधिवत सिद्ध करना होता है। सर्प आदि विषैले जीवों के दष्ट से उत्पन्न विष के विनाश के लिये उपर्युक्त अथर्ववेद शौनकीय शाखा की विधि विधान में असमर्थ, जिज्ञासुओं के लिये ये विविध महापुरुषों से अनुभूत आप्त संहिताओं से उपलब्ध मन्त्र और औषधियों का उल्लेख हे। किसी भी मन्त्र ग्रहण के लिये यह विधि नितान्त आवश्यक है। साधक, स्त्री,-माँस मद्य का परित्याग कर, मिताहारी, सर्वथा पवित्र हो मन्त्र ग्रहण करे। कुशासन पर बैठना और सोना चाहिये, गन्ध, माल्य, उपहार, वलि, जप, होम के द्वारा मन्त्रोंवत देवता का पूजन करे। इसी के साथ औषध-उपचार भी चालू रक्खें।

(१) **"ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय"** इसके जप से विष नष्ट होता है सर्प से डसे हुए की जीवन रक्षा हेतु गौ के घृत और गोवर के रस का पान कराये। (२) शब्दमय तार्क्ष्य (गरुड) देवता का मन्त्रः ॐ **क्षौं ह्लीं** ॐ **ह्लौं**। ॐ (शान्तस्वरयुक्तब्रह्मा) क्षौं (लोहित) ह्लीं (तारक) ॐ **(शिव) ह्वौं**। यह प्रणव के साथ चार अक्षरीमन्त्र है। न्यास इस प्रकार करे। ॐ **ज्वलमहामते हृदयाय नमः**; गरुड विशाल **शिरसेस्वाहा**:; गरुडशिखायैवषट्। गरुड विषभञ्जन प्रभेदन, प्रभेदन, वित्रासय, वित्रासय, विमर्द्दय, विमर्द्दय- **कवचायहुम्** उग्ररूपधारक सर्वभयङ्कर भीषयभीषयसर्वं दह दह भस्मीकुरुकुरुस्वाहा **नेत्रत्रयाय बौषट्**। अप्रतिहतशासनं वं हूं फट्–**अस्त्रायफट्**। यह अङ्गन्यास हुए। करन्यासः– ॐ अंगुष्ठाय नमः; ॐ **क्षौ** तर्जनीभ्या नमः; ॐ ह्लीं मध्यमाभ्यां नमः ॐ **अनामिकाभ्यां नमः**। ॐ **ह्लौं कनिष्टिकाभ्यां नमः**। ॐ **क्षौं ह्लीं** ॐ **ह्लौं करतल** करपृष्ठाभ्यां नमः तदनन्तर इस चार अक्षरी वियतिसम्बन्धी गरुडमन्त्र को पीपल के नीचे रात्रि में जपकर सिद्ध करें। जप १ लक्ष्य करें या गृहण प्रारम्भ से मोक्ष पर्यन्त जपकर सिद्ध करें। अपने को गरुड़ स्वरूप अनुभव करते हुए मन्त्रप्रयोक्ता पुरुष के वाक्य से मन्त्र विष पर अपना प्रभाव डालता है। इस प्रयोग का कर्त्ता पुरुष गरुड जी के हाथ की मुट्ठी मानकर अपनी मुट्ठी रोगी के हाथ में दें तो; रोगी के अंगुष्ठ में स्थित विष नष्ट

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो जाता है । यदि प्रयोक्ता गरुड़ पुरुष अपना हाथ ऊपर उठाकर पाँचों अगुलियों को चलाये और विष से उत्पन्न मदपर दृष्टि रक्खे तो चालनमात्र से ही विष का जहाँ का तहाँ स्तम्भन हो सकता है ।

(३) **निम्न पञ्चाक्षरीमन्त्रः—ॐ हृं यं रं वं लं** ।२ न्यास पूर्व भाँति से करके जपें; इसके आदि में यह वाक्य जोड़लें **"संप्लवप्लावयप्लावय"**१ इसे नं १ को पहिले बोलें तब उपरोक्त (२) को बोलें जपें, इसी प्रकार प्रयोग करें तो विष का संहार कर सकता है। पूरे ही सिद्ध इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल के अवसेचन(छींटा)मात्र से डंडा उठवा सकता है । शंखभेर्यादिकें द्वारा उच्चरितध्वनि के सुनने मात्रसे रोगी का विष दग्ध कर दे सकता हैं । (४) यदि यही मन्त्र इस प्रकार प्रयोग किया जाय (**ॐ संप्लवंप्लावयप्लावय ॐ हृं लं रं वं यं**) तो विष दष्ट स्थान से स्वतः ही अन्यत्र चला जाता है। इस मन्त्र का प्रयोक्ता पुरुष यदि दष्टरोगी के पास बैठा हो, अथवा अपने घरमें बैठा हो और तार्क्ष्य(गरुड) के वियतिसम्बन्धी स्वरूप का ध्यानकर, अपने आप में भी गरुड की भावना करके केवलमात्र (रं वं) अर्थात गरुड-वरुड का जपकर मन्त्र प्रयोग करें तो भी विष का नाश कर सकता है। यदि इसी को (ॐ रं स्वधा श्रीं वं) का जपकर, प्रयोग करे तो स्नान, जलपान मात्र से ही साधक विष, ज्वर, रोग और अपमृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है ।

(५) गरुड गायत्री मन्त्र—**"ॐ पक्षिराजायविद्महे पक्षिदेवायधीमहि तन्नोगरुडः प्रचोदयात्"** । इस निम्न मन्त्र के देवता भगवान रुद्र हैं ऋषि अग्नि हैं । न्यास निम्न हैं। ॐ हरहर स्वाहा-हृदयायनमः । ॐ कर्पदिने स्वाहा शिरसेस्वाहा । ॐ नीलकण्ठायस्वाहा शिखायैवषट् । ॐ कालकूटविषभक्षणाय हुं फट्-कवचायहुम् । ॐ कृत्तिवाससे नेत्र-त्रयायबौषट् । ॐ नीलकण्ठायस्वाहा-अस्त्रायफट् । ॐ हर हर स्वाहा पादाभ्यां नमः । ॐ कर्पदिने स्वाहा-जानुद्वयाभ्यां नमः । ॐ नीलकण्ठायस्वाहा । गुह्येन्द्रियाभ्यां नमः । ॐ कालकूटाय विषभक्षणाय हुं फट् नाभौ । ॐकृत्तिवाससे हृदयाभ्यां नमः । ॐ नीलकण्ठाय स्वाहा, कण्ठेमस्तके च । करन्यास । ॐ हरहर स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः । ॐ कर्पदिने स्वाहा मध्य-माभ्यां नमः । ॐ नीलकण्ठायस्वाहा अनामिकाभ्यां नमः । ॐ कालकूटविषभक्षणाय हुँफट् कनिष्टिकाभ्यां नम; । ॐ कृत्तिवाससेअ गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नीलकण्ठायस्वाहा करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः । इस प्रकार हृदयादिन्यास, अङ्गन्यास, करन्यास करके इस मन्त्र को जपें सिद्धकर प्रयोग करें ॐ नमो भगवते नीलकण्ठायचिः । अमलकण्ठायचिः । सर्वज्ञकण्ठा-यचिः । क्षिपक्षिप ॐ स्वाहा । अमल नीलकण्ठाय नैकसर्पविषापहाय नमस्ते रुद्र मन्वये । *

प्रयोग विधि :—शूलमुद्रा (कनिष्टिका को अनामिका से जोड़ लें तब अनामिका, मध्यमा और तर्जनी को फैलायें, यही शूलमुद्रा है । शूलमुद्रा बनाकर **विष का बायें हाथ से** नाश करें । अन्य कार्य हो तो दक्षिण हाथ का प्रयोग करें । मन्त्र पढ़ते जावें, नीम की टहनी से बायें हाथ से शूलमुद्रा से विष को ऊपर से नीचे की ओर झाड़ा देकर नष्ट करें । इसी मंत्र या उपर्युक्त किसी भी सिद्ध मन्त्र को दष्ट रोगी के कान में जपें अथवा मन्त्रोच्चारण करते हुए शूल-मुद्रा से बाम हस्त से जूते से रोगी के ऊपर से नीचे झाड़कर भूमि को पीटें तो विष नष्ट हो जाता है । दंशक सर्प के डसलेने पर जलते काष्ठ, तप्तशिला, अग्निज्वाला अथवा गरम कमल आदि के द्वारा दंश स्थान को जलादे, सेंक दे, तो विषोपशमन होता है । इसी मन्त्र या अथर्वमन्त्रों से अभिमन्त्रित कर (शिरस के फूल और बीज तथा आक के बीज और दूध एवं सोठ, मिर्च, पिप्पल) इन सभी का पान, लेप,अञ्जन कराने से विष नष्ट हो जाता है । शिरस के फूलों के रस में भावितश्वेतमिर्चों का पान, नस्य और अञ्जन से भी विष स्थावर-जङ्गम दोनों ही नष्ट होते हैं । कड़वी तोरई,बच, हींग, शिरस के बीज, फूल, आक के बीज और दूध, सोंठ, मिर्च, पीपल तथा मैष सक्रांति के आम का बौर (फूल) कूटकर कपड़ छन कर रखलें, उनके नस्य दिये स्थान पर जंगमविष नष्ट होते हैं । अंकोल और कड़वी तुम्बी के फल, फूल, बीज, जड़, पत्र के चूर्ण का नस्य विष नष्ट करता है । इन्द्रायण, चीता गूमा, तुलसी, धत्तूरा और सहजना के रसों से भावित सोंठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण खाने से विष नष्ट हो जाता है । कृष्णपक्ष की पञ्चमी को लाया हुआ शिरस के फूल, बीज, कोपल, कच्चे फल, जड़ की छाल का चूर्ण विषनाश करता है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अथ सर्पविषहारिणी, शत्रुसंहारिणी त्वरिताविद्या"

प्रयोग विधि :— सभी प्रकार के विषों, विषैले फोड़ों के विष उतारनेवाले ऊपर से नीचे की ओर ही, नीम की टहनि से, वाम हस्त से, कनिष्ठिका अंगुली को अनामिका पर चढ़ाकर, इसी रूप से अनामिका, मध्यमा और तर्जनी को फैलाते हुए, नीम की टहनी को अंगुष्ठ से भलीभांति दवाते हुए, दक्षिणाभिमुख होकर झाड़ें। झांड़ा ऊपर से देकर टहनी को क्रोध के साथ नीचे शिला पर पछाड़ें तब पुनः ऊपर ले जावें। जैसे-जैसे विष नीचे उतरे ऊपर से धागे से बंद लगाते चलें। जब दष्ट स्थान पर आ जावे तब नीम की टहनी गर्म कर दष्ट स्थान को तपायें, जलायें; नीम के पत्ते खिलायें, जब पत्ते कटु लगनेलगे तब लशुन, अंकोल, हर्र, बहेड़ा, आंवला, कूठ, वच, सौंठ, मिर्च काली, पीपल सभी सम भाग लें चूर्ण कर १ तोला मात्रा घी के साथ पिलायें। अपामार्ग या कृष्णा तुलसी की जड़ घिस २ कर बार-बार लकड़ी से लगावें, जैसे ही नीला पड़ जावे हटा दें, दूसरा लेप चढ़ायें, गौ का घृत गोबर के रस में मिलाकर पिलाने से जीवन रक्षा होती है। ये पृथक् मन्त्र सिद्धकर प्रयोग करें :—

(१) त्र्यक्षरी त्वरिता विद्या "ॐ खे च चछे" यह काल या भयङ्कर काले सर्प के विष और शत्रु का संहार करती है।

(२) द्व्यक्षरी मन्त्र :—'ॐ खे च' काल सर्प के डसे को जीवन प्रदान कर, शत्रु संहार करती है। पाप-जनित विषैले दुष्ट गण्ड, दुष्ट गण्डमाला, कण्ठमाला, अदृष्ट उलटे मुंह के व्रण, डमरू, जलोदरादि दुष्ट उत्पात, चोरों, वधिकों, आततायियों, अग्नि देनेवालो तथा नाखूनवाले, दांतवाले, दुष्ट जीवों के भय, बाधा और विषों का संहारकारक है। त्वरिता बिद्या :—"ॐ **हूं खे क्षः**" (बिषहारी नीलकण्ठ मन्त्र)

(३) ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय। (४) चतुर्थ विषहारी तार्क्ष (गरुड़) मन्त्र :—

"ॐ संप्लवं प्लावय प्लावय, ॐ हूं लं रं वं यं" इसे जपने हुये साधक अपने को गरुड़ स्वरूप में समझे ऐसे ही प्रयोग करते समय समझे, इसका साधक * उपर्युक्त भांति ऊँगलियों की मुद्रा के साथ प्रयोग कर्त्ता अपना हाथ ऊपर करके क्रोधमुद्रा में ऊँगलियों को चलाये तो चालन मात्र से बिष जहां का तहां रुक जाता है, आगे नहीं बढ़ता, परन्तु दृष्टि दष्ट विष स्थान पर ही रहे, इसी से अभिमन्त्रित जल के छींटे मात्र से रोगी से डंडा पकड़वा सकता है। उच्चारित ध्वनि के सुनते ही विष दग्ध हो जाता है। साधक को जो भी दूत या दूराभाष यन्त्र से सर्प के काटने की सूचना दे तुरन्त उसी को उसी उपर्युक्त मुद्रा में ताड़ित करे, या मिट्टी के ढेले को ताड़ित करे तो विष अन्यत्र चला जाता है।

अथ श्री महामृत्यु लाङ्गल स्तोत्र, मन्त्रश्च :—

विधि :— अपनी मृत्यु का निश्चित समय जानने के लिये निम्न मन्त्र और स्तोत्र को गुरुमुख से, उनके अभाव में भगवान श्रीमृत्युञ्जय को ही गुरु मानकर दीक्षाले, ग्रहण, महारात्रि आदि पर्वों में पीपल मूल में जपकर सिद्ध करें, तदनन्तर प्रतिदिन प्रातः स्तोत्र पाठ व मन्त्र जपें, रात्रि में ५बार मन्त्र जाप सोते समय करें। प्रतिदिन ११नियमित पाठ और ५माला जप के फलस्वरूप मृत्यु का ज्ञान ६मास पूर्व हो जायेगा। मन्त्र जपते समय यदि जिह्वा "ऋतं" शब्द पर अटक जावे, उच्चारण न हो तो समझें ६ मास के अन्तर्गत महायात्रा होगी। यदि जिह्वा "सत्यं" पर अटके, बोल न पाये तो ५ मास, यदि जिह्वा "परं ब्रह्म" न बोल सके तो ४ मास, यदि "पुरुषं" को न बोल पाये तो २मास, "ऊर्ध्व-लिङ्ग" न बोल पाये, तो १ मास, "विरूपाक्षं" न बोल पाये तो १५ दिन, "विश्वरूप" न बोल पाये तो ३ दिन, और 'नमोनमः' न बोल पाने से उसी दिन मृत्यु समझे। इसका ज्ञान होते ही एकांत, शांत स्थान में मन, इन्द्रियों को समाहित कर पद्मासन से अपान और प्राण को ब्रह्मरन्ध्र में ले जा कर समाधिस्थ जप करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र :— '**ॐ ऋतं सत्यं परब्रह्म पुरुषं कृष्ण पिङ्गलम् । ऊर्ध्वलिङ्गम्, विरूपाक्षं, विश्वरूपाय नमोनमः ।।**'

अस्य श्रीमृत्यु लाङ्गूल मन्त्रस्य, अनुष्टुप्छन्दः, ॐकारमग्नि रुद्रो देवता, वशिष्ट ऋषिः,यमो देवता, मृत्यु उपस्थाने विनियोगः । **स्तोत्र :—अथातो योग जिह्वा मधुमति वाजिन्यामेवाहं कालपुरुषमूर्ध्वलिङ्गम् विरूपाक्षं विश्वरूपाय नमोनमः । वर वृषभाय फेनक पिलरूपाय नमोनमः । पशुपतये नमोनमः ।** ॐ **क्रां क्रीं स्वः । फल य इदं मृत्यु लाङ्गलं त्रिसन्ध्यं कीर्तयति स ब्रह्महत्यां विपोहति । स्वर्णस्तेयोऽस्तेयिर्भवति । गुरुदाराभिगम्यो अगमीर्भवति, सर्वेभ्यः पातकेभ्यः उपपातकेभ्यश्च सद्यो विमुक्तो भवति सकृज्जपितेन मन्त्रेणानेन गायत्र्यास्त्वष्टसहस्राणि भवन्ति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मरुद्रलोकमवाप्नोति । यः कश्चिन्न ददाति स श्वेत कुष्टी, कुनखी भवति । यः कश्चिद्दीयमानं न गृह्णाति सोऽन्धो वधिरो भवति । मृत्यावुपस्थिते षण्मासादर्वाक् मन्त्रोऽयं विस्फुरति । अस्य मृत्यु लाङ्गूलाख्य महामन्त्रस्य सकृज्जपेन भगवान धर्मराजो मे प्रीयताम् ।**

ऋतं नष्टं यदाकाले षण्मासेन मरिष्यति । "सत्यं" तु पञ्चमे मासे, "परंब्रह्म" चतुर्थके, "पुरुषं" तु तृतीये वै, द्वितीये "कृष्णपिङ्गलम्", "ऊर्ध्वलिङ्गम्" तु मासेन, "विरूपाक्षं" तदर्धके "विश्वरूपं" तृतीयेऽह्नि, सद्यश्चैव "नमोनमः" ।।

।। इति श्री महामृत्यु लाङ्गूल स्तोत्रम् ।।

सर्पविष चिकित्सा :—(१) सर्पविष उतारते समय, ज्ञानीजन अपने दोनों हाथों में पीपल की हरी हरी २ टहनियाँ, आगे ऊपर की शुङ्ग (बिना खिली) कोपलों की लें और कानों के दोनों ओर छिद्रों के पास लगाकर "ब्राह्मणों यज्ञे" इस सूक्त क. ४।६ या सभी को पढ़े, कानों में से झाग के रूप में विष निकलेगा। परन्तु टहनियाँ कड़ाई से थामे रहें, विष उन्हें अपनी ओर कान में भीतर न खींच ले । लगातार ऐसे सभी मन्त्रों से झारें ।

(२) कैंचुआ (गिडोये) भादों में पृथ्वी पर सर्प की भांति रेंगनेवालों को सूखों को पीसकर पिलादें तो उलटी होगी । मन्त्रों के साथ ही करें ।

अथ सर्पभय निवारण मन्त्रम् :—

असितं चार्तिमन्तं च, सुनीथं वापि यः स्मरेत् । दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्य सर्पभयं भवेत् ।।१।।
यो जरत्कारुणा जातो, जरत्कारौ महायशाः । अस्तीकः सर्प सत्रे वः पन्नगान्योऽभ्यरक्षत ।।
तं स्मरन्तं महाभागा न मांहिंसितुमर्हथः ।।२।।
सर्पाऽपसर्प भद्रं ते गच्छ सर्प महाविष । जनमेजयस्य यज्ञान्ते अस्तीक वचनं स्मर ।।३।।
आस्तीकस्य वचः श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते । शतधाभिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्ष फलं यथा ।।४।।

इसे पढ़कर तीर्थरज से वन्ध लगायें, काले धागे से या यज्ञोपवीत से वन्द लगाकर, नीम से ऊपर से नीचे को झाड़ा दे । अपामार्ग (औंगा) या तुलसीदल पीस कर काटे पर लेप करें, अपामार्ग १ तोला मात्र में खिलायें । २-३ बार पीली सरसों खिलायें सर्प जहां दिखाई पड़े, पीली सरसों व अपामार्ग के वीजों की वुरकी दें (छिड़क दें) ।

अथ गत, नष्ट जीव (धनादि) प्राप्ति मन्त्र :—

जो स्त्री या पुरुष या पशु भाग जावे, चोरी हो जावे, या नष्ट हो जावे, उसके ज्ञान और वापिसी के लिये, मन्त्र महोदधि में निदिष्ट पश्चिमाऽभिमुख विषम सख्या की लालवत्तियों, तिल तैल युक्त गणपति पूजन के साथ दीप स्थापित करें । दीपक पात्र में और नीचे भी यन्त्र षटकोण बना, बीच में ह्रीं लिखें बनालें, लालचन्दन की स्याही, अनार की लेखनी से लिखें । भगोड़े (स्त्री-पुरुष) के कपड़े पर भी सिन्दूर मिश्रित घी से अनार की कलम से निम्न मन्त्र लिख कर चर्खे पर लपेट कर, चर्खे को उलटा घुमावें, मन्त्र का जप साथ में करें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आसन व चर्खा फिराने का समय एकही रक्खें, यदि लगातार न चला सकें तो प्रातः सायं तथा विशेषकर महा निशा में अनिवार्य रूप से चलायें। २१ दिन में ही यदि मरा न होगा, या कारागार में न होगा, तो वापस आ जायेगा। उपरोक्त दोनों में कोई बात होगी तो स्वप्न में पूर्ण ज्ञान हो जायेगा। पशु हुआ तो उसके रोकनेवालों मे द्वेष, बीमारी होनी प्रारम्भ होगी। यह द्रव्यादि है तो चुरानेवाले बीमार, कारागार, राजभय से विभीत होंगे। यह मेरुतन्त्र में भी वर्णित है। अनुभूत भी है। **मंत्र :—**

ॐ क्लीं कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहु सहस्रवान्। यस्य स्मरणमात्रेण गतं, नष्टं चलाभ्यते क्लीं ॐ॥

गतं–नष्ट में जो हो उसी का प्रयोग करें, उसके आगे नाम जोड़ दें। कार्य सिद्ध होने पर देवता के निमित्त शुद्ध घृत १। किलो मय पात्र व वस्त्र दान करदें। धूप, दीप गन्ध, माला आदि की अर्चना के साथ जपें।

अन्य मन्त्र (सिद्ध शिव-मन्त्र)—

ॐ नगरं नगरंमिवैनञ्च्छ्रुत्वा, ये पन्नगाः अधमाः। तत्र स्थास्यन्ति ते वध्याः; भविष्यन्ति यथा सुतः॥

स्त्री स्तन तन्त्र :—

(गर्भ दोष का शेष)

(१) **प्रायः वन्ध्या स्त्री के स्तन ढीले :—**(लटके) हो गये हों, तो वह अपने ऋतु का रक्त, ऋतु दिनों में स्तनों से मल दे तो स्तन छोटे तथा कठोर हो जाते हैं।

(२) **शिर पीड़ा तन्त्र :**—कनपटियों से लेकर माथे तक 'दालचीनी' के तेल की मालिश करें।

(३) **चैतन्य बुद्धि :**—शंखपुष्पी मुंह में रखकर चबाते रहें। अपामार्ग की दातुन करें।

(४) **नाक से रक्त बहे :**—तो कागज में नौसादर रखकर सूंघें अथवा ऊँट के बालों की सुंघनी बना धूप में सूंघें।

(५) **बिच्छू निवारण :—**एक बिच्छू मारकर घर में धूनी दे तो सभी बिच्छू वहाँ से दूर भाग जाते हैं।

(६) **वन्ध्या दोष निवारण :–**पुष्य नक्षत्र में रविवार को असगन्ध लेलें, उसको भैंस के दूध में सात दिन सेवन करें। अथवा प्रथम ऋतुमती कन्या के वस्त्र को जलाकर गुड़ के साथ खायें।

(७) **प्रसव दुःख निवारण :**—यदि प्रसवकाल में अधिक और लगातार कई दिन तक कष्ट हो तो उसका पति अपनी पगड़ी में कङ्करी बाँधकर स्त्री के बाँध दे, बच्चा तुरन्त हो जाता है।

(८) **मकड़ी विष निवारण :**—नागकेशर, मजीठ, दारुहल्दी और खाने की हल्दी मिलाकर लेप करे।

(९) **पागल कुत्ता विष निवारण :**—आटा, दूध, गुड़, तेल समभाग मिलाकर लेप करे। अथवा औंगा की जड़ पीस कर शहद मिला चटावें, अथवा मुर्गा की बीट का लेप करें।

(ख) साठी चावलों का आटा या कुम्भकार के वर्तन बनाते समय हाथ धोनेवाले पात्र की मिट्टी, रोगी से मंगवाकर ७ गोलियां उसीसे बनवायें (ॐ गाधारी स्वाहा) जपता हुआ क्रमशः एक के बाद एक गोली काटे पर मलवाते जावें तो गोलियों में कुत्ते के रंग के ही बाल निकलेंगे, जब बाल निकलना बन्द हो जावे तो समझें पागल का विष नष्ट हो गया।

(१०) **मेंढक विष निवारण :–**सोंठ, मिर्च पीपल और चौलाई समभाग ले पीस कर लेप करें।

(११) **मूषक विष निवारण :**—सरसों, नागकेशर, मट्ठा और घी समभाग लेकर पिलायें।

(१२) **बिच्छू विष निवारण :**—मुर्गा, मोर, और कबूतर की बीट, हींग, आक की जड़ें पीसकर एकत्रित कर बिच्छू के काटे पर धूप दें।

(१३) **जलती अग्नि पर चलें :—**केला की कन्द (जड़), भांगरा और मेंढक की चर्बी को एक पात्र में बन्द कर, पकाकर, पैरों में लेप कर, सुखाकर अग्नि पर चलें तो जले नहीं।

(१४) **सर्पभय निवारण :—**श्वेत रक्तगुञ्जाफल, चमेली की जड़, श्वेत आककी जड़, मूली, गुड़वच, दुधवच,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कटेहरी, पीसकर हाथपैरादि में लेपकर, पुराने दबे खजानों के स्थान में प्रवेश करें तो सर्प विच्छू आदि विषैले जन्तु का भय नहीं होता है। (ख) घर में सर्प रहता हो तो सिंह की सूखी चरबी और प्याज मिलाकर रख दें तो नहीं रहता।

(१५) पशु आदि के जूँ निवारण :—काले धतूरे के रस में वस्त्र भिगोकर जूँ के स्थान में धारण करने से जूं नष्ट हो जाते हैं। (१६) नीम की कटुता निवारण :–प्रथम आजवाइन चबालें, पीछे नीम चवायें तो कड़ुवापन नष्ट हो जाता है। (१७) कृषि विघ्न निवारण :—रविवार के दिन (यदि पुष्य नक्षत्र भी सौभाग्य से हो) अथवा न भी हो तो कच्चे मिट्टी के वर्तन में अश्वगन्ध, बंगलापान, वन तथा कृष्णा श्वेत तीनों तुलसीपत्र, घी, गुड़, मट्ठा भरकर बन्द कर अभिमन्त्रित कर लाल वस्त्र में लपेट कर खेत की दक्षिण कोण में गहरा गाड़ दें, तो चोर, खरगोश, हिरण, टिड्डी, चैंपा, से हानि नहीं होगी।

(१८) मूषक निवारण :—घर या खेत में मूषक हों–तो ऊँट (नर) के दायें पैर के बाल लेकर धूनी दें। अथवा समुद्रखार की गोली बनाकर उस स्थान में डालें अथवा एक चूहे को पकड़ कर लाल गहरा, आधा भाग नीलारग कर छोड़ दें। (१९) धानवृद्धि :—दीपमालिका की रात्रि में श्वेत चिरमिटी (गुञ्जा) की जड़ पूजाकर खोदकर ले आवें दूध में धोकर ताम्रपात्र में रखकर धूप देकर, खड़ी फसल में, भण्डार में गाड़ दें या रखकर नित्य उसे धूप देते रहें।

॥ इति सर्पविष परिहार ॥

कां० ४।२ के मत से १ पलाश, २ उदुम्बुर. ३ जम्बू. ४ काम्पील, ५ स्रक् ६ वङ्घः, ७ षिरीषः, ८ स्रक्तयः, ९ वरणः, १० विल्वः, ११ जङ्गिणमणि १२ कुटकः, १३ गृह्यः, १४ गलावलः १५ वेतसः, १६ शिम्बलः, १७ सिपुनः १८ स्यन्दनः १९ अरणिका २० अश्मयोक्तः, २१ तुन्यु २२ पूतदारु इन शान्त वृक्षों में से किन्हीं भी १० को छालें या टुकड़ों से बनी शाकलमणि इन्हीं की लाक्ष्या तथा जल में स्वर्ण को डालकर गर्म कर (क्वाथ वनायें) वैतानसूत्र ५।२ "सौत्रामणियागे अनेन" या बभ्रवो ८।७ सूक्तेन औषधिभिः संधीयमानां सुराम् अनुमन्त्रयेत तद् उक्तं वैताने। "रसप्राशन्या" (५।२,३) या वभ्रवः इत्योषधीभिः सुरां सधीयमानाम् इति वै० ५।३ यक्ष्मा आदि समस्त व्याधियों की भेषज इस "अर्थ सूक्त से करें। यह जलोदरादि सभी की चिकित्सा मे लाभप्रद है।

कां. ८ सू. ७ ऋ०१-२८ अथर्वा ऋषिः। भैषज्ये, आयुष्यं, ओषधय, देवते। अनुष्टुप्, २ उपदिष्टाद्भुरिग्वृहती, ३ पुर उष्णिक्, ४ पञ्चपदा भुरिगनुष्टुप् १२ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी, १४ उपरिष्टान्निचृद्वृहती छन्दासि। यक्ष्मादि सर्व रोग निवारण भैषज्ये. होमे. अनुमन्त्रणे. रसायनसिद्धये च विनियोगः।

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः। असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥१

त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद्देवेषितादधि।

यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥२

आपो अग्रं दिव्या ओषधयः। तास्ते यक्ष्ममेनस्यं१मङ्गादङ्गादनीनशन् ॥३

प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि।

अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥४

यद्वः सहः सहमाना वीर्यं१ यच्च वो बलम्।

तेनेममस्माद्यक्ष्मात्पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६
इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम । यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥७
अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः । ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥८
अवकोल्वा उदकात्मान ओषधयः । व्यृऽषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यऽः ॥९
उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः ।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥१०
अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः । त्रायन्तामस्मिन्ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥११
मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव ।
मधुमत्पर्णं मधुमत्पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुहतां गोपुरोगवम् ॥१२
यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः । ता मा सहस्रपर्ण्योऽमृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३
वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः । अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥१४
सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्याऽएतु स्रोत्याः ॥१५
मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि । भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥१६
या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च । ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥१७
याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा । अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् ॥१८
सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम । यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥१९
अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः । व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥२०
उज्जिहाध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः । यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥२१
तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि । अथो कृणोमि भेषजं यथासंच्छतहायनः ॥२२
वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् । सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२३
याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः । वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥२५
यावतीषु मनुष्याः भेषजं भिषजो विदुः । तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥२६
पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत । संमातर इव दुहामस्मा अरिष्टतातये ॥२७
उत् त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत । अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्विषात् ॥२८

ऋ० मं० १० अ० ८ सू० ९७ भिषगाथर्वणः ऋषिः । ओषधिस्तुतिर्देवता विराट् छन्दः । भैषज्य अनुमन्त्रणे ओषधि-उत्पाटने, मणि, सुरा, सन्धीयमाने; रसायन संसाधने विनियोगः ।

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥१
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२
ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥३
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे । सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥५
यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः ॥६
अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८
इष्कृतिर्नाम वो माताऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः । सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत् किं च तन्वो रपः ॥१०
यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११
यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२
साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना । साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३
अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत । ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥१४
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥१६
अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥१८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या ओष॑धीः सोम॑राज्ञीर्विष्ठि॑ताः पृथि॒वीमनु॑ । बृह॒स्पति॑प्रसूता अ॒स्यै सं द॑त्त वी॒र्य॑म् ॥१९
मा वो॑ रिषत् खनि॒ता यस्मै॑ चा॒हं खना॑मि वः । द्विपच्चतु॑ष्पद॒स्माकं॒ सर्व॑मस्त्वनातुरम् ॥२०
याश्चे॒दमु॑पशृ॒ण्वन्ति॒ याश्च॑ दू॒रं परा॑गताः । सर्वाः॑ सं॒गत्य॑ वीरुधो॒ ऽस्यै सं द॑त्त वी॒र्य॑म् ॥२१
ओष॑धयः॒ सं व॑दन्ते॒ सोमे॑न स॒ह राज्ञा॑ । यस्मै॑ कृ॒णोति॑ ब्राह्म॒णस्तं रा॑जन् पारयामसि ॥२२
त्वमु॑त्त॒मास्यो॑षधे॒ तव॑ वृ॒क्षा उप॑स्तयः । उप॑स्तिरस्तु॒ सो॒३॒ऽस्माकं॒ यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॑ति ॥२३

अथर्ववेद वेदत्रयी का मूर्धन्य· लौकिक पारलौकिक जीवजगत को जीवनाधार· निश्चित अभ्युदयकर्त्ता है। इसके द्रष्टा महर्षि अथर्व जी ने स्थूल जगत के स्थूल जीवों के नीरोगता, पूर्ण स्वस्थता, दीर्घायु और आध्यात्मिक अभ्युदय के लिये, विविध दिव्य औषधियों को अपने तपोबल से प्रत्यक्ष रूप में आवाहन कर, उनमें दिव्य शक्ति संस्थापित करते हुए उनको जीवकल्याण करने का निदेश किया है। वह इस सूक्त में निहित है। इसकी परिपुष्टता में वेदत्रयी में ऋग्वेद मण्डल १० अ. ८ सूक्त ९७ मी है। इसके सूक्त के भी द्रष्टा ऋषि अथर्वा ही हैं। यह वेद "अपौरुषेय" होने से इस अथर्व वेद की "चारणवेद्या" अथवा "चरणव्यूह" शाखा अर्थात् 'आयुर्वेद' अनादि अपौरुषेय और उसमें निर्दिष्ट समस्त औषधि मात्र 'अपौरुषेय' अप्रमेय दैवीबल, ऋषिवल, तपोबल, सम्पन्न ही हैं। उनको विधिवत पूजा और प्रार्थना करके लाना, उनको मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर लेना, उनसे निर्मित 'सुरा' अर्थात् आशव, रसादि, मणि, गोली आदि का विधिवत जप, उपस्थानों के साथ सिद्ध कर निष्ठा और विश्वास (भिषज और रुग्ण दोनों का) के साथ प्रयोग निर्विवाद 'चमत्कारिक' रूप से लाभप्रद होता है। यह हमारी "राष्ट्रीय भूमि" कितनी दिव्य, दैवीशक्ति सम्पन्न, ब्रह्मज्ञों और 'ब्रह्म' की क्रीडा-स्थली सनातन से ही है। इसकी महत्ता वेदोक्त ग्रथ में दी जा चुकी है। उस दैवी धरती पर हम राष्ट्रवासियों को गर्व होना अस्वाभाविक नहीं है। अपितु 'उस वेदभूमि' की महत्ता को भुला देना और अज्ञान, मद, मोह, कामनापूर्ण रजन्तम प्रधान लोकों, राष्ट्रों और उन भूमियों की विलासिता की ओर आकर्षित होना, आश्चर्य, घोर दुःख और अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना,संकरजातित्व का परिचायक ही है। भाव निम्न प्रकार है। देवर्षि अथर्वाजी का ब्रह्मउद्घोष हे औषधियो! तुममें (१) जो भी औषधियां पोषण करनेवाली, जो बल-वीर्य वर्द्धिनी, जो रक्त, मांस वर्द्धिनी; जो विविध रङ्ग, रूप, आकारोंवाली; श्याम एवं काली हैं उन सभी को सादर हम आवाहन करते हैं। (२) जिन औषधियों का पिता द्यौलोक हैं; जिनकी माता यह हमारी 'राष्ट्रीयदेवी' तपोपुञ्ज भारतभूमि है और जिनका मूल समुद्र है। उन समस्त औषधियों से; इस मनुष्य की; जो (देव इषितात राजयक्ष्मात्) जो पापमूल दैव से प्रेरित महा असाध्य राजयक्ष्मादि, रस, रक्त, बल, वीर्य शोषक घन, प्राण ग्राहिणी व्याधियों से रक्षा करें। (३) दिव्य जल–जिनका उल्लेख क्रमशः अ. १, २ व ३ में पूर्णतया हो चुका है, मुख्य हैं; और ये सभी औषधियां भी जो ग्रन्थ के अ० १ से लगातार पृथक् पृथक् प्रकरणों में वर्णित हैं; और भी जो वर्णित नहीं हो सकीं वे सभी दिव्य हैं। हे मानव ! वे सभी तेरे पापों से उत्पन्न सभी असाध्य महाव्याधियों को अङ्ग प्रत्येक अङ्ग से पूर्णतया नष्ट करने में समर्थ अप्रमेय बलशालिनी हैं।

(४) अनेकों औषधियाँ बहुत फैलती हैं; अनेकों गुच्छोंवाली होती हैं, बहुतसी केवल कोपलोंवाली ही होती हैं, अनेकों वृहत् विस्तारवाली होती है। उन सभी का मैं (देवर्षि अथर्वाजी) आवाहन करता हूँ। प्रकाशवाली (चमकनेवाली) परुओं (गांठों) वाली, अनेकों विना शाखाओंवाली, सभी को मैं (देवर्षि) तेरे (मानव कल्याण के) लिये आमन्त्रित करता हूँ। ये औषधियाँ विशेष उत्कृष्ट दैवी शक्ति सम्पन्न, सर्वोत्कृष्ट प्रभाववाली और मनुष्य को संजीवन प्रदायिनी हैं।

(५) हे रोग विनाशक औषधियों ! जो तुम्हारा अप्रमेय सामर्थ्य है, और जो वीर्य और बल है, उससे इस रुग्ण पुरुष की; उस रोग से रक्षा करो, और भी मैं मान्त्रिकी "भैषज" करता हूं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(६) आयु प्रदायिनी, हानी न करनेवाली, दीर्घजीवन प्रदायिनी, न्यूनता न करनेवाली, शरीर व्यापार में रुकावट न करनेवाली, शरीर को सुव्यवस्थित रूप से बढ़ानेवाली, मधुर परिपाकवाली, फूलोवाली, सभी औषधियों को इस (रुग्ण) मनुष्य की निरोगता के लिये आमन्त्रित करता हूँ।

(७) मेरे अपने ब्रह्मवर्च की दैवी सामर्थ्य से, सभी बल वीर्य पुष्टिकारिणी औषधियाँ यहाँ पधारें। जिनके दैवी अतुल सामर्थ्य से, इस (रुग्ण) पुरुष को, पापों के फलरूप दुःख रूपी भोगों (रोगों) से पार कर सकें।

(८) जो औषधियाँ अग्नि का भोज्यपदार्थ हैं, जो जल को धारण करती है (जलों का गर्भरूप हैं) और पुनः पुनः नवीन जैंसी बढ़ती रहती हैं, वे हजारों ही नामों वाली, विधिवत पूजा और प्रार्थनाओं के साथ दिव्य लोकों से) लाई गई औषधियाँ यहां (दिव्य तपोभूभि भारत में) स्थिर हों।

(९) शैवाल में उत्पन्न होनेवाली, जल ही जिनकी आत्मा है, ऐसी तीक्ष्ण शृङ्गों वाली सभी औषधियाँ ! पापों के भोग रूप दुःखों को दूर करें। (१०) रोगों से मुक्त निरोग करने वाली, तीव्र गुणों वाली, शरीर से विषों को दूर करनेवाली, वात, कफ, पित्त दोष दूर करनेवाली, (घात पात जन्य पाप, शाप, अभिचार जनित रोगों को हटानेवाली जो सभी औषधियाँ हैं. वे इस पावन भूमि में पधारें।

(११) प्रार्थना, पूजाओं से लाई हुई, या क्रय की हुई, जो प्रकृष्ट सामर्थ्यवाली औषधियाँ हैं वे. इस ग्राम, नगर, प्रदेश के गौ, अश्व, पुरुष और पशु सभी की ही रोगों से रक्षा करें।

(१२) इन औषधियो का मूल, मध्य, अग्रभाग तथा इनके पत्ते और फूल मीठे हैं, वे सभी औषधियाँ मधुर (सोमरस अमृत) से भरपूर सींची हुई हैं. मानो अमृत का ही भोजन हैं। ये औषधियाँ गौ आदि सभी प्राणियों के लिये विपुल घृत आदि प्रदायिनी हों। (१३) इस पुण्य वसुन्धरा पर, जितनी कितनी भी ये औषधियाँ हैं. वे सहस्रों पत्तोंवाली, सभी औषधियाँ मुझ (रुग्ण पुरुष) को मेरे पाप मूल दुःखरूप भोग. मृत्युओं से मेरी रक्षा करें (यह प्रार्थना करें)।

(१४) औषधियों से बनी व्याघ्र जैसी उग्रप्रतापवाली मणियाँ (जिनका ग्रन्थ में विविध स्थानों में उल्लेख है) महा विनाश से बचाने और रक्षा करने में समर्थ हैं। वे समस्त रोग मूल पापों, राक्षसों, घातपातों से जन्य, व्याधियों को हमसे दूर ले जाकर नष्ट ही कर दें। (१५) जैसे गर्जनशील व्याध्र और भस्म कर देने वाले अग्नि से लोग घबराते हैं उसी भांति प्रार्थना और पूजा से लाई गई औषधियों से भी रोग त्रस्त हो जाता है। इस भाँति की औषधियों से भगाये गये; गौओं और पुरुषों के रोग समुदाय, नौकाओं से जाने योग्य महानद नदियों से दूर चला जावे।

(१६) बनस्पतियों का राजा सोम है, वे सभी औषधियाँ रोगों से छुड़ाती हुई वैश्वानर (अग्नि,शीत,ब्रह्मतेज) के ऊपर स्थित (अर्थात् दैवीवल सम्पन्न) भूमि पर इधर-उधर सर्वत्र हीं फैल-फूट जावें। (१७) जो अङ्गों को जीवनप्रद रस देनेवाली (उग्र) औषधियां पहाड़ और समभूमि पर फैलती-फूलती हैं। वे कल्याण कारिणी. रसवाली औषधियाँ हमारे हृदयों को [मानसिक] शान्ति प्रदायिनी है।

(१८) ऋषिघोष --मैं जिन औषधियों को जानता हूँ, और जिनको मैं नेत्रों से देखता भी हूँ, और भी जो विना जानी. विना देखी हुई हैं. अव हम उन सबको (ब्रह्मवल से) जानते हैं। जिनमें भरपूर वल वीर्य हैं. उन सबको भी हम जानते हैं। (१९) ऋषिघोष :—सब सम्पूर्ण औषधियां, मेरी दिव्य वाणी से उद्बोधित (जागरूक)हों, जिस रीतिसे भी सम्भव हो सके, इस रुग्ण पुरुष को पापमूल दुःख स्वरूप रोगों से मुक्त करें।

(२०) पीपल, कुशा, औषधियों का राजा सोम, अन्न और जल, चावल और जौ, अमरत्व प्रदायिनी औषधियां हैं। ये द्यौलोकस्थ पुत्रवत पालन करते हैं। (२१) जब मेघ गर्जता और घोषणा करता है, कि हे भूमि पर उत्पन्न होने वाली औषधियों ! ऊपर उठो। तब मेघ अपने जल से, तुम्हारी रक्षा करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२२) उसी अमृत का यह वल, इस रुग्ण पुरुष को पिलाते हैं, और उन दोनों से भेषज करते हैं, जिससे यह शतायुवाला हो सके।

(२३) सूअर जिन औषधियों को जानता है, जिनको नेवला भी जानता है, सर्प और गन्धर्व जिन औषधियों को जानते हैं। उन सभी को इस रोगी की प्राणरक्षा के लिये आमन्त्रित करते हैं।

(२४) गरुण जिन उग्र अङ्गरसवाली (आङ्गिरषी) औषधियों को जानते हैं, पक्षी और हंस जिन औषधियों को पहचानते हैं, चिड़ियांयें जिनको जानती हैं, जिनको सभी पक्षी पहचानते हैं, जिन औषधियों के बनों के (वन्य जीव) मृगादि भी जानते हैं, उन सभी को इस रुग्णपुरुष की प्राणरक्षा के लिये पवित्रता से आवाहित करते हैं।

(२५) जिन औषधियों की अवध्य गौयें सेवन करती हैं, जिनको भेड़, वकरी आदि पशु खाते हैं, उनकी लाई हुई सभी औषधियां, तेरे लिये कल्याण दायिनी हों।

(२६) चिकित्सक मनीषिगण, जितने रोगों पर, जितनी औषधियों के प्रयोग जानते हैं, उतनी सब समस्त रोग व्याधि मात्र की दिव्य (मात्र भेषज) तेरे पास सब ओर से लाता हूँ।

(२६) फूलोंवाली पत्तोंवाली, फलोंवाली और विना फलोंवाली औषधियां इस रुग्ण की सुख प्राप्ति और वृद्धि के लिये, उत्तम माता के तुल्य ही श्रेष्ठ रस प्रदान करें।

(२८)· पांच प्रकार और दस प्रकार के सभी दुखों, यम और दुर्गति के पाश वन्धन और देवों के पाशवन्धन रूप रोगों से, तथा विश्व के समस्त देवों के सम्बन्ध में किये गये अनेक प्रकार से, अनेक भांति के पापों से हे रोगी मनुष्य ! औषधियों और मन्त्रों की दिव्य भेषजों द्वारा ही हम तुझे मृत्यु से ऊपर उठाते हैं।

यही भाव ऋग्वेदोक्त सूक्तों के भी हैं (दुरितात्पारयामसि तीक्ष्णश्रृङ्‌ग्यः दुरितं व्यृषन्तु, सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः) मन्त्र ९ से १६, १७ पर्यन्त स्पष्टतया आर्थविणक उद्घोष का पूर्णतया अक्षरशः समथन कर रहे हैं। यह अप्रमेम, स्वतः प्रामाण्य अपौरुषेय, अलभ्य, ब्राह्मीवलपूर्ण औषधि और भेषज वीजमात्र से वेदत्रयी और उसके शीर्षण्य अथर्ववेद (ब्रह्मवेद) में प्रतिपादित, हम सभी के उन्नत मस्तक और गौरव की थाती है। इधर-उधर से मन समाहितकर, निष्ठा, विश्वास और गहनलगन से भावी राष्ट्र के नवोदित विद्याविदों, और धर्मपरायण राष्ट्रीयजनों को वेदों में निहित अगाध रत्नों के अन्वेषण में जुटजाने के उद्बोधन के लिये मात्र सङ्केत ही है।

कनकमणि धारण से लाभ (कनकमणि धतूरे का नाम है) :—

धत्तूरा : अथर्ववेद कां.८ सू.७ तथा ऋ. वे. मं. ८ सू. ९७ में वर्णित औषधि सूक्तों के सन्दर्भ में इसके पर्यायी (निघन्टु) धुस्तूर मदन, उन्मत्त, कितव, कनकाह्वय, शिवप्रिय, महामोही, देविका खरदूषण, धूर्त, मातुल, पुरीमोह, धूर्त्तक्रतु, धत्तूर, घण्टिका, शठ, मातुलक, श्याम शिवशेखर, खज्जूघ्न, काहलापुष्प, खल, कंण्ठफल, मोहन, कलम, मत्त, शैव, तूरी, धुतुर, धुस्तुर, उन्मत्तक, मदनक, हरवल्लभ, कण्टफल, कनक, सविष, मदकर, घण्ठापुष्प, महाशठ तथा स्वर्ण के जो भी नाम हैं, वे सभी इसके भी हैं। इसे गुजराती (धंत्तूरो) मराठी (धोत्रा, धोतरा) बंगाली(धुतुरा) कर्णाटकी (मदकुणिके) तैलङ्गी (उम्मेत्तचेटु) तामिली (कारुउमते, उमततांई) पाह्लली (सतुल्या, तातरईसफेदा) कहते हैं।

धत्तूरे का गुण :—मद-वर्ण, अग्नि और वात बढ़ानेवाला, ज्वर, कोढ़ नाशक, कषैला, मीठा, कडवा, जूयें और लीखों को मारनेवाला, गरम, भारी, व्रण, कफ, कण्डू, क्रमि और विषनाशक है। त्वचा के रोग, खर्जु, कण्डूनाशक, भ्रमदायक, दुष्ट रक्तनाशक, व्रणनाशक, पित्त दूर करनेवाला, (काले और सफेद) विषयुक्त, कडवे, उग्र. मोहकारक; कुष्ठ, दुष्ट व्रण, कामला, ववासीर नाशक, कान्तिकारक, गरम, चरपरा, अग्निदीपक, मधुर, वान्तिकारक, भारी, वर्णकर्त्ता, आम, पामा और त्वचारोग नाशक है। तथा मूर्च्छाकारक, अग्नि और पित्तनाशक भी है। यह कृष्ण, श्वेत, नीले, लाल और पीले फूलों के होते हैं। प्रायः सबके गुण सामान्य होते हैं। काले के गुण विशेष होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयोग :—(१) बढ़े हुय श्वांस रोगों के रोकने के लिये; इसके सूखे डण्डल, पत्तों का धुवां दें । (२) वातदर्द या चोट के दर्द में, इसके रस में गोघृत, सेंधानमक मिला दर्द की जगह पर लगावें । वातजनित शिरोरोग में धत्तूरे के वीज लाभकर है । इसके वीज मात्रा से अधिक खाने में मृत्युकारक भी है । धातु पुष्टिकारक बीज होते हैं । प्रमेहनाशक भी होते हैं । काले धतूरे के पञ्चाङ्ग की धूप से खांसी कैसी भी हो दूर होती है । इसके मद के दूर करने में इसी की मींग का नास लेते हैं । अथवा धतूरे के विष में, वीज पीसकर पिलावें । ऊपर ताजे गौ के दूध में घी मिलाकर पिलायें । **इसकी मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक ही है ।** इसे पुष्य नक्षत्र में पूजा और प्रार्थना कर सायंकाल में लाकर, धोकर, धूप देकर उपर्युक्त मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर सेवन करें तो यह अनेकों असाध्य व्यधियों का संहार करता है ।

पृथक् २ रोगों पर उपयोग :—कर्णरोग :-काले धतूरे का रस ३ छटांक, मीठा (तिल का) तेल १पाव में १० आक के पीले पत्ते डालें और रस जल जाने पर शेष तेल छानकर शीशी में रखलें। उसकी २।२ गर्म बून्दें नित्य डालें, तो कर्ण दर्द, वहिरापन, कम सुनाई देना, वहना, कान के कीड़ों को भी नष्ट करता है ।

दन्त रोग :— २ छ० पत्तों का रस, २ छ० सेंधानमक एक छोटे से मिट्टी के वर्तन में भरें, ऊपर मिट्टी के पात्र से ढकें, छेदों में भली प्रकार मुलतानी लगायें, ऊपर मुल्तानी मिट्टी का भीगा एक पतला कपड़ा लपेटें, सुखालें। सूखे पात्र को १० सेर उपलों की अग्नि के बीच रख दें । उसमें जो शेष रहे, उसका चूर्ण करलें । उसे मलें तो दर्द,मसूड़ों का फूलना, कीड़ा, दुर्गन्धि, मैल दूर होंगे । धत्तूरे के वीज पानी में पीस छोटी २ गोलियां वनालें, उसे दाँतों के बीच रखलें. तो भी दर्द दूर होता है ।

शिरो रोग :—काले धत्तूरे के वीज १ छ०, खुरासानी आजवाइन २॥ तोला, १ किलो जल में औटाये, जब ५ छ० पानी शेष रहे, उसे ठण्डा कर छानलें, बीज निकाल कर ऽ॥ सेर मुनक्का उसमें डालें, मन्द-मन्द आंच से जलायें, चलाते रहें । सारा पानी उन मुनक्को को पिलाकर सोख्ताकर रखलें । (१) प्रातः सायं १।१ मुनक्का सेवन करें । नया पुराना जुकाम, नजला से उत्पन्न शिर, नेत्र काल और गले की व्याधियां दूर करता है । इसकी अन्य विधि- (२) सफेद फिटकरी १ छ० के चूर्ण में उसमें १ पाव ऽ१। सेर आक का दूध (इस अनुपात से लें) धीरे २ डालें, घोटें. सुखायें, जब सारा दूध घुटते २ सूख जावे, तब १। किलो (अनुपात) से धत्तूरे के पत्तों का रस उपरोक्त रीति से घोटते, सुखाते हुए सारा सुखा दे । उसकी टिकिया बना कर मिट्टी के पात्र में रखकर ऊपर से पात्र ढ़क कर कपर मिट्टी कर सुखालें । उसे १० सेर उपलों की अग्नि के बीच रखकर पकायें । उसमें भीतर काली चीज निकले, तो दुबारा पकाये । सफेद हो तो उसे निकाल कर घोटकर रखलें । उसमें से १।१ रत्ती मात्रा मे हलुवा में खिलायें । पानी १ घंटे न पियें । इससे जुकाम नजला की जड़ नष्ट हो जाती है ।

बन्द जुकाम :—धत्तूरे के सूखे पत्ते २ तोला, उतनाही शोरा कलमी उतनी ही सौंफ चूर्ण कर रखलें । मिट्टी के पात्र में बिना धुए की अग्नि पर १ या २ चुटकी थोड़ा-थोड़ा डालें, पात्र का मुँह बन्द कर उसमें कोई नली लगा लें । उससे धीरे-धीरे धुआं को सूंघें, २।३ दिन ही करें । दो चुटकी से ज्यादा भी न लें ।

नेत्र रोग :—(१) दुखती नेत्र के विपरीत दशा वाले कान में धत्तूरे का रस गर्म कर डालें । (२) धत्तूरे के अर्क में रुई भिगो कर सुखाकर पुनः भिगोयें सुखायें, ४ भावना ऐसे ही कर, रुई की बत्ती बनालें । उसे अण्डी (ऐरण्ड) के तेल में डालकर काजल बनाले, उसमें फिटकरी का फूला सफेदा, भुना २रत्ती तूतिया, पीसकर मिलालें । १।१ सलाई दिन में २।४ बार नेत्रों में लगायें तो ढलका दूर होता है ।

बच्चों के दुखते नेत्र :—पत्तों का रस गाढ़ाकर नेत्रों के इधर-उधर ४।६ बार दिन में लेप करें ।

फोड़े :—धतूरे के पत्ते तेल से चुपड़ कर, गरम कर बांधें । **कछराली :—**वगल की गिल्टियां या प्लेग की गिल्टियां या मूत्र स्थान के रागों की इधर-उधर की गिल्टियों पर इसी उपरोक्त रीति से दिन में ४।६ बार बांधें ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्तन शोथ :—धतूरे के पत्ते चुपड़कर, तवे पर गमंकर, सुहाते-सुहाते स्तन पर बांध दें। **एड़ी का दर्द :**—उपर्युक्त भांति से ही रात्रि में पत्तों को गर्म कर बांधें।

सन्धिवात :—गठिया आदि के सभी दर्दों में १ सेर पत्तों के रस को ५ छ० मीठे तेल में डालकर शनैः २ रस जलालें, शेष तेल शीशी में भर लें। उसी तेल की रात्रि में मालिश करायें, हवा न लगने दें, ४।६ दिन करें।

मधुमेह :–६ माशा धतूरे के बीज, काली मिर्च, खरल कर, ज्वार जैसी गोली बनालें। सौंफ के अर्क में १।१ गोली ३ बार लें। **उपदंश :**—धतूरे की छाया में सुखाई जड़ का चूर्ण १ चावल मात्रा में पान के साथ दें १० दिन में समूल नष्ट हो जाता है। **गर्भरक्षा :**–गर्भ नष्ट होने से रक्षार्थ पुष्य नक्षत्र में धतूरे की जड़ लाकर "कां. २० सू.९६ से अभिमन्त्रित करस्त्री की कमर में बांधें।

गर्भ स्थापन :–काले धतूरे के बीज छाया में सुखालें। इनका चूर्ण १ रत्ती, मधु ६ माशा की मात्रा में रजोस्नान के बाद १२ दिन गर्भधारण से पूर्व चटायें। **स्तनों का दूध सूखना :**–स्त्री के शिशु मर जाने पर स्तनों का दूध सूखकर भयंकर रोग उसके लिये और आनेवाली सन्तति के लिये हो जाता है। स्तनों पर पत्ते धतूरे के गर्मकर बांध दें। **मुँह की झाँई या मुंहासा :**–छाईं या फुन्सी जब मुंह पर निकलें तो धतूरे के पत्ते गर्म कर २।४ दिन बांधें। **हाथ या पैरों में पसीना अधिक आना :**–काले धतूरे के बीजो का चूर्ण १ या २ रत्ती गर्म जल से १० दिन लें। **सभी प्रकार के प्रमेह :**–धतूरे के बीज, अफीम, जदवार और बिनौले की मींगी समभाग लें। ३।३ माशा सफेद जीरा, खुरासानी, अजवाइन और नागकेशर चूर्ण कर पानी के साथ गोली काली मिर्च के बराबर बनालें। सोते समय १ गोली दूध के साथ लें। यह नजला, जुकाम, श्वांस, खांसी को भी लाभप्रद है।

धत्तूरे का क्षार :—धतूरे की जड़, डंडी, पत्ते, फूल, फल सभी लेकर छाया में सुखालें। उसको मिट्टी के पात्र में रखकर धीमी-धीमी अग्नि से गर्म करें, पञ्चाङ्ग की भस्म बनाले। इस भस्म को मिट्टी के पात्रमें भरकर इसका ८ गुना पानी भरें। २१ दिन तक २।३ बार धतूरे की लकड़ी से इसे चलाते रहें। २१ दिन बाद इसके नितरे जल को दूसरे पात्र में भरलें और उसे धीमी अग्नि से जलायें। पात्र में सफेद वस्तु जल कर रह जावेगी, उसे निकालकर शीशी में रखलें। मात्रा १ रत्ती प्रातःसायं मक्खन या मलाई में लें। आधाशीशी आदि शिर के रोग, ज्वर, धातु दुर्बलता, शीघ्र पतन, गठिया, आमाशय के रोग, खांसी नष्ट होंगे, रक्त, बल, वीर्य, ओज बढ़ेगा।

मृगी :—धतूरे के बीज, मिश्री, समभाग, धतूरे के आठवां भाग केशर चूर्ण करें। इसे मृगी के दौरे के समय सुंघादें। २१ दिन करें रोग समूल नष्ट होता है।

छाती या फैफड़ों का दर्द :–(१) १ छटाक धतूरे के पत्तों का रस, २ तोला आजवायन, २ तोला काला नमक, एक साथ पीसकर लुगदी बना उपर्युक्त रीति से कपरमिट्टी कर उपलों में भस्म करलें। ठण्डा होने पर भस्म शीशी में रखलें। १।१ रत्ती मात्रा पान में रखकर सेवन करें, तो इससे कफ सहित खांसी, फेंफड़ों व छाती के रोग छोड़कर दूर भाग जाते हैं।

दमा का दौरा ;–धतूरे के पत्ते, भंग के पत्ते, कलमी शोरा समभाग चूर्ण करले। इसकी १ चूटकी चिलम की अग्नि में रखकर ऊपर से मुँह चिलम का बन्दकर, मुँह से धुवां पिये। ३।४ मिनट में दौरा नष्ट होता है।

दमानाशक तेल :—धतूरे के बीजों का तेल निकल वालें, सोते समय पान में १सीक से तेल पान में लगाकर सेवन करे। पथ्य– शुद्ध घी का हलुवा खाये। **आंतों के रोग :**– (हिचकी) धतूरे की छाया में सुखाये, जड़, शाख, फूल, फल, पत्तों का चूर्ण कर नली से धुंवां का सेक लें। चिलम में रखकर पियें।

पेचिश, हैजा, मरोड़ :– में धतूरे के पत्तों का अर्क ४ बूंद ही १ पाव दही में डालें। २।३ बार रोगी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पिये । बच्चों को २ बून्द डालें । **सभी प्रकार के ज्वरों :**—में १ तोला सफेद गोल मिर्च (काली) २ तो० धतूरे के पत्तों का रस खरलकर बाजरा जैसी गोलियां बनाकर ज्वर आने से पूर्व २गोलियां, तदनन्तर १-१ गोलियाँ १।१घन्टे के अन्तर से दें। (२) पित्ताज्वर, कफज्वर, बातज्वर (मियादी) में धतूरों के फलों को मिट्टी को छोटे से पात्रमें रखकर मुंह ढ़ककर कपरमिट्टी कर सुखाकर, १० सेर उपलों की धीमी २ अग्नि में रखकर फूंके । ठण्डा होने पर चूर्ण बनाले । उपर्युक्त ज्वरों में १ घण्टा पूर्व ही २से ५रत्ती मात्रा छोटे, वड़े, वली कमजोर रोगी के हिसाब से, पान या बेर के पत्ते में रखकर खिलायें । दिन में ३ बार और और ३ दिन दें । अथवा धतूरे के पत्तों का रस २।३ बून्द बताशे में रख उसी प्रकार दें। अथवा धतूरे के पञ्चाङ्ग का क्षार १ से २ रत्ती मात्रा में खाँड में रखकर दें ।

पागल कुत्ते, स्यार आदि के विष :– से पागल, मरणासन्न रोगी के काटे हुए स्थान पर धतूरे के फल को पीसकर शहद में खरलकर लेप करें ।

धातु (रज-वीर्य) स्तम्भन :—(१) काले धतूरे के बीज १ छ०, खुरासानी अजवाइन २ छ०, जायफल बक्कल १ छ० को १ सेर पानी में उबालें । चौथाई जल शेष रहने पर, ढाक की जड़ का रस २ छटाक मिलाले,उसी में २ तो० लौंग डालकर उबालें । सारा पानी सुखाकर लोगो को निकाल लें । १।१ लौंग दूध के साथ सेवन करें । स्वप्नदोष,शीघ्र-पतन, वीर्य-रज दुर्बलता, मूत्र की अधिकता, कमर का दर्द, खांसी, नजला, जुकाम आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं ।

(२) धतूरे के बीज—१ छ० जायफल, १ तोला मींगी, शुद्ध केशर, दो आना मर, शुद्ध शिलाजीत २।। तोला ले सबको कूटकर-- ३ सेर गौ के दूध में उबलते समय डालें । उसे धीरे-धीरे चलाते रहें । जब खोया सा बन जावे, तब १ पाव कन्द डालें । इसकी चना के तुल्य गोलियाँ बना लें । २१ दिन १।१ गोली प्रातः सायं दूध के साथ लें ।

कनक मणि—काले धतूरे के पके परन्तु गीले फल लें । उनमें ६।६ माशा संखिया भीतर भर दें और मिट्टी के बर्तन में रख दें उसे ऊपर से कपर मिट्टी कर सुखा दें । इस कपरोंटी वाले बर्तन को ५ सेर उपलों की अग्नि में रख दें। उसमें से शीतल हो जाने पर भस्म को निकालकर सावधानी से रख लें । १ चावल मात्रा में, मक्खन या मलाई में सेवन करें । श्वांस कासादि सभी राजयक्ष्मा के परिवारी रोग, नपुंसकता, बन्ध्यात्व दोष, नष्ट कर बल, वीर्य, ओज, रक्त, रङ्ग, दृष्टि, श्रवण शक्ति, बालवृद्धि को युवा बनाता है । शीघ्र पतन नष्ट कर वीर्य ओजरज स्तम्भन करता है ।

२—धतूरे के बिलकुल कच्चे विना चिकनाहट के फल कूटकर, हल्के स्वच्छ वस्त्र में निचोड़ कर रस रख लें। १ तोला सफेद्र संखिया लें । रस को बार-बार डालकर ७२घंटे घोटें । गाड़ा होने पर १।१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर दो सकोरों में रखकर, दूसरे से ढककर कपरमिट्टी करें, उसे भी सुखायें सूख जाने पर, उपलों की अग्निमें रख कर भस्म बनायें । सकोरों में सफेद-सफेद भस्म रहेगी । निकालकर शीशी में भर लें । मात्रा आधा चावल से १ चावल, मक्खन मलाई के साथ सेवन करें । उपर्युक्त लाभप्रर होता है ।

३—काले धतूरे के ५ सेर हरे पत्तों को मिट्टी के घड़े में भरकर, १ छ० संखिया उसमें डाल दें । १६ घन्टे अर्थात् ८।८ घन्टे २ दिन उसे अग्नि पर औटायें । बाद में इसी डली का यन्त्र से तेल निकलवा कर रख लें। मात्रा १ सींक बेर के पत्ते या पान में लगाकर सेवन करें तो भी उपर्युक्त सभी काया कल्प करेगा ।

४—काले धतूरे के रस में ५ तोला अवरक ८ घंटे घोटें, लुगदी को सकोरा में रखकर दूसरे सकोरे से ढककर कपरमिट्टी करके सुखा लें । इसे ४ बार क्रमशः अग्नि में बैठायें, ठन्डे को निकाल कर पुनः बैठायें । ऐसी ४० भावनायें दें । इस भस्म को रख लें । मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती भर ही मक्खन, मलाई के साथ सेवन करें । नव-संजीवनप्रद राजयक्ष्मादि व्याधि हृदय की धड़कन, मधुमेह (डाइबिटी) सबको दूर भगाने वाली ये सभी विधियां हैं । किसी भी राजयक्ष्मादि व्याधि में इसका उपयोग कर सकते हैं ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५—धतूरे के हरे फलों को पीसकर १।२छ० सिंगरफ रूमी एक सकोरे में लुगदी के बीच रखकर, दूसरे सकोरे से ढककर, कपरमिट्टी कर, सुखा लें। उसे अग्नि में जलायें, ठण्डा होने पर उसे निकालकर धतूरे के पत्तों के रसमें घोटें पुनः धतूरे के फलों की लुगदी बना उसे रस में रख दें, सम्पुट बना उपर्युक्त भाँति से भस्म करें। इसमें हल्कीर आंच ही दें तेज न दें। इस प्रकार १०१ बार करें। पुनः निकालकर पत्तों के रस में घोटें। उसे धतूरे के फलों की लुगदी बना उसके बीच में रख दें। इसे आतिशी शीशी में रखकर ऊपर से १ छ० नीबू का रस उसमें डालें। १छ० गिलोय का रस भी डालें। इसे लकड़ी की ही अग्नि पर पकायें। जब रस जल जावे तब इसी शीशीमें १।२छ० गन्धक का तिजाव डालें। उसे भी पकायें पर धुवां से हर हालत में अपनी रक्षा कर लें। धुवां बन्द होने पर ठण्डा करके इस भस्म को शीशी में भर दें। मात्रा. १ चावल, भर मुनक्का में रख कर सेवन करें। संग्रहणी उपदंश, आन्त्रिरोग, जलोदर, बबासीर, नपुंसकता तथा उपयुक्त सभी राजयक्ष्मादि व्याधियों को नष्ट कर नवयौवन सम्पन्न वृद्धावस्था में भी बनाता है। उपर्युक्त दोनों भैषज्य सूक्तों से अभिमन्त्रित करना हितकर होगा।

यह इस शंकर जी के प्रिय कनक (धतूरा) मणि की चमत्कारी जीवन प्रदायिनी विधियां हैं। योग्य वैद्यों के परामर्श से इनका निर्माण सेवन करना अनिवार्य है। ये सभी विष प्राणघातक होते हुए भी जीवनप्रद हैं। परन्तु उचित रीति से उचित मात्रा में, पथ्य तथा पौष्टिक आहार के साथ उपयोगी है।

गुञ्जा :—पर्यायशब्द—रक्तिका, गुञ्जिका, गुञ्जा, शिखण्डिनी, काकजंघा, कृष्णला, काकिनी, कक्षा, कनीची, काकचि की शांगुष्ठा, काकतुण्डिका, काका, काकिणी, काञ्ची, चूड़ामणि सौम्या, अरुणा, ताम्रिका, उच्चदंष्ट्रा, कृष्णचूड़िका, काम्बोजी, मीलभूषणा, वन्या, यामलचूड़ा, काकवल्लरी, ध्वांक्ष, नावा, वायसादनी, रक्तगुञ्जा, श्वेतगुञ्जा, चोंटली, घुंघुची, चिरमिटी, सफेद घुंघुची।

गुण :—स्वादिष्ट, कड़वी, बलप्रद, गरम, कषैली, त्वचा को चमका देनेवाली, केशबर्द्धिनी, रुचिकारी, शीतल. वीर्यवर्धिनी, नेत्ररोग, विष, पित्त, गञ्ज, व्रण, कृमि, राक्षस, पिशाच, गृहपीड़ा, कण्डू, कुष्ठ, कफ, ज्वर, मुखरोग, शीर्ष-रोग, वात, श्रम, श्वास, तृषा, मोह, मद नाशक है। इसके बीज वान्तिकारक, शूलहारक है। इसकी जड़ और पत्ते विष-नाशक है। श्वेत गुञ्जा वशीकरण में परमोत्तम है। श्वेत गुञ्जा के छिलके उतारकर चूर्ण करलें, उसे दूध में डालकर रबड़ी बनायें, वह अत्यन्त रज, बीर्य वर्द्धक, धातु पौष्टिक, कायाकल्प करनेवाली है। इसका तेल त्वचा के रोगों को नष्ट करने वाला, केशों को बढ़ानेवाला। इसको बकरे के मूत्र में पीसकर गञ्ज पर लगायें तो पुनः कोमल, काले, घुंघराले बाल उग आते हैं। इसके दिव्यगुण पहिले ही आ चुके हैं, बड़े ही अद्‌भुत चमत्कारी हैं। इनको भेषज कर्म में "यावभ्रव" कां. ४ सू. ६ से अभिमन्त्रित करें तथा दिव्यदृष्टि आदि के लिये कां. ४ सू. २० "आपश्यति" से अभिमन्त्रित कर प्रयोग करे। पूजा कर पूर्वोक्त नक्षत्रों और तिथियों में लाने से दिव्य शक्ति का लाभ होगा।

पूतद्रु :—पर्यायवाची—रुद्राक्ष, शिवाक्ष, भूतनाशन, पावन, नीलकण्ठाक्ष, हराक्ष, शिवप्रिय, तृणमेरु, अमर, पुष्पचामर। **गुण :**—अम्ल, उष्ण, वातनाशक, कफनिवारक, शिरोरोग विनाशक, भूतबाधा, ग्रहबाधा नाशक है। गुञ्जा की दिव्य मणि की भाँति ही इसका उपयोग (धारण) करें। अत्यन्त ही चमत्कारी है।

पर्णमणि धारण—पर्ण—मध्य प्रदेश (आदिवासियों की भाषा में चिताबर का नाम है) यह बड़ी चितावर होती है। जिलारायसेन (रवतलाई) के पास विन्ध्याचल पर मिलती है। इसे पशु चराने वाले आदिवासी जानते हैं।

अ० वे० कां० ३ सू० ५ "आयमगन पर्णमणि" सर्वरोग भैषज्य हैं। इन्द्रिय शिथिलता दूरकर स्फूर्ति, यौवन बल, वीर्य, ओज, अन्न, दूध, घी, मधु को अक्षय करने वाली, पशुवृद्धि, पशुपुष्टि, कृषिवृद्धि, उद्यम, लाभ, वाद-विवार, युद्धादि में जयप्रद, उद्योगवृद्धि, वाणिज्य लाभ करनेवाली देशान्तर भ्रमण में लाभ, पुत्र-पौत्र परम्परा या प्रजावृद्धि अधि-कार प्रदान कराने वाली, कारीगर कलाकार बुद्धि जीवियों की अभिवृद्धि करने वाली, निरोगता, स्वस्थता, दीर्घायु प्रदा-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यिनी,राष्ट्र सम्वर्द्धिनी, मन, बुद्धि स्थिर करने वाली,सूक्ष्म से सूक्ष्म आत्माओं को दिखा देनेमें समर्थ, समस्त तिजोरी आदि के ताले बेड़ी बन्धनों को स्पर्श मात्र से खोल देने वाली पानी पर सर्प की भाँति दौड़ने वाली चील, गृद्ध, काक, आदि के कल्याणकारिणी होने से उनके नीड़ों (घोंसलों एक में शुष्क रूप में भी मिलने वाली) यह दिव्य मणि है। समस्त विषैले, दुष्ट वर्ण निवारिणी, अतिथि सत्कार संवर्द्धिनी, दिव्यपर्ण मणि होती है। चौर, व्याघ्र, सर्पादि, द्विपाद, यक्ष, गन्धर्व, राक्षसों से रक्षा कराने वाली यह मणि-वर्णित है। इसे चील अपने बच्चों के लौह बन्धन स्पर्श मात्र से काटती है।

(५) राष्ट्रस्य राजा राजकृतश्च। १-८ अथर्वा। सोमः। १ पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्, २-३, ५-७ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप्, ८ विराडुरोबृहती।

आयमंगन् पर्णम॒णिर्ब॒ली बले॑न प्रमृ॒णन्त्स॒पत्ना॑न्।
ओजो॑ दे॒वाना॒ं पय॒ ओष॑धीना॒ं वर्च॑सा मा जिन्वत्वप्र॑यावन् ॥१
मयि॑ क्ष॒त्रं प॑र्णमणे॒ मयि॑ धारयताद् र॒यिम्। अ॒हं रा॒ष्ट्रस्या॑भीव॒र्गे नि॒जो भू॑यासमुत्त॒मः ॥२
यं नि॑दधु॒र्वन॒स्पतौ॒ गुह्यं॑ दे॒वाः प्रि॒यं म॒णिम्। तम॒स्मभ्यं॑ स॒हायु॑षा दे॒वा द॑दतु॒ भर्त॑वे ॥३
सोम॑स्य प॒र्णः सह॑ उ॒ग्रमाग॒न्निन्द्रे॑ण द॒त्तो वरु॑णेन शि॒ष्टः।
तं प्रि॑यासं ब॒हु रोच॑मानो दीर्घायु॒त्वाय॑ श॒तशा॑रदाय ॥४
आ मा॑रुक्षत् पर्णम॒णिर्म॒ह्या अ॑रिष्टता॑तये। यथा॒हमु॑त्त॒रोऽसा॑न्यर्य॒म्ण उ॒त सं॒विदः॑ ॥५
ये धीवा॑नो रथका॒राः क॒र्मारा॒ ये म॑नी॒षिणः॑। उ॒प॒स्तीन् प॑र्ण॒ मह्यं॒ त्वं सर्वा॑न् कृण्व॒भितो॒ जना॑न् ॥६
ये राजा॑नो राज॒कृतः॑ सू॒ता ग्रा॑म॒ण्यऽश्च॒ ये। उ॒प॒स्तीन् प॑र्ण॒ मह्यं॒ त्वं सर्वा॑न् कृण्व॒भितो॒ जना॑न् ॥७
पर्णोऽऽसि त॒नूपा॒नः सयो॑निर्वी॒रो वी॒रेण॒ मया॑। सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा॒ तेन॑ बध्नामि त्वा मणे ॥८

कुदृष्टि, नजर, टोना :—पपीता के बीज ताबीज में भरकर मंगलवार को पहना दें।

बालग्रह :—शतावर के सात टुकड़ों को सफेद रेशमी धागे में पिरो कर माला पहनावें।

बालग्रह :—ताम्रपात्र में जल भरकर उस पर घी का दीपक जलाकर बच्चे के शिर के चारों ओर घुमाते हुए सिर से स्पर्श कराएँ।

अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः, इन तीन नामों का जप करने से कोई रोग नहीं होता और सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं। घी, गिलोय काले तिल और दूर्वा से इन मन्त्रों द्वारा ११०० आहुतियाँ देने पर असाध्य महारोग दूर होते हैं। **कण्ठमाला** :—पलाश के पत्तों का रस पियें और उन पत्तों को पकाकर धोवें।

सूखी खाँसी :—समुद्र फेन पीस कर फांकी लगाने से दूर हो जाती है।

वन्ध्या दोष निवारण :—पलाश के पांच कोमल पत्ते स्त्री के दूध में पीस कर जो स्त्री मासिकधर्म के चौथे दिन स्नान करके खाती है वन्ध्या भी पुत्रवती होती है।

अशोक वृक्ष की :—३ कोमल पत्तियाँ प्रातःकाल चबाने से चिन्ता और शोक दूर होते हैं। अशोक की जड़ पर्स में रखने से धन की प्राप्ति होती है। अशोक के फूल पीसकर शहद के साथ चाटने से सभी प्रकार के दुःख दूर होते हैं। जिस स्त्री का बार-बार गर्भपात हो, वह गर्भवती होने पर सफेद पलाश के सात पत्ते प्रतिमास के क्रम से गाय के दूध के साथ सेवन करे। पहले मास ७ पत्ते, दूसरे ६, तीसरे ५।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भैषज्य वेदोक्त

वन्ध्या पुत्र पद मन्त्र एवं भैषज—अथ-षडाक्षरी महाविद्यायाः त्रिअयुत ३००० संख्याकंकुजेऽष्टम्यां वट-मूले स्थिरासनं कल्पयित्वा तत्रनिश्चल मानसो भक्तः बालरूपां पूर्णचन्द्रसमां ब्रह्मरूपां परदेवतां ध्यायेत्। त्रिसहस्त्रं होमं कृत्वा तर्पण मार्जनादि विधाय पश्चाद्दश सुवासिनीं भोजयित्वा ततश्चाष्टोत्तर शत जपेन वचां मन्त्रयित्वातां वचां वन्ध्या-स्त्रियंदा पयेत। दुग्ध, भक्त त्रिदिन भुञ्जाना **चिरायुषं पुत्रं सा जनयेत्**। नीचास्त्री पुरुष भाषणं, स्पर्श, अन्य गृहे भोजनञ्च वर्जयेत्। मन्त्रोयथा—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं स्वाहा ।। सिद्ध भेषज मालायामपि यथा—

सायं निक्षिप्य सजले कर्के कोलमितां वचां्। प्रातर्वटयो कृतास्तिस्त्रोनवनीतेन लेपयेत ।।१।।

स्नाताकेशस्त्र वत्तोय। नारी नियत मानसा। अद्धोदितं रविनत्वागिलेदभिमुखं स्थिता ।।२।।

सत्येवंवसनैस्तस्याः शुद्धिः स्यात् गर्भकारणम्। स्थापयेदर्क हृदयं पाठार्थं ब्राह्मणान्मुदा ।।३।।

दुग्धमन्धोदितं किञ्चित्स्वास्थ्यम् केवलमाहरेत्। संकल्पकारयेत्सिद्धौभोजयिष्येद्विजनिति ।।४।।

सारांश:—वटवृक्ष के नीचे मगलवार की अष्टमी से ऊपरोक्त मंत्र का सवा लक्ष जप, दशांशकृत्य विधिवत करके सौभाग्यवती, सौम्य, निरोगिणी १० स्त्रियों को भोजन करायें, तत्पश्चात् उसी षडाक्षरी मत्र से १०८ बार "बच" को अभिमन्त्रित कर मिट्टी के वर्तन में शाम के समय भिगो दें, दूसरे दिन प्रभात में उस भीगी वच को शुद्ध जल में पीस कर ३ गोली बनाले। ऋतु स्नान के उपरांत चौथे दिन भीगे केशों से सूर्य को प्रणाम कर, गौ के घी में मिलाकर एक-एक कर निगलें। भूख लगने पर केवल दूध-भात का भोजन करे। मिश्री मिला सकते हैं यदि चाहें। यदि वमन हो तो चिन्ता की बात नहीं समझें। इस मन्त्र जाप से तथा औषधि प्रयोग से वन्ध्या काकवन्ध्या,मृतवत्सा को भी **दीर्घजीवी पुत्र को प्राप्ति होती है।**

वचानामानि:—वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, गोलोमी, शतपर्विका, मङ्गल्या, जटिला, तीक्ष्णा, गालिनी, लोमशा, विजया, रक्षोघ्नी, उग्रा, वच्या, काङ्गा, मद्रा, क्षुद्रपत्री, इक्षुपर्णी, स्मारणी, बोधनीया, भूतनाशिनी, श्लेष्मघ्नी, तीक्ष्णपत्रा, जलजा, इक्षुपत्रिका (खुरासानीवच, सफेदवच होती है) हैमवती, शतपर्वा, मेध्या शुक्रा भोगवती, दीर्घपत्रा, कर्षिणी, (हिन्दी नाम वच, खुरासानी बच, सफेद वच) (मराठी) पांढरें वोवंड, (गुजराती) घोडावज, वालावज, (तैलङ्गी) वासा, नल्लवस, (तामिली) वशम्बु (Sweet Flogroot).

गुण:—उग्रगन्धयुक्त, चरपरी, कडवी, गरम. वमनकारक, अग्निजनक, दीपन, वाणीदायक, कण्ठ को हित-कारी, मलमूत्रशोधक तथा विबन्ध, आध्मान शूल, शोफ,वातज्वर, अपस्मार, कफ, उन्माद, भूत, कृमि और वातनाशक है। यह तीक्ष्ण, आम, ग्रन्थि, सूजन, अतिसार हारिणी, वमनकारक, अवस्था स्थापक, तृष्णा निवारक, स्मरणशक्ति वर्द्धक, मति मेधादायक, आयु वर्द्धक, अधिक गुणोंवाली, वीर्यजनक, वादीनाशक, गर्भधारक, गर्भधारणशक्ति वर्द्धक, भूतबाधा, कृमिनाशक है।

अद्भुत गुण:—वच के चूर्ण को जल के साथ अथवा दूध के साथ, एक मास सेवन करने से, मनुष्य बुद्धि-मान, ज्ञानी, कवि हो जाता है। सूर्य; चन्द्रग्रहण काल में १ पल (१ तोला) वच के चूर्ण को दूध के साथ सेवन करें, तो उसी समय मनुष्य को अत्यन्त बुद्धियुक्त बना देती है। यह जलाशयों या रेतीली भूमि में ही प्रायः होती है।

ॐ विषघ्नोपनिषद

यह समस्त सर्पमात्र एवं अन्य समस्त विषैले जन्तुओं की विषापहरिणी, वह दिव्य विद्या है जिसका उल्लेख महा-भारत शान्ति पर्व ३२३।१० तथा आदि पर्व ५८।२३.२४;२५ तथा २१ कृ० एवं तेत्तीरीय ब्राह्मण ७।६।२२ में हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसको तपस्याकाल में अन्तकरण में महर्षि प्रभावित हों; अगस्त्य, माधव, मुचुकुन्द, कपिल एवं आस्तीक असित, सुनीत, आर्तिमान, जरत्कारु, जरत्का जी ने पृथक २ उपलब्ध किया। जिसके अपरिमित, अपरिहार्य बल से स्वयं तक्षक सर्पराज ने स्वीकार करते हुए; राजा परीक्षित की तक्षक से रक्षा करने के उद्देश्य से, मार्ग में जाते हुए ब्राह्मण से भेंट कर; अपने विष को नष्ट कर देने वाली इस विद्या की और उपर्युक्त विद्यावेत्ता ब्राह्मण को यथेच्छ अतुल धन का प्रलोभन देकर मार्ग से ही, अपने घर वापिस कर दिया। अर्थात् राजा परीक्षित तक नहीं जाने दिया था। वह उनकी यही दिव्य "विषघ्नोपनिषद" विद्या है। म० भा० का कुछ प्रतीक जो इससे सम्बन्धि तथा ग्रन्थ में पूर्व दिया जा चुका है, पढ़ें।

ज्ञानीजन अपसव्य होकर मोरपंख से गुञ्जा (चिरमिटी, महुआ, अपामार्ग, नीम के लहरों से वामहाथ से, सूर्य स्वर (दायें स्वर के बहने के समय मन्त्रोच्चारण काल में स्वर को खींचकर, दक्षिणाभिमुख हो) विष निवारण कर्म करें। काटे स्थान से ३।३ अँगुल इधर-उधर से ही बन्द लगा दे, सन, सूत, रेशम, गंगा रजसे बन्द लगायें। रोगी को दूध के कड़ाह में या ठण्डी जलधारा के नीचे लिटाकर मन्त्र पढ़ें ऊपर से नीचे को ही उतारें। कड़ाह का दूध जैसे ही नीला हरा हो, निकालकर पुनः भरते जावें, औषधियों को लकडी से लेपें और खुश्क होते ही उसे छुड़ाकर पुनः पुनः लेपते रहें नस्य दें, काटे को काटकर जलायें भी। पीछे सर्पविष भैषज्य की सभी क्रियायें पढ़कर, समझकर करें।

ऋग्वेद परिशिष्ट सूक्त २ "माविभेर्नमरिष्यसि" को जपते हुए अपामार्ग (ओंगा) की मञ्जरी, पीली सरसों से उस स्थान को कीलें जहाँ सर्प भय हों, सर्प ने काटा हो, नष्ट भूमि निहित द्रव्य पर सर्प रूप प्रेत बैठा हो काटे हुए को नीम, अपामार्ग से ऊपर से नीचे को झाड़ा दें। पीपल की कोपल सहित टहनी जो पीछे सर्प विष भय निवारण में है, उसी के अनुसार कार्य करें। सभी प्रकार के सर्पादि भय निवारण में, काटे हुए सर्प के विष निवारण में यह मन्त्र अमोघ अस्त्र है। यदि सर्पभय या विष न उतरे तो इसी से अपसव्य हो, दक्षिणाभिमुख हो, तारस्वर से सरसों, अपामार्ग धान्यों के सत्तू, ग्रन्थ में दी गई औषधियों के चुर्ण नमक मिला, कटु तैल से होम करें। तो सर्पराज तक्षक को स्वयं आकर विष पीने को बाध्य होना पड़ जाता है, अन्यथा ब्रह्मादेश से सभी सर्प भस्म होने लगते हैं।

मा बिभेर्न मरिष्यसि परि त्वा पामि सर्वतः। घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दुण्डेनागतम् ॥१

आदित्यरथवेगेन विष्णुबाहुबलेन च। गरुडपक्षनिपातेन भूमिं गच्छ महायशाः ॥२

गरुडस्य पातमात्रेण त्रयो लोकाः प्रकंपिताः। प्रकंपिता मही सर्वा सशैलवनकानना ॥३

गगनं नष्टचन्द्रार्कं ज्योतिषं न प्रकाशते।

देवता भयभीताश्च मारुतो न प्लवायंति [मारुतो न प्लवायत्यों नमः]

भो सर्प भद्र भद्रं ते दूरं गच्छ महाविष। जन्मेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर ॥५

आस्तीकवचनं श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते। शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा ॥६

नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि। नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः ॥७

यो जरत्कारुणा जातो जरत्कार्वा महायशाः। तस्य स्मराभि भद्रं ते दूरं गच्छ महाविष ॥८

[असितिं चार्थसिद्धिं च सुनीतिं चापि यः स्मरेत्।

दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति सर्पभयं भवेत् ॥९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुंदो महामुनिः । कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ॥१०]

[ऋग्वेदः । मं० १, सू० १९१, मं० १] १६ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अप्तृणसूर्याः (विषघ्नोपनिषद्) । अनुष्टुप्; १०-१२ महापंक्तिः, १३ महाबृहती । छन्दांसि समस्त सर्पादि विष निवारण भैषज्ये, मार्जने, लेपने, पाने, होमे च विनियोगः ।

कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः । द्वाविति प्लुषी इति न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥१

अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती । अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥२

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत । मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३

नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत । नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥४

एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्करा इव । अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा । अदृष्टाविश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६

ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः । अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥७

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा । अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८

उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् । आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९

सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१०

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः । तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४

इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना । ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥१५

कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः । वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६

ऋ० वे० कां० १ सू० १९१ विषैले तथा विष रहित तथा जलादि में रहने वाले, थोड़े विष वाले, विषैले और विष रहित दोनों तरह के प्राणी दाह उत्पन्न करने वाले; और न दिखाई देने वाले वे मेरे शरीर को विष से व्याप्त कर लेते हैं । ये विष से दाह उत्पन्न कर, उसे सारे शरीर में फैलाकर नष्ट कर देते हैं । २—आती हुई; न दीखने वाले सांपों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को मारती हुई यह औषधि तथा मांत्रिक शक्ति) और जाती हुई मारती है और विष रहित कर देती है। यही नहीं, उन्हें फोड़ती हुई मारती जाती है। पीसी जाती हुई उन सर्पों ही को पीसती है- यह वह अमोघशक्ति सम्पन्न विद्या और भेषज हैं। ३—सांप अनेकों स्थानों में रहते हैं। कुछ सरकंडों में, कुछ कुशाओं में, कुछ जलाशयों में, नदी, कूप, तालावों के किनारों पर उत्पन्न होने वाले घास पातों में, कुछ मूंज, पतेल, झाऊ आदि में छुपकर बैठे रहते हैं। ये मनुष्य को देखकर उसके शरीर में लिपट जाते हैं।

४—गौयें वाड़े में बैठ जाती है और पशु भी अपने-अपने स्थानों में सो जाते हैं। मनुष्यों की इन्द्रियां भी जब विश्राम करने लगती हैं, तब ये रेंगने वाले सर्प ओस चाटने के लिये बिलों से बाहर आते हैं (और चन्द्रमा की शक्ति अमृत बिन्दु है)। ५—जैसे चोर (निशाचर, राक्षस, यातुधान, उल्लूक छिपे रहते हैं,) और रात्रि के समय ही निकलते हैं। उसी भांति दिन में छिपे रहने के कारण; न दिखाई देने वाले, ये सांप रात्रि में बाहर निकलते हैं; और तब सबको दिखाई देने लगते हैं। इस कारण हे मनुष्यो! तुम सब पूर्ण सावधान रहो। ६—हे सर्पो! तुम्हारा पिता द्युलोक, माता पृथिवी, सोम भाई, और अदिति बहिन है। (अर्थात् तुम इतने उच्च कुल में उत्पन्न हुए हो) तुम स्वयं अदृश्य रहते हुए भी सबको देखने वाले हो। अतः हे सर्पो! तुम स्थिर रहो और आनन्द पूर्वक विचार करो।

७—जो पीठ के बल सरकने वाले सर्प हैं; जो पैरों के बल चलने वाले (कान खजूरा) आदि हैं। जो सुई के समान छेदने वाले 'बिच्छू' आदि हैं; जो महाविषैले हैं, और भी जो यहाँ न दीखने वाले हैं' ऐसे तुम सभी एक साथ, हमें छोड़ दो (दुःखी न करो)। ८—सभी दीखने वाले तथा न दिखने योग्य जन्तुओं को नष्ट करने वाला सूर्य,न दीखनेवाले इन सभी दुष्ट प्रकृति वालों को मारता हुआ, तथा सभी राक्षसिनियों को मारता हुआ, पूर्व दिशा में उदय हो रहा है।

९—न दीखने वाले! जन्तुओं, राक्षसादि जीव द्रोहियों का नाश कर्ता सर्वद्रष्टा, रसों का हरण करने वाला यह सूर्य (दिव्य ज्ञान ज्योति) सभी ऐसे जन्तुओं को विनष्ट करते हुए, पर्वत शिखरों से उदय होता है। १०—शराबी के घरों में जैसे शराब का पात्र रखा जाता है उसी प्रकार मैं (मान्त्रिकी दैवी तपोबल से) विष को सूर्य में रखता हूँ। उस विष को रखता हूँ। उस विष से न वह मरे न हम सब ही मरें,क्योंकि सुनहरे घोड़ों वाला यह सूर्य (पैद्वरङ्ग, विरङ्गी, सुनहरे रङ्ग की तितली) इस विष को दूर करता है। तथा मधुला (गुञ्जामधु कीड) औषधितां तुझे मीठा बनाती है। ११—इतनी छोटी से चिड़िया (कपिञ्जल) तेरे विष को खा जाती है, कपिञ्जल यह मादा चातक, उपर्युक्त भांति की व त्तिल्ली) वह विष को खा जाने पर भी नहीं मरती, न हम हो मरें। सुनहरी घोड़ों वाला सूर्य, इस विष को दूर स्थापित करता है। मधुला (श्वेत गुञ्जा मूल, फल तथा मधु-कीट एवं महुआ, शहद के मोम तुझे अमृतमय बनाये।

१२—इक्कीस तरह की ऐसी छोटी-छोटी चिड़ियायें हैं, तेरे विष को खा जाती है ये विष के फूलों को भी खा जाती हैं, तो भी वे नहीं मरती हैं। उन पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता मधुला औषधि (उपर्युक्त) विष को अमृत बना देती है। १३—विष को नष्ट करने वाली ९९ औषधियाँ हैं, उनका उल्लेख मैं करता हूं (ये इस ग्रन्थ में सभी वैदिक ग्रन्थों से संकलित एवं प्रमाणित एक-दूसरे ग्रन्थों साक्ष्यों से उल्लिखित हैं) सुनहरे घोड़ों वाला सूर्य, इस विष को दूर स्थापित करे और (उपर्युक्त) मधुला उस विष को अमृत बना देती है।

१४—इक्कीसमोरनियाँ और स्वयं बहने वाली ये सात नदियां (जल प्रभात से) तेरे विष को उसी प्रकार हर लें, जिस प्रकार घड़े वाली स्त्रियाँ पानी हरकर ले जाती है। १५—कोई भी विषैला कीड़ा, चाहे वह कितना ही छोटा सा क्यों न हो, उसे पत्थर से मारता हूँ।(पत्थरादि से मार दें, उससे पाप की अपेक्षा कहीं अधिक पुण्य होता है) और तब उसके विष को पीछे की तरफ सब दिशाओं में छोड देता हूँ। १६—पहाड़ पर से आने वाले कुम्भक ने यह कहा कि बिच्छू का विष रसहीन है, इसकी औषधि ज्योतिर्मठ पर और उसके इधर-उधर के शिखरों पर मिलती हैं। विन्ध्याचल पर भी होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मधु–शालिग्राम निघन्टु :—मधुज पौत्तिक भ्रामर, क्षौद्र, माक्षिक छात्र, आर्घ्य, औद्दालक और दाल ये ८ मधु की जातियां हैं।

पुत्तिक नाम की मक्खी का **"पौत्तिक"** भ्रमर का **"भ्रामर"** क्षुद्रा से "क्षौद्र" मक्षिका से **"माक्षिक"** वरटी नाम के कीट से **"छात्र"**; महर्षि जगत्कारु की जपस्थली नर्मदातट के महुओं से उत्पन्न "आर्घ्य" वल्मीककारी कीटों से **"औद्दालक"** वृक्षों की कोटरों के रहनेवाले कीटों का **'दाल'** कहलाता है। यह मधु विषनाशक कुष्ठनाशक होता है। महुआ वृक्ष के फूलों के रस से निर्मित मधुमक्खियो के मधु का मोम विषनाशक होता है, इसमें आर्घ्य "मधु" विषनाशक है। महुए के वृक्ष की जड़ की मिट्टी भी विषनाशक है। इसे पिलायें बाँधें। धतूरा भी विषनाशक है। इसे भी मधुक कहते हैं। श्वेत चौटनी चिरमिटी की जड़, मुलहटी और पत्ते भी विषनाशक हैं। ये ग्रन्थ में उल्लिखित हैं। यह मधु में मधुलाकर शब्द की समीक्षार्थ प्रस्तुत है अथर्ववेद के सर्पविष नाशन प्रकरण में देखें। **इति सर्प विषघ्नोपनिषद**।

(पूर्व वास्तु विधि का शेष) "उपमिता" (९।३) से स्वर्ग कामी नवीनशाला निर्माण कर होमादि से शान्ति करने के उपरान्त दाता; प्रतिग्रहीता से उद्घाटन करा; दान दे। कौ० ८।७

"उपमितान्" ९।३ भृग्वङ्गिराः। ऋषिः। शाला देवता। ६ पथ्यापक्ति ७ परोष्णिक् १५ त्र्यवसाना पञ्च पदातिशक्वारी, १७ प्रस्तार पंक्तिः, २५, २६ त्रिपदा प्राजापत्या वृहती २६ साम्नी त्रिष्टुप्, २७, ३० त्रिष्टुप्नाम गायत्री, त्रिष्टुप् छन्दांसि नवशाला (ब्रहम) निर्मिते होमान्ते, स्वर्गकामो (दाता) उद्घाट्य प्रति ग्रहीत्रे समर्पणे, प्रतिग्रहीतु स्वीकुर्वणे च विनियोगः।

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत। शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥१

यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः। बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२

आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान्। परूंषि विद्वांछस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥३

वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च। पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥४

संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च। इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥५

यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम्।

प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वेऽभव ॥६

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले ॥७

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति। अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥८

यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम्। उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥९

अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता। यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥१०

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन्। प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥११

नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः। नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥१२

गोभ्य अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते। विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह । विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१४
अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः । तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥१५
ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता । विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥१६
तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥१७
इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् । वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥१८
ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् । इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥१९
कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः । तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥२०
या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥२१
प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् । अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥२२
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥२३
मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव । वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥२४
प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२५
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२६
प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२७
उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२८
ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२९
ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्य[illegible] ॥३०
दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः [illegible] स्वाह्येभ्यः

कां० ९ सू० ३ "उपमितम्" समस्त भय[illegible] स्वकीय [illegible], संकटों को निबारणार्थ [illegible]म्भों, उनके जोडों, सहारों, डंडियों को, उत्तम बन्धनों के ग्रन्थियों को हम बांधते [illegible] । असि[illegible] । २—हे सर्व कष्टनिवारक [illegible]तेरा बन्धन है जो पाश और ग्रन्थियां है, बृहस्पति अपनी दिव्य वाणी द्वारा, जैसे शत्रु प्र दर्शय —कटक दल संहार करते [illegible]कार मैं उनको खोलता हूँ। ३—संग्रहीत जोड़ दिया—और तेरे जोड़ों को सुदृढ़ कर[illegible] दिया है। जोड़ों को जा[illegible] वाले के तुल्य, इन्द्र की सहायता से हम बाँध देते हैं । ४—हे सर्व कष्टहर्त्तागर ! [illegible] । संदृष्टा तेरे बाँसों और बन्धनों [illegible] और घास को तथा तेरे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों ओर के बन्धनों को मैं बाँधता हूँ । ५—प्रमाण से मर्यादाओं से रक्षित घर के कँचियों, चटाइयों, विलास स्थानों (साधनों) से युक्त इन बन्धनों को मैं बाँधता हूँ ।

६—जो तेरे अन्दर छींकें हैं, जिन पर स्वादु, भोग्य पदार्थ रक्खे हैं, उनको उत्तम रीति से बाँधते हैं । इस भाँति से बनी हुई यह शाला, हमको उन्नति और सुखदायी हो ।७-घर के अन्दर धान्य भण्डार यज्ञशाला स्त्रियों पुरुषों के पृथक्-२ निवास गृह, आयुध, सम्पदाकोष, घृतादि भोग्य पदार्थ और देवों, अतिथियों के विश्रामगृह हैं । ८—उपरिभाग में, आभूषणों के तुल्य दर्शनीय, अनेकों छिद्रों वाला, फैला हुआ जाल हम, उत्तम रीति से फैला कर, तानकर बाँधते हैं । ९—कीर्ति प्रदायिनी यह प्रमाण (मर्यादा) से बँधी हुई शाला है. जिसने इसका माप लिया और जिसने यह बनाया है। वे दोनों (निर्माता और गृह स्वामी) दीर्घ काल तक जीवित और इसमें सुखी रहें ।

१०—इस घर का प्रत्येक भाग और प्रत्येक जोड़, भली-भाँति बनाया गया है, इस प्रकार सुदृढ़ निर्मित, यह घर इस स्वामी के अधीन हो । ११—हे शाले ! तेरे निर्माता, और वाटिका के सजाने वाले, परमेष्ठी ने, प्रजाजन के लिये तेरा निर्माण किया है । १२—उस दाता को धन्यवाद है, शालापति—वास्तुदेव को नमस्कार है । चिरागत गार्हपत्याग्नि और पुराण पुरुष की वन्दना करते हैं(ये नित्य निरन्तर यहाँ विराजमान रहें और कृपा परक हों । १३-शाला में विराजने वाले, गौ, अश्व और उनके उत्पादकों को सभी को उनकी सन्तानों की समृद्धि के साथ इस शाला से सयुक्त करते हैं ।

१४—द्यौलोक, और पृथ्वी के मध्य में, जो विस्तीर्ण आकाश हैं, उसमें इस घर का निर्माण हुआ है । इसीसे मैं तेरे इस घर को स्वीकार करता हूँ । जो अन्तरिक्ष लोक का परिमाण है, उन कोषों के लिये, (उदर) जैसा बनाता हूँ । इसीसे मैं, इसके लिये इस घर को स्वीकार करता हूँ । १५—हे शाले ! भोग्य भक्ष, पयादि रसों से युक्त, पृथ्वी पर प्रमाण से, तेरा निर्माण किया गया है । उपर्युक्त सभी उपभोग्य साधनों से पुक्त तू ग्रहणकर्त्ता के लिये विनाशकारी मत हो । १६—घास फूसादि से ढकी हुई, चटाई आदि से सुशोभित निर्मित परिमितशाला, रात्रि के तुल्य जगत आश्रयदाता, श्रेष्ठ शुभ पैरों वाली हस्तिनी के तुल्य, उत्तम स्तम्भों वाली होकर पृथ्वी पर स्थिर है ।

१७—तेरी चटाई से बँधे हुये को, आच्छादित करता हुआ, मैं दृढ़ता से बाँधता हूँ । वरुण द्वारा जल से, सीधी बनाई गई शाला को, सूर्य प्रातः सीधी बना है । १८ब्रह्म वेत्ताओं द्वारा निर्मित, कवियों द्वारा सुसज्जित, मर्यादाओं से बनी हुई शाला की, अमर इन्द्र और अग्नि रक्षा करें (अर्थात इसमें नित्य निरन्तर, ब्रह्मज्ञ, कविवास करें, यज्ञादि उपासनायें, और आतिथ्य सत्कार) इस सोम बल्ली आदि वनस्पतियों के घर में होते रहे हैं । १९—निबास (घोंसले) पर निवास कोशों पर कोष सीधा रक्खा गया है । अर्थात ये अक्षय हैं । उसमें मानव उत्पन्न होता है जिससे सबकी उत्पत्ति है । २०—यह शाला दो, चार, छः, आठ या दस कक्षों वाला होता है । जैसे पेट में गर्भ सुरक्षित रक्खा जाता है । ऐसी सन्मान, कीर्ति, विभूति वाली वास्तुदेव की पत्नि शाला का गुह्य स्थान में स्थित गर्भ (अग्नि) के तुल्य मैं आश्रय लेता हूँ । २१—हे शाले ! पश्चिमाभि मुख में, पश्चिमाभि मुख स्थित, अहिंसा बृत परायण तेरी शरण आता हूं (अर्थात यज्ञ को तत्पर मैं प्रवेश कर ... गार्हपत्याग्नि, और जल पूर्व प्रविष्ठ हो चुके हैं जो यज्ञों के साधन मुल द्वार हैं ।

२२—हे नीरोग [illegible] मादि समस्त [illegible] व्याधि भैषज्य जलों को शाला में भरता हूँ । जल और अग्नि के साथ मैं गृह प्रवेश करता हूँ । [illegible] ले ! हम पर व्याध [illegible] पाश न छोड़, हमारे अतुल भारों को लघु बनाने वाली हो । नव वधू की भाँति तुझे [illegible] व्यक कामनाओं से परिपूर्ण क[illegible] रता हूँ । २५ से ३१ पर्यन्त—घर की पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर निम्न [illegible] र्ध्व दिशा और उपदिशाओं के स[illegible] म्माननीय. श्रेष्ट वन्दनीय देवों के लिये, प्रार्थना पुरस्सर आत्म समर्पण [illegible]

"इति वास्तु विधि प्रकरणम्" । नमोऽस्तु [illegible] दारस्टद भवतु" अपराजित गण [illegible] प्रजायें [illegible] ना । यस्य [illegible] ते । विज [illegible]

कां० १ [illegible] श्वास ऊपर खींचकर सर्व प्रथम अ[illegible] के साथ स्वस्त्ययमगण कार्य में गमनकाल में बहने वाले स्वर की ओर [illegible] गे रक्खें, सारी दिशाओं में दूब, शर्करा, सरसों छिड़कें

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्र का जप करें। वेदी निर्माण प्रारम्भ में १।२१-२ की ऋचा "विनइन्द्र" तथा "वैश्वानरोनऊतये" ६।३५ सूक्त एव कां० ७।८६-३ ऋचा "मृगोनभीम" से वेदी अनुमन्त्रित करें।

कां० १ सू० २१ १-४ अथर्वा। इन्द्रः। अनुष्टुप्। उपर्युक्त समस्त कर्मसु च विनियोगः।

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी। वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥१

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥२

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज। वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्। वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥४

कां० १ सू० २१ "स्वस्तिदाविशां" प्रजा जनों के हित और मंगलकर्त्ता प्रजा जनों का श्रेष्ठ पालक; शत्रुओं का घेर कर विनाशकर्त्ता, शत्रुहर्त्ता, बलिष्ठ, अमृतपानकर्त्ता प्रजा का अभयकर्त्ता, राजा (राष्ट्रनायक) हमारा पथ प्रदर्शक हो २-हे इन्द्र! हमारे शत्रुओ को मार डाल, सेना द्वारा हम पर हमला करने वालों को नीचे ही गिरा दे। जो हमें दास बनाना चाहता है, हमारा घात करना चाहता है। उसको हीन अन्धकार (मृत्युरूप अन्धकार) में पहुँचा दे।

३—राक्षसों और हिंसकों को मार डाल, सेना के द्वारा हम पर घेर कर हमला करने वाले, शत्रुओं के दोनों जबड़ों को तोड़ दे। हे शत्रूहन्ता प्रभो! हमारा नाश करने वाले शत्रुओं के उत्साह को क्षीण कर दे। ४-हे प्रभो! राजन्! शत्रु (द्वेषी का) मन बदल दे। हमारी आयु के नाश करने वाले को दूर कर। हमें बड़ा सुख दे, और बध को दूर कर। हमारा कोई भी बध न करे।

अथ शत्रु दमन, संग्राम जय-विधिः

ये सेना कर्म कहे गये हैं। सेनाग्निसिद्धयर्थ, प्रत्येक ऋचा से अश्वत्थसमिधाओं से शत्रु क्षय होता है, करिमाल (करील), ऐरण्ड, पलाश, खदिर शरपता की समिधायें लें। शत्रु भय निवारणार्थ शरसमिधायें लें। अभ्यातान होम करके भङ्गपाश अभिमन्त्रित कर सेना को लक्ष्य कर छोड़े (मूज) के पाश अभिमन्त्रित कर फेंके, उपरोक्त "बाधक" वृक्षों के दण्ड अभिमन्त्रित कर युद्ध क्षेत्र की दक्षिण दिशा में गाड़ें और (फेंकें) भी दक्षिण दिशा में दक्षिणाभिमुख होकर यह सब करें, इन समस्त सेना कर्म में, निर्जन स्थान या युद्ध क्षेत्र उपर्युक्त है। इनमें कां. ८ सू. ८ ऋ. २४ (स्वाहैभ्य) के २ पदों से स्वमित्रबलवृद्धयर्थं उपरोक्त समिधाओं से प्रज्वलित अग्नि में दक्षिण हस्त से आज्य होम करें तथा पर बलविनाशार्थ (अपसव्य) हो (वाम हस्तसे) ऋ० २४ के "दुराहामीभ्यः" इन पदों से इङ्गिणसेहोम करे। कर्माग्नि के उत्तर देश (स्थान) में रक्त पिप्पल की शाखा को भूमि में ऊपर को खड़ी करे। नील लोहित वर्ण के धागों से; सारी को लपेटे "नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि" (८।८-२४) से बलपूर्वक दूर फेंक दे। (कौ० २।७)।

कां ११ सू० ९ ऋ० १-२६, काङ्कायनः। ऋषिः। अर्बुद्धिः। देवता। अनुष्टुप् १ सप्तपदा विराट् शाक्वरी त्र्यवसाना, ३ पुरोष्णिक ४ त्र्यवसामा उष्णिग्बृहती गर्भापरा त्रिष्टुप् षट्पदाति जगती, ९, ११, १४, २३, २६ पथ्यापंक्ति १५,२२,२४,२५ त्र्यवसाना सप्तपदाशक्वरी, १६ त्र्यवसाना पञ्चपदा विराडुपरिष्टाज्जयोतिस्त्रिष्टुप्। १७ त्रिपदागायत्री छन्दासिशत्रु निवारणे शत्रु क्षये, शत्रु भयनाशने शत्रु जये, स्वकीय बलवर्धने होमे विनियोगः।

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याऽणि च। असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि।

सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१

उत् तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्। संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत् तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् । अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥३

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः । याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।

ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥४

उत् तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह । भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥५

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् । तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥६

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु । विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥७

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती । पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥८

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।

ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥९

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः । पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥१०

आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे ।

निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज । उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥१२

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि । मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥१३

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नाना ।

अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥१४

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे । अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।

सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१५

खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।

य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये । सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥१६

चतुर्दंष्ट्रांछ्यावदतः कुम्भमुष्कां असृङ्मुखान् । स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥१७

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः । जयांश्च जिष्णुश्चामित्रां जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥१८

प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे । अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥१९

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् । अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥२०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु । शौष्कास्यमनु वर्तताममित्रान्मोत मित्रिणः ॥२१
ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये । तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।
सर्वास्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्रदर्शय ॥२२
अर्बुदिश्च त्रिषंधिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥२३
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२४
ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः । ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥२५
तेषां सर्वेषामीशाना उत् तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६

कां ११ सू० ९ 'ये बाहवो' संग्रामिक तैयारी में वैदिक विधान तथा निर्देश है। हे शत्रुघ्न शतकोटि महाभटो? तुम्हारी जो बाहुऐं हैं, जो बाण है, जो शस्त्र धारियों के विविध विज्ञानपूर्ण कलाकौशल पूर्ण पराक्रम है, तथा तलवारें, फरसे, विचित्र विविध आयुध और स्वातंत्र्य रक्षा, विजयोपहार की उत्कट तमन्ना और कर्त्तव्यता के दृढ़ संकल्प हैं। उन सबको तुम, शत्रुओं के हृदय दहलाने के लिये (मृत्यु) दूत जैसे क्रोधावेश के साथ, बड़े-बड़े अमोघ, विस्फोटक, अस्त्र-शस्त्रों को शत्रुओं को दिखाओ। २—हे मित्रो ? देवजनों ? तुम भी उठो ? तय्यार हो जाओ। हे अनन्त कोटि सेनानायक वीरो? जो हमारे अपने मित्र हैं, उनको ध्यान में रख; सब अपने सैनिकों का निरीक्षण करो, और सुरक्षित करो। ३—हे शत्रु दलन वीरो ? उठो, युद्ध प्रारम्भ कर दो, धरपकड़ के साथ, शत्रु सेनाओं को घेर लो। ४—जो अर्बुदि नामक सेनाध्यक्ष है; जो न्यर्बुदि (अरबों लाखों के ऊपर) सेनापति है। जिन्होने अन्तरिक्ष घेर रक्खा है, और जिनसे अपार विस्तृत भूमि भी व्याप्त है। उन इन्द्र और मेदी (उपेन्द्र) के द्वारा सेना के सहयोग से, शत्रु को जीत लिया, अतः तदनन्तर मैं जाता हूं।

५—हे देवजन शत्रु ध्वंसकर्त्ता ? तू भी सेना के साथ उठ ? अरिचमूको, अपनी प्रक्रियाओं से नष्ट कर। ६—हे असंख्य सेनाध्यक्ष ? अमोघ, विध्वंसक, सप्तभांति के अस्त्रों को देखकर, आत्म बलिदान रूप आज्याहुति को तत्पर हो, उन उपर्युक्त सभी को साथ लेकर, अपनी सेना के साथ तू भी उठ। हे अर्बुदे ? तेरे प्रहार से, शत्रु के मरने पर, उसकी स्त्री, शिर के बाल खोलकर, सौभाग्याभूषणहीन कानों से, करुणाक्रन्दनाश्रुपात से, छाती पीटती हुई प्रलाप करें।

८—हे अर्बुदे ? तेरा आक्रमण होने पर, हाथ पैर पीटती हुई, मन से पुत्र, पति भाई अपने प्रिय बान्धवों के कल्याणकामिनी, शत्रु स्त्री प्रलाप करें। ९—हे अर्बुदे ? तेरे शत्रु पर आक्रमण होने पर, तेरे देखते-देखते ही, भयावह मांसाहारी विकराल पक्षी, गृद्ध, बाज, चील कौये, गीध पक्षि आदि, शत्रु की मृत सेना का मांस खाकर तृप्त हों। १०—हे अर्बुदे ? तेरे प्रहार होते ही, शत्रु पक्ष के मुर्दों से, सब जानवर, मक्खियां, कीड़े सब तृप्त हो जावें। ११—हे अर्बुदे ? हे न्यर्बुदे ? तेरे शत्रु पर, प्रहार होने पर, तेरे देखते, देखते, शत्रुओं के प्राण, तुम्हारे वश में आ जावें। १२—हे अर्बुदे ? शत्रुओं को भयभीत कर दो, शत्रु भयभीत हो भाग खड़े हों कम्पित हों, कन्धों की पकड़ वाली भुजाओं से, और फेंकने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योग्य शस्त्रों से अरिदल को मार। १३–हे अर्बुदे ? तेरे प्रहार से, इन शत्रुओं के भुजबल शिथिल हो जावें। मानसिक संकल्प (अरमान) क्षीण हो जावें। इन शत्रुओं में से कोई भी न बचने पायें। १४–हे अर्बुदे ? तेरे प्रहार से शत्रु के वीर के मरने पर, शत्रु स्त्री, छाती और जघाओं को पीटती हुई, तैल रहित खुली चोटी से करुणाक्रन्दन करें।

१५–हे अर्बुदे ? कुत्तों को साथ लेकर चलने वाली स्त्रियां, और पात्र के अन्दर चाटने वाली, हिंसक, दुष्ट स्वभाव वाली कुत्तियां, ये सब तू शत्रुओं को दिखा देने को तय्यार कर और विध्वंसक अस्त्र भी दिखा। १६–आकाशचारिणी, लघु और लघु स्थानवासिनी घातिनी पक्षिका को दिखा। जो गुप्त, विध्वंसक अस्त्र हैं, उनका प्रयोग कर।

१७–गन्धर्व अप्सरा, सर्प, राक्षस, और इतर जन, चार दाढ़ों वाले, काले दांतों वाले, वड़े के तुल्य अण्डों वाले मुंह से रक्त गिराने वाले, जो भयङ्कर, भय प्रदायक हैं, उन सबको, शत्रुओं को दिखा। १८–हे अर्बुदे ? तू इन शत्रु सेना समुदायों को, कम्पित कर डाल। विजयी वीर, शत्रु को जीतें, और अपने राजा व मित्र सभी जीतें। १९–शत्रु घिरकर, कटकर, मर जावें। अपनी सेना के साथ, अग्नि ज्वालायें धूम शिखायें विजय करती हुई बढ़ी चलें। २०–हे अर्बुदे ? उस सेना से भगाये हुए शत्रुओं के, प्रमुख वीरों को, अपने समर्थ योद्धा मार डालें उनमें से कोई भी न बचने पाये।

२१–शत्रु हृदय, दहल उठें, शत्रु के प्राण, ऊपर ही ऊपर चल बसें, उनके मुंह सूख जावें, परन्तु हमारे मित्रों को ये कष्ट न छू पायें। २२-हे अर्बुदे ? जो धैर्यवान, या जो भीरु है, जो दूर भागने वाले, और जो वधिर हैं, जो मृत्युरूप अन्धकार से घिरे हुए हैं, और जो वकरों की भाँति जीवनयापन करने वाले है, उन सबको तू, शत्रुओं को दिखाने के लिये आगे रख, और सहारकारी अस्त्रों का प्रदर्शन कर। २३-अर्बुदि और त्रिसन्धि, ये हमारे वीर नायक, हमारे शत्रुओं को नष्ट कर दें। हे वृत्रहन्ता, शचीपति इन्द्र ? इन शत्रुओं को सहस्रों की सख्या में हम मार दें।

२४–हे अर्बुदे ? वनस्पतियों, और उससे बने द्रव्यों औषधियों, लताओं, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प देव पुण्यजन, पितृगण और अन्य सबको तू शत्रुओं को दिखा और विध्वंसक अस्त्रों का प्रदर्शन कर, जिन से शत्रु कम्पायमान हो जावें। २५–हे अर्बुदे ? तेरे प्रहार के उपरान्त शत्रुओं के निरीक्षण के उपरान्त, हमारे शत्रुओं पर, देवगण, सूर्य वृहस्पति, मरुद्गण, आधिपत्य करें इन्द्र अग्नि, धाता मित्र, प्रजापति ये सभी, तेरे शत्रुओं पर शासन करें, ऋषिगण शासित करें। २६–हे मित्रो ? हे देवजनो ? तुम उन सब शत्रुओं के अधिपति हो, उठो, तैय्यार हो जाओ, इस संग्राम में, श्रेष्ठ प्रकार से विजय प्राप्त करके, अपने २ देशों में जाकर सुख समृद्धि और शान्ति से निवास करो।

कां० ११ सू० १० ऋ० २७ भृग्वङ्गिराः ऋषिः। त्रिषन्धिः। देवता। अनुष्टुप् १ विराट्पथ्या बृहती, २ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुबार्भाति जगति। ३ बिराडास्तार पक्तिः, ४ विराट् त्रिष्टुप्, ९ पुरोविराट् पुरस्ताज्जयोतिस्त्रिष्टुप् १२ त्रिपदा पथ्यापंक्तिः, १३ षट्पदाजगती, १६ त्र्यवसानाषट्पदा ककुम्मत्यनुष्टुत्रिष्टुब्गर्भाशक्वरी, १७ पथ्यापंक्तिः, २१ त्रिपदा गायत्री, २२ विराट् पुकस्ताद्बृहतीः, २५ ककुभः, २६ प्रस्तारपक्तिः, छन्दासि। शत्रुपराजये शत्रुस्तम्भने स्वबलवर्द्धने विजये, स्वामीष्टसिद्धये होमे विनियोगः।

उत् तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह। सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥१

ईशां वो वेद राज्यं त्रिषंधे अरुणैः केतुभिः सह।

ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः। त्रिषंधेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥२

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः।

क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषंधिना ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु । त्रिषंधेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥४
उत् तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह । अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषंधेराहुतिः प्रिया ॥५
शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी । कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषंधेः सह सेनया ॥६
धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु । त्रिषंधेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥७
अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८
यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान्देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥९
बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः । असुरक्षयणं वधं त्रिषंधिं दिव्याश्रयन् ॥१०
येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः । त्रिषंधिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥११
सर्वांल्लोकान्त्समजयन्देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥१२
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान्हन्म्योजसा ॥१३
सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् । इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥१४
सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषंधेराहुतिः प्रिया । संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥१५
वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु । इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥१६
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७
क्रव्यादानुवर्तयन्मृत्युना च पुरोहितम् । त्रिषंधे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥१८
त्रिषंधे तमसा त्वममित्रान् परि वारय । पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९
शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥२०
मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अनया जहि सेनया ॥२१
यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि । ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥२२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये व॒र्मिणो॒ येऽव॒र्माणो॑ अ॒मित्रा॒ ये च॑ व॒र्मिणः॑ । सर्वा॒स्ताँ अ॑र्बुदे ह॒ताञ्छ्वानो॑ऽदन्तु॒ भूम्या॑म् ॥२३
ये र॒थिनो॒ ये अ॑र॒था अ॑सा॒दा ये च॑ सा॒दिनः॑ ।
सर्वा॑नदन्तु॒ तान् ह॒तान् गृध्राः॑ श्ये॒नाः प॑त॒त्रिणः॑ ॥२४
स॒हस्र॑कुणपा शेतामामि॒त्री सेना॑ सम॒रे व॒धाना॑म् । विवि॑द्धा ककु॒जाकृ॑ता ॥२५
म॒र्मा॒वि॒धं॑ रोरु॑वतं सुप॒र्णैर॒दन्तु॑ दु॒श्चितँ॑ मृदि॒तं शया॑नम् ।
य इ॒मां प्र॒तीची॑माहु॑तिम॒मित्रो॑ नो॒ युयु॑त्सति ॥२६
यां दे॒वा अ॑नु॒तिष्ठ॑न्ति॒ यस्या॒ नास्ति॑ वि॒राध॑नम् । तयेन्द्रो॑ हन्तु वृत्र॒हा वज्रे॑ण॒ त्रिष॑न्धिना ॥२७

कां ११ सू १० "उत्तिष्ठत" हे जीवन उत्सर्ग के उदार विचार वाले वीर सैनिकों ? अपने झण्डों के साथ उठो, तैय्यार हो जाओ। हे सर्पो ! और अन्य जनो ! हे राक्षसो ! हमारे (परतन्त्र बनानेवाले) शत्रुओं पर चढ़ाई कर दो। (२) हे त्रिषन्धि (त्रिशूल) वज्रधारी वीर ! लाल झण्डों के साथ आप समस्त अधिपतियों का ही ऐसा वह राज्य है ऐसा मैं मानता हूं। जो अन्तरिक्ष में, द्यौ और भूलोकों में मानव हैं, उनमें जो दुष्ट नामोंवाले (कुख्यात) हैं, उन सबका त्रिषन्धि वीर के चित्त में ध्यान रहे, अर्थात् उनका वे योग्य विचार करें। (३) त्रिसन्धि वज्र के साथ, लोहे के मुखबाले, सुई जैसी नोकवाले, कठोर कन्धो के तुल्य मुखवाले, मांस भक्षक, बायु वेग से जानेवाले वाण, शत्रुओं पर गिरें। (४) हे जातवेद? आदित्य ! तू शत्रू सेना को बड़ी संख्या में मार गिरा दे। त्रिसन्धि बज्रधारी यह सेना भली प्रकार मेरे अनुशासन में रहे। (५) हे देवपरायण शत्रुहन्ता वीर ! सेना के साथ उठ, तुम लोक के लिये ही यह शत्रु वलिरूप में लाया गया है। त्रिषन्धि वज्र को यह वलि की आहुति अत्यन्त प्रिय है।

(६) श्वेत पांववाली, चार पैरोंवाली, यह वाणों की पंक्ति शत्रुसंहार करे। हे कृत्ये ! संहारक त्रिषन्धि वज्रधारिणी सेना के साथ शत्रु दलन को तैय्यार हो। (७) धुये से पीड़ित नेत्रों वाली, शत्रु सेना गिर जावे कानों में (मरण सन्देश के) क्लेश से शत्रु रुदन करता रहे। त्रिषन्धि वज्रधारिणी सेना की जय होने पर, लाल झण्डे फहरा उठें। (८) जो द्यु लोक और अन्तरिक्ष लोकों में भ्रमण करते हैं, वे पक्षी इस ओर आ जावें। हिंसक पशु, मक्खियाँ, शत्रु के मृतकों को खाने में जुट जावें। कच्चा मांस खानेवाले गृद्ध, मुर्दों को खा जावें। (९) हे देवगुरो ! इन्द्र और व्रह्माजी के द्वारा जिस सन्धि को किया गया था। उसी के अन्तर्गत मैं समस्त देवगणों को, यहाँ आवाहित करता हूं, और निर्देश करता हूं, यहाँ जीत लो, वहां नहीं।

(१०) आङ्गिरस के वृहस्पति, और तपोघन ऋषिगण असुरसंहारक त्रिषन्धि वज्र का, द्यु लोक में सहारा लेते हैं। (११) जिसके द्वारा यह सूर्य, सुरक्षित हुआ है, इन्द्र और उपेन्द्र दोनों ही सुरक्षित रहते हैं, उस त्रिषन्धि वज्र को, बल, वीर्य, पराक्रम के लिये, देवों ने शिरोधार्य किया है।

(१२) आङ्गिरस वृहस्पति जी ने जिस असुरहन्ता वज्र को सींचकर तय्यार किया, उसी से शत्रुसेना का संहार करके सब देवों ने, सब लोकों पर विजय प्राप्त की। (१३) आङ्गिरस वृहस्पति जिस असुरसंहारक वज्र को, सींच कर तय्यार किया, उससे इस शत्रु सेना को नष्ट करता हूं। हे वृहस्पते ! तेरी सामर्थ्य से शत्रु सहार करता हूं।

(१४) जो वषट्कार (वलिवैश्व देव) से अन्न भक्षण करते हैं। वे सब देवगण ही शत्रु अतिक्रमण करते हैं। हे देवों ! इस आहुति को स्वीकार करो और यहाँ से शत्रु को पराजित करो, वहाँ से नहीं। (१५) सभी देवगण शत्रु का अतिक्रमण करें। त्रिसन्धि वज्र को वलिदान प्रिय है। जिससे प्रारम्भ में असुरों का पराभव किया था। उस बड़ी सन्धि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की ही तुम सब मिलकर रक्षा करो। (१६) वायु शत्रु के वाणों के अग्रभाग को नष्ट करदे। इन्द्र इनकी भुजाओं को काट दें। वाण मनुष्यों पर लगाने को तय्यार न हो, सूर्य इनके अस्त्रों का नाश करें, चन्द्रमा अप्राप्य शत्रु का [बीच ही में] मार्ग रोक दें। [१७] यदि शत्रुरूप राक्षस, यहाँ से दूर भाग गये हैं और उन्होंने सूज-बूझ से कवचों को तय्यार किया है; और शरीर के रक्षण और ग्रामादि सभी रक्षण करते हुए जो संगठन कर रहे हैं, उन सबको नीरस बना दो।]१८] हे त्रिषन्धे ! मांसाहारियों को घेरकर, मृत्यु के सम्मुख कर, सेना के साथ आगे बढ़ो। शत्रुओं को जीतकर अपने अधीन करो। [१६] हे त्रिषन्धे ! तू शत्रुओं को [तमशास्त्र] से वेर, संहारक; आज्याहुति से प्रेरित हुए इन शत्रुओं में से कोई भी न बचने पाये।

[२०] श्वेत पादवाली शक्ति, शत्रुओं की इस सेना पर पड़े। हे न्यर्बुदे ! आज ये शत्रु की सेनायें सम्मोह-नास्त्र से मोहित हो जावें। [२१] हे न्यर्बुदे ! शत्रु किं कर्त्तव्यविमूढ़ हो जावें, इनके सचालकों का पराभव कर, और उनको इस सेना से मार डाल। [२२] जो रक्षा कवच धारी हैं और जो विना कवचों के हैं. जो रथों में हैं, या जो पैदल हैं, वे सब शत्रु प्रत्यंचा के पाश, कवचों के पाश, और रथ के आघातों से घायल होकर गिर जावें।

[२३] जो कवचधारी या बिना कवचों के, वे कवचधारी शत्रु हैं, हे अर्बुदे ! उन सब मारे हुओं को, भूमि पर कुत्ते खायें। [२४] जो रथ वाले या विरथी है, जो घुड़सवार या बिना घोड़ों के मारे गये शत्रु हों उनको श्येनादि पक्षी खा जावें। [२५] युद्ध में मारी गई शत्रु सेना शस्त्रों से विंधी, विकृत आकारों की होकर गिरे।

[२६] जो शत्रु हमारी इस पूर्वाभिमुख आई हुई, सैन्य की आहुति के साथ युद्ध करना चाहता है, वाणों से मर्मोच्छेदन के कारण, रोनेवाले, खिन्नमना, मर्दित होने के कारण, भूमि पर पड़े, उन शत्रुओं को हिंसक पशु खायें। (२७) जिसका देव अनुष्ठान करते हैं, जिसका विरोध नहीं होता, उसके द्वारा तथा त्रिषन्धि बज्र से, वृत्रासुरहन्ता इन्द्र शत्रु का संहार करे।

"अवमन्युः" कां. ६ सू. ६५ की ३ ऋचाओं से संग्राम जयार्थ—आज्यहोम, सक्तुहोम धनुष की समिधाओं से अग्नि में समिधादान करें। अभिमन्त्रित कर धनुष प्रदान करें। इन कर्मों के करने से शत्रु भाग खड़ा होता है। अपराजितगण अभयगण से होम करें। (कौ. २।५; १४।३)

इनसे शत्रु का क्रोध क्षीण होता है। शस्त्रों की शक्ति क्षीण हो जाती है। मनोबल क्षीण होता है। सामर्थ्य हीन हो जाता है।

कां. ६ सू. ६५ अथर्वा। चन्द्रमा (इन्द्रः) पराशरः। अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्तिः। उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः।

अव॒ म॒न्युर॒वाय॒ताव॑ बा॒हू म॑नो॒युजा॑।

परा॑शर॒ त्वं तेषा॑ं परा॒ञ्चं शुष्म॑मर्द॒याधा॑ नो र॒यिमा कृ॑धि ॥१

नि॒र्ह॑स्तेभ्यो नैर्ह॒स्तं यं दे॑वाः शरु॒मस्य॑थ। वृ॒श्चामि॒ शत्रू॑णां बा॒हून॒नेन॑ ह॒विषा॒हम् ॥२

इन्द्र॑श्चकार प्रथ॒मं नै॑र्ह॒स्तमसु॑रेभ्यः। जय॑न्तु॒ सत्वा॑नो॒ मम॑ स्थि॒रेणेन्द्रे॑ण मे॒दिना॑ ॥३

"निर्हस्तः" कां. ६ सू. ६६ का विनियोग ६।६५ की भाँति सग्राम जयार्थ ही है। इन ऋचाओं से पर सेना को डराने, तथा उनमें परस्पर विद्वेष कराने हेतु स्वदल की ३ परिक्रमा इसके पाठ के साथ करें। इसी के साथ 'इन्द्रो जयति" ६।६८ भी अन्य कार्यों के साथ परिक्रमा के क्रम में हैं। इसी में "परिवर्त्मानि" ६।६७ भी है। इससे शत्रुदल कर्त्तव्यकार्य विवेक रहित हो जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. ६ सू. ६६ अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप्छन्दः, परदल विद्वेषणार्थे, त्रासार्थे, शत्रुदल पलायनार्थे, सत्तु होमे एव सेनायः पगत्रय प्रस्थाने, उपस्थाने च विनियोगः ।

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥१
आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ । निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥२
निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि । अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥३

कां. ६ सू. ६७ अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप्, उपर्युक्त कर्मणि, अपराजितगण, अभयगण कर्मणि च विनियोगः ।

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥१
मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः । तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२
ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि । पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपैषतु ॥३

"अभिभूः" ६।६७; "इन्द्रोजयाति" ६।६८ "अभित्वेन्द्र" ६।६६ इनसे भी उपरोक्त कर्म करने से उपरोक्त समस्त कार्यों की सिद्धि होती है ।*"नमोदेववधेभ्यः" ६।१३ से संग्राम जयार्थ पूर्वोक्त समस्त कार्य करें तथा अपने दल के चारों ओर चारों दिशाओं में इससे उपस्थान करें । कौ. २।५ । वृहच्छान्तिगण में पढ़ें ।

"अजरंक्षत्रम्" (कां. ६ सू. ८९) अथर्वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, २ वृहतीगर्भास्तार पंक्तिच्छन्दः,शत्रुसेना-विपक्षदले; तयोः पारस्परिक द्वेषोत्पन्नार्थे कां. ६ सू. ६७ "परिवर्क्तनि" परसैन्यपरिक्रमणे, सत्तु होमे, अपराजितगण, अभयगण कर्मसु होमे उपस्थाने च विनियोगः ।

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्योऽ भवेह ॥१
त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥२
प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहन्छत्रुहोऽऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥३

कां. ६ सू. ६६ अथर्वा । इन्द्रः, सोमः, सविता च । अनुष्टुप्, भुरिग्वृहती (सौम्यासावित्री) छन्दांसि उपर्युक्त गणकर्मसु विनियोगः ।

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे । ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥१
यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते । इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥२
परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः। देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये॥३

॥ इति कर्मज भवव्याधि–दैवीचिकित्सायां पञ्चमोऽध्यायः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तच्छंयोरा वृंणीमहे गातुं यज्ञायं गातुं यज्ञपंतये । दैवीं स्वस्तिरंस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः ।
ऊर्ध्वं जिंगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुंष्पदे ॥

अथ कर्मजभवव्याधि दैवी-चिकित्सायां संकटमोचन, अभ्युदयः निश्रेयसप्राप्तिर्नाम

षष्ठो अध्याय

आथर्वणिक मणि धारणम् :—

विविध ज्योतिष शास्त्रोक्त तथा वैदिक धार्मिक साहित्य में मणि धारण का उल्लेख, विविध भांति से वर्णित है। यहाँ आथर्वणिक, आङ्गिरस, जीवनप्रद, जीवनोपयोगी, निरोगता, स्वस्थता, दीर्घायु, समृद्धि, ओज, बल, वीर्य, तेज-वर्द्धक; कुछ औषधि विशेष से निर्मित; मणियों का जनसाधारण के सर्वतोन्मुखी कल्याण; पारस्परिक प्रगाढ़ प्रेम; और सतत उभय लोक कल्याणार्थं दिग्दर्शन किया जा रहा है। इस ग्रन्थ में विविध प्रकरणो में पीछे भी कुछ मणियों के उल्लेख हो चुके हैं।

वरणमणि (विल्व) :—

अ० वे० कां० १० सू० ३ "अयं मे वरणोमणिः" कौ० सू० अ० २ कं० १० सू० २ में वर्णित वरणशब्द का अर्थ कौ० अ० १ कं० ८ सूक्त १५ में निर्दिष्ट वरण का अर्थ भाष्यकार दारिल (वरण-विल्वौप्रसिद्धौ) करते है। वरणवृक्ष प्राचीन शारदापीठ ग्राम टिक्कड़ के पहाड़ पर भगवती रागनादेवी के मन्दिर पर खड़े हैं। यह मणि मेधाजनन में, पुष्टि कर्म में, गले में बाँधने का निर्देश है। कौ० अ० ३ कं० १९ सूत्र २२ में भी ऐसा ही माना है। एक मुखी रुद्राक्ष तथा विल्व की मणिका अर्थात् माला का बीज जैसा बनाकर शीशा-लौह-स्वर्ण के तारों में १०१ बार मढ़कर (लपेटकर, बीच के छिद्र को सोने से मढ़कर पूर्वोक्तविधि से धारण करें।

कां. १० सू. ६ [१-३५] वृहस्पतिः। फालमणिः, वनस्पतिः; ३ आपः। अनुष्टुप् १ ४:-१ गायत्री; ५ षट्पदा जगती; ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी; ७-१० त्र्यवसाना अष्टपदा शक्वरी ३१ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ३५ पञ्चपदा त्र्यनुष्टुप्गर्भा जगती। छन्दांसि मणि अनुमन्त्रणे, अवधारणे उपस्थाने विनियोगः।

अरातीयोर्भ्रातृंव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरंः। अपि वृश्चाम्योजंसा ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्म् मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति । पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२
यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥३
हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् । गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥४
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याऽय कम् ।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥७
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥८
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥९
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥११
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः ।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यमबंध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः ।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः ।
स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१४
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् ।
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाँल्लोकान् युधाजयन् ।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम् ।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१७
ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत । संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥१८
अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत । प्राजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः ॥१९
अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत ।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२०
तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यऽकल्पयत् । तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२१
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२२
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥२३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥२४
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ॥२५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥२६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्याऽ सह ॥२७
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८
तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये । अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥२९
ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधरां अकः ॥३०
उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः । यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥३१
यं देवाः पितरो मनुष्याऽ उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥३२
यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति । एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥३३
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् । तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥३४
एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥३५

फल :—सपत्न, द्वेषी तथा शत्रुओं को दमन करनेवाली, बल-वीर्य वर्द्धक चोर, आततताई, वधिकों का संहार-कर्त्री असुरादिकृत अभिचार, माया को नष्ट करनेवाली विश्वभेषज है । कृत्या विनाशक, शाप तथा जन्मान्तरीय पापों से रक्षा करनेवाली यक्ष्मघ्नी; दु:स्वप्न जनितारिष्ट निवारिणी, नैर्ऋतिदोष शमनकरनेवाली, अपमृत्यु, अपशकुन निवारिणी; जिस स्त्री को रज ही न हो उस दोष को दूर करनेवाली, द्विपाद, चतुष्पाद, सरीसृपादि के भय निवारण में समर्थ कीर्ति-भूति यश, तेज, ओज प्रदायक है । विशेष मन्त्र में ही घोषणा की गई है । इसको उपर्युक्त विधि से धारण करें ।

कां. १० सू. ६ 'आरातीयो'' (१) शत्रु, कृतघ्न दुष्टहृदयी (ईर्ष्यालु) विश्वासघाती. कपटी (द्वेषी) का शिर मैं वेग के साथ काटता हूँ । (२) वरणवृक्ष (रुद्राक्ष, विल्व) के पत्तों, पुष्पों, वल्कल, जड़ों और फलों की बनी हुई यह मणि, मेरी कवच के समान रक्षा करेगी । मन्थन की हुई रसों से युक्त, बल-वीर्य से परिपूर्ण होने के कारण, पूर्ण शक्तिशाली यह मणि मुझे प्राप्त हुई है ।

(३) जो तुझे कुशल कार्मिक (बढई) शस्त्रयुक्त हस्त से मारता है, उससे जीवनप्रद पावनजल (रस) तुझ पवित्र हृदय वीर को पवित्र बनायें । (४) यह मणि, स्वर्णमालयुक्त (अथवा स्वर्ण तापी जल के साथ) श्रद्धा भक्ति, यश और महत्व को धारण करे और हमारे घर में पूज्य अतिथि जैसा होकर विराजे ।

(५) उसके लिये घृत, वृष्टि जल, शहद और अन्न हम प्रदान करते हैं । वह हमें पिता जैसे पुत्रों को प्रदान करता है, वैसे ही परम कल्याण करें । यह मणि देवों के पास से, यहाँ आकर पुकार २ और प्रतिदिन हमें सुख प्रदान करे । (६) फलों के स्वरसों (फाल) से उत्पन्न; घृतपूर्ण; खदिर से बनी, वीरता बढ़ानेवाली, यह मणि है । जिसको बल,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वीर्य देवगुरु बृहस्पति ने बाँधा था। उसे अग्नि मुझे धारण कराये। वह इसके लिये प्रतिदिन बारम्बार घृत प्रदान करें। उससे तू शत्रुओं का विध्वंस कर।

(७) फाल से उत्पन्न; घी से भरपूर, खदिर की बनाई गई वीरतावर्द्धक यह मणि है। जिसे बलवृद्धि के लिये वृहस्पति ने बाँधा था। उसे इन्द्र मुझे ओज, वीर्य और सुख के लिये प्रदान करें। मुझ पर धारण कराये, वह इसके लिये प्रतिदिन बार २ बल देवे, उससे तू अत्रुओं का विध्वंस कर।

(८) उपर्युक्त विशेषताओं वाली मणि को, महत्व, श्रोत्र, और दृष्टि सम्वर्द्धनार्थ सोम मुझे धारण करायें। वह इसके लिये प्रतिदिन बार २ वर्चस्व प्रदान करे, उससे तू शत्रुओं का विध्वस कर। (९) उपर्युक्त मणि को सूर्यदेव, इस पर भी बाँधें, जिससे यह समस्त दिशाओं को जीते, वह इसके लिये प्रतिदिन. बार २, दिन-रात ऐश्वर्य देवे, उससे तू शत्रुओं का महार कर। (१०) उपर्युक्त मणिधारण कर्त्ता चन्द्रमा, असुरों और दानवों की स्वर्णयुक्त नगरियों को पराजित करता है। वह इसके लिये प्रतिदिन, बार-बार विजयश्री प्रदान करे। उससे तू शत्रुओं का विनाश कर।

(११) उपर्युक्त मणि को गतिशील वायु की शक्ति प्राप्त करने के लिये वृहस्पति ने बाँधा था। वह इसके लिये प्रतिदिन बार-बार अश्व प्रदान करे। उससे तू शत्रुओं का विध्वंस कर। (१२) जिस मणि को, गतिशील वायु की शक्ति प्राप्त करने के लिये वृहस्पति ने बाँधा था। उस मणि से अश्विनीदेव, इस खेती की रक्षा करते हैं। वह इन वैद्यों के द्वारा इसे प्रतिदिन; बार २ अन्नादि भोग्य पदार्थ देता है। उससे तू शत्रु संहार कर।

(१३) जिस मणि को, गतिमय वायु की शक्ति प्राप्त्यर्थ वृहस्पति ने बाँधा था। उसको सविता देव ने धारण किया था, उससे स्वार्गिक तेज का यजन किया। उसने इसके लिये, प्रतिदिन और बार-बार सत्य का दोहन किया। उससे तू शत्रु संहार कर। (१४) उस उपर्युक्त मणि को जलधारण करते हैं और सदा अक्षय होकर दौड़ते हैं। उसने इनके लिये प्रतिदिन बार-बार अमृत ही दुहा। उससे तू भी शत्रु संहार कर।

(१५) उपर्युक्त सुखदा मणि को राजा वरुण ने धारण किया और उससे प्रतिविन, बार २ सत्य का दोहन किया उससे तू शत्रु संहार कर। (१६) उसी मणि को देवों ने धारण किया और उससे युद्ध कर सब लोकों को जीत लिया, उससे इनके लिये प्रतिदिन बार-बार विजय का दोहन किया। उससे तू भी शत्रु विध्वंस कर।

(१७) उसी मणि को देवों ने धारण किया और उसने उसके लिये प्रतिदिन बार-बार सुख का दोहन किया। उसी से तू भी संहार कर। (१८) उसको ऋतुयें बाँधती रहीं, ऋतुओं से उत्पन्न पदार्थों ने उसको बाँधा। सम्वत्सर उसको बांधकर सर्वभूत मात्र की रक्षा करता है।

(१९) उस मणि को अन्तर्दिशाओं ने बाँधा और दिशाओं ने भी उसे बाँधा। यह प्रजापति द्वारा निर्मित मणि मेरे शत्रुओं का अधःपतन करती है। (२०) अथर्वा जी ने और अथर्वाणिकों ने भी इसे बाँधा था। उससे बलवान हुए अङ्गिरषगोत्रीयों ने, चौर कर्मियों के नगरों का भेदन किया है। उसीसे तू अपने शत्रुओं को परास्त कर। (२१) उसे धाता ने धारण किया था। उससे समस्त भूतों (प्राणिवर्ग) के सृजन में समर्थ हुए। उसी के बल से तू अपने अरिदल का दलन कर। (२२) जिस असूरसंहारिणी मणि को देवों के लिये वृहस्पति ने धारण किया था। वह मणि मेरे पास, रस और तेज के साथ आई है। (२३) जिस असुर संहारक मणि को देवों के लिये देवगुरू ने बाँधा था। वह मेरे पास गौ, बकरी, भेड़, अन्न और बीर संतति प्रजा के साथ आई है।

(२४) वह उपर्युक्त मणि चावल, जौ तथा ऐश्वर्य के साथ मेरे पास आई है। (२५) वही मणि मेरे पास घी शहद और पेय की धाराओं के साथ आई है। (२६) वही मणि मेरे पास, दूध, धन और श्री के साथ आई है।

(२७) वही यह मणि सब ऐश्वर्यों के साथ मेरे पास आई है। (२८) इसी मणि को पुष्टयर्थ देवता मुझे देवें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२९) यह शत्रुनाशक, क्षात्र तेज बढ़ानेवाली, बैरी विध्वंशक मणि है। (३०) ज्ञान और तेज के साथ मैं इस कल्याण कारिणी मणि को धारण करता हूँ। यह मणि शत्रुरहित और शत्रुघातिनी है। इसने मेरे शत्रुओं का षराभव किया है। (३१) यह देवों से उत्पन्न मणि, मुझे शत्रुओं से अधिक उत्तम अवस्था में रक्खे। जिससे दोहन किया हुआ सार (तथ्य) ही ये तीनों लोक प्राप्त करते हैं। वह यह मणि मुझे श्रेष्ठ उच्चस्तरीय स्थान प्राप्त कराये। (३२) जिस पर देव, पितर और मनुष्य सभी, सदा ही निर्भर रहते हैं, वह श्रेष्ठ स्थान पर मुझे चढ़ाये।

(३३) फाल से जुती हुई भूमि में, जैसे बीज उत्पन्न होता है। वैसे ही मेरे पास सन्तान, पशु और अन्न की बहुलता होवे। (३४) हे यज्ञ वर्द्धन मणे! तुझ क्षेमकरी मणि को जिस पर भी मैं धारण कराऊँ। है सैंकड़ों प्रकार की दक्षिणा देनेवाली मणि उसे श्रेष्ठता और अभ्युदय प्रदान कर। (३५) हे अग्ने! जाज्वल्यमान ज्ञानरूपी ईंधन का सेवन करता हुआ यज्ञ आहुतियों से प्रवृद्ध हों। उस ज्ञानाग्नि के प्रदीप्त होने पर हम उत्तम मति, श्रेय सन्तति, दृष्टि और पशुओं (इन्द्रियों) कौ प्राप्त करें।

अभिवर्तमणि—कां० १ सू० २९ "अभीवर्तेनमणिना" कौ॰ अ० २ कां० १६ सूत्र २८ "अभीवर्तेनेति-रथनेमि मणिमयः सीसलोहरजत ताम्रवेष्टित्तं हेम नाभि वासितं वध्द्र्वा सूत्रोक्तं बर्हिषि कृत्वा सपातवन्तं प्रत्यूचंभृष्टी रभोवर्तो-त्तमाभ्यांमाचृतति। इसमें भाष्यकार दारिल का मत है कि "रथचक्रस्य वाह्यपुष्ठिस्तदवयय-पुष्टि ३-मण्याकारं कृत्वा-एतैः अयः तन्मणिं वेष्टयित्वा-नाभिमणिद्वारं सुवर्ण द्वारं कृत्वा।

स्पष्ट है युद्ध में काम आनेबाले रथ की नेमि (वाह्यपुष्टि के भाग तीन की मणि के आकार का बनालें, सीस, लौह, रजत, ताम्र से युक्त तारों या पत्र से उसे ढकें, बीच में द्वार को स्वर्ण से ढ़कें, प्राण-प्रतिष्ठा कर (कौ.सू.अ. १ क. ७ सूत्र १९) के अनुसार त्रयोदशी से प्रारम्भ तीन रात्रि पर्यन्त गोदधि और मधु मिलाकर उसी में रहने दें - नित्य "अभीवर्तेनमणिना" (१-२९) की ऋचा (५-६) से अभिमन्त्रित करते रहें। तीन रात्रि के उपरान्त निकालें पूरे सूक्त से अभिमन्त्रित करें। धूप आदि दें, पुनः ऋचा १।२९ की ५ "उदसौ सूर्यो" (६) "सपत्नक्षयणं" को जपते हुए धारण करें, दधि मधु को खा लें। मणियों के अभिमन्त्रण में त्रयोदशी से ३ रात्रि का तथा मधुप्राशन का कर्म सर्वत्र ही समझें, केवल तत्तदमणि के सूक्तों से अभिमन्त्रण में ही भेद रहेगा।

इस मणि को विश्वावजयेच्छु, विश्वाधिपत्यकामी-राजा या सेनाध्यक्ष धारण करें। निश्चित आश्चर्यप्रद सफलता प्रदायक है। त्रिवट दर्भ की रस्सी को मणि के छिद्र में पुरो कर बाँधें तो इसका प्रभाव बहुत बढ़ जाता है।

राजा को दास बनाकर; जिस राष्ट्र से शत्रु ने निकाल दिया हो, वह निकाला हुआ राजा अ० वे० (३।३-१) तथा (३।४-१) से भी उपरोक्त मणि का अभिमन्त्रण करें। तथा निकाले हुए क्षेत्र से जौ, धान, जल, दर्भादि युक्त अभिमन्त्रित कर खीर पुरोडास से गृहाग्नि में ही स्थाली पाक होंम इन्हीं दो सूक्तों से करे, (पुरोडास खीर) अभिमन्त्रित कर भक्षणकर शयन करे।

१-६ वसिष्ठः। ब्रह्मणस्पतिः, अभीवर्तमणिः। अनुष्टुप्। अभीवर्तमणि अनुमन्त्रणे विनियोगः।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे। तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥१

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः। अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्। अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः। राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः। यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः । यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ।।६

कां.१ सू. २९। अभीवर्तन (१) यह अभीवर्तमणि, राजा के राजदण्ड छत्र चँवर की भाँति ही एक "राजचिह्न" है। इसे पुरोहित राजा के शरीर पर उपर्युक्त भाँति से राजा के प्रार्थना करने पर धारण कराता है।

१—हे ज्ञाननिधे ! जिसमणि से इन्द्र ने विजय प्राप्त की थी, उस विजय श्री मणि को, राष्ट्र सम्बर्द्धनार्थ हमें अलंकृत कराने की कृपा कीजिए। २—जो हमारे अनुदार शत्रु और प्रतिपक्षी वैरियों को परास्त करने के लिए है। जो हम से दुष्टता का व्यवहार करता है; तथा दास (पराधीन) बनाने के लिए, सेना से हम पर आक्रमण करता है, उनसे युद्ध करने के लिए स्थिर हो आगे बढ़। ३—हे राजन् ! सूर्य, चन्द्र तथा सब भूत, तुम्हारी सहायता कर रहे है, जिससे तुम शत्रु को दबा सकते हो। ४—हे पुरोहित ! यह राजचिह्न रूपीमणि शत्रु को घेरने; वैरी का पराभव करने, और प्रति पक्षियों को हटाने का सामर्थ्य देने वाली है। इस कारण विरोधियों का पराभव और अपने राष्ट्र के अभ्युदय करने के कार्य में मुझे समर्थ बनाने के लिए, मुझ पर यह मणि बाँध दीजिए। ५—जैसे सूर्य उदय होता है; वैसे ही मेरे अन्तःकरण में शब्दों का प्रकाश होता है। इस कारण आप ऐसा मार्ग दर्शन कर क्रियान्वित करें; कि उससे मैं शत्रु का नाश कर, प्रतिपक्षी का घात करता होकर; अजात शत्रु हो जाऊँ। ६—मैं बलिष्ठ बनकर; प्रतिपक्षियों को दूर करूँ; और विजयी होकर अपने राष्ट्र के अनुकूल कार्य करता हुआ; अपने वीरों, और अपने राष्ट्र का हित कर सकूँ। यहाँ पुरोहित ब्राह्मशक्ति और राजा क्षात्रबल का प्रतिनिधि है ऐसा समझें।

अ० वे० कांड सू० ३ व ४ "अचिक्रदत्" इनसे शत्रु के द्वारा राष्ट्र से बाहर निकाले गये, राजा के पुनः अपने ही पूर्ववर्ती राज्य में प्रवेश कराने हेतु, शत्रु सेना की आकृति रूप (चावल के भात को) बनायें। प्रथम पानी में अभिमन्त्रित दाभ (कुशा) बिछायें, उन पर भात को उडेल दें, उस पर शत्रु सेना कृति कल्पित कर बनायें। स्नानकर राजा, उपर्युक्त पुरोडास (भात) को स्नानार्थ मिट्टी के डेलों से पूर्ण अच्छादित कर दें। उपर्युक्त सूक्त के साथ कां. ३ सू. ४ "आत्वागम्" से सारा कर्म भात आदि तैयार करें, कुशा बिछायें भात उडेल ले, शत्रु सेना कृति बनायें। डेलों से ढकें और भात दूध (पृथक्-पृथक्) मिला अभिमन्त्रित कर पुरोहित स्वराजा को खिलायें।

कां. ३ सू. ३ [१-६] अथर्वा। १अग्निः, २इन्द्रः, ३ वरुणः सोमः इन्द्रः, ४ श्येनः अश्विनौ, ५ इन्द्राग्नी, विश्वे देवाः, ६ इन्द्रः। त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा भुरिक्पङ्क्तिः, ५-६ अनुष्टुप्। सौत्रामणियज्ञे, सौत्रामणि अवधारणे च विनियोगः।

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ।।१
दूरे चित्सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
यद्गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ।।२
अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ।।३
श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ।।४
ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत । इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ।।५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्तु हवं विवदत्सजातो यश्च निष्ट्यः । अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ॥६

"अ० कां० ३ सूत्र ३" समस्त आप्त महापुरुषों ने बार-बार विविध प्रकार यह घोषणायें की हैं, कि इस जगत् में, मनुष्य को अपना संरक्षण स्वयं करना ही अनिवार्य है। "आजादी की खातिर, काम हमीं को करना होगा, जीना होगा, मरना होगा)" । हे अग्ने ! विस्तीर्ण द्यावापृथिवी में अपना तेज फैला। सर्वज्ञ मरुद्गण तुझे योग्य शक्तिमान बनायें, उसको सन्मान (राजचिह्नों और राष्ट्रीय सन्मान) के साथ, अपनी राजगद्दी पर विराजमान करें।

२—राजा के सुदूर देश में चले जाने पर भी, पुरोहित राजा को, तेजस्वी शूरवीरों के सहयोग से पुनः ले आवें। क्योंकि सब देव सौत्रामणि धारण योग के द्वारा गायत्री, वृहती रूपअर्चन इसके लिए धारण करते हैं। सौत्रामणि के विषय में (तै० सं० ५।६।३।४) का उल्लेख है। सौत्रामणि यागा। बिखरी शक्ति को एकत्रित करने के लिए करने का प्राविधान किया है। ३—समुद्रादि जल स्थानों की अन्तर्राष्ट्रीय रक्षा के लिए जलाधिपति (वरुण) पर्वतीय प्रदेशों की रक्षा के लिए पर्वताधिकारी (सोम) प्रजाजनों की रक्षा के लिए मनुष्याधिपति (गृह विभागाध्यक्ष) सम्राट् को परीक्षा के लिए ससम्मान आमन्त्रित करें। उन प्रजाजनों और उनके अधिपतियों की प्रार्थनाओं, मङ्गलकामनाओं के लिए, जहाँ ससम्मान वे बुलायें, श्येन पक्षी की भाँति तत्परता से आ। ४—शत्रु द्वारा निकाले गये, अन्य देश में छिपकर घूमने वाले, अपने पूजनीय राजा (सम्राट्) को, श्येन पक्षी के वेग के समान तत्परता से जाने वाले प्रजाजन, दूसरे देश से ले आवें। दोनों आश्विनी देव तेरा मार्ग सुखद आगमन योग्य बनावें। सजातीय लोग निष्ठा और प्रेम से इस (सम्राट्) को प्रविष्ट करायें। ५—सभी प्रकार के प्रजाजन उसको बुलायें सहायता करें, मित्र तेरा बल बढ़ायें। इन्द्राग्नि और सब देव प्रजाजनों में तेरे लिए सद्भावना, निष्ठा, विश्वास उत्पन्न कर। —हे नरेन्द्र ! जो सजातीय है, और जो विजातीय हैं, तेरा विरोध करने वाले भी क्यों न हो, सभी अपने बहिष्कृत प्रजा पालक सम्राट् का सन्मान करें, उससे पूर्व आक्रामक राजा को बहिष्कार करके पश्चात् इस सम्राट् को यहाँ लायें।

कां० ३, सू० ४। १–७ अथर्वा। इन्द्रः, २ पञ्च प्रदिशः, ३ अग्निः, ४ अश्विनौ, मित्रावरुणौ, विश्वे देवाः, मरुतः, ५ द्यावापृथिवी। त्रिष्टुप्, १ जगती, ४-५ भुरिक्। उपर्युक्त कां. ३ सू. ४ तृतीय सूक्त निर्दिष्ट कर्मसु विनियोगः।

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्योऽ भवेह ॥१
त्वां विशो वृणतां राज्याऽय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२
अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥३
अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु।
अधा मनो वसदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥४
आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ॥५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्रेन्द्र मनुष्या३ः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः ।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥६
पथ्याऽ रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य वरीयस्ते अक्रन् ।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥७

कां० ३ सू० ४ "आत्वागन्राष्ट्र" हे राजन् ! यह तेरा राष्ट्र अब तुझको पुनः प्राप्त हुआ है। अब तू अपने क्षात्र तेज को प्रकाशित कर और प्रजाजनों का एकमात्र हृदय सम्राट् होकर राज्य सिंहासन पर विराजमान हो। सब दिशा और उपदिशाओं में रहने वाले प्रजाजन सब लोग तुझे ही पसन्द करें। तू भी राष्ट्र के परमोच्च ऐश्वर्ययुक्त राजपद पर आरूढ़ होकर वीर बनकर; हम सबके लिए सुलभता से स्नेह से मिलने वाला होकर, सबका पूजनीय हो। २—सब प्रजाजन राज्य संचालनार्थ, तुझे ही स्वीकार करें। सब दिशा और उपदिशाओं के निवासी प्रजाजन तुझे ही पसन्द करें। तू राष्ट्र के परमोच्च ऐश्वर्यवान् राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होकर; वीर बनकर, हम सबके लिए धन को योग्य विभाग से बाँट दें। ३—तुझे चाहने वाले सजातीय लोग, ससम्मान तेरे ही पक्ष में रहें। तेरे तेजस्वी चर, देश विदेशों में संचार करें। तेरे राष्ट्र में पति, पत्नियाँ और पुत्रगण सभी परस्पर उत्तम मनों वाले अनुशासनवान् परस्पर प्रीतिवान् हों। तू शूरवीरता के साथ बहुत भेंटों को प्राप्त कर।

४—मित्रवरुण, विश्वदेवा, मरुद्‌गण, आश्विनी द्वय एवं अन्य सभी देवगण और मरुद्‌गण, सर्वप्रथम तेरा आवाहन करें। तत्पश्चात् तू धन दान करने को अपना मन स्थिर कर और शूरवीरता के साथ हम सब में योग्य विभाग से धन बाँट दे। ५—यदि तू दूर प्रदेश में चला गया हो तो अपने राष्ट्र में शीघ्रता से आ। द्यावापृथिवी दोनों ही तेरा कल्याण करें, उसी प्रकार वरुण भी तेरा आवाहन करते हैं। इस प्रकार सबका बुलाया गया तू इस राष्ट्र को प्राप्त कर। ६—हे महाराजा ! तू साधारण मनुष्यों के समान, अपने को समझ सर्वत्र भ्रमण कर; और राष्ट्र के वरिष्ठजनों से मिलकर, सारी बातें ठीक समझ। इस प्रकार से सभी तुझे आदर से अपने यहाँ बुलायेंगे और यज्ञ याग आदि भी करेंगे। ऐसे प्रजाजनों में घुल मिलकर सारी प्रजा को सामर्थ्य शाली बना, सन्मार्गगामिनी धनी, बहु भाँति से विविध रूप वाली, सारी प्रजायें, परस्पर मिलकर; एक भाव से तुझे श्रेष्ठ मानती है। वे सारी प्रजायें एक मत होकर तुझे बुलावे और पश्चात् तू यहाँ शूरवीर सहृदय होकर सौ वर्ष तक राज्य को अपने वश में रख।

शतवारो मणि—कां० १९ सू० ३६ से ३८ ये ३—सन्ततिप्रद, वीर्यस्तम्भनकर, गर्भपुष्टिकर, बहुदुग्धप्रद, ओज, वर्चवर्द्धक, कुलक्षयदोष निवारक हैं। "सन्तति नामशान्ति" नक्षत्रकल्प तथा शान्तिकल्पोक्त विधि से इन्हीं से की जाती है। शतावर को दुग्ध के साथ सेवन करें अभिमन्त्रित कर भुजा में भी धारण करने पर भी वही फल देती है।

इसके अग्रभाग से राक्षसादिभय, जड़ से यातुधानादि तथा मध्य ये यक्ष्मादि, त्वचा के रोग, दाद, खाज,; उलटे फोड़े, कान, नाक, नेत्र कर्णपुटी तथा जंघा के अन्तर्वर्ति (रोगों के) गुदा के भगन्दर आदि बवासीर आदि रोग, मृगी (हिस्टीरिया) आदि व्याधि निवारण होते हैं। सौन्दर्य वर्द्धक है।

भयङ्कर शब्द कारक यक्ष्म को शमन करने वाली है, गन्धर्व, अप्सरादि, कच्चेमांस खाने वाले, कीटाणुओं को नष्ट करने में समर्थ है राजयक्ष्मादि में अश्वत्थमूल की जटा, कुष्ठ, गुग्गुल, शतावर का मध्य तथा छाल को, तीनों सन्ध्याओं में, इन तीनों सूक्तों से अभिमन्त्रित कर धूप देने से यक्ष्मादि के कीटाणु नष्ट होते हैं, पशु आदि के कीट, बच्चों के पेट के कीट, (चनूना आदि) अनिष्ठ अरिष्ट परिहार होता है। जलदोष-कफजन्य समस्त दोष तथा जोर से भयङ्कर शब्द करने वाले रोगों तथा कुष्ठ रोग को, विविध कीटाणुओं को, नष्ट करती है। शरीर की चर्बी को कम करके पतला पुष्ट बनाती है। इसके प्रयोग अ० १ तथा ५।६ में पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूक्तों के अर्थों से स्पष्ट हो रहा है, सशय का स्थान ही निश्शेष है। यह ऋषिबल, देवबल तथा मन्त्रबल का चमत्कार प्रायः अनुभूत है। यह मान्त्रिकी भेषज है। शतावर के गुण-चरक, सुश्रुत आदि में औषधि प्रयोगों में भरे पड़े हैं।

कां. १९ सू. ३६ [१-६] ब्रह्मा। शतवारः। अनुष्टुप्। शतावरमणि उपर्युक्त भैषज्य कर्मसु अनुमन्त्रणे विनियोगः।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा। आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः। मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः। सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्। दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥४

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः। दुर्णाम्नः सर्वांस्तृढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्। शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥६

कां. १९ सू. ३७ १-४ अथर्वा। अग्निः। त्रिष्टुप्, २ आस्तारपङ्क्तिः, ३ त्रिपदा महाबृहती ४ पुरोष्णिक्। शतवार तथा गुग्गुल अभिमन्त्रणो विनियोगः।

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।

त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥१

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम्।

इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा। अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥३

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः। धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥४

कां. १९ सू. ३८ [१-३] अथर्वा। गुग्गुलः। अनुष्टुप्; २ चतुष्पदा उष्णिक्, ३ एकावसाना प्राजापत्यानुष्टुप्। अनुमन्त्रणे विनियोगः। इसके गुण, प्रयोग विधि अ० १ तथा अ० ४५।६ में पढ़ें।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते। यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥१

विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते। यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥२

उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥३

"अपक्रामन्" (७।(१०५)।११०) इससे उपनयन संस्कार में आदित्य उपस्थानानन्तर ब्रह्मचारी को पूर्वाभिमुख बिठायें। बिठाने में दोनों बाहुओं को पकड़ें। कां० ७।६

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः। प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥१

"यदस्मृतिः" (७।१११) इससे--ग्राम-गृह इत्यादि में दूसरे के दिए या भेजे सन्देश न देने के प्रायश्चित में—अग्नि का उपस्थान, होम करें। कां० ५।१० दर्शपूर्ण मास याग के विस्मरण होने के प्रायश्चितार्थ होम करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कौ० १।६ अग्निष्टोमादि महाव्रत प्रारम्भ दीक्षा में नियम—विधि, भाव, भक्ति लोप हो जाने के प्रायश्चित्तार्थ इसी से अग्नि का उपस्थान व होम करें। वै० ३।२

७।१०६।(१११) अथर्वा। जातवेदा वरुणश्चा वृहतीगर्भः त्रिष्टुप्।

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः।

ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥१

कां. ७।१०६ (११२) "यदस्मृति" हे जात वेद, सर्व प्रकाशमान देव? हम नित्य निरन्तर अहोरात्रों में, जो भी कुछ कार्य करते हैं। उनमें ज्ञात, अज्ञात, भाव, कुभावों के कारण अशुद्धियाँ, त्रुटियाँ करें प्रभो! आप उनके अपराधों को क्षमा करें और उनसे हमें बचायें। हमें हमारे प्रेमीजनों के साथ शुभ मार्ग से अमृतत्त्व प्राप्त हो।

"गायत्र्युष्णिक्" (१६।२१) तथा "छन्दोगण" (१६।२२), "गायत्र्यां समास" (१६।२३) से ब्रह्मचर्यहेतु गायत्री महाशान्ति के जप उपस्थान में विनियुक्त हैं (नं० क १७।१८) प्रयोग —गायत्र्यै स्वाहा, उष्णिहे स्वाहा, अनुष्टुभे स्वाहा, वृहत्यै स्वाहा, पङ्क्त्यै स्वाहाः त्रिष्टुभे स्वाहा, जगत्यै स्वाहा "आदि इन्दुजुषस्व" (२।५) के साथ प्रयोग करें। यही ऐन्द्री महाशान्ति हो जाती है।

कां. १६।२१ १ ब्रह्मा। छन्दासि। एकावसाना छिपदा साम्नी वृहती।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥१

"यन्मेछिद्रम्" (१६।४०) यह सातवां सूक्त "पुनर्मैत्विन्द्रियम्" (७।६६), 'मान आपो मेधां" (१६।४०-२), "मानो मेधां" (१६।४०-३) "मा न पीपारेदश्विना" (१६।४०-४), "यदस्मृति" (७।१११) से आज्य होम करें और भूर्भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् से अभिमन्त्रित कर कर्त्ता को गौदान करें। इस प्रकार यज्ञ, दान, ध्यान, मन्त्र, वाणी जन्य उच्चारण, आदि दोषों से नष्ट हुई पवित्रता पुनः प्राप्त होती है।

कां० १६।४० ब्रह्मा। वृहस्पतिः। १ पराऽनुष्टुम् त्रिष्टुप्ः २ पुरः ककुम्मत्यु परिष्टाद्वृहतीः। ३ वृहतीगर्भाः ४ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री उपर्युक्त कर्मषु विनियोगः।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम।

विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥१

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन। सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः।

शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥३

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासतामिषम् ॥४

(१६।४१) राष्ट्रं वलमोजश्च। १ ब्रह्मा। तपः। त्रिष्टुप्।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां. १६।४३ "यत्र ब्रह्मविदो" १-४ ब्रह्मा । १ अनुष्टुप् । २ त्र्यवसाना । ककुम्मती पथ्या पंक्ति । ३ त्रिष्टुप् । ४ जगती । मन्त्र कां. २ में पढ़ें ।

(७।१०७।११२) १ भृगु । सूर्यः आपः च । अनुष्टुप् । नैरुज्य प्राप्तये सूर्यार्घ्यदाने उपस्थाने जल भैषज्यादि अभिमन्त्रणे विनियोगः । मन्त्र यक्ष्म निवारण प्रकरण में पढ़ें ।

अव॑ दि॒वस्ता॑रयन्ति स॒प्त सूर्य॑स्य र॒श्मय॑ः । आप॑ः समु॒द्रिया॒ धारा॒स्तास्ते॑ श॒ल्यम॑सिस्रसन् ॥१

दुःखनिवारण; संकटमोचन, अभ्युदय

कौशिक सूत्र ७।६ में निर्दिष्ट गत दुःखनिवारण, संकटमोचन अनुक्रम १ में दिये गये सूर्योपस्थान का विधान है।' सूर्य परब्रह्म के पुत्र देवलोक में, तथा द्यु लोक में यज्ञ एवं भूलोक में अग्नि तथा नेत्रेन्द्रिय के रूप में आभासित होते हैं। इनकी ८ किरणों का विश्लेषण पूर्व विधिवत आ चुका है। नैरुज्यता, दीर्घायु, दुःखनिवारण, संकटमोचन, पापनिवारण तथा सतत अभ्युदय के लिये प्रातः सायं मध्याह्न सूर्योपस्थान अथर्व कां० १७।१ "विष्णासहिम्" पूरे ही अनुवाक् तथा "उदस्य केतव" कां. १३ सू.२, ४ एवं "मूर्द्धाऽहम्" कां. १६।३ से करें। इन्हीं से अद्‌भुद्दर्शन जनितारिष्ट, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, दुर्दिन निवारणार्थ होम; उपस्थान करें। ऐसा युवा कौशिक कां. १३.७ व ८ में निर्देश है।'

अथर्व परिशिष्ट ३१।६ के मत से 'श्रुत; तेज; धन; धान्य; विपुल, धन, रत्न, गौ, पशु, वाहन, पूर्ण आरोग्य, दीर्घायु तथा सतत् अभ्युदय के लिये इसी या इन्हीं उपर्युक्त अनुवाकों से होम कये इन्हीं से कोटि होम भी करें।

जुहुयुः शान्तवृक्षस्यसमिधोघृतसंयुता । स्वयं चापि यजेत् ब्रह्मासवितारंदिनेदिने ॥
पाकयज्ञविधानेनमन्त्राश्चस्युर्बिषासहिम । शान्तिकामोयवैः कुर्याततिलैःपापापनुत्तये ॥

यज्ञियशान्त वृक्षों की समिधा, घी, यव, तिलादि से, समस्त पाप निवारणार्थ, शान्ति होम, नित्य ब्रह्मा करें अथवा यजमान करायें "यः कामयेय सर्वेषांनृणाम्‌उत्तमस्याम्" गो० ब्रा० कुल, जाति, ग्राम, मण्डल, प्रदेश, या राष्ट्र में वय, यौवन, सौन्दर्य, सौख्य, आरोग्य, आयुष्य, धन, विद्या, वैभव, पुत्र, पौत्र, पशु, वाहन, प्रतिष्ठा आदि में, सर्वोपरि होने की कामना वाले, इसी या इन्हीं अनुवाकों से, प्रातः मध्याह्न सायं सूर्योपस्थान होम उपर्युक्त भाँतिसे करें तथा उत्तरायणमकर तथा मेष के सूर्य संक्रमणकाल में विशेषकर सूर्यदेव के प्रीत्यर्थपाक विधान से तिलयुक्त मण्डलाकार अपूपों पर स्वर्ण रख. रक्त (गुडहल, रक्तकमल, केशर, लालकन्नेर के पुष्पों रक्त चन्दन से रङ्गे रक्तचावल; तथा रक्त चन्दन से इसी अनुवाक से ताम्र पात्र में जल अभिमन्त्रित कर, रक्त वस्त्र धारण करके अर्घ्य दें, उपस्थान करें, अपूपों को अभिमन्त्रित कर सूर्य सक्रमण या नित्य संक्रान्ति दिनों में अथवा आद्य व मासान्त संक्रान्ति के आद्यन्त में ब्राह्मणों को दान दें।

उपर्युक्त विधि तथा कार्यों से इन्हीं अनुवाकों से लोक, परलोक, लोकान्तरीय साधनभूत लक्षण फल प्राप्त होता है। ऋ० वे० ६।११३.७ **"यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम् । तस्मिन् मां धेहिपवमानामृते लोके अक्षिते"** । यह अनुवाकों के अन्त में प्रार्थना करें।

इसी उपर्युक्त, अर्घ्य, उपस्थान, होम, दान आदि के द्वारा **"समत्वमाराधनमाच्युतस्य । सममतिरात्मां सुहृद्विपक्षपक्षे । न हाति न चहन्ति किञ्चिद् उच्चैः** । ऋग्वेद ३।७।२० तथा च ।

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्यधर्मस्ययशसःश्रियः । ज्ञान वैराग्ययोश्चैवषण्णांभग इतीरणाः ॥"

समग्रऐश्वर्य, समग्रधर्म; समग्रयश, समग्रश्री; समग्र ज्ञान तथा समग्र वैराग्य इन छै गुणों से परिपूर्ण (भग) से समन्वित भगवान् का सायुज्य, भागवततत्व, ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। समस्त आधि-व्याधि; दुःख, दारिद्रय, दस्यु, वधिक, तस्कर, हिंसक, सरीसृप, दन्ती, नखिनी प्राणियों का भय भूत, रक्ष, यक्ष आदि तथा दुष्वप्नादि सभी शान्त हो मित्र तुल्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यवहार स्वतरां ही करते हैं। यह कां० १७ सू० १ जलसूक्त में भी परिगणित है इससे स्वस्तिवाचन, सामुद्रिक कर्म, अर्थोत्थापन अतिवर्षण, अवर्षण, नदी, नद समुद्र का नगर की ओर नये मार्ग से आना स्थगित होता है। इसके यन्त्र की पूजा कर धारण करने वाले तथा उपर्युक्त अनुष्ठानकर्त्ता की जल या आकाशमार्ग गमन की क्षमता हो जाती है। अर्थात् जल पर स्थलवत गमन, आकाश में पक्षि तुल्य संचार हो जाता है दिव्य वाणी, दिव्य दृष्टि, तथा हाथ में वर आदि अभिमर्शन मात्र से ही आधिव्याधि गमन की क्षमता हो जाती है। जैसाकि अ० वे० कां ४ सू० १३ मंत्र ६ "अयं मेहस्तो भगवानयं मेभगवत्तरः। अयं मेविश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः तथा "हस्ताभ्यांदशशाखाभ्यां जिह्वावाचा-पुरोगवी। अनामयित्नुभ्यां आभ्यांत्वाभिभृशामहि" ४।१३।७ हस्त, वाणी, दृष्टि तथा सत संकल्पमात्र से ही उपर्युक्त आधिव्याधियों के निराकरण की क्षमता साधक को होती है यह पूरा अनुवाक् लघु तथा वृहत् शान्तिगणों में उल्लखित है।

अभीष्टसिद्धि अभ्युदय, के लिये सूर्योपस्थान

कां १७ सू० १ अस्यब्रह्मा ऋषिः आदित्य देवता। १ जगती, १-८ त्र्यवसाना २-४ अतिजगति, ६,७,१६ अत्यष्टि, ९,११,१६ अतिधृति, ९ पञ्चपदाशक्वरी, १०,१३-१६-१८-१९-२४ त्र्यवसाना, १० अष्टपदाधृति, १० कृतिः, १३ प्रकृतिः, १४-१५ पंचपदाशक्वरी, पंचपदाविराडतिशक्वरी, १८ भुरिगष्टिः, २४ विराडत्यष्टि, १-५ षट्पदा, ११-१३,१६-१८,१९,२४ सप्तपदा, २० ककुप्, २१ चतुष्पदा उपरिष्टद्बृहती, २२ अनुष्टुप्, २३ निचृद्बृहती २५-२६ अनुष्टुप्। २७।३० जगती, २८-२९ त्रिष्टुप् छन्दासि सूर्योपस्थाने विनियोगः।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान्भूयासम् ॥१
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥२
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥३
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥४
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥५
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥६
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥७
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वंन्तर्ये पाशिनं उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशंस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥८
त्वं न इन्द्र महते सौभंगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥९
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमंपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१०
त्वमिन्द्रासि विश्वजित्सर्ववित्पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरंयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥११
अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानंमन्तरिंक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१२
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वाऽन्तरिंक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वाऽ शर्म यच्छ तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१३
त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१४
त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१५
त्वं रंक्षसे प्रदिशश्चतंस्रस्त्वं शोचिषा नभंसी वि भांसि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुत्रभिः पराङ् तपस्येकंयावाडशस्तिमेषि सुदिन बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१७
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१८
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥१९
शुक्रोऽऽसि भ्राजोऽऽसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥२०
रुचिरसि रोचोऽऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥२१
उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२
अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याऽणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥२४
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥२५
सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥२६
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥२७
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥२८
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥३०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काण्ड १६ में निर्दिष्ट दुःख सकट निवारण, विजय अभ्युदय प्राप्ति हेतु इससे आगे काण्ड १३ सूक्त १ "उदेहि वाजिन्यो" तथा सूक्त २ "उदस्यकेतवो" तथा ४ इनसे एक या सभी तीनों ही सूक्तों से सूर्योपस्थान का सूत्रकार का निर्देश है। महान् सकट में अचिन्त्य, अकल्प्य, अनुकूल परिणाम अनुभव में आये हैं।

कां० १७ सू० १ "विषासहिं" अत्यन्त सामर्थ्यशाली महावली, सतत विजयी, शत्रुदमन कर्त्ता, परम वलिष्ठ, पराक्रम से दिग्विजय करने वाला, स्व सामर्थ्य से विजय कर्त्ता, भूमि, इन्द्रिय एवं गौओं का विजयकर्त्ता, धनार्जित कर्त्ता वन्दनीय, यशोधन प्रभु की मैं आराधना करता हूँ; जिससे मैं दीर्घायुष्य वाला होऊँ। २—उपर्युक्त विशेष गुण, सयुक्त प्रभु की मैं वन्दना करता हूं। मैं देवों का प्रीतिपात्र बनूं। ३—उपर्युक्त ०।०।० प्रजाओं का मैं प्रिय होऊँ।

४—०।०।० पशुओं का मैं प्रिय होऊं। ५—०।०।० समान योग्यता वाले पुरुषों का भी मैं प्रिय होऊँ। ६—हे सूर्य उदय हो ? उदय को प्राप्त हो ? अपने तेज से उदय होकर, मुझ पर चारों ओर से प्रकाशित हो, मुझसे द्वेष करने वाला मेरे बस में होजावे। परन्तु मैं द्वेष करने वाले शत्रु के वश में कभी न होऊँ। हे विष्णो ! तेरे ही वीर्य अनेक प्रकार के हैं। तू हमें अनेक स्वरूप वाले पशुओं से परिपूर्ण कर। और महा आकाश में मुझे अमृत में स्थापित कर॥ ७—हे सूर्य ! उदय को प्राप्त हो, उदय हो; और अपने तेज से मुझे प्रकाशित कर। जिन प्राणियों को मैं देखता हूँ; उनके विषय में मुझे सुमति वाला कर (पूर्ववत्)।८। जलों के अन्दर जो पाशोंवाले आकर उपस्थित होते हैं, वे तुझे न दबायें। निन्दा का परित्याग कर, द्युलोक पर आरूढ़ हो, और वह तू हमें सुखी कर, हम तेरी सुमति में रहैं (पूर्ववत्)। ९—हे इन्द्र ! तू हम सबको बड़े सौभाग्य के लिए, अदम्य प्रकाशों से सभी ओर से सुरक्षित कर। (पूर्ववत्)।

१०—हे इन्द्र ! तू कल्याणमय, संरक्षणों से युक्त, हमें श्रेष्ठतर अभ्युदय करने वाला हो। द्युलोक पर आरूढ़ होकर, प्रकाश प्रदान करता हुआ, सोमपान और सुख-समृद्धि के लिये प्रिय धाम हो। (पूर्द्वंवत) ०।०। ११—हे इन्द्र ! तू जगद्विजय कर्त्ता, सर्वज्ञ, अत्यन्त प्रशंसित है। हे इन्द्र ! तू इस श्रेष्ठ विनम्र स्तुति करने वाले स्तोत्र को प्रेरित कर। (पूर्ववत)॥ १२—हे इन्द्र ! तू द्युलोक और इस भूलोक में किसी से भी नहीं दबता, अन्तरिक्ष में भी तेरी महामहिमा को कोई प्राप्त नहीं कर सकता। अदम्य ज्ञान से प्रबृद्धमान, द्युलोक में तू हमारा कल्याण कर। (पूर्ववत) ।०।०। १३—हे इन्द्र ! जो तेरा अंश जलों में हैं, जो पृथ्वी पर, और जो अग्नि में है; हे इन्द्र ! और भी जो तेरा अंश पावन कर्त्ता, प्रकाशमान द्युलोक में हैं। हे इन्द्र ! (जिस दिव्य स्वरूप से) अन्तरिक्ष में ब्याप्त है, उस दिव्य सूक्ष्म स्वरूप से हम सबका कल्याण कर (पूर्ववत) ०।०। १४—हे इन्द्र ! तेरी मन्त्रों से वन्दना करते हुये, प्रार्थी ऋषिगण, **'सत्र नामक यज्ञ'** में बैठते हैं। (पूर्ववत)॥ १५—हे सर्वव्यापक प्रभो ! तू तीनों लोकों में प्राप्त, सहस्त्र धाराओं से युक्त, विज्ञानमय, प्रकाशवान, स्तोत्ररूप (शब्द ब्रह्म मन्त्रों में) विराजमान है। [पूर्ववक] ०।०। १६—हे प्रभो ! आप चारों ही दिशाओं की रक्षा करते हो, अपने दिव्य तेज से आकाश को देदीप्त करते हो। आप इन सब प्राणिमात्र मे, यथानुकूल अवस्था में व्याप्त हो, सर्वज्ञता के साथ सत्यमार्गानुगामी हो [पूर्ववत ०।०]

१७—तुम अपनी पाचों शक्तियों से दूर भी तपते हो, और एक से पास भी तपते हो, और सुदिन में, अज्ञानावरण रूप अन्धकार को हटाते हुए आगे बढ़ते हो [पूर्ववत ०।०।] १८—हे देव ! तू इन्द्र है, तू ही महेन्द्र है, तू लोक प्रकाश पूर्ण प्रजापति है। यज्ञों का प्रसार आपही के लिये है। सात्विक जन तेरे लिये ही आत्म समर्पण रूप आहुतियां प्रदान करते हैं। १९. असत, प्रकृति [माया] में सत [शक्तिरूप] आत्मास्थित है। सत अर्थात् आत्मा में ही, उत्पन्न हुआ सारा जगत अवस्थित है : भूत, भविष्य में आश्रित है। होने वाला भविष्य ही भूत विगत में प्रतिष्ठित है। [पूर्ववत०।०।] २०. तू तेजोमय, प्रकाशमान है, वही तू जैसा तेजस्वी है वैसे ही मैं [जीवात्मा भी] परम तेज से प्रकाशित होऊँ। २१. तू प्रकाशमान, देदीप्यमान है। वह तू जैसे तेज से तेजस्वी है, वैसे ही मैं पशुओं में [इन्द्रियगणों में] विज्ञानमय तेज से प्रकाशित होऊँ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२२. प्रगट हुए को प्रणाम है, ऊपर आने वाले को प्रणाम, उदय को प्राप्त होने वाले को प्रणाम, विशेष देदीप्यमान को प्रणाम, स्व प्रकाश से ही प्रकाशित करने वाले को प्रणाम, श्रेष्ठ प्रकाश स्वरूप को प्रणाम । २३. अस्तंगत को प्रणाम, अस्त हुए को प्रणाम, अस्तगतवान् को प्रणाम, विशेष तेजोमय परम प्रकाशस्वरूप और तेज से उदीयमान को प्रणाम । २४. यह सूर्य सम्पूर्ण तेज के साथ उदित है, मेरे कल्याणार्थ मेरे अहित कर्त्ता शत्रु समुदाय को वश में करता हैं । परन्तु मैं कभी शत्रु के बश में न होऊँ । हे व्यापक देव ! तेरे ही ये सब पराक्रम हैं तू हम सबको, अनन्तरूपों वाले पशुओं [इन्द्रियगण] से परिपूर्ण कर, और महापरम आकाश में विद्यमान अमृत में मुझे धारण कर । २५. हे आदित्यदेव ! हमारे कल्याणार्थ अनन्त आरों वाली नौका पर आरूढ़ हो । मुझे दिन के समय पारकर, रात्रि के समय पारकर । २६. हे सूर्य ! तू हमारे कल्याणार्थ नौका पर सवार हों, हमैं दिन और रात्रि के समय में पारकर । २७. मैं प्रजापति के ज्ञानरूप "कवच" से आवृत होकर, और सर्वद्रष्टा प्रभु के तेज और पराक्रम से, समन्वित हों, वृद्धावस्था पर्यन्त, वीर्यवान हो विविध, वेदविहित कर्मों से युक्त होकर, सहस्रायु पूर्णायुष्यवान हो, शुभ कर्म करता रहूं ।

२८. "ज्ञानकवच" से भली भांति ढके हुए, जो दिव्य [दैवी] या मानवीय वाण मेरे वध के लिये गये हों वे सर्वद्रष्टा महाप्रभु के परम तेज और पराक्रम से संयुक्त हो, मुझे प्राप्त न हों, न उनसे मेरा वध ही होवे । २९. सत्य से सुरक्षित, भूत और भविष्य से पूर्णतया सुरक्षित होकर मैं यहां [भूलोक में] विचरूँ । पाप या तज्जन्य मृत्यु रूप अन्धकार मुझे प्राप्त न हो, मैं अपनी अन्तरात्मा की वाणी [शब्द] को पवित्र जीवन के अन्तर्गत करता हूँ । वाणी की पवित्रता सत्य, प्रिय, वेदवाणी की पावनता, पावन जीवनचर्या से संयुक्त करता हुं । ३०. सर्व संरक्षण कर्त्ता वैश्वानराग्नि, विश्व के सभी प्राणीमात्र से, सब ओर से सभी प्रकार से मेरी रक्षा करे । उदय हुआ सूर्य १०१—मृत्युपाशों को दूर करे । प्रकाशित उषायें, और स्थिर पर्वतों की भांति सहस्रों बलों से सम्पन्न प्राण मेरे अन्दर सतत फैलाये रक्खें ।

"अभ्युदय निश्श्रेयस प्राप्ति"

कां० १३ सू० १ "उदेहिवाजिन्" निम्न संलग्न तथा कां० १३ सू० २ "उदस्यकेतवः", कां० १३ सू० ३ "य इमे द्यावा" एवं कां० १७ सू० १ "विषासहिम" ये सवितृ देवता परक हैं । "य इमे द्यावा" यह रोहित देवता का ही है । इसकी ऋचा १३, १४, १५, १६, १७, १८ और १९ वें मन्त्रों में विस्पष्ट सूर्य के घोड़े के स्वरूप की ही कल्पना की गई है । चिर स्वास्थ्य, नीरोग्यता, चिरायुष्य, सतत अभ्युदय, वर्चस्व, दौर्भाग्यनाश, सौभाग्य समृद्धि तथा अर्थोत्थापनादि के हेतु लाल रेशमी वस्त्र धारणकर, रक्तचन्दन युक्त चावल, रक्तचन्दन, रक्त (कन्नेर, गुड़हल, केशर अर्कादि)के पुष्प ताम्रपात्र में डालें और उत्तरदिशा के जल से पूर्ण भरें, अरुण सूर्य को अर्घ्य दें । ब्रह्मचर्य से रहे, निरामिष, मदिरापान आदि का परित्याग करें । इनसे सूर्योन्मुख हों, सूर्य देवता का उपस्थान करें । अर्थ सिद्धि के प्रयोजन से एकही वस्त्र धारण कर उपस्थान का विधान है इस कर्म में वस्त्रधारण से पूर्व "अर्थो मम सिद्ध्यताम्" से अभिमन्त्रित कर वस्त्र धारण करें । कां० ६ सू० ६२ "वैश्वानरो रश्मिभिः" इस उत्तम, तथा वाचस्पतिर्लिङ्गा" कां० १३ सू० १ की १ से २० ऋचाओं से अर्थ सिद्धि हेतु उपस्थान करें । इसी की ऋचा (मंत्र २५, २६ "दो" योरोहित" सलिलगण (स्वस्त्ययनगण) कर्म में विहित हैं । "समिद्धा' मंत्र २८ से ३२ से अग्नि में समिधा दान का विधान हैं । ये कां० १३ सू० १ की ही है । कां० १३ सू० २ "उदस्य केतव" सलिलगण स्वस्त्ययनगण कर्म में भी है ।

"अभिचार कर्म विधि"

आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेषादि समस्त आन्तरिक, वाह्य, प्रशासनिक, राजनयिक, न्यायिक, विपत्ति, मरणादि संकट दुर्गति नैर्ऋतिजनित आपदायें १०१मृत्युओं के निराकरणार्थ ही अभिचार कर्म अ.५के "य इमे द्यावा"१३।३से करें । चतुरास्ता की मिट्टी को अपने वायें पैर के जल से मिलायें, द्वेषी की प्रतिमा बना, प्राण प्रतिष्ठा कर सन्मुख दक्षिण को पैर उत्तर को शिर कर रक्खे । द्वेषी को लाल चावलों का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भात दूध और सिन्दूर मिला, इसी से अभिमन्त्रित करें। इसी से कच्चे मिट्टी के पात्र में सिन्दूर मिला हाथ धुलायें। पांशुरज निर्मित "वृषभ" वना प्राणप्रतिष्ठा पूजाकर द्वेषी के सम्मुख छोड़ें (कल्पना करें)। पूर्व द्वेषी की बनी प्रतिमा को अग्नि के पीछे खम्भे में बाँधे और वृषभ को द्वेषी के शिर पर होकर उतारें। कां० १३ सूक्त ३ ऋ० ६ 'यस्मिन्षडुर्वी' से ऋचा १० तक से ब्रह्मास्त्र का प्रहार करें (उद्वज्र के जल को कुशा से छोड़ें) ऋचा ७ "यो अन्नादो" से अभिमन्त्रित जल का द्वेष के मूल कारण के संकल्प को मन में धारण कर, आचमन कराये। कां. १३।१ की 'समिद्धो अग्नि" ऋचा २८ से ३२ तक "य इमे द्यावा" कां. १३।३ "अजैष्म:" कां. १६।६से मुंज, माञ्ज, काँस आदि के पाशों को अभिमन्त्रित कर पैरों में बाँधे। स्वयं टूटी या ओलों से टूटी हुई; पीपल या ऐरण्ड, करीर या धनुष की लकड़ियों को प्रतिमा में छेदें, उनसे प्रताड़ित करें, गर्म कर प्रताडन करें। यह १२ दिन करें, ६ दिन वज्र, उद्वज्र इसी ब्रह्मास्त्र या पाशुपदास्त्र के जल का प्रहार करें। इसी से त्रासित कर उसकी भर्त्सना करें, सातवें दिन आचमन करें। यह अमोघ प्रयोग है, निष्फल नहीं जाता। सामान्य जीवों पर करने से कर्त्ता का तप, ब्रह्मवर्चं क्षीण हो जायगा। विचार कर प्रयोग करें। यह राष्ट्र को आक्रमण कर दास बनाने की कुचेष्टा करें ऐसे ही, उन देश द्रोहियों, राजा, राष्ट्रनायक, सेना नायक आदि के प्रति ही उसके पराभव, वलक्षयार्थं अपने विजार्थं ही करें।

अध्यात्म-प्रकरणम्

(कां० १३ सू० १ मन्त्र ६०) ब्रह्मा। अध्यात्मं, रोहितादित्यदेवते (३ मरुत्, २८-३१ अग्नि:, ३१ वहु देवत्या)। त्रिष्टुप्, ३-५, ६, १२, १५ जगती (१५ अतिजागतगर्भा), ८ भुरिक्, १७ पंचपदा ककुम्भती जगती, १३ अतिशाक्वरगर्भाति जगती, १४ त्रिपदापुर: परशाक्करा विपरीतपाद लक्ष्मा पंक्ति:, १८-१६ पञ्चपदा ककुम्भत्यति जगती (१८ परशाक्कराभुरिक्, १६ परातिजागता) २१ (आर्यी निवृन्दायनी), २२-२३,२७ प्राकृता, २६ विराट्पुरोष्णिक्, २८-३८ (२८ भूरिक्) ३२,३६,४०,५५,५८ ककुष्टम् (५२-५५) पथ्यापंक्ति, ५५ ककुम्भती बृहतीगर्भा, ५७ ककुम्मती ३१ पञ्चपदा ककुम्भती शक्कर गर्भा जगती, ३५ उपरिष्टाद्वृहती, ३६ निवृन्महावृहती, ३७ परशाक्करा त्रिराऽतिजगती, ४२ विराड् जगती, ४३ विराण्महावृहती, ४४ पुरोष्णिक्, ५६-०, गायत्री। [अथाष्टाविंशतितम: प्रपाठक: ॥२८॥]

उदेहि वाजिन्यो अप्स्वं१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत्।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वां राष्ट्राय सुभृतं विभर्तु ॥१

उद्वाज आ गन्यो अप्स्वं१न्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥२

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
आ वो रोहितः शृणवत्सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥३

रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम्।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन्षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥४

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद्व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत्।
तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥५

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्र॑ शि॒श्रि॒ये॒ऽज एक॑पादो॒ऽदृंह॒द् द्यावा॑पृथि॒वी बले॑न ॥६
रोहि॑तो॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॑दृंह॒त्तेन॒ स्व॑ऽस्तभि॒तं तेन॒ नाकः॑ ।
तेना॒न्तरि॑क्षं॒ विमि॑ता॒ रजां॑सि॒ तेन॑ दे॒वा अ॒मृत॒मन्व॑विन्दन् ॥७
वि रोहि॑तो अमृशद्वि॒श्वरू॑पं समाकु॒र्वा॒णः प्र॒रुहो॒ रुह॑श्च ।
दिवं॑ रू॒ढ्वा म॑ह॒ता म॑हि॒म्ना सं ते॑ रा॒ष्ट्रम॑नक्तु॒ पय॑सा घृ॒तेन॑ ॥८
यास्ते॒ रुहः॑ प्र॒रुहो॒ यास्त॑ आ॒रुहो॒ याभि॑रापृ॒णासि॒ दिव॑म॒न्तरि॑क्षम् ।
तासां॒ ब्रह्म॑णा॒ पय॑सा वावृधा॒नो वि॒शि रा॒ष्ट्रे जा॑गृहि॒ रोहि॑तस्य ॥९
यास्ते॒ विश॒स्तप॑सः संबभू॒वुर्व॒त्सं गा॑य॒त्रीमनु॒ ता इ॒हागुः॑ ।
तास्त्वा॑ विश॒न्तु॒ मन॑सा शि॒वेन॒ संमा॑ता व॒त्सो अ॒भ्ये॑तु॒ रोहि॑तः ॥१०
ऊ॒र्ध्वो रोहि॑तो॒ अधि॒ नाके॑ अस्था॒द् विश्वा॑ रू॒पाणि॑ ज॒नय॒न् युवा॑ क॒विः ।
ति॒ग्मेना॒ग्निर्ज्योति॑षा॒ वि भा॑ति तृ॒तीये॑ चक्रे॒ रज॑सि प्रि॒याणि॑ ॥११
स॒हस्र॑शृङ्गो वृष॒भो जा॒तवे॑दा घृ॒ताहु॑तः॒ सोम॑पृष्ठः सु॒वीरः॑ ।
मा मा॑ हासीन्नाथि॒तो नेत् त्वा॒ जहा॑नि गोपो॒षं च॑ मे वीरपो॒षं च॑ धेहि ॥१२
रोहि॑तो य॒ज्ञस्य॑ जनि॒ता मुखं॑ च॒ रोहि॑ताय वा॒चा श्रोत्रे॑ण॒ मन॑सा जुहोमि ।
रोहि॑तं दे॒वा य॑न्ति सुमन॒स्यमा॑ना॒ स मा॒ रोहैः॑ सामि॒त्ये रो॑हयतु ॥१३
रोहि॑तो य॒ज्ञं व्य॑ऽदधाद् वि॒श्वक॑र्मणे॒ तस्मा॒त् तेजां॒स्युप॑ मे॒मान्याग॑ुः ।
वो॒चेयं॑ ते॒ नाभि॒ं भुव॑न॒स्याधि॑ म॒ज्मनि॑ ॥१४
आ त्वा॑ रुरोह बृह॒त्यु॒ऽत प॒ङ्क्तिरा क॒कुब् वर्च॑सा जातवेदः ।
आ त्वा॑ रुरोहो॒ष्णिहा॒क्षरो॒ व॑षट्का॒र आ त्वा॑ रुरोह॒ रोहि॑तो॒ रेत॑सा स॒ह ॥१५
अ॒यं व॑स्ते॒ गर्भं॑ पृथि॒व्या दिवं॑ वस्ते॒ऽयम॒न्तरि॑क्षम् ।
अ॒यं ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपि॒ स्व॑ऽर्लो॒कान् व्या॑ऽनशे ॥१६
वाच॑स्पते पृथि॒वी नः॑ स्यो॒ना स्यो॒ना योनि॒स्तल्पा॑ नः सु॒शेवा॑ ।
इ॒हैव प्रा॒णः स॒ख्ये नो॑ अस्तु॒ तं त्वा॑ परमे॒ष्ठिन् पर्य॒ग्निरायु॑षा॒ वर्च॑सा दधातु ॥१७
वाच॑स्पत ऋ॒तवः॒ पञ्च॒ ये नौ॑ वैश्वक॒र्म॒णाः परि॒ ये सं॑बभू॒वुः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥१८
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥१९
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥२०
यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः ॥२१
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥२२
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥२३
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥२४
यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥२५
रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् । सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥२६
वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥२७
समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान्हन्तु ये मम ॥२८
हन्त्वेनान्प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति । क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान्प्र दहामसि ॥२९
अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् । अधा सपत्नान्मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥३०
अग्ने सपत्नानधरान्पादयास्मद्व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥३१
उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि । अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥३२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यऽर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥३३
दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥३४
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥३५
उत्त्वां यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति । तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ॥३६
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥३७
यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥३८
अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि । इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९
देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे । समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥४०
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्वऽ स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥४२
आरोहन् द्यामममृतः प्राव मे वचः ।
उत् त्वां यज्ञा ब्रह्मपता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥४३
वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि । यत् ते सधस्थं परमे व्योऽमन् ॥४४
सूर्यो द्यां सर्यः पृथिवीं सर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥४५
उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पयत् । तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥४६
हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् । वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४७
स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥४८

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४९

सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्व१न्यः समिध्यते । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५०

यं वातः परिशुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५१

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।

घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥५२

वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत । तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥५३

गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।

त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यऽम् ॥५४

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।

तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥५५

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।

तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५६

यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।

तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५७

यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति । दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥५८

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥५९

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ॥६०

(कां. १३ सू. १ व २) के देवता (रोहित) अर्थात् आदित्य है। इस सूक्त में "आदित्य" "सूर्य" ही प्रमुख देवता है। इसी के (१३।१-२२-२३) में "रोहिणी" नक्षत्र रोहिणी का घर कहा गया है। (कां. १३।२।३९) में 'रोहित' काल अथःत् "समय" का पर्यायवाची है। इसी मन्त्र में "रोहित" यज्ञों का मुख कहा गया है। कां० १३ सू० ३ म० २६ में स्पष्टतया "रोहित" सूर्य का नाम कहा है। "रोहित" अग्नि अर्थात् यज्ञ का उत्पादक (कां० १३।१।१३) मन्त्र में कहा है। इन अग्नि के विषय में ग्रन्थ में वार-वार उल्लेख हैं कि पृथ्वी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में विद्युत, द्युलोक में सूर्य, ये ३ अग्नियों का वेदों में बहुधा उल्लेख है। (का० १३।४।१-५) सूर्य ही अग्नि और विद्युत है। (का० १३।४(१.५) बहीधाता, विधाता वायु, वरुण, रुद्र, महादेव, अग्नि, सूर्य और महायम है ऐसा वर्णित है। (वा० य० ४०।१६) "योऽसावादित्य पुरुषः सोऽसावहम्" जो सूर्य के अन्दर पुरुष है, वह मैं हूँ। सूर्य मेरा पिता मैं उसका "अमृत पुत्र" हूँ। आदित्य का सत्व, ही मुझमें है। मेरी परमगति आदित्य और मेरा प्रारम्भ भी आदित्य में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही है। (तै० उ० ३।१) जिससे सब भूत उत्पन्न हो, जीवित रह, अन्त में जिसमें मिलते हैं, वह ही "ब्रह्म" है। (कौ० उ० २।१२), (छां० उ० ३।१९ १ व ४), (तै० उ० २।८-१, ३।१०-४) (मै० उ० ६।२४), (महानि० उ० २३।१), (वृ० उ० २।१।२, ३।१३), (मै० उ० ६।१६, २४) में स्पष्ट वर्णित है, 'जो यह सूर्य दृष्टिगोचर हो रहा है, वह ही ब्रह्म प्रकाशता है। आदित्य "ब्रह्म" है। आदित्य का आत्मा ब्रह्म है। ब्रह्म तेजोमय सूर्य के ही रङ्ग का है। (कां० १३।५-१६,१८) वह एक है, दूसरा तीसरा, चौथा, पांचवाँ, छटा, सातवाँ, आठवाँ, नववाँ, दसवाँ आदि नहीं, अपितु एकमात्र अकेला ही है। (कां० १३।६-२५,२८) वही मृत्यु, अमृत, बड़ादेव, रक्षक और राक्षस एव रुद्र हैं। नक्षत्र, चन्द्रादि उसकी शक्ति से चलते हैं। इस सम्बन्ध में अध्याय १ में तथा कां० ३ ब्रह्म विद्या, प्राण विद्या प्रकरण में पर्याप्त उल्लेख है। उन्हीं "रोहित" का अथर्व कां० १३ सू० १,२,३,४,५,६,७,८,९ एवं कां० ७ सू० १ में वृहद् वर्णन है। यह उभय लोकों को जीव के अभ्युदय की अनूठी स्वप्रामाण्य, प्रत्यक्ष, दैवी अमोघ शक्ति है। इसे योगी, ज्ञानी वीतराग, परमहंस ब्रह्मवेत्ता, वेदविद, सभी धर्मावलम्बी, सनातन, अप्रेयशक्ति के रूप में मानते हुए, आराधना करते आ रहे हैं। वही "रोहित" जीवनीय शक्ति है। अ. ५ में अ० कां० १३।३ तथा अ. ६ में कां० १७ सू० १ की प्रयोग विधियाँ और भाव आचुका है, उसी सन्दर्भ में इनका गहनता से मनन करना कल्याण प्रद होगा। "यत्पिण्डेतद्ब्रह्माण्डे"

मन्त्र १ — हे समर्थ आत्मदेव ! आप उदय को प्राप्त हो। जो आपोमय प्राणों के भी परे हैं, वह आप, इस प्रिय राष्ट्र में प्रविष्ट हो ! जिस परमदेव ने यह विश्व उत्पन्न किया है, वह तुझे इस राष्ट्र के लिए, उत्तम भरण, पोषणार्थ धारण करे। (प्रत्येक अभ्युदय, निश्रेयस प्राप्त करे सभी राष्ट्रोन्नति के साथ आत्मोन्नति प्राप्त करे। जगत स्रष्टा सूर्य, राष्ट्रीय उन्नति के लिए हृष्ट पुष्ट करेंगे। २—जो आपोमय प्राणों के अन्दर विद्यमान हैं, वह सामर्थ्य ऊपर आ गया है। जो तेरी सहधर्मिणी, सजातीय प्रजायें हैं, उनमें तू उच्चस्थान में अवस्थित हो। इस राष्ट्र में सोमादि बनस्पतियों का पोषण करते हुए, जल, औषधियाँ, गौओं, चतुष्पाद और द्विपाद आदि सभी प्राणि वर्ग को निवा सका।

३—हे मृत्यु पर्यन्त सघर्षरत वीरो, मरुद्गणों ? आप समी महान् पराक्रमी, राष्ट्री भूमि को अपनी माता मानने वाले, आप इन्द्र के साथ मिलकर शत्रुओं का संहार करो। हे परम दानवीरो ! ये सूर्यदेव आपकी प्रार्थना स्वीकार करें। आप* तीन गुणसात् अर्थात् २९ प्रकार के वीर उत्तम आनन्द प्रदाता हैं।* प्रथम अध्याय तथा अ० ३ प्राणविद्या में विस्पष्ट पढ़ें। ४ – तेजोमय सूर्यदेव उच्च शिखर पर विराजमान हुआ है, अर्थात् स्त्रियों की गोदों में यह गर्भ बैठ गया है। छः दिशाओं से इनके द्वारा परिबर्द्धित गर्भ को धारण किया है। यह आत्मोन्नति का मार्ग स्वयं जानता हुआ राष्ट्र को भी उन्नत करता है। ५—यह सूर्यदेव ही, तेरे राष्ट्र को उन्नत स्थिति में लाया है। उसी ने शत्रुओं को दूर किया, और तेरे लिए निर्भयता हो गई है। उस तेरे हित के लिए (राष्ट्रवासियो के लिए) धन और शक्तियों द्वारा, ये द्युलोक और पृथिवी की यहाँ (इस राष्ट्र में रहने वालों के लिए) यथेष्ट उपभोग प्रदान करें।

६—इस सूर्यदेव ने इस द्युलोक और पृथिवी को उत्पन्न किया है। वहाँ परब्रह्म ने सूत्ररूप आत्मा को फैलाया है। वहाँ एकपाद जीवात्मा ने आश्रय लिया है। उसी ने अपने बल से इस पृथ्वी को सुदृढ़ बनाया है।

७—सूर्यदेव ने ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और पृथिवी लोक को सुदृढ़ बनाया है। उसी ने स्वर्ग नामक सुखपूर्ण लोक ऊपर (अधर ही में) थाम रक्खा है। उसने अन्तरिक्ष लोक को बनाया, और उसी के द्वारा सब देवों को अमरत्व प्राप्त हुआ है। ८—सूर्यदेव ने ऊँचे और नीचे सब दिशाओं को इकट्ठा करके, विश्व के रूप को बनाने का विचार किया। वह अपने ही महान् सामर्थ्य से, द्युलोक पर आरूढ़ होकर, तेरे राष्ट्र को घी और दूध से परिपूर्ण करें।

९—जो तुम्हारे आगे, पीछे और ऊपर बढ़ाने के मार्ग हैं, जिनके द्वारा तू द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक को परिपूर्ण करता है। उनके बल बर्द्धक रस से बढ़ता हुआ, तू सूर्यदेव की प्रजा में, और राष्ट्र में सतत् जाग्रत रह।

१०—तेरे तेज से जो प्रजायें उत्पन्न हो गई हैं, वे प्रजायें यहाँ सन्तान और अपने प्राणत्राण सम्बन्धी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यापार के अनुकूल होकर चलती हैं। वे प्रजायें शुभ सङ्कल्प युक्त मन से तेरे अन्दर प्रविष्ट हों। माता और सूर्य-रूपी बछड़ा मिलकर आगे बढ़े। ११—तरुण ज्ञानी सब जगत् के रूप को प्रकाशित करता हुआ, सूर्य ऊपर स्वर्ग में ठहरा हुआ है। अग्नि प्रचण्ड प्रकाश से प्रकाशित होता है। तीसरे अन्तरिक्ष लोक में प्रिय पदार्थों को बनाता है।

१२—उत्पन्न हुए या होने वाले समस्त पदार्थ मात्र का जानने वाला, हजारों ही किरणों से युक्त वृष्टि करने वाला, घृताहुतियाँ स्वीकार करने वाला, सोम का हवन जिस पर होता है, ऐसा श्रेष्ठ वीर यह है। वह प्रार्थना करने पर, मेरा परित्याग न करे। तुझे निश्चय से ही मैं नहीं त्यागूँगा। इससे मेरी गौयें और सन्तानें हृष्ट-पुष्ट होती है।

१३—सूर्य नारायण यज्ञ के जनक, यज्ञ के मुख हैं। मैं बाणी से (स्तुति) श्रोत्रों से (कीर्ति श्रवण और मन से, उन सूर्यदेव का हवन (आराधना) करता हूँ। शुद्ध अन्तःकरण वाले देव सूर्य को प्राप्त करते हैं। वे मेरे पर कृपा करें और सभाओं द्वारा मुझे उन्नतिशील बनायें। १४—सूर्यदेव ने विश्व कर्मों के लिए यज्ञ का प्राकट्य किया है। उस यज्ञ कर्म से तेज ओज मुझे प्राप्त हुए हैं। अतः इस भुवन के महत्व के बीच तेरा ही प्रमुख स्थान है, ऐसा मैं कहता हूँ। १५—समस्त उत्पन्न हुए, होने वालों के ज्ञाता तुझ पर बृहती, पंक्ति, ककुब्, उष्णिक, बषट्कार आदि सभी अपने तेजों के साथ चढ़े हैं, मानों वह उन्हीं में सन्निविष्ट है। १६—यही एक देव, पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक में विद्यमान है। वह द्युलोक के उच्चस्थान (महामेरु) में रहता हुआ, सभी में व्याप्त है। १७—हे वाणी के अधि-पति ? हमारे लिए, पृथ्वी, घर शय्या, बिछौना आदि सभी उपभोग्य पदार्थ सुखप्रद हों। हम में प्राण दीर्घकाल तक रहें, और वह प्राण हमें दीर्घायु, तेज, ओज, बल के साथ प्राप्त हो। १८—हे वाचस्पते ? जो विविध कर्मों के स्रष्टा पञ्च ऋतु हैं, वे हमारे सहयोगी हों, हे परमेष्ठिन् ? उनसे हमें दीर्घायु, तेज, ओजादि प्राप्त हो। १९—हे वाचस्पते ? हमारा मन उत्तम, विशुद्ध संकल्पों वाला हो। हमारी गौशाला में विपुल गौओं, और घरों में उत्तम सन्ततियों की वृद्धि करो। सभी निरोगी दीर्घजीवी रहते हुई निरन्तर तेरी आराधना में ही रहें।

२०—सविता देव तेरे चहुं ओर रहें, अग्नि वरुण और मित्र अपने पूर्ण तेज से, चारों ओर से रक्षा करें। समस्त शत्रु वर्ग पर चढ़ाई करता हुआ, आगे बढ़ता हुआ इस राष्ट्र को, आनन्द पूर्ण कर। २१—हे सूर्य नारायण ? जिन आपको विविध रङ्गों वाली घोड़ी अर्थात् सप्त किरणें रथ में ले जाती हैं, वे पानी को वर्षाते हुए, प्रकाश प्रदान कर कल्याण करते रहें। २२—सूर्य के अनुकूल चलने वाला प्रकाश, ज्ञान, श्रेष्ठ विविध रङ्ग वाली, तेजस्विनी, रोहिणी है। उससे हम अनेक प्रकार से अन्नादि बल उपलब्ध करते हैं, और सब कल्याण विरोधी शत्रुगणों को परास्त करती है। २३—यह रोहिणी सूर्य का घर है। यही मार्ग है, कि जिससे उसकी विविध रङ्ग वाली घोड़ियाँ (किरणें) आती जाती हैं। उसको गन्धर्व और "महामेरु" पर विराजमान सूर्य की अष्टम किरण "कश्यप" उन्नतमय बनाते हैं। ज्ञानवान् चैतन्यता के साथ (प्रमाद रहित होकर) उसकी रक्षा करते हैं। २४—प्रकाशमान, अमर, अक्षुण्णगतिमान् घोड़े. सूर्य के रथ को, सदा सुख पूर्वक चलाते हैं। घृत से पवित्र करने वाला, तेजोमय सूर्यदेव, इन विविध रङ्ग वाली आभा के साथ, घुलोक में प्रविट होते हैं। २५—जो तीक्ष्ण किरणों वाला बलिष्ठ रोहित, अग्नि और सूर्य के चारों ओर होता है। वह घूमकर पृथिवी और घुलोक के सभी पदार्थों को धारण करता है। उसी से देवगण सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं। २६—सूर्य उदय होने पर आकाश के मध्य तक, ऊपर चढ़ता है, और वहीं से ऊपर प्रकाशित होता है।

२७—बहुदोग्ध्री बहुघृत प्रदायिनी गौ को पाला जावे। यह देवमयी गौ (वेदमाता, देववाणी) हल चल न करने वाली है। इन्द्र सोम पिये और सबका कल्याण करे, अग्नि स्तुति करे, सभी प्रकार के शत्रुओं को दूर कर।

२८—अग्नि उत्तम प्रदीप्त होने पर उसमें घृताहुतियां देकर, बनाया गया और अच्छी प्रकार प्रज्वलित होने लगा है। वह सर्वत्र विजय प्राप्त करके शत्रुओं को दूर करने वाला अग्नि मेरे जो भी शत्रुगण हों, उन सभी का संहार करें। २९—जो वाह्य शत्रु हम पर सेना द्वारा आक्रमण करता है, हे सूर्य ! हे शूरवीर ! इन शत्रुओं को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भस्म पूर्णतया भस्म करो। (कां० १२ सू० २६) में वर्णित क्रव्यादग्नि अर्थात् प्रेताग्नि द्वारा हम शत्रुअ को भस्म करते हैं। ३०—हे इन्द्र ? बज्र से अत्यन्त सामर्थ्यवान् होकर, शत्रुओं को नीचा दवाकर मार दो। और अपने शत्रुओं को अग्नि के तेज से अपने वश में करता हूँ। ३१—हे अग्ने ! हमारे शत्रुओं को अधःपतन कर दो, हे वृहस्पते ! कष्टदाता सजातीय शत्रु को उत्पीड़ित कर दो। हे इन्द्राग्नि ! हे मित्र वरणो ! हमारे शत्रु, निष्प्रभाव क्रोधित होकर नीचे गिर जावें। ३२—हे सूर्यदेव ! आप उदय के साथ मेरे शत्रुओं का नाश कर दो। इन शत्रुओं को पाषाणों से चूर-चूर कर दो। वे मृत्यु रूप घोरान्धकार में पड़ें। ३३—यह विराट् का पुत्र (सूर्य) मेधाबर्द्धक, वलवर्द्धक, वलिष्ट पीठ वाला होकर अन्तरिक्ष में चढ़ा है। हम घृताहुतियों से वाल सूर्य (अग्नि) की आराधना करते हैं। सूर्य स्वयं ब्रह्म का ही दृश्य रूप है, उसी को "ब्रह्म नाम" मन्त्रों से स्तुतियों द्वारा बढ़ाते हैं।

३४—स्वर्ग, पृथ्वी, राष्ट्र, धन, प्रजा (पुत्रादि) अमरत्व, नीरोगता, दौर्भाग्य निवारणादि सभी विषयों में प्रगति प्राप्ति हेतु, रक्त वर्ण पुष्पादि के साथ सूर्याराधना करो जिससे विलक्षण दैवी बल उपलब्ध कर, सभी कार्य सिद्ध करो। ३५—जो राष्ट्र के भरण-पोषण, संरक्षण करता देव सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं; उनके साथ रोहित सुप्रसन्न हों, बल प्राप्त कर, मन सुसंस्कृत कर, राष्ट्र धारण की क्षमता प्राप्त करते हैं।

३६—सूर्योदय होते ही मन्त्र घोषों के साथ ब्रह्म यज्ञ प्रारम्भ होते हैं, सूर्य किरणें सर्वत्र फैलती हैं वे सब तेरा अभ्युदय करने वाले हैं, सुमार्ग से ले जाने वाले सूर्य के घोड़े, तेरा प्रकाश प्रसार करते हैं। तू संसार रूप महा-सागर को, अति प्रकाशित करता है। ३७—धन, गौयें और ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले; सूर्य के आश्रय से ही द्यु लोक और भूलोक ठहरे हुए हैं। जिस तेरे हजार और सात जन्म हैं। इस समस्त जगत की महिमा में केवल सूर्य है। यह मैं निर्विवाद रूप से वर्णित करता हूँ। ३८—दिशा और उपदिशाओं में तू गौरवान्वित होकर जाता है। पशु, प्रजाजन, भूमि आदि सब का यश मात्र सूर्य है। भूलोक के ऊपर, देव जननी की गोद में, यशस्वी होकर, मैं सविता देव के तुल्य सुन्दर बनूँ। ३९—वहाँ रहकर, यहाँ का ज्ञान प्राप्त करते हुए, और यहाँ रहकर उन सबका अवलोकन करते हैं। यहाँ से द्यु लोक में, देदीप्यमान, ज्ञानी सूर्य को देखते हैं।

४०—प्रकाशमान होकर, अन्य प्रकाशकों को शुद्ध करता है, समुद्र के अन्दर संचार करता हैं, समान तेजोमय अग्नि (यज्ञ) को प्रदीप्त करता है। ज्ञानी लोग सूर्य को ही परमश्रेष्ठ "परमेष्ठी" मानते हैं।

४१—यह गौ (वेदवाणी) अपने दूर के पद से, पास वाले, और पास वाले पद से दूर के बच्चे का धारण भरण-पोषण करती हुई—ऊपर उठाती है। वह कहाँ से आती है ? और किस अर्धभाग के पास जाती है ? वह कहाँ प्रसूत होती है ? इस सघ में तो नहीं होती (ऋग्वेद* १।१६४।१७)* अथर्व ९।९।१७* विराज अथवा विशुद्ध प्रकृति ही वह गाय है; जो द्यु लोक और पृथ्वी लोकों में समान रूप से रहती है। पैरों से चलने के कारण पैर गति के प्रतीक हैं। यह प्रकृति पदा (पैर) से गति करती हुई, सूर्य रूप बछड़े को उत्पन्न करती है। यह प्रकृति निरन्तर गतिशील है, परन्तु इसकी यह गति किस कारण से सही है। उसकी गति का निश्चित लक्ष्य क्या है ? अथवा किस लक्ष्य की ओर ऐसी तीव्रगति से भागी जारही है ? यह किसी को भी ज्ञान नहीं है। यह सूर्य को किस-स्थान पर उत्पन्न करती है ? यह भी अज्ञात ही है ? परन्तु यह निर्विवाद ही है, कि वह उसे भूलोक में तो उत्पन्न नहीं करती है। ४२—यह वाणी रूप गौ अर्थात् काव्यमयी वाणी एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पादों वाले छन्दों मे विभक्त हुई है। यह अनेकों ही प्रकार की हैं, और हजार अक्षरों तक इसकी मर्यादा है। मानो यह सब भुवनों को पूर्ण करने वाली है, और इससे विविध काव्य रस स्रवते हैं। (ऋग्वेद १।१६४।४१ अथर्व ९।१०।२१) उपर्युक्त शब्द आकाश का गुण है, इसीसे सारे आकाश में व्याप्त है और इसी कारण ही वाणी भी आकाश का गुण ही है।

४३—सूर्य वाणी का रक्षक है, आकाश में चढ़कर सबको सामर्थ्य देता है। सब यज्ञ उसी की महिमा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बढ़ाते हैं, उसकी किरणें, उसको सब जगत में पहुँचाती हैं। ४४—हे देव! तेरा जो द्युलोक में आक्रमण है, और जो तेरा परले आकाश में स्थान है, तेरा वह तुझे विदित है। ४५—सूर्य द्युलोक पृथ्वी और जल को अत्यन्त पूर्णता से देखता है। सूर्य सब भुवनों का एकमात्र नेत्र है। बह बड़े द्युलोक पर आरूढ़ हुआ है।

४६—इस यज्ञ का प्रारम्भ बड़ी परिधियों वाली भूमि को बेदी बनाकर किया। इस यज्ञ में उष्ण और शीतल दो अग्नि स्थापित की हैं। ४७—शीतल और उष्ण ऋतु बनाकर पर्वतों को यूप बना कर वर्षा रूप घृत को प्राप्त करने वाले, ये दोनों अग्नि आत्मज्ञ रोहित देव के लिये यज्ञ करते हैं।

४८—आत्मज्ञानी सूर्य के मन्त्रों से अग्नि प्रदीप्त किया जाता है। उससे उष्णता, सर्दी और उसी से यज्ञ होता है। ४९—ज्ञान से बढ़ने वाले; मन्त्रों से प्रदीप्त होने वाले, मन्त्रों से हवन किये गये दो अग्नि हैं। आत्मज्ञानी सूर्य के प्रकाश में मन्त्र से प्रज्वलित हुई ये दो अग्नियाँ (सूर्य चन्द्र) प्रदीप्त होती है।

५०—एक सत्य में स्थिर है। दूसरा जलों में प्रदीप्त होता है। आत्मज्ञानी सूर्य के प्रकाश में, ये मन्त्र से प्रदीप्त हुई (उपर्युक्त) दोनों ही अग्नि प्रदीप्त होते हैं। ५१—वायु. इन्द्र और ब्रह्मणस्पति ये जिसके लिए प्रकाश फैला रहे हैं; उस आत्मज्ञानी सूर्यदेव के लिए, ये दोनों अग्नि प्रकाशित हो रहे हैं।

५२ भूमि की वेदी बना, द्युलोक की दक्षिणा करके, उष्ण ऋतु को वहाँ का अग्नि करके वृष्टि रूप घी से सूर्य ने सब जगत को आत्मवान् बनादिया है। ५·— वृष्टि को घी, उष्णता को अग्नि, भूमि को वेदी बताया गया। वहाँ अग्नि ने शब्दों से इन पर्वतों को ऊँचा बना दिया है। ५४—शब्दों से पर्वतों को ऊँचा बनाकर सूर्य भूमि से बोला कि, जो हो चुका, और जो होने वाला है, वह सब तेरा ही बनकर रहे।

५५ – वह प्रथम यज्ञ भूत और भविष्य के लिए वना। उससे ही यह सब उत्पन्न हुआ, जो कुछ यह विराजता है, वह इन्हीं रोहित ऋषि ने भरण किया है। ५६—जो गौ (वाणी वक्ता) को पाँव से ठुकराता है, अथवा सूर्योन्मुख मलमूत्रादि दुष्कर्म करता है। मैं उस पुरुष का मूल काट देता हूँ, उसके पश्चात् तू अपनी छाया यहाँ नहीं करेगा। ५७—जो तू मुझे अपना दास बनाकर चलाता है, अग्नि और सूर्य और उपासक के बीच खड़ा रहता है या गुजरता है, उसकी भी मैं मूलोच्छेदन करता हूँ।

५८—जो आज तरे और मेरे बीच में आकर बाधक बनता है, 'उसमें दुष्टस्वप्न, दुष्ट सकल्प, कल्पना और पाप जमा देते हैं। ५९—हम वैदिक सनातन मार्ग को न छोड़ें। हे इन्द्र! हम सोमयाग से भी दूर न जावें। हमारे शत्रु हमारी उन्नति में बाधक न हों। ऋग्वेद १०। ७।१)।

६०—जो यज्ञ का साधक ज्ञान तन्तुदेवों में फैला है, अर्थात् देवत्व का लक्षण बनकर रहा है, हम उसका पालन करें, वह हम सब में रहे।

कां १३।२ (१-४६) ब्रह्मा। अध्यात्मं, रोहितादित्य देवत्यं। त्रिष्टुप्, १,१२-१५,१९-४१ अनुष्टुप्, २-३,८ ४३ जगती। १० आस्तारपङ्क्ति, ११ बृहतीगर्भा, १६-२४ आर्षी गायत्री, २५ ककुम्मत्यास्तार पक्तिः, २७ पुरोद्वयति जागता भुरिज्जगती, २७ विराड् जगती, २९ बार्हत गर्भानुष्टुप्, ३० पञ्चपदोष्णिग्बृहतीगर्भातिजगती, ३४ आर्षी पक्तिः, ३७ पञ्चपदा विराड्गर्भा जगती, ४४-४५ जगती (४४ चतुष्पदा पुरः शक्वरी भूरिक्, ४५ अति जागतगर्भा। उपर्युक्त समस्त कर्मसुविनियोगः।

उद॑स्य के॒तवो॑ दि॒वि शु॒क्रा भ्राज॑न्त ईरते। आ॒दि॒त्यस्य॑ नृ॒चक्ष॑सो महि॑व्रतस्य मी॒ढुषः॑ ॥१

दि॒शां प्र॒ज्ञाना॑ स्व॒रय॑न्तम॒र्चिषा॑ सुप॒क्षमा॒शुं प॒तय॑न्तमर्ण॒वे।

स्तवा॑म॒ सूर्यं॒ भुव॑नस्य गो॒पां यो र॒श्मिभि॒र्दिश॑ आ॒भाति॒ सर्वाः॑ ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यत्प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत्ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥३
विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद्यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥४
मा त्वा दभन्परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥५
स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥६
सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥७
सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥८
उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यऽख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥९
उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥१०
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥११
दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे । स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥१२
उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव । नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥१३
यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः । अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥१४
तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति । तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥१५
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१६
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥१७
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१९
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्वऽर्दृशे ॥२०
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥२१
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥२२
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२३
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यऽः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२४
रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥२५
यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥२६
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येऽति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं१ समासते ॥२७
अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥२८
बण्महाँऽ३ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि । महाँस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥२९
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्व१न्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्याऽपिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥३०
अर्वाङ् परस्तात्प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित्पतयन्पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन्प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥३१
चित्रश्चिकित्वान्महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याऽणि ॥३२
तिग्मो विभ्राजन्तन्वं१ शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान्पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात्प्रदिशः कल्पमानः ॥३३
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान्प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद्दुरितानि शुक्रः ॥३४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३५
उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्त्रिः ॥३६
दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥३७
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥३८
रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः । रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्व१राभरत् ॥३९
रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् । रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु संचरत् ॥४०
सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः । दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥४१
आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥४२
अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥४३
पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४४
पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४५
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥४६

कां० १३ सू० २--वृष्टिकर्त्ता, दृढ़ व्रत परायण, मनुष्यों के निरीक्षक, सूर्य के विशुद्ध तेजोमय तीक्ष्ण किरण, उदय होने पर, स्वच्छ प्रकाशित होते हैं। २—प्रकाश से ज्ञापक सूर्य; स्वकिरणों से प्रकाशित, समुद्रान्त में तीक्ष्ण किरणों के साथ चलने वाले, त्रिभुवन के रक्षक सूर्य की हम स्तुति करते हैं, जो अपनी किरणों से सभी दिशाओं में प्रकाश करता है। ३—जो पूर्व और पश्चिम दिशाओं में अपनी धावक शक्ति से तत्परता से जाता है। अपनी ही शक्ति से अनेक रूप वाले दिन और रात्रि बनाता है। हे आदित्य! यह तेरी ही अपार महिमा है जो अकेला ही तू

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सारे विश्व के ऊपर प्रभाव करता है। ४—बड़ी सात किरणें, जिस तेजस्वी तारने वाले ज्ञानीदेव को ले जाती हैं। जिसको सर्वरक्षक आत्मा ने स्रवणशील जल से द्युलोक पर्यन्त पहुँचाया है, उस तुझ सूर्य के चारों ओर अपना तेज फैलाता है। ५—तू चारों ओर प्रकाश करता है, तेरे चारों ओर घूमने वाले शत्रु नदवा देवें। कल्याण के साथ कठोर, दुर्गों के ऊपर; शीघ्रता से बढ़ा चल। हे सूर्य ! घुलोक और दिव्य पृथ्वी को, और अहोरात्र का निर्माण करता हुआ तू जाता है। (६) हे सूर्य ! तेरे चलनेवाले रथ के लिए शुभ मंगल हों। जिससे दोनों धुरियों की सीमाओं को तत्काल प्राप्त करता है। सात किरणें किंवा चलनेवाली सौ अश्व रूप किरणें जिस तुझको चलाती है।

(७) हे सूर्य ! तेजस्वी सुखद, वहन कर्त्ता उत्तम रथ पर आरूढ़ हो। उस तुझको सात अथवा सहस्रों किरणें ले चलती हैं। (८) सूर्य ने स्वर्ण के तुल्य देदीप्यमान बड़े सात किरण चलने के लिये अपने रथ में जोड़े हैं। शुद्ध देव ने अन्धकार को अपने स्थान से हटाकर; रजोलोक से परे छोड़ दिया और स्वयं द्यौलोक पर चढ़ा।

(९) सूर्य देव बड़े प्रकाश के साथ, उदय को प्राप्त हुए हैं। उसने अन्धकार को दूर किया और तेज का आश्रय लिया है। उस दिव्य तेज स्वरूपा अदिति के वीरपुत्र सूर्य ने, सब भुवनों को प्रकाशित किया है।

(१०) तू उदय काल से ही किरणें प्रसारित करता है। दोनों समुद्रों को यज्ञों से प्रकाशित करता है और सब पर प्रभाव डालता हुआ, तेजोमय तू लोकों को प्रकाशित करता है।

(११) ये दो बालक (सूर्य और चन्द्र) खेलते हुए, स्वसामर्थ्य से आगे पीछे चलते हैं और समुद्र तक भ्रमण करते हुए पहुंचते हैं। उनमें से एक सब भुवनों को प्रकाशित करता है और दूसरे को घोड़ियां (किरणें) स्वर्णिम तारों द्वारा ले जाती हैं। (अथर्व कां. ७।८१(८६)१ तथा कां. १४।१-२३।

(१२) हे सूर्य ! महीनों की रचना के लिये अत्रि ने तुझे द्यौलोक में धारण किया। वह तपता हुआ सब भूतों को प्रकाशित कर स्वयं सुस्थिरता से चलता है। (१३) जैसे बछड़ा माता-पिताओं को प्राप्त होता है, वैसे ही तू दोनों ही अन्तिम धुरियों को प्राप्त होता है। निश्चयपूर्वक इससे पूर्व ही, ये देव, इस ब्रह्म को जानते हैं।

(१४) जो समुद्र के आश्रय से रहता है वह सूर्य प्राप्त करना चाहता है; इसका यह पूर्व पश्चिम बड़ा विस्तीर्ण मार्ग है। (१५) उस मार्ग को बड़े वेग से समाप्त करता है; उस मार्ग से वह इधर-उधर मन को नहीं जाने देता, उसी कारण देवों के अमृत अन्न के भाग से दूर नहीं होता।

(१६) किरणें उस बने हुए सूर्य को जानने वाले सूर्य देव को समस्त संसार के दर्शन के लिए उच्च स्थान में प्रकाशित करती हैं (ऋग्वेद १।५०।१, यजु ७।४१ अथर्व २०।४७।१३)। (१७) सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करने के लिये यह सर्वज्ञ और प्रत्येक प्राणियों के कर्मों को देखनेवाला सूर्य उदय होता है और उसके उदय काल के साथ ही रात्री और तारागण वैसे ही लुप्त हो जाते हैं, जैसे प्रातः होते ही चोर संसार के प्रकाशक सूर्य के लिये स्थान खुला छोड़ते हैं। ऋग्वेद (१।५०-२) अ० २०।४७।१४ (१८) जैसे चमकनेवाले अग्नि के तुल्य ही, उसके ध्वजारूपी किरण लोगों के प्रति जाते हुए दिखाई पड़ते हैं। ऋ० १।५०।३ वा० य० ८।४०, अ० २०।४७।१५)।

(१९) हे प्रकाशदाता सूर्य ! तू तारक तेजस्वी और सबको दर्शानेवाला क्रान्ति कर्ता है। उसी से सारा जगत तेजस्वी होता है। (२०) दैवी और मानवी प्रजाओं के प्रति ही तू उदित होता है; तथा प्रकाश के दर्शनार्थ समस्त जगत का भ्रमण करता है। (२१-२२) यह सूर्य देवों के, मनुष्यों के, और सारे ही संसार के सामने उदय हुआ। अपनी दृष्टि से सभी लोगों के कर्मों को देखता हुआ चलता है और अपनी कृपादृष्टि सभी मनुष्यों पर करता चलता है।

(२३-२४) सब प्राणियों को देखता हुआ, यह सूर्य रात्रि और दिनों का निर्माण करता हुआ विशाल अन्तरिक्ष में; अपने प्रकाश को फैलाता हुआ द्युलोक में संचार करता है। इस सूर्य के रथ में सात रंग के घोड़े (किरणें)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जुड़े हुए होते हैं। सातरंग की किरणें ही इसके घोड़े हैं। जिन पर चढ़कर यह सूर्य विचरता है (ऋग्वेद १।५०-७ व ८) सूर्य किरणें पवित्र करनेवाली हैं, अर्थात् जहाँ सूर्य किरणें पड़ती हैं वहाँ की भूमि पवित्र हो जाती है। यह सूर्य देवों में सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त श्रेष्ठ ज्योति है, यह अन्धकार से ऊपर उठ कर सर्वत्र प्रकाश करता है (ऋ. १।५०।९-१०)।

(२५) प्रकाश से तेजस्वी बना सूर्य द्युलोक पर चढ़ा है। वह मूल स्थान को प्राप्त होता है। वह पुनः पुनः उत्पन्न होता है, वही देवों का स्वामी हुआ है।

(२६) जो सब प्राणिमात्र के रूप वाला और सब ओर मुखवाला है, जिसके हाथ और भुजायें सभी ओर हैं। जो अपने भुजबलों और चरणों द्वारा सबका भरण पोषण करता है। ऐसा भूलोक और द्युलोक का निर्माता देव एकमात्र ही है। (ऋग्वेद १०।८१-३; १७-१९ य०) (२७) एक पैर वाला दो पैर वालों से अधिक चलता है, दो पैर वाला तीन पैरवालों के पीछे से आकर मिलता है, दो पैरवाला निश्चय से ही छै पैर वालो ते भी अधिक तीव्र चलता है, ये एक पैर वाले के शरीर को आश्रय करले हैं। (ऋ० १०।१७८-८), अ० १३।३-३५)

(२८) निरालस, सब जानने की इच्छा करता है, तब वह अपने अश्वों में आरूढ़ हो, प्रकाशित हो दो रूप बनता है। हे आदित्य ! किरणों से युक्त हो; उदित हुआ; लोकों का विजेता, तू उच्च स्थान में देदीप्यमान होता है।

(२९) है सूर्य ! हे आदित्य ! तू ही सर्वश्रेष्ठ है। तुझ महान देव की अपार; अवरणनीय महिमा है। (ऋ. ८।१०।११, वा०य० ३३।२९, अ० २०।५८।३)

(३०) हे संचालक देव ! तू द्युलोक, भूलोक; अन्तरिक्ष और जलों के अन्दर प्रकाशित होता है। तू अपने तेज से दोनों समुद्र पर्यन्त व्याप्त है। ऐसा प्रकाशक देव तू महा सामर्थ्य युक्त है। (३०-९)

(३१) शीघ्रगामी ज्ञानपुञ्ज संचालक विशेषतया मार्ग में शुद्ध, ऊपर यहां तक व्यापक और विशेष चिन्तवन शक्ति युक्त, अपने ही मात्र सामर्थ्य से, अधिष्ठाता होता हुआ प्रकाश से गतिमान विश्व को धारण करता है।

(३२) विलक्षण, ज्ञानी, समर्थ और उत्तम गति परायण, अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोक को प्रकाशित करने वाला सूर्य है। ऐसे सूर्य पर दिन और रात्रि वास करते हैं, इसी के सब वीर्य फैलाते हैं। (३३) अत्यन्त तेजस्वी, तीक्ष्ण सूर्य, पर्याप्त गति के साथ उच्च स्थान में रमन वाला, तेजस्वी, आकाश में संचार करनेवाला, बलिष्ठ और बलधारक, सभी दिशाओं में सामर्थ्ययुक्त होता हुआ स्थिर रहता है।

(३४) देवों का ध्वज, विलक्षण; मूल आधार स्वरूप, तेजस्वी सूर्य दिशाओं में उदित होता हुआ, पवित्र सूर्य, सब पापस्वरूप, अन्धकार स्वरूप मृत्युओं को अपने तपोबल तेजों से पार करता है, और दिन का प्रकाश करता है। (अ० २०।१०७।१३)। (३५) देवों का अद्भुत धारक, वात, मित्र, वरुण और अग्नि का नेत्र उदय हो गया है, वह द्युलोक अन्तरिक्ष और भूलोकों में व्यापता है। वह स्थावर जंगम का आत्मा है। (ऋ० ११५-१, वा. य. ७।४२, १३।४६, अ०वे० २०।१०७।१४)।

३६—उच्च स्थान से गमन करने वाले पक्षी की भांति, आकाश के मध्य, तेजस्वी होकर, तैरने वाले, जिसे विशेष तेजस्वी कहते हैं, उस तुझ सूर्य के हम दर्शन करते हैं। जिसे भोक्ता प्राप्त करता है। ३७—द्युलोक की पीठ पर सवार होकर, दौड़ने वाले पक्षी के तुल्य, अदिति पुत्र को, स्वामी बनाने की कामना से, भयभीत हुआ; मैं शरण में जाता हूँ। हे सूर्य देव ! वह आप हमें दीर्घायु प्रदान कीजिये, तुम्हारी कृपा के पात्र होकर हम रहें, और हमारा नाश न हो। ३८—हरणशील "हस" के तुल्य गतिमान हजार दिन के मार्ग पर स्थित, द्युलोक पर चढ़ने वाले, इस सूर्य के दोनों ओर किरण फैले हैं। वह सब देवों को, अपनी छाती पर धारण करता हुआ, सब भुवनों को देखता हुआ चलता है। (अ. १०-८।१८; १३।२।१४) ३९—यह सूर्य ही काल हुआ है, आगे सूर्य ही प्रजा पालक बना है। वही सूर्य यज्ञों का मुख होकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाश प्रदान करता है। ४०—सूर्य ही सब लोक बना. और द्युलोक को प्रकाशित करने लगा। सूर्य ही अपने किरणों से भूमि और समुद्र में संचार करता है। ४१—द्युलोक नायक, सभी दिशाओं में संचार करता है। द्युलोक, समुद्र, भूमि सब प्राणी आदि सभी की वह रक्षा करता है। ४२—निरालस्य, बलिष्ठ, तेजोमय सूर्य, बड़ी दिशाओं में फैल कर, दो रूप बनाता है। वह विलक्षण ज्ञानी और समर्थ वायु को प्राप्त होता है। और जितने लोक हैं, उन सबको वह प्रकाह्लित करता है। ४३—दिन रात्रि से समर्थ हो वह सूर्य, एक भाग के सन्मुख होता है। और दूसरा भाग दूसरी ओर फेंका जाता है। हम सभी त्रस्त हो, मार्ग दर्शक और अन्तरिक्ष में निवास करने वाले सूर्य की आराधना करते हैं।

४४—बलवान, पृथ्वी को पूर्ण करने वाला, दुःखी मनुष्यों का पथ प्रदर्शक, जिनके नेत्र नहीं दवे हैं, ऐसा-सूर्य इस विश्व पर है। उस विश्व का द्रष्टा ज्ञानी, याज्ञिक, मेरी प्रार्थना को सुनें। ४५—इसकी अगाध महिमा पृथ्वी और समुद्र के चारों ओर फैली हुई है। तेज से प्रकाशित हुआ, द्युलोक और अन्तरिक्ष में चारों ओर फैला हुआ है, सभी को निहारता हुआ, यह ज्ञानी याज्ञिक मेरी करुणामयी प्रार्थनाओं को सुनें। ४६—जनता ने जो समिधायें होमी थीं, उनसे वह जात वेदा यज्ञाग्नि प्रदीप्त हुआ है। जैसे गौ प्रातः काल जागती है, वैसे ही जैसे पेड़-पौधे अपनी शाखाओं को ऊपर आकाश में फैलाते हैं, वैसे ही सूर्य किरणें, सूर्य धाम की ओर पहुंचते हैं।

अपराजितगण कर्म विधिः—

कां० १ सू० २ "विद्माशरस्य" यह पुष्याभिषेक अपराजितगण, अभयगण, अपराजित नाम महाशान्ति तथा वृहत शान्तिगणों में होने से. तत्तद्गण कर्म विधियों में प्रयोग होता है। इससे उपाकर्म में जप करें आज्य होम करें। सग्राम जयकर्म में आज्य, या सत्तु होम, शर (मुजशर) धनुष्काष्टसमिध; स्वयं पतित या ओलों से टूट कर गिरी, पीपल, ढाक, करीर, ऐरण्ड में गोभी या सभी उपलब्ध प्रादेशमात्र समिधायें अभिमन्त्रित कर समिधा दान करें। अस्त्र, शस्त्र, मय प्रक्षेपण पदार्थ, रक्षार्थ धारण करने के पाश; कवच आदि सभी पर पक्ष (विद्वेषी) के अस्त्र, शस्त्र के प्रहार निवारणार्थ अभिमन्त्रित मय दूर्वातृण के अभिमन्त्रित कर धारण करें बांधें।

व्याधि—ज्वरातिसार, अतिमूत्र, कृच्छ्रमूत्र, चिनग,शिश्नेन्द्रियव्रण, घाव, रक्तस्रावादि, शमनार्थ, शिश्न नाड़ी को मुञ्च या रस्सी से बांधें, वामी की पावन रज को गो मूत्र में लेप करें, गंगा जल में डाल कर पिलायें, स्निग्ध या घी का लेप करें चर्म से गुदा व शिश्न के व्रणों के मुखों को तपायें, रस्सी बांधें धमन करें। इसी सूक्त की ५ ऋचा से प्रारम्भ होने वाले सूक्त १।३ "विद्माशरस्य" से मूत्र व मल निरोध व्याधि में, प्रमेह साधन में. हरीतकी व कर्पूर घिस कर लेपें। मूषिका मृत्तिका, पूतीकतृण, दधि मन्थन कर, खस को पानी मिला, गिलोय या मुलहटी अभिमन्त्रित कर पिलायें। हाथी, घोड़ा की सवारी करायें। तकुये (शलाका) से मूत्र नाल को साफ़ करें, और मूत्र द्वारमें प्रवेश करें। इसी की अन्यगणों की उपर्युक्त विधि सग्रामादि में सर्वत्र समझें। चरक संहिता की शल्य क्रिया का यही मूल है।

ज्वर से पूर्व शीत (ठण्डी) के निवारणार्थ गर्म जल पात्र में अभिमन्त्रित कर तलवों में सेक दें। लोहे का फरसा गर्म करें, अभिमन्त्रित करें, ज्वर के रोगी या अत्यन्त क्रोध वृत्ति के प्रशमनार्थ रोगी को लाल वस्त्र से ढांकते हुए जल पात्र में उस गर्म अस्त्र को छोड़ दे, उसकी वाष्प रोगी को दें, अभिमन्त्रित उसी जल को पिलाये शनि, रवि, भोमवार को ईंट (पक्की) अभिमन्त्रित; प्रतिष्ठा; पूजा कर रोगी के शिर से पैर की ओर सायंकाल में ७ वार ऐसे उतारे कि अपनी रोगी पर छाया न पड़े, उसे अत्यन्त गर्म दहकती अग्नि में जाकर ऐसा दबाये कि वह लाल हो जावे। जितनी लाल होगी उसी अनुपात से बुखार कैसा भी हो कम होगा और दूर छोड़ जावेगा इसका जप करता जावे। दुस्वप्न नाशन की विशेष विधि में भी है।

मूत्र पुरीष (टट्टी) के रुकने के कारण उत्पन्न व्यथा में हरड़ तथा कर्पूर मिला कर बांधें। अतिमूत्र, अतिमल (वार वार) के विकार में तथा स्त्री के रक्तस्राव के निरोधनार्थ अपान नाड़ी तथा मूत्र नाड़ी दोनों ही के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्त व मध्य भागों को मूंज की रस्सी से बांध। अभिमन्त्रण व जप सभी में अनिवार्य है. यही देव मन्त्र, ऋषि की तपस्याओं का एक मात्र वल है। (आँतों के अन्दर का मूत्र दोनों पाशुओं की नाड़ी द्वारा धनुपाकार मूत्रालय (वास्ति) द्वारा जाता है।) रजस्राव, रुधिरस्राव, गर्भस्राव, में कम पके मिटटी के पात्र का टुकड़ा व श्वेत दूर्वा पीस कर, छान कर पिलायें। कौ० सूत्र।

ज्वर सभी प्रकार के राजयक्ष्मादि के कीटाणुओं को नष्ट कर स्वास्थ्य लोभार्थ "अग्निस्तक्मानम्" (५।२२) सूक्त से कालेधानों (लाजा) को इससे अभिमन्त्रित कर मांड बना कर पिलायें। दावाग्नि स्थापित कर तांबे के या लोहे के के गर्म स्रुवा आदि जो लाल हो जावे वाष्प से जल में बुझा कर रोगी को ढांक कर वाष्प दें। कौ० ४।५)।

कां० १ सू० ३ अथर्वा। १ पर्जन्यः, २ मित्रः, ३ वरुणः, ४ चन्द्रः, ५ सूर्यः, (१-६ मूत्रमोचनम्) अनुष्टुप्-१-५ पथ्यापङ्क्तिः उपर्युक्त समस्त कर्मसु विनियोगः।

वि॒द्मा श॒रस्य॑ पि॒तरं॑ प॒र्जन्यं॑ श॒तवृ॑ष्ण्यम्।
तेना॑ ते त॒न्वे॒३॒ शं क॑रं पृथि॒व्यां॑ ते नि॒षेच॑नं ब॒हिष्टे॑ अस्तु॒ बालिति॑ ॥१
वि॒द्मा श॒रस्य॑ पि॒तरं॑ मि॒त्रं श॒तवृ॑ष्ण्यम्।
तेना॑ ते त॒न्वे॒३॒ शं क॑रं पृथि॒व्यां॑ ते नि॒षेच॑नं ब॒हिष्टे॑ अस्तु॒ बालिति॑ ॥२
वि॒द्मा श॒रस्य॑ पि॒तरं॒ वरु॑णं श॒तवृ॑ष्ण्यम्।
तेना॑ ते त॒न्वे॒३॒ शं क॑रं पृथि॒व्यां॑ ते नि॒षेच॑नं ब॒हिष्टे॑ अस्तु॒ बालिति॑ ॥३
वि॒द्मा श॒रस्य॑ पि॒तरं॑ च॒न्द्रं श॒तवृ॑ष्ण्यम्।
तेना॑ ते त॒न्वे॒३॒ शं क॑रं पृथि॒व्यां॑ ते नि॒षेच॑नं ब॒हिष्टे॑ अस्तु॒ बालिति॑ ॥४
वि॒द्मा श॒रस्य॑ पि॒तरं॒ सूर्यं॑ श॒तवृ॑ष्ण्यम्।
तेना॑ ते त॒न्वे॒३॒ शं क॑रं पृथि॒व्यां॑ ते नि॒षेच॑नं ब॒हिष्टे॑ अस्तु॒ बालिति॑ ॥५
यद॒ान्त्रेषु॑ ग॒वीन्यो॒र्यद्व॒स्तावधि॑ संश्रु॑तम्। ए॒वा ते॒ मूत्रं॑ मुच्यतां ब॒हिर्बालिति॑ सर्व॒कम् ॥६
प्र ते॑ भिनद्मि॒ मेह॑नं॒ वर्त्रं॑ वेश॒न्त्या इ॑व। ए॒वा ते॒ मूत्रं॑ मुच्यतां ब॒हिर्बालिति॑ सर्व॒कम् ॥७
विषि॑तं ते वस्तिबि॒लं स॑मु॒द्रस्यो॑द॒धेरि॑व। ए॒वा ते॒ मूत्रं॑ मुच्यतां ब॒हिर्बालिति॑ सर्व॒कम् ॥८
यथे॑षु॒का प॒राप॑त॒दव॑सृ॒ष्टाधि॑ धन्व॑नः। ए॒वा ते॒ मूत्रं॑ मुच्यतां ब॒हिर्बालिति॑ सर्व॒कम् ॥९

कां० ३।१९ वसिष्ठः। विश्वेदेवाः, चन्द्रमाः, इन्द्रः। अनुष्टुप्, १ पथ्या बृहती, ३ भुरिग्बृहती, ५ त्रिष्टुप्, ६ त्र्यवसाना विपक्षदल पलायने, सत्तु आज्य होमेचविनियोगः।

संशि॑तं म इ॒दं ब्रह्म॒ संशि॑तं वी॒र्यं१ बल॑म्। संशि॑तं क्ष॒त्रम॒जर॑मस्तु जि॒ष्णुर्येषा॒मस्मि॑ पु॒रोहि॑तः ॥१
सम॒हमे॒षां रा॒ष्ट्रं स्या॑मि॒ समोजो॑ वी॒र्यं१ बल॑म्। वृ॒श्चामि॒ शत्रू॑णां बा॒हून॒नेन॑ ह॒विषा॒हम् ॥२
नी॒चैः प॑द्यन्ता॒मध॑रे भवन्तु॒ ये नः॑ सू॒रिं म॒घवा॑नं पृत॒न्यान्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत । इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥४

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।

एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वेऽषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः ।

पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् । देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥६

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः । तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः॥७

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येऽषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥८

कां० ३ सू० १९ "संशितं मइदं" ब्रह्मज्ञों ब्राह्मणों का सहज स्वाभाविक कर्त्तव्य पूरे राष्ट्र का हित (सुरक्षा, सदाचार अभ्युदय) कराना है। इसी कारण वे पुरोहित हैं। इस सूक्त के मन्त्र द्रष्टा ऋषि वसिष्ठ (ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण) हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र में ब्रह्म तेज की ज्योति जगाकर, पूरे राष्ट्र को देदीप्यमान बनाना अत्यन्त, अनिवार्य, वाञ्छनीय है। अन्यथा अज्ञानान्धकार से राष्ट्र परतन्त्र, छिन्न-भिन्न हो जाता है। क्षत्री का क्षात्र बल भी आवश्यक है। परन्तु बिना ब्रह्मबल के, वह पशुबल, दयनीय स्थिति में ले जाता है। यहाँ पुरोहित का दृढ़ सङ्कल्प है।

१—मैं जिनका, जिस राष्ट्र का पुरोहित हूँ; उस राष्ट्र का ज्ञान, वीर्य, बल, पराक्रम, शौर्य, विवेक, धैर्य, विजयी उत्साह, आचार और अनुशासन, कभी भी क्षीण न हो। २—मै जिस राष्ट्र का पुरोहित हूँ, उस राष्ट्र का पराक्रम उत्साह, वीर्य, तेज, बल (ब्रह्म ज्ञान द्वारा) मैं बढ़ाता हूँ, और शत्रु बल को क्षीण करता हूँ।

३—जो शत्रु हमारी राष्ट्र के धनी, समृद्ध, वैश्यों, तपोधनों अर्थात् युद्ध न करने वाले राष्ट्रवासियों पर, सैन्य सहित, आक्रमण करेगा। मैं, अपने ब्रह्म बल से उसको नष्ट करता हूँ। अपने राष्ट्रवासियों को, मैं अपने ब्राह्मी तपोबल से, सभी प्रकार उन्नत और समृद्ध बनाता हूँ। ४—मैं जिनका, जिस राष्ट्र का पुरोहित हूँ; ब्राह्मी मान्त्रिक बल से, उनके शस्त्र-अस्त्रों, के प्रहार और प्रयोगों की वैज्ञानिक विधि से, अधिक प्रखर बनाता हूँ।

५—मैं इनके शस्त्रास्त्र अधिक तीक्ष्ण, प्रखर करते हुए, परम प्रकृष्ट वीरों की संख्या, इस राष्ट्र में बढ़ाकर इस राष्ट्र को सभी भाँति आत्मनिर्भर उन्नत और पूर्ण सुनियोजित सुरक्षित बनाता हूँ और इनका शौर्य बढ़ाता हूँ।

६—हे मघवन इन्द्र! हमारा राष्ट्र के वीरों के पृथक्-पृथक् संघ, अपने-अपने झण्डे उन्नतकर, वीर रस गायनों के साथ, उत्साह और आनन्दोल्लास के साथ, विजय घोष करते हुए, शत्रु दल पर आक्रमण करते हुए विजय प्राप्त करते हैं, जैसे इन्द्र की प्रभुता और अनुशासन में, मरुद्गण, शत्रुओं पर धावा बोलते हुए विजय प्राप्त करते हैं। उसी भाँति अपने नेता, सेनाध्यक्ष के आधिपत्य में रह, अपने वीर आक्रमण करें, और अपनी विजय प्राप्त करें।

७—हे वीरो! आगे बढ़ो, तुम्हारे भुजदण्ड प्रभावपूर्ण हों, तुम्हारे शस्त्र शत्रु के अस्त्र-शस्त्रों की अपेक्षा अधिक प्रभावी प्रहार करें। तुम्हारा शौर्य, शत्रु की अपेक्षा अत्यधिक प्रदीप्त हो। इस भाँति संग्रामकर निर्बल शत्रु को पराजित करो। ८—हे ब्राह्मबल से देदीप्त शस्त्र! तू छोड़ा हुआ, दूर तक चला जा, शत्रुओं को जीतता हुआ आगे बढ़ता जा, इन प्रमुख शत्रुओं को नष्ट कर, इनमें से किसी को भी न छोड़, जीवित कोई न रहने पाये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कां० ७, सू०७०-७३ (१-५) अथर्वा। श्येनः, देवाः। १ त्रिष्टुप्, २ अतिजगतीगर्भा जगती, ३-५ अनुष्टुप् (३ पुरःककुम्मती)। उपर्युक्त कर्मषु उपस्थाने होमे च विनियोगः।

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा।
तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ॥१

यातधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम्।
इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति ॥२

अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव। आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥३

अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम्। अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥४

अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम्। अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥५

कां० ७ सू० ७०।७२ "यत्किञ्चासौ" हे अग्ने! यह शत्रु जो कुछ भी मन से, और जो कुछ भी वाणी से अहित करता है, तथा जो कुछ भी, यजु से, हवि, और यजु से हवन करता है। इसका वह उद्देश्य, जानने वाली, संहार शक्ति, यज्ञ की पूर्णता होने के पूर्व ही मृत्यु से, उसकी आहुति नष्ट करे। २—यातुधान, राक्षस, दुर्गति (विनाश शक्ति) ये सब, निश्चय पूर्वक इस दुष्ट शत्रु के घृत को मथें,और जिस उद्देश्य से यह हवन करता है, वह सिद्ध न हो।

३—अति शीघ्रगति वाले बाज (पक्षी), जैसे एक दूसरे पर आघात करते हैं, उसी प्रकार जो कोई हमें पाप या यातना देता है, उस सेना वाले शत्रु को नष्ट कीजिये। ४—तुझ शत्रु की दोनों भुजाओं को मैं, पीछे मोड़कर बाँधता हूँ तथा तेरा मुँह बाँधकर बन्द करता हूँ। अग्निदेव के उस क्रोध से तेरे हवि को मैं नष्ट करता हूँ।

५—तुझ शत्रु के दोनों बाहुओं को बाँधता हूँ। तुझ को भी बाँधता हूँ। प्रचण्ड अग्नि के उस क्रोध से, तेरी हविका, मैं नाश करता हूँ।

कां० १३, सू० ४— (१-५६) ब्रह्मा। अध्यात्मम्; रोहितादित्यदेवत्यम्। त्रिष्टुभः (षट् पर्यायाः)। [१-१३ प्रथमः पर्यायः।] १-११ प्राजापत्याऽनुष्टुप्ः १२ विराड्गायत्री, १३ आसुरी उष्णिक्। उपर्युक्त कां० १३ सू० १ व २ कर्मणि उपस्थाने होमे च विनियोग।

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥१

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥२

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम्। रश्मि० ॥३

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः। रश्मि० ॥४

सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः। रश्मि० ॥५

तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश। रश्मि० ॥६

पश्चात्प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति। रश्मि० ॥७

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥८ रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्ये॒मे नव॒ कोशा॑ वि॒ष्टम्भा॒ न॑व॒धा हि॒ताः ॥१०

स प्र॒जाभ्यो॒ वि प॑श्यति॒ यच्च॑ प्रा॒णति॒ यच्च॒ न ॥११

तमि॒दं निग॑तं॒ सहः॒ स ए॒ष एक॑ एक॒वृदेक॑ ए॒व ॥१२ ए॒ते अ॑स्मिन्दे॒वा ए॑क॒वृतो॑ भवन्ति ॥१३

कां० १३, सू० ४—१-८ [१४-२१ द्वितीयः पर्यायः] १४ भुरिक्साम्नी त्रिष्टुप्, १५ आसुरी पङ्क्तिः। १६, १९ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १७-१८ आसुरी गायत्री । उपर्युक्त कर्मषु च विनियोग ।

की॒र्तिश्च॒ यश॒श्चाम्भ॑श्च॒ नभ॑श्च ब्राह्मणवर्च॒सं चान्नं॑ चा॒न्नाद्यं॑ च ॥१४

य ए॒तं दे॒वमे॑क॒वृतं॒ वेद॑ ॥१५ न द्वि॒तीयो॒ न तृ॒तीय॑श्चतु॒र्थो नाप्यु॑च्यते । य ए॒तं० ॥१६

न प॑ञ्च॒मो न ष॒ष्ठः स॑प्त॒मो नाप्यु॑च्यते । य ए॒तं० ॥१७

नाष्ट॒मो न न॑व॒मो द॑श॒मो नाप्यु॑च्यते । य ए॒तं० १८

स सर्व॑स्मै॒ वि प॑श्यति॒ यच्च॑ प्रा॒णति॒ यच्च॒ न । य ए॒तं० ॥१९

तमि॒दं निग॑तं॒ सहः॒ स ए॒ष एक॑ एक॒वृदेक॑ ए॒व । य ए॒तं० ॥२०

सर्वे॑ अस्मिन्दे॒वा ए॑क॒वृतो॑ भवन्ति । य ए॒तं० ॥२१

कां० १३, सू० ४—(१-७) [२२-२८ तृतीयः पर्यायः] २२-२४ भुरिक्प्राजापत्या त्रिष्टुप्: २८ आर्ची गायत्री, २५ एकपदाऽऽसुरी गायत्री, २६ आर्ची अनुष्टुप्: २७-२८ प्राजापत्याऽनुष्टुप् । उपर्युक्त कर्मेषु च भिनियोग ।

ब्रह्म॑ च॒ तप॑श्च की॒र्तिश्च॒ यश॒श्चाम्भ॑श्च॒ नभ॑श्च ब्राह्मणवर्च॒सं चान्नं॑ चा॒न्नाद्यं॑ च । य ए॒तं० ॥२२

भू॒तं च॒ भव्यं॑ च श्र॒द्धा च॒ रुचि॑श्च स्व॒र्ग॑श्च॑ स्व॒धा च॑ ॥२३ य ए॒तं दे॒वमे॑क॒वृतं॒ वेद॑ ॥२४

स ए॒व मृ॒त्युः सो॒३॑मृतं॒ सो॒३॑भ्वं१॒ स रक्षः॑ ॥२५

स रु॒द्रो व॑सु॒वनि॑र्वसु॒देये॑ नमोवा॒के व॑षट्का॒रोऽनु॒ संहि॑तः ॥२६

तस्ये॒मे सर्वे॑ या॒तव॒ उप॑ प्र॒शिष॑मासते ॥२७ तस्या॒मू सर्वा॒ नक्ष॑त्रा॒ वशे॑ च॒न्द्रम॑सा स॒ह ॥२८

कां० १३, सू० ४—(१-१७) [२९-४५ चतुर्थः पर्यायः] २९, ३३, ३९-४०, ४५ आसुरी गायत्री, ३०-३२-३५-३६, ४२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ३१ विराड् गायत्री, ३४, साम्नी उष्णिक्, ३७-३८ साम्नी उष्णिगनुष्टुप्: ४१ साम्नी बृहती, ४३ आर्षी गायत्री, ४४ साम्नी अनुष्टुप् । उपर्युक्त कर्मेषु च विनियोग ।

स वा अह्नो॑ऽजायत॒ तस्मा॒दह॑रजायत ॥२९ स वै रात्र्या॑ अजायत॒ तस्मा॒द्रात्रि॑रजायत ॥३०

स वा अ॒न्तरि॑क्षादजायत॒ तस्मा॑द॒न्तरि॑क्षमजायत ॥३१

स वै वा॒योर॑जायत॒ तस्मा॑द् वा॒युर॑जायत ॥३२॥ स वै दि॒वो॒ऽजायत॒ तस्मा॒द् द्यौरध्य॑जायत ॥३३

स वै दि॒ग्भ्यो॒ऽजायत॒ तस्मा॒द् दिशो॑ऽऽजायन्त ॥३४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥३५॥ स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥३६

स वा अद्भ्योऽऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥३७

स वा ऋग्भ्योऽऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥३८

स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥३९॥ स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥४०

स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥४१

पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥४२

यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥४३

तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥४४

उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥४५

कां० १३, सू० ४—(१-६) [४६-५१ पंचमः पर्यायः] ४६ आसुरी गायत्रीः ४७ यवमध्या गायत्री, ४८ साम्नी उष्णिक्, ४९ निचृत्साम्नी बृहती, ५० प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ५१ विराड् गायत्री। उपर्युक्त कर्मषु च विनियोग।

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥४६

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥४७

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥४८॥ अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥४९

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥५०

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥५१

कां० १३, सू० ४ (१-५) [५२-५६ षष्ठः पर्यायः] ५२-५३ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ५४ द्विपदाऽऽर्षी गायत्री। उपर्युक्त कर्मषु च विनियोग।

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥५२

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥५३

भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥५४

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥५५॥ अन्नाद्येन यशसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५६

कां० १३ सू० ४ "सएति सविता" वह सूर्य द्यौलोक के पृष्ठ भाग पर प्रकाशता है। और अपने तेज को प्राप्त करता है। २—उसने अपनी किरणों से आकाश को परिपूर्ण भर दिया है। यह बड़ा इन्द्र तेज से आवृत होकर चलता है। ३—वही धारणकर्त्ता विश्व विधाता, और वही वायु है, जिसने आकाश ऊँचा बनाया है।

४—वही अर्यमा वरुण, रुद्र और महादेव है। ५—वही अग्नि, सूर्य और महायम भी वही है। ६—उसके साथ एक मस्तिष्क वाले दश बछड़े, संयुक्त होकर रहते हैं। ७—पीछे से पूर्वदिशा में तेज फैलाता है, जो उदय होकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशता है। ८. उसके साथ ये मरुद्गण रक्खे हुए छिक्के के तुल्य चलता है। ९. उसने किरणों से आकाश घेर दिया है। यह महाइन्द्र तेज शे आवृत्त होकर चलता है। १०. उसी के ये नौ कोश, विविध रूप में, नौ प्रकार रक्खे हैं। ११. वह प्राण धारण करने वाले, और न करने वाले सभी प्रजाजनों का निरीक्षण करता है।

१२. वही यह एकत्रीभूत सामर्थ्य है, वह यह एक है, एकमात्र व्यापक देव केवल एक ही है। १३. से १५. ये सब देव इसीमें एकरूप होते हैं। १४-१५. जो इस देव को एकमात्र एक जानतः है, उसे कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्राह्मतेज, अन्न तथा अन्य समस्त भोग्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। १५-१८. यह द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठम्, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम है, ऐसा नहीं कहा जाता है। १९. वह उन सबका दृष्टा है जो जीवित है या नहीं।

२०-२१. वह यही इकट्ठा हुआ सामर्थ्य है। वह एकमात्र व्यापकदेव केवलमात्र एक ही है। ये सव देव इसमें एकरूप होते हैं। २२-२४. ज्ञान, तप, कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्राह्मतेज, अन्न भोग्य पदार्थ, भूत, भविष्य, श्रद्धा, रुचि, तेज, कान्ति, स्वर्ग, स्वधा (आत्मनिर्भरता) उसे प्राप्त होते हैं। जो इस देव को एकमात्र व्यापकदेव जानता है। २५—वही मृत्यु है, वही अमृत है, वही महान् है, वही रक्षक अथवा (राक्षस) भी है। २६—वही रुद्र, धन दानकाल में धन प्राप्त कर्त्ता वही नमनीय यज्ञों में उत्तम रीति से उच्चारित बषट्कार है।

२७—उसी की आज्ञा में ये सब राक्षसादि रहते हैं। २८—उसीके वशीभूत ये सब नक्षत्र, चन्द्रमा के साथ रहते हैं। २९-३९—वही निश्चयात्मक दिन, रात्रि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यु० दिशा, भूमि, अग्नि, जल, ऋचा, यज्ञ से हुआ, वैसा ही, उसी से दिन, रात्रि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यु० दिशा भूमि, अग्नि, जल, ऋचा और यज्ञ हुए।

४०—वह यज्ञ है, वही यज्ञ का शिर कहाने वाला है। ४१—वही गर्जता है, वही चमकता है, वही ओले फैंकता है। ४२—पापी के लिए, श्रेष्ठ पुरुष के लिए, आसुरी प्रकृति के पुरुष के लिए। ४३—जो औषधियों का जनक और वृष्टिकर्त्ता है, श्रेष्ठ, कल्याण परक बुद्धि से जो तू जन्मे हुए को बढ़ाता है।

४४—हे प्रभो! वह तेरी ही महिमा है, ये सब तेरे ही सैकड़ों शरीर हैं। ४५—ये सब करोड़ों तेरे ही साथ बँधे हुए हैं। ४६—अमर से भी इन्द्र बड़ा है। हे इन्द्र तू मृत्युओं से भी बड़ा है। ४७—हे प्रभो! तू शत्रु से भी बड़ा है, तू ही शक्ति का स्वामी है, तू सर्वव्यापक और सर्वेश्वर है ऐसी हम तेरी महिमा की उपासना करते हैं।

४८—हे दर्शनीय! तेरे लिए ये नमस्कार है। हे सुशोभायमान्! तू मेरे पर कृपा दृष्टिकर। ४९—समस्त उपभोग्य यश, तेज, ब्रह्मवर्च से मुझे युक्तकर। ५०—जल, पौरुष, महत्ता, बल, स्वरूप की तेरी हम वन्दना करते हैं। ५१—जल, लाल, बल और श्वेत सामर्थ्यरूप की तेरी वन्दना करते हैं। ५२—महान्, विस्तृत, उत्तम होने वाला, ज्ञान युक्त ऐसे तेरे स्वरूप की हम उपासना करते हैं। ५२—सुविस्तृत, श्रेष्ठ सर्वव्यापक और स्थान दाता (शरण्य), ऐसे तेरे स्वरूप की हम वन्दना करते हैं। ५४—धनयुक्त, इस धन से युक्त, सब धनों को एकत्रित करने वाला, सब धनों को पास करने वाला, तुझे ही मानकर अथवा समझकर, हम तेरी आराधना करते हैं। ५५—हे दर्शनीय! तेरे लिये विनम्र प्रणाम है, मेरे ऊपर कृपा दृष्टिकर। ५६—समस्त भोगों, यश, ओज ब्रह्म तेज, ब्रह्म बल से मुझे अनुगृहीत कर।

अथ उद्‌वज्र प्रयोग विधिः—

उद्‌वज्र प्रयोग विधि में वर्णित मेखला धारण कर, दोनों हाथों में पवित्री, शिखा में, कुशा धारण कर वज्र (दण्ड) हाथ में धारण करें। चौरास्ता की, श्मशान की, प्रतिपक्षी सेनापति (आदि की सम्भव हो सके तो) मिट्टी लेकर प्रतिमा बना प्राण प्रतिष्ठा भी करें। उत्तर को शिर, दक्षिण को पैर, दक्षिण की ओर पड़ी मिट्टी की प्रति पक्षी की प्रतिमा पर कुशा रख कांस पत्र के शीत उद्‌वज्र के जल से, कुशाओं से ही अपसव्य दक्षिणाभिमुख हो प्रहार करें।

प्रहार करने से पूर्व उद्‌वज्र प्रयोग से उत्पन्न भावी भयानक, अचिन्त्य, अलक्ष्य गम्भीर परिणाम से, पञ्चलोक पालों, दशों दिक्पालों, अनन्त तथा समस्त प्राणी वर्ग के अधिष्ठात्री देवों को सचेत (उद्बोधनार्थ) तथा त्रैलोकी के निरीह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समस्त प्राणि वर्ग के रक्षार्थ, अभयार्थ उद्वज्र के शान्ति जल पात्र में से कुशा से सभी दिशा विदिशाओं, ऊर्ध्व, अधोलोकों की ओर ××× (प) ××× — चिह्न से चिह्नित "कल्पजा" ऋचा से जल छिड़कें।

तदनन्तर गर्म कांस्य पात्र के जल में से "वातरंहा" से प्रत्येक प्रहार का जल ग्रहण करें और आगे की निर्द्धारित क्रमशः सूक्त की ऋचाओं से उद्वज्र प्रहार—प्रति कृति पर करें। ऋचा ३६ तक ही प्रहार की विधि है।

यह उद्वज्र जल का प्रक्षेपण कां० १० सूक्त ५ ऋचा १५ से प्रारम्भ करते हुये ऋचा २१ तक चलेगा; उससे आगे ऋचा ४२ से लेकर ५० तक जल प्रक्षेप करें। तदनन्तर जल प्रक्षेपण बन्द करके; दण्ड (वज्र) तथा कुशा की मुष्ठि हाथ में, लेकर ऋचा २५ से प्रारम्भ कर ऋचा ३६ पर्यन्त से; शत्रु को उद्‌बोधित करते हुए, सन्मुख पढ़कर. उसकी भर्त्सना तथा निग्रह करें। तदनन्तर ऋचा (२२ से २४ तक) यदर्वाचीन (३४ तक से) कृत प्रयोग में, ज्ञात अज्ञात प्रमाद वश असत्य भाषणादि दोष से, उत्पन्न अनिष्ट फल शान्त्यर्थ, आचमन करें। पुनः इसी ऋचा की २३ "समुद्रं वः" तथा २४ को पढ़ते हुए प्रथम पात्र के शान्त जल से अपने ऊपर तथा सभी दिशाओं में शान्त्यर्थ छींटे दें। शेष जल को गृहस्थी, स्वयं या यजमान हो तो उसकी स्त्री अन्यथा भूमि की गोद या अञ्जलि में शेष कुल जल सव्य तथा उत्तराभिमुख हो छोड़ दें। द्वितीय पात्र के गर्म उद्वज्र प्रयोग के जल को चिह्न ××× (क) ××× —से निर्दिष्ट कल्पजा ऋचा "एनानधराच" से पृथ्वी पर ही उड़ेल दें।

* तदनन्तर ऋचा ३७ "सूर्यस्यावृत" से प्रारम्भ कर ऋगा ४१ पर्यन्त प्रथम दक्षिण दिशा के अभिमुख हो प्रार्थना करें। पुनः परिक्रमा क्रम से पश्चिम, पुनः उत्तर तथा पूर्व दिशाओं की ओर पग बढ़ाते हुए, क्रमशः धन सम्पदा द्रविण, ब्रह्मवर्च, अन्न, (उपभोग्य समस्त पदार्थ) बल सभी (दैबी, मित्र, अर्थ, शक्ति, साधन, सैन्यादि) अभिवृद्धि, विजयार्थ उपस्थान करें। तदनन्तर प्रयोग में दी हुई विधि से प्रयोग समापन करें। सभी कार्यों की प्रारम्भ कार्य समापना, विधियां एक ही जैसी है। वार २ पुनरावृत्ति दोष भय से नहीं दी हैं वज्र, उद्वज्र तथा त्रिषन्धि वज्र के सभी मन्त्रों तथा अपराजितगण, रौद्रगण के दिये गये मन्त्रों से त्रिषन्धि वज्र प्रयोग विधि से हवन किया जाता है सामिग्री आदि आगे पृष्ठ पर है। वहाँ पर भी पृथक् दी गई हैं।

अभिचार वज्र के अधिष्ठात्री देव की विधि के अनुसार शत्रु नाशन, समर्पण बल को, जल में प्रविष्ट करे, उसमें वज्रत्व की कल्पना कर–शत्रु को लक्षित कर उसे फेंकें। विधि निम्न प्रकार है।

सर्व प्रथम जल को सम्बोधित करे कि, जिस महान इन्द्र के ओज, बल, वीर्य सामर्थ्य से, तुम सामर्थ्यवान हो सको, जिस इन्द्र के सदृश सहयोगी हो सको, उस सर्व शक्तिमान, अजेय, दुर्गम्य, अभेद्य, असह्य, अक्षम, इन्द्र की शक्ति से सम्पन्न तुम्हें ऋषि, देव और मन्त्र और स्व सामर्थ्य से बनाता हूँ। इस प्रकार निम्न प्रथम ६ ऋचाओं को पढ़ें और कांसे का एक बड़ा पात्र लें, और इन ६ ऋचाओं के प्रथम अर्ध भाग से, उस कांसे के पात्र को धोयें "इन्द्रस्यौजः" इन ६ का पूर्व भाग ही पढ़ें। इन्हीं ६ ऋचाओं का उत्तरार्द्ध भाग "जिष्णवेयोगाय" को पढ़ता हुआ, उस पात्र को जल के पास रक्खें।

ॐ अ० वे० कां० १० सूक्त ५ ऋचाः १–२४ तिन्धु द्वीप ऋषिः। आपः, चन्द्रमा; देवते अनुष्टुप्. छन्दः; १–४ त्रिपदा पुरंभिकृतिककुम्भती गर्भापाङ्क्तिः; ६ चतुष्पदा जह्वतीगर्भा जगती, ७–४ त्र्यवसाना पचपदा विपरीत पाद लक्ष्मा वृहती (११–१४ पथ्यापङ्क्ति), १४–२१ चतुर वसाना दशपादात्रैष्टुगर्भातिधृतिः, (१६–२० कृति-, २४ त्रिपदा विराड़ गायत्री,) छन्दासि, उद्वज्रानुमन्त्रणे, शत्रु विनाशने, शत्रुउच्चाटने, सम्मोहने, तयोः, परस्परं, विद्वेषणे, स्तम्भने, उच्चाटने, अस्मदं विजयार्थे सद्भीष्ट सिद्धयर्थे, उद्वज्रप्रक्षेपणे विनियोगः।

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्य१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥१

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।

जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥२

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।

जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥३

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।

जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥४

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।

जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥५

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।

जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ॥६

इसके उपरान्त निम्न पाठ करते हुए, कर्मभूमि, के दक्षिण दिशा में इस पात्र को जल के बीच में रक्खें। कल्पजा ८ ऋचायें हैं। मन्त्र ८ ऋचाओं के पढ़ते जावें।

इससे घट का मुँह जल के भीतर (घुमाते हुए) करें जल से पूर्ण घट को करें, और वहाँ से उठा कर, मण्डप में लाकर रक्खें। साथ ही "इदमहम्" (१४।१–३८) "योमाप्राच्या" ६।६८–३ भी इसी के विनियोग में है।

ॐ इदमहं योमांप्राच्या दिशोधायुरभिदासादपबाध–दीदिषु गृहः। तस्येमौ प्राणापानावपक्रामामि ब्रह्मणा दक्षिणायाः प्रतीच्या, उदीच्या, ध्रुवाया, व्यध्वाया, ऊर्ध्वायाः। इदमहं यो मा दिशाम्; अन्तर्देशेभ्यः इत्यपक्रामामि।

कां० १६ सू० ५–७ [८–१३] यम ऋषि दुष्वप्न नाशनं, उषादेवते। ८ प्रजापत्य वृहती, ९,११ साम्नी-वृहती, १० साम्नी गायत्री, १२ भुरिक् प्रजापत्य अनुष्टुप्, १३ आसुरी त्रिण्टुभ्–छन्दासि उद्वज्र अनुमन्त्रणे कांस्यपात्र जलार्थे घट स्थापने विनियोगः।

इदमहमामुष्यायणे३मुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥८

यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥९

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥१० यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमवं दये ॥११

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२ स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥१३

कां. ८।४–८ चातन ऋषिः। इन्द्रसोमौ देवते। त्रिष्टुप्। छन्दः।

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।

आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कॉ० ६, सू० ६८ ऋचा ३—अथर्वा ऋषिः। इन्द्रः देवता। त्रिष्टुप्। छन्दः उद्वज्राभिमन्त्रणपात्रनिदधने विनियोगः।

प्राच्यां दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहन्छत्रहोऽसि।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥३

तदनन्तर जल के भीतर घट का मुँह करे।

काँ० १४ सू० १ ऋ—३८ सूर्या सावित्री—ऋषयः। आत्मादेवता। पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक। छन्दः। उदक् मध्ये उदकोन्मुखे विनियोगः।

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि। यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥३८

तत्पश्चात् "इदमहम्' "योमा', 'प्राच्या दिशः" इनसे घट को जलपूर्ण करके घुमाये। और पुनः "इदमहम्" को पढ़ते हुए जल पूर्ण कांसे के पात्र को मण्डपमें लाये और रख दे।

इस रीति से अभिचार कर्मार्थ जल के लाने का प्राविधान है अब जलके वज्र (उद्वज्र) की प्रयोग विधि इस प्रकार है। उपरोक्त प्रकार से लाये जल के घट को "कां० १० सू० ५ की प्रथम ६ ऋचाओं से अभिमन्त्रित करें और "इदमहम्" ऋचा से स्थापना करें। और "इन्द्रस्यौजः" कां० १० सू० ५ की ऋचा ७ से १४ पर्यन्त ८ ऋचाओं को पढ़ते हुए—लाये हुए जल के दो भाग करें। आधा उसी घटमें रक्खें। आधा अन्य पात्र में कर ले। और उस पात्र को अग्नि मे तपायें। जल के प्रथम घट को अन्य पुरुष को रक्षार्थ दे दें। जल के दो भाग करने और तप्त करने की ये ८ ऋचायें ही दोनों कार्य में पढ़ें।

अग्नेर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥७

इन्द्रस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥८

सोमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥९

वरुणस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१०

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥११

यमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पितॄणां भाग स्थं । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१३

देवस्य सवितुर्भाग स्थं । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१४

. इस प्रकार जल को सम्बोधित करें, तुम अग्नि, इन्द्र, सोम, वरुणमित्र, वरुण यम, पितृ और सविता के अंश रूप हो, जो जलों का त्रैलोक्य के समस्त जलों का पूज्य है ऐसी ऊर्मि, विद्युताग्नि, ऐसा महाबल, पशुस्वरूप, वेद ख्यात हिरण्यगर्भ आदि देव, जो जलों में विविध वर्ण ओला (विधुच्छक्ति) अश्मप्रतीक मेघः जो अज जल के मध्य विद्यमान अग्नि स्वरूप हैं उन सबको प्रत्येक शत्रु के संहारार्थ फेंकता हूं, उस शत्रु को मारो, उसको इस मन्त्र से, इस कर्म से इस उद्वज्र से विदीर्ण करो । इस प्रकार पात्र के गर्म जल को—मण्डप के बाहर दक्षिणाभिमुख बैठे, पात्र को आगे की ओर करले । निम्न सूक्त से जल को ग्रहण कर सम्बोधित करें ।

कां० वे.६ सू० ९२ ऋचा, १-३ अथर्वा ऋषिः । इन्द्रः, वाजी देवते । त्रिष्टुप्, १ जगती, छन्दांसि उद्वज्राभिमन्त्रणे उद्वोधनेउद्वज्र प्रक्षेपणार्थे जलग्रहणे च विनियोगः । यह सौत्र मन्त्र हैं ।

वातंरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥१
जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः ॥२
तनूष्टे वाजिन् तन्वं१ नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
आहुतो महो धरुणाय देवो दिवीऽव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥३

इनसे पात्र के जल को ग्रहण कर ''शं अग्नये' इस कल्पजा सूक्त से समस्त प्राणिमात्र को उद्वज्र प्रयोग से उत्पन्न भय से रक्षा तन्त्र कर उन्हीं से सभी प्राणीवर्ग के अधिष्ठातृ देवों को भी चैतन्य करे ।

उद्वज्र फक्षेपण से पूर्व लोक लोकान्तरीय प्राणीवर्ग को अभय प्रदान निम्न अर्थ सूक्त से करें ।

ॐ शमग्नये, शं पृथिव्यै, शमन्तरिक्षाय, शं वायवे शं दिवे, शं सूर्याय, शं चन्द्राय, शं नक्षत्रेभ्य, शं गन्धर्वाप्सरसेभ्यो शं सर्पेतरजनेभ्यः शिवमह्यम् ।

प्रथम जल पात्र के शान्ति जल से कुशा से सभी दिशा विदिशाओं में तथा स्वयं कर्ता व ब्रह्मा अपने ऊपर जल से छींटे दें । साथ ही कां० १८।४-११.१२ से भी शान्ति जल छिड़कें । यह कल्पजा सूक्त कहे गये हैं ।

'शमग्नये' कां० १८ सू० ४ ऋचा (११-१२) अथर्वा ऋषिः । यम, मन्त्रोक्ताः देवते । त्रिष्टुप् । महावृहती: छन्दासि । उद्वज्रप्रयोगारम्भे सर्वभूतानामभयार्थं अवसेचने मार्जने च विनियोगः ।

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥११ १८।४।११

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शम॒ग्नयः॒ समि॑द्धा आ र॑भन्तां प्राजाप॒त्यं मेध्यं॑ जा॒तवे॑दसः ।
शृ॒तं कृ॒ण्वन्त॑ इ॒ह माव॑ चिक्षिपन् ॥ १८।४।१२

अभयार्थ घट के जल से सभी दशों दिशाओं में छींटे दें। अब वज्र प्रक्षेपः। कां० १, सू० ५ ऋचा १५ से करे।

यो व॑ आपो॒ऽपां भा॒गो॒३॑ऽप्स्व॒१॑न्तर्य॑जु॒ष्यो॒ऽदे॒व॒यज॑नः। इ॒दं तमति॑ सृजा॒मि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
तेन॒ तम॒भ्यति॑सृजामो॒ यो॒३॑ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒नेन॒ ब्रह्म॑णा॒नेन॒ कर्म॑णा॒नया॑ मे॒न्या ॥१५

तत्पश्चात् ६।६२-१, ३ "वातरंहा" से जल हाथ में लें और १८।४।११-१२ से त्रैलोकी के समस्त प्राणि-मात्र को अभयार्थ सब दशाओं में जल छोड़े तदनन्तर 'यो व आपोऽपाम्' ऋचा १६ से वज्र प्रक्षेप करे।

यो व॑ आपो॒ऽपामू॒र्मिर॒प्स्व॒१॑न्तर्य॑जु॒ष्यो॒ऽदे॒व॒यज॑नः। इ॒दं तमति॑ सृजा॒मि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
तेन॒ तम॒भ्यति॑सृजामो॒ यो॒३॑ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒नेन॒ ब्रह्म॑णा॒नेन॒ कर्म॑णा॒नया॑ मे॒न्या ॥१६

पुनः "वातरंहा" से जल लें और 'शमग्नये' से अभय कर्म करे। तदनन्तर वज्र प्रक्षेपः ऋचा १७ से करे।

यो व॑ आपो॒ऽपां व॒त्सो॒३॑ऽप्स्व॒१॑न्तर्य॑जु॒ष्यो॒ऽदे॒व॒यज॑नः। इ॒दं तमति॑ सृजा॒मि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
तेन॒ तम॒भ्यति॑सृजामो॒ यो॒३॑ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒नेन॒ ब्रह्म॑णा॒नेन॒ कर्म॑णा॒नया॑ मे॒न्या ॥१७

पुनः 'वातरंहा" से जल ले "शमग्नये" से अभय कार्य कर ऋचा १८ से वज्र प्रक्षेपः करे।

यो व॑ आपो॒ऽपां वृ॑ष॒भो॒३॑ऽप्स्व॒१॑न्तर्य॑जु॒ष्यो॒ऽदे॒वयज॑नः। इ॒दं तमति॑ सृजा॒मि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
तेन॒ तम॒भ्यति॑सृजामो॒ यो॒३॑ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒नेन॒ ब्रह्म॑णा॒नेन॒ कर्म॑णा॒नया॑ मे॒न्या ॥१८

पुनः "वातरंहा" से जल 'शमग्नये" से शान्ति और ऋ० १९ से प्रक्षेप करें।

यो व॑ आपो॒ऽपां हि॑रण्यग॒र्भो॒३॑ऽप्स्व॒१॑न्तर्य॑जु॒ष्यो॒ऽदे॒व॒यज॑नः। इ॒दं तमति॑ सृजा॒मि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
तेन॒ तम॒भ्यति॑सृजामो॒ यो॒३॑ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒नेन॒ ब्रह्म॑णा॒नेन॒ कर्म॑णा॒नया॑ मे॒न्या ॥१९

पुनः "वातरहा" से जल लें "शमग्नयेसे" अभय कर्मकर ऋचा २० से वज्र प्रक्षेपः।

यो व॑ आपो॒ऽपाम॒श्मा पृश्नि॑र्दि॒व्यो॒३॑ऽप्स्व॒१॑न्तर्य॑जु॒ष्यो॒ऽदे॒व॒यज॑नः।
इ॒दं तमति॑ सृजा॒मि॒ तं माभ्यव॑निक्षि। तेन॒ तम॒भ्यति॑सृजामो॒ यो॒३॑ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२०

पुनः "बातरहा" से जल "शमग्नये" से अभय, ऋ० २१ से प्रक्षेप ।

वे वं आपोऽपामग्नयोऽप्स्वं१न्तर्यजुष्याऽदेवयजनाः । इदं तानतिं सृजामि तान्माभ्यवंनिक्षि ।
तैस्तमभ्यतिंसृजामो योऽ३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं त स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानयां मेन्या ॥२१

वज्र प्रक्षेपः। निम्न से शान्ति करे ।

ॐ शमग्नये शं पृथिव्यैशमन्तरिक्षाय शं वायवे शं दिवेशंसूर्यायशं चन्द्राय शं नक्षत्रेभ्यः शं गन्धर्वाप्सरसेभ्यो शं सर्पेतरजनेभ्यः शिवंमह्यम् ।

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै । व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापींपदाम तम् ॥४२
वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि । इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥४३
राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽऽसि । सोऽ३मुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥४४
यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियतिं पृथिवीमनु । तस्यं नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥४५
अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥४६
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥४७

नोट—न० (१) शत्रुनामयदि ज्ञात होवे (२) शत्रु के पिता का नाम ज्ञात हो तो लें (३) शत्रु की माता का नाम ज्ञात हो तो उसे उपर्युक्त उच्चारण करे ।

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥४८
परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवां छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥४९
अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥५०

पुनः इन ?२ ऋचाओं को शत्रु को सन्मुख कर पढ़े उसकी भर्त्सना करें उसका त्रास निग्रह करें ।

बिष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रंमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२६
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रंमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२७
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोऽनु वि क्रंमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२८
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रंमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२९
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहं ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रंमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३०
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रंमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३१
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।
ओषधीरनु वि क्रंमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३२
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।
अपोऽनु वि क्रंमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३३
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३४

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्रणो जहातु ॥३५

ऋचा ३५ से आगे ३६ ले लें । तदनन्तर ऋचा २२ से आचमन करें ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि ।
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३६

तदन्तर असत्य भाषणादि जनित पाप के प्रतारणार्थ आचमन इस ऋचा से करे ।

यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम । आपो मा तस्मात्सर्वस्माद् दुरितात्पान्त्वंहसः ॥२२

तदनन्तर उदपात्र के जल को स्वपत्नी की अञ्जलियों में उडेल ले ऋचा २३ से ।

ऋचा २३ से प्रथम जलपात्र से जल लेकर अपने ऊपर छोड़ें और इसी से आचमन प्रायश्चित्त रूप में करें ।

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन । अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥२३

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् । प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२४

पुनः कुशाओं सहित जल को "समुद्रं व० ऋ० २३ से स्त्री की अञ्जलि में या भूमि पर छोड़ दें ।

इस कल्पजा ऋजा से पात्र के गर्म जल को भी पृथ्वी पर दक्षिण को उड़ेलें ।

"ॐ एनानधराचः पराचोवाञ्चस्तपसस्तनूनथत । देवाः पितृभिः संविदान, प्रजापति प्रथमो देवतानाम् ॥इति॥

ऋचा ३७ से ४१ पर्यन्त सूर्य देवता का उपस्थान करें । दायें क्रम से प्रदक्षिणा कर धन सम्पदा वर्च आदि की प्रार्थनाप्राप्ति की करे । प्रथम कुछ दक्षिण को आगे कदम बढ़ा दक्षिण दिशाके अभिमुख हो । ऋ० ३७ से प्रार्थना करे,इसी प्रकार परिक्रमा क्रम से सभी दिशाओं की ओर पग बढ़ाते हुए द्रविण, ब्रह्मवर्च, अन्न, बल एवं मित्रबल वृद्धि तथा विजय की प्रार्थना करे ।

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् । सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३७

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते । ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३८

सप्तऋषीनभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३९

ब्रह्माभ्यावर्ते । तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४०

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४१

पुनः "यो व आपोपां" ऋ० १५ से २१; "यं व्यंमृगयामहै" ऋ. ४२ से "विष्णो क्रमोसि" ऋ० २५ से ३६ पर्यन्त पूर्व क्रम से करके ऋचा २२ "यदर्वाचीनम्" से आचमन करे। "समुद्रेवः" ऋ० २३ से कुशाओं युक्त उदक् पात्र के जल को स्त्री (पत्नी) की ही अञ्जलि में उड़ेल दे। "सूर्यास्यावृतम्" ३७-४१ इन ५ से पुनः सबदिशाओं की ओर पग बढ़ाते हुए प्रदक्षिणा, नमस्कार कर त्रिभुवनाधि प्रति से अन्न, अग्नि से वर्च प्रजा, आयु की याचना कर, दुष्टों, यातुधानों के संहरण की विनय करें।

अन्त और कार्य प्रारम्भ में कां० १६ सू० ६८, ब्रह्मा ऋषिः। कर्म देवता। अनुष्टुप छं०।

अव्यंसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया। ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥१

प्रार्थना करे।

कां १६० सू० ६६। ब्रह्मा। जातवेदाः सूर्यो वज्रश्च। अति जगति।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान्प्रमृणन्पाहि वज्रः ॥१

१६।६० ब्रह्मा। गायत्री। त्र्यवसानापञ्चपदा जगती।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥१

१६।७२। भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा। परमात्मा देवाश्च। त्रिष्टुप्।

यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१

हरि ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

॥ इति ब्रह्मास्त्र एवं उद्वज्र प्रयोग विधिः ॥

कां० १० सू० ५ मन्त्र १५ से····हे दिव्यजलो! जो तुम में जलों का भाग है, जो जलों के अन्दर रहता हुआ, यज्ञ कर्मोपयोगी, देवों के लिए यजनरूप है, वह मैं उसी को सौंपे देता हूँ। उसका तिरस्कार न करें। उससे उन सभी को दूर कर देते हैं। "जो हम से द्वेष करता है, और जिससे हम द्वेष करते हैं। इस ब्राह्मी शक्ति से, इस कर्म और इस संकल्प से, उसका बध करें और उसका नाश करें। (१६) हे जलो! जो तुम में जल की तरंगें हैं, जो उपर्युक्त वलादि हैं। ०।०॥ (१७) हे जलो! जो तुम में जलों का बछड़ा है। शेष उपर्युक्त ०।०॥ (१८) हे जलो! जो तुम में घर्षण करने वाला मेघ है (उपर्युक्त) ०।०॥ (१९) हे जलो! जो तुम में स्वर्णिम तेजस्वी भाग है। (उपर्युक्त) ०।०॥ (२०) हे जलो! जो तुम में जलों का (पत्थर) ओला बर्फ आदि का दिव्य भाग है। (उपर्युक्त) ०।०॥ (२१) हे जलो! जो तुम में अग्नि का दाहक भाग (विद्युत) है। (उपर्युक्त) ०।०॥ (२२) तीन वर्षों के अन्दर जो कुछ भी मैंने असत्य भाषणादि पाप किया है। उस सब पाप से जल मेरी रक्षा करें। (२३) हे जलो! तुम्हें मैं समुद्र को समर्पित करता हूँ। तुम अपने उद्गम स्थान को प्राप्त होओ। सम्पूर्ण आयु पर्यन्त अहिंसित होते हुए,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हम सब पूर्ण निरोग रहें। (२४) जल निर्दोष है, इस कारण वह हम सबके दोष निवारण करे। श्रेष्ठ स्वरूप वाला जल हम सबसे पाप और मल दूर करे। हमारे दुष्ट स्वप्नों और मलों को बहाकर दूर ले जावें।

(२५) हे ब्रह्मास्त्र ! हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के आक्रमणके तुल्य आक्रामक हो: तथा शत्रु संहारकारी, भू-मण्डल पर तेजस्वी और अग्नि के तुल्य उग्र प्रतापी हो। मैं पृथ्वी पर पराक्रम करता हूँ। हम उनको पृथ्वी पर से ही हटाये देते हैं, जो हम से द्वेष करता है। और जिससे हम द्वेष करते हैं। वह जीवित न रहे उसे प्राण छोड़ दें।

(२६) हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के आक्रमण के तुल्य आक्रामक हो, शत्रु संहारक, अन्तरिक्ष में तेजस्वी और वायु के तेज से परिपूर्ण हो। मैं आन्तरिक्ष में पराक्रम करता हूँ। हम उनको आन्तरिक्ष से और हटाये देते हैं। जो हम से द्वेष करते हैं, और जिनसे हम द्वेष करते हैं। वे जीवित न रहें, उन्हें प्राण त्याग दें।

(२७) हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के तुल्य पराक्रमी, तथा शत्रु विनाशक, द्युलोक में तेजस्वी और सूर्य के तेज से सम्पन्न हो। मैं द्युलोक में पराक्रम करता हूँ। हम उनको द्युलोक से हटाये देते हैं। जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनसे हम द्वेष करते हैं। वे जीवित न रहें। उन्हें प्राण त्याग दें।

(२८) हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के तुल्य आक्रामक हो, तथा शत्रु विनाशक दिशाओं में तेजस्वी, और मानसिक तेज से युक्त हो। मैं दिशाओं में पराक्रम करता हूँ, दिशाओं से उनको हटाये देते हैं। जो हम से द्वेष करते हैं और जिनसे हम द्वेष करते हैं। वे जीवित न रहें, उन्हें प्राण त्याग दें।

(२९) हे उद्वज्र तू विष्णु के तुल्य आक्रामक है, तथा शत्रु संहारक, उपदिशाओं में तेजस्वी और वात के तेज से युक्त है। मैं उप दिशाओं में पराक्रम करता हूँ। उसको वहाँ से हटाये देता हूँ, जो हमसे ।०।०।। (३०) हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के सदृश आक्रामक हो तथा रिपू संहारक हो। ऋग्वेद के ज्ञान, और तेज से साम के तेज से युक्त हो, तथा मैं ऋग्विज्ञान में पराक्रम करता हूँ। हम उनको ऋचाओं से हटाये देते हैं। जो हम से द्वेष करते हैं। ०।०।। ३१—हे उद्वज्र ! तू विष्णु के तुल्य आक्रामक हो तथा शत्रु हन्ता हो। यज्ञ के तेजस्वी व ज्ञान के तेज से परिपूर्ण हो, तथा मैं यज्ञ क्षेत्र में पराक्रम करता हूँ। हम उनको यज्ञ से हटाये देते हैं। जो ।०।०।। ३२—हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के पराक्रम से युक्त उग्र आक्रामक हो। शत्रु हन्ता तुम औषधियों से तेजस्वी और सोम के तेज से परिपूर्ण हो। मैं औषधि विज्ञान में पराक्रम करता हूँ। हम उनको औषधियों से हटाये देते हैं। जो ।०।०।।

३३—हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के आक्रमण के तुल्य आक्रामक हो तथा शत्रु विनाशक हो। तुम जलों में तेजस्वी और वरुण के तेज से युक्त हो। मैं जलों में पराक्रम करता हूँ। हम जलों से उनको हटाते हैं। जो ।०।०।।

३४—हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के आक्रमण के तुल्य ही आक्रामक, शत्रु विनाशक हो। तुम कृषि से तेजस्वी और अन्न के तेज से सम्पन्न हो। मैं कृषि में पराक्रम करता हूँ। हम उनको कृषि से हटाते हैं। जो ।०।०।।

३५—हे उद्वज्र ! तुम विष्णु के आक्रमण के तुल्य आक्रामक शत्रु संहारक हो। तुम प्राणों से तेजस्वी और पुरुष के तेज से परिपूर्ण हो। मैं प्राण क्षेत्र में विक्रम करता हूँ। प्राणों से उनको हटाता हूँ, जो हम से द्वेष करते है, और जिनसे हम द्वेष करते हैं। वे जीवित न रहे, उन्हें प्राण त्याग दें।

३६—हमारी विजय हो, हमारा उद्भव (प्रभाव) हो। सारी शत्रु सेना तथा आक्रामक परास्त हुए हैं। मैं यह (अमुक) गोत्र के (अमुक) माता के पुत्र के वर्चस, तेज, प्राण और आयु को पूर्ण रीति से बांधता हूं, और इसी भाँति इसको मैं नीचे गिराता हूँ। ३७—तेजोमयी दिशाओं में, मैं गमन करता हूँ। वे मुझे यश ऐश्वर्य धन प्रदान करें। वे मुझे ब्रह्म ज्ञान, ब्राह्मी बल तेज प्रदान करें। ३८—सूर्य का दक्षिण दिशा में गमन है; मैं भी उनके अनुकूल होकर, उनके ही साथ जाता हूँ। वे मुझे धन सम्पदा ऐश्वर्य प्रदान करें और ब्रह्मबल, ओज, वर्च से अनुगृहीत करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३९—मैं सप्त ऋषियों की शरण; उनके अनुकूल हो, प्रस्थान करता हूँ। वे मुझे धन ऐश्वर्य सम्पदा से ब्रह्मबल, तेज, ओज से अनुगृहीत करें। ४०—मैं ब्रह्म ज्ञान और ज्ञानियों की शरण उनके अनुकूल हो, प्रस्थान करता हूँ। वे मुझे धन सम्पदा, ब्रह्मबल, वर्चादि से परिपूर्ण करें।

४१—मैं ब्रह्म वेत्ता (ब्राह्मणों) की शरण उनका आज्ञाकारी हो अनुचरण करता हूँ। वे मुझे धन धान्य सम्पदा ऐश्वर्य ब्रह्मबल, ओज, वर्च से अनुगृहीत करें। ४२–जिसे हम ढूढ़ते हैं, उसे वधों, वन्धनों हथियारों से नष्ट करते हैं। परब्रह्म की विकराल दंष्ट्राओं मे उसे हम ब्रह्मबल के योग से डाले देते हैं।

४३–वैश्वानर (रुद्र) की विकराल दाड़ों द्वारा निर्मित जो अस्त्र है उससे उसका संहार करते हैं। उसका विनाश करके, यह जो समिधा इस यज्ञ में डाली जाती हैं वह शत्रु को हटाने में पूर्ण समर्थ है।

४४—तू वरुणदेव के बन्धन में पड़ा हुआ है, वह मैं (अमुक) इसको, इस गोत्र के (अमुक माता के) पुत्र को अन्न और प्राण में बाँधे देता हूँ। ४५–हे त्रिभुवनेश! जो तेरा अन्न पृथ्वी पर है; हे प्रजापालक! तू उसको हमें प्रदानकर। ४६–हे दिव्य जलो! मैं सविनय याचना करता हूँ, कि हमें रसों से परिपूर्ण करो। हे अग्ने! रस के साथ मैं आ रहा हूँ। उस मुझे तेज से परिपूर्ण करो।

४७–हे जातवेदाग्ने! मुझे ब्रह्म तेज से परिपूर्ण करते हुए वीर सन्तति (पुत्र, पौत्रादि प्रजाजन) निरोगता और पूर्ण आयुष्य से परिपूर्ण कर। विश्वदेवा मेरी अन्तरात्मा के भाव और संकल्प को सहृदयता के साथ समझें; और देवराज, ऋषिगणों के साथ मेरी इस विनम्र प्रार्थना के भाव को सहृदयता से भली प्रकार समझें, अनुग्रहीत करें।

कां० ६ सू ६४ 'संज्ञानीध्वम्" परिवारो, पिता, पुत्र, स्त्री, मातादि, तथा ग्राम नगर राष्ट्र के पारस्परीक द्रोह के निवारणार्थ, पारस्परिक प्रेम सद्भावना संगठन शक्ति सम्पादनार्थ, शान्ति औषधियां जो अ० १, २ में दी जा चुकी है शान्तिघट में डाले, उन्हीं सूक्तों के साथ इस तथा निम्न सूक्तों से अभिमन्त्रित करें। उसी घट में शान्ति औषधियां और शान्ति वृक्षों की जड़, त्वक पत्ते, पुष्प, फलों के सम्मिश्रण से सशोधित रस (आशव) जैसा सोम अन्य घट में डालकर केवल इन्हीं निम्न सूक्तों से अभिमन्त्रित करें। इसे उपर्युक्त शान्तिघट के जलों में मन्त्र पाठ के साथ उडेल लें। उससे ग्राम देवता, मरुद्गण, अष्टवसु, लोकपाल दिग्पाल तथा सप्तर्षियों के निमित घर, ग्राम, नगर, राष्ट्र जो भी हों के चारों ओर मन्त्र पाठ के साथ धीमी धीमी धार दें। दशों दिशाओं के अधिपतियों तथा उपर्युक्त देवों ऋषियों के निमित दूध भात या दही भात अभिमन्त्रितकर चौरास्ताओं पर और अश्वत्थमूलमें किन्हीं पत्रों पर रखकर, सब दिशाओं, चौरास्ताओं के बीच और पीपल मूल में रख दें। इन्ही से होम करें, होमान्त उपरोक्त भोग (वलिदान) और धार दें। तदनन्तर प्रणीताजल तथा घट के जलों को मिला परिवारी ग्राम्यजनों (जो भी हों) को शान्ति मन्त्रों से कुशा और अपामार्ग तथा दूर्वा मिलाकर छींटे दें, स्नान करायें, यज्ञावशेष दूध भात को अभिमन्त्रित कर सभी को प्रसाद दें। वे उसी का भक्षण करें। इनके साथ ही का० ३।३० "सहृदयं" कां० ५।१ मंत्र ५ "तंदूषु" (कां० ५।१-५) "एहयातु"; "स वः पृच्यताम्" से होम अभिमन्त्रण, मार्जन तथा ग्राम, नगर परिक्रमायें करें।

कां. ३ सू. ३० (१–७) अथर्वा। चन्द्रमाः, सांमनस्यम्। अनुष्टुप्, ५ विराड् जगती, ६ प्रस्तार पङ्क्तिः, ७ त्रिष्टुप्। उपर्युक्त कर्मसु होमे च विनियोगः।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

येन॑ दे॒वा न वि॒यन्ति॒ नो च॑ विद्वि॒षते॑ मि॒थः । तत्कृ॑ण्मो॒ ब्रह्म॑ वो गृ॒हे सं॒ज्ञानं॒ पुरु॑षेभ्यः ॥४
ज्याय॑स्वन्तश्चि॒त्तिनो॒ मा वि यौ॑ष्ट संरा॒धय॑न्तः॒ सधु॑रा॒श्चर॑न्तः ।
अ॒न्यो अ॒न्यस्मै॑ व॒ल्गु वद॑न्त॒ एत॑ सध्री॒चीना॑न्वः॒ संम॑नसस्कृणोमि ॥५
स॒मा॒नी प्र॒पा स॒ह वो॑ऽन्नभा॒गः स॑मा॒ने योक्त्रे॑ स॒ह वो॑ युनज्मि ।
स॒म्यञ्चो॒ऽग्निं॑ सपर्यता॒रा नाभि॑मिवा॒भितः॑ ॥६
स॒ध्री॒चीना॑न्वः॒ संम॑नसस्कृणो॒म्येक॑श्नुष्टीन्त्सं॒वन॑नेन॒ सर्वा॑न् ।
दे॒वा इ॑वा॒मृतं॑ रक्ष॑माणाः सा॒यंप्रा॑तः सौमन॒सो वो॑ अस्तु ॥७

कां. ३।३० इसी कर्ममें ३ वर्षकी गौ की बच्ची जो ग्याभन न हुई हो उसके गोमयके अन्नको धोकर लें अथवा उसके मूत्र में भिगोये हुए जौ. काले धान, और काले तिल सुखाकर उनकी खिचड़ी बना अभिमन्त्रित कर भोग, बलि-वैश्वदेव यज्ञ कर सभी को, पारस्परिक प्रीति(अनन्य हार्दिक सौहार्द्रता)उत्पन्न करने के लिये प्रसाद रूप में,अथवा प्रीति में सहभोज में खिलायें। सुरा का अभिप्राय तीन दिन शान्ति औषधियों का अधिवासित जल मथकर, छानकर लेने का है।

कां. ६ सू. ६४ [१-३] अथर्वा । सांमनस्यम्, १देवाः । अनुष्टुप् (२ त्रिष्टुप्) । उपर्युक्त कर्मषु उपस्थाने, होमे च विनियोगः ।

सं जा॑नीध्वं॒ सं पृ॑च्यध्वं॒ सं वो॒ मनां॑सि जानताम् ।
दे॒वा भा॒गं यथा॒ पूर्वे॑ संजाना॒ना उ॒पास॑ते ॥१
स॒मा॒नो मन्त्रः॒ समि॑तिः स॒मा॒नी स॑मा॒नं व्र॒तं स॒ह चि॒त्तमे॑षाम् ।
स॒मा॒नेन॑ वो ह॒विषा॑ जुहोमि स॒मा॒नं चेतो॑ अभि॒संवि॑शध्वम् ।.२
स॒मा॒नी व॒ आकू॑तिः स॒मा॒ना हृद॑यानि वः । स॒मा॒नम॑स्तु वो॒ मनो॒ यथा॑ वः॒ सुस॒हास॑ति ॥३

कां० ६ सू० ६४ 'सं जानीध्व" सभी परस्पर सद्भावना से संघटित होकर भली प्रकार से ज्ञानार्चन करो, सममाव से, एक-दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करो; अपने अन्तकरण समान सस्कारों से वैसे ही सस्कृत करो, जैसे पूर्वकालीन ज्ञानी अपने कर्त्तव्य भाग की उपासना करते रहे. वैसे ही तुम भी करो। २—तुम्हारे विचार समान हों, तुम्हारी सभा (ग्राम सभा, लोकसमा, राज्यसमा, विधानसभा, प्रभृतिक)सबके लिये समान हों. तुम सभी के संकल्प और कृत्य भी समान हों। इन समस्त जनों का, तुम्हारा चित्त सम समान. एक ही,विचारधारा का हो,समसंकल्प से,कार्य में प्रविष्ट हों,इस हेतु तुम सभी को समान हवि (आत्मसमर्पण) के लिए, सयुक्त (सम्मिलित) करता हूँ। ३—तुम्हारे सभी के एक जैसे संकल्प हों, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन समान हों जिससे, तुम सभी परस्पर घुल-मिलकर उत्तम रीति से रहो।

कां. ६ सू. ९४ (१-३) अथर्वाङ्गिराः । सरस्वती । अनुष्टुप्, २विराड्जगती । उपस्थाने कर्मषु च विनियोगः ।

सं वो॒ मनां॑सि॒ सं व्र॒ता समाकू॑तीर्नमामसि । अ॒मी ये विव्र॑ता॒ स्थन॒ तान् व॒ः सं न॑मयामसि ॥१
अ॒हं गृ॑भ्णामि॒ मन॑सा॒ मनां॑सि॒ मम॑ चि॒त्तमनु॑ चि॒त्तेभि॒रेत॑ ।
मम॒ वशे॑षु॒ हृद॑यानि वः कृणोमि॒ मम॑ या॒तमनु॑वर्त्मान॒ एत॑ ॥२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओतें मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती । ओतौं म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥३

कां० ६।९४ तुम्हारे मन परस्पर सद्भाव से युक्त हों। (कलुषित न हों) तुम्हारे संकल्प, कर्त्तव्य भी एक विचार से युक्त हों। तुम्हारे विभिन्न सकल्पों को एक ही सद्भाव की ओर झुकाते हैं। ये जो तुम पर परस्पर विरुद्ध कर्म करने वाले हो, उन सभी और तुमको एक ही सद्भाव की ओर झुकाते हैं। २ – मैं अपने मन से तुम्हारेसभी के मनों को ग्रहण करता हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल अपने चित्तों को बनाकर आओ। अपने वश में, मैं तुम्हारे अन्तःकरणों को करता हूँ। मेरे चाल-चलन के अनुकूल व्यवहार करने वाले होकर ही यहां आओ। ३—द्युलोक और भूलोक मुझसे मिले-जुले ही हैं, बुद्धिदात्री सरस्वती देवी भी मिली हुई हैं। इन्द्र और अग्नि भी मेरे पास, मिले हुए हैं, हे सरस्वती देवी ! इसी प्रकार की समृद्धि से हमें समृद्ध करो। यह पुरोहित, गुरु, गृहस्वामी, सभी परिवार, ग्राम, राष्ट्र में प्रतिदिन प्रातः सायं, शयनकाल में प्रभु से यज्ञान्त में प्रार्थना करें।

मन्त्र "एहयातु" वास्तु विधि में उल्लिखित हैं, पढ़ें और मनन कर कार्य करें।

ओषधि प्रकरण शेष

उल्टे धोड़े (कालावंकर)—कंघी (सनकूकरा), फोड़ा के उठते ही, कंघी (सनकूकरा) की पत्तियां पीसकर ३।४ बार लेप करें। यदि फोड़ा पकने की हालत में हो तो इन्हीं पत्तों का भुर्त्ता बनाकर बांधें।

फोड़ा, दाद, खाज, छाजन—२५० ग्राम तेल सरसों; १० ग्राम नीम की कोपलें, १ ग्राम गुजराती सिन्दूर १ तोले छोटी मक्खी का मोम लें। नीम की कोपलों को बिना पानी के पीसें, टिक्की बना, तेल में, कढ़ाई में पकाकर निकाल लें। तदनन्तर तेल में घोट डालें। जब मोम घुल जावे, तब उसमें सिन्दूर डालें, उसे भी उतारकर ठण्डा कर लें। इन सबको फेंट लें, मरहम को रख लें।

सेवनविधि--छाजन, दाद को सूखे गोमय से घिसकर लोहू-लुहान कर लें। तब मरहम का लेप करे। दूसरे दिन नीम के पानी से धोकर ही मरहम लगालें। १४ दिन लगायें। फोड़ा, फुन्सी में केवल लेप ही करें।

गठिया वायु रोग--२५० ग्राम तिली का तेल, १ तोला देशी मोम ले। तेल पकाकर रूमी मस्तङ्गी पीस-कर डालें, तदनन्तर मोम डालें। इसे २।३ घण्टे, दिन में धूप में मलें, सेक लें। ५।७ दिन लें।

बच्चों का सूखा रोग--अतीश दूध वच, सोंठ, छुआरा, बड़ा हर्रा काला नमक, छोटी पीपल, चौकिया सुहागा, हींग सम भाग लें। हींग का फूला करे। अन्य सबको पत्थर पर पानी डालकर बार-बार घिसें उसमें हींग, व सुहागे को फूलाकर मिलालें। माँ के दूध में मिला बच्चे को चटायें। जाड़ों में दक्षिणी जायफल मिला लेना हितकर है। एक माह दें।

स्त्रियों के मासिक धर्म—१. बन्द हो जाने पर, फरफेंदुआं (इन्द्रायण) की आठ अंगुल की जड़ लें। पानी में साफ कर लें। उस पर आमियाहल्दी पीसकर गाढ़ी-गाढ़ी लेपें, सुखा ले। उसे स्त्री योनि में अन्दर रख लें। यह सोते समय करें। ३ दिन में मासिक धर्म साफ होकर खुलकर होगा। २. १ तो० हल्दी, १ तोला गाजर के बीज, १ तोला अजवायन, १०० ग्राम पुराना गुड़, १०० ग्राम खंडयार की पत्ती लें। इन को ६ भागों में बांट ले। १ भाग को १।२ सेर पानी में उबालें। १।४ भाग शेष को छानकर पीले। ऐसे ही ६ दिन लें।

श्वेत प्रदर--छोटी दुद्धी (ककड़ दुद्धी, तिलकुटी)। १ तोला लें, १०।१५ कालीमिर्च मिला पीसें, १।४ शेष पानी में छानकर पियें।

रक्त प्रदर--१०० ग्राम शीशम की गिद्दी (कौंपल) को घोटकर कालीमिर्च मिला २५० ग्राम पानी में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिलाकर प्रातः सायं १ सप्ताह लें। अथवा १ तो० लोध पठानी १ तो० श्याम सेलखड़ी, ५ गुड़हल के फूल, १ तोला मिश्री पीसकर रख लें। चार आना भर, मात्रा में धारोष्ण दूध से लें। पथ्य, गुड़, तेल, खटाई, लाल मिर्च।

तदू षु ते महत्पृथुज्मन्नमः कविः काव्येना कृणोमि ।
यत्सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥५

कां० ५ सू० १ मंत्र ५—"तदुषु" हे विशेष गति प्रदाता परमेष्ठिन् ? इसी (उपर्युक्त) कारण से, मैं कवि, लेखक अपने काव्य के द्वारा, आपको बारम्बार अति दीन सद्भाव से वन्दनायें करता हूँ। क्योंकि मिले हुए, गतिमान्, बड़े प्रतिरोधक, गतिवाले चक्रों के समान, यहाँ भूलोक में दोनों बढ़ते हैं। यदि प्रभो, एक ही कार्य के लिए, एक केन्द्र में परस्पर मिल-जुलकर कार्य करने लगें; तो महान शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। यहाँ जड़चेतन ये विरुद्ध गुणधर्म वाले, दो पदार्थ तेरे सन्मुख झुकजाते हैं और इस विचित्र विनम्रता से शक्तिशाली बनते हैं।

॥ इति अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा विधि ॥

अत्र '**ऋग्वेदीय**' कृतएव क्रियमाण पाप, शाप आदि जनित कर्मज भव व्याधि निवारण में समर्थ सूक्तों, मंत्रों की प्रयोग विधियों का संक्षेप में दिग्दर्शन किया जाता है। **यजुर्वेद** मन्त्रों की कतिपय प्रयोग विधियाँ ग्रन्थ के अध्याय २ में आ चुकी हैं। ध्यान से पढ़ें, उपयोग में लायें।

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१

ऋग्वेद मं० १० सूक्त १३० मं० १ "यो यज्ञों" से मन्त्र ७ पर्यन्त पूरे ही सूक्त को १० हजार जपकर, विधिवत संकल्प के साथ पौत्र, दौहित्र पुत्र अपने माता, पिता, पितामह, मातामह, पितामही, मातामही आदि को दान दें, तो उद्वेग या घात पात, मारण, उच्चाटनादि से, या उन्माद जनित कारणों से हुई अपमृत्यु के दोष नारकीय दारुण क्लेशों कर्मज भवव्याधियों दुर्गति पाशों से मुक्ति होती है।

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१

ऋ० वे० मं १० सू० २९ मं० १ "नासदासीन्नो' से मन्त्र ७ पर्यन्त के सू० का विधिवत अश्वत्थ मूल में १० हजार जप करके, पुत्र, पौत्र, दौहित्र, अपने माता, पिता, मातामही, पितामह को विधिवत संकल्प के साथ पुण्यदान करें, तो वे जल में डूबकर या जल से जलरूर या (लकवा) जलोदरादि जल के अधिष्ठात्री देव वरुण के शाप जनित, अकाल मृत्यु, अपमृत्यु जनित सभी "कर्मज भवव्याधि" दुर्गति पाशों से छुटकारा होता है।

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृडाति कतमो नो मयस्करत् कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१
क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२

ऋ० वे० मं० १० सूक्त ६४ मंत्र १ "कथादेवानाम्" को प्रतिदिन त्रिसध्या कालों में अश्वत्थमूल में जपने से,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रारब्ध सूचित "कर्मज भव व्याधियाँ" निश्चय ही नष्ट हो जाती हैं। मं० २ "क्रतुयन्ति" को उपर्युक्त भाँति से जपने से भावी तथा भूत के प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप भोग "कर्मजभवव्याधियां" निश्चय से नष्ट हो जाते हैं। अन्यथा "मूर्ख हो या पण्डित, स्त्री हो या देव, बिना भोगे, प्रारब्ध,और वर्तमान कर्मफल नष्ट नहीं होते हैं। यह तो महर्षियों के कठोर तपोवल साध्य वेदों ही की अपरिहार्य सामर्थ्य है जो प्रारब्धको भी बदल सकते हैं और दु:खोंको बदलकर स्वर्णिमस्वर्गोपम बना सकते हैं। "मूर्खो वा पण्डितोवापि नारी वा देव एव वा। प्रारब्धंवर्तमानन्तुभोगादेवप्रणश्यति"

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संस--द्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१

ऋ० वे० मं० १ सू० ९४ मंत्र १" इम स्तोममहंति' से मंत्र १६ पर्यन्त पूरा सूक्त को शिवालय में १० हजार जपने से, बिना पिता के ब्रह्मचारी अग्नि देने के पाप से तथा उसके फलस्वरूप भोग "कर्मजभव व्याधियों, दुर्गतियों १०१ अपमृत्युओं से छुटकारा पाता है।

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥१

ऋ० वे० मं० १० सूक्त ४८ म० १ "अहंभुवम्" से ११ पयंन्त पूरे सूक्त का रात्रि में अश्वत्थमूल में जप करने से किसी भी प्रकार की, कभी भी चोरी के पेशे की वृत्ति के पाप तथा उसके फलस्वरूप भोगों तथा निन्द्यधनादि से उत्पन्न, उपभोक्ताओं की दुर्बुद्धि जनित, अन्य जघन्य पापों "कर्मजव्याधियों" अपमृत्युओं दुर्गति पाशों राज बन्धनों से छुटकारा प्राप्त होता है।

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४
इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु। दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४५
सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६
समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७

ऋ० वे० मं० १० सू० ८५ मं० ४५ "इमांत्वमिद्रं" अश्वत्थ के नीचे रात्रि में त्रिसन्ध्याओं में १०८ बार जपने से सुन्दर, वाग्मी, नीरोग्य, स्वस्थ, भाग्यवान, दीर्घजीवी पुत्र की प्राप्ति होती है। इसे जपकर अपनी धर्मपत्नी को मन्त्र ४४ "अघोरचक्षु" से नित्य आशीर्वाद भी देना अनिवार्य है।

मं० ४६ "सम्नाज्ञी" के जप से, पतिव्रता अपनी स्त्री के द्रष्ट्राद्रष्ट्र की समृद्धि होती है, दौर्भाग्यनाश और सौभाग्य की समृद्धि भी होती है। मंत्र ४७ "समञ्जन्तु" के उपर्युक्त जपने से दम्पति में परस्पर प्रगाढ़, दाम्पत्य प्रीति बढ़ती है, जो कभी भी विघ्न वाधाओं के पड़ने पर भी न्यून नहीं होती है।

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाऽव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याऽथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन् पीतये समस्मै ।।२
आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नो ऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ।।४
यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान् त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।।५

ऋ० वे० म० ६ सू० ४० मं ? "इन्द्र पिवतुभ्यम्" पीपल के नीचे १०८ बार जप करने सें, पुत्र की दुर्बुद्धि पठन पाठन या बौद्धिक कार्यों में मन्दबुद्धि, विस्मरण हो जाना, चौर, जार, वधिक, आततताई परधना पहरण, क्रोधी, नास्तिक, माता, पिता, गुरु, देव, वेद, राष्ट्र निन्दक, प्रमादी, शरावी, ज्वारी, भगोड़ापन आदि आदि समस्त बुद्धि सबंधी वाधायें तथा मूकता, बुद्धि की जड़ता आदि के दोष जो "कर्मज भवव्याधियों" का अङ्ग है नष्ट होते हैं ।

मं० २ "अस्यपिव" के जप से भ्रातृ वैर नष्ट होकर अनन्य प्रीति लाभ होता है । मं ४ "आयाहि" के नित्य जप से वाचिकी देवता (वाणी) की प्राप्ति होती है । मं० ५ "यदिन्द्रदिवि" के जप करने से कायिकी (अधिष्टात्री) देवता पूजा को प्राप्त करें ।

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१क्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित ।।१

ऋ वे० म० १० सू० १२७ मं० "रात्री व्यख्यदायती" या पूरा सूक्त प्रतिदिन महानिशामें पीपल के नीचे ३ बार जपने से भूत प्रेत, चौर, बधिक आततताई, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, यातुधान, हिंसक व्याघ्रादि, रेंगने वाले ग्राह सर्प आदि हिंसक जीवों के भय तथा उसके कारणों का समूल नाश होकर शान्ति प्राप्त होती है । अथर्व० कां० १९ में भी जो इस ग्रंथ में आ चुका है, उससे भी यही विघ्न नष्ट होते हैं ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ।।१

ऋ० वे० मं० १ सू० १०६ मं० १ "इन्द्रं मित्रम्" से म० ७ पर्यन्त को मकर संक्रान्ति या (माघ मास) में नदी तीर, पीपल के नीचे १० हजार जपने से, योगियों, परमहंसों, वेदविदों, द्विजों, सती तथा यतियों के वधों तथा उसके फलस्वरूप भोगों "कर्मज भवव्याधियों" से छुटकारा होता है ।

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ।।१

ऋ० वे० मं० १ सू० १०५ "चन्द्रमा अपवन्तरा" मं० १९ पर्यन्त पूरे सूक्त को चैत्र मास में विल्व के नीचे जप तथा १० हजार आहुतियों से दशाँश होम करें, तो स्थावर वध जन्य पाप तथा उसके फलस्वरूप भोग "कर्मज भव व्याधियों से मुक्त होते हैं ।

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ।।१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋ० वे० मं० ६ सू० ३ मंत्र १ "अग्नेसंक्षेष" से मं० ८ तक पूरे ही सूक्त को जल में १० हजार जपें दशांश होम करें, तो अनेक प्राणियों के वध तथा आग लगाने के पाप और उसके फलस्वरूप भोग "कर्मज भव व्याधियों से मुक्ति होती है।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१

ऋ० वे० मं० १ सू० ११४ मं० १ "इमारुद्रातवसे" से ५ पर्यन्त पूरे सूक्त का ही शिवालय या पीपल के नीचे जप और १००० आहुतियों से होम करने से निश्चय रूप से "कर्मज भव व्याधि" जनित उष्ण ज्वर तुरन्त शान्त हो जाता है।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत्।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१

ऋ० वे० मं २ सू० २२ मं १ "त्रिकद्रुकेषु"से ४ पर्यन्त के सूक्त का शिवालय अथवा अश्वत्थमूल में जप और १००० से दशांश होम करने से, विना यज्ञोपवीत के अबोध कन्या को प्राप्तकर, उसका वध करने का पाप और पाप के फलस्वरूपभोग "कर्मजभव व्याधियों" से छुटकारा मिलता है।

सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥६

ऋ० वे० मं० २ सू० २७ मं० "सुगोहिवो" के नित्य १०८ बार रात्रि में अश्वत्थ मूल में जपने से अन्तःकरण (हार्दिक) कारण शरीरी व्याधि, दुःख, क्लेश, संकट, हृदय की फड़कन, हृदय की पीड़ा, हृदय गति अवरुद्धता तथा उसके मूल कारणों से छुटकारा एवं स्थाई चिरे सुख स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है।

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया। मदे सोमस्य वोचत ॥१

ऋ० वे० मं० ८ सू० ३२ मं० १ "प्रकृतान्यृजीषिण;" से ३० पर्यन्त पूरे सूक्त को माघ मास में अथवा मकर संक्रान्ति में आँवले" के नीचे जपने से अनैतिक गर्भपात, बालबध, धात्री विनाश, जनित पाप तथा पापों के भोग स्वरूप फल "कर्मज भव व्याधियों" से छुटकारा होता है।

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः ॥१

ऋ० वे० मं० ७ सू० ५५ मं० १ "अमीवहा वास्तोष्पते" से ८ पर्यन्त पूरे सूक्त का ही शिवालय या पीपल की सन्निधि में ३००० जप दशांश होम के साथ "अथर्ववेदीय" "कुष्ट निवारण विधि" से उपचार करने से कुष्ठ रोगी स्वर्ण काय हो जाता है। भैषज्य वेदोक्त औषधियां भी इस ग्रन्थ में देखे और समझकर उपयोग करें।

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१

ऋ० वे० मं० १ सूक्त १०० मंत्र १ "सयोवृषा" से १९ पर्यन्त का शिवालय (पीपलमूल) पावन नदी तीर एकान्त में १० हजार जपें, दशांश होमादि करें। ऋतुस्नानान्तगर्भाधान के नियत समय में गर्भाधान जो "प्राजापत्योष्टि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में वर्णित है) विधि से करें तो आठों प्रकार की वन्ध्यायें, दीर्घायुष्य, रूपवान, नीरोग, धीवान, भाग्यशाली पुत्र के सुख से गौरवान्वित होते हैं।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥१

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥२

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना । तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥३

ऋ० वे० मं० १० सू० १८४ मंत्र १ "विष्णु योनि" से मंत्र ३ पर्यन्त पीपल के नीचे विधिवत जप कर १००० आहुतियाँ दें। तदनन्तर ऋतु स्नानान्त ग्रन्थ में दी गई "प्राजापत्येष्टि" में वर्णित विधि से गर्भाधान संस्कार निश्चित तिथि, नक्षत्र, वारादि और स्वरों में करें, गर्भाधान काल में पति स्वधर्म पत्नि की नाभि गर्भ स्थली और योनि का स्पर्श कर योनि को अभिमन्त्रित करने के उपरान्त गर्भाधान करें तो निश्चय ही नीरोग, स्वस्थ सुन्दर सौभाग्यशाली, गुणी दीर्घजीवी, वाग्मी पुत्र से गौरवान्वित होते हैं।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।

आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्या--दंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥१

ऋ० वे० मं० १ सू० १०७ मंत्र १ यज्ञो देवानाम्" से मन्त्र ३ के पूरे सूक्त को अश्वत्थ मूल में १० हजार जपकर दशांश होम करें। तदनन्तर "प्राजापत्येष्टि" में वर्णित विधि तथा समयानुसार गर्भाधान संस्कार करने पर जिस स्त्री के पुत्र हुआ ही न हो, होकर मर जाते हों, गर्भपात ही हो जाते हों, गर्भ रहता ही न हो, या रजोधर्म ही न होता हो, गर्भ दोषों से जनित स्त्रियों को अन्य व्यथायें जो "कर्मजभवव्याधि दैवीचिकित्सा में भैषज्य रूपमें अ.१ तथा अ. ६ में भी उल्लखित है, उनका योग्य वैद्यों से मिलकर उपयोग करें, तो निश्चय ही वे स्वयं भी नीरोग होती है और नीरोग, स्वस्थ, सुन्दर, सौभाग्यशाली, गुणी, वाग्मी, दीर्घायु, वली, ओजस्वी पुत्र के सुख से सम्मानित होती है।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२

ऋ० वे० म० १० सू० ७१ मन्त्र २ 'सक्तुमिव" को अश्वत्थमल में निशा में प्रतिदिन १ माला जपें तो उस कुल में दौर्भाग्य नाश होकर, स्थिर लक्ष्मी वास करती है।

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥१

ऋ० वे० म० १० सू० १८५ "महित्रीणाम्" म० १ से ३ पर्यन्त के सूक्त को फाल्गुन मास में धात्री वृक्ष (आवला) के नीचे १० हजार जपें तो महापुरुषों के प्रति कल्पित मिथ्या दोष जनित पाप, और उससे उत्पन्न महाविनाश भय, सङ्कट, दुर्गति "कर्मज, भव व्याधियो" से छुटकारा मिलता है।

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।

क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं ह--न्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥१

ऋ० म० १० सू० १८२ "वृहस्पतिर्जनपतु" । को प्रतिदिन न अश्वत्थमूल में १० पुत्र, पौत्र, दौहित्र जपकर उसका फल दान दें तो अपमृत्यु प्राप्त समस्त पितृगणों की नारकीय दारुण दुःखों से मुक्ति होकर, पितृलोक, या सुकृत लोक प्राप्त होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥१

ऋ० म० १० सू० १६० "तीव्रस्याभिवयसो" मन्त्र १ से ५ पर्यन्त के सूक्त को माघ (मकर संक्रान्ति में शिवालय, अश्वत्थ मूल में नित्य जपे तो मृगी (हिस्टिरिया) उन्माद "कर्मज भव व्याधि महापातक और उनके मूल कारणों से छुटकारा होता है ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१

म० १० सू० १६१ "मुञ्चामित्वा" म० १ से ५ पर्यन्त के सूक्त को ३ वार (उपर्युक्त रीति से, जपे तो, कर्मज भव व्याधि, १०१ अपमृत्यु दुर्गति पाश नष्ट हों, शतायु पर्यन्त नीरोग, स्वस्थ रहे ।

ऊर्ध्वरेखा प्रदधतेविष्णुरिममिन्द्राग्नी अमृतं जुषेथाम् ।
मह्यं दधाना उपदीर्घमायुरस्मैधत्त पुरुमुजापुरन्धि ॥१००॥

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषि-न्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१०

ऋ० वे० मं० ३ सू० ३६ म० १० "अस्मेप्रयन्धि" का १ माला नित्य रात्रि में विल्व वा आमला के नीचे जप करें तो अतुल धन सम्पदा का लाभ होता है ।

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवो ऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१

ऋ० मं० ९ सू० ६८ म० १ "प्रदेवमच्छा" को अश्वत्थ मूल में जपने से, उठने, बैठने, सोने आदि से शयन पर्यन्त के समस्त पाप, पञ्च महापातक और उनके भोग स्वरूप फल "कर्मज, भव व्याधि मल" नष्ट होकर शान्ति स्वस्थता नीरोगता प्राप्त होती है ।

तव क्रत्वा तवोतिभि-र्ज्योक् पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६

ऋ० म० ९ सू० ४ मन्त्र ६ "तव क्रत्वा" से मन्त्र ६ पर्यन्त अश्वत्थ मूल में १० हजार जपने से समस्त वात जनित पीड़ा कर्मज भव व्याधि ग्रसितों को ऊपर से नीचे की ओर अपामार्ग या मयूर पंख से झाड़ा देने से रोगों से छुटकारा मिलता है ।

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥१

ऋ० वे० म० १ सू० ९६ म० १ "सप्रत्नथा" । मन्त्र ५ पर्यन्त को ज्येष्ठ मास में आमले के नीचे १० हजार जप दशांश होम से (यतीयों) के वध जनित पाप, और उसके भोग स्वरूप फल "कर्मज भव व्याधि" दुर्गति पाशों नारकीय घोर दुःखों, और उनके कारणों से छुटकारा तथा नीरोगता, स्वस्थता दीर्घायुष्य और शान्ति लाभ होता है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विश्वजितें धनजितें स्वर्जितें सत्राजितें नृजितं उर्वराजितें ।
अश्वजितें गोजितें अब्जितें भरे-न्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१

ऋ० वे० म० २ सू० २१ मन्त्र १ "विश्वजितं" १० हजार माघ में जपे तो क्षेत्रों के अपहरण जनित पापों और उनके भोग स्वरूप फल "कर्मज भव व्याधियों, तथा दारुण नरक यातनाओं से छुटकारा होता है।

अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वते ऽषाडहाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥२

म० २ "अभिभुवे" के १ हजार जप से वैश्य सेवा जनित पाप और उसके अनिष्ट फलों से मुक्त होते हैं।

सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३

म० ३ "सत्रासाहो" के १० हजार जपने से रत्न हरण जनित पापों और उसके दारुण "कर्मज भव व्याधि बन्धनों से छुटकारा मिलता है।

अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीलितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४

म० ४ "अनानुदो" के नित्य जपने से रत्न, वस्त्र, धन, धान्य वृद्धि होती है।

यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥५

म० ५ "यज्ञेन" १० हजार विल्व मूल में जपने से अतुल धन लाभ होता है।

ऋ० वे० म० १० सू० १२५ मन्त्र १ "अहं रुद्रेभि" अथर्व कां० ४ सू० ३० "जो ग्रन्थ में उल्लिखित है। इसके अश्वत्थ मूल में नित्य जप से पतिव्रता का क्षोभ तथा जिसके प्रति क्षोभ है, उसका एवं क्षोभ जनित भोग स्वरूप फल कर्मज भव व्याधियों दुर्गतिपाशों से छुटकारा प्राप्त होता है। इसी के मन्त्र २ "अहं सोमम्" के उपर्युक्त भांति के जप से प्रजा तथा सन्दर्भ परायण ब्रह्मविदों ब्राह्मणों के क्षोभ और उसके कारण का तथा उससे उत्पन्न दैवी सङ्कट, क्लेश, भय, सङ्कट का निवारण होता है।

म० ४ "मयासो" के नित्य जप से पुत्र कलत्रादि आत्मीयों की ममता मोह का नाश, और दैवी संरक्षण कवच (वर्म) स्वतः ही उपलब्ध होता है।

म० ५ "अहमेव स्वयमिदम्" के जप से, असमर्थ पौरुषहीन का क्षोभ नष्ट होकर पौरुष शक्ति प्राप्त होती है।

म० ८ "अहमेववात" के नित्य जप से, अहं भाव नष्ट होकर, किसी भी परिस्थिति में माया का स्पर्श नहीं होता है। मन्त्र वृहच्छान्ति में पढ़ें।

उत्तिष्ठतावं पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् । यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋ० वे० म० १० सू० १७६ मन्त्र १ "उत्तिष्ठाव" को (वेरी) वृक्ष के नीचे १०हजार जपने से, घात, पात (कृत्या) तथा रागद्वेष से प्रेरित मारण, उच्चाटन स्तम्भन, विद्वेषण, सम्मोहन, वशीकरणादि अनिष्ट कार्य कदापि नहीं होते। करने वाले स्वयं को ही वापिस हो तहस-नहस कर डालते हैं। इसे दक्षिणाभिमुख वीरासन से महानिशा में जपें, तो राक्षस, यातुधान, चौर, वधिक सभी का संहार होता है।

बृह॒स्पति॒र्नय॑तु दु॒र्गहा॑ ति॒रः पुन॑र्नेषद॒घशं॑साय॒ मन्म॑ ।
क्षि॒पद॒शस्ति॒मप॑ दु॒र्म॒तिं ह॒न्नथा॑ कर॒द्यज॑मानाय॒ शं योः ॥१

ऋ० वे० म०१० सू० १८२ मन्त्र "बृहस्पतिर्नयतु" से ३ मन्त्रों के सूक्त को पीपल के पास १० हजार जपकर यदि पुत्र, पौत्र, दौहित्र या पुरोहित दान ससंकल्प प्रेतात्माओं के हित में करें तो, अकालमृत्यु अपमृत्यु प्राप्त समस्त प्रेतात्माओं, विजातियों की भी नारकीय दारुण यातनाओं दुर्गति पाशों से मुक्ति होती है। वे सद्गति प्राप्तकर पितृलोक, सुकृत लोकों के सुखों के भागीदार होते हैं। यह अपमृत्यु प्राप्त, समस्त प्राणियों की सद्गति का सामान्य प्रायश्चित मात्र है। जो पापरूप मल को धोकर, पवित्र बना देता है, और कर्मज भव व्याधियों से छुड़ाने वाला है। अन्यथा ये दुःखी आत्मायें, अन्य जीवित प्राणियो को प्रभावित कर, नानाभांति से उत्पीड़ित करती ही रहती हैं।

सु॒ष्मा या॑त॒मद्रि॑भि॒र्गोश्री॑ता मत्स॒रा इ॒मे सोमा॑सो मत्स॒रा इ॒मे ।
आ रा॑जाना दिवि॒स्पृशा ऽस्म॒त्रा गन्त॒मुप॑ नः ।
इ॒मे वा॑ मित्रावरु॒णा गवा॑शिरः॒ सोमा॑ः शु॒क्रा गवा॑शिरः ॥१

ऋ० वे० म० १ सू० १३७ मन्त्र १ "सुषुमा" से ३ के सूक्त को अश्वत्थ मूल में त्रिसन्ध्याओं में जपें तो, उस कुल ही में गोधन अन्न धन की निरन्तर वृद्धि हो। ३० हजार जपें तो ईश्वरत्व, प्रभुत्व की प्राप्ति हो।

सु॒प॒र्णं विप्राः॑ क॒वयो॒ वचो॑भि॒रेकं॒ सन्तं॑ बहु॒धा क॑ल्पयन्ति ।
छन्दां॑सि च॒ दध॑तो अध्व॒रेषु॒ ग्रहा॒न्त्सोम॑स्य मिमते॒ द्वाद॑श ॥५

ऋ० वे० म० १० सू० ११४ मन्त्र ५ "सुपर्णो" त्रिसन्ध्याकालों में १ माला जपें तो ईश्वर से पृथग्ग बुद्धि नहीं रहती है। परब्रह्म, परमात्मा की अनन्य, निरन्तर चिन्तन परायणता आती है। सभी में उत्तराभिमुख, पद्मासन, वीरासन, सिद्धासन का ध्यान रक्खें।

तं वो॒ विं न द्रु॒षदं॑ दे॒वमन्ध॑स॒ इन्दुं॒ प्रोथ॑न्तं प्र॒वप॑न्तमर्ण॒वम् ।
आ॒सा वह्निं॒ न शो॒चिषा॑ विर॒प्शिनं॒ महि॑व्रतं॒ न स॒रज॑न्त॒मध्व॑नः ॥३

म० १० सू ११५ मन्त्र ३ "तवोविन" के जपने से राग द्वेष नष्ट होकर चित्त की शुद्धि, मन की स्थिरता अन्तःकरण में ज्ञानाग्नि दीप्त होती है।

प्र ब्र॒ह्मैतु॒ सद॑नादृ॒तस्य॒ वि र॒श्मिभिः॑ ससृजे॒ सूर्यो॒ गाः ।
वि सानु॑ना पृथि॒वी स॑स्र उ॒र्वी पृ॒थु प्रती॑क॒मध्येधे॑ अ॒ग्निः ॥१

ऋ० वे० म० ७ सू० ३६ मन्त्र १ "प्रब्रह्मैतु" मन्त्र को त्रिसन्ध्याओं में १ माला अश्वत्थ मूल में जपने से विषयों से जानने की इच्छा, ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋ० वे० म० ७ सू० ४१ म० १ तथा अथर्व कां० ३ सू० १६ "प्रातरामिम्" जो ग्रन्थ में उल्लिखित है, सूक्त का शिवालय, अश्वत्थमूल या जल में ५ हजार जपकर घी, मधु, दुग्ध से होम करें तो कन्या की कामना वाले को कन्या, अथवा जिस दिव्य स्त्री को चाहे, वह प्राप्त हो ऐसा उल्लेख है।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१

ऋ० वे० म० १० सू० १३७ 'उतदेवा अवहितम्' के सात मन्त्रों का सूक्त जो ग्रन्थ में अहोलिङ्गगण में उल्लिखित है। को सूक्त १३५ की भाँति जपादि के साथ दान देने से; व्याघ्रादि हिंसक जीवों द्वारा हुई अपमृत्यु और उनके कारणों तथा तज्जनित कर्मज भव व्याधियों नारकीय यातनाओं से मुक्ति एवं सुकृत लोकों का सुख प्राप्त होता है।

तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्।

यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥१

ऋ० म० १० सू० १३८ म० १ "तवत्यइन्द्र" से ६ मन्त्रों के सूक्त का उपर्युक्त भाँति से दान करने से किले में होने वाली अपमृत्यु या उसके कारण तथा तज्जनित कर्मज भव व्याधियों से छुटकारा और सुकृत लोकों के सुख का लाभ होता है।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम्।

तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान् त्संपश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः ॥१

ऋ० म० १० सू० १३९ म० १ "सूर्यरश्मि" से ६ मन्त्रों के उपर्युक्त दान से रज्जुपाश (फाँसी) आदि से प्राप्त अपमृत्यु और उसके कारणों से मुक्ति होती है।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।

बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥१

ऋ० म० १० सू० १४० मन्त्र १ "अग्नेतव" मन्त्र ६ के सूक्त का सू० १३५ की भाँति जप दान शस्त्रादि से प्राप्त अपमृत्यु का नारकीय दारुण दुःख 'कर्मज भव व्याधि निवारक, सुकृत, पितृलोक सुखप्रद वर्णित हैं।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः ॥१

ऋ० वे० म० १ सू० ८६ मन्त्र १ "मरुतोयस्य" से ५ मन्त्रों के सूक्त का अश्वत्थमूल में १० हजार महानिशा में, उत्तराभिमुख, पद्मासन सिद्धासन या वीरासन से जप दशांश होम करने से विश्व के प्राणियों के प्राणों को देखने, निरोध करने की क्षमता प्राप्त होती है। ब्रह्मचर्य परान्नत्याग, एकाहार; मात्र शाकाहार, दुग्धाहार, मौन सापेक्ष्य है।

त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः।

रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥२

ऋ० वे० म० १ सू० १०६ 'आदित्य" से ७ मंत्रों के सूक्त के शिवालय में नित्य पाठ से आत्मस्तुति करने और सुनने के पाप से और तज्जनित "कर्मज भव व्याधियों से छुटकारा होता है।

श्नथद् वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात्।

इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋग्वे० म० ६ सू० ६० म० १ "श्नथद् वृत्रमुत" से मन्त्र १५ पर्यन्त पूरे सूक्त का प्रतिदिन त्रिसन्ध्याकालों में पाठ करने के उपरान्त पेट को तीन बार हाथ फेर कर अभिमन्त्रित करे तो निरोगी, स्वस्थ, प्रसन्न रहे, दीर्घायु और सुख प्राप्त करे। इस प्रक्रिया से जठराग्नि तीव्र रहती है। अपच हो जाने से उदर विकार जनित रोगों को प्रोत्साहन नही मिलता है। अग्नि तीव्र रहने से प्रक्रिया ठीक होती है, रस, शुद्धरक्त, वीर्य, बल,ओज, स्फूर्ति की वृद्धि के साथ मन, अन्तःकरण और बुद्धि स्वस्थ रहते हैं। प्रमेहादि सभी से सुरक्षा होती है। परन्तु इसमें संयम, सत्सङ्ग, सच्छास्त्रावलोकन, पवित्र भोजन भी इस हेतु अनिवार्य, सापेक्ष्य होता है।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥१

ऋ० वे० म० १ सू० २४ मन्त्र १ "कस्य नूनं कतम" मन्त्र या सूक्त (१ से १५ मन्त्रों के जप और दशांस होम करने से वरुणदेव, अग्नि सविता और सूर्य की किरणों के स्वकीय, पितृऋण, ऋषि ऋण और देव ऋणों से छुटकारा मिलता है, जन्म-जन्मान्तर और स्थाई अटूट लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। होम में पियंगु दधि, मधु, घृत, प्रधान द्रव्य होते हैं। ३००० आहुतियों का प्राविधान है।

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३

ऋ० वे० म० ७ सू० १०० मन्त्र ३ 'त्रिदेवः" इस मन्त्र का अश्वत्थ मूल में जप करने से समस्त शिरोरोगों "कर्मज भव व्याधियों" जो "(अथर्व कां० ९ सू० ८ (शीर्षक्तिम्) में वर्णित हैं समस्त व्याधियों से छुटकारा प्राप्त होकर; नीरोगता और दीर्घायु प्राप्त होती है।

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम्।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरै--रिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१

ऋ० वे० म० १ सू० १२२ के मन्त्र १ से १५ पर्यन्त "प्र वः पान्तम्" उत्तरायण मकर की संक्रान्ति (माघ मास में) शिवसन्निधि या विल्व, अश्वत्थ की सन्निधि में जपने से राक्षस, यातुधान, पिशाच, ब्रह्म ग्रह "कर्मज भव व्याधियों, दस्युओं, वधिकों, आतताइयों से उत्पन्न भय, अरिष्ट निवारण होते हैं।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१

ऋ० वे० मण्डल १० सूक्त १८ "परंमृत्योअनुपरेहि" इस सूक्त का नदी तट पर १ लक्ष जप, होमादि करने से संकीर्ण उपपातकों से मुक्ति तथा आकारादि से हकारान्त ऋचाओं का, जल के बीच जप और दशांश होम से महापातकों से मुक्ति प्रदान करता है। मन्त्र १ से १४ पर्यन्त का विधान है।

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१

ऋ० वे० म० ५ सू० ४७ "प्रयुञ्जती दिव" के मन्त्र १ से ७ पर्यन्त रवि युक्त सप्तमीके दिन जब पड़े तब जल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में उत्तराभिमुख खड़े होकर इसका जप प्रारम्भ करे और उसका दशांश होम १००० करवीर पुष्पों से होम करे तो कर्मज भव व्याधियाँ और १०१ अप मृत्युयें नष्ट होती हैं।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यंग्वा हूयसे नृभिः। सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवे ऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१

ऋ० वे० म० ८ सू० ४ "यदिन्द्र प्रागपा" इस पूरे सूक्त ही को मकरस्थ, उत्तरायण सूर्य में निरन्तर जपने से सहस्रों जन्मों के शारीरिक पापों के भोग स्वरूप कर्मज भव व्याधियों से मुक्ति प्राप्त होती है।

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर्हृदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः।
ता अञ्जयोऽरुणयो न संस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६

ऋ० वे० म० १० सू० ९५ मन्त्र ६ "यासुजूर्णि" का जप और दशांश होम, समस्त लौकिक, पारलौकिक कामनाओं का प्रदायक होता है।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः। वाजे चित्रं हवामहे ॥१

ऋ० वे० म० ८ सू० २१ मन्त्र १ 'वयमुत्वा' अश्वत्थ मूल में जपकर १००० मन्त्रों से दशांश होम करने से लोभ और लोभ जनित समस्त पापज भव व्याधियों से छुटकारा होकर, समस्त दुरित (दुर्गतियों) का नाश तथा ज्ञान, ऐश्वर्य की अभिवृद्धि होती है।

ईडे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१

ऋ० वे० म० १ सू० ११२ मन्त्र १ "ईडेद्यावा" से मन्त्र २३ पर्यन्त पूरे ही सूक्त को विल्व वृक्ष रुद्राक्ष या पीपल के नीचे जपकर १००० आहुतियाँ देने से मोह और मोह जनित समस्त पापज, कर्मज, भव व्याधियाँ और दुरित नष्ट होता है तथा ज्ञान, ऐश्वर्य की अभिवृद्धि होती है।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥१७

ऋ० वे० म० १ सू० २२ मन्त्र १७ "इदं विष्णुर्विच" से २२ तक की ५ ऋचाओं को पीपल के पास जपे और अंगुष्ठ से हवि का स्पर्श करे तो स्पर्श्या-अस्पर्श्य ज्ञात, अज्ञात बोष जनित कर्मज्ञ भव व्याधियों से छुटकारा होता है। इससे लौकिक पितृश्वरों को अक्षय पुण्य लाभ होता है। इन पाँचों ऋचाओं से श्राद्ध कर्म विघ्न हो जाने में अंगुष्ठ से हवि स्पर्श करे तो राक्षस, यातुधान, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, ब्रह्मग्रह भय नहीं होता है।

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः। अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१

ऋ० वे० म० १० सू० १६२ मन्त्र १ "ब्रह्मणाग्नि" से मन्त्र ६ पर्यन्त (अथवा अथर्ववेद कां० ८ सू० ६ यौते मातोन्ममार्ज एवं कां० २० सू० ९६ गर्भदोषानिवारण विषयक) सूक्त से ३ वार ६ मास प्रतिदिन अश्वत्थ मूल में ४१ दिन ही महानिशा में जपने से स्वकीय नष्ट या चोरों द्वारा ले जाया गया या स्वयं का अथवा पूर्वजों का या अन्य किसी आत्मा का नष्ट या भूमि निहित वह धन जिस पर प्रेत सर्पादि बनकर बैठा हो, वह प्रेत-प्रेत योनि से नष्ट (मुक्त) हो जाता है, वह द्रव्य विना किसी की प्राप्ति समय या भविष्य में बलि लिए ही, जप कर्त्ता को दृष्टि गोचर हो प्राप्त होता है। उसका तथा प्रेतात्माओं का भी जन्म-जन्मान्तरीय ऋण से मुक्ति हो जाती है। अथर्व सूक्त गर्भाधान (प्राजापत्येष्टि) में (इसी ग्रन्थ में) पढ़ें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥१

ऋ० वे० म० १० सू० ८८ म० "हविष्पान्तमजरम्" से मन्त्र १८ पर्यन्त पूरे ही सूक्त का प्रतिदिन ३ वार जप करें तो स्वकीय, तथा स्ववंशजों के जन्म-जन्मान्तरीय कृत महापातक, और तज्जन्वित "कर्मज भव व्याधियों, दुरितों दुर्गतियों से छुटकारा होता है। उस कुल में विद्या और श्रीस्थिर वास करती हैं। जप अश्वत्थ मूल में करें। ग्रहणकाल में करने से लोकिक पितृश्वरों, अपमृत्यु प्राप्त प्रेतात्माओं को नारकीय दारुण यमपाशों, सङ्कटों से मुक्ति एवं सुकृत लोकों की प्राप्ति होती है। जापक स्वकुलों सहित अर्व्वलोकों को (बिना यम दर्शन किये ही) प्राप्त करते हैं।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै।
देवाँ अच्छा दीद्यद् युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥१

ऋ० म० ३ सू० १ 'सोमस्यमातवसं" म० १ से २७ पर्यन्त के १ हजार जप और दशांश होम से, सैकड़ों ही जन्मों के मानसिक, सांकल्पित, बौद्धिक कृत पापों से, उत्पन्न कर्मज भव व्याधियां शान्त होती हैं और स्थाई नीरोगता तथा रुकी हुई सभी प्रकार की उन्नति की एक साथ अभिवृद्धि होती है।

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥१

ऋ० वे० म० १० सू० १२६ मन्त्र "नतमं हो न दुरितम्" से मन्त्र ८ पर्यन्त अश्वत्थमूल में १० हजार जपने से भ्रातृघात, विश्वासघात और उनसे होने वाली कर्मज भव व्याधियों, दुर्गतियों, स्वकुल विनाश वंश विच्छेदादि से मुक्ति प्राप्त होती है।

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥१
नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥२
तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥३

म. १० सू. १८२ "बृहस्पतिर्नयतु" तीनों मन्त्रों का अश्वत्थ के पास १ हजार जप यदि पुत्र या उसका प्रतिनिधि (पुरोहित) करें; तो अपमृत्यु, अकाल मृत्यु प्राप्त पितृगणों (प्रेतात्माओं) की उनके पूर्वकृत पाप, शाप, कृत्या, अभिचारादि बन्धनों दुर्गतियों से मुक्ति तथा सुकृत लोकों की प्राप्ति होती है। उनके आशीर्वाद से कर्ता के कुलों की पुत्र, पौत्रादि, धन सम्पदा की अभिवृद्धि होती है।

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥७

ऋ. वे. म. १ सू. १०१ मन्त्र ७ "रुद्राणामिति" से मन्त्र ११ पर्यन्त अश्वमूल में १० हजार जपें दशांश होम कर प्राजापत्येष्टि में वर्णित विधि और समय के अनुसार गर्भाधान संस्कार करें; तो केवल कन्या ही कन्या होने वाली स्त्री, वीरपुत्र से सौभाग्य, सुख युक्त होती है।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१

ऋ. वे. म. १० सू. १२८ मन्त्र १ "ममाग्ने वर्चो" से मन्त्र ७ पर्यन्त पूरे सूक्त का अश्वत्थ मूल में, एकान्त में पावन नदी तट में १० हजार दशांश होमादि करके उसका फल, पुत्र, पौत्र, दौहित्र अपने माता, पिता, मातामही, मातामह, पितामही, पितामह आदि को विधिवत सङ्कल्पकर दान करें; तो वे स्वकृत जघन्य, दारुण पाप, और उनके फलस्वरूप भोग 'कर्मज भव व्याधियों, दुर्गतिपाश वन्धनों से छुटकारा पाकर, पितृ लोकादि सुकृत लोकों को प्राप्त कर सकने में समर्थ हो जाते हैं।

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥१

ऋ. वे. म. १० सू. १५३ "ईङ्खयन्ती" म. १ से ५ पर्यन्त के सूक्त को विल्ववृक्ष या शिवालय में १० हजार माघ (मकर संक्रान्ति) में जपने से सभी कुष्ठ व्याधियाँ शीघ्र नष्ट हो, स्वर्ण काया हो जाती है।

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५

ऋ. वे. म. ४ सू. ४० मन्त्र ५ "हंसः" मन्त्र पीपल के नीचे या विष्णु मन्दिर में जपें, अरुण सूर्य को ग्रन्थ में दी गई विधि से अर्घ्य दें और नित्य पीपल की लाल कोपल या दाड़ी का जपान्त सेवन करें। तो "कर्मज भव व्याधि जनित" समस्त कुष्ठ रोगों से छुटकारा होकर, स्वर्णकाय प्राणी हो जाता है।

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे । शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥१

ऋ. वे. म. १० सू.१५५ मन्त्र १ "अरायिकाणे" से ५ पर्यन्त के पूरे ही सूक्त का पीपल के नीचे रात्रि में ५ वार जप नित्य करें तो कुल से दारिद्रचता दूर हो। दौर्भाग्य नष्ट होकर, स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् ॥१

सूक्त १५६ मंत्र १ "अग्नि हिन्वन्तु" से ५ मंत्रों के सूक्त को १००० हजार जप कर दान देने से, मुष्टिक लाठी, वल्लम पाषाण आदि से प्राप्त अपमृत्यु दोष, मारने वाले और मरने वालों के तथा उस पाप के भोग स्वरूप फल "कर्मज भव व्याधि" तथा नारकीय घोर सङ्कट, यातनाओं, दुर्गतिपाश बन्धनों से छुटकारा मिलता है।

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः । अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥१

म. १० सू. १५९ "उदसौसूर्य" मंत्र १ से ६ पर्यन्त पूरे सूक्त को उदर शूली नित्य शिवालय, या अश्वत्थमूल में माघ मास, मकर की संक्रान्ति में जपे तो निश्चय शूल दर्द से मुक्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh